In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बृहद् द्रव्यगुणादर्श

लेखक
आचार्य महेन्द्र कुमार शास्त्री

आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी उत्तर प्रदेश
लखनऊ

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बृहद् द्रव्यगुणादर्श

Vaidyaraj Zandu Bhatji
National Ayurvedic Library
Punjabi Bagh, New Delhi-26
Call No.............................
Book No. ....
Acc No. 003554

लेखक

आचार्य महेन्द्र कुमार शास्त्री, बी० ए०, एल० एम० पी०
वैद्य वाचस्पति, आयुर्वेदाचार्य

भूतपूर्व अध्यक्ष
द्रव्यगुण तथा वानस्पतिक उद्यान विभाग
श्री रामविलास-आनन्दी लाल पोद्दार आयुर्वेदिक कालेज, बम्बई

आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी उत्तर प्रदेश
लखनऊ

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

©प्रकाशक
आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेश
लखनऊ

लेखक
आचार्य महेन्द्र कुमार शास्त्री

प्रथम संस्करण, १९७८
प्रतियाँ : २२००
मूल्य : ४५ रुपये

मुद्रक
अभय प्रिन्टर्स
इलाहाबाद

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रस्तावना

आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेश की ओर से आचार्य महेन्द्रकुमार शास्त्री विरचित "बृहद् द्रव्य गुणादर्श" को पाठकों के करकमलों में समर्पित करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

आयुर्वेद जीवन का विज्ञान है। आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हेतु विज्ञान, लिंग विज्ञान एवं औषधि विज्ञान का सम्यक् ज्ञान अनिवार्य है। प्रस्तुत ग्रंथ में औषधि विज्ञान का सांगोपांग विवेचन हुआ है।

महर्षि सुश्रुत ने द्रव्य शब्द से औषधि का अभिप्राय माना है—**द्रव्याणि इह औषधयः।** द्रव्यगुण विज्ञान का ज्ञान चिकित्सा में कितना महत्वपूर्ण है यह इसी से स्पष्ट है कि चरक ने चिकित्सा के चार पादों में द्रव्य को दूसरा स्थान दिया है। उन्होंने लिखा है चिकित्सा के चार पाद हैं––वैद्य, औषधि, परिचारक एवं रोगी (**भिषग्द्रव्याण्युपस्थाता-रोगी पादचतुष्टम्**)। इन्हीं चार खंभों पर आयुर्वेद का भव्य भवन स्थित है।

इसी प्रकार राजनिघंटुकार ने इस शास्त्र के महत्व के विषय में लिखा है कि जिस प्रकार विद्वान व्याकरण के ज्ञान के अभाव में और धनुर्विद्या के सतत अभ्यास के अभाव में धनुर्धर उपहास के पात्र बनते हैं उसी प्रकार वैद्य भी निघंटु (द्रव्यगुणशास्त्र) के ज्ञान के अभाव में उपहास का पात्र बनता है।

वैदिक काल में द्रव्यगुण विज्ञान को निघंटु कहते थे। निघंटु शब्द निगम शब्द से बना है। निगूढ़ अर्थ का विवेचन करने वाले साहित्य को निगम कहते हैं—**निगूढमर्थं गमयन्ति ज्ञापयन्तीति निगमाः।** एक ही पदार्थ के लिए एकार्थबोधक अनेक पर्यायों का संघ जिसमें वर्णित हो उसे निघंटु कहते हैं। निघंटुओं में द्रव्यों के नाम, उत्पत्ति स्थान, परिचय, गुण, कर्म, प्रभाव आदि का वर्णन उपलब्ध होता है।

महर्षि चरक ने द्रव्यों का अध्ययन विभिन्न दृष्टियों से करने का निर्देश दिया है। **इदमेवंप्रकृतिमेवंगुणमेवं-प्रभावमस्मिन् देशे जातमस्मिन्नृतावेवंगृहीतमेवंनिहितमनया मात्रया प्रयुक्तमस्मिन् व्याधौ एवं विधस्य पुरुषस्य एतावन्तं दोषमपकर्षति वा**––अमुक द्रव्य की प्रकृति ऐसी है, गुण ऐसा है, प्रभाव ऐसा है, यह अमुक स्थल पर उत्पन्न होती है, इसे अमुक ऋतु में संग्रहीत किया जाता है, इसका प्रयोग अमुक मात्रा में करने से अमुक प्रकार के पुरुष को अमुक व्याधि में अमुक दोष से मुक्ति मिलती है—इतनी बातें द्रव्यगुण विज्ञान में होनी ही चाहिये।

आयुर्वेद में द्रव्य शब्द से आहार एवं ओषधि दोनों प्रकार के द्रव्यों का ग्रहण होता है किन्तु द्रव्यगुण विज्ञान में द्रव्य शब्द से प्रमुखतया ओषधियों का ही ग्रहण होता है। द्रव्यगुण पद में गुण शब्द से 'धर्म' का बोध होता है जिसके अन्तर्गत रस-विपाक-वीर्य-प्रभाव-कर्म का समावेश है।

औषधियों के नाम, रूप, गुण, ज्ञान एवं योजना के ज्ञान के अभाव में अमृततुल्य औषधि भी विष, अग्नि एवं शस्त्र के तुल्य विविध अनर्थों को उत्पन्न करते हुए प्राणों की घातक बन सकती है—

यथा विषं यथा शस्त्रं यथाऽग्निरशनिर्यथा। तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतं यथा॥
औषधं ह्यनभिज्ञातं नामरूपगुणैस्त्रिभिः। विज्ञातं चापि दुर्युक्तमनर्थायोपपद्यते॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इस ग्रंथ के लेखक आचार्य महेन्द्रकुमार शास्त्री द्रव्यगुण शास्त्र के अधिकारी विद्वान हैं। उन्होंने अनेक वर्षों तक इस विषय का अध्यापन किया है तथा भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भ्रमण करके अनेक संदिग्ध द्रव्यों का प्रत्यक्ष अवलोकन करके द्रव्यगुण विषयक ज्ञान अर्जित किया है। साथ ही ये एक सिद्धहस्त लेखक भी हैं और इससे पूर्व अनेक ग्रंथों का प्रणयन कर चुके हैं। फलस्वरूप इस ग्रंथ में इस विषय का विवेचन वे बहुत ही अच्छी तरह करने में सफल हो पाये हैं।

अनेक कारणों से इस ग्रंथ के प्रकाशन में बहुत समय लग गया। पांडुलिपि की टंकणित प्रति में अनेक अशुद्धियाँ थीं जिन्हें शुद्ध कराना आवश्यक था। इस सम्बन्ध में लेखक से परामर्श किया गया किन्तु उन्होंने इसमें अपनी असमर्थता व्यक्त की। अन्त में लेखक के परामर्श के अनुसार राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय लखनऊ के द्रव्यगुण विभाग के अध्यक्ष डा० राजनारायण सिंह से पांडुलिपि में टंकण की अशुद्धियाँ दूर करायी गयीं। एतदर्थ अकादमी डा० सिंह को धन्यवाद देती है एवं उनकी सेवाओं के प्रति अनुगृहीत है।

प्रस्तुत पुस्तक के मुद्रण तथा कलेवर को सुन्दर एवं आकर्षक बनाने में श्री गजाधर प्रसाद अग्रवाल, संचालक अभय प्रिंटर्स एवं अकादमी के मन्त्री डा० पूर्णचन्द्र जैन ने हमें अमित सहयोग प्रदान किया है। एतदर्थ उन्हें भी हम धन्यवाद अर्पित करते हैं।

सत्यपाल गुप्त
अध्यक्ष
आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी
उत्तर प्रदेश

लखनऊ
13.6.78

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लेखक-परिचयः

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा, हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥ १॥
--कालिदास

तस्यांध्रिमूले समुपत्यकायां, स्थिते मनोज्ञे हवनाग्निधूमैः।
श्रीजन्हुसूर्यात्मजयोः पवित्रे प्रक्षालिते वारितरंग धौते॥ २॥
श्रीरामगंगातटगे मुरादाबादाऽभिधे सुन्दरमण्डले वै।
पांचालदेशे हि सदर्पुराख्यः ग्रामो जनिर्यत्र च लब्धवान् यः॥ ३॥
श्रीरूपचन्द्राज्जनकाच्च लेखादेवीति नाम्न्यां जनितो जनन्याम्।
प्रख्यापिताचार्यवरो महेन्द्रकुमारशास्त्री स हि लेखकोस्य॥ ४॥

भ्रात्रा विमलदेवेन गुरुणा गुणशालिनी। आरोपिता लता या तु ज्ञानविज्ञानशालिनी॥५॥
यत्नतो गोपिता या च गुरुभिर्ज्ञानसागरैः। जिज्ञासुभिर्न्न ह्यदत्तैः पदवाक्यप्रमाणगैः॥६॥
आयुर्वेदगुरुश्रेष्ठैः सुरेन्द्रमोहनाभिधैः। प्रीत्या पल्लविता सा हि वैद्यविद्या विशिष्यते॥
पुष्पिता च प्रयत्नेन आशानन्दप्रसादतः। तस्यास्तृतीयकुसुमं विदुषामस्तु प्रीतये॥
भाद्रे मासे सितेऽष्टम्यां, भूताक्षिखदृग् वैक्रमे। मुम्बापुर्यां नगर्यां हि ग्रन्थोऽयं सम्प्रपूरितः॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ग्रन्थ की विशेषताएँ तथा प्रामाणिकता

(१) विषय वर्णन का आधार आयुर्वेद सिद्धान्त ही हैं। नव्य द्रव्यों का वर्णन भी आयुर्वेदपरक ही है।

(२) आयुर्वेद के इतिहास में प्रथम बार द्रव्यों का वर्गीकरण शरीर अवयवों पर होने वाले उनके प्रभाव तथा कर्मण्य गुणों के अनुसार किया गया है।

यथा—अन्त्रप्रभावक द्रव्य, सर, अनुलोमन, मृदुरेचक, स्नेहन, तीव्ररेचक, पित्तविरेचक, उष्ण संग्राही (शुंठी आदि), शीत संग्राही (अफीम इत्यादि)।

(३) द्रव्यों का वर्णन विशिष्ट प्रकार से किया गया है। प्रथम द्रव्यों के विविध भाषाओं में नाम, उपयोगी अंग, संक्षेप में विशिष्ट गुण, द्रव्यों का शरीर के अवयवों पर होने वाला प्रभाव, चिकित्सा में प्रयोग--योग (प्रमुख) मात्रा आदि। इस प्रकार नव्य परिपाटी के अनुसार द्रव्यों का वर्णन आयुर्वेद के सिद्धान्त के अनुसार किया गया है। पुष्पकाल वर्णन इस ग्रन्थ की विशेषता है।

(४) गुणों और कर्मों की व्याख्या भी विस्तृत रूप से नव्य प्रणाली के अनुसार, किन्तु आयुर्वेद के सिद्धान्तों पर की गई है।

इस प्रकार यह पुस्तक विद्यार्थियों, चिकित्सकों, तथा प्राचीन तत्व के जिज्ञासुओं, सभी के लिए उपादेय बनायी गयी है।

(५) द्रव्यों का रोगानुसार, कर्मानुसार, संस्थान प्रभावानुसार वर्गीकरण इसकी विशेषता है। इस वर्गीकरण से छात्रों, अध्यापकों, चिकित्सकों तथा औषध निर्माताओं को सहायता मिलेगी।

(६) देवनागरी अक्षरों में प्रथम बार औषधियों के संस्कृत नामों के साथ प्रायः सभी प्रधान भाषाओं के नाम प्रामाणिक रूप में दिये गये हैं, जिससे उच्चारण में शुद्धता और सुगमता आ गई है।

ग्रन्थ की प्रामाणिकता

इस 'बृहद् द्रव्यगुणादर्श' में दिये गये द्रव्यों के गुणों का विशेषकर रसवीर्य विपाक प्रभाव तथा दोष शमन या कोपन का वर्णन अनेक बार पर्याप्त सावधानी के साथ निरीक्षण कर निम्न ग्रन्थों के आधार पर दिया गया है—

चरकसंहिता (अग्निवेशतन्त्र)	सुश्रुत संहिता
भावप्रकाश निघण्टु	कैय्यदेव निघण्टु
राज निघण्टु	द्रव्यगुण संग्रह (चक्रदत्त)
निघण्टु रत्नाकर	गद निग्रह
रसरत्न समुच्चय	रसेन्द्र सार संग्रह
रसतरंगिणी	रसचंडांशु

इससे इस पुस्तक में वर्णित रसादि की प्रामाणिकता स्वतः सिद्ध है। हाँ, मतान्तर होना दूसरी बात है--- फिर भी यदि कोई सज्जन आयुर्वेद-आचार्य ग्रहणीय परिवर्तन या परिवर्धन का सुझाव देंगे तो वह कृतज्ञतापूर्वक सहर्ष स्वीकृत होगा।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

समर्पणम्

ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी
प्रियतम पुत्र
स्वर्गीय अनिल को ही
(जन्म ७ सितम्बर १९४६ मृत्यु १५ सितम्बर १९६८)
सर्वभाव से समर्पित
जिसकी
अब
अमिट स्मृति ही हृदयपटल पर
अंकित रह गई
निम्न इच्छा के साथ-साथ

यत्र कुत्रापि त्वं तात ! गच्छेः कर्मानुसारतः।
संप्राप्य पुण्यमस्माकं सुखेनैधस्व शाश्वतम् ॥

ओम् तपसा ये अनाधृष्यास्तपा ये स्वर्ययुः। तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १ ॥
ओ३म् ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः। ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ २ ॥
ओ३म् ये चित्पूर्वे ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः॥ ऋषींस्तपस्वतो यम तपोजां अपि गच्छतात् ॥ ३ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

द्रव्यगुण विषयक सूक्ति संग्रह

उन्नो वीरा अपर्य, ...। भेषजेभिःभषक्तमं त्वां भिषजा कृणोमि ॥

—ऋग्वेद २, ३३, ४

रोग नाशक प्रभु हे ! तुम हो वैद्य महान । ऐसा दो भैषज्य दान, जिससे हो वैद्य यशवान ॥

●

यो भेषजमविज्ञाय प्राज्ञमानो प्रयच्छति। त्यक्तधर्मस्य पापस्य मृत्युभूतस्यदुर्मतेः ॥
नरो नरकपाती स्यात् तस्य संभाषणादपि ॥—अग्निवेश

अनामविन्मोहमुपेति वैद्यो न जानाति पश्यन्नपि भेषजानि।
क्रिया क्रमो भेषजमूलमेव, तद्भेषजं चापि निघण्टुमूलम् ॥—धन्वन्तरि

भिषग्बुभूषुर्मतिमानतः स्वगुणसम्पदि। परं प्रयत्नमातिष्ठेत् प्राणदः स्याद् यथा नृणाम्।—चिरक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अक्षर-संकेत

(अं०)	—अंग्रेजी	(बं०, व०)	—बंगाली
(आ०)	—आसामी	(म०)	—मराठी
(उ० स्थ०)	—उत्पत्ति स्थल	(मा०)	—मारवाड़ी (राजस्थानी)
(उ०)	—उड़िया	(मल०)	—मलयालम
(इं०)	—इंग्लिश	(लै०)	—लैटिन नाम
(क०)	—कन्नड़	(वा०)	—वानस्पतिक नाम
(ता०)	—तामिल	(व्य० अं०)	—व्यवहार्य अंग
(तै०)	—तेलुगु	(वि० गु० क०)	—विशेष गुणकर्म
(प०)	—परिचय	(सं०, स०)	—संस्कृत
(प्र० अ०)	—प्रभावक अवयव	(सि०)	—सिन्धी
(पं०)	—पंजाबी	(हि०)	—हिन्दी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विषयानुक्रमणिका

१. प्रस्तावना	
२. लेखक का परिचय	v
३. ग्रन्थ की विशेषताएँ तथा प्रमाणिकता	vii
४. समर्पणम्	ix
५. द्रव्यगुण विषयक सूक्ति संग्रह	xi
६. अक्षर संकेत	xiii
७. लेखकीय किञ्चित्	xv

प्रथम खण्ड

विषय प्रवेश

सिद्धान्तात्मक (रसवीर्य-विपाक प्रभावात्मक)

१. द्रव्यगुण-शास्त्र परिचय	३– ५३
२. द्रव्य विज्ञान	५४– ८६
३. गुण विज्ञान	८७– ९६
४. कर्म विज्ञान	९७–१९०
५. रस विज्ञान	१९१–२१३
६. वीर्य विज्ञान	२१४–२२१
७. विपाक विज्ञान	२२२–२३२
८. प्रभाव विज्ञान	२३२–२३६
९. परिभाषा विज्ञान	२३७–२९६

द्वितीय खण्ड

द्रव्यगुणकर्म प्रयोग वर्णनात्मक

महत्व और उपयोगिता

१०. औषध वर्णन	२९९–३०८
११. तिक्त रसायन वर्ग	३०९–३१२
१२. कटु वर्ग	३१३–३३९
१३. वामक वर्ग	३४०–३४६
१४. छर्दि निग्रहणीय वर्ग	३४७–३७३
१५. रेचक या विरेचक वर्ग	३७४–३७९

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१६. तीव्र विरेचक् या जल विरेचक	३८०–३८४
१७. ग्राही या मल विरोधक वर्ग	३८५–४०५
१८. उदर कृमिहर वर्ग	४०६–४१६
१९. हृदय रसायन तथा रक्ताभिसरण प्रभावक वर्ग	४१७–४२३
२०. रक्त शोधक वर्ग	४२५–४३८
२१. रक्तस्राव स्तम्भक वर्ग	४३९–४४७
२२. यकृत् प्रभावक वर्ग	४४८–४६३
२३. वृक्क तथा मूत्र संस्थान प्रभावक वर्ग	४६४–४८०
२४. नारी प्रजननांग प्रभावक	४८१–४९१
२५. पुरुष प्रजननांग प्रभावक	४९२–५०७
२६. त्वचा प्रभावक	५०८–५२३
२७. श्वास संस्थान	५२४–५४४
२८. वात संस्थान प्रभावक	५४५–५८०
२९. ज्वर शामक (ताप शामक)	५८१–५९६
३०. रसायन (सर्वशरीर प्रभावक)	५९७-६१३

प्रथम परिशिष्ट

वनस्पति विज्ञान के अनुसार द्रव्यों का वर्गीकरण	६१४–६४३

द्वितीय परिशिष्ट

औषधियों की उत्पत्ति और रासायनिक संगठन वर्णनपरक संज्ञाएँ एवं संकेत चिह्न	६४४–६८१

तृतीय परिशिष्ट

विष-द्रव्य व्यवहार पंजिका	६८२
सन्दर्भ-ग्रंथ-सूची	६८३

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लेखकीय किञ्चित्

अनामविन्मोहमुपैति वैद्यो न वेत्ति पश्यन्नपि भेषजानि। क्रिया क्रमो भेषजमूलमेव, तद्भेषजं चापि निघण्टुमूलम् ॥

द्रव्य-गुण-शास्त्र अथवा औषध-शास्त्र चिकित्सा का आधारभूत शास्त्र है, जिसके ज्ञान के बिना चिकित्सा संभव नहीं। क्योंकि रोग रूपी शत्रु का हनन करने के लिये चिकित्सक के पास औषधशास्त्र ही एकमात्र अस्त्र है। औषधियों के इस महत्व को ही ध्यान में रखकर प्रायः सभी आचार्यों ने अपने-अपने ग्रंथों में द्रव्यों के वर्णन को प्राथमिकता दी है। 'अग्निवेश-संहिता' के प्रति-संस्कर्ता भगवान् चरक ने तो 'चरक-संहिता' के प्रथम चार अध्यायों में ही औषधियों तथा उनके कल्पों का वर्णन किया है। उक्त कथन न केवल आयुर्वेद के विषय में चरितार्थ होता है, अपितु संसार की अन्य सभी चिकित्सा-प्रणालियों के विषय में भी।

"तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते" आचार्य चरक के इस वचन के अनुसार व्याधि-विनाशक कोई भी द्रव्य 'औषधि' की परिभाषा के अन्तर्गत आ सकता है। सामान्यतः औषध-द्रव्यों की उपलब्धि के तीन स्रोत हैं, (१) प्राणि जगत्, (२) वनस्पति जगत्, (३) जड़ जगत्। तीनों ही स्रोतों से भेषजद्रव्य प्राप्त होसे हैं। समय-समय पर विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध औषधियों की प्रधानता रहती है। आयुर्वेद में प्राणिज औषधियों का प्रयोग प्रायः कम किया गया है। सम्भवतः अहिंसा तथा आध्यात्मिकता की भावना इसका कारण रही हो। प्राणियों को बिना कष्ट दिये प्राप्त औषध-द्रव्यों के उपयोग को प्रमुखता दी गई है। यद्यपि अपवादों का भी अभाव नहीं है। अति प्राचीनकाल में वानस्पतिक द्रव्यों की ही प्रधानता रही। किन्तु बौद्धधर्म की प्रबलता के समय संभवतः शल्यशास्त्र से अरुचि के कारण ऐसे द्रव्यों की ओर अधिक ध्यान दिया गया, जो अधिक समय तक स्थायी रहें तथा जिनके गुणों का भी शीघ्र ह्रास न हो। मध्यकाल में (लगभग ईसा की सातवीं सदी) नागार्जुन आदि बौद्ध रसाचार्यों ने, संहिता-ग्रंथों में बीज रूप में अवस्थित रस-शास्त्र का बहुत विस्तार किया और इस काल में जड़-जगत् से प्राप्त भेषजों की प्रधानता हो गई। संग्रह काल (१० वीं शती के पश्चात) के आचार्यो ने अपने अनुभव के आधार पर एक समन्वयात्मक चिकित्सा प्रणाली प्रचलित की, जिसमें जड़ (भौम) तथा उद्भिजों से प्राप्त औषधियों का प्रयोग एक दूसरे के पूरक रूप में किया गया। यही प्रणाली आज तक आयुर्वेद में प्रचलित है। किन्तु प्राणिज पदार्थों की वैसी प्रधानता आयुर्वेद में कभी नहीं हुई जैसी कि यूनानी तथा ऐलोपैथी में है। एलोपैथी में तो आजकल उद्भिजों के बहिष्कार का ही फैशन प्रचलित हो गया है। पार्थिव तथा प्राणिज पदार्थो की ही प्रधानता है पर यह पूर्णतः वैज्ञानिक मार्ग नहीं है।

जलवायु का प्रभाव केवल सजीव पदार्थो पर ही नहीं, रोगों पर भी पड़ता है। काल, देश, वातावरण, आहार तथा विहार की विशिष्टता के कारण अनेक नूतन व्याधियाँ उत्पन्न होती रहती हैं तथा पुरातन तिरोभूत। विगत दो विश्वयुद्धों ने इस बात का पूरा प्रमाण दे दिया है। नये-नये रोगों की चिकित्सा के लिए देश, काल, प्रकृति आदि के अनुसार नित्य औषधियों का अविष्कार सदा होता रहेगा।

त्रिकालाबाधित तथ्यों पर आधारित सत्य-चिकित्सा सिद्धान्तों में परिवर्तन की आवश्यकता न होते हुए भी औषधियों सम्बन्धी अन्वेषण अभीष्ट ही है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही आयुर्वेद के आचार्यों ने सर्वदा नव्य

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

औषधियों का समावेश आयुर्वेदीय द्रव्यगुण शास्त्र में किया है। संहिताओं से लेकर आचार्य भाव मिश्र के भावप्रकाश निघण्टु (१६ वीं शती) तक का अध्ययन करने से यह बात सुस्पष्ट हो जाती है।

अर्वाचीन निघण्टुकारों ने भी अनेक यूनानी तथा कुछ एलोपैथिक द्रव्यों को अपने ग्रंथों में ग्रहण किया है। यद्यपि आचार्य 'भाव मिश्र' के समान प्रामाणिकता उनको अभी प्राप्त नहीं हुई है तथा उस महान् आचार्य के समान द्रव्यों का पूर्ण आयुर्वेदीयकरण ये अर्वाचीन आचार्य नहीं कर सके हैं, तथापि उनके प्रयत्न प्रशंसनीय तो हैं ही। इस दृष्टि से यदि तथ्यों का विश्लेषण किया जाय, तो आयुर्वेद के लम्बे इतिहास में 'गतिरोध' जैसा कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता। भले ही प्रगति की गति धीमी रही हो, किन्तु विकास का कार्य कभी रुका नहीं। तीव्रता के पश्चात मन्दता और मन्दता के पश्चात तीव्रता तो जीवन के स्वाभाविक चक्र हैं। काल की अनन्त अम्बुधि में कुछ शताब्दियाँ तो तरंग बुद्बुद् के समान हैं। हाँ, विदेशी शासनकाल में उचित वातावरण तथा प्रोत्साहन के अभाव में उतनी प्रगति नहीं हो सकी, जितनी अभिलषित थी। नवनवोन्मेषशालिता, गुणग्राहकता तथा सत्यान्वेषण में आयुर्वेद कभी संकोचशील नहीं रहा। यही कारण है कि आज आयुर्वेद के द्रव्यगुण शास्त्र रूपी रत्न महोदधि की ओर, उन्नति के चरम शिखर पर आरूढ़, समस्त वैज्ञानिक साधनों से संपन्न और वैभव की स्वामिनी एलोपैथी भी आशाभरी दृष्टि से निहार रही है। आज अपनी अधोगति काल में भी आयुर्वेद ही एलोपैथी को रक्तचाप की सर्वोत्तम औषधि 'सर्पगंधा' प्रदान कर सका है। यह सब हमारे पूर्वाचार्यों की गुणग्राहकता, सत्यप्रियता तथा अन्वेषणप्रेम का ही फल है। खोज करने पर आयुर्वेदीय निघण्टुशास्त्र में और भी रत्न मिलेंगे। यह एक सन्देहरहित तथ्य है। इस समय अश्वगन्धा पर अनुसन्धान हो रहे हैं। सम्भवतः वह अति महत्वपूर्ण सिद्ध हो।

अब कुछ प्रस्तुत ग्रंथ के सम्बंध में भी कहना अप्रासंगिक न होगा। प्राचीन शिक्षा-प्रणाली ग्रंथ-प्रधान थी और तदनुरूप ग्रंथों का निर्माण आचार्यों ने किया। किन्तु वर्तमान शिक्षा-प्रणाली विषय प्रधान है। अतः प्राचीन ग्रंथों द्वारा पठन-पाठन में छात्रों को कठिनाई होती है। प्राचीन आचार्यों के ग्रंथ अध्यापकों के लिये प्रामाणिक 'आकर ग्रंथों' का कार्य तो दे सकते हैं और दे ही रहे हैं; किन्तु यत्र-तत्र बिखरे विषयों को एकत्र कर अध्ययन करना नवीन छात्रों के लिये दुष्कर है और नोटस् के आधार पर विषय का गंभीर ज्ञान असंभव ही है। अतः नये पाठ्यक्रम के अनुसार नवीन ग्रंथ-निर्माण तथा नवीन सफल औषधियों के आयुर्वेदीयकरण की चर्चा चतुर्दिक् सुनाई दे रही है। इस दिशा में कुछ निर्माण-कार्य हो भी रहे हैं। कुछ राज्यों में सरकारी प्रतिष्ठान भी इस दिशा में प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु सरकारी यंत्र निर्जीव से होते हैं, उनसे कुछ सजीव उत्पत्ति की आशा नहीं करनी चाहिये। यह कार्य तो आयुर्वेद के विचारशील तथा भक्तविद्वज्जन ही कर सकते हैं।

'द्रव्य गुण-शास्त्र' पर भी कुछ ग्रंथ हिन्दी तथा अन्य प्रांतीय भाषाओं में लिखे गये हैं। उनमें कुछ उत्तम ग्रंथ भी हैं और वे समादरणीय हैं, किन्तु वे छात्रों की आवश्यकताओं को सर्वांशतः पूरा नहीं कर पाते। कुछ तो बहुत विस्तृत हैं, जिनमें से नवीन छात्र के लिये हंस के समान नीरक्षीर विवेक करना कठिन हो जाता है और कुछ इतने संक्षिप्त हैं कि उनमें पाठ्यक्रम में रखे हुए समस्त पदार्थों का समावेश नहीं हो पाया है।

हमें अपने द्रव्यगुण तथा रस-शास्त्र के १५ वर्षों के अध्यापन-काल में उक्त कठिनाई बराबर ही आती रही है। हमारे अन्य सहयोगियों का भी यही अनुभव है। वस्तुतः अध्यापक ही छात्रों की आवश्यकताओं को संपूर्णतः जान सकते हैं। अनध्यापक उनकी आवश्यकताओं को पूर्णतः नहीं जान सकते, क्योंकि अध्यापन-काल की कठिनाइयों का उन्हें अनुभव नहीं होता। सन् १९४८ में इन्हीं कठिनाइयों को ध्यान में रख कर हमने छोटी-सी पुस्तिका 'लघु' द्रव्य गुणादर्श निकाली थी। जिससे छात्रों की परीक्षा सम्बन्धी समस्याओं का कुछ सीमा तक समाधान हो गया था। उसका अनुसरण कर कई प्रांतीय भाषाओं में भी वैसी ही पुस्तकें निकाली गईं। उक्त पुस्तिका छात्रों में इतनी प्रिय हुई कि उसका दूसरा परिवर्धित सचित्र संस्करण पुनः निकालना पड़ा।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

,द्रव्यगुण-शास्त्र' पर समग्र भारतवर्ष के आयुर्वेदिक कालेजों के विविध पाठ्यक्रमों को ध्यान में रखकर उपयोग में आने वाली पाठ्यपुस्तक के अभाव को, तथा छात्रों की कठिनाइयों को ध्यान में रख कर 'बृहत् द्रव्य गुणादर्श' लिखने की प्रेरणा वैद्य बन्धुओं तथा सहयोगियों से सदा ही मिलती रही, इसी लिये कई सहस्र के व्यय को देखते हुए भी इस सत्कार्य में हाथ लगाने का साहस हो रहा है।

ग्रन्थ-परिचय—ग्रन्थ दो खण्डों में विभक्त है।

प्रथम खण्ड सिद्धान्तात्मक है, जिनमें रस, वीर्य, विपाक तथा परिभाषादि का समावेश किया गया है। सप्रमाण सभी सिद्धान्तों का सम्पूर्ण वर्णन करने का यत्न किया गया है।

द्वितीय खण्ड में द्रव्यों का वर्णन है। जिनका क्रम उनके कर्मों (Pharmacological Actions) के अनुसार किया गया है, क्योंकि चिकित्सा में यही वर्गीकरण उपयोगी है और छात्रों को स्मरण रखने में तथा वैद्यों को गुण-दर्शन में अति सरल सिद्ध हुआ है। अर्वाचीन (एलोपैथी) तथा प्राचीन (चरकादि) ग्रन्थों में भी इसी का अनुसरण किया गया है। अन्त में रोगानुसार वर्गीकरण देकर ग्रन्थ को और भी उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है।

इस विभाग में द्रव्यों के 'पुष्पकाल' का भी वर्णन किया गया है। यह वर्णन हमारे १५ वर्षों के निरीक्षण का परिणाम है। दक्षिण भारत तथा उत्तर भारत में ऋतुओं के अन्तर से उद्भिजों के पुष्पकाल में अन्तर आ जाता है। यह अनुभव सिद्ध तथ्य है। सह्याद्रि, देहली, मंसूरी, काश्मीर आदि प्रदेशों की यात्राएं कर यह पुष्पकाल निर्धारित किया गया है। द्रव्यों के विविध भाषाओं के नाम, प्रभाव, अवयव, उपयोगी अंग, मात्रा, विशेषगुण, रसवीर्य विपाकादि सभी ज्ञातव्य बातों का समावेश करने का प्रयास किया गया है। पाठक स्वयं देख कर इस ग्रंथ की लेखनशैली तथा विवेचन प्रणाली की मौलिकता की साक्षी देंगे।

यहाँ यह लिखना अनुचित न होगा कि इस ग्रंथ में, जो कुछ भी लिखा गया है वह गुरुवर्य स्वर्गीय श्री आचार्य सुरेन्द्रमोहनजी तथा श्री डॉक्टर आशानन्दजी, पंचरत्न आचार्य श्रीमद्दयानन्द जी आयुर्वेदिक कालेज, लाहौर की शिक्षा तथा उसके पश्चात स्वकीय अठारह वर्षों के अध्यापन, प्रत्यक्ष निरीक्षण तथा अनुभव का फल है। तथापि लेखक तो स्वयं को निमित्त मात्र ही मानता है। लेखन शैली और विषय विवेचन प्रकार को छोड़ कर अन्य सब कुछ प्राचीन आचार्यों का ही प्रसाद है। उन्हीं आप्त आयुर्वेदज्ञों के अगम विद्यावारिधि के किनारे से एक कण लेकर अपने शब्दों में आयुर्वेद-भारती के चरणों में उपस्थित करने का दुःसाहस मात्र मैंने किया है। यदि इससे पाठकों को कुछ भी लाभ पहुँच सका, तो मेरा यह परिश्रम सार्थक होगा।

इस ग्रंथ के लेखन में अग्निवेश (चरक) सुश्रुत, अष्टांगसंग्रह, वृद्धत्रयी का तथा संग्रहकालीन "कैय्यदेव निघण्टु, भावप्रकाश निघण्टु आदि को प्रमाणस्वरूप माना गया है।

दक्षिण भारतीय भाषाओं (तामिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम) के नामों के लिए लेखक बन्धुवर वैद्यराज श्री एन० एल० भट्टाचार्य, प्राध्यापक द्रव्यगुण विज्ञान, शासकीय आयुर्वेदिक कालेज, मैसूर (अब अवकाश प्राप्त) का आभारी हूँ, जिन्होने नागरी लिपि में नाम लिख कर भेजे, जिससे उच्चारण भिन्नता सम्बंधी कठिनाइयों का पूर्ण समाधान हो गया। इस प्रकार इन नामों तथा उच्चारणों को प्रमाणिक माना जा सकता है। क्योंकि यह एक विशेषज्ञ का किया कार्य है।

गुजराती नामों के लिये स्वर्गीय श्री वैद्यवर हरि प्रसाद सी० जोशी, जामनगर, श्री प्रिंसिपल बापालालजी वैद्य, सूरत तथा स्वर्गीय श्री यादवजी त्रिक्रमजी आचार्य के ग्रंथों को प्रमाणभूत माना गया है। मराठी नाम डॉ० देसाई वामन गणेशजी कृत 'औषधि-संग्रह' नामक ग्रंथ से लिये गये हैं। अतः इनकी प्रामाणिकता निःसंदिग्ध है।

चरक चतुरानन श्री चक्रपाणिदत्त के शब्दों में मेरी तो इतनी ही प्रार्थना है कि :—

सभ्या ! सद्गुरुवाक्सुधास्त्रुतिपरिस्फीतश्रुतीनस्मिवो, नालं तोषयितुं पयोदपयसा नाम्भोनिधिस्तृप्यति।
व्याख्याभास रस प्रकाशनमिदं त्वस्मिन् यदि प्राप्यते क्वापि क्वापि कणो गुणस्य तदसौकर्णेक्षणंदीयताम्॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आयुर्वेद में द्रव्यगुणशास्त्र की महत्ता

(१)

चिकित्सा की सफलता के लिए आधारभूत चतुष्पादों "भिषग् द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम्" (च.सू., अ. ९) में चिकित्सक के पश्चात औषधद्रव्यों को ही प्रमुखता दी गई है।

निघण्टु (द्रव्यगुण शास्त्र) या औषधशास्त्र की उक्त महत्ता का कारण यही है कि इनके बिना चिकित्सा-कार्य असम्भव है। इस शास्त्र में द्रव्यों की उत्पत्ति, पहचान, परीक्षा, संग्रह-काल, संरक्षण-विधि तथा स्वस्थातुर अवस्था में देह पर होने वाले प्रभाव तथा औषध-कल्पों का वर्णन रहता है। आयुर्वेद में इस शास्त्र की दो शाखाएँ हैं—(१) निघण्टु या द्रव्यगुण शास्त्र—इसमें प्रधानतया वानस्पतिक द्रव्यों का वर्णन रहता है। (२) रस शास्त्र—इसमें खनिजों या पार्थिव द्रव्यों का वर्णन तथा औषधनिर्माण का वर्णन किया जाता है। 'निघण्टु शास्त्र' के विषय में 'विषयप्रवेश' प्रकरण में प्रकाश डाला है।

प्राचीन समय से ही निघण्टु का आयुर्वेद में प्रमुख स्थान रहा है। संहिता-ग्रंथों में द्रव्यों का वर्णन प्रथम किया गया है। तथा उनके उचित ज्ञान पर बड़ा बल दिया गया है। भगवान चरक ने कहा है:—

"यो भेषजमविज्ञाय प्राज्ञमानी प्रयच्छति। त्यक्तधर्मस्य पापस्य मृत्युभूतस्य दुर्मतेः।
नरो नरकपाती स्यात् तस्य सम्भाषणादपि"

तथा:—

औषधं ह्यनभिज्ञातं नामरूपगुणैस्त्रिभिः। विज्ञातं चापि दुर्युक्तमनर्थायोपपद्यते॥
योगादपि विषं तीक्ष्णमुत्तमं भेषजं भवेत्। भेषजं वापि दुर्युक्तं तीक्ष्णं सम्पद्यते विषम्॥
यथा विषं यथा शस्त्रं यथाग्निरशनिर्यथा। तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतं तथा॥ (च. सू.)

अतएव भगवान् पुनर्वसु ने अग्निवेश को उपदेश देते हुए कहा :—

न नाम ज्ञानमात्रेण रूपमात्रेण वा पुनः औषधीनां परां प्राप्तिं कश्चिद्वेदितुमर्हति॥
योगविन्नामरूपज्ञस्तासां तत्वविदुच्यते। भिषग् बुभूषुर्मतिमानतः स्वगुणसम्पदि॥
परं प्रयत्नमातिष्ठेत् प्राणदः स्याद् यथा नृणाम्॥ (च. सू., अ. १)

द्रव्यगुण शास्त्र का क्षेत्र व शाखाएँ

द्रव्यगुण का क्षेत्र औषध-द्रव्य ही है। आहार-द्रव्यों का वर्णन स्वस्थवृत्त का विषय है। यह पांच भौतिक जगत् समस्त पदार्थ औषध के अन्तर्गत आ जाते हैं। चाहे वे भावरूप हो यथा शोक-क्रोध-उष्णता, शीतता आदि अथवा स्थल द्रव्य रूप यथा तिल, अलसी आदि। द्रव्यरूप और अद्रव्यरूप दोनों के पदार्थ चिकित्सा में व्यवहृत होते हैं। इसी दृष्टि-कोण को लक्ष्य में रख कर शास्त्रकारों ने कहा—"जगत्येवमनौषधम् न किंचित् विद्यते द्रव्यं वशान्नानार्थयोगयोः। (वा० सू० १)

औषध का औषधत्व

"ओसो नाम रसः, सोऽस्यांधीयते यत्तदौषधिः। ओसादारोग्यमाधत्ते, तस्मादोषधिरौषधः॥ २७
(का० सं० खिलस्थान, पृ० २०७)

'ओस' रस का नाम है–इस रस की अधिष्ठातृ होने से तथा ओस (रस) द्वारा आरोग्य प्रदान करने से औषधि 'औषधि' कहलाती है।

यद्यपि उक्त लक्षण रसादियुक्त औषध-द्रव्यों में विशेष रूप से घटित होता है। क्योंकि भाव-द्रव्यों की अपेक्षा रसादियुक्त द्रव्यों की संख्या अत्यधिक है, तथापि ऊर्जस्कर तथा रोगघ्न होने से भावरूप द्रव्यों की गणना भी औषधि के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अन्तर्गत की जाती है, क्योंकि आयुर्वेद का उद्देश्य शरीर तथा मन दोनों को ही स्वस्थ, सबल एवं रोगमुक्त रखना है। अतः द्रव्य तथा अद्रव्य (भावरूप पदार्थ) दोनों ही प्रकार के पदार्थों की गणना औषधि में करना उचित है।

औषधि का कार्य :— साधारणतः रोगनाश ही औषधि का कार्य समझा जाता है। किन्तु ऐसा क्यों होता है व किस प्रकार होता है, इस ज्ञान का महत्व अधिक है।

आयुर्वेद का सिद्धान्त है कि:—

"सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्। ह्रासहेतुविशेषश्च प्रवृत्तिरुभयस्यतु ॥ (च० सू०)

समानता वर्धक है और विशेषता या विरोधिता बाधक या ह्रास कारक है। इस सिद्धान्त को दृष्टि में रख कर औषध के शरीर पर होने वाले कार्य को समझा जा सकता है। निम्न ऋषिवचन इस विषय में स्मरणीय है :—

गुणा ये युक्ता द्रव्येषु शरीरेष्वपि ते तथा। स्थान-वृद्धि-क्षयास्तस्माद्देहिनां द्रव्यहेतुकाः ॥ (सु०सू०, अ० ४१)

द्रव्यगुण शास्त्र के भाग :—शास्त्रीय पद्धति से औषधियों के अध्ययन के लिये इस शास्त्र को कई विभागों में विभक्त किया है, किन्तु तीन प्रमुख विभाग हैं। जैसा कि आचार्य चरक ने कहा है :—

"औषधं ह्यनभिज्ञातं नामरूपगुणैस्त्रिभिः। विज्ञानं चापि दुर्युक्तमनर्थायोपपद्यते ॥" (च० सू०)

नाम रूप विज्ञान :—में औषध-द्रव्यों की उन्नति, स्वरूप-कुल, नाम-जाति-वर्ग-उपवर्ग, स्थूल तथा सूक्ष्म रचनादि का ज्ञान होता है, जिससे उसकी पहिचान सरलता से हो सके और विशुद्ध द्रव्य का ही प्रयोग किया जा सके। औषध की कार्मुकता का आधार उसकी विशुद्धता ही है। इस शाखा को आज वैज्ञानिक 'फार्मेकाग्नोसी' (Pharmacognosy) अथवा मेटेरिया मेडिका प्रापर (Materia medica proper) कहते हैं।

गुण विज्ञान :—इस शाखा के अन्तर्गत द्रव्यों के गुणों का स्वस्थ तथा अस्वस्थ देह पर अध्ययन किया जाता है। रसवीर्यविपाक भी गुण ही है अतः उनका समावेश भी इस शाखा में हो जाता है। इसी प्रकार द्रव्यों के कर्म गुणों के कारण ही होते हैं निर्गुण द्रव्य को निष्क्रिय समझकर प्रयोग के लिये निषिद्ध ठहरा दिया जाता है। अतः कर्मों का अन्तर्भाव भी इसी शाखा में करना उचित समझा गया है। आधुनिक विज्ञान में इसे "फार्माकोलोजी" (Pharmacology) संज्ञा दी गई है।

योजना :—यह इस शास्त्र की तीसरी व विस्तृत शाखा है। इसका प्रयोजन है औषधि का इस प्रकार प्रयोग, जिससे रोग नष्ट हो, स्वास्थ्य उत्तम रहे। इस शाखा में भेषज द्रव्यों के नानाविधि कल्प, चूर्ण-गुटिका, अवलेहादि, यवागू-यूष-मण्ड आदि पथ्यार्थ आहार द्रव्यों के कल्प, उनकी मात्रा-प्रयोग, स्नेह, स्वेदादिकर्म–एवं रोगी की सुश्रूषा भी सम्मिलित है। इसे पाश्चात्य चिकित्सा में थेराप्युटिक्स (Therapeutics) कहा जाता है। किन्तु द्रव्यगुण शास्त्र से सम्बन्धित औषध योजना (Medicinal therapeutics)" का ही वर्णन इस शास्त्र में प्रधानतया किया जाता है। आयुर्वेद में इसकी निम्न उपशाखाएँ हैं :

औषध कल्पना :—(Pharmacy) इसमें विभिन्न द्रव्यों के नानाविध कल्पों (संयुक्त या एकाकी) के निर्माण का वर्णन रहता है।

आयुर्वेद में यह विषय 'रस-शास्त्र' के अन्तर्गत आता है। संयोग विज्ञान या कल्पविज्ञान भी इसी के नाम हैं।

प्रयोग विज्ञान :—उक्त सिद्ध औषधियों का प्रयोग किस प्रकार कितनी मात्रा में, कब, किस सहपान या अनुपान के साथ किया जाये—यह विषय इस शाखा में निरूपण किया जाता है।

योजना की महत्ता का ज्ञान आचार्य अग्निवेश के निम्न वचनों से सुस्पष्ट है :—

"मात्राकालाश्रया युक्तिः सिद्धिर्युक्तौ प्रतिष्ठता। तिष्ठत्युपरि युक्तिज्ञो द्रव्यज्ञानवतां सदा ॥ (च० सू० २)
योगमासां (औषधिनां) तु यो विद्याद्देशकालोपपादितम्। पुरुषं पुरुषं वीक्ष्य स ज्ञेयो भिषगुत्तमः ॥ (च० सू० १)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुनश्च आयुर्वेद में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए प्रायशः वानस्पतिक या उद्भिज्ज (Herbs) द्रव्यों का वर्णन 'निघण्टु शास्त्र में तथा खनिजादि (भौम) द्रव्यों का एवं औषधकल्पों का वर्णन "रसशास्त्र" में किया गया है। यद्यपि कुछ निघण्टुकारों ने उद्भिज्जों तथा खनिजों का वर्णन अपने निघण्टु में एकत्र भी किया है तथापि वैज्ञानिक दृष्टि से ऊपर का विभाजन ही उचित है और उसी का अनुकरण करना चाहिए—पाठ्यक्रमों के निर्धारण में तथा साहित्य निर्माण में।

द्रव्य गुण शास्त्र के विभाग

- निघण्टु
  - सेन्द्रिय (उद्भिज्जों) द्रव्यों का वर्णन
- रसशास्त्र
  - निरिन्द्रिय (भौम) औषध, कल्पना द्रव्यों का वर्णन

द्रव्य-ज्ञान

- नामरूपज्ञान
- गुणज्ञान
- युक्तिज्ञान

अतः छात्रों को तथा चिकित्सकों को भी, यदि सफल चिकित्सक बनने की अभिलाषा हो, तो भगवान् चरक के निम्न उपदेश को सतत ध्यान में रखना चाहिये—

'भिषग्बुभूषुर्मतिमानतः स्वगुणसम्पदि। परं प्रयत्नमातिष्ठेत्, प्राणदः स्यात् यथा नृणाम्॥ (च० सू०).

मुझे पूर्ण आशा है कि सुदीर्घ समय तक अध्ययन और अध्यापन तथा अनुभव के आधार पर लिखा गया 'बृहद द्रव्यगुणादर्श' अवश्य इस दिशा में छात्रों तथा चिकित्सकों की सहायता करेगा।

औषध-ज्ञान के साधन स्रोत :—ज्ञान पवित्र पदार्थों में पवित्रतम है, जो प्राणी को अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाता है। जैसा कि भगवान् चरक ने कहा है—"शास्त्रं ज्योतिः प्रकाशार्थं दर्शनं बुद्धिरात्मनः" (च० वि०)। अतः इस ज्योतिर्मय ज्ञान की उपलब्धि जहाँ कहीं से भी हो सके ग्रहण करना चाहिये। मनु ने तो यहाँ तक आज्ञा दी है कि 'बालादपिग्राह्यं सुभाषितं' इसी भाव के अनुरूप आचार्य पुनर्वसु ने अग्निवेशादि शिष्यों को उपदेश दिया :—

औषधिर्नाम रूपाभ्यां जानतेह्यजपावने। अविपाश्चैव गोपाश्च ये चान्ये वनचारिणः॥

बनों में गायें, बकरियाँ, तथा भेड़ों को चराने वाले अन्य वन-वासियों द्वारा औषधियों का नाम तथा स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

यद्यपि कुछ पाश्चात्य विद्वान्, जिन्होंने अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया के मूल निवासियों से प्राप्त उद्भिज्ज ज्ञान पर अनुसंधान किया है, उक्त दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं। उनके मत में वहाँ के मूल निवासियों का ज्ञान स्वल्प है। जैसा कि श्री बी० एफ० स्टेसी तथा श्री जे० एन० रोज का कथन है—"अमेरिकन रेड इंडियनों की औषधियों के विस्तृत तथा पूर्ण गवेषणा के पश्चात् मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि उनसे कुछ अधिक नहीं सीखा जा सकता (स्टेसी)"।[1]

---

1. "From a thorough investigation I have am eonvinced that the list is not lengthy, and that there is but little to be learned from their school of practice or reporters of medicinal agents (Mr. B. F. Stacey in the Ph. J. of May, 30, 1947, page 958)."

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

"आदिवासी यथा इण्डियनों को औषधियों का अधिक ज्ञान नहीं है।[1]

किन्तु अन्य विचारवान् विद्वान् आचार्य पुनर्वसु के उक्त दृष्टिकोण से सहमत हैं। जैसा कि डॉ० रेमन्ड क्राफोर्ड ने कहा है कि प्रारम्भ में मनुष्यों ने औषधि विषयक अधिकांश ज्ञान शिकारियों, गोपाल, तापसादि से लिया है।"[2]

श्रीमेजर वी० डी० वासु का कथन है कि हमें वनवासियों के ज्ञान को तुच्छ नहीं समझना चाहिये, हमें यह स्मरण रखना चाहिये, हमने अपनी कई मूल्यमान औषधियाँ—यथा कुनीन, डिजिटेलिस स्ट्रोफेन्थस आदि उन्हीं से प्राप्त की है। "[3] प्राचीन हिन्दुओं की बुद्धिमत्ता की हमें प्रशंसा करनी चाहिये कि उन्होंने पर्वतों तथा वनों में जाकर वनस्पतियों को उनके यथार्थं प्राकृतिक रूप में जानने का उपदेश दिया।

आयुर्वेदीय द्रव्यगुण विज्ञान के विषय में अनेक विद्वानों ने आदरपूर्ण भाव व्यक्त किये हैं जैसा कि निम्न उद्धरणों से स्पष्ट है। श्री जे. एच. मेडन ने अपनी "यूजफुल नेटिव प्लान्ट्स आफ आस्ट्रेलिया" में लिखा है[4] कि यद्यपि आस्ट्रेलिया के मूल निवासियों का औषध विषयक ज्ञान स्वल्प है; किन्तु भारतीय द्रव्यगुण शास्त्र के विषय में बात इसके विपरीत है। संभवतः कुछ औषधियों के गुण वर्णन तथा प्रयोग में अतिशयोक्ति हो, किन्तु बहुधा इनका प्रयोग यथार्थ ज्ञान तथा बुद्धिमत्तापूर्ण अनुभव के आधार पर ठीक-ठीक किया जाता है।

---

1. "In country people and Indians seem to have but little knowledge of medicine, generally using teas made of bitter and strong smelling herbs." Mr. J. N. Rose in his "Note of useful plants of Mexico."

2. "That much of the knowledge of medicinal plants by the primitive man was obtained from hunters and shepherds is evident from what Dr. Raymond Crawford, M.A.M.D. (Oxon), physician to the Kings College Hospital, London, said in his presidential address, delivered before the section of history of medicine, reported in the Lancet from which it has been reproduced in the scientific Aerocamsupplement of April, 14 and 21, 1947."

3. "But we should not treat with contempt, the knowledge of herbs possessed by aborigins, we should remember that they have thought the use of some of our most important drugs. It is to them that we are indebted for our knowledge of Cinchona in Malaria, Digitalis, Strophanthus and Phisiodtigma in heart diseases and of Quassia as bitter tonic, we cannot therefore, sufficiently admire the practical wisdom in the ancient Hindus when they enjoyed on the votaries of healing art the penetration of forest and climbing of mountains to examine the qualities and properties of the medicines in their natural situations and gather information in the natural situations, regarding them from hunters and shepherds, who may have opportunities of witnessing their effects. Major B. D. Basu in the "Indian Medical Plants".

4. "With the native materia Medica of India for instance, the case is very different, while some remedies are evidently used fancifully, and others for every disease to which human frame is liable, much of knowledge in regard to it is exact, the outcome of intelligent observation and inquiry".

(Mr. J. H. Maiden in his "Useful Native Plants of Australia", page 146-147.)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

डॉ० रेमाण्ड का कथन है—"प्राचीन हिन्दुओं को इस बात का श्रेय देना चाहिये कि उन्होंने 'ऐथेनोबाटनी' नामक शास्त्र की नींव डाली। यह शास्त्र वनस्पतियों तथा मनुष्यों और ऋतुओं आदि के परस्पर सम्बंध का अनुसंधान करता है।

"The ancient Hindus should be given the credit for cultivating what is now called 'Ethno-Botany' in Bulletin 55 of the Beureau of American Ethnology. It is said : Ethno-botany is virtually a new field of research, a field which, if investigated thoroughly and systematically will yield results of great value to the ethnologist and incidentally to the Botanist" Dr. Raymond Crawford in the Scientific American supplement of April, 14 and 21, 1917.

"भारतीयों के लिये यह प्रशंसा की बात है कि उन्होंने वानस्पतिक औषधियों से परिचय प्राप्त किया। ग्रीक, रोमन, मिस्र, यहूदी, बेबीलोनियन, ईरानी, चीनी तथा अरबों की अपेक्षा हिन्दुओं के निघण्टु में अनेक औषधियों का वर्णन अधिक प्रमाणिकता के साथ किया गया है।

"It is greatly to credit of the people of India that they were acquainted with the large number of medicinal plants than the natives of any other country on the face of the earth. The vegetable materia medica of the Greeks, Romans, Egyptians, Jews, Babylonians, Persians, Chinese and Arabs does not display any of the authoritative Medical Works of the Hindus. The knowledge of the herbs possessed by the aborigins of America, Australia or Africa, is also not very great" (Major B. D. Basu in Indian Medicinal plants.)

चिकित्सा में वनस्पतियों की महत्ता :—प्रत्येक सुविज्ञ वैद्य अपनी चिकित्सा की सफलता के लिये रसों, भस्मों के साथ वनस्पतियों का भी योगों में सहपान, अनुपान आदि के रूप में प्रयोग करता है। भस्मों आदि के निर्माण को भी वनस्पतियों के रसों, क्वाथों या सत्वों से खनिजादि को भावित किया जाता है। हमारे ऋषियों की इस प्रणाली, खनिजों तथा वनस्पतियों के संयोग की, जितनी भी प्रशंसा की जाये थोड़ी ही है। क्योंकि इससे समस्त आवश्यक तत्व रोगी को प्राप्त हो जाते हैं और कुछ विशिष्ट औषधियों में यदि कोई दुर्गुण हो, तो उनका निराकरण भी हो जाता है। शास्त्रीय ढंग से बनाई गई आयुर्वेदीय औषधियों का शरीर पर वैसा कोई दुष्प्रभाव देखने में नहीं आता जैसा कि ऐलोपैथिक औषधियों का। इस दृष्टिकोण से आयुर्वेदीय चिकित्सा एलोपैथी की अपेक्षा श्रेष्ठ है और पूर्णता को पहुँची हुई है। श्रेष्ठ औषधि का लक्षण आचार्य वाग्भट ने यह बताया है :—

प्रयोगः शमयेद् व्याधिं योऽन्यमन्यमुदीरयेत्। नासौ विशुद्धः शुद्धस्तु यो शमयेन्नतु कोपयेत्।

एलोपैथिक चिकित्सक भी इसी प्रकार औषधियों को उत्तम समझते हैं और इस ओर वे प्रयत्नशील भी हैं; किन्तु अभी तक उनको सफलता नहीं मिल सकी है, क्योंकि उनका मार्ग गलत है। जब तक आयुर्वेदीय दृष्टिकोण को अपनाकर अनुसंधान नहीं किया जाता तब तक इस प्रयत्न में सफलता की संभावना कम ही है। संसार में जिस प्रकार फैशन समय-समय पर बदलते रहते हैं उसी प्रकार पाश्चात्य चिकित्सा जगत् में भी फैशनों की बहार रहती है। आजकल रसायनशालाओं में निर्मित कृत्रिम (सिन्थेटिकल synthetical) औषधियों का ऐसा फैशन चला है कि उसके सामने वनस्पतियों की ओर देखना भी प्रतिक्रियावाद समझा जाता है। इसके विपरीत कृत्रिम औषधियों के प्रयोग को प्रगतिवाद का चिन्ह कहा जाता है। सर थामस वाट्सन आदि के अनुसार चिकित्सा का सर्वोत्कृष्ट युग वह होगा जब रसायनशालाओं में निर्मित कृत्रिम औषधियों से ही सब रोग नष्ट हो जायेंगे।

"True is it today as when Sir Thomas Watson so declare a third century ago that the greatest gap in the science of medicine is to be found in its final and supreme stage—the

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

stage of therapeutics. Therapeutics advances by our increasing knowledge of the nature of morbid processes and of the physiological effects of remedies and also by studying again many a good old drugs by the light of later scientific methods and also judicious selection from the traditional popular medicine, such selection gave us Digitalis."

अतएव सल्फावर्ग, पेनिसेलिन, क्लोरोमाईसिन आदि अनेक औषधियों का धड़ाधड़ बिना समझे प्रयोग हो रहा है, जिससे अनेक कष्टसाध्य रोग उत्पन्न हो रहे हैं विशेष कर मानसिक तथा धातु सम्बन्धी।

किन्तु प्रथम श्रेणी के कुछ विज्ञ एलोपैथ इस 'फैशन के पागलपन' से बचे हुए हैं और वनस्पतियों की महत्ता को समझते हैं। डॉ० इशीख ने २ अक्टूबर १९०९ के लेन्सेट में लिखा है कि "हमें पूर्ण आशा है कि मनुष्य जाति जब सब प्रकार की कृत्रिम औषधियों से अपनी पाचन-शक्ति नष्ट कर लेगी तथा प्राणियों के सब अवयवों का भी स्वाद ले चुकी होगी तब पुनः प्राचीन औषधियों-वानस्पतिक औषधियों की ओर लौटेगी, जिनकी परीक्षा सहस्रों वर्षों के अनुभव द्वारा हो चुकी है।"

"Dr. Ischrich, professor of practical chemistry in the University of Berne, is reported in the Lancet of 2nd October, 1909 to have said ; "We may assuredly hope that mankind, when it has thoroughly ruined its digestion with synthetical remedies and tasted all organs of the animal body, will return to most ancient remedies of medicine, to the medicinal plants and drugs for the utility of which the experience of the thousand years vouches."

इसी प्रभाव से प्रभावित होकर डॉक्टर विलियम ब्रेमवेल ने २-१-१९१४ के ब्रिटिश मेडिकल जरनल में डॉ० मेक्लिस्टर के 'क्रोम्फे' नामक वनस्पति के प्रयोगों की प्रशंसा करते हुए लिखा है—"सीरम, वेक्सीन और अन्य कृत्रिम औषधियों के इस युग में जिनका प्रयोग कई रोगियों में चिकित्सक के लिये अत्यन्त चिन्ता का विषय हो जाता है, डॉ० मेक्लिस्टर जैसे प्रसिद्ध चिकित्सक को 'क्राम्फे' जैसी सामान्य तथा प्राकृतिक औषधि का प्रयोग करते देख प्रसन्नता होती है।

"Dr. William Bramwell, M. A. M. D. B. Ch., of Liverpool concluded a note on the above named plant published in the same issue of the British Medical Journal in the following significant words : "It is indeed refreshing and gratifying in these days of serums and vaccines and highly complicated preparations, the administration of which, in some cases, is fraught with the gravest possible danger and soul horrowing anxiety on the part of the administrator, to find a physicain of Dr. Macalister's standing setting on foot the investigation of so simple and natural a remedy as common comfrey." page XXV.

वस्तुतः वनस्पतियों का यह बहिष्कार अनुचित तथा हानिप्रद है, फैशन के भूत की करामात है। जैसे हमारे भारतीय एलोपैथिक भाई विना समझे-बूझे आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रणाली को अवैज्ञानिक कह देते हैं। आयुर्वेद को 'अवैज्ञानिक घोषित करने का जैसा फैशन भारतीय एलोपैथी में प्रचलित हो गया है वैसा ही सिन्थेटिक औषधियों के प्रयोग का फैशन एलोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली में चल पड़ा है और 'फैशन' का विरोध करना स्वयं की अनभिज्ञता प्रकट करना है। अभी तक एक भी वनस्पति को ठीक प्रकार से समझा नहीं गया है। जैसा कि ३ जनवरी १९१४ के ब्रिटिश मेडीकल जरनल में प्रकाशित डाक्टर मेकेन्जी के कथन से स्पष्ट है।

"Not one single drug has been carefully studied so as to understand full effects on human system, effect that could be easily recognised had a systematic examination been

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

carried out when it was administered in the hospital wards." Dr. Mackenzie in his article on 'the teaching of chemieal medicine' in the British Medical Journal of 3rd January, 1914.

"अभी तक एक भी वनस्पति का इस प्रकार पूर्ण अध्ययन नहीं किया गया है कि जिससे मानव-देह पर होने वाले उसके समग्र प्रभावों का ज्ञान हो सके। इस प्रकार के प्रभाव का ज्ञान आरोग्यशाला (हास्पिटल) में रोगियों को औषध खिला कर और उनके प्रभाव का देह के संस्थानों तथा अवयवों पर होने वाली प्रतिक्रिया द्वारा अध्ययन से होता है।"

इङ्गलैंड के अति मनस्वी, बुद्धिमान तथा इतिहास-प्रसिद्ध प्रधानमंत्री लार्ड ग्लेडस्टोन ने २६ मार्च १८९० में 'गाई हास्पिटल' में व्याख्यान देते हुए एक वनस्पति-विशेष के प्रयोग की स्वानुभूत घटना का वर्णन करते हुए कहा था कि—

The late Right Hon'ble Mr. Gladstone was a man of extra-ordinary genius. As scholar, politician and statesman, he will ever shine in the pages of English History as long as England is not effaced from the map of the world. In the course of a speech, delivered on the 26th March, 1890, on the occasion of opening of Guy's Hospital Residential College, referring to the study of the Botany with a view to learn the qualities of plants which are so remarkable and powerful in the healing capacities, he said "You will think it ludicrous, if I were to tell you a little anecdote of my own, which is of the very simplest character and it is so small and so slight as almost to be comtemptible, but still it will illustrate what I mean, I have been given as is pretty well known or at least I have been given to the pursuit of wood cutting. From a pure accident, I drew my finger the other day along the edge of the axe, which was lying close by, and which was tolerably sharp and cut my finger. Upon searching about me I found I had no handkerchief available, I wanted to staunch about me, I not having a handkerchief, I got a leaf and put it on the wound, but there was a curious result. I knew the time nature occupied in healing a little breach of continuity and when I put on the leaf, I assure you it is the fact, that it healed exactly half the time. It is hardly worth mentioning such a thing as I say but I cannot help having the belief that there are good treasures in nature more than have heretofore been explored in every branch."

उस अज्ञात वनस्पति के प्रयोग से उनकी चोट सामान्य समय की अपेक्षा आधे समय में ही ठीक हो गई। इस घटना को बताते हुए उन्होंने चिकित्सकों को परामर्श दिया कि वनस्पतियों में प्रकृति ने जो मूल्यवान खजाना भर दिया है, उसे न भूलें।

वनस्पतियों के प्रभाव के विषय में देह पर, वनस्पतियों पर तथा वानस्पतिक औषधियों—कर्मों पर होने वाले जलवायु देशादि के प्रभाव के विषय में संसार-प्रसिद्ध वनस्पतिविज्ञ डॉ० जोहनलिंडले का निम्न कथन वैद्यों के लिये अध्ययन की वस्तु है। इससे "यस्मिन् देशे हि यो जातस्तज्जं तस्य भेषजं हितम्" का पूर्ण समर्थन हो जाता है और आयुर्वेद के सिद्धान्तों की सत्यता भी सिद्ध हो जाती है। "फ्लोरा मेडिका की भूमिका" में वे लिखते हैं—

"In reality the true cause of the different actions of medicines upon the human is admitted by the highest authorities to be wholly unknown, and surely this is in itself the best of all reasons why we should not assume that we already possess against diseases all the

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

medicines which nature affords; on the contrary it should stimulate us to reiterated enquiries into the peculiar actions of new remedial agents.

"And they (i.e. European Practitioners) find the medicines which are powerful in Europe, comparatively inactive in other climates. The heat of the country, its humidity, particular localities, food and social habits of people, will predispose them to varieties of disease for which the drugs of Europe offer no sufficient remedy, and will render that which is relied upon in one country unworthy of dependence in another. Thus the Cinchona bark of Peru, important as it is in Europe, is we are told rejected by the people among whom it grows because it is found too stimulating and heating for their excitable constitutions and speaking of Ipecacuanha, Dr. Von Maritus, who so carefully examined the Materia Medica of Brazil, asserts "Nullumest dubium quin emetica in terris zonne forvedae subjects effectus producent multo magis saluta res quam in reginiobus frigioribus.

"This last observation seems to indicate, that if emetic plants are so much more common in hot than cold countries, it is because there is so much necessity for them. The late Dr. Burnett and many other persons, have asserted that every country spontaneously furnishes remedies for those maladies which the people of the soil are naturally subject to, that foreign drugs imported into the market of Europe would soon be superseded examined.

"It by no means follows that the plants are inert because medical men have reported unfavourable of their actions. The most powerful species have had their energy destroyed by unskilful preparation, or by not knowing at what season to collect them.

"......The very nature of the climate of tropical countries generally causes the properties of the plants to be more concentrated and completely elaborated than in northern latitude." Dr. Jihn Lindley in his 'Flora Medica'.

(२)

वस्तुतः औषधियों के विविध प्रभावों का सच्चा कारण अभी तक ढूंढ़ा नहीं जा सका, इस सत्य पर उच्च कक्षा के वैज्ञानिक सहमत हैं। यह एक कारण ही इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि अभी तक हमने सब रोगों की प्रकृतिदत्त औषधियाँ प्राप्त नहीं की है। अतः इनकी खोज में और भी प्रगति होनी चाहिए।

अनेक यूरोपियन डॉक्टरों का अनुभव है कि जो औषधियाँ यूरोप में प्रभावशाली पाई गई हैं वे दूसरी जलवायु में उतना उत्तम प्रभाव नहीं करती। देश-विशेष की उष्णता, आर्द्रता, देशभूमि, आहार, निवासियों का सामाजिक जीवन, होने वाले रोग-विशेष आदि-आदि विशेषताओं के कारण औषधियों के प्रभाव की मात्रा में भेद हो जाता है। पेरू देश में उपलब्ध सिन्कोना के प्रयोग को वहाँ के वासियों ने मलेरिया में प्रयोग करना छोड़ दिया, क्योंकि वह उनके स्वभाव के अनुकूल नहीं है।

उष्ण देशों में वामक वनस्पतियों का प्राधान्य यह सिद्ध करता है कि शीत देशों की अपेक्षा उष्ण देशों में इनकी आवश्यकता अधिक है। वही मत ब्राजील देश के निघण्टु की गवेषणा करने वाले डा० वौन मेरीटस का भी है।

चिकित्सकों ने किसी वनस्पति-विशेष में यदि कोई गुण नहीं पाया, तो इससे यह सिद्ध नहीं हो जाता कि

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वह गुणहीन है। अनेक शक्तिशाली तथा भेषजों का वीर्य अशास्त्रीय संग्रह-विधि आदि के कारण नष्ट हो जाता है। उष्णकटिबंध के देशों की वनस्पतियों में वीर्य की उग्रता शीत देशों की अपेक्षा अधिक पाई जाती है।

इससे यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि वनस्पतियों का चिकित्सा में अपना विशेष महत्व है।

वर्तमान निघण्टु-साहित्य

प्राचीन समय की शिक्षा-प्रणाली के अनुरूप जो ग्रंथ लिखे जाते थे वे सूत्र रूप में होते थे। गुरु-शिष्यों का घनिष्ट सम्पर्क होता था। अध्यापन करते समय गुरु शिष्यों को विशेष व्याख्या द्वारा तथा प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा विषय का विस्तृत ज्ञान करा देते थे। अतः परिचायक व वर्णनात्मक विस्तृत ग्रंथों की आवश्यकता नहीं होती थी।

दुर्भाग्यवश वह परम्परा नष्ट हो गई और उसके साथ-साथ मौखिक ज्ञान भी समाप्त हो गया, जिससे अनेक द्रव्य संदिग्ध हो गये तथा अनेक के गुणों में भी विरोध का आभास मिलने लगा। यह दोष संभवतः ग्रंथ के लिपिकार के प्रमाद या अनुचित सुधारप्रवृत्ति के कारण आ गया है। उदाहरणार्थ नीचे एक दो द्रव्यों के वर्णन में रेखांकित पदों को देखिये :—

"उष्णातसी स्वादुरसातिलध्वी पित्तोल्बणा स्यात् कटुका विपाके (सु० सू०, अ० ४६)"

"अतसी मधुरातिक्ता स्निग्धापाके कटुर्गुरुः। उष्णोदक शुक्र वातघ्नी कफपित्त विनाशिनी"। (भावप्रकाश)

एक ही द्रव्य (अलसी) सुश्रुत में पित्तवर्धक तथा 'भावप्रकाश' में पित्तशामक कही गई है। इसी प्रकार कैय्यदेव निघण्टु में कदम्ब फल का वर्णन दो स्थानों पर परस्पर विरोधी रूप में किया गया है यथा :—

"तत्फलं मधुरं शीतं गुरुपित्तास्रवातजित्।" पृष्ठ १०१

"पक्वं वातहरं साम्लं कफपित्तप्रकोपणम्।" (पृष्ठ २१९)

आवर्त्तकी के वर्णन में भी श्री यादवजी त्रिक्रमजी ने आवर्त्तकी को (आवर्त्त की तिक्तशीता कषाया ग्राहिणी तथा) ग्राही लिखा है, किन्तु कैय्यदेव ने उसे 'सरा' लिखा है।

"आवर्त्तकी रक्तपुष्पी महाजालनिकामता। चर्मरंगा सरातिक्ता कषाया कफपित्तहा॥"

इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि गुरु-परम्परा के विच्छिन्न हो जाने से न केवल द्रव्य ही संदिग्ध हो गये, किन्तु उनके गुणों के विषय में भी निस्संशयता नष्ट हो गई।

हमारा कर्त्तव्य

समय की आवश्यकता है कि इस विषय में हम कुछ करें, जिससे द्रव्यों की संदिग्धता व गुणों में प्रतीत होने वाला विरोधाभास नष्ट हो जाये।

इस कार्य के लिए गम्भीर अध्ययन तथा तुलनात्मक विवेचना की आवश्यकता है, जिसके द्वारा उपलब्ध समस्त साहित्य का अध्ययन कर प्राचीन ग्रंथों के 'प्रामाणिक संस्करण' निकाले जायँ। विभिन्न स्थानों में स्थापित अनुसंधान संस्थाएँ तथा रिसर्च बोर्ड इस कार्य को कर सकते हैं। यह कार्य किस प्रकार किया जाय इस प्रश्न पर यहाँ संक्षेप में ही विचार किया जा सकता है। इस विषय पर विचार करने से पूर्व यदि हम किसी प्रसिद्ध वैज्ञानिक के विचार जान सकें तो उत्तम होगा। एतदर्थ हम डॉ० मेजर बी० सी० बासु, एम० आर० सी० एस० (आंग्ल) के विचार उद्धृत कर रहे हैं :—

"This chemical analysis would also help us in determining the actions of medicines in health and diseases. It should, however, be borne in mind, that chemical analysis but imperfectly reveals the real nature of many drugs. The presence of disassociated ions of colloidal metals, with an action analogous to that of ferments and of known and unknown

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

physical properties as radioactivity probably enter into the action of many drugs. All the phenomena of plants life are not applicable in the terms of chemistry and physics, there are certain residual phenomena which point to the existence of what may be called in the present state of our knowledge 'Vital Force'.

"It is hence, that many medical practitioners have been disappointed with tinctures and other preparations of medical plants, because such preparations did not give any satisfactory results when prescribed to patients. Speaking of Oolut-Kumbal (Abroma Augusta), Dr. Bhuvan Mohan Sircar writes in the Indian Medical Gazette for May 1900 :—

"Attempts have been made to administer the drugs in the more acceptable forms of tinctures, pills or powder but none prove so efficacious as the fresh viscid sap in substance in which form I have used it with wonderful results".

"It is well known that the people of India use the juice of fresh vegetables for medicinal purposes. But on chemical analysis, these vegetables do not yield any particular chemical substance to which their curative virtues could be justly attributed. It has been the tendency of late, therefore to disapprove the use of such vegetable remedies. A wellknown medical man writes in the Allbutt's system of Medicine, Ed. 1896 :—

"The chemical composition of a drug is not unfrequently the key to its pharmacological action——if a drug have no active properties, it is surely devoid of medicinal effect unless it be a food; for medicinal action is the outcome of active principles on tissues. It is always possible that in any particular drug the active medicinal agent may have escaped notice; but in the present state of the chemical science it is not likely that undiscovered principles reside in such substance as Sarsaparilla and Hemidesmus : yet these drugs are given on testimony of experience........a testimony no stronger than that which has supported scores of other agents eventually discarded. If the indications, given by pharmacological examination of a drug, are opposed to experience in its favour, the latter must almost certainly be at fault." But the clinical experiences and observations of eminent physicians on the actions of a drug as much entitled to respect and consideration as its pharmacological examinations. So the view of the writer quoted above does not seem to us to be found.

The modern method of therapeutical investigation is first to observe the actions of a drug on a healthy animal, and then to make the result applicable to pathological states. The ancient recognised only one mode of studying the effect of a remedy, and that was by simple observation of effects produced by drugs when administered in disease. The clinical observation of the action of remedies has been productive of some good, but it is questionable if such progress was effected so long as this method alone was employed. Towards the beginning of nineteenth century, the necessity for ascertaining the actions of remedies by experiments on animals, was recognised by Bichaat Majendise and others. This modern method of thera-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

peutical research promises a great success. Working on this line, Lauder Brunton was able to use with success nitrite of amyl in Angina Pectoris. Here a correct application of a known action in a drug was made serviceable in very first trial. The pharmacological experiments and clinical observations will thus settle the claim of Indian drug on out attention.

(*Major B. D. Basu in Indian Medicinal Plants*)

आजकल अनेक स्थलों पर आयुर्वेद ज्ञान-रहित पाश्चात्य शिक्षा तथा अंग्रेजी ज्ञाता लोगों द्वारा अनुसन्धान किये जा रहे हैं। वे कहाँ तक आयुर्वेद का हित कर सकते हैं इस पर भी इस कथन से थोड़ा प्रकाश पड़ता है। इनकी उपयोगिता ऐलोपैथी के लिये भले ही हो, आयुर्वेद के लिये तो नहीं। पुनश्च, जो लोग केवल लेबोरेटरी मेथड्स (रसायनशाला में होने वाले प्रयोग) को ही वैज्ञानिक समझते हैं और उन पर अटूट विश्वास रखते हैं, उनके लिए डॉ० बसु का कथन विचारणीय है। वे लिखते हैं :—

स्वस्थ तथा रोगावस्था में होने वाले औषधों के प्रभाव को केमिकल एनालिसेस (रसायनिक विश्लेषण) से भी जाना जा सकता है, किन्तु यह बात स्मरणीय है कि रासायनिक विश्लेषणों से औषध को पूर्णतया नहीं जाना जा सकता। वनस्पति-जगत् के सब रहस्यों का उद्घाटन केमिस्ट्री तथा फिजिक्स (रसायन तथा भौतिक शास्त्र) द्वारा सम्भव नहीं है। कुछ अज्ञात रहस्य रह ही जाते हैं, जिन्हें हम आज तक विज्ञान के प्रकाश में वाईटल फोर्स (जीवनीय शक्ति प्रभाव) के नांम से पुकारते हैं। यही कारण है कि बहुधा वनस्पतियों के टिंक्चर आदि जहाँ निष्क्रिय सिद्ध होते हैं वहाँ उनका स्वरस आश्चर्यजनक लाभ करता है। डॉ० भुवनमोहन सरकार ने उलट कम्बल पर किये गये अपने प्रयोगों के परिणाम के आधार पर मई १९०० के 'इण्डियन मेडिकल गजट' में लिखा था कि टिंक्चर, वटी, चूर्ण रूप में सेवन कराने से उलट कम्बल ने उतना प्रभाव नहीं किया, जितना कि ताजे स्वरस ने।........महान् चिकित्सकों के अध्ययन तथा सूक्ष्म निरीक्षण करने के पश्चात् औषधियों के जिन प्रभावों का निश्चय किया गया हो वे भी रसायनशाला द्वारा तथ्यों के समान मान्यता के पात्र हैं। अतः केवल रसायनिक विश्लेषणों पर ही निर्भर रहना अधिक ठोस आधार नहीं है।

रसायनशालाओं तथा आरोग्यशालाओं (आतुरालयों) दोनों में ही उपलब्ध तथा प्रमाणित औषध प्रभाव ही प्रामाणिकता के अधिकारी हैं। आयुर्वेदीय औषधियों पर भी इसी प्रकार कार्य होना चाहिये।

अनुसंधान की रूपरेखा

आयुर्वेदीय औषधि-शास्त्र में यदि आयुर्वेद की उन्नति के लिये गवेषणा करनी हो, तो उसकी रूपरेखा संक्षेप में निम्न प्रकार की होनी चाहिये :—

साहित्य की गवेषणा तथा अध्ययन :—आयुर्वेद में द्रव्यगुण सम्बन्धी साहित्य काफी संख्या में बिखरा पड़ा है। आयुर्वेद के अतिरिक्त अन्य संस्कृत ग्रंथों में भी इसके उद्धरण पाये जाते हैं, एतदर्थ एक अति उत्तम पुस्तकालय स्थापित होना चाहिये, जहाँ प्राचीन साहित्य संस्कृत तथा पालि के सब ग्रंथ एकत्र किये जायें। इस पुस्तकालय में बैठ कर विद्वान् वैद्य द्रव्यगुण शास्त्र विषयक समस्त सामग्री का अध्ययन करें। उस सामग्री का समालोचनात्मक अध्ययन कर उपलब्ध निघण्टुओं की सहायता से प्रामाणिक निघण्टु-साहित्य का निर्माण तथा प्रकाशन किया जाय, ताकि विरोधाभास जैसा ऊपर दिखाया गया है, का निराकरण किया जा सके।

निघण्टु-उद्यानों की स्थापना :—देश के विभिन्न भागों में, जलवायु, ऋतु, भूमि आदि को देखते हुए आयुर्वेदीय वनस्पतियों को, उनकी अनुकूल परिस्थिति में उत्पन्न करने के लिये तथा उनकी प्राकृतिक अवस्था में उनका अध्ययन और उपयोग करने के लिये इस प्रकार के उद्यानों या उपवनों की अत्यन्त आवश्यकता है। इससे निम्न लाभ होंगे :—

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(अ) आयुर्वेदीय ग्रंथों में वर्णित ऋतुकाल-नक्षत्र में ताजी वनस्पति उपयोगार्थ मिल सकेगी।

(आ) संदिग्ध वनस्पतियों के स्वरूप का निर्णय किया जा सकेगा।

(इ) वनस्पतियों को उखाड़कर शास्त्रविधि के अनुसार सुखाया जा सकेगा और उनसे निर्मित योगों की विशुद्धता एवं प्रभावकारिता परखी जा सकेगी, जिसके आधार पर सच्ची औषधि जनता तक पहुँचाई जा सकेगी और मिलावटी तथा नकली औषधि बनाने वालों पर नियंत्रण रखा जा सकेगा। निघण्टु उपवनों के अभाव में ही अनेक औषधियाँ अप्राप्य और संदिग्ध हो गई हैं। उनके पहचानने वाले ही न रहे, क्योंकि सामने उपस्थित वनस्पति भी स्वरूप-ज्ञान के अभाव में नहीं पहचानी जा सकती। जैसा कि एक निघण्टुकार ने कहा भी है :--

"अनाप्तविन्मोहमुपैति वैद्यो न जानाति, पश्यन्नपि भेषजानि"

आरोग्यशालाएँ (हास्पिटल्स) :—इन उपवनों के समीपस्थ ही रोगियों पर औषध-प्रभाव का परीक्षण करने के लिये आरोग्यशालाएँ स्थापित करनी चाहिये, जिनमें चिकित्सा तथा गवेषणा सम्बंधी समग्र सम्भार एकत्र हों। निघण्टु-उद्यानों के समीप होने से औषधियों की ऋतुकालादि के अनुसार प्राप्ति सुलभता तथा कल्प (स्वरसादि) विविधता का लाभ रहेगा।

आयुर्वेद के अनुसार औषधि-प्रभाव देशकाल, दूष्य, दोष आदि की भिन्नता के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकता है। अतः स्वस्थावस्था में प्राप्त औषध के प्रभाव के अनुसार रुग्णावस्था में उसका प्रयोग करना अवैज्ञानिक है। जैसा कि एलोपैथी में किया जाता है। अतः रुग्णावस्था में प्रयोग द्वारा प्राप्त औषधि-प्रभाव सच्चा रहता है और यही वैज्ञानिक पद्धति है।

आयुर्वेद की गुरु-परम्परा छिन्न हो जाने से अनेक योग तथा औषधियाँ इस प्रकार के लोगों के हाथ में चली गई हैं, जो यद्यपि स्वयं वैद्य तो नहीं हैं तथापि एकाध चुटकला (मुष्टियोग) के स्वामी हैं। इस योग के द्वारा ये लोग विशेषज्ञों में चमत्कार दिखाते रहते है। इस प्रकार के व्यक्तियों से इन्हें प्राप्त कर, ऊपर लिखे प्रकार से परीक्षण कर उन्हें शास्त्र-सिद्ध करना चाहिये। यही मार्ग है, जिनके द्वारा आयुर्वेदीय औषधियों के स्वरूप तथा गुण दोनों का ही पुनः पूर्ण निश्चय हो सकता है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है। आजकल जिस ढंग से आयुर्वेद में अनुसंधान हो रहा है उससे मैं संतुष्ट नहीं हूँ।

द्रव्यगुण शास्त्र की ऐतिहासिक समीक्षा

वैदिक युग :—हिन्दुओं के विश्वास के अनुसार वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं और वे सब सत्य विद्याओं की पुस्तकें हैं। उक्त कथन विवाद का विषय हो सकता है। किंतु वेदों में औषधियों का वर्णन संकेत में ही सही, किया अवश्य गया है और वर्गीकरण भी रचना तथा कर्म दोनों के ही अनुसार किया गया, इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं। यजुर्वेद में एक मंत्र आता है:--

या फलिनीर्या अफलाः अपुष्पायाश्च पुष्पिणी। बृहस्पति प्रसूतास्ताः नो मुंचन्तु छं स। —अ. १२, म ९।

इस मंत्र में फलिनी, अफला, अपुष्पा और पुष्पिणी--ये चार वर्ग वनस्पतियों के किये गये हैं इसी प्रकार रोगनाशन रूपी कर्मानुसार भी वर्गीकरण देखा जा सकता हैं :--

"नाशयित्री बलासस्यर्शस उपचितामसि। अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारो रसिनाशिनी ।। यजु० १२।९७

इस मंत्र में बलास (क्षय) अर्श, उपचित (श्लीपद) और अन्य सैकड़ों रोगों एवं पाकारो—मुखपाक क्षतादि को नाश करने वाली औषधियों का कर्मानुसार वर्णन किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रारम्भ से द्रव्यगुण-शास्त्र की आधारशिला वैज्ञानिक आधार पर रखी गई। मानव सामाजिक प्राणी है और समाज का आधार व्यवस्था है। अतः चिकित्सा-साहित्य में अति वैभवशाली औषधियों

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

का वर्गीकरण भी उसने प्रारम्भ से ही किया है। वैदिक काल में एतद्विषयक संकलित ग्रंथों का ज्ञान अब अतीत की वस्तु हो गया है।

संहिता-काल :—इस काल के दो प्रमुख ग्रंथ उपलब्ध हैं। चरक-संहिता और सुश्रुत-संहिता। यद्यपि हारीत, काश्यप तथा भेल-संहिताएँ भी मिली हैं तथापि उनकी पूर्ण प्रामाणिकता अभी स्थापित नहीं हो सकी है। इस काल की यह विशेषता रही है कि प्रत्येक संहिताकार ने अपने-अपने विषय को प्रधानता देते हुए अन्य विषयों का वर्णन भी संक्षेप में कर दिया है, ताकि उसके पाठक को आयुर्वेद के सम्पूर्ण स्वरूप की झाँकी मिल जाय। इन संहिताओं में कुछ अध्याय विशेष द्रव्यगुण शास्त्र को भी दिये हैं। प्रायः आहार तथा औषध-द्रव्यों के वर्णन पर विशेष ध्यान दिया गया है, यद्यपि कुछ स्थलों पर औषध-द्रव्यों के वर्णन पर विशेष ध्यान दिया गया है। चरक की अपेक्षा सुश्रुत का वर्गीकरण अधिक विकसित है। आचार्य सुश्रुत ने केवल अधिक औषधियों और वर्गों का उल्लेख किया है, अपितु धातु तथा रत्नवर्ग में दो नये वर्ग भी उसमें समाविष्ट किये हैं। शल्य-शालाक्योपयोगी औषधियों के निरालापन, पाचन, रोपणादि कर्मानुसार और त्रिकटु-पंचमूलक आदि एक प्रकार के प्रभावशाली औषधियों के वर्ग भी उसने बढ़ा दिये हैं। आचार्य वाग्भट्ट ने अपने 'अष्टांङ्ग संग्रह' 'अष्टाङ्ग हृदय, (ई० स० ४००) में उन्हीं की शैली पर कुछ परिवर्तन के साथ आहारों, औषध-द्रव्यों का वर्णन किया है किन्तु उसने औषध[1] वर्ग को अन्य वर्गों से पृथक् कर दिया और इस वर्ग में लवणक्षार, हरीतकी आदि औषधियों का वर्णन किया है। यह "औषधिवर्ग,, आचार्य वाग्भट्ट की मौलिक देन है, जिसे आधार मानकर परवर्त्ती आचार्यों ने इस वर्ग का विशद विवेचन किया है।

संग्रह काल :—संहिताकारों का काल वाग्भट्ट के साथ समाप्त हो जाता है। इसके पश्चात् संग्रह-ग्रंथों का काल आता है। इस काल में अष्टाङ्ग आयुर्वेद के विभिन्न अंगों अथवा विषयों के अनुसार ग्रंथों का प्रणयन (अधिकतर संग्रह ही मौलिक ग्रंथ नहीं) आरम्भ होता है। इस काल में वाग्भट्ट के औषधि वर्ग से प्रेरणा प्राप्त कर अनेक आचार्यों ने औषधियों को प्रधानता देते हुए अपने निघण्टुओं की रचना की।

(१) अमरकोश (ई० स० ५००) इस प्रकार का यह पहला ग्रंथ है, जिसमें औषधियों को पृथक् रूप में विभिन्न नामों के साथ वर्णन किया; किन्तु यह एक कोशकार का था, वैद्य का नहीं, अतः स्वभावतः ही इसका दृष्टिकोण वैद्यकीय नहीं।

(२) द्रव्यगुण संग्रह (१०६० ई०) आचार्य चक्रपाणिदत्त का औषधि-प्रदान यह ग्रंथ अपने ढंग का सबसे प्राचीन निघण्टु प्रतीत होता है। इसमें अति संक्षेप में औषधियों का वर्णन है।

(३) कैय्यदेव निघण्टु (१२ वीं शती) आचार्य कैय्यदेव लिखित यह ग्रंथ अंतः साक्षी के आधार पर 'द्रव्य-गुण-संग्रह' के पश्चात का द्वितीय महत्वपूर्ण ग्रंथ है इसमें औषधिवर्ग, धातुवर्ग, धान्यवर्ग, द्रव्यवर्ग, पक्वान्नवर्ग, माँस-वर्ग, विहारवर्ग, मिश्रकवर्ग, और नानार्थवर्ग नामक ९ वर्ग हैं। इसकी शैली तथा वर्णन बहुत कुछ आर्षशैली के समीप है। इसके औषधिवर्ग पर श्री मद्दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज के स्वर्गीय आचार्य श्री सुरेन्द्रमोहन जी ने बहुत सारगर्भित टीका लिखी है। किन्तु खेद है कि आगे का भाग अभी तक अप्रकाशित है। पता नहीं वह लाहौर में ही देश विभाजन की भेंट हो गया या भारत में आ गया है।

कैय्यदेव के पश्चात् धन्वन्तरि-निघण्टु, राजनिघण्टु, मदनपाल निघण्टु आदि अनेक ग्रंथों का निर्माण हुआ और इन सब में महत्वपूर्ण तथा विस्तृत निघण्टु भावमिश्र (सन् १५६०) ने लिखा है, जो भावप्रकाश निघण्टु के नाम से प्रख्यात है। उसमें द्रव्यों के २१ वर्ग दिये गये हैं तथा अनेक नवीन द्रव्यों का समावेश किया गया है।

(१) हरीतक्यादिवर्ग (२) कर्पूरादिवर्ग (३) गुडूच्यादिवर्ग (४) पुष्पवर्ग (५) फलवर्ग (६) वटादि वर्ग (७) धातुवर्ग (८) धान्यवर्ग (९) शाकवर्ग (१०) वारिवर्ग (११) संधानवर्ग (१२) दुग्धवर्ग (१३) दधिवर्ग (१४) तक्रवर्ग (१५) नवनीतवर्ग (१६) घृतवर्ग (१७) मूत्रवर्ग (१८) तेलवर्ग (१९) मधुवर्ग (२०) इक्षुवर्ग (२१) मांस वर्ग।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इस ग्रंथ के साथ संग्रह काल समाप्त होता है। 'आयुर्वेद का संक्षिप्त इतिहास' नामक ग्रंथ में इस विषय का विस्तृत वर्णन किया गया है।

परवर्त्ती निघण्टु :—भावप्रकाश निघण्टु के आदर्श पर राजवल्लभ निघण्टु (सं० १७६०) निघण्टु रत्नाकर (१९२४ ई०) शालिग्राम निघण्टु (सं० १९५३) आदि लिखे गये, किन्तु उनका ऐतिहासिक मूल्य स्वल्प ही है तथा उनमें अधिकतर भावप्रकाश का ही अनुसरण किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि औषध-द्रव्यों के वर्णन में तथा वर्गीकरण में निरन्तर कुछ न कुछ प्रगति होती गई और अनेक नवीन द्रव्यों का भी समावेश होता गया, जो आज तक जारी है। अतः आयुर्वेद को गति रहित कहना गलत है। हाँ, प्रगति धीमी अवश्य रही। अब इसको बढ़ाना है तथा उपयोगी नवीन द्रव्यों का आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से ग्रहण कर आयुर्वेद के साहित्य को पुष्ट व नवीन बनाता है।

मुझे प्रसन्नता है कि प्रस्तुत ग्रंथ में इसी मार्ग को अपनाया गया है।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली व आयुर्वेदीय साहित्य

ऊपर लिखा जा चुका है कि प्राचीन साहित्यकारों ने अपने समय की आवश्यकता के अनुसार साहित्य का निर्माण किया। गुरु-शिष्य परम्परा के अविच्छिन्न होने से उस काल में विशेष व्याख्यान मौलिक प्रात्यक्षिक ही होते थे। स्मरणार्थ सूत्र रूप में साहित्य-सृजन होता था।

"एकमात्रा लाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैय्याकरणाः।

यह लोकोक्ति प्रसिद्ध ही है। अतः अर्थ गम्भीर तथा सारभूत होने पर भी प्राचीन साहित्य की शैली आजकल की शिक्षा-प्रणाली में अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होती है।

वर्तमान विषय प्रधान पाठ्य प्रणाली के प्राचीन साहित्य पर आधारित आख्यामय विषयानुसारी ग्रंथों क अत्यन्त आवश्यकता है। विशेषकर जब कि हम जनता तक आयुर्वेद का प्रसार करना चाहते हैं।

इस प्रकार का नवीन साहित्य आयुर्वेद के समग्र अंगों पर प्रकाशित होना चाहिये। लेखकों को जहाँ प्राचीन को प्रमाणभूत मानकर चलना चाहिये वहाँ नवीन पर भी दृष्टि रखनी चाहिये। प्राचीन सूत्रों की व्याखया यथासम्भव विविध देशों के मनुष्यों द्वारा उपार्जित नवीन ज्ञान के प्रकाश में करनी चाहिये। आचार्य चरक के 'शास्त्र (विज्ञान) ज्योतिः प्रकाशार्थम्' को ध्यान में रखकर प्राचीनता पर नवीनता का मुलम्मा चढ़ाने में कोई हानि नहीं। प्राच्य ज्ञान का ठोस पन्ना तो बना ही रहता है इसके साथ ही नवीन को भी सात्म्य कर विशुद्ध आयुर्वेदीय बना लेता है।

ग्रंथ-लेखन में एक अन्य दृष्टि यह भी रखनी चाहिये कि हमारे ग्रंथ इस प्रकार हों, जो भविष्य में अन्य चिकित्सा-प्रणालियों के विद्यालयों के लिये रचे जाने वाले ग्रंथों के लिये आधारभूत बन सकें और कम-से-कम उन्हें आवश्यक संज्ञाएँ तो प्रदान कर सकें, क्योंकि अन्ततोगत्वा सर्वत्र हिन्दी में ही शिक्षण होने वाला है। उक्त प्रकार के साहित्य का प्रकाशन स्वाध्यायशील विद्वानों, अध्यापकों, प्रकाशकों तथा विभिन्न राज्यों के सहयोग की अपेक्षा रखता है। राज्य सरकारें उतम ग्रंथों पर पारितोषिक देकर, पाठ्यग्रंथों के रूप में स्वीकार कर ऐसे साहित्य के प्रकाशन में महत्वपूर्ण सहयोग दे सकती है।

इस ग्रंथ के लेखन में यही दृष्टिकोण रखा गया है। विगत २५ वर्षों में द्रव्यगुण-शास्त्र विषयक अध्ययन, अनुभव तथा चिन्तन का सारभूत यह ग्रन्थ है। यदि विद्वज्जनों के मानस को यह कुछ परितोष दे सकेगा, तो लेखक अपना परिश्रम सफल समझेगा।

———

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रथम खण्ड

विषय-प्रवेश

सिद्धान्तात्मक (रसवीर्य—विपाक प्रभावात्मक)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रथमोऽध्यायः

द्रव्यगुण-शास्त्र परिचयो नाम

१—मंगलाचरण

सर्वात्मा सच्चिदानन्दो विश्वादिर्विश्वकृद् विभुः ।
भूयात्तमां सहायोनः सर्वेशो न्यायकृच्छुचिः ॥१॥
शास्त्री शिवमयी देवी, यातु साक्षात् सरस्वती ।
शास्त्राभ्यासैकव्यसना, स्त्री शिक्षा व्रत दीक्षिता ॥२॥
संपालितो यया प्रीत्या, भगिन्या बाल्यकालतः ।
नमस्करोमि तां भक्त्या, यासीन्मातृसमा मम ॥३॥
प्राचीनं सर्वमालोड्य नव्यं चालोक्य यत्नतः ।
ततःसारं च संगृह्य सुबौधानां विमर्शतः ॥४॥
छात्राणां सुखबोधाय वैद्यानां हितकाम्यया ।
कृतो 'द्रव्यगुणादर्शो' महेन्द्रभिषजा मुदा ॥५॥
आयुर्वेदतरोः सारः परमोहि क्रियाक्रमः ।
सचौषधात्मक द्रव्यमूलमधिष्ठानमस्यतु ॥६॥
निघण्टुस्तत्परिज्ञानविमुखा नहि सर्वदा ।
न स्खलन्ति प्रयोगेषु ततोऽसौ सन्निरूप्यताम् ॥७॥

द्रव्यगुण-विज्ञान का महत्त्व

द्रव्य-गुणों का ज्ञान चिकित्सा में कितना महत्त्वपूर्ण है, यही दर्शाने के लिए भगवान् अग्निवेश ने द्रव्य-गुण-ज्ञान को चिकित्सक के पश्चात् दूसरा स्थान दिया है। चिकित्सा-शास्त्र के चार स्तम्भों का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है **"भिषग् द्रव्याण्युपस्थातारोगी पादचतुष्टयम्"** चिकित्सक, औषधियाँ, सेवक और रोगी—ये चार चिकित्सा के चार खम्भे हैं, जिनके आधार पर आयुर्वेद का भवन खड़ा है।

बिना शस्त्र के जिस प्रकार योद्धा का सारा परिश्रम व्यर्थ है उसी प्रकार वैद्य का समस्त ज्ञान, अनुभव तथा परिश्रम बिना औषधज्ञान के व्यर्थ हो जाता है। जैसा किसी कवि ने कहा भी है :—

निघण्टुना विना वैद्यो, विद्वान् व्याकरणं बिना ।
विनाभ्यासेन धानुष्कस्त्रयो हास्यस्यभाजनम् ॥

द्रव्यगुण-शास्त्र का संक्षिप्त परिचय

महर्षि अग्निवेश ने 'आयु' का अर्थ जीवन किया है।

शरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोगो धारि जीवितम् ।
नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते ॥ (च० सू० १)

मन-देह-इन्द्रिय तथा आत्मा का एक जगह संयोग होना ही जीवन, आयु है। इस आयु का या जीवन का ज्ञान ही आयुर्वेद है। जैसा कि भगवान् चरक ने कहा हैं :—

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्यहिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ (च० सू० १)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

त्रिविधताप से मुक्ति पाना ही मनुष्य मात्र का उद्देश्य है। दुःखों को नष्ट कर मानव जीवन को सुखी बनाना, इस उद्देश्य को लेकर समस्त शास्त्रों का प्रवर्त्तन हुआ है। आयुर्वेद भी शारीरिक तथा मानसिक तापों, दुःखों, रोगों[1] से मुक्ति दिलाने के लिए तथा धर्मार्थ काम मोक्षों के मूल कारणभूत शरीर को स्वस्थ रखने के लिए ही अवतरित हुआ है।

स्वस्थ पुरुष के स्वास्थ्य[2] की रक्षा तथा रोगी के रोगों का नाश करने में द्रव्यमात्र ही कारणभूत है। अतः द्रव्यों को वैद्य के बाद सबसे महत्त्व का माना गया है। मूर्त्त-अमूर्त्त भेद से द्रव्य दो प्रकार के हैं। क्रोध[3], ईर्ष्या आदि भावों को भी हम द्रव्य के अन्तर्गत ही मानते हैं, क्योंकि वे भी रोग का कारण होते हैं तथा चिकित्सा में व्यवहृत होते हैं। मूर्त्त या दीखनेवाले पदार्थों को दो वर्गों में बाँटा गया है। (१) आहारद्रव्य—इनमें रस प्रधान होता है। ये शरीर की वृद्धि के लिये आवश्यक हैं। इन्हें 'जीवनीय' भी कह सकते हैं। (२) औषधद्रव्य—इनमें वीर्य (कार्यकारिणी शक्ति) प्रधान होता है। ये शरीर में जाकर उसकी क्रियाशीलता को प्रभावित करते हैं। द्रव्य-गुण-शास्त्र इनमें दूसरे प्रकार के द्रव्यों का वर्णन करता है। इसमें द्रव्यों के रस, वीर्य, विपाक, प्रभाव, कर्म-मात्रा, योग-चिकित्सा में व्यवहारादि समस्त ज्ञान का समावेश रहता है, जो इनके सम्बन्ध में चिकित्सा की दृष्टि से ज्ञातव्य हैं। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रख कर शायद 'वाचस्पत्य बृहदभिधानकोष' में वैद्यों की द्रव्य की परिभाषा **"रसो गुणस्तथावीर्यं विपाकःशक्तिरेवच। पंचानां यः समाहारस्तद् 'द्रव्यमिति' कथ्यते'** ॥ कहा है। भावमिश्र (१६वीं सदी) ने भी :—

"द्रव्ये रसो गुणो वीर्यंविपाकः शक्तिरेवच।
पदार्थाः पंच तिष्ठन्ति स्वं स्वं कुर्वन्ति कर्मच॥" कहा है।

आचार्य चक्रपाणिदत्त (१०६० ई०) को छोड़कर प्राचीन आचार्यों ने इस शास्त्र को 'द्रव्यगुण' न कह कर 'निघण्टु' संज्ञा दी है। यह शब्द जरा गूढ़ है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में इसकी निरुक्ति (व्याख्या) नहीं मिलती। वस्तुतः यह वैदिक संज्ञा है, जिसकी व्याख्या निरुक्तकार यास्कमुनि ने निम्न प्रकार से की है—

"निघण्टवः कस्मात्, निगमाःइमे भवन्ति-निगन्तव एव सन्तो निगमनान 'निघण्टव' उच्यन्त इति" (यास्क) निगमा इति-निगूढार्था अप्येते परिज्ञाताः सन्तो मन्त्रार्थान्निश्चयेन निःशेषं वा गमयन्ति-बोधयन्तीति निगमाः, एषु बुद्धेषु तु सरलस्तेषामेव पन्थाः।……'निगन्तु' शब्दान्निघण्टुशब्दोनिष्पन्न इति भावः। (प्रपन्नवृत्तिकार)

वेदों के कठिन शब्दों के एकत्र संग्रह को 'निघण्टु' कहा गया है। मूल शब्द 'निगन्तु' है जिसका अर्थ होता है—किसी शब्द के अर्थ को निश्चित रूप से बतलाने वाला शास्त्र। 'निगन्तु' में "ग" का "घ" तथा "तु" का "टु" होकर 'निघण्टु' शब्द बना है। इस प्रकार के शब्द परिवर्तन के लिए प्राचीन वैय्याकरण भर्तृहरि का निम्न पद्य है—

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौचापरौवर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पंचविधं निरुक्तम्॥

वैदिक साहित्य का 'निघण्टु' शब्द ही आयुर्वेदज्ञों ने द्रव्यों के निःसन्दिग्ध स्वरूप-गुणादि को बतानेवाले इस शास्त्र या विज्ञान को (**विज्ञानं शिल्प शास्त्रयो इत्यमरः**) 'निघण्टु शास्त्र' कहा है। संहिता ग्रन्थों में बिखरे हुए द्रव्यों के गुणादि को एकत्र कर इस "निघण्टु शास्त्र" को आयुर्वेद की नयी शाखा बनाया गया।

---

१. तद्दुःख संयोगा व्याधयः (सु० सू० १)।
२. स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च।
३. ईर्ष्याभयक्रोधपरिप्लुतेन, लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीड़ितेन।
प्रद्वेषयुक्ते न च सेव्यमानमन्नं न पाकं भजते नरस्य। (माधव)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र में निघण्टु के लिए "मेटेरिया मेडिका" संज्ञा है। आयुर्वेद के निघण्टु तथा रसशास्त्र दोनों का ही समावेश इसमें हो जाता है। इसके निम्न विभाग हैं :—

निघण्टु—(१) मेटेरिया मेडिका, (Materia Medica) (२) मेटेरिया मेडिका प्रापर, (Materia-Medica Proper) (३) फार्मेकोग्नोसी—(Pharmacognosy) द्रव्य की उत्पत्ति-स्रोत, तथा स्वरूप परिचय। (४) फार्मेको-लोजी—(Pharmacology) द्रव्यों के कर्म का ज्ञान।

रसशास्त्र (५) फार्मेसी—(Pharmacy) औषधनिर्माण, (६) थैराप्युटिक्स—(Therapeutics) चिकित्सा में प्रयोग, फार्मेकोलोजी—द्रव्य प्रभाव।

आयुर्वेदीय पद्धति में द्रव्यगुण-शास्त्र को दो भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग में समग्र उद्भिदों (वनस्पतियों) तथा प्राणिज द्रव्यों का वर्णन किया गया है। उनका स्वरूप, गुण, प्रयोग आदि सबका इसमें समावेश है। इस भाग को "निघण्टु" कहते हैं। दूसरे भाग में जड़ या खनिज द्रव्यों का वर्णन किया जाता है। इसमें ही 'औषध-निर्माण[1] शाखा' का समावेश हो जाता है। इसे "रसशास्त्र" कहा गया है। प्राचीनकाल के सब आयुर्वेदाचार्यों द्वारा स्वीकृत मार्ग का ही हमने भी अनुसरण किया है अतः 'द्रव्यगुणादर्श' में केवल सेन्द्रिय द्रव्यों (वानस्पतिक तथा प्राणिज) का ही वर्णन किया गया है।

द्रव्यों की रचना एवं चिकित्सा में उपयोग

संसार पांचों महाभूतों—आकाश, वायु, जल, अग्नि तथा पृथ्वी तत्त्वों से बना है। ये पांचों महाभूत भी किसी अन्य मूलभूत पदार्थ से बने हैं। सृष्टि की रचना में मूलभूत द्रव्यों को 'कारण द्रव्य' तथा बने हुए द्रव्यों को 'कार्य-द्रव्य' कहते हैं। कुछ द्रव्य दोनों श्रेणियों के होने से कार्य कारण द्रव्य' दोनों ही कहलाते हैं।

वैशेषिक मतानुयायी आचार्य चरक पांच महाभूत तथा आत्मा-मन-काल और दिशा ये ९ कारणद्रव्य मानते हैं। सांख्यमतानुयायी सुश्रुत ने प्रकृति को कारणद्रव्य, महान् अहंकार-पंचतन्मात्राओं को 'कारण और कार्यद्रव्य' तथा पंचमहाभूतों को कार्यद्रव्य माना है। महानादि प्रकृति से उत्पन्न होने के कारण कार्यद्रव्य तथा महाभूतों आदि के उत्पादक होने के कारण द्रव्य भी कहे गये हैं।

आयुर्वेद के दृष्टिकोण से उक्त मतभेद का कोई महत्त्व नहीं, क्योंकि आयुर्वेद में तो स्थूल महाभूतों से संयोगजन्य परमाणुपुंज से उत्पन्न शरीर तथा द्रव्यों का ही व्यवहार होता है। अतः उस दृष्टि से पंचमहाभूतों का कारण द्रव्य मान कर व्यवहार कर सकते हैं। समस्त दृश्यमान जगत् के समान मानवदेह भी पाँचभौतिक है। अतएव "यद्यदण्डे तत्तद्ब्रह्माण्डे" यह न्याय प्रसिद्ध है। शरीर में पदार्थों की न्यूनाधिकता को बाहर के जगत् में उपलब्ध पदार्थों द्वारा पूरा किया जाता है। हमारी दैनिक आवश्यकताएँ, आहार द्वारा पूरी होती हैं। व्याधि के समय की आवश्यकताएँ औषध द्रव्यों से पूरी होती हैं। जैसे रक्त की कमी होने पर अग्निमहाभूत प्रधान लोह-ताम्रादि की भस्में। न केवल मूर्त्त द्रव्य-अपितु मन के रोगों में दुःख, शोक, ज्ञान, विज्ञानादि भी कार्य करते हैं। इसी भाव को ध्यान में रख कर आचार्य सुश्रुत ने 'अनेननिदर्शनेन नानौषधिभूतं किञ्चिद्द्रव्यमस्तीति' (सू० ४१) कहा है। आचार्य चरक ने इसी भाव को निम्न पद्य में अति सुन्दर रूप में कहा है—

यावन्तो हि भावविशेषा अस्मिंल्लोके तावन्तः पुरुषे।
यावन्तो पुरुषे तावन्तो लोके बुद्धास्त्वेनमभिसम्मिहन्ते ॥ (चरक)

स्थूल पाँचभौतिक जल, वायु, अग्नि आदि पदार्थ तथा चित्रक, कस्तूरी, सोंठ आदि औषधियों द्वारा पाँच-भौतिक देह की चिकित्सा करना ही आयुर्वेद का लक्ष्य है।

---

१. रस शास्त्रीय द्रव्यों, योगों तथा औषधि-निर्माण के विशेष ज्ञानार्थ लेखक कृत "रसादर्श" देखें।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

'पंच महाभूत शरीरी समवायः पुरुषः, तस्मिन् क्रिया, सोधिष्ठानं (सु० सू० १) तथा "तस्योपयोगोऽभिहितः चिकित्सां प्रतिसर्वदा । भूतेभ्योहि परं यस्मान्नास्ति चिन्ता चिकित्सिते । भौतिकानि चेन्द्रियाण्यायुर्वेदे वर्ण्यन्ते तथेन्द्रियार्थाः (सु० शा० प्र० १)

औषधद्रव्यों की प्राप्ति के स्रोत तथा उपयोगी अंग

सेन्द्रिय द्रव्य (सजीवद्रव्य)	वर्ग
प्राणिज	**औद्भिद, वानस्पतिक**
१. मधु	१. छाल
२. दूध तथा उसकी बनावटें	२. मूल
३. पित्त	३. सत्त्व
४. चरबी	४. निर्यास (गोंद)
५. मज्जा	५. स्वरस
६. सींग-नख-खुर	६. कोंपलें (शुंगा)
७. विष्ठा (मल)	७. पत्र
८. मूत्र	८. क्षार
९. चर्म	९. दुग्ध
१०. वीर्य	१०. फल
११. स्नायु	११. पुष्प
१२. रक्त	१२. भस्म
१३. मांस	१३. कंटक
१४. केश	१४. पल्लव
१५. लोम	१५. कन्द
१६. गोरोचना	१६. प्ररोह (अंकुर)
१७. अस्थि[1]	१७. तैलादि[2]

पार्थिव (अनैन्द्रियिक जड़ पदार्थ) वर्ग भूमि से प्राप्त होने वाले जड़ पदार्थ खनिज, धातु-अधातु रस-महारसादि । यथा :—

सुवर्ण	नागादिधातुएँ	मनःशिला
ताम्र	पारद	हरतालादि
रजत	गन्धक	मणियाँ
लोह	सोमल	लवण

१. मधूनि गोरसाः पित्तं वसा मज्जासृगामिषम् ।
विण्मूत्र चर्म रेतोऽस्थि स्नायुश्शृंगनखाः खुरा ।।
जंगमेभ्य प्रयुज्यन्ते केश लोमानिरोचनाः ।

२. त्वक् मूल सार निर्यास स्वरस पल्लवाः ।
क्षाराः क्षीरं फलेपुष्पं भस्म तैलानि कंटकाः ।
पत्राणिशुंगाः कन्दाश्च प्ररोहश्चोद्भिदोगणः ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वर्ग	सिक्ता	गेरु
यशद्	सुधा (चूना)	अंजनादि[1]

औषध में औषधत्व

'ओसोनाम रसः' सोऽस्यामाधीयते यत्तदौषधिः ।
ओसादारोग्यमाधत्ते, तस्मादोषधिरोषधः ॥ (२७)
(काश्यप सं० खिल स्थान)

'रस' का नाम 'ओस' है । ओस का अधिष्ठान होने से तथा ओस (द्रव्यगतरस) द्वारा आरोग्य प्रदान करने से ये द्रव्य 'औषधि' कहलाते हैं । अतः वे सब द्रव्य, जो शारीरिक तत्त्वों की विषमता को अपने रस (गुणों) द्वारा शांत कर विकारप्रशमन और स्वास्थ्यरक्षण करते हैं वे 'औषध' संज्ञा के अन्तर्गत आते हैं । शरीर पाञ्चभौतिक है और संसार के सकल पदार्थ भी पाञ्चभौतिक हैं । अतः तत्त्वों की समानता के कारण वे किसी न किसी रूप में रोगप्रशमन और स्वास्थ्यरक्षण करते ही हैं । अतएव आचार्यों ने कहा है :—

अनेनोपदेशेन नानौषधिभूतं जगति किञ्चिद्द्रव्यमुपलभ्यते तांतां युक्तिमर्थं च तं तमभिप्रेत्य (च० सू० २६)

औषध भेद

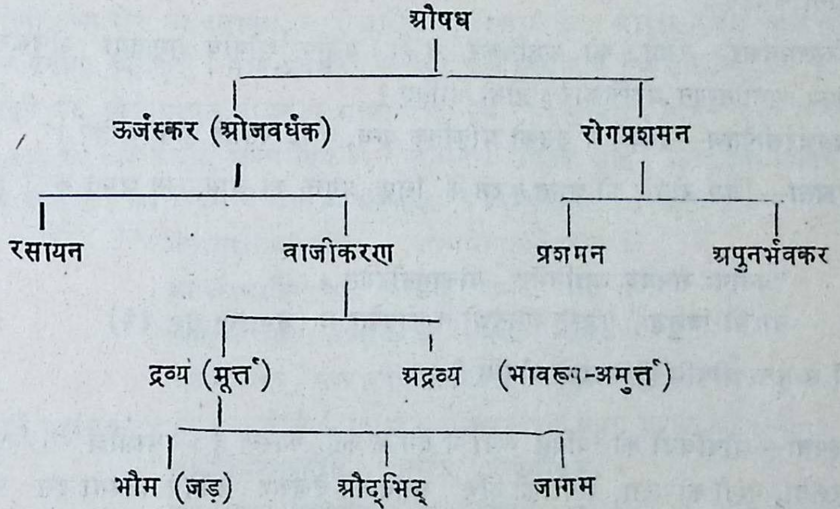

२—औषधसंपत्

"बहुता तत्र योग्यत्वमनेकविधकल्पना ।
संपच्चेति चतुष्कोऽयं द्रव्याणां गुण" उच्यते ॥ (च० सू० १)
अल्पमात्रं महावेगं, बहुदोषहरं सुखम् ।
लघुपाकं सुखास्वादं, प्रीणनं व्याधिनाशनम् ॥
अविकाराविपन्नंच नातिग्लानि करंचयत् ।
गन्धवर्ण रसोवेतं विद्यान्मात्रविदौषधम् ॥ (चरक)

रोग का नाश कर आरोग्य प्रदान करने वाला द्रव्य ही उत्तम औषध है । इसमें निम्न गुण होने चाहिये—

(१) बहुता—द्रव्य प्रभूतमात्रा में उपलब्ध हो ।

---

१. सुवर्णं समलाः पंचलोहाः स सिकतासुधाः ।
मनः शिलालेमणयो लवणं गैरिकाञ्जने ।
भौममौषधमुद्दिष्टम्.......... (च० सू० १)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(२) **योग्यता**—रोग तथा रोगी की अवस्थानुसार द्रव्य में प्रयोग को योग्यता अर्थात् सब अवस्थाओं में प्रयोग होने योग्य।

(३) **संपत्**—द्रव्य अपने रस, गुण, वीर्य, विपाकादि से परिपूर्ण होना चाहिए।

(४) **अनेक विध कल्पना**—स्वरस, फाण्टादि अनेक स्वरूपों तथा प्रकारों से उसका प्रयोग हो सके।

(५) **अल्प मात्रा**—जिसको न्यूनातिन्यून मात्रा में प्रयोग किया जा सके।

(६) **महावेग**—तीव्र रूप में प्रभावशाली।

(७) **बहुदोषहरम्**—एक समय में ही अनेक दोष तथा रोगों का नाशक।

(८) **सुखं**—सरलतया ग्रहण किया जा सके।

(९) **लघुपाकं**—शीघ्रता से पच जानेवाला, क्योंकि शीघ्र पाक पर ही द्रव्य-प्रभाव आधारित है।

(१०) **सुखास्वाद**—स्वाद में प्रसन्नतादायक हो।

(११) **प्रीणन**—तृप्ति करनेवाला, मन को रुचिकर हो।

(१२) **अविकाराविपन्नं**—द्रव्य में कीटभक्षणादि कोई विकार न हो और न ही वर्षाव्याल विषादि से विपन्न हो। सड़ी-गली न होनी चाहिए।

(१३) **नातिग्लानिकरं**—रोगी को अरुचिकर न हो। यद्यपि औषधि पूर्णतया रुचिकर तो हो ही नहीं सकती तथापि यथाशक्य न्यूनातिन्यून अरुचिकारक होनी चाहिए।

(१४) **गन्धवर्णरसोपेतम्**—द्रव्य में उसकी प्राकृतिक गन्ध, वर्ण, रसादि होने चाहिए।

(१५) **रोगघ्नता**—जिस रोग को शान्त करने के लिए प्रयुक्त की जाये, उसे शान्त करते हुए अन्य विकारों को उत्पन्न न करे।

"प्रयोगः शमयेद् व्याधिमेकं योन्यमुदीरयेत्।
नाऽसौ विशुद्धः, शुद्धस्तु शमयेद्यो न कोपयेत्॥ (अ० स० सू० १३)

उक्त गुणों से युक्त औषधि ही आदर्श औषधि है।

भैषज्य-कल्पना—औषधियों को विविध रूपों में देने के कई कारण हैं। यथाशीघ्र या विलम्ब से शरीर में आचूषण, सेवन में सरलता, गुणों की रक्षा, रोगी की रुचि आदि को देखकर औषध कल्पना इस प्रकार की जाती है, जिससे रोगी उसे यथासंभव रुचिपूर्वक ले सके। क्योंकि—

मनसोऽर्थानुकूल्याद्धि तुष्टिरुजार्रुचिर्बलाबलम्।
सुखोपभोगता चस्यात् व्याधेश्चातो बलक्षयः॥ (च० चि० ३०)

रोगी की तृप्ति, बल, रुचि और शक्ति बढ़ती है, सेवन में आसानी रहती है तथा व्याधि का बल क्षीण होता है। चिर काल तक औषधि के गुणों को सुरक्षित रखना भी औषधि-कल्पना का एक प्रयोजन है। निघण्टु तथा रसशास्त्र में भिन्न-भिन्न प्रकार की कल्पनाएँ हैं। निघण्टु या द्रव्यगुण-शास्त्र में निम्न औषध कल्पनाएँ काम में आती हैं। इनका विशेष वर्णन यथास्थान किया गया है। यहाँ नामोल्लेख करना ही पर्याप्त है।

१. स्वरस
२. कल्क
३. क्वाथ
४. फाण्ट
५. हिम
(१–५: पंच विध कषाय कल्पना)
६. मन्थ

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

७. तण्डुलोदक
८. पानीयम्
९. प्रमथ्या
१०. क्षीरपाक
११. मण्ड
१२. पेया
१३. विलेपी
१४. यवागू
१५. अवलेह
१६. रसक्रिया
१७. पुटपाक
१८. खण्डपाक
१९. चूर्ण
२०. वटक
२१. गुटिका
२२. आसवारिष्ट
२३. सीधु
२४. सुरा
२५. कादम्बरी
२६. जंगल
२७. मेदक
२८. वेशवार
२९. तैलपाक
३०. घृतपाक
३१. स्नेहमूर्च्छन
३२. क्षार
३३. लेप
३४. प्रदेह
३५. अर्क
३६. पेय (पानकादि)
३७. विलयन

औषध सेवन काल

चिकित्सा में यह बात बहुत महत्त्व की है कि औषधि कितनी बार तथा किस समय दी जाय। अधिकांश औषधियाँ मुख द्वारा दी जाती है। अत: औषध का समय निश्चय करने में आमाशय तथा अन्त्रों की अवस्था, आहारकाल, सोने का समय, रोगी तथा रोग का बलाबल, आयु आदि का विचार कर औषधि-सेवन कराया जाता है। इस विषय में कोई एक नियम बनाना कठिन है। मार्ग-प्रदर्शन के लिए कुछ साधारण नियम बनाए गए हैं। यथा—संशमन द्रव्य आमाशय खाली रहने पर, दीपनपाचन भोजन से आधा घण्टा पूर्व तथा पश्चात्, वामक द्रव्य प्रातःकाल, तीव्ररेचक प्रातःकाल, समृदुरेचक रात को सोते समय, मूत्रल दिन में, निद्राजनक रात को सोते समय तथा स्वेदल ज्वरादि में रोगी की अवस्थानुसार दिये जाते हैं। इस विषय में आचार्य अग्निवेश के निम्न वचन स्मरणीय हैं:—

दिनातुरौषधव्याधि जीर्णलिंगत्ववेक्षणम्।
कालंविद्याद्दिनापेक्षः पूर्वान्हे वमन यथा॥
रोगपेक्षो यथा प्रातर्निरन्नो बलवान् पिबेत्।
भेषजं लघु पथ्यान्नैर्युक्तमद्यात्तु दुर्बलः॥ (च० चि० ३०)

आचार्य शारंगधर द्वारा कालापेक्षी निम्न पाँच औषध-सेवन समय बताए गए हैं:—

भैषज्यमभ्यवहरेत् प्रभाते प्रायशोबुधः।
कषायांश्च विशेषेण तत्रभेदस्तुप्रदर्शितः॥
ज्ञेयः पंचविधः कालो भैषज्य ग्रहणे नृणाम्।
किञ्चित् सूर्योदये जाते तथा दिवस भोजने।
सायन्तने भोजने च मुहुश्चापि तथा निशिः॥ (प्र० ख)

प्रायः प्रातःकाल ही औषधि-विशेषकर क्वाथ लेना उत्तम है। मुख्य पाँच काल निम्नलिखित हैं—(१) प्रातःकाल, (२) मध्याह्न भोजन के समय, (३) सायंकाल भोजन के समय, (४) बारंबार (आवश्यकतानुसार) (५) रात्रि को सोते समय।

आचार्य चरक ने भोजन काल को मध्य बिन्दु मान कर औषध-सेवन के दस काल नियत किए हैं—

भैषज्यकाला भुक्तादौ, मध्ये, पश्चान्, मुहुर्मुहुः।
सामुद्गं, भुक्तसंभुक्तं, ग्रासे ग्रासान्तरे निशि॥ (च० चि० ३०)

(१) अभक्त (प्रातःकाल), (२) प्राग्भक्त (भोजन से पूर्व), (३) पश्चाद्भक्त (अधोभक्त), भोजन के तत्काल बाद प्रातः-सायं दोनों समय), (४) मध्यभक्त (भोजन के मध्य में), (५) मुहुर्मुहु (बारंबार), (६) संभुक्त-सग्राह्य (ग्रास के साथ), (७) संभक्त (भोजन के साथ पका कर देना), (८) सामुद्ग (भोजन के आदि और अंत में), (९) ग्रास-ग्रासान्तर—दो ग्रासों के मध्य में, (१०) निशि—रात्रि को सोते समय।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आचार्य वाग्भट्ट ने उक्त दश कालों को स्वीकार करते हुए ग्यारहवाँ काल भी निर्धारित किया है। अन्तरा-भक्त--जिसका अर्थ है प्रातःकाल के भोजन के पच जाने पर दोपहर को औषधि दी जाय और उसके जीर्ण हो जाने पर सायंकाल पुनः भोजन किया जाए। दीप्ताग्नि पुरुषों के व्यानवायुजन्य विकारों में इस प्रकार से औषधि-सेवन कराई जाती है।

विभिन्न कालों में औषध-सेवन का प्रयोजन

प्रातःकाल (निरन्न)—इस काल में अन्न का संसर्ग न होने से औषध का प्रभाव तीव्र होता है। अतः बल-वान् व्यक्ति वमन, विरेचन, लेखन के लिए पित्त तथा कफ का उद्रेक होने पर इस काल में औषध-सेवन करे। जैसा कि आचार्य वाग्भट्ट ने आदेश दिया है।

तत्राभक्तं नाम केवलमौषधम्। तन्निरन्नोपयोगादति वीर्यम्।
कफोद्रेके विमुक्ताशमयन्नोताः प्रातर्बलवानुपयुञ्जीत ।। (अ० सं० सू० २३)

तथा

प्रातः पित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः।
लेखनार्थं च भैषज्यं प्रभाते तत्समाहरेत्।

निशि—रात्रि को सोते समय ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों के शमनार्थ, पाचन, शमन, बृंहण एवं धूम्रपानादि का सेवन करें। आचार्य शारंगधर का कथन है—

"ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु लेखने बृंहणे तथा।
पाचनं शमनं देयमनन्नं भेषज निशिः ।।

प्राग्भक्त—औषध-सेवन कराकर तत्काल ही ऊपर से आहार द्रव्यों का सेवन कराया जाता है। इसका लाभ यह है—

शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हिंस्यात्।
दन्नावृत्तं न च मुहुर्वदनान्निरेति ।।
प्राग्भक्त सेवितमौषधमेतदेव,
दद्याच्च वृद्ध शिशुभीरु कृशांगनाभ्यः ।। (सु० उ० ६४)

प्राग्भक्त—औषध शीघ्र पच जाती है। वमनादि से नहीं निकलती, उसकी तीक्ष्णता नष्ट हो जाती है। अतः बाल, वृद्ध, सुकुमार तथा स्त्रियों को इस विधि से देनी चाहिए। यह प्रकार अपान-वायु के रोगों में, नाभि के निचले अवयवों को बल देने के लिए, उनके विकारों को शान्त करने के लिए तथा शरीर को कृश करने के लिए उपयोगी है[1]। (अ० हृ० सू० १/२३—शा०)

अधोभक्त प्रकार—देह के ऊपर के रोगों को नष्ट करने के लिए (सु० उ० ६४) व्यान-वायु के[2] विकारों में दोपहर के भोजन के बाद तथा उदान-वायु के विकारों में सायंकालीन भोजनोत्तर शरीर को बल प्रदानार्थ तथा शरीर को स्थूल करने के लिए और कफज व्याधियों को शान्त करने के लिए उत्तम हैं। 'व्यानकोपेच भैषज्यं भोजनान्तेसमा-हरेत्' (शा०)।

मध्येभक्त का प्रयोजन—मध्यदेह के रोग तथा समान वायु विकार, कोष्ठ के रोग एवं पित्त रोग की शांति (तत् समानानिलविकृती, कोष्ठगतेषु च व्याधिषु पैत्तिकेषु च) (अ० सं० सू० २३) तथा अग्निदीपन है। (शा०)

---

१. तदपानानिलविकृतावधःकायस्य च बलाधानार्थं, तद्गतेषु च व्याधिषु प्रशमनाय कृश करणार्थं च योज्यम् (वाग्भट्ट)

२. तनु व्यानविकृतौ प्रातराशातं, उदान विकृतौ पुनः सायमाशान्तं स्थूली करणार्थं च। (अ० सं० सू० २३)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अन्तराभक्त विधि—दीप्ताग्नि वाले रोगी को व्यान-वायु के रोगों में उत्तम है।

तद्दीप्ताग्नेर्व्यानजेष्वामयेषु (अ० सं०)

समभक्त या सभक्त—यह विधि बच्चों, सुकुमारों (नाजुक) औषधि से द्वेष रखने वालों को तथा सर्वांग के रोगों में व्यवहृत होती है।

तद्बालेषु सुकुमारेष्वौषधद्वेषिष्वरुचौ सर्वांगेषु च रोगेषु (अ० सं० सू० २३)

सामुद्ग—हिक्का, कम्पवात, आक्षेपादि ऊर्ध्व तथा अधोभाग में अवस्थितदोषों को नष्ट करने के लिए।

तत्तु लध्वाल्पान्नयुक्तं पाचनावलेह चूर्णादि-हिध्मायां
कम्पाक्षेपयोरुध्वर्वाधः संश्रये च दोषे (अ० सं० सू० २३)।
मुहुर्मुहुः—तच्चहिध्मा-श्वास-कास-तृद्-छर्दिषु-विषनिमित्तेषु च विकारेषु (शा०)

औषधि दी जाती है।

सग्रासः—मन्दाग्नि तथा वीर्य-क्षीणता के रोगियों को इस विधि से औषधि सेवन कराई जाती है। उदान-वायु को विकृति स्वरभंगादि में।

ग्रासान्तर—'प्राणानलविकृतौ' प्राणवायु के रोगों, श्वास तथा हृदय रोगों में उपयोगी है। (अ० सं० सू० २३)

औषध-योजना

योगविन्नामरुपज्ञस्तासां तत्त्वविदुच्यते।
किं पुनर्यो विजानीयादौषधिः सर्वथा भिषक्॥
योगमासां तु यो विद्यात् देशकालोपपादितम्।
पुरुषं पुरुषं वीक्ष्य स ज्ञेयोभिषगुत्तमः॥ (च० सू० १)

औषध-योजना दो बातों पर निर्भर है—(१) औषधि की गुणवृद्धि या उसकी तीव्रता को कम करना, (२) औषधि के अनिष्टकारी प्रभाव या अरुचिकर स्वाद को कम करना तथा छिपाना। इनके अतिरिक्त योजना करते समय परस्पर विरोधी प्रभाव करनेवाली औषधियों को न मिलने दिया जाए, अन्यथा वे एक दूसरे के गुणों को ही नष्ट कर देंगी, जिससे किसी भी तरह का कोई गुण दृष्टिगोचर नहीं होगा या कोई अन्य उपद्रव न उत्पन्न कर देंगी। अतएव क्रियासांकर्य की आयुर्वेद में निन्दा की गयी है।

क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत्।
पूर्वस्यां शान्तवेगायां, न क्रिया संकरो हितः॥
गुणालाभेऽपि सपदि यदि सैव क्रियाहिता।
कर्त्तव्यैवा तदा व्याधिः कृच्छ्रसाध्यतमो यदि॥ (स० सू० ३५)

संयोग विरुद्धों की संज्ञा का उल्लेख मात्र यहाँ किया गया है। विशेष व्याख्या चरकादि संदर्भ-ग्रन्थों में देखें।

(१) देश विरुद्ध, (२) काल विरुद्ध, (३) अग्नि विरुद्ध, (४) संस्कार विरुद्ध, (५) सात्म्यासात्म्य विरुद्ध, (६) रसवीर्यादि विरुद्ध, (७) कोष्ठ विरुद्ध, (८) अवस्था विरुद्ध, (९) क्रम विरुद्ध, (१०) पाक (पकाना) विरुद्ध, (११) उपचार (पथ्य) विरुद्ध, (१२) संयोग विरुद्ध, (१३) हृद्विरुद्ध, (१४) गुणविरुद्ध, (१५) विधिविरुद्ध।

संयोग—(Combination) **तथा विरोध** (incompatibility) समान गुणयुक्त द्रव्यों के मिलाने से औषधि के गुण बढ़ते हैं। विपरीत गुणों वाले द्रव्यों को मिलाने से हानि होती है। अतः औषध-संयोग करते समय निम्न प्रकार के विरोधों को ध्यान में रखना चाहिए। ये अहितकर संयोग होते हैं—

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुणविरोध—(Physical and Chemical incompatiblity) विरोधी रस, वीर्य-विपाकादि गुणयुक्त द्रव्यों का संयोग-यथा—

(१) **रस-विरोध**—लवण और दुग्ध, वीर्य विरोध—मत्स्य-दुग्ध, विपाक विरोध—मूलक और दुग्ध।

(२) **मान-विरोध**—(Quantitative Incompatibility) ये द्रव्य एक विशेष परिमाण में मिलाने से हनिकारक हो जाते हैं। यथा, समप्रमाण में मधु-घृत और मधु-जल।

(३) **कर्म-विरोध**—(Physiological Incompatibility) परस्पर विरुद्ध कर्मों वाले द्रव्यों का मिलाना। यथा रेचक दन्ती के साथ ग्राही धातकी का मिलाना।

यदि समान कर्मों वाले दो द्रव्यों को मिलाया जाता है तो वे अधिक प्रभावशाली हो जाते हैं। इस प्रकार का संयोग सहकार्यकारी (Synergistc) कहलाता है। विरोध के अहितकारक होने का कारण यह होता है कि एक द्रव्य जिन दोषों तथा मलों का उत्क्लेष कर देह से बाहर निकालना चाहता है विरोधी द्रव्य उन्हें दबा देता है और वे अनिर्हृत दोष या मल विविध-व्याधियों को उत्पन्न करते हैं; उदाहरणार्थ, वीसर्प, जलोदर, विस्फोटक, उन्माद, भगन्दर, मूर्च्छा, मद, आध्मान, पाण्डु किलास, कुष्ठ आदि।

उक्त तीन प्रकार के संयोग के विरुद्ध अन्य देह धातुओं के प्रत्यनीक (विरोधी) द्रव्यों को भी 'विरोधी' कहा जाता है। यथा :—

१. देश-विरोध—जांगल देश में रूक्ष तीक्ष्णादि द्रव्यों का सेवन।
२. काल-विरोध—शीतकाल में शीतल तथा रूक्षादि द्रव्य।
३. दोष-विरोध—वात-दोष में शीत, रूक्षादि द्रव्य।
४. वीर्य-विरोध—शीत वीर्य के साथ उष्ण-वीर्य का संयोग यथा, दूध और मत्स्य।
५. अग्नि-विरोध—मन्दाग्नि में गुरु द्रव्य।
६. मात्रा-विरोध—मधु, घृत सम मात्रा में।
७. सात्म्य-विरोध—उष्ण सात्म्य के लिये शीत द्रव्य।
८. संस्कार-विरोध—एरण्ड मूल में लगा कर भूना मयूर मांस।
९. कोष्ठ-विरोध—क्रूर कोष्ठ के लिये अत्यल्प-मन्दवीर्य तथा ग्राहीद्रव्य।
१०. अवस्था-विरोध—श्रान्त पुरुष के लिये वातकर तथा निद्रालु के लिये कफकर।
११. क्रम-विरोध—बिना शौच तथा बुभुक्षा के भोजन।
१२. परिहार-विरोध—वराह-मांस खाकर उष्ण जल का सेवन।
१३. पाक-विरोध—अपक्व, दग्ध, तथा अति दग्ध औषध।
१४. उपचार-विरोध—तैल, घी का सेवन कर शीत-जल पान।
१५. संयोग-विरोध—दूध के साथ अम्ल द्रव्य।
१६. विधि-विरोध—एकान्त स्थान में भोजन न करना।
१७. हृद्-विरोध—अरुचिकर द्रव्य का सेवन।
१८. गुण या संपत् विरोध—विकृत द्रव्य का सेवन।

अनुपान तथा सहपान—औषध को किसी द्रव्य के साथ मिलाकर देना सहपान तथा औषध के ऊपर से किसी द्रव्य का सेवन कराना 'अनुपान' कहलाता है। सामान्यतः इसे 'अनुपान' ही कहा जाता है। (अनु-सह-पश्चाद्वा पीयते इत्यनुपानम्)

अनुपान का प्रयोजन—यथा जलगतं तैलं क्षणेनैव प्रसर्पति। तथा भैषज्यमंगेषु प्रसर्पत्यनुपानतः (शा०)।

अर्थात् अनुपान की सहायता से द्रव्य शीघ्रता के साथ सारे शरीर में फैल जाता है, जिससे उसका कर्म शीघ्र होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अनुपान द्रव्य—शीतोष्णतोयासवमद्ययूषफलाम्लधान्याम्लपयोरसानाम् ।
यस्यानुपानं तु हितं अवेद्यन्तस्मै प्रदेयं त्विह मात्रया तत् ।। (सू० सू० ४६)

(१) शीत, उष्ण जल, (२) मुद्गादि यूष (३) धान्याम्ल, (४) मांसरस, (५) अर्कस्वरसादि, (६) आसव, मद्य, (७) फलाम्ल, (८) दुग्ध, (९) मधु, (१०) घृतादि।

अनुपान का निर्धारण

अनुमान का निर्धारण निम्न तथ्यों को ध्यान में रख कर किया जाता है—(१) दोषों की दृष्टि से, (२) औषधि की दृष्टि से, (३) रोगी की दृष्टि से, (४) रोग की दृष्टि से।

(१) दोष दृष्टि से (अ) स्निग्धोष्णं मारुते पथ्यं, कफेरूक्षोष्णमिष्यते ।
अनुपानं हितं चापि, पित्ते मधुरशीतलम् ।

वात दोष में स्निग्ध और उष्ण पदार्थों का पथ्य, पित्त दोष में मधुर और शीतल पदार्थों का पथ्य, कफ दोष में रूक्ष और उष्ण पदार्थों का पथ्य।

(आ) दोषानुसार मात्रा—

अनुपानं प्रयोक्तव्यं व्याधौ श्लेष्मभवेपलम् ।
पलद्वयं त्वनिलजे, पित्ते तु पलत्रयम् ।। (चक्र०)

वातज व्याधियों में दो पल, पित्तज व्याधियों में तीन पल, कफज व्याधियों में एक पल।

औषधि की दृष्टि से—यथा घृतादि का अनुपान उष्णोदक।

रोगी की दृष्टि से—यथा, कृश के लिए सुरा और स्थूल के लिये मधुजल।

रोगों की दृष्टि से—अनेक प्रकार का है। यथा वैद्य जीवनकार श्री लोलिम्बराज ने कहा है—

शूले हिंगुघृतान्वितं, मधुयुता कृष्णा पुराणज्वरे,
वाते साज्यरसोनकः, श्वसनके क्षौद्रान्वितंत्र्यूषणम्
शीते व्याललतादलं समरिचं मेहे वरासोपला,
दोषाणां त्रितयेऽनुपानमुचितं सक्षौद्रमार्द्रोदकम् ।।
घनपर्पटकं ज्वरे, ग्रहण्यांमथितं, हेम गरे, वमीषु लाजाः ।
कुटजोऽतिसृतौ, वृषोऽस्रपित्ते, गुदकीलेष्वनलः कृमौ कृमिघ्नः ।।

उदरशूल में घी में सेकी हींग, जीर्णज्वर में मधुयुक्त पिप्पली, वात-व्याधियों में घृतभृष्ट लहसुन, श्वसनक में मधुयुक्त त्रिकटु, शीत में मरिच के साथ पान का पत्ता, प्रमेह में त्रिफला-पिप्पली, सन्निपात में मधु और अदरकरस, ज्वर में नागरमोथा-पर्पटक, संग्रहणी में तक्र छाछ, विषों में सुवर्णभस्म या पत्र, वमन में धान्य लाजा, अतिसार में कुटज, रक्तपित्त कास में वासारस, अर्श में चित्रक, उदर कृमियों में विडंग, अजीर्ण में उष्णोदक, क्षय में दूध, मांसरस और पाण्डु में पुनर्नवा।

भैषज्य व्यवस्थापत्र-लेखन

व्यवस्था-पत्र लिखना भी औषध-योजना का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। यह भी एक कला है, जो चिकित्सक के लिए अत्यन्त आवश्यक है। भगवान् आत्रेय के निम्न वचन इसके महत्त्व के परिचायक हैं—

'नाल्पं' हन्त्यौषधं व्याधि यथापोऽल्पामहानलम् ।
दोषवच्चातिमात्रं सस्यस्यात्युदकं यथा ।।
संप्रधार्यबलं तस्मादामयस्यौषधस्यच ।
नैवाति बहु नात्यल्पं भैषज्यमवचारयेत् ।। (च० चि० ३०)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रोग तथा रोगी की अवस्था को देखकर उचित प्रमाण में औषधि देना महान् सफलता का पूर्व रूप है। व्यवस्था-पत्र में औषधि की मात्रा, सेवन-विधि आदि सभी बातें रहती हैं। इसके लिखने तथा सुरक्षित रखने में काफी सावधानी बर्तनी चाहिये, क्योंकि कभी-कभी यह न्यायालय में भी प्रस्तुत करना पड़ता है।

व्यवस्था-पत्र के विभाग--इसके तीन मुख्य भाग रहते हैं :--

(१) **शीर्षक भाग**[1]--इस भाग में रोगी का नाम, आयु, लिंग, पता, रोग निर्णय लिखा जाता है।

(२) **योजना**[2],—यही इसका प्रमुख भाग है। इस भाग में औषधियाँ—प्रथम मुख्यतः सहायक लिखी जाती हैं। कई चिकित्सक इसी भाग में रोगी को औषध-सेवन सम्बन्धी आदेश भी लिखते हैं। इसे व्यवस्था-पत्र का धड़ कहना चाहिये।

(३) **आदेश भाग**[3]--इसमें रोगी के लिये पथ्यादि की सूचनाएँ लिखी जाती हैं तथा चिकित्सक का हस्ताक्षर रहता है। व्यवस्था-पत्र के विषय में निम्न बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये :—

(अ) व्यवस्थापत्र लिखकर सहायक या रोगी को देने से पूर्व निरीक्षण करना आवश्यक है, ताकि कोई अशुद्धि न रह जाये।

(आ) मात्रा—आयु, देह, दोषादि के अनुसार होनी चाहिये।

(इ) यथासंभव रुचिकारक एवं स्वादु औषधियाँ देनी चाहिये। बाल, वृद्ध, स्त्रियों में इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। नीचे व्यवस्था-पत्रों के दो नमूने दिये गये हैं, जिनसे नव्यों को व्यवस्था-पत्र लेखन-कला का ज्ञान होगा।

औषध व्यवस्था-पत्र संख्या--१

शीर्षक भाग

(१) रोगी का नाम--श्री अविनाश कुमार, आयु—१० वर्ष। लिंग--शिशु (पुरुष), रोग--अतीसार। निवास—करेल, बम्बई-१२।

औषध-योजना

(२) (अ) महागन्धक रस १ गुंजा, शंखभस्म २ गुंजा, जहरमोहरा पिष्टी ३ गुंजा, की १ मात्रा। दिन में तीन मात्राएँ, प्रति ४ घण्टे बाद मधु से।

(आ) अरविन्दासव आधा तोला, कर्पूरासव १० बूँद, वारि १॥ तोला। २ मात्राएँ। भोजनोत्तर या कुछ खाने के पश्चात्।

आदेश-भाग

(३) अनुपान—मधु-सहपान। कोष्णजल। पथ्य—मुद्गयूष, कृशरा, तक्र, दधि। तिथि ३०-१०-५५। महेन्द्रकुमार शास्त्री (चिकित्सक)।

संक्षिप्त स्वरूप

श्री हिम्मतलाल (५० वर्ष) सन्धिगत वात।

(१) बृहत्वात चिन्तामणि १ रत्ती, महारास्नादि क्वाथ (गुग्गुल मिश्रित)। प्रातः-सायं मधु से चाटकर ऊपर से १। तोला क्वाथ पी लें।

(२) दशमूलारिष्ट, कुमार्यासव। सम भाग, मात्रा २॥ तोला। भोजन के आधा घण्टा पश्चात् दिन में दो बार। २५-१०-५६। महेन्द्र शास्त्री।

शीर्षस्थ भाग—

व्यवस्था-पत्र संख्या १.

रोगी का नाम--श्री अजय कुमार   आयु—३ वर्ष

रोग—अजीर्णातिसार

---

1. Superscription 2. Inscription 3. Subscription

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

औषधि-योजना या मध्य भाग—

(१)	महागन्धक रस	१ रत्ती
	शंखभस्म	२ रत्ती
	जहरमोहरापिष्टि	२ रत्ती

१ मात्रा, दिन में दो बार

अनुपान—मधु

(२)	अरविन्दासव	½ तोला (दो चाय के चम्मच)
	कर्पूरासव	१० बूँद

१ मात्रा, दिन में दो बार भोजन के आधा घण्टा बाद।

अधो भाग—

(क) प्रथम औषधि प्रातः-सायं मधु में मिलाकार रोगी को चटा दें। ऊपर से गरम पानी पिलाना अच्छा है।

(ख) द्वितीय औषधि को भोजन के आधा घण्टा पश्चात् आवश्यकतानुसार जल मिलाकर दें।

२—द्रव्य प्रभाव

द्रव्य अपना प्रभाव क्यों और किस प्रकार करता है यह चिकित्सा-शास्त्र का प्रथम प्रश्न है। साधारणतः इसका उत्तर यह है कि वह अपने गुणों के कारण कार्य करता है। गुणरहित द्रव्य कार्य नहीं करते। अतएव बहुधा औषधियों पर लिखा रहता है कि अमुक तिथि के पश्चात् इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। काष्ठौषधियाँ प्रायः १ वर्ष के बाद गुणहीन हो जाती हैं।

'गुण' वस्तुतः द्रव्य में उपस्थित कार्यकारिणी शक्ति है। यथा, एरण्डतैल में 'रेचकता' गुण है, अतः वह रेचन कराता है। इस प्रकार की शक्ति को 'चिन्त्य शक्ति' कहते हैं। इसके विषय में विचारा और बताया जा सकता है कि द्रव्य इस प्रकार से इस गुण विशेष के कारण अपना कार्य करता है। कुछ द्रव्यों का कार्य तो प्रत्यक्ष होता है, किन्तु उसका कारण बताना कठिन है। यथा, घी-दूध के समान गुणों वाला होने पर भी अग्नि को दीप्त करता है, दूध नहीं। घी का यह गुणविरोधी कार्य क्यों होता है इसका कोई उत्तर अभी तक आयुर्वेद के पास नहीं, अतः हम इसे 'अचिन्त्य-शक्ति' (प्रभाव) कहते हैं।

उक्त दोनों प्रकार की शक्तियों को ही 'गुण' संज्ञा दी जाती है। गुण शब्द की निरुक्ति इस प्रकार है—

क्रियाहीनत्वेन, कर्तृत्वादभावात् अप्राधान्येन, गौणत्वाच्चगुण इति संज्ञा।

अर्थात् गुण में क्रिया नहीं रहती। यह कर्त्ता भी नहीं है अतः गौण होने से (द्रव्यापेक्षा) इसे 'गुण' कहा गया है। यद्यपि गुण स्वयं निष्क्रिय है तथापि द्रव्यों के कर्मों के कारण है। निर्गुण द्रव्य में 'कर्म' नहीं रहता। यथा, मरिच का दाह-जलन आदि कर्म उसके तीक्ष्ण गुण के कारण हैं। यदि मरिच में से तीक्ष्णता निकाल दें, तो ये कर्म भी नष्ट हो जाते हैं।

गुणों के भेद—इनके चार भेद हैं—(१) वैशेषिक गुण, (२) शारीरिक गुण, (३) आत्म-गुण, (४) सामान्य गुण।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वैशेषिक गुण[1]—द्रव्यों में भौतिक रूप में पाए जाने वाले गुण यथा—पृथ्वी में गन्ध, जल में रस, अग्नि में ताप, वायु में स्पर्श, आकाश में शब्द तथा धातुओं में चमक, भार, कान्ति आदि गुण हैं। इनका चिकित्सा से घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है।

शारीरिक गुण या चिकित्सकीय गुण[2]—गुरु, लघु, स्निग्ध आदि बीस गुणों को शारीरिक गुण कहते हैं, क्योंकि इनका शरीर पर विशेष प्रभाव होता है। चिकित्सा में इनका विशेष उपयोग होता है, अतः इन्हें 'चिकित्सकीय' गुण भी कहते हैं।

आत्मा के गुण—इच्छा, द्वेष, प्रयत्न सुख-दुःखादि आत्मा के गुण हैं। चिकित्सा में इनके द्वारा मनुष्य के मानस का ज्ञान होता है।

सामान्य गुण—पर-अपर आदि दस सामान्य गुण हैं। ये शरीर-आत्मा आदि में सामान्य होने से सामान्य गुण कहलाते हैं। लोक-व्यवहार में इनका विशेष उपयोग होता है।

गुणों को ही 'रस-वीर्य-विपाक' में विभक्त किया गया है, क्योंकि व्यवहार में द्रव्यों के कर्म-रस-वीर्यादि द्वारा ही बताए जाते हैं। अतः, ब्राह्मण कौंडिन्य या गो-बलीवर्द न्याय से इनका वर्णन गुण होते हुए भी गुणों से अलग किया जाता है।

रसों द्वारा सम्पूर्ण चिकित्सा—गुण-भेद रस वीर्यादि में भी रसों को ही प्राधान्य दिया गया है। रसों द्वारा ही पदार्थों के गुणों का वर्णन किया जाता है। रसों के गुण-कर्म से द्रव्यों के गुण-कर्म का निर्देश किया जाता है। बहुधा कह दिया जाता है कि द्रव्यों के गुण रस-वीर्य-विपाक प्रायः रसों के सदृश ही होते हैं। जहाँ अपवाद होता है, वहीं गुणादि का पृथक् उल्लेख किया गया है। न केवल गुण-वर्णन में अपितु चरक-सुश्रुत ने चिकित्सा में भी रसों, एकमात्र रसों का ही उल्लेख किया है। दोषों का प्रमाण देख कर विरोधी रसों द्वारा ही उन्हें साम्यावस्था में लाकर रोगनाश की पद्धति बतायी है। देखिए :—

दोषाणां पञ्चदशधा प्रसरोऽभिहितस्तु यः।
त्रिषष्टयारसभेदानां तत्प्रयोजनमुच्यते ॥
अविदग्धा विदग्धाश्च भिद्यन्ते ते त्रिषष्टिधा।
रसभेद त्रिषष्टिं तु वीक्ष्य, वीक्ष्यावचारयेत् ॥ (सु० उ० ६३-१७)

तथा

संयोगाः सप्तपंचाशत् कल्पना तु त्रिषष्टिधा।
रसानां तत्र योग्यत्वात् कल्पिता रसचिन्तकैः ॥
क्वचिदेकोरसः कल्प्यः संयुक्ताश्च रसाः क्वचित्।
दोषौषधीनां संचिन्त्य भिषजा सिद्धिमिच्छता ॥
द्रव्याणि द्वरसादीनि संयुक्तांश्च रसान् बुधः।
रसानेकैकशोवापि कल्पयन्ति गदान् प्रति ॥ (च० सू० २६-२४-२६)
स्याद्रसविकल्पज्ञः स्याच्चदोषविकल्पवित्।
न स मुह्येद्विकाराणां हेतुलिंगोपशान्तिषु ॥

उक्त पद्य सरल है। अर्थ की अपेक्षा नहीं है। जो चिकित्सक रस-भेदों तथा दोषों की अंशांश कल्पना को जानता है, वह कभी भी रोगों के निदान-चिकित्सा में मोह को प्राप्त नहीं होता। उक्त संदर्भ से स्पष्ट है कि रसों के गुणों

1. Physical properties
2. Operative properties, Pharmalogical properties.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

द्वारा द्रव्यों का गुण-चिन्तन और उनका चिकित्सा में प्रयोग ही आयुर्वेद का मूल आधार है। गुणों का विशेष वर्णन अन्यत्र यथा अवसर किया गया है।

कर्म परिचय—द्रव्यों की कार्यकारिणी शक्ति (कार्मुकता) गुणों के कारण है। यह बात तो ऊपर कही जा चुकी है।

कर्म क्या वस्तु है ? भगवान पुनर्वसु के शब्दों में—

संयोगे च विभागे च कारणं, द्रव्यमाश्रितम् ।
कर्त्तव्यस्य क्रियाकर्म, कर्मनान्यदपेक्षते ।। (च० सू०)

कर्म-द्रव्य की वह क्रिया है, जो दो पदार्थों का संयोग या वियोग कराती है, द्रव्य में रह कर भी अपने कार्य में किसी को सहायता की अपेक्षा नहीं रखती। उदाहरणार्थ—हरीतकी में 'रेचन' कर्म रहता है। जब हरीतकी का सेवन किया जाता है, तो उसमें रहने वाला रेचन-कर्म मल का आंतों से वियोग करा कर स्वकर्त्तव्य-रेचन रूपी कार्य को करता है। उसे इस कार्य में किसी अन्य सहायक की आवश्यकता नहीं होती। हरड़ों के सेवन का परिणाम रेचन होता है। अतएव नागार्जुन का '**परिणामलक्षणो कर्मः**' इसमें पूर्णतः घटता है। रेचन, वामक, संग्राहक, रसायनादि नानाविध कर्मों का वर्णन यथास्थान विस्तार से किया गया है। द्रव्य क्यों अपना कार्य करते हैं ? यह विषय महर्षि अग्निवेश ने बड़े सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है :—

न तु केवलं गुण प्रभावादेव द्रव्याणि कार्मुकानि भवन्तिच द्रव्याणि ही द्रव्यप्रभावात्, गुणं प्रभावात्, द्रव्यगुण प्रभावाच्च तस्मिन् तस्मिन् काले तदधिष्ठानमासाद्य तां तां च युक्तिमर्थं च तंतमभिप्रेत्य यत्कुर्वन्ति तत्कर्म, ये न कुर्वन्ति तद्वीर्यम्, यत्र कुर्वन्ति स कालः, यथा कुर्वन्ति स उपायः यत्साधयन्ति तत्फलम् । (च० सू० २६।१३)

द्रव्य न केवल गुणों के कारण कर्म करते हैं अपितु द्रव्य प्रभाव से (अचिन्त्य शक्ति से), गुण प्रभाव से चिन्त्य शक्ति से) तथा द्रव्य गुण दोनों के सम्मिलित प्रभाव से जो कार्य करते है वह कर्म है, जिससे करते हैं वह वीर्य है आदि आदि।

ऊपर गुणों के परिचय में रसादि का उल्लेख किया गया है। आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण-शास्त्र का आधार रस-वीर्य-विपाक प्रभाव पर ही है। अतः द्रव्यों के गुण तथा कर्म का परिचय उनके ज्ञान के बिना अधूरा रह जायगा। संक्षेप में उनका परिचय भी पाठकों को दिया जाता है।

रसादि को समझने के लिए द्रव्य के शरीरान्तर्गत सामान्य क्रिया-प्रणाली को समझना आवश्यक है। द्रव्यों का देह पर कहाँ, किस प्रकार तथा क्यों प्रभाव होता है, इसके समझने से रस-वीर्यादि के मौलिक-सिद्धांत को समझने में सरलता हो जाएगी।

औषध-द्रव्यों का कार्य-क्षेत्र—आयुर्वेद की विशिष्ट वर्गीकरण-प्रणाली के अनुसार द्रव्यों के प्रभाव कितने भी क्यों न हों, उन सबका अन्तर्भाव निम्न दो वर्गों में किया जा सकता हैं :—

स्थानीय प्रभाव—जब द्रव्य देह के किसी विशिष्ट स्थान के सम्पर्क में आता है, उस संसर्ग के कारण शरीर की जो प्रतिक्रिया होती है वह स्थानीय प्रभाव के रूप में प्रत्यक्ष होती है। यह देह की त्वचा तथा अन्दर की श्लेष्मिक कला पर भी दृष्टिगोचर होती है। यथा—राजिका (राई) का लेप करने पर स्थान विशेष लाल-गरम हो उठता है या अधिक मिर्चें खाने पर पहले मुख, नासा, गले पर पुनः आमाशय पर तथा क्रमशः जिस-जिस भाग के सम्पर्क में मरिचगत तीक्ष्ण-उष्ण वीर्य-आता जाता है उस-उस भाग में स्थानीय क्रिया होती जाती है। २४ घण्टों के बाद शौच जाते समय भी उसका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यह प्रभाव सारे शरीर या एक पूरे संस्थान पर ही नहीं होता, अपितु स्थानविशेष पर भी होता है। अतएव 'स्थानीय[1]' संज्ञा दी गई है। त्वचा कला के समान यह प्रभाव संज्ञावह-तन्तुओं, रक्तवाहिनियों आदि पर भी दृष्टिगोचर होता है। कभी-कभी सम्पर्क के स्थान से दूर दृष्टिगोचर होता है तथा कड़वा

1. Hocal actions.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

या खट्टा पदार्थ मुख में रखने से आमाशय उद्दीप्त होकर पाचक रस का स्राव अधिक करता है। यह प्रतिसंक्रमितक्रिया का उदाहरण है। औषधियों पर यह प्रभाव द्रव्यगत रस के कारण होता है। अतएव **'रसो निपाते द्रव्याणां'** कहा गया है।

सांस्थानिक प्रभाव[1]—यह प्रभाव एक सम्पूर्ण संस्थान-विशेष पर होता है। जब द्रव्य आंत्रों से रस-रक्तादि धातुओं में चला जाता है तब यह प्रभाव उत्पन्न होता है। इसका सम्बन्ध औषध के प्रवेश-स्थल तथा मार्ग पर न होकर सुदूर कहीं अन्य अंग पर ही होता है। यथा—गोक्षुर (गोखरु) का प्रभाव मूत्र संस्थान तथा प्रजनन संस्थान पर होता है। अतएव उसे मूत्रल तथा वृष्य कहा गया है। यहाँ पर यह बात स्मरणीय है कि एक औषध का एक ही संस्थान पर प्रभाव न होकर कई संस्थानों पर भी होता है। जैसा कि ऊपर गोक्षुरु के उदाहरण से सिद्ध है। किन्तु, वर्गीकरण मुख्य प्रभाव के अनुसार ही किया जाता है।

उक्त प्रकार का वर्गीकरण रोग-चिकित्सा में लाभदायक है, क्योंकि कुपितदोष सारे शरीर में दौड़ते रहते हैं और जहाँ भी निर्बल धातु को पाते हैं वहीं **"यत्र संगः खवैगुण्यात्"** के अनुसार रोग उत्पन्न करते हैं। अतः रोग के अधिष्ठान अंगों पर क्रिया करने वाले द्रव्यों का ज्ञान होने पर क्रिया सफल तथा सरल होती है। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रख कर यह वर्गीकरण किया गया है। आयुर्वेद में जहाँ तक हमें ज्ञात है इस प्रकार के वर्गीकरण का यह प्रथम प्रयास है, अतः कुछ त्रुटिपूर्ण हो सकता है। भविष्य में इस दिशा में और भी प्रयत्न करने पर उन्नति संभव है। एक ही द्रव्य यद्यपि कई संस्थानों या अवयवों पर क्रिया करता है, अतः मुख्य क्रिया के अनुसार एवं व्यवस्था का विचार कर उसका वर्गीकरण किया गया है।

(१) महास्रोतस् या अन्नवह-पुरीषवह स्रोत प्रभावक यथा—वामक, विरेचक-दीपक पाचकादि।
(२) रसरक्तवह स्रोतस् (हृदय रक्ताभिसरण) प्रभावक यथा—हृदयरसायन, उत्तेजक, रक्तशोधकादि।
(३) मूत्रसंस्थान - (मूत्रवह स्रोतस् प्रभावक) मूत्रलादि।
(४) शुक्र-आर्त्तववह स्रोतस् (प्रजनन संस्थान) प्रभावक यथा—शुक्रल, वाजीकरण, आर्त्तवजननादि।
(५) स्वेदवह स्रोतस् (त्वचा संस्था प्रभावक)
(६) प्राणवह स्रोतस् (श्वास संस्थान प्रभावक) प्रभावक, यथा—कासहर, कफघ्न, कफ निष्कासकादि।
(७) संज्ञावह स्रोतस् प्रभाव (वातसंस्थान प्रभावक) यथा—मेध्य, मादक, स्वापजननादि।
(८) धातुपाक या सर्वदेह प्रभावक, यथा—रसायन बल्यादि।

उक्त वर्गीकरण शरीरक्रिया के अनुसार है। कंठ्य शिरोविरेचन आदि स्थान भेदों के अनुसार भी वर्गीकरण किया जाता है। इस प्रकार के स्थानीय प्रभावकारक द्रव्य स्वल्प ही हैं। अधिकांश शरीर-व्यापार के अनुसार क्रिया करते हैं। उसी के अनुसार इस ग्रन्थ में द्रव्यों का क्रम रखा गया है। कुछ लेखक औद्भिद् शास्त्र (Botany) के वर्गीकरण के अनुसार औषधियों का वर्णन करते हैं। यह वर्गीकरण उद्भिदों के रचना-साम्य को देखकर किया जाता है, गुणों की समानता को नहीं। यथा—त्रिफला की हरड़-बहेड़ा एक वर्ग में तथा आमला दूसरे वर्ग में। अतः औद्भिद् शास्त्रीय वर्गीकरण आयुर्वेद में उपयोगी नहीं हो सकता, अतएव हमने गुण-प्रभावानुसार 'वर्गीकरण' किया है।

1. Drugs Acting on Alimentary Canal.
2. Heart and Blood Circulation.
3. Kidneys and Urinary System.
4. Genital System.

---

1. Systemic actions.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

5. Skin and its appendages.
6. Respiratory Systems.
7. Nervous-System.
8. Affecting Metabolism.

४—औषध प्रभाव

औषध-प्रभाव की दो अवस्थाएँ—प्रारम्भिक प्रभाव या तत्कालीन प्रभाव। यह प्रभाव औषधि के देह धातुओं के सम्पर्क में आते ही होता है। द्रव्य तथा धातु में कुछ भी परिवर्तन नहीं होता। यथा, मरिच की कटुता जिह्वा, मुख, आमाशय में पहुँचते ही तत्काल अपना प्रभाव करती है। उष्णता, झनझनाहट, लालास्राव, पुनः जड़ता आदि। यह प्रारम्भिक प्रभाव द्रव्यगत रस या वीर्य के कारण होता है। अतएव कहा है—

रसो निपातेद्रव्याणाम् तथा 'वीर्य' यावद्……निपाताच्चोपलभ्यते।

पाकीय प्रभाव—यह औषध-द्रव्यों का देहाग्नि द्वारा पाक होने के पश्चात् या होते समय उत्पन्न होता है। यथा, चन्दन शरीर में पाक होने के बाद मूत्रमार्ग से निकलते समय वृक्कों को उत्तेजित तथा मूत्रमार्ग की कला को शक्तियुक्त बना कर और तत्रस्थ संक्रमण का नाश कर मूत्र अधिक मात्रा में लाता है, पूय (पीव) का नाश करता है और दाह-जलन को मिटाता है। यह प्रभाव विपाक और वीर्य दोनों के द्वारा सम्भव है। जैसे कि **'वीर्ययावदधिवासात्'** तथा **'विपाकः कर्मनिष्ठया'** से स्पष्ट है। यह बात स्मरणीय है कि एक औषध दोनों प्रकार के प्रभाव करे और अपने रस-वीर्य-विपाक सभी से काम करे, आवश्यक नहीं है। अतएव आचार्य अग्निवेश ने कहा है :—

किंचिद्रसेन कुरुते कर्म वीर्येण चापरम्।
द्रव्यं गुणेन पाकेन, प्रभावेण च किंचन ॥—(च० सू०)

प्रभाव के भेद—प्राणी के देह में होने वाली क्रियाओं को तीन भागों में बाँटा गया है :—

(१) **वातिक क्रियाएँ**—ये क्रियाएँ शरीर में होने वाली समस्त गत्यात्मक प्रेरणात्मक संज्ञावह सूत्रों की क्रियाएँ होती हैं।

(२) **पैत्तिक या पाचनात्मक क्रियाएँ**—शरीर में प्रविष्ट अन्न, औषधादि का पाचन तथा उन्हें शरीर का ही भाग बनाने में इनका प्राधान्य है। ऊष्मा की सारी क्रिया इसी के अन्तर्गत है।

(३) **रचनात्मक या उपचयात्मक-संरक्षणात्मक क्रियाएँ**—ये क्रियाएँ शरीर की क्षति, टूट-फूट की मरम्मत करके उसे दीर्घकाल तक चलने योग्य बनाती हैं।

उक्त क्रियाओं की स्वाभाविक स्थिति ही 'दोषसमता' कहलाती है। इसमें वृद्धि या क्षय आ जाने से रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसी को "दोषवैषम्य" कहते हैं। इन विषम क्रियाओं को समावस्था (प्राकृतिक दशा) में लाना ही चिकित्सा का उद्देश्य है। अतः औषधियाँ वृद्ध या क्षीण क्रियाओं का ह्रास या वर्धन ही कर सकती हैं। उनमें परिवर्तन या क्रियान्तर उत्पन्न नहीं कर सकती। अतः औषधियों का प्रभाव भी दो प्रकार का होता है। वर्धन धातुओं तथा दोषों एवं उनकी क्रियाओं का या क्षपण कम करना। अतएव आचार्य चरक ने कहा है—

वर्धनेनैकदोषस्य क्षपणेनोच्छ्रितस्य च।
कफस्थानानुपूर्व्या च तुल्यकक्षान् जयेत् मलान् ॥ (च० शू०)

वर्धन प्रभाव निम्न प्रकारों से प्रत्यक्ष होता है :—

(१) **उत्तेजनामक (संशोधक)**[1]—शरीर को क्रिया-शक्ति को बढ़ा कर या उत्तेजित कर यह दोषों को बाहर निकाल देती है या उनके आवरण को नष्ट कर देती है। उदाहरणार्थ—वामक-विरेचक द्रव्य आमाशय तथा अन्त्र या इनके नियामक मस्तिष्क केन्द्रों को क्षुभित कर वमन-विरेचन (उलटी-दस्त) कराते हैं। कस्तूरी आदि उष्ण वीर्य द्रव्य ताप की कमी को इसी प्रकार उष्णता बढ़ाकर शान्त करती है।

---

1. Stimulation.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(अ) इसी जाति का एक और प्रभाव विशेष भी दृष्टिगोचर होता है। इसे 'क्षिप्र ग्राहिता'[1] कहा जाता है। विशिष्ट द्रव्यों के सेवन से विशिष्ट धातुओं या अंगों की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। यथा—कुचला के सेवन से त्वचा की ग्रहण-क्षमता या स्पर्श गुण बहुत तीव्र हो जाता है।

(आ) क्षोभ या शोथ भी इसी उत्तेजक प्रभाव के अन्तर्गत है। क्षोभक या उत्तेजक पदार्थों—राजिका राई आदि से क्षोभ होकर शोथ भी उत्पन्न हो जाता है। ये सब परिवर्तन रचनात्मक परिवर्तन है। क्रिया की प्रकृति में परिवर्तन नहीं होता।

इस वर्ग के द्रव्य प्रायः वात धातु को प्रभावित कर स्वप्रभाव दिखाते हैं। किन्तु सभी औषधियाँ एक प्रकार से क्रिया नहीं करतीं। कोई केवल एक अंग पर लेकिन दूसरी सारे शरीर पर प्रभाव करती हैं। इनके प्रभाव के विशेष अंग हृदय, मांसपेशियाँ' नाड़ियाँ तथा स्राव केन्द्र हैं। कुछ औषधियाँ स्वल्प मात्रा में उत्तेजक तथा बड़ी मात्रा में अवसादक होती हैं। यथा—वत्सनाभ। कुछ औषधियाँ एक अंग या धातु की उत्तेजक एवं दूसरे की अवसादक होती हैं। यथा वत्सनाभ स्वेदग्रन्थियों के लिये उत्तेजक एवं हृदय के लिये अवसादक है।

(२) अवसादक (संशमन या क्षपण ह्रास)—इन औषधियों के सेवन से शरीर धातुओं की 'ग्रहण क्षमता, कम होती है और उनकी क्रिया भी मन्द हो जाती है। कभी-कभी ये क्रियाविघात (काम को रोक देना—आघात) तथा श्रम (थकावट) भी उत्पन्न कर देती है। श्रम तथा क्रियाविघात में प्रकृति का भेद नहीं है। मात्रा का ही भेद है। श्रम जीवनीय शक्ति की न्यूनता अथवा धातुओं में मलों के एकत्र होने से होता है। आघात वाततन्तु,मांस-पेशियों, वातनाड़ी प्रान्तों में होता है।

प्रभाव की मन्दता या तीव्रता के कारण—यह निम्न तथ्यों पर निर्भर है। औषधि संघात; अर्थात् शरीर में कितनी मात्रा में तथा कितनी देर तक औषधि एकत्र होती रहती है। यह भी आशोषण की तीव्रता तथा निष्क्रमण (बाहर निकलना) की गति है। औषधि शरीर में जाने के पश्चात् अपना कार्य भी करती रहती है तथा वृक्क, मुख, आमाशय, आंत्र, त्वचा, फेफड़ों आदि से बाहर भी निकलती रहती है। यथा—कुचला (विषमुष्टि) सत्वआमाशय में सेवन के ३० मिनट बाद क्षुद्रांत्र में ५०, बृहदन्त्र में १४, मलाशय में ७ मिनट में ही आक्षेप उत्पन्न कर देता है वहाँ-वहाँ पहुँच कर।

अवधि—यह दूसरा तथ्य है कि कितने समय तक यह औषधि शरीर में निवास कर सकती है। पारा, नाग (सीसा) बहुत समय तक शरीर की धातुओं में ठहरे रहते हैं। अतः इनका लगातार प्रयोग विष लक्षण उत्पन्न कर देता है।

औषधि की मात्रा तथा आयु—मात्रा का तात्पर्य है औषधि को वह मात्रा, जो उसका प्रभाव दिखाने में समर्थ हो। 'पूर्णमात्रा' औषधि की वह मात्रा है, जो चिकित्सा के आवश्यक-अधिकतम प्रभाव उत्पन्न कर सके। न्यूनतम मात्रा का अर्थ है, औषधि का कम-से-कम प्रमाण—जिससे चिकित्सा में न्यूनतम आवश्यक प्रभाव उत्पन्न कर सके। औषध की मात्रा से प्रभाव भी भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, जैसे—मुलैठी न्यून मात्रा में रेचक है किन्तु बड़ी मात्रा में वामक। लवण स्वल्पमात्रा में दीपन-पाचन, बड़ी मात्रा में वामक और रेचक है। मात्रा का निर्णय साधारणतया प्रौढ़ व्यक्तियों की आवश्यकता के अनुसार किया जाता है। आयु के अनुसार मात्रा भी भिन्न-भिन्न होती है। सभी प्रकार के व्यक्तियों के लिए एक ही मात्रा को निश्चय नहीं किया जा सकता। अतएव आचार्य ने कहा है—

स्थितिर्नास्त्येव मात्राया कालमग्निं वयो बलम्।
प्रकृति देश दोषौ च दृष्ट्वा मात्रां प्रकल्पयेत् ॥ (नि० र०)

आयु के अनुसार मात्रा का निर्धारण:—२० से ६० वर्ष तक के रोगी को प्रौढ़ समझा जाता है। इससे नीचे को बाल या कुमार तथा ऊपर को वृद्ध। बाल तथा वृद्धों के लिये मात्रा प्रौढ़ की अपेक्षा कम होती है। आयुर्वेद में इनके लिये निम्न प्रकार से मात्रा निर्धारण की गयी है—

---

1. Irritation, Sensitiveness.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रथमेमासिजातस्य शिशोर्भेषजरक्तिका।
अवलेह्या तु कर्त्तव्या मधु-क्षीर-सिताघृतैः ॥
एकैकां वर्धयेत्तावत् यावत्संवत्सरो भवेत् ।
तदूर्ध्वंमाषवृद्धिःस्यात् यावत् षोडशाब्दिकाः ॥
षोडशाब्दात्ततस्तूर्ध्वं यावदासप्ततेरितिः ।
एकमेव विभागोऽयं तदूर्ध्वबालवत् क्रिया ॥ (सु० सू० ३५—डल्हण)

१ महीने के बच्चे के लिए १ रत्ती । प्रतिमास १ रत्ती बढ़ाते जाएँ । बारह महीनों के बाद प्रतिवर्ष १ माशा की मात्रा बढ़ावें जब तक बच्चा १६ वर्ष का न हो जाय । १६ से ७० वर्ष तक (आजकल ५५ वर्ष तक) मात्रा स्थिर रहती है, पुनः बालवत् प्रतिवर्ष १ माशा के हिसाब से घटाते जाएँ ।

नव्यों (एलोपैथि को) ने इस विषय में निम्न नियम बनाए हैं—यंग का नियम—यह १२ वर्ष तक के बच्चों के लिए मात्रा निर्धारण करने में उत्तम है । इस नियम के अनुसार आयु के वर्षों में १२ का अंक मिलाकर उससे आयु के वर्षों को ही विभक्त कर देवें, ठीक मात्रा आ जाएगी । उदाहरणार्थ—४ वर्ष के बच्चे के लिये $\frac{४}{४+१२} = \frac{४}{१६} = \frac{१}{४}$ मात्रा आती है । अन्य भी कुछ नियम हैं किन्तु उनका उल्लेख आवश्यक नहीं है । नीचे की तालिका बच्चों के लिये मात्रा निर्धारण में अच्छा मार्ग प्रदर्शन करती है :—

१	वर्ष तक के शिशु के लिए	पूर्ण मात्रा का	१/१२ वाँ	भाग
२	"	"	१/८ वाँ	"
३	"	"	१/६ वाँ	"
४	"	"	१/४ वाँ	"
७	"	"	१/३ वाँ	"
१४	"	"	१/२ वाँ	"
२० वर्ष तक के लिये		"	२/३ वाँ	"
२०-६०	"	१ (गायोज हास्पिटल, लन्दन)		

उक्त कारणों के अतिरिक्त निम्न कारण भी औषधि के प्रभाव में परिवर्तन उत्पन्न कर सकते हैं :—

मात्रा काल क्रियाभूमि देहदोषगुणान्तरम् ।
प्राप्य तत्तद्धि दृश्यन्ते ते ते भावास्तथा तथा ॥
तस्मात् स्वभावो (द्रव्यका) र्निदिष्टस्तथा मात्रादिराश्रयः ।
तदपेक्ष्योभयं कर्म प्रयोज्यं सिद्धिमिच्छिता ॥ (च० सू० २५-४५-४६)

औषधि का स्वरूप—किसी द्रव पदार्थ में घुली औषधि का प्रभाव गुटिका की अपेक्षा शीघ्र होता है । यथा आसव अरिष्ट-काढ़े आदि चूर्ण का द्रव से देर में किन्तु गुटिका से शीघ्र प्रभाव होता है । गुटिका का प्रभाव यद्यपि धीरे-धीरे होता है तथापि वह अधिक स्थायी होता है ।

लिंग—बच्चे तथा स्त्रियाँ तरुणों, प्रौढ़ों तथा पुरुषों की अपेक्षा सुकुमार होती हैं । अतः उन्हें औषधि कम मात्रा में देनी पड़ती है । स्त्रियों में ऋतुकाल, गर्भावस्था, दूध पिलाने आदि का भी ध्यान रखना पड़ता है । अफीम, घी-कुमार आदि औषधियाँ रक्त में भ्रमण करती हुई गर्भाशय तथा दुग्ध-स्तनों में पहुँचती हैं । ये शिशु के लिए हानिकारक हो सकती हैं ।

शरीर (संहनन) संगठन तथा भरा—स्वस्थ-सबल पुरुष को निर्बल पुरुष की अपेक्षा अधिकमात्रा में

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ग्रोषधि देनी पड़ती है । अतः प्रति पुरुष भेद मात्रादि में भेद होना आवश्यक है । निम्न तालिकाएँ भारतीयों के शरीर संहनन को बताती हैं—

ये तालिकाएँ (अ १, अ २, अ ३) श्री डॉक्टर रुस्तम जाल वकील, एम० डी० तथा स्वर्गीय डॉ० जे० जे० कुसेंटजी, एम० डी०, बम्बई और उनके सहयोगियों के अनुसन्धान का फल है और मैंने "शेरिंग कार्पोरेशन, ब्लूमफील्ड, अमेरिका वेडेमेकम (सूचना-पत्रक), (१९४९) से उद्धृत की है, एतदर्थ इन सबका आभारी हूँ ।

तालिका अ १

शिशु समुदाय—(एक सप्ताह से ४ वर्ष तक)

आयु	भार बालक पौं० औं०	भार बालिका पौंड औं०	आयु	भार बालक पौं० औं०	भार बालिका पौं० औं०
१ सप्ताह	६—०	५—१२	७ मास	१६—५	१५—१२
२ ,,	६—८	६—४	८ ,,	१७—१०	१६—०
३ ,,	७—०	६—११	९ ,,	१९—०	१८—३
४ ,,	७—८	७—२	१० ,,	२०—२	१९—५
२ मास	९—०	८—१०	११ ,,	२१—४	२०—६
३ ,,	१०—८	१०—१	१२ ,,	२२—८	२१—८
४ ,,	१२—०	११—८	२ वर्ष	३०—०	२८—११
५ ,,	१३—८	१२—१५	३ ,,	३६—८	३५—०
६ ,,	१५—०	१४—६	४ ,,	४१—०	३९—५

सूचना—उक्त तालिका बम्बई नगर तथा उपनगरों के मध्यवर्गीयों के अनुसन्धान पर आधारित है । शिशुओं में आहार के प्रकार, जाति, सम्प्रदाय तथा देश भेदादि के कारण भार में भेद प्रायः नहीं पाया जाता । हाँ, अगली आयु में अवश्य ही भेद आ जाता है । जैसा कि अगली दो तालिकाओं से स्पष्ट है । देशभेद के अनुसार इन भारों में निम्न परिवर्धन कर लेना चाहिये :—

उत्तर भारतीय	—	+७	प्रतिशत
पूर्वी भारतीय	—	+४	,,
मध्य भारतीय	—	+४	,,
उत्तर-पश्चिम भारतीय	—	+४	,,
दक्षिण भारतीय	—	बम्बई के समान	

यूरोपियनों में भारतीयों की अपेक्षा ५ प्रतिशत भार अधिक जोड़ देना चाहिये ।

आगे की तालिकाओं के तुलनात्मक अध्ययन से भारतीयों तथा यूरोपियों के शरीर संगठन तथा पोषण का भेद भली भाँति स्पष्ट हो जायगा । इसीलिये यह तालिका दी गई है । ये सब प्रमाण औसतगत (Average) हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बाल्यावस्था का भार तथा ऊँचाई

आयु विगत जन्म-दिवस पर	बालक			बालिका		
	ऊँचाई		भार	ऊँचाई		भार
	फुट	इञ्च	पौंड	फुट	इञ्च	पौंड
१ वर्ष	२	३	१७	२	१	१६
३ वर्ष	२	९	२९	२	८	२८
५ वर्ष	३	१	३८	३	०	३५
१० वर्ष	४	—	५६	३	१०	४५
१४ वर्ष	४	५	७५	४	—	६६
२० वर्ष	५	—	८४	४	६	८०

किंग एडवर्ड मेमोरियल हास्पिटल, बम्बई के फार्माकोपिया से उद्धृत
प्रौढ़ों का भार

आयु	भार	छाती की माप इञ्चों में	उदर की माप इञ्चों में
२० वर्ष	१२० पौंड	३१·२	२७·३
२५ ,,	१२५ ,,	३२·१	२८·४
३० ,,	१२८ ,,	३३·१	२९·८
३५ ,,	१३५ ,,	३४·०	३१·९
४० ,,	१३६ ,,	३४·५	३२·५
४५ ,,	१४० ,,	३४·३	३२·४
५० ,,	१४१ ,,	३४·५	३३·६

(फार्मोकोपिया जे० जे० समूह हास्पिटल)

उक्त तालिका में साधारण भार (Average weight) दिया गया है तथा ऊँचाई ५ फुट ५ इञ्च समझना चाहिए।

ऊँचाई तथा भार का अनुपात
भार

ऊँचाई		न्यूनतम	साधारण या मध्यम	अधिकतम
५ फुट	१ इञ्च	९५ पौंड	१२५ पौंड	१५५ पौंड
५ ,,	२ ,,	९७ ,,	१२८ ,,	१५८ ,,
५ ,,	३ ,,	१०० ,,	१३१ ,,	१६१ ,,
५ ,,	४ ,,	१०२ ,,	१३४ ,,	१६४ ,,
५ ,,	५ ,,	१०५ ,,	१३७ ,,	१६७ ,,
५ ,,	६ ,,	१०८ ,,	१४१ ,,	१७१ ,,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ऊँचाई		न्यूनतम	साधारण या मध्यम	अधिकतम
५ फुट	७ इञ्च	१११ पौंड	१४६ पौंड	१७६ पौंड
५ ,,	८ ,,	११५ ,,	१५१ ,,	१८१ ,,
५ ,,	९ ,,	११६ ,,	१५६ ,,	१८६ ,,
५ ,,	१० ,,	१२३ ,,	१६१ ,,	१९१ ,,
५ ,,	११ ,,	१२६ ,,	१६७ ,,	१९७ ,,
६ ,,	—	१३१ ,,	१७३ ,,	२०३ ,,

यूरोपियनों में उक्त भार में ५ प्रतिशत बढ़ा देना चाहिये। १ पौंड (रत्तल) आधा सेर के लगभग होता है। ८२ पौंडों का एक मन (४० सेर) होता है। (फार्मोकोपिया जे० जे० हास्पिटल बम्बई)।

१५ वर्ष तक के यूरोपियन बच्चों और युवकों का शरीर-संगठन

आयु मासों में	भार (पौण्डों में) बालक	बालिका	ऊँचाई (इंचों में) बालक	बालिका
जन्म के समय	७·७	७·१	१९·७०	१९·३०
१ मास	९·७	९·०	२१·३५	२०·८७
२ ,,	११·७	१०·६	२२·४५	२२·०५
३ ,,	१३·७	१२·६	२३·६२	२३·२३
४ ,,	१५·०	१३·९	२४·४०	२४·०२
५ ,,	१६·१	१५·२	२५·२०	२४·८०
६ ,,	१७·४	१६·३	२६·००	२५·५९
७ ,,	१८·७	१७·२	२६·७७	२६·३८
८ ,,	१९·६	१८·१	२७·५६	२७·१७
९ ,,	२०·३	१८·७	२७·९५	२७·५६
१० ,,	२०·९	१९·४	२८·३५	२७·९५
११ ,,	२१·८	२०·७	२९·१३	२८·७४
१२ मास (१ वर्ष)	२२·५	२१·४	२९·५३	२९·१३
१३ ,,	२३·०	२१·९	२९·९२	२९·५३
१४ ,,	२३·६	२२·५	३०·३२	२९·९२
१६ ,,	२४·१	२३·०	३०·७१	३०·३२
१७ ,,	२४·७	२३·६	३१·१०	३०·७१
१८ ,,	२५·२	२४·१	३१·५०	३१·१०
१९ ,,	२५·८	२४·७	३१·९०	३१·५०
२० ,,	२६·३	२५·२	३२·२८	३१·९०
२२ ,,	२६·९	२५·८	३२·६८	३२·२८
२३ ,,	२७·४	२६·३	३३·०७	३२·६८
२४ मास (दो वर्ष)	२८·०	२६·९	३३·४७	३३·०७
३ वर्ष	३२·४	३१·२	३६·६२	३६·२२
४ ,,	३६·४	३४·६	३८·९८	३८·५८

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१५ वर्ष तक के यूरोपीय बच्चों और युवकों का शरीर-संगठन

आयु मासों में	भार (पौण्डों में)		ऊँचाई (इञ्चों में)	
	बालक	बालिका	बालक	बालिका
५ „	३६·७	३७·५	४०·६५	४४·५५
६ „	४५·२	४१·६	४२·०१	४२·१३
७ „	५०·७	४६·३	४५·२८	४५·१६
८ „	५५·१	५०·७	४७·२५	४६·२५
९ „	६०·६	५५·१	४९·२१	४८·४३
१० „	६६.१	५९·५	५१.१८	५०.४०
११ „	७१·६	६३·६	५३·०२	५२·३६
१२ „	७७·२	७०·६	५५·१२	५४·७३
१३ „	८२·७	८१·६	५७·१०	५७·४८
१४ „	९०·४	९४·८	५९·४५	६०·२०
१५ „	९९·२	१०५·८	६१·८१	६२·२१

(लेपेटिट डायरी १९५६)

भारतीय नर-नारियों की ऊँचाई तथा भार

यह तालिका जीवन निगम द्वारा स्वीकृत और प्रमाणित है तथा भारत भर में प्रचलित है :—

ऊँचाई	नर भार किलो	नर भार पौंड	नारी भार किलो	नारी भार पौंड	अधिकतम भार
मि० फी० ई०					
1·523 मि० (5′-0″)	………	………	50·6-54·4	112-120	
1.5484 मि० (5′1″)	………	… …	51·7-55·3	114-122	
1·5788 मि० (5′-2″)	56·3-60·3	124-133	51·3-56·7	117-125	(1) 30 वर्ष पर्यन्त प्रमाणिक भार से 10% अधिक
1·5992 मि० (5′-3″)	57·3-51·7	127-136	54·4-58·1	120-128	
1·6246 मि० (5′-4″)	58·9-63·5	130-140	56·3-59·9	124-132	
1·65 मि० (5′-5″)	60·8-65·3	134-144	57·6-61·2	127-135	
1·6754 मि० (5′-6″)	62·2-66·7	137-147	58·9-63·5	130-140	
1·7008 मि० (5′-7″)	64·0-68·5	141-151	60·8-65·3	134-144	(2) 30-35 वर्ष तक प्रमाणित भार से अधिक नहीं
1·7262 मि० (5′-8″)	65·8-70·8	145-156	62·2-66·7	137-147	
1·7516 मि० (5′-10″)	67·6-72·6	149-160	64·0-68·5	141-151	
1·7770 मि० (5′-11″)	69·4-74·4	153-164	65·8-70·3	145-155	
1·8024 मि० (5′-0″)	71·2-76·2	157-168	67·1-71·7	148-158	
1·8278 मि० (5′-1″)	73·0-78·5	161-178	68·5-73·9	151-163	(3) 35 से ऊपर प्रमाणित भार से 10%कम
1·8532 मि० (6′-11″)	75·3-80·7	166-178	………	………	
1·8786 मि० (6′-2″)	77·6-83·5	171-184	………	………	
1·9040 मि० (6′-3″)	79·8-85·9	176-189	………	………	

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(औसतन) साधारण बालकों की ऊँचाई और भार

साख्यिकीय—(यह तालिका दी इन्डियन काउन्सिल आफ मेडिकल रिसर्च नई-दिल्ली के विभाग के अनुसंधान पर आधारित है)

आयु	बालक				बालिका			
	ऊँचाई		भार		ऊँचाई		भार	
आयु	से०मी०	फी०इंच	किलो	पौंड	से०	फी०इंच	किलो	पौंड
3 महीने तक	56·2	1-10	4·5	9·9	55·0	1-10	4·2	9·2
4-6 महीने	62·7	2-1	6·7	14·7	60·9	2·0	5·6	12·3
7-9 ,,	64·9	2-2	6·9	15·2	64·4	?-2	6·2	13·6
10-12 ,,	69·5	2-4	7·4	16·3	66·7	2-2	6·6	14·5
1 वर्ष	73·9	2-5·1/2	8·4	18·5	72·5	2-5	7·8	17·2
2 ,,	81·6	2-8·1/2	10·1	22·2	80·1	2-8	9·6	21·1
3 ,,	88·8	2-11·1/2	11·8	26·0	87·2	2-11	11 2	24·6
4 ,,	96·0	3-2	13·5	29·7	94·5	35-2	12·9	28·4
5 ,,	102·1	3-5	14·8	32·6	101·4	3-4·1/2	14·5	31·9
6 ,,	108·5	3-7	16·3	35 9	107·4	3-7	16·0	35·2
7 ,,	113·9	3-9·1/2	18·0	39·6	112·8	3-9	17·6	38 7
8 ,,	119·3	4-0	19·7	43·3	118·2	3-11	19·4	42·7
9 ,,	123·7	4-1·1/2	21·5	47·3	122·9	4-1	21·3	46·9
10 ,,	128·4	4-3	23·5	51·7	128·4	4-3	23·5	51·9
11 ,,	133·4	4-5	25·9	57·0	133·6	4-5·1/2	26·4	58·1
12 ,,	138·3	4-7·1/2	28·5	62·7	139·2	4-7 1/2	29·8	65·6
13 ,,	144·6	4-10	32·1	70·6	143 9	4-9·1|2	33·3	73·3
14 ,,	150·1	5-0	35·7	78·5	147·5	4-11	36·8	81·0
15 ,,	155·5	5-2	39·6	87·1	149·6	5-0	36·8	81·0
16 ,,	159·5	5-4	43·2	95·0	151·0	5-1|2	41·1	90·4
17 ,,	161·4	5-5 1|2	45·7	100·1	151·5	5-1/2	42·4	93·3

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्कूलों के छात्र तथा तरुण (तालिका अ-(२)

Age Years	HINDUS Male Height Ft. in.	HINDUS Male Weight lbs. ozs.	HINDUS Female Height Ft. in.	HINDUS Female Weight lbs. ozs.	MOSLEMS Male Height Ft. in.	MOSLEMS Male Weight lbs. ozs.	MOSLEMS Female Height Ft. in	MOSLEMS Female Weight lbs. ozs	PARSEES Male Height Ft. in.	PARSEES Male Weight ozs. lbs.	PARSEES Female Height Ft. in.	PARSEES Female Weight lbs. ozs.
5	3 10½	44 8	3 9½	42 4	3 10½	45 4	3 4	43 0	3 9½	41 0	3 8½	39 0
5½	10¾	12	9¾	8	10¾	12	9¾	8	9¾	42 0	8¾	12
6	11	45 0		12	11	46 4		44 0	10	43 4	9	40 12
6½	11¼	8	10	43 4	11½	12	10¼	8	10½	44 8	9¼	41 12
7	11½	40 8	10¼	44 0	4 0	47 4	10¾	45 0	11	45 4	9¾	42 12
7½	4 0	47 4	10¾	12		48 0		8	11½	46 8	10¼	44 0
8	½	48 8	11¼	45 12	1	8	11¾	46 0	11¾	48 0	10½	45 4
8½	1	49 8	11¾	46 12	1¾	49 12	4 ½	47 0	4 ½	49 8	11¼	46 12
9	2	51 8	4 ½	48 12	2½	50 8	1¼	12	1¼	51 12	4 0	48 12
9¼	2¾	54 0	1¼	51 0	3¼	53 12	1¾	50 12	2¼	54 0	1	50 12
10	3½	56 8	2	53 4	4¼	56 4	2¾	53 0	3	56 0	1½	52 12
10½	4¼	59 0		55 8	5	59 0	3½	55 8	4	58 12	2½	355 0
11	4¾	61 12	3	58 0	5¾	62 4	4	58 8	4¾	61 12	3	57 4
11½		64 8		60 8	6½	65 12	4¾	61 8	5¾	64 0	4	60 0
12	6¾	67 8	5	63 4	7½	69 0	5¾	64 8	6½	67 4	4¾	63 0
12½	7¾	70 8	6	66 0	8½	72 8	6¾	67 12	7½	71 8	5½	66 8
13	4 1¾	74 8	4 6¾	69 8	4 9¼	76 4	4 7¼	71 0	4 8¾	76 0	4 6¾	70 12
13½	9¾	78 0	7¼	72 12	10¼	80 12	8¼	75 0	10	80 4	8	75 0
14	11	83 0	9	77 4	11½	84 8	9½	78 8	11½	85 4	9½	79 4
14½	5 [illegible]	88 0	10¼	81 8	5 ½	88 12	10¼	82 4	5 ¾	90 4	10½	87 12
15	1¼	92 4	11	85 4	1½	92 12	11¼	85 12	1¾	24 12	11½	87 12
15½	2	96 8	11¾	89 0	2¼	96 12	5 0	89 4	2¾	98 8	5 1¼	91 4
16	2¾	100 0	5 ¼	92 0	3¼	100 0	¾	92 4	3¼	102 0	¾	94 4
16½	3¼	103 0	½	94 8	3¾	103 8	1	95 0	4	105 8	1¼	97 0
17	3[illegible]	104 12	¾	96 0	4¼	106 8	1½	97 8	4¼	108 4	1½	99 4
17½	3¾	106 4	1	97 0	4½	109 0		99 8	4½	110 4		100 12
18	4	107 8		98 0		110 12		100 12		112 12	1¾	102 4
18½	4¼	101 12	1¼			112 0	1¾	101 12	4¾	114 8		103 8
19		109 4		12	4¾	113 4		102 8		116 0		104 8
19½	4½	8	1½			114 0		103 0	5	12	2	105 0
20		110 0		99 0		114 8				117 0		105 8

Child bearing makes individual weights vary within considerable limits, and this factor should be taken into consideration when consulting the above table.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तालिका संख्या अ--३ युवा तथा

C. Adults

Height Ft. in.	4-10		4.11		5·0		5-1		5-2		5·3		5·4		5-
Age Years	M.	F.	M.	F.	M.	F.	M.	F.	M.	F.	M.	F.	M.	F.	M.
20	91	82	94	85	97	87	100	90	104	94	107	96	100	99	114
21	92	83	95	86	98	88	101	91					111	100	
22									105	95	108	97			115
23	93	84	96	87	99	89	102	92			109	98	112	101	
24							103	93	106	96					116
25	94	85	97	88	100	91					110	100	113	102	117
26	95	86	98	89	101	92	104	94	107	97	111	101	114	103	118
27	96	87	99	90	102	93	105	95	108	98	112	102	115	104	119
28	97	88	100	91	103	94	106	96	109	99	113	103	116	105	120
29	98	89	101	92	104	95	107	97	110	100	114	104	117	106	121
30	99	90	102	93	105	96	108	99	111	101	115	105	118	108	122
31	100	92	103	94	106	97	109	100	112	102			119	109	
32									113	104	116	106			123
33	101	93	104	96	107	98	110	101					120	110	
34											117	108			124
35	102	95					111	103	114	106			121	122	
36			105	98	108	100					118	110			125
37	103	96													
38			106	99	109	102	112	105	115	108			122		
39											119	112			126
40	104	98	107	101										114	
41					110	104	113	107	116	109					
42	105	99											123		
43			108	102							120	113			127
44					111	105	114	108	117	111					
45	106	100													
46			109	103									124	118	128
47															
48	107	102			112	106	115	109			121	114			129
49			110	104					118	112			125	119	
50	108	103			113	108									

Variations for other communities :Moslems

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(20·50 Years)

-5	5-6		5-7		5-8		5-9		5-10		5-11		6-0		Height Ft. in.
F.	M.	F.	M.	F.	M.	F.	M.	F.	M.	F.	M.	F.	M.	F.	Age Years
103	117	105	121	109	125	113	129	116	133	120	137		141		20
	118	106	122	110					134	121	138		142		21
104					126	114	130	117	135	122	139		143		22
	119	107	123	111	127	115	131	118			140		144		23
105	120	108	124	112	128	116	132	119	136	123	141		145		24
106	121	110	125	113	129	117	133	120	137	124	142		146		25
107							134	122	138	125			147		26
108	122	111	126	114	130	118			139	126	143		148		27
109	123	112	127	115	131	119	135	123			144		149		28
110	124	113	128	117	132	120	136	124	140	128	145		150		29
112	125	114	129	118	133	122	137	125	141	129	146		151		30
	126	115							142	130	147				31
113			130	119	134	123	138	127					152		32
	127	117	131	121	135	124	139	128	143	131	148		153		33
114							140	129	144	133	149		154		34
	128	119	132	122	136	126			145	134	150		155		35
116			133	124	137	128	141	131	146	136	151		156		36
	129	121					142	132	147	137	152		157		37
			134	126	138	129	143	134			153		158		38
									148	139	154		159		39
118							144	135	149	140	155		160		40
	130	122			139	131							161		41
			135	127			145	137	150	141	156		162		42
					140	132			151	143	157		164		43
120	131	124					145	138	152	144	158		165		44
			136	128	141	133	147	139	153	145	159		166		45
121	132	125	137		142	134	148	140			160		167		46
				130	143	136			154	146	161		168		47
			138				149	141	155	147	162		169		48
122	133	126	139	132	144	137	150	142	156	148	163		170		49
	134	127			145	138	151	143	157	149	164		171		50

and Parsees+8 per cent. Christians 43 per cent.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सत्त्व (मानसिकअवस्था)—मनुष्यों का मन भी अनेक प्रकार का होता है। कोई निर्बल, असहनशील। साधारण से कष्ट से शोर मचाने वाले। दूसरे बलवान तथा दृढ़ बलवाले, जो तीव्र कष्ट होने पर भी ऊपर से शांत रहते हैं। इनके विषय में आचार्य चरक ने लिखा है—

"स्वल्प शरीरा ह्यपि ते (प्रवर सत्त्वाः) निजागन्तु निमित्तासु।
महतीष्वपि पीड़ासु-अव्यथा दृश्यन्ते, सत्त्वगुण वैशेष्यात्।
मध्यसत्त्वास्त्वपरान्नात्मन्युपनिधाय - संस्तम्भयन्ति।
आत्मनात्मानं परेश्चापि संस्तभ्यन्ते। हीनसत्त्वास्तु...।
महाशरीराह्यपि ते स्वल्पानामपि वेदनानामसहादृश्यन्ते॥ (च० वि० ८।१२१)

ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधादि भाव भी मन पर प्रभाव डालते हैं। कुछ रोगियों के मन को ही प्रभावित कर उन्हें बिना औषधि भी लाभ पहुँचाया जा सकता है।

प्रकृति---रोगियों का स्वभाव सात प्रकार का होता है, वातिक, पैत्तिक, कफज, द्वन्द्वज तीन तथा सन्निपातज। एक औषधि किसी रोगी को लाभ करती है पर दूसरे को नहीं। यथा कुनीन विषमज्वर (मलेरिया) के कफज प्रकृति या कफ प्रधान व्यक्ति को लाभ करती है पर वातिक को नहीं। कारण प्रकृति भेद ही है।

सात्म्यता-असात्म्यता—बहुधा देखा जाता है कि एक वस्तु बहुत से जनसमुदाय के अनुकूल होने पर भी किन्हीं को अनुकूल नहीं आती। किसी वस्तु को अनुकूल आना 'सात्म्य या उपशय' कहाता है और विपरीत अनुपशय या असात्म्यता[1]। अनेक व्यक्तियों को दूध जैसा पदार्थ भी अनुकूल नहीं पड़ता।

भक्ति (आदत[2]) सहनशीलता[3]—किसी पदार्थ को पर्याप्त समय तक सेवन करने से वह सात्म्य हो जाता है और उसकी आदत (अभ्यास) पड़ जाती है। यथा अफीम, चाय, कहवा आदि। आदत से सहनशीलता उत्पन्न हो जाती है। कुछ लोगों में इस प्रकार की सहनशीलता जन्म से ही होती है। अन्य धीरे-धीरे सेवन कर प्राप्त करते हैं। प्रथम को 'सहज सहनशीलता[4]' और दूसरी को 'उपलब्ध सहनशीलता[5]' कहा जाता है। अफीम के समान बस्ति (एनीमा) के प्रतिदिन प्रयोग से भी उसकी आदत हो जाती है। किन्हीं प्राणियों तथा मनुष्यों की जाति विशेष में भी किसी औषधि विशेष के लिये सहनशीलता उत्पन्न हो जाती है।

उपवास—आमाशय रिक्त हो, तो औषधि का प्रभाव तीव्र और शीघ्र होता है। भोजन के साथ जितनी मात्रा सहज पच जाती है उतनी से खाली पेट होने पर दुष्परिणाम दिखाई देने लगते हैं अतएव आचार्य चक्रपाणिदत्त ने कहा है :—

"वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं।
हन्यात् तदामयमसंशयमाशु चैव॥
तद् बालवृद्धयुवती मृदुभिश्च पीतम्।
ग्लानि परोनयति चाशुबलक्षयं च॥ चक्रदत्त

रोग तथा दोष—अनेक रोगों में कई औषधियों को मात्रा तथा प्रभाव में परिवर्तन हो जाता है। यथा फिरंग रोग में पारद तथा वृक्कशूल, पित्ताशयशूल में अफीम की बड़ी मात्रा भी सहन हो जाती है। इसी प्रकार कफज रोगों में कस्तूरी आदि उष्ण औषधियों की मात्रा बढ़ानी पड़ती है और पित्त के रोगों में कम।

देश-काल, ऋतु और जलवायु :—शीतकाल में शीत देशों में औषधि का प्रभाव उतना शीघ्र नहीं होता जितना उष्ण काल और उष्ण देशों में। निद्राजनक और विरेचक औषधियां थोड़ी मात्रा में भी उष्णकाल और गरम देशों में शीत देशों की अपेक्षा अधिक प्रभाव दिखाती हैं। शीत देशों के निवासी अधिक औषध-मात्रा सहन कर सकते हैं। इसी प्रकार आनूप देशों (बंगाल-आसाम) की अपेक्षा जांगल प्रदेशों (राजस्थान-सौराष्ट्र) में रोग तथा चिकित्सादि सभी में कुछ-न-कुछ भिन्नता पाई जाती है।

औषधि सेवन के मार्ग—देने की विधियों का भी प्रभाव पड़ता है। इनका वर्णन अन्यत्र किया गया है।

---

1. Idiosyncrasy 2. Habit 3. Tolerance
4. Natural 5. Acquired Toleranee

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

औषधि देने का समय—समय उसके प्रभाव पर पर्याप्त असर डालता है। प्रातःकाल रसायन औषधियों का सेवन अत्यन्त लाभकारक है। विशेषकर क्षीणता उत्पादक रोगों में। स्वापजनन औषधियाँ रात में सोते समय देने से लाभ करती हैं। अनेक औषधियाँ भोजन से पहले या मिलाकर (यथा हिंग्वष्टकचूर्ण) अथवा भोजनोत्तर दी जाती हैं, यथा आसवारिष्ट। कितनी बार औषधि दी जाती है इस बात का भी प्रभाव पड़ता है। कोई औषधि दिन में एक बार ही दी जाती है अन्य दिन में कई बार।

शरीर का ताप—यद्यपि साधारणतः इसका औषधि प्रभाव पर कम ही असर पड़ता है तथापि कभी-कभी यह भी उनके प्रभावों में परिवर्तन उत्पन्न कर देता है यथा अत्यन्त तीव्र ज्वरों में मृत्युंजयादि रस कभी-कभी ताप को कम नहीं करते।

साधारणतः स्वस्थ व्यक्ति का ताप जिह्वा के नीचे मुख में, गुदा में और योनि में तापमापक से मापने से ९८·४° फ (फोरेनहाईट) पाया जाता है। कक्षा (बगल) में १ डिग्री कम होता है। बच्चों में जलवायु-ऋतु के अनुसार कुछ बदलता रहता है। वृद्धों में भी यही बात है। साधारणतः ९७·३°फ से कम और ९८·४° से बढ़ा हुआ (जो निरन्तर रहे) ताप रोगों का बोधक है। भारतीयों में ताप यूरोपियनों की अपेक्षा एकाध डिग्री कम होता है। गुदा में लिया गया ताप सर्वाधिक प्रामाणिक है। यह ९७·२° से ९९·५° तक पाया जाता है। प्रातःकाल ताप न्यून तथा सायंकाल सर्वाधिक होता है। मानपरिभाषा में तुलनात्मक तापमान दिया गया है।

योजना—औषध-योजना निम्न बातों को ध्यान में रखकर की जाती है—(१) एक समान औषधियों को मिलाकर गुण बढ़ाने के लिए। यथा मधुर विरेचन चूर्ण में (२) प्रधान औषधि के दुर्गुणों को दूर करने के लिये। यथा इन्द्रायणादि रेचक पदार्थों में; उदर में ऐंठन उत्पन्न करने के दोष को दूर करने के लिए सोंठ, अजवायन, जीरक सौंफ आदि को मिलाया जाता है। (३) औषधि के तीव्र प्रभाव या तीक्ष्णता को कम करने के लिए भी विरोधी गुण वाली औषधियाँ मिलाई जाती हैं। यथा मृत्युञ्जय रसादि में टंकण (सुहागा) को वत्सनाभ की तीव्रता कम करने के लिए मिलाते हैं। गुणवर्धक योजना को 'सहायक' (Synergism) और दूसरी को विरोधी (Antagonism) योजना कहते हैं।

५—औषधियों की कार्य-प्रणाली

(१) **भौतिक** परिवर्तनों द्वारा कुछ औषधियाँ शरीर पर अपरिवर्तित रूप में ही अपना प्रभाव डालती हैं। यह स्थानीय वा पाकान्त किसी भी प्रकार शरीर पर प्रभाव नहीं डालतीं। किन्तु केवल यान्त्रिक रूप में प्राथमिक प्रभाव उत्पन्न करती हैं। यथा—तैल, गोन्द, पिच्छिल पदार्थ (ईसबगोल, काला) और अवचूर्णन, चूर्ण आदि। अन्तः प्रयोग में ईसबगोल, एरण्ड तैल आदि। ये आन्त्रों में जाकर उसे स्निग्ध करते हैं और इस प्रकार वहाँ के पदार्थ को आसानी से बाहर निकालते हैं तथा कला में कुछ भी परिवर्तन नहीं लाते। लवण विलयन भी इसी प्रकार भौतिक रूप में कार्य करते हैं। यह विलयन द्वारा कार्य करते हैं। कार्बन या खटिका आदि पदार्थ अपनी आचूषण द्वारा क्रिया करते हैं। आचूषण का तात्पर्य है कि ये औषधियाँ जिस वस्तु के संसर्ग में आती हैं, उनके साथ भौतिक रूप में मिलती हैं या मिश्रण तैयार करती हैं। यथा कोयला गैसों को शोषण कर लेता है और खटिका जीवाणु और अन्य विषों का शोषण करती है। इस प्रकार आचूषण वा शोषण से यह विषों का शरीर में लीन होने से बचाते हैं। ऐसे प्रभाव औषधि के कुछ विशिष्ट गुणों के कारण होते हैं।

कुछ विशेष पदार्थ केवल अपनी उपस्थिति से ही प्रभाव उत्पन्न करते हैं। यथा—मकरध्वज विबन्ध में तथा ताम्र की उपस्थिति में लोह का अच्छी तरह आत्मसात् होना। इन्हें 'आवेजनक' (उत्तेजक) औषधियाँ कहते हैं।

(२) **रासायनिक**

(१) **संयोजक**—इसमें औषधियाँ शरीर के किसी विशिष्ट धातु के साथ अपनी रासायनिक प्रीति के कारण संयुक्त हो जाती हैं। यथा-मद्य अपरिवर्तित रूप में रक्त से गुजर कर मस्तिष्क के मस्तुलुंग में पहुँच जाता है और मुख्य नाड़ीमण्डल को प्रभावित करता है। यह इसका प्राथमिक प्रभाव है।

(२) **संयोग**—अन्य द्रव्यों के साथ मिलकर नये द्रव्य बनाते हैं यथा क्षार अम्लनाशक है। जब आमाशय में

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अम्ल अधिक हो, तो मधुरक्षार उसे कम करता है, क्योंकि वह अन्य द्रव्यों के साथ मिलकर नये योग बना कर अम्लता को निष्क्रिय कर देता है। यह पाकीय प्रभाव है।

रासायनिक प्रभाव द्रव्यों के रासायनिक संघटन पर निर्भर है। आण्विक संघटन पर क्रिया निर्भर है। यथा मुलेठी, द्राक्षा, दन्ती, चित्रक, घी, दूध, गेहूँ, जौ आदि पदार्थों का संघटन विकृतिविषमसमवेत होता है। यह दो प्रकार का होता है—(१) अणुओं का भार तथा रासायनिक संघटन एक होता है। किन्तु उसकी कर्मव्यवस्था में भेद होता है। अतएव उनके गुणों में भेद हो जाता है यद्यपि घटनासूत्र एक ही है। इससे विपरीत द्रव्यों को प्रकृति समसमवेत या समान प्रत्यारब्ध कहा जाता है। इनमें संगठन, भार तथा व्यवस्था एक जैसी होती है। ऐसे द्रव्य रस, वीर्य, विपाक के अनुकूल ही प्रभाव करते हैं।

(३) प्रभाव द्वारा—एक औषधि समस्त शरीर पर वा किसी एक अवयव पर विशेष प्रभाव डालती है। यह क्यों ऐसा करती है इसको अभी तक ठीक प्रकार से नहीं बताया जाता है। **"प्रभावों अचिन्त्य उच्यते"** ठीक ही है। शायद भविष्य में इस रहस्य का भेद कुछ खुल सके। प्रायः क्षारीय सत्व, कुचला सत्व आदि इस प्रकार अपने कार्य करते हैं। कुछ वैज्ञानिकों का भौतिक तथा विद्युत् शास्त्र के आधार पर इसका समाधान करने का प्रयत्न शैशवावस्था में है।

(४) (घटक) आण्विक विच्छेदन द्वारा—यह क्रिया जड़ पदार्थों पर की जाती है। पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि वनस्पतियां चेतन हैं। अतः उनको जड़ पदार्थों में नहीं गिनना चाहिए। जड़ पदार्थों से यहाँ पार्थिव वा खनिज पदार्थ ही लेना चाहिए।

प्रत्येक पदार्थ के अनेक घटक परमाणुओं के पृथक से बनते हैं। यथा—समुद्रलवण क्षारातुअग्नि+जल नीरेय के परमाणुओं से बना है। शुष्कवस्था में इनमें विद्यमान विद्युत् तटस्थ रहती है, किन्तु जब विलयन बनाया जाता है, तो इनके यह विद्युतयुक्त परमाणु, धन विद्युत् परमाणु तथा ऋणविद्युत परमाणु में विभक्त हो जाते हैं। यह क्रिया परमाणु विच्छेद कहलाती हैं।

यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि सब जड़ पदार्थों पर यह क्रिया नहीं हो सकती है। यथा—सुरा, शर्करा, जीवन आदि के परमाणु इस प्रकार विभक्त नहीं होते।

उक्त वैद्युतीय परमाणु सम्बन्धी ज्ञान औषधशास्त्र में अत्यन्त महत्व का है। जब यह परमाणु विभाजित नहीं होता, तो उस समय औषधि निष्क्रिय रहती है। ये विच्छिन्न परमाणु समूह भी विशिष्ट अंगों पर विशिष्ट क्रिया करते हैं सर्वसाधारण पर नहीं।

मांसपेशियों पर विशेष प्रभाव करते हैं। इसके अतिरिक्त इनका प्रभाव इनकी धातुओं में प्रवेश-क्षमता पर निर्भर है। इसे "विलयनक्षमता" कहा जाता है। अतः परमाणु विच्छेद विशिष्ट प्रभाव तथा विलयनक्षमता पर इनका प्रभाव निर्भर है।

जब हम भस्म बनाते हैं, तो जड़ पदार्थों के अणुओं को सेन्द्रिय द्रव्यों की सहायता से विच्छिन्न करते हैं तथा उनमें विलयन क्षमता उत्पन्न करते हैं एवं परमाणु विच्छेद उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार यह औषधि शरीर में अपना प्रभाव उत्पन्न करती है। इस प्रकार ज़ब हम कहते हैं कि मुक्ताभस्म शीत वीर्य है तथा ताम्र भस्म उष्णवीर्य है, तो इसका तात्पर्य यह होता है कि मुक्ता को भस्म करते हुये उसके परमाणु समूह का एक विशिष्ट विच्छेद होता है। जब हम भस्म का प्रयोग करते हैं और उसके परमाणु रुधिर में जाकर विलयन बनाते हैं; उस समय परमाणुओं में दोनों प्रकार के वैद्युताणु ऋणाणु तथा धनाणु विभक्त होकर शरीर-कोषाणुओं पर एक विशिष्ट क्रिया करते हैं। इस क्रिया या प्रभाव को देखकर ही उस विर्य एवं विपाक का निर्णय किया जाता है। इसका विस्तृत विवेचन रसवीर्य-विपाक एवं प्रभाव के प्रकरण में किया गया है।

इस विशिष्ट क्रिया का नाम शीतक्रिया है। इस क्रियाशक्ति का आधार उस परमाणु पुञ्ज में विद्यमान विशिष्ट शक्ति (वीर्य) है अतः यह शीतवीर्य है।

यह बात स्मरणीय है कि औषधियों के प्रभाव को उत्पन्न करने के लिए देह की धातुओं का सहयोग आवश्यक है। बिना इसके यह अधिक प्रभावशाली सिद्ध नहीं होती। प्रयोगशाला में अनेक औषधियां कृमिनाशक नहीं पायी गयीं;

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

किन्तु शरीर में जाकर वे अत्यन्त प्रभावशाली हो चुकी हैं। कुनीन शरीर के बाहर प्रयोगशाला में इतनी तीव्र कृमिनाशक नहीं हैं, जितनी शरीर में है। रसायनशाला या प्रयोगशाला में ही प्रत्येक बात प्रत्यक्ष नहीं देखी जा सकती।

आयुर्वेदिक औषधियों पर जो यह आक्षेप किया जाता है कि वह प्रयोगशाला में प्रत्यक्ष प्रयोग नहीं दिखाती, बहुत अंशों तक दूर हो जाता है। शरीर के कोषाणुओं का सहयोग मिलने से वह रोग नाश करती है, प्रयोगशाला में नहीं। क्योंकि शरीर अपनी आवश्यकता के अनुसार उनसे कार्य लेता है। प्रयोगशाला में ऐसी कोई शक्ति नहीं, जो उनमें अभीष्ट परिवर्तन उत्पन्न कर सके।

औषधियों का आचूषण एवं प्रसार

स्थानीय या सन्निकृष्ट प्रभाव बिना आचूषण के होता है। किन्तु विप्रकृष्ट या विशिष्ट प्रभाव इसके बिना नहीं हो सकता। एक ही औषधि के सन्निकृष्ट तथा विप्रकृष्ट प्रभाव हो सकते हैं—जैसे शिलाजतु। चरक के अनुसार औषध द्रव्य दो प्रकार के होते हैं :—

अन्तःपरिमार्जन[1]—जो देह में जाकर रक्त में मिलकर रोगों का नाश करते हैं। इनका प्रभाव स्थानिक तथा सांस्थानिक दोनों प्रकार का हो सकता है। मुख आदि द्वारा ये शरीर में प्रविष्ट किये जाते हैं।

बहिःपरिमार्जन[2]—इनका प्रभाव प्रायः स्थानिक होता है। शरीर में इनका आचूषण नहीं के बराबर होता हैं। यथा अभ्यंग, स्वेद, लेप आदि त्वचा पर तथा गण्डूष, नस्य, आश्च्योतनादि का श्लेष्मिक कला द्वारा होता है। त्वचा बाहर के स्तर पर तथा मुख और आमाशय की कला पर बहिः परिमार्जन द्रव्यों की क्रिया होती है।

अन्तःपरिमार्जन औषधियों के मार्ग निम्नलिखित हैं :—

महास्रोतस्—(मुख से गुदा तक का मार्ग)--आचार्य चरक ने इसे कोष्ठ (**कोष्ठः पुनरुच्यते महास्रोत च० सू०**) भी कहा है।

मुख द्वारा दी जाने वाली औषधियों के स्थानिक और सांस्थानिक प्रभाव दोनों ही हो सकते हैं। गण्डूष, (कुल्ला) लेप, प्रदेह, सेक तथा आचूष्य वटियों (एलादिवटी) का प्रभाव मुख या गले की श्लेष्मिक कला पर होता है अतः वह 'स्थानीय प्रभाव' है। तिक्त और मधुर औषधियाँ मुख में रहते हुए भी प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा लाला (लार) स्राव उत्पन्न कराती हैं। यह सांस्थानिक या विप्रकृष्ट प्रभाव है।

आमाशय और आँतों में औषध स्थानिक, प्रतिसंक्रमित या रक्त में मिलने के पश्चात सांस्थानिक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए दी जाती है। आमाशय की अपेक्षा छोटी आँतों से आचूषण अधिक मात्रा में होता है। अम्ल क्षार या वामक पदार्थों की आमाशय की कला पर स्थानीय प्रभाव होता है। वामक पदार्थ प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा भी वमन कराते हैं। रेचक पदार्थ अन्त्रों पर स्थानीय प्रभाव दिखाते हैं।

इस मार्ग का प्रधान लाभ यह है कि औषधि आँतों में से लीन होकर रक्त में पहुँच जाती है। यह आचूषण दो बातों पर निर्भर है। (१) औषधि की घुलनशीलता (२) औषधि का स्वरूप। यदि तरल रूप में औषधि दी जाय यथा काढ़ा, आसवादि, तो वे शीघ्र ही आचूषित हो जाती हैं किन्तु गोलियाँ देर में।

गुदा तथा मूत्र मार्ग या योनि द्वारा---अनेक अवस्थाओं में इन मार्गों द्वारा भी औषधियाँ दी जाती हैं। न केवल आँतों को मलरहित करने के लिए अपितु कई रोगों को शान्त करने के लिये गुदा मार्ग से बस्ति (एनीमा) द्वारा औषधियाँ देनी पड़ती हैं, विशेषकर जब आमाशय, अन्त्रों को औषधियों के प्रभाव से बचाना हो। इस मार्ग का एक लाभ यह भी है कि बड़ी आँतों में रक्तवाहिनियाँ बहुत हैं और उनसे जहाँ औषधि का आचूषण अच्छी तरह से होता है, वहाँ यकृत् में न जाने के कारण यकृत् द्वारा उनके विनाश की आशंका भी नहीं रहती। मूत्रमार्ग या योनिमार्ग द्वारा औषधि 'उत्तर-बस्ति' से दी जाती है और गुदामार्ग में 'बस्ति' यन्त्र द्वारा।

---

1. Internal medicine
2. External medicine

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शाखाओं द्वारा-शाखा रक्तादयो धातवस्त्वक्च (चरक सू०)—त्वचा तथा रसरक्त मांसादि धातुओं द्वारा शरीर में प्रविष्ट की जाती हैं। त्वचा मार्ग द्वारा प्रयुक्त होने वाली बहिःपरिमार्जन औषधियों का उल्लेख तो पहले हो चुका है, अन्त में परिमार्जनों का उपयोग भी इस मार्ग द्वारा किया जाता है। विभिन्न धातुओं में भी सीधी औषधियाँ प्रविष्ट की जाती हैं।

आजकल सूचीवेध (Injection) द्वारा औषधि देना एक नयी प्रथा या आविष्कार समझा जाता है और उसका प्रचार भी पर्याप्त है। प्राचीन काल में भी सीधे धातुओं में ही औषधि प्रवेश करने का पता था अतएव 'सूचीवेध रसादि' औषधियों का उल्लेख और त्वचा में काक पद बनाकर औषधि देने का उल्लेख है। न केवल इतना ही, अपितु बौद्ध साहित्य में तो सूचीवेधन द्वारा औषधि देने का स्पष्ट ही विधान है।

"कश्चित् पेषयित्वाददात्।
कश्चित् शिरां वेधयित्वा शलाकया दद्यात्॥—(सद्धर्मपुण्डरीक)

किन्तु इस पद्धति का शायद उस समय अधिक प्रचलन न रहा हो और आजकल जैसा कौशल (Technique) विकसित न हुआ हो। सूचीवेधों का उपयोग आयुर्वेद के विरुद्ध नहीं है। अतः उनका संक्षेप में निर्देश किया जाता है।

(१) **त्वचान्ततः सूचीवेध** (Intradermal or Intracutaneous)—त्वचा के नीचे ही सूचीवेधन द्वारा औषधि दी जाती है। चेचक आदि का टीका लगाना (Inoculation) इसी के अन्तर्गत है।

(२) **त्वचाधः** (subcutaneous)—इस प्रकार में त्वचा के नीचे की धातुओं में औषधि प्रविष्ट की जाती है। इस प्रकार दी गई औषधि लसीका ग्रन्थियों तथा रक्त वाहिनियों द्वारा चूस ली जाती है।

मांसान्तः (Intramascular Injections)—त्वचा के नीचे की गहरी धातुओं में मांस प्रधान है। अतः जब बड़ी मात्रा में औषधि देनी हो या वह अविलेय हो और उसका प्रभाव धीरे-धीरे फैलाने का उद्देश्य हो, तो मांस (स्फिक् प्रदेश-चूतड़) में सूचीवेध द्वारा औषधि दी जाती हैं। मांस में सूचीवेध करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कोई वातनाड़ी न छिद जाए अन्यथा भयंकर उपद्रव होने की सम्भावना रहती है।

शिरान्तः सूचीवेध (Intravenous Injections)—जब औषधि का प्रभाव अत्यन्त शीघ्र आवश्यक हो, तो इस मार्ग द्वारा सूचीवेध दिया जाता है, क्योंकि इस प्रकार औषधि सीधे रक्त में पहुँच जाती है। आत्ययिक अवस्थाओं (Emergency Conditions) में इस मार्ग का प्रयोग किया जाता है। शिराओं द्वारा सूचीवेध देने के लिए औषधि पूर्ण रूप से विलेय होनी चाहिए।

नेत्र—आश्च्योतन सुरमा आदि कुछ औषधियाँ जिनका नेत्रपर प्रभाव अभीष्ट हो, नेत्र में डाली जाती हैं। ये थोड़ी बहुत मात्रा में नेत्र की श्लैष्मिक कला में से छन कर नेत्र में चली जाती हैं। इनका प्रभाव प्रायः स्थानिक होता है।

कर्ण—कई तैलादि कान में भी डाले जाते हैं।

सुषुम्नान्तः सूची (Intcrspinal Injection)—पृष्ठदेश में, कटिप्रदेश में, रीढ़ की कशेरुकाओं के मध्य में सीधे सुषुम्ना में भी विशेष अवस्थाओं में औषधि दी जाती है।

हृदयान्तः सूचीवेध (intracordiac Injection)—सहसा हृदय की गति बन्द हो जाने पर सीधे हृदय में ही सूचीवेध द्वारा औषधि प्रविष्ट की जाती है।

श्वास मार्ग—महास्रोतस् या आहारपथ के पश्चात् श्वास-मार्ग का महत्व है। नासिका तथा फेफड़ों में स्थानीय प्रभाव को उत्पन्न करने के लिए या प्रति संक्रमित क्रिया द्वारा हृदय और श्वास की गति बढ़ाने के लिए अथवा आशोषण के पश्चात् सांस्थानिक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए इस मार्ग से औषधियां दी जाती हैं। नस्य, धूम्रपान, बाष्पग्रहण, लेपादि रूपों में नासिका, श्वास-प्रणाली आदि द्वारा भी औषधियाँ फुफ्फुसों मे प्रविष्ट की जाती हैं। रोग को शीघ्र नष्ट करने के लिए रोगस्थान को दृष्टि में रखते हुये औषध मार्ग का निश्चय किया जाता है। यथा :—

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

"आस्यादामयस्थान्हि रोगान्नस्तः शिरोगतान् ।
गुदात्पक्वाशयस्थांश्च हन्त्याशुदत्तमौषधम ॥ (च. चि ३०)

बहिःपरिमार्जनीय—ओषधियों के निम्न प्रकार हैं। ये प्रायः शल्यशास्त्र में काम आती है – (१) दारुण, (२) प्रपीड़न, (३) रोपण, (४) शोधन, (५) पाचन, (६) उत्सादन, (७) अवसादन, (८) विम्लापन, (९) अवसेचन, (१०) सन्धान, (११) निर्वापण, (१२) क्षारकर्म, (१३) प्रलेप, (१४) प्रदेह, (१५) आलेप, (१६) उपनाह ।

औषधि-सेवन के प्रकार

देह-रोग और उसके अधिष्ठान को देखते हुए जिस प्रकार विविध कल्पनाओं द्वारा औषधि का रूप बदला जाता है उसी प्रकार सेवन-विधियाँ भी परिवर्तित होती रहती हैं। स्थान-भेद से ये अनेक हैं। संक्षेप में यहाँ उल्लेख किया गया है :—

(१) **मुख**—गण्डूष (कुल्ली करना) कवलग्रहण, प्रतिसारण ।

(२) **नासिका**—नस्य आश्च्योतन, धूम्रपान, वाष्पग्रहण ।

(३) **नेत्र**—सेंक, पिण्डिका, आश्च्योतन, विड़ालक अंजन, तर्पण ।

(४) **शिर**—शिरो बस्ति ।

(५) **अन्य**—बस्तिकर्म-अनुवासन, निरुहणादि वर्तियाँ ।

(६) **प्रजनन अंग**—वर्त्तियां, उत्तर बस्ति, पिचुधारण ।

(७) **समग्र शरीर**—पंचकर्म—स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, बस्ति, अभ्यंग, लेपन, धूपन, स्वेदन, विविध स्वेद-सेंक तथा स्नानादि इसके ही अन्तर्गत आते हैं।

(८) **शल्यशास्त्र में बाह्य प्रयोग में बर्ते जाने वाले प्रयोग**—दारण, पीड़न, रोपण, शोधन, पाचन, उत्सादन, अवसादन, विम्लापन, अवसेचन, संधान, निर्वापण, क्षारकर्म ।

(९) प्रलेप, प्रदेह, आलेप, उपनाह ।

औषधियाँ प्राय: मुखमार्ग द्वारा ही दी जाती हैं। यद्यपि आजकल सूचीवेधन द्वारा औषध-प्रयोग का प्रसार भी पर्याप्त रूपेण हो रहा है। तथापि मुख-मार्ग को मुख्यता अभी तक स्थिर है। मुखमार्ग द्वारा देने से औषधि पर आहार पथ के पाचक रसों का प्रभाव पड़ता है और औषधि परिवर्तित रूप में आचूषित होती है। यह क्रिया अधिकतर छोटी आँतों में होती है। आमाशय में अत्यल्प। मलमार्ग द्वारा भी पर्याप्त मात्रा में आचूषण होता है। यदि कुचलासत्व को आमाशय में रखा जाए, तो आधे घन्टे में, क्षुद्रान्त्र में २० मिनट में, गले में ५० मिनट में, वृहदान्त्र में १४ मिनट में तथा गुदा में ७ मिनट में यह अपना प्रभाव दिखाता है। सुरा के विषय में यह स्मरण रखना चाहिए कि यह स्वयं तो शीघ्र आचूषित नहीं होती, किन्तु उसमें घुली हुई वस्तु का आचूषण शीघ्र होता है। क्योंकि सुरा क्षोभक है और इस कारण यन्त्रों आदि में क्षोभ को उत्पन्न करके रुधिराभिसरण बढ़ाती है, अतः आचूषण शीघ्र होता है।

यह आचूषण खाली पेट में शीघ्र होता है। अतएव प्रातःकाल के समय औषधि के लिये उत्तम समय होता है। भोजन के साथ खाई औषधि देर में आचूषित होती है।

विशेष विचारणीय बात यह है कि आहार-पथ की अन्तःकला किसी द्रव्य को ग्रहण करती है, किन्तु अन्य को नहीं। इसका कारण अभी तक समझ में नहीं आता। शायद किन्हीं विशिष्ट द्रव्यों की ओर कलाकोषाणुओं का विशेष आकर्षण इसका कारण हो।

दूसरी विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि केवल विलेय पदार्थ ही आहारपथ द्वारा आचूषित होते हैं। अनेक अविलय पदार्थ महास्रोतस् के पाचक रसों द्वारा प्रभावित होते हैं और उनमें रासायनिक परिवर्तन होते हैं तथा वह विलेय (घुलनशील) बन जाते हैं। भस्म आदि भी तभी प्रभाव करती हैं जब वह शरीर में घुल जाती हैं अन्यथा नहीं। उड़नशील पदार्थ यथा—कपूर, दालचीनी का तैल आदि भी शीघ्र ही आचूषित हो जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विघुलनशील पदार्थ भी यदि खड़िया, गोंद, राल, सागों के तन्तु आदि अविलय पदार्थों में मिल जाते हैं, तो उनका आचूषण भी मन्द होता है। अतः सुरा में घुले पदार्थ शीघ्र आचूषित होते हैं। अतएव यदि आचूषण में शीघ्रता की आवश्यकता हो, तो आसव, अरिष्ट, वारुणीसार, तरल सार आदि का प्रयोग करना चाहिए। यदि स्थानीय प्रभाव अभीष्ट हो, तो बटी, गुटिका, चूर्ण, गुग्गुलु तथा पिच्छिल द्रव्ययुक्त औषधियों का प्रयोग करना चाहिए।

आचूषण की तीव्रता या मन्दता रुधिर तथा लसिका के अभिसरण पर निर्भर है। जितना ही तीव्र तथा अधिक इन दोनों का दौरा होगा, उतना ही आचूषण शीघ्र होगा। हृदयव्याधियों में कई बार रक्ताभिसरण न्यून हो जाता है। अतः औषधि का आचूषण ठीक न होने में उसकी क्रिया भी मन्द होती है।

आचूषण की तीव्रता क्रमशः सिरान्तः, मांसान्तः, त्वचांतः; आहारपथ तथा त्वचा में कम हो जाती है। अर्थात् सिरान्तः मार्ग द्वारा तीव्रतम आचूषण और त्वचा द्वारा सबसे मन्द आचूषण होता है। शिशुओं की त्वचा में शोषण शक्ति प्रौढ़ व्यक्तियों से अधिक होती है और जहाँ पर त्वचा जितनी पतली होगी उतना ही आचूषण शीघ्र होगा।

पाठकों को यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि कुछ औषधियाँ उस समय ही कार्य करती हैं, जब उनका आचूषण नहीं होता। आचूषण होने पर वह कार्य नहीं करतीं। विरेचन द्रव्यों को उदाहरण के तौर पर उपस्थित किया जा सकता है। इसका कारण विरेचन द्रव्यों के प्रकरण में पढ़ना चाहिए।

औषध प्रसार

इसके सम्बन्ध में कोई एक नियम नहीं बताया जा सकता है। विशिष्ट औषधि किन्हीं विशिष्ट कोषाणुओं में इकट्ठा होती है तथा उन पर अपना प्रभाव करती है। इसका कारण उन-उन कोषाणुओं की प्रवेश-क्षमता तथा परस्पर भौतिक एवं रासायनिक आकर्षण है। यथा-पार्थिव-औषध अस्थि (हड्डी) में एकत्र हो जाते हैं। पारद, सोमल, लोहभस्म आदि भस्में अनेक रूपों में यकृत् तथा प्लीहा में। कुछ औषधियाँ तत्काल अपना प्रभाव दिखाती हैं, अन्य किन्हीं विशिष्ट अंगों में अहानिकर अवस्था में एकत्र हो जाती हैं तथा कालान्तर में प्रभाव करती हैं।

(१) **उक्त में औषधियों का अवस्थान**—किसी भी मार्ग द्वारा औषधि दी जाए, अन्ततः वह रक्त में घुल जाती है; किन्तु देर तक रक्त में नहीं रहती, अपितु कुछ ही समय पश्चात् धातुओं में प्रविष्ट हो जाती है। विशेष औषधि विशिष्ट धातुओं में प्रविष्ट होती है। यथा अर्जुन हृदय की धातुओं में। स्निग्ध और पिच्छिल भेषज की अपेक्षा विकासी औषधि शीघ्र प्रवेशक्षम होती है। धातुओं के अन्दर आचूषण अत्यन्त शीघ्र होता है। औषधि प्रकृति तथा औषधि-संस्थान पर भी धात्वन्तरिक आचूषण निर्भर रहता है। संखिया (सोमल) का विष नाना शिरान्तः सूचीवेध द्वारा देने से रक्त में से ३० क्षण में अदृश्य हो जाता है।

आशोषण-आसक्ति[1]—इसका तात्पर्य यह है कि कुछ पदार्थों में एक विशेष शक्ति होती है, जिससे वह अपने पृष्ठ पर वायव्य, तरल वा घन पदार्थों को विलीन वा अर्ध विलीन अवस्था में चिपकाये रहते हैं। इसे रासायनिक संयोग एवं भौतिक मिश्रण की मध्यावस्था कह सकते हैं। यथा खटिका अन्त्रों में जाकर वहाँ कीटाणु वा विषैले स्रावों को अपने में चूसती है और इस प्रकार क्षोभ उत्पन्न करती है तथा विष को रक्त में जाने से रोकती है। इसलिए अतिसार में उपयोगी है। इसी प्रकार अन्य औषधियाँ काम करती हैं।

निष्क्रमण (उत्सर्ग)

शरीर में अपना कार्य करने के पश्चात् औषधियाँ बाहर निकल जाती हैं। मुख्यतया मूत्रमार्ग तथा मलमार्ग (वृक्क, अन्त्र) तथा उड़नशील औषधियों के लिए श्वासमार्ग, फुफ्फुस, बाहर निकलने के मार्ग हैं। बहिर्निष्कासन की मात्रा रुधिराभिसरण पर निर्भर है। यदि रक्त का भ्रमण अधिक तीव्र होगा, तो औषधि का निर्गमन भी तीव्र होगा, अन्यथा मन्द होगा। विभिन्न मार्गों का प्राधान्य विभिन्न औषधियों की दृष्टि से निर्णय किया जाता है।

कुछ औषधियाँ शरीर में परिवर्तित होती हैं और नये योग बनाती हैं। वह परिवर्तित रूप में बाहर निकलती हैं। अन्य अपरिवर्तित रूप में।

1. Chenical affinity

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वेदग्रन्थियों और लालाग्रन्थियों से भी बहिर्निष्क्रमण होता है, किन्तु अत्यल्प । बहिर्निष्क्रमण प्रायः २० मिनट में प्रारम्भ हो जाता है और घण्टों तक जारी रहता है ।

यह बात स्मरणीय है कि औषधियाँ न केवल रोगी की धातुओं पर, अपितु गर्भ एवं बच्चे की धातुओं में भी प्रविष्ट हो जाती हैं । सब तो नहीं, किन्तु अनेक ऐसा करती हैं जैसे—सुरा आदि विकासी वस्तुएँ । अतः चिकित्सा में इस बात पर ध्यान रखना चाहिए ।

उक्त वर्णन से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि द्रव्यों का प्रभाव कहाँ पर, किस प्रकार तथा किन कारणों से, कितने प्रकार का होता है तथा किन कारणों से किन अवस्थाओं में उसमें कुछ परिवर्तन होता है । द्रव्य देह में पहुँचने के पश्चात् किन अवस्थाओं से गुजरता है और रस-वीर्य-विपाकादि का कार्यकाल क्या है, इस पर भी संक्षेप में प्रसंगवश प्रभाव डाला गया है ।

उक्त ज्ञान के आधार पर अब हमें रस-वीर्य-विपाक आदि को समझने में अधिक सुविधा होगी । रसादि के वर्णन से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि द्रव्य-गुण-कर्म का और इन तीनों के साथ रस-वीर्य-विपाक का क्या सम्बन्ध है ।

वस्तुतः द्रव्य का जो कुछ भी प्रभाव शरीर पर होता है, वह द्रव्य का ही होता है और उसका वर्णन औपाधिक रूप से रसादि द्वारा किया जाता है । द्रव्य में प्रभाव उसके गुणों के कारण हैं । यह गुण, विशेष द्रव्य की कार्यकारिणी शक्ति के ही नाम विशेष हैं । इस शक्ति (गुणों) के कारण ही द्रव्य में कर्तृत्व है और वह कर्तृत्व कर्म (क्रिया) के रूप में फलीभूत होता है । द्रव्य की कर्तृत्व शक्ति जब देह-धातुओं के सम्पर्क में आती है, तो देह-धातुओं में विशेष प्रकार की क्रिया होती है और उसका फल शरीर पर देखने में आता है । उदाहरणार्थ—मधुर स्निग्धादि गुण युक्त पदार्थों के सेवन से देह-धातुओं की वृद्धि और पुष्टि होती है । अर्थात् इन द्रव्यों से शरीर की धातुओं में सात्म्यीकरण रूपी क्रिया होती है और फलस्वरूप देहधातु बढ़ जाती है । यहाँ पर द्रव्य की शक्ति (गुण) करण है, जो देह-धातुवृद्धि रूपी कर्म का कारण है । रस-वीर्य-विपाक और प्रभाव संज्ञाओं द्वारा इस प्रभाव का वर्णन किया जाता है । शरीर में जो भी क्रिया या उसका फल होता है, यह तो तद् द्रव्यांश पर ही निर्भर है । रसादि के अपने गुण कुछ नहीं हैं और न ही उन पर क्रिया होती है । हमारे उक्त मत की पुष्टि, आचार्य श्री शिवदास सेन के निम्न उद्धरणों से, होती है :—

"वीर्यं शक्तिः, सा च पृथिव्यादीनां भूतानां यः सारभागस्तदतिशयरूपाबोध्या; सा च द्विविधा, चिन्त्याचिन्त्य—क्रिया हेतुत्वेन; तत्र चिन्त्यक्रिया हेतुर्या द्रव्यरसादीनां स्व-स्व कर्मणि स्वभावसिद्धा शक्तिः, अचिन्त्यक्रियाहेतुश्च प्रभावापरपर्याया द्रव्याणां रसाद्यनुरूपकार्य कारण शक्तिः" "इह यद्यप्याश्रयत्वेन द्रव्यमेव प्रधानं, तथापि द्रव्यस्य स्वकार्य जनकत्वं प्रायो रसादिद्वारकमेव", "यद्यपि गुणानां निर्गुणत्वेन रसेषु स्निग्धादयोगुणा न सन्त्येव, तथाप्युपचाराद्द्रव्यगुण एव रसेषु...निर्दिश्यन्ते । 'तदुक्तम्—"गुर्वादयो गुणा द्रव्ये पृथिव्यादौ रसाश्रये । रसेषु व्यपदिश्यन्ते साहचर्योपचारतः । (द्रव्यगुणसंग्रह टीका)"

पृथिव्यादौ-पृथिव्यादि महाभूतारब्धे द्रव्ये रसाश्रये गुर्वादयो गुणाः परमार्थतः आश्रिता न तु रसेषु मधुरादिषु । यत्तु रसेषु व्यपदिश्यन्ते तत्साहचर्योपचारतः··· यस्मिन्नेव गुड़ादौ द्रव्ये मधुरोरस आश्रितस्तस्मिन्नेव गुरुर्गुण आश्रित इति मधुर रस गुरुगुणयोः सहचर भावः ।···नतु परमार्थतो रसेषु गुर्वादयः सन्ति ॥ —अरुणदत्त

उक्त उद्धरण की विस्तृत व्याख्या की आवश्यकता नहीं है । विज्ञ वैद्य इसे स्वयं समझ सकते हैं । संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त है कि गुरु आदि गुण द्रव्यों में ही रहते हैं, रसादि में नहीं । द्रव्य में महाभूतों का सार भाग ही द्रव्य की शक्ति है । वही शक्ति द्रव्य के प्रभाव का कारण है । इसे चिन्त्य और अचिन्त्य दो भेदों में विभक्त किया गया है । चिन्त्य शक्तिजन्य द्रव्य-प्रभाव का वर्णन रसविपाकादि द्वारा किया जाता है । अचिन्त्य का प्रभाव संज्ञा से वर्णन किया जाता है । रसादि में गुरु आदि गुणों का वर्णन औपाधिक या औपचारिक रूप से किया जाता है ।

ऊपर से यह स्पष्ट हो गया कि द्रव्य की शक्ति या गुणों (Active Principles क्रियाशील तत्व) द्वारा शरीर पर प्रभाव करता है और उसका जो परिणाम दिखाई देता है, उसे कर्म कहा जाता है । यथा त्रिवृत् रेचक है, उसकी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उष्णता, तीक्ष्णता आदि गुणों के कारण यन्त्रों पर विशेष प्रभाव होता है, जिससे उसकी गति तीक्ष्ण हो जाती है और परिणामस्वरूप रेचनकर्म होता है। इस सारी प्रक्रिया की विभिन्न रूप में द्रव्य-शक्ति के प्रभाव की प्रक्रिया का वर्णन रस-वीर्य-विपाक आदि संज्ञाओं द्वारा किया जाता है।

अब हम इस स्थिति में हैं कि द्रव्य-गुण-कर्म और वीर्यविपाकादि का सम्बन्ध समझ सकें। अब संक्षेप में रस-वीर्य-विपाक का वर्णन किया जाता है। यहाँ विस्तार से शास्त्रीय वर्णन करना इस लेख का उद्देश्य नहीं है। अपितु, सरल भाषा में संक्षेप में रसादि की व्याख्या करना और इन पर अपना दृष्टिकोण बताना है। विशद-वर्णन तो पाठकों को एतद्विषयक आकर ग्रन्थों में देखना चाहिये।

रस वर्णन

रस गुण द्रव्य नहीं है; अतः निष्क्रिय है जैसा कि चक्रपाणि ने कहा है **'षड्-रसाः रसस्यहि निष्क्रियस्य क्रियाऽनुपपन्ना इत्यर्थः"** यह बात तो ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट हो गई है, रस में भी पांचभौतिकत्व है, जैसा कि उक्त कथन से स्पष्ट है, कि द्रव्यों में पञ्चमहाभूतों के सारभाग को ही गुण संज्ञा दी गई है तथा निम्न उद्धरण से भी स्पष्ट है।

"रसनार्थो रसस्तस्य द्रव्यमापः क्षितिस्तथा।
निवृत्तौ च विशेषे च प्रत्यया खादयस्त्रयः॥"

रस संख्या में छः हैं—

मधुर (Sweet)	अम्ल (Acid or Sour)
लवण (Salt)	कटु (Acid or Pungent)
तिक्त (Bitter)	कषाय (Astringent)

आधुनिक वैज्ञानिक केवल चार ही रस मानते हैं—मधुर, अम्ल, लवण और तिक्त। कटु और कषाय के विषय में अभी उन लोगों ने अन्तिम रूप से निर्णय नहीं किया है; किन्तु, इससे हमारे वर्णन में कोई बाधा नहीं आती है, क्योंकि हमें तो रसों के सामान्य प्रभाव से ही मतलब है। रसों के गुण (औपाधिक) अपने जनक पञ्चमहाभूतों के अनुपात तथा अनुसार ही प्रभाव दिखाते हैं। यह प्रभाव विविध प्रकार का होता है जिसका विस्तृत वर्णन शास्त्रों में किया गया हैं। यहाँ उसके वर्णन की आवश्यकता नहीं है।

रस-प्रभाव-काल

"रसो निपाते द्रव्याणां" (चरक), इस वाक्य का अभिप्राय साधारणतया व्याख्याकार इस प्रकार कहते हैं। **"द्रव्याणां निपाते रसानां संयोगे जिह्वा स्पर्शमात्रेण रसः मधुरादिरुपलभ्यते"** (य०)। अर्थात् द्रव्य के खाने पर जिह्वा से स्पर्श होते ही मधुरादि रस का ज्ञान होता है। यह सीधा-सादा अर्थ है। किन्तु मैं इसका दूसरा ही अर्थ करता हूँ और वह यह कि द्रव्य का देह धातुओं के साथ स्पर्श होते ही रस की देह पर होने वाली क्रिया का बोध होता है अर्थात् रस द्वारा देह पर होने वाले प्रभाव प्रत्यक्ष हो जाते हैं और उससे रस का भी ज्ञान होता है। क्योंकि रस न केवल जिह्वामात्र पर ही कार्य करते हैं, किन्तु अन्तस्थ श्लेष्मिक-कला आदि पर भी और वीर्य, विपाक, काल में रसों द्वारा द्रव्य-प्रभाव का वर्णन किया गया है। अतः यह वाक्य केवल जिह्वा द्वारा रस-ज्ञान मात्र के लिए न होकर द्रव्य के रस द्वारा होने वाले प्रभाव-काल का द्योतक है। अर्थात् द्रव्यगत रस कब अपना प्रभाव करता है? उत्तर है—देहधातु के सम्पर्क (निपात) में आते ही।

द्रव्यों का प्रभाव प्रायः तीन प्रकार से होता है और तीन कालों में होता है—(१) द्रव्यों के देहधातुओं के संपर्क में आते ही, (२) द्रव्यों के साथ अधिवास (कुछ समय रहना) के समय और (३) जब उनमें तथा देहधातुओं में परस्पर संयोग से विपाक होने लगता है। इनमें रस द्वारा जो प्रभाव होता है, वह द्रव्य के देहधातु के संपर्क में आते ही होता है और उस क्रिया या प्रभाव द्वारा ही द्रव्य के रस का पता लगता है। यह द्रव्य देहधातु संयोगज शरीर में द्रव्य के सूक्ष्म रूप में सर्वत्र होता है। क्योंकि रस आदि का पाक न होकर वस्तुतः तदाधार द्रव्य का ही पाक होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जैसा आचार्य श्री शिवदास सेन ने कहा है "पाकस्तु तेजः संयोगरूपो रसेषु न संभवतीति कट्वादि शब्दैस्तदाधार द्रव्याण्युच्यन्ते"।

'वस्तुतस्तु द्रव्याणामेव पाकः" द्रव्यगुण संग्रहः। संक्षेप में हम यह भी कह सकते हैं कि स्थूल या सूक्ष्म किसी भी रूप में द्रव्य का देहधातु के साथ संपर्क होते ही जो प्रभाव होता है, उसे वर्णन तथा सुबोधता के लिए द्रव्यगत रस का प्रभाव कहा जाता है।

निम्न उदाहरण द्वारा यह बात और भी स्पष्ट हो जायगी। जब हम मरिच जैसी कटु रस वाली वस्तु का उपयोग करते हैं, तो तत्काल जिह्वा में चिपचिपापन, उष्णता आदि का अनुभव होता है, अतः कह सकते हैं कि अब हमें कटुरस का बोध हुआ है। यहाँ तक तो सर्व-साधारण व्याख्या के अनुसार ही ठीक बैठता है; किन्तु कटु-रस युक्त द्रव्य का प्रभाव तो आमाशय, अन्त्र आदि की कला पर भी होता है। यदि किसी ऐसे द्रव्य को खा लिया जाए, जिसका पता जिह्वा द्वारा न चले या जिह्वा जड़ हो जाए, उसे रस-ज्ञान न हो, तो भी कटु द्रव्य आमाशय में जाकर उष्णता, तीक्ष्णता, रक्तस्रावाधिक्य आदि उत्पन्न करता है। अधिक मिर्चें भूल से खा लेने पर आमाशय को जो हालत होती है, भुक्तभोगी ही उसे जानते हैं। यदि किसी कारणवश जिह्वा-द्वारा रस का बोध न हो सके, तो क्या आमाशय पर होने वाले उक्त प्रकार का प्रभाव कटु रस का न होगा? यहाँ वीर्य-विपाक तो आ ही नहीं सकता। इस अवस्था में साधारणतः सर्वसाधारण प्रचलित व्याख्या अधूरी रह जाती है। किन्तु हमारी व्याख्या में इसका पूर्ण समाधान है कि द्रव्य का प्रथम प्रभाव रस-द्वारा होता है और वह देह-धातु के सम्पर्क में आते ही होता है। इस प्रभाव द्वारा ही रस का बोध होता है। इसके विषय में अधिक न लिखते हुए यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त है कि रसों के भेद बलवत्वादि का वर्णन शास्त्रों में ही पढ़ें।

वीर्य
(Potency-Active Principle)

साधारणतः द्रव्य में अवस्थित गुण का ही नाम वीर्य है। जैसा कि पहले उद्धृत वचनों से स्पष्ट है। यह चिन्त्य-अचिन्त्य भेद से दो प्रकार का है। चिन्त्य शक्ति को ही रस-वीर्य-विपाक संज्ञाओं द्वारा वर्णन किया जाता है। अर्थात् इस चिन्त्य शक्ति से होनेवाले द्रव्य-प्रभाव की व्याख्या हम कर सकते हैं और दूसरे व्यक्ति को समझा सकते हैं कि इस द्रव्य का अमुक प्रकार का प्रभाव क्यों होता है। यथा—किराततिक्त (चिरायता)—तिक्त रस के कारण पित्त को शांत करता है; क्योंकि पित्तोत्पादक जल और अग्नि महाभूतों के विरोधी वायु और आकाश महाभूत से उत्पन्न तिक्त रस पित्त का विरोधी होने से तिक्त रस पित्त को शांत करता है। साथ-ही-साथ पित्त की द्रवता उष्णतादि गुणों के विपरीत तिक्त रस शीतवीर्य और रूक्षादि गुणयुक्त होता है। साथ-ही-साथ चिरायता मृदु रेचक भी है और पित्त शमनार्थ रेचन सर्वोत्तम साधन है, अतः चिरायता अपने रस, वीर्य और रस-गुण के कारण पित्त शामक है। यह व्याख्या है उस द्रव्य की जिसमें शक्ति चिन्त्य (विचारणीय) जो विचारी जा सकती है—बुद्धि गम्य है। इस प्रकार के द्रव्यों के प्रयोग को शास्त्र में युक्ति-युक्त चिकित्सा कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे "रेशनल थेराप्युटिक्स" कहते हैं।

दूसरी प्रकार की शक्ति है, जिसके द्वारा होनेवाले द्रव्य-प्रभाव की व्याख्या नहीं हो सकती। केवल अनुभव के आधार पर ही इसका व्यवहार किया जाता है, आधुनिक वैज्ञानिक भी इसकी व्याख्या अभी तक नहीं कर सके हैं। इसे आयुर्वेद में प्रभाव कहते हैं और आधुनिकों ने इसका नाम स्पेशल सिलेक्टिव् एक्सन (Special selective action) दिया है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण भगवान् सुश्रुत के निम्न वाक्य में मिलता है। "नाम्बष्ठा सहस्रेणापि विरेचयेत्" अर्थात् मांजू हजारों युक्तियों और प्रयत्नों के करने पर भी कभी रेचन नहीं करा सकती, वह तो प्रभाव से ही आती है। अतः जहाँ पर ऐसा हो, वहाँ पर युक्तियाँ न करके आगम (शास्त्र) को ही प्रमाण मानना चाहिए। इसका विशेष वर्णन तो 'प्रभाव' के प्रकरण में किया जाएगा। उक्त भावों को ही बड़ी सुन्दरता के साथ निम्न पद्य में स्पष्ट किया गया है :—

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

'भूत प्रसादातिशयो द्रव्ये पाके रसे स्थितः ।
चिन्त्याचिन्त्य क्रिया हेतुर्वीर्य धन्वन्तरेर्मतम् ।।

इस विषय में आचार्य शिवदास सेन के निम्न वाक्यों पर भा ध्यान देना चाहिए :—

"अत्र केचित्—ननु शक्तिरेव वीर्य न तर्हि शीतोष्णादि लक्षणं, अथ शीतोष्णादि लक्षणं न तदा शक्ति लक्षणमिति । सत्यं परमार्थतः शक्तिरेव वीर्य, सा पुनर्बलवत् क्रिया निवर्त्तन् क्षया रसादिनाऽयोगानिरुपाधिरिति तस्याः शीतोष्णादि गुणाः उपाधित्वेनाङ्गीकृताः, ते तु द्रव्य समवायिनो रसादिषु पुनरुपचरित वृत्तय इति ।

उक्तं चः—गुणाः कर्म व्यवस्थायै द्रव्याणां रसपाकयोः ।
शक्तेः कर्मसु शक्ता ये निरुपाधेरुपाधयः ।। इत्याहुः ।

यत् पुनः—अष्टविधं द्विविधं वा वीर्यमुक्तं चरकेण, तत्पारिभाषिक वीर्या पुरस्कारेण । वैद्या के हि प्रभूत कार्यकारिणी गुणे वीर्यमिति संज्ञा ।"

उक्त उद्धरण से पारिभाषिक वीर्य का लक्षण भी स्पष्ट हो जाता है । आयुर्वेद में बलवान् गुणों को ही वीर्य संज्ञा दी गई है । अर्थात् वे साधारण तथा निर्बल गुणों को दबा कर स्व-शक्ति से अपना प्रभाव दिखाते हैं । निम्न उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है । पिप्पली का कटु रस 'पित्तवर्द्धक है; किन्तु इस कटु रस का अभिभव करके पिप्पली में अवस्थित मृदुतागुण तथा शीत वीर्य के कारण यह पित्त को शांत करती है । सुश्रुत में भी कहा है— "एतानि खलु वीर्याणि स्वगुण (शक्ति) बलोत्कर्षात् रसमभिभूयात्मकर्म कुर्वन्ति" (सु० सू० अ०—४०) ।

वीर्यों के भेद

उक्त परिभाषा के अनुसार द्रव्यगुणशास्त्र में उपयोगी २० गुणों में से "मृदु तीक्ष्ण गुरु लघु स्निग्ध रूक्षोष्णशीतलम् । वीर्यमष्टविधम्"—इन आठ बलवान् गुणों को ही 'वीर्य' नाम दिया गया है ।

द्विविध वीर्य—इस मत में शीत और उष्ण ये दो ही वीर्य माने जाते हैं । "नानात्मकमपि द्रव्यमग्निषोमीयौ महाबलौ । व्यक्ताव्यक्त जगदिव नातुक्रामति जातुचित् ।। अर्थात् समस्त द्रव्य या तो आग्नेय गुण प्रधान होते हैं या फिर सोम गुण प्रधान होते हैं । अतः द्रव्य का वीर्य भी उष्ण या शीत भेद से दो ही प्रकार का होता है ।

वस्तुतः दोनों ही पक्ष ठीक हैं और एक दूसरे के पूरक से हैं । अष्टविध वीर्य द्रव्य के गुणों के कारण होने वाले कर्मों को दृष्टि में रख कर कहे गये हैं । और द्विविध वीर्य द्रव्य-प्रभाव के शरीर पर होनेवाले कर्मों की अपेक्षा अनेक किस्म के प्रभाव को लक्ष्य में रख कर कहे गये हैं । पहले कहा जा चुका है कि द्रव्यों का प्रभाव शरीर पर दो प्रकार से पड़ता है ।

(१) वह जो शरीर की क्रियाओं को बढ़ा देते हैं ।

(२) वह जो शरीर की क्रियाओं को घटा देते हैं ।

प्रथम कार्य उष्णवीर्य द्रव्यों का तथा दूसरा परिणाम शीतवीर्य द्रव्यों का । कस्तूरी उष्ण है; उसके सेवन से हृदय की गति शक्तिशाली हो जाती है । इसी प्रकार चिरायता शीतवीर्य है, अतः वह देह में उत्पन्न होनेवाले ताप की मात्रा को कम कर देती है ।

वीर्य का कार्य-काल

वीर्य यावदधीवासान्निपाताच्चोपलभ्यते । अधीवासः सहावस्थानम् । यावदधीवासादिति यावच्छरीर निवासात् । एतच्च विपाकात् पूर्व निपाताच्चोर्ध्व ज्ञेयम् । निपाताच्चेति शरीर संयोगमात्रात् । तेन किञ्चिद्वीर्यमीधवासादुपलभ्यते, यथा आनूपमांसादेरुष्णत्वं , किंचिच्च निपातादेव लभ्यते यथा मरिचादीनां तीक्ष्णत्वादि किञ्चिच्च निपाताधीवासाभ्यां, यथा मरिचादिनामेव ।

एतच्च वीर्य सहजं कृत्रिमं च ज्ञेयम्, एतच्च लक्षणं पारिभाषिक वीर्यविषयमेवज्ञेयम् (चक्रः) । कर्म लक्षणं वीर्यम् (नागार्जुन) ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अर्थात् वीर्य का ज्ञान निपात —शरीर संयोग मात्र तथा अधिवास—कुछ देर तक शरीर में रहने से होता है। हम तो इसकी व्याख्या भी रस के समान ही करते हैं कि वीर्य का कार्य-काल, निपात तथा अधिवास दोनों हैं, और यह काल रस के कार्य काल तथा विपाक के मध्य का है। पहले यह बताया जा चुका है कि द्रव्य शरीर में जाता है, कुछ समय तक वह शरीर में सर्वत्र या किसी एक स्थान पर स्थित रहता है। पुनः उसका विपाक होता है। विपाक-काल में वह अपना विशिष्ट काम करके या तो नष्ट हो जाता है या योगान्तर रूप में परिणत हो जाता है। अतः वह या तो शरीर से बाहर मल-मूत्रादि रूप में निकल जाता है या कुछ दिनों तक योग विशेष रूप में शरीर के किन्हीं विशेष अवयवों में पड़ा रहता है और शनैः-शनैः उसका प्रभाव होता रहता है। पारिभाषिक वीर्य का प्रभाव काल है, द्रव्य के देह-धातु के सम्पर्क में आने के बाद तथा उसके अवस्थान तक। अर्थात् द्रव्य का विपाक होने से पूर्व। निम्न उदाहरण हमारी इस बात को स्पष्ट कर देगा :—

सुरा (शराब) के पीते ही एक विशेष प्रकार की उष्णता या शीत का अभाव प्रतीत होता है। यह प्रभाव मद्य के रस के कारण नहीं होता, अपितु मरिचादि के कटु रस के कारण तथा मद्यगत तीक्ष्ण-उष्ण वीर्य के कारण होता है। निपात की अवस्था से आगे अधिवास का काल आता है। इस काल में मद्य आंतों में से जाकर अपनी विशिष्ट प्रकार की प्रीति के कारण मस्तुलुङ्ग (मस्तिष्क द्रव्य) की धातु में जाकर उसके साथ निवास करता है और उसे उत्तेजित करता है, जिससे शरीर-क्रियाओं की अधिष्ठाता शक्ति नष्ट होकर मद्यप जैसे लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। पुनः जब विपाक आरम्भ होता है, तो यह मद्य कुछ तो विपाक काल में नष्ट हो जाती है तथा कुछ श्वास द्वारा उड़ जाती है। अर्थात् विपाक द्वारा मद्य कुछ कार्य नहीं करती है।

पाठकों को यह नहीं भूलना चाहिये कि प्रत्येक द्रव्य, रस, वीर्य, विपाक तीनों द्वारा कार्य नहीं करते। कोई रस द्वारा, कोई वीर्य द्वारा और कोई विपाक द्वारा ही कार्य करते हैं। अतएव निम्न शास्त्रीय वचन कहा गया है—

"किञ्चिद्रसेन कुरुते कर्म पाकेन चापरम्।
द्रव्यं गुणेन वीर्येण प्रभावेनैव किञ्चन॥

ऊपर वीर्य क्या है, उसके भेद तथा कार्य-काल का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। अब विपाक को लेते हैं।

विपाक का लक्षण

जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम्।
रसानां परिणामान्ते स विपाक इति स्मृतः॥"

'जाठरेण औदर्येण अग्निना, योगात् संश्लेषात्। यत् रसानां परिणामान्ते जरण निष्ठा काले रसान्तरं रस विशेष उदेति स 'विपाक' इति स्मृतः कथितः मुनिभिः (अ. द.)।

"रसानां रसवता द्रव्याणां जाठरेणाग्निना संयोगात् यद्रसान्तरमुत्पद्यते स विपाकः।" "आदौ षड्रसमप्यन्न मधुरीभूतमीरयेत्' इत्याद्युक्तानां मधुराम्ल कटु पाकानां व्यावृत्यर्थमाह परिणामान्ते; आहार परिणामान्ते। ते तु परिणामात् प्रागेव उत्पद्यन्ते, इति तेषां रसत्वमेवं। (हेमाद्रि)

"विपाक लक्षणं तु—जाठरेणाग्निना योगादाहारस्य निष्ठा काले यो गुण उत्पद्यते स विपाकः" (चक्रदत्तः)

अर्थात्—षड्रस अन्न का औदर्य अग्नि के द्वारा पाक होने पर जो रस उत्पन्न होते हैं, उन रसों का जब निष्ठापाक होता है; उससे जो गुण (प्रभाव) उत्पन्न होते हैं, वह 'विपाक' है।

द्रव्यों का शरीर में दो तरह का पाक होता है। एक तो अवस्था पाक और दूसरा निष्ठा पाक। आहार पदार्थों का प्रथम पाक 'अवस्थापाक' ही होता है और पुनः 'निष्ठा 'पाक'। किन्तु औषध-द्रव्यों के लिये यह नियम नहीं है। अनेक औषध-द्रव्यों का अवस्थापाक होता ही नहीं है, विशेष कर विष-द्रव्यों का। अतएव उन्हें व्यवसायी गुण वाला कहा गया है। मद्य भी इसी प्रकार का पदार्थ है। यह आमाशय में से सीधा रक्त द्वारा मस्तुलुङ्ग में पहुँचता है; अवस्था

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पाक की कुछ भी क्रिया इस पर नहीं होती। हाँ, निष्ठा पाक तो सब द्रव्यों के लिये आवश्यक है। द्रव्यगुण शास्त्र में हमें "निष्ठा पाक" का ही वर्णन करना है, अवस्था पाक का नहीं। अवस्था पाक का सम्बन्ध तो शारीर क्रिया से है।

कई वैद्य बन्धु विपाक से उक्त दोनों प्रकार के विपाकों का ग्रहण करते हैं या दोनों को मिला देते हैं, तब गड़बड़ी हो जाती है। विपाक से यहाँ निष्ठा पाक ही लेना चाहिये। इसका समर्थन आचार्य हेमाद्रि के उक्त उद्धरण द्वारा हो जाता है। जिसमें वह कहता है कि "रस युक्त द्रव्यों का जठराग्नि के संयोग द्वारा जो रसान्तर उत्पन्न होते हैं वह 'विपाक' है। अवस्था पाक में वर्णित षड्रस अन्न के स्थान-भेद से जो मधुरादि रस उत्पन्न होते हैं; उसको व्यावृत्ति के लिए यहाँ पर विशेष शब्द "परिणामान्त" से आहार पाचन के अनन्तर यह शब्द कहा गया है। आहार की अवस्था पाक में स्थान विशेष के प्रभाववश उत्पन्न मधुरादि रस तो आहार के पूर्ण पाचन से पहले ही अर्थात् पच्यमानकाल में ही उत्पन्न होते हैं, अतः वे तो रस ही हैं रसान्तर नहीं।"

श्री चक्रपाणिदत्त ने भी कहा है, जाठराग्नि के संयोग से निष्ठा पाककाल में जो गुण उत्पन्न होते हैं; वह विपाक है।

आचार्य शिवदास सेन ने तो स्पष्ट ही कह दिया है "अवस्थापाकापेक्षया विशिष्टो पाकः विपाकः।" अतः विपाक से निष्ठापाक ही समझना चाहिये, अवस्था पाक को नहीं। इस निष्ठा को नव्य चिकित्सा-शास्त्र में केमिकल चेन्जेज (Chemical changes) या मेटाबालिक चेन्जेज (Metabolic changes) कहा गया है तथा अवस्था पाक को डाइजेस्टिव प्रोसेस (Digestive Process) कहा गया है।

विपाक के भेद

आयुर्वेद में इस विषय में दो मत मुख्य हैं। (१) त्रिविध विपाक और (२) द्विविध विपाक। प्रति रस पाक तथा अनवस्थित पाक एवं दोषानुसार पाक ये तीन मत भी कहीं-कहीं उल्लिखित हैं। परन्तु उन्हें अधिक महत्व नहीं दिया जाता। अतः इस लेख में त्रिविध और द्विविध मत को ही लेकर चलना है।

त्रिविध मत

कटु तिक्त कषायाणां विपाकः प्रायशः कटुः।
अम्लोऽम्लं पच्यते स्वादुर्मधुरं लवणस्तथा॥ (चरक)

अर्थात् रसों का (रसाधिष्ठान द्रव्यों का) तीन प्रकार का विपाक होता है।

(१) अम्ल विपाक—अम्ल रस।

(२) कटु विपाक—कटु तिक्त-कषाय।

(३) मधुर विपाक—मधुर रस तथा लवण।

ये विपाक सामान्यतः उत्सर्ग रूप में समझने चाहिये। अपवाद भी मिलते ही हैं। यथा पिप्पली मधुर विपाकी है। विपाक के विषय में आचार्य शिवदास सेन की व्याख्या पठनीय है। चक्रपाणिदत्त के द्रव्य-गुण-संग्रह को टीका में उन्होंने बड़े ही अधिकार पूर्ण ढंग से विपाक का वर्णन किया है।

द्विविध वीर्यवाद

"आगमस्त्वाह—द्विविध एव पाको मधुरः कटुकश्च, तयोर्मधुराख्यो गुरुः कटुकाख्यो लघुरिति, तत्र पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां द्वैविध्यं भवति। तद्गुणसामर्थ्याद्गुरुता लघुता च। पृथिव्यापश्च गुर्व्यः शेषाणिलघूनि, तस्माद् द्विविध एवं विपाक इति। भवन्ति चात्र—

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

द्रव्येषु पच्यमानेषु येष्वम्बु पृथिवी गुणाः।
निर्वर्त्तन्तेऽधिकास्तत्र पाको 'मधुर' उच्यते ॥
तेजोऽनिलाकाशगुणाः पच्यमानेषु येषु तु।
निवर्त्तन्तेऽधिकास्तत्र पाकः 'कटुक' उच्यते ॥

आचार्य सुश्रुत के मतानुसार दो ही विपाक हैं—मधुर और कटु। ये विपाक द्रव्यों की रचना पर निर्भर हैं। चरक के अनुसार रसों द्वारा इनका वर्णन करके द्रव्योत्पादक महाभूतों के अनुपात से इनका वर्णन किया गया है। अतः एक ही रस वाले द्रव्यों का विभिन्न पाक भी हो संकता है; क्योंकि दोनों महाभूतों का अनुपात भिन्न-भिन्न हो सकता है। यह पक्ष अधिक युक्तियुक्त और वैज्ञानिक लगता है। प्रायः मधुर, अम्ल और लवण का विपाक मधुर और कटु-तिक्त-कषाय का विपाक कटु होता है।

प्राचीन आचार्यों ने इन दोनों के समन्वय की चेष्टा की है तथा कुछ आधुनिक आचार्य भी इसी प्रयत्न में इनकी व्याख्या करते दीखते हैं। हम इस विचार से सहमत नहीं हैं कि चरक और सुश्रुत का सब बातों में मतैक्य हो ही। स्वतन्त्र मत भी हो सकता है और यह कोई बुरी बात नहीं। ऊपर के वर्णन से स्पष्ट ही मतभिन्नता है। दोनों की विचार-पद्धति भी भिन्न है, अतः सचाई के रूप में दोनों में मतभेद मान ही लेना उचित है।

कुछ आचार्य त्रिविध विपाकवाद को अवस्थापाककालीन समझते हैं और इस प्रकार से उसे अवस्थान्तर जन्य मानते हैं। इस तरह दोनों का समाधान या समन्वय करते हैं। हम कह चुके हैं कि जहाँ भेद स्पष्ट ही है; वहाँ समन्वय की आवश्यकता नहीं। किन्तु उक्त का निषेध तो आचार्य शिवदास सेन करते हैं :—

"कटु तिक्त कषायाणां" (च० सू० अ० २६) इत्यादिनोक्तश्चनिष्ठापाको रस-मल विवेक समकालो भिन्नकाल एवावस्थापाकैः सममिति न विरोधः, "स च भिन्नकालोऽप्यवस्थापाकजन्यदोषानुगुणतया अननुगुणतयावस्थापाकाहित दोषाणां वर्धनं क्षपणं वा करोतीति निष्ठापाकाभिधानं शास्त्रे प्रयोजनवदेव।"

कुछ नव्य आयुर्वेदाचार्यों ने शास्त्रीय विपाक की आधुनिक चिकित्सा-प्रणालीगत पाकों से मिलाने का प्रयत्न किया है। हम प्रारम्भ में ही कह चुके हैं कि यह गलत मार्ग है। इस प्रकार एलोपैथी की पूँछ से बँध जाने पर कहाँ अन्त होगा, यह हम नहीं कह सकते तथा स्वयं भी स्थान-भ्रष्ट हो जाने का डर है। उदाहरणार्थ एक आचार्य ने चरक के त्रिविध विपाकों को इस प्रकार तुलना की है, जैसे—प्रोटीनों के पाचन के अन्तिम परिणामस्वरूप उनका अम्ल विपाक, कार्बोज या स्टार्च वाले पदार्थों का मधुर विपाक तथा वसा या स्निग्ध पदार्थों का कटु विपाक होता है। इस तरह आज के विज्ञान से चरकीय त्रिविध विपाक का समर्थन या तुलना की गई है।

किन्तु; इस प्रकार की तुलना में आयुर्वेदीय सिद्धान्त कहाँ लोप हो गया, इसका शायद उन्हें ध्यान ही नहीं रहा। निम्न उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायेगी—

प्रथम तो उक्त एलोपैथिक विपाक निष्ठापाक न होकर अवस्थापाककालीन हैं। आहार के अन्तिम परिणाम न होकर मध्य के परिणाम हैं। यह बात आधुनिक कालीन फिजियोलाजी (शरीर क्रिया) के किसी भी ग्रन्थ को देखने से स्पष्ट हो जाती है। द्वितीय, इससे प्रायुर्वेदीय सिद्धान्तों का मेल जरा भी नहीं खाता, जैसे—घृत को लीजिए—यह तो चर्बी या वसामय पदार्थ हैं। इसका विपाक एलोपैथी में कटु होता है। किन्तु आयुर्वेद में यह मधुर विपाकी है। यथा—

स्नेहोत्तमं योगवाहि सर्वदा मधुरं हितम्।
विपाके मधुरः श्रेष्ठं वातपित्तविषापहम् ॥ (द्रव्यगुण संग्रह)

द्वितीय उदाहरण प्रोटीनों का लीजिए। एलोपैथी के कथनानुसार दालों (प्रोटीनबहुल) का विपाक अम्ल होना चाहिए। किन्तु आयुर्वेद में तो 'विपाके मधुराः' (सु० सू० अ० ४६) कहा गया है। अम्ल विपाक के गुण आयुर्वेद में "पाकोऽम्लः सृष्टविण्मूत्र पित्तकृत् शुक्रनुल्लघुः, कहे गये हैं। चिकित्सा में मूँग पित्तशामक के रूप में व्यवहृत होता है। अतः यदि उक्त तुलना पर जायें, तो आयुर्वेद की सारी भित्ति ही समाप्त हो जाती है। इस प्रकार रस-वीर्य-विपाक का

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संक्षिप्त विवेचन किया गया है। विपाक का यदि अंग्रेजी अनुवाद किया जाए, तो वह Final Product of Digestion न होकर effect or reactions of the Chemical changes (Not those of Physical changes) produced due to inter-action between medicinal substance & body Tissues यह हो सकता है।

विपाक का क्रियाकाल

विपाकः कर्म निष्ठया। (चरक)

विपाक का अनुमान द्रव्य के कर्म द्वारा ही होता है। आचार्य नागार्जुन ने विपाक का लक्षण 'परिणाम लक्षण' बताया है। अर्थात् द्रव्य-प्रभाव के परिणाम से ही विपाक का परिणाम होता है। अर्थात् द्रव्य के प्रभाव का जो परिणाम होता है वह विपाक का कार्यकाल है। उदाहरणार्थ—कोई भी द्रव्य शरीर का बृंहण करेगा या उससे ह्रास उत्पन्न करेगा। इन्हीं दोनों विपाकों को सुश्रुत ने गुरु तथा लघु या मधुर और 'कटु विपाक' कहा है। द्रव्य का परिणाम शरीर पर दो ही प्रकार का हो सकता है। एक तो शरीर की वृद्धि और उसमें शक्ति उत्पन्न करना, दूसरा शरीरस्थ वस्तुओं को शरीर से बाहर निकाल कर उसे कृश करना। अतः द्विविध पाक ही हमें उचित लगता है।

प्रभाव

पहले कहा जा चुका है कि शक्ति चिन्त्य और अचिन्त्य भेद से दो प्रकार की होती है। अचिन्त्य शक्ति को 'प्रभाव' कहते हैं। आधुनिक विज्ञान इसे Special Selective Action के नाम से पुकारा करता है। आयुर्वेद में प्रभाव का लक्षण इस प्रकार कहा गया है :—

रस वीर्य विपाकानां सामान्यं यत्र लक्ष्यते।
विशेषः कर्मणां चैव प्रभावस्तस्य स स्मृतः॥ (चरक सू० अ० २६)

अर्थात् जहाँ रस-वीर्य-विपाक समान होते हैं, वहाँ द्रव्य का प्रभाव उनसे विशेष ही होता है। दन्ती और चित्रक तथा घी और दूध के उदाहरण इस विषय में प्रसिद्ध हैं। स्निग्ध, मधुर, शीत होते हुए भी दुग्ध पाचकाग्नि को मन्द करने वाला और घी उसे बढ़ाने वाला है। इस प्रकार प्रभाव की व्याख्या नहीं हो सकती कि ऐसा क्यों होता है। आधुनिक विज्ञान ने भी अभी तक इसकी कोई व्याख्या नहीं की है। अतएव आचार्य चरक ने कहा है "प्रभावोऽचिन्त्य उच्यते।" इसी को लक्ष्य में रख कर भगवान सुश्रुत ने कहा है :—

अमीमांस्यान्यचिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः।
तस्मात्तिष्ठेत्तु मतिमानागमे, न तु हेतुषु॥ (सु० सू० अ० ४०)

कुछ आचार्यों ने 'प्रभाव' की व्याख्या द्रव्यों के संगठन के आधार पर की है।

"इति सामान्यतः कर्म द्रव्यादीनां पुनश्चतत्।
विचित्रप्रत्ययारब्ध द्रव्यभेदेन भिद्यते। (अ० हृ० सू० अ० ९)

अर्थात्—रसादि के अनुरूप द्रव्यों के कर्म तो सामान्यतः वर्णन किये गये हैं, किन्तु प्रभाव-द्वारा जो कर्म किये जाते हैं, वे विचित्र प्रत्ययारब्ध द्रव्यों द्वारा होते हैं। अर्थात् समान प्रत्ययारब्ध या प्रकृति समवाय द्रव्यों के कर्म तो रसादि के अनुसार होते हैं; किन्तु विचित्र प्रत्ययारब्ध या विकृति विषम समवाय द्रव्यों के कर्म उनके विपरीत भी हो सकते हैं। ये दूसरे प्रकार के द्रव्य ही प्रभाव द्वारा अपना कर्म करते हैं। समान प्रत्ययारब्ध द्रव्यों को आंग्ल भाषा में Isomeric कहते हैं और विचित्र प्रत्ययारब्ध द्रव्य को Metamric कहा जाता है। प्रथम प्रकार के द्रव्यों के संगठन में द्रव्यों के घटकों की स्थिति एक विशिष्ट नियम के अनुसार होती है। उनकी रचना, भार, अनुकूल स्थिति सब समान होती है। किन्तु विचित्र प्रत्ययारब्ध द्रव्यों में किसी महाभूत का परमाणु अपेक्षाकृत भारी, दूसरे की संख्या में अधिक और तीसरे का गति में अधिक होता है। उनका कोई नियम नहीं होता। अतः वे रसादि के विपरीत कर्म करते हैं। यह व्याख्या कुछ सन्तोष जनक नहीं है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आयुर्वेद एक जीवित शास्त्र है। जीवन का एक लक्षण है—बाह्य वस्तुओं को ग्रहण कर उनके सारभाग को आत्मसात् करना और मलभाग का परित्याग। आयुर्वेद में सर्वदा इस प्रक्रिया को देखा जा सकता है। हां, कभी मन्द मात्रा में तथा कभी तीव्र गति से आयुर्वेद अपने कलेवर को पुष्ट करता है। इस विषय में लेखक की 'आयुर्वेद का संक्षिप्त इतिहास' नामक पुस्तक का अवलोकन करना चाहिए। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि आयुर्वेद में सदा नवीन द्रव्यों तथा रोगों का समावेश होता है। अफीम, चोपचीनी आदि पदार्थ तथा फिरंगादि रोगों का वर्णन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। अतः आजकल के नवीन जीवनोपयोगी तथा आत्ययिक अवस्थाओं (Emergencies) में काम आने वाली औषधियों, उपायों तथा साधनों का ग्रहण करना सम्पूर्ण रूप से आयुर्वैदिक है। हमारे पूर्वज ऋषियों ने तो सदा ही ज्ञान संचय का आदेश दिया है। मनु का "बालादपि ग्राह्यं सुभाषितम्" तथा भगवान् चरक का "नह्यस्ति सुतरामायुर्वेदस्यपारं, कृत्स्नोहि लोको बुद्धिमतामाचार्यः, शत्रुश्चाबुद्धिमताम" (च० वि०) तो बहुत प्रसिद्ध हैं।

द्रव्यों के गुणादि का तथा गुणों का वर्णन करते समय महर्षि अग्निवेश ने सूत्रस्थान में स्पष्ट ही कहा है :—

"एतोवन्तोह्यल्पबुद्धिनां व्यवहाराय। (च० सू०)

अतः नवीन औषधियों का ग्रहण हमें करना ही चाहिए किन्तु अपनी आयुर्वेदीय पद्धति के अनुसार पंचमहाभूत तथा रस-वीर्यविपाक सिद्धान्तों में घटाते हुए। नवीन द्रव्यों का ग्रहण उक्त दोनों सिद्धान्तों के अनुसार किस प्रकार किया जाए, इस विषय में भी आयुर्वेद के ऋषिगण चुप नहीं हैं। इस विषय में भी उन्होंने मार्गदर्शन किया है।

समस्त द्रव्य पाञ्चभौतिक है किन्तु जिस द्रव्य में महाभूत की अधिकता होती है, उसीसे, उसका नामकरण होजाता है। यथा पार्थिव, आग्नेय, जलीय, आदि। प्रत्येक भूत (इन्द्रिय ग्राह्यत्वं भूतत्वं) इन्द्रियों से ग्रहण होने योग्य पदार्थ को भूत कहते हैं। अर्थात् जिनकी सत्ता (भू) का ज्ञान इन्द्रियों द्वारा हो सकता है वे भूत हैं। पाँचो महाभूतों को जानने के लिए पाँच विशिष्ट इन्द्रियाँ हैं, जो एक-एक महाभूतों के लिये विशिष्ट रूप से बनाई गई हैं। यथा जल के लिए जीभ, पृथ्वी के लिये नाक, तेजस् के लिए नेत्र, त्वचा के लिये वायु और कर्ण आकाश के लिए) का स्वलक्षण या आत्म-लिंग भी बताकर उसके शरीर में होने वाले तथा स्थूल इन्द्रियों से ज्ञेय गुण या प्रभाव भी बताए गये हैं, जिनसे साधारण बुद्धि वाला मनुष्य भी द्रव्यों में प्रधान भूत का पता लगा सकता है। उदाहरणार्थ—'संघातवती पृथ्वी' यह पृथ्वी का स्वलक्षण है। जहाँ भी संघात है वहीं पृथ्वीत्व है। जो द्रव्य प्रयोग करने से देह में सान्द्रता (घनता Solidity or Compactness) गुरुता (वृद्धि), स्थूलता कठिनता, तथा स्थिरता उत्पन्न करे वह पार्थिव है और शरीर में उक्त गुणों या शरीर की वृद्धि के लिए उनका उपयोग किया जा सकता है। यथा अन्नों तथा मांसादि का। इसके विपरीत यदि शरीर स्थूल (वसायुक्त) हो, तो रूक्षता, लघुता (पतलापन या हल्कापन) विशदता आदि गुण उत्पन्न करने के लिए इन गुणों से युक्त वायुभूत प्रधान रूक्ष अन्नों—जौ, श्यामाक, कोद्रव, बाजरा आदि का उपयोग करने से पृथ्वी तथा कफ का अंश कम हो जाता है। इसी प्रकार औषधि-द्रव्यों में उदाहरणार्थ सिनकोना या क्विनीन को लीजिए। यह तिक्त रस है अतः पित्त या ताप को तो शान्त करता है किन्तु रूक्षता, विशदता, लघुता, चलता, सूक्ष्मता आदि वायु के गुणों का प्राधान्य होने से वातल द्रव्य है। अतः एतद्विपरीत कफ रोगों में अति उत्तम तापहर, पैत्तिक प्रकृति के ज्वरितों में मध्यम प्रकार का तथा वातल प्राणियों में निकृष्ट प्रकार की औषधि है। इसी प्रकार पुनः-पुनः परीक्षण कर तथा आचार्य चक्रपाणिदत्त के शब्दों में "भूयो दर्शनात्" को क्रियान्वित करते हुए आशु गुणकारी तथा आत्ययिक अवस्था में काम आने वाले नवीन द्रव्यों का समावेश अपने निघण्टु या द्रव्यगुण-शास्त्र में करके सुधीजन यश के भागी बन सकते हैं तथा आयुर्वेद के साथ-साथ जनता जनार्दन की प्राणरक्षा का पुण्य प्राप्त कर सकते हैं। नीचे प्राचीन आचार्यों ने इस विषय में जो नियम निर्धारित किए हैं, उनका मूल रूप में ही उद्धरण देकर इस प्रकरण को समाप्त किया जाता है।

आचार्य अग्निवेश के उक्त उद्धरण की व्याख्या करते हुए चक्रपाणिदत्त ने लिखा है :—

"स्व लक्षणस्यभावः स्वालक्षण्यं तेनानुमानं तत्रकुशला अभिज्ञा इत्यर्थः। बुद्धिमन्तो हि-जीवकादयोहि स्निग्ध-शीत मधुर वृष्यादि गुणयुक्ताः सन्तोजीवनं कुर्वन्तीति भूयोदर्शनात् उपधार्य तद्गुण युक्तेऽन्यत्रापि द्राक्षापयोविदार्यादौ तज्जातीयत्वेन जीवनाद्यनुमितेत्।" (च० सू० अ० ४-११)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मधुरादि रसों का लक्षण तन्त्रकारों ने यह दिया है कि जिसका गुण रसना द्वारा ग्रहण हो उसे 'रस' कहते हैं। परन्तु कतिपय द्रव्यों का रस रसनाज्ञेय नहीं होता या रसना द्वारा उसका प्रत्यक्ष सम्भव न हो उस द्रव्य के रस ज्ञान की विधि भी आचार्य ने दी है। यथा :—

"मधुराणि, मधुरप्रायाणि, मधुरविपाकानि, मधुरप्रभावाणि च मधुरस्कन्धे मधुराण्येव कृत्वोपदेक्ष्यन्ते। तदेतराणि द्रव्याण्यपि। (वि० ८।१३८)

तथेतराणीति अम्लादीनि, अम्लप्रायाणि अम्लपाकानि च अम्लमेव कृत्वोपदेक्ष्यामः। (चक्रपाणि)

शीतं वीर्येण यद्द्रव्यं मधुरं रसपाकयोः।
तयोरम्लं यदुष्णं च यद्द्रव्यं कटुकंतयोः॥
तेषां रसोपदेशेन निर्देश्ये गुणसंग्रहः।
वीर्यतोऽविपरीत्यनां पाकतश्चोपदेक्ष्यते॥
यथा पयो यथासर्पि र्यथा वा चव्यचित्रकौ।
एवमादीनि चान्यानि निर्दिशेद्रसतोभिषक्॥ (च० सू० २८।५०-५२)

अनेक रसवाले द्रव्यों के प्रभाव का विश्लेषण

"तत्र खल्वनेकरसेषुद्रव्येष्वनेकदोषात्मकेषु च विकारेषु रसदोषप्रभावमेकैकस्येनाभिसमीक्ष्यततो द्रव्य विकारयोः प्रभावतत्त्वं व्यवस्येत्। नत्वेवं खलुसर्वत्र। न हि विकृति विषमसमवेतानां नानात्मकानां परस्परेण चोपहतानामन्यैश्च विकल्पनैर्विकल्पितानांमवयवप्रभावानुमानेनैवं समुदाय प्रभावतत्त्वमध्यवसातुं शक्यम्। तथा युक्ते हि समुदाये समुदाय प्रभाव तत्त्वमेवोपलभ्य ततो द्रव्यविकारं तत्त्वं व्यवस्येत्॥ (च० वि० १)

अनेक रसात्मक द्रव्यों तथा अनेक दोषात्मक विकारों के प्रभाव का ज्ञान निम्नांकित दो नियमों से होता है :—

१. यदि रसों तथा दोषों का संयोग प्रकृति सम समवाय[1] है, तो प्रत्येक रस अथवा दोष के पृथक्-पृथक् प्रभाव के अनुसार उस समुदाय रूप द्रव्य या विकार (रोग) के प्रभाव का निर्णय किया जाता है।

२. यदि रसों तथा दोषों का संगठन द्रव्य में विकृति विषम समवेत (विचित्र प्रत्ययारब्ध)[2] रूप में हो, तो द्रव्य परमाणुओं के संयोग, गठन विशिष्टता के कारण उपर्युक्त नियम से द्रव्य के प्रभाव का निर्णय करना कठिन होता है। इस अवस्था में समय समुदाय की परीक्षा कर ही द्रव्य प्रभाव तथा विकार प्रभाव का निर्णय किया जाता है।

द्रव्यगुण शास्त्र का विवेच्य पदार्थ

किसी शास्त्र के वर्णनीय विषय को 'पदार्थ' कहते हैं। द्रव्यगुण शास्त्र में निम्न पदार्थों का विवेचन किया जाता है :—द्रव्य तथा उनके गुण (रस, वीर्य, विपाक) प्रभाव, कर्म। इन्हीं का वर्णन इस ग्रन्थ में किया गया है।

द्रव्य (Drug or Substance)—गुण और कर्मों का अधिष्ठान पाञ्चभौतिक पदार्थ। यथा हरीतकी।

गुण (Property or Activating Principle)—शीत, उष्ण आदि कर्म का कारण द्रव्यगत धर्म।

इसके ही अवान्तर भेद हैं रस, वीर्य, विपाक।

(अ) रस (Taste)—मधुर-अम्लादि द्रव्यगत स्वाद।

(आ) वीर्य (Potency or Dynamic Property)—द्रव्य में पाया जाने वाला शक्तिशाली गुण, शीत वीर्य, उष्णवीर्य आदि।

(इ) विपाक (End Product of or final result of a drug)—पाचन के अनन्तर आहार रस का धात्वग्नियों तथा भौतिकाग्नियों द्वारा परिपाक का द्रव्यान्तर स्वरूप अन्तिम परिणाम। यह मधुर, अम्ल, कटु अथवा मधुर और कटु दो प्रकार का होता है।

---

1. Isomeric
2. Metameric.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

३. प्रभाव (Specific Selective action) द्रव्य की सहज विशिष्ट अचिन्त्य शक्ति—जो रस, वीर्य विपाक के विपरीत कार्यक्षम होती है। यथा हरीतकी का रेचकत्व।

४. कर्म (Actions)–द्रव्यगत गुणों के कारण शरीर में परिवर्तन उत्पन्न करने वाला यथा—वमन, विरेचन कृशता-पुष्टि आदि।

द्रव्य गुणादि की सापेक्ष स्थिति

द्रव्य, गुण, रस वीर्य विपाकादि का परस्पर सम्बन्ध क्या है तथा उनकी स्थिति चिकित्सा क्षेत्र में किस प्रकार की हैं, यह एक मूलभूत विषय है, जिसे समझ लेना आवश्यक है। कोई द्रव्य को प्रधान तो दूसरे रसादि को प्रधान मानते हैं। वास्तव में सभी अपने-अपने स्थान तथा उपयोगिता के अनुसार अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। यही नीचे विवेचित किया गया है।

द्रव्य की प्रधानता या उत्कृष्टता

सुश्रुत तथा उसके अनुयायी भदन्त नागार्जुन ने एकीय मत से रस-गुण-वीर्य-विपाकादि प्रधानता तत्तद् प्रकरणों में दिखाई है। अन्त में द्रव्य को ही इनमें सर्वप्रधान सिद्ध किया है। यहाँ द्रव्य का प्रकरण होने से उसका उल्लेख करना आवश्यक है।

"केचिदाचार्या ब्रुवते—द्रव्यं प्रधानं, कस्मात्—(१) व्यवस्थितत्वात्, इह खलु द्रव्यं व्यवस्थितं न रसादय, यथा आमेफले ये रसादयस्ते पक्वे न सन्ति, (२) नित्यत्वाच्च नित्यंहिद्रव्यमनित्या गुणाः यथा—कालादि प्रविभागात्तदेव संपन्न-रसगन्धं व्यापन्न रसगन्धं वावृति। (३) स्वजात्यवस्थानाच्च यथाहि पार्थिवंद्रव्यमन्याभावं न गच्छन्त्येवंशेषाणि, (४) पंचेन्द्रिय ग्रहणाच्च-पञ्चभिरिन्द्रियैर्गृह्यते द्रव्यं न रसादयः, (५) आश्रयत्वाच्च—द्रव्यमाश्रिता रसादयः, (६) आरम्भसामर्थ्यत्वाच्च-द्रव्याश्रित आरम्भ-यथा 'विदारिगन्धादिमाश्रित्य संक्षुद्यविपचेत्' इत्येवमादिषु न रसादिष्वारम्भः, (७) शास्त्र प्रामाण्याच्च-शास्त्रेहि द्रव्यं प्रधानमुपदेशे हि योगानां यथा मातुलुंगाग्निमन्थौ च (सु० सु० अ० ३७) इत्यादौ न रसादय उपदिश्यन्ते-(८) क्रमापेक्षितत्वाच्च रसादीनां रसादयोहि द्रव्यक्रममपेक्षन्ते यथा तरुणे तरुणाः, संपूर्णे संपूर्णाइति, (९) एकदेशसाध्य-त्वाच्च, द्रव्याणामेकदेशेनापि व्याधयः साध्यन्ते, (न रसादिभिः, कस्मात्? निरवयवत्वात्) यथा महावृक्ष क्षीरेणेति। तस्माद्द्रव्यं प्रधानम्"।

पाको नास्ति विना वीर्याद्, वीर्यं नास्ति विना रसात्।
रसोनास्ति विना द्रव्याद्, द्रव्यं श्रेष्ठमतः परम्॥
जन्म तु द्रव्यरसयोरन्योन्यापेक्षिकं स्मृतम्।
अन्योन्यापेक्षिकं जन्म यथास्याद्देह-देहिनोः॥
वीर्यसंज्ञा गुणा येऽष्टौ तेऽपिद्रव्याश्रयास्मृताः।
रसेषु न भवन्त्येते निर्गुणास्तु गुणाः स्मृताः॥
द्रव्ये द्रव्याणि यस्माद्धि विपच्यन्ते न षड्रसाः।
श्रेष्ठं द्रव्यमतो ज्ञेयं शेषाभावास्तदाश्रयाः॥ (सु० सू० अ. ४०)

कई आचार्य अधोलिखित युक्तियों के आधार पर द्रव्य को रसादि से प्रधान मानते हैं:—

(१) **व्यवस्थितत्व**—स्थिर या अपरिवर्तनशील होने से रसादि में परिवर्तन होता रहता है द्रव्य में नहीं। यथा कच्चे आम फल में प्रारम्भ में कषायाम्ल, मध्य में अम्ल तथा अन्त में मधुर रस होता है।

(२) **नित्य होने से**—काल, जलवायु आदि के प्रभाव से रस-गुण-गन्धादि में परिवर्तन होता रहता है। द्रव्य वही रहता है।

(३) **अपनी जाति में ही अवस्थान करने से**—जो द्रव्य पार्थिव है वह पार्थिव ही रहेगा, जलीय नहीं बनेगा। रसादि में परिवर्तन होता रहता है। यथा—दूध मधुर रस को छोड़ कर खट्टा भी हो सकता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(४) पाँचों इन्द्रियों से—इनसे द्रव्य का ग्रहण होता है। रसादि का ज्ञान केवल एक-एक इन्द्रिय से ही होता है। यथा रसका जिह्वा से ही ग्रहण होता है अन्य इन्द्रिय से नहीं।

(५) आधारभूत होने से—रस, रूप, गुणादि द्रव्य के आश्रय पर ही रहते हैं। उससे पृथक् उनकी सत्ता नहीं।

(६) कर्म के प्रारम्भ की सामर्थ्य—द्रव्य में ही है, यथा विदारीगन्धादिगण के द्रव्यों को कूट कर पकावें यह सब कार्य द्रव्यों पर ही आश्रित हैं। रसादि पर नहीं।

(७) शास्त्रों के वर्णन में—इसमें भी द्रव्य को आश्रय मान कर कर्म या प्रयोगों का वर्णन किया जाता है। यथा शोथशमनार्थ बिजौरा तथा अरणी आदि।

(८) क्रमापेक्षी होने से—द्रव्य की अवस्थानुसार ही रसादि उसमें बदलते हैं। यथा तरुण (कच्चे) पदार्थों में रसादि अपूर्ण (अप्रशस्त) होते हैं, पक्वों में सम्पूर्ण।

(९) पृथग्-पृथग् अवयवों के उपयोग होने से—द्रव्यों के एक-एक अंग छाल, दूध, फल आदि का उपयोग चिकित्सा में किया जाता है। यथा थोहर के दूध से कई रोगों की चिकित्सा की जाती है।

(१०) द्रव्य का लक्षण—ही है गुण, रसादि का आश्रयस्थल पदार्थ।

(११) वीर्य—इसके बिना पाक सम्भव नहीं। वीर्य रस के बिना और रस की सत्ता द्रव्य के बिना असम्भव है। जैसे शरीर और आत्मा दोनों का आश्रयाश्रयी भाव सम्बन्ध होने से ही जन्म होता है। वैसे ही रसादि तथा द्रव्य का सम्बन्ध है।

(१२) शीतोष्णादि—ये आठ वीर्य संज्ञक गुण द्रव्य में ही रहते हैं। रसादि में नहीं, क्योंकि गुणों में गुण नहीं रह सकते।

(१३) आहार या औषधि—इन द्रव्यों का शरीर में जो पाक होता है वह तत्तद् द्रव्यों में उपस्थित पार्थिवादि द्रव्यांशों का ही पाक होता है, रसों का नहीं। अतः द्रव्य ही रसादि से श्रेष्ठ है।

गुण प्राधान्यवाद

सुश्रुत ने गुण प्राधान्यवाद का उल्लेख नहीं किया है। आचार्य चक्रपाणि दत्त (११वीं शती) के कथनानुसार सुश्रुत ने रस, वीर्य, विपाक द्वारा ही (इनकी भी गुण संज्ञा है) गुणप्राधान्यवाद का वर्णन कर दिया है। "अथ द्रव्यादि प्राधान्यविचारे कस्माद् गुणा नोद्भाविता इत्याह-रसेषु तु गुण संज्ञा"। किन्तु सुश्रुतानुयायी नागार्जुन ने गुण प्राधान्य का निरूपण किया है। उसकी युक्तियाँ नीचे दी जाती है—

> **"गुणाः प्रधाना इति केचित्", "गुणाद् रसानामभिभवात्",**
> **"बहुधोपयोगात्" "विपाक कारणत्वात्", "बाहुल्यात्",**
> **"अनेक कर्मत्वात्", "महाविषयत्वात्" 'गुणानुगृहीतानां',**
> **"रसानां प्राधान्यात्", उपदेशाददेशादनुमानात्"** (र० वै० अ० १ सू० १२१-१२९)

रसाभिभव—गुण रसों का पराभव कर अपना कार्य करते हैं। यथा गरम जल मधुर रस का कफवर्धकता को दबाकर कफघ्न का कार्य करता है। इसी प्रकार तिक्त रस वाले पदार्थ वातवर्धक होते हैं किन्तु पटोल तथा वृहत्पंचमूल तिक्त होने पर भी वातहर हैं। क्योंकि उनमें उष्ण गुण हैं।

बहुधा उपयोग-उष्ण—शीतादि गुणों (गुणयुक्त पदार्थों) का अभ्यंग, परिषेक स्नानादि अनेक प्रकार से प्रयोग होता है। किन्तु रसो का प्रयोग केवल मुख द्वारा ही है। अनेक रूपों में जिसका प्रयोग हो सके वही प्रधान माना जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विपाक कारणत्व—विपाक का आधार भी गुणों है। यथा शीत, स्निग्ध, गुरु और पिच्छिल गुणों वाले द्रव्य-गुरु विपाकी (मधुर विपाकी) और लघु, रूक्ष, विशद, तीक्ष्ण गुणों के कारण द्रव्यों का विपाक लघु (कटु) होता है। रसों को कर्मशक्ति विपाक पर निर्भर है और विपाक गुणों पर। कारण प्रधान तथा कार्य प्रधान होता है। यथा देहस्थ दोष, धातु और मलों की क्रिया वायु के अधीन होने से वायु प्रधान है; अतः गुण ही प्रधान हैं।

संख्या बाहुल्य—रसों की अपेक्षा गुणों की संख्या अधिक है। अल्पसंख्यकों से बहुसंख्यक प्रधान होते हैं।

कर्मनिकता—रसादि के साथ मिलकर उनके कर्मों में सहायता प्रदान करने के कारण गुणों के अनेक कर्म दृष्टिगोचर होते हैं। अतः वे प्रधान हैं।

विषय बहुलता—गुणों के विषय-द्रव्य अनेक होने से भी वे ही प्रधान हैं, क्योंकि जिसके विषय अधिक होते हैं, वही प्रधान है। यथा इन्द्रियों की अपेक्षा मन।

रसानुग्रह—गुणों से अनुगृहीत (समर्थित) रसों के कर्म में उत्कर्ष आ जाता है। यथा शीत, स्निग्ध, मृदु, पिच्छिल गुणों के कारण और लघुविपाकी होने से घृत मधुर पदार्थों में श्रेष्ठ है। इसी प्रकार अम्ल द्रव्यों में मृदु, शोत तथा लघु विपाक के कारण आमलकी, लवणों में शीत, मृदु, स्निग्ध होने से सैन्धव, कटुरस वाले द्रव्यों में मृदु और गुरु गुण के कारण—पिप्पली, पटोलफल वृष्य, गुरु और पिच्छिल होने के कारण तिक्त द्रव्यों में उत्तम माने गये हैं। अतः गुण ही प्रधान है, क्योंकि अनुग्रहकर्ता सदा प्रधान और अनुगृहीत अप्रधान होता है।

आप्तोपदेश—ग्रन्थों में गुणों का प्रधान रूप से वर्णन किया गया है। यथा गुरु, स्निग्ध, उष्ण द्रव्य वातहर होते हैं।

अपदेश (व्यवहार)—गुणों द्वारा पदार्थ का परिचय दिया जाता है। यथा मरिच तीक्ष्ण हैं। घृत मृदु हैं। गुणों के कारण हो व्यक्ति की पूजा होती है।

"गुणाः पूजास्थानं गुणिषु नचलिंगं न च वयः"॥

अनुमान—कारण से कार्य का अनुमान होता है। शीत, उष्ण आदि गुणों से द्रव्य के पित्त-वात शमनादि कर्मों का अनुमान होता है। अतः गुण प्रधान है।

रस प्रधानवाद

'नेत्याहुरन्ये, रसास्तुप्रधानं कस्मात्।'

(१) आगमात्—आगमोहि शास्त्रमुच्यते, शास्त्रे हि रसा अधिकृताः यथा—"रसायत्त आहार इति, तस्मिंस्तुप्राणाः।" (सु०सू०अ० १) इति,

(२) उपदेशाच्च—उपदिश्यन्ते हि रसाः, यथा मधुराम्ललवणा वातं शमयन्ति। (सु०सू०अ० ४२)

(३) अनुमानाच्च—रसेन ह्यनुमीयते द्रव्यं, यथा—मधुरमिति,

(४) ऋषिवचनाच्च ऋषिवचनं वेदा। यथा किंचिदाज्यार्थं मधुरमसाहरेदिति, तस्माद्रसाः प्रधानं, रसेषु तु गुण संज्ञा। (सु० सू० अ० ४०)।

अनेक आचार्यों के मत में द्रव्य नहीं अपितु रस ही प्रधान है। कारण—(१) आगम (शास्त्र) के अनुसार रस ही प्रधान हैं। जैसा कि कहा है—"आहार रस के अधीन है, रस ही प्राण है। (२) उपदेश—आयुर्वेद में द्रव्यों के गुणों का वर्णन करते हुए रसों द्वारा ही उनका उपदेश किया जाता है। यथा—अम्ल, मधुर और लवण रस वातशामक है। (३) अनुमान से भी रस ही प्रधान सिद्ध होते हैं। रस द्वारा ही द्रव्य का और उसके गुणों का अनुमान किया जाता है। यथा यह मीठा द्रव्य है, यह कड़वा है। (४) ऋषियों के वचन (वेदों) से भी रस की प्रधानता सिद्ध होती है। यथा—यज्ञ के लिए कुछ मधुर (मीठा द्रव्य) लाओ, इत्यादि वचनों में रस को ही प्रधानता दी गई है। (५) रस गुणों के ही भेद हैं अतः रस या गुण प्रधान हैं। द्रव्य नहीं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

"रसानामधिकरात्", तेनोपसंहारात्, तद्व्यापत्तौ शेष व्यापत्तेः, अपदेशात्, नानाविषयत्वात् (र०वै०अ० १)।

नागार्जुन ने रस प्रधानता में निम्न हेतु और दिए हैं :—

अधिकार—शास्त्र द्वारा सर्वत्र रसों का ही अधिकार स्वीकृत किया गया है। रसों द्वारा ही गुण कर्मों की व्याख्या की गई है। छः रसों में ही वमन, विरेचन, संशमनादि कर्म निहित हैं। अतः रस प्रधान हैं। यथा सेना में सेनापति अधिकारी।

उपसंहार—रसों द्वारा ही द्रव्यों का उपसंहार किया जाता है। यथा—कुछ द्रव्यों को गिनाकर यह कहना इसी प्रकार मधुर स्कन्ध में द्रव्य संख्यात होने चाहिये।

व्यापत्ति निमितता—रस के विकृत हो जाने पर द्रव्य भी विकृत हो जाता है तथा उसके विपाकादि भी दूषित हो जाते हैं अतः द्रव्य की उपयोगिता का आधार हो जाने से रस ही प्रधान है।

अपदेश (व्यवहार)—रस ही द्रव्य की विशेषता का निर्देशक होता है। यथा मधुर वाणी, कटु सर्प आदि।

नाना विषयत्व—रस के विषयभूत द्रव्य अनेक होते हैं। यथा—मधुर रस के शर्करा, गुड़, आम्र, इक्षु, आदि।

वीर्यप्रधानता

"वीर्यप्रधानमिति । कस्मात्-तद्वशेनौषधकर्मनिष्पत्तेः।

इहौषधकर्माण्यूर्ध्वाधोभागोभयभाग संशोधन संशमन सांग्राहिकाग्निसंदीपन-पीडनलेखन, बृंहण, रसायन, वाजीकरण, श्वयथुकर, विलयन, दहन, दारण, मादन, प्राणघ्न, विषप्रशमनादीनि वीर्यप्राधान्याद् भवन्ति। तच्च वीर्यं द्विविधं, उष्णं, शीतं च, अग्निषोमीयत्वाज्जगतः। केचिदष्टविधमाहुः, शीतमुष्णं, स्निग्धं, रूक्षं विशदं पिच्छिल (गुरु लघु) मृदुतीक्ष्णं चेति। एतानि खलु वीर्याणि स्वबलगुणोत्कर्षाद्रसमभिभूयात्मकर्म कुर्वन्ति। यथा तावन्महत्पंचमूलं कषायं तिक्तानुरसं वात शमयति उष्णवीर्यत्वात्, तथा कुलत्थः कषायः ! कटुकः पलाण्डुः स्नेहभावाच्च, मधुरश्चेक्षुरसो वातं वर्धयति शीतवीर्यत्वात्, कटुकापिप्पली पित्तं शमयति मृदुशीतवीर्यत्वात्, अम्लमामलकं लवणं सैन्धवं च, तिक्ता काकमाची पित्तं वर्धयति, उष्णवीर्यत्वात, मधुरामत्स्याश्च, कटुमूलक श्लेष्माणं वर्धयति रूक्षवीर्यत्वात्, अम्लं कपित्थं श्लेष्माणं शमयति, रूक्षवीर्यत्वात्, मधुरंक्षौद्रं, च तदेवन्निदर्शनमात्रमुक्तम्। भवन्ति चात्र :—

ये रसा वात शमना भवन्ति यदि तेषु वै।
रौक्ष्यलाघवशैत्यानि न ते हन्युः समीरणम्॥
ये रसाः पित्तशमना भवन्ति यदि तेषु वै।
तैक्ष्ण्यौष्ण्यल घुताश्चैव न ते तत्कर्मकारिणः॥
ये रसाः श्लेष्मशमना भवन्ति यदि तेषु वै।
स्नेहगौरवशैत्यानि न ते तत्कर्मकारिणः।
तस्माद् वीर्यं प्रधानम्। (सु० सू० अ० ४०)

अन्य आचार्यों का मत है कि रस-द्रव्यादि की अपेक्षा वीर्यप्रधान है। क्योकि वीर्य के कारण ही औषधियों के कर्म होते हैं। वमन, विरेचन, संशमन, संग्राहिक, अग्निदीपन पीडन, लेखन, बृंहण-रसायन-वाजीकरण-शोथकर, शोथनाशन, दहन-दारण-मादन आदि कर्म वीर्य के कारण ही होते हैं। यह वीर्य दो प्रकार का ही है। उष्णवीर्य और शीतवीर्य क्योंकि जगत् अग्निसोमात्मक ही है। कई आचार्य आठ प्रकार के वीर्य मानते हैं—शीतोष्ण स्निग्ध, रूक्ष, विशद, पिच्छिल, मृदु, तीक्ष्ण। ये उत्कृष्ट शालि गुण अपने बल से रस और विपाक का पराभव कर स्वकार्य करते हैं। उदाहरणार्थं :—

(१) कषाय रस तिक्तानुरसवाला महापंचमूल उष्णवीर्य होने से वातशामक है।

(२) कषाय रस वाला कुलत्थ, कटु प्याज स्निग्ध होने से वातहर है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(३) ईख का रस मधुर होते हुए भी शीतवीर्य होने से वात को बढ़ाता है।

(४) कटु रस वाली पिप्पली, खट्टा आमला, लवणरस वाला सैन्धव मृदु शीतवीर्य होने के कारण पित्त-शामक हैं।

(५) तिक्तमकोय तथा मधुर रसवाले मत्स्य उष्णवीर्य के कारण पित्तवर्धक है।

(६) कटुरसवाली मूली स्निग्ध होने से कफनाशक और अम्लरस वाला कैथ, मधुरमधु रूक्ष होने से कफहर है। ऐसा क्यों होता है? इसका इसका उत्तर यह है कि यदि :—

(१) वातशामक द्रव्यों में रूक्षता, लघुता और शैत्यगुण हो, तो वे वात को शांत नहीं करते।

(२) पित्त शामकों में उष्ण, तीक्ष्ण, लघुता गुण होने पर वे पित्त को शान्त नहीं करते।

(३) कफ शामकों में यदि स्नेह-गौरव, शीतगुण हों, तो वे श्लेष्मा को शान्त नहीं करते। इस प्रकार ये वीर्य रसादि की अपेक्षा प्रधान हैं।

नागार्जुन ने वीर्य की प्रधानता में निम्न युक्तियाँ दी हैं :--

"वीर्यंप्रधानाद् द्रव्याणाम्, तेन कर्मकरणात्, तुल्यरसगुणेषु विशेषात्, आगमाच्च" (र० वै० अ० १)

वीर्यवान द्रव्यों का ही चिकित्सा में व्यवहार होता है।

कर्मसाधन—वीर्य द्वारा ही द्रव्यों का कर्म होता है।

रसाभिभव—तुल्य रस गुणयुक्त द्रव्यों में वीर्य के कारण ही कर्म वैशिष्ट्य देखा जाता है।

आप्तोपदेश—शास्त्र में "वीर्यतः कर्मसामर्थ्यं द्रव्याणां भेषजो विदुः" कहा गया है। अतः वीर्य ही प्रधान है।

विपाक प्राधान्यवाद

"नेत्याहुरन्ये, विपाकः प्रधानमिति । कस्मात् ?
सम्यग् मिथ्याविपाकत्वात्, इह सर्व द्रव्याण्यवहृतानि।
सम्यग् मिथ्याविपक्वानि गुणं दोषं वा जनयन्ति" ॥ (सु० सू० अ० ४०)

"विपाकस्य प्राधान्यं इत्येके ब्रुवते, तन्निमित्तत्वात्।
प्रशमप्रवर्धनयोः धातूपदेहात्, विपाकापेक्षत्वादितरेषाम्" ॥
(र० वै० सू० १४१-१४४ नागार्जुन)

विपाकाधीन द्रव्य, गुण होता है। द्रव्यों का समाग्नि द्वारा जब सम्यग्पाक होता है, तो गुण और विकृताग्नि द्वारा मिथ्यापाक होने से दोष उत्पन्न होते हैं। आचार्य चक्रपाणिदत्त-हाराणचन्द्रादि का मत है कि सम्यक्पाकी समान-प्रत्ययारब्ध एवं मिथ्यापाकी समान प्रत्ययारब्ध द्रव्यों के गुणदोष विपाक के अनुसार ही होते हैं। यथा सम्यकविपक्व चित्रक अग्निदीपन आदि गुण तथा बद्धविण्मूत्रादि दोष उत्पन्न करता है। इसी प्रकार मिथ्याविपक्व पिप्पली शुक्रजनन रूप गुण तथा क्लेदजनन रूप दोष उत्पन्न करती है। अर्थात् एक ही द्रव्य सम्यग् मिथ्याविपाक के कारण गुण और दोषों को उत्पन्न करता है।

(२) विपाक के अधीन ही दोषों का शमन और प्रकोपन होता है। धातु-उपधातुओं आदि का निर्माण क्रम भी विपाक के द्वारा ही होता है।

सभी आहार और औषध द्रव्य अपने गुण और दोष के लिए विपाक की अपेक्षा करते हैं। अतः 'विपाक' ही प्रधान है।

प्रभाव प्राधान्य

प्रभाव रसादि सबसे उत्कृष्ट है। क्योंकि रसादि द्रव्य के आश्रित है किन्तु प्रभाव तो द्रव्य का स्वरूप ही है। द्रव्य स्वभाव होने से यह सबका आधार है। अतः सर्वप्रधान है। नागार्जुन ने एतदर्थ निम्न युक्तियाँ दी हैं :—

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अचिन्त्यता—दैव प्रतिघातक होने से राक्षस, पिशाच आदि का नाश करता है।

विषप्रतिघात—विषनाश के कारण प्रभावप्रधान है। न केवल प्रयोग से अपितु दर्शन-श्रवण से भी विष नष्ट होता है।

कर्मवैशिष्ट्य—द्रव्यों में रसादि समान होने पर भी यह द्रव्यों में कर्म वैशिष्ट्य उत्पन्न कर देता है।

अद्भुत कर्मों के कारण—वशीकरण, मन्त्रादि द्वारा अद्भुत कर्म किए जाते हैं।

आगत प्रमाण से—आगमों में प्रभाव को ही सर्वप्रधान माना गया है। अतः प्रभाव ही प्रधान है।

द्रव्यादि प्राधान्यवाद की वास्तविकता

द्रव्य, गुण, कर्म, रसादि के साथ-साथ हम तत्तद् की प्रधानता दर्शक युक्तियाँ दे आए हैं। उन्हें उन्हीं के प्रकरण में देखना चाहिए। यहाँ तो केवल उपसंहार कर रहे हैं कि कोई एक पदार्थ नहीं है, अपितु सब ही अपने-अपने स्थान पर उपयोगी हैं। हाँ, जो जहाँ औरों से अधिक बलवान् होता है--वह अन्यों को धर दबाता है। कोई भी एकान्तेन प्रधान नहीं है।

"कषाया ग्राहिणी शीताधातकी, न हरीतकी।
कपित्थं दाडिमे ग्राहि साम्लं, नामलकी फलम्॥
अप्रधानाः पृथक्तस्माद्रसायाः, संश्रितास्तु ते।
प्रभावश्च यतो द्रव्ये 'द्रव्यं' श्रेष्ठमतो मतम्॥ (अ० सं० सु० १८)

कषाय रस होते हुए भी हरड, धातकी के समान ग्राही और शीत नहीं हैं। खट्टा होते हुए भी आमला, अनार और कैथ के समान ग्राही नहीं है। अतः रसादि पृथक्-पृथक् गौण हैं। वे सब द्रव्य के आश्रित रहते हैं, अतः द्रव्य ही प्रधान हैं।

पृथक्त्वदर्शिनामेष वादिनां वादसंग्रहः।
चतुर्णामपि सामग्र्यमिच्छन्त्यत्र विपश्चितः॥
तद् द्रव्यमात्मना किंचित् किंचित्वीर्येर्ण सेवितम्।
किंचिद्रसविपाकाभ्यांदोषंहन्ति करोति वा॥ (सु० सू० ४०)
किंचिद्रसेन कुरुते कर्म, पाकेन चापरम्।
द्रव्यं गुणेन, वीर्येण, प्रभावेनैव किंचन॥
यद्द्रव्ये रसादीनां बलवत्त्वेन वर्तते।
अभिभूयेतरांस्तत्तत् कारणत्वं प्रपद्यते॥
विरुद्धगुणसंयोगे भूयसाल्प हि जीयते।
रसं विपाकस्तौ वीर्यं प्रभावस्तान्यपोहति॥
बलसाम्ये रसादीनां नैसर्गिकं बलम्। (अ० सु० सू० १७)

द्रव्य-गुण-कर्म-रस, वीर्य-विपाक-प्रभाव में से एक-एक को ही प्रधान मानने वाले आचार्य पृथकत्ववादी या ऐकान्तिक (Extremist) हैं। तत्त्वदर्शी विद्वान् लोग चारों को (रसादि को) अपने-अपने विषय में प्रधान मानते हैं। क्योंकि अनेक द्रव्य अपने स्वभाव—पांचभौतिक रचना से, कई वीर्य से, दूसरे रस से, या विपाक से और प्रभाव से और अनेक द्रव्य इनमें से किन्हीं दो से, तीन से या सबसे ही मिलकर अपना प्रभाव दिखाते हैं। द्रव्य तथा गुण-रसादि को पृथक् नहीं किया जा सकता तथा चिकित्सा में ये .एक दूसरे का अनुग्रह करते हैं। अतः एक को प्रधान और अन्यों को अप्रधान मानना गलत है। अतएव आचार्य ने कहा है :—

विरुद्धा अपि चान्योन्यं रसाद्याः कार्यसाधने।
नावश्यं स्युर्विघाताय गुणदोषा मिथो यथा॥ (अ० सु० सू० १७)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भूतोत्कर्ष से द्रव्यों में रसादि की अनेकरूपता :—

रसवीर्य प्रभृतयो भूतोत्कर्षापकर्षतः ।
एकरूपा-विरूपा वा द्रव्यं समधिशेरते ॥
माधुर्य-शैत्य-पैच्छिल्य-स्नेह-गौरव-मन्दता :
सहवृत्या स्थिताः क्षीरे नत्वानूपौदकामिषे । (अ० सु० सू० १७)

द्रव्यों में महाभूतों में या किसी के उत्कर्ष से ये दूसरे की न्यूनता से रस-वीर्य-विपाक एवं मधुरता, शीतता, पिच्छिलता, स्निग्धता, गुरुता और मन्दता एक साथ समान रूप से रहते हैं किन्तु आनूप (सूअर आदि के) तथा औदिक (जलचर प्राणियों) के मांस में मधुरता का रूप भिन्न होता है ।

द्रव्यों की चिकित्सा में उपयोगिता :—

गुणाय उक्ता द्रव्येषु-शरीरेष्वपि ते तथा ।
स्थान-वृद्धि-क्षयास्तस्माद्देहिनां द्रव्यहेतुकाः ॥ (सु०सू० अ० ४१)

बाह्य जगत् में उपलब्ध औषध तथा आहार द्रव्यों के जो गुण कहे गये हैं शरीर में भी उन द्रव्यों के वही गुण समझने चाहिये । क्योंकि देह भी पांचभौतिक द्रव्यों से बना है और औषधाहार द्रव्य भी । वे ही द्रव्य स्वस्वरूप में या परिवर्तित रूप में शरीर में रहते हैं और देह की वृद्धि-पोषण स्थिति और क्षय का कारण बनते हैं । अतः रुग्णावस्था में दोष, धातुओं के क्षय वृद्धि में सहायक होते हैं ।

———

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

द्वितीयऽध्याय

द्रव्य-विज्ञान

द्रव्य ही औषध के गुण और कर्म का आश्रय है। अतः सर्वप्रधान होने से उसका ही वर्णन सर्वप्रथम किया जाता है। वैशेषिक के समान आयुर्वेद पंचमहाभूत तथा--मन, आत्मा, काल, दिशा--इन नौ को द्रव्यं माना गया है। किन्तु जहाँ तक हमारे विषय का सम्बन्ध है—पांच भौतिक स्थूल द्रव्यों का ज्ञान ही पर्याप्त है। क्योंकि 'सर्वं द्रव्यं पांचभौतिकमस्मिन्नर्थे' (च० सू० २६) के अनुसार निघण्टु शास्त्र का सम्बन्ध स्थूल भौतिक द्रव्यों के साथ ही हैं।

द्रव्य का लक्षण—द्रव्यमाश्रयलक्षणंपंचानाम् (र० वै० सू०) रस, वीर्य, विपाक, प्रभाव गुण-कर्म का आश्रय-भूत पदार्थ ही द्रव्य है। अतएव आचार्य भाव मिश्र (१६वीं शती) ने कहा है—रसादीनां पचांनां यदाश्रयभूतं तद्द्रव्यम्। उक्त लक्षण द्रव्यगुण शास्त्र में तो ठीक है किन्तु सर्वत्र लागू न होने के कारण चरक का निम्न लक्षण अधिक मान्य है।

"यत्राश्रिताः कर्मगुणाः, कारणं, समवायि यत्।
तद् द्रव्यम्..(च० सू० १)

जिस पदार्थ में निम्न तीन लक्षण हों, वह द्रव्य हैं।

(१) गुण तथा कर्मों का आधारभूत—द्रव्य में गुण और कर्म समवाय (नित्य) सम्बन्ध से रहते हैं। वे कभी उसके बिना नहीं रह सकते। यथा उष्णता पाचकता-आदि गुण अग्नि, राई, आदि द्रव्यों में ही रहते हैं। उनकी पृथक् सत्ता नहीं।

(२) कारणम्—जो स्वसमान कार्य द्रव्य का (नये द्रव्य उत्पन्न करने का) तथा कर्म का कारणभूत हो। यथा उड़द खाने से शरीर में समगुण किन्तु अन्य द्रव्य मांस की उत्पत्ति होती है। तथा दारुहल्दी से रसौंत की प्राप्ति। इसी प्रकार रेचन रूप कर्म का कारण एरण्ड तैल है।

(३) समवायी—समवायोऽपृथग्भाव, जिससे अलग न हुआ जा सके वह समवाय सम्बन्ध कहलाता है। अर्थात् नित्य या अटूट सम्बन्ध। यथा कपड़ा तथा सूत्र का सम्बन्ध अटूट है। एक के बिना दूसरे की सत्ता नहीं। द्रव्य में गुण और कर्म समवाय सम्बन्ध से रहने हैं। दूसरे शब्दों में द्रव्य उपादान कारण है कर्मों तथा गुणों का।

महाभूतों की उत्पत्ति—प्रत्येक पदार्थ स्थूल पांच भौतिक है, अपभूत (तत्त्व) अपने शुद्ध स्वरूप में अतीन्द्रिय है। शब्द, स्पर्श, रूप-रस-ग्रन्थ-तन्मात्राओं से क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है। ये पाँचों इन्द्रियातीत हैं। स्थूल रूप में दीखने वाला जल, वायु आदि सभी पांच भौतिक पदार्थ हैं। 'भू सत्तायां' सत्ता-अस्तित्व अर्थं वाली 'भू' धातु से भूत शब्द बना है। अर्थात् ये भूत सत्तावान् हैं[1]। सत्तावान् पदार्थ ही 'तत्व' हैं (तत्य-भावः तत्त्वम्) ये तत्व परिमाणवान् (जिन्हें मापा जा सके) तथा परिच्छिन्न (सीमा वाले) होते हैं। अतः आकाशादि को भूत या तत्त्व कहते हैं।। भूतादि (तामस) अहंकार से उत्पन्न तन्मात्राएँ अपरिमाणी तथा अपरिच्छिन्न है। उनमें भूतों के समान विशिष्ट स्वरूपत नहीं है किन्तु केवल अहंभाव (एक दूसरे से पृथकत्व की भावना) मात्र है अतएव एक अहंकार के पांच रूप हो गये हैं।

महाभूतों का उत्पत्तिक्रम भी विशेष योजना के अनुसार रखा गया है। सर्वप्रथम आकाश तन्मात्रा से '(आकाश रूप[2] अवकाश' उत्पन्न होता है जिसमें सर्वभूत रहते हैं। यह स्वयं निष्क्रिय है। जहाँ अवकाश होगा वहाँ गति या हलचल होना स्वाभाविक है। अवकाश में सूक्ष्माणु गतिमान हो उठते हैं। इस प्रकार दूसरा महानभूत वायु (वा-गति-गन्धनयोः) उत्पन्न हो जाता है। जिसकी सत्ता या स्थिति की सिद्धि उसकी गतिमत्ता-चंचलता से ही की जाती है। प्रकृति के

---

1. Element.
2. Etherial Space.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रजोगुण के कारण यह गति उत्पन्न होती है। गतिमान होना ही वायु का आत्म लक्षण है। इस प्रकार अवकाश में गति या तरंगों के कारण घर्षण होता है जिससे ताप तथा प्रकाश की उत्पत्ति होती है। इस अवस्था के परमाणु पूर्वापेक्षा अधिक स्थूल और संहत हो जाते हैं। इस प्रकार अवकाश में गतिमान् द्रव्य (वायु) तथा ताप-प्रकाशमान् द्रव्य (तेजस्) के अवकाश में संयुक्त हो जाने, उनके अणुओं में संहति (compactness) आने लगती है। यही भूतत्व का मुख्य लक्षण है। तेजस् महाभूत सत्व गुण तथा वायु रजोगुण बहुल है अतः दोनों में ही स्थिरता का अभाव है। इस स्थिरता को लाने के लिये जलतत्व उक्त दोनों महाभूतों को संगठित करता है। अपनी स्निग्ध तथा शीतलता से यह रूक्षता तथा उष्णता का विरोधी है। किन्तु गति का नहीं, पुनः पृथ्वीतत्व जो तमोगुण प्रधान है तथा गति का विरोधी है। इस प्रकार संहति या संगठनकारक तत्व जल तथा गतिविरोधी तत्व पृथ्वी के मिलने से प्रथम पांचभौतिक कार्यद्रव्य बनता है। इस पांच भौतिक कार्यद्रव्य से ही स्थूल सृष्टि का निर्माण प्रारम्भ हुआ है जिसमें पृथ्वी आधार का, जल संयोजक का कार्य करता है। अतएव स्थूल सृष्टि के लिए "पंचभूतात्मकं तत्तुक्ष्मामधिष्ठाय जायते" कहा गया है। तथा

"अन्योन्यानुप्रविष्टानि सर्वाण्येतानि निर्दिशेत् ।
स्वे स्वे द्रव्येतु सर्वेषां व्यक्त लक्षणमिष्यते ।। (सु० शा० १)
"अन्ये पुनरस्यान्योन्यानुप्रविष्टत्वमन्यथा व्याचक्षते।
तत्राकाशेऽपि भूमिरणुरूपेणावस्थिता, सूक्ष्मरूपतोय तेजा।
नुगतमारुतस्य संचरणादाकाशे पवन दहन तोयान्यपि बोद्धव्यानि (डल्हण)

अतः समस्त कार्यद्रव्य और पदार्थ पांचभौतिक हैं। जिस पदार्थ में जिसकी अधिकता होती है उस नाम से उसे अभिहित किया जाता है। उदाहरणार्थ-तरलों में ५० % से ६० तक प्रतिशत जलतत्व तथा शेष अन्य द्रव्य है। अम्ल द्रव्यों में (यथा गन्धकाम्लादि) जल के बाद तेजस् भूत की प्रधनता है। इस प्रकार समग्र संसार पांचभौतिक है। इस कार्यरूपस्थूल पांचभौतिक द्रव्य से स्थूल इन्द्रियगम्य द्रव्यों की उत्पत्ति होती है।

स्थूलद्रव्यों की उत्पत्ति--तत्र पृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाशानां समुदायाद् द्रव्याभिनिर्वृत्तिः। उत्कर्षस्त्वभिव्यंजको भवति-इहदं पार्थिवम्, इदमाप्यम्, इदं तैजसं, इदं वायव्यम्, इदमाकाशीयमिति ।। (सु० सू० अ० १४)

द्रव्यों--गेहूँ-गिलोयादि-आहारौषध द्रव्यों-की उत्पत्ति में पृथ्वी आधार का--उपादान कारण का--कार्य करती है। अर्थात् पृथ्वी का परमाणु केन्द्र का कार्य करता है। जिसकी ओर अन्य सब परमाणु आर्कषित होते हैं। तमोगुण प्रधान होने से यह अपेक्षाकृत स्थिर है। जल योनि का कार्य करता है। अपने सरस, स्नेहादि गुणों से सब परमाणुओं का संगठन करता है। इस प्रकार द्रव्य के पाँचों महाभूतों के परमाणुओं को मिलाता (पिण्डितभाव) है। द्रव्यों की विशेषता - कठिनता, मृदुता, विशदतादि शेष तीनों--आकाश, वायु और तेज के कारण होती है। आकाश को यद्यपि निष्क्रिय कहा गया है, तथापि द्रव्यों के विभिन्न परमाणुओं के संयोग, वियोग-संगठन-विच्छेदन--के लिये अवकाश (Space) प्रदान करता है। अतः वह भी द्रव्य आरम्भक है। यही भाव आचार्य इन्दु (अ० सं० सू० १७) ने "आकाशस्यतु शून्यात्मनोऽपि, गुणाश्रयत्वात् पृथिव्यादिवदेवभूतत्वं च, द्रव्यारम्भकत्वं च विज्ञेयम् ।। तथा च तमो भागाधिके द्रव्येऽवयवनिबिड भावाद्यभावेन स्वरूपमजहदेव तमः कारणतां याति।" वांस (वंश) आकाशीय द्रव्य का उत्कृष्ट उदाहरण है।

इस प्रकार स्थूल पदार्थों में पांचोमहाभूतों का मेल पाया जाता है। उसमें यह पृथ्वीभूत है या अग्निभूत हैं--इस प्रकार भूतों की पृथक् सत्ता की पहचान दुर्लभ है। पृथ्वी मूल होने से उसका भाग सभी द्रव्यों में सर्वाधिक रहता है। परन्तु अन्य महाभूतों की प्रधानता या गौणता के अनुसार उन्हें जलीय, आग्नेय (चित्रकादि) वायव्य (कटुतुम्बी आदि) तथा नामस् बांस-(वंश) वेत्रादि संज्ञाएं दी जाती हैं।

द्रव्यों का वर्गीकरण (भेद)

द्रव्य असंख्येय हैं। उन सबका पृथक्-पृथक् ज्ञान प्राप्त करना असम्भव ही है। किन्तु भिन्न-भिन्न प्रतीत होने वाले द्रव्यों में भी कुछ समानता है। अतः इनमें विद्यमान साधर्म्यों के लक्ष्य में रखकर उनका वर्गीकरण किया जा सकता

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

है। किसी भी विषय अथवा शास्त्र के वैज्ञानिक अध्ययन के लिये तदभिधेय पदार्थ का श्रेणीकरण आवश्यक होता है। इस प्रकार वर्गीकरण से सब विषय व्यवस्थित हो जाता है जिससे विभिन्न पदार्थों का साधर्म्य और वैधर्म्य पूर्णतः परिलक्षित हो जाता है और उनका ज्ञान सरलता से हो जाता है। द्रव्यों का वर्गीकरण अनेक प्रकारों से किया जाता है। यथा :—

१. उत्पत्ति के अनुसार
२. संगठन (निष्पत्ति) के आधार पर
३. प्रयोग तथा प्रभाव भेद से
४. रोगानुसार
५. रस वीर्य विपाक भेद से
६. गुण और कर्मों के अनुसार
७. स्वरूप (आकृति) के आधार पर। यह वर्गीकरण आधुनिक उद्भिद् शास्त्र की विशेषता है। अतः उसी में इसका वर्णन किया गया है। शेष का वर्णन नीचे किया जाता है।

(क) **योनि तथा उत्पत्ति के अनुसार**—तत्पुनस्त्रिविधं जांगमौद्भिद्पार्थिव,

(१) **जंगम-गतिशील**—जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकें। यथा प्राणिवर्ग। इन्हें सेन्द्रिय (चेतन) भी कहा जाता है। इन्द्रियों की सत्ता इनकी अपनी विशेषता है। इनमें पुनः चार निम्न अवान्तर भेद पाये जाते हैं।

(अ) जरायुज (जरायु से उत्पन्न—मनुष्य, पशु)
(आ) अण्डज अण्डे से उत्पन्न साँपादि।
(इ) स्वेदज (पसीने या मल से उत्पन्न होने वाले 'जूँ' आदि)
(ई) उद्भिज्जा—वर्षा में पृथ्वी फोड़कर उत्पन्न होने वाले मण्डूकादि। भूनाग, इन्द्रगोपादि।

(२) **औद्भिद्**[1]—'उद्भिद्य पृथ्वीं जायन्त इति।'

औद्भिद—पृथ्वी को फोड़कर निकलने वाले, वृक्ष, लता, गुल्म (झाड़ियाँ) आदि वनस्पतियों को औद्भिद कहते हैं। ये भी चार प्रकार के हैं।

(अ) वनस्पति—बिना पुष्प[2] (गुप्त पुष्प) के फलने वाली यथा क्षीरी वृक्ष पीपल, गूलर, वटादि।
(आ) वानस्पत्यः या वृक्ष—पुष्पों के बाद फल वाले वृक्ष आम जामुनादि।
(इ) वीरुध—प्रतान (सूत्र) वाली लताएँ तथा झाड़ियाँ यथा गिलोय, जपादि।
(ई) औषधियां[3]—फलों के पकने तक ही जिनका जीवन रहता है। यथा तिल।

इनकी स्थावर संज्ञा भी है। अर्थात् इनमें एक स्थान तक दूसरे स्थान में जाने की शक्ति नहीं है। यद्यपि ये शाखा प्रशाखाओं द्वारा अपने मूल स्थान से बहुत-बहुत दूर तक फैल जाते हैं। तथापि मूल स्थान नहीं छोड़ सकते। ये भी चेतन है किन्तु इनमें प्राणियों के समान इन्द्रियाँ नहीं होती है। अतएव उन्हें "अन्तश्चेतन" कहा जाता है। चेतन होने पर भी एक स्थान स्थिति इनका आत्मलिंग है।

(३) **भौमम् (जड़) या पार्थिव**—पृथ्वी में पाए जाने वाले धातु, अधातु, मणियें, मनःशिला, पारदादि। इनमें भी खनिज धातु, अधातु ये भेद पाये जाते हैं।

---

१. यद्यपि मण्डूकादि के लिए भी इस संज्ञा का प्रयोग किया गया है तथापि वह यौगिक रूप में अपवाद स्वरूप ही समझना चाहिये। यहाँ रूढ़ि के रूप में प्रयोग किया गया है।
२. अपुष्प का अर्थ "गुह्यपुष्प" शब्दार्थ चिन्तामणि, वाचस्पत्यबृहदभिधानादि में बताया गया है।
३. दवाइयों के अर्थ में औषध शब्द का प्रयोग होता है। इसकी व्युत्पत्ति उष दाहे, ओषेण भूताग्निना आफलपाकादाधीयते इति औषधि-फल पाकान्ताः। योगेन्दु
४. वनस्पति शास्त्र के विस्तृत ज्ञान के लिए लेखक कृत "औद्भिद् शास्त्र" देखें।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आचार्य सुश्रुत ने बड़े ही सरल शब्दों में इन भेदों का वर्णन किया है। जंगमाःखल्वपि चतुर्विधा-जरायुजाण्ड-जस्वेदजोद्भिज्जाः। तत्र मनुष्य पशु व्यालादयो जरायुजाः। खग, सर्पसरीसृप प्रभृतयोऽण्डजाः। कृमिकीट पिपीलिकाः प्रभृतयः स्वेदजाः। इन्द्रगोप, मण्डूक प्रभृतय उद्भिज्जाः। तासां स्थावराश्चतुर्विधा वनस्पतयः, वृक्षाः, वीरुधः औषधय इति। तासु अपुष्पा (गुह्यपुष्पा) प्रतानवत्य स्तम्बिन्यश्च वीरुधः। फलपाकनिष्ठा औषधय इति।

(सु० सू० अ०)

(ख) प्रकृति के अनुसार—द्रव्य दो प्रकार के हैं। (१) आहार द्रव्य (२) औषध द्रव्य। गेहूँ चना-दूधादि द्रव्यों में प्रकृति ने रसों (पोषक पदार्थों) को प्रधानता दी है। अर्थात् उनकी प्रकृति ही रस प्रधान है। औषध द्रव्यों—मरिच-कस्तूरी आदि में वीर्य प्रधान है। अर्थात् उनमें पोषक तत्वों की प्रबलता न होकर विशेष प्रकार की शक्ति पाई जाती है। इस वीर्य या शक्ति के अनुसार ये द्रव्य तीन प्रकार के होते हैं—तीक्ष्णवीर्य, मध्यवीर्य और मृदुवीर्य पुनश्च इनमें तारतम्य तीक्ष्णतम, तीक्ष्णतर, तीक्ष्ण इस प्रकार प्रत्येक के तीन-तीन भेद होते हैं। **द्रव्यं तावद् द्विविधं वीर्यप्रधान-मौषधद्रव्यं।**

रसप्रधानमाहारद्रव्यंच। तत्रौषधद्रव्यं त्रिविधं
वीर्यभेदात्-तीक्ष्णवीर्यं, मध्यवीर्यं 'मृदुवीर्यं चेति॥'

(चक्रपाणिदत्त च० सु० अ० २।१७ में)

(ग) प्रभावभेद से—शमनं कोपनं स्वस्थहितं द्रव्यमितित्रिधा (अ० स० सू० अ० १) द्रव्य तीन प्रकार के हैं।

(अ) शमन—कुपित दोषों तथा रसों या धातुओं को शान्त करने वाला द्रव्य शमन कहलाता है। ये स्वप्रभाव से ही दोषादि को शान्त करते हैं। यथा, आमला, दुरालभा, त्रिदोष शामक है। आमले के लिए यद्यपि 'हन्तिवातं तदम्लत्वात्' (सु० सू० अ० ४६) द्वारा रस विमान कहा गया है तथापि-अम्लादि विरोधी गुणों द्वारा पित्तादि कोप न करके वह शमन ही करता है। यह द्रव्य प्रभाव है।

(आ) कोपन या धातु प्रदूषक—कुछ पदार्थ स्वभाव से ही दोष और धातुओं को दुष्ट करते हैं। यथा, विष, यवक और मन्दक (कच्चा दही)। उचित मात्रा में विशेष प्रकार से प्रयोग करने पर कभी-कभी विषादि रोगनाशक भी सिद्ध होते हैं। तथापि प्रायः स्वभाव से दोष तथा धातुदूषक ही हैं।

(इ) स्वस्थहितम्-रक्तशाली—गेहूँ, दूधादि पदार्थ सदा ही स्वास्थ्य के लिए हितकर होते हैं। अत्यन्त अपथ्य करने पर ही कुछ हानि करते हैं साधारणतया नहीं।

(घ) प्रभाव के समान रसवीर्य विपाक भेद से द्रव्यों का वर्गीकरण किया जाता है। रस के अनुसार मधुरवर्ग, अम्लवर्ग, कटुवर्ग, लवणवर्ग, तिक्तवर्ग, कषायवर्गादि।

द्रव्यगुणविज्ञानकार—श्री यादव जी त्रिकम जी अम्बाचार्य ने रसों के छः भेद ही बताएँ हैं किन्तु, वह शास्त्र-दृष्टि से अपूर्ण है। भगवान चरक ने कहा है "भेदश्चैषां त्रिषष्टिविधविकल्पों द्रव्य देशकाल प्रभावाद् भवति, तमुपदेश्यामः।" तथा

इति त्रिषष्टिद्रव्याणां निर्दिष्टारससंख्यया।

(च० सू० अ० ३६। १४, २२)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विशेष विवरण रस प्रकरण में देखें। इस प्रकार रसों के अनुसार ६३ प्रकार के द्रव्य हैं।

(ङ) वीर्य के अनुसार, आठ प्रकार के द्रव्य हैं—

(१) गुरुवीर्य (२) लघुवीर्य (३) स्निग्धवीर्य (४) रूक्षवीर्य (५) मृदुवीर्य (६) तीक्ष्णवीर्य (७) शीतवीर्य (८) उष्णवीर्य

(च) विपाकानुसार—मधुरविपाकी, कटुविपाकी (लघुपाक)

(छ) कर्म के अनुसार द्रव्यों के अनेक भेद होते हैं। द्रव्य का जो भी कर्म या प्रभाव शरीर पर होता है, उसी के अनुसार उनका वर्गीकरण किया जाता है। यथा, विरेचक गण, वमन या उलटी कराने वाले द्रव्यों को वामक वर्ग, स्वेदल वर्ग आदि। आचार्य सुश्रुत ने—ऊर्ध्वभागहर, अधोभागहर, उभयतोभागहर, वातसंशमन, पित्त संशमन और कफ संशमन —ये 6 वर्ग किये है (सु० सू० ३९)। कर्मों के अनुसार द्रव्यों के इतने अधिक वर्ग है कि उनका वर्णन स्वतन्त्र रूप से कर्म प्रकरण में किया गया है। जितने कर्म उतने ही वर्ग द्रव्यों के होते हैं।

द्रव्यों के आत्मलक्षण : गुण तथा कार्य

संगठनानुसार वर्गीकरण

रोगों में होने वाली पाँचभौतिक द्रव्यांशों तथा दोषों की विषमता को पुनः समता पर लाना ही चिकित्सा है। एतदर्थ जिस-जिस महाभूत की न्यूनाधिकता होती है, उस-उस महाभूत का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जाता है। अतः, द्रव्यों की पाँचभौतिक रचनानुसार उनकी पहचान होनी चाहिए कि प्रमुख द्रव्य पार्थिव है, आप्य है या आग्नेय है। उसके लिए तत्तद् महाभूत का अपना विशिष्ट लक्षण (स्वलक्षण या आत्मलिंग) क्या है और उसके गुण तथा कार्य क्या हैं, यह जानना चाहिए।

"तत्र स्थूल-सार-सान्द्र-स्थिर-गुरु-कठिन गन्धबहुलमीषत् कषायं प्रायशो मधुरमिति पार्थिवम् तत् स्थैर्य-बल-गौरव संघातापचयकरंविशेषतः, स्वाधोगतिस्वभावमिति। शीत स्तिमित-स्निग्ध-मन्द-गुरु-सर-सान्द्र-मृदु-पिच्छिलं, रस बहुलमीषत्कषायाम्ललवणं मधुररसप्रायमाप्यं, तत् स्नेहन-आल्हादन-क्लेदन-बन्धन-विष्यन्दन-करमिति। उष्ण-तीक्ष्ण-सूक्ष्म-रूक्ष-स्वर-लघु-विशदं रूपबहुलमीषदम्ललवणं कटुक रस प्राप्यं विशेषतश्चोर्ध्वगतिस्वभावमिति तैजसम्। तद्दहन-पचन-दारण-तापन-प्रकाशन-प्रभावर्णकरमिति। सूक्ष्म-रूक्ष-खर-शिशिर-लघु विशदं (विकाशीव्यवायी, अ० सं० सू० ७)।

स्पर्शं बहुलमीषत्तिक्तं विशेषतः कषायमिति वायवीयं तद्वैशद्यं लाघव-ग्लपन-विरूक्षण, विचारणकरमिति श्लक्ष्ण, सूक्ष्म, मृदु, व्यवायी विशद-विविक्तमव्यक्तरसं शब्दबहुलमाकाशीयं तन्मार्दव-शौषिर्यकरमिति॥

(सु० सु० अ० ४१)

उक्त गुणों तथा कार्यों का वर्णन नीचे लिखी तालिका में किया गया है। इससे छात्रों को स्मरण में सुविधा रहेगी तथा विषय भी स्पष्ट रहेगा। इन गुणों की व्याख्या गुण प्रकरण में की गई है।

उक्त पाँचभौतिक संगठन तथा कर्मों के स्मरणार्थ नागार्जुन का निम्न सूत्र उपयोगी है—

"बृहण, क्लेदन, पचन, कर्षण विवरणानि, तेभ्यः।
संघाताऽल्हादन, प्रकाश, शैध्य-सौषिर्याणिच॥ (र०वै० १)

ये क्रमशः पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश के गुण कर्म हैं।

निम्न तालिका से उक्त वर्गीकरण सुस्पष्ट और सरल हो जाता है—

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

द्रव्यों के गुण-कर्म-रस तथा दोषों के साथ सम्बन्ध

वर्ग-आत्मलक्षण	गुण	कर्म	रस-विपाक	दोष	प्रभावज कर्म
पार्थिव द्रव्य (संघातत्व)	स्थूलः, सारः, सान्द्र, मन्द, स्थिर, गुरु कठिन, गन्ध, बहुलम्	स्थैर्य, बल, गौरव, संघातकरम्	मधुर, ईषत् काषाय-रस, गुरु, (मधुर-विपाक)	वातशामक, कफवर्धक,	रेचन अधोगति स्वभाव तथा गुरु होने से, बृंहण, उपचयकारक होने से
आप्यद्रव्य (आल्हादन)	सान्द्र, मन्द, सर, गुरु, शीत, स्निग्ध, पिच्छिल, रसबहुल,	स्नेहन, आल्हादन, क्लेदन, बन्धन, विष्यन्दकर,	प्रायशः मधुर, ईषत्, लवण, काषायः गुरु पाक	पित्तशामक वातशामक कफवर्धक	,, ,, ,,
तैजस द्रव्य (प्रकाश)	सूक्ष्म, तीक्ष्ण, लघु, उष्ण, रूक्ष, विशद, खर, रूपबहुलम्	दहन, पचन, दारण, तपन, प्रकाशन, प्रभा वर्ण कारक	प्रायशः ईषत्, कटु, लवण अम्ल, लघु (कटु) विपाक	वातकफ शामक पित्तवर्धक लेखन	दीपन, गुणसाम्यता से, वामक, ऊर्ध्वगतित्वात् तथा लघुत्वात् लेखन ,,
वायवी द्रव्य (त्वरा-क्षिप्रकारित)	सूक्ष्म, लघु, शीत, रूक्ष, विशद, खर, स्पर्शबहुल ।	वैशद्य, लाघव, ग्लपन, विरुक्षण, विचारण-करम्	प्रायशः कषाय, ईषत् तिक्त, लघु-विपाक	पित्तकफ नाशक वातकारक	,, सांग्राहिक, शोषक लेखन होने से
आकाशीय द्रव्य (विवरण)	सूक्ष्म, व्यवायी, विविक्त मृदु, विशद, श्लक्ष्ण, अव्यक्तरस, शब्दबहुलम्	मार्दव, सौषिर्य लाघवकरम्	अव्यक्त रस, लघुविपाक	वातवर्धक कफशामक	संशमन

प्राचीनों द्वारा कृतद्रव्यों का गुणकर्मात्मक वर्गीकरण

आयुर्वेद के प्राचीन आचार्यों ने वनस्पतियों का अध्ययन कर रचना, तथा कर्मों के अनुसार वर्गीकरण किया है। यह वर्गीकरण आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से आधुनिक वर्गीकरण की अपेक्षा अधिक उपयोगी है। अतः इसका जानना अत्यावश्यक है। भाव मिश्र ने इस प्रकार के वर्गीकरण का उत्तम प्रयास किया है। आचार्य चरक तथा सुश्रुत ने अपने समय में द्रव्यों का रचनानुसार वर्गीकरण किया है।

चरकोक्त वर्गीकरण का आधार—प्रायः आहार द्रव्यों का ही वर्गीकरण इस दृष्टि से किया गया है। औषध द्रव्यों का वर्गीकरण कर्मानुसार किया गया है। जिसका नीचे उल्लेख किया गया है।

(१) चरकीय वर्गीकरण—१. शूक धान्य—शालि, यवादि
२. शमी धान्य—माष, मुद्गादि
३. शाक—पत्र, कन्द, फलशाकादि
४. फल—मृद्वीका, द्राक्षादि
५. हरित—आर्द्रक, निम्बुकादि
६. मद्य—आसव, अरिष्टादि
७. जल—दिव्य, भौमादि
८. इक्षु—इक्षुरस, गुड़, शर्करादि
९. गोरस—पंचगव्य
१०. कृतान्न वर्ग—मण्ड, पेयादि
११. आहारोपयोगी—तैल, लवणादि
१२. मांस के योनि भेद से अनेक उपवर्ग किए गए हैं—यथा, प्रसह, आनूपादि।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सुश्रु तोक्त वर्गीकरण का आधार

आचार्य सुश्रुत ने द्रव्यों को द्रव और 'अन्न' इन दो वृहत् वर्गों में विभाजित कर पुनः अनेक वर्गों में विभक्त किया है। उसके सूत्रस्थान में ४५ तथा ४६ अध्यायों में इनका विशद् वर्णन देखें। यहाँ संक्षेप में दिग्दर्शन कराया गया है।

(अ) द्रव द्रव्य वर्ग

१. जल वर्ग	२. क्षीर वर्ग	३. तैल वर्ग
४. मधु वर्ग	५. क्षीर वर्ग	६. इक्षु वर्ग
७. दधि वर्ग	८. मद्य वर्ग	९. घृत वर्ग
१०. मूत्र वर्ग		

(आ) अन्न वर्ग

१. शालि धान्य	२. कुधान्य	३. वैदल
४. पुष्प	५. मांस वर्ग (इसके कई अवान्तर भेद हैं।)	६. फल वर्ग
७. शाक वर्ग	८. कन्द वर्ग	९. लवण वर्ग
१०. क्षार वर्ग	११. धातु वर्ग	१२. रत्न वर्ग
१३. कृतान्न वर्ग।		

वक्तव्य—चरक और सुश्रुतोक्त कर्मानुसार औषध द्रव्यों का वर्गीकरण रोगानुसार द्रव्यों के वर्गीकरण में समाविन्ट कर दिया गया है। आगे देखें।

द्रव्य भेद (उत्पत्ति के अनुसार) द्रव्यों की भेद प्रदर्शक तालिका

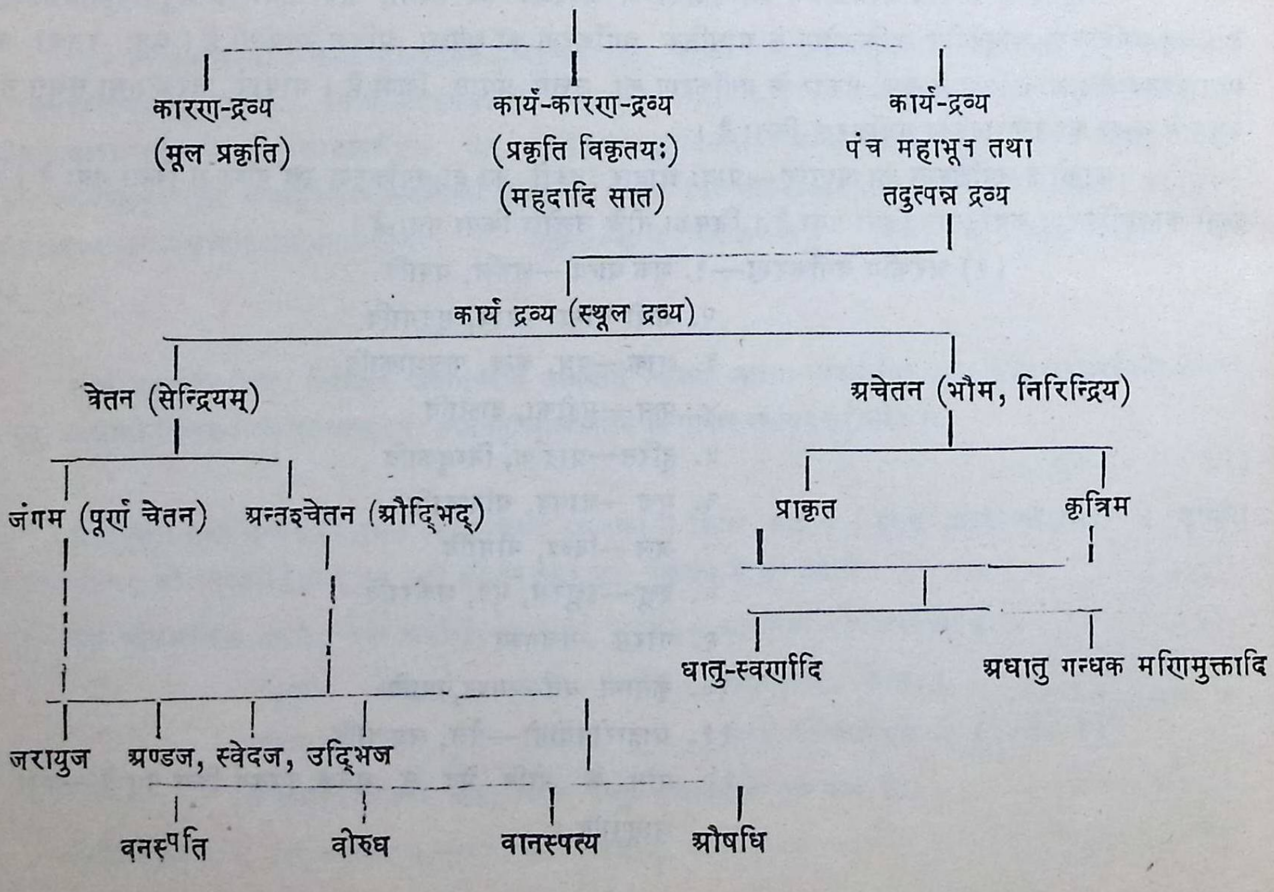

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रभाव तथा प्रयोग के भेद से

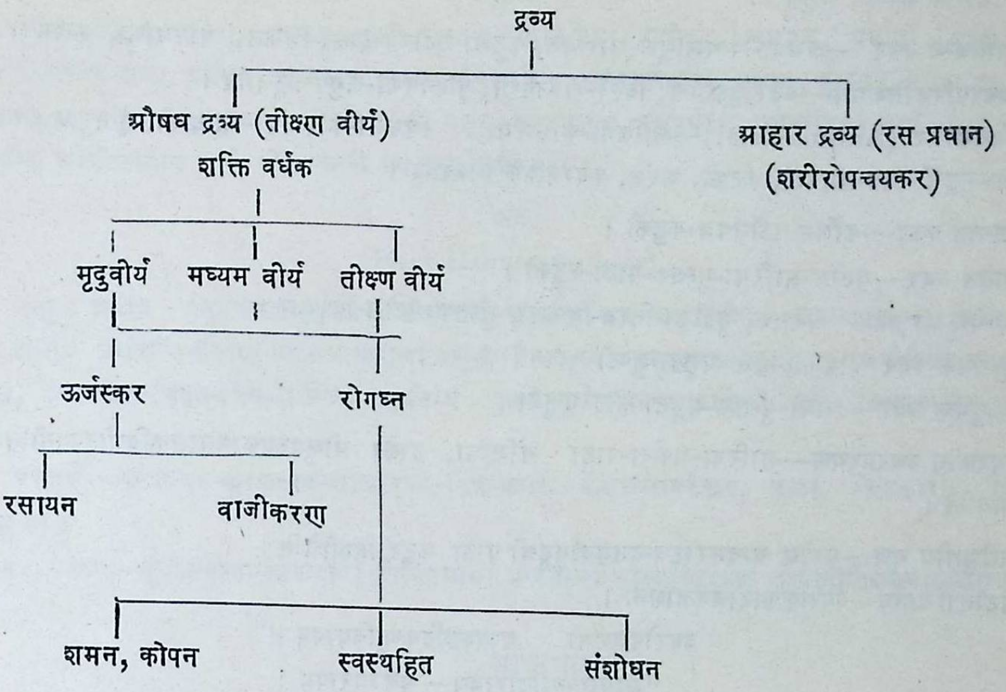

रोगानुसार द्रव्यों का वर्गीकरण

ज्वरहर

(Antipyretic)

आमपाचक—मुस्तक, पर्पट, उशीर, चन्दन, धनियाँ, बृहतीद्वयम्, पाठा।

पाचन—गुडूची, किरात, शालपर्णी, पृश्निपर्णी रास्ना, वृक्षादनी, दारुहरिद्रा, सरल, एलवालुकम्।

ज्वरे-तृणा-दाहहर—कमल, अमृता, पटोल, बदर, मृद्वीका-सारिवा-मुस्त-चन्दन, परुषक, आमलक, ह्रीबेर, शर्करा, दुरालभा, प्रियंगु।

पित्त-ज्वरहर—त्रायमाणा, शतपुष्पा-हरेणु, कलिंग, कट्फल, कटुरोहिणी, मुस्त-पर्पट-किरात-तिक्त, सारिवा-द्राक्षा-अमया, निम्ब, कर्पूर, धात्री-काश्मरी, आरग्वध,।

जिह्वा जड़ता—मातुलुंग केशर-मधु।

कफज्वर—मातुलुंग, शिफा-शुण्ठी-वचा-ब्राह्मी-पिप्पली-पिप्पलीमूल, चित्रक-निम्ब, हरिद्रा, कटुकी, अतिविषा, कुष्ठ-इन्द्रयव, शटी, पटोल, पुष्कर मूल, बृहती-त्रिकटु-त्रिफला-मूर्वा, करंजद्वयम्।

वातज्वर—नागर-मुस्तक-दुरालभा-लघुपंचमूल, कुष्ठ, पुष्करमूल,'गुडूची, त्रिवृत, पटोल।

वातपैत्तिक ज्वर—द्राक्षा-मधूक, काश्मरी-लोध्र, मधुक, सारिवा-मुस्ता, आमलकी ह्रीबेर, पद्मकेसर, परुषक-नीलोत्पल।

वातकफज ज्वर—पुष्करमूल, हरीतकी, कंटकारी, कुस्तुम्बुरु, कतृण, शुण्ठी, कट्फल, पर्पट, वचा, भारंगी, पिप्पली-पाठा-तिक्ता-वत्सक-आरग्वध।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कफपैत्तिक ज्वर—व्याघ्री-देवदारु, हरिद्रा-मुस्तक-पटोल, कटुका-पुष्करमूल, निम्बत्वक्-दशमूल-पाठ, भारंगी पुनर्नवाब्दय, गोरक्ष कर्कटी, अमृतं।

सविबन्ध ज्वर—अभया-पिप्पलीमूल-आरग्वध, कटुका-उदीच्य-द्राक्षा-त्रिफला, त्रायमाणा, काश्मरीफल।

ज्वरेपरिकर्तिकायी—बदर-वृक्षाम्ल, बिल्व-शालपर्णी, पृश्निपर्णी-लघुपंचमूलादि।

विषमज्वर (Antimalarial)—नीलिनी-काकजंघा, त्रिफला-काकजंघा-ब्रह्मदण्डी,-भृंगराज-अगस्त्य पत्र, स्वरस-पुनर्नवा-गुडूची-विष-सप्तपर्ण, कंटकी, करंज, कदम्बत्वक् निम्बादि।

सन्तत ज्वर—कलिंग-पटोलपत्र-कटुकी।

सतत ज्वर—पटोल-सारिवा-मुस्तक-पाठा-कटुकी।

अन्येद्युष्क ज्वर—वरसक, मृद्वीका-निम्ब-त्रिफला, मुस्तक पटोल-पिप्पली।

तृतीयक ज्वर—किराततिक्त-अमृता-शुण्ठी-चन्दन।

चातुर्थक ज्वर—धात्री-मुस्तक-अमृता-क्षौद्र धत्तुरा।

चरकीय ज्वरहरगण—सारिवा-शर्करा-पाठा मंजिष्ठा, द्राक्षा पीलुपरुषकामपालकबिभीतकानीति दशेमानि ज्वरहराणि भवन्ति।

सौश्रुतीय गण—पटोल चन्दनरक्तचन्दनमूर्वागुडूची पाठा कटुरोहिणीचेति।

पटोलादिगण— पित्तकफारोचकनाशनः।

ज्वरोपशमनो व्रण्यश्छर्द्रिकण्डुविषापह॥
"आमलक्यादिरित्येष— सर्वज्वरापह।
चक्षुष्यो दीपनो वृष्य—कफारोचकनाशन।

ज्वरातीसार शामक

आमदोष पाचक—पाठा-इन्द्रयव-मुस्तक-पर्पट-किराततिक्त, गुडूची-शुण्ठी-अतिविषा-ह्रीबेर-बिल्व धान्यक-सुगन्ध वाला-कुटज-मंजिष्ठा-मोचरस-लघुपंचमूल-यवासा-देवदारु-यमानिका-उशीर कपित्था- जम्बु-आम्र - हरिद्रा-वटशुंगा-धातक दाडिमत्वक् चित्रक-विडंग-दाडिमफलत्वक्।

अतिसार
(Diarrhoea)

दीपन पाचन—ह्रीबेर-आर्द्रक-मुस्तक-पर्पट, शालपर्णी-पृश्निपर्णी-वृहती-कंकटकारिका-पाठा-चित्रक-नागर-बिल्व दाडिम-पंचकोल यमानी अतिविषा-प्रतिविषा-वचा-चांगेरी।

ग्राही-स्तम्भन—जम्बु-आम्रफलमज्जा-दाडिम, बिल्व। कुटजत्वक्-रसाञ्जन-नागकेसर, लोध्र प्रियंगु-लाजवन्ती-हिज्जल पत्ररस-अंकोठमूल-बब्बूल किसलयरस, बदरी शल्लकी, शाल्मली-शालनिर्यास-मधूक, धातकीपुष्प-दहि-पिप्पली-वृक्षाम्ल-विडंग-लवणत्रय-हिंगु-अजमोदा-कपित्थ।

चरकीय गण—प्रियंग्वनन्ताम्रास्थिककट्वंग लोध्रमोचरस, समंगाधातकीपुष्प पद्मकेशर योजनवल्योदीर्घमूला चेति। अम्बष्ठाधातकीकुसुम समंगाकट्वंग, मधुर बिल्वपेशिका शाबरलोध्रपलाश नन्दीवृक्षाः, पद्मकेशरापि चेति। गणौ-प्रियंग्वम्बष्ठादी पक्वातीसारनाशनौ। सन्धानीयौहितौ पित्ते व्रणानांचापि रोपणौ।

प्रवाहिका
(Dysentery)

बालबिल्व, शुंठी, पिप्पली, गुड़, एरण्डतैल, तिलकल्क, दधि, लोध्र, ईसबगोल, तुख्ममलंगा, बदरीपत्र, बिल्वादि चूर्ण, जातीफलादि चूर्ण, जायफल, कुटज, घनवटी, श्योनाकपुटपाक, कटुजावलेह। चांगेरी कपित्थ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संग्रहणी
(Sprue)

कपित्थ, बिल्व, चांगेरी, दाडिम, शुण्ठी, मुस्तक, अतिविषा, उदीच्य, धान्यक, यमानी, शुण्ठी, पंचकोल, मातुलुंगं। पंचपल्लव-जम्बु, दाडिम, शृंगाटक, पाठा, कंचटपत्र। भल्लातकक्षार, मुस्तक, इन्द्रयव, रसाञ्जन, कुटजात्वक् अभया धातकी, चतुर्जातकं, सुधाकाण्डं, अर्कवार्ताकु, मसूर, कल्याणगुड़, रसपर्पटी, वृहन्नयिका चूर्ण, जातिफलादि चूर्ण लवंगाम्रकयोग, जाजीफलादि चूर्ण, पीयूषवल्ली रस, कर्पूरादि वटी।

अर्श
(Piles Haemorrhoides)

बाह्य प्रयोग—स्नुहीक्षीर-अर्कक्षीर, कोशातकी-आर्द्र हरिद्रा- कटुतुम्बीपत्र -करञ्जत्वक्-तुम्बी-बीज-लांगली।

अन्तः प्रयोग—यवानी-तक्र-चित्रकमूलात्वक्-दन्ती - तिल - भल्लातक-सगुड़ाभया-पंचकोलेर्जोतक-हरीतकी-यवक्षार, त्रिवृत, बिडलवण-त्रिवृत-त्रिफला-निम्ब-महानिम्ब फल-हिंगु-देवदारु-कटुरोहिणी-विडंग बिल्व-कलिंग-सुवर्चला-शटी, पूतीक।

रक्तार्श—रसाञ्जन-कुटजत्वक्-लोध्र-कृष्ण-तिल-कमल केशर-नागकेशर, पाठा, कंटकारी, प्रियंगु-जीवन्ती क्षीरोवृक्ष शुंगा।

चरकीयगण—कुटजबिल्वचित्रकनागरातिविषामया धन्वयासक दारुहरिद्रावचा चव्यानीतिदशेमान्यर्शोघ्नानिभवन्ति

अग्निमान्द्य
(Loss of Appetite-Dyspepsia)

दीपन—पंचकोल,-अम्लवेतस् - मरिच-अजमोद-भल्लातकहिंगु-विडंग-मूर्वा-गुडूची-वचा-मुस्तक-पटोल-हरेणुका-एलाद्वयम्-जीरकत्रितय-सर्षप-अतिविषा-कुटकी-पंचलवण-यवानी-आर्द्रक दाडिम-वृक्षाम्ल-चिञ्चा-धान्यक-पूतिहागजपिप्पली-चतुर्जातक-अर्कमूल, गजपिप्पली-कलवञ्जिका-सुधाकाण्ड, अभया, चविका, तक्र-चांगेरी।

तीक्ष्णाग्नि (भस्मक) शामक—दुग्ध-नारीस्तन्य, उदुम्बर त्वचा, अपामार्ग, तण्डुलीय।

चरकीय गण—(i) पिप्पली पिप्पलीमूल-चव्यचित्रक, शृंगवेराम्लवेतसमरिचाजमोदाभल्लातकास्थि हिंगुनिर्यासा इतिदशेमानि दीपनीयानि भवन्ति।

(ii) नागर चव्यचित्रक विड़ंग गुडूचीवचामुस्तपिप्पली, निम्ब इन्द्रवारुण आदि ऊर्ध्वभागहरद्रव्य।

विदग्धाजीर्ण—द्राक्षा-सिता-मधु-अभया हिंगु-कणा सैन्धवादि।

विष्टब्धाजीर्ण— मधु-हिंगु, त्रिकटु-सैन्धव-धान्यकां-नागर-पथ्या, सौवर्चललवण-इन्द्रायण कटुतुम्बी यवानी चतुष्टय-जीरकत्रय।

विसूचिका—कुष्ठ-करंजफल-बिल्वनिम्ब, गुडूची-कुटज-अभ्रक-हरिद्रा पत्र-रास्ना-अगुरु-शिग्रु वचा, शतपुष्पा-लवंग-जातीफल-मुस्तक-रक्त मरिच, रसोन, पलाण्डु।

अरुचि (हृद्य)
(Anorexia)

आम्र-आम्रातक-लकुच-करमर्द-वृक्षाम्ल, अम्लवेतस् दाडिम-राजबदर-बदर-मातुलुंग-निम्ब-चिंचा, चतुर्जातक-नागरंग।

चरकीय गण—आम्राम्रातकलकुच करमर्दवृक्षाम्लाम्लवेतस-कुवलबदर दाडिम मातुलुंगानीति दशे-मानि हृद्यानि भवन्ति। सौश्रुतीय-परुषकादि गण।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उदरकृमि
(Intestinal Worms)

पारसीकयवानिका-अजगन्धा (किरमाणी अजवायन) पारिभद्रपत्रस्वरस-विडंग-मुस्तक-आखुपर्णी-शिग्रु-पलाश-बीज,-सैन्धव-क्षार-कम्पिल्लक-त्रिफला त्रिवृत्ता-दन्ती-गोमूत्र-वचा-शान्तनम्-आपतन्तीन (दमनक) कटुफल-काशीफल बीज-जंघा।

चरकीयगण –अक्षीव (शोभाञ्जन) मरिच, गंडीर (स्नुही) केबुक, विडंग-निर्गुण्डी, किणही (अपामार्ग) श्वदंष्ट्रावृषपर्णि-काखुपर्णिका इति दशेमानि कृमिघ्नानि भवन्ति। (च० सू० ४)

पाण्डुरोग
(Anaemia)

त्रिवृत्-हरीतकी-गोमूत्र-शुण्ठी- लोह-शिलाजतु-त्रिफला-गुडूची-वासा-तिक्ता, किराततिक्त निम्बत्वक्-माक्षिक, मण्डूर-मुस्त-विडंग-चित्रक-विशाला (गोरक्ष कर्कटी) कलिंग-देवदारु। दन्ती-चित्रक-चविका-मूर्वा-पटोल-कटुतुम्बी, पर्पट-श्वेतचन्दन, पाठा-कुटजफल-अतिविषा।

कामला
(Jaundice)

हरिद्रा-धात्री-द्रोणपुष्पी-जालिनी (पीताघोषा) कर्कोटकमूल।

हलीमक (Chlorosis)—त्रिवृत्त-पुनर्नवा-देवदारु-पुष्करमूल-चित्रक-दन्ती-मूर्वा-कुटज-गोरक्षकर्कटी-पुनर्नवा-पाठा-पटोल त्रायमाणा।

सौश्रुतीय मुष्ककादिगण—मुष्ककपलाशधवचित्रकमदन वृक्ष शिंशिपावज्रवृक्षास्त्रिफलाचेति। मुष्ककादि गणोह्येष मेदोघ्नः शुक्रदोषहृत्। मंदार्शः पाण्डुरोगघ्नः शर्कराश्मादिनाशनः।

रक्तपित्त
(Haemoptesis Purpura, Epistaxis etc.)

द्राक्षा-मधुक-पद्मकाष्ठ-परुषक-खजूर-वासा-गन्ध-प्रियंगुः स्फटिका-रसाञ्जन-उत्पल-लोध्र-कमलकेशर-अंजीर, तालांश-मदमन्तिमूलरस–शतावरी–गोक्षुरु, काश्मरीफल-पथ्या-तरुणशाखोटकत्वग्रस-खदिर-कोबिदार-शाल्मलीपुष्प चतुर्जातक-आमलकी-दाडिमपुष्प-दूर्वास्वरस-पलाण्डु-आम्रास्थिमज्जा, पद्मकाष्ठ-मंजिष्ठा-तृणपंचमूल-उशीरचन्दनद्वय मुस्तक-अष्टवर्ग-कूष्माण्ड-धान्यक-नागकेशर पक्वादेम्बरफल।

चरकीय शोणितास्थापनगण—मधुमधुकरुधिरमोचरस मृत्कपाललोध्र गैरिक प्रियंगु शर्करालाजा इति दशेमानि शोणितास्थापनानि भवन्ति।

सौश्रुतीय—सारिवादि-अंजनादि और उत्पलादिगण।

राजयक्ष्मा
(Pulmonary Tuberculosis)

आमलकी-दशमूल-दाडिम-अश्वगन्धा-शतावरी-गुडूची-वासक-बला-पुष्करमूल-अतिविषा-देवदारु-शुण्ठी, बलाचतुष्टय वंशलोचन-लवंगकंकोल-उशीर-चन्दन-तगर-जीरक-नीलोत्पल-अगुरु-केशर-विडंग-अनन्तमूल, शिलाजतु-चतुर्जातक। मांसी-शृंगी-त्रिफला-त्रिकटु-अजमोद-खदिर-विदारीकन्द-छागमांसी-तामलकी-जीवन्ती-द्राक्षा-इन्द्रयव-धन्वयास-शटी-निर्गुण्डी-लाक्षा।

चरकीय जीवनीय—बृंहणीय-दाहशमन-ज्वरहर, श्रमहर-वयःस्थापनगण और सौश्रुतीय विदारीगन्धादि-पटोलादि-काकोल्यादिगण-रसायन द्रव्य-कासश्वासज्वररक्तपित्तहरद्रव्य।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कास-श्वास

(Bronchitis and Asthma)

वातिक—बृहत् पंचमूल-पिप्पली-शटी-शृंगी भारंगी त्वक्-दुरालभा-सोंठ ।

पैत्तिक—बला-कंटकारी-द्राक्षा-वासा-पिप्पली-त्रिवृत्-शुण्ठी-आमलक, मरिच-ह्रीबेर-पद्म बीज ।

कफज—पुष्करमूल-कट्फल-भार्ङ्गी-पिप्पली-त्रिकटु, दशमूल-कर्कटशृंगी-बिभीतक-तुगाक्षीरी-पद्मकाष्ठ-यवाक्षार-तालीश-अम्लवेतस्-त्रिसुगन्धि-मनःशिला-हरिताल-जटा-मांसी-मधुक-अर्कमूलत्वक् अर्कक्षीर-वार्त्ताकु - तुलसी-गुडूची- रास्मा-अपामार्ग-रास्ना-तामलकी-आर्द्रक ।

चरकीयगण—(i) द्राक्षाभयामलक पिप्पलीदुरालभाशृंगी कण्टकारिका वृश्चीर पुनर्नवा तामलक्य इति दशेमानि कासहराणि भवन्ति

(ii) शटीपुष्करमूलाम्लवेतसैलाहिंग्वगुरु सुरसातामलकीजावन्ती चण्डा इति दशेमानिश्वास-हराणि भवन्ति । सौश्रुतीय-सुरसादिगण-पिप्पल्यादिगण ।

हिक्का

(Hiccough)

कोलमज्जा-कटुकी-गैरिक-कणा-आमलकी-कासीस-पाटला-मधुक-नागर-छागपयः—मातुलुंग, शृंगी-त्रिकटु-त्रिफला-कंटकारी-भारंगी-पुष्करमूल-पंचलवण-वासा-मरिच-शुंठी, हरिद्रा-द्राक्षा-मयूरपुच्छ-तेजोवती-तालीशपत्र-त्रिसुगन्धि ।

चरकीय गण—शटीपुष्करमूल बदरबीजकण्टकारि बृहतीवृक्षरुहाभया पिप्पली दुरालभा कुलीरशृंग इति दशेमानि हिक्का निग्रहणानि भवन्ति ।

स्वरभेद

(Laryngitis)

षडूषण-चव्य-अम्लवेतस्-तालीश-तिन्तिडीक-चित्रक - त्रिसुगन्धि--खदिरे-हरिद्रा-धात्री--यवक्षार-विभीतक--फल, बदरीपत्र-भृंगराज, वासा,-वचा-कुलिंजन-दशमूल-कासमर्द ।

चरकीय गण—सारिवा-इक्षुमूल-मधुक-पिप्पलीद्राक्षा विदारी कैडर्य हंसपादी बृहती कण्टकारी इति दशेमानि कण्ठ्यानि भवन्ति ।

अरोचक

(Anorexia)

कृष्णा-विडंग-यवक्षार-हरेणु-रास्ना-हिंगु, लवणपंचक-अजवायन--त्रिकटु-धात्री-एला-उशीर-पद्मक-पिप्पली-चन्दन-कमला-लोध्र-तेजोवती-पथ्या-चतुर्जातक-त्रिकटु-दार्वी-तेजोवती-अम्लिका-जीरक-त्रयम्-द्राक्षा-दाडिम-शिग्रु फल ।

चरकीय गण—आम्राम्रातक लकुचकरमर्द वृक्षाम्लाम्लवेतसकुवलबदर दाडिम मातुलुंगानीति दशेमानि हृद्यानिभवन्ति ।

सौश्रुतीय आमलक्यादि गुडूच्यादि-सुरसादिगण ।

वमन

(Emesis-Vomiting)

द्राक्षा-विदारी-इक्षुरस-लाजा-श्वेतचन्दन-आमलकीरस-उशीर-नागर-बालक-तण्डुलोदक-हरीतकीचूर्ण निम्ब-पटोल-विडंग-मुस्तक-आम्र-जम्बुफलमज्जा-बदरफल-मज्जा-मूर्वा-कर्कटशृंगी-धान्यक-पुदिन, मधु-द्राक्षा-ह्रीबेर-एला-लवग-नागकेसर, प्रियंगु-चन्दन-मुलैठी-पथ्या-जीरक ।

चरकीय गण—जम्ब्वाम्रपल्लवमातुलुंगाम्लबदर दाडिमयवषष्टिकोशीरमृल्लाजा इति दशेमानि छर्दिनिग्रहणानिभवन्ति ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सौश्रुतीय वृहत्यादिगण-पटोलानि-परुषकादि गुडूच्यादि-उत्पलादिगणग्रारग्वधादि ।

तृष्णा
(Thirst)

दशमूल-तृण-वल्ली-कटकीपंचमूलानि । काश्मरीफल-चन्दन-उशीर-पद्मक-द्राक्षा-मधुक-जीवनीयगण सिद्ध-क्षीर, द्राक्षा-खर्जूर, मधु-मधूक-शोभाञ्जन-प्रियंगु-पंचकोल निम्बपत्रतथात्वग्रस-ग्राम्रजम्बुपल्लवक्वाथ, ग्रजाक्षीर-मयग-ण्डूषकोल-दाडिम-वृक्षाम्लवटशुंगा कमल-मधुगण्डूष ।

चरकीय गण—नागरधन्वयोसमुस्तपर्पटचन्दन किराततिक्त गुडूची ह्रीबेरधान्यक पटोलादि इति दशेमानि तृष्णा निग्रहणानि भवन्ति ।

सौश्रुतीय उषकादि—काकोल्यादि-परुषकादि उत्पलादि त्र्प्वादि गण ।

मूर्च्छा
(Syncope)

मरिच-उशीर-केशर-कोलमज्जा-केशर-पिप्पली-मधु-सोंठ-ग्रमृता-शतावरी, द्राक्षा-बलाबीज-दुरालभाक्वाथ ।

चरकीय (i) संज्ञास्थापन-गण—हिंगुकैडर्यारिमेदवचा चोरक वयःस्थापलोमी जटिला पलंकषारोहिण्य इति दशेमानि संज्ञास्थापनानि भवन्ति ।

(ii) ज्योतिष्मतीक्षवक मरिचपिप्पली विडंगशिग्रु सर्षपापामार्गतण्डुलश्वेता महाश्वेता इति दशेमानि शिरोविरेचनोपगानि भवन्ति ।

सौश्रुतीय शिरोविरेचक गण—संज्ञा प्रबोधनगण ।

मदात्ययः
(Alcoholism)

सौवर्चल-लवण-व्योष-पुनर्नवा-मधुयष्टि तथा दुग्ध सिद्ध घृत । वृक्षाम्ल-ग्रजाजी, ग्रम्लवेतस-त्रिजातक-शर्करा-चव्य-हिंगु-यमानी, द्राक्षा-कपित्थ-दाडिम-पानक ग्रष्टांगलवण ।

चरकीय जीवनीय, बृंहणीय-बल्य-स्नेहोपग श्रमहर वर्ग तथा सौश्रुतीय विदारीगन्धादि उत्पलादि त्र्प्वादि तथा ऊषकादिगण ।

दाह
(Burning Sensation)

शतधौतघृत—कोल-ग्रामलक-उशीर-चन्दन-कैवर्तमुस्तक तथा तृष्णानिग्रहण-ग्रपहर, सौश्रुतीय ऊषकादि-उत्पलादि-गुडूच्यादि तथा ग्रंजनादि वर्ग ।

चरकीय वर्ग—(i) द्राक्षाखर्जूर प्रियालबदर दाडिम फल्गुपरुषकेक्षुयवषष्टिका इति ।

(ii) लाजाचन्दन काश्मर्यफल मधुक शर्करानीलोत्पलोशीर सारिवा गुडूची ह्रीबेराणीति दशेमानि दाहप्रशमनानिभवन्ति ।

उन्माद
(Insanity)

ब्राह्मी-कूष्माण्ड-वचा-शंखपुष्पी-कुष्ठ, मधु-दशमूल-सिद्धार्थक-श्वेतधत्तूर-कोमल ताल-शाखारस-हिंगु-देवदारु त्रिफला-श्वेत ग्रपराजिता, प्रियंगु-गोरक्षकर्कटी रेणुका एलवालुक-तगर-तालीशपत्र-मालतीपुष्प घृत सर्पगन्धा-क्षीरकल्याण-घृत, महाकल्याणघृत ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चरकीय जीवनीय—वयःस्थापन-सौश्रुतीय-रक्षोघ्न गण-रसायनगण, एवं अष्टवर्ग-वृश्चिकाली-लशुन-कार्पास-बीज-मयूरपुच्छ-गोश्रृंग-गोमूत्रस्य-गुग्गुलु-शतपुष्पा।

अपस्मार
(Epilepsy)

मनःशिला-रसांजन-पारावत शकृत्-हिंगु यष्टिमधु-वचा-तगर शिरीषफल-अजामूत्र-तुलसी-कुष्ठ-पूतना-वचा-मधु-मण्डूकपर्णी-लशुन-कुष्ठ-पंचगव्य-कूष्माण्ड-शंखपुष्पी-अर्क गुग्गुलु-जटामांसी, शतावरी-श्रृतदुग्धा-घृतदन्ती-ब्राह्मीघृत।

वातव्याधियाँ
(Diseases of Nervous System)

(i) **षड्धरण योग**—चित्रक-इन्द्रयव-पाठा-कटुका अतिविषा।

(ii) **स्नेहलवण**—स्नुही, पंचलवण-वार्ताकु-स्नेह चतुष्टयम्, मधुक-काश्मरीफल-माष; दशमूल। हरिद्रा-वचा-कुष्ठ-बलाचतुष्टयम्-मधुक रास्ना, कपिकच्छु-अश्वगन्धा-एरण्ड-हिंगु-पारिभद्र-हरीतकी-रसोन-जीरकद्वयम्-गुडूची-शेफालिका गोमूत्र-गुग्गुलु-तगरमूल, नागकेशर-पुष्करमूल-शतावरी-वृद्धादारुक-गोक्षुरु-शटी-यमानी, देवदारु-अतसी-समग्र, तैलफल, जटामांसी-मूर्वा-सरल रेणुका-चम्पक, श्रीवास-कुन्दुरः—वालक-स्वक्-जातीफल-तुरुष्कःअगुरु-शैलेयक-कालानुसारिवा, प्रसारिणी, भिण्डी-भल्लातक-कार्पासबीज-कुलत्थ-शणबीज, केतकी।

चरकोक्त गण (i) जीवकर्षभकौमेदा महामेदा काकोली, क्षीरकाकोली मुद्गपर्णीमाषपर्ण्योजीवन्तीमधुकमिति दशेमानि जीवनीयानि भवन्ति।

(ii) क्षीरिणीराजक्षवकाश्वगन्धाकाकोली क्षीरकाकौलीवाट्यायनीभद्रौदनीभारद्वाजीपयस्यर्षगन्धा इति दशेमानि वृंहणीयानिभवन्ति।

(iii) बल्य—एन्द्र्यृषम्यतिसर्ष्यप्रोक्तापयस्याश्वगन्धास्थिरारोहिणीबलातिवला इति दशेमानि बल्यानि भवन्ति।

आस्थापनोपग—त्रिवृद्बिल्वपिप्पलीकुष्ठसर्षप वचा वत्सकफलशतपुष्पामधु मदनफलानीति दशेमानि-आस्थापनोपगानिभवन्ति।

सुश्रुतोक्त विदारीगन्धादि-काकोल्यादि-पिप्पल्यादि दशमूलगण-वीरतरादिगण।

अनुवासनोपग—रास्नासुरदारु बिल्वमदनशतपुष्पा वृश्चीरपुनर्नवा श्वदंष्ट्राग्निमन्थश्योनाका इति दशेमान्यनुवासनोपगानि भवन्ति।

वातरक्त
(Gout)

गुडूची-सोंठ-धनियां-वत्सादनी (पाठा) मुण्डीतिका-गुग्गुलु-पटोल-कटुरोहिणी-शतावरी-त्रिफला-अजादुग्ध-छागदुग्ध-एरण्डबीज-मधुक-गोमूत्र-हरिद्रा-मुस्तक-कोकिलाक्षमूल-त्रिफला-निम्ब-मंजिष्ठा-दारुहरिद्रा-वासा-आरग्वध-पुनर्नवा- देवदारु-उत्पलपद्मक-उशीर-सर्जः।

चरकोक्त गण—(i) शोभाञ्जनकैरण्डार्कवृक्षवीर पुनर्नवायवतिक्ताकुलत्थमाष बदराणीति दशेमानि स्वेदोपगानि भवन्ति।

सुश्रुतोक्त गण—गुडूच्यादि-पिप्पल्यादि-मुस्तादि।

योग—नवकार्षिक क्वाथ-गुडूच्यादि क्वाथ-कैशोर-गुग्गुलु-पुनर्नवा गुग्गुलुः।

आमवात
(Rheumatism)

पंचकोल-शटी-अभया-वचा-अतिविषा-अमृता-वर्षाभूः दशमूल-एरण्ड, रास्ना-देवदारु-एरण्डतैल-आरग्वध-गोक्षुरु-त्रिवृत्-जायफल-शिग्रु-सुरसा-मार्कव-दन्ती, त्रिफला-शतपुष्पा-शूरण-माणक सैन्धव-रसोन-गोक्षुरु।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चरकोक्त गण — (i) विदारीगन्धा-पृश्निपर्णी, बृहती कण्टकारिकैरण्डकाकोली चन्दनोशीर-मधुकानीति दशेमान्यंगमर्दप्रशमनानि भवन्ति ।

सुश्रुतोक्त—अर्कादि सुरसादि-मुस्तादि-पिप्पल्यादि तथा वरुणादिगण दशमूल ।

योग—रसोनपिण्ड-बृहद्सैन्धवाद्यैतैलं योगराज-सिंहनाद,गुग्गुलु ।

ऊरुस्तम्भ

शिलाजतु-गुग्गुलु-पिप्पली-शुण्ठी-दशमूल-गोमूत्र-भल्लातक-गुडूची-दारु-पथ्या-त्रिफला-पुनर्नवा-कटुकंचव्य ग्रन्थिक

चरकोक्त (i) लेखनीयगणमुस्तकुष्ठहरिद्रादारु-हरिद्रा वचातिविषाकटुरोहिणी चित्रक चिरबिल्व हैमवत्य इति दशेमानि लेखनीयानिभवन्ति ।

(ii) शीतप्रशमनगण-तगरागुरुधान्यक श्रृंगवेर भूतीक वचा कण्टकार्यग्निमन्थश्योनाक पिप्पल्य इति दशेमानि शीतप्रशमनानि भवन्ति ।

सुश्रुतोक्त—त्रिकटु-मुस्तादि-उषकादि-मुष्ककादि-अर्कादि-रोध्रादि-सालसारादि ।

योग—अष्टकट्वर तैल ।

उदरशूल रोग

(Colic Pain, Abdominal Pain)

वातिक—सैन्धव-व्योष-हिंगु-सौवर्चल, एरण्ड-बृहती-कंटकारी-हिंगु, प्रतिविषा, वचा-अभया-तुम्बुरु-दाडिम-त्रिवृत्-बिडलवण-शिग्रुफल-विडंग-यमानी-यवक्षार-शल्लकी (लोबान) शुण्ठी सुरामण्ड-यवक्वाथ, धान्यक-जीरक-द्वय-कणा-अम्लिका-मातुलुंगरस-तिल ।

पैत्तिक—पटोलादि वामकद्रव्य-त्रायमाणा-त्रिफला-गोक्षुरु-एरण्ड-पंचतृणमूल-निम्ब-त्रिफला-मुलैठी-आरग्वध-कटुकी ।

चरकीय—वमनोपगगण—मधुमधुक कोविदार कर्बुदार नीपविदुलबिम्बी-शणपुष्पी सदापुष्पी प्रत्यक्पुष्प्य इति दशेमानि वमनोपगानि भवन्ति ।

श्लैष्मिक—पंचकोल-हिंगु-लवणत्रय-एरण्डबिल्व-गोमूत्र-शिग्रु-यमानीत्रय-पटोल-त्रिफला निम्ब क्वाथ-दशमूल-पाषाण भेद-मातुलुंगमूल कुष्ठ-विडंग-एरण्डसप्तक ।

सन्निपाते सौश्रुतीय पिप्पल्यादिगण-श्यामादिगण, त्र्यप्वादिगण ।

चरकीय शूलप्रशमनगण—पिप्पली पिप्पलीमूल चव्यचित्रक श्रृंगबेर मरिचाजमोदाजगन्धाजाजी गण्डीराणीति दशेमानि शूलप्रशमनानि भवन्ति ।

परिणाम शूल—विडंग-व्योष-दन्ती चित्रक-शुण्ठी-पिप्पली-त्रिकटु, पंचलवण-सूरण-पंचलवण-मधुक-यवक्षार-सूर्यावर्त-अपामार्ग-गुडूची-तण्डुलीयक-गजपिप्पली-यमानी-जीरकत्रय-त्रिजातक-मधुयष्टी ।

योग—शम्बूकभस्म-शंखभस्म-एरण्डसप्तक-नारिकेल लवण-नारिकेल खण्डः धात्री लोह-श्रृंगभस्म-लोहभस्म ।

उदावर्त

(Abdominal Flatulance)

त्रिवृत्-सुधाकाण्ड-पत्र-तिल-दन्ती-द्रवन्ती-वृद्धदारुक-सप्तला-आरग्वध-श्वेतापराजिता-सावरलोध्र करञ्ज-काम्पिल्लक-स्वर्णक्षीरी-हरीतकी-यवक्षार पिप्पली-कुष्ठ-वचा-सिद्धार्थक-दुरालभा-अर्जुन-कर्कटीबीज द्राक्षारस ।

चरकोक्त (i) **विरेचनोपग**—द्राक्षाकाश्मर्यपरुषकाभयामलक बिभीतककुवलबदर कर्कन्धु पीलुनीति दशेमानि विरेचनोपगानि भवन्ति ।

(ii) **भेदनीय गण**—सुवहार्कोरुबूकाग्निमुखीचित्राचित्रक शंखिनी शकुलादनीस्वर्णक्षीरण्यइतिदशेमानि भेदनीयानि भवन्ति ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सुश्रुतोक्त—त्रिफला-श्यामादि-पिप्पल्यादिगण।

योग—नाराचचूर्ण-फलवर्ति

आनाह (विबन्ध)
(Constipation)

हिंगु-वचा-कुष्ठ-विडंग-अभया-यवक्षार-चित्रक-कणा-अतिविषा-त्रिवृत्-स्नुहीक्षीर-अर्कमूल-दशमूल-मदनफल-शुष्क-मूलक-वर्षाभूमूल-पूतीकरंज आरग्वध-शालपर्णी-कंकुष्ठ-दन्ती-जयपालः।

चरकोक्त (i) स्नेहोपग—मृद्वीकामधुक मधुपर्णी मेदाविदारी काकोली क्षीरकाकोली जीवक जीवन्ती शालपर्णी इतिदशेमानि स्नेहोपगानिभवन्ति। (ii) आस्थापन (iii) अनुवासनोपग वर्ग

तथा "श्यामा त्रिवृच्चतुरंगुलतिल्वक महावृक्ष सप्तला

सुश्रुतोक्त-श्यामादिगण

योग—त्रिवृदवलेह-शंखिनी दन्ती द्रवन्तीनां क्षीरमूलत्वक्पत्रपुष्पफलानि। (च० वि०)

गुल्म

वातिक—मातुलुंग रस-हिंगु-दाडिम-सैन्धव-शुण्ठी, एरण्डतैल रसोन-कुष्ठ-खर्जिकाक्षार-दशमूल-घृत।

पैत्तिक—कटुरोहिणी-निम्ब-मधुक-त्रिफला-त्रायमाणा-पटोल-त्रिवृता।

कफज- पंचमूल-वारुणीरस-यमानी-पंचलवण-वचा-विडंग-अभया-शुण्ठी-हिंगु-कुष्ठ-चित्रक-दीपन-हपुषा-अजमोदा-अजगन्धा-गोरक्षकर्कटी-पूतिकरञ्जपत्र-वचा-तुम्बुरु-अम्लवेतस्-पुष्करमूल-पलाशपारिभद्र-मुष्कक-पाटलाअर्क-शिग्रु-स्नुही-भल्लातक-नीलिनी-हेमक्षीरी।

चरकोक्त-स्नेहोपग-आस्थापनोपग-अनुवासनोपग-विरेचनोपग-विरेचकवर्ग— तथा, सुश्रुतोक्त विदारी-गन्धादि-वरुणादि-पिप्पल्यादि-श्यामादित्रिकटुवर्ग एवं अधोभागहर द्रव्य।

योग—हिंग्वादिचूर्ण-कांकायन गुटिका-द्राक्षादिघृत-दन्तीघृत-त्रायमाणाघृत-दन्ती हरीतकी

हृद्रोग
(Heart diseases)

दशमूल-अर्जुन-बला-मधुक-त्वचा-पुष्कर-मूल-हरिद्रा-विषाण-हृत्पत्री-कमल-अशोक करवीर-विष-सुवर्ण-मुक्ता-प्रवाल-संगेयशव चरकोक्त बल्य-बृंहणीय-हृद्यगण-सुश्रुतोक्त उत्पलादि काकोल्यादि गण।

मूत्रकृच्छ्र:
(Painful Micturition)

वातिक—अमृता-नागर-धात्री-अश्वगन्धा-गोक्षुरु।

पित्तज—पंचतृणमूल (कुशकाशशरदर्भः इक्षु) गोक्षुरु-शतावरी-शालपर्णी-शालमूल-कशेरुक-हरीतकी-आरग्वध-पाषाणभेद-धन्वयासक मुलैठी-एर्वारु बीज-एला-कदलीरस।

कफज—तण्डुलीयक-आरग्वध-दुरालभा-पंचतृण मूल-शिलाजतु-प्रवाल-पथ्या-यवक्षार

चरकोक्त (i) **मूत्र विरजनीय गण**—पद्मोत्पल नलिन कुमुद सौगन्धिक पुण्डरीक-शतपत्रमधुकप्रियंगु धातकी पुष्पाणीति दशेमानि मूत्र विरजनीयानि भवन्ति।

(ii) **मूत्रविरेचनीय गण**—वृक्षादनीश्वद्रंष्ट्रावसुक वशिर पाषाणभेददर्भ कुशकाश गुन्द्रोत्कटमूलानीति दशेमानि मूत्रविरेचनीयानि भवन्ति।

सुश्रुतोक्त-वीरतर्वादि-बृहत्यादि-ऊषकादि-पुरुषकादि गण।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मूत्राघात

(Anuria obstructive micturition)

एर्वारुबीज-पाटला-यवक्षार-पारिभद्र-तिलनाल क्षार-एला-त्वग्-मरिच-नल-त्रिफला-सैन्धव, कंटकारीरस-शिला-जतु-कूष्माण्डरस-पलाशपुष्प-पर्णबीज-चित्रक-अभया-गुग्गुलु-शिलाजतु,

सुश्रुतोक्त-वीरतर्वादि-तृणपंचमूल-दशमूल मुष्ककादिगण।

योग—चित्रकादिघृत

अश्मरी

(Renal calculi)

वरुणत्वचा-गोक्षुरु-यवक्षार-वेल्लन्तरु-ऋण्टी-वृक्षादन्ती-पंचतृणमूल-पर्णबीज-पाषाण भेद गोक्षुरु-अग्निमन्थ-ईक्षुरकमूल-उत्पल-अभया-आरग्वध-यव-कुलथ, कनकफल, शिलाजतु-शोरक-त्रपुष पुनर्नवाद्वय-एरण्डपत्र, तण्डुलीयक-उपकुञ्चिका-तिलनालक्षार-हिंगु-शतावरी-स्योनाक-बदरपाषाण-मूलक चरकोक्त मूत्र विरेचनीय, सुश्रुतोक्त वीरतर्वादि, उत्पलादि-उषकादि गण।

प्रमेह

सामान्य—त्रिफला-हरिद्रा-इन्द्रवारुणी-देवदारु, मुस्त-शाल-कम्पिल्लक-कुटज-कपित्थ-रोहीतक-बिभीतक-सप्तपर्ण-निम्ब,आरग्वध-मूर्वा-सोम-पलाश-प्रियंगु-सारिवा-यूथिका-भारंगी-त्रायमाणा -मञ्जिष्ठा- पाठा-दाडिमत्वक्-शालपर्णी-पद्म-नागकेसर-पुन्नाग-धातकी-बकुल-शाल्मली-श्रीवेष्टक, मोचरस-शृंगाटक-विसमृणाल-काश-कशेरुक-मधुक-आम्र-जम्बु बिल्वपत्र-असन-तिनिश-अर्जुन-स्योनाक-रोध्र-भल्लातक-अपराजिता-कर्पूर-अजकर्ण-राजादन-बदरी-विकंकत-पंचवल्कलवृक्ष-मधुक-चतुर्जातक-वंशक्षीरी, गुडूची, पारिभद्र-कट्फल-मंजिष्ठा-रक्तचन्दन-खदिर-बिल्वमूल-गुग्गुलुः। ताम्र, लोह, शिलाजतु।

चरकोक्त—मूत्रसंग्रहणीय गण-जब्वाम्रप्लक्षवट कपीतनोदुम्बराश्वत्थभल्लातकाश्मन्तक सोमवल्क इति दशेमानि मूत्रसंग्रहणीयानि भवन्ति।

सुश्रुतोक्त—सालसारादिगण-आरग्वधादि-रोध्रादि-मुष्ककादि-न्यग्रोधादि-त्रप्वादि-वल्ली तथा कंटकपंचमूल।

विशिष्ट—उदकमेह-पारिजात

हरिद्रामेह—आरग्वध

इक्षुमेह—वैजयन्ती

क्षारमेह—त्रिफला

मञ्जिष्ठामेह—मंजिष्ठा, चन्दन

रक्तमेह—गुडूची

तिन्दुक, काश्मर्य खर्जूर।

सर्पिमेह—कुष्ठ-कुटज, गुडूची-पाठा, चित्रक हिंगु कुटकी

फेनमेह—दूर्वा-शैवाल आरग्वध, द्राक्षा

शुक्रमेह—दूर्वा-शैवाल

प्लव-जलकुम्भी

करंज, कशेरु-अर्जुन

चन्दन

नीलमेह—अश्वत्थ

अम्लमेह—न्यग्रोधादि

सुरामेह—निम्ब

सिकतामेह—चित्रक

शनैर्मेह—खदिर

अगुरु—हरिद्रा

सान्द्रमेह—सप्तपर्ण

वसामेह—अग्निमान्द्य, शिंशिपा

हस्तिमेह—तिन्दुक, कपित्थ

शिरीष-पलाश

पाठा-मूर्वा, कण्टकारी

शुक्र दौर्बल्य—चरकोक्त शुक्रजनन गण—"जीवकर्षभक काकोलीक्षीरकाकोली मुग्दपर्णी माषपर्णी, मेदा-वृक्षरुहा जटिलाकुलंगा इति दशेमानि शुक्रजननानि भवन्ति।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शुक्राशुद्धौ—चरकीय शुक्रशोधकगरा—"कुष्ठैलवालुक कट्फलसमुद्रफेन कदम्ब निर्यास इक्षुकाण्डइक्षुरक वासुकोशीराणीति दशेमानि शुक्रशोधनानि भवन्ति।

शुक्रश्रुतौ (स्वप्नदोषे) कंकोल-मधुक-वंशक्षीरी-अहिफेनादि-कर्पूर-जटामांसी वटक्षीर-शिलाजतु-वंग नाग, यशद।

स्थौल्य
(Obesity)

चव्य, चित्रक, त्रिकटु-हिंगु, वचा, क्षार, लवरण, यव, विडंग, आमलक, त्रिफला, मुस्तक, करगा, शुण्ठी, ह्रीबेर, बिल्वमूल, पाठा, शिग्रु, कटुकी, हरिद्रा, द्वय, अतिविषा, शालपर्णी, धान्यक, हपुषा, अजाजी, अग्निमन्थ, कलिंगक-रेचक, रुक्षरण, लंघन, द्रव्य, निद्रानाश। चरकोक्त (i) अपतर्पणगरण :—लेखनीय गरण व्योषं विडंग शिग्रूरिण त्रिफलां कटुरोहिणीम्। बृहत्यौद्वे हरिद्रे द्वे पाठां सातिविषांस्थिराम्॥ हिंगुकेवुक मूलानियवानिधान्यचित्रकान्। सौवर्चलमजाजीं च हपुषां चेति चूर्णयेत्॥ (च० सू० २३)

(ii) लंघनगण—गुडूचीभद्रमुस्तानां प्रयोगस्त्रैफलस्तथा। तक्रारिष्ट प्रयोगस्तु प्रयोगो माक्षिकस्य च। विडंग नागरं क्षारः काललोहरजो मधुः। यवामलक चूर्णं च प्रयोगः श्रेष्ठ उच्यते। बिल्वादिपंचमूलस्य प्रयोगः क्षौद्रसंयुतः। शिलाजतु प्रयोगस्तु साग्निमन्थरसः परः॥ प्रशातिका प्रियंगुश्च श्यामाकाः यवका यवाः। जूर्णाह्वाः कोद्रवा मुद्गाः कुलत्थाश्चक्रमुद्गकाः। आढकीनां च बीजानि पानं चानुमधूदकम्॥ अरिष्टांश्चानुपानार्थे मेदोमांस कफापहान्। अतिस्थौल्यविनाशाय संविभज्य प्रयोजयेत्॥ (च० सू० २१)

सुश्रुतोक्त अर्कादिगरण, मुष्कादि ऊषकादि। लेखन वर्ग।

उदर रोग

तक्र, पिप्पली-लवरणपंचक, व्योष, यमानी, जीरक, कुष्ठ, हपुषां, क्षार, दशमूला, एरण्डः, यवक्षार, विडंग, त्रिवृत, सप्तला, त्रायमारणा, आरग्वध, गोमूत्र, अभया-पलाश, अर्क, गजपिप्पली, शिग्रु, स्नुही, देवदारु, शिलाजतु, पटोलमूल, रजनी, त्रिफला, कम्पिल्लक, नीलिनी, ककुष्ठः, कल्वंजिका, इन्द्रायरण, दन्ती, तिलक शंखिनी, रोहीतक, गोमूत्र के साथ, अपामार्ग, पुनर्नवा, निम्ब, बृहतीद्वय, मारणक, कम्पिल्लक, श्यामा, अपराजिता। अर्क लवरण, अर्कक्षीर, अर्कक्षार, चरकोक्त-विरेचनोपग तथा विरेचन गरण।

सुश्रुतोक्त-अधोभागहर द्रव्य।

यकृत् प्लीहा वृद्धि
(Enlargement of liver and spleen)

यमानी, चित्रक, यवक्षार, खर्जिका क्षार, नृसार, शरपुंखा, पिप्पली, पिपलीमूल, पलाशक्षार, विडंग-वचा रोहीतक, अभया, वृक्षकरंजमूलक्षार, काञ्जी, विड्लवरण, भल्लातक, शिग्रु क्वाथ, कृष्णतिल, काकजंघा, तिन्तिडीक, गोमूत्र, दन्ती, गुडूची, अपामार्ग, वसा, शालपर्णी, गोमूत्र, दन्ती, गुडूची, चित्रक, शुण्ठी, हरिद्रा, जीरकद्वयम्, कुमारी एलीयकम्, रोहितकघृत, रोहीतकारिष्ट, रोहीतकादिलेह, कुमार्यासव. लोहासव, ताम्रलोहभस्म। चरकोक्त-शोथहर, लंघन, स्वेदनगरण-सुश्रुतोक्त-अर्कादिगरण, पिप्पल्यादिगरण, वल्लीपंचमूल।

शोथ
(Oedema Dropsy)

शुण्ठी, पुनर्नवा, दशमूल, त्रिवृत्, गुडूची, त्रिफला, गोमूत्र, अभया, दारु, मधुक, तिक्ता, दन्ती, पटोल, हरिद्रा, इन्द्रवारुणी, आरग्वध, शिग्रु, अतसी, कुलत्थः, पाठा, यमानी, कर्पूरः, मुस्तक, कंटकारी, गुग्गुलुः, कोकिलाक्षक्षार, शुष्कमूलक, कपित्थफल, रेणुका, शटी, श्रीवेष्टक, पद्मक, एला, व्योषादि गुडिका, शुष्कमूलक-तैल। नव कार्षिक गुग्गुलुः। दशांग लेप।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चरकोक्त (i) श्वयथुहर-पाटलाग्निमन्थश्योनाक बिल्वकाश्मर्य, कंटकारिका, बृहती-शालपर्णी, पृश्निपर्णी-गोक्षुरका इति दशेमानि श्वयथुहराणि भवन्ति ।

सुश्रुतोक्त—वल्लीपंचमूल, कंटकपंचमूल ।

वृद्धिरोग-व्रध्न रोग

गुग्गुलु, एरण्डतैल, गोमूत्र, पुनर्नवा, रक्तचन्दन, मधुक, पद्म, उशीर, नीलोत्पल, देवदारु, लवण, ऐन्द्री अर्कपर्णी, वचा, सर्षप, बिल्वमूल, चित्रक, त्रिवृत्द्वयम्, भल्लातक, पंचकोल, दशमूल, क्षार, तगर, अतिविषा, तथा, उक्त श्वयथुहरद्रव्य, अनुलोमन, आनाहहरद्रव्य ।

बृहत्सैन्धवाद्यं तैलम् । सुरसादिगण ।

कुरण्ड रोग

इन्द्रवारुणी, पुष्करमूल, सैंधव, ईश्वरीमूल, एरण्डमूल, भारंगी, गोमूत्र–हरीतकी ।

गलगण्ड—कंठमाला (गण्डमाला)

सर्षप, शिग्रुबीज, शणबीज, अतसी, यव, मूलकबीज, जीर्णकर्कटी, (तिक्तालाबु) मण्डूरभस्म, जलकुम्भीभस्म, कट्फल, विडंग, यवक्षार, तुम्बीतैल, वरुणमूलक्वाथ, कांचनारत्वक्, शुण्ठी, आरग्वधमूल, अपची--निर्गुण्डी, कोशातकी-स्वरस, ऐन्द्री, गिरिकर्णिका, मुण्डी, शाखोटकत्वचा, करवीर, लांगलीमूल, वनकार्पासमूल, देवदारु, शिग्रु, भल्लातक, सर्षप, निम्ब, अपामार्ग, अश्वत्थत्वक्, कांचनार, गुग्गुलुः, छुछुन्दरी तैल, गुंजादि तैल ।

ग्रन्थि

जटामांसी, मांसरोहणी, गुडूची, भारंगी, श्योनाक, अगुरु, बिल्वमूल, शोभांजन, शाखोटक, विकंकत, गुंजा, आरग्वधमूल, इंगुदी, दन्ती, मदनफल, कटुतुम्बी, करंज, मंजिष्ठा, स्नुही तथा अर्कक्षीर, भल्लातक, खर्जिकाक्षार, शंखचूर्ण, दन्तीमूल ।

अर्बुद

ग्रन्थिवत्, शाक, गोजिव्हा, पत्तंग, लोध्र, अर्जुन-मूलकभस्म, उपोदिका, कदलीकन्द-भस्म, मनःशिला, हरिद्रा ।

श्लीपद

धुस्तुर, एरण्ड, निर्गुण्डी, वर्षाभू, शिग्रु, शिरीष, अर्कमूल, वृक्षादनी, चित्रक, देवदारु, पूतिकरंजपत्रकस्वरस, गोमूत्रहरिद्रा, गोधापदीमूल, वरुण-गुडूची, अलम्बुषा, पुनर्नवा, शुण्ठी, स्नुही, हरीतकी, विडंग, मरिच, अर्क, देवदारु, वृद्धदारुकचूर्ण ।

विद्रधि

शिग्रुमूल, यव, पुनर्नवा, देवदारु, विश्वा, दशमूल, गुग्गुलु, एरण्डतैल, सारिवा, पंचवल्कल, गोमूत्र, त्रिफला, वरुण, शिग्रुद्वयम्, श्वेतपुनर्नवा, पाठामूल, कट्फल, तिनिशत्वचा, धव, सुश्रुतोक्त वरुणादिगण ।

व्रणशोथ

अग्निमन्थ, देवदारु, मातुलुंग, रास्ना, शाखोटक, शुण्ठी, बलामूल, मधुयष्टी, चन्दन, पंचवल्कल, उदुम्बर, वट, अश्वत्थ, प्लक्ष, वेतस, त्रिवृत, अजगन्धा, पुनर्नवा, अतसी, तिल, हरिद्रा, कुष्ठ, लवण, चिरबिल्व, चित्रक, कपोतगृध्र-पुरीष, करवीर, क्षारीयद्रव्य, निम्बपत्र, धातकी; शालनिर्यास (राल), श्रीवास; गुग्गुलुः अपामार्ग, अगुरु, कर्पूर, दशांग लेप ।

नाडीव्रण

तिल, अपामार्ग, मंजिष्ठा, नागदन्ती, हरिद्रा, मधुयष्टी, दन्ती, निम्ब, सैन्धव, आरग्वधपत्र, लाक्षा, अरण्यबदर-त्वक्, स्नुही; अर्कदुग्ध अर्कमूल, जातिपत्र, करंजबीज, दन्तीमूल, सौवर्चल, यावशूक, निर्गुण्डी, हंसपदी, गुग्गुलुः । सप्तांग गुग्गुलुः, निर्गुण्डीतैल, जात्यादिघृत ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भगन्दर

वटपत्र, शुण्ठी, गुडूची, पुनर्नवा, रसाञ्जन, हरिद्राद्वय, मञ्जिष्ठा, निम्बपत्र, तेजोवती, त्रिवृत, दन्ती, कुष्ठ, तिल, अभया अर्क, आगारधूम। करवीर तैल, पंचतिक्तघृतगुग्गुलुः सप्तविंशति गुग्गुलुः। सुश्रुतोक्त लाक्षादिगण, अर्कादिगण, सुरसादिगण, पटोलादि, न्यग्रोधादि गण।

उपदंश

त्रिफला, निम्ब, गुडूची खदिर, गुग्गुलु, पटोल, मधुक, सरल, देवदारु, गैरिक; मंजिका, चन्दन, पंचवल्कल, त्रिफलामसी, रसाञ्जन, शिरीष, करवीर, जया, जाति, अर्क आरग्वध, सोमल, गन्धक।

अस्थिभग्न

लाक्षा, अस्थिसंहार (वज्रवल्ली) अर्जुन, रसोन, गोधूम, गुग्गुलुः, मधुक, सुश्रुतोक्त, न्यग्रोधादि, लाक्षादि, लघुपंचमूल, प्रियंग्वादि अम्बष्ठादि तथा चरकोक्त जीवनीयगण और सन्धानीय गण, मधुक, मधुपर्णी पृश्निपर्ण्यम्बष्ठकी समंग्रामोचरस-धातकी, लोध्र, प्रियंगुकट्फलानीति दशेमानि सन्धानीयानि भवन्ति। आमागुग्गुलु, लाक्षागुग्गुलुः।

कुष्ठरोग

पंचकषाय, निम्ब, प्रियंगुः, वासा, पटोल, त्रिवृत, दन्ती, त्रिफला, मनःशिला, अर्कदुग्ध, हरिताल, नक्तमाल चक्रमर्द, गौमूत्र, आरग्वधमूल-पत्र गुडूची, मदनफल, हरिद्राद्वय, करवीर, खदिर, विडंग, शिग्रुःसप्तपर्ण, वत्सक, शिरीष सुमना, (चमेली) पत्र, भल्लातक, कसीस, सर्जरस, सोमराजी (वाकुची), भृंगराज, हरिद्रा, स्नुही तुवरक. गन्धक, नीलभिण्टी गुंजाफल, स्नुही, मरिच।

चरकोक्त—(i) कुष्ठघ्नगण (खदिराभयामलकहरिद्रारुकरसप्तपर्ण रावग्धकरवीर विहंगजाति प्रवाला इति दशेमानि कुष्ठघ्नानि भवन्ति)।

(ii) **कण्डूघ्न गण**—चन्दन, नलद, कृतमाल, नक्तमाल, निम्ब, कुटजसर्षपमधुकदारुहरिद्रामुस्तानीति-दशेमानि कंडूघ्नानि भवन्ति। सुश्रुतोक्त-आरग्वधादि, सालसारादि, अर्कादि, एलादि, पटोलादि, लाक्षादिगण, मरिचादिर्यतैलं, पंचतिक्तघृत-गुग्गुलु, सोमराजी तैल, तुवरक तैल।

उदर्द-कोठं-शीतपित्त

त्रिफला, गुग्गुलु, पिप्पली, सिध्दार्थक, हरिद्रा, चक्रमर्द, अग्निमन्थ, शुष्कमूल, गम्भारीफल, गैरिक, नवकार्षक गुग्गुलु। चरकोक्त उदर्द प्रशमन गण—तिन्दुकप्रियालबदरखदिरकदरसप्तपर्ण, अश्वकर्णार्जुनासनारिमेद, इति दशेमानि उदर्दप्रशमनानि भवन्ति।

अम्लपित्त

यव, वृष, त्रिजातक, पटोल, शुण्ठी, धान्यक, अमृता, अभया, पर्पट, किराततिक्त, मार्कव दुरालभा, खदिर, मधुयष्टी, वासी, भण्टाकी, चित्रात्वक्, कुटज, त्रायन्ती, उशीर, पद्म, किरात, धनियाँ, वासाघृत, द्राक्षादिघृत।

विसर्प-विस्फोट

अरिष्टक, निम्ब, गुडूची, पर्पट, मूर्वा, कटुरोहिणी, अर्कमूल, देवदारु, शिग्रुमूल, आर्त्तगल, मंजिष्ठा, नीलोत्पल, उशीर, मुस्तक, शैवाल, न्यग्रोथ, आरग्वधपत्र, एरण्डबीज, खदिर, सप्तपर्ण, देवदारु, द्राक्षा, पीलु, गुग्गुलु, अनन्तमूल, शिरीषवल्कल, तगर, जटामांसी, जातीफल, एलालघु, दशांग लेप।

स्नायुक

निर्गुण्डीत्वक्, शिग्रुमूलपत्र, कदलीफल, टंकण, हिंगुः, निर्गुण्डीतैल, सुधा, नृसार।

मसूरिका

पटोल, निम्ब, वासक, वत्सक, वचा, यष्टी, मदनफल, एवं अन्य वामक द्रव्य, (चरकोक्त वामकगण) फलजीमूतेक्ष्वाकुधामार्गव कुटज, वेधन फलानि। (च० वि० ८)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मदनं, मधुकं, निम्बं, मजीमूतंकृतवेधनम् । पिप्पली, हिलमोचिका, अनन्तमूल, कारवेल्लक, हरिद्राचूर्ण, उष्ट्रकंटक-मूल, बहुवार, त्वक् वासकमूल, वचा, घृत, उशीर द्राक्षा, दुरालभा, काश्मरी, आमलक, भूनिम्ब, खदिर, कटुरोहिणी, मंजिष्ठा, पूग, शमी, पंचवल्कला, निम्बादिचूर्ण, खदिराष्टक चूर्ण ।

क्षुद्ररोगाणि

अजगल्लिका—शुक्ति, स्फटिका, क्षार, काष्ठ ।

अनुशयी—पाटला, नवीनकण्टकारी ।

पाददारी—मधुच्छिष्ट, वसा-घृत, मज्जा, क्षार, सर्जरस, राल, सैन्धव-कटुतैल, मोच, उपोदिका ।

अलस—पटोल, अरिष्टक, काशीस, त्रिफला, करंजबीज, रजनी, मधुक, हरिताल, रोचना, अभया, लाक्षा ।

चिप्प—सर्जरस, राल, हरिद्रा, अभया, टंकण, अपराजिता, निम्ब ।

पद्मिनी—निम्बक्वाथ, निम्बजल, पद्मनालक्षार ।

जालगर्दभ—निम्ब, आरग्वध, नीली, पटोलमूल ।

अहिपूतनिका—धात्री, त्रिफला, खदिर, करञ्ज, त्रिफला, तिक्ता, रसाञ्जन ।

गुदभ्रंश—वृक्षाम्ल, चित्रक, चांगेरी, बिल्व, पाठा, यवक्षार, तक्र, मूषकवसा, कोलदधि, चांगेरीघृत, दाडिमफलत्वक् मूषिकादि तैल तथा—स्तम्भन वर्ग यथा कुटज, धातकी, स्योनाक, अहिफेन, रसाञ्जन ।

मशक—एरण्डनाल, शंखचूर्ण, कृष्णसर्प-निर्मोकः ।

युवानपिडिका—लोध्र, धान्य, वचालेप, न्यच्छ-गोरोचना, सिद्धार्थक, नीलिका-वचा, सैन्धवादि ।

व्यंग—अर्जुनत्वक्, मंजिष्ठा, श्वेतापराजिता, रक्तचन्दन, कुष्ठ, लोध्र, प्रियंगुः, वटांकुर, मसूर, शाल्मलीकंटक तथा

चरकोक्तवर्ण्यगण—चन्दनतुंगपद्मकोशीरमधुकमंजिष्ठासारिवाद्ययस्यासितालता इतिदशेमानि वर्ण्यानि भवन्ति ।

पिडिका—मातुलुंगमूल, मनःशिला, गोशकृद्रस, तिल-जातिफल, नीलोत्पल, कुष्ठ, बदरास्थि, कोल-श्वेतसर्षप, लाक्षा, मंजिष्ठा, चन्दन, कुंकम, मधुयष्टी, पद्मकेशर, अजाक्षीर, कुंकुमादि तैल । वर्ण्यगण युवानपिडिकादि सब में प्रयोग होता है ।

अरुंन्धिका—तिलपिण्याक, कुष्ठचूर्ण, हरिद्रा, त्रिफला, चन्दन, निम्ब, किराततिक्त ।

दारुणक—कोद्रवतृणक्षार, प्रियालबीज, मधुक, कुष्ठ, सैन्धव, आमलक, तिल, केशर, नीलोत्पल, अनन्तमूल, भृंगराज, त्रिफला ।

उक्थिका—त्रिफला, जटामांसी, भारंगी, उत्पल-सारिवा (अनन्तमूल) सैन्धव ।

केशदद्रु—चित्रक, दन्तीमूल, कोशातकी, कटुतैल, गुंजा, भृंगराज ।

इन्द्रलुप्त—मालती, करवीर, चित्रक, करंज, पलित, धात्री, आम्रमज्जा, जपापुष्प, भृंगराज तैल, सुश्रुतोक्त केशरंजक गण । (सु० चि० २५)

खालित्य—रसाञ्जन, हस्तिदन्तमसी, भल्लातक, बृहतीफल, गुंजाफल, धत्तूरपत्र । वटावरोह, जटामांसी, प्रियंगुः ।

वृहतीफल, गुंजाफल, धुत्तूरपत्र, । वटावरोह, जटामांसी, प्रियंगुः ।

वृषणकच्छ—काशीस, रोचना, हरिताल, रसाञ्जन, **अहिपूतना**—पटोलपत्र, त्रिफला, काञ्जी, । **पाददाहन**—पादहर्ष-नागकेसर, शतधौतघृत ।

मुखरोग

ओष्ठकोप—श्रीवेष्टक, सर्जरस, गुग्गुलुः, **दन्तवेष्ट शोथ**—दारु, मधुयष्टी, इन सब का प्रतिसारण । मधु, क्षार, प्रियंगु, त्रिफला, लोध्र, सुवर्ण गैरिक, धान्यक, टंकण, सिक्थ तैल, लवणसैन्धव ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दन्तरोग

दन्तशूल—शुण्ठी, त्रिफला, मुस्तक, धात्री, लोध्र, मंजिष्ठा, तुम्वुरु, हरिद्रा, चव्य, आर्त्तगल, (सैन्धक के गण्डूष, लवण, वकुल, त्वक्, माचिका, मधुक, रसाञ्जन, श्वेतसर्षप, वचा, खदिर, लाक्षा, विकंकत, दशनसंस्कारचूर्ण, अर्क, मालती, अर्जुन, असन।

कृमिदन्त—कण्टकरिकाफल,मुण्डी, एरण्ड,वृहती, नीली, काकजंघा, स्नुही तथा अर्कदुग्ध।

जिह्वारोग

कफज कण्टक—पटोल, निम्ब, वार्ताकु, क्षार, यूष, पिप्पल्यादिगण–मधु। जिह्वाजड़ता-मानकन्द, भस्म सैन्धव, जम्बीर, केशर, मधु, स्नुहीक्षीर, **उपजिह्विका**—व्योष, क्षार, अभया, चित्रक, सैन्धव। गलशुण्ठी-ऊपरण, क्षार, वचा, सैन्धव, विप्पली, पाठा, शेफालिकामूल, कटुरोहिणी।

कण्ठरोग (मलशोथादि)

विडंग, आगारधूम, कुटकी, श्वेतापराजिता, अतिविषा, देवदारु, मुस्तक, कलिंगक, यवक्षार, पाठा, व्योष, रसाञ्जन, तेजोवती त्रिफला, लोह, चित्रक, चव्य, चित्रक, मनःशिला, हरिताल, सैन्धव, पलाशक्षार, मुष्ककक्षार, हरिताल, सैन्धव, तालीशपत्र, शतपुष्पा, द्राक्षा, दुरालभा, कुष्ठ, गुडूची, इरिमेद, बकुल, लोध्र।

चरकोक्तकण्ठ्यगण—सारिवा, इक्षुमूल, मुलैठी, पिप्पली, द्राक्षा, विदारी, कट्फल, हंसपदी, बृहती, क्षुद्रा इति दशेमानि कंठ्यानि भवन्ति।

(ii) **मुखशोधकगण**[1]

योग—खरादिवटी, लवंगादिवटी, क्षार, गुटिका, इरिमेदादि तैल, पंचपल्लव कषाय (पटोल-निम्ब-जम्बु-आम्र जाती)

कर्ण रोग

कर्णशूल—कपित्थ, मातुलुंग, आर्द्रकरस से कर्णपूरण, लशुन, शिग्रुमूलक, रक्तशोभाञ्जन, कदली—इनका कोष्ण रस, समुद्रफेन, सूर्यावर्त, सैन्धव, मधु, तैल, मूत्राष्टक, अर्कपत्र, तथा स्नुहीपत्र, हिंगु, तुम्वुरु, शुण्ठी।

कर्ण-वेदना-चरकीय वेदना स्थापन गण—शालकट्फल, कदम्ब, पद्मक, तुंगमोचरसशिरीष बञ्जुलैलवालुका-शोक, इतिदशेमानि वेदनास्थापनानि भवन्ति।

योग—हिंग्वादि तैल, दीपिकातैल, धुस्तुर तैल, (चक्र)॥

कर्णनाद बाधिर्य—अपामार्ग, दशमूल, बिल्व, कर्णक्ष्वेड़ अजाक्षीर। **योग**—अपामार्गक्षार तैल (चक्र)।

कर्णस्राव—पंचवल्कल, कपित्थ रस, तिन्दुक, अभया, लोध्र, मंजिष्ठा, आमलकी, मालतीपत्ररस, कापासीफल-रस, सर्जत्वक्चूर्ण, निर्गुण्डीतैल। **कर्णनाडी**—धुस्तूराद्य, तैल (धत्तूररस), निशागन्धक (चक्र)।

प्रतिकर्ण—सैन्धव, निर्गुण्डीरस, गृहधूम्र, वरुण, अर्क कपित्थ, जम्बू, आम्रपल्लवरस, लांगली, सूर्यमुखी कुष्ठादितैलं (चक्र)।

नासा रोग

प्रतिश्याय—इंगुदी, दन्तबीज, अपामार्ग, सुरसा, निर्गुण्डी, मरिच, शिग्रु, गुड़, वनपुष्पकम्, जूफा, श्लेष्मातक, शतपत्री, शतपुष्पा, पंचलवणसिद्ध घृत सुश्रुतोक्त विदारीगन्धादिगण, सुरसादिगण, पिप्पल्यादि, शिरोविरेचक, द्रव्यं, चरकोक्त शिरोविरेचकगण (च० वि० ८), अपामार्ग, पिप्पली, एला, मदनफल, कट्फलादि।

क्षवथु—शुण्ठी, कुष्ठ, पिप्पली, बिल्वमूल, द्राक्षाघृतादि।

पीनस रोग—पंचकोल, तालीशपत्र, अम्लिका, अम्लवेतस्, चव्य, त्रिजातक, मूर्वाहरिद्रा, दारुहरिद्रा, कंटकारी सिन्धुवार, शिग्रु, तुलसी, कट्फल, विडंग तथा प्रतिश्यायहरद्रव्य, लघुपंचमूल, चित्रक, हरीतकी, अगस्त्यहरीतकी।

---

१. जातिकटुक (लताकस्तूरी) पूगानांलवंगस्य कंक्कोलस्यफलंपत्रं ताम्बूलस्य शुभं तथा। तथा कर्पूरनिर्यासः सूक्ष्मैलायाः फलानि च। (च० सू० ५)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नासार्श—रक्तकरवीरपुष्प, जाति, शेफालिका, सिद्धतैल तथा गिसरी तैल।

नेत्ररोग

वहलाकोप—धात्रीफलरस, शिग्रुपत्ररस, मधु, सैन्धव, नारीस्तन्य, रसाञ्जन, अपामार्ग, मूलरस, विडालकलेप, घृतभृष्ट शाबरलोध्र, गैरिक, चन्दन, जयन्ती, बृहती, एरण्ड:, बिल्वादि क्वाथकोष्ण।

अभिष्यन्दरोग—हरिद्रा-मधुक, देवदारु, द्राक्षा, निम्बपत्र, लोध्रलेप, अजाक्षीर का लेप, शुण्ठी, सैन्धव, कापिण्डस्वेद, चाक्षुष्या। पट्टिकारोध्र, त्रिफला, यष्टीमधु, भद्रमुस्त, रसाञ्जनादि रसक्रिया।

शुक्ररोग—तुत्थ, समुद्रफेन, अंजन, सैन्धव, दक्षाण्डत्वक्, शिग्रु बीज-माक्षिक, रसाञ्जन, गैरिक, कर्पूर, नीलोत्पल, विभीतकज्जादि का लेप, त्रिफलाघृत, चन्द्रोदयावर्ती, सुखावर्ती, गोघृत।

शिरोरोग

शिर:शूल—कुष्ठ, एरण्डमूल, काञ्जिक लेप, शुण्ठी लेप, लघुपंचमूल, शृतदूध। द्राक्षा, त्रिफला, चन्दन, उशीर, मधुयष्टी, बला, अनन्ता, हरिद्रा, कमलकेशर, शताव्हा, हरिद्रा, तगर, देवदारु, अश्वगन्धा।

सूर्यावर्त—कंकुम, शर्करा, घी में भून कर लेप, करञ्ज वा स्योनाकपत्ररस, अपामार्ग बीजचूर्ण द्वारा सिद्धघृत की नस्य, अजाक्षीर नस्य।

शंखक—शतावरी, काले तिल, मधुक, नीलोत्पल, दूर्वा, पुनर्नवा, शिरीष तथा मूलकपत्र का नस्य, वचा, पिप्पली शृत क्षीर का नस्य, वचा, पिप्पलीशृतक्षीर।

अर्द्धावभेदक—सारिवा, उत्पल, कुष्ठ, मधुक, काञ्जी में पीस कर लेप, मयूरांघृतम्, षड्बिन्दुतैलम्। सुश्रुतोक्त चक्षुष्यगण (सु० उ० १७)।

स्त्रीरोग

असृग्दर (रक्त प्रदर)—मधुक, नीलोत्पल, गुडूचीसत्व, धातकी पुष्प, काकजंघामूल, कार्पासमूल, अशोकत्वक्, रसाञ्जन, वासा, मुस्तक, रक्तचन्दन, काकोदुम्बरफल, बलामूल, अपक्वकदलीफल चूर्ण, लाक्षा, मोचरस, मंजिष्ठा, गैरिक स्योनाक, केशर, नागकेशर, हीराबोल, रक्त निर्यास, अंजन, अन्नामय, स्तम्भकद्रव्य कुटज, धातकी, स्योनाकादि।

रक्तस्रावरोधक—रोध्र, मधुक, प्रियंगु, पतंग, गैरिक, सर्जरस, रसांजन, शाल्मलीपुष्प, शंखशुक्ति, माषयव-गोधूमचूर्ण सौश्रुतीय न्यग्रोधादिगण, मुस्तादिगण। पुष्यानुगचूर्ण। कुटजाष्टकचूर्ण।

योनिशूल (मक्कल्ल)—वचा, पिप्पली, कृष्णजीरक, वासकमूल, यवक्षार, सौश्रुतीय पिप्पल्यादिगण, चरकीय गर्भानुलोमनगण।

कष्टार्तव या रजोरोध—दन्ती, पिप्पली, गुड़, मदन, किण्व, स्नुहीक्षार, जयापुष्प, ज्योतिष्मतीपत्र, हिंगु, एलीयक, बोल, गुग्गुल, हरमल, चतुर्बीज, नाड़ी, हिंगु, काशीस, लोह, मण्डूर:, टंकण। सौश्रुतीय रक्तस्रावकगण, (सु० सू० १४) कर्पूर; कुष्ठ, एला, विडंग, चित्रक, त्रिकटु, अर्क, नक्तमालफल, पिशाच-कार्पासी।

प्रजास्थापन (गर्भस्थापन)—अश्वगन्धा, लक्ष्मणामूल, बला, शुण्ठी, केशर, पिप्पली, मरिच, यष्टीमधु, त्रिफला, कुष्ठ, वट्शुंगा, चन्दन, शतावरी, उत्पल, द्राक्षा, क्षीरीवृक्ष, शृंगाटक, शालूकादि गन्धप्रियंगु, पद्मांक। चरकोक्त प्रजास्थापनगण—ऐन्द्री, ब्राह्मी, शतवीर्या, सहस्रवीर्या, अमोघा, अव्यथा, शिवा अरिष्टा, वाट्यपुष्पी विष्वक्सेनकान्ता इति दशेमानि प्रजास्थापनानि भवन्ति। तथा जोवनीय विदारीगन्ध, बृंहणीय, घृत, दुग्धादि, सौश्रुतीय विदारीगन्धादि, उत्पलादि, तृणपंचमूल, न्यग्रोधादि गण। फलघृत, फलकल्याणघृत।

योनि दुर्गन्धि—पञ्चपल्लव, मालतीपुष्प, मधुककर्पूर।

योनि शैथिल्य—कारवेल्लकमूललेप, मूषकवसा, लोध्र, तुम्बीफल, माचिका, स्फटिका, कत्था (खदिरसार) मायाफलादि संकोचक, स्तम्भकद्रव्य।

रजोनाशक—धात्रीफलबीज, अञ्जन, अभया, श्लेष्मातक पत्र।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अपरापातक द्रव्य—कटुतुम्बी, सर्षप, सर्पनिर्मोक, अन्नामय, लांगली, तिक्तकोशातकी, स्नुही, अर्क, कार्पासमूल, कुष्ठ, शाल, भूर्जपत्र, कालागुरु, पिशाचकार्पासी, पंचकोल, मण्डूकपर्णी, कासमर्द; सौश्रुतीय पिप्पल्यादिगण, तथा चरकीय गर्भानुलोमन गण-कुष्ठैलांगलीवचा, चित्रकचिरबिल्व भूर्जशिंशिपासारधूमनस्य।

गर्भसुप्ति निवारक—श्येनमत्स्यगवयतिमिरताम्रचूडशिखिनामन्यतमस्यसर्पिष्मतारसेनमाषयूषेण वा प्रभूत-सर्पिणा मूलकभूषेण्वा रक्तशालीनामोदनं मृदुमधुरशीतं भोजयेत्। (च० शा० ८)

दुग्धजनन स्तन्यजननं—यव, गोधूम, शालि, षष्ठिक, मांसरस, पिण्याक, लशुन, कशेरुक, शृंगादक, बिस, विदारीकन्द, यष्टी, मधु, शतावरी, नलिका, अलाबू, कालशाकादि; चरकोक्त स्तन्यजनन वर्ग-वीरणशालिषष्टिकेक्षुवालिका, दर्भकुशकाशगुन्द्रेत्कट, कतृणमूलानीति दशेमानि स्तन्यजननानि भवन्ति।

स्तन्यदुष्टि—पाठा, शुण्ठी, देवदारु, मुस्तक, मूर्वा, गुडूची, इन्द्रयव, किराततिक्त, कटुकी, सारिवा, इति-दशेमानि स्तन्यशोधनानि भवन्ति, (च० सू०); वासा, हरिद्राद्वय, सुश्रुतोक्त-वचादि, हरिद्रादि, एलादि, काकोल्यादि, मुस्तादिगण।

गर्भोपघातक—तीक्ष्ण, उष्ण, लवण, अम्ल पदार्थ, गोधा, वराह, मत्स्यमांस, तीक्ष्णरेचक, वामक, शिरो-विरेचन द्रव्य।

बालरोग

बालरसायन—सुवर्ण, वचा, कुष्ठ, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, श्वेतघृत, मधु, मधुरनिम्ब।

नाभिपाक, नाभि शोथ—हरिद्रा, लोध्र, प्रियंगु, मधुक, दारु, हरिद्रा।

उल्बरोग (कण्ठगतश्लेष्मा)—व्योष, वचा, अभया, रजनीकल्क।

स्तन्यवमन—पंचकोल, मधु, बृहतीद्वयफलरस, आम्रास्थिमज्जा, लाजा, सैन्धव, चूर्णोदक, निम्बुसत्व, टंकण।

अहितुण्डिका—मयूरशिखामूल, सप्तपर्णपुष्प, मरिच, गोरोचन लेप।

अनामक—मरिच, रोचना, नवनीत, अर्क, स्नुही, सप्तपर्ण, रजनीचूर्ण, अर्कमूल, भृंगराजरस, पद्मपत्र।

ज्वरातिसार—मुस्तक, अतिविषा, पिप्पली, शृंगी, धातकी, धान्यक, लोध्र, इन्द्रयव।

अतिसार—शुंठी, अतिविषा, मुस्तक-बालक, इन्द्रयवश्शृतक्वाथ, मंजिष्ठा, पद्मकेशर, गुडूची, बिल्वशलाटु, आम्रफल, प्रियंगु, कोलास्थि, रसांजन, तण्डुलाम्बु।

संग्रहणी—अंकोठमूल, जम्बुत्वक्, इन्द्रयव, छागदुग्ध।

कासश्वास—वासा, शतपुष्पा, गवाक्षी, द्राक्षा, यवासा, घी, पुष्करमूल, सुखाम्बु।

हिक्का तथा वमन—व्योष, मधु, शर्करा, मातुलुंग, सुवर्णगैरिकचूर्ण, पंचमूलीश्शृतघृत।

गुदपाक—रसांजन।

मूत्रग्रह—पिप्पली, मरिच, सिता, त्रुटि, सैन्धव, मधु का अवलेह।

आनाह उदरशूल—सैन्धव, बिल्वशलाटु, हिंगु, भारंगीचूर्ण, गोघृत में मिलाकर चटाना।

तालुपात—हरीतकी, वचा, कुष्ठ-माक्षिक।

मुखपाक—गैरिक, मधु, आम्रास्थि, अश्वत्थत्वक् पत्र, दार्वी, जातिपत्र, अभया।

तृष्णा—दाडिमबीज, जीरक, नागकेसर, शर्करा, मधु।

मुखशोष—मयूरपक्षभस्मोदक, वटत्वगोदक।

नेत्ररोग—दार्वी, मुस्तक, गैरिक, छागपय में पीस कर लेप। मनःशिला, शंखनाभि, पिप्पली रसाञ्जनलेप।

कूकूणक—शुण्ठी, भृंगराज, हरिद्रा, सैन्धवपुटपाक।

पोथकी—विडंग, हरिताल, मनःशिला, दार्वी, लाक्षा, अंजन, सुवर्ण गैरिक।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सिध्म-पामा-विर्चचिकादि—गृहधूम, हरिद्रा, कुष्ठ, राजिका, इन्द्रयव, तक्रपिष्टलेप।

बालशोष—अश्वगन्धा, जीवनीयगण, अष्टवर्ग, अश्वगन्धादिघृत।

ग्रहणी, अतिसार, गुदभ्रंश—चांगेरीरस, छागीदुग्ध, कपित्थ, व्योष, सैन्धव, मंजिष्ठा, सारिवा, उत्पल, धातकी, बिल्व, मोचरस, सिद्ध घृत (चांगेरीघृत—चक्र०)।

दन्तोद्‌भेदरोग—कुमारकल्याणरस, (चक्रः) अष्टमंगलघृत, लाक्षादि तैल।

विष चिकित्सा

चरकोक्त—विषघ्नवर्ग-हरिद्रा मंजिष्ठा सुवहा, सूक्ष्मैला, पालिन्दीचन्दनकतक शिरीष, सिन्धुवार, श्लेष्मातका इति दशेमानि विषघ्नानि भवन्ति।

सुश्रुतोक्त—आरग्वधादि, अंजनादि, त्र्प्वादिगण तथा एकसरगण (सु० क० ५); सोमराजी फल तथा एकसर गण, फल तथा पुष्प, कटभी, सिन्धुवार, कुष्ठ, सर्पगन्धा, सप्तला, पुनर्नवा, शिरीषपुष्प, आरग्वध, अर्कपुष्प, श्यामलता, पाठा, आम्र, कृष्णमृत्तिका, अश्मन्तक।

रसायन

हरीतकी, आमलक, विडंग, नागबला, भल्लातक, पिप्पली, बिभीतक, मण्डूकपर्णी, यष्टिमधुक, गुडूची, शंखपुष्पी, शिलाजतु, ऐन्द्री, ब्राह्मी, पयस्या, श्रावणी, महाश्रावणी, शतावरी, विदारीद्वय, जीवन्ती, पुनर्नवा, पृश्निपर्णी, वचा, शतपुष्पा, मेदा, महामेदा, ब्रह्मसुवर्चला, आदित्यपर्णी, वाराहीकन्द, अग्निमान्द्य, विजयसार, सुधा, मूली, मूशली आदि।

मेध्य—श्वेतवाकुची, चित्रकमूल, मण्डूकपर्णी, ब्राह्मी, हेमवतीवचा, बिल्व, बिस, नीलोत्पल, सुवर्ण, वासा, प्रियंगु, पुत्रंजीव, यष्टीमधुक।

वाजीकरण

स्निग्ध, मधुर, जीवनीय, बृंहणीय, गुरु, मनोहर्षण द्रव्य-क्षीर, घृत, दधिसर, माष, शतावरी, कपिकच्छु, अश्वगन्धा, कुक्कुट, हंस, चटक, मयूर, तित्तिर अण्ड इत्यादि :—

(चरक)

द्रव्यों का कर्मानुसार वर्गीकरण 'क' भाग

(Classification according to Pharmacological Actions)

(अन्तः परिमार्जन में प्रयुक्त)

पाचक संस्थान (महास्रोतस्) प्रभावक

(Affecting Digestive System, Alimentary Canal)

१. **दन्त्य** (Dentifrice)—

(क) **शोधक** (Dental Disinfectant)—करञ्ज, तुम्बुरु, निम्ब, बब्बूल, विट्खदिर।

(ख) **दृढतादायक** (Dental-Astringent)—त्रिफला, बकुल, मायाफल, आकारकरभ।

२. **लालास्रावक** (Sialagogues)—आकारकरभ, राजिका, तुम्बुरु, निम्ब, मरिच, अम्ल, कटु तिक्तरसीय द्रव्य।

३. **लालास्रावशमनः** (Anti-Sialagogues)—धत्तूर, सूची, अहिफेन, पूग, कषाय रसवाले द्रव्य।

४. **स्वर्य (कंठ्य)** (Ciliary Excitants)—मधुक, आर्द्रक, शुंठी, वचा, कुलिंजन, कंटकारी पिप्पली, ताम्बूल, द्राक्षा, आलूबोखारा।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

५. सुगन्धित, दुर्गन्धहर (Aromatics)—एला, लवंग, कंकोल, ताम्बूल, कर्पूर, आकारकरभ।

६. तृष्णानिग्रहण स्नेहन (Demulscents)—द्राक्षा, आलूबोखारा, आमलकी, ईसबगोल, परुषक, विहीदाना, दाडिम, मधु।

७. वैशद्यकारक—ताम्बूल, पूग, जम्बीरतृण, गन्धतृण, निम्बु, वचा, कुलिजन।

आमाशय प्रभावक

८. रोचक, रुचिकरम् (Gustatory Stimulants)—दाडिम, नागरंगं, अम्लिका, निम्बु, एला, आम्र, परुषक, वृक्षाम्लादि।

९. दीपन (Stomachic)—त्रिकटु, शतपुष्पा, जीरक, चित्रक, किराततिक्तादि, कटुतिक्त, रसीय द्रव्य।

१०. अग्निसादक (Anti-Stomachic)—अहिफेन, चाय, सूचि, अपामार्गबीज, अतिमधुर, गुरु तथा कषाय द्रव्य।

११. पाचन (Digestives)—नागकेशर, मूलक, मुस्तक धान्यक, लवंग, शुण्ठी।

१२. हृद्यं, सौमनस्यजननम् (Exhilarants)—रोचकवत्।

१३. तृप्तिघ्न, अरुचिहरम्—चित्रक, विडंग, गुडूची, मूर्वा, मुस्तक, अजमोदा, यवानी आदि पाचक, दीपन, रोचक, द्रव्य।

१४. अरतिकरम् (Nauseants)—दुर्गन्धित तथा सड़े, वामक रेचकद्रव्य।

१५. विदाही—उष्ण, तीक्ष्ण तथा अम्लविपाकी द्रव्य राजिका, मरिच, माष, चणकादि।

१६. विदाह शामक (अम्लताहर) (Anti-acid)—आमलकी, हरीतकी, अहिफेन, गुडूची, गोदन्ती, खटिकादि।

१७. अनुलोमनम् (Carminatives)–सुगन्धित तथा रोचक द्रव्य।

१८. वमनोपगम् (Aid to Emetics)—मधुयष्टि सैन्धव, नीप, शणपुष्पी, अपामार्ग, मधु।

१९. वामक, छर्दनीयम् (Emetics)—मदनफल, अरिष्टक, धामार्गव, तुत्थ, हृत्पत्री, निम्ब, देवदाली, कटुतुम्बी, ईश्वरी।

२०. वमनशामक, छर्दिनिग्रहणीयम्, (Anti-Emetics)—कपूर, आम्र, जम्बु, पल्लव, उशीर, राजबदर (उन्नाव) दाडिम, निम्बु, मयूरपुच्छ, लाजा।

आमाशय-अन्त्र-प्रभावक

(Affecting Stomach and Intestines)

२१. उभयतोभागहर(वामक विरेचक)—देवदाली, कासमर्द, कोशातकी, इक्ष्वाकु, जीमूतक, अरिष्टक।

२२. अनुलोमनम् (सर) (Carminatives)—कटु तथा सुगन्धित द्रव्य, कर्पूर, हिंगु, धान्यक, नाडीहिंगु, शतपुष्पा, यवानी, मरुबक आदि।

२३. शूलप्रशमन (Sedatives Anti Spasmodic)—चव्य, पंचकोल, अजमोदा, चन्द्रशूर, हरमल, कर्पूरादि

२४. विष्टम्भि—कदम्ब, पनस, लकुच, सर्षपशाकादि।

अन्त्र-प्रभावक

(Affecting Intestines)

अधोभागहराणि (Purgatives)

२५. विरेचनोपग (रेचन में सहायक), स्नेहनम् (Demulscents)—द्राक्षा, काश्मरीफल, परुषक, आमलक, कर्कन्धु, पीलु आदि।

२६. सरम्, मृदुरेचक (Laxatives)—हरीतकी, यासशर्करा, फल्गु (अंजीर) ईसबगोल, गन्धक, मुलैठी, मलंगबीज।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

२७. स्रंसन (विरेचक) (Anthracene)—आरग्वध, एरंडतैल, सनाय, मार्कण्डिका, कुमारी सत्व, एलीयकम्।

२८. भेदनम् (Cathartics, Hydrogogue Purgatives)—कटुकी, इन्द्रायण, त्रिवृत्, स्वर्णक्षीरी, कम्पिल्लक, कृष्णबीज।

२९. विरेचनम् (Drastic Purgatives)—जयपाल, दन्ती, स्नुही, कंकुष्ठ।

३०. पुरीषजननम्—यव, माष, तडुण्लीयकम्, पत्रशाकादि।

३१. पुरीषविरजनीयम्—कमल, जम्बू, शाल:, शल्लकी आदि।

३२. पुरीषसंग्रहणीयम् (ग्राही, संग्राही) (Constipating)—लोध्र, धातकी, मायाफल, पूग, कुटज।

३३. पाचकग्राही—उष्णवीर्य, कटुद्रव्य शुंठी, जातीफल, कृष्णजीरकादि।

३४. स्तम्भन (शोषक) (Astringents)—कषायरसीय शीतवीर्यद्रव्य, अहिफेन, मोचरस, कपित्थ, आवर्तकी, बबूल आदि।

३५. आस्थानोपग—रास्ना, देवदारु, वचा, पिप्पली, कुष्ठ, मधुयष्टी।

३६. अनुवासनोपगम्—देवदारु, रास्ना, मदनफल, शतपुष्पा, पुनर्नवा, गोक्षरू आदि।

३७. कृमिप्रशामनम् कृमिशातनम् (Anthelmintics)—

(अ) कृमिशातनम्, कृमिघ्न—विडंग, शिग्रु, पलाशबीज, दमनकम् (अफसन्तीन)।

(१) गण्डूपद कृमि (Round-worm)—पलाशबीज, वन यवानिका, शान्तनम् (सेन्टोनीन)

(२) स्फीत कृमि (Tape-worm)—विडंग, दाडिमफलत्वक्, पूग।

(३) तन्तुकृमि (चुरवे) (Thread worm)—एलुआ, किराततिक्त निम्बादि तिक्तद्रव्यों की वस्ति।

(४) बडिश या अंकुशकृमि (Hook worm)—यवानीसत्व।

(आ) कृमिहरम् (Vermifuge)—कम्पिल्लक, इन्द्रयव।

यकृत् प्रभावक

(Affecting the Liver Function)

३८. पित्तसारक (Cholagogues)—लोबान, गिरिपर्पट, सुरंजान, दारुहरिद्रा, कालमेध, कुटकी, दमनक, काकमाची, कासनी, अपामार्ग, नृसार, रेवन्दचीनी। सप्तचक्रा-कुमारी, एलीयक, स्वर्जिकाक्षार।

३९. पित्ताश्मरीभेदन—गोरोचन।

४०. मधुरक शमन (मधुमेहहर) (Anti-Diabetics)—अहिफेन, हरिद्रा, बिम्बी, आम्र, जम्बूफलास्थि, केशर, त्रिफला, यव, चणक, क्षुद्रधान्य, मधुनाशनी, शिलाजतु, बंगप्रवाल।

४१. अर्शोघ्न (१) रक्तार्श—कुटज, इन्द्रयव, मूलक, रसांजन, कृष्णतिल, गन्धक, नागकेशर, यवासा, पंचक्षीरीवृक्ष, चांगेरी, लोणिका, रक्तबोल, (खूनखारावा) तृणकान्त।

(२) वातार्श—सूरण, अपामार्ग, भल्लातक, हरीतकी, चित्रक, बिल्व, निम्ब, महानिम्ब, वृन्ताक।

४२. प्लीहा प्रभावक द्रव्य (Affecting Spleen)—रोहीतक, कुमारी, इन्द्रायण, अर्क, किराततिक्त, हपुषा, झावुक, लोह।

हृदय तथा रक्तवहसंस्थान प्रभावक

(Affecting Heart and Blood Circulatory System)

४३. हृदय रसायन (Cardiac Tonics)—अर्जुन, हृत्पत्री, कुटकी, करबीरमूल, कर्पूर, वनपलाण्डु, तरुणी, सितिम्बिका, कोश।

४४. हृदयोत्तेजक (Cardiac Stimulants.)—तम्बाकू, सोम, बुन्द: (काफी) कस्तूरी, शुद्धवत्सनाभ पारसीकयवानी।

४५. हृदयावसादक (Cardiac Depressants)—अशुद्धवत्सनाभ, अहिफेन, कुपीलु, तिक्तवनवातामजटामांसी।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

४६. रक्तभारवर्धक—हृत्पत्री, मद्य, बुन्दः, सोम, अन्नामय (अर्गट)

४७. रक्तभारह्रासक—मादक तथा स्वेदल द्रव्य, सर्पगन्धा, अश्वगन्धा, ज्वरहर द्रव्य।

४८. रक्तवाहिनी संकोचक (Vaso Constrictors)—सोम, स्थानीय रूप में कषायस्कन्ध, स्फटिका, अपामार्ग।

४९. रक्तवाहिनी प्रसारक (Vaso Dilators)—मधु, कपूर, सुगन्धितद्रव्य, जयपाल, उष्ण द्रव्य, मरिचादि।

५०. रक्त संग्राहक (Haemostatics)—लाक्षा, रक्तबोल, गोदन्ती, तृणकांत, नागकेसर, गैरिक, पतंग, कुकुन्दर, दूर्वा।

५१. रक्तस्कन्दन (Styptics)—माबाफल, अपामार्ग, कोशेयभस्म तथा ऊर्णभस्म।

रक्तधातु प्रभावक

५२. शोणितास्थापन (Haematinics)—लौह, ताम्र, गैरिक, सोमल, गुग्गुलु, भल्लातक आदि।

५३. रक्त-प्रसादन (रक्त-शोधक) (Alteratives)—सारिवा, द्वीपान्तरवचा (चोपचीनी) मुंडी, मंजिष्ठा, उशवा, पद्म आदि।

५४. रक्त-दूषक—राजिका, सर्षपादिशाक, लवण, क्षार।

रसवह-संस्थान तथा रसधातु प्रभावक

५५. गण्डमालानाशक—कांचनार, पातालगरुड़ी, गुग्गुलु, सारिवा, गुडूची।

सूचना—शोथशामक आगे वर्णित है।

श्वास संस्थान प्रभावक
(Affecting Respiratory System)

५६. कासश्वासवेगहरम् (Respiratory Anti-Spasmodics)—कासमर्द, वंशलोचन, कंटकारी, धन्वयास, अगस्त्य, द्राक्षा, वासा, सोम, विभीतक, अहिफेन, हपुषा, धत्तूर; पारसीकयवानी; वनपलाण्डु।

५७. कफघ्न (छेदन) (Apophlegmatics)—मरिच; शटी; कंटकारी, शृंगी, हिंगु; कुन्दरू, रूमीमस्तगी, पिप्पली।

५८. कफनिष्कासक (Expectorants)—वासा, गोजिह्वा, श्लेष्मातक, यष्टीमधु, तालीशपत्र, जूफा, रेशाखतमी वनपलाण्डु, बनफशा।

५९. श्वसन केन्द्रोत्तेजक (Respiratory Stimulants)—बुन्दः (काफी) विषमुष्टि, सोम, कपूर, सूची।

६०. श्वसनकेन्द्र अवसादक (Respiratory Depressants)—अहिफेन, अशुद्ध वत्सनाभादि।

६१. हिक्का निग्रहणम्—शठी, बदरबीज, कंटकारीद्वयम्, मयूरपुच्छ, हरिद्रा, पिप्पली, कृष्णमरिच।

६२. श्लेष्मपूतिहर (Respiratory Disinfectants)—कपूर, लोबान, लवंग, तैलपर्णी (युक्लिप्टस) सरल।

वृक्क तथा मूत्र संस्थान प्रभावक (मूत्रवह स्रोतस् प्रभावक)
(Affecting Kidneys and Urinary System)

६३. मूत्रल मूत्र विरेचनीयम् (Diuretics)—गोक्षुरू, पुनर्नवा, कंकोल, श्वेतचन्दन, पाषाणभेद, पंचतृणमूल, कूष्माण्ड, कर्कटो, बुन्दः नारिकेलफलजल।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

६४. **मूत्र विरजनीयम्**—पद्म, शतपत्री, प्रियंगु, पुण्डरीकादि ।

६५. **अश्मरी शर्करा** (Anti-Lithics or Lithotropics)—पाषाणभेद, कुलत्थ, वरुण, गोक्षुरु, गुन्द्रः, कर्कटी, पंचतृणमूल, बदरपाषाण, मूलक क्षारादि ।

६६. **मूत्र संग्रहणीय** (Anti-Diuretics)—कृष्णतिल, अपक्व उदुम्बर फलादि, पंचक्षीरी-वृक्षों के अपक्व फल, अहिफेन, असन, आम्र, जम्बूमज्जा, श्वेत चन्दन, कंकोल ।

६७. **मूत्र शोधन** (Urinary Disinfectants)—श्वेत चन्दन, कंकोल, श्रीवास, टंकण, बोल ।

प्रजनन संस्थान प्रभावक

(Affecting Generative Organs)

पुंप्रजनन (शुक्रवहस्रोतस्) अंगप्रभावक (Affecting-male Reproductary organs)—

६८. **शुक्रल (शुक्र प्रजनन)**—अश्वगंधा, शतावरी, गोक्षुरू, मुशलीद्वयम्, बलामूल, कपिकच्छु, घृत, दुग्ध ।

६९. **शुक्रस्रुतिकर (कामोत्तेजक)** (Aphrodiasac)—(वाजीकरण), आकारकरभ, मृगमद, कर्पूर, मद्य, भंगा, धतूरबीज, रेगमाही, गंधमार्जारवीर्य ।

७०. **शुक्रस्तम्भक** (Retentives)—जातिफल, अहिफेन, कर्पूर, रेगमाही ।

७१. **शुक्र शोधक** (Semen Purifier)—कट्फल, समुद्रफेन, ईक्षुरक, एलवालुक, कुष्ठादि ।

७२. **शुक्रनाशक** (Anaphrodiasac)—धान्यक, क्षार, लवण, अतसी, राजिकादि ।

नारी प्रजनन संस्थान प्रभावक

(Affecting Female Reproductary Organs)

७३. **प्रजास्थापन (गर्भस्थापक)** (Impregnative Agents)—लक्ष्मणा, दूर्वा बला, यष्टीमधु, पद्मबीज, पद्मकाष्ठ, प्रियंगु, शाली, गोघृत, वट, उत्पल, केशर ।

७४. **गर्भरोधक** (Anti-Impregnatives)—गुञ्जा, पाठा, टंकण ।

७५. **गर्भाशय रसायन** (Uterine Tonics)—अशोक, लोध्र, कार्पास, उलटकम्बल ।

७६. **गर्भाशयशामक** (Uterine Depressants)—तिल्वक, खाखससत्व (अहिफेन) सूची ।

७७. **गर्भपातक या स्रावक** (Abortiyacients)—देवदाली, गाजरबीज, अर्क, स्नुही, वंश, शण ।

७८. **गर्भाशय-शोधन** (Ecbolics)—सर्पगन्धा, उलटकम्बल, (पिशाचकार्पासी) मिश्रेया (सुत्रा) कार्पासमूल, रेणुका, हरमल, संताप, अर्भकम् (अर्गट) तिक्ता (कुनैन)

७९. **रजःस्रावक (आर्तवजनन)** (Emmenagogues)—उष्ण, सर्षप, एलीयकम् (कुमारीसत्व) हिंगु, विषमुष्ठी, तथा गर्भाशय संकोचक द्रव्य ।

८०. **आर्तवशमन वा रजःस्रावहर** (Anti-Emmenagogues)—नागकेसर, पूग, जपा, शाल्मलीपुष्प, मोचरस, कदली, लोध्र ।

८१. **स्तन्य-जनन (दुग्धवर्धक)** (Galactogogues, Lactogogues)—शाली, षष्ठिक, दर्भ, कुश, विदारी, शतपुष्पा, माष, कार्पासबीज, दुग्ध, जीवनीयगण, जीवन्ती ।

८२. **स्तन्य-शोषक** (Anti-Galactogogues)—धत्तूरा, ताम्बूल, सूची, मल्लिका ।

८३. **स्तन्य-शोधन** (Milk-Purifier)—पाठा, शुंठी, मूर्वा, गुडूची, सारिवा, निम्ब, रसाञ्जन, वचा, हरिद्रा ।

८४. **अपरापातक**—कटुतुम्बी, सर्पनिर्मोक, कृतवेधन, शालसर्षप ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वात संस्थान (संज्ञावह स्रोतस्) प्रभावक
(Affecting Nervous System)

८५. **संज्ञास्थापन** (Conscious Promotors)—वचा, जटामांसी, कट्फल, हिंगु, नख, नखी, ब्राह्मी।

८६. **संज्ञानाशन** (Sedatives)—(संज्ञावहनाड़ियों के शामक) जटामांसी, तगर।

८७. **मेध्य** (Nervine-Tonics)—ब्राह्मी, वचा, शंखपुष्पी, ज्योतिष्मती, कूष्माण्ड, मण्डूकपर्णी, घृत, केशर, उस्तरखद्दूस।

८८. **मोहजनक (मादक)** (Narcotics)—मद्य, अहिफेन, धत्तूर, भंगा, वृद्धदारुकमूल।

८९. **प्रलापक** (Deliriants)—धतूरा, भंगा।

९०. **स्वापजनन** (Hypnotics)—अहिफेन, विजया, सर्पगंधा, अश्वगंधा, तगर, जटामांसी, पारसीकयवानी।

९१. **हर्षजनन-सौमनस्यजनन** (Exhilarants)—मद्य, विजया, भांग।

९२. **वेदनास्थापन (अंगमर्दप्रशमन)** (Analgesics)—अहिफेन, कट्फल, शाल, विदारीगंधा, पारसीकयवानी, कर्पूर, धत्तूर, गुग्गुल, रास्ना, सुरंजान, यवानी।

९३. **आक्षेपजनक (उत्तेजक)**—कुपील, धत्तूरा, विजया, गुंजा, तम्बाकू।

९४. **अवसादक या क्षोभशामक** (Nervine-Depressants)—जटामांसी-तगर, अम्बर, अश्वगंधा, मुक्ता, प्रवाल, दशमूलादि।

ज्ञानेन्द्रिय प्रभावक
(Affecting Sensory Organs)

९५. **चक्षुष्य (नेत्र्य)**—त्रिफला, कर्पूर, लोध्र, रसांजन, मधुयष्टी, घृत, कतक, चक्षुष्या, (चाकसू) ममीरा।

९६. **ताराविकासी** (Mydriatics)—सूची, धत्तूर।

९७. **तारासंकोची** (Myotics)—अहिफेन।

नासा प्रभावक

९८. **शिरोविरेचन, नस्य** (Errhines, Sternutatory)—क्षवक, अपामार्ग, कट्फल, विडंग, शिग्रु, मरिचादि।

९९. **आस्वादोत्तेजक** (Gustatory-Stimulants)—सुगन्धित, कटु, तिक्त, पदार्थ, आकारकरभ, कृष्ण-मरिच, बीजपूर, केघर।

१००. **शिरोविरेचनोपग**—तुम्बुरु, अजमोदा, ज्योतिष्मती, लसुन।

त्वचा प्रभावक
(Affecting the Skin and its appendages)

१०१. **वर्ण्य** (Cosmetics)—चन्दन, केशर, पद्मक, उशीर, मंजिष्ठा, सारिवा, लोध्रादि।

१०२. **स्नेहन, मार्दवकरम्** (Emollients)—घृत, तेल, वसा, मज्जा, मधूच्छिष्टादिक।

१०३. **रूक्षरणम्**—यव, भृष्टान्न, कट्फलादि चूर्ण।

१०४. **स्वेदल (स्वेदजनन)** (Sudorofices Diaphoretics)—तुलसी, कपूर, मरिच, वत्सनाभ, मुस्तक।

१०५. **स्वेदोपग**—पुनर्नवा, शिग्रु, निर्गुण्डी, अर्क, कुलत्थ, माष।

१०६. **स्वेदापनयन** (Anhydrotics Anti-Sudorifics)—सूचो, पारसोकयवानी, उशीर, धत्तूर, कुपीलु, तिक्ता (कुनीन)।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१०७. **रोमसंजननम्**—रसांजन, हस्तिदन्त, निम्ब, धत्तूर ।

१०८. **रोमशातनम्** (Depilatory)—क्षार, हरिताल, शंखचूर्ण ।

१०९. **केश्यम्**—त्रिफला, नारिकेल, तिलतैल, गुंजा, नीलिनी, मदयन्तिका, भृंगराज ।

११०. **कण्डूघ्न** (Anti Prurites)—नक्तमाल, निम्ब, दारुहरिद्रा, चन्दन, नलद, अरण्यहरिद्रा, वाकुची, जलनि, आम्रगंधिहरिद्रा, हरिद्रा, आरग्वध ।

१११. **उदर्दकोठप्रशमन**—खदिर, सप्तपर्ण, अरिमेद, प्रियाल, अर्जुन, असन, गैरिक, कृष्णमरिच ।

११२. **कुष्ठघ्न** (Anti-Leprotics)—खदिर, भल्लातक, त्रिफला, आरग्वध, निम्ब, सोमराजी, वाकुची, जातिप्रवाल, तुवरक, चक्रमर्द, काकोदुम्बरत्वक्, मूल ।

११३. **शोणितोक्लेदक, श्वयथुकरण** (Rubefacients, Counter-Irritants)—राजिका, सर्षप, अग्निमंथ, पाटला, अजगंधादि ।

११४. **स्फोटजनन** (Vesicants)—भल्लातक, चित्रक, शण, राजिका, पीलुत्वक्, वरुणत्वक् ।

११५. **पूतिस्फोटकारक** (Pustulants)—क्षार-चित्रकादि ।

११६. **दाहक** (Caustics)—क्षार, अम्ल, उष्णता ।

सर्वदेह प्रभावक

(Affecting Metabolism)

११७. **रसायन** (Preservatives)—आमलकी, भल्लातक, अष्टवर्ग, वलाचतुष्टय, हरीतकी, अश्वगंधा, विडंग, पिप्पली, निर्गुण्डी, आदि ।

११८. **बल्य** (Tonics, Analeptics)—विदारी, वाताद, लघुपंचमूल, मुशलीद्वयम्, गोक्षुरु, कपिकच्छु, शतावरी, पक्वाम्र, मांस, दुग्ध, विषमुष्टि, मृगमद, तगर, लोह, स्वर्णवंग ।

११९. **ओजवर्धक**—दुग्ध, घृत, फल ।

१२०. **ओजह्रासक**—मद्य, रुक्षान्न, पूग, कोद्रवादि ।

१२१. **जीवनीय, वयः स्थापन** (Vitalisors)—जीवनीयगण, दुग्ध, अमृता, मांस, मधुररस वाले पदार्थ, घृत, मधुकम् ।

१२२. **बृंहण (मांसलम्)** (Nutrients)—माष, अश्वगंधा, अष्टवर्ग, क्षीरिणी, मृद्वीका, वाताद, दधि, अक्षोट, मांस, कदली ।

१२३. **लेखन (कर्षण लाघवकर)** (Attenuatives)—उपवास, चित्रक, गोमूत्र, पुराणमधु, पुराण गुग्गुलु, प्रियंगु, वचा, दारुहरिद्रा, यव, वंश, श्यामाक, शिलाजतु, कृष्णमरिच, चणक ।

१२४. **स्नेहनम् (वसा उत्पादक)**—मेदवर्धक, घृत, बादाम, गोधूम ।

१२५. **श्रमहरम् (दाहहर)** (Refrigerants, Refreshing)—द्राक्षा, खर्जूर, दाडिम, फल्गू, परुषक, ईक्षुरस, नारंगम्, कमल, चन्दन, उत्पल, उशीर, प्रियंगु आदि ।

१२६. **अभिष्यन्दि**—मन्दक दधि ।

१२७. **सूक्ष्म** (Having the power of penetration)—निम्बतैल, ऊष्ण तीक्ष्ण द्रव्य, सैन्धव, मद्य, मधु, गुग्गुलु, श्रीवास ।

१२८. **व्यवायी**—विष, भंगा, अहिफेनादि ।

१२९. **विकासी**—कोद्रवान्न, अपक्व, पूगफल ।

१३०. **प्रमाथी**—काली मरिच, क्षवक, वचा ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१३१. **अगद विषघ्न** (Anti-dotes)—शिरीष, अपराजिता, निर्विषी, तण्डुलीयक, कासमर्द, पातालगरुडो ।

१३२. **ज्वरहर** (Febrifuge) (क) (Anti pyretics)—तापशामक, सहदेवी, वत्सनाभ, सारिवा, पाठा, परुषक, अभया, पटोल, आमलको पर्पट, जलनिम्ब, किराततिक्तादि और मूत्रल तथा स्वेदल द्रव्य ।

(ख) **आम पाचन**—मूर्वा, गुडूची, मुस्तक, पारिजातक, हरिद्रा, शुण्ठी, चिरायता, त्रायमाणा, कुटकी, कारवेल्लकादि ।

(ग) **नियतकालिक ज्वरहर** (Anti-Periodics)—करंज, सप्तपर्ण, तुलसी, द्रोणपुष्पी, त्रायमाणा, करवीर, तिक्ता, शंखविष, ताम्रादि ।

१३३. **शीत प्रशमन** (Stimulants)—अगुरु, कस्तूरी, दरियाई नारियल ।

१३४. **योगवाहित्व**—मधु, पारद ।

दाष प्रभावक

(Affecting Tridoshas)

१३५. **वात प्रकोपक**—कटु तिक्त, कषायरस, शीतवीर्य, शुष्क द्रव्य शाल, मुद्‌ग, मसूर, आढकी, हरितक, क्षुद्रधान्य, बाजरा, मक्का, कलाय, अतिव्यवाय, उपवास, क्षय, रात्रिजागरण, अतिशीत, रुक्ष, क्षोभादि पदार्थ ।

१३६. **वातावजयन (प्रशमन)**—देवदारु, कुष्ठ, हरिद्रा, वरुण, पुनर्नवा, बला, अतिबला, दशमूल, गुडूची, एरण्ड, जटामांसी, अर्क, अलर्क, शतावरी, अश्वगंधा, मूर्वादि, तगर, मधुर, अम्ल, लवणरस, स्निग्धोष्णद्रव्य ।

१३७. **पित्त प्रकोपक**—कटु, अम्ल, लवणरस, उष्ण, तीक्ष्ण विदाही, लघु, तिलतैल, सर्षप, अतसी, मत्स्य, दधि, अजा, आविकमांस, सुरादि ।

१३८. **पित्तावजयन (शामक)**—मधुर, तिक्त, कषाय, शीत द्रव्य, उशीर, सुगंधवाला, किराततिक्त, बृहती, शतावरी, पटोल, चन्दन, गुडूची, कमल, पर्पट, लाक्षा, शर्करा, पद्‌मोत्पल, कदली, जीवनीयगण ।

१३९. **कफ प्रकोपक**—मधुर, अम्ल, लवण, शीत, स्निग्ध, गुरु, पिच्छिल, अभिष्यन्दिपदार्थ, माष, महामाष, गोघृत, दधि, दुग्धविकार, आनूपौदकमांस, बिस, मृणाल, कशेरू, शृंगाटक, मधुरफलादि ।

१४०. **कफावजयन (शामक)**—रास्ना, ऊषण, पंचकोल, ताम्बूल, पिप्पलो मूल, तुलसो, मूर्वा, आर्द्रक, शिग्रु, बिभीतक, चिरविल्व, इंगुदी, वल्लीपंचमूल, कंटकी पंचमूल, मेषशृंगी, हिंगु, पुराणघृत, अर्कमूलादि ।

(ख) **बहि : परिमार्जन** (Used Externally) **द्वारा प्रयुक्त औषधियों के क्रम**

१४१. **विम्लापन** (Resolvents)—अलशी, उष्णता, सेक, स्वेदादि, कुन्दरू, उषक ।

१४२. **व्रणशोथपाचक**—तिल, शिग्रु, राजिका, यवादि, सर्षप, शण मूलक ।

१४३ **व्रणभेदक (दारण)** (Escharotics)—चित्रक, कपोतविष्टा, साबुन, करंज, क्षार, दन्ति ।

१४४. **व्रणशोधक** (Detergents)—जाति, निम्ब, करंज, उदुम्बर, त्रिफलादि ।

१४५. **व्रणरोपक** (Healers)—गुग्गुल, चोपचीनी, उदुम्बर, मांसरोहणी, मालती, राल ।

१४६. **व्रण प्रपीडन** (Squeezers)—शालमली, पिच्छा, यव, गोधूम, माषादि ।

१४७. **उपशोषण** (Desicents)—कुटजत्वक्, तुत्थादि ।

१४८. **दुर्गन्धहर** (Deodorants)—गुग्गुल, श्रीवास:, वचा, शल्लकी, लोबानादि ।

१४९. **पूयवर्धक**—नवधान्य, दुग्ध, दधि, गुड़विकार, माष, हरितक शाक, अम्ल, लवणरस ।

१५०. **पूयशामक (कोथप्रशमन)** (Anti-Septics)—

(**सामान्य** General)—गुग्गुल, अगुरु, सर्षप, निम्बपत्र, जटिला, अर्कमूल, टंकण, पारद, रसोन, ताम्र, तुत्थ, काशोशादि ।

(**बिशिष्ट**) (Specifics) (क) **आन्त्रिक**—कर्पूर, तक्र, पारद, ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(ख) मूत्रगत (Urinary)—चन्दन, कंकोल, श्रीवास ।

(ग) फुफ्फुसीय (Pulmonary)—लोबान, सरल, रूमीमस्तगी, तेलपर्णी ।

१५१. कृमिघ्न (परीश्रयीहर) (Parasiticides)—पारद, धत्तूर, निम्ब, गंधक, चन्दन, तेल, श्रीवास, कट्फल ।

१५२. संक्रमण नाशक (Disinfectants)—राल, श्रीवास, लोबान, गुग्गुल, वचा, सिद्धार्थक ।

१५३. उत्सादन (व्रणमांसवर्धक)—अपामार्ग, अश्वगंधा, मांसरोहणी, आदि ।

१५४. अवसादन (लेखन) (Corrosives)—कासीस, सैन्धव, किण्व, तुत्थादि ।

१५५. संकोचक (Astringents)—मायाफल, बबूलादि कषाय रस वाले पदार्थ, तुत्थ, स्फटिकादि ।

१५६. सन्धानीयम् (Fracture Healers)—अस्थिसंहार, कच्छपपृष्ठ, मांसरोहणी, मधुक ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तृतीय अध्याय

गुण-विज्ञान

द्रव्य की अपेक्षा गौण होने के कारण इन्हें 'गुण' कहते हैं। आयुर्वेद में द्रव्यों का कार्य रसादि द्वारा वर्णन किया जाता है और रसादि भी गुण ही हैं। अतः द्रव्य के पश्चात् गुणों का वर्णन करना उचित है।

गुण का लक्षण—"समवायी तु निश्चेष्टः कारणं गुणः" (च० सू० अ० १)

"द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम्" (वै० ८ अ० १)

'गुण' उस पदार्थ का नाम है, जो (१) द्रव्य में समवाय सम्बन्ध से रहता हो।[1]

(२) जिसमें क्रिया का अभाव हो अर्थात् जो निश्चेष्ट हो, संयोग या विभाग आदि क्रियाएँ जिसके द्वारा न हो सकें किन्तु जो इनका कारण हो।

(३) कारणम्—जो अपने समान गुण की उत्पत्ति का कारण हो। अतएव आचार्य ने "गुणाश्च गुणान्तरमारभन्ते"(१।१, १०) कहा है—उदाहरणार्थ घृत के सेवन करने से शरीर में स्निग्धता उत्पन्न हो जाती है।

(४) अगुणवान्—गुण में अन्य गुण नहीं रहता। 'गुणा गुणाश्रया नोक्ता" (च० सू० अ० २६) उक्त चारों लक्षणों वाला पदार्थ 'गुण' कहाता है।

नागार्जुन ने "विश्वलक्षणाः गुणाः" (र० वै० अ० १) विभिन्न लक्षणों वाला गुण है, ऐसा गुण का लक्षण कहा है। अर्थात् उनके मतानुसार गुणों का एक लक्षण नहीं हो सकता। क्योंकि शीतोष्णादि गुण स्पर्श ग्राह्य हैं, स्निग्ध रुक्षादि चक्षु या स्पर्शग्राह्य हैं, किन्तु ये लक्षण मान्य नहीं हैं।

गुणों की संख्या तथा प्रकार—यद्यपि गुण असंख्येय हो सकते हैं। तथापि अत्यन्त स्पष्ट और प्रगट गुणों की ही गणना की जाती है। जैसा आचार्य शिवदास सेन ने कहा है—

"गुर्वादय इति आविष्कृततमा एवं मज्जःपुरुषीये उक्ता, तेन गुणानामसंख्येयत्वादन्येऽपिज्ञेयाः। अतएव प्रमेहे श्लेष्मगुणेषु अच्छत्वादयो गुणाः पठ्यन्ते। एते च द्रव्याश्रिताः वैद्येनये गुणत्वेन परिभाष्यते।"

(५) (२०) (६) (१०)

"सार्था गुर्वादयो बुद्धिप्रयत्नान्ताः परादयः।

गुणाः प्रोक्ताः..........(च० सू० अ० १) (योग ४१ गुण)

गुण चार प्रकार के हैं—

(१) **वैशेषिक गुण**—प्रत्येक महाभूत का अपना विशिष्ट गुण—ये इन्द्रियों के अर्थ-विषय हैं। यथा, आकाश का शब्द गुण कर्णेन्द्रिय का अर्थ हैं। वायु का स्पर्श गुण त्वचा का, अग्निका रूप गुण चक्षु का, जल का रस गुण जिह्वा का, पृथ्वी का गन्ध गुण नाक का, मन का गुण चिन्तन करना—मन भी इन्द्रिय है, अतः उसका विषय भी यहाँ गिन लिया गया है। इस प्रकार ये छः इन्द्रियों के विषय हैं।

(२) **सामान्य गुण**—गुरु आदि "गुरु मन्दहिमस्निग्ध श्लक्ष्णसान्द्रमृदुस्थिराः। गुणाः ससूक्ष्मविशदाः विंशतिसविपर्ययाः।" (अ० सं०)

बीस गुण हैं। इन्हें "सामान्य गुण" कहते हैं। इन्हें ही 'शारीरिक गुण' भी कहते हैं। क्योंकि शरीर पर इन्हीं गुणों का प्रभाव पड़ता है। 'कर्मण्यगुण' भी इनका ही नाम है। निघण्टु शास्त्र में इन्हीं का महत्व है। इनका विशेष वर्णन आगे किया गया है।

(३) **आध्यात्मिक गुण**—ये आत्मा के गुण हैं। यथा, इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं प्रयत्नश्चेतना धृतिः। बुद्धिः स्मृतिरहंकारो, लिंगानि परमात्मनः॥ (च० शा० अ० १)

ये दस गुण-आत्मा या परमात्मा के हैं। इनका आयुर्वेद में कोई उपयोग नहीं होता।

१—समवायोऽपृथग्भावोभूम्यादीनां गुणैर्मतः। (चरक सू० १)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(४) **गौण गुण या व्यावहारिक गुण**—ये भी सामान्य गुणों (पृथिव्यादि सब भूतों में सामान्य होने से ये 'सामान्य गुण' कहलाते हैं) का ही अंश हैं, किन्तु 'गुरु आदि गुणों को अपेक्षा आयुर्वेद में इनका कम उपयोग होता है, अतः 'गौण गुण' भी इन्हें कहा गया है। पर, अपर, संख्या, संयोग, विभाग, पृथक्त्व; परिणाम, संस्कार, अभ्यास, युक्ति ये दस गौण गुण हैं। इस प्रकार समग्रगुण ६+२०+१०+५=४१ होते हैं। यद्यपि-अन्य शास्त्रों में-चेतना, धृति, स्मृति, अहंकार का अन्तर्भाव बुद्धि के अन्तर्गत ही आ जाता है। तथापि शारीर-शास्त्र में पृथक्ग्रहण किया गया है। आयुर्वेद में सामान्य गुणों का उपयोग होता है। अतः, उनका ही वर्णन किया गया है। अन्य गुणों का उल्लेख संक्षेप में उधर ही हो गया है।

गुणों के भेद

(५) सार्थाः, (२०) गुर्वादयो, (६) बुद्धि प्रयत्नान्ताः, (१०) परादयः।
गुणाः प्रोक्ताः (च० सू० १) कुल ४१।

गुण-भेद

आधिभौतिक — आध्यात्मिक (इच्छा-द्वेष प्रयत्नादि)

आधिभौतिक: सामान्य गुण — विशिष्ट गुण

विशिष्ट गुण: (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) (५)
(ख वायु तेज जल भूमि महाभूतों के क्रमशः)

सामान्य गुण: चिकित्सोपयोगी

चिकित्सोपयोगी:

परादि (१० गुण)
(व्यावहारिक गुण)
पर, अपर
युक्ति, संख्या
संयोग, विभाग
पृथक्त्व, परिणाम
संस्कार, अभ्यास

गुर्वादिगुण (२०)
(शारीरिक वा कर्मण्य गुण)
गुरु, मन्द, हिम स्निग्ध, श्लक्ष्ण, सान्द्र, मृदु, स्थिरा।
गुणाःससूक्ष्म विशदाः विंशति सविपर्ययाः।
गुरु लघु मृदु कठिन
मन्द तीक्ष्ण स्थिर सूक्ष्म
हिम उष्ण स्थूल सूक्ष्म
स्निग्ध रूक्ष विशद् पिच्छिल
खर श्लक्ष्ण सान्द्र द्रव

आध्यात्मिक गुणों में—

"इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं प्रयत्नश्चेतनाधृति।
बुद्धिः स्मृतिरहंकारो लिंगानि परमात्मनः॥'

के अतिरिक्त चरकोपस्कार के लेखक श्री योगेन्द्रनाथ सेन द्वारा उल्लिखित "मनो मनोऽर्थौ बुद्धिरात्मा चेत्यध्यात्मद्रव्यगुणसंग्रहः" का समावेश चेतना तथा बुद्धि में ही हो जाता है। अतः गुण संख्या ४१ ही रहती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुरु आदि बीस शारीरिक-कर्मकारक (कर्मण्य) गुण

गुरु मन्द हिम स्निग्ध श्लक्ष्णसान्द्र मृदुः स्थिराः ।
गुणाः ससूक्ष्म विशदाः विंशति सविपर्ययाः ॥ (अ० सं० सू० अ० १)

१. गुरु	११. श्लक्ष्ण (चिकना)
२. लघु	१२. खर
३. मन्द	१३. सान्द्र (गाढ़ा)
४. तीक्ष्ण	१४. द्रव
५. हिम (शीत)	१५. मृदु
६. उष्ण	१६. कठिन
७. स्निग्ध	१७. स्थिर
८. रूक्ष	१८. चल (सर)
९. सूक्ष्म	१९. विशद
१०. स्थूल	२०. पिच्छिल

उक्त १० द्वंद्वों जोड़ों से बीस गुणों की गणना की गई है। इन द्वंद्वों में कुछ मतभेद भी है। यथा, सुश्रुत में तीक्ष्ण का विरोधी गुण मृदु और सर का विरोधी मन्द दिया है। (सु० सू० अ० ४६)। चरक ने 'स्थिर' का विरोधी 'सर' गुण दिया है (च० सू० अ० १५)। शेष वाग्भटाचार्य के समान है। सुश्रुत ने इनके अतिरिक्त व्यवायी, विकासी, सुगन्ध, दुर्गन्ध, आशुकारी आदि गुण अधिक दिये हैं। वस्तुतः पहले दो गुणों का अन्तर्भाव तो सर और तीक्ष्ण (अनयोः सर तीक्ष्ण प्रकर्षातम तया इह सरतीक्ष्णयोरवरोध—यो०) में ही अन्तर्भाव हो जाता है। दुर्गन्ध और सुगन्ध गन्ध के ही भेद हैं। जो पृथिवी का वैशेषिक गुण है। आशुकारी का अर्थ है शीघ्र गुणकारी—जो सूक्ष्म, तीक्ष्ण का ही धर्म है। अतः, इन्हीं में इसका अन्तर्भाव हो जाता है। इस विषय में आचार्य चक्रपाणिदत्त के निम्न बचनों को भी ध्यान में रखना चाहिए "एते विकासित्वादयो गुणाः यद्यपि विंशति गुणगणनायां न पठिताः, तथाप्यसंख्येयतया गुणानामेषामपि गुणत्वं सिद्धम्। ये तु तत्र पठितास्ते तावदाविष्कृततमाज्ञेयाः" (चक्रः च० चि० ३४)। यों तो गुण असंख्येय है, किन्तु अधिक कार्यकर, प्रत्यक्ष और प्रधान होने से बीस गुणों का ही उल्लेख किया गया है। उक्त वचन में आविष्कृततम गुणों का सिद्धान्त उचित और युक्तियुक्त है। क्योंकि इन बीस गुणों में भी शक्ति की श्रेष्ठता के कारण आठ गुणों को ही वीर्य बताया गया है। आचार्य सुश्रुत ने "कर्मभिस्त्वनुमीयन्ते नाना द्रव्याश्रयाः गुणाः" (सु० सु० ४६) तथा उसके अनुयायी भदन्त नागार्जुन ने भी वीर्य संज्ञक दस गुणों को ही 'कर्मण्य गुण' संज्ञा दी है। "शीतोष्ण स्निग्ध रूक्ष विशद पिच्छिलः गुरु-लघु-मृदु-तीक्ष्णा, गुणा, कर्मण्याः" (र० वै० ३ । ११) उक्त दश गुण चिकित्सा कर्म में उपयोगी होते हैं। अतः उनकी कर्मण्य संज्ञा है। आचार्य भाव मिश्र (१६वीं शती) ने अपने समय में उपलब्ध सुश्रुत संहिता के अनुसार निम्न बीस गुण गिनाए हैं। जो आजकल उपलब्ध सुश्रुत संहिता से कुछ भिन्न हैं।

सुश्रुते तु गुणाः प्रोक्ता विंशतिस्तान् ब्रुवे श्रृणु ।
गुरुर्लघुस्निग्धरूक्षौ तीक्ष्णः श्लक्ष्णः स्थिरः खरः ॥
पिच्छिलो विशदः शीत उष्णश्चमृदुकर्कशौ ।
स्थूलः सूक्ष्मो द्रवः शुष्कः आशुर्मन्दः स्मृतः गुणः ॥ (भा० पू० खं०)

गुणों के कार्य—अथ ऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिगुणानां कर्मविस्तरम् ।
कर्मभिस्त्वनुमीयन्ते नानाद्रव्याश्रयाः गुणाः ॥

---

(१) इह चेतनादीनां बुद्धि ग्रहणे नैवग्रहणं । शारीरे तु चेतनादीनामपि पृथगात्मगभकत्वेन पृथग्पाठः ॥ चक्रपाणिदत्त (च० स० अ० १ में)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ल्हादनः स्तम्भनः 'शीतो' मूर्च्छातृड्दह स्वेदजित् ।
'उष्ण' स्तद्विपरीतःस्यात् पाचनश्चविशेषतः ॥
स्नेहमार्दवकृते 'स्निग्धो' बलवर्णकरस्तथा ।
'रूक्ष' स्तद्विपरीतःस्यात्, विशेषात् स्तम्भनः खरः ॥
'पिच्छिलो' जीवनोबल्यः सन्धानः श्लेष्मलो गुरुः ।
'विशदो' विपरीतो स्यात् क्लेदाचूषणरोपणः ॥
दाहपाककरस्तीक्ष्णः स्रावणो मृदुरन्यथा ।
सादोपलेपबलकृत् गुरुस्तर्पण बृंहणः ।
लघुस्तद्विपरीतोस्याल्लेखनो रोपणस्तथा ॥
दशाद्याः कर्मतः प्रोक्तास्तेषां कर्मविशेषणैः ।
दशैवान्यान् प्रवक्ष्यामि द्रवादींस्तान्निबोधमे ॥
द्रवः क्लेदनः, सान्द्रःस्थूलः स्याद्बन्धकारकः ।
श्लक्ष्णः पिच्छिलवज्ज्ञेयः, कर्कशो विशदो यथा ॥
सुखानुबन्धीसूक्ष्मश्च, सुगन्धो रोचनो मृदुः ।
दुर्गन्धो विपरीतो स्यात् हृल्लासारुचिकारकः ॥
सरोऽनुलोमनः प्रोक्तो, मन्दो यात्राकरः स्मृतः ।
व्यवायीचाखिलं देहं व्याप्य पाकाय प्रवर्तते ॥
विकासी विकसन्नेवं धातुबन्धान् विमोक्षयेत् ।
आशुकारी तथाशुत्वाद् धावत्यम्भसि तैलवत् ॥
सूक्ष्मस्तु सौक्ष्म्यात् सूक्ष्मेषु स्रोतःस्वनुसारः स्मृतः ।
गुणा विंशतिरित्येव यथावत् परिकीर्तिताः ॥ (सु० सू० अ० ४६)[1]

आयुर्वेद में गुण-औषधियों के चिकित्सा सम्बन्धी कार्यों के द्योतक हैं । इनका अनुमान द्रव्यों के कर्मों द्वारा किया जाता है । गुण ही द्रव्यों के कर्मों के कारण होते हैं । निर्गुण पदार्थ अपना कार्य नहीं कर सकते । अतः गुणों की कार्मुकता की सीमा (समयानुसार) बताई गई है । यथा—"हीनत्वं गुटिका लेहोलभते वत्सरात्परम्" (शा० प्र० ख० अ० १) । इन गुणों के विशेष कर्मों का वर्णन अष्टांग संग्रह में दिए गए क्रम के अनुसार किया गया है । 'गुण का कार्य' इस वाक्य का अभिप्राय है गुणवाले पदार्थ का कर्म । यथा, गुरु गुण अर्थात् इस गुण वाले दुग्ध, गेहूँ, आदि का कार्य ।

(१) गुरु गुण—यह पृथिवी तथा जल[2] महाभूतों की अधिकता से बना है, अतएव अधोगमन स्वभावी है । इस स्वभाव के कारण ही वह गुरु (भारी) कहलाता है । जो पदार्थ शरीर में भारीपन (भार बढ़ना) उत्पन्न करते हैं तथा पचने में भी भारी होते हैं, वे गुरु गुण वाले कहे जाते हैं । इन द्रव्यों-परमाणुओं का संगठन अत्यन्त संश्लिष्ट होता है । इन कारणों से ये शरीर में गुरुता, बृंहण (पुष्टि), संघात, साद (आलस्य), उपलेप (चिकनाहट) तथा बलकारक, वात-नाशक, कफवर्धक और चिरपाकी होते हैं । यथा, घी, बादाम, दूधादि ।

(२) लघु (हल्का)—इसमें आकाश-वायु[3] तथा अग्नि की अधिकता होती है और यह ऊर्ध्वगति वाला है । जिस द्रव्य में शरीर को पतला और हल्का करने की शक्ति हो वह लघु होता है । यह शीघ्र पच जाता हैं और पथ्य है । कफ-नाशक, वातनाशक, व्रणरोपक, शोषक तथा मधुर से विपरीत गुण वाला, स्फूर्ति, उत्साह देने वाला है । यथा, बाजरा, मक्का आदि अन्न ।

---

१. उक्त पाठ अपपाठ प्रतीत होता है । यद्यपि अन्तिम पंक्ति में गुणों की संख्या बीस ही लिखी गई है, किन्तु २२ गुणों का वर्णन किया गया है । वह भी भिन्न ही है ।
२. गौरवं पार्थिवमाप्यं च (र० वै० ३ । ११६)
३. लाघवमन्यदीयम् (र० वै० ३ । ११७)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(३) शीत—यह जल तथा वायु महाभूत की अधिकतावाला गुण है। इनका संघात भी दृढ़ होता है। कर्म तथा स्पर्शेन्द्रिय द्वारा इसका ज्ञान होता है। यह आह्लादकारक (प्रसन्नता देने वाला), स्तम्भन (जकड़ाहट उत्पन्न करने वाला या स्रावों को न्यून करने वाला) दाह, मूर्च्छा, स्वेद तथा तृष्णा का नाशक है।

(४) उष्ण—यह अग्नि[1] महाभूत की अधिकता से उत्पन्न गुण है तथा शीत का विरोधी है। पित्तवर्धक, वात-कफशामक, पाचन, स्रावों का प्रवर्तक, दाह, तृष्णा, मूर्च्छा और स्वेदोत्पादक है। जो गुण (युक्त द्रव्य) स्वेद लानेवाला हो वह उष्ण कहलाता है (हेमाद्रि)।

(५) स्निग्ध—यह जल महाभूत प्रधान है। स्नेहोऽपा विशेषगुणः (प्र० पा० भा०) इसमें शरीर को आर्द्र (गीला) करने की तथा बिखरे कणों को संगठित करने की विशेष शक्ति पाई जाती है। यह वातहर, कफवर्धक तथा वाजीकरण, बल, वर्ण और शरीर में स्निग्धता तथा मृदुता बढ़ानेवाला है।

(६) रूक्ष (रूखा)—इस गुणवाले द्रव्यों में वायु, पृथिवी तथा अग्नि महाभूतों की प्रधानता है। यह विशेषकर शोषण, वातल, अवृष्य, और कफनाशक स्निग्ध के विरुद्ध कार्य करने वाला (रूक्षता), खुरदरापन, कठोरता, बल, वर्ण का ह्रास करने वाला है।

(७) मन्द—पृथ्वी तथा जल महाभूत प्रधान यह गुण शमन कर्म (हेमाद्रिः) में उपयुक्त, देर में क्रिया करने वाला अथवा चिरकाल तक जिसकी क्रिया रहे, ऐसा, शरीर में शिथिलता करनेवाला होता है।

(८) तीक्ष्ण—अग्नि महाभूत प्रधान यह गुण, शोधन शक्ति वाला, स्रावों को बहाने वाला, दाह, पाक करने वाला, पित्तवर्धक, कफशामक है।

(९) स्थिर—पृथिवी महाभूत की अधिकता वाला यह गुण धारण तथा स्वम्भन शक्तिवाला है। वात तथा मूत्र, मल, स्वेद आदि स्रावों को स्तम्भित करने वाला और चिरस्थायी कर्मवाला गुण है।

(१०) सर या चल (वाग्भट)—जल भूत बहुल यह गुण चलने की या गति की शक्तिवाला है। वात तथा मल प्रवर्तक है।

(११) मृदु—आकाश एवं जल महाभूतों की अधिकता वाला, शरीर को श्लथ (ढीलाढाला या मुलायम) करने की शक्तिवाला दाह, पाक, स्रावनाशक तथा कफवर्धक है।

(१२) कठिन—'कठिनत्वं पार्थिवं' (र० वै० अ० २। ५८) के अनुसार पृथिवी महाभूत की अधिकतावाला यह गुण पदार्थों को कठिनता या संघात प्रदान करता है। मृदुता का यह विरोधी है।

(१३) विशद—तेज, पृथ्वी, आकाश और वायु महाभूत प्रदान होने से क्लेद (आर्द्रता-गीलापन) का नाशक है। व्रणरोपक तथा शोषक है।

(१४) पिच्छिल—(लुआबदार या लेस वाला यथा-गोंद, ईसबगोलादि) जल महाभूत को अधिकतावाला यह गुण शरीर के स्रोतों का उपलेप (लुआबदार लेप) करने की शक्ति रखता है। यह जीवनीय बल्य, गुरु, कफकारक, तन्तुल (लेसदार) और भग्नसन्धान (टूटी हड्डियों को जोड़नेवाला) है।

(१५) श्लक्ष्ण—(स्नेहरहित चिक्कण यथा शीशा-काच) तैजस् महाभूत वाला (तैजस् श्लक्ष्णं नाम र० वै० २। ५८) व्रणरोपण एवं पिच्छिल के समान ही कार्य करता है यद्यपि इसमें स्नेह (लेस) नहीं होता।

(१६) खर (खुरदरा)—पृथिवी-वायु या तेज महाभूतों की अधिकता वाला यह लेखन (मांस या धातुओं को काटना) शक्तिवाला गुण देह में रूक्षता तथा खुरदरापन को बढ़ाता है तथा विशद के समान कार्य करता है।

सुश्रुत ने 'खर' के स्थान पर 'कर्कश' गुण कहा है। उसके गुण विशद के समान हैं तथा वायु महाभूत प्रधान है (कर्कशत्वं वायव्यम्)

(१७) सूक्ष्म—अग्नि, वायु और आकाश महाभूतों की अधिकता से उत्पन्न यह गुण स्रोतों को खोलने (विवरणे सूक्ष्मः, हे०) की शक्तिवाला यह गुण शरीर के छोटे-से-छोटे अंगों में भी प्रवेश की शक्ति रखता है।

(१८) स्थूल—पृथ्वी प्रधान यह गुण शरीर के स्रोतों में अवरोध (संवरणे स्थूल-हे०) उत्पन्न करनेवाला है। गुरु विपाकी, कफवर्धक तथा शरीर को स्थूल करनेवाला है।

---

१. तैजसमौष्ण्यं तीक्ष्णं च (र० वै० ३। ११३)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(१९) सान्द्र (गाढ़ा)—यह भी स्थूल के समान पृथिवी महाभूत प्रधान, तथा प्रसादन शक्ति वाला, शरीरपोषक एवं उसे स्थूल बनाता है।

(२०) द्रव (पतला)—जल प्रधान, शरीर में व्याप्त होने वाला (विलोड़ने द्रवम्—हे०) और उसे आर्द्र या तर रखने वाला गुण है।उक्त बीस गुणों के अतिरिक्त अन्य गुण—

(१) व्यवायी—वायु और आकाश महाभूत प्रधान यह गुण सारे शरीर में फैल कर पुनः पाक को प्राप्त होता है। कई आचार्य 'सर' की ही उत्कृष्ट अवस्था को 'व्यवायी' कहते हैं। हेमाद्रि ने 'द्रव' में इसका अन्तर्भाव किया है।

(२) विकासी—वायु प्रधान यह गुण बिना पचे ही सारे शरीर में फैलकर धातुओं को शिथिल करता है। वृद्धवाग्भट्ट ने तीक्ष्ण की प्रकर्षावस्था को विकासी कहा है (सर-तीक्ष्ण प्रकर्षौ तु कैश्चित्तौ प्रकीर्तितौ) (अ० सं० सू० १)। हेमाद्रि ने 'खर' में इसका अन्तर्भाव किया है।

(३) आशुकारी—वायु तथा आकाश प्रधान यह गुण जल में तैल के समान शीघ्रव्यापी है। भाव मिश्र ने मन्द के साथ 'आशु' दिया है जो 'तीक्ष्ण' का पर्याय ज्ञात होता है। हेमाद्रि ने 'चल' में इसका अन्तर्भाव किया है।

(४) सुगन्ध—सूक्ष्म, सुखदायक, रुचिकारक और मृदु है।

(५) दुर्गन्ध—सुगन्ध से विपरीत कार्यवाला अरुचिकारक तथा जी मचलाने वाला (हृल्लासकारक) है। वैशेषिक दर्शन में इसको गन्ध का ही भेद माना है स्वतन्त्र गुण नहीं।

(६) प्रसन्न—मद्य में पाए जाने वाले विकासी आदि गुणों के विपरीत क्षीरादि में यह गुण पाया जाता है। इन बीस से अधिक गुणों के विषय में आचार्य हेमाद्रि का मत इस प्रकार है यनु व्यवायी विकासी, सुगन्धाशुकारि-प्रसन्नादयः स विपर्मया "न्येऽपिगुणाः दृश्यन्ते ?.......... तत् कथं विंशति गुणाः इति ? अत्रोच्यते य एतेऽतिरिक्तागुणाः दर्शिताः, ते विंशतावेवान्तर्भूताः। तथाहि व्यवायि विकाशि-आशुकारिणस्तावन्मद्ये पठयन्ते, प्रसन्नः क्षीरे, मद्य गुण विपरीता ओजसि, यएवौजसि त एव क्षीरे ततश्च तद्गुण परस्परविपर्ययपर्यालोचनया व्यवायि द्रवेऽन्तर्भूतः, विकासी खरे, आशुकारी चले प्रसन्नः स्थूले, तेहि पारिशेष्याद्श्लक्ष्ण-स्थिर-सूक्ष्माणां विपर्ययाः ॥ (अ० हृ० सू० अ० १)। इसका भावार्थ ऊपर दिया" जा चुका है। इच्छा द्वेषादि अध्यात्मगुण मानसिक शास्त्र का विषय है। इनका वर्णन वहीं देखना चाहिये। निम्न तालिका द्वारा उक्त बीस गुणों को सुस्पष्ट तथा सरल रूप में दर्शाया गया है—

गुण-उदाहरण	महाभूत-दोषसंबन्ध	कर्म
१. गुरु (Heavy Difficult to digest) यथा, माष, मुशली, दुग्ध आदि	पृथ्वी+जल + + + कफवर्धक	बृंहण (Growth promotor) चिरपाकी, पौष्टिक (Nutrient) बल्य (Vitality giver) अवसादक (ग्लानि, सुस्ती) (Languar) उपलेपक (मल की अधिक मात्रा उत्पन्न करनेवाला) तर्पण (Gratifier), वातशामक, कफवर्धक।
१. लघु (Light Easy to Digest) यथा, लाजा, मुद्ग, चावल	वायु+आकाश+अग्नि + + + + + वातवर्धक कफघ्न	पथ्य (Salutory), लाघवकर (Activating), शीघ्रपाकी, कर्षण (Emaciator), लेखन (Attenuative), रोपण (Healing) बल तथा धातुओं को क्षीण करने वाला, अपतर्पण, वातवर्धक, कफहर।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

२. शीत (ताप या दाह हर (Cooling, Temperature lowering)	जल+वायु ++ + पित्तघ्न वातश्लेष्मकारक	आह्लादक (Refrigerent) स्तम्भन (Retentive) मूर्छा, तृष्णा, दाह-स्वेदहर (Alleviator of faintness, thurst, sweating & burning sensation)
यथा, चन्दन, खस आदि		
२. उष्ण (Heating or stimulating) यथा, चित्रक अगरादि	अग्नि पित्तवर्धक कफवातशामक	अनाह्लादक (Unwholesome) अनुलोमन (Carminative) दहनं (Caustic) पाचनं (Digestive) मूर्छा, तृष्णा तथा स्वेदकारक
३. स्निग्ध (Oily या Soothing) यथा, घृत, तैल बादाम आदि	जल +++ वातहर कफवर्धक	स्नेहन (Emollient) क्लेदन (Moistening) बल (Vitality) वर्ण (Complexion) मृदुता (Softness) वाजीकरण (Aphrodiasiac) वातहर-कफवर्धक।
३. रूक्ष (Dehydration or Descication) यथा, चणक, यव आदि	वायु+अग्नि +++++ पृथ्वी वातवर्धक कफशामक	शोषण (Descication) रूक्षणं (Dehydration) स्तम्भन, काठिन्य (Hardness) कर्कश (Hard & Rough) बल-वर्ण हानिकर, वातवर्धक, कफनाशक।
४. मन्द (Dull or slow in action or Long acting) यथा, गुडूची, सप्तपर्ण	पृथ्वी+जल + + + कफवर्धक	संशमन (Soothing) चिरकारी (Long acting or slow acting) श्लथनं (Depressing or Relaxing)
४. तीक्ष्ण (Active, Pungent or Sharp) यथा जयपाल, मरिचादि	अग्नि पित्तकारक वात कफहर	दहनं, पाचन (Digestive) स्रावणं (Causing flow) लेखन, संशोधन (Cleansing or eliminating) पित्तकरं कफ वातहरणम्।
५. स्थिर (Inert or Immobile) यथा, जातीफल-शालपर्णी	पृथिवी कफवर्धक	धारणं (Sustaining) वात-मल-स्राव-स्तम्भन, चिरस्थायी करने वाला (Enduring)
५. चल (सर) (Mobile, Motive) यथा, आरग्वध-हरीतकी	जल कफवर्धक पित्तघ्न	अनुलोमन-मल वात प्रवर्तक (Carminative & Laxative) प्रेरण (Motive)
६. मृदु (Soft Delicate) यथा, घी, मधु	जल+आकाश + + कफवर्धक, पित्तशामक	श्लथन (Slackness or Depressing) अपचनं (Indigestion)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

		दाहनाशक, स्रावशोषक (Descicating) कफवर्धक, पित्तघ्न
६. कठिन (Hard Compactness) यथा, प्रवाल	पृथिवी वातवर्धक	दृढ़न (Hardening) संघात (Compactness)
७. विशद (Dry, Hard, Smooth) यथा, सूखी लकड़ी, क्षारादि	आकाश+वायु + ++ कफघ्न वातवर्धक	क्लेदनाशक (Anti Moisture) व्रणरोपक (Healing) लाघवकर, कफहरम्
७. पिच्छिल (Slimy, Mucilagenous) यथा गोंद, ईसबगोल	जल कफवर्धक पित्तशामक	लेपनं (Coating, Plastering) जीवन, बल्यं (Vitality & Energy giver) गौरवं सन्धानकारक (Fracture Uniter) कफवर्धक
८. श्लक्ष्ण (Smooth) यथा कांच, दुग्ध, पाषाण	तैजस्+महाभूत ++ + कफ पित्तवर्धक	रोपणं, जीवनं, संधानं, कफवर्धनं ।
८. खर=परुष, कर्कश (Harsh & Rough) यथा, खटिका करंजफल	पृथिवी-वायु + +++ तैजस् वातवर्धक कफघ्न	लेखन (Corrossive, Emaciating) विशद के समान
९. सूक्ष्म (Subtle or Penetrating) यथा, मद्य	अग्नि+ + + वायु+आकाश ++++++	विवरणं (Penetrating) वातवर्धक, कफघ्न, मलशोषण
९. स्थूल (Bulky & Corpulent) यथा, मांस, गेहूँ, दधि	पृथिवी +++ कफवर्धक	संवरणं (Protection) बृंहणं (Tissue Builder) स्रोतोरोध (Channel Blocker)
१०. सान्द्र (Dense or Thick) यथा मधु, घी	पृथिवी +++ कफ वातशामक	प्रसादनं (Purifier or Nourishing) बन्धनं (Uniting) बृंहण-पोषण । (Tissue Builder & Nourishing)
१०. द्रव-प्रवाही (Fluidity) यथा, दुग्ध, जलादि	जल +++ कफपित्तवर्धक	विलोडनं (Dissolver), प्रक्लेदन (Moistening) व्याप्तित: (Penetrating)

उक्त दस द्वन्द्वों (जोड़ों) में औषध सम्बन्धी सभी गुण आ गए हैं। सान्द्र-द्रव आदि सभी संज्ञाएं सापेक्ष हैं। (+) यह चिह्न महाभूतों के अंशों के द्योतक हैं कि किस गुण में कितना अंश तत्तद् महाभूत का है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

परापरादि-सामान्य-व्यावहारिक गुण

इन गुणों का महत्व उक्त बीस गुणों की अपेक्षा कम होने से इन्हें 'गौण गुण' और चिकित्सा में व्यवहार होने के कारण (शरीर से असम्बन्धित होते हुए भी औषध देने, सेवन करने तथा उसके निर्वाचन आदि लोक व्यवहार में काम आते हैं) ये व्यावहारिक गुण भी कहलाते हैं।

परापरत्वे युक्तिश्च संख्या संयोग एवच।
विभागश्च पृथक्त्वं च परिमाणमथापि च॥
संस्कारोऽभ्यास इत्येते गुणाः ज्ञेयाः परादयः।
सिद्ध्युपायाश्चिकित्सायाः लक्षणैस्तान् प्रचक्ष्महे॥
देश-काल-वयो-मान पाक-वीर्य रसादिषु।
परापरत्वे, युक्तिश्च योजना या तु युज्यते॥
संख्या स्याद् गणितं, योगाः सहसंयोग उच्यते।
द्रव्याणां द्वन्द्वसर्वैककर्मजो नित्य एव च॥
विभागस्तु विभक्तिः स्याद् वियोगोभागशोग्रहः।
पृथक्त्वं स्यादसंयोगो वैलक्षण्यमनेकता॥
परिमाणं पुनर्मानं, संस्कारः करणं मतम्।
भावाभ्यसनमभ्यासः शीलनं सततक्रिया॥
इति स्वलक्षणैरुक्ता गुणाः सर्वे परादयः।
चिकित्सा यैरविदितैर्न यथावत् प्रवर्तते॥—(च० सू० अ० २६)

परत्व, अपरत्व, युक्ति, संख्या, संयोग, विभाग, पृथक्त्व, परिमाण, संस्कार, अभ्यास—ये दश गुण चिकित्सा में उपयोगी हैं। इन्हें जाने बिना चिकित्सा संभव नहीं। अतः उनका ज्ञान आवश्यक है।

(१-२) परत्व और अपरत्व—पर उत्तम और अपर निकृष्ट का पर्यायवाचक है। इनका देश, काल, वय, मान, पाक, वीर्य-रसादि में व्यवहार होता है। यथा, देशों में मरुदेश स्वास्थ्य की दृष्टि से श्रेष्ठ और आनूप देश निकृष्ट हैं। अतः, यदि मरुदेश में रोग उत्पन्न होगा तो वह इतना दुस्साध्य न होगा जितना आनूप देश में। अतएव जीर्ण रोगियों को पहाड़ों पर या मरुदेश में स्वास्थ्य सुधारने के लिए भेजा जाता है। काल अर्थात् समय-विसर्गकाल (शीतकाल) उत्तम एवं आदानकाल निकृष्ट, आयु में युवावस्था उत्तम वृद्ध औरबाल्यावस्था निकृष्ट, क्योंकि स्वास्थ्य की दृष्टि से इन दोनों अवस्थाओं में रोग प्रतिरोधक शक्ति कम होती है। इसी प्रकार प्राकृतिक शरीर परिणाम पर और उससे अधिक मोटापा या पतलापन अपर कहलाता है। रस पाकादि जो जिसके अनुकूल हों, उनके लिये वे पर तथा अन्य अपर कहलाते हैं।

वैशेषिक में सन्निकृष्ट-समीपस्थ-को 'अपर' और विप्रकृष्ट-दूरस्थ को 'पर' कहा जाता है। यथा, युवावस्था अपर और वृद्धावस्था पर है। इसी प्रकार देश कालादि में भी समझ लें।

(३) युक्ति (योजना)—रोगी की अवस्था, देश, कालादि को देख उत्तम योजना से चिकित्सा में सफलता मिलती है।

(४) संख्या (गणना)—एक, दो, तीनादि (यह मात्रा बनाने में तथा योग निर्माण में काम आती है कि १ माशा, २ रत्ती, या एक भाग, दो भाग औषधि लेना।

(५) संयोग—दो या अधिक द्रव्यों का मिलना संयोग है। यदि दो द्रव्यों (यथा, बनफशा मुलैठी) या कर्मों का (वमन-विरेचन) अथवा अनेक द्रव्यों या कर्मों का संयोग यथा, भूत्रल, शोधशामक तथा तापहरों का किसी एक योग में संयोग होना। यह अनित्य है। अर्थात् विनाशशील है। कुछ समय पश्चात् नष्ट हो जाता है। विभाग संयोग का नाशक है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(६) विभाग (अलग होना)—दो वस्तुओं का अलग-अलग हो जाना अथवा एक ही वस्तु को भागशः ग्रहण करना। यथा—शिलाजतु पत्थर में से मल भाग को शिलाजतु से पृथक करना (शिलाजतु शोधन) अथवा एरण्ड में से विरेचन के लिए उसके एक भाग तैल का ग्रहण करना। यह भी संयोग के समान अनित्य है। यह भी एक कर्मज, द्वन्द्व-कर्मज, सर्वकर्मज, तीन प्रकार का होता है।

(७) पृथक्त्वम्—भिन्न बुद्धि जिससे उत्पन्न हो उसे 'पृथक्त्व' कहते हैं। यथा, गुडूची से निम्ब पृथक् है। यह तीन प्रकार का है :—

(i) असंयोग लक्षण—जिनका कभी संयोग न हो सके यथा हिमालय और विन्ध्य।

(ii) वैलक्षण्यता—विजातीय द्रव्यों की पृथक्ता यथा, गाय-भैंस, पर्वत-समुद्र, ज्वर-अतीसार।

(iii) अनेकता-रूप—एक जातीय होते हुए भी भिन्न होना यथा, मनुष्यत्व सामान्य होने पर भी सब मनुष्यों में अनेकता है।

(८) परिमाण (मान-तोल)—माशा, रत्ती, पलादि तथा वक्षादि का व्यास।

(९) संस्कार (मर्दन-भावना)—इन क्रियाओं द्वारा गुणान्तर उत्पन्न करना 'संस्कार' कहलाता है।

(१०) अभ्यास—भावों-पदार्थों का तथा व्यायामादि का निरन्तर अभ्यास करना। यह अभ्यास, शीलन (एक ही पदार्थ का बारंबार अभ्यास) तथा सतत क्रिया (एक ही क्रिया का बारंबार करना) है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चतुर्थ अध्याय

कर्म विज्ञान

द्रव्यों में अवस्थित गुणों के कारण ही उनकी क्रिया शरीर पर होती है। अतः द्रव्य और गुणों का वर्णन करने के पश्चात् कर्म का वर्णन करना उचित है। अतः इस अध्याय में कर्म का वर्णन किया जाता है।

द्रव्यों (औषध तथा आहार दोनों) के प्रयोग करने पर वे जिन धातुओं के संपर्क में आते हैं, उनपर कुछ विशेष प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करते हैं, जो किसी कर्म (Action) के रूप में दिखाई देता है यथा, गोक्षुरु मूत्रल है। पाचन के पश्चात् जब वह रक्त में मिलाकर मूत्र उत्पादक स्रोतों के संपर्क में आते हैं, तो वे अधिक क्रियाशील होकर अधिक मूत्र उत्पन्न करते हैं। यह प्रक्रिया 'मूत्रल' इस कर्म की द्योतक है। वस्तुतः 'द्रव्य का प्रयोग' कर्म नहीं है। उस प्रयोग से उत्पन्न 'प्रारम्भ प्रक्रिया के फलरूप-जो परिणाम प्रत्यक्ष होता है' वह कर्म है। द्रव्य का कर्म केवल प्रयोग मात्र पर ही निर्भर नहीं है। अपितु धातुओं तथा अवयवों की अवस्था पर भी निर्भर है। यदि धातुओं को अवस्था अस्वाभाविक हो तो औषध का प्रभाव कम होता है, या बिल्कुल नहीं होता। यथा, तिक्त पदार्थ, कफनिष्कासक आदि प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा प्रभाव उत्पन्न करने वाले द्रव्यों के कर्म वातनाड़ियों की विकृति में प्रभाव नहीं करते। इसी प्रकार अन्त्रों, श्वासप्रणालियों तथा गर्भाशय प्रभावक औषध भी तत्रस्थ धातुओं—तन्तुओं को प्राकृतिक अवस्था होने पर ही प्रभाव करती हैं।

न केवल उपयोगी कर्म का ही ज्ञान होना आवश्यक है, अपितु दुष्प्रभाव का भी ज्ञान होना चाहिए। यथा जहाँ अफीम वेदनाशामक है, वहाँ श्वास केन्द्र को शिथिल भी करती है। तथा आनाह (विबन्ध-कब्जो) भी करती है। अतः द्रव्यों के सब प्रकार के कर्मों का ज्ञान होना चाहिए।

कर्म का लक्षण—संयोगे च विभागे च, कारणं, द्रव्यमाश्रितम्।
कर्तव्यस्य क्रियाकर्म, कर्म नान्यदपेक्षते॥ (च० सू० अ० १)

जिस द्रव्य में निम्न लक्षण घटित होते हों वह कर्म कहलाता है।

(अ) संयोग और विभाग में कारणभूत—एक द्रव्य से संयोग तथा दूसरे से वियोग होने से ही कोई क्रिया होती है।

उदाहरणार्थ—हरड़ का प्रयोग करने पर उसका आँतों के साथ संयोग होता है। उस संयोग के परिणाम-स्वरूप मल का आँतों से वियोग होता है। इस संयोग-वियोग का परिणाम रेचन कर्म है।

(आ) द्रव्यमाश्रितम्— द्रव्य के आश्रित रहनेवाला। रेचन, वमन आदि कर्म तत्तद्गुण युक्त द्रव्यों से ही होते हैं। द्रव्य के बिना कर्म की सत्ता नहीं है।

(इ) कर्तव्यस्य क्रिया कर्म—जो कुछ कर्तव्य (करणीय) है—तत्सम्बन्धी क्रिया ही कर्म है। इस प्रकार अदृष्ट रूप कर्मादि यहाँ अभिप्रेत नहीं है। अपितु 'साधनरूपव्यापार' को कर्म संज्ञा दी गई है। यथा, किसी रोगी को 'स्वेद' देना है—तो इस स्वेद रूपी कर्तव्य के लिए जो औषध दिया गया है—उसकी शरीर पर होने वाली क्रिया (पसीना आना) ही कर्म है।

(ई) अन्य की अपेक्षा न करनेवाला—जो अपने कार्य के करने के लिए किसी अन्य की सहायता न चाहता हो। अपितु स्वयं क्रिया करने में समर्थ हो।

कर्मों के प्रकार या वर्गीकरण—द्रव्यों के कर्म अनेक प्रकार के होते हैं। चिकित्सा में उपयोगी कर्म अनेक हैं। जिस-जिस संस्थान को या अवयव को प्रभावित करते हैं, उसकी सूची नीचे दी गई है। आयुर्वेद में काम आने के कारण इन्हें 'आयुर्वेदीय' या 'चिकित्सकीय' कर्म कहते हैं। प्रत्येक कर्म के अनुसार द्रव्यों का वर्गीकरण किया जा सकता है यथा, विरेचक, वामक। इस प्रकार कर्मानुसार द्रव्यों का वर्गीकरण प्राचीन संहिताओं—चरक-सुश्रुत-आदि में मिलता

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

है। यथा, जीवनीय, वामक-वमनोपग, अनुवासनोपग, शिरोविरेचनादि। आचार्य सुश्रुत ने ऊर्ध्वभागहर, अधोभागहर, उभयतोभागहर, वातसंशमन, पित्तसंशमन, कफसंशमन ये पाँच वर्ग दिये हैं—(सू० अ० ३९)। प्राचीन काल में वर्गों का 'गण' नाम दिया जाता था। परन्तु आधुनिक विचारसरणि के अनुसार हमने द्रव्यों का कर्मानुसार वर्गीकरण न करके संस्थान पर या अवयवों पर होनेवाले प्रभावों के अनुसार किया है। यह पहले कहा जा चुका है कि औषध द्रव्यों का प्रयोग दो प्रकार से किया जाता है।

(i) अन्तः मार्गों द्वारा—मुख, गुदादि द्वारा—समस्त अन्तः परिमार्जक द्रव्यों—जिनकी संख्या बहुत है—का प्रयोग अन्तः मार्गों द्वारा किया जाता है। (ii) बहिः परिमार्जनीय (बाहर लगाने से ही प्रभावकारक) औषध का उपयोग त्वचा पर ही किया जाता है। इनको संख्या भी थोड़ी है तथा इनका प्रयोग प्रायः 'शल्य शास्त्र' में अधिक किया जाता है। अतः प्रथम अन्तः परिमार्जनीय कर्मों की संस्थानानुसार सूची दी गई है, ततः बहिः-परिमार्जनीयों की।

कर्मों का वर्गीकरण

(क) अंतः परिमार्जनीय

(Internal Medicine)

(Acting on Alimentary Canal) महास्रोतस् प्रभावक

आयुर्वेदीय नाम	आंग्ल नाम	अर्थ उदाहरण
दन्त्यः	Dentifrice	दाँतों के लिए हितकर
(अ) शोधकः	Dental Disinfectants	दाँतों का शोधक—निम्ब-करंज
(आ) दृढ़ताप्रद	Dental Astringent	दाँतों को मजबूत करनेवाला—बकुल
	Sialogogoue	
लालास्रावशमन	Anti-sialogogue	लार बहना बन्द करनेवाले—धतूरा
स्वर्य (कंठ्यः)	Cilliary Excitants	कंठ के लिए उत्तम—कुलिञ्जन, स्वर को अच्छा बनानेवाले
दुर्गन्धहर	Aromatics	दुर्गन्धनाशक—एला-लौंग
सुगन्धित		
मुख शोधक	Mouth Anti-septics	मुख को शुद्ध करनेवाले—टंकण-निम्ब
तृष्णा निग्रहण	Demulscent	प्यास बुझानेवाले—नागरमोथा
(स्नेहनम्)		तरावट रखने वाले—ईसबगोल
वैशद्यकारक	....	स्रावों को सुखानेवाले—सुपारी

आमाशय प्रभावक

(Acting on Stomach)

रोचक	Gustatory Stimulant	भूख बढ़ानेवाले—दाडिम-शुंठी
दीपन	Stomachic	पाचक अग्नि बढ़ानेवाले—शतपुष्पा
अग्निसादक	Anti-stomachic	अग्नि को मन्द करनेवाले—चाय, अपामार्ग
पाचक	Digestives	अन्न को पचानेवाले—नागकेसर, मूलकादि
हृद्यम्-सौमनस्यजनन	Exhilarants	मन को प्रसन्नता देनेवाले—दाडिमादि
तृप्तिघ्न-अरुचिहर	Relishing	पाचकवत्
विदाही		जलन करनेवाले—माष, खटास उत्पादक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दाह शामक (अम्लताहर)	Antacid. Cooling.	जलन (अम्लता) नाशक—आमलकी
अरतिकरम्	Nauseants.	जो मचलनेवाले—सड़े-गले द्रव्य
अनुलोमन	Carminatives.	वायु को निकालने वाले—कर्पूर, हिंगु
वमनोपग	Aid to Emetics.	वमन में सहायक—मधुयष्टि, निम्ब
छर्दिनिग्रहण (वमनशामक)	Anti-Emetics.	वमन शामक—उशीर-कर्पूर
वामक, छर्दनीयम्	Emetics	वमन (उलटी) करानेवाले—मदनफल, तुत्थ

आमाशय अन्त्र प्रभावक

Acting on Stomach & Small Intestines

विष्टम्भि	Retentives of Gases.	वायु एकत्र करनेवाले—पनस, कदम्ब
शूलप्रशमन	Intestinal Sedatives. Anti-Spasmodics.	उदर-शूलशामक —हिंगु, कर्पूर
उभयतोभागहर	Emetics & Purgatives.	वमन और रेचन करानेवाले—कटुतुम्बी
सर	Laxatives & Carminatives	मृदुरेचक-वायुहर—फल्गु, गन्धक

अन्त्र-प्रभावक

(Acting on Large intestines)

विरेचनोपग	Aid to Purgatives.	रेचन में सहायक-द्राक्षा-परुषक
स्नेहनम् (स्निग्ध-रेचक)	Aperients.	स्निग्ध तथा मल को लानेवाले—मुलैठी
स्रंसन (रेचक)	Purgatives.	रेचन करानेवाले—आरग्वध, सनाय
भेदनम्	Cathartics,	तीव्र रेचक—कटुकी, इन्द्रायण
विरेचन	Drastic Purgatives.	अतितीव्र रैचक—जयपाल, दन्ती

पित्त विरेचक—यकृत् प्रकरण में देखें।

पुरीषजननम्		मल की मात्रा बढ़ानेवाले—माष, तन्दुलीयं
पुरीषविरजनीयम्	Decolouring Agents.	मल का रंग बदलनेवाले—जम्बु, शल्लकी
पुरीष संग्रहणीयम् (ग्राही-संग्राही)	Constipating Astringent.	कब्जी करनेवाले—लोध्र, धातकी
पाचकग्राही	Digestive Astringent	मल को बांधकर लानेवाले—शुंठी, जायफल
स्तम्भन (उपशोषण)	Retetinve	स्रावों को सुखानेवाले—मोचरस, बब्बूल
आस्थानोपग	Purgative Enemata.	बस्ति (Enemata) में—काम आने वाले देवदारु, पिप्पली
अनुवासनोपग	Stimulant & Nutrients Elements.	बस्ति में काम आने वाले रास्ना, गोक्षुरु
क्रिमिप्रशनम्	Anthelmintics	पेट के कीड़ों के नाशक—बिडंगादि
(अ) अन्त: क्रिमिघ्न	Vermicide	अन्दर के कीड़ों के नाशक (विशिष्ट)
१. गण्डूपद क्रिमिघ्न	Anti-Round Worm	केंचुए सम कीड़ों के नाशक—पलाशबीज
२. स्फीत क्रिमिघ्न	Anti-Tape Worm.	फीते जैसे कीड़ो के नाशक—पूग-दाडिमत्वक्

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

३. तन्तु क्रिमिघ्न	Anti-Thread Worm	जुरुवे नामक कीड़ों के नाशक-एलुवा, चिरायता
४. बडिश क्रमिघ्न	Anti-Hook Worms	हुक ,, ,, ,,—अजवायन सत्व
क्रिमिहरम्	Vermifuge	क्रिमिनिष्कासक—कम्पिल्लक
क्रिमिनिः सारकम्		
(आ) बाह्यक्रमिघ्न	Parasiticides	जूँ आदि बाहरी कीड़ों के मारक—धतूरा, पारा.

यकृत् प्लीहा प्रभावक

(Acting on Liver & Spleen)

पित्तसारक	Chologogues	पित्त को निकालनेवाले—दारुहरिद्रा, कुटकी
पित्ताश्मरी भेदन	Billiary Lithotropic	पित्त की पथरी नाशक—गोरोचन
मधुरकशमन	Anti-Diabetics	मूत्र में शर्करानाशक—अहिफेन, हरिद्रा
अर्शोघ्न	Anti-Piles	अर्श (बवासीर) नाशक —महानिम्ब
(रक्तार्श)	Anti bleeding piles	खूनी बवासीर शामक—नागकेसर
वातार्श	Anti-blind piles.	बादी बवासीर शामक—सूरन
प्लीहावृद्धिहर		बड़ी प्लीहा (तिल्ली)को कम करनेवाले-शरपुंखा

हृदय, रक्तवह संस्थान और रक्तधातु प्रभावक

(Acting on the Heart, Blood circulation and blood)

हृदय रसायन	Cardiac Tonics	हृदय को बल देनेवाले—अर्जुन
हृद्यम्	Cardiac ,,	हृदय प्रभावक—करवीर
हृदयोत्तेजक	Cardiac Stimulants	हृदय को उत्तेजित करनेवाले—सोम, कस्तूरी
हृदयावसादक	Cardiac depressants	हृदय को शिथिल करनेवाले—अशुद्ध वत्सनाभ
रक्तभारवर्धक	Hyperpiesitics	रक्तभार को बढ़ानेवाले—हृत्पत्री, मद्य
रक्तभारह्रासक	Hypopiesitics	रक्तभार को गिरानेवाले—सर्पगन्धा
रक्तस्रावक	Bleeding agents	रक्त को बहानेवाले—मरिचादि कटुद्रव्य
रक्तवाहिनी संकोचक	Vaso-Constrictor	रक्तवाहिनियों को सिकोड़नेवाले—सोम
रक्तवाहिनी प्रसारक	Vaso-Dilator	रक्तवाहिनियों को फैलानेवाले—कपूर-मद्य
रक्त संग्राहक	Haemostatics	खाने से रक्तस्राव को रोकनेवाले—गैरिक, रक्त-बोल
रक्त स्कन्दन	Styptics	बाह्य प्रयोग से रक्तस्राव को रोकनेवाले—मायाफल कोशः

रक्तधातु प्रभावक

शोणितास्थापन	Haematinics	रक्त को बढ़ानेवाले—भल्लातक, गैरिकादि
रक्त प्रसादन	Alteratives	रक्त को शुद्ध करनेवाले—अनन्तमूल
रक्त दूषक		रक्त को अशुद्ध करने वाले—राजिका

रसवह संस्थान प्रभावक

(Acting on Lymphatic System)

शोथहर	Anti-Phlogistics	त्वचा प्रभावकों में वर्णित हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शोथ संजनन	Inflammatory	त्वचा प्रभावकों में वर्णित हैं।
गण्डमाला नाशक	Anti-Scrofulosis	गण्डमाला (कण्ठमाला) नाशक—पाताल गरुड़ी

श्वसन-संस्थान (प्राणवहस्रोतस्) प्रभावक
(Acting on Respiratory Systems)

कास-श्वास वेगहरम्	Bronchial Sedatives	खांसी और दमे के दौरे को बन्द करनेवाले—सोम, बासा
कफघ्न (कफच्छेदक)	Apophlegmetics	कफ को नष्ट करनेवाले—कंटकारी, शटी
कफहरम्	Expectorants	कफ को पतला कर निकालनेवाले—गोजिह्वा
श्वसन केन्द्रोत्तेजक	Respiratory Stimulants	श्वास केन्द्र के उत्तेजक—सोम, विषमुष्टि
श्वसन केन्द्रावसादक	Respiratory Depressants	श्वास केन्द्र के अवसादक-अहिफेनादि
हिक्का निग्रहणम्	Anti-Hiccough	हिचकी को रोकनेवाले—शटी, मयूरपुच्छ
श्लेष्मपूतिहर	Respiratory disinfectants.	कफ की दुर्गन्धिनाशक—सरल, कर्पूर

मूत्रवह संस्थान प्रभावक
(Acting on Kidneys & Urinary systems)

मूत्रल (मूत्र-विरेचनीयम्)	Diuretics	मूत्र को अधिक मात्रा में लानेवाले—गोक्षुरु, पुनर्नवा
मूत्रविरंजनीयम्	Decolouring agent	मूत्र के वर्ण को परिवर्तित करनेवाले—पद्म (कमल) शतपत्री
अश्मरी भेदन	Lithotropics	पथरी को तोड़नेवाले—पाषाण भेद
मूत्र संग्रहणीय	Anti-Diuretics	मूत्र को कम लानेवाले—काले तिल
मूत्र विशोधनीय	Urinary Disinfectants	मूत्र को शुद्ध करनेवाले—कंकोल, श्रीवास

प्रजनन संस्थान प्रभावक
(Acting on Reproductory system)

पुरुष प्रजननांग प्रभावक—(शुक्रवह स्रोतस् प्रभावक)

वाजीकरण (वृष्य)	Aphrodiasiacs	कामोत्तेजक—अकरकरा
शुक्रल (शुक्र प्रजनन)	Semen Producer	वीर्य के उत्पादक—अश्वगन्धा, शतावरी
शुक्रस्रुतिकर (कामोत्तेजक)	Sexual Stimulant	वीर्य को बहानेवाले—अम्बर, कस्तूरी
शुक्रस्तम्भक	Semen Retentive	वीर्यस्राव को रोकनेवाले—जातिफल, अहिफेन
शुक्रशोधक	Semen Purifier	वीर्य शोधक—कट्फल, ईक्षुरक
शुक्र नाशक (कामसादक)	Anaphrodiasiacs	वीर्य का नाश करनेवाले—धनिया, क्षार

स्त्री प्रजननांग प्रभावक
(Acting on female Reproductory organs)

प्रजास्थापन	Impregnatives	गर्भस्थापक—पद्मकाष्ठ, कमल बीज
गर्भरोधक	Birth Controllers Anti-Impregnatives	गर्भस्थिति को रोकनेवाले टंकण, गुंजा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गर्भाशय रसायन	Uterine Tonics	गर्भाशय को बलदायक—अशोक लोध्र
गर्भाशय शामक	Uterine Sedativcs	गर्भाशय के क्षोभ को शान्त करनेवाले—लोध्र, अहिफेन
गर्भपातक (स्रावक)	Abortefacients	गर्भपातक—देवदाली, स्नुही
आविप्रजनन	Oxytocics	प्रसव के समय वेदनाएँ उत्पादक—अन्नामय
गर्भाशय संकोचक (गर्भाशय शोधक)	Ecbolics.	गर्भाशय की मांस पेशियों को संकुचित कर गर्भाशय को शुद्ध करनेवाले—मिश्रेया
आर्त्तवजनन (रजः स्रावक)	Emmenagogues	ऋतु प्रवर्तक—एलीयक-कुमारी, हिंगु
आर्तवशमन	Anti-Emmenagogues	रजःस्राव शामक—जपा, लोध्र
स्तन्य प्रजनन	Galactogogues	दुग्ध की मात्रा बढ़ानेवाले—शाली विदारीकन्द
स्तन्य शोषक (स्तन्य शमन)	Anti-Golactogogues	दुग्ध स्राव को कम करनेवाले—धतूरा, सूची
स्तन्यशोधक	Milk-Purifier	दुग्धशोधक-पाठा, सारिका
अपरापातक		प्रसव के पश्चात् जरायु निकालनेवाले—कटुतुम्बी

वातनाड़ी संस्थान (संज्ञावह स्रोतस्) प्रभावक
(Acting on nervous systems)

संज्ञा स्थापन	Consciousness Promotors	चेतना लाने वाले और स्थिर रखनेवाले—कट्फल जटामांसी
संज्ञाहर	Tranquilisers Anti -Consciousness	चेतना को कम करनेवाले—जटामांसी, तगर
मेध्य	Nervine Tonics	बुद्धिवर्धक—वचा, ब्राह्मी
मोहजनक (मदकारक)	Narcotics	मोह (बेहोशी) उत्पन्न करनेवाले—मद्य, धत्तूर, भाँग
प्रलापक	Delirients	उन्माद उत्पन्न करनेवाले—धतूरा
स्वापजनन (निद्राजनक)	Hypnotics	नींद लानेवाले—सर्पगन्धा, अश्वगन्धा
स्वाप संशमन	Anti-Hypnotics	निद्रानाशक—तीक्ष्ण पदार्थ तथा चायादि
आक्षेपजनक (उत्तेजक)	Convulsives	आक्षेप (वेग) उत्पन्न करनेवाले—विषमुष्टि गुंजा, भांग
आक्षेप संशमन	Anti-Convulsives	आक्षेपशामक—जटामांसी, तगर
हर्ष प्रजनन (सौमनस्यकरम्)	Excitants	प्रसन्नतादायक उत्तेजक—भाँग
वेदनास्थापन	Analgesics or Anodyne	पीड़ाशामक—दशमूल-निर्गुण्डी

ज्ञानेन्द्रिय प्रभावक कर्म
(Acting on senses)

नेत्र :—

चक्षुष्य		नेत्रों के लिए हितकारक—त्रिफला

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तारका विकासी	Mydriatics	नेत्रों की पुतलियों का विकास करनेवाले—धत्तूर
तारका संकोचक	Myotics	पुतली को सिकोंड़नेवाले—अफीम

नासा प्रभावक

शिरोविरेचनोपग	Errhiness	शिरोविरेचन में सहायक—तुम्बुरु
शिरोविरेचन	Sternutatory	छींकें लानेवाले—क्षवक, कट्फल

जिह्वा प्रभावक

आस्वादोत्तेजक (Gustatory Stimulants)

त्वचा प्रभावक

(Acting on Skin & its Appendages)

वर्ण्य (त्वच्य)	Cosmetics	वर्ण को उत्तम बनानेवाली—चन्दन, केशर
स्नेहन (मार्दवकरम्)	Emollients	त्वचा को स्निग्ध रखनेवाले—तैलादि
रूक्षणम्	Dehydratings	त्वचा को शुष्क रखनेवाले—यवादि
स्वेदजनन	Diaphroretics, Sudorofics	पसीना लानेवाले—कर्पूर, वत्सनाभ
स्वेदोपग		पसीना लाने में सहायक—शिग्रु, अर्क
स्वेदोपनयन	Anhydriatics	पसीना बन्द करनेवाले—सूची पारसीक यवानी
रोमसंजनन (केश्य)		केशों के लिए हितकर
(१) रोमवर्धन		केश बढ़ानेवाले—नारिकेलादि
(२) रोमरंजक		केशों को रंगनेवाले—भृंगराजादि
रोमशातनम्	Depilatory	रोमों को गिरानेवले—क्षार, हरिताल
कण्डूघ्न	Anti-Pruritics	खुजलीनाशक—खदिर, सोमराजी
उदर्द कोठ प्रशमन	Anti-urticatics	शीतपित्तादि नाशक—हरिद्रा
कुष्ठघ्न	Anti-Leprotics	त्वचा रोग तथा कुष्ठशामक—तुवरक
शोथहरम्	Anti-inflammatory	
श्वयथुकरण	Inflammatory	शोथ को उत्पन्न करनेवाले—भल्लातक
शोणितोत्क्लेदक (विदाही)	Rubefacients, Counter Irritants	दाह तथा शोथकारक—राजिका, वरुण
पूतिस्फोटजनन	Pustulants	पीव वाले फफोले उत्पन्न करनेवाले—क्षार
स्फोटकारक	Vesicants	फफोले उत्पन्न करनेवाले—चित्रक,
दाहक	Caustics	जलानेवाले—क्षार, चित्रक भल्लातक

सर्वदेह प्रभावक (सार्वधातुक प्रभावक)

(Acting on Metabolism)

रसायन	Tonics	धातुवर्धक, बलदायक—आमलकी
बल्य	Alteratives	बलदायक—घृत, विषमुष्टि, विदारी
जीवनीय	Analeptics	जीवनीय शक्ति देनेवाले—अष्टवर्ग
वयःस्थापक	Life Preservatives	आयुवर्धक—हरीतकी
ओजवर्धक	Vitalisers	ओज (तेज) बढ़ानेवाले—दूध, घृतादि

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ओजनाशक (ह्रासक)	Anti-Vitality	ओज को कम करनेवाले—पूग, कोद्रवादि
बृंहण	Nutrients	मांस आदि वर्धक—अश्वगन्धा, माष, वाताद
लेखन (कर्षण)	Attenuatives Corossives	कृश करनेवाले—मधु, गोमूत्र
स्नेहनम् (वसावर्धक)	Lipogenesis	चरबी बढ़ानेवाले—घृत, बादामादि
श्रमहरम्	Refreshing Refrigerants	थकावट हटानेवाले – परुषक, उशीर
अभिष्यन्दि		स्रोतों के बन्द करनेवाले—मन्दक, दधि
सूक्ष्म	Permeatives	सूक्ष्म स्रोतों से घुसनेवाले—विष, गुग्गुल
व्यवायी		अपक्व और अपरिवर्तित रूप में देह में फैलने वाला भंगादि विष
विकासी		अपरिवर्तित रूप में ही स्रावों का शोषण तथा सन्धि बन्धनों को शिथिल करनेवाला—कोद्रव, कच्ची सुपारी
प्रमाथी		तीक्ष्ण वीर्य के कारण स्राव करानेवाले—मरिच
अगद (विषघ्न)	Anti-Poisonous	विषनाशक—सुवर्ण, शिरीषादि
ज्वरहर	Anti-pyretics Febrifuge	ताप को कम करने वाले-वत्सनाभादि तथा मूत्रल और स्वेदल द्रव्य
आमपाचक		आम दोष को पचानेवाले—मूर्वा, मुस्तक
विषमज्वरघ्न	Anti-periodics	नियतकालिक ज्वरहर—करंज, सप्तपर्ण
शीतप्रशमन	Stimulants	शरीर में उष्णता उत्पन्न करने वाले-अगुरु
योगवाहित्व		साथ में प्रयोग से द्रव के गुण को बढ़ानेवाले—मधु, सुवर्ण

दोषप्रभावक कर्म
(Acting on humors)

वातप्रकोपक	Vitiating Vata Dosha	वायु को कुपित करनेवाले—शुष्क शाक, आढ़की
वातशामक (वातावजयन)	Restoring Vata to its normal conditions	वायु को शान्त करनेवाले—देवदारु
पित्तप्रकोपक	Vitiating Pitta	पित्त को कुपित करनेवाले—सर्षप, दधि
पित्तशामक	Restoring Pitta to its normaley	पित्त को कम करनेवाले—चन्दन, पटोल
कफप्रकोपक	Vitiating Kapha	कफ को बढ़ानेवाले—माष, गेहूँ
कफशामक	Restoring Kapha to normaley	कफशामक—रास्ना, मरिचादि

(ख) बहिः परिमार्जनीय
(Acting locally Externally used Drugs)

शोथघ्न	Anti-phlogistic Anti-inflammatory	लेप लगाने से शोथशामक—राजिका

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विम्लापन	Resolvants	मर्दन से शोथ को विलीन करनेवाली—अलसी, कुन्दुरू
व्रणशोथपाचक		शोथ को पकानेवाली—तिल, शिग्रु
व्रणभेदक (दारण)	Escharotics	फोड़ों को फोड़नेवाले—चित्रक, करंज
व्रणशोधक	Detergents	व्रणों को शुद्ध करनेवाले—जाति, करंज
व्रणरोपक	Healer	व्रणों का भरनेवाले—उदुम्बर, गुग्गुल
व्रणप्रपीडन	Squeezers	व्रणों से दबाकर पीव निकाल देने वाले—माष, यव, गोधूमादि
उपशोषण	Desiccants	व्रणों के स्राव को सुखानेवाले—तुत्थ, उदुम्बर-त्वक्
दुर्गन्धहर	Deodorants	व्रणों की दुर्गन्धिनाशक—गुग्गुलु, श्रीवास
पूयवर्धक	Septics	पीब बढ़ानेवाले—नवधान्य, दहि
पूयशामक (कोथ प्रशमन)	Anti-septics	पीबनाशक—गुग्गुलु, सर्षपादि
(१) सामान्य	General	टंकण, निम्बपत्र, अर्कमूलादि
(२) विशिष्ट	Specific	
आन्त्रिक	Intestinal Antiseptics	कर्पूर, तक्र, पारद
मूत्रगत	Urinary Antiseptics	चन्दन-कंकोल, श्रीवास
फुप्फुसीय	Respiratory	लोबान-सरल, रूमीमस्तगी
क्रिमि (पराश्रयी) हर	Parasiticides	यूकालिक्षाशामक—धतूर, गन्धक, पारद
संक्रमणनाशक	Disinfectants	छूत के नाशक—राल, श्रीवास, वचा
उत्सादन (व्रणमांसवर्धक)	Corrosives	व्रणों के मांस को बढ़ानेवाले—अश्वगन्धा मास रोहिणी
अवसादन (लोवन)		व्रणों के दुष्ट तथा वृद्ध मांस के नाशक—कासीस
संकोचक (कला संकोचक)	Astringents	सिकोड़ने वाले—मायाफल, बब्बूल, चांगेरी आदि
सन्धानीयम्	Fracture Healer	टूटी हड्डियों को जोड़नेवाले—वज्रवल्ली, मधुकादि

उक्त कर्म चिकित्सा में उपयोगी हैं। इन कर्मों के अनुसार द्रव्यों के भी १२२ वर्ग या गण बनाए जा सकते हैं। इनकी विशेष व्याख्या कर्मों के उक्त वर्गीकरण के अनुसार प्राचीन शास्त्रों के आधार पर विशेषतः शारङ्गधर तथा चक्रपाणिदत्त, डल्हणादि टीकाकारों के लेखों से संग्रहीत करके नीचे दी जाती है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, औषध का कार्य बढ़े दोषों को कम करना या क्षीण को बढ़ाना—यही दो प्रकार का ही है। रोग प्रायः बढ़े दोषों का परिणाम है। क्षीण दोष तो क्षीणता के ही लक्षण उत्पन्न करते हैं, रोग नहीं। वृद्ध दोषों को समावस्था में लाने के लिये दो प्रकार के उपाय किए जाते हैं—(१) संशमन (Sedation)—दोषों या रोगों को शरीर में ही शान्त कर देना (२) संशोधन (Elimination)—इस उपाय द्वारा दोषों को शरीर से बाहर निकाला जाता है। इन दो प्रक्रियाओं या उपायों में ही प्रायः चिकित्सा के अन्य उपाय समाविष्ट हो सकते हैं। शोधनशमनव्यतिरिक्त स्यौषधस्याभावात्—हे०, अतः इनकी कार्य-प्रणाली समझ लेना आवश्यक है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संशमन—न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि।
समीकरोति विषममान् शमनं तच्चसप्ता॥
पाचनं-दीपनं-क्षुत्तृट्व्यायामातपमारुताः ।
बृंहणं शमनं त्वेव वायोः पित्तानिलस्य च॥—(अ० हृ० सू० १४)
आकाश गुणभूयिष्ठं संशमनम्।—(सु० सू० अ० ४१)
वायु-सोम-महीजातं तथा संशमनं विदुः॥ (र० वै०)

जो द्रव्य विषम दोषों को बिना शोधन (वमन-विरेचनादि) के ही सम कर देता है तथा समों को बढ़ाता नहीं है वह संशमन कहलाता है। ये शमन उपाय सात प्रकार के हैं—(१) पाचन (२) दीपन (३) उपवास या क्षुधा (तृष्णा) (४) व्यायाम (५) आतप (६) वायु (७) बृंहण। यह शमन उपाय वात या वातपित्त पर विशेष प्रभाव करता है। कफ से उत्पन्न रोगों में तो संशोधन ही अधिक उपयोगी हैं, क्योंकि मलभाग को बाहर निकालना ही पड़ता है यथा, कास में दूषित कफ को, आमवात में आमांश को। पित्त को भी विरेचन द्वारा निकाला जाता है। किन्तु उसके लिए एक ही संशोधन विरेचन है। जबकि कफ के लिए वमन और विरेचन—ये दो शोधन उपाय हैं। वात के लिए केवल संशमन ही उपाय है संशोधन नहीं। यहाँ पर बृंहण को भी संशमन कहा गया है। यह ध्यान देने योग्य बात है। शरीर को बढ़ाने वाले पदार्थों को (बृंहत्वाय शरीरस्य—हे०) बृंहण कहते हैं। अतः स्वप्रमाण से क्षीण होने पर बृंहण द्वारा वात को बढ़ाकर (पित्त को भी) समावस्था में लाना भी संशमन कहलाता है। अतः क्षीण दोषों की चिकित्सा में भी संशमन द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है। केवल वृद्ध-दोषों की ही नहीं। संशमन का सर्वोत्तम उदाहरण 'गुडूची' है। दोषों के व्याधि-शमन में भी—उत्पन्न व्याधि को शमन करना तथा भविष्य में व्याधि उत्पत्ति को उत्पन्न न करनेवाला—संशमन समझना चाहिए। संशमन द्रव्य पृथ्वी, जल, आकाश तथा वायु की अधिकतावाले होते हैं। सुश्रुत ने तीनों दोषों के पृथक्-पृथक् संशमन वर्ग (सू० अ० ३९) कहे हैं। जिज्ञासुओं को वही देखने चाहिए।

"यथा वीरतर्वादिगण वातसंशमन,
विदारीगन्धादिगण पित्तसंशमन,
आरग्वधादिगण कफशामक।"

साधारणतः संशमनों का प्रभाव एक जैसा ही होता है तथापि स्थान-भेद के कारण इनमें भेद कर दिया जाता है यथा, हृदयशामक, अन्त्रशामक। कार्य की प्रकृति के अनुसार भी—वेदनाशामक, क्षोभशामकादि भेद किए जा सकते हैं। इनका प्रभाव शनैः-शनैः होता है तथा उसके निम्न प्रकार हैं :—

(१) भौतिक संशमन (Physical Sedatives)—कुछ द्रव्य अविलेय होते हैं। ये पदार्थ शरीर में (विशेषतः महास्रोतस् में) जाकर वहाँ की कला पर फैल जाते हैं तथा कला को क्षुभित करनेवाले विषों तथा अन्य द्रव्यों को अपने में मिला लेते हैं। इस प्रक्रिया को आशोषण-आसक्ति (Absorption) कहते हैं। वमन, अतिसार-विषूचिका में खटिका, गोदन्ती, संगजिराहृत इसी प्रकार कार्य करती हैं। इस प्रकार क्षोभक पदार्थ आमाशय, मुख तथा अन्त्रों की श्लैष्मिक कला (Mucous membrane) से अलग हो जाते हैं और क्षोभ शान्त हो जाता है।

(२) प्रकृति वैपरीत्य—ये क्षोभक कारण की प्रकृति के द्रव्य की प्रकृति को स्वप्रकृति से अभिभव कर उसके प्रभाव को शान्त कर देते हैं। यथा, अम्लपित्त में, आमाशय या पक्वाशय व्रण में अम्ल की अधिकता क्षोभ का कारण होती है। अम्ल के विरोधी क्षारीय पदार्थ (मधुरक्षार-नारिकेल लवण) सेवन करने से अम्लता का प्रभाव नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार नारिकेलोदक पित्त या अम्लपित्त का शामक है। वह शीतल है तथा स्वद्रवता से पित्त या अम्ल को क्षीण भी कर देता है :—

(३) वात संस्थान को प्रभावित करके—ये दो प्रकार के हैं।

(अ) केन्द्रीय वात नाड़ियों को प्रभावित करके क्षोभ, वेदनादि को शान्त करने वाले द्रव्य—यथा, धतूरा, पार-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सीक यवानी (खुरासानी अजवायन), शीर्षण्य दसवीं[1] नाड़ी को (अवसन्न) प्रभावित करके आमाशय-अन्त्रादि के क्षोभ, शूल, ऐंठन, आक्षेप को शान्त करते हैं। यद्यपि ये अन्त्रगति की तीव्रता तथा बल को कम करके उनमें होनेवाले संकोच को तो कम करते हैं, किन्तु उसकी अपकर्षणीय गति (Peristalsis) कम नहीं होती। अतएव खुरासानी अजवायन, इन्द्रायण, जयपाल, त्रिवृत् आदि उद्वेष्टन (मरोड़) उत्पन्न करनेवाली औषधियों में डाली जाती है।

(आ) मध्य स्वतन्त्र मण्डल को उत्तेजित करके भी कुछ पदार्थ अन्त्र गतियों को कम करते हैं। कुछ अन्त्र संकोच की तीव्रता को कम करते हैं तथा पिधान स्नायु या पिधानपेशी (Sphincter) के संकोच को बढ़ाते हैं यथा, अधिवृक्क का स्राव।

(४) प्रतिसंक्रमित क्रियाशामक—ये पदार्थ ज्ञान तन्तुओं को संज्ञाशून्य कर देते हैं। जिससे क्षोभक कारण उपस्थित होने पर भी प्राणी को उसका अनुभव नहीं होता। प्रतिसंक्रमित क्रियाजन्य अपकर्षणी गति को भी ये द्रव्य शिथिल करते हैं। जिससे अन्त्र गति कम होकर विबन्ध (आनाह) हो जाता है। अन्य अवयवों पर भी इसी प्रकार प्रतिसंक्रमित (Reflex action) क्रिया की शिथिलता से 'संशमन प्रभाव' उत्पन्न होता है।

(५) पेशी शैथिल्य द्वारा—देह की समग्र गति का स्थान मांसपेशियाँ ही हैं। उनकी उत्तेजना से ही धनुर्वात (Tetanus) एवं अन्य आक्षेप उत्पन्न होते हैं। इस वर्ग के संशमन पदार्थ मांसपेशियों पर साक्षात् शिथिलता उत्पन्न करके आक्षेपों का नाश करते हैं। आँतों में अनुलोमन पदार्थों—विशेषकर उड़नशील पदार्थों-यथा एला, दालचीनी, कपूर आदि सुगन्धित पेय पदार्थ—मद्यादि मांसपेशियों को शिथिलकर, अत्यधिक संकोचजन्य शूलऐंठन आदि का नाश करते हैं। इसी प्रकार सर्वत्र संशमन द्रव्यों की कार्य-प्रणाली समझें। उदाहरणार्थ गुडूची (गिलोय) पित्तशमन है। यह तापोत्पादक अवयवों की प्रभावित मांसपेशियों को शिथिल कर एवं पित्तोत्पादक अवयवों पर सौम्य प्रभाव डालकर मल-मूत्रादि में पित्त के अग्न्यंश को बाहर निकाल कर पित्त को शान्त करती है।

संशोधनः—स्थानाद्वहिर्नयेदूर्ध्वमधश्च मलसंचयम्।
देहसंशोधनं तत्स्याद् देवदालीफलंयथा॥ (शा० प्र० ख० अं० ४)

उभयतश्चेति-ऊर्ध्वमधश्चक्षिप्यत इत्यार्थः। उभयगुणत्वाविति अग्नि-वायु-आत्मकत्वात् सलिलपृथिव्यात्मकत्वादूर्ध्वाधोभागप्रभावाच्चेत्यर्थः। (चक्र० च० क० अ० १)।

देह में संचित मलों को ऊपर के मार्गों तथा नीचे के मार्गों द्वारा बाहर निकालने वाला पदार्थ 'संशोधन' कहलाता है। सामान्यतः इस संज्ञा से—वमन-विरेचन, आस्थापन, शिरोविरेचन, मूत्रविरेचन, शोणितमोक्षणादि—सभी प्रक्रियाएँ ग्रहण की जा सकती हैं, किन्तु आमाशय और अन्त्रों के प्रकरण में मुख द्वारा (वमन) तथा गुदा (विरेचन) होनेवाले 'संशोधन' का ही ग्रहण किया जाता है। इन पदार्थों में प्रायः वातलरस—(कटुतिक्त कषाय) और पित्तल गुण (तीक्ष्णोष्ण लघु आदि) एवं वामकों (उर्ध्वभागहरम्) में अग्नि तथा वायु एवं अधोभागहरों (विरेचकों) में जल और पृथिवी महाभूतों का प्राधान्य होता है। वामक द्रव्य लघु और रेचक गुरु होते हैं। संशोधक पदार्थ तीन प्रकार के हैं :—

(१) ऊर्ध्वभागहर (वामक) यथा, मदनफलम्।
(२) अधोभागहर (विरेचक) त्रिवृत् आदि।
(३) उभयतोभागहर (वामक विरेचक दोनों ही) यथा, देवदाली।

ये पदार्थ स्वयं तो बाहर निकलते ही हैं, साथ ही उदान वायु प्रेरित दोषों को मुख द्वारा और अपानवायु प्रेरित दोषों को गुदा द्वारा बाहर निकाल देते हैं।

चरक कल्प अ० १ में इनकी क्रिया देह पर किस प्रकार होती है। इसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। उसे ही यहाँ उद्धृत किया जाता है।

तत्रोष्ण-तीक्ष्ण-सूक्ष्म-व्यवायी-विकाशी-न्यौषधानि स्ववीर्येण हृदयमुपेत्य धमनीरनुसृत्य स्थूलाणु स्रोतोभ्यः

1. (Vagus Nerve)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

केवलं शरीरगतं दोषसंघात-माग्नेयत्वात् विष्यन्दति । तैक्ष्ण्यात् विच्छिन्दन्ति, स विच्छिन्नः सन् स्नेह-भाविते काये स्नेहाक्तभाजनस्थमिव क्षौद्रमसज्जनणुप्रवणत्वात्-ग्रामाशयमागत्योदान प्रणुन्नोऽग्निवायत्मकत्वादूर्ध्वभाग- प्रभावादौष-धस्योर्ध्वमुत्क्षिप्यते । सलिलपृथिव्यात्मकत्वादधोभाग प्रभावाच्चौषधस्याधः प्रवर्त्तते । उभयतश्चोभयगुणत्वात् ॥

संशोधन पदार्थों में स्थित तीक्ष्ण, सूक्ष्म, व्यवायी, विकाशी ग्रादि गुणों के कारण एवं तदुत्पन्न वीर्य के कारण ग्रौषधि रक्त में मिलकर समग्र शरीर के स्थूल ग्रौर सूक्ष्म स्रोतों में प्रविष्ट होकर समस्त दोष संचय को छिन्न-भिन्न कर देता है । उष्णता द्वारा उन्हें तरल रूप में लाकर, तीक्ष्ण गुण उन्हें धातुग्रों से पृथक् करके (उखाड़कर) उन्हें ग्रामाशय में लाते हैं । यदि द्रव्य वायु-ग्रग्नि गुण प्रधान हुग्रा तो उस कारण से एवं स्वप्रभाव के कारण से भी वे दोष उदान वायु से प्रेरित होकर मुख द्वारा (वमन-उलटी) बाहर निकल जाते हैं । यदि मलों का ग्रांतों में ग्रागमन हो ग्रौर ग्रौषधि जल पृथिवी महाभूताधिक्यवाले हों, तो ग्रपानवायु प्रेरित मल गुदा द्वारा (विरेचन) बाहर निकलते हैं । यदि ग्रौषधि में दोनों प्रकार के गुण ग्रौर महाभूत हों तो मल दोनों मार्गों से निकलते हैं ।

वामक या ऊर्ध्वभागहर द्रव्यों की कार्यविधि—वमन एक प्रकार की प्रतिसंक्रमित क्रिया है । इसका नियन्त्रण सुषुम्नासेतु (Medulla) द्वारा होता है । दुर्गन्धित या क्षोभक संवेदनाग्रों के कारण यह केन्द्र उत्तेजित हो जाता है । गले, ग्रामाशय या ग्रन्त्रों में उत्पन्न क्षोभक संवेदनाएँ वमन के लिए उत्तरदायी हैं । वमन से पूर्व ग्रामाशय या कण्ठ में क्षोभ के कारण ग्ररति (जी मचलाना) होती है । प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा लालास्राव तथा फुप्फुसों में कफ का स्राव ग्रधिक होता है तथा पसीना भी ग्रा जाता है । वमन से पूर्व गहरी सांस ली जाती है तब ग्रामाशय का हार्दिक द्वार खुल जाता है तथा गतिरहित महाप्राचीरा (Diaphragm) ग्रौर उदर की मांसपेशियों के दबाव से ग्रामाशय से पदार्थ बाहर निकल पड़ते हैं । वमन के बाद बड़े वेग से श्वास बाहर निकलती है । इसका लाभ यह है—विशेष कर बच्चों में—कि फुप्फुसों से वमन के समय हुग्रा कफ स्राव बाहर निकल जाता है जिससे चिपका कफ भी बाहर निकल जाता है । कई ग्रवस्थाग्रों में इसी कारण कास-श्वास में वमन का विधान है ।

यह वमन कार्य दो प्रकार से होता है :—

(१) प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा (Reflex-emetics)

(२) मस्तिष्क को प्रभावित करनेवाले (Central-emetics)

प्रथम प्रकार के वामक पदार्थ ग्रामाशय में जाने वाली शीर्षण्य दसवीं नाड़ी (प्राणदा—Vagus) के तन्तुग्रों को प्रभावित कर सुषुम्ना शीर्षक में ग्रवस्थित वमन केन्द्र को उत्तेजित करती है । गले के ऊपर के भाग में ग्रंगुलि या तिनके से क्षोभ उत्पन्न करके वमन इसी प्रकार कराया जाता है । बिना पचा हुग्रा ग्रामाशयावस्थित ग्रन्न, मद्य की ग्रधिक मात्रा, एरण्ड तैलादिक्षोभक ग्रौषधियाँ—यदि तनु (पतले) रूप में न दी जाएँ—प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा ही वमन कराती हैं । गरम पानी में घोला हुग्रा नमक, राई, मदनफल, तुत्थ (२-५ रत्ती), स्फटिका (५ से१५ रत्ती) पानी में मिलाकर पिलाते है ग्रौर इस प्रकार वमन कराते हैं ।

द्वितीय प्रकार के वामक सीधे वामक केन्द्र को प्रभावित कर वमन कराते हैं । इस प्रकार की ग्रौषधियाँ मुख द्वारा दी जाएँ ग्रथवा सूचीवेध द्वारा उनका प्रभाव एक ही प्रकार का होता है । ये ग्रौषधियाँ विषभक्षण के रोगियों में ग्रत्यन्त उपयोगी हैं ।

छर्दिनिग्रहण (वमननाशक) ग्रौषधियों की क्रिया उक्त वामक क्रियाग्रों की विरोधिनी हैं । ग्रहिफेनादि ग्रौषधियाँ (१) वमन केन्द्र को शिथिल करके, धतूरादि (२) प्राणदा नाड़ी के ग्रामाशयगत सूत्रों को शिथिल करके (३) कर्पूरादि स्थानिक संज्ञानाश उत्पन्न करके (४) खटिकादि कला पर रक्षणात्मक स्तर बना कर वमन को बन्द करती हैं ।

अधोभागहर संशोधन या विरेचन—इनकी क्रिया ग्रन्त्रों पर होती है, विशेषकर बृहदन्त्रों पर । विरेचन इनमें मुख्य हैं, किन्तु बस्तियों की गणना भी इनमें की जा सकती है । प्रधानता होने से प्रथम विरेचनों की ही व्याख्या की जाती है । निम्न प्रकारों से इनकी क्रिया होती है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(१) अन्त्र में पदार्थों की मात्रा बढ़ाकर—यदि अन्त्रों में अवस्थित पदार्थ की मात्रा बढ़ जाए तो उनका दबाव उनकी भित्तियों पर पड़ता है। जिससे प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा अन्त्रों की अपकर्षण गति या क्रिमिवदाकुंचन गति (Peristalsis) बढ़ जाती है जिससे मलभाग शीघ्र बाहर निकलने लगता है। लवणयुक्त विरेचन—नारायणचूर्ण तथा त्रिवृत् इसी प्रकार काम करते हैं।

(२) अन्त्रों के कला को क्षुभित करके—जयपाल, एरण्ड तैल, आरग्वधादि अन्त्रों में जाकर तत्रस्थ श्लेष्मिक कला में क्षोभ उत्पन्न करते हैं। फलतः कला में स्पर्शासह्यता उत्पन्न हो जाती है और जिस प्रकार बाहर की शोथ को छूने मात्र से पीड़ा होती है, रोगी स्पर्श को पसन्द नहीं करता, उसी प्रकार अन्त्रकला भी 'स्पर्शासह्यता' के कारण आँतों में अवस्थित मलों का स्पर्श तक सहन नहीं कर सकती, फलतः प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा अपकर्षण गति बढ़ जाने से मल शीघ्र बाहर निकलने लगता है। पारदीय विरेचक, सुधानिधि आदि भी इसी प्रकार विरेचन कराते हैं।

(३) वातनाड़ियों तथा मांसपेशियों को उत्तेजित करके—यह एक प्रकार का सांस्थानिक प्रभाव है। अन्य संस्थानों के समान अन्त्रों पर भी इनका प्रभाव पड़ता है। विषमुष्टि आदि पदार्थ वात नाड़ियों को उत्तेजित करके अन्त्रों की अपकर्षण गति को बढ़ाते हैं। पीयूष ग्रन्थि सत्व आदि द्रव्य स्वतन्त्र रूप में मांसपेशियों को प्रभावित करके अपकर्षणी गति को बढ़ाते हैं।

(४) पित्तस्रावकों द्वारा—रसपुष्पादि पारदीय विरेचक एवं अन्य गोरोचनादि पदार्थ पित्त के स्राव को बढ़ाते हैं। अन्त्र में अधिक पित्त आ जाने से उसके क्षोभक गुण के कारण भी अपकर्षणी गति बढ़ जाती है। जिससे विरेचन प्रायः हरा-पीला होता है। समग्र रेचक पदार्थ या इसी प्रकार के पदार्थ इन्हीं चार प्रकारों में सम्मिलित किए जा सकते हैं। हाँ, दो प्रकार के पदार्थ इसके अपवाद हैं। एक तो स्निग्ध और पिच्छिल पदार्थ—यथा, ईसबगोल (ईषद्गोलम्)—यह अपनी स्निग्धता तथा पिच्छिलता के कारण आँतों की भितियों को स्निग्ध कर देते हैं तथा उनसे चिपटे शुष्क मल को उनसे छुटा देते हैं जिससे मल शीघ्र बाहर निकल जाता है। दूसरे प्रकार के पदार्थों को 'रसायन' कहना चाहिए; जिनकी उपस्थिति मात्र से अंग अपना कार्य सम्यक्तया करने लगता है। ये स्वयं तो शरीर में आचोषित नहीं होते, किन्तु अन्य पदार्थों के आशोषण को या उनकी क्रियाशीलता को बढ़ा देते हैं। इन्हें नवीन विज्ञान में उत्तेजक (Catalytic agent) कहते हैं। यथा, अन्त्रों की निर्बलताजन्य विबन्ध में मकरध्वज को अन्य पदार्थों के साथ मिलाकर सेवन करने से विबन्ध नष्ट हो जाता है। संग्रहणी में भी संभवतः पर्पटी प्रयोग से इसी प्रकार लाभ होता है।

अधोभागहरों का प्रयोजन—इनका प्रयोग निम्न लाभों के लिए किया जाता है।

(१) विबन्ध (कब्जी-आनाह) नाश के लिये और स्वाभाविक रूप में शौच लाने के लिए मृदु रेचकों का प्रयोग उत्तम है।

(२) विषयुक्त या क्षोभक पदार्थों को शरीर से निकालने के लिये—ये विष या क्षोभक तत्व बाहर से भी देह में प्रविष्ट हो सकते हैं और शरीर के अन्दर भी। रक्तदुष्टि तथा वृक्क के रोगों में—विविध ज्वरों में अनेक प्रकार के विष शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं। उन्हें विरेचन द्वारा या बस्ति (Enema) द्वारा बाहर निकाला जाता है। ज्वरों में ताप को कम करने के लिए भी इनका उपयोग होता है।

(३) तरल द्रव को शरीर में से निकालने के लिए (यकृत्, वृक्क और हृदय-के रोगों में जलोदर या आर्द्र शोथ उत्पन्न हो जाती है) या उसे कम करने के लिए इन्द्रायण-त्रिवृत्-नारायणचूर्णादि विरेचक दिए जाते हैं। जिससे जलबहुल अतीसार आकर द्रवांश कम हो जाता है।

आदर्श विरेचक—आदर्श विरेचक में निम्न गुणों का होना आवश्यक है :—

(अ) आमाशयक्षोभक न हो। अन्यथा आमाशय क्षोभ के कारण वमन हो जाता है और दोषों की ऊर्ध्व गति हो जाने से विरेचन का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

(आ) इसका प्रभाव अन्त्रों पर ही हो, अन्य अंगों पर नहीं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(इ) अन्त्रों में उद्वेष्टन (ऐंठन) उत्पन्न न करे तथा जिसकी क्रिया सुरक्षित हो। अनिश्चित क्रिया करने वाला विरेचक उत्तम नहीं होता।

(ई) आँतों में से रक्त में आशोषित न हो। यदि कुछ मात्रा में शोषण हो भी जाए तो विष प्रभाव उत्पन्न न करे।

निम्न अवस्थाओं में विरेचकों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। यदि करना भी हो तो अत्यन्त सावधानी से—

(१) औदरिक अंगों की शोथ में यथा, अन्त्र शोथ, आन्त्रिकज्वर, उदर कला शोथ।

(२) गर्भावस्था तथा ऋतुकाल में तीव्र रेचकों का प्रयोग न करें।

(३) आँतों से रक्तस्राव हो रहा हो, अतिक्षीणता तथा शीतांगता (Shock or Collapse) आँतों में बाधा या उनका अन्योन्यानुप्रवेश हो।

यह बात विचारणीय है कि प्रत्येक विरेचक औषधि की क्रिया की दशा सर्वथा निश्चित नहीं होती। कभी-कभी एक से अधिक प्रकार से भी यह पदार्थ क्रियाएँ करते हैं। आमाशय तथा अन्त्र दोनों में क्षोभ उत्पन्न कर वमन और विरेचन भी ला सकते हैं—यथा, कोशातकी से। ऐसे पदार्थों को विरेचक नहीं समझना चाहिये। जिस औषधि की क्रिया केवल अन्त्रों पर ही स्थानीय प्रभाव उत्पन्न करती है तथा अन्य लक्षण उत्पन्न नहीं करती है, वही 'विरेचक' कही जा सकती है। वातनाड़ियों तथा मांस-पेशियों के उत्तेजक पदार्थ विरेचकों के वर्ग में नहीं गिने जाते, अपितु विरेचन में सहायक होने के कारण 'विरेचनोपग' कहलाते हैं। यथा विषमुष्टि, शिग्रु, विडंग-ज्योतिष्मती आदि।

सम्यग् विरेचन हो जाने पर अन्त्र रिक्त हो जाती है और २-३ दिन तक पूर्णतया नहीं भरती। अतः इस दशा में तीव्र रेचन नहीं देना चाहिये। क्षोभक विरेचनों–रसपुष्प–आदि का कुछ अंश यदि रह जाए तो कई दिन तक अतीसार होता रहता है। कुछ विरेचकों का प्रभाव क्षुद्रान्त्रों पर यथा, एरण्डतैल, इन्द्रायण तथा गन्धकादि का बृहदन्त्रों पर तथा लवण रेचकों का दोनों पर प्रभाव होता है।

प्रभाव की तीव्रता या मन्दता के अनुसार रेचकों के सात वर्ग बनाये गए हैं जिनका उल्लेख महास्रोतस् प्रभावकों में किया जा चुका है।

यहाँ उनकी संक्षेप में व्याख्या की जाती हैं :—

(१) स्निग्ध रेचन—यथा, ईसबगोल, मलंगा बीज।

(२) सर या अनुलोमन—मृदुरेचक—

कृत्वा पाकं मलानां यद्भित्वा बन्धमधोनयेत्।
तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी ॥—(शा० प्र० ख० अ० ४)

"अनुलोमनो मलवातप्रवर्त्तनम् (डल्हण—सु० सू० अ० ४६)

ये द्रव्य 'सर' (बहना-द्रवशीलता) गुण के कारण मलसंघात को तोड़कर उन्हें बाहर लाते हैं। केवल विरेचन करना ही इनका काम नहीं है, अपितु अपक्व मलों का पाक करना तथा वायु की भी अनुलोम गति करना—ये दो भी इनके कार्य हैं। ये अपक्व मल को नहीं निकालते। उन्हें पका कर ही रेचन कराते हैं। यथा, हरीतकी, आँवला, गुलाब पुष्प आदि। साधारणतः सेवन से १०-१८ घण्टों में ये बिना किसी ऐंठन के साफ शौच लाते हैं। कार्बोजप्रधान आहार पदार्थ—मेथी, पालक, बथुआ (वास्तूक) एवं अंजीर, चिंचा आदि के फल भी 'सर' ही गिने जाते हैं। कार्बोजों (Carbohydrates) का जो अंश पचने से बचा रहता है वह एकत्र होकर अन्त्रों की गति बढ़ाने में सहायक होता है।

स्रंसन या विरेचक—"पक्तव्यं यदपक्त्वैव श्लिष्टे कोष्ठे मलादिकम्। नयत्यधः स्रंसनं तद् यथा स्यात् कृतमालकः" । (शा० प्र० ख० अ० ४) सामान्य विरेचन (स्रंसनं विरेचनं—यो०व०वि० अ० ३) को ही 'स्रंसन' कहा जाता है। 'सर' की अपेक्षा ये कुछ तीव्र होते हैं तथा कच्चे-पक्के दोनों ही प्रकार के मल को बाहर निकाल देते हैं। पाचन

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

करना इनका काम नहीं है। यथा, आरग्वध, उशारेवन्द, सनाय। ये अन्त्रों में 'क्षोभ' उत्पन्न करके प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा ६ से ८ घण्टों में एक या दो शौच उद्वेष्टन (ऐंठन) के बिना ही लाते हैं।

रेचनम्—'दोषहरणमधोभागं विरेचनसंज्ञकम्' (च० क० अ० १) दोषों को नीचे के मार्ग से निकालने वाले पदार्थ रेचन कहलाते हैं। ये सर और स्रंसन के मध्य श्रेणी के हैं। शारंगधर ने "विपक्वं यपक्वं वा मलादि द्रवतांनयेत्। रेचयत्यपितज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा" यह रेचन का लक्षण कहा है। पक्व या अपक्व मल को पतला (द्रवित) करके निकालने वाली औषधि रेचक है। यथा, त्रिवृत् (निशोथ) ये ८ से १२ घण्टों में अपना प्रभाव दिखाते हैं।

भेदनीयम्-भेदन—मलादिकमबद्धं च बद्धं वा पिण्डितं मलैः।
भित्त्वाऽधः पातयति तद् भेदनं कटुकी यथा॥ (शा० प्र० ख० अ४)

जो औषध शुष्क, गांठदार जमे हुए पुरीष को तथा मलों (दोषों) का विबन्ध तोड़कर अधोमार्ग से बाहर निकाले उन्हें 'भेदन' कहा जाता है यथा, कटुकी, इन्द्रायणादि। ये द्रवरूप या अद्रवरूप सब प्रकार के मल को बाहर निकालते हैं। इनकी विशेषता यह होती है कि शौच के पश्चात् इनसे पर्याप्त मात्रा में तरल भी बाहर निकल जाता है। ये बहुत अधिक शक्तिशाली होते हैं। अधिक मात्रा में देने से अन्त्र शोथादि उपद्रव उत्पन्न करते हैं। कंकुष्ठ, देवदाली, इन्द्रायण, गिरीपर्पट, जयपाल, स्नुहीक्षीर आदि। इनकी क्रिया ४ से ६ घण्टों में प्रारम्भ हो जाती है। ये ऐंठन के साथ तथा स्वल्प उदर शूल के साथ रेचन कराते हैं। अतएव इनमें पारसीक यवानिका आदि शूलप्रशमन पदार्थ मिलाए जाते हैं।

पारदीय विरेचक, सुधानिधि आदि अविलेय योग हैं। क्षुद्र तथा वृहदन्त्र दोनों को ही प्रभावित कर ४ से ८ घण्टों में साधारण ऐंठन के साथ पतले, द्रवबहुल अतीसार लाते हैं, विरेचन के साथ-साथ ये क्रिमिघ्न भी होते हैं।

चरक ने रेचन द्रव्यों के तीन भेद किए हैं—

(१) सुखरेचक यथा—त्रिवृत् (निशोथ)।

(२) मृदुरेचन—यथा आरग्वध (अमलतास)।

(३) तीक्ष्ण विरेचन-यथा सेहुँड़ का दूध। (च० सू० अ० २५)

पित्तविरेचक—इनका वर्णन यद्यपि यकृत् के साथ होना चाहिये था तथापि विरेचन का प्रकरण होने से यहाँ ही उनकी व्याख्या करनी उचित प्रतीत होती है। ये औषध पित्त की उत्पत्ति को उत्तेजना देते हैं। पित्ताशय को बलपूर्वक संकुचित कर उसका स्राव अन्त्रों में बढ़ाते हैं जिससे क्षोभ के कारण अन्त्र गति बढ़ जाती है। रसपुष्प, एरण्ड तैल, कुमारीसत्व (एलुवा), गिरिपर्पट, अण्डे का पीला भाग आदि पदार्थ इसी प्रकार कार्य करते हैं। विदाही दालें भी पित्त का स्राव अधिक मात्रा में कराती हैं। उक्त सब पदार्थ पित्तस्राव की मात्रा को अन्त्रों में बढ़ाती है। गोपित्तादि पदार्थ साक्षात् पित्त की उत्पत्ति को बढ़ाते हैं। आवश्यक नहीं वे रेचन करायें हीं। अतः इन्हें पित्तविरेचक न कहकर पित्तोत्पादक कहना उपयुक्त है।

पुरीषरंजनीय—पालक का साग, कुमारीआसव आदि औषधियों से मल का वर्ण बदल जाता है। अतः वे 'पुरीषरंजनीय' कहलाती हैं।

पुरीषविरजनीयम्—"पुरीषस्य विरजनं दोषसम्बन्धनिरासं करोतीति पुरीषविरजनीयम्"।
(चक्र० च० सू० अ० ४)

दोष-दूषित मल के दोषों को दूर करके उसका स्वाभाविक वर्ण करने वाले पदार्थ—यथा, जामुन, कपिकच्छु, कमलादि—'पुरीषविरजनीय' कहलाते हैं।

अधोभागहर संशोधनों का प्रकरण होने से बस्ति तथा गुदवर्तियों के विषय में भी संक्षेप में लिखा जाता है। आयुर्वेद में बस्तियों का बड़ा महत्त्व है। इन्हें 'आधी चिकित्सा[1]' कहा गया है। आचार्य चरक ने एक विशेष प्रकरण 'सिद्धिस्थान' ही इस विषय पर लिखा है। इनके दो प्रधान भेद हैं—(१) आस्थापन बस्ति या निरूहणबस्ति–क्वाथादि

---

१. बस्तिमर्धचिकित्सितं प्राहुः

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

को बनाकर दी जाती है। (२) अनुवासन बस्ति या स्नेह बस्ति—यह रोग शान्ति के लिए तथा पोषणार्थ भी दी जाती है। पिच्छाबस्ति आदि अनेक प्रकार की बस्तियाँ संग्राह्य, कार्यार्थ, रक्तस्रावरोधनार्थं, आँतों को स्निग्ध करने इत्यादि कार्यों के लिए भी दी जाती हैं। गुदवर्तियाँ या फलवर्तियों का उल्लेख रसेन्द्र सार संग्रह आदि प्राचीन ग्रन्थों में आया है। यद्यपि आज का वैद्य समाज उनका उपयोग भूल-सा गया है। ये वर्तियाँ वायु को अनुलोम करने तथा गाँठ-शुष्क मल को बाहर निकालने के काम आती हैं। त्रिवृत्, पिप्पली, इन्द्रयवादि पदार्थ आस्थापन (निरूहण-मलशोधन) में सहायक होने के कारण 'आस्थापनोपग' कहलाते हैं। इसी प्रकार रास्ना, देवदारु, मदन, सौफ आदि द्रव्य अनुवासन बस्ति में सहायक होने के कारण 'अनुवासनोपग' कहलाते हैं।

संशमन तथा संशोधन का प्रकरण महत्त्वपूर्ण होने से उक्त व्याख्या भी आवश्यक हुई। अब संक्षेप में शेष कर्मों के लक्षण उदाहरण सहित कहे जाते हैं।

मुख तथा आमाशय

आयुर्वेद में स्वस्थ रहने के लिए मुख की स्वच्छता को प्रथम स्थान दिया गया है। अस्वच्छ मुख अनेक दोषों तथा रोगों का उत्पादक है। मुख में दन्त, पाचकग्रन्थियाँ, स्वाद ग्रन्थियाँ तथा स्वरयन्त्र का विशेष महत्त्व है। इन पर क्रिया करनेवाले कर्म निम्नलिखित हैं—

दन्त्य—दाँतों के लिए हितकर इस वर्ग में आहार, व्यायाम तथा औषध सभी आते हैं। दाँतों तथा मसूड़ों को जितना ही चबाने का कार्य करना पड़ेगा, उतना ही वे स्वस्थ रहेंगे। अतः चने चबाना, गन्ना चूसना आदि कार्य दन्तपोषक हैं। आजकल केवल उबाला हुआ आहार करने को प्रथा अधिक हो गई है। जिससे दाँतों को व्यायाम नहीं मिलता और उनमें अनेक रोग लग जाते हैं। देहात के लोग दाँतों से कच्ची चीजों को चबाने का कार्य नगरवासियों की अपेक्षा अधिक करते हैं अतः उनके दाँत, और मसूड़े अपेक्षाकृत कम रुग्ण होते हैं। दाँतों में ही अन्न का भाग सड़कर रोग उत्पन्न करता है। अतः उनकी स्वच्छता की ओर सर्वप्रथम ध्यान देना चाहिए। दन्त्य औषधियों का प्रयोजन—(१) दाँतों को साफ रखना, (२) दाँतों में अवस्थित अन्न के भाग की सड़ांद को रोकना, (३) मसूड़ों को दृढ़ करना है। अतः उत्तम दन्तमंजन में दन्तशोधक खटिकादि, क्रिमिनाशक कपूर, लौंग आदि संकोचक, हरीतकी, कत्था आदि पदार्थ डाले जाते हैं। दन्तमञ्जनों के अतिरिक्त मुख को शुद्ध करने के लिए गण्डूष या कवल ग्रह (कुल्ले) कराए जाते हैं। इनमें भी सुगन्धित, क्रिमिहर तथा संकोचक पदार्थ मिले रहते हैं।

दन्तोद्भव—प्रसंगवश दाँतों को उत्पत्ति-समय का भी उल्लेख करना उचित है। दाँत दो प्रकार के होते हैं।—(१) अस्थायी या दूध के दाँत, (२) स्थायी दाँत।

उत्पत्ति-समय

दूध के दाँत		स्थायी दाँत
निचले अन्तः कर्त्तनक	६- ९ मास	७ वें वर्ष
ऊपर के चारों कर्त्तनक	८-१२ मास	७- ८ वर्ष
निचले बाह्य कर्त्तनक,	१२-२० मास	७- ८ वर्ष
पूर्व या प्रथम चर्वणक	१५-२१ मास	८-१० वर्ष
द्वितीय चर्वणक	२०-२४ मास	१२-१३ वर्ष
भेदक	१६-२० मास	११-१२ वर्ष
तृतीय चर्वणक (अकल दाढ़)		१७-२५ वर्ष

कंठ्य या स्वर्यम्—'कंठस्थितस्वराय हितं कण्ठयम्' (गं) कंठाय, हितं कण्ठयम् (यो०) गले के लिए, गले तथा स्वर के लिए हितकर पदार्थ 'कंठ्य' कहलाते हैं। कण्ठ शोथ, क्षोभ, कण्ठ शोष आदि नष्ट कर ये पदार्थ कण्ठ का हित करते हैं। यथा—मुलैठी, द्राक्षा, मुनक्का, आलू बुखारा आदि। कण्ठशोष के कारण (ज्वरों, तृष्णा आदि में) बहुधा मुखस्थ

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लालास्राव कम हो जाता है। उस अवस्था में अम्ल और स्निग्ध पदार्थ—यथा, बिहीदाना, आलूबुखारा, मिश्री, दूध आदि—के सेवन से शोष तथा तृष्णा कम हो जाती है। इन्हें 'स्निग्ध या स्नेहन' भी कहा जाता है। ज्वरों में मुखशोष, तृष्णा-दाह होने पर इनका उपयोग किया जाता है। शोथशामक कटु रस वाले वचा, मिर्च, शुण्ठी भी स्वयं या कण्ठ्य हैं। क्षोभ को शान्त करने वाले एलादि वटी आदि औषध भी कण्ठ्य हैं।

लालास्रावक—लाला ग्रन्थियाँ दूसरे महत्वपूर्ण अंग हैं जो मुख में रहते हैं। इनका कार्य लाला (लार) का स्राव करना है। स्राव मुख को स्निग्ध रखता है। पाचन तथा अन्न निगलने में सहायता देता तथा हानिकारक पदार्थों को बहा देता है। मध्य स्वतन्त्र नाड़ी मंडल[1] की नाडियों की उत्तेजना से रक्तवाहिनियों का संकोच होकर लालास्राव कम होता है और परिस्वतन्त्र नाड़ी मण्डल[2] के वाततन्तुओं की उत्तेजना से रक्त वाहिनियाँ विस्तृत हो जाती हैं, जिससे लालास्राव बढ़ जात है। लालास्राव की वृद्धि निम्न हेतुओं से होती है—

(अ) सौमनस्य के कारण—मन की प्रसन्नता से—यथा सुगन्धित-सुस्वादु भोजन-मद्यादि। इसी भाव को लेकर आयुर्वेद में—

> **"ईर्ष्याक्रोधभयपरिप्लुतेन लुब्धेनरुग्दैन्यनिपीड़ितेन।**
> **प्रद्वेषयुक्तेन च भोज्यमानमन्नं न पाकं भजते नरस्य॥**

ईर्ष्या-द्वेषादि मानसिक भाव पाचन में विघ्न डालते हैं तथा भूख भी नष्ट करते हैं, क्योंकि इन अवस्थाओं में पाचक रसों का स्राव कम हो जाता है।

(आ) प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा—जिह्वा या नासिका के वात सूत्रों को उत्तेजित करके—तिक्त पदार्थ, रोचक सुगन्धित पदार्थ, कटु, अम्ल, मद्यादि-पदार्थ—लालास्राव को बढ़ाते हैं। मसाले, निम्बु, द्राक्षासवादि आसव, चिरायता, विषमुष्टि, अकरकरा, राजिकादि की क्रिया इसी प्रकार होंती है।

(इ) क्षोभक या वामक पदार्थ—आमाशयगत प्राणदानाड़ी के सूत्रों को उत्तेजित कर प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा लाला की उत्पत्ति को बढ़ाते हैं। वमन के साथ इसी प्रकार लार अधिक मात्रा में आती है।

(ई) कई धातुओं के योग, यथा, पारद लालाग्रन्थियों को ही उत्तेजित करके लालास्राव कराते हैं।

चिकित्सा में लालास्राव को अधिक मात्रा में उत्पन्न करने के लिए उन्हीं औषधियों का उपयोग होता है जो प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा लालास्राव को बढ़ाती है। यथा, सुगन्धित, कटु, तिक्त पदार्थ।

लालाप्रसेकापनयन या लालास्राव शोषक—ये द्रव्य निम्न कारणों से लालास्राव को कम करते हैं—

(१) मानसिकावसाद या ग्लानि—अरुचिकर-सड़ा-गला भोजन या क्रोध-शोकादि भाव इनसे प्रति संक्रमित क्रिया द्वारा लालास्राव की उत्पत्ति कम हो जाती है। (२) स्निग्ध पदार्थ भौतिक क्रिया द्वारा (मुख में स्निग्ध लेप करने से) कुछ समय के लिए लाला की आवश्यकता न्यून हो जाने से उसका स्राव भी कम होता है।

(३) क्षोभ के कारण को दूर करके—यथा, टंकण, संकोचक गण्डूष तथा कषाय पदार्थ।

(४) वातनाड़ियों की संवेदना मन्द करके—यथा, धतूरा, पारसीक यवानिका आदि।

रोचक या सुगन्धित पदार्थ मन की प्रसन्नता तथा जिह्वा में अवस्थित स्वाद ग्रन्थियों को उत्तेजित कर भोजन की अभिलाषा उत्पन्न करते हैं तथा प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा पाचक रसों का स्राव भी बढ़ाते हैं। अतः, रुचिकर पदार्थ दीपन, पाचन और अनुलोमन भी होते हैं। जीरा, एलायची आदि।

अरुचिकर या जी-मचलाने वाले द्रव्यों की प्रक्रिया का वर्णन वमन प्रकरण में कर दिया गया है।

आमाशय प्रभावक—भोजन को ग्रहण करने वाला तथा पाचन करने वाला अंग आमाशय है। यह पाचन क्रिया दो कारणों से होती है—(१) पाचक रसों के स्राव की अधिकता से या (२) आमाशय की गतियों के कारण। पाचक रस में उदहरिकाम्ल (Hydrochloric acid) तथा प्रजीवणक पाचक (Pepsin) दो द्रव्य रहते हैं। पाचन के

(१) Sympath etic Nervous System

(२) Para-Sympethatic Nervous System

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अतिरिक्त यह वर्धन में भी भाग लेता है। आमाशय प्रभावक द्रव्य इन दोनों (पाचक रसों की उत्पत्ति और आमाशय की गतियों) को प्रभावित करते हैं। पाचक रसों को बढ़ाने वाले पदार्थ 'दीपन' कहलाते हैं। इनका प्रभाव क्षुद्रान्त्रों तथा पाचन संस्थान के अन्य अंगों पर भी पड़ता है।

दीपनीयम्—यदग्निकृत् पचेन्नामं दीपनंतद्यथाघृतम्।
दीपनं ह्याग्निकृतंवामं कदाचित् पाचयेन्न वा॥ (अ० हृ० सू० अ० १४ १७)

दीपनमग्निगुणभूयिष्ठं, तत्समानत्वात् (सु० सू० अ० ४१)

दीपन पदार्थ अग्निमहाभूत प्रधान तथा, जठराग्नि प्रदीपक होते हैं। यथा सौंफ, पिप्पली, चव्य, शुंठी अम्लवेतसादि। ये पदार्थ पाचक रसों की मात्रा को बढ़ाकर, अग्नि-दीपन करते हैं। अतएव सौंफ को 'पित्तकृद्दीपनोकटुः' कहा है। पित्त तथा पाचक अग्नि एक ही पदार्थ है। अग्निमान्द्यादि, अरुचि तथा अरति में इनका प्रयोग होता है। इनकी प्रक्रिया निम्न प्रकार की होती है।

(अ) रसना उत्तेजक—ये पदार्थ जिह्वा में स्थित स्वादग्रन्थियों को उत्तेजित करके पाचक रसों का स्राव कराते हैं। इनमें कड़वे द्रव्य चिरायता, गिलोय, नीम, कुचलादि, जीरा, धनिया, इलायची आदि सुगन्धित पदार्थ, कटुरस वाली राई, पोदीना, धनिया और मद्य सम्मिलित हैं। ये द्रव्य भोजन के कम-से-कम आधे घन्टे पहले सेवन करने चाहिए, ताकि भोजन करते समय तक पाचक रसों का स्राव प्रारम्भ हो जाए। भोजन की सुगन्धि से भी मनोहर्ष द्वारा पाचक रसों की उत्पत्ति बढ़ जाती है। किन्तु और देर तक इस प्रकार के मसालों और पदार्थों का अनावश्यक उपयोग नहीं करना चाहिए। अन्यथा स्वादांकुरों की संज्ञा-शक्ति कम हो जाती है और फिर इनका प्रभाव भी न्यून हो जाता है।

(आ) रासायनिक उत्तेजक—कुछ पदार्थों का संगठन ही ऐसा होता है कि जिससे पाचक स्रावों की मात्रा बढ़ जाती है। स्वल्प मात्रा में क्षार तथा १० प्रतिशत मद्य से कम मद्य वाले द्राक्षासवादि आसव इस प्रकार से ही पाचक रसों को बढ़ाते हैं।

(इ) चेतान्तों (Nervous endings) को उत्तेजित करके पाचक रसों को बढ़ाते हैं यथा, तम्बाकू। इन द्रव्यों का चिकित्सा में उपयोग कम होता है।

अपचन या अग्निमांद्यकारक द्रव्यों की क्रिया ठीक इन्हीं तीनों प्रकारों से होती हैं, किन्तु ऊपर से सर्वथा विपरीत। अरुचिकर सड़े-गले-दुर्गन्धित द्रव्य मन को विषण्ण करके, स्निग्ध तथा पिच्छिल द्रव्य स्वादांकुरों पर स्तर (तह) लगाकर, मसालों के अति उपयोग से स्वादांकुरों की संज्ञा (Sensitiveness) कम करके आमाशय स्राव न्यून करते हैं।

अतिमात्रा में अधिक तेल, दूध, मलाई आदि अतिस्निग्धों का सेवन, तीव्र मद्यों का सेवन भी अपने रासायनिक संगठन के कारण पाचक रसों के स्राव में बाधक है। इनसे आमाशय पाचन में विलम्ब होता है। धतूरा पारसीक यवानी सूची आदि द्रव्य आमाशयगत प्राणदानाड़ी के चेतान्तों को संज्ञाशून्य करके पाचक रसों के स्राव को न्यून करते हैं। स्राव का सर्वथा नाश भी कर सकते हैं।

अम्लतानाशक—ये पदार्थ आमाशय के पाचक स्राव में उपस्थित उदहरिकाम्ल की अम्लता को कम करते हैं। अम्लपित्त, आमाशय व्रण, पक्वाशय व्रणादि में इन पदार्थों का उपयोग होता है। अम्लविरोधी क्षारीय पदार्थों के सेवन से (यथा, मधुर क्षार) अम्लता को उदासीन या निष्क्रिय कर दिया जाता है। इस प्रकार के पदार्थों का प्रभाव कुछ समय तक रहता है। उनके प्रभाव के नष्ट हो जाने पर अम्ल रस की उत्पत्ति और भी तीव्रता से होती है। अतः, ये पदार्थ उत्तम अम्लतानाशक नहीं हैं। दूध, मलाई आदि स्निग्ध पदार्थ भी कुछ समय तक उदहरिकाम्ल की उत्पत्ति को रोकते हैं। गोदन्ती, संगजराहत, जहरमोहरा, धतूरा, पारसीकयवानी आदि पदार्थ भी अधिक अम्ल की उत्पत्ति में बाधक हैं।

पाचनम्—पचत्यामं न वह्निं च कुर्यात्तद्धि पाचनम्।
नागकेशरवद्विद्यात्, चित्रो दीपन पाचनः॥ (शा० प्र० ख० अ० ४)

'पचन्तमग्नि' प्रतिपक्षक्षपणेन, बलदानेन च यत्पाचयति, तत् पाचनं, तच्च वाय्वग्निगुणभूयिष्ठम्।
(च० च० सू० अ० २२)

पाचक द्रव्य आमअन्न तथा मलों तथा आम दोषों, धातुओं और मलों का पाक करते, हैं किन्तु जठराग्नि

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

को नहीं बढ़ाते यथा, नागकेसर, मुस्तक, इन्द्रयवादि तथा अनेक पदार्थों में दीपन और पाचन दोनों ही कर्म पाए जाते हैं यथा, चित्रक, चव्य आदि। वस्तुतः अधिकतर द्रव्यों में दोपन-पाचन दोनों ही कर्म पाए जाते हैं। पाचक द्रव्यों में वायु और अग्निमहाभूत प्रधान होते हैं। ये द्रव्य साक्षात्, पाचक रसों को उत्पन्न नहीं करते, अपितु पाचन विरोधी पदार्थों की शक्ति को कम करके अथवा उनके कार्य में सहायता देकर ये पदार्थ पाचन करते हैं।

संभवतः पाचक किण्व (Enzymes) को उद्दीपन करके (क्योंकि ये दोनों ही पाचकाग्नि से पृथक् होते हुए भी पाचन में अत्यन्त आवश्यक हैं) पाचन अग्नि को सहायता देते हैं।

संभवतः चक्रपाणिदत्त के शब्दों में प्रतिपक्षक्षपण करते हों तथा पाचकावयवों को गति व औदर्य अग्नि को बलदान करते हों। आमाशय का क्षुद्रान्त्रीय द्वार उस समय तक आहार को क्षुद्रान्त्र मेंनहीं जाने देता जब तक वह सम्यग्-तया पतला नहीं हो जाता और आमाशय रस का उसमें पूर्ण रूप से मिलन न हो जाए। यह कार्य आमाशय की हृदय-द्वारिका भाग की गतियों से होता है। संभवतः ये पाचक पदार्थ इन गतियों की शक्ति को बढ़ाते हैं। वायु महाभूत होने से ये चल गुण वाले तो होते ही हैं।

गतिवर्धन, क्षोभक पदार्थों द्वारा आमाशय क्षोभ उत्पन्न करके, होता है या वातनाड़ियों को प्रभावित करके होता है। पाचन द्रव्यों के विपरीत संशमन द्रव्द (Gastric Sedatives) भी वातनाड़ियों या चेतान्तों को शिथिल करके अथवा मन को शिथिल करके, संज्ञा को न्यून करके यथा, कर्पूर, अहिफेनादि, अथवा खटिकादि अन्तः कला पर लेप रूप में फैल जाने से भी आमाशय की गति मन्द हो जाती है।

अनुलोमन—ये पदार्थ वायु को आमाशय और अन्त्रों से निकालते हैं। उत्तम अनुलोमन वायव्यों (Gases) का बनना भी रोकते हैं तथा संचित वायव्यों को बाहर निकालते हैं। वायव्यों की उत्पत्ति रोकने के लिए जीवाणु हर पदार्थ—उदहरिकाम्ल, कर्पूर, आदि पर्याप्त लाभ करते हैं। चाक या कोयले जैसे पदार्थ इन वायव्यों को अपने में अवशोषित कर लेते हैं और इस तरह आध्मान में लाभ करते हैं। सर्वोत्तम जीरक-यवानी, पीपरमेन्ट, एला, दालचीनी आदि तथा कटु रस वाले शुण्ठी, राई आदि है। ये आमाशय की गति को कम करके छद्रिक द्वार को शिथिल करके वायव्यों को निकाल देते हैं। अन्य द्रव्य गति को नियमित तथा शक्ति देकर, वातनाड़ियों को तथा मांसपेशियों को उत्तेजित करके वायव्यों को बाहर निकाल देते हैं। अन्त्रों के दीपन, पाचन तथा अनुलोमन इसी प्रकार कार्य करते हैं। अनुलोमन पदार्थों की प्रक्रिया के अनुसार 'हिक्का निग्रहण' भी कार्य करते हैं। शूल-आमाशय या अन्त्रों में होने वाली वेदना आक्षेप तनाव (Spasm) के कारण होता है। इसका कारण अजीर्ण, भोजन, सूखे मल का संचय, क्षोभक पदार्थ, शोथादि अनेको प्रकार के हैं। इस शूल (पेट दर्द) को शान्त करने के लिए सर्वप्रथम आक्षेप दूर करना आवश्यक है। पुनः शूल के कारण को शरीर के बाहर निकालना। यह कार्य तो संशोधक पदार्थ करते हैं। प्रथम कार्य अनुलोमन या सर औषध करते हैं। अतएव आचार्य चरक ने पिप्पली, सोंठ, चव्य, चित्रक, अजवायनादि को शूल प्रशमन कहा है। शूल हर और वेदनाहर में बहुत अन्तर है। वेदनाहर वातिक पीड़ाओं को शान्त करने वाले को कहा जाता है।

विदाही—द्रव्यस्वाभावादथ गौरवाद्वाचिरेण पाकं जठराग्नियोगात्।
पित्तप्रकोपं विदहम् करोति, तदन्नपानं कथितं विदाही॥
(डल्हण सु० सू० अ० ४५। १५८)

अर्थात् जो अन्नपान अपने स्वभाव से अथवा गुरुता के कारण देर से पचे, पचता हुआ विदाह (अम्लपाक) करे, तृष्णा, हृदय में दाह (Heart burn) खट्टे डकार लावें वे 'विदाही' हैं यथा, माष (उड़द) पाचक अंगों पर होने वाले कर्मों में से बहुतों का वर्णन हो चुका है। अवशिष्ट **अन्त्र प्रभावक कर्मों** का वर्णन नीचे किया जाता है। इनका सम्बन्ध अन्त्रों की गति से है। अतः उसे जानना आवश्यक है। क्षुद्र तथा बृहत् भेद से अन्त्रों के दो भाग हैं—क्षुद्रान्त्र की लम्बाई लगभग २२½ फुट (सार्धत्रि व्यायामान्यन्त्राणि-सु० शा०अ० ५; व्यामों बाह्वोः सकरयोस्ततयोर्तिर्यगन्तरम्-अमरः) और स्थूलान्त्रों की ५ फुट है इनमें भूनाग (केंचुआ-Earth Worm) को गति के समान दो गतियाँ होती हैं। दोलनी (Pend-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ulum or churning movements) गति झूले की गति के समान है जिससे आहार रसादि आँतों में से चूसा जाकर रस-रक्तादि धातुओं से मिल जाता है। दूसरी अपकर्षणी या पुरःसरणी गति (Peristalsis) अन्त्र रस पदार्थों को आगे की ओर बढ़ाती है। प्राणदानाड़ी या दशवींशोर्षण्य नाड़ी (vagus) की उत्तेजना से ये गतियाँ शक्तिशाली हो जाती हैं और मध्य स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल (Sympathatics Nervous system) की उत्तेजना से ये गतियाँ शिथिल हो जाती है। आयुर्वेद में ये गतियाँ सौर मण्डल द्वारा या अपान और समानवायु के कार्य हैं।

आमपक्वाशयचरः समानो वन्हिसंगतः।
सोऽन्नं पचति तज्जांश्च विशेषान् विविनक्तिहि॥
पक्वाधानालयोऽपानः काले कर्षति चाप्यधः।
समीरणशकृन्मूत्र शुक्रगर्भार्तवानिच॥ (सु० नि० अ० १)

साधारणतः ३½—४½ घण्टों में भोजन 'उण्डुक' के पास पहुँचने लगता है। वहाँ एक घण्टे के लगभग ठहरता है। आहार रस का आचूषण क्षुद्रान्त्रों तथा उण्डुक में पूर्ण हो जाता है। यद्यपि जल का शोषण बृहदन्त्रों में होता है। 'उण्डुक' अन्त्रस्थ पदार्थ ६ घण्टों में यकृत् मोड़ पर, ९ घण्टों में प्लैहिक मोड़ पर तथा १२ घण्टों में अवरोही स्थूलान्त्र तक और १८ घण्टों में मलाधार तक पहुँचता है।

साधारण क्षोभ या शोथ, शाकभाजी आदि के न पचे हुए तन्तु, सुगन्धित कटु रस वाले पदार्थ, उड़नशील तैल भी आन्तों की गति को बढ़ा देते हैं।

अन्त्रों में उपलब्ध पाचक अग्नि तीन पाचक स्रावों का—अग्न्याशय (Pancreatic Secretions) स्राव, पित्त तथा क्षुद्रान्त्रों का स्राव—संयुक्त रूप है। इनको प्रभावित करना प्रायः हमारे हाथ में नहीं है। आहार द्वारा अवश्य प्रभावित होते हैं। औषधियों का इनकी उत्पत्ति पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता। भोजनोत्तर सेवित क्षारीय पदार्थ अग्न्याशय के स्राव की मात्रा को कुछ सीमा तक कम करते हैं। किन्तु पित्त की उत्पत्ति पर उनका कुछ प्रभाव नहीं होता। हाँ, अन्त्रों की कला के स्राव को कम करते हैं। इनके दो मुख्य भेद हैं—संग्राही और स्तम्भन।

ग्राही या संग्राही—"सांग्राहिकमनिलगुणभूयिष्ठमनिलस्य शोषणात्मकत्वात्। (सु० सू० अ० ४१)

दीपनं पाचनं यत्स्यादुष्णत्वाद् द्रव शोषकम्।
ग्राही तच्च यथा शुण्ठी जीरकं गजपिप्पली॥ (शा०)

पक्वामग्राहकत्वेन द्विविधं संग्राहकम्। तत्र यद् ग्रहण्यामामं संपाच्य वन्हिं कृत्वा तत्रस्थं द्रवं च शोषयित्वा संग्रहणं करोति तदुष्णग्राहकंज्ञेयं, यद्द्रव्यमतीसारादौ पक्वमलादिकं संस्तभ्य संग्रहं करोति तच्छीतसंग्राहकं ज्ञेयम्, तदनिलगुणभूयिष्ठमित्यदोषः—(आढ़मल्ल)

पतले मल को बाँधने वालों को संग्राही, ग्राही, पुरीष संग्रहणीय कहते हैं। यह दो प्रकार के हैं—

(१) **उष्ण संग्राहक** (अपक्वसंग्राहक)—इनमें अग्नि महाभूत और उष्ण गुण प्रधान होता है। ये अपक्व (आम) मल को ग्रहणी में पका कर तथा अपनी उष्णता से उसके द्रव भाग को सुखा कर मल को बाँधकर लाते हैं। शुण्ठी, जीरक, गजपिप्पली आदि इसी श्रेणी के संग्राहक हैं। इसी भाव को आचार्य भाव मिश्र ने निम्न पद्यों में वर्णन किया है—

आग्नेय गुणभूयिष्ठं तोयांशं परिशोषयेत्।
संगृह्णाति मले तत्तु ग्राहि शुंठ्यादयोयथा।
विबन्धभेदनीया तु सा कथं ग्राहिणी भवेत्।
शक्तिर्विबन्धभेदेस्यात् यतो न मलपातने। (भाव)

शुंठी की ग्राहित्व तथा विबन्धभेदत्व का समाधान करते हुए भाव मिश्र कहते हैं कि अग्निगुण अधिक होने से सोंठ द्रवांश को सुखाकर मल को बाँधती है कब्जी नहीं करती। किन्तु, स्वयं में मल को निकालने की शक्ति नहीं है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संग्राही तथा स्तम्भन में भेद

ग्राही	स्तम्भन
१. रस-प्राय कटु	कषाय
२. वीर्य-उष्ण	शीत
३. वातशामक	वातवर्धक
४. दीपन पाचन	अग्निसादक

(२) **शीत-संग्राहक (स्तम्भन)**—ये द्रव्य वायु भूत प्रधान होने से शोषक होते हैं। अतः, अतिसारादि में पक्व मल का स्तम्भन करके संग्रहण करते हैं। यथा, आम की गुठली, लोध्र, कुटज, धाय के फूल, पद्मकेशर, स्योनाकादि।

शीत-संग्राहक बहुत कुछ 'स्तम्भन' के समीपस्थ हैं। ये अन्त्रों की कला के स्राव की उत्पत्ति को कम करके द्रवता को कम करते हैं। अफीम इसका उत्तम उदाहरण है। कषाय रस वाले पदार्थ श्लेष्मिक कला का संकोच कर स्तम्भन करते हैं। माजूफल, सुपारी, लोध्रादि—ये द्रव्य अपनी रूक्षता, शीतता, कषाय रस (कषायाम्ल होने के कारण) लघु पाकी तथा वात की क्रिया (शोषण) करने वाले होने से स्तम्भन करते हैं। गतिमान् और चल स्रावों को स्थिर कर देते हैं। कला के संकोच के साथ ये उस पर एक तह भी जमा देते हैं। जिससे प्रतिसंक्रमित अपकर्षणी गति कम हो जाती है। इस कारण अन्त्रस्थ पदार्थ देर तक उसमें ठहरते हैं और द्रव भाग का आशोषण खूब अच्छी तरह होता है। फलतः 'स्तम्भन' हो जाता है। ये स्तम्भन पदार्थ दो प्रकार के होते हैं—(१) धात्विक यथा—स्फटिका, (२) वानस्पतिक—सुपारी, खदिर, पलाश निर्यासादि। स्तम्भकों के लक्षण निम्नलिखित हैं—

> **स्तम्भनं स्तम्भयति यद्गतिमन्तं चलं ध्रुवम्।** (च० सू०, अ० २२)
> **रौक्ष्यात् शैत्यात् कषायत्वाल्लघपाकाच्च यद्भवेत्॥**
> **वातकृत् स्तम्भनं तत्स्यात् यथा वत्सकटुण्टुकौ।** (शा० प्र० ख०, अ० ४)

ये द्रव्य वातमहाभूत प्रधान होते हैं।

क्रिमिप्रशमन—क्रिमि शब्द का व्यवहार बड़े विस्तृत क्षेत्र के लिए प्रचलित हो गया है। जीवाणु, शाकाणु एवं अन्य सूक्ष्म जन्तु इससे ग्रहण किए जाते हैं। यहाँ क्रिमि का अभिप्राय पराश्रयी उदर कृमियों (व्रण में कृमि आदि में) के लिए किया गया है। क्रिमि उदर क्रिमियों को शान्त करने वाले द्रव्यों को 'क्रिमिशमन' कहते हैं सहिजन, विडंग, निर्गुण्डी अपामार्ग, कम्पिल्ला क्रिमिप्रशमन हैं। ये दो प्रकार से कार्य करते हैं।

(१) क्रिमियों को अन्त्रों से बाहर निकालने वाले 'क्रिमिहर' कहलाते हैं। यथा गोल कीड़ों के लिए किरमाणी अजवायन, अपसन्तीन, शान्तनम् एवं तीव्र रेचक यथा जयपाल।

(२) क्रिमिघ्न—क्रिमिसूदन, क्रिमिशातनं जो क्रिमियों को नष्ट कर देते हैं।

आयुर्वेद में विडंग, शिग्रु, निर्गुण्डी, पलाशबीज, हंसपदी गोल क्रिमि के लिए, अनार की मूल की छाल, हंसपदी चपटे क्रिमि के लिए, नमक, चूना देवदारु तैल को आस्थापन बस्ति सूत्रमय क्रिमियों के लिए, अजवायन के फूल बडिश क्रिमियों के लिए प्रयुक्त होते हैं। अन्त्रों में सड़ांध की उत्पत्ति को रोकने वाले द्रव्यों को अन्त्र संशोधक कहा जाता है। अनुलोमक द्रव्य तथा क्रिमिघ्न-कर्पूर, सत अजवायनादि द्रव्य अन्त्रसंशोधक पाये गए हैं।

यकृत् प्रभावक—पाचन का प्रकरण होने से यकृत् प्रभावक कार्यों का भी वर्णन करना उचित है। क्योंकि पित्त का प्रभावस्थान यकृत् ही है। यों तो यकृत् के अनेक कार्य हैं। किन्तु इस प्रकरण में पित्त विषयक कार्यों का ही वर्णन किया जाएगा। रक्तरंजकोत्पादन या शर्करोत्पादन आदि कार्यों का इस प्रकरण से सम्बन्ध नहीं। यकृत्प्रभावक औषधियां भी दो प्रकार की होती हैं। उसे उत्तेजित कर अधिक कार्य कराने वाली—यथा, कटुकी, रसाञ्जन, कुमारी, सप्तरंगी आदि। औषधियां अहिफेनादि यकृत् को शिथिल करते हैं। पित्त रेचकों का वर्णन किया जा चुका है। पित्तप्रभावक औषधियों के कर्मानुसार निम्न वर्ग हैं—

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(१) **पित्तोत्पादक**—पित्त की उत्पत्ति को बढ़ाने वाले—गोरोचनादि ।

(२) **पित्त-निष्कासक**—यकृत् से पित्त को स्रवित कर पित्ताशय में लाने वाले और वहाँ से भी क्षुद्रान्त्र में लाने वाले द्रव्य यथा, एलीयकम्, रेवन्दचीनी, कटुकी, हरिद्रा ।

(३) **पित्तद्रावक**—पित्त की सान्द्रता (गाढ़ेपन) को कम करने वाले जिससे पित्ताश्मरी की उत्पत्ति की संभावना कम हो जाती है, तथा पित्त स्राव भी स्वयमेव ग्रहणी में होता रहता है । यथा, सैन्धव लवण, अर्कलवण, नारिकेल लवण, नृसार एवं अन्य क्षारीय पदार्थ ।

(४) **पित्ताशय संकोचक**—ये पित्ताशय का संकोच करके वहां संचित पित्त को ग्रहणी में भेजते हैं । यथा, अम्ल पदार्थ विशेषकर उदहरिकाम्ल, शिलाजतु, गोरोचन, ताम्र, कुमारी, एलुवा कालमेघ, हरिद्रा । रसांजन, रोहीतक, त्रायमाणा, शरपुंखा, भृंगराज, मत्स्यादि के पित्त यकृत् प्रभावक द्रव्य हैं ।

हृदय और रक्त प्रभावक

शोणितास्थापन—रक्त को अपनी प्राकृतिक अवस्था में रखने वाले द्रव्य 'शोणितास्थापन' या रक्तास्थापन कहलाते हैं । रक्त के गुणों में या प्रमाण में दोष आने पर उन्हें पुनः प्राकृतिक दशा में लाने के लिए औषधियों का प्रयोग किया जाता है । ये द्रव्य तीन प्रकार से कार्य करते हैं :—

(i) **रक्त संशोधक**—रक्त प्रसादन वा रक्त-रसायन—ये द्रव्य रक्त की अशुद्धियों को दूर करके उसके गुणों को बढ़ाते हैं । (शोणितस्य दुष्टस्य दुष्टिमपहृत्यतत्प्रकृतौ स्थापयतीति शोणितास्थापनम्, चक्र०) यथा, सारिवाद्वयं, मुण्डी, गुडूची, निम्बादि तिक्त रसायन ।

(ii) **रक्तवर्धक**—रुधिरसंस्थापनं पुरुषस्य रुधिरवृद्धि (स्थैर्य) करम्—(डल्हण) । ये पदार्थ रुधिर (Haematinics) की वृद्धि, रक्त कणों तथा रंजक (Haemoglobin) धातु को बढ़ाते हैं अर्थात् उनके न्यून होने पर उन्हें प्राकृतिक प्रमाण तक बढ़ाते हैं । यथा, लोह, ताम्र, सोमल, गैरिक, स्वर्णमाक्षिक, गाजर, टमाटर तथा अन्य लाल-पीले वर्ण वाले फल-शाकादि । यदि रक्तकण और रक्तरंजक धातु प्राकृतिक प्रमाण में हों तो इन औषधियों का प्रभाव अधिक नहीं होता । रक्तवृद्धि के साथ-साथ ये पदार्थ उसकी 'स्थिरता' को भी स्थिर रखते हैं ।

(३) **रक्त स्तम्भन**—रक्तसंग्राहक—शोणितास्थापनंशोणितातिप्रवृत्तिस्तम्भनम् (सु० चि० १।४८) डल्हण । बहते हुए रक्त को रोकने वाले द्रव्य भी 'शोणितास्थापन' कहलाते हैं । ये दो प्रकार से कार्य करते हैं ।

(i) रक्तसंग्राहक—ये अन्तः प्रयोग से रक्त के जमने की शक्ति को बढ़ाते हैं । कषायाम्ल या कषाय रस वाले द्रव्य लाक्षा, माजू, माई, कत्था तथा खटिका, बोल, गोदन्ती, चूर्णादि पदार्थ इस प्रकार कार्य करते है । अंग को ऊपर उठाने से, भार से तथा शीतजल में रखने से या ११०°-१२०° फा० तक उष्ण जल सेचन से भी रक्तस्राव बन्द होता है । अतः रक्तस्राव को बन्द करने के लिए अहिफेन शोषण तथा रूक्ष होने से अति लाभप्रद सिद्ध हुआ है ।

(ii) रक्तस्कन्दन या स्तम्भन—ये द्रव्य रक्तस्राव के स्थान पर प्रभाव करते हैं । बाह्य प्रयोग में काम आते हैं । यथा, रेशम की ताजा राख, शिलाजतु, सुरासार आदि द्रव्यों को रक्तस्राब के स्थान पर लगाने से धातुओं का संकोच कर स्राव-मार्ग को बन्द कर देते हैं । रक्तवाहिनी संकोचक द्रव्य भी रक्तस्रावरोधक होते हैं ।

हृदयप्रभावक—हृदय रक्त को समग्र शरीर में भेजने वाला यन्त्र है । रक्ताभिसरण का यह अंग अपनी विशेषता के कारण बड़ा विलक्षण है । इसका निर्माण विशिष्ट प्रकार की मांस-पेशियों तथा वातनाड़ियों से हुआ है । इसकी गति की उत्पत्ति भी स्वयं इसमें से ही उत्पन्न होती है । यद्यपि वातनाड़ियों और मन द्वारा भी इस गति का नियन्त्रण होता है । मानसिक भावों—द्वेष, क्रोध, शोक भयादि का भी प्रभाव हृदय की गतियों पर होता है । परिस्वतन्त्र नाड़ीमण्डल से सम्बन्धित दशवीं शीर्षण्यनाड़ी (प्राणदा) की उत्तेजना से हृदय की गति मन्द होती है तथा मध्यस्वतन्त्र नाड़ीमण्डल की उत्तेजना से वह तीव्र होती है । उसकी संकोचशक्ति तथा रुधिरप्रक्षेपण का बल बढ़ जाता है । उदर में ठीक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इससे उलटा प्रभाव उक्त दोनों वातनाड़ियों का होता है। हृदय का कार्य न केवल रक्तसंवहन ही है, अपितु रक्त के द्वारा प्राणवायु को सभी अंगों तक पहुँचाना भी है। एक मिनट में लगभग ७२ बार हृदय का संकोच होता है। रक्त संचरण काल—

(१) जिह्वा तथा हस्त के मध्य में ९-१६ सेकिण्ड।

(२) हस्त तथा फुप्फुस के मध्य ४-८ सेकेण्ड।

संकोच (Systole) के पश्चात् कुछ समय के लिए हृदय विकसित होता है। इस विकास के समय शुद्ध रक्त (प्राणवायुयुक्त) फुप्फुसों से हृदय में भर जाता है, जो संकोच के समय धमनियों में धकेल दिया जाता है। कई रोगों में यह गति एक क्षण में ४००-५०० तक पहुँच जाती है। जिससे हृदयावरोध का भय रहता है। हृदय में सुरक्षित शक्ति भी विलक्षण है। अन्य अंगों की अपेक्षा बहुत अधिक शक्ति हृदय में होती है। हृदय के अतिरिक्त रक्तसंवहन संस्थान में धमनियां, शिराएँ तथा कोशिकाएँ (Capilaries) भी सम्मिलित हैं। हृदय के संकोच के समय जो रक्त धमनियों में जाता है उससे वे भर जाती हैं और उनके दबाने पर प्रतिरोध प्रतीत होता है। यह 'रक्त भार' कहलाता है, जो निम्न बातों पर निर्भर है—(१) हृदय से प्रक्षिप्त रक्त की मात्रा, (२) महा धमनियों की स्थिति-स्थापकता, (३) धमनियों की दीवार की तान (Tone), (४) रक्त का परिमाण (Volume)। नीचे लिखी तालिका में स्वस्थ मनुष्य का रक्तभार तथा नाड़ी संख्या एवं श्वास तथा नाड़ी का अनुपात दिया गया है।

आयु के अनुसार रक्तभार प्रदर्शक तालिका संख्या—१

आयु वर्षों में	संकोचीय (Systolic B. P.) भार (मि० मि०)	विकासीय (Diastolic B. P.) भार (मि० मि०)	आयु	संकोचीय भार (Systolic B.P.) (मि० मि०)	विकासीय भार (Diastolic B.P.) (मि० मि०)
वर्ष ६	९२	६२	३१	१२२	८२
७	९३	६३	३२	१२३	८३
८	९४	६५	३३	१२३	८३
९	९४	६२	३४	१२३	८३
१०	९८	६८	३५	१२४	८४
११	१०१	७१	३६	१२४	८४
१२	१००	६७	३७	१२४	८४
१३	१०१	७०	३८	१२६	८५
१४	१०६	६९	३९	१२६	८५
१५	१०६	७२	४०	१२६	८६
१६	११२	८०	४१	१२७	८६
१७	१११	७७	४२	१२८	८७
१८	१०८	७६	४३	१२८	८७
१९	११३	७२	४४	१२८	८७
२०	११७	७८	४५	१३०	८८
२१	११८	७८	४६	१३०	८८
२२	११९	७९	४७	१३१	८९
२३	११९	७९	४८	१३२	८९
२४	११९	७९	४९	१३२	८९
२५	१२०	८०	५०	१३३	९०
२६	१२०	८०	५१	१३४	९०
२७	१२०	८०	५२	१३४	९०
२८	१२१	८१	५३	१३६	९१
२९	१२१	८१	५४	१३६	९१
३०	१२२	८२	५५	१३८	९२

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उक्त तालिका डॉ० जालरुस्तम वकील तथा स्व० डा० जे० जे० करसेटजी के प्रकाशित तथ्यों पर आधारित है। ये नर शाकाहारियों के है। मांसाहारियों में ४ अधिक तथा स्त्रियों में ३%-५% तक कम समझें १४-४५ वर्ष के मध्य में (Lepetil की डायरी)।

न्यूनाधिक रक्तभार प्रदर्शिका-तालिका संख्या (२)

आयु	संकोचीय रक्तभार न्यूनतम	संकोचीय रक्तभार अधिकतम	विकासीय रक्तभार
१५-१६	१०६·२	१३६	७०·०
२०-२४	१११·५		७०·४
२५-२६	११२	१३६	७१·२
३०-३४	११३·६		७२·०
३५-३६	११८·६	१४१	७२·६
४०-४४	१२०·४		७३·२
४५-४६	१२२·८	१४५	७५·०
५०-५४	१२६·२		७८·०
५५-५६	१२६·४	१५०	८०·४
६०-६४	१२८·०		८२·५
६५-से ऊपर	१२८	१५४	८३·०

विकासीय रक्तभार ७०° से १०५° तक स्वस्थ गिना जाता है। युवावस्था में औसतन भारतीयों का रक्तभार ७५° से ११५° पाया गया है। पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा देहली निवासियों का ११५·२ तथा वि० र० ७६·०, बिहार, उड़ीसा निवासियों का ११४·७ तथा वि० र० ७५·२ पाया गया है। मांसभोजियों का सं० ११८·७ तथा वि० र० ७२·३, निरामिषभोजियों का सं० ११६·२ वि० र० ७२·५ पाया गया है।

आयु के अनुसार नाड़ी तथा श्वास-प्रदर्शक तालिका

आयु	नाड़ी	श्वास (प्रति मिनट)
गर्भस्थ शिशु	१५०-१४०	
सद्योजात शिशु	१४०-१३०	
प्रथम वर्ष में	१३०-११५	३५
द्वितीय „ „	११५-१००	२२
तृतीय „ „	१००-६५	२०
८-१४वें „ „	औसतन ८४	१८
प्रौढ़ावस्था „	„ ७२	१८
वार्धक्य „	„ ७६	१८

(किंग एडवर्ड मेमोरियल हास्पिटल, बम्बई के 'फार्मोकोपिया एण्ड रेसिडेन्ट्स गाईड १६५०' से साभार उद्धृत)

रक्त जमने की सीमा—साधारणतः तीन से चार मिनट है। लिंग तथा आयु से यह अप्रभावित रहता है। कई रोगों में यह बढ़ जाता है।

रक्तस्राव की अवधि—साधारणतः १ से ४ मिनट का समय। अनेक रोगों में रक्त स्राव इससे अधिक समय तक भी होता रहता है।

उक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि हृदय प्रभावक द्रव्य-वातनाड़ियों या सीधे हृदय धमनियों को प्रभावित कर अपना प्रभाव दिखाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हृदय रसायन—ये द्रव्य हृदय को शक्ति देते हैं। हार्दिक मांस-पेशियों की शक्ति को बढ़ाते हैं तथा उनको मिलने वाले रक्त की वृद्धि करके उनका पोषण भी करते हैं। यह दो प्रकार के हैं—

अधिक स्थायी प्रभाव। उत्पन्न करने वाले यथा, सुवर्ण, मुक्ता-ताम्र, लोह, संगयशब, अकीक, हीरक, अर्जुनादि। अत्यधिक अवस्थाओं (Emergency conditions) में हृदय के पोषक यथा, हृत्पत्री, काफी, करवीरादि। हृदय उत्तेजकों की अपेक्षा हृद्रसायनों का कार्य अपेक्षाकृत स्थायी होता है।

हृदुत्तेजक—ये साक्षात् मांस-पेशियों को उत्तेजित करके या वातनाड़ियों को प्रभावित कर प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा हृदय को उत्तेजित करते हैं। क्षोभक पदार्थों के लेपादि तथा रक्तभार को कम करने वाले द्रव्य, क्रोध, उत्तेजनादि-भाव, कोलकन्द (जंगली प्याज) कस्तूरी, मकरध्वज, कर्पूर आदि औषधियां हृदय की उत्तेजक हैं।

हृदवसादक—ये द्रव्य भी मांस-पेशियों को अथवा वातनाडियों को (प्राणदा को जिसका केन्द्र सुषुम्ना शीर्षक में हैं) प्रभावित कर हृदय की गति को कम करते हैं। धतूरा, सूची, सोमलता, खुरासानी अजवायनादि औषध एवं वत्सनाभ तम्बाकू स्वल्पमात्र में हृदय गति को मन्द करते हैं तथा अधिक मात्रा में तीव्र। कई विष इसी प्रकार मात्रा भेद से विपरीत प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

रक्तवाहिनी प्रभावक—धमनियों तथा शिराकाओं पर तो औषधियों का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है, किन्तु शिराओं पर इनका प्रभाव अत्यल्प होता है। हां, व्यायाम, अभ्यंग, लेपादि का यह प्रभाव होता है कि रक्त का भ्रमण या संवहन उत्तम होने लगता है।

रक्तवाहिनी विस्तारक—धमनियों पर साक्षात् मांस-पेशियों को प्रभावित करके या प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा औषधियां प्रभावित करती हैं। बाह्य प्रयोग में उष्णवीर्य पदार्थों का लेप, अभ्यंग व्यायामादि विहार भी धमनियों को विस्तृत कर देते हैं जिससे रक्तभार भी न्यून हो जाता है। स्थानीय शोथ शान्त होता है, क्योंकि रक्त की मात्रा उस स्थान में बढ़ जाती है। निद्राजनक द्रव्य, मद्य भी रक्तवाहिनी विस्तारक है।

रक्तवाहिनी संकोचक—विषमुष्टी, कर्पूर, हृत्पत्री धतूरा, सोमलता आदि औषधियों के सेवन से धमनियां संकुचित हो जाती हैं। संकोच के कारण रक्तभार बढ़ जाता है। कषाय रस वाले पदार्थों तथा स्फटिकादि वास्तिक संकोचकों के बाह्य प्रयोग से भी धमनी संकोच होता है। इस कारण रक्त-स्राव के स्थान पर इनका लेपादि किया जाता है जिससे रक्तवाहिनी के संकोच से रक्त-स्राव बन्द हो जाता है। रक्त-स्राव काल—साधारण स्वस्थ पुरुष में निम्न समय में रक्त-स्राव बन्द हो जाता है।

(राईट, १९२९) शिराकाओं में—१०-१५ मिनट तक

(एमो, १९२३) शिराओं में—५-७मिनट तक

श्वास संस्थान प्रभावक

फुप्फुस श्वास संस्थान का प्रमुख अंग है। श्वास-प्रश्वास लेना तथा रक्त-शोधन (प्राण वायु को रक्त में भेजना तथा अशुद्ध वायु को बाहर निकालना) ये दो इसके प्रधान कार्य हैं। श्वास केन्द्र का नियन्त्रण सुषुम्नासेतु तथा सुषुम्ना शीर्षक में होता है। प्राणदानाड़ी श्वास की मुख्य नाड़ी है। मस्तिष्क द्वारा भी यह प्रभावित हो सकता है। श्वास-प्रणालियों में प्राणदानाड़ी के अतिरिक्त मध्य स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल के सूत्र भी पाए गए हैं। इन दोनों का कार्य परस्पर विरोधी है।

आयु	श्वास संख्या प्रति मिनट (पल)	
२ मास से २ वर्ष तक	२५-३५	„
२ वर्ष से ६ वर्ष तक	२०-२४	„
६ वर्ष से १२ वर्ष तक	१८-२०	„
१२ वर्ष के ऊपर	१६-१८	„

श्वास केन्द्र के समीप ही कास केन्द्र रहता है। कास एक प्रकार की प्रतिसंक्रमित क्रिया है, जो प्राणदा के चेतान्तों के क्षोभ के कारण उत्पन्न होती है, क्षोभक तत्व या अन्य बाह्य तत्वों को फुप्फुस में से निकालने के लिए इसका

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उद्‌भव होता है। श्वास संस्थान प्रभावक औषधियों को 'कासहरम्' जो खाँसी के वेग को नष्ट करती है, कहते हैं, यथा, मुनक्का, काकड़ासिंगी, दुरालभा, कण्टकारी, वासा आदि। फुप्फुसों तथा वक्ष की मांस-पेशियों में तनाव (आक्षेप) के कारण श्वास रोग होता है। उसे दूर करने वाले द्रव्य 'श्वासहरम्' कहलाते हैं। यथा, पुष्करमूल, शटी, तुलसी, धतूरा, सोम आदि। वासा आदि कई औषध तो 'कास-श्वासहर' दोनों ही होते हैं। ये द्रव्य निम्न प्रकार से कार्य करते हैं—

कफहर—ये द्रव्य श्वास-प्रणालियों से कफ को निकालते हैं। जिससे कास द्वारा कफ सरलता से निकल जाता है। ये द्रव्य—प्राणदा के चेतान्तों के उत्तेजित करके—यथा, वामकद्रव्य, कपूर तथा अन्य सुगन्धित उड़नशील तैलों वाले द्रव्य एलादि वा श्वास प्रणालियों की स्राव-ग्रन्थियों को उत्तेजित करके—वासा, कंटकारी देवदारु तैलादिद्वारा—कफ का अधिक स्राव कराते हैं।

कफघ्न—ये द्रव्य कफ स्राव की मात्रा को कम करते हैं। जिससे कास में कफ की उत्पत्ति कम होती है। अतएव उसको निकालने के लिए कास के वेग भी कम हो जाते हैं। धतूरा, अहिफेनादि, खुरासानी अजवायन आदि शोषक पदार्थ वातनाड़ियों को तथा श्वासप्रणालिस्थ स्राव-ग्रन्थियों को शिथिल करके ये अपना प्रभाव उत्पन्न करते हैं। मरिचादि तीक्ष्णोष्ण औषधियाँ भी निरन्तर प्रयोग से कफ की उत्पत्ति को कम करती है।

वेगहर—श्वास और कास के वेग को दूर करने वाले द्रव्य मांस-पेशियों के तनाव को नष्ट करते हैं। जिससे वेग दूर हो जाता है। यह प्रभाव निम्न प्रकार से होता है—

(१) प्राणदा चेतान्तों का क्षोभ करके—उष्ण क्रिया से या जल के वाष्प श्वास द्वारा लेना।

(२) प्राणदा चेतान्तों की संज्ञा शून्य करके—धतूरा, सूची, पारसीक यवानी इसी प्रकार कार्य करते हैं।

(३) सोमलता आदि मध्य स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल पर प्रभाव डालकर श्वास-प्रणालियों की मांस-पेशियों को विस्तृत और शिथिल करते हैं।

(४) मांस-पेशियों को शिथिल करके—यथा, सोरकक्षार (कलमीशोरा) का धूम्र।

(५) अहिफेन मस्तिष्कस्थ श्वास केन्द्र को शिथिल करके प्रभाव दिखाते हैं। अफीम श्वास केन्द्र को शिथिल करने से पहले कास केन्द्र को शिथिल करती हैं। अतः श्वास-कास में इसका प्रयोग सावधानी से करना चाहिये।

वृक्क प्रभावक कर्म

वृक्क एक निष्कासक अंग है। रक्त की रचना तथा गठन को ठीक रखने में उनका महत्वपूर्ण भाग है। वे देह के काम न आने वाले मल पदार्थों तथा अधिक जल को मूत्र के रूप में बाहर निकाल देते हैं। जितनी ही जल की मात्रा अधिक होगी उतनी ही मूत्र की मात्रा बढ़ जाती है। स्वस्थ मनुष्य लगभग १½ सेर मूत्र दिन रात में करता है। तरल की मात्रा अधिक होने पर या रक्त भ्रमण का दबाव और परिमाण अधिक मात्रा में होने पर मूत्र अधिक आता है। जो पदार्थ मूत्र को अधिक मात्रा में लाते हैं, वे 'मूत्रल' कहलाते हैं। ये निम्न प्रकार से प्रभाव उत्पन्न करते हैं :—

(१) वृक्कों में रक्त संवहन की मात्रा तथा बल को बढ़ाकर—यह कार्य हृदय को उत्तेजित करने से होता है। इससे वृक्कों में रक्त-भार बढ़ जाता है। फलतः मूत्र की मात्रा बढ़ जाती है· अथवा जो द्रव्य मूत्रस्रावक नालियों को विस्तृत करते हैं और इस प्रकार अधिक मात्रा में रक्त आने से उनमें से अधिक तरल भाग छन कर मूत्र की मात्रा बढ़ जाती है। हृत्पत्री, जंगली प्याज, पुनर्नवा, काफी इसी वर्ग के द्रव्य हैं। इन्हें 'हृदय मूत्र विरचक' (Cardio-vascular Diuretics) की संज्ञा दी गई है।

(२) रक्त में जल की मात्रा बढ़ाकर—यथा, जल, शर्बत, लवण विलयन, मांड़, यवक्षार, गोक्षुरु, पंचतृणमूल, खीरे, तरबूजादि के बीज। जल की मात्रा बढ़ जाने पर रक्तगत प्रजीवणक दाब कम हो जाता है और अधिक मात्रा में रक्त में गया तरल भाग मूत्र के रूप में बाहर निकल जाता है। इन द्रव्यों को 'मूत्रविरजनीय' कहते हैं, क्योंकि (मूत्र विरंजयति-दोष सम्बन्धनिरासं कृत्वा प्रकृतौ स्थापयतीति 'मूत्रविरंजनीय'—(च० सू०, अ० ४) ये पदार्थ मूत्र में उपलब्ध दोष सम्बन्धित और उससे उत्पन्न वर्ण को दूर करके मूत्र को स्वाभाविक वर्ण प्रदान करते हैं। यथा, कमल के फूल, प्रियंगु आदि।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(३) वृक्कों की श्लैष्मिक कला को क्षुभित करके मूत्रस्राव की मात्रा को बढ़ाकर—यथा, कंकोल, अनन्तमूल श्वेत चन्दन, कलम्बा आदि। इस प्रकार के द्रव्यों को उत्तेजक मूत्र विरेचक (मूत्रस्य विरेचनं करोतीति मूत्रविरेचनीयम्—चक्र०) (Stimulant Diuretics) कहते हैं। नृसार आदि पदार्थ रक्त की अम्लता बढ़ाकर भी मूत्र की मात्रा बढ़ा देते हैं।

मूत्र संग्राहक—जलबहुल रेचकों से या उन सभी अन्य कारणों से जिनसे शरीर का तरल अधिक मात्रा में निकल जाता है, यथा—अतिस्वेद, हृत्पत्री को अधिक मात्रा से या विषूचिका में वमनातिसार की अधिकता से तथा कुछ औषधियों के प्रभाव से भी मूत्र की मात्रा कम हो जाती है। वृक्क में रक्तवाहिनी संकोचक भी मूत्र की मात्रा कम करते हैं।

अश्मरिहरस् (शर्कराशनम्)—ये पदार्थ अश्मरी की प्रवृत्ति को रोकते हैं तथा बनी हुई अश्मरी या शर्करा कणों को घोलकर बाहर निकालते हैं। यथा, वरुण, पाषाणभेद, मूली, पुनर्नवा, पत्थरखेर तथा क्षार।

प्रजनन अंग प्रभावक कर्म

गर्भाशय की क्रियाओं का संचालन यद्यपि वातनाड़ियों द्वारा होता है तथापि बहुत कुछ ये गतियाँ उसकी मांस-पेशियों में स्वयं उत्पन्न होती हैं। गर्भाशय प्रभावक द्रव्य इन पर साक्षात् प्रभाव उत्पन्न करके अथवा वातनाड़ियों द्वारा अपना प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

(१) **गर्भाशय रसायन**—अशोक, लोध्रादि पदार्थ गर्भाशय की मांस-पेशियों को शक्ति देते हैं। ये उन्हें उत्तेजित नहीं करते, अपितु शक्ति प्रदान कर उनकी कार्य-शक्ति को बढ़ाते हैं, जिससे मांस-पेशियों का संकोच प्रबल होता है। रक्त भ्रमण बढ़ता है। रजः स्राव नियमित होता है।

(२) **आर्त्तवजनन या रजः स्रावक**—ये पदार्थ मासिक धर्म को यदि वह कम हो या न आता हो—ठीक मात्रा में लाने वाले हैं। कार्पासमूल, उलटकम्बल आदि पदार्थों से तथा विरेचकों से गर्भाशय में ऋतुकाल में रक्त जमा हो जाता है जिससे समय पर रजः स्राव आ जाता है। उदरस्थ अंगों के शोथ या क्षोभ के प्रतिक्रिया स्वरूप प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा भी आर्त्तव-स्राव हो जाता है। घृतकुमारी, हींग, कालीजीरी, देवदारू, बोलादि इसी प्रकार के रजः स्रावक हैं।

पाण्डु, जीर्ण विषमज्वर, शोषादि रोगों में रक्त की न्यूनता से या अन्य कारणों से भी रजः स्राव बन्द हो जाता है। उस अवस्था में लोह, ताम्र, स्वर्णमाक्षिक, सिन्कोना, विषमुष्टि आदि पदार्थ लाभ दायक हैं।

औषधियों के अतिरिक्त उष्णता, उष्णस्वेद, उष्ण जल में कटिस्नानादि, राई का लेपादि भी रजः स्राव में सहायता करता है।

(३) **रजःस्राव निरोधक (आर्त्तवापनयन)**—शीत, रक्तवाहिनी संकोचक तथा रक्त संग्राहक, शोथशामक पदार्थ रजः स्राव को बन्द करते हैं। पाण्डु आदि रोगों में तथा रक्ताभिसरण ठीक न होने पर रजः स्राव स्वल्प या न्यून होता है। लोध्र, कमल, नागकेसरादि रजःस्राव के रोधक समझे जाते हैं। रजः स्राव सम्यक् होने के बाद ही गर्भस्थापना संभव है।

गर्भस्थापना के बाद प्रसव की सम्भावित तिथि तालिका

अन्तिम रजोदर्शनमास	उस महीने के दिन	मिलाए जाने वाले दिन	प्रसव का सम्भावित मास तथा तिथि
जनवरी ……… ………	+	७	अक्टूबर
फरवरी ………………	+	७	नवम्बर
मार्च ………………	+	५	दिसम्बर
अप्रैल ………………	+	४	जनवरी
मई ………………	+	४	फरवरी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जून........................	+	७	मार्च
जुलाई......................	+	६	अप्रैल
अगस्त......................	+	७	मई
सितम्बर....................	+	७	जून
अक्तूबर....................	+	७	जुलाई
नवम्बर.....................	+	७	अगस्त
दिसम्बर....................	+	६	सितम्बर

विधि—जिस मास में जिस तिथि को अन्तिम बार रजोदर्शन हुआ हो, उस मास की उस तिथि में उस मास के आगे लिखे दिन (तीसरे कालम में) मिलाने पर संभावित तिथि निकल आती है। सामान्यतः ७ दिन मिलाने से काम चल जाता है। उदाहरणार्थ—पहली जनवरी को अन्तिम रजोदर्शन हुआ उसमें ७ दिन मिलाने से ८ अक्टूबर (९ महीने) संभावित प्रसव का दिन सिद्ध हुआ। इसी प्रकार यदि गर्भधारण से पहला रजोदर्शन २५ अगस्त को हो तो २५ में ६ दिन मिलाने से प्रसव की संभावित तिथि १ जून (नौ मास) होगी।

भारतीय पंचांग के अनुसार

विक्रम संवत् के अनुसार

गर्भ स्थापना काल	संभावित प्रसव काल
चैत्र शुक्ल पक्ष	माघ कृष्ण पक्ष
वैशाख कृष्ण ,,	,, शुक्ल ,,
,, शुक्ल ,,	फाल्गुन कृष्ण ,,
ज्येष्ठ कृष्ण ,,	,, शुक्ल ,,
,, शुक्ल ,,	चैत्र कृष्ण ,,
आषाढ कृष्ण ,,	,, शुक्ल ,,
,, शुक्ल ,,	वैशाख कृष्ण ,,
श्रावण कृष्ण ,,	,, शुक्ल ,,
,, शुक्ल ,,	ज्येष्ठ कृष्ण ,,
भाद्रपद कृष्ण ,,	,, शुक्ल ,,
,, शुक्ल ,,	आषाढ़ कृष्ण ,,
आश्विन कृष्ण ,,	,, शुक्ल ,,
,, शुक्ल ,,	श्रावण कृष्ण ,,
कार्तिक कृष्ण ,,	,, शुक्ल ,,
,, शुक्ल ,,	भाद्रपद कृष्ण ,,
मार्गशीर्ष कृष्ण ,,	,, शुक्ल ,,
,, शुक्ल ,,	आश्विन कृष्ण ,,
पौष कृष्ण ,,	,, शुक्ल ,,
,, शुक्ल ,,	कार्तिक कृष्ण ,,
माघ कृष्ण ,,	,, शुक्ल ,,
,, शुक्ल ,,	मार्गशीर्ष कृष्ण ,,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गर्भ स्थापना काल	संभावित प्रसव काल
फाल्गुन कृष्ण पक्ष	—मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष
,, शुक्ल ,,	—पौष कृष्ण ,,
चैत्र कृष्ण ,,	— ,, शुक्ल ,,

शक संवत् के अनुसार

आर्तवदर्शन काल	संभावित प्रसव काल
चैत्र शुक्ल पक्ष	पौष कृष्ण पक्ष
,, कृष्ण ,,	माघ शुक्ल ,,
वैशाख शुक्ल ,,	,, कृष्ण ,,
,, कृष्ण ,,	फाल्गुन शुक्ल ,,
ज्येष्ठ शुक्ल ,,	,, कृष्ण ,,
,, कृष्ण ,,	चैत्र शुक्ल ,,
आषाढ़ शुक्ल ,,	,, कृष्ण ,,
,, कृष्ण ,,	वैशाख शुक्ल ,,
श्रावण शुक्ल ,,	,, कृष्ण ,,
,, कृष्ण ,,	ज्येष्ठ शुक्ल ,,
भाद्रपद शुक्ल ,,	,, कृष्ण ,,
,, कृष्ण ,,	आषाढ़ शुक्ल ,,
आश्विन शुक्ल ,,	,, कृष्ण ,,
,, कृष्ण ,,	श्रावण शुक्ल ,,
कार्तिक शुक्ल ,,	,, कृष्ण ,,
,, कृष्ण ,,	भाद्रपद शुक्ल ,,
मार्गशीर्ष शुक्ल ,,	,, कृष्ण ,,
,, कृष्ण ,,	आश्विन शुक्ल ,,
पौष शुक्ल ,,	,, कृष्ण ,,
,, कृष्ण ,,	कार्तिक शुक्ल ,,
माघ शुक्ल ,,	,, कृष्ण ,,
,, कृष्ण ,,	मार्गशीर्ष शुक्ल ,,
फाल्गुन शुक्ल ,,	,, कृष्ण ,,
,, कृष्ण ,,	पौष शुक्ल ,,

(४) गर्भपाति या आविजनन—ये द्रव्य गर्भस्थ पदार्थ को बाहर निकाल देते हैं। स्वल्प मात्रा में रजः स्रावक है। इनका प्रभाव दो प्रकार से होता है (१) साक्षात् गर्भाशय की मांस-पेशियों को उत्तेजित करके उनके संकोच शक्ति को बढ़ा देती हैं तथा संकोच की गति को भी तीव्र करती हैं। वातनाड़ियों तथा मस्तिष्क में केन्द्र को उत्तेजित करके भी गर्भ-स्राव या पात कराते हैं। विषपुष्टि टंकण, सिन्कोना आदि पदार्थों का प्रभाव उक्त प्रकार से होता है।

(२) तीव्र रेचक इन्द्रायण-रसौंत, आदि गर्भाशय प्रदेश, अन्त्रों आदि में शोथ या रक्ताधिक्य (Blood Congestion) उत्पन्न करके गर्भ-स्राव कराते हैं। चार मास के गर्भ का पतन होना 'गर्भस्राव' और उसके बाद गर्भपात कहा जाता है।

(५) प्रजास्थापन या गर्भस्थापन—प्रजोपघातकं दोषंहित्वा प्रजां स्थापयतीति प्रजास्थापनम् चक्र०। ये औषध सन्तान उत्पत्ति में बाधाभूतदोषों को नष्टकर स्त्री और पुरुष को सन्तान उत्पत्ति के योग्य बनाते हैं। यथा, अश्वगन्धा, शतावरी, ब्राह्मी, दुर्वा, शिवा आदि।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गर्भ-स्राव को रोकनेवाले पदार्थ भी प्रजास्थापन कहलाते हैं। यथा, कमल, वटशुंगा, नागकेशर, पद्मकाष्ठादि। पूर्वोक्त तालिका गर्भस्थिति तथा संभावित प्रसव का समय बताती है।

(६) **स्तन्यजनन (स्तन्यवृद्धिकरम्)**—माता के दूध को बढ़ाने वाले द्रव्य दुग्धवर्धक या स्तन्यजनन कहलाते हैं। यथा, शंख, चावल, कुश, काश, दूधादि पीयूषग्रन्थि के अग्रभाग का स्राव दुग्धस्राव ग्रन्थियों पर पर्याप्त प्रभाव डालता है।

(७) **स्तन्यनाशन**—ये पदार्थ दुग्ध की उत्पत्ति को कम करते हैं। यथा, धतूरा, पान का पत्ता, मोतिया पुष्पादि।

(८) **स्तन्यशोधन**—अशुद्ध दूध के दोषों को दूर कर उसे शुद्ध करनेवाले द्रव्य यथा—पाठा, नागरमोथा, गिलोय, अनन्तमूलादि।

वक्तव्य—अनेक औषधियाँ मातृ दुग्ध में भी आ जाती हैं तथा उसके संगठन को प्रभावित करती हैं। सनाय, उशारे रवन्द, एरण्डतैल एवं उक्तशोधक पदार्थों का प्रभाव दूध पर पड़ता है। अतः धात्री माता को इस प्रकार की औषधियाँ सावधानी से देनी चाहिए।

गर्भाशय संशमन—ये द्रव्य गर्भाशय के क्षोभ को शान्त करते हैं। रक्त प्रदर या गर्भ-स्राव को शान्त करते हैं। वेदनाशामक पदार्थ भी 'संशमन' कहलाते हैं। फल घृत तथा प्रजास्थापन पदार्थ भी गर्भाशय 'संशमन' होते हैं।

नर-जननेन्द्रिय प्रभावक

इन द्रव्यों का प्रभाव वीर्य की उत्पत्तिः, वीर्य-स्राव का समय; मैथुन-शक्ति तथा वीर्य की सन्तान उत्पादकक्षमता पर होता है।

शुक्रल (शुक्रवर्धक)—वीर्यधातु को बढ़ाने वाले द्रव्य जीवक, ऋषभक; अश्वगन्धा, मूसली; शतावर, आदि वीर्य को बढ़ाते हैं।

शुक्रनाशन—उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष गुण वाले पदार्थ, अधिक लवण, मसाले, शिग्रु, धतूरा आदि पदार्थ वीर्यनाश करते हैं। मैथुन शक्ति और इच्छा को कम करने वाले पदार्थ भी शुक्रनाशक या षाण्ढ्यकर (पुरुषत्वनाशक) कहलाते हैं।

वाजीकरम्-वृष्य—वाजीवातिबलो येन यात्यप्रतिहतःस्त्रियः।
भवतिप्रियः स्त्रीणां येन येनो पचीयते॥
तद्वाजीकरणं, तद्धि देहस्यौजस्करं परम्॥ (अ० सं० उ० अ० ५०)

जो पदार्थ मैथुन-शक्ति को बढ़ाते हैं। घोड़े के समान बलवान् (वाजीवातिबलो) बनाते हैं। तथा बिना क्षीणता उत्पन्न किए पुरुष को मैथुन समर्थ रखते हैं वे 'वाजीकरण' कहलाते हैं। ये पदार्थ तीन प्रकार से प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

(अ) शुक्रवर्धक या शुक्रजनक— यथा, मांस, दूध, घृत, शतावरी, माष, अश्वगन्धादि।

(आ) शुक्रस्रावक-शुक्रप्रवर्तक—ये पदार्थ मैथुन के समय वीर्य का स्राव कराते हैं। हर्ष, संकल्पादि मानसिक भाव तथा गुंजा, कस्तूरी, मकरध्वजादि उत्तेजक पदार्थ वीर्यप्रवर्तक हैं।

(इ) उभयविध—वीर्य उत्पादन तथा शुक्र का स्रावण भी कराते हैं। यथा, घृत, दूध, अण्डा, केशरादि तथा संकल्पादिभाव। ये त्रिविध पदार्थ मैथुन शक्ति बढ़ाते हैं। जैसा कहा भी है—

शुक्रस्रुतिकरंकिंचित् किंचित् शुक्रविवर्धनम्।
स्रुतिवृद्धिकरं किंचित्, त्रिविधं वृष्यमुच्यते॥

शुक्रस्तम्भन—स्तम्भन का अर्थ होता है स्राव को रोक रखना। यथा, रक्तस्तम्भन रक्तस्राव को रोकने वाले द्रव्य। इसी प्रकार शुक्र या वीर्य के स्राव को अधिक देर तक रोक रखने वाले द्रव्य 'वीर्यस्तम्भन' कहलाते हैं। यथा जायफल, अकरकरा, अफीम, जावित्री आदि। ये द्रव्य शीघ्रपात में प्रयुक्त होते हैं।

शुक्रशोधक—दूषितवीर्य को शुद्ध करने वाले द्रव्य कुष्ठ, कट्फल, समुद्रफेन, पुनर्नवा, खसादि वीर्य दोष नाशक हैं। वीर्य दोषों को दूर करके ये उसे सन्तान समर्थ बनाते हैं। अतः प्रजास्थापन में भी ये पदार्थ सहायक हैं।

त्वचा प्रभावक

ज्ञानेन्द्रियों में त्वचा सबसे महत्त्वपूर्ण है। अतएव चरकाचार्य ने एक स्थान पर स्पर्शनेन्द्रिय (त्वचा) में अन्य

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चारों इन्द्रियों को अन्तर्भूत किया है। देहरक्षा, तापहरण, वर्ण आदि कार्य त्वचा के हैं। अतः इस पर औषधियों के प्रभाव भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं।

वर्ण्य—वर्णप्रसादनं. वर्चस्यम् (वर्चसेप्रभायै-वर्णाय हितं वर्चस्यम्—र० वैं०) वर्ण या कान्ति को उत्तम बनाने वाले द्रव्य—यथा, चन्दन, पद्मकाष्ठ, मंजोठ, अनन्तमूलादि।

स्नेहन—स्नेहनं स्नेहविष्यन्दमार्दवक्लेदकारकम्।
द्रवंसूक्ष्मं सरं स्निग्धं पिच्छिलं गुरु शीतलम्।
प्रायोमन्दं मृदु च यद् द्रव्यं तत् स्नेहनं मतम्॥—(च० सू०, अ० २२)

जो द्रव्य शरीर को स्निग्ध, मृदु, तथा तर रखें वे 'स्नेहन' कहलाते हैं। इन द्रव्यों में द्रवता (पतलापन, सूक्ष्म, सर, स्निग्ध, पिच्छिल, गुरु, शीतल, मन्द और मृदु गुण होते हैं—यथा, तैल, घृतादि। अपनी स्निग्धता से ये द्रव्य त्वचा पर एक तह बनाते हैं। जिससे जल का वाष्पीभवन कम होता है और वह स्निग्ध तथा मृदु रहती है।

स्वेदल—स्वेदजनकम्—स्तम्भगौरव शीतघ्नं स्वेदनं स्वेदकारकम्।
उष्णं तीक्ष्णं सरं स्निग्धं रूक्षं सूक्ष्मं द्रवंस्थिरम्।
द्रव्य गुरुंच यत् प्रायस्तद्धि स्वेदनमुच्यते॥—(च० सू० अ० २२)

जो द्रव्य अंगों की जड़ता (स्तम्भन-जकड़ाहट) गुरुता (भारीपन या आलस्य) और शीतता को दूर करके पसीना लाते हैं, वे **'स्वेदल'** कहलाते हैं। ये पदार्थ अपनी उष्णता, तीक्ष्णता, सरता (चलता), स्निग्धता, रूक्षता, द्रवता, स्थिरता के कारण स्वेद लाते हैं। २४ घण्टों में लगभग ४० तोला से ५६ तोला तक (५००-७०० मि० ली०) जल पसीने द्वारा उड़ जाता है। स्वेद शरीर का मल है जो मेद से विशेषतः सम्बन्धित है। स्नेहिक ग्रन्थियों से उत्पन्न व अम्लों की उपस्थिति के कारण स्वेद अम्ल प्रतिक्रिया वाला होता है। जल तथा लवणों के निर्हरण में स्वेद तथा मूत्र दोनों समान रूप से भाग लेते हैं। किन्तु, स्वेद की विशेषता यह है कि वह रक्त-भार पर आश्रित नहीं है-यद्यपि रक्तचाप इसमें सहायक होता है, अपितु यह वातनाड़ियों से प्रभावित होता है। स्वेद ग्रन्थियाँ सांवेदनिक (Sympathetic Nerves) और परसांवेदनिक (Para Sympathetics) वातनाड़ियों की शाखाओं से सम्बन्धित हैं, किन्तु औषध द्रव्यों का कर्म परसांवेदनिक वातनाड़ियों पर ही अधिक होता है।

पंचभौतिक दृष्टि से स्वेद जलीय और आग्नेय होता है। अतः, सामान्य-विशेष-सिद्धान्त की दृष्टि से आग्नेय और जलीय द्रव्य 'स्वेदजनक' होते हैं। जलीय द्रव्य तो स्वेद की तरल मात्रा को बढ़ाकर स्वेद के निष्क्रमण में सहायता करते हैं और आग्नेय द्रव्य अपनो उष्णता, तीक्ष्णता के कारण त्वचा में अवस्थित रक्तवाहिनियों और स्वेदग्रन्थियों को उत्तेजित करते हैं। जिससे स्वेद अधिक मात्रा में बाहर आता है। अतः स्वेदन द्रव्य उष्ण, तीक्ष्ण और सूक्ष्म तो होता ही है, साथ-ही-साथ स्वरूप भेद से स्निग्ध और रूक्ष, स्थिर वा सर, सान्द्र और द्रव भी होता है।

वक्तव्य—आयुर्वेद में 'स्वेदन' शब्द सेंक (Fomentation) तथा स्वेदजनन (Diaphoretics) दोनों में (स्तम्भ गौरव शीतघ्न स्वेदनं स्वेदकारकम्—च० सू० २२) प्रयुक्त होता है। 'सेंक' में बाहर से शरीर में उष्णता पहुँचाई जाती है और 'स्वेदन' में बाह्य और आभ्यन्तर प्रयोग द्वारा स्वेद उत्पन्न किया जाता है। स्वेद से स्तम्भ, गौरव और शैत्य नष्ट होते हैं। स्वेदकारक द्रव्य अनेक प्रकार से कार्य करते हैं—

(१) त्वचा की रक्तवाहिनियों को प्रसारित करके—यथा, सेक, मद्य, अहिफेन।

(२) स्वेद-केन्द्र को साक्षात् प्रभावित करके—यथा, कर्पूर। ये स्वेद केन्द्र सुषुम्ना में अवस्थित हैं।

(३) चेतान्तों (Nerve endings) को उत्तेजित करके—यथा, तम्बाकू आदि।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(४) स्वेद-केन्द्र को प्रत्यावर्तित क्रिया द्वारा उत्तेजित करके यथा, वमन द्रव्य और भय-शोक आदि मानस विकार।

स्वेदन का अधिकार क्षेत्र और प्रयोजन—वातकफ विकारों यथा—ज्वर, प्रतिश्याय, कास, श्वास, हिक्का, कर्णशूल, मन्याशूल, शिरःशूल, पक्षाघात, विबन्ध गृध्रसी, मूत्रकृच्छ्, अण्डवृद्धि, शोथ, स्तम्भ, गौरव-सुप्तियुक्त सर्वांग विकारादि। मुख्यतया निम्नलिखित प्रयोजनों के लिए स्वेदन दिया जाता है।

१. ज्वर में ताप को कम करने के लिए।

२. वृक्कों का कार्य बन्द या मन्द होने पर जलनिर्हरण के लिए।

३. प्रतिश्याय या व्रण शोथ को दूर करने के लिए।

४. शोथादि में जलसंचय को कम करने के लिए।

५. त्वचा के अनेक जीर्ण रोगों में त्वचागत रक्त संवहन को बढ़ाने के लिए।

स्वेद के भेद

(क)

स्वेदन (स्वरूप भेद से)

साग्नि स्वेद (१३ प्रकार) — अनग्नि स्वेद (१० प्रकार)

तापस्वेद उष्मस्वेद उपनाह द्रवस्वेद

इन चारों भेदों के पुन: १३ भेद होते है। यथा—

१. संकर स्वेद	८. कर्षू स्वेद	१. व्यायाम
२. प्रस्तर स्वेद	९. कुटी स्वेद	२. उष्ण गृह
३. नाड़ी स्वेद	१०. भू स्वेद	३. गुरुप्रावरण
४. परिषेक स्वेद	११. कुम्भिका स्वेद	४. क्षुधा
५. अवगाह स्वेद	१२. कूप स्वेद	५. बहुपान
६. जेन्ताक स्वेद	१३. होलाक स्वेद	६. भय
७. अश्मघन स्वेद		७. क्रोध
		८. उपनाह
		९. युद्ध
		१०. आतप

—(च० सू० १४)

(ख) गुणभेद से

स्वेदन

स्निग्ध — रूक्ष

(ग) स्थान भेद से

स्वेदन

एकांगता — सर्वांगता

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(घ) परिमाण भेद से

स्वेदन

- महान्
- मध्यम
- दुर्बल

स्वेदघ्न—स्वेद बन्द करने वाले द्रव्य 'स्वेदघ्न' कहलाते हैं। शीतगुण प्रधान तथा स्तम्भक पदार्थ स्वेदघ्न होते हैं। "स्तम्भनं स्तम्भयति यद् गतिमन्तं चलं ध्रुवम्" (च० सू० अ० २२)। ये द्रव्य रूक्षता, कषायता, शीतगुणादि के कारण स्वेद को रोकते हैं यथा, खस।

स्वेदोपगम्—जो पदार्थ उष्णतादि के सहायक होकर स्वेद को लाने में सहायता करते हैं वे 'स्वेदोपगं' कहे जाते हैं। यथा, शोभांजन, पुनर्नवा, एरण्ड, विल, यवादि। (स्वेदनद्रव्यस्याग्न्यादेः स्वेदनक्रिया यां सहायत्वेनोपगच्छतीति स्वेदोपगम् (च० सू० अ० ४)।

केश्यःरोमसंजननं—केशों की उत्पत्ति तथा वर्धन में वातनाड़ियों का इतना प्रभाव नहीं प्रतीत होता जितना कि पोषण धातुपाक (Metabolism) का। केशपात लम्बी बीमारियों तथा पोषण में विघ्न आने के कारण होता है। इस अवस्था में उत्तम पोषक-पदार्थ सेवन करने चाहिए। 'केशेभ्यो हितं केश्यम्' (सु० सू० अ० ४६) यथा, गम्भारीफल मुलैठी-भांगरा आदि। झड़ते हुए बालों (रोमों) को उगाने वाले पदार्थ भी केश्यों के ही अन्तर्गत हैं। यथा, रसांजन और हाथीदांत की राख।

रोमशातनं (केशहरम्)—बालों या रोमों को उड़ाने वाले पदार्थ यथा हरताल, शंखचूर्ण और चूना। (लेपाद् रोमाणि शातयति नाशयतीति रोमशातनम्—यथा हरितालमिश्रं शंखचूर्णादि (सु० चि० अ० १)।

कण्डूघ्न—कण्डुं हन्तीति कण्डूघ्नम्—खाज का नाश करने वाले चन्दन, खसखस, आरग्वध निम्बादि पदार्थ 'कण्डूघ्न या कण्डूनाशक' कहलाते हैं। इसी प्रकार त्वच्यविकारों दाद आदि के नाशक पदार्थ 'कुष्ठघ्न' कहलाते हैं। यथा खदिर, गन्धक, हरिद्रा, विडंग आदि। यहाँ 'कुष्ठ' शब्द से त्वचा रोग तथा कुष्ठ रोग दोनों का ग्रहण करना चाहिए।

शोथशामक सूजन (शोथ) को शान्त करने वाले द्रव्य अनेक प्रकार से कार्य करते हैं। प्रधानतः वे निम्न प्रकार से कार्य करते हैं तथा निम्न वर्गों में विभक्त किए गए हैं।

श्वयथुविलयनम्—शोथहरम्—शोथंहरतीति शोथहरं, अग्निवायुजनितवायुवीर्यनिर्वर्तित्वाच्छोथस्य तस्य विलायनं तत्प्रतिपक्षभूतनिर्वतितं भवति विलायनं शोथानामुत्सेधप्रशमनम्, (र० वै० ४। १६)। की उत्पत्ति वायु तथा अग्निमहाभूताधिक गुण वाले द्रव्यों से होती है। इनके विपरीत गुणों से उसकी शान्ति होती है। पाटला-अग्निमान्थ, बेल, गम्भारी आदि दशमूल के द्रव्य शोथ-शामक हैं।

शोथप्रजननं (श्वयथुकरं)—'मधुर कषायवर्जितान् रसान् तीक्ष्णोष्णरूक्षांश्च गुणान् श्वयथुजननम्। तदाग्नेयं, वायव्यं च, (र० वै० ४। १७)। अम्लथुलवण, कटुतिक्त रस वाले तथा उष्ण-तीक्ष्ण गुण वाले शोथोत्पादक हैं, यथा, भल्लातक। बहुधा अन्दर की शोथ को शान्त करने के लिए बाहर त्वचा पर तीक्ष्ण द्रव्यों का लेपादि लगाकर या उष्ण अभ्यंग या स्नानादि द्वारा शोथ को उत्पन्न किया जाता है। जिससे शोथ तथा वेदना शान्त हो जाती है। इससे रक्त-भ्रमण अधिक मात्रा में होता है। स्थान लाल हो जाता है। उस स्थान का ताप बढ़ जाता है। कुछ दाह तथा वेदना-सी होती है किन्तु, बाद में वह स्थान संज्ञाशून्य हो जाता है। इस प्रकार वेदना शान्त होती है। यह तो स्थानीय प्रभाव हुआ। इनका सांस्थानिक प्रभाव प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा होता है। ये पदार्थ सुषुम्ना शीर्षक में अवस्थित हृदय, रक्तवाहिनियों तथा श्वास केन्द्र को उत्तेजित करते हैं। साधारण क्षोभक पदार्थों से उत्पन्न मृदु शोथ में तो हृदय की गति बढ़ जाती है, किन्तु तीव्र क्षोभ में वह घट जाती है। बाह्य शोथ के अतिरिक्त ये आन्तरिक अंगों की शोथ को भी रक्त-भ्रमण को उत्तम बनाकर तथा जिस अंग पर लेप लगाया जाए उसमें रक्त की मात्रा बढ़ाकर शोथ शान्त करते हैं। अतएव श्वसन (न्यूमोनिया) आदि में राई आदि का लेप छाती पर लगाते हैं। दाह की मात्रा के अनुसार इनके निम्न वर्ग हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शोणितोत्क्लेदक-क्षोभकं—इसमें स्थान रक्त हो जाता है, ताप तथा उष्णता बढ़ जाती है, पुनः उस स्थान पर जड़ता उत्पन्न हो जाती है। राई, वरुण आदि यही प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

स्फोटकारक—यदि क्षोभक पदार्थ तीव्र हो या उसे अधिक समय तक लगा रहने दिया जाए, तो छाला उत्पन्न हो जाता है। इस छाले में जो तरल उत्पन्न होता है वह लसीकावाहिनियों द्वारा चूस लिया जाता है। अतः, छाले में जमा नहीं हो पाता।

विस्फोटकारक—यदि छाले में तरल इतना अधिक उत्पन्न और उसमें जमा हो जाए तो वह 'विस्फोट' कहलाताएक या अनेक फफोले (छाले) मिल भी सकते हैं।

दाहक—ये बहुत तीव्र पदार्थ होते हैं जो स्थान को जला देते हैं तथा वहाँ शोथ और कोथ उत्पन्न कर देते हैं। क्षोभक पदार्थों का प्रयोग निम्न प्रयोजनों के लिए किया जाता है।

(१) जो अंग सीधा त्वचा के साथ लगा हो उसमें रक्त-भ्रमण को उत्तम बनाने के लिए, शोथ को शान्त करने के लिए। यथा यकृत् शोथ या फुप्फुसावरण शोथ (प्लुरिसी) में स्फोट उत्पन्न करने के लिए।

(२) शोथ में दूषित पदार्थ को रक्त द्वारा विलीन कर शोथस्थान से अन्यत्र भेजना। यथा, आमवात, सन्धि-शोथादि में।

(३) आमवात तथा वातिक वेदनाओं में वेदना शान्त करना।

(४) योषापस्मार या अपतन्त्रक में केन्द्रीय वात नाड़ीमण्डल के क्षोभ को शान्त करना, मूर्च्छा, निद्राजनक विषों में प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा केन्द्रीय वातमण्डल को उत्तेजित करना।

(५) कटिशूल तथा विषूचिका आदि में मांसपेशियों के उद्वेष्टन और आक्षेप का नाश करना।

उदर्दप्रशमन—शीतपित्तादि के ददोड़ों (धप्पे) को शान्त करने वाले पदार्थ। यथा, अर्जुन, विजयसार, ह्रीबेरादि। इन्हीं को 'कोठप्रशमन' भी कहते हैं।

वातसंस्थान प्रभावक

आयुर्वेद में वायु को ही 'तन्त्रयन्त्रधरः' कहा है। वस्तुतः वात ही समस्त शारीरिक क्रियाओं का स्रोत है। इसका मुख्य स्थान—जहाँ तक ज्ञान और कर्मेन्द्रियों का सम्बन्ध है—शिर ही है। देखिए निम्न वचन भी इसकी पुष्टि करते हैं।

"शिरस्तालवन्तरगतं सर्वेन्द्रियपरंमनः।
तत्रस्थं तद्धिविषयानिन्द्रियाणां रसादिकान्।
......................समस्तान् हि विजानाति। (भेड० वि० अ० ८)
प्राणाः प्राणभृतां यत्र स्थिताः सर्वेन्द्रियाणि च।
तदुत्तमांगमंगानां शिरस्तदभिधीयते। (च० सू० १७। १२)
प्राणा इति वायवः (चक्र०)

यह वायु या प्राणों का अधिष्ठान वातसंस्थान दो प्रकार के वातनाड़ी संस्थानों से निर्मित है।

(१) मस्तिष्क—सौषुम्णीय नाड़ी संस्थान या केन्द्रीय नाड़ी संस्थान[1]

(२) स्वतन्त्र या जीवन योनि नाड़ी संस्थान[2]

प्रथम संस्थान में मस्तिष्क तथा सुषुम्ना और उनके अंग प्रत्यंग, द्वितीय नाड़ी संस्थान में मध्यस्वतन्त्र,[3] परिस्वतन्त्र[4] दो संस्थान हैं। इड़ा तथा पिंगला नाड़ियाँ मध्यस्वतन्त्र नाड़ीमण्डल के भाग हैं।

---

1. Cerebrospinal system.
2. Autonomic Nervous system.
3. Sympathetic Nervous system.
4. Para-Sympathetic Nervous system.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इनसे दो प्रकार की नाड़ियां निकलती हैं—(i) संज्ञावह-ज्ञानेन्द्रियां[1] (ii) मनोवह-कर्मेन्द्रियां[2] । प्रत्येक भाग के कार्य पृथक्-पृथक् हैं। एक विशेष प्रकार की क्रियाएँ 'प्रतिसंक्रमित क्रियाएँ'[3] निघण्टु शास्त्र में विशेष महत्व की हैं। क्योंकि, उन्हीं के द्वारा अधिकांश औषधियों का प्रभाव होता है।

प्रतिसंक्रमित क्रियाएँ—पैर में अनजाने में सुई चुभ जाने पर तथा काँटा लगने पर सहसा पैर स्वयमेव ऊपर उठ जाता है। आँखों के सामने कोई वस्तु सहसा आ जाए तो पलक झपक जाती हैं। स्वादु वस्तु सामने आने पर मुख में पानी आ जाता है। ये क्रियाएँ हमारी इच्छाधीन होते हुए भी बिना ही प्रयत्न के ये हो जाती हैं। अधिकांश क्रियाएँ इसी प्रकार की होती हैं। रक्तसंवहन, श्वास क्रिया, पाचन क्रिया भी प्रतिसंक्रमित क्रियाएँ हैं। कुछ औषधियाँ मस्तिष्क पर, दूसरी नाड़ियों अन्त्र, सुषुम्नादि पर कार्य करती हैं। अत्र इन कर्मों का परिचय दिया जाता है।

मेध्य या वातरसायन—'मेधयै: हितं मेध्यम्, मेध्याविशेषेण च शंखपुष्पी' (च० चि० अ० १), जो द्रव्य मेधा या स्मरण शक्ति को बढ़ाने वाले होते हैं वे मेध्य कहलाते हैं यथा, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, सुवर्ण, मधुयष्टी। ये पदार्थ मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों को जहाँ बुद्धि-मन, निश्चय-इच्छा आदि का अवस्थान है, प्रभावित करते हैं। उन्हें उत्तेजित करने की अपेक्षा उनके विकास, वर्धन तथा बल को बढ़ाते हैं। पौष्टिक हैं।

उत्तेजक—इनके सेवन से प्रभावित अंगों की क्रियाएँ बढ़ जाती हैं। इनके निम्न भेद हैं :—

(i) **संज्ञावह स्रोत[4] उत्तेजक**—ये त्वचा में सबसे अधिक संख्या में पाए जाते हैं। किसी प्रकार की भी उष्णता यथा स्वेद, गरम पानी अथवा तीक्ष्ण पदार्थों राई, कपूर देवदारु तैल आदि का लेप—अभ्यंग इनको उत्तेजित कर देता है। वेदना-ताप या क्षोभ, शीतादि का ज्ञान मस्तिष्क द्वारा होता है। त्वचास्थ ज्ञान या संज्ञावह नाड़ियों से शीतादि की सूचना मस्तिष्क तक पहुँचती है जहाँ प्रतिक्रिया स्वरूप उत्तेजना उत्पन्न होती है। फलतः लेपादि के स्थान पर रक्तसंचार आदि अधिक होता है। यह स्थानीय प्रभाव का फल है।

(ii) धतूरा, कॉफी, कपूर, आदि मस्तिष्क केन्द्र को प्रभावित करते हैं। इन्हें 'मस्तिष्क उत्तेजक'[5] कहते हैं।

(iii) मनोवह या चालक नाड़ी उत्तेजक[6]—ये पदार्थ मस्तिष्क से लेकर मांसपेशियों तक व्याप्त नाड़ियों का उत्तेजन कर सकते हैं। मद्य, भाँग आदि पदार्थ इसी प्रकार के उत्तेजक हैं। कॉफी, धतूरा कुछ सीमा तक। विषमुष्टी (कुचला) भी मस्तिष्कस्थ मनोवह केन्द्र या चालक केन्द्र को उत्तेजित करता है। सुषुम्ना शीर्षक में अवस्थित चालक केन्द्र—विशेषकर श्वास केन्द्र—विषमुष्टि, धतूरा आदि द्वारा प्रभावित होता है। सुषुम्ना में प्रतिसंक्रमित क्रिया केन्द्र का उत्तेजन विषमुष्टी बड़ी प्रबलता से करती है। इसी प्रकार त्वचास्थ चालक नाड़ियों के चेतान्तों का उत्तेजन भी विविध औषधियाँ करती हैं।

प्रलापक—जब मनोवह नाड़ियाँ या केन्द्र अत्यधिक उत्तेजित हो जाएँ और क्रियाओं का सन्तुलन नष्ट हो जाता है विशेष कर मस्तिष्क में सन्तुलन केन्द्र अत्याधिक उत्तेजित हो जाए तो प्रलापावस्था उत्पन्न हो जाती है। यथा, धतूरे के सेवन से।

हर्ष प्रजनन—जब मस्तिष्कस्थ चालक केन्द्र अपना संतुलन खो बैठे, परन्तु सुख और प्रसन्नता की प्रतीति होती हो, तो उसे 'हर्षजनक' कहते हैं। भाँग के प्रयोग से यही प्रतीति होती है।

---

1. Afferent Nerves.
2. Efferent Nerves.
3. Reflex action.
4. Sensory Stimulants.
5. Cerebral Stimulants.
6. Motor Stimulants.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सामान्यतः उत्तेजक पदार्थ किसी अवयव में उत्तेजना उत्पन्न करने वाले को कहते हैं—यथा, नवसादर यकृतोत्तेजक है, कपूर, अर्जुन हृदयोत्तेजक हैं। किन्तु यहाँ पर वात नाड़ी-मंडल के उत्तेजक के लिए यह शब्द प्रयोग किया गया है।

वात नाड़ीमण्डल अवसादक या वात संशमन—उत्तेजकों के अनुसार इनकी भी तीन श्रेणियाँ हैं, संज्ञावह स्रोतावसादक—इन्हें संज्ञानाशक भी कहते हैं। संज्ञा या चेतना को शिथिल करके ये वेदना को भी शान्त करते हैं। प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा ये संज्ञा शैथिल्य उत्पन्न कर वेदना को शान्त करते हैं। देवदारु तैल, कपूर, अजवायन-सत्व, पिपरमेण्ट, वत्सनाभ आदि का त्वचा पर लेपादि करने से प्रथम चिपचिपायन उत्पन्न होकर वह स्थान संज्ञाशून्य हो जाता है। इन्हें 'स्थानीय वेदनाशामक या संज्ञाहर' कहा जाता है। मस्तिष्क को प्रभावित करने वाले संज्ञाहर पदार्थ विविध प्रकार से कार्य करते हैं। मस्तिष्कस्थ संकल्प-विकल्प केन्द्र को शिथिल करके, संज्ञा (चेतना) स्थान को शिथिल कर ये पदार्थ संज्ञाहरण करते हैं। इन्हें 'सामान्य संज्ञाहर' कहा जाता है।

स्वापजनन—स्वप्नजननं-स्वप्ननिद्राजनयतीति स्वप्नजननम् यथा पारसीकयवानी-सर्पगन्धा। माहिषक्षीरं स्वप्नजननानाम्—(च० सू० अ० २५), निद्रा को लाने वाले पदार्थ 'स्वप्नजनन' कहलाते हैं। ये द्रव्य चेतना को शिथिल करते हैं तथा संज्ञावह स्रोतों और मनोवह स्रोतों दोनों को ही शिथिल करके निद्रा लाते हैं। यथा, भाँग, अफीमादि। संज्ञावह स्रोतों की शिथिलता से शीतोष्णादि संज्ञाएँ मस्तिष्क तक नहीं पहुँच पातीं। इस प्रकार शब्द, रूप, उष्णता, शैत्यादि ज्ञानेन्द्रियों के विषय एवं कास, अजीर्णादि की प्रतीति के अभाव से मस्तिष्क को शान्ति मिलती है। फलतः मन की चैतन्यता शिथिल हो जाती है। चालक गतियाँ न्यून हो जाती हैं और नींद आ जाती है। पारसीक यवानी-सूची आदि औषधियाँ साक्षात् मनोवह स्रोत संचालक केन्द्र को ही शिथिल करती हैं। इन निद्राजनकों में से कुछ औषधियाँ यथा, अफीम मस्तिष्कस्थ वेदना केन्द्र को भी शिथिल करती है। जिससे वे वेदनाशामक भी कही जाती हैं।

मादक-मोहजनक—मद्य, भाँग, गाँजा तथा प्रारम्भ में अफीम भी प्रथम मस्तिष्क को प्रभावित कर चिन्ता, भय, शोक, शर्मीलापन को दूर करके विचार, संकल्प-विकल्प शक्ति को बढ़ाते हैं। पुनश्च बाह्य संज्ञाओं (विषयों) की प्रतीति को नष्ट कर निद्रा लाते हैं। ऐसे पदार्थ मादक कहे जाते हैं।

संज्ञास्थापनं—'संज्ञाज्ञानं स्थापयतीति संज्ञास्थापनम्' (चक्र० यो०)। संज्ञा को स्थित रखने वाले या संज्ञा स्थापना करने वाले, या संज्ञानाश (बेहोशी) का नाशकर संज्ञा को पुनः लाने वाले पदार्थ संज्ञास्थापन कहलाते है। यथा हिंगु, वच, जटामांसी, ब्राह्मी। क्षोभक पदार्थों का लेप, (राई आदि का) नवसादरादि की क्षोभकारक गन्धों का सूंघना, तीव्र शब्द तथा अत्यन्त शीत या उष्णस्नानादि पदार्थ और भी मस्तिष्कस्थ चेतना केन्द्र को उत्तेजित करके 'संज्ञास्थापन' कराते हैं।

नेत्र प्रभावक

चक्षुष्य—चक्षुषेहितं चक्षुष्य नेत्रों के लिए हितकर पदार्थ चक्षुष्य या नेत्र्य कहे जाते हैं। जैसे; त्रिफला, मुलैठी, घी आदि।

तारका-विकासी—धतूरा, पारसीक यवानी आदि द्रव्य नेत्र को जाने वाली वातनाड़ी (तीसरी नाड़ी) को शिथिल करके, मध्यम स्वतन्त्र नाड़ी के चेतान्तों को अवसन्न करके या मस्तिष्कस्थ दृष्टि केन्द्र को शिथिल करके नेत्रतारा को विकसित करते हैं।

तारका संकोची—जो नेत्रतारा को संकुचित करते हैं यथा, अहिफेन, तम्बाकू आदि। तारका-विकासियों से विपरीत इनका प्रभाव होता है।

अश्रुशोषक—धतूरा आदि पदार्थ नेत्र स्राव को कम करते हैं। यह कार्य अश्रुग्रन्थि के वातनाड़ी चेतान्तों को शिथिल करने से होता है। उनकी उत्तेजना से अश्रुस्राव अधिक मात्रा में होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नासा प्रभावक

शिरो विरेचन—नासामार्ग से प्रयुक्त औषधियों के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'नस्य' अथवा 'नस्तकर्म' यह इसका दूसरा नाम है, जैसा कि आचार्य सुश्रुत ने कहा है—

औषधमौषधसिद्धो वा स्नेहो नासिकाभ्यां दीयते इति नस्यम् (सु० चि० ४०)।

नासिका द्वारा औषध का प्रयोग शिर के रोगों में किया जाता है, क्योंकि शिर में औषध पहुँचाने का यही स्वाभाविक मार्ग है। अतएव कहा है—

नस्तःकर्म च कुर्वीत शिरोरोगेषु शास्त्रवित्।
द्वारं हि शिरसो नासा, तेन तद्व्याप्य हरति तान्॥ (च० सू० ६)

स्वरूप भेद से नस्य के निम्न भेद होते हैं—

(१) **नावन**—इसे 'मर्श' भी कहा जाता है। यह 'स्नेहन' और 'शोधन' भेद से दो प्रकार का हो जाता है। इसमें स्नेह का प्रयोग किया जाता है।

(२) **अवपीड**—यह भी 'शोधन और स्तम्भन' भेद से दो प्रकार का है। औषध को कल्क, चूर्णक्वाथ या स्वरस के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। कटु, उष्ण और तीक्ष्ण द्रव्य शोधन में तथा कषाय, शीत और मृदु द्रव्य स्तम्भन में काम में लाए जाते है।

(३) **धूम्र**—धूम्र (धुएँ) के रूप में भी नस्य का प्रयोग होता है। यह तीन प्रकार का है—'विज्ञेयस्त्रिविधो धूमः प्रागुक्तः शमनादिकः' (च० सि० ६), स्नेहन, शमन (प्रायोगिक) तथा शोधन (वैरेचनिक)।

(४) **ध्मापन**—'चूर्णस्याध्मापनं तद्धि देहस्रोतो विशोधनम्' (च० सि० ६)। चूर्ण को नलिका द्वारा नासा में फूँकने का नाम ध्मापन है। यह 'शोधन' नस्य है।

(५) **प्रतिमर्श**—अँगुलि में थोड़ा सा स्नेह लेकर नासामार्ग में लगाने को 'प्रतिमर्श' नस्य कहते हैं। यह स्निग्ध नस्य है। इससे नासा स्निग्ध रहता है और वातविकारों को नहीं होने देता।

कर्मानुसार नस्य तीन प्रकार के होते हैं—

एवं तद्रेचनं कर्म तर्पणं शमनं त्रिधा (च० सि० ६)।

(१) **शमन**—यह शीतगुण तथा कषाय रस प्रधान होता है यथा, दूर्वास्वरस और रक्तपित्तादि में प्रयुक्त होता है। रक्तपित्तादिरोगेषु शमनं नस्यमिष्यते (च० सि० ६)।

(२) **रेचन**—यह नस्य नासास्रोतों का शोधक है। इसके द्वारा श्लेष्मा का नासा द्वारा अतिस्राव होता है। इसमें उष्ण और तीक्ष्ण द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है और श्लैष्मिक रोगों के लिए प्रयुक्त होता है। यथा—

स्तम्भसुप्ति गुरुत्वाद्याः श्लेष्मिकाये शिरोगदाः।
शिरसोरेचनं तेषु नस्तःकर्म प्रशस्यते। (च० सि० ६)

(३) **तर्पण**—यह स्निग्ध मधुर होता है। घृत तैलादि विविध स्नेहों का प्रयोग किया जाता है। वाग्भट ने इसे 'बृंहण' नाम दिया है। यह शिरोगत तथा नासागत वात विकारों में प्रयुक्त होता है। यथा :—

ये च वातात्मकाः रोगाः शिरकम्पार्दितादयः।
शिरस्तर्पणं तेषु नस्तः कर्म प्रशस्यते॥ (च०सि० ६)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

- नस्य
  - कर्मानुसार
    - रेचन
    - तर्पण
    - शमन
  - स्वरूपभेदानुसार
    - द्रावण
      - स्नेहन
      - शोधन
    - अवपीड़
      - शोधन
      - स्तम्भन
    - ध्मापन
      - शोधन
    - धूम्र
      - स्नेहन
      - शोधन
      - शमन
    - प्रतिमर्श
      - स्नेहन
      - शोधन

सर्वदेह (सर्वधातु) प्रभावक

ये कर्म शरीर के समस्त अंगों तथा धातुओं को प्रभावित करते हैं। 'रसायन' आदि कर्म प्रायः शरीर के धातुपाक या सात्म्यीकरण (Metabolism or Assimilation) को प्रभावित करते हैं। ऐसे ही कर्मों को 'सर्वदेह प्रभावक' अथवा 'सर्वधातु प्रभावक' संज्ञा दी जाती है।

धातुपाक का अभिप्राय है, रस और रक्त धातुओं के माध्यम से देह के सब धातुओं में होने वाले रसायन या पैत्तिक परिवर्तन यथा, भोजन का पाचन, उसका आत्मीकरण, आहाररस से अनेक द्रव्यों का निर्माण, उनका संगठन-विघटन, मलों और सार भागों का पृथक् भाव, सारभाग से धातुओं की पुष्टि तथा मलों का निकालना, उष्णता की उत्पत्ति आदि सब क्रियाएँ 'धातुपाक' में सम्मिलित हैं।

इसके दो भाग हैं—(i) उपचयात्मक (Anabolic)—इससे सारभाग पदार्थों से शरीर की वृद्धि और उपचय होता है (ii) अपचयात्मक (Ketabolic)—इस प्रक्रिया से मलों की उत्पत्ति तथा संचित धातुओं का शक्ति तथा ताप उत्पन्न करने में व्यय होता है। साधारणतः ये दोनों क्रियाएँ प्रायः सन्तुलित रहती हैं। जितना व्यय देह में होता है, उसकी पूर्ति भोजन से होती रहती है। प्रायः आहारजन्य पदार्थों का विविधरूप में (वसा-मेद-शर्कराजन) कुछ-न-कुछ संचय हो शरीर में होता रहता है। जो उपवासादि के दिनों में शरीर में शक्ति उत्पादन में काम आता है। इसे दुर्दिनों के लिए सुरक्षित भंडार ही समझना चाहिए। आहार, प्रकाश, व्यायाम तथा वायु का धातुपाक की प्रक्रिया पर बहुत प्रभाव पड़ता है। जीवनीय पदार्थों (Vitamins) का धातुपाक पर पर्याप्त प्रभाव सिद्ध हो चुका है।

आहार पदार्थों के साथ-साथ जड़ या पार्थिव पदार्थों का भी भाग रहता है। यह पदार्थ का महत्वपूर्ण अंग हैं। इनके सम्यक्पाक पर तथा प्राप्ति पर देह का विकास और स्वास्थ्य निर्भर हैं। ये पदार्थ हैं खटिका या चूर्ण—लोह, ताम्र, यशद, गन्धकादि। आहार में इनकी न्यूनता होने से अनेकों रोग हो जाते हैं। यथा, चूर्ण की न्यूनता से अस्थिमार्दव या फक्क रोग, लोह या ताम्र की कमी से पाण्डु रोग, कामलादि। सूर्य की धूप में अभ्यंग 'डी' जीवनीय को उत्पादक है। इन सब बातों के समान औषधि द्रव्यों का यही भाव आचार्य चक्रपाणि दत्त (१०६० ई०) ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है।

शरीरेऽस्मिन् धात्वग्निपरिपाकक्रियया धातवः क्षयमापद्यन्ते। तत्क्षयपरिपूर्त्यर्थं प्राणधारणार्थं च जीवनीय द्रव्याणां क्षीर-शालि-गोधूमानां प्रत्यहमुपयोग आवश्यक एव। सत्यपि क्षीरादीनां जीवनीयत्वेऽस्मिन्नौषधद्रव्य संग्राहके गणेऽनुक्तिस्तेषामाहारप्रधानद्रव्यत्वात् (चक्र च० सू० अ० ४)। इस शरीर धातु–अग्नि परिपाक क्रिया से प्रतिक्षण धातुओं का (शरीर निर्माणक तत्वों) का क्षय होता रहता है। उसकी पूर्ति के लिए दूध-चावल, गेहूँ आदि जीवनीय द्रव्यों का प्रतिदिन प्रयोग करना आवश्यक है।

इन सब बातों के समान औषधि द्रव्यों का भी धातुपाक पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। यथा, मद्य (सुरा) धातुओं के पाक के स्थान पर स्वयं शक्ति का इंधन बन जाती है और धातुपाक की प्रक्रिया को मन्द करती है तथा धातुपाक की गति को कम करके मूत्र में शर्करा की मात्रा को कम करती है। अतः मधुमेह में दी जाती है। इसी प्रकार रक्त में मिलने

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

के पश्चात् धातुपाक को उत्तेजित करने वाले द्रव्य भी हैं, विशेषकर मकरध्वजादि। ये द्रव्य न केवल धातुपाक को ही उत्तम रीति से कराते हैं, संभवतः धातुपाक में उत्पन्न सारभाग को श्रेष्ठ बनाने में भी कारणभूत होते हैं। जिससे उत्तम धातुएँ उत्पन्न होकर शरीर की पुष्टि, कान्ति, बल और ओज को बढ़ाती हैं। शायद इसी दृष्टिकोण को दृष्टि में रखकर आचार्य चरक ने रसायन का लक्षण 'लाभोपायोहि शस्तानां रसादीनां रसायनम्' (चि० १)—प्रशस्त रस रक्तादि धातुओं की प्राप्ति का उपाय रसायन है। उत्तम धातुएँ तथा पुष्ट कोशाओं की उपस्थिति में प्राणी को व्याधियाँ नहीं घेरतीं तथा बुढ़ापा भी देर में आता है। अतः रसायन का फल 'यज्जराव्याधिविध्वंसिभेषजं तद्रसायनम्' भी प्राप्त हो सकता है।

रसायनम्—"रसायनं नाम वयःस्थापनायुर्मेधाबलकरं रोगापहरणसमर्थंच ॥" (सु० सू० अ० १।८)

रसायनंच तज्ज्ञेयं यज्जरा व्याधिनाशनम्।
यथाऽमृता रुदन्ती च गुग्गुलुश्चहरीतकी ॥

रसायन आहार-विहार (व्यायाम, धूप, तथा स्वच्छ वायु सेवनादि) उत्तमरस रक्त-मांसादि, स्मृति-मेधा, आरोग्य, तारुण्य, प्रभा, कान्ति, बल, उत्तम स्वर, शरीर इन्द्रियों को शक्ति प्रदान करते हैं। व्याधि तथा बुढ़ापे को दूर रखते हैं। यथा, आमला, हरीतकी, गुग्गुलु, गिलोय। वयः स्थापना तथा जीवनीय भी रसायन के ही दो भेद हैं।

वयःस्थापनम्—'वयसे हितं वयस्यम्-जरामभिहित्य यौवनं रक्षति' (र० वै०)। बुढ़ापे को दूर रखने वाले तथा मनुष्य को युवा रखने वाले द्रव्य वयः स्थापन कहलाते हैं। यथा, गिलोय, हरड़, आमला, मोती, जीवन्ती, मण्डूकपर्णी, पुनर्नवा, शालपर्णी, पृश्निपर्णी आदि (चरक)।

जीवनीयम्—'जीवनमायुः शरीरेन्द्रिय सत्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्' इत्युक्तं लक्षणं, तस्मैहितं 'जीवनीयम्' चक्र० (च० सू० अ० २६) 'पृथिव्यपांगुणैर्युक्तजीवनीयमितिस्थितिः'—(वै०) आयु का नाम ही जीवन है। इस जीवन को धारण करने वाले पदार्थ 'जीवनीय' कहलाते हैं। जीवक ऋषभक-मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, मुग्दपर्णी माषपर्णी, जीवन्ती, मुलैठी—ये दश जीवनीय द्रव्य हैं (चरक सू०)। ये पदार्थ आयुर्वर्धक होने के साथ-साथ देह के लिए आवश्यक बल आदि भी उत्पन्न करते हैं तथा धातुपाक के लिए आवश्यक ईंधन को भी जुटाते हैं, जैसा कि आचार्य चक्रपाणि के इसी प्रकरण में प्रथम उद्धृत वचन से स्पष्ट है।

बल्यं (बलवर्धनम्)—'बलाय हितं बल्यम्' (चक्र०), (च० सू०)। देह में बल (शक्ति) के लिए हितकर आहार-विहार बल्य है। ये शरीर में शक्ति को उत्पन्न करते हैं। जिससे सारे शरीर की धातुओं तथा अंगों की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। चरकानुसार केवांच, शतावरी, अश्वगन्धा, क्षीरविदारी, पृश्निपर्णी, बला, अतिबलादि-मुंजातक (सालमपंजा) आदि बल्य पदार्थ हैं। इनके अतिरिक्त बादाम, पिश्ता, अखरोट, न्योजा आदिफल भी बलवर्धक हैं।

बृंहण (बृंहणीयम्)—'बृंहत्वंयच्छरीरस्यजनयेत्तच्च बृंहणम्' (च०सू०अ० २२)। 'बृंहणं पृथिव्यम्वुगुणभूयिष्ठम्' (सु० सू० अ० ४१)। शरीर को पुष्ट करने वाले अर्थात् धातुओं मांस-मेदादि को बढ़ा कर शरीर को पुष्ट और मोटा बनाने वाले द्रव्य बृंहण कहलाते हैं। इन द्रव्यों में जल और पृथ्वी प्रधान होते हैं। अतः, केवल स्थूलता उत्पादक पदार्थ पूर्णरूपेण 'बृंहण' नहीं कहे जाते। यथा, मांस, सालममिश्री, बिदारीकन्द, मुनक्का, खजूर, अंजीर, नारियल, बादाम आदि द्रव्य। इनमें गुरु-शीत, मृदु-स्निग्ध, बहल (गाढा), स्थूल पिच्छिल, स्थिर और श्लक्ष्ण गुण पाये जाते हैं। कृश, दुर्बल, क्षीण, व्यक्तियों तथा ग्रीष्म ऋतु में सबको बृंहण द्रव्यों का सेवन करना चाहिए।

लेखनीयम्—'लेखनं ईषच्चर्म विदारणं·घर्षणेन' तस्मै हितं लेखनीयम् (गं) लेखनं पत्तलीकरणम्। (सु० सू० अ० ४०। ५ पर डल्हण) 'लेखनमनिलानलगुणभूयिष्ठम्' (र० वै०)।

धातून् मलान् वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्चयत्।
लेखनं तद्यथा नीरमुष्णं वचा यवाः ॥ (शा० प्र० ख० अ० ४)

लेखन संज्ञा के दो अर्थ हैं। जब यह बाह्य प्रयोग में 'शल्य शास्त्र' में प्रयुक्त होतो है तो घर्षण से त्वचा को छीलने वाली तथा व्रणों में उठे हुए मांसादि को घिसने वाले पदार्थ यथा, नीलाथोथा लेखन कहलाते हैं—समुद्रफेन, सैन्धयावशूकादि इसका उदाहरण है। किन्तु, जब इनका अन्तः परिमार्जनीय रूप अन्तः प्रयोग किया जाता है तो 'लेखन' का अर्थ

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

'कर्षण' 'कृश' या 'पतला' करने वाला होता है। मेद आदि धातुओं तथा स्थूलताजन्य दोषों को सुखाकर तथा उनके संचय को कम करके शरीर को पतला करते हैं। जैसे—मधु, गरम जल, वचा, जौ (यव), शणबीज। संभवतः ये पदार्थ संचित धातुओं का व्यय अपचयात्मक (क्षयात्मक) क्रियाओं में अधिक मात्रा में कराते हैं। इस प्रकार इन धातुओं का ज्वलन होकर ताप तथा शक्ति की उत्पत्ति बढ़ाते हैं। नागरमोथा, दारुहरिद्रा, हरिद्रा, कटुरोहिणी, चित्रक, शिलाजतु, ताम्र, गुग्गुलु आदि लेखन हैं। इनमें वायु तथा अग्निमहाभूत की अधिकता होती है। रूक्षण तथा छेदन भी इसी प्रकार कार्य करते हैं।

शीतप्रशमन—शीत (ठण्ड) या अंगों की शिथिलता, क्रियाहीनता को दूर करने वाले द्रव्यों को 'शीतप्रशमन' कहते हैं। तगर, अगुरु, आर्द्रक, सोंठ, अजवायन, कण्टकारी, अग्निमन्थ-श्योनाक-पिप्पली, केशर, कस्तूरी, कर्पूर, मद्यादि शीतप्रशमन है। ये शरीर में उष्णता उत्पन्न करते हैं एवं शिथिल अंगों को क्रियाशील कर देते हैं। हृदय को उत्तेजित करके, या प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा मांस-पेशियों को उत्तेजित करके या त्वचास्थ रक्त वाहिनियों को संकुचित करके, स्वेद की मात्रा को घटाकर ये शरीर में उष्णता उत्पन्न करते हैं।

दाहप्रशमनं (श्रमहरं)—'निर्वापणं दाहौष्ण्यशमनम्' ॥ (च० चि० २५।४० पर चक्र०)

ज्वरहरम्—उष्णता से जहां जलन, दाह और ताप बढ़ जाता है, वहाँ अंग भी शिथिल हो जाते हैं। थकावट (श्रम) आती है। अतः ये द्रव्य ताप, दाह और थकावट का नाश करते हैं। इन्हें 'निर्वापण' (बुझाने वाला) भी कहा जाता है। यथा, चन्दन, काश्मरीफल, शर्करा, नीलोफर, मधूक, खस, मद्य, सारिवा-गुडूची, सुगन्धवालादि। (च० सू० अ० ४)।

ताप-उत्पादक या नियामक केन्द्र—साधारण दशाओं में शरीर ताप को ९८·४° फा० के समीप रखता है। त्वचा से संज्ञावह स्रोतों द्वारा प्राप्त संवेदनाओं को यह ताप केन्द्र मस्तिष्क तत्वों, स्वेद ग्रन्थियों के सुषुम्ना स्थित केन्द्र को, धातुपाक या चयापचय क्रिया केन्द्रों को भेज देता है, जिससे अधिक ताप को ये अंग से निकाल देते हैं। वातावरण के ताप का शरीर के ताप पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है।

यदि वातावरण का या आस-पास का ताप बढ़ा हुआ हो तो—(१) त्वचा में अवस्थित रक्तवाहिनियों के विस्तृत हो जाने से, पसीने द्वारा, तथा श्वासों की संख्या बढ़ जाने से देह का ताप कम हो जाता है (२) मांस-पेशियों की शिथिलता के कारण ताप का उत्पादन भी कम होता है। व्यायाम के बाद श्वास संख्या बढ़ जाना—व्यायाम से उत्पन्न ताप को कम करने का एक साधन है। इसी प्रकार पसीना भी तापशामक है।

यदि वातावरण का ताप कम होने लगता है तो ताप नियामक केन्द्र ताप का व्यय निम्न प्रकार से कम कर देता है। (१) त्वचा में अवस्थित रक्तवाहिनियों का संकोच करके, स्वेद उत्पत्ति तथा श्वास संख्या न्यून करके। (२) मांस-पेशियों को सक्रिय करके अपचयात्मक धातुपाक प्रक्रिया को बढ़ाकर अधिक ताप उत्पन्न करके। ज्वरों में ताप उत्पत्ति को बढ़ाने के लिए प्रतिसंक्रमित क्रिया के कारण कंपकपी आती है। इस प्रकार बाह्य ताप का प्रभाव शरीर पर पड़ता है।

यदि शरीर के बाह्य ताप को शीघ्रता से कम करना हो तो शीतजल, बरफ की पट्टी, शीतजल में स्नान, शीतजल की बस्ति, चन्दन-खसादि का लेप व्यवहृत होता है। 'बाह्य तापहर' को ही श्रमहर, दाहहर भी कहा जाता है।

अन्तर्दाह या आन्तरिक ताप को स्वेद, मूत्र, श्वास, विरेचनों द्वारा कम किया जाता है। जल, शीतल पेय एवं फालसा, कमल आदि के क्वाथ-फांट, शर्बतादि दाहशामक हैं। इनके अतिरिक्त कुछ पदार्थ चयापचयात्मक धातुपाक क्रिया को मन्द करके तथा दूसरे पदार्थ तापनियामक केन्द्र को शिथिल करके ताप या दाह को कम करते हैं। प्रथम प्रकार के द्रव्यों में वत्सनाभ, मद्य, सिन्कोना आदि हैं। दूसरे प्रकार के द्रव्य साक्षात् ताप केन्द्र पर ही प्रभाव उत्पन्न करके ताप की उत्पत्ति को कम करते हैं। जिससे ताप कम हो जाता है। उक्त दोनों प्रकार के द्रव्य 'ज्वरघ्न' कहे जाते हैं। साक्षात् ज्वरघ्न न होते हुए भी स्वेदन, मूत्रल-विरेचक द्रव्य तथा शीत बस्ति आदि बाह्य उपचार भी ज्वर (संताप) नाश में सहायक होने के कारण 'ज्वरघ्न' कहे जा सकते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अभिष्यन्दि—पैच्छिल्याद् गौरवाद् वापि रुद्ध्वा रसवहाः सिराः ।
धत्ते यद् गौरवं तत्स्यादभिष्यन्दि यथा दधि ।। (शा०)

अभिष्यन्दि दोष धातु-मल स्रोतसां क्लेदप्रतिजननम् (सु० सू०)

अभिष्यन्दि पदार्थ अपनी पिच्छिलता तथा गुरुता के कारण सारे रसवह स्रोतों को रुद्ध करके शरीर में भारीपन तथा गुरुता-आलस्यादि कफज विकारों को उत्पन्न करते हैं—यथा, दही । ये पदार्थ सभी स्रोतों में रसते रहते हैं और पिच्छिल होने से स्रोतों से बाहर नहीं निकलते । फलतः स्रोत स्राव से भर जाते हैं तब शरीर में गुरुता और आलस्य उत्पन्न होते हैं ।

सूक्ष्म—देहस्य सूक्ष्मच्छिद्रेषु विशेद्यत् सूक्ष्ममुच्यते ।
तद्यथा-सैन्धवं क्षौद्रं निम्बतैलं रुबूद्भवम् ।। (शा० प्र० ख० अ० ४)

ये पदार्थ सूक्ष्म होने के कारण सूक्ष्म से सूक्ष्म तक स्रोतों में प्रवेश कर जाते हैं । अतएव इनका प्रभाव शीघ्र होता है । आशुकारित्व कर्म है और सूक्ष्म गुण उसका कारण । अतः 'आशुकारी' को पृथक् गिनना उचित नहीं है ।

व्यवायी—पूर्वं व्याप्याखिलं देहं ततः पाकं च गच्छति ।
व्यवायी तद्यथा भंगा फेनं चाहिसमुद्भवम् ।। (शा० प्र० ख० अ० ४)

जो द्रव्य पाक होने से पूर्व ही सारे शरीर में व्याप्त हो जाते हैं और तब पाक को प्राप्त होते हैं । समस्त विष द्रव्यों में यह गुण पाया जाता है । वस्तुतः यह कर्म न होकर गुण है, किन्तु विष के शीघ्र प्रसार की प्रक्रिया को समझाता है । अतः, व्यवायी, विकासी आदि गुणों का उल्लेख यहाँ किया गया है—भांग, अफीम, वत्सनाभ, मद्यादि ।

विकासि (शि)—सन्धिबन्धांस्तु शिथिलान् यत्करोति विकाशि तत् ।
विश्लिष्यौजश्च धातुभ्यो यथा क्रमुक कोद्रवाः ।। (शा०)

'विकाशी' इत्यपि गुणविशेषः (आढ़मल्ल) ।

ये द्रव्य शरीर में पाक के पूर्व ही (अर्थात् शरीर में अग्नियों द्वारा अप्रभावित अपरिवर्तित रूप में ही) फैलते हुए ओज का विश्लेषण कर धातुओं के बन्धन को शिथिल करते हैं—यथा, कच्ची सुपारी तथा कोदो धान्य । रसादि से शुक्र पर्यन्त सब धातुओं का सारभाग 'ओज' है । ये उसे नष्ट कर देते हैं । सभी विषों की यही प्रकृति है । विकाशी भी गुण विशेष है, कर्म नहीं ।

मादकम्—बुद्धिं लुम्पतियद्द्रव्यं मदकारी तदुच्यते ।
तमो गुण प्रधानं च यथा मद्यं सुरादिकम् ।। (शा०)

ये द्रव्य मस्तिष्क पर प्रभाव करते हैं । इनका वर्णन ऊपर हो चुका है ।

कुछ लेखकों ने 'विष' या 'प्राणहरं' का पृथक् वर्णन किया है । वस्तुतः प्राणघ्न चिकित्सोपयोगी कोई औषध-कर्म नहीं है । समस्त विषों में लघुरूक्षमाशु विशदं व्यवायी तीक्ष्णंविकासी सूक्ष्मंच । उष्णमनिर्देश्यमरसं दशगुणयुक्तं विषं तज्ज्ञैः ।। (च० चि०) ये दश गुण पाये जाते हैं । जिनके कारण विष प्राणघातक होता है ।

प्रमाथी—निजवीर्येण यद्द्रव्यं स्रोतोभ्यः दोषसंचयम् ।
निरस्यति प्रमाथीस्यात् तद्यथा मरिचं वचा ।। (शा० प्र० ख० अ० ४)

ये द्रव्य बलपूर्वक स्रोतों में संचित दोषों को मुख, नासा, कर्णादि मार्ग द्वारा बाहर निकाल देते हैं—यथा, कालो मिर्च, वचा आदि । अपने तीक्ष्णोष्ण सूक्ष्मादि गुणों के कारण ये दोषों का स्राव कराते हैं ।

स्नेहनं—स्नेहनं स्नेहविष्यन्दं मार्दवं क्लेदकारकम् ।
द्रवं सूक्ष्मं सरं स्निग्धं पिच्छिलं गुरु शीतलम् ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इनका वर्णन त्वचा प्रभावकों में हो चुका है। यहाँ इतना अधिक समझ लेना चाहिए कि अन्तर्प्रयोग द्वारा ये शरीर के अन्दर भी स्निग्धता उत्पन्न करते हैं तथा इनके अतियोग से मोटापा (स्थूलता) उत्पन्न हो जाती है।

स्नेहोपग—स्निग्ध-सर्पि-तैल आदि की क्रिया में उनके सहायक का कार्य करने वाले पदार्थ 'स्नेहोपग' कहलाते हैं—यथा, मुलैठी, द्राक्षा, विदारीकन्द, जीवक, जीवन्ती आदि।

दौर्बल्यशामक—ये पदार्थ रोगी की शिथिलता को दूरकर उसे शक्ति प्रदान करते हैं। विशेषतः इनका प्रभाव सुषुम्नासेतु पर होता है। जिसे उत्तेजित कर ये श्वास संस्थान तथा रक्तवाहिनियों को प्रभावित करते हैं और शैथिल्य को दूर करते हैं। विषमुष्टि ऐसी ही औषधि है।

तिक्त रसायन—यथा, अतीस-गडूची, चिरायता आदि कड़वे पदार्थ प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा पाचन को उत्तम बनाकर जीर्ण रोगों में उत्पन्न निर्बलता का नाश करते हैं। लोह, ताम्र, आसवारिष्टादि अन्य पदार्थ भी रसायन एवं पौष्टिक होने के कारण दौर्बल्यनाशक हैं।

बहिःपरिमार्जनीय द्रव्य

ये द्रव्य प्रायः बाह्य प्रयोग में शल्यशास्त्र में प्रयुक्त होते हैं। संक्षेप में इनका वर्णन किया जाता है।

शोधनम्—ये द्रव्य व्रण में से दुर्गन्धित सड़े-गले भाग को निकालकर उसे शुद्ध करते हैं, यथा त्रिफला क्वाथ।

रोपणम्—ये द्रव्य शुद्ध व्रण का रोपण करते हैं। उसे शीघ्र हो भर देते हैं। यह कषाय, वर्तिकल्क, घृत तैल, रस क्रिया चूर्ण—इन सात उपायों द्वारा होता है। अनेक द्रव्य 'शोधन और रोपण' दोनों कार्य करते हैं।

पाचन—जो पाकाभिमुख व्रण शोथ (फोड़े) को शीघ्र पचा देवे 'व्रणपाचक' कहे जाते हैं—यथा, शण, शिग्रु।

उपशोषण—जो द्रव्य शरीर में से विशेषकर व्रण के आर्द्रभाग (गीलापन) को सुखाते हैं, वे 'उपशोषण' कहलाती हैं—यथा, कुटज, स्फटिकादि।

व्रणभेदक या दारण—पके हुए व्रण शोथ को फाड़ने वाले द्रव्य-क्षार—कबूतर विष्ठा, चित्रकादि 'दारण' कहलाते हैं।

इनमें पृथ्वी के अग्निमहाभूतों की अधिकता तथा कटु-अम्ल, लवणरस, तीक्ष्णोष्ण रहते हैं।

विम्लापनम् (शोथविलयनम्)—ये द्रव्य शोथ को शान्त कर देते हैं—यथा, उदुम्बरसत्व, शिलाजतु आदि।

पूयनाशक, रक्षोघ्न-कृमिघ्न-कोथप्रशमनं—रक्षांसि अन्तरिक्षचरान् हिंसकान् जन्तून् धूपनादिभिर्हन्तीति रक्षोघ्नम्, यथा गुग्गुलु-अगुरु-वचा, सर्षप, निम्बादिः (सु० सू० अ० ५)। अन्तरिक्ष तथा वायु में रहने वाले हिंसक जन्तुओं को धूपनादि से मारने वाले द्रव्य 'रक्षोघ्न' कहलाते हैं। यथा, वचा, गुग्गुल, सरसों, निम्बपत्रादि। रोगाणु या कोथ-सडांध-पूय को उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं को नष्टकर के ये द्रव्य उनकी उत्पत्ति को भी रोकते हैं। अतः पूयनाशक एवं कोथ-प्रशमन भी कहे जाते हैं। इनके निम्न भेद होते हैं:—

(i) संक्रमणनाशक—ये पदार्थ रोगाणुजन्य छूत का नाश करते हैं। जन्तुओं तथा उनके विषों को नष्ट करते हैं, यथा गरम हवा, कर्पूरपारद आदि।

(ii) पराश्रयीनाशक—जूँ (यूकालिक्षा) आदि देह पर पलने वाले जन्तुओं को नाश करनेवाले पदार्थ यथा, धतूरा, पारा, देवदारुतैलादि।

(iii) कीटाणु या शाकाणु—ये सूक्ष्म जन्तु वनस्पति वर्ग के हैं, जो रोग फैलाते हैं। इनके नाश करने वाले द्रव्य कीटाणुनाशक कहे जाते हैं, यथा रसकर्पूर।

(iv) जीवाणुनाशक—ये जन्तु प्राणिवर्ग से सम्बन्धित हैं। अजवायन का सत, लवंग का तैलादि पदार्थ इनका नाश करते हैं। ये पदार्थ दुर्गन्धनाशक भी होते हैं।

अन्तर्प्रयोग द्वारा कृमिघ्न द्रव्यों का वर्णन अन्तःपरिमार्जनीयों में विडंगादि के रूप में कर दिया गया है।

इसी प्रकार लेखनों का वर्णन भी ऊपर आ गया है।

सन्धानीयम्—सन्धानाय भग्नसंयोजनाय हितंसन्धानीयम्—(गं० यो०); सन्धान शरीरेऽन्तर संहतिकरं भावानाम्—(इन्दुः)। ये द्रव्य अस्थियों के भग्न को शीघ्र जोड़ने वाले होते हैं तथा अन्तःप्रयोग से शरीर अन्तर्गत धातुओं की

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संहति—मेलभाव—को मिलाने वाले होते हैं। यथा, मुलैठी, पृश्निपर्णी, मंजिष्ठा, धातकी, प्रियंगु लोध्र, कट्फल, खटिका चूर्ण-प्रवाल, गोदन्ती आदि द्रव्य।

प्रपीडनम्—पक्व प्रभिन्नानां मर्मादिसमोपस्थानां सूक्ष्ममुखान व्रणानां स्वयमेवसम्यग् पूयमवहतां प्रपीडनं कृत्वा यानि द्रव्याणि तेभ्यः पूयं सम्यगावहन्ति, तानि प्रपीडनानि इत्युच्यन्ते। (सु० चि० अ० १)

द्रव्याणां पिच्छिलानां तु त्वङ्मूलानि प्रपीडनम्।
यव-गोधूम-माषाणां चूर्णानि च समासतः॥ (सि० सू० अ० ३७)

जो द्रव्य स्वयं पक कर फूटे हुए सूक्ष्म मुख वाले व्रणों में से, जो मर्मस्थानों के समीप हों और जिनमें से स्वयं पीप बाहर न निकलती हो उन व्रणों को दबाकर पीप निकाल देते हों वे प्रपीडन कहलाते हैं। पिच्छिल द्रव्यों की त्वचा, मूल, बीजादि 'प्रपीडन' कहलाते हैं। यथा, शाल्मलीत्वग्; जौ; गेहूँ; माष की पिष्टी। इन द्रव्यों को व्रणमुख को छोड़कर उसके चारों ओर के प्रदेश पर लगाया जाता है और सूखने दिया जाता है। ज्यों-ज्यों वे सुखते जाते हैं त्यों-त्यों उनके शोषण के दबाव (प्रपीडन) से पूय व्रणमुख से निकलती जाती है।

उत्सादनम्—परिशुष्काल्पमांसान् गम्भीर व्रणान् यानिद्रव्याणि मांसवर्धनेन उत्सायदन्ति तानि उत्सादनानि इत्युच्यन्ते। उत्सादनं मांसवर्धनं लेप प्रयोगादुत्सादनं भवति (ड)

अपामार्गोऽश्वगन्धा च तालपत्री सुवर्चला।
उत्सादने प्रशस्यन्ते काकोल्यादिश्च यो गणः॥ (सु० सू० अ० ३७)

उत्सादन मांसवर्धन को कहते हैं। ये द्रव्य लेप द्वारा लगाने से सूखे, क्षीण मांस वाले गहरे व्रणों में मांस की उत्पत्ति में वृद्धि करके उन्हें भरने में सहायता देते हैं। यथा, अपामार्ग, अश्वगन्धा, सुवर्चला (हुरहुर) एवं काकोल्यादि गण के पदार्थ।

दाहकम्—दहनं क्षारादीनाम्—(ड० सु० सू० ४०)। क्षारादि अग्नि गुण प्रधान द्रव्य लगाने से जला देते हैं जिससे वहाँ की धातुएँ नष्ट हो जाती हैं। इन द्रव्यों का प्रयोग दुष्ट धातुओं—मस्सा, अर्श-अंकुर—के नाश में किया जाता है। यथा, क्षार सूत्र का प्रयोग अर्श में।

अगदम्—विषनाशक द्रव्यों को अगद संज्ञा दी गई है। बाह्य तथा आभ्यन्तर—दोनों ही प्रकार से इनका व्यवहार किया जाता है। हरिद्रा-चन्दन-शिरिषादि अगद द्रव्य हैं।

अवसादनम्—उत्सन्ना मृदु मांसान् व्रणान् यानि द्रव्याण्यवसादयन्ति तानि 'अवसादनानि' इत्युच्यन्ते।
"काशीस, सैन्धवं, कुरुविन्दो मनःशिला व्रणेषूत्सन्न मांसेषु प्रशस्तान्यवसावदने॥ (सु० सू० ३७)"

व्रणों में बढ़े हुए अनावश्यक मांस को नष्ट करने वाले द्रव्य-काशीस, सैन्धवादि 'अवसादन' कहलाते हैं। इनके द्वारा दुष्ट मांस क्षीण हो जाता है तथा व्रण का रोहण भली प्रकार होता है। उक्त कर्मों का क्षेत्र शल्य है और बहिःपरिमार्जन में ही उनका प्रायः प्रयोग होता है।

योगवाहित्वम्—गृह्णाति योगवाहिद्रव्यं संसर्गिवस्तुगुणान् (भावमिश्र) एतदेवहि योगवाहित्वं यत् स्वगुणापरित्यागेनांशेन सादृश्यात् परस्य शक्ति पूरणम् (इन्दुः)। जो द्रव्य स्वयं अपने गुण को ग्रहण कर लेते हैं या अंशतः समान गुण होने से पर द्रव्य के गुणों को बढ़ा देते हैं वे योगवाही हैं। उदाहरणार्थ—मधु-घृतादि तथा अनेक अनुपान द्रव्य।

———

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्थान प्रभाव तथा कर्मानुसार द्रव्यों का वर्गीकरण (रसवीर्य विपाक सहित)

महास्रोतस् प्रभावक

(Affecting Elimentary Canal)

कर्म (द्रव्य उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
दन्त्य-शोधक						
तेजोवती वृक्ष	त्वचा, काष्ठ	वात-कफहरम्	कटुतिक्त, रस, उष्णवीर्य	रोचक, तीक्ष्ण	दन्त-मुख रोग	फलों का प्रयोग
तुम्बुरु फल का नाम	फल	पित्तलम्	कटु-विपाकी	दन्त्य, उत्तेजक, यकृतोत्तेजक	हिक्का आध्मान, यकृत्प्लीहा वृद्धि, अग्निमान्द्यहर	दन्त मंजनों में होता है।
दन्त्यदार्ढ्यकरम्–बकुलम्	त्वक् पुष्प, काष्ठफल (चूर्ण १–२ माशा)	कफ-पित्तशामक, वातलम्	कषाय, कटुरस अनुष्ण कटु-विपाकी	ग्राही, रक्तस्तम्भन संकोचक अतिसारहर	दन्त तथा दन्तवेष्ट के रोग, प्रदर, प्रमेह, अतिसारहर	योग बकुलादि तैलम्
विट खादिर अरिभेदः	,, ,,	वात-कफ शामक	कषाय कटु-रस, उष्णवीर्य कटु-विपाकी	दन्त्य, तीक्ष्ण, रूक्ष ग्राही, अनुलोमन	,, रक्तस्रावहर उदरकृमि, त्वचारोगहर	....
मुख-शोधक—						
ताम्बूलम् (नागवेल)	पत्र, मूल	वात-कफहरं, पित्तकरं	कटु-तिक्तं-कषाय रस, उष्ण वीर्य, कटु विपाकी	रोचक, दीपक, लाला-स्रावक, कृमिघ्न, तीक्ष्ण	कण्ठ, मुखरोग, स्वर्य सुगन्धि, प्रतिश्याय-कास-श्वासहर	रक्तपित्ती, पित्त प्रकृति के लिए अहित।
पूगम्	पूगम् (फल)	कफ-पित्तशामक, स्वेदन से त्रिदोष-हर	कषाय रस, मधुरानुरस शीतवीर्य कटु-विपाकी	स्तम्भक, नाड़ीवल्य मादक, संकोचक विकासी	प्रमेह, प्रदर, रक्त मुख रोग दन्त शैथिल्य पित्तहर	(पूग खण्ड) १ तोला

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वर्य-मधुयष्टि (वंठ्य)	काष्ठ, सत्व (३-४ माशा)	पित्तवातहर	मधुर-रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	केश्य, जीवनीय, रसायन स्निग्ध, रक्तदोषहर, सर, कफस्रावक	श्वास कास, कंठ नेत्र रोगहर, व्रणशोधक रक्तस्रावरोधक	मधुर विरेचन चूर्ण बड़ी मात्रा में वामक
महाभरीवचा	मूल, काष्ठ	वात-कफहरम्	कटु-रस, उष्णवीर्य	स्वर्य, उत्तेजक, वातानुलोमन	मुखशोथ, स्वरभेद मूक, मिन्मिन गद्गदादि रोग,	भेद-(१) कुलिञ्जन (२) कोष्ठ-कुलिञ्जन
मलयवचा	(१-२ माशा)	पित्तलम्	कटु विपाकी	लेखन, तीक्ष्ण	नाड़ी दौर्बल्यहर	
आर्द्रकम्	कन्द, स्वरस (१-२ तोला)	वात-कफहर, कफच्छेदक, अपित्तलम्	कटु रस, किंचिदुष्ण मधुर-विपाकी	रोचक, दीपन, भेदक कंठ्य, वृष्य, स्निग्ध	मुख-कण्ठ के रोग, वमन, अतिसार, उदराध्मान-कास-श्वासहर	शुण्ठी के गुण अन्यत्र ग्राही में देखें।
जिह्वा प्रभावक रोचक, तृप्तिघ्न	अम्लवेतस्, फल काण्ड (३-६ माशा)	वात-कफहर, पित्तकर	अम्लरस, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	दीपन अनुलोमन, भेदन, रूक्ष, तीक्ष्ण	हिक्का, वमन, अरुचि, गुल्म-आनाहादिहर	
लालाप्रसेक जनक	तिन्तिडीक फलः	,,	,,	,,	,,	
परुषकम्	पक्व फल, त्वक्	अवस्थानुसार त्रिदोषहरम्	अपक्व-अम्लकषाय, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, पक्व-मधुराम्ल, शीतवीर्य मधुर-विपाकी	रोचक, सर, मूत्रल यकृत्शोधक, हृदय	तृष्णाछर्दिमुखशोष रक्तविकार, पाण्डु आदि रोगहर	विरेचनोपग हैं, शर्बत बनाकर प्रयोग किया जाता है।
निम्बुकम्	फल	वात-कफहर, पित्तविरोधी	अम्लरस उष्णवीर्य कटु-विपाकी	दीपन, पाचन, हृदय अनुलोमन, छर्दिनिग्रह-जोयं, चक्षुष्य	तृष्णा, अरुचि, वमन, अग्निमान्द्य, गुल्म, आमवातहर	जल में मिलाकर पीने से यह पित्त-शामक मूत्रल है।
बीजपूरक जम्बीर मातुलुंगादि	त्वक्-फल	वात-कफहर, पित्तवर्धक	,,	,,अचाक्षुष्य, सर कृमिघ्न	,,	
वृक्षाम्ल	फल-तैल	अपक्व-वातहर, पित्तकफवर्धक	अपक्व-अम्ल, उष्ण	रोचक, ग्राही, रूक्ष	अतिसार, संग्रहणी	तेल-स्तम्भन

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्म (द्रव्य उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
रक्तपूरक	मूलत्वक् तैल १-२ तोला फल ३-६ माशा	पक्व-वात-पित्तहर	पक्व—मधुराम्ल, शीत (दोनों) कटु विपाकी	यकृतोत्तेजक, दीपन	अर्श, रक्तपित, कृमिहर	रक्तपित्तशामक, व्रणरोपण है।
(आलूबोखारा)	फल ३-५ फल	पित्तशामक	शीतवीर्य मधुर, विपाकी	स्निग्ध, सर, पित्त, रेचक, पाचक, हृद्य बल्य	पैत्तिकज्वर, वमन तृष्णा, दाह हृल्लास, रक्तपित्त यकृत् दोषहर	शर्वत उत्तम, हृद्य है। भेद (१) मधुर (२) मधुराम्ल (३) आम्ल
मधुर निम्बुकम्	फल	वात-पित्तहर, कफकर	मधुररस, शीतवीर्य मधुर विपाकी	मूत्रल, बल्य रक्त प्रसादन बृंहण	अरुचि, दाह, तृष्णा, श्रम विषहरम्	

नागरंग फल—मधुर नागरंग के भी यही गुण हैं। अम्ल के गुण बीजपूरक के समान समझें, बीज पित्तसारक और पित्तशामक हैं।

कर्म (द्रव्य उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
दीपन रोचन				रोचन, भेदन, अनुलोमन यकृतोत्तेजक,	अरुचि, आध्मान	
चुक्रा	पंचांग	वात-कफहर, किंचित् पित्तकरम्	अम्लरस, उष्णवीर्य; कटु विपाकी	उक्तगुण युक्त किन्तु	गुल्म—अग्निमांद्यहर संग्रहणी; अर्श	
चांगेरी	"	"	" (कषायानुरस)	" ग्राही; संकोचक	गुल्म, गुदभ्रंश अग्निमान्द्यहर	चांगेरी घृत
दाडिम	पंचांग, विशेषत: बीज-फलत्वचा	अवस्थानुसार त्रिदोष-शामक	मधुराम्ल, कषायानुरस शीतवीर्य, मधुर, विपाकी अम्लरसीय-कटु-विपाकी	रोचन, दीपन, हृद्य शोणितास्थापन मूत्रल	वमन, अतिसार पित्त, कामला, अम्ल पाण्डु, अरुचिहर	बलात्वक, कषाय, शीत, कटु विपाकी और कृमिघ्न है।
अम्लिका	पंचांग, क्षार (बीजचूर्ण १-३ माशा)	अपक्वफल-वातहर पक्व, त्रिदोष-हरम्	मधुराम्ल, कषायरस उष्णवीर्य, मधुर-विपाकी	हृद्य, सर, अनुलोमक, बीज—वृष्य स्तम्भक	अरुचि, विबन्ध कामला, पाण्डु रोग प्रमेहहर	पुष्पत्वचा रक्त—संग्राहक, अपक्व पित्तल, रक्त-पित्तल, दूषक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्मरंग	फल	अपक्व वातहर शुष्क–वात कफहर, पक्व-वातपित्त-हरम्	मधुराम्ल, उष्ण, कटुविपाकी, मधुर, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	ग्राही, बल्य रोचक, पाचन, सर	दाह, रक्तपित्त, अग्निमान्द्यहर	
मरिचम् (ऊषणम्)	फल (३-१० रत्ती)	शुष्क—वात-कफ शामक, पित्तवर्धक आर्द्र-पित्तविरोधी	कटु, उष्ण, कटु-विपाकी, आर्द्र-कटु, मधुर, नात्युष्ण, मधुर विपाकी	छेदक, तीक्ष्ण, स्वर्य, अनुलोमन, स्वेदल, स्रोतशोधक	प्रतिश्याय, स्वरभेद, कास, श्वास हिक्काहर	मरिचादि वटी श्वेतमरिचं चक्षुष्य है।
करमर्दक	फल, मूल त्वक्	मूल—वात-कफहर अपक्वफल—पित्त- कफकर, वात- शामक, पक्व- त्रिदोषहर	मूल—कटु तिक्त, उष्ण, कटु विपाकी, पक्व-फल-मधुराम्ल, शीत, मधुर विपाकी	रोचक, दीपन ग्राही, सर, अपक्व रक्तपित्त दूषक	वमन, अतिसार विबन्ध, आध्मान रक्तपित्त वह्निमान्द्यहर	मूलत्वक्-उदरकृमि तथा लेप से बाह्य कृमिहर है।
दीपनम्— तिक्त-रसायन	नागरंगम् फलत्वक्	वात-कफहर, पित्तलम्	तिक्तरस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	सुगन्धित, दीपन, अनुलोमन	अग्निमान्द्य आध्मान, उदरशूल	
अतिविषा	कन्द (५-३० गुंजा)	त्रिदोषहर, विशेषतः कफ-पित्तहर	तिक्तरस, उष्णवीर्य कटु-विपाकी	पाचक, रसोत्तेजक, संग्राही, आमदोष, पाचक, ज्वरघ्न	अतिसार-ज्वर वमन, अर्श, उदरशूल शोथ	अतिविषादि चूर्ण, बाल चातुर्भद्र चूर्ण
प्रतिविष	२–५ रत्ती	त्रिदोषशामक विशेषतः वातघ्न	"	शोथहर, कृमिघ्न अनुलोमन	उदरशूल, शोथ, अजीर्ण विसूचिकाहर	
ईश्वरी(नाकुली)	५–१० रत्ती लतापंचांग मूल	वातकफहर	कटु, तिक्त, कषायरस उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	वामक, स्वेदल कृमिघ्न, हृदय उत्तेजक	विषमज्वर, कृमि प्रसूतिज्वर कष्टार्तवहर	यह गर्भाशय संकोचक तथा सन्धिशोथहर है।
कपोतपदी (कलम्बा)	मूल	पित्तकफहर	तिक्तरस, शीतवीर्य कटु विपाकी	पाचक, रसोत्तेजक अग्निदीपन, यकृतोत्तेजक तथा पित्तसारक	अग्निमान्द्य कामला, पाण्डु रोगोपरान्त निर्बलताहर	
कटुदीपनानि चव्य	काण्ड	वातकफहर, पित्तकर	कटुरस, उष्णवीर्य	उत्तेजक, लघु, दीपन तृष्णाघ्न, अनुलोमन	आनाह, उदरशूल अग्नि- मान्द्यहर,	प्राणदा गुटिका काकायन वटी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्म (द्रव्य उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
चित्रक	मूल, त्वक् (२-८ रत्ती)	वात-कफहर, पित्तकर	कटु-विपाकी „	उत्तेजक लघु, दीपन अनूलोमन अतिपाचक संग्राही, यकृत्प्लीहाहर	ग्रहणी, अर्श आमवातादि, पीनस कष्टार्तवहर	चित्रकादिवटी चित्रक हरीतकी
जीरकद्वयम्	बीज	„	„	सुगन्धी, शोथ, शूलहर, गर्भाशयशोधक, रोचक, दीपन	अतिसार, संग्रहणी	जीरकाद्यरिष्ट
(श्वेत कृष्ण)	२–४ माशा	„	„	ग्राही, शोथ, शूलहर	अरुचि, आध्मान उदरकृमि, प्रसूत, ज्वरादिहर	जीरकादिमोदक कष्टार्तव तथा प्रसूतिविकारहर
त्रुटि- (सूक्ष्मैला)	फल, बीज तैल (५-१० रत्ती बीज ५-१५ बूंद तैल)	त्रिदोषशामक कफच्छेदक	मधुर-कटुरस, शीतवीर्य, मधुर-विपाकी	रोचक, अनुलोमक, उत्तेजक, भेदन, छर्दिनिग्रहण मूत्रल	मूल, कण्ठरोग, श्वास, कास, क्षय, जीर्णज्वर, हृद्दौर्बल्यहर, दाह, वमनहर	एलादिवटी एलादिमंथ तैल, शूल, वेदना-कृमिहर तथा अनुलोमन है।
स्थूला	„	वात-कफहर पित्तवर्धक	कटु-तिक्तरस, उष्णवीर्य कटु-विपाकी	„ दीपन, विशेषतः प्रातः ग्राही	„	
त्वक् (दारुसिता)	त्वचा-तैल ५-१५ गुंजा २-५ बूंद	वात कफहर	कटु-तिक्तरस, उष्णवीर्य, कटुविपाकी	रोचक, अनुलोमन, दीपन हृद्य उत्तेजक कृमिघ्न अनुलोमन	हृद्रोग-वमन, हृद्रोग, वमन, आदोष, मूत्रकृच्छ्र, अर्श पीनसहर	तैल के गुण एला तैल के समान। तमालपत्र के गुण त्वक्वत् ही समझें।
तक्र		रसप्रभावानुसर त्रिदोषहर	मधुराम्ल, कषाय, उष्णवीर्य कटु-विपाकी	मधु, रूक्ष, दीपन, हृद्य मूत्रल स्रोतशोधक, उदर कृमिहर	शोथ, अतिसार, ज्वर, अर्श पाण्डु यकृत्प्लीहा वृद्धिहर	तक्रारिष्ट

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

पिप्पली	फल (४-८ रत्ती)	अवस्थानुसार त्रिदोष आर्द्र—वात-पित्त-शामक, शुष्क-वात-कफशामक	कटु रस, समशीतोष्ण, मधुर विपाकी	अनुलोमन, दीपन वृष्य, स्निग्ध, ज्वरघ्न, स्वयं	जीर्णज्वर, उदर रोग हिक्का, श्वास, कास शिरःशूल, आमदोषहर	पिप्पल्यासव पिप्पली खण्डः
पिप्पलीमूल	मूल-काण्ड	वात-कफहर, पित्त-वर्धक	कटुरस, उष्णवीर्य, कटुविपाकी	”	”	
गजपिप्पली	फल					
कटुवीरा (रक्तमरिच)	फल	”		अग्निदीपन, अनुलोमन स्रोतशोधक	विषमज्वर, अग्निमान्द्य, विषूचिका कष्टार्त्तव	
राजिका	बीज, तैल वामक०मात्रा ३-६ माशा	”	”	,,विशेषतः व्रणपाचक, शोथहर वामक, स्वेदल	अग्निमान्द्य, शोथ वातिका वेदनाएँ अजीर्ण, विषहर	प्रायः बाह्यलेपादि में व्यवहृत, अदृश्य, रक्तदूषक विदाही है।
यवानी	बीज -३ माशा			अनुलोमन, दीपन, उत्तेजक, उदरकृमिघ्न, उदरशूलहर	अतिसार उदर वमन, कृमि, शूलहर	अहिफेन के जीर्ण विष पर उत्तम तथा अवृष्य
अजमोदा	तैल १५-३० बूँद अर्क १-२ तोला अर्क	” ”	” ”	ग्राही, विदाही, वेदनाहर, अनुलोमन, अवृष्य	कष्टार्त्तव, कटिशूल उदराध्मानहर	उदरशूल तथा उदर कृमिहर
पाचन						
एरण्डकर्कटी	फल, दुग्ध बीज	पक्व-त्रिदोष-शामक, अपक्व कफ-पित्तकारक	कटु तिक्तरस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, पक्वफल मधुर रस, मधुर विपाकी, शीतवीर्य	क्षीर पाचक, मूत्रल, कृमिघ्न-शोधक फल-पित्तशामक, सर	हृदय-यकृत आमाशय रोगहर	दुग्ध -½१ तोला बीज ४-५ रत्ती गर्भस्रावक पत्र फाण्ट
कैडर्य (मधुरा-निम्ब)	फल	त्रिदोषहर	कटु मधुर रस, अनुष्ण कटु विपाकी	दीपन, पाचन, ग्राही, अनुलोमन, सुगन्धित	अरुचि, अग्निमान्द्य वमनहर	मूल—उत्तेजक रेचन

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
मूलकम्	पंचांग, क्षार	बाल-त्रिदोषशामक बृहत्-त्रिदोषकारक	कटु तिक्तरस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	शोथहर, मूत्रल पाचन कंठ्य	अजीर्ण, अरुचि, अश्मरी यकृत्वृद्धि हर	बीज उष्ण कष्टार्तवहर है।
लताकस्तूरिका	बीज-मूल त्वचा १-३ माशा	त्रिदोषहर	मधुर कटु तिक्त रस, शीतवीर्य कटु विपाकी	कफच्छेदक, चक्षुष्य वृष्य अनुलोमन	आध्मान, मुख वस्ति, नेत्ररोगहर	कस्तूरी की यह प्रतिनिधि नहीं है।
शतपुष्पा	बीज मूल तैल ५-१० बूंद बीज, ३-६ माशा	वात-कफनाशक किंचित् पित्तलम्	किंचित् मधुर कटु-तिक्तानुरस उष्णवीर्य, कटु विपाकी	दीपन, अनुलोमनग्राही, रक्तप्रसादन आर्तव, स्तन्य-जनन	वमन, उदरशूल अजीर्ण, अतिसार, कष्टार्तवहर वात-वेदनाशामक	मूल-रेचक है।
विदाही						
तिलपर्णी (आदित्यभक्ता)	बीज पंचांग	वातकफहर पितल	कटु-तिक्तरस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	तीक्ष्ण, लघु, लेखन, अनुलोमन, क्रमिघ्न स्वेदल	वातवेदनाएँ शिरः शूलादिहर आध्मान, उदर क्रमिहर	
अनुलोमन पलाण्डु **शूलप्रशमन**	कन्द, बीज, बीज १-३ ३-६ माशा	वात-कफहर किंचित् पित्तल	कटु मधुर रस, उष्णवीर्य-कटु विपाकी	दीपन, तीक्ष्ण, अनुलोमन, लेखन, स्रोत शोधक, बाजी-करण	शोथ, विषूचिका, आध्मान, उदरशूल कष्टार्तवहर	बीज अत्युष्ण तथा रजःस्रावक है।
रसोन	कन्द ६ माशा तैल १-२ बूंद	वातकफशामक पित्ताविरोधी	तिक्त, कषाय, मधुर, कटु लवण रस (कटु रस प्रधान) उष्णवीर्य, कटु विपाकी	रसायन, वृष्य, दीपन अतिवातानुलोमन रजः स्रावक	आध्मान, उदरशूल गुल्म क्षय, जीर्णज्वर विबन्ध, वातव्याधिशामक	रसोनाष्टकवटी रसोनपिण्ड
विकंत्रत (श्रवदु)	पंचाग	त्रिदोषहर (पित्त-कफशामक) (कफ विशेषतः)	मधुर तिक्त कषाय, मधुर शीतवीर्य, मधुर विपाकी	दीपन, पाचन, तीक्ष्ण, लेखन, दीपन, अनुलोमन	रक्तपित्त, शोथ यकृत्-प्लीहा वृद्धिहर-उदरक्रमि, गुल्म	व्रण क्रमियों में विशेषतः लाभप्रद
नाड़ीहिंगु—	निर्यास (३-४ रत्ती)	वात-कफशामक पित्तवर्धक	कटु रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	वेदना, जन्तुघ्न, व्रणशोधक शूलप्रशमन	आध्मान, उदरशूलहर यकृतोत्तेजक	
हिंगु	,,	,,	,,	,, विशेषतः सर, कफच्छेदक, रजः प्रवर्तक	,, अग्निमान्द्य विबन्ध, गुल्महर	हिंग्वष्टक चूर्ण हिंग्वादि चूर्ण
विष्टम्भी						
पनस—	फल	पित्त-कफहर वातल पक्व वात-पित्तहर	मधुर कषायरस, शीतवीर्य मधुर विपाकी	गुरु विष्टम्भि दाहशामक स्निग्ध	बल्य रक्त पित्तशामक वातमेदवर्धक	

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लकुच	पत्र	त्रिदोषकारक रक्तद्वेषक	मधुराम्ल, कषायरस, शीतवीर्य, कटुविपाकी पत्र-उष्ण	दाह शामक, स्निग्ध	बल्य, रक्तपित्तशामक, वातमेदवर्धक	
पुरीषजनन—	माषः बीज	वातशामक पित्तवर्धक	मधुररस, उष्णवीर्य मधुर विपाकी	बल्य, स्निग्ध, शुक्रलः पौष्टिक, शुक्ल, रोचक, प्रभूतमलकर, स्तन्यवर्धक	क्षीणता, वातव्याधियाँ पक्षाघात आदि हर तथा मांसवर्धक	१ महाभाष तैल १ विदाही होने से पित्तकारक है।
लोणिकाद्वयम्	पत्र, क्षार	कामघ्न, वातवर्धक नातिपित्तलम्	मधुर लवण, वातवर्धक शीतवीर्य, मधुर विपाकी	मधुर रोचक, मूत्रल, सर मलकारक, गुरु	विबन्ध, अग्निमान्द्य रक्तार्शादिहर	
तण्डुलीयकम्	”	पित्त-कफशामक	मधुर रस, (क्षारीय) शीतवीर्य, मधुर विपाकी	पुरीषजनन, सर, रोचक, मूत्रल	विबन्ध, मूत्रकृच्छ्र, विष, मद-शामक	
वमनोपग						
हिज्जलम्	फल-३-६ माशा वमनार्थ	वातशामक, कफ-पित संशोधक	मधुर-कटु-तिक्त रस, उष्णवीर्य, कटुविपाकी,	वामक, रेचक, कफस्रावक, अनुलोमन	शिरःशूल, कष्टार्त्तव श्वासहर	सामान्य मात्रा ५-१० रत्ती
शणपुष्पी	मूल, पत्र, बीज	कफ-पित्तहर	तिक्त, कषाय रस, शीतवीर्य कटुविपाकी	वामक, व्रणपाचक, शोथहर, त्वच्य	कण्ठ-मुखरोग, आमाशयगत वात तथा त्वचा रोगहर	शोथ, कुष्ठ में पत्रों का लेप
वामक अंकोल	पंचांग ३ माशा वमनार्थ	कफ-पित्तशामक पित्तशोधक	कटु-तिक्त रस, कषाय रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	स्वेदल, वामक, रेचक, शोथविषहर	अर्श-जलोदर, अर्श वातरक्त, उपदंश आखुविषहर	स्वेदार्थ २-५ रत्ती पक्वफल-शीत मधुर विपाकी
अरिष्टक	फल	त्रिदोषशामक	कटु-तिक्त रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	तीक्ष्ण, लेखन, कृमिघ्न वामक	विष, कफज, शिरःशूल, गुरु, मूर्च्छाहर	अति प्रयोग गर्भ-पातक है।
मदन	फल, ३-६ माशा वमनार्थ	” पित निस्सारक	कटु-तिक्त-मधुर रस, उष्णवीर्य, कटुविपाकी	वामक, अनुलोमन, लेखन; शोथहर, व्रण पाचक	प्रतिश्याय, कास श्वास, कफ निष्कासक, शोथ, कष्टार्तवहर	सर्वश्रेष्ठ वामक है।
उभयतोभागहरम्	(वामक रेचक)	त्रिदोषहर	तिक्तरस, उष्णवीर्य	रेचक, वामक, उदर	विष, आमवात	

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा माशा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
अरितमंजरी (हरितमंजरी)	पंचांग तैल-१-३ बूंद	पित्तलम्	कटु विपाकी कटु विपाकी	क्रमिघ्न, कफच्छेदक क्रमिघ्न, कोथ प्रशमन,	विबन्ध, त्वचारोगहर अतिसारहर, तृष्णा,	
कटुतुम्बी (इक्ष्वाकु)	पंचांग, फल १-३ माशा	वातपित्तशामक, कफहरी	तिक्तरस, शीतवीर्य कटु विपाकी	अकर्रिक, रेचक, तीक्ष्ण अहृद्य	ज्वर, कास, श्वास विषनाशक, दुष्ट व्रणशोधक	मधुर रसीय, पित्त-शामक, शीत है
कोषातकी (कृतवेधन)	पंचांग, तैल	पित्तकफहर वातला	"	शिरोविरेचक	गुल्म, शोथ, विष, यकृत्प्लीहावृद्धिहर	मधुर त्रिदोषहर है विबन्ध तथा ज्वर में पथ्य है
धामार्गव (महाजालनी)	"	"	तिक्त रस, उष्णवीर्य कटुविपाकी	रेचक, वामक उदर रोगहर	" आध्मान गुल्म, शोथहर	"
देवदाली जीमूतक	पंचांग, फल १-२ माशा	त्रिदोषहर	तिक्त-कटु रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	वामक, रेचक, तीक्ष्ण शिरोविरेचक	ज्वर, कामला पाण्डु, अर्श, आमदोष उदरकृमिहर	
			वमनहर (छर्दिनिग्रहणीय)			
अब्धिनारिकेल	फल	त्रिदोषशामक	मधुर-तिक्त रस, अनुष्ण मधुरविपाकी	स्निग्ध, विषहर वमनशामक दीपन, रक्तप्रसादन	वमन विषूचिका अतिसार, बालाजीर्ण, हृद्य-दौर्बल्यहर	
लवंगः	पुष्प, कलिका तेल	त्रिदोषहर, मुख्यतः कफ-पित्तहर	कटु-तिक्तरस, शीतवीर्य कटु विपाकी	रोचक, सुगन्धित अनुलोमन, आमपाचन क्रमिघ्न, कोथ प्रशमन, आर्तवजनन शुक्रस्तम्भक	वमन, आमदोष क्रमिघ्न, पीनस प्रतिश्यायहर उदरशूल, आपमान अतिसारहर	लवंगादिवटी
पुदीनम् (पूतिहा)	पत्र-१-३ माशा तैल-१-३ बूंद सत्व १/४-१ गुंजा	वात-कफशामक पित्तलम्	कटु रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	रोचक, वेदनास्थापन, क्रमिघ्न, कोथ प्रशमन, आर्तवजनन, अनुलोमन	वमन, अजीर्ण उदरशूल अतिस्वर, तृष्णा, आध्मानहर	

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ह्रीबेर (सुगन्ध वाला) (उदीच्यम्)	मूल	कफपित्तशामक	मधुर-तिक्त रस, शीतवीर्य कटुविपाकी	दीपन-अनुलोमन पाचनग्राही	वमन, अरुचि, अतिसार, तृष्णा रक्त-पित्त, ज्वरादिहर	
			आमदोषपाचक			
मुस्तकम्	कन्द (१-३ माशा)	त्रिदोषशामक	कटु-तिक्त-कषायरस, शीतवीर्य, कटु-विपाकी	आमपाचक, ग्राही स्वेदल, मूत्रल तृष्णानिग्रहण, आम कृमिघ्न	ज्वर, वमन, रक्तार्श अतिसार, दाह तृष्णाशामक	मुस्तादि चूर्ण (उदरकृमिहर)
नागकेशर	पुष्पकेशर (१-२ माशा)	पित्त-कफहर	कषाय-तिक्तरस उष्णवीर्य, कटुविपाकी	ग्राही, रक्तस्तम्भक तृष्णानिग्रहण, आमपाचक	रक्तार्श, श्वेत रक्तप्रदर, ज्वर वमन, स्वेद, विसर्पहर	पुष्यानुगचूर्ण
पाठाद्वयम्	(पंचांग)	त्रिदोषहर, विशेषतः वात-कफशामक	तिक्त-रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	आमपाचक, ग्राही, ज्वरघ्न, रक्तशोधक	ज्वर, अतिसार प्रवाहिकाहर प्रमेहशामक	लघुपाठा शीत वीर्य है। गंगाधर चूर्ण-कुटजाष्टक चूर्ण
			विरेचनोपग (स्नेहनम्)			
पीलु	एल, त्वचा बीज, तैल	वात-कफशामक पित्तवर्धक	कटु-तिक्त-मधुर रस, उष्ण वीर्य, मधुर-विपाकी	सर, तीक्ष्ण, रक्त-शोधक, आम-शोथ-शामक, छाल-रजः स्रावक है	ज्वर, अर्श आमवात, वस्ति रोगहर	पक्वफल-सर पित्तशामक वृष्य, रोचक है।
पालंकी	पत्र	पित्तशामक, वातल श्लेष्मल	मधुर (बीज-अम्ल) शीतवीर्य, मधुर विपाकी	भेदन, लघु, पिच्छिल	रक्त-पित्त, दाह तृषा, विबन्ध, पाण्डु कामलाहर	
फल्गु (अंजीर) (काकोदुम्बर)	फल त्वचा, फल	फल-त्रिदोषहर त्वचा-वातल	फल मधुर-कषाय रस शीतवीर्य, मधुर विपाकी	सर, स्निग्ध, पौष्टिक शीत, सर त्वचा, शीत, शोथ कुष्ठघ्न	विबन्ध, क्षय दाह अर्श रक्तपित्त, कामलाहर	त्वचा-तिक्तकषाय ग्राही, उष्ण, कटु-विपाकी श्वित्रशामक है। विशेषतः काकोदुम्बरकी।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
वास्तुक	पंचांग	त्रिदोषशामक	मधुर (क्षारीय) उष्णवीर्य	दीपन, पाचन, सर, अनुलोमक, मेध्य मूत्रस्रोतशोधक	विबन्ध, अर्श, संग्रहणी, यकृत प्लीहावृद्धिहर	सर्वश्रेष्ठ शाक है
अतसी (उमा, क्षुमा)	बीज-(३-६ माशा)	वातशामक, पित्तलम् कफस्रावक	मधुर-तिक्त रस, उष्णवीर्य मधुर-विपाकी	स्निग्ध, गुरु, शोथहर अचक्षुष्य	वातरोग, शोथ वेदना, विबन्ध आनाह-शुष्ककासहर	सेकी हुई अतसी ग्राही होती है।
			सरम् (स्नेहनम्-स्निग्ध-रेचन)			
वाताम्म्	फल-तैल १-२ तोला	वातशामक, कफ-पित्तवर्धक	मधुर-रस, उष्णवीर्य मधुर-विपाकी	पौष्टिक, बल्य वृष्य, सर, गुरु	क्षय, दाह, विबन्धहर, स्तन्यजनन	
मलंगबीजम्	बीज-३-६ माशा	पित्तशामक	"	हृद्य, स्निग्ध संग्राही	प्रवाहिका, रक्तार्श रक्तातिसारहर	
स्निग्धजीरकम् (ईसबगोल)	बीज ½-१ तोला	वात-पित्तशामक	मधुर-रस (नातिव्यक्त)	स्निग्ध, पिच्छिल दाह शोथहर	विबन्ध, शुष्ककास, प्रवाहिका मूत्रकृच्छ्रादिहर	
रेचन-भेदन-स्रंसन						
आरग्वध	फलमज्जा, पत्र पुष्पमूलत्वक्	त्रिदोषहर	मधुर-तिक्तरस, शीतवीर्य मधुर-विपाकी	भेदन, अनुलोमन, दाह, शोथ वेदनाहर	ज्वर, विबन्ध, वातरक्त, कामला यकृत्शोथ, आमवात हर	
एरण्डतैलम्	तैल १-३तोला	वात-पित्तशामक कफवर्धक	मधुररस, कटु-कषायानुरस उष्णवीर्य, मधुर-विपाकी	रेचक, त्वच्य, स्रोत-शोधक, वातानुलोमन	विबन्ध, उदरशूल, आध्मान आमवातादिहर	
कृष्णबीज	बीज १-३ माशा	पित्त-कफशामक	मधुर-कटु रस, उष्णवीर्य, कटुविपाकी	रेचन, पित्तस्रावक कृमिहर, रक्तशोधक	ज्वर, विबन्ध ज्वर आध्मान, उदरशूलहर,	
१. स्वर्णपत्रिका (सनाय)	पत्र-फल ३-६ माशा	कफ-वातशामक पित्त रेचक	तिक्त-कषायरस, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	रेचन, शोथहर अनुलोमन, कृमिहर	शोथ, आनाह उदराध्मान, कृमिहर	बीज तथा पुष्प प्रमेहशामक है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

२. मार्कण्डिका आवर्त्तनी, तरवट	पत्र १-३ माशा अनुलोमनार्थ	त्रिदोषशामक	तिक्त-कषायरस, उष्णवीर्य कटु-विपाकी	रेचन, वामक, दीपन त्वग्दोषहर	ज्वर, विबन्ध, रक्तपित्त, गुल्म, प्रमेहहर	बीज प्रमेहहर है।
त्रिवृत् द्वयम्	मूल-३-६ माशा	कफ-पित्तहर, वातवर्धक	मधुर-तिक्त-कषाय रस उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	रेचन, अनुलोमन	गुल्म, विबन्ध उदररोगहर	नाराच चूर्ण त्रिवृदवलेह
मूर्वा	पंचांग	त्रिदोषशामक	मधुर-तिक्त रस, उष्णवीर्य मधुर-विपाकी	सर, मूत्रल रसायन	ज्वर, कास श्वास वमन-दाह, तृष्णाहर	
हरीतकी	फल	त्रिदोषशामक	अलवण, कषायप्रधान, उष्णवीर्य, मधुर विपाकी	सर, बृंहण, चक्षुष्य आयुष्य, अनुलोमन, यकृतोत्तेजक	विबन्धध्मान-उदरशूल, विषम-ज्वर, अग्निमांद्यहर	अभयारिष्ट मातेव-हित-कारिणी)
तीव्र रेचन-विरेचन (जलबहुलरेचन)						
इन्द्रायण	फल, मूल १-४ रत्ती (१-३ माशा) मूल	पित्त-कफहर	तिक्त रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	तीक्ष्ण, रूक्ष, रक्त-शोधक	उदररोग, पाण्डु, गुल्म, कामला, कष्टार्त्तवहर	नारायण चूर्ण
कंकुष्ठ	सत्व-१-३ रत्ती	"	"	रेचन, अनुलोमन	गुल्म, आध्मान उदावर्त, विबन्धहर	
जयपाल	बीज -½१ रत्ती तैल १ बूंद	" "	कटु रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	" " कृमिहर	"	
दन्तीद्वयम् (दन्ती-वृहद् दन्ती)	मूल-१-३ माशा बीज ½-१ रत्ती	"	"	"	"	बीज तैल वात-शामक है।
स्नुही (सेहुण्ड)	दुग्ध ½-१ रत्ती स्वरस २-४ बूंद	वातकफहर	कटु-तिक्तरस, उष्णवीर्य कटुविपाकी	तीक्ष्ण, अग्नि दीपन क्षार मूत्रल	उदररोग, जलोदर आमवात, अग्निमान्द्यहर	वज्रक्षार स्नुही-तैल

सूचना—पित्त-रेचकों का वर्णन यकृत्प्रभावक वर्ग में देखें।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
			(क) पुरीषग्राही (पाचकग्राही)			
कारवेल्लक	पंचांग स्वरस-१-३ तोला १० तोला वामक मात्रा	कफपित्तहर अवातलम्	तिक्त रस, कटु अनुरस, उष्ण वीर्य कटु विपाकी	दीपन, पित्तसारक, यकृतोत्तेजक, रक्तशोधक अतिमात्रा में	अग्निमान्द्य, उदरकृमि रक्तपित्त, पाण्डु प्रमेह, कण्टार्त्तवहर	फल,शाक सर है।
शुंठी	कन्द ५-१० गुंजा	अवातलम् कफ-पित्तहर	कटु रस, उष्णवीर्य, मधुर मधुर-विपाकी	स्निग्ध, ग्राही वृष्य अनुलोमन, पाचक	आनाह, उदारशूल अग्निमान्द्य, अतीसार	पंचसमचूर्ण
बोल (गन्धरस)	तिर्यास (४-८ गुंजा)	कफ-पित्तशामक	कटु-तिक्त-कषाय रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	संग्राही, रक्तस्तम्भक स्वेदल, पाचन	रक्तार्श, संग्रहणी पाण्डु, कष्टार्त्तवहर	बोलपर्पटी
			(ख) पुरीषसंग्रहणीय-स्तम्भक			
आवर्तकी (मरोड़फली)	फल १-३ माशा	त्रिदोषहर	कषाय रस, शीतवीर्य कटु-विपाकी	संग्राही, अनुलोमन ग्राही, वर्ण्य, गुरु, स्रावशोषक	अतिसार, रक्तार्श, उदरकृमिहर	
कदम्बः	पंचांग	त्रिदोषशामक विशेषत: कफ-पित्तहर	कषाय-कटु-तिक्त-अम्ल-रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	संग्राही, वर्ण्य, गुरु, ज्वरहर	योनिरोग, मूत्रकृच्छ्र दाह, अतिसार	छाल-ज्वरघ्न फल मधुर, वृष्य
कपित्थं	फल	कफ-पित्तहर वातल (फल)	मधुर-अम्ल-कषाय-कटु-रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	रोचक, गुरु संग्राही, वृष्य, अस्वर्य	अरुचि, अतिसार प्रवाहिका, रक्तपित्त	अपक्व फल, वातल त्रिदोष-शामक
कुटजद्वयम् (तिक्त-मधुर-दो-भेद) इन्द्रयवरच	त्वक्, बीज (मधुर का प्रयोग नहीं)	त्रिदोषशामक विशेषत: कफ-पित्त-हर	तिक्त, कषाय, कटु, मधुर रस, शीतवीर्य, कटु विपाकी	ग्राही, दीपन स्तम्भन, उपशोषण	अतिसार, प्रवाहिका रक्तार्श, ज्वरातीसारशामक	बीज (इन्द्रयव) उष्णवीर्य आमपाचक है।
जिंगणी (मोदकी)	त्वक-निर्यास	वात-कफशामक	मधुर-कषाय रस, उष्ण-वीर्य, कटुविपाकी	योनिशोधक, ग्राही रक्त-स्तम्भन	प्रदर, अतिसार, व्रण, रक्तार्शादिहर	

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दधि		मधुर-कफकर, वात-पित्त-कफहर अम्ल-वात-कफहर	A मधुराम्ल, उष्णवीर्य, B मधुर: मधुर-विपाकी अम्ल कटु-विपाकी	रोचक, दीपन, मूत्रल अनुलोमन, ग्राही बृंहण, बल्य	अर्श, संग्रहणी अतिसार, पीनस विषम ज्वर, अरुचिहर	अति अम्ल, रक्त-दूषक शोथकारक और कच्चा दधि स्रोतरोधक, रोगकारक है।
धवः धन्वनः	पंचांग निर्यास	वात-पित्तशामक पित्त-कफशामक	मधुर-कषाय-रस, शीत-वीर्य, कटु-विपाकी	स्तम्भक, शोथघ्न भग्नसन्धानकर रक्तप्रसादन	प्रवाहिका रक्तातिसार रक्त-पित्त, रक्तार्शहर	
धातकी	पुष्प १-३ माशा	कफ-पित्तशामक	कषाय-कटु-रस, शीतवीर्य कटु-विपाकी	संकोचक, मूत्र विरंजनीय, स्तम्भन	रक्त-पित्त, रक्तार्श, वाहिका, अतिसार प्रदरादिहर	
बब्बूलः (किंकिरातः)	पंचांग, निर्यास	कफ-पित्तहर	कषायरस, शीतवीर्य कटु विपाकी-बीज-मधुर विपाकी है।	ग्राही, संकोचक गुरु, रूक्ष, दाहक	" कच्चे फल मूत्रकृच्छ्रहर, बीज-वृष्य है।	बब्बूलारिष्ट
बम्बी	पत्र-फल	कफ-पित्तजित् वातलम्	तिक्त-कषाय रस, शीतवीर्य कटु-विपाकी	संग्राही, कृमिघ्न, लेखन यकृतोत्तेजक, वामक	पाण्डु, प्रमेह हस्त-पाद दाह, मधुमेह, बहुमूत्रहर	पक्वफल मधुर स्तन्यजनन है। बड़ी मात्रा में वामक
मयूरशिखा	पंचांग	पित्त-कफहर	अम्ल-कषाय रस, शीतवीर्य, कटु-विपाकी	ग्राही, कृमिघ्न स्तम्भन, व्रणरोपण	रक्तार्श, प्रवाहिका, अतिसार उदर कृमिहर	
मायाफल माचिका	फल (कीटगृह) १-२ माशा	पित्त-कफहर	कषाय रस, (शीतवीर्य मधुर-तिक्ताम्लानुरस), शीत कटु-विपाकी	संकोचक, स्तम्भन, कंठ्य, केश्य, ग्राही	रक्तस्राव, अतिसार-योनि-गुदभ्रंशगर्भस्रावहर, उदर-कृमिहर, अतिसार स्राव, दन्तशैथिल्यहर	समानगुण होने से एक साथ वर्णन
माषपर्णी	पंचांग,	वात-पित्तहर, कफहर	मधुर रस, कषाय, अनुरस, मधुर-विपाकी शीतवीर्य	बल्य, वृष्य, ग्राही दाहशोथहर	वातपैत्तिकज्वर, शोथ, अतिसारहर	

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
मुद्गपर्णी	पंचांग	त्रिदोषशामक	मधुर-कषाय, शीतवीय मधुर-विपाकी	रूक्ष, लघु, वृष्य, सग्राही, शोथहर	ज्वर, अतिसार, सग्रहणी, दाह-शोथहर	
अन्त्रकृमिहर—						
अजगन्धा (चौहार) कीट-मारीयवानी	बीज १-३ माशा	वात-कफनाशक	कटु-तिक्त रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	रूक्ष, तीक्ष्ण, अनुलोमन दीपन, कृमिघ्न	अग्निमान्द्य, उदरशूल उदर आध्मान, कृमि, गुल्मादिहर	अजयन्धावटी
कम्पिल्लकः	फलरजः १-३ माशा	कफवातशामक किंचित्पित्तहर	कटु रस, उष्णवीर्य	रेचन, व्रणरोपक, अनुलोमन, कृमिहर	विबन्ध, आनाह उदर कृमिहर	
कीटमारी (धूम्रपत्रा)	पंचांग १-३ माशा	वात-कफशामक	तिक्त रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी,	दीपन, संसन (रेचन) कृमिघ्न, विषघ्न	उदरकृमि, विषमज्वर, ज्वर, कष्टार्तवहर	
दमनकः अफसन्तीन	पंचांग	वात-कफशामक वातल	तिक्तरस, उष्णवीर्य, कटुविपाकी	कृमिहर, यकृतोत्तेजक, ज्वरघ्न, मूत्रल, आर्त्तवजनन	ज्वर, अग्निमान्द्य, विबन्ध, कृमि-कामलादिहर	
शान्तनम् (सेन्टोनीन)	सत्व ½-१ रत्ती	कफपित्तहर वातल	तिक्तरस, उष्णवीर्य, कटुविपाकी	अनुलोमन कृमिहर	उदर कृमिविशेषतः अन्न तथा चुरुवेनाशक	
पलाश	पंचांग, क्षार बीजचूर्ण १-३ माशा कृमिहरणार्थ	त्रिदोषशामक पुष्प-वातल प्रबाल-वातशामक	कषायतिक्त, कटुरस, उष्णवीर्य (पुष्पशीतवीर्य) कटुविपाकी	संग्राही, शोथहर, दीपन, कृमिघ्न, स्तम्भक कुष्ठघ्न, स्तम्भक रसायन, अनुलोमन	यकृतप्लीहा वृद्धि संग्रहणी, अर्श, गुल्म, शोथ, वस्तिशोधक, मूत्राघातहर	बीज कृमिहर (स्फीत कृमि) निर्यास स्तम्भक है। पुष्प मूत्रल है।
पारिभद्र	पंचांग	वात-कफशामक	कटु-तिक्तरस, उष्णवीर्य कटु-विपाकी	दीपन, शोथ-भेद मेद, आक्षेपहर	उदरकृमि, ज्वर, कर्णस्राव, कर्णस्राव, कृपोलुविष नाशक है।	
मधुरकर्कटी (राजकर्कटी)	बीज २-४ माशा	पित्तशामक, वात-कफकारक (फल) बीज पित्त-कफहर	मधुर-रस, शीतवीर्य कटु-विपाकी	कृमिहर, अनुलोमन ग्राही	रक्त-पित्तहर पृथुकृमि (Round worm) हर	फल पौष्टिक और विष्टम्भि
विडंगः (कृमिघ्न)	बीज १-२ माशा	वात-कफहर	कटुरस, तिक्तकषायानुरस कटु-विपाकी	रोचन, दीपन, लघु, लेखन, सर	उदरकृमि, प्रमेह, विष्टम्भ, शिरोरोग बसाहर	विडंगारिष्ट विडंगादिलोह कृमिमुद्गर रस

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यकृत् प्लीहा प्रभावक

यकृत्कार्य उत्तेजक						
अर्कद्वयम्	पंचांग, क्षार क्षीर	वात-कफहर	तिक्त-कटु रस, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	सर, दीपन, स्वेदल, कृमिघ्न, वेदनाहर, क्षीर-रेचक	उदर रोग, गुल्म आध्मान, अर्श, फिरंग, कास, श्वास यकृत्प्लीहावृद्धिहर	रक्तार्कपुष्प तिक्त-मधुर, कफपित्त-शामक, पुष्प लवंग, कास-श्वासशामक
आकाशवल्ली (अमरवेल)	पंचांग	„	तिक्त-कषाय रस, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	सर, स्वच्य, मूत्रल, रक्तप्रसादन	रक्त विकार, उपदंश, अर्श, शोथ, उदरकृमिहर	
करीरः (मरूरुहः)	फल, मूल त्वक् १-२ माशा	„	कटु-तिक्तरस, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	रोचक, अनुलोमन, भेदन, शोथहर	अर्श-आमवात विबन्ध, शोथ उदरशूलाध्मानहर	अपक्व फलग्राही पित्तल, पक्व मधुर, पित्तशामक
काकमाची	पंचांग	त्रिदोषशामक	तिक्त कटु रस, किंचिदुष्ण कटु-विपाकी	रक्त प्रसादन, शोथशामक, मूत्रल, स्वर्य, सर, हिक्काहर	शोथ, यकृत्वृद्धि शोथ त्वचा रक्त रोग, वातरक्त, आमवातहर, पित्तरेचक	
कटुकीद्वयम्	मूल-कन्द रेचनार्थ-३-६ माशा सामान्य-५-१० गुंजा	कफ-पित्तहर	तिक्त रस, शीतवीर्य, कटु विपाकी	भेदन, लघु, दीपन यकृत्शोधक, हृदय प्रभावक	अग्निमान्द्य, ज्वर, उदरकृमि, उदररोग रक्त-पित्तहर	आरोग्यवर्धनी वटी
शेफालिका (पारिजातः)	पंचांग	वात-कफहर, पित्तशोधक	कटु-तिक्त रस, उष्णवीर्य कटु-विपाकी	लेखन, स्वेदल अनुलोमन, मूत्रल	आमवात, गृध्रसी, यकृत् वृद्धिकर, अर्श, उदरकृमिहर	
भृंगराजः (मार्कव)	पंचांग	„	कटु-तिक्त रस, उष्णवीर्य कटु-विपाकी	यकृत् क्रिया, उत्तेजक पित्तसारक, रसायन केश्य	अग्निमान्द्य संग्रहणी, पाण्डुरोग यकृत्प्लीहावृद्धिहर	भृंगराज तैल बाल रस गन्धक रसायन
भूम्यामलकी	पंचांग	पित्त-कफहर	तिक्त रस, शीतवीर्य कटु-विपाकी	मृदुरेचन, दीपन, पित्त-सारक, मधुरकहर	जीर्णज्वर, यकृत् विषमज्वर प्लीहा वृद्धिहर	मधुमेह में लाभदायक है

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
यवतिक्ता (शंखिनी) (कालमेघ)	पंचांग ५-१५ रत्ती	त्रिदोषहर, विशेषतः कफ-पित्तहर	तिक्त रस, उष्णवीर्य कटु-विपाकी	सर, सेखन, रक्त-प्रसादन, विषमज्वर यकृत्प्लीहावृद्धिहर, स्वेदल	जीर्णज्वर पाण्डु, कामला-स्थौल्य गुल्मादिहर रक्तविकार, आनाह	कालमेघ नवायस लौह
सप्तला (शातला)	फल	कफ-पित्तहर, किंचित् वातल	तिक्त रस, शीतवीर्य, कटु-विपाकी	सर, स्रोतशोधक, शोथहर	उदरकृमि, उदावर्तहर, उभयतो शोधक	फलियाँ केश कृमिहर है।
सप्तकपि (चिल्लर) (रक्तमूल)	मूल	त्रिदोषशामक पित्तस्रावक	तिक्त-कषाय रस, उष्णवीर्य कटु-विपाकी	सर, स्वेदापनयन शोथ-वेदना स्थापन	उदर रोग, प्रमेह मधुमेह, पित्तरोग यकृत्शोथादिहर	
प्लाही प्रभावक						
रोहीतक	त्वचा छाल	वात-कफहर पित्तरेचक	कटु-तिक्त रस, उष्णवीर्य कटु-विपाकी	सर लेखन, यकृत् प्लीहाशोधक	जीर्णज्वर, स्थौल्य पाण्डु, यकृत्प्लीहारोगहर	रोहीतकारिष्ट रोहीतक लौह
शरपुंखा	पंचांग, क्षार (१-२ माशा)	त्रिदोषहर विशेषतः कफ-वातशामक	कटु-विपाकी तिक्त-कषाय रस, उष्णवीर्य	सर, मूत्रल, विषघ्न यकृत्प्लीहावृद्धि पाण्डु, कामलाहर	यकृतोदर, प्लीहोदर जीर्णज्वर, रक्तविकार गण्डमालाशामक	
हपुषा	फल	वात-कफशामक	कटु-तिक्त-कषाय रस, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	दीपन, ग्राही, लेखन अनुलोमन, शोथ विलयन	आध्मान, गुल्म, अर्श संग्रहणी, यकृत्प्लीहोदरहरम्	
अर्शोघ्न द्रव्य	यह भी यकृत् को	प्रभावित कर तथा	वायु को अनुलोमन करके अर्श को शान्त करता है।			
सूरणद्वयम्	कन्द	वात-कफघ्न, किंचित् पित्तल	कटु-कषाय रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	अनुलोमन, दीपन रक्तस्तम्भन, यकृतोत्तेजक	अर्श रक्तस्राव गुल्म, अग्निमान्द्य आध्मानहर	सूरण वटिका सूरण मोदक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

महानिम्ब	बीज २-४ रत्ती	कफपित्तशामक वातवर्धक	तिक्तरस, कषायानु रस, अनुष्ण, कटु विपाकी	रक्त प्रसादन, कृमिघ्न, अनुलोमन, विषघ्न	अर्श, उदरकृमि (व्रघ्न-गोलकृमि) विषम ज्वरादिहर	७-८ बीज विषप्रभाव करते हैं।
पितरेचक—	यह भी यकृत् का	प्रभावित कर पित्त	रेचन कराते हैं, अतः यकृ	त्रिभावकों में गणना की	गई है।	
अम्लपर्णी (पीतमूला) (रेवन्दचीनी)	मूल-पत्र १-२ माशा रेचनार्थ १-४ रत्ती अग्निवर्धक	पित्त-कफहर	तिक्तरस, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	अनुलोमन, रेचन मूत्रल, आर्तवजनन	विबन्ध, कामला ज्वर, पाण्डु, शोथ, यकृद्रोग वात-रक्तहर	
घृतकुमारी (एलीयकम् कुमारीसार)	मज्जा १-२ तोला १-४ गुंजा	त्रिदोषशामक	तिक्त रस, मधुरानुरस, शीतवीर्य, मधुर-विपाकी	बृंहण-भेदन अनुलोमन, रजः स्रावक, यकृत्शोधक्	ज्वर, अग्निमान्द्य, कष्टार्त्तव, पाण्डु कामलादिहर	कुमार्यासव रजः प्रवर्तनीवटी
गोरोचना	गोपित्त	त्रिदोषहर, विशेषतः वात-कफशामक	तिक्त रस, शीतवीर्य कटु-विपाकी	सर, वर्ण्य, पित्तस्रावक रक्तस्तम्भक	पाण्डु, कामलादि रक्तपित्त, क्षतगर्भस्रावशामक	
गिरिपर्पट (पोडोफाईलम्)	मूल २-४ रत्ती सत्व ½—¼ रत्ती	कफ-पित्तहर पित्तस्रावक	कटु-तिक्त, उष्णवीर्य कटु-विपाकी	लघु, तीक्ष्ण, रूक्ष यकृतोत्तेजक	अग्निमान्द्य रक्तविकार, यकृतोदर, पाण्डु, कामलादिहर	यह कुछ वेदना करता है, अतः सुंठी मिलाकर दें।
कासनी	पंचांग (बीज मूल) ७-१० माशा	कफ-पित्तशामक	तिक्त रस (क्षारीय) शीतवीर्य, कटु-विपाकी	स्रोतशोधक, शोथघ्न, मूत्रल, पित्तसारक, आर्तवजनन	पैत्तिक ज्वर, पाण्डु कामला, जलोदर यकृत्-आमाशय, प्लीहा शोथहर	
दुग्धिका (दुग्ध-फेनी)	मूल, पंचांग ४-१० गुंजा	कफ-पित्तशामक पित्त-स्रावक	तिक्त-कटु रस उष्ण- वीर्य, कटु-विपाकी	रक्तशोधक, मूत्रल स्वेदल, पित्तसारक ज्वरघ्न	ज्वर, पाण्डु यकृतोदर, जलोदरादि शामक	
त्रायमाणा	पंचांग १-३ माशा	पित्त-कफहर	तिक्त रस, शीतवीर्य कटु-विपाकी	यकृतोत्तेजक, दीपन, सर, ज्वरघ्न, शोथहर	गुल्म, हृद्रोग यकृद्रोग, जीर्णज्वर भ्रम, पाण्डुहर,	त्रायमाणा घृत (गुल्म में)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
कपोतपदी (कलम्बा)	मूल ५-१५ रत्ती	पित्त-कफहर	तिक्त रस, उष्णवीर्य कटु-विपाकी	दीपन, पाचन पित्तसारक, कृमिघ्न, अनुलोमन	ज्वर, रोगोपरान्त निर्बलता, कामला, पाण्डु, यकृत्शोथहर	
			रसवह संस्थान प्रभावक			
शोथहरम् (बृहत् पंचमूल)						
अग्निमान्द्य	पंचांग, मूल	वात-कफहर	कटु-तिक्त-कषाय मधुर रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	अनुलोमन, उत्तेजक दीपन, शोथ-वेदनाहर	पाण्डु-यकृतशोथ, अर्श आध्मान, विबन्धशामक	
काश्मरी (गंभारी)	पंचांग, मूलत्वक् फल	त्रिदोषशामक	मधुर-तिक्त-रस, उष्णवीर्य, मधुर-विपाकी	भैष्य, भेदन, दीपन, पाचन, अनुलोमक	आमदोष, भ्रम, दाह, शोथ, वमन, ज्वरादिहर	पक्वफल, शीतल, पित्तशामक है।
पाटलाद्वयम्	पंचांग, मूलत्वक्	,,	कषाय-तिक्त रस, अनुष्ण, मधुर-विपाकी	मूत्रल, अनुलोमन, ग्राही, वल्य	वमन, हिक्का रक्त-पित्त, श्वास, शोथहर	
बिल्व	,, मूलत्वक्	त्रिदोषहर, विशेषकर वात-कफहर	तिक्त-कषाय रस उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	दीपन, पाचन, हृद्य, ग्राही, शोथ, वेदनास्थापन, अनुलोमन	अतिसार, प्रवाहिका हिक्का, आध्मान	कच्चाफल ग्राही, पक्व सर है।
स्योनाक	पंचांग मूलत्वक्	त्रिदोषहर, विशेषकर वात-कफहर	तिक्त-कषाय रस शीतवीर्य कटु-विपाकी	आमपाचक, मूत्रल स्वेदल, वेदनाहर	आमवात, सन्धिशोथ, कास-श्वास, ज्वरादिहर	
बृहत्पंचमूल (संयुक्त) (उक्त पांचों द्रव्य)	मूलत्वकः	त्रिदोषशामक विशेषतः कफ-वात	तिक्त-कषाय-मधुर रस उष्णवीर्य, मधुर-विपाकी	लघु-दीपन, अनुलोमन, शोथ, वेदनाहर	आमवात, ज्वर यकृतादि की शोथ, वातिक वेदनाओं का नाशक	
पुनर्नवाद्वयम्	पंचांग	(श्वेत) वात-कफहर	(श्वेत) मधुर-तिक्त-कषाय उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	अनुलोमन, दीपन	सर्व प्रकार की शोथ	पुनर्नवारिष्ट
		(रक्त) कफपित्तहर	(रक्त) तिक्त, शीतवीर्य	रूक्ष, शोथहर	पाण्डु, उदर, हृदय	पुनर्नवादिमण्डूरः

		वातवर्धक	कटु-विपाकी	श्वेत मर, रक्त, ग्राही, मूत्रल	वृक्क, रोग रक्तप्रदर मूत्रकृच्छ्रादिहरम्	
निर्विषी (षा)	कन्द ४-८ रत्ती	वात-कफशामक	षट्रस, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	रूक्ष, शोथ, वेदना स्थापन, बल्य, पाचन स्रोतशोधक विषघ्न	शोथ, यकृद्रोग वृश्चिककंशादि कामला, कष्टार्तव प्रतिश्याय, पक्षाघातादिहर	
शिंशिपा	काष्ठ, पंचांग	,,	कटु-तिक्त रस, उष्णवीर्य कटु-विपाकी	त्वच्य, विषघ्न कृमिघ्न, कुष्ठहर	दद्रु, पामादि, त्वचारोग, श्वित्र, बस्तिवेदना-शोथहर	पातालयन्त्र द्वारा निष्कासित काष्ठतैल उत्तम त्वचा रोगहर है।
अरण्यजीरक	बीज १-३ माशा	कफ-वातशामक	कटु-तिक्त रस, उष्णवीर्य कटु-विपाकी	त्वच्य, वामक शोथ, वेदनाहर	सब प्रकार की शोथ उदरकृमिहर	यह वाकुची से भिन्न है।
गण्डमालाहर—						
कांचनार कोविदार अश्वमन्तक	त्वक्	कफ-पित्तजित	कषाय रस, शीतवीर्य कटु-विपाकी	रक्तप्रसादन, संग्राही मेदहर, कुष्ठघ्न रक्तस्राव स्तम्भक	गण्डमाला अपची कृमि, गुदभ्रंश रक्त स्रावहर	कांचनारादि गुग्गुलु आदि योग
शाखोटकः	पंचांग	वात-कफशामक	तिक्त रस, उष्णवीर्य कटु-विपाकी, पक्वफल-पित्तशामक	रक्तशोधक, व्रण रोपण त्वच्य	गण्डमाला, व्रण वातिक शोथादिहर	
माणकम् (कासालु)	कन्द	त्रिदोषहर विशेषतः वात-पित्तशामक	मधुर-कटु-कषाय रस, शीतवीर्य, मधुर-विपाकी	ग्राही, स्तम्भक, रूक्ष गुरु विष्टम्भि, शोथघ्न	क्षय, गण्डमाला रक्तपित्त, अर्शहर	कन्दमधुर पथ्य विष्टम्भि

विषघ्न द्रव्य

कासमर्दः	पंचांग	त्रिदोषजित (कफघ्न)	मधुर-तिक्त रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	वामक, रेचक, पित्तसारक, कंठशोधक विषघ्न	विष, आमदोष, हिक्का, कास, दद्रु-प्रमेहहर	भुने हुए बीज संग्राही हैं अन्यथा रेचक

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
छिलहिण्टः (पातालगरुडी)	मूल, पत्र	त्रिदोषहर विशेषतः वात-कफघ्न	तिक्तरस, समशीतोष्ण मधुर विपाकी	सर, सन्तर्पण, वृष्य, रक्तप्रसादन, विषहर यकृतोत्तेजक, बाजीकरण	आमवात, गण्डमाला, अपचीरक्तविकार और विषनाशक ,,	
शिरोषद्वयम्	पंचांग (बीज, त्वचा)	त्रिदोषहर	कषाय-तिक्त-मधुर रस, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	वर्ण्य, रक्त प्रसादन, शोथ, वेदना, विषहर	वमनशामक, गण्डमाला, शोथ, प्रतिश्याय, दद्रुहर	(बाजीकर) बल्य पुष्पबीज नेत्र्य और शुक्र स्तम्भक है।
हरिद्रुः (पीत)	पत्र त्वक् १-३ माशा	कफ-पित्तशामक	तिक्त रस, शीतवीर्य, कटु-विपाकी	वर्ण्य, विषघ्न अनुलोमन, दाह, प्रशमन	जीर्णज्वर, विषवमन तृष्णा, दाह, यकृत् विकारहर	
			हृदय तथा रक्त प्रभावक			
हृद्यम् (हृदयरसायनम्) अर्जुन	त्वक् ३-६ माशा	पित्त-कफशामक	कषाय रस, शीतवीर्य, कटु-विपाकी	ग्राही, स्तम्भन बल्य मेदनाशक	क्षत, क्षय, रक्तस्राव, प्रमेह, मेद, हृदय निर्बलताहर	अर्जुनारिष्ट इन्द्रवटी
कुंकुम (केशर)	(पुष्प केशर) २-४ रत्ती	त्रिदोषहर	कटु-तिक्तरस, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	बल्य, वर्ण्य वाजीकरण, रक्तस्तम्भक, आर्तवजनन यकृतोत्तेजक, बाजीकरण	हृदय, मस्तिष्क दौर्बल्य, प्रतिश्याय, शिर शूल, कष्टार्तवहर वमन-शामक	कुंकुमादितैल (वर्ण्य) केशरपाक (वाजी-कर तथा बल्य)
केतकी	पुष्प पंचांग	कफ-पित्त शामक	मधुर-तिक्त रस, शीतवीर्य, कटु-विपाकी	वर्ण्य, सुगन्धित सौमनस्य-जनन, हृद्य, रक्तप्रसादन	हृदय शैथिल्यम् मनोऽवसाद, स्वेद, शिरः शूलहर	पुष्प-वातपीडा शामक वाजीकरण
तरुणी (शत-पत्री गुलाब)	पुष्प १-२ तोला	त्रिदोषशामक	मधुर-कषाय, कटु-तिक्त रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	हृद्य, बल्य, वर्ण्य, अनु-लोमन, रस, स्निग्ध	हृदय, मस्तिष्क, यकृत्, आमाशय बल्य, विबन्ध, मूर्च्छाहर	(१) शतपत्रादि चूर्ण अम्लपित्ते (२) शतपत्रादि खाण्ड गुलकन्द (सरम्)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

सिम्बितिका (सेव) (Apple)	फल	वातपित्तघ्न, कफकारक	मधुर-अम्ल-कषाय रस, शीतवीर्य मधुर, विपाकी,	संग्राही, मेध्य, बृंहण, शुक्रल, हृदय	हृदय, आमाशय मस्तिष्क-दौर्बल्य अतिसार, जीर्ण-ज्वरादिहर	

हृदयावसादकः—हृदय गति को शिथिल कर तथा रक्तप्रक्षेप को बलवान बनाकर ये हृदय को विश्राम देते हैं।

करवीर	मूलत्वक् $\frac{1}{2}$ से १ गुंजा	वात-कफहर	तिक्त-कषाय रस, उष्णवीर्य, कटु रस; कटु-विपाकी	वामक, रेचक, ज्वरघ्न, हृदय,	विषमज्वर, हृदयदौर्बल्य, शोथशामक	उपविष है
कोलकन्द (वनपलाण्डु)	कन्द (चूर्ण) १-२ रत्ती	वातकफहर कफस्रावक	तिक्त-कटु रस, उष्णवीर्य कटु-विपाकी	हृदय, दौर्बल्य कफस्रावक मूत्रल	जीर्ण कासश्वास, पीनस हृदय दौर्बल्य हर	
तिलपुष्पी (डिजिटेलिस हृत्पत्री)	पत्र चूर्ण $\frac{1}{4}$-$\frac{1}{2}$ गुंजा टिंचर ५-१५ बूंद (सुरासार)	वातकफहर पित्तल	तिक्तरस, उष्णवीर्य कटु-विपाकी	हृदय दौर्बल्य नाशक, आक्षेपशामक, मूत्रल	शोथ, जलोदर हृदय रोगशामक	

रक्त प्रसादन (रक्तशोधक)—

कुमारीलता (उशवा)	पंचांग	त्रिदोषशामक (विशेषतः कफ-पित्त, शामक)	तिक्त रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	मूत्रल, स्वेदल, स्तन्य रक्तशोधक	वातरक्त, उपदंश प्रमेह कुष्ठहर	
खदिर	त्वचा, काष्ठ, सार	,,	तिक्त रस, कषाय रस, शीतवीर्य, कटुविपाकी	कंठ्य, त्वच्य, दन्त्य कृमिघ्न, ग्राही, कुष्ठघ्न, रक्त स्थापन,	रक्तदोष, कुष्ठ, रक्तस्राव प्रमेह मेद, स्वरभेदहर	खदिरारिष्ट (रक्तशोधक) खदिरादिवटी (स्वयं)
मंजिष्ठा	काष्ठ, पंचांग	,,	तिक्त-मधुर रस, उष्णवीर्य, मधुर-विपाकी,	ग्राही; रक्तस्थापन, विषघ्न, त्वच्य धातुशोधक, शोथहर, गर्भाशय उत्तेजक	त्वचारोग, रक्तातिसार उपदंश, कुष्ठ, कष्टार्तव	मंजिष्ठादि क्वाथ

फा० २१

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust
Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
मुण्डीद्वयम्	पंचांग	वात-कफशामक	तिक्त- मधुर रस, उष्णवीर्य वीर्य, कटु-विपाकी,	रक्तशोधक, मूत्रल, शोथघ्न मेध्य, वेदनाहर, यकृतोत्तेजक	अपची, गण्डमाला कुष्ठ, कामला, प्लीहावृद्धि श्लोपदनाशक	
द्वीपान्तरवचा (चोपचीनी)	काष्ठ	,,	तिक्त रस, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	शोथघ्न, स्रोतशोधक, रक्त प्रसादन, वृष्य, मूत्रल, दीपन, आर्तवजनन	वातव्याधि-आमवात, फिरंगोपदंश जीर्णज्वर, सन्धिशोथ, अपस्मारहर	
जलब्राह्मी (हिलमोचिका) काण्डीर (वाम)	पंचांग	,,	तिक्त रस, शीतवीर्य, मधुर-विपाकी	सर, मेध्य; ज्वरघ्न, रक्त-प्रसादन	उन्माद, अपस्मारहर त्वचा रोग, रक्तविकार विबन्धहर	
सारिवाद्वयम्	पंचांग, मूल	त्रिदोषहर	तिक्त-मधुर रस, शीतवीर्य,	रक्त, सन्धिशोधकज्वर, उपदंश,	ज्वर उपदंश,	सारिवाद्यासव
(अनन्तमूलं १			मधुर-विपाकी	मूत्रल, स्वेदल,	कुष्ठ, वात-रक्त	(अनन्तासंग्राहक
कृष्णसारिवा २)	,,	,,	,,	दाहशमन	प्रमेह, रक्तविकारहर	रक्तपित्त प्रशमनानाम्)
रक्तस्तम्भन (रक्तस्रावरोधक)—						
विशल्यकर्णी अथापान	पत्र, स्वरस, पंचांग	वात-कफशामक	तिक्त-कटु रस, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी,	रेचन, वामक ज्वरघ्न, व्रणरोपण, रक्त स्तम्भक	व्रणक्षतादि से होने वाले रक्तस्राव, रक्तपित्त, विषम ज्वरहर,	कम मात्रा में पौष्टिक, बड़ी मात्रा में रेचक-वामक
अस्थिसंहार	काण्ड, स्वरस पंचांग	वात-कफहर पित्तल	मधुराम्ल कटु रस, उष्णवीर्य कटु (अम्ल) विपाकी	सर, रक्तशोधक, संग्राही, भग्नसन्धानीय	उपदंश, अस्थिभग्न, रक्तस्राव, वातरक्त उदर कृमिहर	अस्थिसंहार तैल
असन	काष्ठ, निर्यास त्वचा, पुष्प	कफ-पित्तशामक वातवर्धक	कटु-कषाय रस, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	शोथ, कुष्ठघ्न, संग्राही, स्तम्भक त्वच्य, केश्य	कंठदोष, कुष्ठ, वीसर्पश्वित्र प्रमेह, स्थौल्यहर	असनपुष्प वातल, रस में तिक्त मधुर-विपाकी
कुम्भी (वारि-पर्णी)	पंचांग स्वरस	त्रिदोषशामक	तिक्तमधुर, शीतवीर्य, मधुर-विपाकी	कृमि-कुष्ठघ्न, रक्तस्तम्भक, सर, दाहप्रशमन,	रक्तस्राव, कण्डु कुष्ठादि, त्वचारोग नाशक तथा रक्तपित्तादि हर	

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust
Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

कुकुन्दर (ताम्रचूड) (कुम्कुरच्छदी)	पंचांग	वात-कफ शामक	कटु-तिक्त रस, उष्णवीर्य कटु-विपाकी	रक्तस्तम्भक, दीपन, विषूचिका, रक्तस्राव, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक	रक्तार्श, रक्तप्रदर, विषूचिका, रक्तस्राव वाह्यकृमिहर	मूल, मुखशोध-हर है।
कुसुम्भः	बीज-तैल	पित्त-कफहर वातल	कटु-रस, उष्णवीर्य कटु-विपाकी	वेदनाहर रक्तस्तम्भक, कृमिघ्न	आमवात रक्तार्श, उदर कृमिहर	
रक्तबोल (हीरादमन)	निर्यास १-२ माशा	पित्त-कफशामक	कटु-कषाय रस, शीतवीर्य, कटु-विपाकी	ग्राही, रक्तस्राव, स्तम्भक, संकोचक, व्रणरोपण	व्रण क्षत में से रक्तस्राव, रक्तातीसार, प्रदरादिहर	
लाक्षा (लाख)	कीटगृह	पित्त-कफशामक	कटु-रस, कषाय, अनुष्ण कटु विपाकी	स्वच्य, स्तम्भन ग्राही, संकोचक	रक्तस्राव, रक्तपित्त, उरःक्षत जीर्णज्वर रक्तर्शादिशामक	
पुन्नागः (सुरपुन्नागश्च)	बीज, तैल, पुष्प केसर	कफ-पित्तशामक	तिक्तकषाय मधुर रस, शीतवीर्य; कटु विपाकी	मूत्रल, कृमिघ्न, शोथवेदना हर रक्तस्तम्भक	रक्तपित्त, पूयमेह आमवात प्रवाहिका रक्तप्रदरादिहर	
पर्णबीज (हिमसागर)	पत्र	त्रिदोषहर (वात-पित्त)	कषाय, अम्लरस, शीतवीर्य कटु-विपाकी	व्रणरोपक, रक्त स्कन्दन, मूत्रल, यकृदुत्तेजक	रक्तार्श, उरावर्त उरःक्षत क्षत से रक्तस्राव मूत्रघात, वस्ति, शोथ रक्तप्रवाहिकादिहर	

हृदयोत्तेजक

कर्पूर	सत्व १-२ रत्ती	त्रिदोषहर (विशेषतः पित्त-कफ शामक)	तिक्त-कटु-मधुर रस, शीतवीर्य, कटु-विपाकी	सुगन्धि, पाचन, अनुलोमन चक्षुष्य स्तम्भक, कृमिघ्न	वमन, अतिसार विषूचिका उदरशूल आध्मान विष; दुर्गन्धिहर वाजीकरण	कर्पूरासव कर्पूररस वटी चन्द्रोदयमकरध्वज वटी आदि
कुन्द (काफी)	बीज पत्र (१-२½ रत्ती)	कफ-पित्तशामक	कटु-तिक्त रस; उष्णवीर्य कटु-विपाकी	वातनाडी उत्तेजक मूत्रल, स्वेदल	हृदयशैथिल्य वातिक, वेदनाएँ निर्बलता, ज्वरादिहर	

मूत्रवह स्रोतस् प्रभावक

मूत्रविरंजनीयम्

एरका	काण्ड	पित्तशामक, वात-कफवर्धक	मधुर, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	मूत्रल, दाह, तृषा तापहर	मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह अश्मरी, मूत्रकृच्छ्रशामक	

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
कर्कटी (एर्वालक)	बीज	पित्तशामक, वात-कफवर्धक	मधुर (तिक्त भी भेद है) शीतवीर्य, मधुर-विपाकी	गुरु, संग्राही मूत्रल	मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, शर्करा, ज्वर, संग्रहणीहर	
कालिन्दा	,,	,,	,,	,, विष्टम्भि, पौष्टिक	मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, रक्त-पित्तहर	
त्रपुषम्	,,	,,	,,	मूत्रल, शीतल, लघु, दाहप्रशमन	वमन, रक्तपित्त मूत्रकृच्छ्र, दाहतृषाहर	
दशांगुलम् (तर्बूज)	,,	,,	,,	,,	,,	
नलः	पंचांग	कफ-पित्तहर वातवर्धक	मधुर-तिक्त-कषाय रस शीतवीर्य, मधुर-विपाकी	मूत्रल, वस्तिशोथहर,	अश्मरी, मूत्रकृच्छ, वस्ति-शोथहर	
यव (यवक्षार)	बीज क्षार १-३ माशा	,,	मधुर-कषायानुरस शीतवीर्य, मधुर-विपाकी	लघु, वृष्य, मूत्रल, स्थौल्यहर, बल्य	मलशोध, मूत्र कृच्छ्र, रक्त-पित्त, अर्श, प्लीहायकृत् वृद्धिहर	क्षार कफ-स्रावक तथा रजः-प्रवर्तक है।
शाकः	बीज, पुष्प	बीज-त्रिदोषशामक पुष्प-वातकोपक	कषायरस, शीतवीर्य, मधुर-विपाकी	रक्तप्रसादन, मूत्रल, त्वग्दोषर, गर्भस्थापक	रक्त-पित्त, प्रमेह, दाह गर्भस्रावादिहर	पुष्प प्रमेहघ्न कषाय-तिक्त रस वाला है।
सुरंजनम् (तिक्त, सुरंजान)	कन्द १-३ रत्ती	वात-कफशामक	तिक्तरस, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	रूक्ष, शोथ, वेदनाहर, वस्तिशोथहर अनुलोमन,	आमवात, वातरक्त, अर्श वात, वेदनाहर	इसकी रस क्रिया हिरनतूतिया प्रसिद्ध है।
,, (मधुर)	कन्द १-३ माशा	,,	मधुर-रस, उष्णवीर्य मधुर-विपाकी	कफस्रावक, शोथघ्न, वाजीकरण, पित्तसारक	वातरक्त गृध्रसी, शोथ, वेदना शामक	
मूत्रल—						
ईक्षु	रस, दण्ड, सत्व (शर्करा)	वात-पित्तशामक कफवर्धक	मधुर, शीतवीर्य मधुर-विपाकी	मूत्रल, पौष्टिक, सारक, वृष्य, मेद कृमिहर	रक्तपित्त, दाह, मूत्रकृच्छ्र, उरःक्षत, क्षत, क्षीणताहर	वासी इक्षु रस कषायाम्लानुरसी विदाही, विष्टम्भि

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

						होता है। उसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।
काशः	मूल	वातपित्तशामक	मधुर-तिक्त रस, शीतवीर्य, मधुर-विपाकी	मूत्रल, वल्य, तृषाहर रक्तप्रसादन	रक्तपित्त, क्षत, क्षय, विसर्प मूत्रकृच्छ्र, दाह, अश्मरीहर, स्तन्यवर्धक	
कुशः (दर्भ)	"	त्रिदोषहर, विशेषतः कफ-पित्तशामक	मधुर-कषाय रस, शीतवीर्य मधुर-विपाकी	स्निग्ध, मूत्रल, वस्ति, मूत्राशय रोग, तृषाहर	विसर्प, दाह, मूत्रकृच्छ्र उरः क्षत, अश्मरी, रक्तपित्त रक्तप्रदरहर	कुशावलेह
दूर्वा	पंचाग मूल	त्रिदोषहर, विशेषतः कफ-पित्त, शामक	मधुर-तिक्त-कषाय रस, शीतवीर्य, मधुर-विपाकी	जीवनीय प्रजास्थापन रक्त-पित्तप्रसादन,	रक्तपित्त, दाह, उरःक्षत, गर्भस्राव, ज्वर, तृष्णा रक्तष्ठीवन शामक	दूर्वादि घृत
शरः (मुंज)	मूल	त्रिदोषहर	कषाय रस, अनुष्ण मधुर-विपाकी	वृष्य, मूत्रल, रक्त-पित्त प्रसादन	मूत्र तथा वस्तिरोग वीसर्य दाह-तृष्णाहर	उक्त पाँचों द्रव्य मिलकर, 'पंचतृण मूल कहे जाते हैं। यह मूत्रल वर्ग है।
मूत्र रेचक						
कंकोल	फल, तेल-१-३ माशा तेल-५-२० बूँद	वात-कफहर	कटु-तिक्त, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	सुगन्धी, तीक्ष्ण, अनुलोमन, उत्तेजक, वृष्य मूत्रल, हृद्य	पूयमेह, मूत्रकृच्छ्र कष्टार्तव, प्रमेह स्वप्न-दोषादिहर	कंकोलादिचूर्ण
कुन्दुरु (लोबानः) (शल्लकी निर्यासि)	निर्यास (१-३ माशा)	"	कटु-तिक्त, कषाय-मधुर, शीतवीर्य, कटु-विपाकी	त्वच्य, कृमिघ्न, संग्राही मूत्रल, कृमिघ्न, व्रण रोपक शोधक	ज्वर, अतिस्वेद, प्रदर-अतिसार त्वचारोग, दुर्गन्धि, हर	वृक्ष का नाम शल्लक भी है
सिल्हक (तुरुष्कः, शिलारस)	निर्यासि	"	कटु-तिक्त कषाय मधुर कटु-विपाकी, उष्णवीर्य	मूत्र रेचक, उत्तेजक कृमिघ्न, वृष्य, कफ-पित्तहर, आर्तवजनन	त्वचा के कण्डु आदि रोग, पूयमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, शोथ, जीर्णकासहर	

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
				अश्मरीहर		
कुलत्थः	बीज	अश्मरीहर, वात-कफहर, पित्त-वर्धक	कषाय-मधुर, उष्णवीर्य, मधुर-विपाकी	मूत्रल, संग्राही, अवृष्य, अनुलोमन, स्वेदापनयन, शोथहर	अश्मरी, मूत्राघात मूत्रकृच्छ्र, हिक्कादिहर	बीजों का क्वाथ फान्ट उपयोगी है बीज रक्त पित्त-दूषक है।
पाषाणभेद	मूल-पंचाग	त्रिदोषहर	तिक्त रस, कषायानुरस, शीतवीर्य, मधुर-विपाकी	वस्तिशोधक (मूत्रल) अनुलोमन, भेदन, शूलगुल्म-हर	अश्मरी, शर्करा मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, वस्ति, शिश्नशूल गुल्महर	
वरुणः	त्वचा	वात-कफहर पित्तकर	तिक्त कटु-कषाय मधुर रस, उष्णवीर्य, कटुविपाकी	दीपन, तीक्ष्ण अनुलोमन, भेदन शोथहर, पाचक	अश्मरी, मूत्राघात वस्तिशोथ, गण्डमाला अन्तर्विद्रधि, वात-रक्तादि-शामक	वरुणादिघृत वरुणादि क्वाथ
शैलेयम् शिलापुष्प	पंचांग	कफ-पित्तजित्	तिक्त रस, शीतवीर्य, कटु-कटु विपाकी	संग्राही, रूक्ष, मूत्रल, रक्तशोधक, रक्तस्तम्भक शोथहर	अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र वातरक्त, रक्तस्राव, शोथादिहर	
				मूत्र संग्रहणीय वर्ग		
अश्वत्थः (पिप्पलः)	पंचांग	कफ-पित्तशामक वातवर्धक	कषायरस, शीतवीर्य कटुविपाकी	संग्राही, रूक्ष, रक्तस्तम्भक, व्रणशोधक, रोपक, दाहहर,	व्रण, रूक्ष व्रणशोथ, रक्तस्राव योनिशोथ, प्रमेह, रक्त-पित्त, वमन शामक	पक्व फल रस तथा अपक्व मूत्र संग्राहक और प्रमेह हर है।
उदुम्बर	पंचांग	कफ-पित्त शामक वातवर्धक	कषायरस, शीतवीर्य कटुविपाकी	संग्राही, रूक्ष, रक्तस्तम्भक, स्तम्भक, व्रणशोधक, रोपक, दाहहर	व्रणशोथ-रक्तस्राव, योनिशोथ, प्रमेह, रक्तपित्त वमन शामक	पक्व फल मधुर पौष्टिक तथा अपक्व मूत्र संग्राहक इसका सत्व तथा क्वाथ शोथ-व्रण-क्षत शामक और रोपक है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

न्यग्रोध	(वट) पंचांग, क्षीर	कफ-पित्तशामक वातवर्धक	कषायरस, शीतवीर्य कटु-विपाकी	संग्राही, रूक्ष रक्तसाम्भक, स्तम्भक, व्रणशोधक, रोपक दाहहर	योनिदोष, रक्त-पित्त, विसर्प, व्रण रोपक तथा वर्ण्य	वट दुग्ध अति स्तम्भक है।
प्लक्षम्	(पिप्परी) ,,	,,	,,	,,	,,	

वक्तव्य— अश्वत्थ, उदुम्वर, वट, प्लक्ष तथा पारिश पिप्पल (कपीतन) 'पंचक्षीरीवृक्ष है, इनकी त्वचा से 'पंचवल्कल' तथा पत्रों से 'पंचपल्लव' ये तीन वर्ग बनते हैं। ये तीनों ही गण कषाय-शीतल-कटु-विपाकी, व्रणशोधक-रोपक, स्तम्भक, दाह, विसर्प अतिसारादिशामक हैं। पारिश पिप्पल में क्षीर नहीं होता, अतः उसे क्षीरीवर्ग, में सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए। उसके गुण भी अन्य चारों से भिन्न है। वह त्वचारोग, शोथहर है। अतः, त्वच्य वर्ग में उसका वर्णन किया गया है। उसके स्थान पर अंजीर (काकोदुम्बर) को ग्रहण करना उत्तम है।

जम्बुः	फल, पंचांग	कफ-पित्तशामक वातल	मधुराम्ल, कषाय, शीतवीर्य, कटु-विपाकी	रोचक, संग्राही, विष्टम्भि, रूक्ष दाहशामक	अतिसार, संग्रहणी, रक्त-पित्त प्रमेह-मधुमेह, शामक विबन्ध, आध्मानकारक	

मधुरक नाशक वर्ग

मधुनाशिनी (गुडमारकः)	पंचांग	पित्त-कफहर	तिक्त-कषाय रस, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	वामक कृमि तथा मधुमेहहर	पुष्प प्रमेह, कासश्वास, व्रण, कृमिदाह मधुमेहहर	
मार्कण्डिका तरवट सनाय-भेद	बीज, पुष्प पत्र	,,	तिक्त-कषाय रस, शीतवीर्य, कटु-विपाकी	पुष्प-बीज संग्राही विष प्रमेह, मधु मेहहर केश्य	वमन, दाहहर, शोफ-गुल्म-श्वास, पुष्प तथा बीज, मधुमेह प्रमेह, रक्तातिसारादि शामक है।	
विजयसार बीजक	काष्ठ, निर्यास-सत्व	त्रिदोषहर	कषाय-तिक्त रस, शीतवीर्य, कटु-विपाकी	संग्राही, त्वच्य, रक्तस्तम्भक	त्वचारोग, श्वित्र रक्त विकार	प्रमेह, अतिसार, मधुमेहहर

प्राणवह स्रोतस् (श्वाससंस्थान) प्रभावक द्रव्याणि

कफहर (कफघ्न) वर्ग

कुरन्टकः (सैरेयक)	पंचांग	कफ-पित्तशामक	मधुर-तिक्त रस, उष्णवीर्य कटु-विपाकी	कफघ्न, केश्य, दन्त्य, रक्त-प्रसादन, ग्राही	कास-श्वास, त्वचारोग, ज्वर-दाह, उपदंश-वात-रक्तहर	केवल मधुर रसी ही शीतवीर्य मधुर विपाकी है। इनके चार भेद हैं।

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust
Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
कोलबदर (कर्कन्धु-उन्नाव)	फल	पित्तानिलहर कफस्रावक	मधुर-मधुराम्ल, कषाय रस शीतवीर्य, मधुर-विपाकी	बृंहण, पिच्छिल, शीतल, विष्टम्भि, रस	वातिक या पैत्तिककासश्वास, तृष्णा, प्रवाहिका, उरःक्षत, रक्तविकारशामक	
गोजिव्हा	पंचाँग विशेषतः त्वक्	कफ-पित्तहर	मधुर-कषाय, तिक्त रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	लघु, कफहर, दाहशामक हृदय, मस्तिष्क बलप्रद	कास-श्वास-प्रतिश्याय, अरुचि मानसिक तथा हृद्दौर्बल्य	गोजिव्हादि क्वाथ अर्कगावजवा
जूफा	पंचांग विशेषतः पुष्प	वात-कफशामक	तिक्त, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	रूक्ष, लेखन, अनुलोमन, पित्त-रेचक, स्रोतशोधक	कफज, कासश्वास, प्रतिश्याय, श्वसनज्वर, उदरकृमि, कामला, पाण्डुहर, यकृद्रेचक	
तालीसपत्र	पत्र (४–८ रत्ती)	वात-कफहर	रस में मधुर-तिक्त-कटु, वीर्य में उष्ण, विपाक में कटु	उत्तेजक, अनुलोमन, कफ-छेदन कास-वेगहर	कासश्वास, क्षय, वमन अग्नि-मांद्यहर	तालिसादिचूर्ण
तोदरी	बीज, $\frac{1}{2}$-१ तोला	,,	कटु-रस, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	स्निग्ध, पिच्छिल, वातहर, उत्तेजक, वीर्यस्तम्भक तथा कफहर	श्वासकास, फुप्फुस शोथ वेदनाहर, पाचकग्राहा	श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण ये चार भेद हैं।
वनपुष्पकम	पत्र, तथा पुष्प	घात-पित्तशामक	मधुर तिक्तरस, शीतवीर्य,	मूत्रल, स्वर्य, स्वेदल	प्रतिश्याय, कास,	मृदु रेचन के पश्चात्
(बनफशा)	(६ माशा १ तोला)	कफस्रावक	मधुर-विपाकी	ज्वरघ्न, मृदुरेचक, रक्तप्रसादन	स्वरभेद तथा फुप्फुस आमाशय तथा यकृत् की पैतिक शोथहर	यह संग्राहक का कार्य भी करता है।
वासा	पंचांग	पित्त-कफशामक	तिक्त-कषाय रस, शीतवीर्य, कटु-विपाकी	स्वर्य, कफहर, रक्त स्राव रोधक	कास, श्वास, रक्तपित्त रक्तष्ठीवन, क्षय, वातजकास, जीर्णज्वरहर	वासावलेह वासाकूष्माण्ड (खण्ड) वासा-शार्कर
श्लेष्मातक (शेलुः)	प्रायः फल, छाल	पित्त-कफशामक वातल	मधुर-कषाय रस, शीतवीर्य कटु-विपाकी	स्निग्ध, कफस्रावक दाहहर, ग्राही	फल-वातिक-कासश्वासहर जीर्णातिसार मुखशोष, तृष्णादिहर	छाल-(त्वक्) उष्ण वीर्य, सर तथा केश्य है।

तुगाक्षीरी	सत्व	वातपित्तशामक कफस्रावक	मधुर रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	स्निग्ध, बल्य, पौष्टिक, तृषा, दाहहर	मुखशोथ, कास, श्वास, ज्वर, क्षय, व्रणनाशक	यह वांशी (वंश रोचना) से पृथक् द्रव्य है।
			कासश्वास वेगहर			
कंटकारी द्वयम्	पंचांग	वातकफहर	कटु, तिक्त रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	अनुलोमन, दीपन, पाचन, शोथ, पीड़ा, कफहर, स्वेदन, रक्तप्रसादन	कासश्वास, पार्श्व शूल, प्रतिश्याय, ज्वर, दन्त पीड़ादि हर	बृहती ग्राही तथा क्षुद्रा रेचक है। (कंटकार्यवलेह) व्याघ्री हरीतकी
कर्कट श्रृंगी	कीटगृह	,,	तिक्त कषाय रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	अनुलोमन, ग्राही, शोथ, कफ, रक्तस्रावहर	हिक्का, कासश्वास, ऊर्ध्ववात क्षय, फुप्फुस शोथहर	श्रृंग्यादि चूर्ण बालचा तुर्भद्र चूर्ण केवल श्रृंगी की अपेक्षा कर्कट उत्तम है। श्रृंगी
धन्वयास (दुरालभा-यवासश्च)	पंचांग	त्रिदोषशामक	मधुर, तिक्त, कषाय, रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	स्निग्ध, सर, कफस्रावक, रक्तवर्धक, रक्तप्रसादन,	ज्वर, श्रम, प्रतिश्याय, कासदाहहर	
यासशर्करा तुरंजबीन	सत्वस्वरूप सत्व	,,	,,	मृदुरेचक, सर	क्षय, जीर्णज्वरादि में रेचनार्थ	
कुष्ठ	मूल (४ रत्ती-१ माशा)	वातकफशामक	मधुर कटु तिक्त रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	उत्तेजक, अनुलोमन कफघ्न, शोथहर शुक्ल, शुक्रशोधक	कासश्वास, हिक्का, पार्श्वशूल, कष्टार्तव दुर्गन्धि-वातरक्तादि-हर	
पुष्करमूल	मूल ,,	,,	कटु तिक्तरस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	स्वेदल, अनुलोमन कफघ्न, पार्श्वशूलनुत्	श्वासकास, हिक्का फुप्फुस शोथ, वातकफ, ज्वरादिहर	
भारंगी (भार्गी)	(मूल १-३ माशा)	वातकफशामक	कटु तिक्त कषाय, उष्ण कटु विपाकी	आमपाचक, रुक्ष, लघुदीपन, अनुलोमन, कफघ्न, पार्श्वशूलनुत्, शोथहर	कास, श्वास, पीनस फुप्फुस-शोथ वातकफ ज्वरादिहर	भार्ङ्यादिगुड़ प्रतिश्याय

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
वंशरोचना	सत्व (४ रत्ती १ माशा)	वातपित्तशामक	कटु-मधुर कषाय, रस, शीत-वीर्य, मधुर विपाकी	हृद्य, बृंहण, बल्य कफघ्न	कास, क्षय, श्वास, जीर्णज्वर अतिसारहर, पित्तजवमन मुखरोग	(१) सितोपलादि चूर्ण
शटीद्वयम् (कर्चूरः)	कन्द (१-३ माशा) कन्द	त्रिदोषहर, विशेषतः कफवातशामक	कटुतिक्त, कषाय, उष्णवीर्य कटु विपाकी	लघु, ग्राही, तीक्ष्ण, स्वर्य, अनुलोमन, शोथ शामक, हिक्कानिग्रहण, फुफ्फुस, शोथशामक	श्वासवेगहर प्रतिश्याय, पीनस, स्वरभेद, वमन, हिक्का उदरशूल, मल, दौर्गन्ध्यहर	छर्द्रिरिपु चन्द्रप्रभावटी शट्यादि क्वाथ
शताब (गुच्छ पत्राः)	पंचांग, स्वरस, ४ माशा से १ तोला	वातकफशामक	कटु तिक्त रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	शूल उष्ण, सारक कफघ्न वातानुलोमक, श्लेष्घ्न, आक्षेपहर, आर्तवप्रवर्तक	कासश्वास वेग, उदराध्मान शूल, अनार्तव, गुल्म अर्धांगवातादिरोगहर प्लीहारोग	निरन्तर प्रयोग से गर्भपात की आशंका है ।
सोमलता	पंचांग-सत्व	त्रिदोषशामक	कषाय कटुतिक्त रस, कटु विपाकी, उष्णवीर्य	सूत्रल, अनुलोमन, यकृतोत्तेजक कास, श्वास वेगहर	कास, श्वास, आध्मान रक्तस्राव रोधक	
श्लेष्मपूतिहर वर्ग						
तैलपर्णी (युकेलिप्टस)	पत्र-तैल (२-५ बूंद)	वातकफहर	कटु तिक्त, कषाय, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	पूतिहा, कृमि-कफघ्न स्वेदल, मूत्रल, उत्तेजक	वातकफजज्वर-प्रतिश्याय, जीर्णकास, श्वासवेग, आमवात, हृद्दौर्बल्य, जीर्णपूयमेह हर	
सालः (चीड़) श्रीवास (गन्धविरोजा)	काष्ठ तैल ३-१० बूंद सत्व ६-१२ रत्ती	वातकफहर ,,	कटुतिक्त, उष्णवीर्य मधुर रस, कटु विपाकी उष्णवीर्य, कटुविपाकी	उत्तेजक, कफस्रावक कफ-पूति, कृमिहर, त्वचा दोष, शोथ, व्रणशामक मूत्रल	पूयमेह, जीर्णकास श्वास, कण्डु, आमवात शोथहर	

प्रजनन संस्थान प्रभावक द्रव्य

नारी प्रजननगां प्रभावक

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
प्रजास्थापन या गर्भस्थापन वर्ग						
कमल	पंचांग, विशेषतः	पत्र-पित्तशामक,	मधुर रस, तिक्तकषाय, अनुरस	बीजः-गुरु, बल्य, पौष्टिक	बीजः-गर्भस्राव शोथ,	अरविंदासव, बीज,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

	पत्र, पुष्पकेशर बीज	वातकफवर्धक बीज:-पित्तकफ शामक, वातल	शीतवीर्य, मधुर विपाकी	संग्राही, प्रजास्थापन, पुष्प-पत्र हृद्य, दाह, ताप, शामक, रक्तप्रसादन, मूत्रल	रक्तस्राव, दौर्बल्य, वमनहर पत्रादि-ज्वरदाह रक्तप्रदर वमन, तृषामूर्छादिहर स्तन्यवर्धक	मात्रा-६ माशा केशर-५-१५ रत्ती रक्त पीत, श्वेत, नील भेद है। गुणों में सब समान हैं।
कसेरुकः	कन्द	पित्तशामक, वात-कफवर्धक	मधुर, कषाय रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	शुक्रल संग्राही, गुरु,दाह, छर्दि-प्रशमन, प्रजास्थापन, विष्टम्भि, ग्राही, स्तन्यवर्धक	तृषा-वमन, गर्भस्राव, अति-सारहर	
जीवन्ती	पंचांग	त्रिदोषहर	मधुररस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	रसायन, जीवनीय प्रजा-स्थापन, चक्षुष्य, ग्राही	हृदयदौर्बल्य, वातव्याधि गर्भस्राव, रक्तपित्त, क्षय, ज्वर, दाह, दृष्टिमान्द्यहर	एक तिक्त भेद भी है।
पुत्रंजीवी	पंचांग बीज	पित्तशामक, वातकफप्रद	मधुर (लवणानुरस) शीत-वीर्य, मधुर विपाकी,	रुक्ष, वृष्य, गुरु, मलमूत्र-प्रवर्तक, गर्भप्रद	दौर्बल्य गर्भस्राव, व्रणविसर्प शामक	
प्रियंगु (गन्धप्रियंगुः)	बीज	त्रिदोषहर	तिक्तकषाय रस, शीतवीर्य कटु विपाकी	ज्वर, दाह, गर्भस्राव हर संग्राही, गुरु, अतिस्वेदहर	रक्तपित्त, रक्तस्राव, गर्भस्राव, प्रदर, दाह, तृष्णा-अतिस्वेद-शामक	
पद्मकाष्ठ	काष्ठ, त्वक् (५-१५ रत्ती)	कफपित्तशामक वातवर्धक	तिक्तकषाय रस, शीतवीर्य, कटु विपाकी	स्निग्ध, स्तम्भक, प्रजा-स्थापन, ताप, दाहहर	ज्वर-वमन-दाह मूत्रकृच्छ्र गर्भस्रावादिहर	
मखानः	फल	वातकफशामक	मधुररस, कषायानुरस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	पौष्टिक, रुक्ष विष्टम्भि, स्तम्भन	ज्वर, वमन, दाह, गर्भस्राव शोथहर	
शिवलिंगी	बीज	”	कटु तिक्त रस, उष्णवीर्य मधुर विपाकी	रसायन, प्रजास्थापन, रसबन्धनी, शोथ, सिघमन्धनाशक	गर्भस्राव, शोथ, प्रजास्थापनार्थ तथा प्रदर, प्रमेह, दाह में प्रयोग	
शृंगाटक	फल	पित्तशामक वात-कफवर्धक	मधुररस, कषायानुरस शीतवीर्य, मधुर विपाकी	गुरु, वृष्य, ग्राही विष्टम्भि, प्रजास्थापन	क्षीणता, गर्भस्राव, अतिसारादि शामक	

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
			गर्भाशय रसायन (प्रदरहर) वर्ग			
अशोक	त्वचा	कफपित्तशामक वातल	कषायतिक्त रस, शीतवीर्य, कटु विपाकी	वर्ण्य-रक्त-वेदना स्थापन ग्राही, प्रदरहर, श्वेत प्रदर, श्वेत शोषादिहर	योनिरोग, आर्तव अनियमितता, रक्त श्वेत प्रदर	अशोकारिष्ट अशोक घृत
अण्ड कपाल	अण्डावरण (४ रत्ती-१ माशा)	कफहर	मधुर कषाय, शीतवीर्य कटुविपाकी	ग्राही, पौष्टिक, स्रावस्तम्भक, बल्य	प्रदर, अत्यार्तव, प्रदर-प्रमेह, अस्थि शोषहरम्	कुक्कुटाण्डत्वक्मुक्ता भस्म
लोध्र	त्वक्	कफपित, कफ-शामक	"	ग्राही, चक्षुष्य, स्तम्भन, शोथ-स्रावशामक	नेत्ररोग, प्रमेह प्रदर, अत्यार्तव	लोध्रासव नेत्रबिन्दु
जया	पुष्प, त्वक्, मूल	वातपित्त कफशामक	तिक्त रस, शीतवीर्य, कटु-विपाकी	पुष्प:-केश्य, प्रजास्थापन मूलत्वक् ग्राही, रक्तस्राव	रक्त, श्वेत प्रदर रक्तार्श प्रमेहहर	
			आर्तव प्रजनन (रज:प्रवर्तक) वर्ग			
कल्वंजिका (उपकुंचिका)	बीज	वातकफहर, पित्त-वर्धक	कटुतिक्त रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	अग्निदीपन, उत्तेजक स्वेदल, गर्भाशयशोधक अनुलोमन, कृमिघ्न	अग्निमान्द्य, उदराध्मान शूल, अतिसार, ग्रहणी कष्टार्तवहर	
कलिहारी (लांगली)	मूल (१-२ रत्ती दीपन) (३-४ रत्ती गर्भ-पातक)	"	"	पाचक-रेचक, गर्भपात शोथहर, वामक	कष्टप्रसव, गण्डमाला अर्शोहर	उपविष है। प्रायः अन्तः उपयोग नहीं किया जाता।
कार्पासी	पंचांग मूल पत्र पुष्प	मूल-वातकफशामक, पितवर्धक, फल:-वातपित्तशामक कफवर्धक	मधुर कषाय रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी मधुर रस, शीतवीर्य मधुर विपाकी	मूल-रज: प्रवर्तक, वामक, रेचक, शोथहर, बीज-वृष्य स्तन्यवर्धक, शीतल, बल्य	कष्टार्तव, कष्टप्रसूति, कटिशूलहर, वातक व्याधियाँ, क्षीणता, वातशोथादिहर	पत्र-मूत्रल, कामलाहर तथा कर्णस्राव हर हैं।
गृजनकम् (गाजर)	बीज-फल,	वातकफशामक, पित्तल	कटुतिक्त रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	दीपन, अनुलोमन, हृदय, आर्तवप्रवर्तक, वेदना, शूल-हर	अग्निमान्द्य, उदराध्मान, शूल, गुल्म, कष्टार्तवहर	
ताम्र (अर्गट)	सत्व, कीट	कफपित्तशामक	तिक्त रस, उष्णवीर्य, कटु	उत्तेजक, तीक्ष्ण, गर्भाशय	गर्भाशय, शैथिल्य प्रसवान्तर	

(अन्नामयः)		वातल	विपाकी	संकोचक, गर्भाशयशोधक, गर्भाशयरक्तस्रावशामक	रक्तस्रावहर तथा गर्भाशय संकोचक अपरा पातक	
पीवरी (पिशाचकार्पासो)	मूल, त्वक्	वातकफशामक	कटुतिक्त रस, उष्णवीर्य, कट विपाकी	उत्तेजक, वेदनास्थापक गर्भाशयशोधक, पूयमेह नाशक	रजोरोध, कष्टप्रसूति, अनियमितआर्त्तवनाशक	
मिश्रेया	बीज	,,	,,	ग्राही, दीपन, पाचन, अनुलोमन, स्वेदल, कृमिघ्न, योनिशोधक, स्तन्यजनन	उदरशूल, आध्मान, उदरकृमि, अतिसार कष्टार्तव, योनिशैथिल्यशामक	
वंशः	बीज, पत्रांकुर	बीज-पित्तकफहर वातल, पत्र-कफहर, वातपित्तकर	मधुर कषाय रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	लेखन, स्वेदल, गर्भाशय शोधन, बस्तिशोधन	अनार्तव, कष्टार्तव, प्रमेह, मेदोरोगहर	अन्य भाग शीतवीर्य, मधुरविपाकी तथा त्वचा रोगहर है।
शण	बीज, मूल	बीज-कफहर पत्र-वातपित्तशामक	बीज-अम्लकटु कषाय रस, उष्णवीर्य, कटुविपाकी	वामक, रेचक, रजः प्रवर्तक, रक्तशोधक, वातानुलोमन	कष्टप्रसूति, कष्टार्तव वातव्याधियाँ	पत्र-शीतवीर्य, तथा त्वचा रोग हर है।
हरमल	पंचांग-बीज (१-३ माशा)	वातकफशामक	तिक्तरस, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	वेदना-स्थापन, रक्त-शोधक आर्तवजनन, स्रोतशोधक	कटिशूल, बस्तिशूल, आध्मान, रजःकृच्छ्रता-योनिशूलादि शामक, वातव्याधिनाशक, मक्कलशूलहर	

योनिशूल (मक्कलशूल-कटिशूल) शामक वर्ग

चन्द्रशूरः	बीज	वातकफहर	कटुतिक्त रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	वृष्य, वाजीकरण, आर्तवजनन, अनुलोमन	हिक्का, अतिस्राव, कटिशूल, गुल्मादिहर
मेथिका	बीज-पत्र	वातकफहर पित्तल	कटुतिक्त, उष्णवीर्य कटु विपाकी	रोचक, अनुलोमन, स्वेदल, कृमिघ्न, अशुक्रल	कष्टार्तव, कटिशूल, प्रदर, वातव्याधिशामक उदराध्मान वमनादिहर
रेणुका	बीज	,,	कटुतिक्त रस, अनुष्ण, कटु विपाकी	मेध्य, नेत्र्य, दीपन, अनुलोमन, मुखशोधक	आध्मान, नेत्ररोग गुल्म, उदरशूल, कटिशूलहर

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust
Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
			पुरुष प्रजननांग प्रभावक (वृष्य-शुक्रजनन)			
अश्वगन्धा	पंचांग' बीज	वातपित्तशामक अत्यन्त वातशामक	मधुर कषायतिक्त, उष्णवीर्य मधुर विपाकी	पौष्टिक, रसायन बल्य, बृंहण, वृष्य	वीर्य, दौर्बल्य, वातरोग वातिक वेदना, प्रमेह, अनिद्रा क्षय, शोथादिहर	अश्वगन्धारिष्ट
उटंगण	पंचांग, बीज (३-१२ माशा)	वातपित्तशामक	,,	मूत्रल, धातुपोषक ज्वरघ्न, दीपन, अनुलोमन, स्तन्य प्रवर्तक, शोथ, वेदना, रक्त-स्रावहर	वीर्य क्षीणता, प्रमेह, वात-व्याधि, मूत्र तथा वृक्करोग शामक, यकृत्, प्लीहा, फुप्फुस शोथ तथा रक्तस्राव शामक	
कपिकच्छु	बीज, रोम	त्रिदोष शामक	मधुरतिक्त रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	अतिवृष्य, पौष्टिक, गुरु, रोम गण्डूपद कृमिहर	शुक्रक्षीणता, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, प्रदर, वातव्याधिशामक	वानरीगुटिका
कोकिलाक्ष	बीज, पत्र	वातपित्तशामक	मधुर विपाकी, मधुरतिक्त रस, शीतवीर्य	मूत्रल, शुक्रशोधक, वृष्य, यकृतोत्तेजक, अनुलोमन, वातनाडीबल्य,	मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह, वीर्यक्षीणता, कामलाहर	पत्र तिक्तकषाय रस, अतिमूत्रल तथा यकृतोत्तेजक
गोक्षुर	पंचांग, बीज	त्रिदोषशामक,	मधुर रस, तिक्तानुरस शीत-वीर्य, मधुर विपाकी	वृष्य, मूत्रल, अनुलोमन, प्रजास्थापन, पौष्टिक	मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह, हृदय तथा नाड़ी दौर्बल्य, वीर्यक्षीणताहर	गोक्षुरादि-गुग्गुल, गोक्षुरादि चूर्ण एक तिक्त-भेद भी है।
तालमूलीद्वयम	मूल-कन्द	वातपित्तशामक	मधुररस, तिक्तअनुरस	पौष्टिक, वृष्य, बृंहण	वीर्यक्षीणता, अर्श	
मुशलीद्वयम्	,,	,,	उष्णवीर्य, मधुर विपाकी	मूत्रल, वातानुलोमन, स्निग्ध	मूत्राघात, वातव्याधि मस्तिष्क-नाड़ी दौर्बल्य	मुशलीपाक (कृष्ण श्वेत दो भेद)
शतावरी	कन्द	,,	मधुररस, तिक्त, अनुरस, मधुर विपाकी	स्तन्यजनन, मेध्य, बल्य, वृष्य, मूत्रल, वृष्य	वीर्यक्षीणता, वातदौर्बल्य, शोथ क्षत, क्षय प्रदर, गर्भस्रावहर	शतावरीघृत नारायण तैलादि
शाल्मली	पंचांग-कन्द-मूल	त्रिदोषहर	मधुर कषायरस, शीतवीर्य	मूल स्निग्ध, वृष्य, बृंहण	मूल-वीर्यक्षीणता, दाह,	निर्यास, अति संग्राही

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

	निर्यास (मोचरस)		मधुर विपाकी, पुष्प तथा निर्यास कटु विपाकी है।	ग्राही, मोचारसादि संकोचक, ग्राही, रक्तस्रावहर	अतिसार, क्षय स्वप्नदोषा-प्रवाहिकादिशामक प्रदरक तथा स्तम्भक है	तथा रक्त स्तम्भक है
सुधामूली (सालमपंजा)	कन्द १-३ माशा	वातपित्तशामक कफवर्धक	मधुररस, अनुष्ण, मधुर विपाकी	पौष्टिक, अतिवृष्य, ग्राही, वातनाड़ीबल्य स्निग्ध	क्षीणता, निर्बलता वात व्याधि, क्षय, शोषहर	पित्त, उष्ण, स्निग्ध
			वाजीकरण (शुक्ररेचन) वर्ग			
अण्ड:	समग्र	वातघ्न कफवर्धक	मधुररस, अनुष्ण, मधुर विपाकी	पौष्टिक, अतिवृष्य, वाजीकर, वातव्याधिहर	क्षीणता, निर्बलता पक्षाघात, नपुंसकता शामक	पीतभाग उष्ण, स्निग्ध, श्वेत भाग शीत स्निग्ध है। कपाल शीत रुक्ष है।
आकारकरभ	मूल (४-८ रत्ती)	वातकफहर	कटु रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	रुक्ष, आर्तवजनन, रोचक उत्तेजक, स्रावक, छेदन, शोथहर, वाजीकरण	दन्त्य, जिह्वा, मुख रोगहर, स्वर्य वात, शोथ, अर्दित-पक्षाघात-नपुंसकताहर कफ-जवातज, व्याधिहर	आकारकरभादि-वटी
अग्निजार	सत्व रूप (१-३ गुंजा)	वातकफहर	कटु रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	रसायन, वातानुलोमन हृदय, ग्राही, वाजीकरण रुक्ष उत्तेजक	पक्षाघात, अपस्मारादिवात रोग, हृदय, वातनाड़ी निर्बलता, नपुंसकतादिहर	धात्री रसायन
इन्द्रगोप:	कीट	”	अव्यक्त रस, उष्णवीर्य, मधुर विपाकी	रुक्ष, उष्ण, वाजीकरण	ध्वजभंग, क्लैब्य, वीर्यक्षीणता वातव्याधिहर	भूनाग के भी यह गुण है
गंधमार्जार वीर्य (जवाद) तथा (गन्धमार्जर)	स्राव (१-२ माशा)	वातकफहर	अव्यक्त रस, उष्णवीर्य मधुर	हृदय, उत्तेजक, वातनाड़ी-बल्य, वाजीकरण आर्तवजनन	क्लैब्य, अवसाद	
वृषण (जुन्दे वेदस्तर)	२-५ रत्ती	”	”	शीत-प्रशमन	अतिस्वेद, प्रतिश्याय आक्षेप, अपस्मार, अर्धाव भेदक वातव्याधि, क्षय, शोष रोगहर	
गुंजा	पंचांग, बीज १/२-१ रत्ती	त्रिदोषहर, विशेषत: कफपित्तहर	मूलपत्र-मधुरकषाय रस, अनुष्ण, मधुर विपाकी,	मूलपत्र-स्वर्य, केश्य, कफहर, त्वच्य, बीज-वाजीकरण,	पत्र मूल-स्वरभेद, कास प्रतिश्यायादिहर	

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
			बीज-तिक्तकषाय रस, उष्ण-वीर्य कटु विपाकी	उत्तेजकहृद्य वातरसायन	बीज-वाजीकरण रसायन पक्षाघातादिशामक	बाज उपविष है।
बालुकामत्स्य (रेगमाही)		वातकफशामक	मधुर (अव्यक्त) उष्णवीर्य, कटुविपाकी मधुर	रूक्ष, स्तम्भक, बल्य, अतिवाजीकरण	वातव्याधियों तथा क्लैब्य में अभ्यंगार्थ प्रयोग	
			वीर्यस्तम्भक वर्ग			
जातिपत्री जातिफल	फल, फलत्वचा फल तैल ५-१५ बिन्दु	वातकफशामक	कटुतिक्तकषाय, उष्णवीर्य कटु विपाकी	उष्ण, अनुलोमन, संग्राही, वर्ण्य, दीपन, वाजीकरण स्तम्भक उत्तेजक	वमन, अतिसार संग्रहणी, पीनस, कास-श्वास, सन्धिशूल क्लैब्यहर	जातिफलादि चूर्ण जातिफलादिवटी
रूमीमस्तगी	निर्यास (१-३ माषा)	वातकफशामक	मधुर कषाय, उष्णवीर्य मधुर विपाकी	स्तम्भक, यकृतोत्तेजक, ग्राही, आर्तवजनन, कफहर, दन्त्य	रक्तस्राव, स्वप्नदोष शीघ्रपात, रजःकृच्छ्रता तथा कासहर	

संज्ञावह स्रोतस् प्रभावक

(वातनाड़ी तथा ज्ञानेन्द्रिय प्रभावक वर्ग)

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
मेध्य (मेधा-बुद्धि प्रभावक-मस्तिष्क बल्य						
उस्तखद्दूस	पत्र-पुष्प (३-६ माशा)	वातकफशामक	तिक्तरस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	बल्य, उत्तेजक, मेध्य, अनुलोमन, यकृतोत्तेजक, शोथ, कफहर, हृद्दौर्बल्य नाड़ी शूलहर	अर्दित पक्षाघातादि वातव्याधि मानसिक दौर्बल्य, वातनाड़ी, शैथिल्य, जलोदरकासश्वासहर	
कूष्माण्ड	फल	वातपित्तजित् कफवर्धक	मधुर रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	हृद्य, मेध्य; सर, पौष्टिक मूत्रल	रक्तपित्त, नासा रक्तस्राव, प्रमेह, मेधा-स्मृति-मस्तिष्क दौर्बल्य हर	कूष्माण्डपाक
ज्योतिष्मती	बीज तैल	वातकफशामक पित्तवर्धक	कटुतिक्त रस, उष्णवीर्य-कटु विपाकी	मेध्य, सर, वामक, उत्तेजक अग्निदीपन, वाजीकरण	मेधा, स्मृति-मस्तिष्क, दौर्बल्य, पक्षाघात, क्लीबताशामक	
ब्राह्मी—(मण्डूकपर्णी)	पंचांग, विशेषतः पत्र	त्रिदोषहर, विशेषतः कफपित्तहर	मधुर तिक्तकषायरस, शीतवीर्य, विपाकी मधुर	रूक्ष-रसायन-रक्त-शोधक शोधक, मेध्य, त्वच्य	अपस्मार, उन्माद मेध्यास्मृतिभ्रंश, शिरोशूल, त्वचा, रक्त, दोषशामक	सारस्वतारिष्ट ब्राह्मीवटी

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भल्लातक	फल, बीज, तैल	वातकफहर	मधुर कषाय, कटुरस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	मेध्य, रसायन, अग्नि दीपन, अनुलोमन, कृमिघ्न, यकृतोत्तेजक, रक्तवर्धक	अर्श, विबन्ध, गुल्म, कुष्ठ मधुमेह यकृत्प्लीहादिशामक कष्टार्तव	अमृत भल्लातक
वचा	कन्द (१-५ रत्ती) वमनार्थ(५-१५ रत्ती)	वातकफशामक पित्तवर्धक	कटुतिक्त रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	वामक, सर, स्वर्य, आम-पाचक मेध्य-वृद्धि, स्मृतिवर्धक	स्वरभेद, उदराध्मान उदावर्त, मूक-मिमिन्न	
शंखपुष्पी	पंचांग	त्रिदोषशामक	कटु तिक्त रस, अनुष्ण, मधुर विपाकी	मेध्य, रसायन, सर, स्वर्य, अग्नि दीपन	स्वरभेद, मूकमिमिन्ननादि, वाणी के रोग, अपसार, स्मृति, शिरोरोगादिहर	कुमार कल्याणघृत
			वातनाड़ी बल्य			
कस्तूरी	मृगनाभीस्राव	वातकफपित्त	कटु तिक्त रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	हृद्यबल्य, उत्तेजक, वाजीकरण शीतप्रशमन	वातनाड़ी, हृदय शैथिल्य पक्षाघात, सन्निपातादिहर	कस्तूरी भैरव
(मृगमद)	(१।२-१ रत्ती)	वातकफशामक	मधुर (अव्यक्त) रस, उष्णवीर्य, मधुर विपाकी	हृद्य-यकृत्फुफ्फुस, आमाशय बल्य, दोष द्रावक कफ-निष्कासक	अर्दितादि वात रोग नाड़ी, शैथिल्य, हृदय मस्तिष्क, दौर्बल्य, कास श्वासशामक	जवाहरमोहरावटी रक्तस्राव रोधक (बाह्यप्रयोग से)
कोश (आवरेशम)	कीट गृह (१-३ माशा)					
			मादक (प्रलापक)			
धुतुरः—	पंचांग विशेषकर बीज (१ रत्ती) (पत्र २-४ रत्ती)	वातकफशामक पित्तवर्धक	मधुर तिक्त कषाय रस, उष्णवीर्य, मधुर विपाकी	उत्तेजक, आक्षेपशामक, शोथ, वेदना, श्वासवेग, हर, कृमिघ्न	कास, श्वास वेग आध्मान कृमि, शिरः शूल, जलत्रास हर	कनकासव लक्ष्मीविलासरस
विजया (भांग)	पत्र (१, २ रत्ती) निर्यास (चरस) १।४ रत्ती पुष्प मंजरी (गांजा) १।२-१ रत्ती	वातकफशामक पित्तवर्धक	तिक्तकषाय रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	अग्निदीपन, मादक, स्तम्भक, हर्षजनन, वाजीकरण, अनिद्रा, वेदनाहर, रूक्ष, तीक्ष्ण	मदात्यय, रक्तस्राव विषूचिका, धनुर्वात क्लैब्य अतिसारादि शामक	विजय चूर्ण मदननान्दमोदक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
			वेदना हर वर्ग			
अहिफेन	निर्यास $\frac{1}{4}$-१ रत्ती फलत्वक्	वातकफशामक	तिक्त, कषाय रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	रूक्ष, सूक्ष्म, स्राव-शोधक, स्तम्भक, वेदना, अनिद्रा हर, ग्राही	शूल वेदना, अतिस्वेद, अतिसार, प्रलाप, रक्तस्राव, अनिद्राहर	दुग्धवटी अहिफेना सव निद्रोदयरस
पारसीक यवानिका	पत्र-बीज (२-५ रत्ती)	वातकफहर पित्तवर्धक	कटुतिक्तरस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	रूक्ष, मादक-ग्राही, अनुलोमन, शूल, वेदना, अनिद्राहर	अतिसार, उदरशूल, कृमि, आध्मान आमदोष, वेदनादिशामक	कर्पूरवटी
सुची (वेला डोना)	पत्र-बीज मूल (१-१ रत्ती) घनसत्व $\frac{1}{4}$ रत्ती	वातकफहर, पित्तवर्धक	कटुतिक्त रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	रूक्ष, मादक-ग्राही, अनुलोमन शूल, वेदना, अनिद्राहर	अतिसार, उदरशूल कृमि, आध्मान, आमदोष, वेदनादि शामक, अग्निमांद्य, अतिस्वेद शोथ, वेदना, अतिलालाप्रसेक, हृदयदौर्बल्यहर	
			प्रलापहर (संशमन) वर्ग-संज्ञास्थापन			
जटामान्सी	मूल-कन्द (१-३ माशा)	त्रिदोषशामक	तिक्तकषाय, मधुर रस शीतवीर्य-मधुर विपाकी	मेध्य, रसायन, अनुलोमन, क्षोभ, दाह, प्रलापहर	वीसर्प, शोथ, सन्निपात, प्रलाप तथा हृदय-मस्तिष्क क्षोभहर	दशांगलेप जटा-मांस्यादि क्वाथ
तगर	मूल	,,	कटु तिक्त रस, (मधुर) उष्णवीर्य, कटु विपाकी	वेदना, प्रलाप, क्षोभ आक्षेप-हर, संज्ञास्थापन	अपस्मार, प्रलाप, उन्माद, शीतांगताशामक, सन्निपात हर	तगरादिक्वाथ
			आक्षेप प्रजनन			
कारस्करः (विषमुष्टि)	बीज ($\frac{1}{2}$ रत्ती)	कफपित्तशामक वातलम्	तिक्त रस, शीतवीर्य, कटु विपाकी	रूक्ष, लघु, तीक्ष्ण, अग्नि अग्निदीपन वाजीकरण उत्तेजक	वातनाडी शैथिल्य, अवसाद अग्निमांद्य, अवसाद, अर्दितादिशामक	बिषमुष्टी वटी
			आक्षेप शमन वर्ग			
ऊदेसलीब	मूल (१-३ माशा)	वातकफशामक	तिक्तरस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	मेध्य-बल्य, पित्तरेचक यकृतोत्तेजक, मूत्रल, शोथ आक्षेपहर	अतिस्वेद, कष्टार्तव, आक्षेप अपस्मारादिशामक	

भूर्जपत्रम्	त्वक्	त्रिदोषशामक	कटु कषाय, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	ग्राही, स्तम्भक, कृमिघ्न, मेदोरोग, कर्णशूल-रक्त पित्तादिहर	व्रण-विष, कर्ण रोग रक्षोघ्न	
				वात संशमन वर्ग		
एरण्डः	पंचांग-बीज तैल	त्रिदोषहर, विशेषतः वातकफ शामक	मधुर कटु कषाय रस, उष्णवीर्य, मधुर विपाकी	स्निग्ध-सूक्ष्म, तीक्ष्ण, अनुलोमन, गुरु, बल्य, शोथ वेदनाशामक	आमवात विबन्ध, गुल्म, उदावर्त, कटिशूल, शोथ वातव्याधिहर	एरण्ड पाकः
गुग्गुलुः	निर्यास (४-१२ रत्ती)	त्रिदोषहर	मधुर कषाय, कटुतिक्त, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	नव-स्निग्ध, लघु रसायन अनुलोमन, बल्य, वृष्य, व्रण, शोधन, रोपण, पुराण-रूक्ष, लेखन	आमवात, वातव्याधिहर, व्रण, स्थौल्यहर, भग्न-संधानकारक	योगराज गुग्गुल आदि अनेक योग
गन्ध प्रसारिणी	मूल-पत्र	,,	तिक्त रस, उष्णवीर्य, मधुर विपाकी	सर, बल्य, गुरु, शुक्रल शोथ-हर, वातानुलोमन	वातरक्त, आमवात शोथ शामक, खंज-पंग-आदि-वातव्याधि	प्रसारिणी तैल
नरब-नरबी (प्राणिज पदार्थ)	ढाल (त्वक्)	वातकफहर	मधुर विपाकी, मधुर, कटु रस, उष्णवीर्य	सुगन्धित, वर्ण्य, शुक्रल, कण्डुहर	अपस्मार, अपतन्त्रक, कुष्ठ व्रण, विषादिहर	प्रायेण तैलों में प्रयुक्त
नलिका (नालुका)	काष्ठ (बंगाली)	कफपित्तशामक	मधुर कषाय शीतवीर्य, मधुर विपाकी	पिच्छिल, चक्षुष्य, त्वच्य, मूत्रल, लघु	आमवात, मूत्रकृच्छ्र, तृष्णा त्वचा, रक्तरोग, ज्वरहर	
निगुंण्डी	पंचांग	वातकफशामक	कटुतिक्त कषाय रस, उष्ण-वीर्य, कटु विपाकी	लघु, तीक्ष्ण, अनुलोमन रसायन, शोथ वेदनाशामक, व्रणरोपक	गुल्माध्मान, शोथ, वातव्याधि व्रणादिशामक	निगुंण्डी, स्वेद
पलाण्डुः	कन्द-बीज	वातकफहर, किंचित् पित्तल	कटु रस, मधुर अनुरस, अनुष्ण, मधुर विपाकी	अग्निदीपन, तीक्ष्ण, स्रोत शोधक, अनुलोमन, लेखन	विषूचिका, उदरशूल, कष्टार्तव, आध्मान, वातव्याधि और विष शामक है।	बीज कलवजिय कहलाते हैं।
रसोनः (लशुन)	कन्द, कन्द तैल (१-२ बिन्दु)	वातकफशामक पित्ताविरोधी	कटुतिक्त कषाय, मधुर लवण (कटु प्रधान) उष्णवीर्य	रसायन, वृष्य, दीपन पाचन, अनुलोमन, आर्तव-प्रवर्तक	गुल्म, जीर्णविबन्ध, आध्मान, जीर्णज्वर, क्षय, पक्षाघातादि वातव्याधिहर	रसोन पिण्ड रसोनाष्टकादि

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust
Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
रास्ना (नाकुली)	पत्र-पंचांग	वातकफशामक	तिक्तकटु रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	सुगन्धित, आमदोषपाचक शोथ वेदनाहर	आमवात, वातरक्त, वात नाड़ी शोथ, अर्दितादि शामक	रास्नादि, गुग्गुल
वृक्षादनी (बान्दा)	पंचांग	त्रिदोषशामक	तिक्तकषाय, मधुर रस	रक्तसंग्राही, रक्तप्रसादन, रक्त स्तम्भक, मूत्रल, तृषा दाहशामक	अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, वातरक्त वातनाडी, शोथ रक्तस्राव, शामक	
सर्पगन्धा	मूल-मात्रा रक्त चाप (२-५ रत्ती) निद्रार्थ ८-१६ रत्ती, उन्मादे २ से ४ माशा	वातकफहर	तिक्तरस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	रूक्ष, मेध्य, अनिद्रा, आक्षेप अनिद्रा, रक्तचापहर	रक्तचाप, उन्माद, वातव्याधि अनिद्राहर	
			ज्ञानेन्द्रिय प्रभावक वर्ग			
नेत्र्य (चक्षुष्य)						
अपराजिता	पंचांग	त्रिदोषहर	तिक्तकटु रस, शीतवीर्य कटु विपाकी	मेध्य, चक्षुष्य, त्वग्रोग, शोथहर, आमपाचक रक्षोघ्न	ज्वर, कास, प्रतिश्याय आमविकार शोथ, व्रणकण्डु शामक	
कनकम्	फलः (वमनार्थ ६ माशा)	कफवातशामक	तिक्तकषाय, मधुर रस शीतवीर्य, मधुर विपाकी	चक्षुष्य, छेदन, विकासी, वामक, शोधक	नेत्ररोग, रक्तार्श, अग्निमान्द्य अतिसारादिशामक	
चक्षुष्य (चाकसू) (वन्य कुलत्थः)	पंचांग, बीज	वातकफशामक	कटु रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	ग्राही, लेखन चक्षुष्य, अनुलोमन	नेत्ररोग पीनसादिशामक त्वचा रोगहर	
पीतरंगा (ममीरा)	मूल-काष्ठ	कफपित्तशामक	तिक्तरस, शीतवीर्य, कटु विपाकी	नेत्र्य, पित्तरेचक, यकृदुत्तेजक, नेत्र रक्तप्रसादक	पाण्डु-जलोदरादि, नेत्ररोग, विषमज्वरहर, यकृत्शोथहर	
			नासा प्रभावक			
अपामार्ग	पंचाग क्षार	वातकफपित्त	कटुतिक्त रस, उष्णवीर्य	पित्तरेचक, वामक, (अधिक	शिरःशूल, अपची, आम-	अपामार्ग क्षार

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

	बीज चूर्ण (१-३ माशा) क्षार (४-८ रत्ती)	शामक, पित्तकफ शोधक	कटु विपाकी	मात्रा में) शिरोविरेचक यकृतोत्तेजक, सर, मूत्रल दीपन, कफहर, विषनाशक	वात, हिक्का वृश्चिकदंश, गण्डमाला कास हर	तैल
कट्फल	त्वचा	वातकफशामक पित्तवर्धक	कटुतिक्त कषाय रस, उष्णवीर्य; कटु विपाकी	शोथ वेदना शामक, शुक्र-शोधन, संज्ञास्थापन हिक्काजनक	स्वरभेद, शोथ, प्रतिश्याय मूर्च्छा, ज्वर, शिरशूल वातिक, वेदनाशामक	
छवक्म्	पंचांग	,,	कटु रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	रक्तशोधक, यकृत्प्लीहा वृद्धिहर, हिक्काजनक, त्वच्य कृमिघ्न	पीनस, प्रतिश्याय, शिरःशूल अर्धावभेदक, श्वित्रनाशक वातनाडी बल्य	

त्वचा प्रभावक (त्वच्य)

वर्ण्य—						
मदयन्तिका	पत्र-पुष्प	पित्तशामक	तिक्तकषाय रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	वर्ण्य, केश्य, त्वच्य, रक्त प्रसादन, मूत्रल, दाह शोथ, व्रणशामक	मुखपाक, अनिद्रा, दाह, त्वचा रोग, व्रणादिहर	पुष्प मेध्य निद्राजनक है।
सर्षप	बीज, तैल	वातकफशामक पित्तवर्धक	कटुतिक्त रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	त्वच्य, उष्ण, तीक्ष्ण, अनुलोमन, विदाही	अग्निमान्द्य, उदरकृमि शोथ, वेदना, स्फोटादि	तैल अभ्यंगम से अतित्वच्य है।
हरिद्राद्वय (वनहरिद्रा) (हरिडाच)	कन्द	त्रिदोषहर विशेषतः वातकफशामक	,,	दीपन, पाचन, अनुलोमन संग्राही, वर्ण्य, व्रणशोथक रक्तप्रसादन, यकृतउत्तेजक	त्वचारोग, शीतपित्त आध्मान, प्रमेह, गुल्म, शोथादि हर	हरिद्रा खण्ड

त्वच्य (कुष्ठ-कण्डुघ्न व्रणादि शोथक)

आम्रगन्धिहरिद्रा	कन्द	पित्तकफशामक वातल	मधुर तिक्त रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	त्वच्य, कफ वर्ण्य व्रग रोपण, रक्तप्रसादन	कण्डु, शीतपित्त, प्रमेह, कामला, शीतपित्त, रक्तदोष यकृत्दोषहर	
चक्रमर्दः	पंचांग, बीज	बीज-वातकफ शामक पत्र-वात पित्तशामक	कटु रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, मधुर रस, शीतवीर्य कटु विपाकी	बीज कृमिघ्न, त्वच्य कफ-भेद, हर, (पत्र) सर मूत्रगत शर्कराहर	बीज-कुष्ठादि त्वचा रोग, पत्र-सारक, रक्तप्रसादन यकृतोत्तेजक	

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
जया-जयन्ती	पत्र	पित्तकफघ्न	कटुतिक्त रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	मूत्रल, शोथशामक, रक्त शोधन, त्वच्य	कण्डु, कुष्ठ, गलगण्ड, रक्त विकार, मूत्रकृच्छ्र, शोथादिहर	
जाती (चमेली)	पत्र, पुष्प, तैल	त्रिदोषहर	तिक्तकटुकषाय रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	चक्षुष्य, त्वच्य, शोथशामक व्रण शोधक रोपक	मुखपाक, नाड़ीव्रण, दग्धव्रण	जात्यादि तैल पुष्प शीतवीर्य, मेध्य, गर्भस्थापक
तुवरक	बीज (१-३ माशा) तैल (५-६० बूंद)	वातकफशामक वातकफशामक	तिक्त, कटु कषाय रस, उष्ण कषायरस उष्णवीर्य,	कृमिघ्न कुष्ठघ्न वामक रेचक, तीक्ष्ण, सर	कुष्ठ, त्वचारोग, गण्डमाला मधुमेहादिहर, दद्रु आदि त्वचारोग	तुवरकादि तैल तुवरकादिमलहर
नक्तमाला (वृक्ष करंज)	पंचांग, तैल	वातकफशामक पित्तवर्धक	तिक्तकटु कषाय रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	दीपन, पाचन, सर कृमिघ्न त्वच्य	आमवात, सन्धि, शोथ, प्रमेहहर	करंज तैल
निम्बः	पंचांग, तैल, स्राव	कफपित्तशामक वातल	तिक्तरस, शीतवीर्य, कटु विपाकी	कन्डुघ्न, त्वच्य, रक्तप्रसादन ग्राही, अग्निदीपन, कृमिघ्न यकृत्शोधक, दाह-ताप हर	ज्वर, दाह, कण्डु, कुष्ठ अर्श-प्रमेह, अग्निमान्द्य, उपदंशादिहर	पंचनिम्ब चूर्ण पंचतिक्त घृत गुग्गुलुः
मल्लिका	मूल-पत्र-पुष्प	त्रिदोषशामक	कटुतिक्त रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	त्वच्य, रक्तप्रसादन चक्षुष्य, व्रणशोधन	नेत्र रोग, त्वचा, रक्तविकार मुखपाक, कष्टार्तवशामक स्तन्यनाशक, आर्तवजनन	पुष्प-वाजीकरण हैं।
माधवी	पत्र-पुष्प	कफपित्तहारी	कटु तिक्तकषाय रस, शीत-वीर्य, कटु विपाकी	कृमिघ्न, त्वचारोग शामक, शोथहर	दद्रु पामादि, त्वचा रोग, आमवातहर	
यूथिका	,,	पित्तघ्न, वातकफ वर्धक	तिक्तकषाय, मधुर, कटु शीतवीर्य, कटु विपाकी	व्रण रोपक, शोधक, व्रणशोधक, कुष्ठघ्न, हृद्य नेत्र, विषघ्न	त्वचारोग व्रणस्फोटादि रक्तपित्त, विष, शिरोरोगादि हर	
शाखोटक (बाकुची)	पंचांग, तैल,	वातकफशामक	तिक्तकटु रस, कषाय रस, उष्णवीर्य कटुविपाकी	त्वच्य, कुष्ठघ्न, सर, अनु-लोमन, यकृत्शोधक	कण्डु, कुष्ठ, श्वित्र, दद्रुहर	
पारिश	पंचांग, पत्र	वातपित्तघ्न,	मधुर, अम्ल, कषाय रस	स्निग्ध, त्वच्य	वातरक्त, कुष्ठ, पामादि,	

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(कपीतन)		कफवर्धक,	शीतवीर्य, मधुर विपाकी	दुर्जर, रक्तशोधन वृष्य, अनुलोमन, दीपन, बीज नेत्र	त्वचा रोगहर आध्मान, गुला, कष्टार्तवहर वातवल्य	
स्वेदोपनयन वर्ग						
तुलसी	पंचांग	वातकफघ्न पित्तल	कटुतिक्तरस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	अनुलोमन, ओजक, अग्नि-दीपन, स्वेदल, शोथहर	वातकफजज्वर, पार्श्वशूल, विषमज्वरहर	प्रतिश्याय
नक्तमाल (खूबकला)	बीज	,,	कटु तिक्त रस, उष्णवीर्य, मधुर विपाकी	वातकफजज्वर, जीर्णकास स्निग्ध, मूत्रल, स्वेदल कफहर	प्रतिश्याय, तृष्णा छर्दि, पिडिकायुक्त, जीर्णज्वर, तापादिहर	
मरुबकः	पंचांग	,,	कटुतिक्त रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	अनुलोमन, स्वेदल, कृमिघ्न, हृदयोत्तेजक,	वातकफजज्वर, तापादिहर, शिरःशूल, आध्मान, कष्टार्तवहर	
शिग्रु (शोभाञ्जन)	पंचांग	,,	मधुर कटु रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी,	शोथहर, विदाही, स्वेदोपग, कृमिघ्न, अनुलोमन, दीपन, बीज-नेत्र्य	अपची, गण्डमाला-भेद, आध्मान, गुल्म कष्टार्तवहर वातबल्य	
स्वेदापनयन						
उशीर (वीरण)	मूल	कफपित्तशामक	मधुरतिक्त, शीतवीर्य मधुर-विपाकी	छर्दि निग्रहण, मूत्रल, दाह-स्वेदापनयन, रक्तप्रसादन,	ज्वर, अतिसार-वमन-दाह तृष्णा, मद, मूत्रकृच्छ्रहर	उशीरासव
कुन्दुरु (लोवान) (वृक्षनाम शल्लकी)	निर्यास (१-३ माशा)	वातकफहर	कटुतिक्त, कषाय, मधुर रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	कृमिघ्न, त्वच्य, संग्राही मूत्रल, स्वेदापनयन व्रण-शोधक-रोपक	अतिस्वेद, स्वेददुर्गन्ध, ज्वर, अतिसार, प्रदर मुखरोग, चर्मरोगहर	
केश्य-केशवर्धक						
तिलः	बीज, तैल, क्षार	वातशामक, कफ-पित्त प्रकोपक	मधुर रस, कषाय, कटु, तिक्तानुरस, उष्णवीर्य, मधुर विपाकी	दीपन, मेध्य, रसायन त्वच्य, वृष्य, केश्य	हिक्का, प्रमेह, बहुमूत्र रक्तार्श, व्रणशोथ वातव्याधि-हर, आर्तवजनन	नारसिंह चूर्ण तिलाष्टक चूर्ण
नारिकेल	तैल, फल	वातपित्तहर, कफवर्धक	मधुर रस, शीतवीर्य, मधुर-विपाकी	गुरु, वृष्य, केश्य, बृंहण मांसबलवर्धक, मूत्रल	रक्तपित्त, क्षत, क्षय अम्लपित्त शामक	

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
विभीतक	फल	त्रिदोषशामक	कषाय रस, उष्णवीर्य, मधुर विपाकी	केश्य, स्वर्य, नेत्र्य, भेदन कृमिघ्न, रूक्ष, फलमज्जा-मादक	स्वरभेद, मुखपाक, कास, विबन्ध, पलित, नेत्ररोग शामक	त्रिफला
हस्तिदन्त	अस्थि	वातपित्तशामक	अव्यक्तरस, शीतवीर्य, मधुर-विपाकी, रूक्ष	रोमसंजनन, संग्राही, रूक्ष रक्तस्राव, रोधक	रोमनाश, अतिसार रक्तस्राव, सन्धिपित्तहर	
			रोम शातन			
शमी	पंचांग	पित्तकफहर	कटुतिक्त रस, कटु विपाकी, (पत्र) शीतवीर्य, (फलत्वक्) उष्णवीर्य	रूक्ष, ग्राही, स्तम्भक, केश शातन	रक्तपित्त-अतिसारादि-नाशक केशपातक	
			कोथ प्रशमन			
गर्जन	काष्ठ तैल, (२०-४० बूँद)	वातकफशामक	कटु तिक्त रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, मूत्रल, कृमिघ्न, कोथप्रशमन	मूत्रकृच्छ्र-मूत्रमार्गस्थ-संक्रमण पूयमेहहर	
			व्रणशोधक रोपक			
गांगेरुकी	पंचांग (मूल)	कफपित्तघ्न	कषाय मधुर रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	बल्य, रक्तस्राव, रोधक, व्रणरोपक	शस्त्राघात, क्षत, व्रणरक्त-स्रावादिहर	
मांसरोहिणी	पंचांग (त्वचा)	,,	कटु कषाय, मधुररस, शीत-वीर्य कटु विपाकी	सन्धानीय, रक्तस्तम्भक, व्रणरोपक, ग्राही, ज्वरघ्न	भग्न, व्रण, रक्तस्रावशामक अतिसार, विषमज्वरादिहर	
शालः (सर्जः) अश्वकर्ण	निर्यास, (राल) त्वचा	त्रिदोषहर, कफपितघ्न	कषाय तिक्त रस, शीतवीर्य, कटुविपाकी	ग्राही, रक्तस्तम्भक व्रण-रोपक, स्वेदापनयन, त्वच्य, कर्णरोगहर	रक्तपित्त, अतीसार, कण्डु, विस्फोट, व्रण, विद्रधि बाधिर्य-योनिरोगशामक	राल-मूत्रल-तथा कृमिघ्न है।
			सर्वदेह प्रभावक ज्वरघ्न (तापहर)			
अगस्त्य	पंचांग	कफपितघ्न वातलम्	तिक्तकटु रस, अनुष्ण, कटु-विपाकी	रूक्ष, शिरोविरेचक, कफ-स्रावक, शीतहर	कफजज्वर, प्रतिश्याय शिरः-शूल-पीनस, चातुर्थिक ज्वरहर	

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust
Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

काकजंघा	,,	वातकफघ्न	तिक्तकषाय रस, शीतवीर्य कटु विपाकी	निद्राजनक, तापहर, विषघ्न, त्वच्य	कण्डु, बीसर्प, विस्फोट, ज्वर, रक्तपित्त, विषशामक	
किराततिक्त	,,	कफपित्तघ्न	तिक्त रस, शीतवीर्य, कटु विपाकी	रूक्ष, लघु, सारक, दाह, तृष्णाप्रशमन, रक्त तथा दुग्ध शोधक	जीर्ण तथा मन्दज्वर, रक्त-विकार, अर्श, दाह, उदर-कृमि, अग्निमान्द्यहर	सुदर्शन-चूर्ण
कट्वी (नील-कण्ठी कटुकी)	,,	,,	,,	दीपन, मूत्रल, शोथ, ताप-हर, यकृतोत्तेजक	ज्वर, यकृत्प्लीहावृद्धिहर विषमज्वरहर, अग्निमान्द्य पाण्डुहर	
कटुनाही (मामज्जक)	,,	,,	तिक्त रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	दीपन, कृमिघ्न, मूत्रल, यकृत् शोधक, शर्कराहर	ज्वर, यकृत्प्लीहावृद्धिहर प्रमेह, अग्निमान्द्य, पाण्डुरोग-हर, घनसत्वमधुमेह-शामक	
गुडूची (अमृता)	पंचांग (सत्व)	त्रिदोषहर	तिक्त कषाय, कटु, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	दीपन, ज्वरघ्न, रसायन रक्तप्रसादन, ग्राही, पित्तहर, हृद्य, रोचक, दीपन,	वातरक्त, आमवात, ज्वर-यकृत्प्लीहावृद्धि, पाण्डुरोगहर	
गौरक्ष कर्कटी	फल-त्वचा	पित्तशामक	मधुर, अम्ल रस, शीतवीर्य; मधुर विपाकी	हृद्य, रोचक, दीपन, दाह, तापहर, स्वेदल	ज्वर, दाह, तृषा, वमन, अतिसार, विषमज्वरादिहर	
तिक्तपटोलः	पंचांग	त्रिदोषहर, विशेषतः कफपित्तहर	तिक्त, कटु रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	दीपन, पाचन, सर, ताप-हर, अनुलोमन, ज्वरघ्न,	अग्निमान्द्य, जीर्णज्वर, यकृत्प्लीहावृद्धिहर, पाण्डु आदिरोगहर	मधुर शीतल है त्रिदोषहर
पर्पट (क्षेत्रपर्पट)	,,	कफपित्त शामक,	तिक्त रस, शीतवीर्य, कटु विपाकी	दीपन, मूत्रल, स्वेदल, संग्राही, यकृतोत्तेजक, ज्वर-कृमिहर	ज्वर, रक्तपित्त, दाह, कामला, पाण्डु, यकृत्शोथ मूत्रकृच्छ्रादिहर	
वत्सनाभ (विष)	मूल ($\frac{1}{4}$-१ रत्ती)	वातकफ शामक, पित्तवर्धक	कटु (मधुर-अव्यक्त) रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	अग्निदीपन, उत्तेजक, आर्तव, स्वेद, मूत्रजनन, ज्वर, शोथघ्न	ज्वर, शोथ, आमवात कष्टार्तव, कण्ठरोग	मृत्युंजय रस त्रिभुवन कीर्तिरस अंगदौर्बल्यनाशक
सहदेवी	पंचांग	कफवात शामक	कटु रस, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	लघु, रूक्ष, आमपाचक निद्राकर, अनुलोमन, तापहर	ज्वर, शोथ, अर्श, कृमि अनिद्रा, जीर्णज्वरनाशक	

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्म द्रव्य उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
			विषमज्वर हर वर्ग			
करंज (लता करंज कुबेराक्ष)	बीज, मूल	वातकफहर पित्तविरोधी	तिक्तकषाय रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी	अग्निदीपन, कृमिघ्न, सर, शोथहर, अनुलोमन, रसायन	अग्निमान्द्य, अर्श, उदरकृमि कृमि, जीर्णज्वर, विषमज्वर, हर	
तिक्ता किंकिणी (कुनैन)	त्वचा, सत्व (१-३ माशा, १-४ रत्ती)	कफपित्तघ्न	तिक्त रस, शीतवीर्य, कटुविपाकी	रूक्ष, लघु, दीपन, गर्भाशयोत्तेजक, ताप, वेदना, शोथशामक	अग्निमान्द्य, कष्टार्तव, ज्वर, प्रतिश्याय, विषमज्वर, यकृत्, प्लीहावृद्धिहर	
सप्तपर्ण	त्वचा	त्रिदोषशामक	तिक्तकषाय रस, उष्णवीर्य	ज्वरशामक सर, तिक्त रसायन	विषम ज्वर, जीर्णज्वर अग्नि मन्द्य, सप्तपर्णपाक अर्श	
द्रोणपुष्पी	पंचांग	कफनाशक वातपित्त-वर्धक	विपाकी कटु मधुर कटु लवण, रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	रक्तप्रसादन, त्वचा विकार-शामक, रूक्ष, स्वेदल, शोथ शामक पित्तरेचक	गुल्महर, कामला, पाण्डु विषमज्वर, प्रमेहनाशक	
			दाह-प्रशमन			
चन्दनद्वयम्	काष्ठ	कफपित्तशामक	तिक्त रस, मधुर रस, शीतवीर्य	हृद्य, सन्ताप, शामक, रक्त-प्रसादन	हृदयदौर्बल्य, ज्वर, रक्तपित्त	चन्दनासव
(रक्त-श्वेत)	तैल-५-३० बिंदु		मधुर विपाकी	दाह, मूत्ररेचक, कृमिघ्न, पूतिहर	मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, दाह, श्रम, तापहर स्फोटादिहर	चन्दनादिवटी
क्षीरचम्पक,	पंचांग, तैल, क्षीर,		तिक्त कटु कषाय रस, शीत-वीर्य, मधुर विपाकी	मूत्रल, रेचक, आमवातदोष-पाचक, चक्षुष्य (पुष्प चक्षुष्य है)	ज्वर, रक्तपित्त, कष्टार्तव नाशक, आमवातनाशक	
वेतसद्वयम् (जलवेतस्-वेतस्)	पंचांग	त्रिदोषहर	कषाय तिक्त रस, अनुष्ण, कटु विपाकी	रूक्ष, स्तम्भक, संग्राही, मूत्रल, दाह, वेदना-शामक, हृदय बल्य	वीसर्प, तृषा-दाह अतिसार, रक्तस्रावहर	अर्कवेदमुश्क
तूतम्	फल-त्वचा-पत्र	वातपित्तघ्न	मधुर, अम्ल, कषाय, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	फल रक्तप्रसादन, हृद्य, मूत्रल हृद्य, स्निग्ध, सर, दाह प्रशमन बल्य, बिबन्धहर	रक्तपित्त, दाह, पाण्डु, विबन्ध, मूत्रकृच्छ्रहर, आनाह	कच्चा फल अम्ल उष्ण तथा रक्त-पित्त दूषक है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भूम्यामलकी	पंचांग कफपित्त शामक	त्रिदोषहर विशेषतः	तिक्त कषाय, मधुर रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	लघु, रोचक, यकृतोत्तेजक व्रणरोपण, मूत्रल, रक्तप्रसादन	रक्तपित्त, कामला, क्षत, क्षय, पाण्डु जीर्णज्वर, दाह, तृषाहर	
सीताफल	फल	वातपित्तहर कफवर्धक	मधुर रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	हृद्य, बल्य, वृष्य, मूत्रल दाहशामक	दाह, रक्तपित्त, हृदयदौर्बल्य मूत्रकृच्छ्रादिहर क्षत क्षयादिहर	
शर्करा	सत्व	„	„	जीवनीय, श्रम, दाह, तापहर रक्तप्रसादन, बल्य	दाह, ताप, क्षत, शोथ, क्षय मूत्रकृच्छ्रादिहर	
शैवाल (वारीपर्णी)	पंचांग	त्रिदोषहर,	मधुरतिक्त कषाय रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	सर, रूक्ष, वृष्य, शोथ दाह, रक्तस्राव शामक	दाह, ताप, तृषा, रक्तस्राव, वीसर्प, प्रमेहहर, व्रण रोपक	
हंसपदी	„	कफपित्तघ्न	मधुरतिक्त रस, मधुर विपाकी शीतवीर्य	संग्राही, कफस्रावकृदाह, शोथ, विषशामक, मल प्रवर्तक, अनुलोमन	प्रतिश्याय, कास, श्वास, वीसर्प, लूतादि विषशामक मूत्रकृच्छ्र, कष्टार्तवहर	
			शीत प्रशमन			
अगुरु	काष्ठ	वातकफहर	कटुतिक्त, कषाय रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	मेध्य उत्तेजक, पित्तस्रावक त्वच्य, लघु	शीतांगता, वातकफज ज्वर, हृदयशैथिल्य, नेत्रवर्ण रोगहर	
			धातु प्रभावक			
			जीवनीय गण			
अष्ट वर्ग						
जीवक, ऋषभक	कन्द	वातपित्तशामक कफकारक	मधुर रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	बृंहण, बल्य, गुरु, शीत, शुक्रल सन्धानकारक	ज्वर, दाह, क्षय, प्रमेह तृष्णा, क्षीणताहर	च्यवनप्राश
मेदा-महामेदा	कन्द	„	„	„	„	„
काकोली क्षीरकाकोली	„	„	„	„	„	„
ऋद्धि-वृद्धि	„	„	„	„	„	„
दुग्ध (क्षीरम्)	...	कफकारक	मधुर रस, शीतवीर्य,	आयुष्य, जीवनीय, बल्य, बृंहण, रसायन, श्रमहर, वृष्य	सब रोगों में पथ्य तथा कृशता, निर्बलता, शोथ, धातु क्षयादिशामक	

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्म (द्रव्य उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
नवनीत	...	,,	मधुर रस, कषायाम्लानुरस शीतवीर्य, मधुरपाकी,	मेध्य, शीत, दीपन, हृद्य संग्राही अविदाही	चक्षुष्य क्षय, कास, व्रण, शोष, अर्श अर्दितहर	क्षीरोत्थित अतिशीत है।
घृत (सर्पिस्)	...	,,	मधुर रस, शीतवीर्य मधुर विपाकी	मेध्य, शीत, दीपन, पौष्टिक, ओजप्रद, सर्पि मण्ड-सर, आयुष्य, चक्षुष्य	,, ,, ,,	
			बृंहण (पौष्टिक)			
खजूरः	फल	वातपित्तशामक कफ कारक	मधुर रस, शीतवीर्य, मधुर मधुर विपाकी	बृंहण, बल्य, हृद्य, गुरु, नाड़ीबलदायक,	रक्तपित्त, क्षत, क्षय, कास दौर्बल्य, मूर्च्छाहर	
क्षीरिणी	फल त्वचा	त्रिदोषशामक	मधर रस, कषायाम्ल अनुरस, शीतवीर्य	मांसवर्धक, स्निग्ध, संग्राहो, रोचक, वृष्य, विष्टम्भि	रक्तपित्त, दाह, मोह, मूर्च्छा तृष्णा, क्षत, क्षय, नाशक	
टंकः (नासपाती)	फल	पित्तशामक, वातकारक	मधुर कषाय रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	पौष्टिक, गुरु, शीतल हृद्य,	हृद्य, क्षीणता, दाह, तृषा, हृदय, मस्तिष्कनिर्बलताहर	
ताल	फल	पित्तशामक, वातकारक	मधुर कषाय रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	पौष्टिक-ताजारस, मूत्रल. अतिशीतल	क्षीणता, दाह, तृषा, हृदय, मस्तिष्क, निर्बलताहर	
द्राक्षा	,,	वातपित्तशामक कफवर्धक	मधुर रस, कषायानुरस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	मेध्य, बृंहण, वृष्य, रोचक सर, स्निग्ध, रक्तवर्धक, दीपन,	ज्वर, दाह, रक्तपित्त, क्षयरोग, विबन्धहर	द्राक्षासव द्राक्षादिगुटिका
वातामम्	,,	वातशामक, कफपित्तवर्धक	मधुर रस, उष्णवीर्य, मधुर विपाकी	गुरु पौष्टिक, बलयवृष्य स्तन्यजनन, रसायन,	क्षय, क्षत, विबन्ध, वातव्याधि, अनिद्राहर	बातादरसायन
अक्षोट	,,	,,	,,	,,	,,	
आरुकम्	,,	,,	,,	लघु, बृंहण, हृद्य, स्नेहन	अर्श, प्रमेह, गुल्म, रक्तदोषहर	
			बल्य वर्ग			
बलचतुष्टय बला अतिबला महाबला, नागबला	मूल-बीज	त्रिदोषशामक	मधुर रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	मूत्रल, स्निग्ध, संग्राही, बल्य रसायन, महाबला व्रणरोपण (नागबला)	वातव्याधियां, शुक्र, दौर्बल्य बालशोल, क्षयादिहर	बलादि तैल
उरुमाण (खुबानी)	फल	,,	मधुर रस, उष्ण-वीर्य, मधुर विपाकी	स्निग्ध, धातुवर्धक, वृष्य, गुरु, बल्य, बृंहण	वात व्याधि, शोष, क्षय दौर्बल्य कृशताहर	

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

निकोचक (न्योजा)	फल	वातघ्न, कफपित्त कारक	मधुर रस, उष्णवीर्य, मधुर-विपाकी	स्निग्ध, धातुवर्धक वृष्य, रक्तप्रसादन, बल्य	कृशताहर, वातव्याधि, शोथ, क्षय, दौर्बल्य, कृशताहर	
मुकुलक (पिस्ता)	,,	,,	,,	,,	,,	
			रसायन			
अश्वगन्धा	मूल	त्रिदोषशामक	मधुर-कषायतिक्त रस उष्ण-वीर्य, मधुर विपाकी	क्षय, बृंहण, मांसल रसायन, स्वापजनन, वात-संशमन, मेध्य,	वात-व्याधि, शोथ, निर्बलता, धातुक्षीणता अपस्मारादिशामक	अश्वगन्धारिष्ट
आम्र	पंचांग, फल	त्रिदोषशामक	त्वचापत्रादि-कषायरस, शीत-वीर्य, कटु विपाकी अपक्व फल, कषायाम्ल, उष्णवीर्य, कटु विपाकी फल मज्जा-कटु विपाकी, उष्णवीर्य, कषायाम्ल पक्वफल-मधुर रस, कषायानु-रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	बृंहण, मांसवर्धक वृष्य, अनुलोमन, फलमज्जापत्रादि संग्राही, रक्तस्तम्भक	वात, वातदोष कृशता, क्षय संग्रहणी, अतिसार प्रमेह, प्रदरहर	
आमलकी	फल	त्रिदोषशामक	लवणातिरिक्त पंचरस मुख्यतः अम्ल, शीतवीर्य, मधुर विपाकी	रसायन, अनुलोमन, वृष्य, चक्षुष्य, सर, केश्य, बल्य हृद्य,	स्वरभंग, क्षय, ज्वर रक्तपित्त, पाण्डु, कामला गुल्म, हृद्रोगहर	आमलकी रसायन आमलकी लौहादि
गुंजा	फल-पत्र	,,	बीज-तिक्तकषाय रस, उष्णवीर्य कटु विपाकी, पत्र-मूल-अनुष्ण, मधुरविपाकी कफहर	केश्य, त्वच्य, वाजी-करण, पत्र-मूल-स्वर्य,	पक्षाघातादि वातरोग, चर्मरोग, क्लीबताहर	उपविष है ।
मधु		,, विशेषतः कफपित्तहर	मधुर रस, कषायानुरस उष्णवीर्य, कटुविपाकी	लेखन, रूक्ष, रोचक चक्षुष्य, स्रोतः शोधक, योगवाही, बृंहण, वमनोपग	स्वरभेद, मेद, प्रमेह स्थौल्यादि शामक पुराणमधु लेखन नवीन पौष्टिक है ।	
रुद्रवन्ती	पंचांग	कफपित्तहर (शामक)	कटु तिक्त रस, उष्णवीर्य, कटु-विपाकी	रसायन, कृमिहर, रक्त प्रसादन	क्षय, कास, श्वास, रक्तपित्त कृमिहरी	

कर्म द्रव्य (उदाहरण)	व्यवहार्य अंग तथा मात्रा	दोष	रसवीर्य विपाक	गुण	कर्म	विशेष
वाराहीकन्दः वाराही	कन्द	वातकफहर, पित्तवर्धक	मधुरतिक्त कटु रस, उष्ण- वीर्य, कटु विपाकी	रसायन, कृमिहर, वृष्य, वाजी- करण, बृंहण, रक्तप्रसादन, अग्निदीपन	प्रमेह, क्लैब्य, कुष्ठ, उपदंश कृमि-कृशताहर	
विदारीकन्द	,,	वातपित्तशामक कफवर्धक	मधुर रस, शीतवीर्य, मधुर-विपाकी	स्वयं, वृष्य, बल्य, बृंहण, मूत्रल,स्तन्यवर्धक	शोथ, क्षय, प्रमेह, शुक्रक्षीणता, वातव्याधिहर	
वृद्धदारक	पत्र-बीज	वातकफशामक	कटुतिक्त कषाय रस उष्णवीर्य, मधुर विपाकी	लघु, सर, रसायन, वृष्य, पत्र-शोथ, व्रण आमदोष, पाचन	आमवात, वातरक्त उपदंश, प्रमेह प्रदरादिशामक	
			विषघ्न			
शिरीषः	बीज-तैलत्वक् (छाल)	त्रिदोषहर	कषाय तिक्त मधुर रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	विषशोथ, वेदनाहर वर्ण्य-त्वच्य, रक्त प्रसादन	शोथ, गण्डमाला, विष, प्रतिश्यायहर, बीज-शुक्रस्तम्भक	
शिंशिपा	त्वक्	वातकफहर	कटुतिक्त कषाय रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी	विष-कृमिघ्न, त्वच्य कुष्ठघ्न	दद्रु पामादि चर्मरोग श्वित्र, विष शामक	

———

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust
Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पंचम अध्याय

रस विज्ञान

ऊपर कहा जा चुका है कि द्रव्य अपने गुणों के कारण अपना कार्य करते हैं। इन गुणों को 'कामु'क गुण'[1] कहा जाता है। ये भौतिक गुणों[2] की अपेक्षा कुछ भिन्न प्रकार के हैं। इन गुणों द्वारा होने वाले कर्मों को समझने के लिये आचार्यों ने रस-वीर्य-विपाक-प्रभाव के सिद्धान्त का आविष्कार किया है। द्रव्यों के विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले प्रभावों को समझने के लिए उक्त सिद्धान्त का ज्ञान अत्यावश्यक है। वस्तुतः रसादि 'गुणभिन्न' पदार्थ नहीं है। अपितु गुणों के कर्मों को अवस्था भेद से समझने के लिए गुणों के नामान्तर मात्र हैं। अतएव आचार्य हेमाद्रि ने 'रस' की परिभाषा में 'रसनाग्राह्य गुण' को ही रस कहा है। 'ते च रस प्रभाव वीर्य विपाक गुण भेदात् पंच। तत्र रसनाग्राह्य गुणो रसः। कायाग्निजो विशिष्ट रसो विपाकः तथैवोत्पन्नो गुणो वीर्य, द्रव्यस्यात्मा प्रभावः (अ०हृ०सू०–१)

रसों के गुण लिखने का प्रयोजन

शंका उत्पन्न होती है कि रस गुण हैं अथवा द्रव्य। उपर्युक्त लक्षणानुसार रस को द्रव्य नहीं मान सकते, क्योंकि द्रव्याश्रित होने से रस गुण है, यदि गुण है, तो आयुर्वेद शास्त्र में गुण भूत मधुरादि रसों के गुण नहीं लिखे जाने चाहिए थे। 'गुणागुणाश्रयानोक्ताः निर्गुणास्तु गुणा स्मृताः' के अनुसार गुणमें गुणनहीं रहता है, किन्तु 'आजन्म सात्म्यात्कुरुते धातूनां प्रबलं बलम्' 'कषायो जड़येत् जिह्वा कोष्ठ स्रोतो बिबन्ध कृत्' इत्यादि रसों के गुण, शास्त्र में विशेष पाये जाते हैं। यदि ऐसा है तो फिर इस गुण लेखन का क्या अभिप्राय है ? इस लेख का आशय यह है कि गुणों के गुण नहीं होते, अतः साहचर्योपचार से द्रव्य के गुण समझने चाहिए। जैसे—

"गुर्वादयो गुणा द्रव्ये पृथिव्यादौ रसाश्रये।
रसेषु व्यपदिश्यन्ते साहचर्योपचारतः॥
गुणा गुणाश्रया नोक्ता तस्मात् रसगुणान् भिषक्।
विद्याद् द्रव्यगुणान् कर्तुरभिप्रायः पृथग्विधः॥
जन्म तु द्रव्यरसयोरन्योऽन्यापेक्षिकम् स्मृतम्।
अन्योन्यापेक्षिकम् जन्म यथा स्याद्देहदेहिनोः॥
वीर्य संज्ञा गुणा येष्टौ तेऽपि द्रव्ये प्रतिष्ठिताः।
रसेषु न भवन्त्येते निर्गुणास्तु गुणाः स्मृताः॥ इत्यादि

अर्थात् इस प्रकार द्रविड़ प्राणायाम से रसों के गुण लिखने का अभिप्राय यह है कि गुडूच्यादि जैसे कार्यकारी द्रव्य अनन्त हैं। प्रत्येक द्रव्य का यदि गुण लिखा जाता, तो एक ऐसा बृहन्निघण्टु बन जाता—जिसका अध्ययनाध्यापन वर्तमान समय में अत्यन्त कठिन प्रतीत होता। अतः दिव्य दृष्टियुत महर्षियों ने सौकर्यार्थ अनन्त द्रव्यों को मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय इन छः रसों में विभक्त कर दिया। सार यह हुआ कि उन द्रव्यों के मधुरादि रस छः ही हो सकते हैं।

१—Operative or Pharmacological Properties.

२—Physical Properties.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रस-परिचय—"रस्यते आस्वाद्यते इति रसः। रसनार्थोरसः" "रसति गच्छति सर्वशरीरं च व्याप्नोति इति रसः।" (चरक सू-१)

रस आप्य है और जिह्वा का विषय है। अर्थात् जिह्वा इन्द्रिय द्वारा रस का ग्रहण होता है। किसी औषधि के रस का ज्ञान दो अवस्थाओं में होता है।[1] जिह्वा के स्वादाकुंरजड़ (संज्ञारहित या शिथिल संज्ञा वाले) न हो तथा जिह्वा[2] शुष्क न हो। अन्यथा रस का ज्ञान नहीं होगा। शुष्क द्रव्य की तरल में घुलनशीलता अधिक होती है। उसका रस शीघ्र ज्ञात होता है। शुष्क की अपेक्षा ताजे द्रव्य का रस ज्ञान शीघ्र होता है। या जिस द्रव्य की तरल में घुलनशीलता अधिक होती है उसका रस शीघ्र ज्ञात होता है। यथा, सूखी मिरची का चूर्ण जिह्वा पर रखते ही उसके कटु रस का ज्ञान हो जाता है। क्योंकि उसमें उष्ण और सूक्ष्म गुण होने से उसका प्रसार शीघ्र होता है। इसके विपरीत आमलकी (सूखा आंवला) रस का ज्ञान देर में होता है क्योंकि उसमें उष्ण तीक्ष्ण-सूक्ष्मादि रस नहीं होते।

'रसनाग्राहिता' यह तो रस का स्थूल लक्षण है। वस्तुतः रसतीति रसः-जो शरीर में फैल जाता है। अतएव वीर्य तथा विपाक के प्रभाव या कार्यों का वर्णन भी रसों द्वारा किया जाता है। यथा, राई आदि का लेप करने पर उसमें अवस्थित रस त्वचा में प्रवेश कर उष्णता, लाली आदि लक्षण उत्पन्न कर देता है। शोथकारक होता है। इसके विपरीत सौम्य रस-मधुर रस, कषायादि का लेप करने पर ये रस त्वचा के स्तर पर फैल कर, अपनी सौम्य प्रकृति के कारण शोथ या शोफ को शान्त करते हैं। अतः जो पदार्थ शरीर में रस जाए व्याप्त हो जाये—वह रस है। यह लक्षण अधिक उत्तम है। (रसतीति रसः) हिन्दी में 'रसना' क्रिया का प्रयोग इस विषय में उत्तम उदाहरण है। जो रोम-रोम में रस जाए, रम जाए—उसे रसना कहा जाता है। श्री डा० भा० गो० घाणेकर, बनारस का निम्न वक्तव्य ध्यान देने योग्य है।

रसः :—रस्यते आस्वाद्यते इति रसः। रसनार्थो रसः (चरक)। औषधियों का जिह्वा से जाना जाने वाला अंश 'रस' है। यद्यपि उक्त परिभाषा में रस की परिभाषा 'रसना ग्राह्य' की गई है, तथापि अन्य इन्द्रियों से भी इसका ज्ञान होता है। यथा, कटु रस का त्वचा, आमाशय, आदि से भी होता है। भेद इतना ही है कि जिह्वा की रसग्रहण शक्ति अन्य अंगों से अधिक है। अन्य अंगों पर रसज्ञान-कर्मों से जाना जाता है। यथा मरिचों आदि के कटु रस का ज्ञान आमाशयगुदा दाह आदि से होता है। रसों का कार्य बहुधा सम्पर्क मात्र (निपात) से ही होता है। उसमें रूपान्तर की आवश्यकता नहीं होती 'रसो निपाते द्रव्याणाम्' (च०सू०अ० २६) रस का कार्य प्रायः सम्पर्क स्थान पर ही होता है, अतः वह एकदेशीय होता है। यथा, कसैली औषधियों सुपारी-आदि का प्रयोग त्वचा पर करने से स्थानिक लसिकास्राव तथा रक्त स्राव बन्द हो जाता है और त्वचा सिकुड़ कर कड़ी हो जाती है, आंखों में करने से पानी का स्राव बन्द होता है और मुख द्वारा सेवन करने पर मुख, आमाशय तथा आन्त्र का स्राव वात नाड़ियों के अग्रों (nerveterminals) द्वारा प्रतिक्षेप क्रिया (Reflex action) से भी कार्य करता है 'अम्लो क्षालयते मुखम्, 'लवणः स्यन्दयत्यास्यम्, 'कटुः स्रावयत्यक्षिनासास्यम्' ये सब उदाहरण प्रतिक्षेप क्रिया जनित रस के कार्य हैं। पाश्चात्य वैद्यक में आयुर्वेद की भांति यद्यपि रस की कल्पना नहीं हैं। तो भी सुविधा के लिए तिक्त (Beitters) कषाय (Astringents) और अम्ल (acids) ऐसे आयुर्वेदीय रस कल्पना के अनुसार औषधियों के कुछ वर्ग किये गये हैं।

रस का कार्य जिह्वा तथा अन्य स्थान पर द्रव्य का निपात अर्थात् सम्बन्ध होते ही होता है। इसको आधुनिक परिभाषा में प्रत्यक्ष या स्थानिक (direct or local) कार्य कहते हैं। इस कार्य की उत्पत्ति में द्रव्य के रासायनिक संगठन में कोई परिवंतन होने की आवश्यकता नही होती। जैसे उसका संगठन रहता है उसी से कार्योत्पत्ति हुआ करती है। इसीलिये इनको द्रव्य के 'प्राथमिक गुण धर्म या गुण-कर्म (primary action of the drug) कहते हैं—

---

(१) तत्र 'रस गतौ' धातुः, अहरहर्गच्छतीत्यतोरस (सु० सू०)

(२) रसनात् सर्वधातूनां 'रसेन्द्र' इति कीर्तितः (र० र० स०)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

"A drug may affect the body directly i. e. when it comes in contact, by primary action is meant the affect that a drug produces in its unaltered state" Materia Medica, By Ghosh.

रस और अनुरस-उपर्युक्त छहों रस औषधियों में व्यक्त और अव्यक्त द्विविध प्रकार से उपस्थित रहते हैं। इन्हीं को क्रम से 'रस' और 'अनुरस' कहते हैं। औषधियों का जो रस जिह्वा के साथ सम्बन्ध होते ही विशेष रूप से प्रतीत होता है वह 'व्यक्त रस' और जो कुछ काल के पश्चात् या अस्पष्टतया होता है वह 'अनुरस' कहलाता है :—

तत्र व्यक्तो रसः स्मृतः। अव्यक्तोऽनुरसः किंचिदन्ते व्यक्तोऽपि चेष्यते ॥—अष्टांग हृदय सू० ९

व्यक्तः शुष्कस्य चादौ च रसो द्रव्यस्य लक्ष्यते, विपर्ययेण नुरसः।—च० सू०२६

तत्र द्रव्ये कश्चिद्धर्मः सद्योव्यक्तः, कश्चिदव्यक्तः कश्चिदीषद् व्यक्तः कश्चिदतिव्यक्तः। तेष्वाद्यो रसाख्य इतरे त्रयोऽनुरसाख्याः ॥—हेमाद्रि।

चक्रपाणि दत्त के मतानुसार अनुरस सदैव कार्यानुमेय होता है—

शुष्कस्य वार्द्रस्य वा प्रथम जिह्वा सम्बन्धे वाऽदावास्वादान्ते वा यो व्यक्तत्वेन मधुरोऽयमम्लोऽयमित्यादिना विकल्पेन गृह्यते स व्यक्तः। यस्तूक्तावस्थाचतुष्टयेऽपि व्यक्तोनोपलभ्यते, किन्तर्हि अव्यपदेश्यतया छायामात्रेण वा पीयते सोऽनुरस इति वाक्यार्थः —चक्रपाणि

रस और अनुरस द्रव्यों में उपस्थित होने वाले विशिष्ट रासायनिक यौगिकों (chemical compounds) के कारण होते हैं, जिनमें रुचि की दृष्टि से जिह्वा पर संवेदना उत्पन्न करने का तथा त्वचा एवं श्लैष्मल-कला पर स्थानिक कार्य करने का गुण होता है। जो इस प्रकार के यौगिक अधिक प्रमाण में उपस्थित रहते हैं वे 'रस' होते हैं और जो अल्प प्रमाण में उपस्थित रहते हैं, वे 'अनुरस' बनते हैं। द्रव्यों के वीर्य-विपाकादि गुण की अपेक्षा रस ग्रहण सुलभ होने के कारण आयुर्वेद में औषधियों के वर्गीकरण के लिये रस का ही उपयोग किया है।

रस-अनुरस में भेद

रस	अनुरस
(१) व्यक्त	अव्यक्त वा ईषद् व्यक्त
(२) शुष्क तथा आर्द्रावस्था में स्थायी एकरस	शुष्कावस्था में या आर्द्रावस्था में अस्थायी
(३) आद्यन्त में समान रूप से प्रतीत	अन्त में प्रतीत

रसों की उत्पत्ति—"रसनार्थो रसस्तस्य द्रव्यमापः क्षितिस्तथा निवृत्तौ च विशेषे च प्रत्ययाः खादयस्त्रयः।"—(च० सू० अ० ११)

"आकाश-पवन-दहन-तोय-भूमिषु यथासंख्यमेकोत्तर परिवृद्धाः शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धाः तस्मादाप्योरसः। परस्पर संसर्गात्-परस्परानुग्रहात्-परस्परानुप्रवेशाच्च सर्वेषु सर्वेषां सान्निध्यमस्ति, उत्कर्षापकर्षात्तु ग्रहणम्। स खल्वाप्योरसः शेषभूतसंसर्गात् विदग्धः षोढ़ा विभज्यते।"—(सु० सू० अ० ४२)

"कथं भूतानामूनाधिक्यम्? उच्यते कालस्य संवत्सराख्यस्य षड्तुकत्वाद्द्रव्यस्य षड्भेदत्वम्। तथा च शिशिरे वाय्वाकाशयोराधिक्यात्तिक्तता, वसन्ते वायु-पृथिव्योः कषायता, ग्रीष्मेऽग्निवाय्वोः कटुकता, वर्षास्वग्नि पृथिव्योरम्लता, शरद्यग्न्युदकयोर्लवणता, हेमन्ते पृथिव्युदकयोर्मधुरेतेति प्राधान्याद् व्यपदेशः। अनेनान्यऋतूद्भवानामपि रसानां यथोक्तमहाभूतद्वयाधिक्यमेव कारणं विज्ञेयम्।" इन्दुः (अ० सं० सू० १८)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रसना या जिह्वा के विषय को रस कहते हैं। ये रस आप्य या जलीय गुण हैं। किन्तु जल अव्यक्त रस वाला होता है। उसकी स्पष्टता अभिव्यक्ति प्रतोति जल और पृथिवी के मिलने पर ही होती है। अतः रसों की उत्पत्ति में जल पृथ्वी और काल भी कारण है। (तेन च कारणात् कालोऽपि विशेषेऽभिव्यक्तौ च कारणं लभ्यते। साक्षात् कालस्यावचनेन खादिभ्योऽप्यपकृष्टं कालस्य कारणं लभ्यते।"—(चक्रः प० सू०)

किन्तु रसों की विशिष्टता के कारण शेष तीनों महाभूतों (वायु-तेज-आकाश) के साथ-साथ काल भी है अतएव आचार्य सुश्रुत ने कहा है कि उत्तरोत्तर महाभूतों में पूर्व-पूर्व भूत के अनुप्रवेश (मिलना) से आकाश-वायु-तेज-जल और भूमि में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध ये पाँचों गुण एक-एक की वृद्धि से रहते हैं। अतः रस जल का नैसर्गिक गुण होने से आप्य-जलीय है। यद्यपि पंचमहाभूतों के परस्पर संसर्ग से, परस्पर एक दूसरे पर अनुग्रह से एवं एक दूसरे में प्रविष्ट होने से सब पाँचभौतिक हैं तथापि जिस द्रव्य में जिसको प्रधानता होती है, उसी के नाम से वह द्रव्य पहचाना जाता है। अतः रसों में जल को अधिकता होने से वह जलीय है। जलीय होते हुए भी शेष चारों महाभूतों की न्यूनाधिकता से वह परिपाक को प्राप्त होकर वह छः प्रकार का होता है।

अष्टांग संग्रह के टीकाकार इन्दु ने भूतों की न्यूनाधिकता किस प्रकार से होती है तथा छः रसों की उत्पत्ति कालक्रम से किस प्रकार होती है, इस पर अच्छा प्रकाश डाला है। "वर्षरूपी काल विभाग छः ऋतुओं में किया गया है। शिशिर ऋतु में वायु और आकाश की प्रधानता होने से द्रव्यों में **तिक्त रस** की विशेष रूप से उत्पत्ति होती है। वसन्त में वायु और पृथ्वी की प्रधानता होने से **कषाय रस** ग्रीष्मकाल में अग्नि+वायु की अधिकता से **कटुरस** की, वर्षा में अग्नि+पृथ्वी के आधिक्य से **अम्ल रस**, शरद् में जल+वायु की अधिकता से **लवण रस**, हेमन्त में जल+पृथ्वी की अधिकता से **मधुर रस** उत्पन्न होता है। इस प्रकार साल भर में काल के छः विभाग होने से रसों की संख्या भी छः ही है।"

संवत्सर का विभाग 'विसर्ग काल और आदानकाल' इन दो वर्गों में भी किया गया है। विसर्ग काल में वर्षा-शरद्-हेमन्त ऋतुएँ आती है। इस काल में सूर्य के दूर होने के कारण चन्द्रमा का बल बढ़ा रहता है। जिससे पृथ्वी पर उद्भिज्ज द्रव्यों तथा प्राणियों में सौम्यरस (स्नेहांश) की वृद्धि होती है। उक्त ऋतुओं में क्रमशः अम्ल-लवण मधुर रसों की उत्पत्ति विशेष रूप से होती है।

इसके विपरीत आदान काल में सूर्य उग्र होता है। चन्द्रमा का बल क्षीण होता है। परिणामतः प्राणियों का बल क्षीण होता है। सूर्य स्नेह को सोख लेता है। अतः (आदान काल) में रूक्षता बढ़ जाती है जिससे क्रमशः शिशिर, बसन्त और ग्रीष्म में तिक्त-कषाय और कटु रस की विशेष रूप से उत्पत्ति होती है। (च० सू० अ० ६।७)

रसों का संघटन—'तत्रभूम्यम्बुगुणबाहुल्यात् मधुरः, तोयाग्निगुणबाहुल्यादम्लः, भूम्यग्निगुणबाहुल्यादम्लः, वाय्वग्निगुणबाहुल्यात् कटुकः, वाय्वाकाशगुणबाहुल्यात्तिक्तः, पृथिव्यनिलगुणबाहुल्यात् कषाय इति। (सु० सू० अ० ४२)

"तत्र·········भू तेजसोरम्लः, जलतेजसोर्लवणः"—(अ० सं० सू० अ० १८) तत्र पृथिव्यां बाहुल्यात् मधुरं-विद्यात् अम्लमयपामानेश्च, लवणमग्नेरपाँच, कटुकमग्नेर्वायोश्च, तिक्तं खस्यवायोश्च, कषायमग्नेर्वायोश्च। (वै० अ० ३।३८-४३)

रसों के पाँचभौतिक होने पर भी विभिन्न महाभूतों की प्रधानता से वे पृथक्-पृथक् हो जाते हैं। उत्पत्ति वर्णन में ऋतुओं के अनुसार उत्पत्ति बताई गई है। यहाँ उक्त उद्धरणों पर आधारित एक तालिका द्वारा रसों में भूतप्राधान्यता दिखाई गई है। दो भूत प्रधान होने पर भी अन्य तीनों महाभूतों की विद्यमानता रहती है। यथा, मधुर रस में पृथ्वी ३५ भाग, जल ३५ भाग, शेष तीनों आकाश १० भाग, वायु १० भाग, तथा तेज १० भाग समझने चाहिए।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रस-महाभूत सम्बन्ध प्रदर्शिका तालिका

रस	महाभूत		
	सुश्रुत मत	चरक-वाग्भट्ट मत	नागार्जुन मत
मधुर	पृथ्वी+जल	पृथ्वी+जल	पृथ्वी+जल
अम्ल❀	जल+तेजस्	पृथ्वी+तेजस्	जल+अग्नि
लवण❀	भू+तेजस्	जल+तेजस्	अग्नि+जल
तिक्त	वायु+आकाश	वायु+आकाश	वायु+आकाश
कटु	वायु+ तेजस्	वायु+तेजस्	वायु+तेजस्
कषाय	वायु+पृथ्वी	वायु+पृथ्वी	वायु+अग्नि

रसों के उक्त पांचभौतिक संगठन के सम्बन्ध में दो महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होते हैं। प्रथम यह कि छः महाभूत द्वन्द्वों से छः रस क्यों उत्पन्न होते हैं। जल+वायु, जल+आकाशादि अन्य प्रकार के द्वन्द्वों से अन्य रस क्यों नहीं उत्पन्न होते। दूसरा प्रश्न है कि इन रसों का उत्पत्ति में कारणभूत महारसों का न्यूनातिरेक क्यों और कैसे होता है?

प्रथम प्रश्न के उत्तर में आचार्यों ने महाभूत-स्वभाव को कारण माना है। "तोयवत् पृथिव्यादयोऽपि किमिति पृथग्रसान्तरं न कुर्वन्ति तथा तोयवातादिसंयोगादिभ्यः किमिति रसान्तराणि नोत्पद्यन्ते इति, तदपि भूतस्वभावापर्यनुयोगादेव प्रस्तुतम्"—(च० द०)।

महाभूतो का यह स्वभाव ही है कि विशिष्ट महाभूत के साथ संयुक्त होने पर विशिष्ट रस को ही उत्पन्न करता है, अन्य महाभूत के साथ नहीं। अतएव महाभूतों के छः विशिष्ट द्वन्द्वों से छः रस ही उत्पन्न होते हैं, अन्य नहीं।

दूसरे प्रश्न के उत्तर में आचार्यों का कथन है "षड्-ऋतुकत्वाच्च कालस्योपपन्नो महाभूतानां न्यूनातिरेक विशेषः"—(च० सू० २६)।

"कथं, महाभूतानां न्यूनाधिक्यम्। उच्यते-कालस्य संवत्सराख्यस्य षड् ऋतुकत्वाद्रसस्यापि षड्कत्वमेव। तथा च शिशिरे वाय्वाकाशयोराधिक्याद्रसस्यतिक्तता, वसन्ते वायु पृथिव्योः कषायत, ग्रीष्मेऽग्निवाय्वोः कटुता वर्षास्वग्नि पृथिव्योरम्लता, शरदि अग्नि-उदकयोर्लवणता, हेमन्ते पृथिव्युदकयोर्मधुरतेति प्राधान्याद् व्यपदेशः। तेनान्यर्त्तूद्भवानामपि रसानां यथोक्त महाभूत द्वयाधिक्यमेव कारणं विज्ञेयम् (इन्दु)।

अर्थात् संवत्सर रूप काल का विभाजन छः ऋतुओं में होता है। प्रत्येक ऋतु एक महाभूत द्वन्द्व प्रधान होता है। अतः रस भी छः ही उत्पन्न होते हैं। ऋतुओं के कारण महाभूतों की न्यूनाधिकता होती है अथवा महाभूतों की न्यूनाधिकता के कारण ऋतु भेद होता है। इस प्रश्न का समाधान बीजांकुर न्याय से करना चाहिए। आचार्य चक्रपाणिदत्त के कथनानुसार ऋतुओं के अतिरिक्त अहोरात्र और अदृष्ट के कारण भी महाभूतों का न्यूनातिरेक होता है। अतः अन्य ऋतुओं में रसान्तर की उत्पत्ति कुछ पदार्थों में देखी जाती है।

निम्नांकित तालिका में रसों-महाभूतों तथा धातुओं का परस्पर सम्बन्ध दिखाया गया है—

ऋतु	महाभूत	रसोत्पत्ति
(१) शिशिर	वायु+आकाश	तिक्त
(२) वसन्त	वायु+पृथिवी	कषाय
(३) ग्रीष्म	वायु+अग्नि	कटु
(४) वर्षा	पृथिवी+अग्नि	अम्ल
(५) शरद्	जल+अग्नि	लवण
(६) हेमन्त	पृथिवी+जल	मधुर

❀अम्ल तथा लवण के विषय में मतभेद है। शेष सब समान हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इस प्रकार सब दृष्टियों से छः ही रस सिद्ध होते हैं; ऊपर रसोत्पत्ति की तालिका से प्रतीत होता है कि अम्ल तथा लवण रसों के भौतिक संगठन के विषय में आचार्यों में मतभेद है। यह ठीक है, किन्तु कार्य की दृष्टि से इसमें कोई विरोध नहीं। क्योंकि रसों के कार्यों द्वारा भौतिक संगठन का अनुमान किया गया है। अम्ल तथा लवण रस की उत्पत्ति पृथिवी + अग्नि या जल + अग्नि-किसी भी भौतिक द्वन्द्व से माने। उनका कार्य कफ-पित्त का वर्धन या वात का शमन होगा। भेद का कारण आचार्यों के दृष्टिकोण की भिन्नता है।

यहां पर एक और महत्व का प्रश्न उपस्थित होता है कि जल और अग्नि जैसे परस्पर विरोधी गुण वाले महाभूत किस प्रकार मिलकर ऐसे रस उत्पन्न करते हैं जो विरोधी गुण वाले नहीं होते। इसका उत्तर है महाभूतों का स्वभाव।

"नात्र वस्तुस्वभावे युक्तयः क्रोशनीयाः, अपर्यनुयोग्यत्वात् भावस्वभावानाम्"—(च० द०)

भौतिक संघटना का निर्धारण

"ते निर्धार्यन्तेऽनुमानात्– (र० वै० सू० ४४) "वर्धनात् समान जातोयस्य असमान जातीयस्य क्षपणाच्च" (सू० ४५)।"रसों के कार्यों को देखकर उनके उत्पादक महाभूतों का अनुमान किया जाता है।" विशिष्ट रस का सेवन करने से तत् समान जातोय तत्वों को वृद्धि देखी जाती है और विरोधी तत्वों (दोष धातुओं) का क्षय होता है। यथा, मधुररस सेवन से जलीय कफ की वृद्धि और आग्नेय पित्त का क्षय होता है। अतः मधुर रस के 'पार्थिवाप्य' इस भौतिक रूप का अनुमान कर उसका भौतिक संगठन निर्धारित किया गया है।

रसों की उपलब्धि—"प्रत्यक्षतोऽनुमानादाप्तोपदेशाच्च रसानामुपलब्धिः" (र० वै० अ० ३/१०८)

द्रव्यों में रसों की उपलब्धि तीन प्रकार से होती है—(१) प्रत्यक्ष से—आम का खट्टापन या मीठापन जिह्वा द्वारा प्रत्यक्ष ही जान सकते हैं। लिटमस पेपर से अम्ल रस का पता चलता है। अम्ल रस के संपर्क में जाते ही वह लाल हो जाता है। (२) अनुमान से—द्रव्य के कार्य को देखकर रस का अनुमान लगाया जा सकता है। यथा, सुवर्णादि जड़ पदार्थों के मेधास्मृतिवर्धन-रसायनादि कार्य को देखकर तद्गत मधुरादि रसों का ज्ञान होता है। (३) आप्तोपदेश से—शास्त्रों के विशेषज्ञों के उपदेश से भी अनेक पदार्थों के रस का ज्ञान होता है। यथा, लशुन में अम्ल को छोड़कर शेष पांच रस है। पाँचों 'रसों' का प्रत्यक्ष तो होता नहीं।

उपलब्धि या ज्ञान की अवस्था विशेषतया मात्रा पर भी निर्भर है। ताजे द्रव्यों में रसों का ज्ञान तुरन्त हो जाता है; सूखों में देर में। इस उपलब्धि के अनुसार रसों के दो प्रकार किए गये हैं—(१) व्यक्त रस (२) अनुरस। जिनकी व्याख्या पहिले की जा चुकी है।

रसों की संख्या— **रसाः स्वाद्वम्ललवणतिक्तोष्णकषायकाः।**
षड् द्रव्यमाश्रितास्ते च यथापूर्वंबलावहा ॥—(अ० सू० सू० अ० १)

रस द्रव्य में समवाय सम्बन्ध (नित्य) से रहने वाले जिह्वा ग्राह्य गुण हैं। जिनकी संख्या छः है।

(१) मधुर (मीठा-Sweet)
(२) अम्ल (खट्टा- sour, Acid)
(३) लवण (नमकीन-Salt)
(४) तिक्त (कड़वा-Bitter)
(५) कटु (चरपरा-Pungent acrid)
(६) कषाय-(कसैला-Astringent)

प्रायः कटु से कड़वा तथा तिक्त से तोखा या चरपरा समझने की भूल विद्यार्थी कर बैठते हैं। किन्तु आयुर्वेद में ठोक इसके विपरीत है। यह बात स्मरण रखना चाहिए। उक्त छः संख्या मूल रसों की हैं। यूँ तो परस्पर संयोग से द्रव्य-देश-काल-प्रभाव भेद से ६३ (तिरसठ) भेद इनके हो जाते हैं। भेदश्चैषां त्रिषष्टिविधविकल्पो द्रव्य-देश-काल-प्रभावादुभवति—(च० सू० अ० २६) इनका वर्णन अन्यत्र किया गया है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने अभी केवल चार ही मूल रस माने हैं। जैसे, (१) मधुर (२) अम्ल (३) तिक्त (४) लवण। महर्षि अग्निवेश (लगभग ३५०० वर्ष पूर्व रसों के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निर्णयार्थं हुई एक सभा का बड़ा सुन्दर वर्णन चरकसंहिता के सूत्रस्थान अध्याय २६ में किया गया है) के समय भी इस विषय में मतभेद था। यहां उसका भाषान्तर मात्र दिया गया है। मूल संस्कृत में वहीं देखें। छात्रों के लिए भाषान्तर पर्याप्त है। महर्षि पुनर्वसु आत्रेय के सभापतित्व में हुई इस सभा का विवेच्य विषय था 'रसो की संख्या' वाद का आरम्भ आचार्य भद्रकाप्य ने किया। उनके मत में रस एक ही है। जो पांचों ज्ञानेन्द्रियों में से जिह्वा का विषय है और भावरूप है। जल से पृथग् नहीं है (रसों को भावरूप कहने से स्वतः ही रस का अभाव जिह्वा ज्ञेय है--यह बताया गया है।) (२) शाकुन्तेय ब्राम्हण का कहना है कि रस दो है—(क) छेदनीय (कृश) करने वाला या शोषक। (ख) उपशमनीय (शान्त करने वाला-अर्थात् पहला रस रोग कारक और दूसरा उसका शामक)

(३) घूर्णाक्षमौग्दल्य के मत में तीन रस हैं। छेदनीय, उपशमनीय और साधारण—

(४) आचार्य हिरण्याक्ष कौशिक—रस चार है (i) स्वादु (रुचिकर) और हितकारक (ii) स्वादु-अहितकर (हानिकारक) (iii) अस्वादु-हितकर (iv) अस्वादु-अहितकर।

(५) कुमारशिरा भारद्वाज—रस पांच है—भौम, औदक, आग्नेय, वायव्य और आन्तरिक्ष अर्थात् प्रत्येक महाभूत का पृथक्-पृथक् रस है।

(६) राजर्षि वार्योविद—गुरु, लघु, शीत, स्निग्ध, रूक्ष, और उष्ण ये छः रस हैं।

(७) निमि वैदेह—सात रस हैं—मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय, क्षार।

(८) बड़िश धामार्गव—मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय, क्षार, और अव्यक्त ये आठ रस हैं।

(९) वाल्हीक (गान्धार का वैद्य) वैद्य कांकायन—रस अपरिसंख्येय (अनगिनत) है, क्योंकि रसों के आश्रय, गुण, कर्म, स्वाद विशिष्टता (यथा गुड़, चीनी, शर्करा, केले आदि में मीठा रस होते हुए भी स्वाद पृथक्-पृथक् हैं) ये असंख्येय है। अतः रस भी असंख्या है।

उक्त एकान्तवादियों (एक मत की स्थापना करने वाले) के मत को सुनकर भगवान पुनर्वसु आत्रेय ने कहा कि रस छः ही हैं—मधुर-अम्ल-लवण-कटु-तिक्त-कषाय। उनकी योनि (उत्पादक शक्ति) जल है। जल रसों का आधार हैं और रस आधेय। अतः दोनों पृथग् हैं। छेदनीय और उपशमन ये दो कर्म हैं। दोनों के मिलने से साधारण कर्म बनता है। अतः ये स्वयं रस न होकर उनके कर्म हैं। स्वादुता और अस्वादुता तो भक्ति (आदत) है। एक ही पदार्थ दो व्यक्तियों को समान रुचिकारक नहीं होता। जो एक को रुचिकारक है, वह दूसरे को अरुचिकारक हो सकता है। हित और अहित प्रभाव है। जो रसाश्रित रहते हैं। अतः वे भी रस नहीं हैं। पंचमहाभूतों के विकार स्वयं ही कार्य द्रव्य हैं। इन भौम द्रव्यों में प्रकृति-विकृत (संस्कार) देशकाल के अधीन परिवर्तित होता रहता है। इन कार्य द्रव्यों में गुरु, लघु, शीत, उष्ण, तथा स्निग्ध रूक्षादि गुण हैं रस नहीं। क्षार भी रस नहीं हो सकता क्योंकि, उसमें क्षरण गुण प्रधान द्रव्य होने के कारण अनेक रस वाला है जिसमें कटु तथा लवण रस की प्रधानता है। पुनश्च रस का ग्रहण केवल जिह्वा द्वारा होता है, जबकि क्षार अनेक इन्द्रिय ज्ञेय है। इसको विशिष्ट प्रक्रिया द्वारा बनाया जाता है। अव्यक्त भी रस नहीं है। रसों का अव्यक्तीभाव (अस्पष्टता) रस को प्रकृति (जल) में, अनुरस या अनुरसयुक्तद्रव्य में पाया जाता है। छः रसों में से किसी का व्यक्त न होना ही रस का अव्यक्तत्व है। कोई पृथग् रस नहीं। रस असंख्येय भी नहीं हो सकते, क्योकि प्रत्येक मधुरादि रस आश्रय, गुण; कर्म और स्वाद के भेदों को आश्रय देता है, किन्तु इनके भेद से रस भिन्न नहीं हो सकता। यथा, चावल, दूध, घी आदि मधुर रस के आश्रय भिन्न-भिन्न होते हैं। तथापि उन सब में मधुरत्व सामान्य होने से मधुर रस एक ही होता है। यदि कोई कहे कि आश्रयादि के भेद से नहीं; किन्तु परस्पर संयोग से जो स्वाद विशेष उत्पन्न होता है वह भिन्न कार्य भी करता है। यथा मधुर अनार तथा खटमीठा (मधुराम्ल दाडिम) और खट्टे अनार के गुण कर्म भिन्न-भिन्न होते हैं। अतः ये असंख्येय होंगे। यह युक्ति भी ठीक नहीं है। क्योंकि, यद्यपि दो तीन या अधिक रसों के मिलने से रसों के बहुत संयोग बन जाते हैं तथा उनके गुरु, लघु; आदि गुण तथा बृंहण आदि कर्म अनेक नहीं होते, किन्तु मधुरादि छः रसों के जो गुण कर्म होते हैं वही संयुक्तों के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

होते हैं। यथा, मधुर-अम्ल-अनार में मधुर या अम्ल रसों के गुण कर्म थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ पाये जाते हैं। उनमें नवीनता या अन्यथात्व नहीं है। कर्म का वर्णन नहीं मिलता। अतः शास्त्र में संयुक्त रसों के गुण धर्म का वर्णन नहीं मिलता। अतः रसों का षट्कत्व सिद्ध होता है। इन्हीं मधुरादि रसों के मूल रूपों के लवण कर्म कहे जाते हैं।

आधुनिकों का मत

आधुनिक वैज्ञानिकों में मूलतः चार ही रस शरीर क्रिया विज्ञान (Physiology) तथा मनोविज्ञान (Psychology) की दृष्टि से माने जाते हैं।

मधुर (Sweet) अम्ल (Acid sour)
लवण (Salt) तिक्त (Bitters)

कषाय (Astringent) तथा कटु (Pungent or Acrid) को वे रस तथा—स्पर्श की संवेदना का संयुक्तरूप मानते हैं। स्वतन्त्र रस नहीं। तथापि औषधिविज्ञान (Pharmacology) में उन्होंने कषायस्कन्ध (Artringents) और कटुस्कन्ध (Pungents) का पृथग् उल्लेख किया है। अतः व्यवहारतः वह आयुर्वेद के समीप हो है।

रसों का आत्मलक्षण—लिंग पुनर्मधुरस्याऽल्हादन, श्लेष्मजननं, कण्ठतर्पणं च हृद्यत्वं, दन्तहर्षः प्रस्रावणं प्रक्लेदनं चाम्लरसस्य लवणस्यविसरणं उष्णाव प्रसेचने च, कटोजिव्हाग्राबाधः, उद्वेगो, नासास्रावः, शिरोग्रहश्च तिक्तस्यहर्षणं, हरिमता, शैत्यमास्यस्य-गल द्वारशोषणंच, कषायस्य मुख परिशोषः श्लेष्म संवृतिः, गौरवं, स्तम्भश्च। (र० वै० अ० ३। १८)

रसों का ज्ञान उनके आत्मलिंग या स्वालक्षण्य (अपना विशेष लक्षण) से होता है। ये आत्मलक्षण चरकादि में प्रायः समान है। एक-दो लक्षणों को न्यूनाधिकता कहीं-कहीं हैं। जिह्वा पर रखते ही इनका ज्ञान होता है। हाँ, अनुरस का अवश्य देर में होता है।

१. **मधुर रस का स्वलक्षणः**—जो रस मुख में जाते ही सारे मुख में व्याप्त हो जाए तथा उसे माधुर्य से लिप्त कर दे। स्नेहन, प्रीणन (तृप्तिकारक) प्रसन्नता देने वाला; कफ उत्पादक; मूर्च्छित को संज्ञा देने वाला, चींटी आदि प्राणियों को प्रिय हैं—वह मधुर रस कहा जाता है।

२. **अम्लरस**—जो रस खाने पर दन्तहर्ष, मुख में स्राव उत्पन्न करने वाला; आर्द्रता उत्पादक तथा रुचिकर स्वेदल मुखशोधक (कफ के चिपचिपापन को मिटाने वाला) अन्ननली तथा कण्ठ में दाह करने वाला है, वह अम्ल रस है।

३. **लवण**—जो रस मुख में एकदम घुलकर क्लेद, (गोलापन) लालास्राव-मृदुता मुखकण्ठदाहक, अन्न में रुचि, कफ का स्राव और उष्णता उत्पन्न करता है।

४. **कटु रस**—जो जिह्वा में उद्वेग, तोद (सुई चुभने की-सी प्रतीति) विदाह के साथ मुख नासिका तथा नेत्रों से स्राव एवं शिरोवेदना, कण्ठ, तथा गले में चिपचिपाहट-सा अनुभव एवं अन्न की रुचि उत्पन्न करने वाला है।

५. **तिक्त रस**—जो जिह्वा में अवस्थित स्वाद ग्रन्थियों को जड़ करने वाला (कड़वा) रस खाने पर अन्य पदार्थों के रसों का ज्ञान नहीं होता (यही जिह्वा जड़ता है।) अप्रिय, मुखशोधक, मुखशोष, अरुचिनाश, गले में कोई खींचता हो ऐसा शोषपूर्वक अनुभव, मुख में ठंडापन तथा हरित्र-गन्धता अन्नरुचि, उत्पन्न करता हैं।

६. **कषायरस**—जिह्वा में विशदता (सूखापन) स्तब्धता तथा जड़ता, कफ की प्रवृत्ति को कम तथा स्राव को घन, कण्ठ को जकड़ता-सा है। हृदय में खींचने की-सी पीड़ा और मुख में भारीपन उत्पन्न करता है।—(च० सू० अ० २६, सु० सू० अ० ४२, अ० ह० सू० अ० १०)

रसों के गुण और कर्म—रसगुणानतः ऊर्ध्ववक्ष्यामः.............मधुरोरसः।
आजन्मसात्ययात् कुरुते धातूनां प्रबलं बलम्।
बालबृद्धक्षतक्षीण वर्णकेशेन्द्रियौजसाम्॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रशस्तोबृंहणः कण्ठयः स्तन्यसंन्धानकृद् गुरुः ।
आयुष्यो जीवनः स्निग्धः पित्तानिलविषापहः ॥
कुरुतेऽत्युपयोगेन स भेदः श्लेष्मजान् गदान् ।
स्थौल्याग्निसाद- सन्यास- मेह- गण्डार्बुदादिकान् ॥
अम्लोऽग्निदीप्तिकृत् स्निग्धो हृद्यः पाचनरोचनः ।
उष्णवीर्योहितस्पर्शः प्रीणनः क्लेदनो लघुः ॥
करोति कफपित्तास्त्रं मूढ़वातानुलोमनः ॥
सोऽत्यभ्यस्तस्तनोः कुर्याच्छैथिल्यं तिमिरं भ्रमम् ।
कण्डु-पाण्डुत्व-वीसर्प-शोफ विस्फोट-तृड्-ज्वरम् ॥
लवणः—स्तम्भ संघात बन्धविध्पनानोऽग्निकृत् ।
स्नेहनः स्वेदनस्तीक्ष्णो रोचनश्छेद-भेदकृत् ॥
सोऽतियुक्तोऽस्रपवनं खलितं पलितं वलिम् ।
तृट्-कुष्ठ-विष-वीसर्पान् जनयेत् क्षपयेद्बलम् ॥
तिक्तः स्वयमरोचिष्णुररुचिं कृमितृड्विषम् ॥
कुष्ठमूर्च्छाज्वरोत्क्लेशदाहपित्तकफान् जयेत् ॥
क्लेदमेदोवसामज्जशकृन्मूत्रोप शोषणः ।
लघुर्मेध्यो हिमो रूक्षः स्तन्यकण्ठविशोधनः ॥
धातुक्षयाऽनिल व्याधीनतियोगात् करोति सः ।
कटु-र्गलामयोदर्दकुष्ठाऽलसकशोफजित् ॥
व्रणावसादनः स्नेहमेदःक्लेदोपशोषणः ।
दीपनः पाचनो रुच्यः शोधनोऽन्नास्य शोषणः ।
छिनत्ति बन्धान् स्रोतांसि विवृणोति कफापहः ॥
कुरुते सोऽति योगेन तृष्णो शुक्रबलक्षयम् ।
मूर्च्छामाकुंचनं कम्पं कटिपृष्ठादिषु व्यथाम् ॥
कषायः पित्तकफहा गुरुरस्रविशोधनः ।
पीडनो रोपणः शीतः क्लेमेदोविशोषणः ॥
आमसंस्तम्भनो ग्राही रूक्षोऽतित्वक्प्रसादनः ।
करोति शीलितः सोऽतिविष्टम्भाध्मानहृद्रुजः ॥
तृट्-कार्श्य पौरुषभ्रंश स्रोतोरोधमलग्रहान् ॥ (अ० हृ० सू० अ० १०)

तत्र बृंहणीयाः, तर्पणीया-बल्य-वृष्याः-स्वादवो-गुरुविपाका, मेदुराः स्थिराः, पयस्याः हृद्याः, स्निग्धा-जीवनीयाः, सृष्टसूत्रपुरीषाः, पूजिताचाश्न्यवहरणाय पूर्वेभूयिष्ठम् इतरेविपरीता । (र० वै० सू० अ०-३-३४-३५)

मधुर रस के गुण और कर्म—यह जन्म से ही सात्म्य (सबको अनुकुल) होने से सब धातुओं-रस, रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र-ओज तथा आयुवर्धक, मनसहित छः इन्द्रियों को प्रसन्न करने वाला, बल, कान्ति, तृप्ति, पुष्टि देने वाला, वात-पित्त विष तृषा, दाहशामक, त्वचा, केश तथा कण्ठ के लिए हितकर, शरीर को दृढ़ करने वाला, उरःक्षत, भग्न, का शामक, स्निग्ध, शीत-गुरु नेत्र्य स्तन्यवर्धक, रसरक्त शोधक, बालवृद्ध क्षतक्षीण के लिए हितकर, कफ तथा क्रमि उत्पादक और मृदु है । अभिघातादि से मूर्च्छित होने पर चैतन्य प्रदाता है ।

अति प्रयोग से हानि—अति उपयोगी होने पर भी यदि अतिमात्रा में मधुर रस का प्रयोग किया जाए तो निम्न लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। स्थूलता, मृदुता, आलस्य, अतिनिद्रा, गौरव (भारीपन) अरुचि, अग्निमान्द्य, श्वास-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कास, प्रतिश्याय, अलसक, शीतज्वर और आनाह (कब्जो) मुखमाधुर्य, वमन, मूर्च्छा, स्वरभंग, गण्डमाला, मूत्राशय, धमनियों और गले में क्लेद की वृद्धि (मल की) नेत्ररोग, अभिष्यन्द, आदि कफ रोग, उदरकृमि, अर्बुद, गुदोपलेप, प्रमेह, उदर्द, सिरदर्द, उदर रोग, मेदो रोग और सन्यास आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। श्लोपद, गले और मुख में मांस वृद्धि गलशोथ भी उत्पन्न करता है।

अम्लरस—रुचिकारक, अग्निदीपन, पाचन, उत्साहवर्धक, लालास्रावक, अन्न को क्लिन्न (गीला या गलाने वाला) करने वाला, मनःप्रसादक, वल्य, मूढ़वातानुलोमन, तृप्तिकारक तथा प्रीणन, लघु, उष्ण, स्निग्ध, व्रणशोथ-पाचक, उदर में विदाह उत्पन्न करने वाला, वीर्य में उष्ण, रक्त तथा पित्त प्रकोपक, इन्द्रियों का उत्तेजक, तर्पण तथा व्यवायी है।

अति प्रयोग— इसके अतियोग से दन्त हर्ष, तृष्णा, रोमांच, नेत्र संकोच (आँखें मिची-सी रहना) रोमांच कफविलयन, पित्त-रक्त का प्रकोप, मांसपाक, शरीर शैथिल्य, क्षीण-क्षत-कृश, और दुर्बल पुरुषों में शोथ, क्षत अभिघात, दष्ट अस्थि भग्नादि में आग्नेय स्वभाव के कारण पाक होना हृदय कंठ और उर में दाह, दृष्टि मंदता, क्षत, वीसर्प, रक्त-पित्त;भ्रम, तिमिर, आँखों के सामने अँधेरा आना फोड़े-फुन्सी ज्वरादि रोगों को उत्पन्न करता है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार इन रसों की क्रिया सेन्द्रिय अम्लों (Organic Acid) विशेषतः जीवनीय-सी तथा स्वस्व प्रभावी अंशों के कारण होती है।

लवण रस—पाचन, दीपन-क्लेदन, शरीर धातुओं को स्वस्थानच्युत करने वाला (स्रावकारक होने से) छेदन भेदन, तीक्ष्ण-अनुलोमन, विकासी, स्रावक स्रोतादि के अवकाश (छिद्र) को स्वच्छ रखने वाला (कफादि का छेदन करे) बातहर, स्तम्भ (जकड़ाहट) स्रोतोरोध, एवं काठिन्य का नाशक, अन्य सब रसों को दबा देने वाला, लाला और कफ उत्पादक, रोचक, देहावयवों को मृदु करने वाला, कुछ गुरु, स्निग्ध, उष्ण, शोषण, स्वेदन, अनुलोमन, व्यवायी और तीक्ष्ण है।

अति प्रयोग-इससे पित्तप्रकोप, रक्त दुष्टि, प्यास, मूर्च्छा, ताप, अंगों में दारण, मांस में शैथिल्य, कुष्ठ का गलना, शरीर में यदि विष हो तो उनमें वृद्धि, शोथ को फाडने वाला, दन्तों का गिरना, शुक्रनाश, इन्द्रियों में अशक्ति, वलियां (झुरियां) पड़ना, पालित्य (बालों का श्वेत होना) खालित्य (गंजापन) रक्तपित्त, अम्लपित्त, वीसर्प, वातरक्त विचर्चिका, इन्द्रलुप्त (बालो का झड़ना) खाज, कोठ, शोथ, मुखपाक, नेत्ररोग, कान्तिनाश, स्वेदकार, अन्नविदाह (खट्टे डकार आना) आक्षेप, मेदवृद्धि घावों का बढ़ाना, कुष्ठ (त्वचा रोग) बल क्षय, और ओज क्षय करता है।

'**वक्तव्य**--आमाशय का पाचन रस लवण प्रधान (लवणाम्ल के कारण) होता है। लवण रस वाले द्रव्यों का शोषण शरीर में शीघ्र होने से, ये शरीर के जिस भाग में पहुँचते हैं, वहाँ तक उसके आसपास की रक्त केशिकाओं में स्थित जलांश उस समय तक आकृष्ट करते रहते हैं। जब तक कि अन्दर और बाहर के द्रव्यों का घनत्व समान न हो जायं। इस प्रकार लवण रस तरलों का शोषण करते हैं।

कटु रस—मुख शोधक, अग्निदीपन, अन्न का शोधक, शोथ; मांसादि की वृद्धि; पित्ती, अभिष्यन्दि; स्वेद, क्लेद का नाशक, कण्डु; कृमि, स्थूलता; कफ; आलस्य; विष; कुष्ठ का नाशक, व्रणावसादक; वसा लेखन, रक्त संघात एवं स्रोतोरोध नाशक, लघु, उष्ण, रूक्ष, स्नेह, मुखरोग, गलरोग, नाशक, तीक्ष्ण, मुखनासिका नेत्र स्रावक है।

अति योग से—यह उष्णवीर्य होने के कारण मोहग्लानि अवसाद; कृशता, मूर्च्छा शरीर का झुकना आँखों के आगे अँधेरा, भ्रम, चक्कर, कण्ठ में दाह, शरीर में ताप, क्षय, तृष्णा, कम्प, तोदादि वेदनाएँ, और वायु प्रधान होने से वातविकार-गलतालुशोथ, वमन, वीर्यनाश, हाथ, पाँव, पीठादि में संकोच उत्पादक है।

तिक्त रस—स्वयं अरुचिकर होने पर भी रुचिकारक विष, कृमि, मूर्च्छा-दाह, कण्डु-कुष्ठ-तथा तृष्णा का नाशक, ज्वरघ्न, दीपन, पाचन, रक्त, तथा स्तन्य शोधक, त्वचा तथा मांस का दृढ़ करनेवाला, लेखन, स्वेद-मेद-वसा-मज्जा लसीका, पूय-स्वेद, मूत्र-पुरीष, पित्त और कफ का शोधक, रूक्ष-शीत-लघु-छेदन, शोधन, कंठकोठप्रशमन, -कण्ठशोधक, मेध्य और उत्क्लेद (जी मचलाना) नाशक है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अतियोग—यह अपने रूक्ष-विशद और खर गुणों के कारण--धातुओं का शोधक, बलक्षय, कृशता, ग्लानि, मूर्च्छा, मुखशोथ, स्रोतों में काठिन्य, एवं वातरोग-शरीर में स्तब्धता-मन्यास्तम्भ, आक्षेप, अर्दित, सिरदर्द, तोद, भेद मुख का शोषण आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

तिक्तरस—प्रधान द्रव्य यकृत् विकारशामक तथा पित्तरोगशामक होते हैं।

कषायरस—संशमन, ग्राही, सन्धानीय, व्रणपीड़न, रोपण, कफ-रक्त, पित्तशामक, रूक्ष, शीत, गुरु, लेखन रक्तशोधक, वसानाशक, आमपाक को रोकने वाला विकृत त्वचा को स्वाभाविक वर्ण में लाने वाला, तथा प्रीणन है।

अतियोग—मुखशोथ, हृदय प्रदेश में पीड़ा, आध्मान, वाक्संग (स्वरयन्त्र की जड़ता) स्रोतों का रोध (उनमें स्रावों की कमी) वर्ण की श्यामता, वीर्यनाश, वात-मूत्र पुरोष, वीर्य को रोकने वाला, शरीर में कृशता ग्लानि तृष्णा और जड़ता उत्पन्न करने वाला और स्वर-विशद, रूक्ष होने से पक्षाघात, अपतानक, मन्यास्तम्भ आकुंचन, आरोप चुमचुमाहट एवं अंगों का फड़कना आदि विकारों को उत्पन्न करता है।

विशेषज्ञातव्य—(१) इन रसों का समयोग ही सुखकर है। अतियोग से विविध रोग उत्पन्न हो जाते हैं। तथा हीनयोग से शरीर के कार्यों में बाधा आती है। अतः शास्त्रों में सब रसों का (सर्वरसाभ्यासः) सेवन का उपदेश है। देह की आवश्यकता के अनुसार रसों का प्रयोग करते रहना चाहिये।

(२) रसों के गुण और कर्म वस्तुतः रसवाले द्रव्यों के ही गुणकर्म समझने चाहिये। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन पहले किया ही जा चुका है।

(३) नागार्जुन ने मधुर लवण और अम्ल रसों के बृंहणीय कर्म बृंहयोग (शरीरपोषण) तृप्तिकारक, बल्य, वृष्य-गुरु-जोवनीय वसावर्धक, शरीर को स्थैर्य प्रदान करने वाला, हृद्य, स्निग्ध आदि और कटु, तिक्त, कषाय रसों के कर्म इनके विपरीत कहे हैं।

(४) अग्निदीपन तथा पाचक रस—अम्ल कटु, तथा तिक्त अम्ल, लवण—अपना प्रभाव निम्न देह धातुओं या सूत्रों को प्रभावित करते हैं—

(क) जिह्वा-आमाशय-त्वचास्थ चेतान्तों[1] को प्रभावित करके, पाचकरसों का स्राव अधिक कराते हैं या रक्त-संचार की मात्रा बढ़ाकर वहाँ का पोषण उत्तम बनाते हैं। त्वचादि में क्षोभक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

(२) कला तथा त्वचा के संपर्क में आकर प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा वातनाड़ियों को उत्तेजित करके अंगों को अधिक क्रियाशील बना देते हैं।

(३) सम्बन्धित अंगों की ग्रंथियों को उत्तेजित कर पाचक रसों का स्राव तथा उनकी गतियों बढ़ा देते हैं।

कटु तथा सुगन्धित पदार्थ अनुलोमक भी होते हैं। उनका कटुरस (१) सम्बन्धित अंगों को उत्तेजित तथा क्रियाशील बनाकर (२) रक्त संचार की मात्रा बढ़ाकर आक्षेप या अन्त्रों के स्तम्भन को दूर कर, वातनाड़ियों या सीधा मांस-पेशियों को प्रभावित कर अपना प्रभाव दिखाता है।

कषाय रस का प्रभाव द्रव्यों में अवस्थित कषायाम्ल[2] के कारण होता है। जिस स्थान पर कषाय द्रव्यों को लगाया जाता है। उनका कषायरस—

(१) स्थानीय धातुओं को संकुचित करता है। जिससे रक्तस्रावादि बन्द हो जाते हैं।

(२) स्राव का शोषण करता है।

(३) जिस स्थान पर लगाया जाए वहाँ पर एक स्तर (तह) बना देता है। जिससे स्राव बन्द हो जाते हैं।

(४) अवयव की क्रियाशीलता को शिथिल कर देता है।

इस प्रकार ये रस अपना प्रभाव शरीर पर करते हैं।

---

1. Nerve Terminals; 2. Tannic Acid

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विविध संस्थानों पर रसों का प्रभाव

विशिष्ट रसों का प्रभाव शरीर के विभिन्न संस्थानों पर भिन्न प्रकार का होता है। जिसका उल्लेख नीचे किया गया है। शास्त्रीय उद्धरण रसों के गुण-कर्म प्रकरण में कर ही दिया गया है।

मधुर रस

पाचन संस्थान—अनुलोमन, तृष्णाशामक

श्वसन संस्थान—कंठ्य

मूत्र संस्थान—मूत्रल

नाड़ी संस्थान—आल्हादकारक, मेध्य, तर्पण, इन्द्रिय प्रसादन

रक्तवह संस्थान—सन्धानीय, हृद्य

प्रजनन संस्थान—वृष्य, स्तन्यजनन, गर्भस्थापन

त्वचा संस्थान—दाहप्रशमन, त्वच्य, केश्य, वर्ण्य

सर्व देह—सर्वधातुवर्धक, आयुष्य, बल्य, जीवन, बृंहण, स्थैर्यकर, संधानीय, विषघ्न,

अम्ल रस

पाचन संस्थान—लालास्रावकारक, रोचक, दीपन, पाचक

श्वसन संस्थान—कफ प्रवाहक

रक्तवह संस्थान—रक्तपित्तकर

नाड़ी संस्थान—मनः प्रसादकर, इन्द्रियस्थैर्यप्रद

प्रजनन संस्थान—अवृष्य

मूत्रवह संस्थान—मूत्रल

सर्वदेह—बल्य, बृंहण

लवण रस

पाचन संस्थान—पाचक, दीपन, रोचक, भेदक, क्लेदक, लालास्रावजनक

श्वसन संस्थान—छेदन, कफनिस्सारक

रक्तवह संस्थान—रक्त कोपक

प्रजनन संस्थान—शुक्रनाशक

मूत्रवह संस्थान—मूत्रल

सर्वदेह—धातुनाशक, शैथिल्यकारक

कटु रस

पाचन संस्थान—रोचन, दीपन, पाचन, ग्राही, कृमिघ्न, मुखशोधक

श्वसन संस्थान——कफहर

रक्तवह संस्थान—रक्तस्रावकर, हृदयोत्तेजक

नाड़ी संस्थान—संज्ञास्थापन, उत्तेजक

मूत्र संस्थान—मूत्रसंग्राही

प्रजनन संस्थान—अवृष्य

त्वचा—कुष्ठघ्न, कण्डुघ्न

सर्वदेह—लेखन, विषघ्न, धातुनाशक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तिक्त रस

पाचन संस्थान—तृष्णाशामक, रोचन, दीपन, पाचन, कृमिघ्न, पुरीष शोषण

श्वसन संस्थान—कफघ्न

रक्तवह संस्थान—मूत्र संग्रहण

रक्तवह संस्थान—रक्तप्रसादन

प्रजनन संस्थान—अवृष्य, स्तन्यशोधक

त्वचा—स्वेद, कण्डु, कुष्ठनाशक, दाह प्रशमन, स्थिरीकरण

सर्वदेह—लेखन, विषघ्न, क्लेद, मेद, वसा, मज्जा, पूय, लसीका, नाशन, ज्वरघ्न

कषाय रस

पाचन संस्थान—स्तम्भन

श्वसन संस्थान—कफघ्न

मूत्रवह संस्थान— मूत्रसंग्राही

रक्तवह—सन्धानीय, रक्तस्रावरोधक

प्रजनन संस्थान—अवृष्य

सर्वदेह—शोषण

त्वचा—पीडन, रोपण, सवर्णीकरण

रसों का धातुओं पर प्रभाव

रस	कर्म
मधुर	सर्वधातुवर्धक, बल्य, आयुष्य जीवनीय
अम्ल	बृंहण, बल्य, वीर्यनाशक ।

लवण, कटु तिक्त कषाय—धातुनाशक, शोषण, लेखन ।

रसों का मलों पर प्रभाव

रस	कर्म
मधुर-अम्ल-लवण	मलमूत्रवातप्रवर्तक
कटु-तिक्त-कषाय	मलमूत्रवातस्तम्भक

रसों का दोषों पर प्रभाव

रसाः स्वाद्वम्ललवण तिक्तोषणकषायकाः ।
तत्राद्या मारुतं घ्नन्ति त्रयस्तिक्तादयः कफम् ॥
कषायतिक्त मधुराः पित्तमन्येतु कुर्वते ॥ (अ० हृ० सू० अ० १)
त एते रसाः स्वयोनिवर्धना अन्ययोनिप्रशमनाश्च ।

······तत्र शैत्य-रौक्ष्य-लाघव-वैशद्य-वैष्टम्भ्यगुणलक्षणो वायु; तत्समानयोनिः कषायो रसः सोऽस्य शैत्याच्छैत्यं, वर्धयति; रौक्ष्याद्रौक्ष्यं लाघवाल्लाघवं, वैशद्याद्वैशद्यं, वैष्टम्याद्, वैष्टम्भ्यमिति, औष्ण्य, तैक्ष्ण्य, रौक्ष्य, लाघव, वैशद्य, गुणलक्षणं, पित्तं, तस्य, समानयोनिः कटुकोरसः, सोऽस्य औष्ण्यादौष्ण्यं वर्धयति. तैक्ष्ण्यात् तैक्ष्ण्यं, रौक्ष्याद्राक्ष्यं.॰लाघवाल्लाघवं, वैशद्याद्वैशद्यमिति । माधुर्य-स्नेह-गौरव-शैत्य-पैच्छिल्य, गुणलक्षणः श्लैष्मातस्य समान योनिर्मधुरोरसः, सोऽस्य माधुर्यान्माधुर्य, वर्धयति, स्नेहात् स्नेहं, गौरवाद् गौरवं, शैत्याच्छैत्यं, पैच्छिल्यात्, पैच्छिल्यमिति । तस्यपुनरन्ययोनिः कटुको रसः, स श्लेष्मणः प्रत्यनीकत्वात् कटुकत्वान्याधुर्यम भिभवति, रौक्ष्यात् स्नेहं, लाघवाद गौरवं औष्ण्याच्छैत्यं, वैशद्यात् पैच्छिल्यमिति । तदैतन्निदर्शनमात्रमुक्तं भवति । (सु० सू० अ० ४२)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोष तथा रसों में उत्पादक महाभूतों की समानता होने पर वे दोषों को बढ़ाते हैं तथा विपरीत होने पर उन्हें शान्त करते हैं। इस विषय में सुश्रुत ने बड़ा उत्तम उदाहरण दिया है। वायु दोष शीत, रूक्ष, लघु, विशद तथा विष्टम्भी गुण वाला है। उसका समान योनि (वायु से उत्पन्न कषाय रस-जिसमें पृथिवी का अंश वायु की अपेक्षा कम ही होता है) रस है। कषाय रस अपनी शीतता से वायु की शीतता, रूक्षता, लघुता, विशदता और विष्टम्भी, (स्रावशोषक या रोधक) गुणों से वात इन गुणों को बढ़ाता है।

पित्त में उष्णता, तीक्ष्णता, रूक्षता, लघुता, विशदता गुण है। तत्समान योनि कटुरस (अग्निमहाभूत) अपनी उष्णता, तीक्ष्णता, रूक्षता, लघुता और विशदता से पित्त के इन्हीं गुणों को बढ़ाकर पित्त को बढ़ाता है। इसी प्रकार कफ में माधुर्य, स्निग्धता, गुरुता, शीतता, पिच्छिलता, गुण है। इसका समान योनि (जल पृथिवीबहुल) मधुर रस उक्त सब गुणों के कारण कफ को बढ़ाता है। इसके विपरीत कटु रस कफ का विरोधी (आग्नेय होने से) है। अतः वह अपनी कटुता से कफ की मधुरता को, तथा क्रमशः रूक्षता से स्निग्धता को, लघुता से गुरुता को, उष्णता से शीत को, विशदता से पिच्छिलता को नष्ट कर कफ का शमन करता है। यह उक्त वर्णन उदाहरण मात्र है। जिससे ज्ञात होता है कि रस किस प्रकार दोषों को बढ़ाते या शान्त करते हैं।

दोषशामक प्रकोपक तालिका

दोष	रस	प्रभाव
(१) वात	मधुर-अम्ल-लवण	शमन
वात	कटु-तिक्त-कषाय	प्रकोपक
(२) पित्त	कषाय-मधुर तिक्त	शमन
पित्त	कटु-अम्ल-लवण	प्रकोपक
(३) कफ	कटु तिक्त-कषाय	शमन
कफ	मधुर-अम्ल-लवण	प्रकोपक

नीचे की तालिका में रसों-महाभूतों, तथा दोषों का सम्बन्ध तथा रसों के प्रमुख कार्य और गुण दिये गए हैं।

रस-महाभूत तथा काल	गुण	कर्म	दोष	अतियोगज लक्षण
१. मधुर रस जल+पृथिवी हेमन्त	स्निग्ध, शीत मृदु, गुरु	स्नेहन, शैत्य, गौरव, मार्दव	वात-पित्तहर कफवर्धक	स्थूलता, अग्निमान्द्य, प्रमेहादि, कफ रोग
२. अम्ल रस, जल+तेजस् भू+तेजस् (च), वर्षा	उष्ण, स्निग्ध लघु	उष्णता, स्नेहन लघुता	कफ-पित्तवर्धक, वातहर	शरीरशैथिल्य, रक्तपित्त-भ्रम, कण्डु आदि त्वचा तथा पित्तकफज रोगोत्पादक
३. लवण, भू+तेज (भू) जल +तेज (चरक), शरद्	कुछ गुरु, स्निग्ध उष्ण, तीक्ष्ण	गौरव, स्नेहन गर्मी, उष्णता तीक्ष्णता	वातहर-कफपित्त वर्धक (कफ विलयन)	शुक्रक्षय, रक्तपित्त, शैथिल्य, नेत्ररोगादि
४. कटु, (वायु+अग्नि), ग्रीष्म	लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष	लाघव, पाचन, उष्णता, तीक्ष्णता, रूक्षता	कफहर, वातपित्त वर्धक	ग्लानि, कृशता, मूर्च्छा, बलक्षय, दाह, तृष्णादि

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

५. कटु, वायु + आकाश शिशिर	लघु, शीत, रूक्ष, शोषक	लघुता, रूक्षता, स्राव, रूक्षता, स्राव, शोथ	कफ-पित्तशामक, वातहर	ग्लानि; भ्रम, मूर्च्छा, रूक्षता, मन्यास्तम्भादि, वातरोग
६. कषाय रस, वायु + पृथिवी बसन्त	रूक्ष, शीत, गुरु, शोधक	रूक्षता, दाहता-पहर गुरुता,	कफ-पित्तहर वातकारक	रूक्षता, पक्षाघात, मन्यास्तम्भादि वातरोग

ऋतुओं का वर्णन अष्टाँग हृदय व्याख्याकार इन्दु के वक्तव्य पर आधारित है।

रसों तथा दोषों के सम्बन्ध में अपवाद— "तत्र प्रायो मधुरं श्लेष्मलं, अन्यत्र पुराण-शालि-यव-गोधूम-मुद्ग मधु-शर्करा जांगल मांसात्। प्रायोऽम्लं पित्तलं अन्यत्र दाडिमामलकात्। प्रायो लवणमचक्षुष्यमन्यत्र सैन्धवात्। प्रायस्तिक्तकटुकं वातलमवृष्यंच। अन्यत्रामृतापटोली-नागर-पिप्पलीलशुनात्। प्रायः कषायं शीतं स्तम्भनं च अन्यत्र हरीतक्याः॥" (अ० सं० सू० अ० १८)॥

मधुर रस वाले द्रव्य प्रायः कफवर्धक होते हैं, किन्तु पुराने चावल-जौ-गेहूँ-मूँग, शर्करा और मधु कफवर्धक नहीं हैं। अनार और आमला पित्तकारक नहीं; यद्यपि प्रायेण अम्ल रस पित्तवर्धक होता है। लवण रस प्रायः नेत्रों के लिए अहितकर होते हैं, किन्तु सैन्धव नमक चक्षुष्य है। कटु रस वाले द्रव्यों के वातवर्धक होने पर भी गिलोय-परवल, शुण्ठी-पिप्पली-और लशुन वातशामक और वीर्यवर्धक हैं। इसी प्रकार कषाय रस प्रायः शीत और स्तम्भन होते हुए भी हरीतकी उष्ण और विरेचक है। ये अपवाद द्रव्यों की विकृति विषमसमवेत रचना के कारण होते है जिसका वर्णन प्रभाव प्रकरण में किया गया है।

रसों की उपलब्धि का काल वा उनका कार्यकाल—किसी रस का ज्ञान किस समय होता है तथा उनका प्रभाव कब होता है—ये दोनों प्रश्न यद्यपि विभिन्न हैं, तथापि इन दोनों ही प्रश्नों का उत्तर एक ही है—

"**रसो निपाते द्रव्याणाम् (च० सू० अ० २६)** अर्थात् रस का ज्ञान पदार्थ के जिह्वा के साथ संयोग होने पर होता हैं। इस ज्ञान को कराने में मुखस्थ क्लेदक कफ भी निमित्त कारण बनता है। यदि जिह्वा शुष्क हो तो किसी रस का ज्ञान नहीं होता। यह प्रत्यक्ष सिद्ध बात है। क्लेदक कफ द्रव्य के रस को घोल रूप में परिणत करके स्वादु-अंकुरों तक पहुँचाता है। जिससे उन्हें स्वाद की प्रतीति होती है। यदि द्रव्य अघुलनशील हो तो क्लेदक कफ की उपस्थिति में भी रस का ज्ञान नही होता। इसका सर्वोतम उदाहरण यूक्विनीन है जो बच्चों के लिए बनायी गई है। मुख में उसका कुछ भी कड़वापना प्रतीत नहीं होवा। यद्यपि घोल में वह कड़वी होती है।

द्रव्यस्थ रसों का कार्यकाल भी निपात-संयोग काल ही है। जब रसवान् द्रव्य त्वचा-कला या अन्य शरीर धातुओं के संपर्क में आता है तो घुलनशील होने पर उसका प्रभाव प्रत्यक्ष गोचर होता है यथा, राई को जल में पीस कर (घुलनशील बनाकर) लेप करने से राजिका में अवस्थित रस जल में घुला होने से तत्काल त्वचा पर प्रभाव करता है। वहाँ की त्वचा लाल, शोथयुक्त हो जाती है। इसी प्रकार काली मिर्च चबाने पर मुख में तथा आमाशय में भी दाह उत्पन्न होता है।

इस प्रकार के अपवादों का वर्णन आचार्य वाग्भट्ट ने अति सुन्दर रीति से किया है। अतः उसका यहाँ उल्लेख किया जाता है। **रसादिसंकरेण त्वन्यभावत्वम्। यथा मधुमधुरं श्लेष्माणं शमयति, कटुविपाकतया सकषायत्वाद्रौक्ष्याच्च, वातं जनयति शीतवीर्यत्वात्च्च, तथायवोपि, आनूपौदकमप्युरपि पिशितं पित्तं करोति, उष्णवीर्यत्वात्, तथातैलं। मधुरंकटुविपाकतया विपाकतएव बद्धविण्मूत्रस्, अम्लं कांजिकं कफं जनयति रूक्षोष्णत्वात्, कपित्थं तु रौक्ष्यात्कफं पित्तं तु शीतवीर्यतया, आमलकं पित्तं शीतवीर्यत्वात् स्वादुपाकतया च, कफं रौक्ष्याल्लाघवाच्च, लवणसैन्धवं स्वादुपाकतया पित्तं जयति, लाघवात् कफंच। कटुकापि शुण्ठी स्नेहौष्ण्यस्वादुपाकैर्वातं क्षपयति, पिप्पली च लशुनोपि स्नेहौष्ण्यगौरवैः पलाण्डुश्च, स तु स्नेहगौरवाभ्यां जनयति श्लेष्माणं, वृद्धं मूलकं तु स्वादुपाकतया, स्निग्धानतिक्तानि व्याघ्रीविशल्यार्कौ गुरूण्युष्णवीर्यत्वात् पित्तं जनयंति, कषायतिक्तं महत्वंच मूलं वाढंजयति न तु पित्तमुष्णवीर्यत्वात्, कषायश्च कुलत्थोम्लपाकतयाच। इत्येतन्निदर्शनमात्रमुक्तम्॥** (अ० सं० सू० अ० ७)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रसादि के सांकर्य से भी मधुरादि रस रसानुसार दोनों को शान्त नही करते । उदाहरणार्थः—

(१) **मधु**—शहद मधुर होने पर भी कफनाशक और वातवर्धक है, क्योंकि उसमें कषाय रस, रूक्ष गुण और कटु विपाक पाया जाता है । वीर्य में शीत होने से यह वायुवर्धक है । जौ का कार्य इसी भी प्रकार होता है ।

(२) **वराह**—मांस, मछली आदि आतूप और औदक मांस मधुर और शीत होने पर उष्णवीर्य के कारण पित्तवर्धक हैं ।

(३) **तैल**—मधुर होने पर भी कटु विपाकी उष्णवीर्य होने के कारण मल-मूत्र का विबन्ध (कब्ज) करता है ।

(४) **कांजी**—खट्टी होने पर भी रूक्ष तथा उष्ण होने से कफशामक है ।

(५) **कैथा**—इसका फल अम्ल होते हुए भी रूक्षता के कारण कफ को और शीतवीर्य के कारण पित्त को शान्त करता है ।

(६) **आमला**—अम्ल होने पर भी मधुर विपाकी और शीतवीर्य के कारण पित्त का, एवं रूक्ष और लघु होने से कफशामक हैं ।

(७) **सोंठ-पीपल**—यह कटु होने पर भी मधुर, विपाकी, स्निग्ध और उष्ण होने से कारण वातशामक है ।

(८) **लशुनप्याज**—ये कटु होने पर भी स्निग्ध, गुरु और उष्ण होने के कारण वातशामक हैं । प्याज गुरु, और स्निग्धता के कारण कफवर्धक है ।

(९) **मूली**—पकी मूली मधुर विपाकी होने से कटु होते हुए भी कफवर्धक है ।

(१०) **कटेरी, पाठा**—आक-अगरु- तिक्त और स्निग्ध होते हुए भी उष्णवीर्य होने से पित्तवर्धक है ।

(११) **बृहत्पञ्चमूल**—यह कषाय और तिक्त होने पर भी पित्तशामक नहीं, अपितु उष्णवीर्य, अम्ल, विपाकी होने से वातशामक है ।

(१२) **कुलत्थ**—यह कषाय रस होने पर भी अम्ल विपाकी होने से वातशामक हैं । अतः ऊपर कथित रस दोष सम्बन्ध प्रायिक समझना चाहिए ।

चिकित्सा में रस क्रम—

कटु तिक्त कषायोस्तु रसान् प्रायो यथा क्रमम् ।
योगतः कफजेव्याधौ भैषज्यमवचारयेत् ॥
प्रयुक्त कटुकः पूर्व पच्छिल्यं गौरवंचयत् ।
श्लेष्मणस्तं निहन्त्याशु तिक्तस्तस्मादनन्तरम् ॥
ह्रासयत्यस्यामाधुर्य कफं संशोषयत्यपि ।
संगृह्लाति कषायश्च स्नेहं चाप्यपकर्षति ॥
तिक्त स्वादु कषायास्युः क्रमशः पैत्तिके हिता ।
आमान्वयात् पित्तस्य पूर्वतिक्तोऽवचारितः ॥
पाचयत्वाशुतंपक्वं ततस्तु मधुरोरसः ।
शैत्यात् गुरुत्वात् स्नेहाच्च माधुर्याच्च नियच्छति ॥
तद् द्रवत्व विघातार्थं कषायश्चावचारितः ।
रौक्ष्याद् विशोषीभावाच्च विशोषयति तैजसम् ॥
वातिके क्रमशो योज्या पट्वम्ललवणाः रसा ।
वातिके लवणः पूर्व संयोगादवचारितः ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रक्लेदिभावाज्जयति विबन्धं मातरिश्वनः ।
निहन्ति शैत्यमुष्णत्वात् गुरुत्वाच्चापि लाघवम् ॥
तथैवाम्लो रसः पश्चात् तस्मिननवावाचारितः ।
जड़ीकृतानि स्रोतांसि तैक्ष्ण्याद्दुद्धास्य मारुतम् ।
अनुलोमयति क्षिप्रं स्निग्धोष्णत्वात् विमार्गगम् ।
अम्लादनन्तरं पश्चात् प्रयुक्तो मधुरोरसः ॥
वायोर्लघुत्वं वैशद्यं रूक्षत्वं च व्यपोहति ।
गुरुत्वात् पिच्छिलत्वाच्च स्निग्धत्वाच्चयथाबलं ।
इत्युक्तः सर्व दोषेषु रसानां प्रविचारणा ॥

(काश्यप संहिता खिल स्थान अ० ६)

वैद्य को चाहिए कि दोषों को शान्त करने के लिए निम्न प्रकार से रसों की योजना करें।

(१) कफज व्याधियों में क्रमशः कटु, तिक्त, और कषाय रसों का प्रयोग करें। प्रारम्भ में कटुरस (वाले द्रव्य) के प्रयोग से कफ की पिच्छिलता तथा गुरुता नष्ट होती है। तदनन्तर प्रयुक्त तिक्त रस मुख की मधुरता का नाश और कफ का शोषण करता है। अन्त में कषाय रस के प्रयोग से कफ गाढ़ा होता है तथा उसका स्नेहांश कम होता है। अतः कफ विकारों की शान्ति हो जाती है।

(२) पैत्तिक व्याधियों में आरम्भ में प्रयुक्त तिक्तरस पित्त के आमांश का पाचन करता है। उसके पश्चात् प्रयुक्त मधुर रस अपने शीत, स्निग्ध और गुरु गुणों से पित्त प्रकोप को शान्त करता है। सबसे अन्त में कषाय रस के प्रयोग से वह अपनी रूक्षता तथा शोषण शक्ति से पित्त की द्रव्यता (जलीयांश) का नाश करता है।

(३) वातिक व्याधियों में क्रमशः लवण, अम्ल और मधुर रसों का प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि प्रारम्भ में लवण रस का प्रयोग करने से यह अपने क्लेदी गुण के कारण वातबन्ध, उष्णता से शैत्य तथा गुरुता से वायु के लाघव को दूर करता है। उसके पश्चात् अम्ल रस का प्रयोग करने से वह अपने तीक्ष्ण, स्निग्ध तथा उष्ण गुण से वायु के अवरुद्ध स्रोतों को खोलकर विमार्गगामी (प्रतिलोम वायु) वायु का अनुलोमन करता है। सब से अन्त में मधुर रस के प्रयोग से उनकी गुरुता, पिच्छिलता और स्निग्धता से वायुगत शैत्य, वैशद्य और रूक्षता नष्ट होकर वह शान्त होता है। इस योजना के अनुसार प्रयुक्त रस या रस वाले द्रव्य तीनों दोषों से उत्पन्न व्याधियों को शान्त करते हैं। जहाँ द्विदोषज या सर्वदोषज व्याधियाँ हो वहाँ भी इसी प्रकार रसों की कल्पना करनी चाहिए। यही रस द्वारा चिकित्सा की कुंजी है। जैसा चरकाचार्य ने कहा है।

क्वचिदेकोरसः कल्प्यः संयुक्ताश्चरसाः क्वचित् ।
दोषौषधादीन् संचिन्त्य भिषजा सिद्धिमिच्छता ॥ (च० सू० अ० २६)

रसों द्वारा प्रत्यक्ष होने वाला द्रव्य का यह प्राथमिक और स्थानिक प्रभाव है। बहुधा उनका दूसरा प्रभाव और सांस्थानिक प्रभाव भी होता है। यथा, क्षोभक या शोथ उत्पादकों का लेप फुप्फुसशोथ, पार्श्वशूलादि में लगाने से लाभ होता है। यह द्रव्यों के प्रभाव की प्रथमावस्था समझें जो रसों द्वारा ग्रन्थों में वर्णित है। जैसाकि कहा भी है—

तस्माद्रसगुणान् भिषक्-विद्याद् द्रव्यगुणान्, कर्तुभिप्रायः पृथग्विधाः। (च० सू० अ० २६)

रसों में परिवर्त्तन—आचार्य नागार्जुन को छोड़कर अन्य किसी आचार्य ने इस विषय पर प्रकाश नहीं डाला। रसों में स्थान-देश-काल अवस्था भेद से परिवर्तन या अन्यधात्वागमन होता देखा गया है—

(१) **अन्यधात्वगमनं स्थानात्**—कुछ समय तक रखने से द्रव्य का रस बदल जाता है। यथा, रस से मधुर होते हुए भी चावल को पकाकर सन्धान करने से कांजी (धान्याम्ल) बन जाती है। मधुरता अम्लता में परिणत हो जाती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(२) संयोगतः अग्निपाकात्—किसी दूसरे द्रव्य के साथ संयोग हो जाने पर यथा, इमली के फल चूने के चूरे में रखें, तो वह मधुर हो जाता है। अग्नि से पकाने पर भी रस परिवर्तित हो जाता है। यथा, चिंचा फल अग्नि पर पकाने से मधुर हो जाता है।

(३) उष्णताप, भावनया, देशकालाभ्याम् :—धूप में सुखाने से कषाय रस वाले तुम्बुरु फल मीठे हो जाते हैं। भावना देने से रसों में परिवर्तन आ जाता है। यथा, कषाय, तिक्त, मधुर रस वाले तिल, मुलैठी की भावना देने से मधुर हो जाते हैं। देश भेद से यथा किसी देश में आमले अधिक मीठे होते है। काल-भेद से यथा कषाय रस वाला केला समय पाकर मधुर हो जाता है।

(४) परिणामतः, उपसर्गतः विक्रियातः :—दूध दही के रूप में परिवर्तित होने के परिणामतः खट्टा हो जाता है। कीटादि के सम्पर्क से यथा ईक्षु रस कुछ समय तक रखने से कृमि संयोग होने के कारण खट्टा हो जाता है। विक्रिया-विरुद्ध क्रिया से भी द्रव्य का रस परिवर्तित हो जाता है। यथा, ताड़ फल को आग में जलाकर भूमि में रगड़ने से वह कड़वा हो जाता हैं। इस रसान्यात्वगमनज्ञान का अभिप्राय यह है कि द्रव्यों के प्रयोग करते समय तथा औषधि-निर्माण के समय इन सब बातों को ध्यान में रखकर उचित रस वाला द्रव्य ही व्यवहार में लाना चाहिए।

रसों का वर्गीकरण

वर्ग	रस	गुण	कर्म
(१) सौम्य	मधुर, तिक्त, कषाय	शीत	पित्त, मूर्च्छाशमन अविदाही
(२) आग्नेय	कटु, लवण, अम्ल	उष्ण	पित्तवर्धक, मूर्च्छाकर, विदाही

इस विषय में आचार्यों का कथन है—"**केचिदाहुः अग्निषोमीयत्वाज्जगतोरसाद्विविधाः। सौम्याश्चाग्नेयाश्च। मधुरतिक्त कषायाः सौम्याः। कट्वम्ललवणा आग्नेयाः। तत्र मधुराम्ललवणाः। सौम्याः शीताः आग्नेया उष्णाः। (सु० सू० अ० ४२)।**

कई आचार्यों के मत में सौम्य (जलबहुल) और आग्नेय भेद से दो प्रकार के रस होते हैं। क्योंकि, समस्त संसार ही सौम्य (शीतप्रधान) तथा आग्नेय (उष्ण) भेद से दो प्रकार का है। इनमें मधुर, तिक्त, कषाय, सौम्य रस हैं, ये शीत, स्निग्ध, तथा गुरु गुण वाले होते हैं। कटुअम्ल-लवण आग्नेय हैं ये उष्ण रूक्ष और कटु होते हैं, रस वैशेषिककार नागार्जुन ने आग्नेय रसों को 'विदाही' लिखा है। इनके अति सेवन से मूर्च्छा आती है। सौम्य रसों को अविद्रा ही कह है। ये मूर्च्छाहर हैं।

सौम्य आग्नेय रसों में तत्तद् प्रकृति वाले भूतों की प्रधानता के अनुसार द्रव्यों के गुण कर्मों में भी भेद आ जाता है। जैसे, अग्नि और वायु प्रधान रस वाले द्रव्य लघु और ऊर्ध्वगतिशील होते हैं। वायु की लघुता तथा अग्नि के ऊर्ध्वगामी गुणों के कारण—यथा, वामक द्रव्य। इसके विपरीत पृथ्वी + जल, में गुरुता और अधोगामिता गुणों के कारण इन महाभूत प्रधान रस वाले द्रव्य अधोगामी होते हैं। सम्मिलित महाभूतों वाले उभयमार्गज हैं। तद्यथा, "**तत्राग्निमारेतात्मकाः रसाः प्रायेणोर्ध्वभाजः, लाघवादुत्पवनत्वाच्चवायोरूर्ध्वज्वलनत्वाच्चवन्हेः, सलिलपृथिव्यात्मकास्तु-प्रायेणाधोभाजः, पृथिव्या गुरुत्वाच्चोदकस्य, व्यामिश्रात्मका पुनरुभयतोभाजः (च० सू० अ० २६)**

रस तथा वीर्य-विपाक का परस्पर सम्बन्ध—

शीतं वीर्येण यद्द्रव्यं मधुरं रसपाकयोः।
तयोरम्लेयदुष्णं च यद्द्रव्यं कटुकं तयोः॥
तेषां रसोपदेशेन निर्देश्यो गुण संग्रहः।
वीर्यतो विपरीतानां-पाकतश्चोपदिश्यते॥
यथा पयो यथा सर्पिर्यथा वा चव्यचित्रकौ।
एवमादीनिचान्यानिर्निर्दिशेद्रसतो भिषक्॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मधुरं किंचिदुष्णं स्यात् कषायं तिक्तमेवच ।
यथा महत् पंचमूलं यथाब्जानूपमामिषम् ॥
लवणं सैन्धवं नोष्णमम्लमामलकं तथा ।
अर्कागुरु गुडूचीनांतिक्तातानामुष्णमुच्यते ।
किंचिदम्लंहि संग्राहि किंचिदम्लं भिनत्ति च ॥
यथाकपित्थं संग्राहि, भेदि चामलकं तथा ।
पिप्पली नागरं वृष्यं कटु चावृष्यमुच्यते ॥
कषायः स्तम्भनः शीतः सोऽभयायामतोऽन्यथा ।
तस्माद्रसोपदेशेन न सर्वद्रव्यमादिशेत् ॥
दृष्टं तुल्यरसेऽप्येवंद्रव्ये द्रव्ये गुणान्तरम् । (च० सू० अ० २६)

रस के समान ही जिनका वीर्य और विपाक हो उनके गुणों का उपदेश शास्त्र में रसों के गुण कर्मों से ही किया गया है। अर्थात् रसों के गुण कर्मों के अनुसार ही वीर्य और विपाक के गुण कर्म समझने चाहिए। उदाहरणार्थ-मधुर रस वाले द्रव्य प्रायः शीतवीर्य होते हैं यथा, दूध और घी। कटु और अम्ल रस वाले द्रव्य उष्णवीर्य होते हैं यथा, चव्य चित्रकादि।

किन्तु इस नियम के अपवाद भी हैं। अतः सर्वद्रव्यों के गुण द्रव्यों में वीर्य और विपाक रसों के विपरीत होते हैं, उनमें गुण भी विपरीत पाए जाते हैं। उदाहरणार्थ, महत्पंचमूल कषाय और तिक्त होने के कारण रसों के अनुसार शीतवीर्य होने चाहिए, किन्तु है वह उष्णवीर्य। इसी प्रकार जलचर और आनूप प्राणियों का मांस मधुर रस के विपरीत उष्णवीर्य हैं। सैन्धानमक लवण होने पर भी और आमला खट्टा होने पर भी शीतवीर्य होते हैं, किन्तु आक, गिलोय, अंगूर, उष्णवीर्य हैं। अम्ल रस होने पर भी कपित्थ (कैथ) संग्राही है और आमला रेचक। कटु रस अवृष्य होता है, किन्तु पिप्पली शुण्ठी वृष्य हैं। इसी प्रकार कषाय रस प्रधान होने पर भी हरीतकी शीतल और स्तम्भक के स्थान पर उष्ण और रेचक है। इस प्रकार के द्रव्यों के गुण कर्म रसों के ही वर्णन से नहीं जाने जा सकते, अतः उनका वीर्य विपाक भी कहना पड़ता है।

संसृष्ट रसों वाले द्रव्यों के गुण कर्म जानने की विधि—

तत्र खल्वनेकरसेषु द्रव्येष्वनेकदोषात्मकेषु च विकारेषु रसदोष-प्रभावमेकैकश्येनाभिसमीक्ष्य ततो द्रव्य विकारयोः प्रभावतत्वं व्यवस्येत् । नत्वेवं खलु सर्वत्र । नहि विकृतिविषम समवेतानां नानात्मकानां परस्परेण चोपहतानामन्यैश्च विकल्पनैर्विकल्पितानामवयवप्रभावाऽनुमानेनैव समुदाय प्रभावतत्वहमध्यवसातुं शक्यम् । तथा युक्तेहिसमुदाये समुदायप्रभाव तत्वमेवोपलभ्य ततो द्रव्य विकार प्रभाव तत्वं व्यवस्येत् । (च० वि० अ०१)

ऊपर अपवाद रूप में उद्धृत द्रव्यों में कर्म रसों के विपरीत क्यों होते हैं? इस प्रश्न का उत्तर यहाँ दिया गया है। अनेक देशकालादि भेद से रसों का विविध प्रकार का सम्मिश्रण होता है। जिन द्रव्यों की उत्पत्ति सजातीय परमाणुओं (जो सजातीय गुण और कर्मों से युक्त होते हैं) से होती है उनमें तो रसानुरूप ही वीर्य विपाक होते हैं। क्योंकि, शरीर में जाकर इनका संयोग-वियोग भी सजातीय प्रकार का ही होता है। इस प्रकार के द्रव्यों को **'प्रकृतिसमसमवाय'** या **'समानप्रत्ययारब्धा'** कहा जाता है (प्रकृत्या समः कारणानुरूपः समवाय प्रकृतिसमसमवायः)। इस प्रकार के सम्बन्ध से घटित रसों और दोषों को **'प्रकृतिसमसमवेत'** कहते हैं। इस प्रकार के रसों तथा दोषों में (वस्तुतः द्रव्यों और रोगों में) प्रत्येक रस और दोष का प्रभाव जानकर समुदाय का रूप द्रव्य या रोग का प्रभाव जाना जा सकता है।

किन्तु यह नियम उन द्रव्यों या रोगों में नहीं लग सकता है जो विकृति विषम समवेत है। (विकृत्या विषमः कारण अननुरूपः समवायो विकृति विषम समवायः) इन द्रव्यों की उत्पत्ति विजातीय परमाणुओं के मिलने से होती है। इनमें अनेक रसों के दोषों के गुणों का परस्पर उपघात होता है। अतः इनमें एक-एक रस या दोष के प्रभाव को देखकर समु-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दाय का प्रभाव नहीं बताया जा सकता। इनमें सारे समुदाय (द्रव्य या रोग) के ही प्रभाव को देखकर उसके प्रभाव या कार्य का निश्चय करना चाहिए। यथा, पारद और गन्धक से बनी कज्जली में, रससिन्दूर में दोनों की अपेक्षा भिन्न रूपादि दृष्टिगोचर होते हैं।

रसों की गुण प्रकर्षता या तारतम्यता :—

"रौक्ष्यात् कषायो रूक्षाणामुत्तमो मध्यमः कटुः।
तिक्तोऽवरस्तथोष्णानामुष्णत्वाल्लवणः परः॥
मध्योऽम्लः, कटुकश्चान्त्यः, स्निग्धानां मधुरः परः।
मध्योऽम्लो, लवणश्चान्त्यो रसः स्नेहान्निरुच्यते॥
मध्योत्कृष्टावराः शैत्यात् कषायस्वादुतिक्तकाः।
स्वादुर्गुरुत्वादधिकः कषायाल्लवणोऽवरः॥
अम्लात् कटुस्ततस्तिक्तो लघुत्वादुत्तमो मतः।
केचित्तु घूनामवरमिच्छन्ति लवणं रसम्॥
गौरवे लाघवे चाऽपिसोवरस्तूभयोरपि।—(च० सू० अ० २६)

रसों में कौन सा गुण किसमें प्रबल है तथा किसमें मध्यम और किसमें सबसे न्यून यह नीचे की सारणी में बताया गया है।

गुण	उत्तम रस	मध्यम रस	अवर (सबसे कम)
रूक्ष	कषाय (रूक्षता)	कटु (रूक्षतर)	कटु (रूक्ष)
उष्ण	लवण	अम्ल	कटु
शीत	कषाय	मधुर	तिक्त
स्निग्ध	मधुर	अम्ल	लवण
गुरु	मधुर	कषाय	लवण
लघु	तिक्त	कटु	अम्ल या लवण

एक उदाहरण द्वारा इसे स्पष्ट किया जाता है। यदि स्निग्धता की दृष्टि से यह देखा जाए कि कौन सा रस श्रेष्ठ है, कौन सा मध्यम और कौन सा निकृष्ट, तो तम, तरादि प्रत्यय लगा कर उन्हें बताया जाता है। (यथा मधुर रस वाला द्रव्य स्निग्धतम (सब स्निग्धों में श्रेष्ठ) अम्ल रस मध्यम दर्जे का (स्निग्धतर) और लवण तीसरे दर्जे का अर्थात् सबसे कम स्निग्ध है।

रूक्ष गुण वाले द्रव्य विबन्धकारक और स्निग्ध गुण वाले अनुलोमन एवं मल-मूत्रस्रावक होते हैं। इस तारतम्य के अनुसार रूक्षों में कषाय सबसे अधिक विबन्धकारक है। इसी प्रकार स्निग्धों में भी समझ लें। वाग्भट ने शीत गुण में मधुर, कषाय, तिक्त यह क्रम माना है।

रसों के तिरसठ (त्रिषष्टि) भेद (विकल्पः)

अविदग्धाविदग्धाश्चभिन्द्यते ते त्रिषष्टिधा।
रसभेद त्रिषष्ठिंतु वीक्ष्य वीक्ष्यावचारयेत्॥ (सू० उत्तर अ० ६३)

विदग्ध या अविदग्ध कैसे भी रस हों परस्पर मेल से वे ६३ प्रकार के बन जाते हैं। यूँ तो परस्पर विकल्प कल्पना से वे अनेक प्रकार के हो जाते हैं। किन्तु, चिकित्साशास्त्र में उपयोग में आनेवाले ६३ रस संयोग ही हैं। यह संख्या इस प्रकार गिनी गई है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(एकैकशः) एक-एक रस..............६
(द्विकः) दो के संयोग से..............१५
(त्रिकाः) तीन-तीन के संयोग.....२०
चतुष्क संयोग से..............१५
पंचक संयोग से..............६
छः के संयोग से..............१

पूर्ण संख्या..............६३

इन भेदों के उदाहरण सुश्रुत उत्तर तन्त्र, अ० ६३ में आचार्य डल्हण ने दिये हैं। उनका हिन्दी रूपान्तर यहाँ दिया जाता है। मूल वहीं देखें। असंयुक्त रसों के उदाहरण तो सभी जानते हैं। शेष इस प्रकार हैं:—

(अ) द्विकों या दो के संयोग के उदाहरणः—

(१) मधुराम्ल—बैर-कैथ (बदरी-कपित्थ)
(२) मधुरकटुक—कुत्ताश्शृगालादि का मांस
(३) मधुरलवणं—ऊँटनी का दूध, भेड़ का मांस
(४) मधुरतिक्त—गन्दाविरौजा रालादि
(५) मधुरकषाय—तिल तैल, धन्वनफलादि
(६) अम्ललवण—उषक (क्षारमृत्तिकादि)
(७) अम्लकटुक—चुक्र, शुक्रादि
(८) अम्लतिक्त—सुरा, आसवादि
(९) अम्लकषाय—हथिनी का दही, शुक का मांसादि
(१०) लवणतिक्त—रांगा (वंग), सोसा (नाग) आदि
(११) लवणकटुक—गोमूत्र-सज्जीखारादि
(१२) लवणकषाय—समुद्र फेनादि
(१३) तिक्तकटुक—कपूर-जायफलादि
(१४) तिक्तकषाय—लवलीफल-हथिनी का घृत
(१५) कटुकषायम्—मल्लातमज्जा-हरितालादि

(आ) त्रिकों के भेदः—

(१६-१) मधुराम्ललवण—हथिनी का मांस
(१७-२) मधुराम्लकटु—सेह (शल्यक) का मांस
(१८-३) मधुराम्लतिक्त—गेहूँ से बनी शराबादि
(१९-४) मधुराम्लकषाय—दही के ऊपर का पानी या छाछ
(२०-५) मधुरलवणकटु—जंगली कबूतर का मांसादि
(२१-६) मधुरलवणतिक्त—शम्बूक (घोंघा) मांसादि
(२२-७) मधुरलवणकषाय—गुड़ मिश्रित कमलकन्द
(२३-८) मधुरकटुतिक्त—केतकीपुष्प, सूखी-धनियाँ
(२४-९) मधुरकषायकटु—गोह का मांस, एरण्ड तैल
(२५-१०) मधुरतिक्तकषाय—गिलोय-तुवरकतैल
(२६-११) अम्ललवणकटु—रजत, शिलाजत आदि
(२७-१२) अम्ललवणतिक्त—हाथी का मूत्रादि
(२८-१३) अम्ललवणकषाय—सांभर नमक, वालाहपिनीका
(२९-१४) अम्लकटुतिक्त—कालीमिर्च डाली हुई दही-मद्य
(३०-१५) अम्लकटुकषाय—अम्लबेतसादि
(३१-१६) अम्लतिक्तकषाय—तोते के मांस वाली मद्य
(३२-१७) लवणकटुतिक्त—भेड़ का मूत्रादि
(३३-१८) लवणकटुकषाय—सांभर नमक युक्त भिलावा भल्लातक
(३४-१९) लवणतिक्तकषाय—समुद्रफेनादि
(३५-२०) कटुतिक्तकषाय—कृष्णागुरु, देवदारु तैल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(इ) चतुष्क योगः—

(३६-१) मधुराम्ललवणकटु—गोमूत्र युक्त शिलाजतु

(३७-२) मधुराम्ललवणकषाय—सैन्धव युक्त तक्र (छाछ)

(३८-३) मधुराम्ललवणातिक्त—गोमूत्र तथा एक शफ (खुर) वाले घोड़ी आदि का मांस

(३९-४) मधुराम्लकटुतिक्त—लशुनयुक्त मद्यादि

(४०-५) मधुराम्लकटुकषाय—कांजीयुक्त एरण्ड तैलादि

(४१-६) मधुराम्लतिक्तकषाय—यासशकंरा [तुरंजबीन-(manna)] युक्त गूलर का फूल

(४२-७) मधुरलवणतिक्तकटु—बैंगन (वार्ताकुफलम्)

(४३-८) मधुरलवणकटुकषाय—तैल में मिला गोमूत्रादि

(४४-९) मधुरकटुतिक्तकषाय -- तिल-गुग्गुलु आदि

(४५-१०) मधुरलवणतिक्तकषाय—समुद्रफेनादि

(४६-११) अम्ललवणकटुतिक्त--सुर्वचलासहित हथिनी-दही से बनाई सुरा

(४७-१२) अम्ललवणकटुकषाय—सुर्वचंललवणसहित हथिनी-दही

(४८-१३) अम्ललवणकटुतिक्तकषाय—औद्भिद् (रेहे) लवणयुक्त तोते का मांसादि

(४९-१४) अम्लकटुतिक्तकषाय—बालमूली युक्तहथिनो का दही ।

(ई) पंचरसों के योगः—

(५०-१५) लवणकटुतिक्तकषाय—सांभर नमक सहित कच्चा वेलफलादि

(५१-१) मधुराम्ललवणातिक्तकटु—कच्चे करौंदे के फलों के साथ भुनावार्त्ताकुफल

(५२-२) मधुराम्ललवणकटुकषाय—त्रिकटु तथा यवक्षारादि युक्त छाछ, तक्र

(५३-३) मधुराम्ललवणातिक्तकषाय—हरड़-आमलकादि औद्भिद् लवण युक्त तक्रादि

(उ) षड़ रस योगः—

(५४-४) मधुराम्लकटुतिक्तकषाय—हरड़-आमलकादि

(५५-५) मधुरलवणकटुतिक्तकषाय—लशुनादि

(५६-६) अम्ललवणकटुतिक्तकषाय—भल्लातकादि

(५७-१) काले हरिण का मांस

(ऊ) एकैकशः—

(५८-१) मधुर—गोदुग्ध

(५९-२) अम्ल—कच्चे करौंदे-निम्बु

(६०-३) लवण—सैन्धवादि

(६१-४) कटु—मरिचादि

(६२-५) तिक्त—नीम-कुटजादि

(६३-६) कषाय—सुपारी (पूगफलम्)

वक्तव्य—तर, तमादि के अनुसार इनके अनेक (कल्पना) भेद संभव हैं, किन्तु रस चिन्तकों तथा स्वस्थातुर चिकित्सा में प्रयोजनीय अनतिसंक्षेपविस्तरतया उक्त ६३ रसों की कल्पना की गई है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रसों की उत्पत्ति, दोष सम्बन्ध गुण-कर्मादि प्रदर्शक चार्ट

रस तथा उनका स्वालक्षण्य	उत्पादक महाभूत	उत्पादक ऋतु	दोष सम्बन्ध	अपवाद	गुण	कर्म	अतिसेवन के दोष
१. मधुर (मुखालप, पिपीलिका आदि प्रिय)	पृथिवी + जल	हेमन्त	वात-पित्तशामक कफकारक	मधु, मिश्री, जांगलमांस पुराणशाली, यव, गोधूम कफकारक नहीं	स्निग्ध, शीत गुरु	बृंहण, जीवन आयुष्य, बल्य, सृष्टविण्मूत्र मारुत	स्थौल्य, अरुचि, कास श्वास-गलगण्ड, गण्डमाला, श्लीपद, प्रमेह, कृमि आदि कफज रोग
२. अम्ल (दन्तहर्षकारक-मुखशोधक)	पृथ्वी + अग्नि (जल + अग्नि सुश्रुत)	वर्षा	वातशामक कफ-पित्तकारक	दाडिम तथा आमलकी पित्तकारक नहीं	स्निग्ध, गुरु, उष्ण, रुक्ष	रोचन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, अवृष्य, सृष्टविण्मूत्रमारुत	रक्तविकार, दाहपाक, शोथ, कण्डु, पाण्डु, दृष्टिमान्द्य, भ्रम, रक्तपित्तादि
३. लवण (मुख-कण्ठ-कपोल दाहक, क्लेदक)	जल + अग्नि (च०) पृथ्वी + अग्नि (सु०)	शरद्	,,	सैन्धव शीतल नेत्र्य	,,	क्लेदन, दीपन, पाचन छेदन, भेदन, शुक्रघ्न सृष्टविण्मूत्र मारुत	क्लैव्य, रक्तपित्त, खालित्य अम्लपित्त, विसर्प, वातरक्त विर्चचिकादि
४. कटु (रसना उद्वेजक विदाहतोद कारक)	वायु + अग्नि	वर्षा	कफहर, वात-पित्त कारक	वातवर्धक और शुक्रनाशक होते हुये भी शुण्ठी, रसोन तथा पिप्पली अपवाद हैं	मुखशोधक, दीपन, पाचन, ग्राही, लेखन कृमिघ्न	रूक्ष, उष्ण, लघु, बद्धविण्मूत्रमारुत	मूर्च्छा, भ्रम-दाह-दौर्बल्य, तृष्णा, कृशता, कम्पग्लानि आदि पैत्तिक रोग
५. तिक्त स्वयं अप्रिय, मुख वैशद्य, कण्ठशोधक	वायु + आकाश	शिशिर	कफ-पित्तशामक वातकर	वेत्राग्र, गुडूची एवं पटोल वातशामक हैं।	रूक्ष, शीत, लघु, विशद	दीपन-पाचन रोचन, कृमि, ज्वर विषनाशक बद्धविण्मूत्रमारुत	धातुशोष, दौर्बल्य, भ्रम, मुखशोष, वात व्याधियाँ
६. कषाय (मुखवैशद्य, तथा जड़ताकारक)	वायु + पृथ्वी	वसन्त	,,	शीत, स्तम्भन होते हुए भी कषाय हरीतकी अनुलोमन है।	रूक्ष, शीत, लघु, विशद, विष्टम्भि संकोचक	स्तम्भन, शोषण, रोपण सन्धानीय अवृष्य बद्धविण्मूत्र मारुतः	मुखशोष, हृच्छूल, आध्मान, विबन्ध, मलों की अप्रवृत्ति, वातरोग

रस और अनुरस :—

तत्र व्यक्तो रसः । अव्यक्तोनुरसः किञ्चिदन्ते व्यक्तोऽपि चेष्यते । (अ० हृ० सू०)

तुलना :—

रस—व्यक्त, शुष्कावस्था में स्थायी, आदि में उपलब्ध । अनुरस—अव्यक्त वा ईषद् व्यक्त, शुष्कावस्था अस्थायी अन्त में उपलब्ध ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

षष्ठ अध्याय

वीर्य-विज्ञान

वीर्य परिचय

गुण प्रकरण में बताया जा चुका है कि 'विशेष शक्तिशाली' गुण को ही वीर्य कहते हैं। इस शक्ति को आधुनिक वैज्ञानिक एनर्जी[1] या पोटेन्सी कहते है। यही शक्ति भगवान् चरक के शब्दों में 'वीर्य' है। **येन कुर्वन्ति तद् वीयम्**—(च० सू० २६)। इस प्रकार द्रव्यों की कार्यकारिणी शक्ति ही वीर्य सिद्ध होती है। वीर्य की उक्त परिभाषा बहुत विस्तृत है। समग्रगुणों तथा रसादि का अन्तर्भाव 'वीर्य' के अन्दर हो जाता है।

यह शक्ति दो प्रकार की है—चिन्त्य[2] और अचिन्त्य[3]। चिन्त्य शक्ति द्वारा होने वाले द्रव्यकर्मों की व्याख्या की जा सकती है और उसका कारण भी बताया जा सकता है। यथा, बृहत्पंचमूल उष्ण वीर्य होने के कारण वात के विपरीत होने से उसे शान्त करता है। इस प्रकार के द्रव्यों द्वारा जो चिकित्सा की जाती है, वह 'सहेतुक' अथवा युक्ति-युक्त[4] चिकित्सा कहलाती है। क्योंकि, इस प्रकार के पदार्थों को कार्यकारिणी शक्ति का हेतु स्पष्ट किया जा सकता है। यह चिन्त्य शक्ति ही 'वीर्य' है।

'वीर विक्रान्तौ' धातु से 'वीर्य' शब्द निर्मित है। इसकी निरुक्ति इस प्रकार है :—**'वीरयते-विक्रान्तः कर्मसमर्थो-भवति अनेन इति वीर्यम्** अर्थात् जिसके द्वारा द्रव्य कर्म करने में समर्थ होता है, वह 'वीर्य' है। इस चिन्त्य शक्तिरूप में 'वीर्य' की व्याख्या ही रस-वीर्य विपाक को समझना चाहिये। इस प्रकार के द्रव्य प्रभाव को तीन मुख्य अवस्थाएँ होती हैं :—

(१) **प्रथमावस्था :**—द्रव्य धातुओं के सम्पर्क में आते ही अपना प्रभाव दिखाता है। यह प्रभाव बाहर त्वचा तथा अन्दर कलादि पर दृष्टिगोचर होता है और प्रायः स्थानिक होता है। यह द्रव्य का प्राथमिक प्रभाव कहलाता है। किन्तु, कभी-कभी उसका प्रभाव दूरस्थ अंगों पर भी होता है जो गौण प्रभाव कहलाता है। इस अवस्था में द्रव्य का प्रभाव 'रस' के कारण होता है। कहा भी है—**"रसोनिपाते द्रव्याणाम् ।"**

(२) **द्वितीयावस्थाः**—द्रव्य कुछ काल तक देह-धातुओं के संपर्क में रहता है तथा रस रक्त में मिलने के पूर्व तथा पश्चात् भी शरीर में कुछ देर तक अवस्थान करता है। इस अवधि में उसका प्रभाव 'वीर्य' (पारिभाषिक वीर्य—जिसका इस अध्याय में वर्णन किया जाएगा) द्वारा होता है। यह भी स्थानिक और प्राथमिक तथा सांस्थानिक और गौण दोनों प्रकार का हो सकता है। जिसके उदाहरण इस प्रकरण में अन्यत्र दिए गए हैं।

(३) **तृतीयावस्था**—रस में आशोषित होने के पश्चात् औषधि पर देहोष्मा (धात्वग्नियों और भूताग्नियों) अपना प्रभाव करती है। उसमें अनेक प्रकार के परिवर्तन होते है। इस काल में 'विपाक' द्वारा द्रव्य प्रभाव का वर्णन किया जाता है। कहा भी है—**'विपाकः कर्मनिष्ठया'**। यह प्रभाव प्रायः सांस्थानिक अनुमेय तथा द्वितीयक (Systematic indirect & secondary) होता है। इस प्रकार चिन्त्यशक्ति द्वारा होने वाले प्रभाव के हेतु रस, वीर्य और विपाक दिए जाते हैं। यह बात स्मरणीय है कि कोई द्रव्य केवल रस द्वारा ही, दूसरा रस और वीर्य द्वारा, तीसरा केवल विपाक द्वारा

---

(१) Energy , Potency

(२) Rational or Explainable

(३) Emperical

(४) Rational Therapeutics

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हीं, कोई तीनों द्वारा द्रव्य का कर्म शरीर में कराते हैं। जैसा कहा भी है, 'किंचिद्रसेन कुरुते कर्म, पाकेन चापरम् गुणान्तरेण-वीर्येण, प्रभावैणैव किंचन' (अ० हृ० सू०)। अचिन्त्यशक्ति द्रव्य की वह शक्ति है जिसका कार्य तो हमें दृष्टि-गोचर होता है किन्तु, उसका हेतु नहीं दिया जा सकता। अतः इसे द्रव्य प्रभाव कहकर ही सन्तोष कर लिया जाता है। इस प्रकार प्रत्यक्षफल वाली औषधियों को 'आनुभविकौषधे' (Emperical Therapeutics) कहते हैं। इसका वर्णन 'प्रभाव' के प्रकरण में किया गया है। शक्तिरूप वीर्य (Active Principles) का प्रसंगवश संक्षेप में वर्णन किया गया है। अब इस प्रकरण के विशेष विषय 'पारिभाषिक वीर्य' का वर्णन किया जाता है।

कुछ वैद्य, आधुनिकों के 'एक्टिव प्रिन्सिपल्स' (Active principles) को पारिभाषिक वीर्य मानते हैं जो हमारे विचार में ठीक नहीं है। क्योंकि, रस और विपाक काल में भी यही एक्टिव प्रिन्सिपल्स (क्रियाशील तत्व) कार्य करते हैं। उनके अभाव में द्रव्य कार्य अक्षम हो जाता है। अतः हमने शक्तिरूप वीर्य का यह पर्याय दिया है। द्रव्य के कार्यकर भाग को 'एक्टिव प्रिन्सिपल' कहते हैं। यह वह शक्ति है जो विविध प्रकार की होती है। जिसे गुणों द्वारा जाना जाता है। नव्य मत के साथ तुलना करते हुए कई विद्वान् वीर्य को 'एक्टिव प्रिन्सिपल' कहते हैं। परन्तु, एक्टिव प्रिन्सिपल तो द्रव्य है और वीर्यादि गुण-विशेष। अतः यह मत चिन्त्य है।

वीर्य के लक्षण

वीर्यं तु क्रियते येन या क्रिया। नावीर्यं-कुरुते किंचित् सर्वावीर्यकृता क्रिया॥ (च० सू० अ० २६)

"जिसके द्वारा द्रव्य की क्रिया कराई जाती है, वह वीर्य है। क्योंकि, समग्र क्रियाएँ वीर्य द्वारा ही होती हैं। निर्वीर्य द्रव्य कोई कार्य नहीं कर सकता।" वीर्य का उक्तलक्षण 'शक्तिरूप' वीर्य का है। जिसका परिचय अभी ऊपर दिया गया है। इस मत के अनुयायियों को 'शक्तिरूप वीर्यवादी' या इन्दु के अनुसार 'बहुवीर्यवादी' भी कहा गया है। इस शक्तिरूप वीर्य का वर्णन तो गुण-कर्म-रसादि सबके द्वारा किया ही जाता है।

द्रव्यगत भूतप्रसादातिशयरूप (जन्य) कार्यकारिणी शक्ति के द्वारा ही मानव शरीर में संशोधन-वमन-विरेचनादि कार्य कराए जाते हैं। यह शक्ति द्रव्य प्रभाव से, रस प्रभाव से, विपाक रूप से, उत्कृष्टशक्ति संपन्न शीतोष्णादि गुणों से, या द्रव्यांश के सार भाग तत्व से अपना कार्य कराती है। यही शक्तिरूपी वीर्य है। इस विषय में आचार्य शिवदाससेन का निम्न उद्धरण पठनीय है। '**उक्तं च-भूतप्रसादातिशयो द्रव्ये पाके रसेस्थितः। चिन्त्याचिन्त्य क्रिया हेतु वीर्यं धन्वन्तरेर्मतम्॥ एतेन द्रव्यरस विपाकानां स्व स्वकरण सामर्थ्य वीर्यमित्यर्थः, न चैवं द्रव्यस्यापि वीर्यत्वप्रसंगः, येनेति करणे तृतीया करण-स्यैवशक्तित्वात् द्रव्यस्यच कर्तृत्वात्। एतेन द्रव्यकर्तृके रसादि करके कार्ये रसादीनामपि वीर्यत्वमित्यर्थः। ...परमार्थतः शक्तिरेव वीर्यं सा पुनर्बलवत् क्रिया निवर्तनक्षमा रसादिना योगान्निरूपाधिरिति तस्याः शीतोष्णादयो गुणाः उपाधित्वेनांगी कृताः। ते तु द्रव्य समवायिनो रसादिषु पुनरुपचरितवृत्तय इति। उक्तं च गुणाः कर्म व्यवस्थायै द्रव्याणांरसपाकयोः। शक्तः कर्मसुशक्ता ये निरुपाधेरुपाधया इत्याहुः। ......शास्त्रे तु व्यवहारः पारिभाषिक वीर्येणैव॥**

परिभाषिक वीर्य का लक्षण—"वैद्यके हि रस विपाक-प्रभावव्यतिरिक्ते प्रभूतकार्यकारिणी गुणे" — वीर्यमिति संज्ञा—चक्रः—(च० सू० अ० २६) "तेनान्वर्थेति वर्ण्यते। समग्र गुण सारेषु शक्त्युत्कर्ष विवर्तिषु॥—(अ० हृ० १२)

द्रव्य के गुण को—जो रस विपाक तथा प्रभाव के अतिरिक्त होते हुए भी अपना कार्य करता है 'वीर्य' कहा जाता है। यह वीर्य समग्र गुणों में श्रेष्ठ तथा शक्तिशाली होता है। अतएव सुश्रुत ने कहा है, "**एतानिखलुवीर्याणि स्वबलगुणोत्कर्षाद्रसमभिभूयात्मकर्म दर्शयन्ति**—(सु०सू० अ० ४)। अर्थात् अपने बल और गुणों में श्रेष्ठता के कारण ये रसादि को अभिभूत करके अपना काम दिखाते हैं।

वीर्य के भेद (संख्या) "वीर्यंपुनर्वदन्त्येके गुरु स्निग्धं हिमंमृदु। लघु रूक्षोष्णं तीक्ष्णंच तदेवंमतमष्टधा॥ गुर्वादिष्वेव वीर्याख्या तेनान्वर्येति वर्ण्यते। समग्रगुणसारेषु शक्त्युत्कर्षविवर्तिषु। व्यवहाराय मुख्यत्वात् बह्वग्रहणादपि॥ उष्णं शीतं द्विधैवान्ये वीर्यमाचक्षतेऽपिच। नानात्मकमपि द्रव्यमग्निषोमौ महाबलौ। व्यक्ताव्यक्तं जगदिव नातिक्रामति कदाचन॥—(अ०हृ० सू०)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अष्ठविध वीर्यवाद—आचार्य चरक तथा वाग्भट्ट अत्यन्त शक्तिशाली गुण को ही वीर्य मानते हैं। शक्ति का यह उत्कर्ष आठ गुणों में ही मिलता है। अतः वीर्य संज्ञा आठ ही गुणों की होती है। यथा—

गुरु	लघु	शीत मृदु
रूक्ष	स्निग्ध	उष्ण तीक्ष्ण

ये आठ गुण ही वीर्य क्यों हैं? इसकी पोषक युक्तियाँ नीचे दी जाती हैं।

(१) समग्र गुणसारता—द्रव्यों में अवस्थित सभी गुणों में उक्त आठ गुण सर्वाधिक सारवान् हैं। ये अधिक स्थायी तथा ओदर्य अग्निसंयोग में अपरिवर्तित रहते हैं। जबकि रसों में परिवर्तन हो जाता है।

(२) शक्ति-उत्कर्ष—अन्य गुणों की अपेक्षा इनमें शक्ति विशेष रूप से पायी जाती है।

(३) व्यवहारमुख्यता—चिकित्सा में तथा लोक व्यवहार में भी इन्हीं आठों गुणों की प्रधानता देखी जाती है।

(४) बहुलता—द्रव्यों में अन्य गुणों की अपेक्षा ये ही गुण बहुलता से मिलते हैं।

(५) उपयोगिता—शारीरिक दृष्टि से गुर्वादि गुण अधिक उपयोगी होते हैं।

(६) प्रबलता—अपनी शक्ति के कारण रस विपाक तथा सान्द्रता, द्रवता आदि गुणों को ये आठ अभिभूत कर देते हैं।

द्विविध वीर्यवाद—सुश्रुत तथा उनके मतानुयायी-शीत तथा उष्ण (क्रमशः गुरु और लघु)—इन दो गुणों को ही मानते हैं। वे पाँचभौतिक दृष्टि से विचार करते हैं। सृष्टि के पाँचभौतिक होने पर भी उनमें अग्नि और सोम (जल) ये दो तत्व ही प्रधान हैं। अतः जगत् को अग्निषोमीय कहा गया है। न केवल जड़ जगत् अपितु चेतन जगत् भी अग्निषोमीय ही है। क्योंकि नर का शुक्र सौम्य और नारी आर्तव आग्नेय है। जिनके संयोग से यह चेतन सृष्टि उत्पन्न हुई है। काल भी सूर्य (आग्नेय) तथा चन्द्रमा (सौम्य) की प्रबलता के कारण आदान (आग्नेय) और विसर्ग (सौम्य) इन दो भागों में विभक्त है। इस प्रकार समग्र जगत् आग्नेय तथा सौम्य इन दो प्रकारों में विभक्त है। अतः, वीर्य भी आठ न होकर 'उष्ण और शीत' भेद से दो ही मानना उचित है।

समीक्षा

उक्त दोनों मत आयुर्वेद में प्रमाण-भूत माने गए हैं। इनमें बाह्यतः भेद दृष्टिगोचर होता है। किन्तु, तात्विक दृष्टि से देखने पर मतभिन्नता नहीं रहती। द्रव्यगत शक्ति-विशेष को दोनों ही सम्प्रदायवादी वीर्य मानते हैं। देह में होने वाले द्रव्यों के विविध प्रभावों में आठ गुणों की अपेक्षा अधिक दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि वे अन्यों से अधिक शक्तिशाली हैं। किन्तु यदि इन आठों में भी शक्ति के उत्कर्ष को जाँच की जाए तो अन्त में 'उष्ण' और 'शीत' ये दो ही अतिशय शक्तिशाली गुण रह जाते हैं। इस प्रकार शक्ति की मात्रा का ही भेद है, अन्यथा कोई भेद नहीं।

वीर्यों की भौतिक निष्पत्ति

"तत्र य इमेऽष्टौ गुण वीर्य संज्ञकाः शीतोष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, तीक्ष्ण, पिच्छिल, विशदस्तेषा तीक्ष्णोष्णो-आग्नेयौ, शीतपिच्छिलावम्बुगुणभूयिष्ठौ, पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठः, स्नेह, तो या काश गुण भूमिष्ठं मृदुत्वं वायुगुण भूमिष्ठ रौक्ष्य, क्षितिसमीरण गुणभूमिष्ठं वैशद्यम्—(सु० सू० ४१)

उक्त आठ वीर्य संज्ञक गुणों में महाभूतों का तारतम्य निम्न प्रकार है—

(अ) तीक्ष्ण और-उष्ण-आग्नेय है। **(आ) शीत**—पिच्छिल (या गुरु) जल प्रधान है। **(इ) स्निग्ध**—पृथिवी और जल प्रधान है। **(ई) मृदुता**—जल+आकाश प्रधान **(उ) रूक्षता**—वायु प्रधान **(ऊ) विशदता**—वायु+पृथिवी प्रधान है।

वीर्यों के कर्म—"तत्र कर्माण्युष्णस्य दहन-पाचन-मूर्च्छन, वमन, स्वेदन विरेचनानि। शीतस्य प्रल्हादन, विश्यन्दन स्थिरीकरण, प्रसादन, क्लेदन-जोवनानि। स्निग्धस्य, स्नेहन, बृहंण-तर्पण-वाजीकरण-वयः, स्थापनानि। रूक्षस्य अनिल वृद्धि-संग्रहण-पीडन-विरुक्षणोपरोपणानि। रूक्षस्य विशदस्य क्लेदाचूषण विरुक्षणोपरोहणानि। पिच्छिलस्थो-पलेपन, पूरण-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बृंहण-संश्लेषण-वाजीकरणानि। मृदो-रक्त मांस प्रसादन-सुस्पर्शानि। तीक्ष्णस्य संग्रहाचूषणग्व दारणस्रावणानि। ततोष्ण-स्निग्धो वातघ्नो, शीत मृदु पिच्छिलाः पित्तघ्नाः, तीक्ष्ण रूक्ष वशदाः श्लेष्मघ्नाः···तेषां मृदुशीतोष्णाः स्पर्श ग्राह्याः, पिच्छिल-विशदो चक्षुः स्पर्शाभ्यां, स्निग्धरूक्षौचक्षुष्यौ, तीक्ष्ण मुखदुःखोत्पादनेन—(सु० सू० अ० ४१)।

तत्रोष्णं भ्रमतृड्ग्लानि स्वेददाहाशुपाकिता।
शमं च वातकफयो, करोति शिशिरं पुनः॥
ल्हादनं जीवनं स्तम्भं प्रसादं रक्तं पित्तयोः।—(अ० ल० सू० अ० ६)

शीतं कफमारुत्कृतवीर्यं गुरु पित्तंनाशनं बलयम्। उष्णं कफवातहरं पित्तकरं लघ्वव्रृष्यंच—(द्रव्यगुणसंग्रह)। वीर्यों के कार्यादि का वर्णन निम्न तालिका में किया गया है। जो छात्रों के लिए अत्यन्त सरल है।

वीर्य की कर्म प्रदर्शक तालिका

द्विविध वीर्यों के कर्म

वीर्य	कर्म	अपवाद
उष्णवीर्य (कटु अम्ललवण)	भ्रम, तृषा-ग्लानि, स्वेद, दाह, पाक-वात-कफशमन, पित्तवर्धक	शमन, आमलकं, सैन्धव, नोष्णं, पित्तशामक
शीतवीर्य (मधुर-तिक्त-कषाय)	आल्हादन, जीवन, स्तम्भन, रक्त-प्रसादन, पित्तशामक, वात-कफवर्धक	बृहत्पंचमूल, आनूप मांस, उष्ण, तिक्त, अर्क, गुडूची, अगुरु, कषाय हरीतकी उष्णवीर्य है—

अष्टविध वीर्यों की क्रियादि प्रदर्शक सारणी

वीर्य	प्रधानभूत	रस	दोष सम्बन्ध	कर्म
शीत	पृथ्वी+जल	मधुर, तिक्त, कषाय	पित्तशामक, वात-कफ वर्धक	प्रल्हादन, विष्यदन्त, क्लेदन, जीवन, स्तम्भन बल्य, वृष्य, गुरु, प्रसादन स्थिरताकारक
उष्ण	अग्नि	अम्ल, लवण, कटु	कफ-वातशामक, पित्तकारक	दहन, पचन, मूर्च्छन, स्वेदन, वामक, विरेचक, भ्रमतृष्णा, ग्लानि, लघु, अवृष्य
स्निग्ध	जल+भू	मधुराम्ल, लवण	वातहर, कफहर	स्नेहन, बृंहण, संतर्पण, वाजीकरण, वय, स्थापन
रूक्ष	वायु	अम्ल, तिक्त, कषाय	कफहर, वातकर	संग्रहण, विरुक्षण, पीड़न शोषण, रोपण
गुरु	पृथ्वी+जल	मधुर अम्ल	वातहर	उपलेपन, बृंहण, संश्लेषण वाजीकरण
(पिच्छिल-सु)		लवण	कफकर	
लघु	अग्नि	कटु, तिक्त	कफहर	विरुक्षणादि, लेखन, क्लेदन, शोषण

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वीर्य	प्रधानभूत	रस	दोष सम्बन्ध	कर्म
(विशद सु०)	आकाश+वायु	कषाय	वातकारक	
मृदु	जल+ख	मधुर, अम्ल, लवण	पित्तहर, कफहर	रक्तमांसप्रसादन, सुस्पर्शन मार्दवताकर
तीक्ष्ण	अग्नि	कटु, अम्ल, लवण	वात-कफहर	संग्रहण, आचूषण अवदारण, स्रावण

सूचना :—सुश्रुत ने गुरु के स्थान पर 'पिच्छिल' और लघु के नाम पर विशद' पढ़ा है।

वीर्यों का दोषों पर प्रभाव

(१) **वातघ्नवीर्य :**—गुरु (पिच्छिल) उष्ण तथा तीक्ष्ण, स्निग्ध

(२) **वातवर्धक :**—मृदु-शीत-रूक्ष, लघु तथा रूक्ष

(३) **पित्तघ्न**—मृदु, शीत, गुरु (पिच्छिल)

(५) **पित्तवर्धक**—तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, रूक्ष

(४) **कफघ्न**—लघु, तीक्ष्ण, रूक्ष

(६) **कफवर्धक**—स्निग्ध, शीत, गुरु, मृदु

वीर्य ज्ञान तथा उपलब्धि के साधन और काल—यद्यपि वीर्य का ज्ञान अनुमान से किया जाता है। इन्द्रियों से नहीं, तथापि वीर्यवान् पदार्थों के स्थूल रूप का ज्ञान इन्द्रिय ग्राह्य भी है। यथा, मृदु (घी आदि) शीत (जलादि) उष्ण (मरिचादि) वीर्यों का ज्ञान त्वचा (स्पर्श) से, पिच्छिल और विशदवीर्य वाले पदार्थों का (यथा, गोंद, ईसबगोल वटिकादि) त्वचा और नेत्र (स्पर्शन—दर्शन) से, स्निग्धता, रूक्षता का दर्शन से, तीक्ष्ण वीर्य का ज्ञान, मुखादिस्थ श्लेष्मा में दुःख से (दाहादि) होता है।

उपलब्धि प्रभावकाल—"**वीर्य यावदधिवासात् निपपाताच्चोपलभ्यते**—(च० सू० अ० २६)। अधिवासः सहावस्थानं, यावदधिवासादिति यावच्छरीरनिवासात्, एतच्चविपाकात् पूर्व. निपाताच्चोर्ध्वंज्ञेयम्। निपाताच्चेति शरीरमात्रसंयोगात्—(चक्रः)

वीर्य अपना कार्य दो प्रकार से करता है—(१) निपात-देह के संपर्क (निपात) में आकर यथा मुख में मरिच डालते ही उसका उष्ण तथा तीक्ष्ण, वीर्य क्रियाशील हो उठता है और मुख में लालिमा, दाह, तापादि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। अन्दर कला में जाकर भी इन द्रव्यों का यही प्रभाव होता है। कुछ द्रव्यों में तीक्ष्ण, उष्णतादि वीर्य तथा कटु रस दोनों ही पाए जाते हैं। किन्तु मद्य, कस्तूरी आदि में कटु रस की प्रधानता न होते हुए भी उनके देह धातुओं के संपर्क में आते ही उनको उष्णवीर्यताजन्य कर्मों का प्रत्यक्ष ज्ञान होने लगता है, अन्तः प्रयोग से। यह प्रथम प्रभाव देह धातुओं के संपर्क में आने से होता है। यह प्रायः स्थानिक होता है।

यहाँ यह बात स्मरणीय है कि रस का ज्ञान कर्म प्रत्यक्ष ही है। वीर्य का ज्ञान प्रत्यक्ष और अनुमान से होता है। यथा, राई की तीक्ष्णता नाक से प्रत्यक्ष हो जाती हैं। कुछ औषधियों के वीर्य का ज्ञान अनुमान से होता है यथा, सैन्धव का शैत्य उष्णवीर्य और मत्स्यवीर्य का ज्ञान अनुमान से ही होता है। वह नित्य परोक्ष है।—(चक्रः)

(२) **अधिवास**—देह के धातुओं के साथ कुछ समय तक रहने से वीर्य अपना द्वितीय अवस्था का प्रभाव उत्पन्न करता है, जो प्रायः सास्थानिक होता है। यथा, विजया (भाँग) उदर में से रस या रक्त में मिलने के बाद मातुलुंग (मस्तिष्क धातु) के साथ-साथ मिल जाती है और कुछ समय तक वहाँ अवस्थान या अधिवास करती है और इस काल में अपना प्रभाव दिखाती है। यह प्रभाव दिखाकर उसका बड़ा भाग ता शरीर में ही नष्ट हो जाता है। शेष भाग मूत्रादि द्वारा बाहर निकल जाता है। इस प्रकार पारिभाषिक वीर्य अपना कार्य करता है और निपात तथा अधिवास ये दो उसके कार्य-काल या उपलब्धि के समय हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि वीर्य का ज्ञान प्रत्यक्ष और अनुमान से होता है। कुछ द्रव्यों का वीर्य संपर्क (निपात) मात्र से प्रत्यक्ष हो जाता है। यथा, जिह्वा या त्वचा पर राजिका के सम्पर्क से, अन्य द्रव्यों का अधिवास (शरीर में उपस्थिति) से उत्पन्न कर्म द्वारा अनुमान से होता है। कुछ का ज्ञान निपात तथा अधिवास दोनों अवस्थाओं से होता है। इस प्रकार वीर्य का ज्ञान तीन प्रकार से होता है।

क्रिया	प्रमाण	उदाहरण
निपात (संपर्क)	प्रत्यक्ष	राजिका (तीक्ष्ण)
अधिवास	अनुमान	कस्तूरी (उष्ण)
निपात + अधिवास	प्रत्यक्षानुमान	मद्य (तीक्ष्ण, उष्ण)

विभिन्न वीर्यों का विविध इन्द्रियों द्वारा ज्ञान

वीर्य	इन्द्रिय
मृदु-शीत-उष्ण	स्पर्शनेन्द्रिय
स्निग्ध-रूक्ष	चक्षु
पिच्छिल-विशद	स्पर्श + चक्षु
तीक्ष्ण	स्पर्श + जिह्वा

वीर्य का निर्धारण

शीतं वीर्येण यद् द्रव्यं मधुरं रसपाकयोः।
तयोरम्लं यदुष्णं च यद् द्रव्यं कटुकंतयोः॥
तेषां रसोपदेशेन निर्देश्यो गुणसंग्रहः।
वीर्यतोऽविपरीतानां पाकतश्चोपदेश्यते॥
यथा पयो यथा सर्पिर्यथां वा चव्यचित्रकौ।—(स० सू० २६)

जो द्रव्य रस तथा विपाक में मधुर हो, वह शीत वीर्य होता है। अम्लरस, अम्लविपाकी, कटु रस और कटु विपाकी द्रव्य उष्णवीर्य होते हैं। लवण रस वाले उष्णवीर्य तथा कषायतिक्त शीतवीर्य होते हैं। यथा दूध, घी, शीतवीर्य हैं और चित्रक तथा चव्य उष्णवीर्य है। इसमें कुछ अपवाद भी है।

द्रव्य	रस	वीर्य
बृहत् पंचमूल	कषाय-तिक्त	उष्ण
आनूप मांस	मधुर	उष्ण
सैन्धव	लवण	नोष्ण (शीत)
आमलक	अम्ल	नोष्ण (शीत)
अर्क-गुडूची-अगुरु	तिक्त	उष्ण
हरीतकी	कषाय	उष्ण

वीर्य विषयक नागार्जुन का मत
(कर्मवीर्यवाद)

आयुर्वेद के आचार्यों के वीर्य सम्बन्धी मत का खण्डन करते हुए नागार्जुन ने वीर्य का कर्मलक्षण (कर्म का फल) कहा है। अर्थात् द्रव्य के जिस सार भाग से वमन-विरेचनादि कर्म होते हैं—वह वीर्य है। यथा, ब्राह्मी के प्रयोग से मेधावृद्धि और त्रिवृत (निशोथ) से रेचन होना रूप कार्य को देखकर मेधा जनन और रेचन ये दो वीर्य क्रमशः ब्राह्मी और निशोथ में है यह जाना गया। शीत, उष्णादि शक्ति संपन्न गुणों को यह वीर्य नहीं मानता। इस विषय में

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

'रसवैशेषिकसूत्र' में विस्तृत वर्णन किया गया है। विस्तार भय से यहाँ उनका उल्लेख मात्र किया गया है। नागार्जुन ने जिन्हें औषधि का वीर्य कहा है वह वस्तुत: द्रव्य के कर्म ही हैं। अतः, उनका वर्णन कर्म के प्रकरण में ही होना चाहिए, किन्तु क्योंकि उसने इनकी संज्ञा 'वीर्य' दी है। अतः, वीर्य प्रकरण में उनका संक्षिप्त वर्णन किया जाता है।

नागार्जुन मत से वीर्यबोधक तालिका

वीर्य	महाभूत	वीर्याश्रित गुण
१. छर्दनीय (वामक)	अग्निवायु, ऊर्ध्वगति स्वभाव वाले	यह सब रसों के आश्रय का अधिष्ठान हैं
२. अनुलोमनीय (विरेचन)	पृथिवी+जल, अधोगामीस्वभावी	यह सब रसों के आश्रय का अधिष्ठान है
३. उभयतोभागहर (वामक-विरेचक)	जल+भू+अग्नि+वायु	कटु, तिक्त, कषाय इन वातवर्धक रसों तथा तीक्ष्ण उष्ण लघु इन पित्तवर्धक गुणों का आश्रय
४. प्रशमनम्	वायु+जल+पृथिवी, कुपित को शान्त करने वाला	वात प्रशमन—मधुर-अम्ल-लवण तथा गुरु-उष्ण-स्निग्ध-पिच्छिल; पित्त प्रशमन—कषाय-मधुर-तिक्तरस शीत-गुरु मृदु-पिच्छिल, कफ प्रशमन—कषाय कटु-तिक्त-रस तीक्ष्ण-उष्ण विशदादि गुण
५. संग्रहणवीर्य	पृथिवी+वायु—शोषण स्वभाव	लवण रस तथा तीक्ष्ण गुण को छोड़कर अन्य रसों तथा गुणों का आश्रय
६. दीपनीय	पृथिवी+अग्नि—उष्ण स्वभावी	कटु-अम्ल लवण रस तथा उष्ण तीक्ष्णादि पित्तल गुण
७. प्राणघ्न (विष)	अग्नि महाभूत (आशुकारी स्वभाव)	षड्रस तथा शीघ्रता, सौषिर्य, व्यवायी-विकाशी आदि गुण
८. मादक (मदन)	वायु+अग्नि (मदकारक)	सर्वरस तथा तीक्ष्ण-उष्ण, रूक्ष, लघु, विशद गुणों का आश्रय
९. विदारण (फाडना)	अग्नि+वायु (रूक्ष तथा विदारण स्वभावी)	पित्तोत्पादक रस तथा गुणों का आश्रय
१०. शोथजनन	अग्नि+वायु (विश्लेषण तथा ऊपर उठाने (उर्ध्वमुद्धय) वाले आचार्य निमि के मत में जल+पृथिवी	मधुर कषाय रस को छोड़कर शेष सारे रसों तथा तीक्षण-उष्ण-रूक्ष गुणों का आश्रय
११. श्वयथु विलयन, शोथघ्न	जल+वायु-संयोगज तथा अधोगामित्व-स्वभावी निमि के मत से ख+वायु	सब षड् रस-शीत मृदु-पिच्छिल गुण

वक्तव्य— ये प्रमुख वीर्य हैं। इनमें शोधनवीर्य (वमन-विरेचन-आस्थापन बस्ति) एक दोष को निकालने के लिए प्रयुक्त करने पर भी अन्य दोषों को निकाल देते हैं। यथा, कफ को निकालने के लिए प्रयुक्त वमन पित्त को भी विरेचन द्वारा कभी-कभी निकाल देते हैं। अर्थात् प्रशमनवीर्य का अनुमान रस के गुणों से किया जाता है। अर्थात् विपरीत रस और गुण वाला पदार्थ दोषों का शमन करते हैं। सांग्राहिक वीर्य पित्त और कफ का निग्रह करने वाला है। रूक्ष तथा विशद गुणों से कफ का तथा अलवण और तीक्ष्णोष्णरहित गुणों के कारण पित्त का निग्रहण होता है। दीपनीय वात-कफ

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

का निग्रह करने वाला, तथा प्राणघ्न, मादक, प्रदरएं सब दोषों के प्रकोपक, शोयप्रजनन वात-पित्त प्रकोपक, शोष विलयन सब दोषों का शामक है।

इनके अतिरिक्त— मेध्य (बुद्धिवर्धक) आयुष्य (आयुवर्धक), वृष्य, वयस्य, वर्चस्य (तेज-कान्तिवर्धक), रक्षोघ्न (कृमिहर) पुंसवन (पुत्रप्रद), सौभाग्यकर, प्रीति या स्नेहजनक विशल्यका (शल्य या वेदनाहर), विमोक्षकर, क्लैब्यकर, उन्मादकर, वशीकरण, विद्वेषकर, प्रवासन (देश निकाला), आकर्षण, आन्तर्धानिक (अदृश्य करने वाला), पौष्टिक, राजद्वारिक आदि भी है। इन सबका कर्मफल देखकर निर्णय किया जाता है।—(र०व०सू० १) अवीर्यमित्येके न तुल्यरस-गुणेषु विशेषाऽभावात्। तुल्य रस और गुण वाले पदार्थों में भी परस्पर विशेषता देखने में आती है। यथा, मधुर, स्निग्ध, शीत वाली मुलैठी संधान करती है। उसी रस-गुणों वाला दूध रेचक है।

(२) मात्राविशेषात्—तुल्य-रस-गुण वाले पदार्थों की मात्रा भेद से गुण भेद होता है। यथा, घी-दूध।

(३) तद्व्यतिरिक्तस्य तदाश्रयत्वात्— गुणों से अतिरिक्त कोई पदार्थ उनका आश्रय होना चाहिए। गुण स्वाश्रय नहीं रह सकता।

(४) वीर्य विषये चानधिकारात्तेषाम—रस गुण व्यक्तिरेकेण चौपलब्धेः कमर्णस्तस्य—कर्मफलरूप वीर्य रस गुणों के अतिरिक्त मन्त्रादि में प्राप्ति होना। मन्त्रों से भी वमन विरेचन होता है।

(५) सत्सु तेषु तस्मिंस्तस्यैवाकारणात् कर्मणः सति सम्यक् प्रयोगे— वीर्यों के अभाव में गुण और रसों के होते हुए भी द्रव्य कर्म नहीं करते। यथा, जहाँ पर शैत्य गुण प्रधान (बलवान) है, वहाँ पित्त शान्त होता है। जहाँ वह निर्बल होता है, वहाँ वह पित्त को शान्त नहीं करता। यह शीतोष्णकृष्टता होने पर पित्त शान्ति द्रव्य के पित्तशमन वीर्य पर निर्भर है। निर्बल शीत गुण वाले पदार्थ में वह वीर्य नहीं रहता।

(६) कर्मणानुमेया संपत्ति—इन वीर्यों का ज्ञान कर्म फल से अनुमान किया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सप्तम अध्याय

विपाक विज्ञान

"एतच्च (वीर्यकार्यकालः) विपाकात् पूर्वं, निपाताच्चोर्ध्वं ज्ञेदम्"—(च० सू० अ० २६)

वीर्यनिपात (देहसंपर्क) के पश्चात् तथा विपाक से पूर्व अधिवास काल में कार्य करता है। अतः रस (निपात काल में) और वीर्य (निपाताधिवास काल में) के पश्चात् विपाक अपना कार्य करता है। अतः रस, वीर्य के पश्चात् विपाक का वर्णन किया जाता है। यह उचित भी है।

विपाक कालः "जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम्। रसानां परिणामान्ते स विपाक इतिस्मृतः—(अ० हृ०सू० ६)। रसानां परिणामान्ते-जरण निष्ठाकाले-यद् रसान्तरं रसविशेषः उदेति स विपाकः" (अरुण)। आहार परिणामान्ते (हे०) विपाक लक्षणं तु-जठराग्नियोगादाहारस्य निष्ठाकाले यो गुणः उत्पद्यते स विपाकःचक्रः इति—'च० सू० अ० २६]

मधुरादि षड्रसयुक्त भोजन अथवा औषध द्रव्यों का उदर की अग्नि के साथ संयोग होने से आहर पाक के पश्चात् जो रस उत्पन्न होता है उसका पुनः निष्ठा काल में देहाग्नि संयोग से रसान्तर (द्रव्यान्तर) होना विपाक है।

औषध अन्न द्रव्यों के पाचन की दो अवस्थाएँ आयुर्वेद में मानी गई हैं। (१) अवस्थापाक (२) निष्ठापाक। इस निष्ठापाक को ही द्रव्य गुण शास्त्र में 'विपाक' कहते हैं। अतः अवस्थापाक का संक्षिप्त वर्णन ही यहां किया गया है।

अवस्थापाक—अन्नमादानकर्मा तु प्राणः कोष्ठं प्रकर्षति। तद्द्रवैर्भिन्नसंघातं स्नेहेन मृदुतां गतम्॥ समानेनावधूतोऽग्निरुदर्यः पवनेन तु। कालेभुक्तं समं सम्यक् पचत्यायुर्विवृद्धये॥ एवं रसमलायान्नमाशयस्थमधः स्थितः। पचत्यग्निर्यथा स्थाल्यामोदनायाम्बु तण्डुलम्। अन्नस्यभुक्त मात्रस्य षड्रसस्य प्रपाकतः॥ मधुराद्प्राक् कफोभावात् फेनीभूत उदीर्यते। परं तु पच्यमानस्य विदग्धस्याम्लभावतः॥ आशयाच्च्यवमानस्य पित्तमच्छमुदीर्यते। पक्वाशय तु प्राप्तस्य शोष्यमाणस्य वह्निना। परिपिण्डितपक्वस्य वायुः स्यात् कटु भावतः॥—(च० चि० अ० १५)

अर्थात्—आदान कर्मा (अन्दर ले जाने वाली) प्राणवायु मुख से अन्न को कोष्ठ में ले जाता है, जहां अन्न क्लेदक कफ के द्रवांश से पतला होता है तथा उसी के स्निग्धांश से मृदु होता है। आहार के परिणामकर अवस्थान्तरकर भाव है—ऊष्मा-वायु-क्लेद-स्नेह काल और समयोग इन सबके सम्यक् योग से युक्त अन्न का पाचन ठीक होता है। जब काठिन्य (संघात) नष्ट होकर अन्न द्रवरूप हो जाता है तो समानवायु द्वारा प्रवर्तित और संक्षुधित औदर्य अग्नि (पाचक रस) अन्न को आयु की वृद्धि के लिए तथा रसमल विवेचन के लिए अच्छी तरह पकाता है। यह स्थूल पाक है। जो मुख से लेकर अन्नि के आमाशय में आने तक तथा उसके क्लेदक कफ से मृदु और द्रव होने तक होता रहता है। अतएव चक्रपाणि दत्त ने कहा है 'एवं स्थूलपाकक्रममभिधाय-अवान्तरमणुपाक क्रममाह अन्नस्येति'। यह अवान्तर अणुक्रम ही अवस्थापाक है। इस पाक में तीन अवस्था-विशेष होने से इसे अवस्था पाक-की संज्ञा दी गई है।

(१) मधुरावस्था—छः रसों वाला भुक्त अन्न इस अवस्था में मधुरपाक (मधुर रस की प्रधानता होने) से फेनभूत स्थूल (मल) कफ उत्पन्न होता है। यह पाक प्रायः आमाशय में होता है। इसी के कारण पचन के प्रारम्भ में कफवृद्धि देखी जाती है। इस अवस्था में यदि भोजन में मधुरादि कफजनक रसों या गुणों का प्राबल्य होगा तो प्रभूत मात्रा में कफ उत्पन्न होगा। कटुकादि रस गुणों की प्रबलता होने पर कफ की मात्रा स्वल्प होगी। किन्तु, सारे ही अन्नसमूह से

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चाहे उसका रस कुछ भी हो, उसका मधुरीभाव होने के कारण कफ उत्पन्न अवश्य होगा। इसी प्रकार पित्त और वात की भी उत्पत्ति समझें। तत्तत्दवस्थाओं से सारा आहार ही मधुर, अम्ल और कटुभाव को प्राप्त होता है, चाहे उसका रस कुछ भी हो।

(२) **अम्लावस्था पाक**—मधुर पाक के पश्चात्, अन्न रस अम्ल होने लगता है और आमाशय से पच्यमानाशय (संग्रहणी) में आता है। उस अवस्था में विदग्ध (पक्व और अपक्व) अन्नरस से स्वच्छ पित्त (मलहल-स्थूल) की उत्पत्ति हाती है। इस समय आहार पित्त स्थान में होता है। अतएव पच्यमानावस्था में पित्त की वृद्धि देखी जाती है।

(३) कट्ववस्थापाक—अन्न का परिपाक होने पर जब वह तरल रूप में पच्यमानाशय से पक्वाशय में आता है तो उसके द्रव का वायु द्वारा शोषण होता है। अर्थात् अन्न रस के द्रवांश का आन्त्रों में से रक्त में शोषण हो रहा होता है। द्रवांश (स्निग्धांश) के शोषण से अन्नरस पिण्डित भाव (रूक्षभाव या स्थूल भाव) को प्राप्त होता है। इस समय कटु रस की प्रधानता होने से मल रूप वायु (अपान) की उत्पत्ति होती है। ये तीन अवस्था पाक हैं। इनके अन्त में आहार का 'रसमल (या सारमल) विवेक कालीन' 'पाक' 'विपाक' या 'निष्ठापाक' कहलाता है, जो अवस्थापाक से भिन्न ही है। जैसा कि आचार्य चक्रपाणि दत्त ने कहा है—**"विपाकस्तु रसमलविवेक समकालो भिन्नकाल एवावस्थापाकैः सममिति न विरोधः।"**

अवस्था पाक विषयक एक भ्रान्ति

विपाकों के प्रसंग में अवस्था पाकों के भी यत्किंचित निर्देश की पद्धति चिरकाल से चली आई है। पर इन अवस्थापाकों के विषय में भी बिना झगड़े का झगड़ा खड़ा हो गया है। संक्षेप में उसका भी उल्लेख कर दूँ।

आधुनिकों ने महास्रोत में अन्नपान के पाक को तीन अवस्थाओं में विभक्त किया है। प्रथम पाक मुख में कार्बोहाइड्रेटो (कार्बोज) का अंशतः पाक है, द्वितीय पाक आमाशय में प्रोटीनों का अंशतः पाक है तथा तृतीय पाक क्षुद्रान्त्र या पच्यमानाशय में कार्बोहाइड्रेटों, प्रोटीनों और स्नेहों के पाक की परिपूर्णता है। इस विभाग का कारण स्थान भेद तथा पाचक पित्तों के स्वरूप और क्रिया में भेद है।

प्रथम दर्शन में आयुर्वेद में वर्णित तीन अवस्थापाक भी अन्नपान की इन्हीं तीन अवस्थाओं का वर्णन करते हुए प्रतीत होते हैं। म० म० कविराज गणनाथ सेन जी ने 'सिद्धान्त निदान' में अवस्थापाकों का यही अर्थ किया है। परन्तु विशेष विचार से विदित होता है कि ये अवस्थापाक मुख्यतः अन्नपान के परिपाक की उल्लिखित तीन अवस्थाओं का वर्णन नहीं करते। यह बात और है कि **'ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति'** न्याय से मुख्य प्रयोजन की सिद्धि करते हुए अवस्थापाकों के विवरण में अन्नपान के प्राकृत पचन का भी आंशिक उल्लेख हो गया।

मेरा निश्चित मत है कि, भोजनकाल के प्रसंग से जो दोषों का प्रकोप होता है, उसी की संप्राप्ति इन अवस्थापाकों के रूप में दर्शायी गयो है। प्रत्येक अवस्थापाक का वर्णन देखे तो अन्त में सर्वत्र तत्तत् दोष का प्रकोप ही निर्दिष्ट हुआ देखने में आता है। कविराज जो ने ग्रहणी या क्षुद्रान्त्र में होने वाले पाक को तृतीय कटु अवस्थापाक कहा है। परन्तु, मूल ग्रन्थों और टीकाकारों का आशय यह नहीं है। अम्ल अवस्थापाक के अनन्तर अम्लीभूत अन्नपान जब आमाशय से च्युत होता है तो अन्नपान की अम्लता के कारण ही ग्रहणी में स्वच्छ (पारदर्शक) पित्त का प्रभाव होता है। उसके द्वारा पचन होने एवं रस-मल विवेक होने के अनन्तर मल जब पक्वाशय में पहुँचता है और पिण्डोभाव को प्राप्त होता है, तो वही उसका कटुकाख्य तृतीय अवस्थापाक होता है, वायु की वृद्धि या प्रकोप होता है। निस्संदेह यह जीवाणुओं की क्रिया से होने वाला प्रोटीनादि का पाक है। सेल्युलोज पर इन जीवाणुओं की क्रिया से यहाँ वायु (गैसों) की उत्पत्ति होती है। एक-दो जीवनीय (विटेमिन) भी इस प्रकार उत्पन्न होते हैं। पक्वाशय में भी किंचित् पाक होता है, इस वस्तु का अनुभव अवश्य ही प्राचीनों को हुआ होगा, अतः उन्होंने यहाँ होने वाले कार्य को अन्वर्थक ही 'पाक' नाम दिया है। तात्पर्य, समूचा अवस्थापाक-प्रकरण पचन की आधुनिकोक्त प्रक्रिया का पर्याय न होकर भोजन-काल के सम्बन्ध में होने वाली दोष-वृद्धि का ही सूचक है, यह आयुर्वेद का सिद्धान्त है। आयुर्वेदीय क्रिया शारीर में इस विषय का मैंने

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उभय मत से सविस्तार विचार किया हैं। विदग्ध पाचक अधिक वहीं देख अपना मतामत देने की कृपा करें।

अवस्थापाक और विपाक

विपाकों की समाप्ति आमाशय में हुए अम्लाख्य द्वितीय अवस्थापाक के अनन्तर उसके परिणामस्वरूप उदीरित (निःस्रुत) स्वच्छ पित्त की क्रिया से अन्नरस को उत्पत्ति के साथ ही हो जाती है, यह भी स्पष्ट समझ लेना चाहिए। तात्पर्य, पचन के परिणामस्वरूप प्रत्येक आहार्य द्रव्य के दो विभाग हो जाते हैं—सार एवं मल। इनमें मल तो आगे पक्वाशय की दिशा में प्रवाहित हो जाता है, शेष सार अंश रस का भाग बन कर रहता है और रसायनियों द्वारा शोषित हो हृदय में और वहाँ से शरीर में जाकर अपना प्राकृत कर्म करता है। रस के अंगभूत द्रव्य के इस सार भाग के पुनः पाक को ही प्राचीनों ने विपाक नाम दिया है। चक्रपाणि ने असंदिग्ध शब्दों में यह बात अपनी टीका में कही है—

'त्रिधा विपाकस्तु रसमलविवेक समकालो भिन्नकाल एवावस्थापाकैः ॥–च० चि०१५-९-११ (चक्र०)। उक्त से स्पष्ट है कि अवस्थापाक में अन्नगत द्रव्यांशों का ही पाक होकर सब द्रव्य तत्व प्रथम मधुररस अर्थात् मधुररस में जो गुण हैउन गुणों वाला हो जाता है। स्वभावतः भू-जल तत्वों की प्रधानता इस समय होती है, जिससे कफ की उत्पत्ति होती है। आमाशय का अभिप्राय (Stomach) मात्र ही नहीं है, अपितु आम पाक का वह स्थान है। इसी प्रकार पच्यमानावस्था में विदग्ध अन्न के अम्लभाव का अभिप्राय भी मधुर के समान अम्लरस के गुणों वाला द्रव्य संघात समझना चाहिए न केवल (खट्टा), क्योंकि पच्यमानाशय में अन्न खट्टा नहीं रहता है। पक्वाशय के कटुभाव का भी यही अर्थ समझें।

निष्ठापाक

अवस्थापाक से उत्पन्न आहाररस (जिसमें समस्त धातुपोषक तत्व रहते हैं केवल रस धातु ही नहीं) का शरीर के तेजों (अग्नि-उष्मा) के संयोग से रसान्तर या रूपान्तर होना ही निष्ठापाक है। यह रसमल विवेक काल में होता है जो आहार अथवा औषध द्रव्यों का अन्तिम परिणाम अथवा अन्तिम रूपान्तर है। जो शरीर में भ्रमण करते हुए आहाररस में होता रहता है। जिससे धातुओं की तथा धातुस्थ, धातुरूप दोषों को उत्पत्ति होती है। अवस्थापाक में मलरूप दोषों की उत्पत्ति होती है। अवस्थापाक बहुत कुछ प्रत्यक्ष किया जा सकता है। जबकि निष्ठापाक धातु में आश्रित होने से अनुमान-गम्य है। इन दोनों भेदों को आचार्य गंगाधर ने इस प्रकार स्पष्ट किया है—

"ये मधुराम्ल कटुरूपेण रसानां त्रयो विपाकाश्च सपरिणामाः रसाख्ये आद्यधातौ गुणा भवन्ति, न तु पाकारम्भचरमपर्यन्त पच्यमाने षड्सद्रव्ये प्रथम-मध्यम चरमावस्थासु मधुराम्लकटुरूपाः। (ग) ॥

आचार्य हेमाद्रि ने इसे और भी स्पष्ट कर दिया है—**'एवं कर्मनिष्ठानुमित एकरूपावस्थो-जठराग्नि संयोगाद्योरसानां रसान्तरोद्भवः स एव विपाकः, न तु यो जठराग्निसंयोगमात्राद् रसानामनेकावस्थः प्राङ्मधुरो स एव पच्यमानो अम्लस्ततो विपच्यमानः स एव कटुः विपाकः—(हे०)'**

अवस्थापाक तथा निष्ठापाक में भेद

अवस्थापाक (प्रपाक) पाक	निष्ठापाक
(१) आवस्थिक परिणाम	(१) चरम परिणाम
(२) मलरूप दोषों की उत्पत्ति	(२) धातुरूप दोषों की उत्पत्ति
(३) प्रत्यक्षगम्य	(३) अनुमानगम्य
(४) उदराग्नि द्वारा सम्पन्न	(४) धातु और भौतिक अग्नियों द्वारा सम्पन्न

इस निष्ठापाक के समय भी रस धातु से मलरूप कफ तथा रक्त से मलरूप पित्त उत्पन्न होता है **(रसस्य तु कफोऽसृजः पित्तम्—(च० चि० १५)**। इसी आधार पर कतिपय आचार्यों ने लिखा है—**'अवस्थापाकात् कफपित्त-**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

योवृद्धिः तथा निष्ठापाकाच्च मलरूपतया उत्पादः-(चक्रपाणि) "अर्थात् अवस्था पाक से कफपित्त की वृद्धि तथा निष्ठापाक से उनकी मलरूप में उत्पत्ति होती है। किन्तु, निष्ठापाक काल में मलरूप पित्तकफ की उत्पत्ति अप्रधान है। अतएव आचार्य चक्रपाणि ने निष्ठाकाल में गुणों की उत्पत्ति बताई है—"**जठराग्नियोगादाहरास्य निष्ठाकाले गुणः—**
१९१, **उत्पद्यते स विपाक**—(च० सू० अ० २६) **गुणोत्पादन** ही विपाक है। **पाक पचनं, द्रव्याणां स्वरूपरसयो परावृत्ति सा च स्वरूपान्तेरण** रसान्तरत्वेन चपरिणतिः, **तस्या विशेषो विपाकः (गं) "पाकातु तेजः संयोगरूपे रसेषुन संभवतीति कट्वादि शब्दैस्तदाधार द्रव्याण्युच्यन्ते**—(शिवदास)। इन सब उद्धरणों से हमारे उक्तमत की पुष्टि होती है कि विपाक या अवस्थापाक मधुरादि रसों की उत्पत्ति नहीं या पाचन में अन्न का मधुरादि रस भाव नहीं, अपितु देहोष्मा द्वारा द्रव्यों का स्वरूपान्तर होना या गुणान्तर होना ही विपाक है जिसका वर्णन मधुरादि रसों द्वारा किया जाता है। अतएव नागार्जुन ने 'परिणामलक्षणोविपाकः' कहा है—(र० वै० सू० अ० १७०)।

उक्त विपाक में अन्न का ही उल्लेख है, औषध द्रव्यों का नहीं। औषध द्रव्यों का भी इसी प्रकार के ये द्रव्य रस प्रधान न होकर वीर्य प्रधान होते हैं। अतः, यह आवश्यक नहीं कि इनका अवस्थाविपाक भी हो, हाँ, निष्ठापाक तो अवश्य होता है। अर्थात् पाचकाग्नि द्वारा उनका रूपान्तर हो जाता है और वे निष्ठापाक द्वारा परिवर्तित होकर (संगठन में) इस योग्य हो जाते है कि वे शरीर में जाकर रस रक्त आदि धातुओं में घुलकर स्वप्रभाव शरीर पर दिखा सकें। मद्य आदि कुछ औषधियाँ और विषों पर औदर्याग्नि का प्रभाव नहीं होता। वे सीधी ही रस रक्त में मिलकर स्वप्रभाव देहधातुओं में मिल जाती हैं। अतएव इन्हें 'व्ययायी' कहा गया है।

विपाक की उपलब्धि या कार्यकाल—'विपाकः कर्मनिष्ठया'—(च० सू० अ० २६); कर्मनिष्ठेति कर्मणोनिष्ठा निष्पत्तिः कर्मनिष्ठाः कर्मसमाप्तिः—(चक्रः)। विपाक का प्रत्यक्ष नहीं होता वह सदा परोक्ष द्वारा ही जाना जाता है। अर्थात् कर्म से इनका अनुमान किया जाता है। जठराग्नि द्वारा पाक होने के पश्चात् **कर्मनिष्ठा से अर्थात् 'औषधकर्मः दोष धातु क्षय वृद्धिलक्षण'** की निष्पत्ति से विपाक की उपलब्धि या ज्ञान होता है। अर्थात् विपाक कार्यकाल रसमल विभाजन के पश्चात् आरम्भ होता है और जिस कार्य या प्रभाव को वह प्रारम्भ करता है—उसी की समाप्ति पर्यन्त विपाक अपना कार्य करता रहता है। उदाहरणार्थ—शतावरी मधुरविपाकी वृष्य समझी जाती है। औदर्य अग्नि द्वारा इसका पाक होकर सार भाग तथा मलभाग पृथक् हो जाता है। मलभाग मलाशय की ओर चला जाता है और सार भाग—जो विपाक द्वारा बना है और जिसके द्वारा शतावरी का शरीर पर प्रभाव होता है-अन्त्रों द्वारा आचूषित होकर रस रक्तादि धातुओं में मिलकर शुक्रोत्पादक अंगों के पास पहुँचकर वीर्य की वृद्धि करती है। इस वीर्य वृद्धि रूप कार्य से यह ज्ञात हुआ कि शतावरी का विपाक, औदर्य अग्नि द्वारा रसमल विवेक काल में मधुर या मधुर रस के गुणों वाला वृष्य होता है।

इस प्रकार द्रव्य का पाचक अग्नि द्वारा विपाक होकर आहार का सारभाग रक्त में मिलने के पश्चात् पुनः धात्वग्नियों तथा पाँचभौतिकाग्नियों द्वारा उक्त इस सार भाग का विवेचन होता है। अनेक प्रकार के रासायनिक परिवर्तन धातुपाक के समय (Metabolic process) में होते रहते हैं। ये परिवर्तन भी द्रव्य के विपाकजन्य कर्म को प्रभावित करते हैं। ये रासायनिक परिवर्तन (chemical changes) कर्मनिष्ठा काल में होते हैं। अतः यदि विपाक को शरीर के अन्दर होने वाले परिवर्तनों का समूह कहें, तो अनुचित नहीं होगा। इसी भाव को निम्न पद्यों में बताया गया है।

स्थूलाण्वंशमलैः सर्वेभिद्यन्ते धातवस्त्रिधा।
स्वः स्थूलांश परं सूक्ष्मस्तन्मलंयातितन्मल ॥
स्वाग्निभिः पच्यमानेषु मलः षट्सु रसादिषु।
न शुक्रे पच्यमान्तेऽपि हेमनीवाक्षये मलः ॥—(सू० सू० अ० १४-१० डल्हण)

विपाक प्रकार निरूपण—कटुतिक्त कषायाणांविपाकः प्रायशः कटुः, अम्लेम्लं पच्यते, स्वादुर्मधुरंलवण स्तथा—(च० सू० अ० २६)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

"आगमस्त्वाह-द्विविध एव पाको मधुर, कटुकश्च, तयोर्मधुराख्यो गुरुः, कटुकाख्योलघुरिति। तत्र पृथिव्यप्तेजो वाटवाकाशानां द्वैविध्यं भवति, तद् गुण सामर्थ्यात गुरुतालघुताच। पृथिव्यापश्चगुर्व्यः शेषाणिलघूनि। तस्माद द्विविध एव विपाक इति। भवन्त्तिचात्रः—

द्रव्येषु पच्यमानेषुयेष्वम्बुपृथिवीगुणाः। निवर्त्तन्तेऽधिकास्तत्रा पाको 'मधुर' उच्यते॥
तेजोऽनिलाकाश गुणः पच्यमानेषुयेषुतु। निवर्तन्तेऽधिकास्तत्र पाकः 'कटुक' उच्यते॥

(सु० सू०-अ० ४०)

पराशरस्तु पठति— पाकास्त्रयो रसानामम्लंपच्यते कटुकः कटुम्। चत्वारोऽन्येमधुरं, संकीर्णरसास्तुसंकीर्णम्॥
कटुतिक्त कषायाणां कटुको येषां विपाक इति पक्षः। तेषांपित्तविघाते तिक्त-कषायो कथं भवतः॥

—(अ० स० सू० २७)

इस विषय में आचार्य शिवदास सेन का मत नीचे दिया गया है जो मननीय है। "इह के चिदाचक्षतेप्रति रसं पाकः अम्लोम्लस्य, मधुरो मधुरस्यय, लवणो लवणस्य, कटुकः कटुकस्य, तिक्तोतिक्तस्य, कषायः कषायस्येति षडेव विपाकाः। किमत्र प्रमाणमितिचेत्—उच्यते यथा क्षीरमति पच्यमानेऽपि मधुरमेव भवति……तथा मधुरादयोऽपि निष्ठापाकेऽपि मधुरादिस्वरूप एव भवितुमर्हन्ति उक्त चं :" उप्ताः षष्टिकमाषाद्याः बाह्यपक्वाश्च षड्रसाः। यान्ति नान्ययात्वमित्येवं पाकः प्रतिरसं भवेत् इति। अन्येतु ब्रुवते रसा द्विविधा बलवन्तो अबलवन्तश्च, बलवत्वंच व्यक्तत्वेन, मात्राबाहुल्येनवा, अबलत्त्वंपुनरेतद्विपर्ययेण, तत्राल्पतयाऽबलवन्तोरसा बलवतां वशमायान्ति, तेननिष्ठापाके बलवता रसेन दुर्बलरसाभिभवान्न रस प्रतिनियमेन मधुरस्य मधुर एव, पाकोम्लस्याम्लएवेत्यादि। प्रतिनियमाभावाच्च न वाच्यनवस्थितः पाक इति। अनियतत्व पक्षेपि षट्कात्वमेव कदाचित् कस्याचित् सम्भवात् इति। उक्तं चः—

वहवोऽभिभवन्त्यल्पान् बहिर्मिश्रीकृताः रसात्॥ तेनानिश्चितमेवैके पाकमाहुर्मनीषिणत्॥ इति

अन्येतु वातादिभ्यो दोषेभ्य एव त्रीन् पाकान् इच्छन्ति-कफात्-वातकफाच्च मधुरः, कफपित्तादम्ल, वातात् पित्तात्-वात पित्ताच्च कटुक इति। तदुक्तं

कफात्, वातकफात् स्वादुरम्लः पित्तकफोद्भवः। दोषैस्त्रयोऽनिलात् पित्तात् वातपित्तात् कटुर्मतः। तदेतन्मतत्रयं प्रमाणं शून्यत्वेनोपेक्षणीयमेव किं च प्रतिरसं रस सदृशः पाकस्तथा बलावत्यराधीनता च पाकस्य रस द्वारा प्रतिपाद्यमान कार्येणैव लभ्यते। तदेतत् पक्षद्वयमपि न निष्ठापाके चिन्तनीयं, रसस्वरूप निरुपणेनैवोक्तार्थत्वात्। दोषाव स्याजन्यश्च पाक उत्पादक हेत्वभावात्-आगम शून्यत्वाच्च प्रेक्षावद्भिरुपेक्षणीय इति।—शिवः—(द्रव्यसंग्रहटीका)

विपाक के विषय सभी मत-भेदों-का वर्णन ऊपर के उद्धरण में आ गया है। उसी की व्याख्या का दिग्दर्शन तथा विवेचन यहाँ किया गया है ये मत निम्नलिखित हैं—

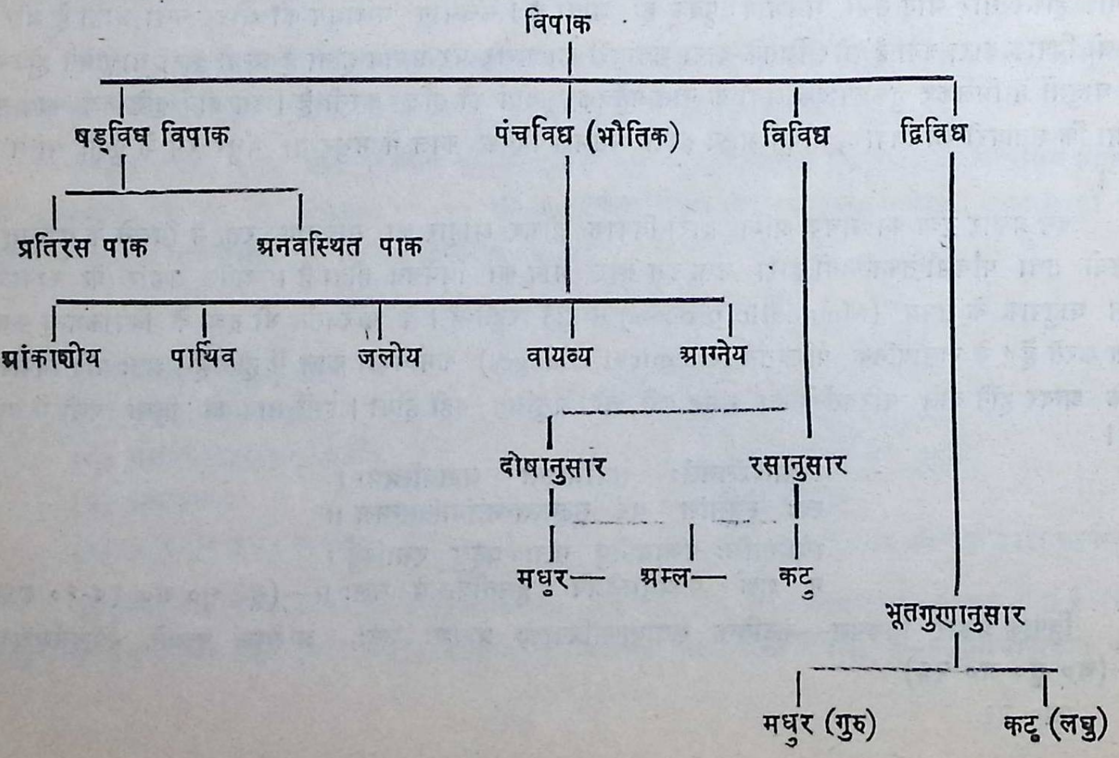

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

षड्विध विपाकवाद

इस सम्प्रदाय के दो भाग हैं—एक सम्प्रदाय तो प्रतिरस विपाक मानता है और दूसरा अनवस्थितपाक ।

प्रतिरस (यथारस) विपाकवाद के पक्ष में निम्न युक्तियाँ दी गई हैं— (१) जिस प्रकार दूध पाक करने पर भी मधुर हो रहता है तथा शालि-यव-मूँग आदि बीजों से शालि, यव और मूँग के अंकुर उत्पन्न होते हैं, किसी दूसरे के नहीं । इसी प्रकार मधुर आदि रस विपाक में भी अपने मधुरादिस्वभाव को नहीं छोड़ते । इस प्रकार मधुर रस वाले पदार्थ का विपाक भी मधुर, अम्लरस का अम्ल ही होता है । इस प्रकार छः रसों के छः विपाक होते हैं । प्रत्येक रस का विपाक नियत है ।

यह मत अधिकांश आचार्यों को स्वीकार नहीं है, क्यों ? इसका उत्तर आचार्य वाग्भट्ट ने इस प्रकार दिया है—

यथारसंजगुः पाकान् षट्केचित्तदसाम्प्रतम् । यत्स्वादुर्व्रीहिम्लत्वं 'न चाम्लमपि दाडिमम् ॥

याति तैलं च कटुतां कटुकापि न पिप्पली । यथारसत्वेपाकानां न स्यादेवं विपर्ययः ॥—(अ०सं०सू०)

अर्थात् यथारस विपाकवाद प्रमाणों से सिद्ध नहीं होता । व्रीहि (चावल) मधुर रसी होते हुए भी विपाक में अम्ल होते हैं । दाडिम (अनार) अम्ल रसी होते हुए भी विपाक में अम्ल नहीं । मधुर रस वाला तैल कटु विपाकी, कटु रस वाली पिप्पली मधुर विपाकी होती है, अतः प्रतिरस विपाकवाद सिद्ध नहीं होता । रस वैशेषिककार नागार्जुन ने निम्न युक्तियों द्वारा इस मत का खण्डन किया है—

नभिन्नलक्षणत्वात् आस्वादग्राह्यो रस, परिणाम लक्षणोविपाक इति । (र० वै० ४ सू० ३२)

विपाक तथा रस दोनों का लक्षण भिन्न-भिन्न है । अतः, दोनों भिन्न हैं । दोनों की उपलब्धि भिन्न प्रकार से होती है । रस प्रत्यक्षगम्य है और आस्वाद से ज्ञेय है । किन्तु विपाक अनुमानज्ञेय है, क्योंकि वह परिणाम काल में प्रकट होता है । किंच यदि रससदृश ही विपाक हो तो उनके पृथक् वर्णन की आवश्यकता ही क्या रह जाती है । अतः यह मत निरस्त हो जाता है ।

अनवस्थित विपाकवाद—इस मत में किसी भी रस का विपाक नियत नहीं माना जाता, क्योंकि काल में प्रबल रस दुर्बल रस को दबा देता है । अतः, विपाक निश्चय प्रबल रस के अनुसार होता है । कौन सा रस कब प्रबल होगा इस बात का निश्चय नहीं हो सकता । अतः रसों के विपाक का भी निश्चय नहीं हो सकता । अतः, विपाक का भी निश्चय नहीं किया जा सकता । इस समुदाय के अनुसार भी विपाक छः ही हैं । क्योंकि रस छः हैं, किन्तु उनका निर्धारण अनिश्चित है ।

यह मत भी आचार्यों को ग्राह्य नहीं है । क्योंकि, शास्त्र अथवा विज्ञान में अनिश्चितता या अनवस्था का कोई स्थान नहीं है । यदि विपाक है तो उसे किसी नियत तथा व्यवस्थित रूप में मानना ही होगा । अन्यथा वह शास्त्र-चर्चा का विषय नहीं हो सकता । अनवस्था तथा शास्त्र दोनों परस्पर विरोधी वस्तु हैं । अतः, यह मत प्रतिरस विपाक की अपेक्षा भी दूषित है । प्रसंगवश यहाँ रस तथा विपाक का तुलनात्मक अध्ययन देना उचित होगा । जिससे दोनों की भिन्नता स्पष्ट हो जाएगी ।

(१) लक्षण भेद—दोनों के लक्षण भिन्न-भिन्न हैं । रसना द्वारा ग्राह्य गुण को 'रस' तथा परिणाम लक्षण गुण को 'विपाक' कहते हैं।

(२) क्षेत्र तथा काल भेद—रस का कार्य क्षेत्र अवस्थापाक है और उसकी प्रतीत सर्वप्रथम होती है । विपाक पाचन के पश्चात् ही कार्यकारी होता है ।

(३) कर्म भेद—रस का कर्म स्थानीय होता है जब कि विपाक का सार्वदैहिक । अतएव रसों के लक्षणों में स्थानीय परिवर्तनों का उल्लेख है । किन्तु विपाक के कर्मों में केवल दोष-धातु और मलों पर होने वाले कर्मों का ही निर्देश पाया जाता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(४) उपलब्धि भेद—रसों की उपलब्धि प्रत्यक्ष द्वारा तथा विपाकों की अनुमान द्वारा होती है। निम्न सारणी में यही बातें अधिक स्पष्टता से अंकित की गई हैं—

भेद कारण	रस	विपाक
(१) लक्षण	आस्वादनरूप	परिणाम रूप
(२) काल भेद	आशुकारी	विलम्बित कर्म
(३) कर्म भेद	स्थानीय प्रभाव	सांस्थानिक प्रभाव
(४) उपलब्धि भेद	प्रत्यक्षगम्य	अनुमान गम्य

पंचविध विपाकवाद

आचार्य सुश्रुत ने एक स्थान पर पाँच भौतिक दृष्टि से आहार का पाँचवा विपाक बताया है। ये विपाक पार्थिव, आप्य, तैजस्, वायव्य और नामस् कहलाते हैं।

"पंचभूतात्मके देहे आहारः पंचभौतिकः। विपक्वः पंचधासम्यक् स्वान् गुणानभिवर्धयेत्।"

वस्तुतः यह पाँचभौतिक आहारतत्वों के सात्म्यीकरण के विचार से उत्पन्न पंचधाविपाकवाद है। गुरु-लघु इन गुणों की दृष्टि से विचार करने पर यह मत 'द्विधा विपाक' का ही विस्तार है। दोनों भौतिक विपाक के ही रूपान्तर मात्र हैं।

त्रिविध-विपाकवाद

अग्निवेश, वाग्भट्ट, पाराशरादि आचार्य तीन प्रकार का ही विपाक मानते हैं। मधुर, अम्ल, लवण। इस विपाक त्रय की विवेचना भिन्न आचार्य विभिन्न प्रकार से करते हैं।

त्रिदोषीय त्रिविध विपाक—वात, पित्त, कफ ये तीनों दोष आहार या औषध द्रव्यों के सेवन से घटते-बढ़ते रहते हैं। जीवन व्यापारों का मूल्य आधार त्रिदोष है अतः, द्रव्यों का सम्बन्ध भी इन्हीं से होता है। ये द्रव्य दोष त्रिदोष व्यापार के कारण ही विश्लेषित होते हैं। अतः दोष-द्रव्य संयोग क्रियाजन्य विपाक भी तीन ही हैं। जैसा कि ऊपर के शिवदास उदाहरण से स्पष्ट है। यथा,

विपाक	दोष
मधुर विपाक	कफ वा वात—कफ से
अम्ल विपाक	पित्त और कफ से
कटु विपाक	पित्त, वात, वा वात—पित्त से

यह त्रिदोषीय विपाकवाद त्याज्य है। क्योंकि, रस आहार के उदराग्नि दोष संयोग के पश्चात् ही विपाक द्वारा दोषों की वृद्धि या क्षति होती है। इस प्रकार विपाक दोषावस्था का कारण है कार्य नहीं।

रसानुसार त्रिविध विपाकवाद

आचार्य अग्निवेशादि रसों के अनुसार निम्न तीन प्रकार के विपाक मानते हैं।

रस	विपाक
मधुर लवण	मधुर विपाक
अम्लरस	अम्लविपाक
कटुतिक्तकषाय	कटु विपाक

इन विपाकों का अपवाद भी है यथा, शुण्ठी-पिप्पली कटु रस होते हुए भी मधुर विपाकी, कषाय रस वाली हरीतकी और अम्ल रस वाला आमला मधुर विपाकी है। अतः आचार्य ने 'प्रायः' शब्द का प्रयोग किया है। यथा

कटुतिक्त कषायाणां विपाकः प्रायशः कटु।
अम्लोऽम्लंपच्यते, स्वादुर्मधुरं लवणस्तथा॥—(च० सू० १६)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आचार्य चरक के समान पराशर मुनि विपाक तो तीन ही मानते हैं, किन्तु तिक्त और कषाय का चरक के अनुसार कटु विपाक न मानकर वह उनको 'मधुर विपाक' मानते हैं। अन्यथा उनमें पित्तहरत्व गुण का अभाव रहेगा। क्योंकि, कटु तो पित्तवर्धक होता है। चरकमतानुसार पित्तहरत्व कार्य तिक्त और कषाय रस का है। विपाक का नहीं, अतः द्रव्यगत तिक्त रस के कारण वे पदार्थ पित्तशामक होते हैं। किंच वीर्य रस तथा विपाक का भी पराभव करता है। अतः, कटु विपाकी होने पर भी तिक्त-कषाय रस में उपलब्ध शीत वीर्य के कारण ये रस पित्तशामक हैं। अतः, कटु तिक्त कषाय तीनों का ही 'कटु विपाक' होता है। रसों के अनुसार होने से इसे 'रस विपाक' भी कहा जाता है।

द्विविध विपाकवाद

आचार्य सुश्रुत तथा नागार्जुन ने दो प्रकार का ही 'विपाक' माना है गुरु (मधुर) और लघु (कटु)। उन्होंने त्रिविध विपाक का खण्डन किया है। उन्होंने भूतों और गुणों के आधार पर विपाक का विचार किया है। विपाक काल में भूतों के जो गुण प्रकट होते हैं उन्हें दो भागों में विभाजित किया जाता है—गुरु और लघु। पृथिवी और जल गुरु तथा अग्नि-वायु-आकाश लघु होते हैं। क्योंकि, समग्रसृष्टि इन भूतगुणों की उत्कर्षता को देखते हुए 'आग्नेय और सौम्य' इन दो वर्गों में विभाजित है। अतः, विपाक दो ही हैं। भूतों और गुणों पर आधारित होने के कारण इस मत को गुण विपाकवाद वा भूतविपाकवाद भी कहते हैं। त्रिविध-विपाकवाद का खण्डन तथा द्विविध विपाक के समर्थन में नागार्जुन ने निम्न युक्तियाँ दी हैं—

कालतो गुणतो रसतश्चानुपपत्तिः त्रित्वस्य (र० वै० २)

(१) **कालभेद से**—विपाक में पाक काल के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि विपाक दो ही प्रकार का है, त्रिविध नहीं। (१) चिरकालिक—इस प्रकार में गुरु-पदार्थों के पचन में देरी लगती है। (२) अचिरकालिक या शीघ्रपाकी के अतिरिक्त और कोई विपाक नहीं है।

(२) **गुणों की दृष्टि**—इससे भी दो ही विपाक सिद्ध होते हैं। गुरु गुण और लघु गुण युक्त पदार्थों का विपाक भी गुरु या लघु ही होता है। क्योंकि सभी गुण अन्ततः गुरु या लघु गुण में समाविष्ट हो जाते हैं।

(३) **रसों की दृष्टि**—रससे भी द्विविध विपाक ही सिद्ध होता है। कटु-तिक्त-कषाय, लघु तथा मधुराम्ल-लवण गुरु रस है। पुनश्च दोषानुसार भी द्विविध विपाक ही सिद्ध होता है। वात और पित्त दोनों का रस कटु है और कफ मधुर। अतएव मधुर विपाक कफवर्धक वातपित्तशामक होता है। कटु विपाक कफघ्न और वातपित्तवर्धक। अम्ल विपाक नामक कोई तीसरा विपाक नहीं है। इस बात को आचार्य सुश्रुत ने त्रिविध विपाक के खण्डन में अच्छी तरह बताया है। वे लिखते हैं :—

तत्राहुरन्ये-प्रतिरसं पाक इति, मधुरा मधुरस्याम्लोऽम्लस्यैवं सर्वेषामिति, दृष्टान्तं चोपदिशन्ति—यथा शालि-यव-मुग्दादयः प्रवीर्णाः स्वभावमुत्तर कालेऽपि न परित्यजन्ति तद्वदिति। केचित् पुनरबलवन्तोबलवतवशमायान्ति, तस्मादनवस्थितेः पाक इति। केचित्त्रिविधमिच्छन्ति मधुरमम्लं कटुकंचेति। केचित् पुनरबलवन्तो बलवतांवश-मायान्ति, तस्मादन-वस्थित सम्यक् भूतगुणादागमाच्चाम्लो विपाको नास्ति, पित्तं हि विदग्धमम्लतामुपैत्याग्नेयत्वात्, यदि एवं लवणोप्यन्यः पाकोऽभविष्यति। श्लेष्माहिविदग्धो लवणतामुपैति।—(सु० सू० अ० ४०)

विपाक को कई आचार्य प्रतिरस विपाक मानते हैं। दूसरे अनवस्थित विपाक मानते हैं। अन्य त्रिविध विपाक मानते हैं—(१) मधुर (२) अम्ल (३) कटु। यह त्रिविध विपाक मत ठीक नहीं है, क्योंकि महाभूतों के गुणों के अनुसार तथा आगमप्रमाण से अम्ल विपाक सिद्ध नहीं होता। आग्नेय गुण वाला पित्त विदग्ध भाव को प्राप्त होकर ही अम्ल होता है। यदि उसको भिन्न पाक माना जाए, तो लवण को भी पृथग् विपाक मानना पड़ेगा। क्योंकि, कफ, भी विदग्ध होकर लवण भाव को प्राप्त होता है, अतः विपाक दो ही हैं—मधुर और कटु।

विपाक सम्बन्धी मतभेद—चरक तथा सुश्रुत के मत में भेद का कारण यह है कि चरक ने दोषों को दृष्टि में रखकर रसों द्वारा दोषों के ह्रास और वृद्धि को ध्यान में रखकर विपाक का वर्णन किया है। उसके मत में पित्त स्वभावतः

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अम्ल और कटु रस वाला है, अतः पित्तवर्धक रसों में अम्लपाक भी होना चाहिए। अतः अम्ल रस का अम्ल विपाक माना गया है। सुश्रुत के मत में प्राकृत पित्त अम्ल विपाक माना गया है। सुश्रुत के मत में प्राकृत पित्त अम्ल होता ही नहीं, अपितु विदग्ध पित्त अम्ल होता है। अतः, अम्ल पित्तवर्धक या क्षपणार्थ अम्ल विपाक की आवश्यकता ही नहीं है। अपितु प्राकृत पित्त कटु रस वाला होने से मधुर और कटु विपाक द्वारा ही उसका कोपण संभव है—(चक्र०)।

उक्त मतभेद दोषों के मूलस्वरूप से प्रारम्भ होता है तथा दृष्टिकोण के भेद का परिणाम ही यह विपाक भेद है। सुश्रुत महाभूतों के गुणों के अनुसार विपाक का विचार करता है और चरक रसदोषानुसार। कई विद्वान् वैद्य इस मत भेद को व्यर्थ समझते हैं तथा दोनों मतों में समन्वय का प्रयत्न करते हैं। हमारे विचार में यह उचित नहीं। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक आचार्य एक दूसरे से सहमत हों। जहां बुद्धिवादी हैं वहां विचार विभिन्नता भी स्वाभाविक है। जो स्वतन्त्र विचारों का परिणाम है। किंच यहाँ पर तो दोष स्वरूप को लेकर ही मतभेद है, अतः हमारे विचार में चरक तथा सुश्रुत का मतभेद है ही। इस तथ्य को स्वीकार कर लेना ही उचित है। चिकित्सा में इससे कोई भेद नहीं आता क्योंकि दोनों ही आचार्य अम्ल रस को पित्तवर्धक मानते हैं।

विपाक के अपवाद—रसों के उक्त विपाक 'प्रायशः' होते हैं अर्थात् इसके अपवाद भी पाए जाते हैं। कुछ उदाहरण यहां दिए जाते हैं।

द्रव्य	रस	विपाक
पिप्पली	कटु रस	मधुर विपाकी
शुण्ठी	कटु रस	मधुर विपाकी
कुलत्थ	कषाय मधुर	अम्ल विपाक
हरीतकी	कषाय	मधुर विपाकी
आमलकी	अम्ल	मधुर विपाकी

एक शंका—यदि कोई शंका करे कि द्विविपाक को परिणाम लक्षण कहा है और वह गुणों पर आधारित है। उसके भेद बताते हुए मधुर तथा कटु इस रसवाचक संज्ञाओं का प्रयोग करना असंगत है। यह शंका ठीक नहीं है। क्योंकि, शब्द तीन प्रकार के होते हैं—(१) नित्य गौण—यथा प्रवीण-कुशल आदि (२) नित्य मुख्य यथा—पठति-पचति आदि। (३) मुख्य और गौण यथा 'सिंह' शब्द शेर में मुख्य तथा 'यह पुरुष सिंह हैं' में गौण हैं। यहाँ मधुर और कटु संज्ञाएँ रस के अर्थ में मुख्य तथा विपाक के अर्थ में गौण हैं। मधुर रस पार्थिव और आप्य है और गुरु गुण भी पार्थिव और आप्य है। अतः, मधुर रस तथा गुण दोनों में सादृश्य होने से यहाँ विपाक में गौण रूप से 'मधुर' संज्ञा का प्रयोग किया गया है। 'कटु' संज्ञा के लिए भी इसी प्रकार समझना चाहिए। यथा, तीन-तीन रस दोषों के बढ़ाने वाले तथा तीन-तीन दोषों के शामक हैं। वैसा नियम विपाक के विषय में नहीं है। जैसे, लघु विपाक जल कफ को बढ़ाता है और लघु विपाकी मधु कफ नाशक है।

विपाक के कर्म—कटु विपाकः शुक्रघ्नो बद्धविड्वातलो लघुः।
स्वादुर्गुरु सृष्टमलो विपाकः कफ शुक्रलः॥
पाकोऽम्लः सृष्टविण्मूत्रपित्तकृच्छ्क्रनुल्लघुः॥ —(द्रव्य गुण संग्रह)

अत्रहेतवः—गुरु पाको वातपितघ्नः—सृष्ट विण्मूत्रतया कफोत्क्लेशम च लघु पाकः श्लेष्मघ्नः बद्ध-विण्मूत्रतया मारुत कोपनेन च। (सु० सू० अ० ४१)

मधुरोलवणाम्लो च स्निग्धभावात् त्रयो रसः। वातमूत्रपुरीषाणां प्रायोमोक्षे सुखामताः॥
कटुतिक्तकषायस्तु रूक्षभावात् त्रयो रसाः। दुःखाय मोक्षेदृश्यन्ते वात-विण्मूत्ररेतसाम्॥
—(च० सू० अ० २६)

कटु विपाक—वात-कफवर्धक, कफ और वीर्यनाशक, तथा मल-मूत्र की विबंध (कब्जी) करने वाला है। कटुतिक्त और कषाय रस रूक्ष होते हैं तथा कफ विरोधी वायु को बढ़ाते हैं। जिनसे शरीर के स्राव-मल, मूत्र, स्वेद आदि-का शोषण होता है। अतः, ये कफनाशक हैं। यह लघु पाकी हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(२) **अम्ल विपाक**—मलमूत्र का स्राव कराने वाला वीर्यनाशक और पित्तवर्धक हैं।

(३) **मधुर विपाक**—मलमूत्र प्रवर्तक, कफ और वीर्यवर्धक गुरु, और वात-पित्तशामक होता है। क्योंकि यह कफोत्पादक है। मधुर-अम्ल-लवण-स्निग्ध होने से वात, मूत्र, पुरीष का प्रवर्तन करते हैं और कफ तथा वीर्य को बढ़ाते हैं। समान गुणों के कारण यह गुरु विपाकी हैं।

अष्टांग संग्रह में 'रसैरसौ तुल्य फल' कहा है। मधुर अम्ल और कटु रस के समान क्रमशः मधुराम्ल कटु विपाकों का कार्य होता है।

विपाक का बलावबलत्व या गुण-तारतम्य

विपाक लवणस्याल्पमध्यभूयिष्ठतां प्रति। द्रव्याणां गुण वैशेष्यात्तत्रतत्रोपलक्षयेत्॥ (च० सू० २६)

द्रव्यों में गुणों (रसों) की प्रधानता के अनुरूप विपाक का प्रभाव (परिणाम) न्यूनाधिक होता है। यथा, मधुर रस वाले मधुर द्रव्यों का मधुर विपाक मल-मूत्र की प्रवृत्ति तथा कफ-वीर्यवर्धक में श्रेष्ठ होता है। लवणरस वाले द्रव्य का मधुर विपाक हीन श्रेणी का और अम्ल रस का अम्ल विपाक मध्य श्रेणी का होता है। इसी प्रकार तिक्त रसीय द्रव्य का कटु विपाक मलमूत्र स्तम्भन में और शुक्रनाशन तथा वायु उत्पादन में हीन श्रेणी का, कटु रसीय पदार्थ का कटु विपाक मध्यम और कषाय रसवान् द्रव्य का कटु विपाक मूत्र, पुरीष, अप्रवर्तन, शुक्रनाशन और वायु बढ़ाने में सर्वोत्तम होता है।

तारतम्य प्रदर्शिका तालिका

विपाक	वर्ग	रस नाम
मधुर	उत्तम	मधुर रस
मधुर	मध्य	अम्ल रस
		लवणरस
	अवर	कषायरस
	उत्तम	कषायरस
कटु रस	मध्य	कटु रस
	अवर	तिक्त रस

विपाक का विपर्यास—द्रव्य प्रमाण-संस्कार-सात्म्याग्नि बलाबल-देश-काल-संयोग-पाक विशेषै-विपाक विपर्यास—(र० वै० सू० ४।५५) निम्न कारणों से द्रव्य के विपाक में परिवर्तन भी हो जाता है—

(१) **द्रव्य प्रमाण**—युक्त द्रव्य की मात्रा के कारण यथा गुरु विपाकी दूध को स्वल्पमात्रा में सेवन करने से वह शीघ्र पच जाता है। लघु पाकी हो जाता है। हलके चावलों की अधिक मात्रा सेवन करने से वे 'गुरु पाकी' हो जाते हैं।

(२) **संस्कार**—गुरु या मधुर विपाकी दूध यदि दीपनीय द्रव्यों से युक्त होगा तो यह लघु पाकी हो जाता है।

(३) **सात्म्य**—प्रकृति के अनुकूल होने से-यथा, जिन्हें दूध अनुकूल आ जाता है, उन्हें वह शीघ्र पच जाता है।

(४) **अग्निबल**—पाचकाग्नि के बल के कारण तीक्ष्णाग्नि वालों को गुरु पदार्थ की न्यूनता से लघु विपाकी भी शीघ्र पच जाते हैं और अग्नि बल की न्यूनता से लघु विपाकी द्रव्य भी देर में पचते हैं।

(५) **देश**—जांगल देश में गुरु विपाकी द्रव्य भी शीघ्र पच जाते हैं और आनूपदेश में लघु बिपाकी देर में पचते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(६) काल—यथा, वर्षाऋतु में लघु द्रव्य भी देर से पचते हैं और हेमन्त में गुरु विपाकियों का भी पाक शीघ्र हो जाता है।

(७) संयोग—सोंठ के साथ मिलाया दूध शीघ्र पच जाता है।

(८) पाक विशेष—यथा, जला या अधपका द्रव्य देर में पचता है और सम्यक्पक्व गुरु द्रव्य-दुग्धादि-भी लघु विपाकी हो जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अष्टम अध्याय

प्रभाव विज्ञान

प्रभाव परिचय—द्रव्यगत चिन्त्य शक्ति का वर्णन रस-वीर्य विपाक प्रकरण में किया गया है। अब द्रव्यगत अचिन्त्य शक्ति या अमीमांस्य शक्ति का वर्णन इस अध्याय में किया जा रहा है। इस शक्ति द्वारा होने वाला कर्म अनुभव में आता है, किन्तु उसका कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता। आयुर्वेद में ही नहीं, आधुनिक चिकित्सा पद्धति में विषमज्वर में कुनीन, काला अजार, निद्रा रोग में ओर्तोजन और उसके योगों का प्रयोग, राजयक्ष्मा में सुवर्ण का योग प्रयोग, इसी अमीमांस्य वर्ग के उदाहरण हैं। आयुर्वेद में इसे 'अचिन्त्य शक्ति' कहते हैं। इसी का नाम प्रभाव है (Specific selective action)।

प्रभाव का लक्षण और उदाहरण

रसवीर्य विपाकानां सामान्यं यत्र लक्ष्यते। विशेषः कर्मणां चैव प्रभावस्तस्य स स्मृतः॥
कटुकः कटुकः पाके वीर्योष्णश्चित्रकोमलः। तद्वद्दन्ती प्रभावात्तु विरेचयतिमानवम्॥
विषं विषघ्न मुक्तं यत् प्रभावस्तत्रकारणम्। मणीनांधीरणीयानां कर्मयद्विविधात्मकम्॥
तत् प्रभाव कृतं तेषां प्रभावो चिन्त्य उच्यते॥—(च० सू० अ० २६)
मधुकस्य च मृद्वीका घृतं क्षीरस्यदीपनम्।—(अ० हृ०)

दो द्रव्यों में रस-वीर्य-विपाक समान रहने पर भी यदि एक द्रव्य का विशिष्ट कर्म दिखाई दे और वह कर्म रसादि के अनुसार न हो तो उसे 'प्रभाव' जन्य कर्म कहा जाता है। इस कर्म का कर्त्ता-द्रव्य का 'प्रभाव' है। यह प्रभाव अचिन्त्य होता है। क्योंकि, 'प्रभाव' शब्द की निरुक्ति ही रस प्रकार की है। **प्रभवति सामर्थ्यं विशिष्टवान भवति द्रव्यमनेन इति प्रभावः।** अर्थात् द्रव्य के संगठन से रसादि से कार्य का कार्य-कारण भाव नहीं बताया जा सकता। इसके उदाहरण निम्न लिखित है—

(१) दन्ती और चित्रक रस में कटु, वीर्य में उष्ण, विपाक में कटु होने पर भी चित्रक के दीपनादि कार्य रसादि के अनुकूल हैं, किन्तु दन्ती का विरेचक कर्म इनसे प्रतिकूल है। अतः, दन्ती का विरेचक कर्म प्रभावजन्य है। विष विषों का नाश करते हैं तथा वामक और विरेचक द्रव्य भी समान गुण वाले होते हुए भी कोई वमन कराता है और कोई विरेचन, अन्य दोनों ही कर्म कराते हैं। इसी प्रकार मणियों के धारणमात्र से जो कर्म होते हैं वे सब प्रभावजन्य हैं।

(२) रसादि में समान होने पर भी मधुर पुष्प (महुआ) रेचक नहीं है और द्राक्षा रेचक है, इसी प्रकार दूध अग्निदीपन नहीं जब कि घृत दीपन है। कटु विपाकी होने से लशुन कफनाशक और गुरु तथा स्निग्ध होने से वात-नाशक हैं, कि इन्हीं गुणों से वात-कफ का वर्धक नहीं है, यद्यपि होना चाहिए। रसादि समान होने पर भी गेहूँ वातशामक, जौ वातवर्धक, हरिद्रा शिरीष का विषनाशकत्व और निद्रा तथा मेषादि का विषोत्तेजन कर्म भी प्रभावजन्य है या द्रव्य स्वभाव के कारण होते हैं। अतएव आचार्य अरुणदत्त ने कहा है। **"रस-वीर्यविपाकातिशायी द्रव्यस्य स्वभावो य, स प्रभावः। उक्तं च—रसवीर्य विपाकादिगुणातिशयवान्नलम्। द्रव्यस्वभावो निर्दिष्टो यः प्रभावःस कीर्तितः।—(अ०हृ०सू०९)** अर्थात् रस-वीर्य-विपाकादि से उत्कृष्ट और बलवान द्रव्य का जो स्वभाव है वह प्रभाव है।

प्रभावजन्य कर्म

जिन पदार्थों का प्रभाव अचिन्त्य शक्ति के कारण होता है। यथा, मणियों के धारण करने का प्रभावादि। इन प्रभावजन्य कर्मों को निम्नांकित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(१) अगदीय कर्म (Anti-Toxicological) शिरीषादि द्रव्यों का विषघ्न प्रभाव
(२) मानस कर्म (Psychological) यथा, वशीकरणादि
(३) रक्षोघ्न (भूतघ्न) कर्म (Bacteriological) यथा, गुग्गुलु-जटामांसी आदि
(४) भौतिक कर्म (physical) यथा, चुम्बक से शल्यायकर्षण
(५) औषधीय कर्म (Pharmacological) यथा, दन्ती का रेचन कर्म—(अ०सं०सू० १७)

प्रभाव सम्बन्धि मतभेद—"प्रत्येक पदार्थ में उसकी संज्ञा-नामकरण में जो प्रवृत्ति काम करती है और जिसे त्व 'तलादि प्रत्ययों से बताया जाता है, वह प्रभाव है यथा, दन्ती में जो 'दन्तीत्व' है उसके कारण वह विरेचन कराती है। यह 'दन्तीत्व'-ही प्रभाव है। इसी प्रकार मृद्वीका (द्राक्षा दाख) में मृद्वीकत्व के कारण वह विरेचन कर्म करती है। जैसा कहा भी है—

"अन्ये प्रभावलक्षणमन्ययाहुः, प्रतिवस्तुस्वसंज्ञा प्रवृत्तिनिमित्त लक्षणों य धर्मस्त्वतलादि प्रत्यय प्रतीति समधिगम्यः स प्रभावः। तन्त्रान्तरे चोक्तं—

वस्तूनां यः स्वसंज्ञायाः प्रवृत्तौ कारणं स्मृतः।
त्वतलादि प्रबोध्यश्च प्रभाव इति स्मृतः॥

एवं च दन्तीत्वात् दन्त्या विरेचनकारित्वं प्रभाव—...इत्यादि सकल पदार्थेषुबोद्धव्यम्—(अरुण)। हिन्दी में 'त्वतलादि प्रत्ययों को 'पन' प्रत्यय से बताया जाता है। यथा, दन्ती में दन्तीपना, द्राक्षा में द्राक्षापनादि। अरुणदत्त ने इस मत का उल्लेख मात्र किया है, खण्डन-मण्डन कुछ नहीं। संभवतः यह मत भी कुछ वैद्यों में मान्य रहा हो। इस मत का सामीप्य नव्यों के (Active princpilcs) एक्टिव प्रिंसिपल्स—क्रियाशीलत्व से किया जा सकता है। इस मत की मान्यता नहीं है। प्रथम मत ही अधिक मान्य है।

प्रभाव की अचिन्त्यता देखकर ही भगवान् सुश्रुत ने कहा है—**अमीमांस्यान्यचिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः॥ आगमोपयोज्यानिभेषजानि बिचक्षणैः। प्रत्यक्ष लक्षण फलाः प्रसिद्धाश्चस्वभावतः। नौषधीर्हेतुभिर्विद्वान् परीक्षेत कदाचन। सहस्रेणापि हेतूनां नाम्बष्ठादि विरेचयेत्। तस्मातिष्ठेत्त मतिमानागमे न तु हेतुषु**—(सु०सू०ग० ४०)

जिन द्रव्यों में विरेचकत्व विषहरत्वादि गुण कर्म स्वभाव से ही सिद्ध हैं और जो अमीमांस्य है। अर्थात् जिनकी युक्ति और तर्क से सिद्धी नहीं हो सकती, ऐसे द्रव्यों के विषय में वैद्यक शास्त्र को ही आधार मानकर चले। जिन औषधियों का फल प्रत्यक्ष देखा गया है और जो स्वभाव से ही शास्त्र में प्रसिद्ध हैं, वहाँ तर्क और युक्ति द्वारा उनको परीक्षा न करें। क्योंकि, हजारों तर्कों और युक्ति से अम्बष्ठा (माजू) विरेचन नहीं कर सकती। अतः बुद्धिमान वैद्य इस प्रकार की औषधियों के विषय में शास्त्रानुसार ही वर्तें।

यहाँ पर बुद्धि के उपयोग का सर्वथा निषेध आजकल के समय में कुछ प्रतिगामी लगेगा, क्योंकि अनेक औषधियों की कार्य प्रणाली का ज्ञान, जो पहले अचिन्त्य है, समझी जाती थी। निरंतर प्रयत्न करने पर हो सकता है ऐसी संभावनाएं हैं। सुश्रुत का उक्त उपदेश तात्कालिक प्रयोगों के सम्बन्ध में ज्ञान होता है। हमारे उक्त भाव को लेकर ही शायद प्राच्यों ने भी द्रव्यों के संगठन के विषय में विचित्र प्रत्ययारब्धवादि की कल्पना की थी। इसी प्रतिगामी बात भाव को लक्ष्य में रखकर आचार्य चक्रपाणि दत्त (१९६१ ई० स०) ने उक्त पद्य की व्याख्या में यह समाधान किया है। **हेतुभिरित आगम विरुद्धं कुहेतुभिः, आगमानुगुणैः सद्धेतुभिर्भेषजानि सर्वाण्येव परीक्ष्याणि, यदुक्तं—चरके "न चैकान्तेन निर्दिष्टेऽप्यत्राभिनिविशेद्बुधः। स्वयमप्यत्रभिषजा तर्क्यं बुद्धिमताभवेत्। (च०सि०अ० २)**

प्रभावजन्य कर्म का हेतु या आधार

इति सामान्यतः कर्म द्रव्यादीनां, पुनश्चतत्। त्रिचित्रप्रत्ययारब्धभेदेन भिद्यते॥
स्वादुगुरुश्च गोधूमो वातजिद् वातकृद्यवः। उष्णाः मत्स्याः पय शीतं, कटु सिंहो न शूकरः॥
(अ० हृ० सू० अ० ९)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यहाँ शंका यह होती है कि रसादि को अभिभूत करके प्रभाव अपना कार्य क्यों करता है। इसका उत्तर द्रव्यों की रचना में सन्निहित है। शास्त्रकारों ने द्रव्यों की आन्तरिक या सूक्ष्म रचना के अनुसार उन्हें दो प्रकार का माना है।

(१) समानप्रत्ययारब्ध या प्रकृतिसमवेत । (२) विचित्र प्रत्ययारब्ध या विकृतिविषमसमवेत । प्रथम प्रकार के द्रव्यों की रचना में जो महाभूत भाग लेते हैं वही उनके आश्रयीभूत रस गुण, वीर्य, विपाकादि के भी आरम्भक होते हैं। अतः रसादि तथा द्रव्यों दोनों के आरम्भक तत्व एक होने से (समान-प्रत्यय-परमाणु-से आरब्ध) उनके कर्म रसादि के समान होते हैं और उनका वर्णन रसोपदेश मात्र से किया जा सकता है। इस प्रकार के कई द्रव्यों को मिलाकर यदि कोई संयोग भी बनाया जाए तो वह शीतोष्णवीर्य लक्षण होने पर भी दोषकारक नहीं होता यथा, रसाला पानकादि। विचित्र प्रत्ययारब्ध द्रव्यों द्वारा बनाए गए संयोग में यदि शीतोष्ण लक्षण विरोध होगा, तो वह दोषकोपक हो सकता है। **यदोक्तं—"अपि च समान प्रत्ययारब्धैर्ये संयोगाः कल्प्यन्ते, तेषां संयोगिनां वीर्यतो योऽविरोधः शीतोष्ण लक्षणः स न दोषाय (चे०) विचित्र प्रत्ययारब्धैः संयोगा कल्प्यन्ते तेषां संयोगिनां यः शीतोष्ण लक्षणो विरोधः, स दोषायेति वेद्यम्"।**—(अरुण)

विचित्र प्रत्ययारब्ध द्रव्यों में द्रव्यारम्भकभूत तत्व अन्य होते हैं तथा द्रव्याश्रित रसादि आरम्भक तत्व दूसरे। दोनों परस्पर भिन्न होते हैं। अतः उनके कर्म रसादि के अनुरूप न होकर भिन्न प्रकार के होते हैं। जिनका ज्ञान बिना विशेष वर्णन के नहीं हो सकता। अतएव आचार्य ने कहा है तदेवं द्रव्याणां द्वै विधयं यतः कानिचिद्द्रव्याणि यैरेव महाभूतैर्यथा विधैरसादय आरब्धास्तैरेव तथा विधैर्महाभूतैस्तदाश्रयाणि द्रव्याण्यप्यारब्धानि। **तानि रसादि समान प्रत्ययारब्धान्युच्यन्ते,** तानि च यथायथंतत्कर्म रसाद्यनुगुणं सामान्यतः कुर्वते, यथा क्षीरेतु-शर्करादीनि। कानिचित्पुनस्तदाश्रित रसादि समारम्भक महाभूतान्यान्यानि, तदाश्रयद्रव्यारम्भकाण्यन्यानिच महाभूतानि, तैरारब्धनि तानि **विचित्रप्रत्ययारब्धानि द्रव्याणि**...तानि च यथायथं रसाद्यनुगुणं कर्म न कुर्वन्ति भिन्नत्वाद् हेतुभावस्य। यथायवमकुष्ठ मत्स्य सिंहादीनि।...यानि तु विचित्र प्रत्ययारब्धनि द्रव्याणि तेषां प्रतिद्रव्य कर्मोपदेशं बिना यथायथं कर्म वक्तुं न शक्यते।—(अरुण)

द्रव्यों के संगठन की भिन्नता से उनमें भेद पड़ सकता है। यह सिद्धान्त नव्यों को भी स्वीकार्य है। जैसा कि निम्न उद्धरण से सुस्पष्ट है—

"The physiological action of a drug very often depends upon its chemical constitution, as will be evident from the following:—

(A) The Molecular arrangement in a compound sometimes determines the action of a drug. Thus Isomerides have the same chemical composition and the same percentage of weight, but differ in properties, on account of different molecular arrangements. Resorcin and Pyrocatechin are Isomers $C_6 H_4 (OH)_2$. The former is sweet and latter is bitter.

(B) It is possible to modify the physiological action of a drug by artificially modifying its chemical composition."—(Materia Medica, Ghosh, 18th Edition)

सारांश यह है कि शरीर क्रिया सम्बन्धि द्रव्य का प्रभाव उसके संगठन पर निर्भर है। उसमें परिवर्तन हो जाने या कृत्रिम रूप से कर देने से उसका प्रभाव बदल जाता है। कभी-कभी रासायनिक संगठन समान रहने पर भी घटक अणुओं के क्रम में परिवर्तन हो जाने से द्रव्य का गुण बदल जाता है, चाहे उन अणुओं का भार तथा रासायनिक संगठन एक ही क्यों न हो। यथा, रिजोर्सिन और पायरोकेटेचिन नामक औषधियों का रासायनिक संगठन और परमाणुभार एक होने पर भी उनके क्रम भेद के कारण पहली औषधि मधुर और दूसरी कड़वी हो गई है। इस प्रकार के प्रभाव के कारण यदि प्राच्यों ने 'विचित्रप्रत्ययारब्धत्व' या विकृतिविषम समवेतत्व को बताया तो कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु, क्योंकि हम उनके संगठन का जान नहीं सकते, अतः उनके प्रत्यक्ष कार्यफल को देखकर तथा आगम को मान कर उनका व्यवहार करते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कुछ विचित्रप्रत्ययारब्ध द्रव्यों के गुण कर्म

द्रव्य द्वन्द्व	प्रकार	गुण	कर्म
गोधूम	समान प्रत्ययारब्ध	मधुर गुरु	वातहरम्
यव	विचित्र प्रत्ययारब्ध	मधुर गुरु	वातकरम्
गोदुग्ध	समान प्रत्ययारब्ध	मधुर गुरु	शीतवीर्य
मत्स्य	विचित्र प्रत्ययारब्ध	मधुर गुरु	उष्णवीर्य
शूकर	समान प्रत्ययारब्ध	मधुर गुरु	मधुर विपाक
सिंह	विचित्र प्रत्ययारब्ध	मधुर गुरु	कटु विपाक
घृत	समान प्रत्ययारब्ध	शीतवीर्य	दीपन
वसा	विचित्र प्रत्ययारब्ध	उष्णवीर्य	अग्निसादन
मुग्द	समान प्रत्ययारब्ध	कटुविपाक	पित्तशामक
माषाः	विचित्र प्रत्ययारब्ध	मधुरविपाक	पित्तवर्धक
दधि	समान प्रत्ययारब्ध	गुरु	दीपन
पारावत	विचित्र प्रत्ययारब्ध	गुरु	अदीपन
कपित्थ	समान प्रत्ययारब्ध	अम्लरस	ग्राही
दाडिम	प्रत्ययारब्ध	अम्लरस	ग्राही
आमलकी	समान विचित्र प्रत्ययारब्ध	अम्लरस	सर
धातकीपुष्प	समान प्रत्ययारब्ध	कषायरस	शीतवीर्य-ग्राही
हरीतकी	विचित्र प्रत्ययारब्ध	कषायरस	उष्णवीर्य-रेचन

(अ० हृ० सू०)

———

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नवम अध्याय

परिभाषा विज्ञान

विज्ञान की प्रत्येक शाखा में कुछ संज्ञा-विशेष रहती है। कुछ संकेत रहते हैं तथा कुछ साधारण नियम रहते हैं। जिनका ज्ञान विषय को समझने के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है। इन सबका सम्मिलित नाम 'परिभाषाएँ हैं।' इस अध्याय में इन्हीं का वर्णन किया है—

परिभाषा का लक्षण—अव्यक्ताऽनुक्त लेशोक्त संदिग्धार्थप्रकाशिकाः।
परिभाषा प्रकथ्यन्ते दीपिभूता सुनिश्चिताः॥

अर्थात् शास्त्रों में स्पष्ट रूप से न कहे गए, बिल्कुल न कहे गए, लेश (संकेत) रूप से बताए गए, तथा सन्दिग्ध विषयों पर प्रकाश डालने वाली, सुनिश्चित संज्ञाएं 'परिभाषाएँ' कही जाती हैं। ये अनेक प्रकार की हैं। अतः सबसे पूर्व द्रव्य गुण शास्त्र-भैषज्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः, सबसे पूर्व तत्सम्बन्धित वर्णन किया जाता है।

भैषज्य संग्रहण-संरक्षण—आयुर्वेद में समग्र स्थूल जगत् पांचभौतिक है। अतः पृथिवी पर भी भूतों की भिन्नता से भिन्न-भिन्न प्रकार की भूमि मिलती है। अतः औषधि के गुण भी भूमि की विशेषता के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। अतः परीक्षा करके उत्तम भूमिस्थौषधि लेनी चाहिए।

(अ) भूमिपरीक्षा-संग्रहयोग्यभेषज—श्वभ्र, शर्करा, विषम-वल्मीक, श्मशानाघातन देवतायतन सिकताभिनुप-हरम् नूषारामभंगुरामदूरोदकां स्निग्धां प्ररोहवतीं मृद्वींस्थिरांसमां कृष्णां गौरीं लोहितां वाभूमिमौषधग्रहणाय परीक्षेत। नस्या जातमपि कृमिविष शस्त्रातप, पवन दहन तोयसंबन्धणार्गैनुपहतमेकरसं पुष्ट पृथ्ववगाढ मूलमुदीच्याचौषधमाददीत—(सु० सू०)।

तत्र देशे साधारणे जांगले वा यथा कालं शिशिरात्प पवनसलिल सेविते समेशुचौ प्रदक्षिणोदके…कुशरोहिषास्तीर्णे स्निग्धकृष्ण मधुर मृत्तिके सुवर्णवर्ण मधुर-मृत्तिके वा मृदावफालकृष्टेऽनुपहतेऽन्यैर्बलवत्तरैर्द्रुमैरौषधानिजातानि प्रशस्यन्ते। तत्र यानि काल जातानिआगत संपूर्ण रस प्रमाणगन्धानि…अनुपहतागन्ध वर्ण रस-स्पर्श प्रभावाणि प्रत्यग्राणि। तानि मंगलाचारः कल्याणवृत्तः शुक्लवासाः संपूज्य देवताअश्विनौ-गौ ब्राह्मणाश्च प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा गृह्णीयात्—(च० क० अ०१)

प्रशस्त भूमि—जो भूमि बड़े गढ़े वाली, ककंडों वाली, विषम (ऊँची-नीची) साँप आदि की बाँबी वाली न हो तथा जहाँ श्मशान, वधस्थान, देवालय न हो, बालू या पथरीली ऊसर-क्षार वाली, फटी हुई-दरारों वाली न हो तथा जहाँ जल भी समीप हो (गहरा न हो)। स्निग्ध, घोस वाली, नरम, स्थिर (जहाँ की मिट्टी क्षरण न होती हो) समतल काले वर्ण की, लाल या पीले वर्ण की मिट्टी हो, रस मोठा, कुश और रोहिष घास की बहुलता हो (अर्थात् उर्वरा भूमि हो) जहाँ ऋतुओं के अनुसार वर्षा-धूप-छाया-वायु मिलती हो। हल से न जोती गई जमीन वाले साधारण देश या जांगल देश में उत्पन्न, जहाँ आस-पास बड़े-बड़े वृक्ष न हों, ऐसीं भूमि में उत्पन्न वनस्पति का ग्रहण करना चाहिए। हल चालित कृषि भूमि में अन्न के उत्पादन से वहाँ की भूमि शक्तिहीन हो जाती है तथा जहाँ बड़े-बड़े वृक्ष हों उनकी छाया से छोटो-छोटी आषधियों को पूर्ण रूप से जल-वायु-प्रकाश तथा खाद्य एवं पोषक पदार्थ नहीं मिलते, अतः वहां उत्पन्न औषधि न्यून वीर्य वाली होती है। अतः उनके लेने का निषेध किया गया है।

औषध परीक्षा—जो औषधि ऋतु के अनुसार उत्पन्न हो, जिसमें रस-वीर्य पूर्ण प्रमाण में (मान) गन्ध आ गए हों, जिसमें गन्ध रस-वीर्य वर्ण-स्पर्श प्रभाव पूर्णरूप में आ गए हों तथा जो कृमि, विष, शास्त्र (विषयुक्त शास्त्र से) काल, धूप, अग्नि-वायु-जल तथा मनुष्यों के आने-जाने से (मार्गगत) सताई न गई हो और ताजो (प्रत्यग्र) हो ऐसी वनस्पति का ग्रहण करना चाहिए।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ग्रहण-विधि—औषध लेने के समय मनुष्य श्वेत वस्त्र धारण कर, शुद्धमन से, कल्याण की भावना वाला श्रद्धापूर्वक इष्टदेव-धन्वन्तरि-अश्विनी देव-गाय-ब्राह्मणों का मानसिक पूजन कर पूर्व या उत्तर की ओर मुँह करके पुष्ट और पृथिवी में जिसकी मूल गहरी गई हुई है, ऐसी वनस्पति को ग्रहण करे।

भूमिविशेष का औषधि के गुणों पर प्रभाव—"तत्र पृथिव्यम्बु गुणभूयिष्ठायां भूमौजातानि विरेचन द्रव्याण्याददीत, अग्न्याकाशगुणभूमिष्ठायां वमन द्रव्याणि, उभयगुण भूमिष्ठायामुभयतो भागानि आकाश गुणभूमिष्ठायां संशमनानि, एवं बलवत्तराणि भवति।"—(सु०सू०)

पृथिवी और जल प्रधान भूमि में विरेचन द्रव्य, आकाश और अग्निगुण बहुल में वामक द्रव्य, उक्त दोनों प्रकार की संयुक्त भूमि में उभयमार्ग संशोधक (वामक और विरेचक) आकाश प्रधान भूमि में उत्पन्न द्रव्य, बलवान होते हैं। अतः, उन्हें इसी प्रकार की भूमि से लेना चाहिए।

पंचभूतानुसार भूमि परीक्षा—(१) पार्थिव—भूमि पथरीली, कठोर, सांवले या काले वर्ण की, मोटे वृक्षों और घास वाली होती है।

जलीय भूमि—शीतल, समीप जल वाली (जहाँ पृथिवी में थोड़ी गहराई पर जल मिल जाता है) अन्न तथा घास वाली, और कोमल वृक्षों वाली होती है।

आग्नेय भूमि—अनेक वर्ण वाली, हल्की पथरीली विरल तथा दूर-दूर छोटे-छोटे पीले वर्ण वृक्षों और अँकुरों वाली होती है।

वायव्य भूमि—रूक्ष, राख या गधे के से वर्ण वाली विरल, कोटर युक्त तथा स्वल्प रस युक्त वनस्पतियों वाली होती है।

आकाशीय भूमि—नरम, ऊँची-नीची, गढ़ों वाली, अव्यक्त (फीके) रस युक्त जल वाली, सर्वत्र सारहीन वृक्ष वाली (मृदु तनों वाली) बड़े पहाड़ों वाली तथा श्यामवर्ण की होती है—(सु० सू० भूमि विभागीय)।

औषध ग्रहणकाल

"तेषां शाखापलाशमचिर प्ररूढ़ंवर्षावसन्तयोर्ग्राह्यं, ग्रीष्मे मूलानि शिशिरेच शीर्णप्ररूढ़पर्णानां, शरदित्वक्कन्द क्षीराणि, हेमन्ते साराणि यथर्त्तु, पुष्पं फलमिति ॥—(च० क०)। ग्रीष्मे मूलानि शिशिरे वेतिकथनेन यान्याग्नेयानि तेषां मूलानि ग्रीष्मे, यानि सौम्यानि तेषां शिशिरे ग्राह्याणीति व्यवस्थां सूचयति' इति—(चक्र०)।

अत्र कैचिदाहुराचार्या—प्रावृट्वर्षा शरद्धेमन्त वसन्त ग्रीष्मेषु यथासंख्यं मूल-पत्र-त्वक्-सार-फलान्याददीत, तत्तु न सम्यक्, कस्मात् सौम्याग्नेयत्वाज्जगतः। सौम्यान्यौषधीनि सौम्येष्वृतुष्वाददीत, अग्नेयेषु आग्नेयान्यौषधानि एवम् व्यापन्न गुणानि भवन्तिसौम्यानिऔषधानि सौम्येष्वृतुषु गृहीतानि सोमगुणभूयिष्ठायां भूमौजातानि मधुर स्निग्ध शीतानि भवन्ति। तेन शेषं व्याख्यातम् (सु० सू० भू० प्र० अध्याय)।

आचार्य चरक ने द्रव्यों के संग्रह का विचार विभिन्न प्रयोज्य अंगों की दृष्टि से किया है और सुश्रुत ने वीर्यानुसार द्रव्य संग्रह की दृष्टि से। कुछ आचार्यों ने कर्मों के अनुसार भी द्रव्यों के संग्रह पर विचार किया है। इन सब प्रकार का विचार निम्नलिखित ('क' 'ख' और 'ग') में किया गया है—

(क) प्रयोज्य अंगों के अनुसार संग्रह-काल

ऋतु	अंग		विशेष
	चरक	राजनिघण्टुकार	एकीयमत
वर्षा	शाखा, पत्र	—	पत्र
वसन्त	शाखा, पत्र	पुष्प	सार (काष्ठ)
ग्रीष्म	मूल	पत्र	फल
शिशिर	मूल	मूल	—

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

शरद्	क्षीर, त्वक्, कन्द	पंचांग	त्वक्
हेमन्त	सार भाग	कन्द	क्षीर
प्रावृट्	—	—	मूल
यथर्तु	पुष्प, फल	—	—

कन्दं हिमर्तौ शिशिरे च मूलं पुष्पं वसन्ते फलदंवदन्ति । प्रवालपत्राणि निदाघकालेस्युः पंचजानि शारत्प्रयोगे । (र० नि०)

(ख) कर्मानुसार द्रव्य संग्रह

विरेचन द्रव्य—पृथिवीजलभूयिष्ठ भूमि में उत्पन्न श्रेष्ठ होते हैं ।
वमन द्रव्य—आकाश अग्निभूयिष्ठा " " "
उभयतोभागहर—उक्त दोनों प्रकार की " " "
संशमन द्रव्य—आकाश भूयिष्ठ " " "
सौम्य गुणयुक्त द्रव्य—हिमालय पर्वत में उत्पन्न " "
आग्नेय द्रव्य—विन्ध्यादि पर्वतों " " "

संग्रहणीय द्रव्य की विशेषता

"तत्र यानि काल जातान्यागत सम्पूर्णरस प्रमाणगन्धानि कालातअग्निसलिल पवन जन्तुभिरनुपहतगन्धवर्ण रस स्पर्श प्रभावाणि प्रत्यक्षाणि उदीच्यां दिशिस्थितानि—(च० वि०) ।

जो औषध यथर्तु में उत्पन्न हो, जिसमें सम्पूर्ण रस, गन्ध, वर्ण, प्रमाण (पूर्णायु) आ गए हों,तथा जो काल (विपरीत ऋतु आदि) आतप, आग, वायु, कृमि विष, शस्त्र, जलादि से दुष्ट न हुई हो, जिसकी जड़मूल मोटी और जमीन में गहराई तक गई हो (अवगाढ- महामूलम्—अ० हृ० क० ६) और जिसके गन्ध, वर्ण, रस, स्पर्शादि प्रत्यक्ष हो और उत्तर दिशा में अवस्थित हो उस प्रत्यग्र (ताजी) औषधि का ग्रहण करना चाहिए।

उत्तर दिशा में उत्पन्न औषधि को विशेषता क्यों दी गई है? इसका कारण संभवतः यह है कि हिमालय भारत की उत्तरी दिशा में अवस्थित है। जिसे औषधभूमियों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। वहाँ उत्पन्न औषधियाँ अन्यत्र सम्भूत औषधियों की अपेक्षा उत्तम मानी जाती हैं। अथवा उत्तर दिशा का दिक्पाल चन्द्रमा है। सोमरूप चन्द्रमा औषधियों का अधिपति है। अतः उसके क्षेत्र में उत्पन्न और उससे प्रभावित औषधियाँ अधिक वीर्यवती होती हैं।

(ग) वीर्यानुसार संग्रह काल

आचार्य सुश्रुत ने इस मत का खंडन किया है। उसके अनुसार औषधियों के एक-एक अंग का पृथग्-पृथग् ऋतु में संग्रह नहीं करना चाहिए। क्योंकि, संसार सौम्य और आग्नेय दो विभागों में विभक्त है। अतः सौम्य औषधियो को सौम्य ऋतु में लेना चाहिए। क्योंकि, सौम्य गुण की प्रबलता के कारण सौम्य ऋतुओं में भूमि भी सोमगुण प्रधान होती है। जिससे औषधियों में सोम प्रधान रस, मधुरादि स्निग्धादि गुण बढ़ जाते हैं। इसी प्रकार आग्नेय औषधियों के विषय में भी समझें। वस्तुतः विभिन्न ऋतुओं में वनस्पतियों में वीर्य आदि की मात्रा भी भिन्न-भिन्न पाई जाती है। प्रत्यक औषधि की विभिन्न अवयवों की परीक्षा करके जिस ऋतु में चिकित्सोपयोगी औषध के अंग अधिक शक्तिशाली हों उस समय उसे ग्रहण करना चाहिए। अतएव आचार्यों ने, आपूर्ण वीर्य प्रमाण और रसवान् औषधियों के ग्रहण का उपदेश दिया है। अतः, दोनों ही मत उचित है। व्यवहार में कोई भेद नहीं आता। औषधियों के कन्दमूलादि चरकानुसार विविध ऋतुओं में उनके सारवान् होने पर ग्रहण किया जा सकता है। सुश्रुत के कथन का तात्पर्य भी यही है कि सारवान औषधियों को ग्रहण करना चाहिए। शारंगधर ने जो वामक तथा विरेचक द्रव्यो का ग्रहण वसन्त में तथा अन्यों का शरद् में ग्रहण करना लिखा है वह अनार्ष है।

औषधियों की गुणवत्ता—सर्वाण्येव चाभिनवानि। तेषामसंपत्तावनतिक्रान्त संवत्सराणि. अन्यत्र मधु-घृत-गुड-पिप्पली-विडंगेभ्यः। विगन्धेनापरामृष्टमविपन्नं रसादिभिः। नवं द्रव्यं पुराणं वा ग्राह्ममेवविनिर्दिशेत्।—(सु० सू०)

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुणहीनं भवेद्वर्षादूर्ध्वंतमौषधम् । मासद्वयात्तथा चूर्ण हीन वीर्यत्वमाद्रप्नुयात् ।
हीनत्वं गुटिका लेहौलभेतेवत्सरात् परम् । हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकत्तिथा ।
पुराणा स्युर्गु र्यु णैक्ता आसवा धातवोरसा ।।—(श० प्र० स० अ०)

निम्नलिखित अपवादों को छोड़कर शेष सारे द्रव्य नवीन ही लेने चाहिए। एक वर्ष पुराने द्रव्यों का उपयोग नहीं करना चाहिए। जिस द्रव्य का गन्ध रस, रूप आदि स्वाभाविक रूप में हो 'उन्हें' ही उखाड़ने के एक वर्ष के बाद तथा दो वर्ष के अन्दर ही प्रयोग में लाना चाहिए। पुराण द्रव्य, विडंग, मधु, गुड ,घृत, पिप्पली, धान्यों को एक वर्ष पश्चात् तथा द्वितीय वर्ष के अन्दर ही प्रयुक्त करना चाहिए।

गुणकाल—पात्र में भली प्रकार रखी हुई तथा उसके अपने स्वाभाविक रूप में होने पर भी वानस्पतिक औषधि एक वर्ष में गुणहीन हो जाती है। चुर्ण-दो महीनों में, घृत, तैल चार मास में और गुटिका वटी-अवलेह आदि एक वर्ष के बाद हीन वीर्य हो जाते हैं। यह नियम काष्ठिक औषधियों के विषय में है। धातु या पार्थिव औषधियों के विषय में नहीं।

आसव, धातुओं की भस्म तथा रस जितने पुराने हों उतने ही अच्छे हैं। इन योगों में तथा विडंगादि में तीक्ष्णता प्रभूतमात्रा में होती है। एक वर्ष में वह कुछ न्यून हो जाती है और इनमें से अभिष्यन्दिपना निकल जाता है। अतः, एक वर्ष बाद उनका प्रयोग उत्तम है।

त्याज्य और ग्राह्य द्रव्यों का परिचय—**फलेषु परिपक्वं यद्गुणवत्तदुदाहृतम्। बिल्वादन्यत्र विज्ञेयमामं तद्धि गुणोत्तरम्॥ व्याधितं कृमिजुष्टं च पाकातीतमकालजम्। वर्जनीयं फलं सर्वमपर्यागतमेव च। कर्कशं परिजीर्णं च कृमिजुष्टमदेशजम्॥ वर्जयेत्पत्र शाकं तद् यदकाविरोहि च। बालंह्यनार्तवंजीर्णं व्याधितंकृमिभक्षितम्॥ कन्दं विवर्जयेत् सर्वं योवासम्यङ्नरोहति। फलं पर्यागतं शाकंमशुष्कं तरुणंनवम्॥ (सु० सू० अ० ४६)**

ग्राह्य फल—जो परिपक्व हो, उसे ग्रहण करना चाहिए। किन्तु विल्व फल को कच्चा ही औषधि के लिए लेना चाहिए। वह कच्चा ही गुणवान होता है।

त्याज्य फल—रोगवाला, कीड़ों से खाया हुआ, उचित भूमि तथा ऋतु में उत्पन्न न हुआ हो, ज्यादा पका हो, सूखा हो या जिसमें रस पूर्णतया न आया हो कर्कश हो, वह त्याज्य है।

पत्र-शाक—कड़ा या कर्कश (मुलायम न हो) अधिक पका हो, कृमिभक्षित न हुआ हो, सूखा और जो दुष्ट भूमि में उत्पन्न एवं ऋतु के अनुकूल उत्पन्न न हुआ हो, सूखा और जिसमें रस न उत्पन्न हुआ हो, वह त्याज्य है। अन्य ग्राह्य है। मूली का सूखा शाक सेवन किया जा सकता है।

कन्द—बाल (कच्चा या छोटा) जिसमें पूर्ण पदार्थ संचित नहीं होते, अनार्तव, जीर्ण, रोगयुक्त, कृमिभक्षित कन्द त्याज्य है अन्य ग्राह्य।

अन्नधान्य-हिम (पीला-शीत) वायु, गर्मी, सर्पादि विषैले प्राणियों से दूषित, कीटभक्षित, जल में बहुत समय तक पड़ा हुआ दुष्ट भूमि में उत्पन्न अन्नों का सेवन न करे, तद्विपरीत का सेवन करें--(वाग्भट्ट)

संक्षेप में ग्राह्य फलों में रसपरिपूर्णता, परिपक्वता, शाकों में कोमलता (सूखापन न हो) ताजगी-नवीनता, रसपरिपूर्णता होनी चाहिए। तभी वे गुणकारक सिद्ध होते हैं।

औषधों में अशुद्धियाँ
(Impurities)

औषध द्रव्यों में अशुद्धियाँ कई प्रकार की हो सकती हैं तथा अनेक प्रकार से उनमें आ जाती हैं। ये साधारण अशुद्धियाँ निम्न प्रकार की हैं।

(अ) भौतिक अशुद्धियाँ
(Physical Impurities)

(संग्रह सम्बन्धि अशुद्धियाँ) ये संग्रहकर्ताओं में ज्ञान की कमी के कारण होती हैं। वे संग्रहणीय औषध के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूप को पूर्णतया नहीं जानते, अतः समान रूप वाली अन्य हीन वर्ग की औषधि का संग्रह भी कर लेते हैं। जिससे उत्तम और यथार्थ वनस्पति के स्थान पर हीन जाति की वनस्पति का संग्रह हो जाता है।

(२) संरक्षण सम्बन्धी अशुद्धियाँ—औषधियों पर ताप—सूर्यप्रकाश—जलवायु तथा काल का प्रभाव पड़ता रहता है। औषधियों के संरक्षण की उचित व्यवस्था न होने पर इनके प्रभाव से वे हीन गुण हो जाती हैं। झिल्ली आदि उनमें लग जाती हैं।

(३) निर्माण सम्बन्धी अशुद्धियाँ—ये दो भागों में विभक्त की जा सकती हैं—(१) वनस्पतियों में उपस्थित अशुद्धियाँ एवं (२) औषध बनाने के समय की अशुद्धियाँ। ये अशुद्धियाँ निर्माताओं की सावधानी से दूर की जा सकती हैं।

(४) मिश्रण (मिलावट) सम्बन्धी अशुद्धियाँ—(Adulteration) अनेक मूल्यवान् औषधियों में अन्य सस्ते पदार्थों का मिश्रण किया जा सकता है। यह जान-बूझकर किया गया अपराध है।

(आ) रासायनिक अशुद्धियाँ
(Chemical Impurities)

इस प्रकार की अशुद्धियाँ प्रायः पार्थिव द्रव्यों (खनिजों) में पाई जाती हैं। खान से निकलने के कारण उनमें भूमिगत अनेक धातुओं एवं तत्वों का समावेश रहता है। अतः, उनके संपर्क से ये अशुद्धियाँ खनिजों में आ जाती हैं।

(इ) सहज अशुद्धियाँ
(Congenital Impurities)

ये द्रव्य की जन्मजात अशुद्धियाँ हैं। ये इनके कारण शरीर के लिए हानिकर सिद्ध होते हैं। यथा, वत्सनाभ धत्तूरा, ताम्र, तुत्थादि द्रव्य।

(ई) शोधन
(Purification)

द्रव्यगत अशुद्धियों के निवारणार्थ उन द्रव्यों का 'शोधन' किया जाता है। 'शोधन' प्रक्रिया से जहाँ द्रव्यों की भौतिक अशुद्धियाँ दूर होती हैं, वहाँ सहज दोषों की तीक्ष्णता भी मन्द हो जाती है। रासायनिक अशुद्धियाँ दूर हो जाती हैं, तथा द्रव्य के गुणों में अधिक प्रभावशीलता आ जाती है। शोधन की सामान्य विधियाँ नीचे दी जाती हैं। प्रतिद्रव्य की विशेष शुद्धि द्रव्य के साथ दी गई हैं।

शोधन की सामान्य विधियाँ
(Methods of Purification)

(१) प्रक्षालन—जल में धोकर द्रव्य की मिट्टी, बालुकादि को दूर किया जाता है।

(२) चालन (Sifting)—चलनी द्वारा मिट्टी आदि के कण तथा मिलावट द्रव्यों को पृथक् किया जाता है।

(३) विलायन (Elutriation)—जल में द्रव्य को घोलकर सूक्ष्म जलविलेय द्रव्य को जल से पृथग् कर लेते हैं। अघुलनीय अंश नीचे बैठ जाते हैं।

(४) क्षरण (Lixiviation)—जलविलेय द्रव्य को निथार कर अविलेय द्रव्य से पृथग् कर लिया जाता है। और उसे पुनः अग्नि पर सुखा लेते हैं। शिलाजतु का शोधन इसी प्रकार किया जाता है।

(५) परिस्रवण (Percolation)—इसमें विलेय द्रव्यों को निस्यन्दन (Filtration) द्वारा अविलेय द्रव्यों को पृथग् कर लेते हैं।

(६) मद्यविलयन (Maceration)—मद्य में विलेय द्रव्यों को मद्यसार (Alcohol) में मिलाकर एकान्त स्थान में रख देते हैं। अविलेय द्रव्य पात्र के तल में तलछट (Marc) के रूप में बैठ जाता है और विलेय द्रव्य सुरासार में घुल जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(७) विश्लेषण (Dialysis)—इस विधि द्वारा विशद भाग (Crystalloids) को पिच्छिल भाग (colloides) से जान्तव कला द्वारा पृथक् किया जाता है।

(८) निर्मलीकरण (Dispumation)—इसमें सेन्द्रिय द्रव्य पदार्थ को उबाला जाता है। उसमें ऊपर आने वाले झागदार मल को उतारते जाते हैं। इससे द्रव की अशुद्धियां दूर हो जाती हैं। शर्बतों के निर्माण में शर्करा का शोधन इसी प्रकार किया जाता है।

(९) अवर्णीकरण (Decoloration)—द्रव्यों के सत्व निकालते समय यह क्रिया की जाती है। इनके रंजक पदार्थों के सत्व से पृथग् किया जाता है। सर्वप्रथम इसके विलयन को आचोषक (कोयला आदि) द्रव्यों के चूर्ण के साथ मिलाया जाता है, और बाद में उसे निथार लिया जाता है।

(१०) स्वेदन (Boiling)—किसी भी शोधनीय द्रव्य को गोमूत्रादि में डुबो दिया जाता है और उसे कुछ देर तक उबाला जाता है, यही स्वेदन संस्कार है। इससे सभी प्रकार की अशुद्धियां दूर होती हैं।

(११) मर्दन—द्रव्य को रलखादि में डालकर घोटना। इससे जहां 'रासायनिक और सहज दोष' दूर होते हैं वहां गुण भी बढ़ते हैं ("मर्दनं गुणवर्धनम्")।

(१२) निर्वापण—द्रव्य को अग्नि में तपाकर किसी तरल पदार्थ में बुझाना। यह विधि धातुओं के शोधन में प्रायः काम आती है।

(१३) पातन—(Distillation) उड़ने वाले द्रव्यों को पातन द्वारा शुद्ध किया जाता है। यथा, कर्पूर, गन्धक पारदादि। ऊर्ध्वपातन, अधःपातन, तिर्यक्पातन भेद से यह तीन प्रकार का होता है।

द्रव्य संरक्षण तथा संरक्षण विधि—(Preservation of Drugs) गृहीत्वा चानुरूपगुणवद्भाजनस्थान्यागारेषु प्रागुदक द्वारेषु निवातप्रवातैकदेशेषु-नित्यपुष्पोपहार बलिकर्मवत्सु-अग्निसलिलोपस्वेद-धूम-रजो-मूषिक चतुष्पदानामनभिगमननीयानि स्वच्छानि शिक्येष्वासज्य स्थापयेत्।—(च० क० अ० १)। प्रोतमृद्भाण्डफलक शंकुविन्यस्तमेवते ॥ —(सु० सू०)

औषधियां सुरक्षित रखने के लिए प्रशस्त देश तथा दिशा में उत्तर या पूर्व की ओर द्वारवाला 'भेषजागार' बनाना चाहिए। यह स्थान यद्यपि निवात हो किन्तु भेषजागार में वायु का संचार भली प्रकार होता हो तथा इसमें अग्नि, आप, जल, धुआं, धूल, चूहा और पशु न जा सकें एवं जो सारे वर्ष सूखा रह सके। इस प्रकार के औषध भण्डार में छाया में या साधारण धूप में सुखाई हुई वनौषधियों को थैलों में या अन्य पात्रों में भरकर तथा अच्छी तरह बन्द करके खूंटी या छीकों पर टाँग कर या अलमारी आदि में बन्द रखना चाहिए। भेषजागार में हमेशा धूपादि सुगन्धित पदार्थ जलाते रहना चाहिए और उसे स्वच्छ करते रहना चाहिए।

औषधियों का सुरक्षण

(Preservation)

औषध-संग्रहालयों के लिए उन्हें सुरक्षित रखना पड़ता है। जिससे वे चिरकाल तक स्थिर रह सकें और पहचानी जा सकें। इसकी दो विधियां हैं—

१. आर्द्र विधि (Wet method) इस विधि में हरी (ताजी) औषधि के पंचांग को फार्मेलीन नामक द्रव के ५ से ७ प्रतिशत विलयन में रखकर कांच के पात्रों में रख दिया जाता है। इससे वे बहुत दिनों तक सुरक्षित रहते हैं। यद्यपि उनका वर्ण कुछ बदल जाता है।

२. शुष्क विधि—(Dry Method) इस विधि में औषध के पत्र-पुष्पादि को, अथवा क्षुद्रवनस्पति के पंचांगों को एकत्र कर मसीशोषकों (Blotting Papers) के मध्य में रख दिया जाता है। उन्हें एक विशेष चौखटे में रख कर दबाया जाता है। इससे औषधद्रव्यगत जलांश शोषित हो जाता है और आकार ज्यों का त्यों बना रहता है। आवश्यकतानुसार इन मसीशोषक को चोखटे सहित धूप में भी रखा जाता है। दोनों प्रकार प्रदर्शनार्थ औषध सुरक्षण के काम के हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

व्यावसायिक रूप में सुरक्षणार्थ नव्य प्रकारों का उपयोग करना चाहिए। इन्हें निर्वात भाण्डों अथवा कमरो में भो सुरक्षित रक्खा जाता है।

द्रव्यों की पहचान

लोक तथा शास्त्र प्रचलित औषध-द्रव्यों की पहचान चिकित्सा में सफलता प्राप्त करने के लिए अति आवश्यक है। किन्तु, यह एक महत्वपूर्ण समस्या भी है। प्राचीन शास्त्रों में गोपाल-तापसादि से व्याधि के स्वरूप ज्ञान का उपदेश हैं। राजनिघण्टुकार ने इसी बात को निम्न पद्य में अति उत्तमतया समझाया है—

तेभ्यः सकाशादुपलभ्य वैद्यः, पश्चाच्च शास्त्रेषुविमृश्य बुद्धया। विकल्पयेद् द्रव्य रस प्रभावान्, विपाक वीर्याणि तथा प्रयोगात ॥—(रा० नि०)

औषध के संपर्क में रहने वाले वनवासियों, व्याधों आदि से उसके स्वरूप की जानकारी प्राप्त करें और उनके गुणकर्म का निर्धारण प्रयोगशाला में करें।

द्रव्यों के परिचय की महत्ता कों ध्यान में रखकर ही आचार्यों ने विभिन्न नामों के व्याज से उनका परिचय दिया है। अतएव एक ही द्रव्य के अनेक नाम मिलते हैं। इस नामकरण विधि के मूल आधार का ज्ञान होने पर द्रव्यों की पहचान सरल हो जायेगी। अतः इस दृष्टि से इनका विवेचन किया गया है—

१. रचना अनुसारः—

मूल—शतमूलीं, बहुपाद (वट) षड्ग्रन्था (वचा) आदि।

त्वक्—त्वकसार (बांस) **शाखा**—कालस्कन्ध (अगरु)। **काण्ड**—सरल (चीड)। **पुष्प**—सुवर्णक (आरग्वध) **पत्र**—त्रिपर्णी (अपराजिता) युग्मपत्र (कांचनार) **फल**—श्रीफल (बिल्व) **क्षीर**—हेमक्षीरी (सत्यानाशी)

बीज—कुम्भबीज (रीठा) **कंटकः**—त्रिकंटक (गोक्षुरु)

२. उपमा—(अंगसादृश्य के अनुसार—काकजंघा, हलिनी (कलिहारी) मुशली, मूषाकर्णी, मण्डूकपर्णी, पंचांगुल (विदारीकन्द) शंखपुष्पी आदि।

३. उत्पत्तिस्थान के अनुसार—मागधी (पिप्पली) द्रविडी (एला) सौराष्ट्री (फिटकरी) तुरुष्क (शिलारस) सैन्धव, वाल्हीक (हिंगु) धन्वयास (जांगलदेशोत्पन्न) हैमवती (हरक)

४. उत्पत्ति कालानुसार—शारदी (चमेली) वर्षाभू (पुनर्नवा)

५. गुणानुसार—ज्ञानेन्द्रिय ज्ञेय

रूप—पीता (हरिद्रा) **स्पर्श**—दुःस्पर्शा (धंमांसा) **रस**—तिक्ता, **कट्वी वीर्य**—उष्ण (मरिचम्) **प्रभाव**—कृमिघ्न, कुष्ठघ्न। **गन्ध**—वाजिगंधा, गंधप्रसारिणी

६. कर्मानुसार—चकमर्द, अर्शोघ्न (सूरण) शोथघ्नो (पुनर्नवा) उन्मत्तकर (धत्तुरा)

७. रुढ़ि – तिन्तिडी (इमली) कटुन्नर (श्योनाक)

८. लोकोपयोगानुसार—यज्ञिय (खदिर) धनुद्रुम (स्वन्दन) अग्निमन्थ, कार्पास, पटदा।

९. इतिहास प्रसिद्धि के अनुसार—बौधिद्रुम, पीपल उक्त प्रकार का ज्ञान अतिसामान्य आधार पर आश्रित है और द्रव्यों के स्वरूप निर्धारण में अधिक सहायता नहीं मिलती, कभी-कभी तो भ्रम भी उत्पन्न हो जाता है। यथा, 'सदाफल' से बेल और नारियल दोनों का ग्रहण हो सकता है अतः वनस्पतियों के परिचय के लिए, जो ठोस और स्पष्ट आधार आधुनिक वनस्पतिशास्त्र (Modern Botany) में है। उससे द्रव्य स्वरूप विज्ञान में लाभ उठाना चाहिए। यहां विभिन्न वनस्पतियों को भिन्न-भिन्न वर्गों में बांटकर उनकी विशिष्ट रचना के आधार पर स्वरूप वर्णन किया गया है। आयुर्वेदीय-वनस्पतियों की असन्दिग्धता के लिए हमें इसका लाभ लेना चाहिये। राजनिघण्टुकार ने संभवतः "जाति लिंगें" शब्द पर इसलिए बल दिया प्रतीत होता है। इसी विचार से हमने वनस्पतियों के स्थूल स्वरूप परिचयार्थ उद्भिज शास्त्र का प्रकरण सचित्र इस ग्रन्थ में सम्मिलित किया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

देश विभाग

(Ecology)

तत्र भूमि परीक्षा आतुर परिज्ञान हेतोर्वास्यादौषधपरिज्ञान हेतोर्वा—(च० वि० अ० १)

देश-काल-ऋतु-जलवायु आदि का प्राणियों की औषध-द्रव्यों पर भी प्रभाव होता है। देश के अनुसार गुणों और कर्मों में थोड़ा बहुत अन्तर आ जाता है। द्रव्यों के स्वरूप ज्ञान के साथ-साथ उनके गुण कर्मज्ञान के लिए देश का भी परिचय आवश्यक है।

साधारणतः देश के तीन विभाग किए गए हैं। आनूप, जांगल और सम प्रदेश।

१. आनूप देश—जिस देश में जल का आधिक्य हो, वृक्ष अधिक हो, वायु अधिक तीव्र न बहती हो, धूप कम और मृदु हो, वह आनूप देश है। इस देश में रोग अधिक उत्पन्न होते और यह निकृष्ट देश है। वात-कफ बहुल होता है। इसमें चौड़े पत्ते वाली मध्यम प्रमाण की वनस्पतियाँ होती हैं। यथा, वट, एहीतकादि।

२. जांगल देश—जहाँ जल, वृक्ष कम हों। वायु अधिक तीव्र हो, धूप तीक्ष्ण हो, वह जांगल देश है। वात-पित्त बहुल प्राणी होते हैं। द्रव्य भी कषाय रस प्रधान होते हैं। यथा, खदिर, धव आदि। यह देश स्वास्थ्य की दृष्टि से सर्वोत्तम हैं। रोग कम होते हैं। जलाभाव के कारण पत्र कम तथा कांटेदार वनस्पतियों बबूल, नागफनी, आदि अधिक होती है। इस प्रकार की रचना से संचित जल का त्याग (Transpiration) कम होता है।

३. साधारण देश—उक्त दोनों प्रकार के देशों के लक्षण जिस देश में मिलते हों, उसे 'साधारण देश' कहते हैं। यहाँ वृक्ष दोनों देशों के होते हैं और पुरुष भी साधारण प्रकृति के एवं स्वस्थ होते हैं।

औषध प्रयोग विज्ञान वा औषध योजना

(Method of Administration)

औषध प्रयोग में दो बातों का ज्ञान विशेष रूप से उपयोगी है। एक तो औषधियों के प्रवेश का मार्ग और द्वितीय औषधि कल्प और सेवन प्रकार। औषध की योजना पर ही चिकित्सा की सफलता निर्भर है। अतएव आचार्य चरक ने युक्ति पर बड़ा बल दिया है—**"तिष्ठत्युपरि युक्तिज्ञो द्रव्यज्ञानवतां सदा"** (च० सू० अ० १)

यह भी पहले बताया जा चुका है कि औषध का यह प्रभाव (स्थानीय) शरीर में बाह्य त्वचा पर लेपादि लगाने से, या शरीर के अन्दर कला में मुख, गला, आमाशय, अन्त्र मलाशय आदि पर होता है। रस के रक्त में मिलने के पश्चात सांस्थानिक प्रभाव होता है। रक्त में एक ही औषध के दोनों प्रकार के प्रभाव भी हो सकते हैं और एक प्रकार का भी। किन्हीं औषधियों के योग स्थानिक प्रभावार्थ बनाये और प्रयोग किए जाते हैं यथा, एलादि खदिरादि वटी। इनका प्रभाव भी मुख या स्वरयन्त्रों तक ही सीमित हैं। अन्य औषधियों को चूर्ण रूप में, द्रव्य रूप में पाकादि रूप में, दिया जाता है। द्रव पदार्थों का आशोषण शीघ्र होता है। अतः जिन औषधियों का प्रभाव शीघ्र अभीष्ट होता है उन्हें तरल रूप में ही दिया जाता है। अथवा उन्हें जल, दूध, काढ़ा आदि के साथ मिलाकर देते हैं। इस प्रकार के द्रव पदार्थों को "अनुपान" या 'सहपान' कहा जाता है। ये न केवल औषध को रक्त में शीघ्र पहुँचाते हैं, अपितु उनके गुणों को भी प्रभावित करते हैं। अतएव विशेष रोगों में विशेष अनुपान दिए जाते हैं।

स्थानीय प्रभावोत्पादक औषध सेवन की विधियाँ निम्नलिखित हैं। गण्डूष-कवल ग्रह, प्रतिसारण, मुखस्थ रोगों के नाशार्थ इन तीनों विधियों से औषधि दी जाती हैं।

सुखं संचार्यते या तु मात्रा सा कवलग्रहः। असंचार्या तु या मात्रा गण्डूषः स प्रकीर्तितः॥—(सु०चि०अ० ४०)

औषधि की वह मात्रा जिसको मुख में रखकर अच्छी तरह से मुख को चलाया जा सके, उसे 'कवल ग्रह' कहते हैं और जिस मात्रा को मुख में भरकर उसे चलाया न जा सके उसे 'गण्डूष' कहते हैं। कवल ग्रह में औषधियों का कल्क या चूर्ण का और गण्डूष में द्रवों का प्रयोग होता है—(शारंगधर)। वृद्ध वाग्भट्ट ने इनकी उत्तम, मध्यम और न्यूनतम तीन मात्राएँ लिखी हैं। उत्तम मात्रा में आधामुख औषध (द्रव या कल्क) से भरा जाता है। मध्यम

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

में तिहाई भाग और निकृष्ट या न्यूनतममात्रा में मुख का चौथाई भाग। बोलचाल की भाषा में इन दोनों को 'कुल्ला' (gargles) करना या 'मुखधावन' कहा जाता है।

भेद—"चतुर्विधो भवति गण्डूषः" स्नैहिकः, शमनः शोधनो, रोपणश्च। तेषामाद्यास्त्रयः क्रमेण वातपित्त कफघ्नाः रोपणास्त्वास्यव्रणघ्नाः, शमनः स्तम्भनः प्रसादनो-निर्वापण इति पर्यायाः।—(अ० सं० सू० अ० ३१)

गण्डूष या कवलग्रह—(१) स्नैहिक (२) शमन या प्रसादन, (३) शोधन (४) रोपण। इनमें स्नेहन वातहर प्रसादन, पित्त और शोधन कफशामक है। रोपण मुख के व्रणों को ठीक करता है। शारंगधर ने द्रवों का, मुख में धारण करना गण्डूष और चूर्ण के धारण को कवल कहा है। किन्तु वह अनार्ष है।

प्रतिसारण—अंगुल्यग्रप्रणीतं तु यथास्वं मुख-रोगिणाम्।
कल्को, रस क्रिया, क्षौद्रं, चूर्णं चेति चतुर्विधम् ॥—(सु० चि० अ० ४०)

अंगुली या पिचु पर औषध लगाकर मुख के लेप-सा लगना प्रतिसारण कहलाता है। कल्क (चूर्ण) रसक्रिया, क्षौद्र (मधु में मिली औषधियाँ तथा चूर्ण-ये चार भेद होते हैं। इनके भी स्नेहन, शमन, शोधन, रोपण ये चार भेद होते हैं। दन्तमंजन कल्क प्रतिसारण ही है—

धूम्रपान धूपनम्—औषधियों को जलाकर उनसे उत्पन्न धुएँ का प्रयोग रोगनाशार्थं किया जाता है। बाह्य प्रयोग को 'धूपन' (धूप देना) और अन्दर धुएँ का ग्रहण करने को 'धूम्रपान' कहते हैं। धूपन व्रण में उपस्थित कृमि दुर्गन्धि या वेदना कम करने के लिए दिया जाता है। संक्रमण नाशन के लिए तथा स्थान को कृमिरहित करने के लिए भी धूपन किया जाता है। स्थान भेद से धूपन के भेद किए जाते हैं। यथा, योनिधूपन, कर्णधूपनादि। धूम्रपान में औषधियों की वत्ती बनाकर 'धूम्रनेत्र' द्वारा उसका पान किया जाता हैं। इसके पांच भेद है।

(१) प्रायोगिक—स्वस्थ पुरुष को कफ का नाश करने के लिए प्रतिदिन इसका प्रयोग कराया जाता है। यह शमन तथा शोधन दो प्रकार का होता है।

(२) स्नैहिक—यह बृंहण तथा मृदु दो प्रकार का है। शरीर को स्निग्ध तथा पुष्ट बनाने के लिए इसका प्रयोग कराया जाता है।

(३) वैरेचनिक—'शिरो विरेचन' के लिए यह धुम्रपान किया जाता है। शोधन और तीक्ष्ण ये दो भेद हैं। चरक और वाग्भट्ट ने उक्त तीन भेद ही माने हैं। सुश्रुत ने:—

(४) कासघ्न—(कास-श्वास शामक, धूम्रपान) तथा

(५) वामनीय—(वमनकारक)—ये दो भेद और बताए हैं। धूम्रनेत्र बनाने का विधान च० चि० अ० ४० में दिया गया है। पाठक वहीं देखें।

नस्य—इसे नावन, नस्तः कर्म भी कहा जाता है। इस प्रक्रिया में औषधं-औषध सिद्धोवा स्नेहो नासाभ्यां दीयत इति नस्यम्—(सु० चि० ४०) औषध का चूर्ण या औषधों से बनाया गया स्नेह (घी या तैल) नासा द्वारा दिया जाता है। नाशा में स्नेह अंगुलि में लगाकर सांस द्वारा ऊपर खींचा जाता है। अथवा नाड़ी यन्त्र (नली से यथा, नेत्र शलाका (Eyedropper) से या पिचु (रुई) से कुछ बिन्दु नासा में डाले जाते हैं। उष्णाम्बु तप्तं भैषज्यं प्रणाल्या वापिचुनाथवा—(अ० हृ० सू० २०)

नस्यों के भेद—तद्द्विविधं, शिरोविरेचनं, स्नेहनं च। तद्द्विविधमपि पंचधानस्यं, शिरोविरेचनं प्रतिमर्शः अवपीडं, प्रधमनं च। तेषु नस्यं प्रधानं, शिरोविरेचनं च। नस्ये विकल्पः प्रतिमर्शः शिरोविरेचन विकल्पोऽवपीडनं, प्रधमनं च।—(सु० चि० ४०)

नावन कर्म दो प्रकार का है—शिरोविरेचन तथा स्नेहन। पुनश्च (१) नस्य (२) शिरोविरेचन तथा (३) प्रतिमर्श (४) अवपीड (५) प्रधमन भेद से पाँच प्रकार का है। इनमें नस्य और शिरोविरेचन प्रधान हैं। शेष तीनो उनके अवान्तर भेद हैं। नस्य कर्म प्रतिमर्श का। आचार्य वाग्भट्ट ने इसका 'मर्श' नामक भेद भी बताया है। अवपीड

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तथा प्रधमन शिरोविरेचन के भेद हैं। चरकाचार्य ने कर्मों के अनुसार नस्य के स्नेहन तथा शोधन ये दो भेद किए हैं। अवपीड़ के शोधन और स्तम्भन—(च० सि० ९)

नस्य भेदाः

नस्य
- स्नेहन (बृंहण)
  - नस्य
    - मर्श
    - प्रतिमर्श
- विरेचन (शोधन)
  - शिरोविरेचन
    - अवपीड
    - प्रधमन

कार्य—स्नेहन, बृंहण, शमन   कार्य—शोधन, कर्षण, स्तम्भन (च० सु० अ० ६)

नस्य मात्रा—नस्यभेद	उत्तम	मध्यम	अधमभागा
१. स्नेहननस्य	६४ बूँद (पाणिशुक्ति)	३२ बूँद (शुक्ति)	८ बूँद (सु० चि० ४०)
२. मर्श	१० बूँद	८ बूँद	६ बूँद (अ० हृ० सू० २०)

३. प्रतिमर्श—केवल दो बूँद (अंगुलि में लगाकर साँस द्वारा ऊपर खींचना। यह दैनिक नस्य है। यह निर्दोष नस्य तर्पण तथा शमन दोनों कार्य करती है।

४. शिरोविरेचन	८ बूँद	६ बूँद	४ बूँद

५. अवपीडन में एक नाक को बन्द कर दूसरी नाक द्वारा नस्य दी जाती है। अवपीडनंदीयते, इत्यवपीडनम्

६. प्रधमन में छः अंगुल लम्बी नली में औषधि रखकर वायु द्वारा नाक में पहुँचाई जाती है। नाक द्वारा सिगरेट आदि पीना 'धूम्रनस्य' कहलाती है। नाक के अन्दर का व्रण आदि कषाय या अन्य औषध के घोलों द्वारा धोना नस्याधावन या प्रक्षालन कहलाता है। नाक से रक्त स्राव होने पर रुई आदि उसमें भरना 'नासापूरण' कहलाता है।

नेत्रों में औषध प्रयोग—सेक आश्च्योतनं, पिण्डो बिडालस्तर्पणं तथा। पुटपाकोऽजंनं चैभिः कल्पैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥ (शा० उ०)

(१) **सेक**—रोगी को चित्त लिटा कर चार अँगुल ऊपर से औषध के द्रव की पतली धारा (पलकें बन्द कर या खुली में) से आँखों का धोना या स्वेद करना 'सेक' कहलाता है। यह तीन प्रकार का है। वातिक रोगों में स्नेहन, पित्त तथा रक्त के रोगों में रोपण तथा कफ के रोगों में लेखन की मात्रा स्नेहन में ६००, रोपण में चार सौ, और लेपन तीन सौ मात्रा तक (१०० तक की गिनती १ मात्रा कहलाती है) सेक करना चाहिए—(शां० उ० अ० १३)

आजकल एतदर्थं बक यन्त्र (Undive) का उपयोग किया जाता है।

(२) **आश्च्योतन**—नेत्रों में औषधि की बूँदें डालना 'आश्च्योतन' कहलाता है। रोगी को चित्त (मुँह ऊपर कर नेत्रों को कोष्ण जल से धोकर बाएँ हाथ के अँगूठे और अँगुली से आँख को खोलकर बाएँ हाथ में गृहीत औषध नालिका (Eye dropper) से नाक के समीपस्थ भाग में नेत्र में औषधि डालें। नेत्रप्रान्तों को स्वच्छ रुई या वस्त्रखण्ड से पोछ दें। वात तथा कफ के रोगों में द्रव कोष्ण (गुनगुना) होना चाहिए। रक्त तथा पित्त में शीतल। यह भी लेपन, स्नेहन, तथा रोपण भेद से तीन प्रकार का है। लेपन की मात्रा ७ या ८ बूँद, स्नेहन की १० और रोपण की मात्रा ७-१२ बूँद है। आश्च्योतन को नेत्र में १०० मात्रा काल (वाकशत-सौ की गिनती पूरी होने तक) रखना चाहिए।

(आश्च्योतनानां सर्वेषां मात्रास्यात् वाक्शतंपरम् (शा० उ० स० १३)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(३) पिण्डी—पिण्डी कवलिका प्रोक्ता बध्यते पट्टवस्त्रकैः । नेत्राभिष्यन्द योग्याच व्रणोष्वपिनिबध्यते ।—(शा० उ० सं० २३)

नेत्राभिष्यन्द (आंखदुखनादि) में औषध द्रव्यों को पीसकर पतले मुलायम कपड़े में बांधकर स्नेह पदार्थों में भिगोकर उसे नेत्रों पर बांधना पिण्डी कहलाता है।

(४) बिडालक—'बिडालको बहिर्लेपो नेत्रे पक्ष्मविर्वजिते' नेत्रों के पक्ष्म (बालों) को छोड़कर पलकों पर लेप लगाना 'बिडालक' कहलाता है। —(शारंगधर)

(५) तर्पण—इस क्रिया में नेत्रों को स्वच्छकर उनके चारों ओर उड़द की दाल की पिट्ठी की आलवाल (दीवार) बनाकर नेत्रों को बन्द कर कोष्ण घृतादि स्नेह इतना भरा जाता है कि नेत्रों के बाल डूब जाये, और रोगी को रोगी आंख खोल देवें। नियत समय तक रखने के बाद नेत्र के चारों ओर बनी आलवाल में अपांग (कनपटी) की ओर छेदकर स्नेह निकल जाने दे और गुनगुने जौ की पिट्ठी से स्नेह को पोछ डालें। तर्पण का कर्म 'स्नेहन' ही होता है।

मात्रा—स्वस्थ पुरुष में ५००, कफज रोगों में ६००, पित्तल रोगों में ८०० तथा वातिक रोगों में १००० मात्रा पर्यन्त रखे। २०० मात्रा का अर्थ ८०० तक गिनती है। अतएव कहा है "वातातपरजोहीने वेशमन्युत्तान शायिनः। आधारौ माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिमण्डलौ। समौदृढावसंबाधौ कर्त्तव्यौ नेत्रकोशयोः। पूरयेद् घृतमण्डेन विलीनेन सुखोदके। आपक्ष्माप्रात्ततः स्थाप्यं तद्वाकशतानि तु। स्वस्थे, कफेषट्, पित्तेऽष्टौ, दशवाते। (सु० उ० अ० १८)

पुटपाक—इस क्रिया में भी तर्पण के औषधियों या अन्य द्रव्यों का रस पुटपाक द्वारा निकाल कर नेत्रों में डाला जाता हैं। इसके तीन भेद है—स्नेहन, लेखन और रोपण। स्नेहन की अवधि दो सौ मात्रा, लेपन में १०० तथा प्रसादनक ३०० सौ मात्राएँ हैं। रक्त पित्त के रोगों में शीत तथा कफ वात में कोष्ण (गुनगुना) रस डालना चाहिए। (सु० उत्तर ३३) निर्माण प्रकार भेषज्य कल्पना प्रकरण में देखें।

अंजन—सुरमा लगाने का नाम है। यह अंगुलि या शलाका से लगाया जाता है। इसके लगाने की विधि यह है। वामेनाक्षिविनिर्मज्य हस्तेनसुसमाहितः। शलाकया दक्षिणेन क्षिपेत् कानीनमंजनम्। अपांङ्गचंवा यथायोग कुर्याच्चापि गतागतम्। वर्त्मोपलेपी वा यत्तदगुंल्यैव प्रयोजयेत् (सु० उत्तर)। बांए हाथ की अंगुठी तथा अंगूली से नेत्र को खोलकर दाहिने हाथ से अपांग से कनीनिका तक सलाई को तीन चार बार फिराए। यदि पलक के ऊपर की ओर औषधि लगाना अभीष्ट हो तो अंगुलि से लगाए। शलाकाएँ सोना, चांदी, ताम्बा, लोहा, सींग वैडूर्य आदि की होनी चाहिए।

उत्तम शलाका का स्वरूप—"वक्रयोर्मुकुलाकारा कलायापरिमण्डला। अष्टांगुला तनुर्मध्ये सुकृता साधुनिग्रहा। पुष्प की कली के समान किनारों वाली, मध्य में मटर के समान मोटी आठ अंगुल लम्बी तथा बीच में पतली, कुन्द किनारों वाली होनी चाहिए। (सु० उत्तर २८)।

अंजनों के भेद

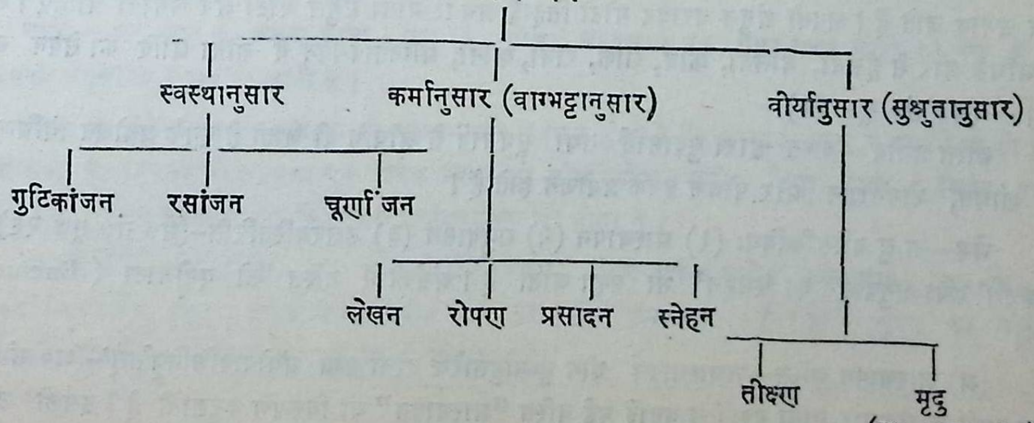

(सु० उत्तर १८)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अंजन की मात्रा—लेखनार्थ यदि वर्ति या रसांजन की मात्रा १ मटर जितनी, प्रसादनार्थ $1\frac{1}{2}$ और रोपणार्थ २ मटर जितनी लेनी चाहिए। चूर्णांजन सलाई के अग्रभाग पर जितना आ सके उतना लेकर लेखनार्थ दो बार, प्रसादनार्थ तीन बार, रोपणार्थ चार बार लगाना चाहिए। तीक्ष्णांजन की वर्ति (गुटिका) तीक्ष्णरसांजन की मात्रा वायविडंग समान, और मृदु गुटिकांजन और रसांजन की मात्रा इसमें द्विगुण लें।

कर्णपूरण विधि—कान में तैल या औषधों का स्वरस आदि डालना 'कर्ण पूरण' कहलाता है। इसके लिए रोगी को एक करवट लिटाकर ऊपर वाले कान को पहले थोड़ा स्वेद दें। ततः गुनगुने, तैल, स्वरस या गौमूत्र से कान भर दें। यह औषध कान में वेदना कम होने तक रखें। अथवा कर्ण रोगों में १०० कण्ठ के रोगों में ५००, तथा सिर के रोगों में १००० मात्रा काल तक रक्खें। स्वस्थ पुरुष के कान में पूरण करना हो, तो १०० मात्रा काल तक रखना चाहिए। (श० उ० स० ११)

कर्णप्रमार्जन—स्वच्छ पिचु या वस्त्रखण्ड से पीप को पोछना।

कर्णधावन या प्रक्षालन—व्रण शोधक रोपक क्वाथों से कान को नलिकायन्त्र (पिचकारी) से धोना। धोते समय पिचकारी को अधिक बल से नहीं चलाना चाहिए, अन्यथा कान के परदे फट जाने का भय रहता है।

कर्णधूपन—कृमिघ्न, वेदनाहर तथा पूयनाशक औषधियों से कान को धुआ देना 'कर्णधुपन' कहलाता है।

मूर्ध तैल विधि—सिर पर औषधि सिद्ध तैल का लगाना। यह अभ्यंग, परिषेक, पिचु तथा शिरोबस्ति इन चार प्रकार का होता है। जो उत्तरोत्तर बलवान हैं। सिर पर तैल की धार गिराने को परिषेक, तेल में भिगोई रुई या वस्त्र धारण करने को शिरः पिचु तथा तेल की बत्ती धारण करने को 'शिरो बस्ति' कहा जाता है।

शिरोबस्ति विधि—गाय या भैंस के चमड़े की १२ अंगुल ऊँचा ऊपर तथा नीचे खुला हुआ, किन्तु इस प्रकार मिला हुआ, कि निचला भाग शिर पर बिल्कुल फिट बैठे, और जिसमें से तैल नीचे को न निकले, रोगी के सिर के नाप का चर्मपट्ट (टोपी) रोगी के सिर पर बैठा दें। बाल उस्तरे (क्षुर) से साफ करा देवें। रोगी को कुर्सी पर बैठाएँ तथा सिर के नीचे के भाग को कपड़े से लपेट देवें। ऊपर से उक्त टोपा इस प्रकार बैठाएँ कि वह सर्वथा फिट बैठे। टोपे के निचले भाग को उड़द की पिष्टी से इस प्रकार बन्द कर दें कि तैल बाहर न निकल सके। इस चर्मपट्ट में गुनगुना तैल इतनी मात्रा में भरें कि शिर से दो अंगुल ऊपर रहे।

धारण का समय—जब तक मुँह या नाक से पानी न आने लगे। अथवा वात रोगों में दश हजार, पित्तरोगों में आठ और कफज में ६ सहस्त्र और स्वस्थ पुरुष के लिए एक सहस्त्र अक्षरों के उच्चारण करने तक (मात्रा) तैल को धारण करना चाहिए। अधिक के अधिक एक सप्ताह तक इसका प्रयोग करें। यह भोजन से पहले करनी चाहिए। पुनः तैल को रुई से निकाल कर टोपा उतार कर गरम पानी से स्नान कराना चाहिए। —(अ० सं० सु० ३२)

मुखालेप—मुख पर उत्पन्न झांई-झील आदि के नाश के लिए तथा उत्तम कान्ति के लिए अनेक प्रकार के लेप लगाए जाते हैं। मुखदूषक दोषों को दूर करने के लिए दोषघ्न, विष नाशन के लिए विषघ्न एवं कान्ति बढ़ाने लिए के वर्ण्य लेप लगाए जाते हैं। अपनी अंगुल बराबर मोटो तिहाई अथवा आधा अंगुल मोटा लेप लगाना चाहिए। लेप लगाते के बाद अधिक जोर से हंसना, बोलना, क्रोध, शोक, रोना, खाना, अग्नितप-दिन में सोना आदि का सेवन नहीं करना चाहिए। —(अ० सं० सू० ३१)

बस्ति प्रयोग—बस्ति द्वारा गुदामार्ग तथा मूत्रमार्ग से औषधि दी जाती है इनके प्रयोजन विभिन्न होते हैं। मुख्यतः शोधन, रोगनाशन और पोषण इनके प्रयोजन होते हैं।

भेद—स तु बस्तिस्त्रिविधः (१) आस्थापन (२) अनुवासनं (३) उत्तरबस्तिरिति–(अ० सं० सूत्र २६) आस्थापन को 'निरूपण' तथा अनुवासन को 'स्नेहन' भी कहा जाता है। अंग्रेजी में बस्ति को एनीमाटा (Enemata) कहा जाता है।

(अ) आस्थापन बस्ति—'तत्रास्थापनं दोष दूष्यानुसारेण नाना द्रव्य संयोगादभिनिर्वृतम्'–(अ० सं० सू० २८) दोष तथा दूष्यों के अनुसार नाना द्रव्यों से बनाई गई बस्ति "आस्थापन" या निरूपण कहलाती है। इसकी उत्तम मात्रा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१२ प्रसृति (२४ पल—९६ तो०) है। इस मात्रा में दिया गया औषध द्रव्य शीघ्र ही बाहर आ जाता है। द्रव का ताप ९८° होना चाहिए। शीत जल आंतों से शीघ्र बाहर निकल जाता है।

प्राय: संशोधन के लिए १०६ छटाँक से २०६ छटाँक (१२ पल—कर्ष से २४ पल तक) द्रव पदार्थ लिया जाता है। यदि अधिक मात्रा में तरल आंतों में कुछ समय तक रखना हो, तो ५ से १० तोला तक इसका प्रवेश बहुत धीरे-धीरे कराया जाता है। विशेष विधि चरकादि आदर्श ग्रन्थों में देखना चाहिए।

कर्मानुसार आस्थापन या निरूहण बस्ति के निम्न भेद हैं "**तस्यभेदा—उत्क्लेशने, संशोधनं, संशमनं लेखन, बृंहण, वाजीकरणं, पिच्छाबस्तिः, माधुतैलिकर्म**—(अ० सं० सू०)।

(अ) संशोधन या उत्क्लेदन—(Purgative enemata)—यह बस्ति स्थूलान्त्र में से मल को निकालने के लिए किया जाता है। १ वर्ष के बच्चे के लिए २-४ तोला द्रव, चार वर्ष के बच्चे लिए १० से २० तोला (कर्ष) तथा साधारणतः १० छटाँक को मात्रा में द्रव पदार्थ का प्रयोग किया जाता है। त्रिफलादि क्वाथ में कुछ रेचक-अनुलोमन औषधियों से मिलाकर प्रयोग की जाती है।

(आ) कृमिघ्न पदार्थों द्वारा तैयार की गई बस्ति को कृमिघ्न बस्ति (चुरुवे आदि के लिए, (Anthelmentic Enemata) कहा जाता है।

(इ) संशमन (sedative enemata)—ये बस्तियाँ शामक पदार्थों अफीम-आदि को बनाई जाती हैं। पिच्छाबस्ति भी एक प्रकार की 'संशमन' बस्ति है।

(ई) बृंहण बस्ति (Nutrient enema)—मुख द्वारा अन्न, दुग्धादि का गुदामार्ग द्वारा प्रयोग किया जाता है। अनुवासन भी बृंहण बस्ति है।

(उ) पिच्छा बस्ति या अनुवासन बस्ति (Emolient enema)—अर्श, प्रवाहिका आदि रोगों में अन्त्रों के क्षोभ को शान्त करने के लिए तथा रूक्षतादि को दूर करने के लिए पिच्छिल औषधियों को बस्ति दी जाती है।

(ऊ) वाजीकरण—बस्ति कामोत्तेजक पदार्थों की बनाई जाती है।

(ए) लेखन बस्ति—इसका अभिप्राय यह है रोगी को पतला करने वाली औषधियों की बस्ति।

(ऐ) माधुतैलिक—बस्ति में मधु और तैल का मिश्रण होता है। इसे यापन, युक्तरथ और सिद्ध बस्ति भी कहा जाता है (सु० चि०)

इनके अतिरिक्त उदरशूल और क्षेपनाशनार्थ शूलहर बस्ति (Anti-Spasmodic enemata) में हींग-कपूर देवदारुतैलादि का और संकोचक बस्ति (Astringent enema) में कषाय द्रव्यों का—माजू-हरड़-आदि—प्रयोग किया जाता है। यह बस्ति अन्त्रों के रक्त स्राव, तीव्रातिसारादि को बन्द करने के लिए दी जाती है।

अनुवासन बस्ति—"अनुवासन' यथार्ह औषधसिद्ध स्नेह-स्नेहार्थम्ः—(अ० सं० सू० २८)। इसमें औषध सिद्ध स्नेहों का प्रयोग शरीर को स्निग्ध करने के लिए किया जाता है। इसी का एक भेद 'मात्रा बस्ति' भी है। इस बस्ति को एक दिन तक अन्त्रों के अन्दर रखना चाहिए।

मात्रा—अनुवासन की उत्तम मात्रा 6 पल (२४ तोला) मध्यम ३ पल, तथा सबसे छोटी १½ पल है। मात्रा बस्ति में इसकी चतुर्थांश मात्रा दी जाती है।

त्वचा पर औषध प्रयोग—त्वचा की महत्ता इसी से सिद्ध होती है कि आचार्य चरक ने स्पर्शेन्द्रिय को ही केवल एक इन्द्रिय माना है—(च०सू०)। त्वचा पर अनेक प्रकार की औषधियों का प्रयोग किया जाता है जिनका फल प्रायः स्थानिक होता है। किन्तु प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा सांस्थानिक भी होता है।

अभ्यंग, लेप, स्वेद, (सेंक) शीत जल की थैली रखना (**हिमपूर्णानां दृतीनां पवनहताः**—(च० वि०) अनेक प्रकार के स्नान-अभिषेक, उपनाह प्रलेपादि का प्रयोग त्वचा द्वारा ही किया जाता है। इनमें मुख्य का वर्णन नीचे दिया जाता है। 'सूचीवेध' के विषय में पहले लिखा जा चुका है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(१) विस्फोटक (Blisters)—विस्फोट उत्पन्न करना। यथा, श्वित्र (सफेद दाग) में बाबची आदि औषधियों से छाला उत्पन्न करना और पुनः तैल का अभ्यंग करना। जैसा कि सुश्रुत ने कहा है "द्वैपं दग्धंचर्म मातगंजं वा भिन्ने स्फोटे तैलयुक्तं प्रलेपां—(सु० चि० ६)

(२) स्वेदन (Fomentation)—जिस कर्म के द्वारा शरीर को सेक पहुँचे, या पसीना आवे, उसे स्वेदन कहते हैं।

स्वेदन भेद—"चतुर्विधः स्वेद, तद्यथा-तापस्वेदः, उष्मस्वेदः उपनाह स्वेदः द्रवस्वेदः इति। अत्र सर्व स्वेदावरोधः।—(सु० चि० ३२)

(अ) तापस्वेद (Dry Fomentation) "तापोऽग्निर्वसन फाल-हस्ततलादिभिः—(अ० हृ० सू० १७) आग से तपाए हुए वस्त्र, रुई, धातु-पत्र, हाथ, ईंट, रेता, नमक, तथा गरम पानी की भरी बोतलें कपड़े में लपेट कर उनसे सेंक करना। यह कफ नाशक है।

(आ) ऊष्मस्वेद (Vapour Bath)—इस प्रकार में वाष्प या बफारा द्वारा सेंक किया जाता है। यह तीन प्रकार से दिया जाता है। (१) ईंट, शिला या लोहे के गोला आदि को खूब गरम करके उनके ऊपर जल या वात-कफघ्न औषधियों का काढ़ा छिड़का जाता है और उसके उत्पन्न वाष्प द्वारा सेंक लिया जाता है। (२) किसी पात्र में जल, दूध मांस, कांजी आदि वातहर द्रव्यों को भरकर उन्हें उबाला जाता है। उससे उत्पन्न वाष्प-भाप से स्वेद दिया जाता है। (३) किसी छोटे मुँह के पात्र में औषध द्रव्य और तरल भरकर उसका मुख बन्द कर दिया जाता है। एक नाड़ी (नली) द्वारा निकली भाप से सेंक करना। इसे 'नाडीस्वेद' कहते हैं। इन सभी प्रकारों में रोगी को कुर्सी पर बैठाकर या पलंग पर सुलाकर चारों ओर कम्बल लपेट दिए जाते हैं। विशेष स्थान पर स्वेद दिया जाता है या विशेष मार्ग से भाप रोगी तक पहुँचाई जाती है। यह प्रकार निर्बल हृदय रोगियों के लिए अच्छा नहीं है। कफ और वात के रोगों में लाभप्रद है। आमवात, वातरक्त, सन्धिशोथ, त्वचा रोग और वृक्क रोगों में लाभ करते हैं। गरम वायु द्वारा स्वेद देना भी इसी के अन्तर्गत आता है।

(४) उपनाह स्वेद (Emplastra)—औषधियों को पीसकर तथा गरम-गरम त्वचा पर लगाना और कुछ समय तक रखना। पुल्टिस, प्रदेह, प्रलेपादि इसके अनेक भेद हैं। आधुनिकों के स्टूप्स (Stupes) और काम्प्रेसेस (Compresses) इसी के अन्तर्गत आ जाते हैं। पहले प्रकार में फलानैल के वस्त्र खण्ड को गरम जल में डुबो देते हैं। पुनः उसे निचोड़कर, उस पर देवदारु तैल (टर्पेन्टाईन) या अन्य औषधियों को छिड़क कर अभीष्ट स्थान पर रखते हैं और ऊपर से कोई कपड़ा रखकर छोड़ते हैं। जब वह ठंडा हो जाता है तो दूसरा वस्त्र खण्ड इसी प्रकार रुग्ण स्थान पर लगा देते हैं। दूसरे प्रकार में तत्तद् औषधि के विलयन में वस्त्र खण्ड को डुबोकर ऊपर से स्निग्ध कपड़ा यथा वाटरप्रूफ, प्लास्टिक का टुकड़ा आदि रखा जाता है। यह वात रोगशामक है।

(५) द्रवस्वेद (Fomentation by Liquids)—गरम जल या औषधियों से बने हुए काढ़े में रोगी को बिठाना (अवगाह स्वेद) या उसकी धारा रोगी के शरीर पर छोड़ना (परिषेक स्वेद) कहलाता है। यह एक प्रकार के स्नान हैं। ये वात, पैत्तिक या कफ-पैत्तिक रोगनाशक हैं। ये स्नान अनेक प्रकार के होते हैं। शरीर के स्थानों के अनुसार कटिस्नान, पादस्नान, शिरोभिषेकादि अनेक नामों से कहे जाते हैं। आधुनिकों ने भी इनके बहुत भेद किए हैं। किन्तु सामान्य भेदों का ही वर्णन यहाँ किया जाता है।

(अ) कोष्णजल स्वेद (Tepid Bath)—इसमें जल की उष्मा ८५° से ९५° फा० होती है। यह तापहर तथा संशमन हैं।

(आ) उष्ण जल स्वेद (Warm Bath) इसमें जल की उष्मा ९५° से १००° फा० होती है। यह उन ज्वरों में जहाँ अन्दर के अंगों में शोथ होने की संभावना हो, दिया जाता है।

(इ) अत्युष्ण स्वेद (very hot Bath)—जल या वाष्प का ताप १००° से १०६° फा० तक होता है। यह उष्ण की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है। उष्ण कटिस्नान रजः कृच्छ्र, कटिशूल, मूत्राघात, मूत्राशय शोथ,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गर्भाशय शोथ, अर्शादि शोथ में लाभप्रद है। अनेक प्रकार के जलों, चश्मों का जल तथा नीम का काढा बनाकर उसमें अवगाह या परिषेक स्वेद करने से त्वचा रोगों में वातव्याधियों में लाभ होता है।

अनग्नि स्वेद—कफ मेदोन्विते वायौ निवाता तप-गुरु प्रावरण, नियुध्वाध्वव्यायाम भारहरणामर्षः स्वेदमुत्पादये-दिति (सु०चि० ३२)। बिना अग्नि की सहायता के निम्न उपायों से कफ भेद सहित वात रोगियों में निवास स्थान, धूप, भारी-कम्बल व्यायाम, भार उठाना, क्रोध, भूख गरमघर आदि से स्वेद लाना चाहिये–च० सू० १४। स्थान भेद से एकांग स्वेद, सर्वांग स्वेद, गुण भेद से रूक्ष, स्निग्ध, अग्नि गुण युक्त और अनग्नि गुण युक्त ये छः भेद भी है–(च० सु० १४)।

उष्ण स्वेद (अवगाह तथा परिषेक के समान) शीतावगाह और शीत परिषेक, भी किये जाते हैं। विशेषकर पित्त के रोगों में ताप, ज्वर, दाह, मूर्च्छा आदि में भी यह लाभप्रद है। इनमें द्रव का तापा ३५°-७५° फा० (प्रायः ५०°-६०° फा०) का होना चाहिये। इनका विशेष वर्णन चरक-सुश्रुतादि संहिता ग्रन्थों में देखना चाहिये।

शल्यतन्त्र में औषधि प्रयोग

लेप—प्रल्हादने शोधने, च शोफस्य हरणे तथा। उत्सादने रोपणें च लेपः स्यात्तुतदर्थकृत्—(सु० चि०)।

लेप (Cataplasmata)—वेदनाशामन के लिए, व्रणशोधन, शोथ शान्त करने के लिए, उत्सादन, रोपण के लिए लगाया जाता है। प्रलेप, प्रदेह आदि इसके अनेक भेद हैं।

परिषेक—धार बाँधकर औषध द्रव का शोथ स्थान पर डालना। यह शोथशमनार्थं क्रिया शोथ को पकाने और फाड़ने के लिए भी किया जाता है।

अभ्यंग—'अभ्यंगस्तु दोषमालोकभ्योपयुक्तो दोषोपशमं मृदुतां च करोति'—(सु० चि० १)। वात और कफज व्रणशोथ में तैल तथा पित्त-रक्तज में शतधौतघृत का अभ्यंग किया जाता है।

उपनाह (Poultices)—**"शोफयोरुपनांह मु कुर्यादाम बिदग्धयोः। अविदग्धः शमं याति विदग्धः पाकमुवेति च**—(सु० चि० १)। यह कच्चे व्रणशोथ को बिठाने वाला तथा पाकोन्मुख व्रण शोथ को पका देती है।

अवचूर्णन (Dusting)—सूक्ष्म चूर्णीभूत औषधियों का व्रण पर छिड़कना।

धूपन (Fumigation)—वेदना, शोथ शान्ति के लिए और कृमिनाशन के लिए 'धूपन' का प्रयोग किया जाता है।

प्रतिसारण (Paints Pigments)—व्रण या व्रणशोथ पिचु द्वारा लेप लगाना, प्रतिसारण है। क्षारों का भी प्रतिसारण किया जाता है।

पत्रदान—"स्थिराणामल्पमासांना रौक्ष्यादनुपरोहताम्। 'पत्रदानं' भवेत् कार्यं यथादोषंयथुतु' च। कठिन, क्षीण मांस वाले, और रुक्षता के कारण न भरने वाले व्रणों में दोष तथा ऋतु के अनुसार पत्र दान करना चाहिए। स्नेह या कल्क के ऊपर पत्र रखकर ऊपर से कपड़ा लगाने से औषधसार और 'स्नेह' वस्त्र में नहीं लगता–(सु०चि०अ०१)।

प्रक्षालन—व्रण को क्वाथादि से धोना, शुद्ध करना तथा सुखाना इसके अन्तर्गत आता है। नाड़ी व्रण में नाड़ी यन्त्र द्वारा प्रक्षालन किया जाता है।

कल्क—व्रण में स्राव बन्द करने, उसमें कोमलता लाने, शोधनार्थ, रोपणार्थ 'कल्क' का प्रयोग किया जाता है। जैसा कि भगवान सुश्रुत ने कहा है। **"तस्योपयोगः क्षताक्षतेषु। यस्तु क्षतेषूपयुज्यते सभयः 'कल्क' इति संज्ञा लभते निरुद्धालेपनसंज्ञः। तेनास्राव निरोधो मृदुता पूतिमांसापकर्षणमनन्तदोषता व्रणशुद्धिश्च भवति**—(सु० अ० १८)। **विकेशिकावर्ती "तिलकल्क-मधु-घृताक्त वस्त्रस्य सूत्रस्य वा वर्ति 'विकेशिका' इत्युच्यते**—(डल्हण, सू० सु० १८/२१)। गले हुए मांस तथा पीप भरे पोले व्रणों में भरे, जाने वाले कल्क को 'विकेशिका' कहा जाता है।

कवलिका—"औषध वस्त्रायोरन्तरे या दीयते औषध संस्थापनार्थमोदम्बर्यादित्वक् पत्राणि" कवलिका इत्युच्यते—(डल्हण, सु० सू०१८/२० पर) औषध और वस्त्र के मध्य में जो उदुम्बरत्वक् पत्रादि औषधि को सम्भालने तथा यथास्थान रखने के लिए दिये जाते हैं उन्हें कवलिका कहते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(इ) अनुक्त लेशोक्त परिभाषा

योगनामकरण विधि—

यदौषधं तु प्रथमं यस्य योगस्य कथ्यते।
तन्नामादिः स योगोहि कथ्यतेऽत्र विनिश्चयः ॥ १॥
निर्मातुरथवानाम्ना, सादृश्यात् कल्पतस्तथा।
प्रधानद्रव्ययोगाद्वा कर्मयोगाद्यथाऽपि वा ॥ २॥

(१) योग की प्रथम औषधि के नाम से यथा, गुडुच्यादि क्वाथ

(२) प्रथम निर्माता के नाम पर यथा, अगस्त्य हरीतकी

(३) सदृश्यता से यथा, रसकर्पूर---कर्पूर के समान होने से 'रसकर्पूर' नाम रखा गया है।

(४) कल्प के नाम से यथा, ब्राह्मी स्वरस, त्रिफला चूर्ण

(५) प्रधान द्रव्य के नाम से यथा, चित्रक, हरीतकी, द्राक्षासव, कुटज धनवटी इत्यादि

(६) योग के गुणों के अनुसार यथा, शोधन तैल, रोपणवर्ती इनके अतिरिक्त योग निर्माता अपनी इच्छा से भी कोई नाम रख सकते हैं। यथा, लक्ष्मीविलास रस

(७) कर्म के अनुसार यथा, इच्छाभेदी रस

द्विरुक्त द्रव्य-ग्रहण परिभाषा

एकमेवौषधं योगेयस्मिन् यत्पुनुरुच्यते। मानतोद्विगुणं ग्राह्यं तद्द्रव्यं तत्त्वदर्शिभिः ॥

यदि एक ही योग में एक द्रव्य का दो बार उल्लेख हो तो दूने परिमाण में लेना चाहिये। किन्तु यदि पर्याय अन्तर के प्रयोग के कारण उस नाम से कोई दूसरा ही द्रव्य अभीष्ट हो, वहाँ द्विगुणमान न लेकर दूसरा ही द्रव्य लेना चाहिये।

अनुक्त परिभाषाः—कालेऽनुक्ते प्रभातस्याद गेऽनुक्ते जटाभवेत्। अतिस्थूल जटा या यास्युस्तासां ग्राह्या स्त्वचो बुधैः। गृहणीयात् सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुध्दिमान्। निर्देशः श्रुयते तन्त्रे द्रव्याणां यत्र यादृशः ॥ तादृश संविधातव्यः शास्त्राभावे प्रसिध्दितः। न्योग्राधेस्त्वचोग्राह्याः सारः स्यातबीजकादितः। धातक्यादेश्च पुष्पाणि स्नुह्यादे क्षीरमाहरेषत् ॥ फलं स्याद् त्रिफलादितः तालीसादेश्च पत्राणि शाखा गुडुच्यादेस्तु, निर्यासं रामठादितः। भागे नुक्तेतुसाम्य स्यात पात्रे नुक्तेतुमृण्मयम्। ऽद्रवे नुक्ते जलं ग्राह्यं तैलेऽनुक्ते तिलोद्भवम्। सैन्धवं लवणे ग्राह्यं सर्षपे श्वेत सर्षपः। क्षीरे दघिन घृते, मूत्रे पुरीषे गव्यमिष्यते चूर्णासवा लोहस्नेहा साध्याः धवल चन्दनैः ॥ कषाय लेपयोः प्रायो युज्यते रक्त चन्दनम्। यस्मिन्नंगे तु द्रव्याणां वीर्यभवतिचाधिकम्। तदेवांगं प्रयुञ्जीत मतं तत्वविदामिदम् ॥

अनुक्त परिभाषा

अनुक्त पदार्थ	ग्राह्य पदार्थ
समय (काल) अनुक्त हो	तो प्रभात काल
अंग	जटा (अतिस्थूल जटा की त्वचा)
	लघुमूल-समग्र या उसकी छाल
शास्त्रनिर्देश	प्रचलित प्रथा का अनुगमन करें
बटादिवृक्षों की	छाल (त्वचा)
असन खदिर	सार भाग (काष्ठ)
तालिसादि	पत्र
त्रिफलादि	फल
धातकी	पुष्प

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अनुक्त पदार्थ	ग्राह्य पदार्थ
स्नुही सदृश द्रव्य	क्षीर
गुडूची आदिकी	शाखाएँ
हिंगु नाड़ी हिंगु	निर्यास
गुग्गुलु	गोंद
प्रमाण अनुक्त	सब समान भाग
पात्र	मिट्टी का पात्र
द्रव (तरल)	जल
तेल विशेष	तिल तेल
लवण विशेष	सैन्धव
सर्षप	सिद्धार्थक (श्वेत सरसो)
दूध, दही, को मूत्र, पुरीष ग्रहण में प्राणि विशेष का उल्लेख नही तो	गव्यम्
चूर्ण, आसव	श्वेतचन्दन
अवलेहो लेपों में	रक्त चन्दन

विशेष वक्तव्य—जहां विशेष अंग या वस्तु का निर्देश शास्त्र में दिया न हो, वहां निम्न प्रकार से द्रव्यों का ग्रहण करना चाहिए। इसमें भी औषधि के जिस अंग में वीर्य अधिक हो, उसी अंग का ग्रहण करना चाहिए। यह सामान्य सिद्धान्त है।

लेशोक्त परिभाषा

योग अथवा द्रव्य के वर्गों के नाम मात्र से उस वर्ग के द्रव्य का ग्रहण करना 'लेशोक्त परिभाषा' (लेशमात्र से कथित) कहलाती है—यथा, त्रिफला से हरीतकी, बिभीतक, आमलकी फल ग्राह्य है।

यथा त्रिफला से हरड़, बहेडा आमला ग्राह्य अंग का ग्रहण होता है, ऐसे कुछ विशिष्ट वर्ग हैं जिनका आयुर्वेद में बहुधा नाम मात्र से प्रयोग होता है। छात्रों को इन्हें कण्ठस्थ कर लेना चाहिए। वर्ग या गुर्णा का वर्णन होने के कारण इसे परिभाषा या वर्ग परिभाषा भी कहते हैं।

(१) त्रिफला—'पथ्या-विभीत धात्रीणांफलैः स्यात्त्रिफला वरा'। समान मात्रा में मिले.हरड़-बहेड़ा-आमला को 'त्रिफला' या 'वरा' कहते हैं। इसे बड़ो 'त्रिफला' भी कहा जाता है। लघु त्रिफला में स्वल्पा-काश्मर्य-खर्जूर-परुषक फलैर्भवेत्" गंम्भारी, खजूर और फालसे के फल होते हैं किन्तु यह अप्रसिद्ध है।

(२) त्रिमद—"विडंग-मुस्त-चित्रैश्चत्रिमदं समुदाहृतम्" बायबिडंग, चीता और नागरमोथा से मिलकर 'त्रिमद' वर्ग बनता है।

(३) त्रिगन्धकं—'गन्धक-ताल-शिलाभिस्तुत्रिगन्धकमुदीरितम्' गन्धक, मनः शिला और हरिताल को मिलाने 'से' 'त्रिगन्धक' वर्ग बनता है।

(४) चतुर्जातिक—चतुर्जातं समाख्यातं त्वगेलापत्रकेशरे।

(५) त्रिजातकम्—तदेवत्रिसुगन्धिस्यात् त्रिजातकमकेशरम्॥ दालचीनी, इलायची, तेजपात को त्रिजातक या 'त्रिसुगन्धि'.तथा इनमें नागकेसर मिलाने से चतुर्जातिक बन जाता है।

(६) त्रिकुटु त्र्यूषण—पिप्पली, शृंगवेरं व मरिचं त्र्यूषणं विदुः।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(७) **चतुरुषणम्—कटुत्रिकं सकणामूलं कथितं चतुरूषणम् ॥ सत्र्यूषणं कणामूलं कथितं चतुरूषणम् ॥** पीप्पली, सोंठ और कालीमिर्च मिलाने से त्रिकुट, त्र्यूषण या त्योषा, वर्ग बनता है। यदि इन तीनों में पीपरामूल भी मिला दी जाएगी तो 'चतुरुषण' बन जाता है।

(८) **पंचकोल पिप्पली पिप्पलीमूलचव्यत्रिक नागरैः ।**

(९) **षडूषणम् पंचकोलमिदं प्राहुः पंचोषणमथापरे ॥** पीप्पल, पीपरामूल, चव्र, चीता, सोंठ ये पाँचों पंचकोल या पंचोषण कहलाते हैं। इनमें मिर्च मिलाने से 'षड्रूषण' बन जाता है। यथा, 'पंचकोलं समरिचं षडूषमुदाहृतम्' ॥

(१०) **मधुरत्रयम्—खण्ड गुडो माक्षिक च विज्ञेयं मधुरत्रयम् ।** खाण्ड, (चीनी) गुड़ और शहद को 'मधुर त्रय' कहते हैं।

(११) **चतुर्बीजम्—"मेथिकाचन्द्रशूरश्च कालाजाजीयवानिका, एतच्चतुष्टयं युक्तं चतुर्बीजमितिस्मृतम् ॥** मेथी, हालों, कलौंजी और अजवायन—इन चारों बीजों को मिलाने से 'चतुर्बीज' बनता है।

(१२) **दशमूल—"बिल्वश्योनाक गम्भारी पाटलागणिकारिका, एतन्महत्पंचमूलं ऋषिभिः समुदाहृतम् शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वय गोक्षुरैः । कनीयः पंचमूलं स्यादुभयं 'दशमूलकम्' ॥** बेल, अरलु, गम्भारी, पाढ़ल और अरनी को मिलाने से 'महत्पंचमूल' और सखिन, पिठवन, छोटी और बड़ी कटेरी, तथा गोक्षुरु से 'लघुपंचमूल' बनता है। इन दोनों को मिलाने से 'दशमूल' वर्ग बनता है।

(१३) **तृणपंचमूलम्—कुशः काशः शरो-दर्भः इक्षुश्चेति तृणोद्‌भवम्** कुशा, काँस, सरकण्डा, दूब और गन्ने की मूलों से 'तृणपंचमूल' बनता है।

(१४) **बल्ली पंचमूल—**में 'विदारीकन्द, सारिवा, हल्दी, गिलोय और उत्तरण का समावेश है। जैसा कहा है। **'विदारी-सारिवारजनी-गुडूच्योऽजश्रृंगी चेतिबल्ली सञ्ज्ञः'** ।

(१५) **कंटकी पंचमूल—**में करौंदा (करमर्दक) गोक्षुरु (त्रिकंटक) पियाबांसा (सैरेयक) शतावरी और गृध्रनखी का समावेश होता है।

(१६) **क्षारद्वयं—सर्जिका यावशूकंच क्षारद्वयमुदाहृतम् ।**

(१७) **क्षारत्रयम्—टंकणं सहितंचेदं क्षारत्रयमुदाहृतम् ॥** सज्जीखार और यवक्षार, दोनों को मिलाकर 'क्षारद्वय' और इनमें टंकण (सुहागा) मिलाने से 'क्षारत्रय' बनता है।

(१८) **लवणानि—सिन्धु सौवर्चलं चैव विड्सामुद्रिकं गणम् । एक, द्वि, त्रि, चतुः पंचलवणानि क्रमाद्विदुः ॥** क्रमशः एक लवण से सैन्धव, दो लवणों से सैन्धा और काला (सोंचर) नमक, तीन लवणों से सैन्धव, काला नमक और विड़ (नौसादर), इनमें सामुद्र लवण मिलाने से चतुर्लवणं और सैन्धा, सोंचर, नौसादर, सामुद्र लवण, और सांभर नमक को मिलाने से 'पंचलवण' कहलाते हैं।

(१९) **पंचवल्कल—**"न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थ पारीष-प्लक्षपादपाः पंच ते क्षीरिणी वृक्षास्तेषात्वक् पंचवल्कलम् ॥" बड, गूलर, पीपल, पारस, पीपल, और पाकर (पिलखन) इनकी छाल को पंच वल्कल और इन वृक्षों को पंच क्षीरीवृक्ष कहते हैं।

(२०) **पंचपल्लव—"आम्रजम्बुकपित्थानांबीजपूरक बिल्वयोः । गन्धकर्मणिसर्वत्र पत्राणि पञ्चपल्लवम् ।** आम-जामुन-कैथ-बिजौरा निम्बु और बेल के पत्ते मिलकर 'पंचपल्लव या पंचगन्ध भी कहलाते हैं। अन्य मतानुसार "जम्बुदाडिमश्रृंगाट कंचट पाढा पल्लवैः" इन पाँचों से 'पंचपल्लव गण' बनता है।

(२१) **अष्टवर्गः—जीवकर्षभकौमेदे काकोल्यावृद्धि- ऋद्धिके । अष्टवर्गोऽष्टभिर्द्रव्यैः कथितश्चरकादिभिः ।** जीवक, ऋषभक, मेदा-महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली ऋद्धि और वृद्धि इन आठों से मिलकर, अष्टवर्ग बना है।

(२२) **जीवनीयगण—अष्टवर्गः सयष्टिकोजीवन्तीमुद्गपर्णिका माषपर्णीयुतश्चायं 'जीवनीय' उदाहृतः ।** उक्त अष्टवर्ग में मुलेठी, जीवन्ती, मूंगपर्णी और माषपर्णी मिलाने से 'जीवनीय' गण बनता है।

(२३) **यमक—सर्पिस्तैलवसामज्जास्नेहेषु प्रवरंमतम् ।**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(२४) त्रिवृत्—द्वाभ्यांत्रिभिश्चतुर्भिस्तैयमकस्त्रिवृतोमहान् ॥—(वास० सू०)।

(२५) यमक महास्नेह—घी, तैल, चरबी, मज्जा—ये चारों स्नेहों में उत्तम माने गए हैं। जब इनमें से कोई भी दो स्नेह मिले हों तो यमक, तीन के मिलने पर 'त्रिवृत्' और चारों के मिलाने पर 'महास्नेह' कहलाते हैं।

(२६) क्षीराष्टकम्—'गव्यं माहिषमाज कारभंस्त्रैणमाविकम्। ऐभमैकशफं चेति' क्षीराष्टकमिहोच्यते॥ गाय, भैंस, बकरी, ऊँटनी, स्त्री, भेड़, हथिनी, तथा (एक खुरवाली) घोड़ी-गदही का दूध 'क्षीराष्टक' कहलाता है।

(२७) मूत्राष्टकं—मूत्रं गौंजाविमहिषीगजाश्वोष्ट्रखरोद्भवैः। मूत्राष्टकमिति प्रोक्तं मूत्रवर्गस्तथैव च। गाय, बकरी, भेड़, भैंस, हाथी,घोड़ा, ऊँट, गधा, इन आठ प्राणियों का मूत्र 'मूत्राष्टक' कहलाता है। इसे ही 'मूत्रवर्ग' भी कहते हैं।

(२८) पंचगव्यः—पंचगव्यं दधि-क्षीर-घृतमगोमूत्र-गौमयैः।
एवमेव विजानीयात् पंञ्चाजं पन्चमाहिषम्।

गाय के दूध, दहि, घी, मूत्र और गोबर को 'पंचगव्य' कहते हैं। इसी प्रकार बकरी से प्राप्त इन पाँचों को 'पञ्चाज' और भैंस की पाँचों चीजों को 'पंञ्चमाहिष' कहते हैं। प्राणियों के विषय में यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि उनसे प्राप्त पदार्थ स्वस्थ प्राणियों से तथा उनके भोजनजीर्ण हो जाने पर लेना चाहिए। जैसा, कहा भी है।

अरुग्णानां वयःस्थानां चर्मरोमनखादिकम्।
क्षीर-मूत्र-पुरीषाणि जीर्णाहारे समाहरेत् ॥

गणविषयक परिभाषा—

समस्तं वर्गमर्धवा यथालाभमथापिवा।
प्रयुञ्जीतभिषक्प्राज्ञो यथोद्दिष्टेषु कर्मसु ॥ (सु० सू० ३१)
गणोक्तमपि यद्द्रव्यंभवेत् व्याधावयोगिकम्।
तदुद्धरेद्यौगिकं तु प्रक्षिपेदप्यकीर्तितम् ॥ (सु० चि० १)

विविध गणों के जो कर्म कहे गए हैं उन कर्मों के लिए प्रयोग करते समय गण की सारी, आधी या जितनी मिल सकें उनका ही प्रयोग कर लें। यदि गण में कोई औषधि, उस कर्म के लिए हानिकारक हो, तो उसे निकालकर अन्य अनुपात भी गुणकारी द्रव्य गण में डाल देने चाहिए।

(ई) भैषज्य कल्पना
(Pharmacy)

औषध द्रव्यों का उनके मूल रूप में प्रयोग नहीं किया जाता, अपितु चूर्ण, स्वरस, काढ़ा, वटी, आदि परिवर्तित रूप में। इस स्वरूप परिवर्तन का नाम ही, 'भैषज्य कल्पना' कहा गया है।

"सर्वदौषध प्राप्तिमं अर्थ, शीघ्रं संशोषणाय च। भैषज्यवीर्यरक्षार्थं पूर्णारोग्यकृतेतथा।
मात्राप्रमाणभेदार्थं रुचिवैचित्र्यतस्तथा। भेषजानि प्रकल्प्यन्ते, नानारूप विधानतः ॥—महेन्द्र

(१) इन कल्पों के कारण औषधिसुरक्षित रहती है। सर्वत्रऋतु और काल में उसका उपयोग हो सकता है।

(२) विविध कल्पों से औषधि का शोषण शीघ्र शरीर में होता है। यथा, वटी की अपेक्षा चूर्णों का तथा उनकी अपेक्षा क्वाथ, आसव आदि का शोषण शीघ्र होता है।

(३) अनेक कल्पों द्वारा यथा, गुडूचीसतं-औषध का वीर्य सुरक्षित रहता है।

(४) शीघ्र स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से भी विविध कल्पों का निर्माण किया गया है।

(५) मात्रा की दृष्टि तथा सुगमता से ग्रहण करने के विचार से भी कल्पनाओं में भेद रहता है। यथा, चूर्ण की अपेक्षा वटी की मात्रा स्वल्प होती है और वह सरलता से सेवन की जा सकती है।

(६) रोगियों की रुचि भी भिन्न-भिन्न होती है। कोई गोलियों को पसन्द करते हैं, दूसरे अवलेहों को। बच्चे मधुर तथा खाने में सुगम औषधियों को पसन्द करते हैं। इस रुचिवैचित्र्य को ध्यान में रखकर ही आचार्य चक्रपाणि ने कहा है। 'सातत्यात् स्वाद्वभावाद्वा पथ्यं 'द्वेष्यत्वगामतम्'।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उक्त उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर द्रव्यों का जो रूपान्तर किया जाता है, वही भैषज्य कल्पना है। द्रव्यों के प्रयोग एवं गुणकर्माधान से इसका सम्बन्ध होने के कारण यह द्रव्य गुण-शास्त्र का ही एक अंग माना जाता है—

कल्प
(Pharmaceutical Preparations)

रोगी के सेवन के लिए द्रव्यों का जो रूपान्तर किया जाता है उसे 'कल्प' कहते हैं। इनकी पृथक्-पृथक् गणना संभव नहीं, अतः वर्गीकरण किया जाता है। साधारणतः इन्हें निम्न वर्गों में विभाजित किया जाता है।

- कल्प
  - औषधकल्प
    - कषाय
    - स्नेह
    - संधान
    - मिश्रकल्प
  - आहारकल्प
    - पेय
    - यवागू
    - मण्ड
    - विलेपी आदि

मूलभूत-पंचकषायकल्प योनि

पंच विधकषाय योनि—कषाय योनयः पंचरसा, लवणवर्जिता—(अ० हृ० क० ६)। 'कषाय' संज्ञा के दो अर्थ शास्त्र में अभिप्रेत हैं—(१) क्वाथ या काढे में (२) औषध कल्पना में। यहाँ 'कषाय' शब्द दूसरे अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ हैं। औषधियों के विविध रूपों की योनि-उत्पत्ति स्थान-पाँच रस हैं। उनके नाम से ही औषध कल्पना का नामकरण किया जाता है। यथा, मधुरकषाय, अम्लकषाय, कटुकषाय, तिक्त-कषाय और कषाय-कषाय। रसों से तात्पर्य रस वाले द्रव्यों से है। क्योंकि, रस तो स्वयं गुण रूप है। गुण कर्मों के आश्रय नहीं हो सकते। किंच गुण बिना द्रव्य के रह भी नहीं सकते। लवण रस किसी कषाय की योनि नहीं है। इसके निम्न कारण हैं—

(१) लवण सदा शुष्क रहता है। अतः उससे स्वरस नहीं निकाला जा सकता।

(२) उक्त कारण से ही इससे कल्क (चटनी) नहीं बनाया जा सकता है। क्योंकि, सूखे द्रव्य में कोई द्रव (तरल) मिलकर या गीले द्रव्य को पीसकर कल्क बनाया जाता है। लवण में द्रव मिलाने से वह घुल जाता है। यद्यपि चूर्ण कल्क के रूप में लवण सदा ही पाया जाता है। तथापि कल्क रूप में नहीं माना जा सकता, क्योंकि जो पदार्थ पहले चूर्ण रूप में न हो, उसको चूर्ण बनाना 'औषधकल्पना' कहलाती हैं। वह लवण में संभव नहीं, क्योंकि वह सदा चूर्ण रूप में ही रहता है। किंच कल्पना गुणान्तर आधान के लिए की जाती है। वह भी चूर्णरूप लवण में नहीं होती।

(३) क्वाथ, शीत और काष्ट कल्पना भी लवण में असंभव है। क्योंकि, इन तीनों कल्पनाओं में औषध का सारभाग द्रव्य में आ जाता है। तथा उसका फोक (सिट्टी, फल्गु) फेंक दिया जाता है। उसमें लवण सारा ही जल में घुल जाता है। उसमें असार भाग रहता ही नहीं। अतः पंचविध कषाय कल्पना लवण रस की संभव नहीं है। यह शुद्ध लवण के विषय में है। अन्य रसों में मिश्रित लवण रस युक्त द्रव्य को कल्पना तो हो जाती है। इस विषय में आचार्य चक्रपाणि दत्त का कथन है :—

"लवणस्य कषायत्वं नेष्यते, तत्रस्वरसादि कल्पनामसंभवात्। तथा च-न लवणस्य स्वरस कल्पना योगः संभवति, यतः कल्को हि आर्द्र द्रव्यस्यपेषणात्, शुष्क द्रव्यस्य द्रवेण पेषणाद्वा क्रियते। लवणं हि द्रव योगाद्द्रवमेव भवति। यद्यपि कल्कस्यैव भेदश्चूर्णं, चूर्णता लवणस्य संभवति, तथापि लवणस्य चूर्णरूपता न पूर्वस्मादचूर्णरूपात् कश्चिच्छक्तिविशेषमापादयति, शक्तिविशेष कल्पनार्थंच कल्पना क्रियते, तस्माच्चूर्णरुपमपि लवणस्यकलपनमकल्पनमिव।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

श्रृत-शीत-फाण्ट कल्पनास्तु द्रव्यस्य कात्स्र्न्येनानुपयोज्यस्य तत्तत्संस्कार वशाद्द्रवेषु द्रव्यस्य स्तोकावयवानुप्रवेशार्थमुपदिश्यते, लवणे चैतन्य संभवति, लवण हि द्रवसम्बन्धे सर्वात्मनैव द्रवमनुगतंभवति । तस्माल्लवणं पृथक् प्रयोगाभावात् कल्पनाभावा-च्चाचार्यैणां कषाय ,संज्ञा प्रणयने निरस्तमिति ।" उक्त मधुरादि रसों को कषाय संज्ञा अग्निवेश तन्त्र तथा तदनुयायियो में प्रचलित हैं, अन्यत्र नहीं ।

पञ्चविध कषायकल्पना—"पंञ्चविध कल्कः, श्रृत, शीत, फाण्ट कषाय इति । तेषां यथापूर्व बलाधिक्यम् । अतः कषाय कल्पना ध्यातुरनुं र बलापेक्षिणी, न त्वेवं सर्वाणि सर्वत्रोपयोगीनि भवन्ति—(च० सू० अ० ४)

(१) स्वरस,[1] (२) कल्क (चटनी या चूर्ण)[2] (३) श्रृत (क्वाथ-निर्यूह-काढा)[3] (४) शीत[4] (५) फाण्ट[5] ये पांच प्रकार की औषधि की कल्पनाएं हैं । इनमें स्वरस सबसे बलवान् होता है और क्रमशः कल्क, श्रृतशीत, और फाण्ट बलहीन या लघु होते जाते हैं । अतः, औषध सेवन कराते समय रोगी तथा रोग का बलाबल देखकर स्वरस, कल्क, क्वाथ, शीत या फाण्ट का प्रयोग किया जाता है । एक रोगी के लिए सभी कषायों का उपयोग नहीं किया जाता । अतएव आचार्य ने उदाहरण दिया है ।

'मण्डूक पर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः क्षीरेण यष्टिमधुकस्य चूर्णम् ।—(च० चि० अ०)

औषध की उक्त पांच मूलभूत स्वरूप या कल्पनाएं हैं । इन्हीं में अन्यों का अन्तर्भाव आ जाता है । यथा, अवलेह बनाने में भी औषध द्रव्यों का रस, चूर्ण कल्क या क्वाथ का ही प्रयोग होता है । उसे गाढ़ा कर लिया जाता है, यह और बात है । घृत या तैल पाक में भी कल्क, क्वाथादि का ही प्रयोग होता है । अतः उक्त पांचों कल्पनाएं ही मौलिक हैं, शेष सब इन्हीं के विस्तार मात्र हैं ।

(१) स्वरस कल्पना (Expressed Juice)—"तत्र सद्यः समुद्धृत प्रक्षालिताक्षुण्णस्य तान्तव निष्पोडितस्य-निर्यस्तिः स्वरस"—(विधिः अ०संक ८) "स्वरसानामलाभे त्वयं स्वरस विधिः चूर्णानामाढ़क कमाढकमुदकस्याहोरात्र अहोरात्र स्थितंमृदित पूतं स्वरसवत् प्रयोज्यम्—(अं० स० क०)

ताजी हरी वनस्पति को या उसके किसी भाग को लेकर स्वच्छ जल से धोकर शिला पर पीस कर, उदूखल में घोटकर, या यन्त्र द्वारा दबाकर जो रस निकाला जाता है उसे वस्त्र से छान कर प्रयोग करें यही 'स्वरस' कहलाता है ।

स्वरस के अभाव में निम्न अनुकल्प बना कर प्रयोग कर सकते हैं । शुष्क का चूर्ण बना लें । इस चूर्ण के समान ही द्रव पदार्थ उसमें मिलाकर मृत्पात्र या अन्य पात्र में अहोरात्र (२४ घण्टे) एकान्त में रख छोड़े । दूसरे दिन हाथ से मसल कर छान लें और स्वरस के स्थान पर प्रयोग करें । इस प्रकार के स्वरसानुकल्प का प्रयोग प्रायः 'भावना' देने के काम आता है ।

भावनालक्षणं—द्रवेण यावता सम्यक् चूर्णं सर्वम्लुतंभवेत् । भावनायाः प्रमाणंतच्चूर्णं प्रोक्तं भिषग्वरैः । चूर्णादि में स्वरस की भावना देना हो तो उनमें इतना द्रव डालना चाहिए कि सारी औषध भली प्रकार भीग जाए । पुनर्मदन करके इसे सुखा देना चाहिए । एक बार सूख जाने पर पुनः भावना देनी चाहिए । भावनाएं औषधों का गुण बढ़ाने और दोषनाशन के लिए दी जाती हैं । जैसा भगवान् चरक ने कहा है **भूयश्चेषा बलाधानं कार्यं स्वरसभावितै । सुभावितं ह्यल्पमपिद्रव्यंस्यात् बहुकर्मकृत् ।** (च० क० १२)

स्वरस मात्रा— **स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमंर्धंप्रयोजयेत् । अहोरात्रोषितं चाथ पलपात्रं रसं पिबेत ॥** स्वरस की मात्रा आधापल (२ तोले) होती है, क्योंकि यह गुरु तथा बलवान् होता है । अनुकल्प की मात्रा १ पल (मात्रा १ पल, ४ तोला) समझे, यह औसतन मात्रा है । द्रव्य के वीर्यानुसार न्यूनाधिक संभव हैं ।

पुटपक्व स्वरस विधि— नीम, बेल, वासा आदि के पत्तों का रस कुटने और पीसने से ठीक प्रकार से नहीं निकलता, अतः उन्हें गरम करके उनका स्वरस निकाला जाता है । इस विधि का नाम 'पुटपाक विधि है' ।

---

(1) Juice. (2) Paste or Pulverata.
(3) Decoction. (4) Cold infusion.
(5) Hot infusion.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

"पुटपक्वस्य कल्कस्य स्वरसोगृह्यतेयतः। अतस्तुस्वरसाध्याये विधिस्तस्योच्यते मया ।। (१)
द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलंततः। गोलं विधाय, वृक्षाणां पत्रैरावेष्टेय्दृढम् । सूत्रेण बध्कदा गोधूमपिष्टेन परिलेपयत् । आर्द्रं मृदाऽथूवालिपत्वा, गोमयाग्नौ प्रतापयेत् । अंगार वर्णां चमृदं दृष्टवा वन्हेः समुद्धरेत् । ततो रसं वस्त्रपूत पुटपक्वं समाहरेत् । इस प्रकार पुटपाक विधि द्वारा स्वरस निकाला जाता है—

अतः, स्वरस के प्रकरण में उसका वर्णन करना उचित है। ताजी औषध को लेकर पत्थर या खरल में पीसकर कल्क बना ले, यदि द्रव्य सूखा हो तो उसमें थोड़ा जल मिला-मिला कर पीसकर चटनी बना ले। इस कल्क का गोला बना कर ऊपर से जामुन, आम, गम्भारी, ढाक के पत्तों से लपेटकर गोला बनाकर सूत से कसकर बाँध दें। पुनः उसके ऊपर एक अंगुल (३/४ इंच) मोटा गेहूँ के आटे का या मृदु मिट्टी का लेपकर उसे थोड़ सा धूप में सुखा लें। फिर उपलों की धूम्ररहित आग में या निर्धूम कोयलों की मृदु अग्नि पर रखें। जब मिट्टी लाल हो जाय तो उसे उतार कर, थोड़ा ठंडा होने दें। तप्त मिट्टी, सूत, पत्रादि को उतारकर कल्क को दबाकर वस्त्र से छानकर स्वरस ग्रहण करें। यहीं पुटपक्व स्वरस कहलाता है।

स्वरस में प्रक्षेप की मात्रा — घृतं सितां गुडं क्षौद्रं कोलमात्रं रसेक्षिपेत् । लवणक्षारचूर्णानि योग्य मानानि दापयेते ।। घी, मिश्री, गुड-मधु—यदि स्वरस में डालने हों, तो स्वरस से चौथाई मात्रा में डालने चाहिए। यथा, दो तोले स्वरस में आधा तोला। लवण-क्षार-पीपलादि तीक्ष्णवीर्य पदार्थ रोग और रोगी के बल को देखकर योग्य प्रमाण में डालें।

कल्क कल्पना
(Paste)

द्रव्यमार्द्रं क्षिलापिष्टं शुष्कं बा सजलंभवेत् । प्रक्षेपावाप कल्कास्ते तन्मानं कर्षसम्मितम् ।।—(शा०म०सं० ५)
कल्के मधुघृतं तैलं देयं द्विगुणमात्रया। सितागुडौसमंव्यातद् द्रवादेयाश्चतुर्गुणाः ।।

आर्द्र या गीले द्रव्य को जल से धोकर और शुष्क द्रव्य को चूर्ण बनाकर उसमें आवश्यक प्रमाण में जल मिलाकर शिला पर पीसना 'कल्क' कहलाता है। प्रक्षेप, आवाप भी उसी के पर्याय हैं। साधारण भाषा में कल्क को 'चटनी' कह सकते हैं। इसकी मात्रा १ तोला है। यह साधारण मात्रा है। तीक्ष्णवीर्य द्रव्य की आधा तोला और मृदुवीर्य की १½ तोला समझें। कल्क में प्रक्षेप्य द्रव्य का प्रमाण निम्नलिखित है। मधु, घृत-तैल-कल्क से दुगुने, गुड़ और मिश्री की मात्रा कल्क के समान तथा द्रव द्रव्य कल्क की अपेक्षा चार गुने मिलाने चाहिए।

चूर्ण कल्पना
(Powder)[1]

कल्क का ही एक भेद चूर्ण माना गया है। अतः उसका उल्लेख भी यहाँ किया गया है। क्योंकि, "तस्य समस्त द्रव्य परित्यागादाप्लुभोययोगाच्च कल्कादभेदः—(अ० सं०क० ६) चूर्ण में भी कल्क के समान सारी औषधि ग्रहण की जाती है, उसका कुछ भी अंश छोड़ा नहीं जाता तथा द्रव पदार्थ मिलाकर उसका प्रयोग किया जाता है। चूर्ण लक्षण-मात्रा प्रक्षेपद्रव्यप्रमाण—

अत्यन्त शुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् । तत्स्याच्चूर्णरजः क्षौदः तन्मात्रा कोलसम्मिता ।
चूर्णे गुडः समोदेयः शर्करांद्विगुणा मता । लिच्याच्चूर्णं द्रवैः सर्वै घृताद्रवैर्द्विगुणोन्मितैः ।
पिबेच्चतुर्गुणैरेव चूर्णमालोडितं द्रवैः—(शा० म० सं० ६)

अत्यन्त शुष्क पदार्थ को पत्थर, खरल, इमामदस्ता (उदूखल) में पीसकर वस्त्र में छान कर बारीक चूर्ण बनाया जाता है। इसे क्षोद और रज भी कहा जाता है।

---

1. अंग्रेजी में Powders और लेटिन में Pulveratas कहा जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मात्रा—तीक्ष्णवीर्य चूर्ण	—१ माशा से २ माशा तक
मध्यवीर्य चूर्ण	—३ माशा से ६ माशा तक
मृदुवीर्य चूर्ण	—६ माशा से १ तोला तक

व्यवहार्य मात्रा समझें। अपवाद तो सर्वत्र पाए ही जाते हैं।

प्रक्षेप प्रमाण—गुड़ चूर्ण के समान, शर्करा, घी, शहद, तैलादि द्विगुण, जल, क्वाथादि द्रव पदार्थ चार गुना मिलाए जाते हैं।

वक्तव्य—गुणाधान तथा दोषनाशनार्थ चूर्णों में भावना दी जाती है, उसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। चूर्ण एक पदार्थ का अथवा अनेक पदार्थों को मिलाकर बनाया जाता है। प्रायः निम्न चूर्णों का प्रयोग अधिकतर किया जाता है।

अविपतिकरचूर्ण, अश्वगन्धादिचूर्ण, एलादिरसायन, गंगाधर, जातिफलादि, तालीसादि, त्रिफला, द्राक्षादि, नवायस, नाराच चूर्ण, नागकेसरादि, नरसिंह, पुष्यानुग बालचातुर्भद्र, बिल्वादि, बृहन्नायिका, मंजिष्ठादि महामंजिष्ठादि, मधुरविरेचन (स्वादिष्टविरेचन), लवणभास्कर, शतपत्र्यादि, श्रृंग्यादि, सारस्वत, सितोपलादि, सुदर्शन, सुधाषट्क, संग्राहक, हिंग्वाष्टक, हिंग्वादि।

श्रृतकषाय (क्वाथ) कल्पना—काढों को बनानें की विधि तथा मात्रादि निम्नलिखित है। इनका प्रयोग रोगनाशनार्थ और विशेषकर औषधियों के अनुपान रूप में किया जाता है। यह प्रायः शुष्कद्रव्यों का बनाया जाता है। जहाँ तक हो ताजा (प्रत्यग्र) बनाकर ही प्रयोग करना उत्तम है। दोषादि को देखकर कोष्ण (गुनगुना) या शीत क्वाथ पिलाना चाहिए।

क्वाथ कल्पना
(Decoction)

"तत्रस्त्यतम परिमाणसंमितानां तथायोग त्वंक पत्र-मूलादीनामातपपरिशोगितानां छेद्यानि खण्डशश्छेदयित्वा, भेद्यानि अणुशो भेदयित्वा, अवकुट्य, अष्टगुणेन, षोडशगुणेन वाडम्भसा अभिषिच्य, स्थाल्यांचतुर्भागार्कशष्टं क्वाथयित्वाऽप-हरेदित्येष कषायकल्प, अथवोदक द्वि द्रोणेत्वक्-पत्र-फल-मूलादीनांतुलाभावाप्य चतुर्भागावशिष्टं निष्क्वाथ्यापहरेदित्येष कषायकल्प।—(सु० चि० ३१)

मृदौ चतुर्गुणं 'देयं' मध्यमेऽष्टगुणं तथा। द्रव्ये तु कठिने देयं बुधैः षोडशिकं जलम्। कर्षादितः फलं यावत् क्षिपेत षोडांशकं जलम्। तदूर्ध्वंकुडवं यावत्तोयमष्टगुणं भवेत्। तदूर्ध्वं प्रक्षिपेन्नीरं खारीं यावच्चतुर्गुणम्॥ क्वाथस्य मध्यमा मात्रा पलमानाप्रकीर्तिता। औषध द्रव्यों को अग्नि पर पकाने का नाम क्वाथ है। जैसा आचार्य ने कहा है "वन्हौ तुक्वाषितं द्रव्यं श्रृतमाहुश्चिकित्सका"—(च० सू० ४)।

क्वाथ—जिनका काढा बनाना हो। उन द्रव्यों को साफ करके उन्हें काट या कूट कर उनके छोटे-छोटे खण्ड कर ले। पुनः पात्र तल में नीचे की ओर मिट्टी से लेप किए हुए मृत्पात्र, लोहे या ताँबे के पात्र में भरकर समस्त द्रव्य की अपेक्षा ५ गुणा (१ तुला द्रव्य- दो द्रोण द्रव) ८ गुणा या १६ गुणा जल का अन्य द्रव्य मिलाकर मृदु अग्नि पर पका ले। जब चतुर्थांश द्रव शेष रह जाए तो छानकर व्यवहार करें। कुछ आचार्यों के मत में औषध तथा जल का अनुपात निम्न है।

(i) मृदु द्रव्य	चार गुणा जल या द्रव
(ii) मध्यम द्रव्य	आठ गुणा जल या द्रव
(iii) कठोर द्रव्य	सोलह गुणा जल या द्रव

एकीय मत से—

(१) १-४ तोला तक द्रव्य में (कर्ष-पल तक) —सोलह गुणा द्रव

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(२) पल-कुडव तक द्रव्य में
(५ तोला-१६ तोला) —८ गुणा द्रव
(३) इससे अधिक मात्रा में द्रव्य हो —४ गुणा द्रव डालना चाहिए ।

निचले दोनों मत अनार्ष हैं। केवल चार गुणे जल में काढा बनाने से बहुधा मृदु द्रव्यों का भी रस पूर्णतया नहीं आ पाता तथा कुड़व से उपर के द्रव्यों में केवल चतुर्गुण जल डाले तो अनेक द्रव्यों का सार क्वाथ में आना असम्भव ही है। क्वाथ के निर्माण में जल के प्रमाण पर भी उसमें औषधों का सार आना निर्भर है। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर आचार्य वाग्भट्ट ने कहा—"बह्वल्पपानीयग्राहितामोषधानामाकलय्य, यावताः मुक्तरसां स्यात्तावदुदकमासेच-येच्छोषयेच्च—(अ० सं० क० ८)।

अर्थात् औषध द्रव्य कितना जल पी जायेंगे तथा कितने जल से औषधि का सार निकल आएगा, इन दो बातों को ध्यान में रखकर जल या द्रव डालना चाहिए, और उबालना चाहिए। जब तक औषध का सार जल में न आ जाए तब तक उसे उबालना चाहिए। यही उचित है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ की घुलनशीलता पृथक्-पृथक् होती है। साधारणतः सुश्रुत मार्ग का (५-८-१६ गुणा जल) अनुकरण किया जा सकता है।

क्वाथों के निर्माण में जल के स्थान पर दूध, अर्क आदि अन्य द्रव द्रव्यों का भी प्रयोग किया जाता है। जिस द्रव्य का काढ़ा बनाना हो उसे २४ घण्टा पहले भिगोकर रख देना और दूसरे दिन उसका काढ़ा बनाना उत्तम है। क्वाथ की मध्यम (औसतन) मात्रा ४ तोला (१ पल) है।

क्वाथ में प्रक्षेप प्रमाण—

क्वाथेक्षिपेत् सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः। वात-पित्त-कफातं के विपरीतं मधु स्मृतम् ।।
जीरकं गुग्गुलं क्षारं लवणं च शिलाजतु। हिंगु त्रिकटुकं चुर्णं क्वाथे माषद्वयोन्मितम् ।।
कल्कं घृतं, गुडं, तैलं मूत्रं च कर्षसम्मितम्। क्वाथ में प्रक्षेप्य द्रव्यों को निम्न प्रमाण में डालना चाहिए।

प्रक्षेप्य द्रव्य	वातिक रोग	पैत्तिक	कफज
(१) मिश्री या चीनी	चतुर्थांश	अष्टमांश	षोडशांश
(२) मधु	षोडशांश	अष्टमांश	चतुर्थांश

अन्य द्रव्यों के लिए निम्न अनुपात है। क्वाथ की मध्यम मात्रा में—जीरा, गुग्गल, क्षार, नमक, शिलाजतु, हींग, त्रिकटु दो माशा की मात्रा में, तथा कल्क, घी-तैल, गुड-गोमूत्र १ तोला की मात्रा में डालने चाहिए। गोमूत्र तथा एरण्ड तैल आवश्यकतानुसार अधिक मात्रा में भी डाले जा सकते हैं। क्वाथ में ऊपर से मिलाए जाने वाले द्रव्यों शहद आदि को 'प्रक्षेप' कहा जाता है। क्वाथ प्रायः उन द्रव्यों का बनाया जाता है जिनका सत्वजल में घुल सकता है तथा जिनमें ताप पर उड़ने वाले तत्व नहीं रहते। चन्दन, सौफ आदि का अर्क या फाण्ट, शीत कषाय बनाकर, प्रयोग करना उत्तम है।

क्वाथों के विषय में हारीत-मत—

पाचनो दीपनीयश्च शोधनः शमनस्तथा। तर्पणः क्लेदन, शोधी क्वाथः सप्तविधः स्मृतः।
पाचनोऽर्धावशेषोस्याच्छोधनो द्वादशांशकः। क्लेदनश्चतुरंशश्च शमनोऽष्टावशेषितः।
दीपनीयोद्रर्गांशास्तु तर्पणः, समांशकः। विशोषी षोडशांशश्च क्वाथ भेदाः प्रकीर्तिताः।
—(स्थान ३ अ० १)

संक्षेप में क्वाथ के निम्न सात भेद हैं—

(१) पाचन—आमदोषों का पाचक है। इसके निर्माण में आधा जल या द्रव सुखाया जाता है।
(२) दीपन—यह मलों का उद्दीपक है। इसमें दशवां भाग द्रव अवशेष रखा जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(३) **शोधन**—मलों को बाहर निकालने वाला, इसमें तरल का १२ भाग शेष रखा जाता है।

(४) **शमन**—रोगों तथा दोषों को शान्त करने वाला। इसमें आठवां भाग द्रव शेष रखा जाता है।

(५) **तर्पण**—यह धातुओं का तर्पक है। इसमें समांश द्रव शेष रखा जाता है।

(६) **क्लेदन**—हृदय का उत्क्लेद (जी मचलाना) करने वाला, इसमें चतुर्थांश द्रव रखा जाता है।

(७) **विशोषी**—शोषण करने वाला (स्रावादि को सुखाने वाला), इसमें सोलहवां भाग द्रव अवशिष्ट रखा जाता है।

नोट—हारीत का यह उक्त मत अन्यत्र नहीं मिलता। अतः चिन्त्य है।

ग्राह्य तथा त्याज्य क्वाथ—

न शोषयेत्पुनः क्वाथं न च भूमिगतंपुनः। दोषा संशमने नैते प्रशस्तागदकर्मणि।
कृष्णं नीलं घनं रक्तं पिच्छिलं शिथिलंचयत्। दग्धं कुणप गन्धं च विस्त्रगन्धं-परित्यजेत्।
द्रव्यं गुणानुवर्णेन द्रव्य गन्धं-विनिर्दिशेत। तद्वद्विशुद्ध संच्छायं कषायममृतोपमम्॥

(अ० स० स्थान ३ अ० १)

उचित मात्रा से अधिक द्रव को सूखने न दें। एक बार आग पर से उतार कर पुनः न उबाले। काला, नीला, गाढ़ा, लाल, पिच्छिल, शिथिल, जल, दुर्गन्धिक्वाथ त्याज्य है। किन्तु जिस द्रव्य का काढ़ा बनाया हो। उसके अनुरूप गुण, वर्ण, गन्ध आने पर तथा काढ़े का स्वच्छ, स्वरूप देखकर कषाय का प्रयोग करें। वह अमृत समान है। चिकित्सा से प्रायः निम्न क्वाथों का प्रयोग किया जाता है।

अभयादि क्वाथ, अश्मरीहर (पाषाणभेदादि), गुडूच्यादि, गोजिह्वादि (मधुयष्टयादि) तगरादि, तृण पंचमूलादि (मूत्रलकषाय) दशमूल, धान्यपंचक, न्यग्रोधादि, पथ्यादि, पंचतिक्त, पटोलादि, पुनर्नवाष्टक, पुनर्नवादि, प्रमेहहर, भार्ग्यादि-क्वाथ, मंजिष्ठादि, महामंजिष्ठा, मांस्यादि, वत्सकादि, विडंगादि, षडंग पानीय, ह्रीबेरादि इत्यादि।

क्वाथों का उपयोग न केवल औषध या उनके सहपान या अनुपान में ही होता है, अपितु वे सेचन, आश्च्योतन व्रण-धावन और बाह्य प्रयोगार्थ, तथा घृत-तैलादि औषध साधनार्थ भी किया जाता है। **क्वाथ के समान** कुछ अन्य कल्पनाएँ भी आयुर्वेद में प्रयुक्त होती हैं। निर्माण विधि में साम्य होने के कारण उन्हें भी यहाँ ही लिखा गया है।

प्रमथ्या—"प्रमथ्यामिति पाचन दीपन कषायन्, प्रमथ्या शब्दोहि वृद्ध परम्परया पाचनदीपनकषाये। वैद्यक शास्त्रे पारिभाषितः श्रूयते"—(चक्रः, च० चि० अ० १९) कृतयूषः प्रमथ्या स्याद्द्रव्यात् कल्की कृताच्छुभात्॥-(अरुणः, अ० कृ० चि० ६)। दीपन-पाचन क्वाथ को वृद्धवैद्य व्यवहार के अनुसार 'प्रमथ्या' नाम दिया गया है। अरुणदत्त ने तन्त्रान्तर वचन को उद्धृत किया है, जिससे प्रतीत होता है कि द्रव्य का कल्क बनाकर उसका 'कृतयूप' बनाना प्रमथ्य कहलाती थी।

"प्रमथ्या प्रोच्यते द्रव्य पलात्कल्की कताच्छृता तोयेऽष्ट गुणितेतस्याः पानमाहुः पलद्वयम्॥—(शा०मं०सं० २) एक पल द्रव्य का चूर्ण बनाकर, आठ गुणे जल में काढ़ा बना लें यहाँ प्रमथ्या है। मात्रा दो पल (४ तोला) है। रोग रोगी तथा औषध के वीर्य के बलाबल के अनुसार मात्रा न्यूनाधिक हो सकती है।

लाक्षा रस—षड्गुणेनाम्भसालाक्षां दोलायन्त्रे-विपचयेत्। त्रिसप्तधा परिस्राव्या लाक्षारसाभिमं विदुः॥ लाख को छः गुने जल में दोला यन्त्र द्वारा पकायें और जब जल चौथाई रह जाए तो उसे २१ बार छान लें। यह लाक्षा रस तैलादि के बनाने में प्रयुक्त होता है।

मांसरस कल्पना—रसे साध्ये जलं देयं मांससिध्यति यावता। पलाष्टकं जले प्रस्थेघनेऽथमध्यमेतुषट्। मांस-स्यवष्टनं कुर्यात् कुडवं तनुके रसे॥ मांस रस बनाने के लिए उतना जल लेना चाहिए, जितने जल में वह अच्छी तरह पक जाए तथा उसका रस उसमें आ जाए। अन्य आचार्यों के मत में मांसरस की घनता के अनुसार जल का प्रमाण भिन्न-भिन्न होता है। यथा—

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गाढ़ा मांसरस बनाना हो तो १ प्रस्थ जल में आठ पल,
मध्यम बनाना हो तो १ प्रस्थ जल में छः पल,
पतला (तनु) बनाना हो तो १ प्रस्थ जल में १ कुडव (४ पल) मांस डालना चाहिए।

यूष कल्पना—द्रवैर्बहुविधै द्रव्यैस्तथाचान्नैरतण्डुलैः। 'यूषा' इत्युच्यते सिद्धो, (काश्यप सं० नवम् पर्व)
कर्षमष्टमिकांवापि कल्कद्रव्यस्यवापलम्। वारिप्रस्थेनविपचेत् स द्रवो 'यूष' उच्यते॥

जल, काढ़ा-दूध आदि द्रव पदार्थों में शिम्बी धान्य (दालें, मूँग-मसूर-चना आदि) डाल कर जो कल्प बनता है, वह 'यूष' कहलाता है। इसमें जलादि का प्रमाण निम्न हैं—

औषध द्रव्य	अन्य द्रव्य	द्रव
तीक्ष्णवीर्योषध द्रव्य १ तोला	४ तोला	६४ तोला
मध्यमवीर्योषध द्रव्य २ तोला	४ तोला	६४ तोला
मृदुवीर्योषध द्रव्य ४ तोला	४ तोला	६४ तोला

सबको मिलाकर जब आधा या चौथाई शेष रहे, तो छानकर पीने को देना चाहिये।

कृताकृतयूष और मांसरस यूष—

अस्नेह लवणं सर्वमकृत कटुकैर्विना। विशेयं लवणस्नेह कटुकैः संयुतं कृतम्।—(सु० सू० ४६)

अत्र 'कटु' शब्दो दधि-दाड़िममामलकादीनामम्लद्रव्याणामुपलक्षणम्—(डल्हण)।

जो यूष या मांसरस स्नेह घी तैलादि-लवण तथा मसाले मरिचादि और अम्ल द्रव्यों के बिना ही बनाई जाये वह 'अकृत' और जिनमें ये पदार्थ डाले जायें उन्हें 'कृतयूष' तथा 'कृतमांस' कहते हैं।

क्षीरपाक—दूध को लघु, सुपक्व तथा उसके माध्यम से औषध द्रव्यों को रोगी को देने के लिए क्षीर पाक किया जाता है। इसकी विधि यह है—

द्रव्यादष्टगुण क्षीरं, क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम।—(पाठान्तरे)

क्षीरंतिधिगुणं द्रव्यात् क्षीरान्नीरं समंमतम्। क्षीरावशेषः कर्त्तव्यः क्षीरपाके त्वयंविधिः।

औषध द्रव्य की अपेक्षा ८ गुणा दूध, दूध से ४ गुना जल (पाठान्तर में औषध की अपेक्षा १५ गुणा दूध तथा जल दूध के समान) मिलाकर पाक करें जब केवल दुग्ध रह जाए तो उतार कर छान लें। वृद्ध वाग्भट्ट के अनुसार औषध में जल मिलाकर पहले उसका काढ़ा बना लें और उसमें दूध पकावें क्योंकि सबको एक साथ मिलाकर पकाने से औषध का सार सार दूध में नहीं आता। जैसा कि वचन है, क्षीरादि सहितं च द्रव्यं न सम्यङभुक्तरसंभवतोति वारिक्वाथपूर्वकं क्षीराद्यैस्तदुधदेशेऽनुपदग्धं क्वाथयेत्—(अ० सं० क० ८)

उष्णोदक कल्पना—अष्टमेनांशेषेण चतुर्थेननार्धकेनवा, अथवा क्वथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं वदेत्।—(शा० म० सं० २)। जल को गरम करके आठवाँ भाग, चौथा भाग, आधा भाग शेष रखने से वा अच्छी तरह २-३ उबाले आ जाने पर उसे छान लें। यही 'उष्णोदक है।' इसे ज्वरादि में पोने के काम लाया जाता है।

पानीय कल्पना—जल को औषध सिद्ध करके पीने के लिए व्यवहार में लाना 'पानीय कल्पना' कही जाती है। उष्णोदक बिना औषधियों का उबाला जल है और पानोय औषधियों सहित उबाला हुआ जल। यही इन दोनों में भेद है।

प्रदप्सुश्रृतशीतासु षडंगादि प्रयुज्यते। कर्षपात्रं ततो द्रव्यं साधयेत्प्रास्थिकेऽम्भसि॥

अर्धंश्रृतं प्रभोम्तव्ध पीते पेयादि संविधौ। १, कर्ष (तोला) औषध को चूर्णकर[1] प्रस्थ (६४ तोला) जल में मिलाकर इतना पकाएँ कि जल आधा रह जाए। तब उसे छानकर पीने के लिए तथा पेया आदि बनाने के प्रयोग में लाना चाहिए।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यवागू कल्पना

"यवागूस्तण्डुलैः सह" **(काश्यप सं० खिलस्थान ७)** द्रव में चावल या अन्य तत्सदृश अन्न को पकाकर 'यवागू' बनाई जाती है। जौ को छोड़कर शेष सब शुक धान्यों से यह बनाई जा सकती है। यवागू में अन्न की मात्र व्यक्ति के साधारण मात्रा (आहार मात्रा) से चतुर्थांश होनी चाहिए। जैसा कि आचार्य ने कहा है। **'यवागूमुचितादभक्ताच्चतुर्भागर्भाकृतां वदेत्** ।—(सु० चि० ३९)

यवागू भेद—यवागुस्त्रिविधा प्रोक्तामण्डः पेयाविलेप्यपि। सिक्थकैः रहितो मण्डः, पेयासिक्थसमन्विता।
यवागूर्बहुसिक्थास्याद्विलेपी विरलद्रवा ॥—(सु० सू० ४६) यवागू के तीन भेद हैं—

(i) **मण्ड**—सिक्थ (अन्न के कण) रहित जल प्रधान। साधारण भाषा में मांड।

(ii) **पेया**—जल बहुल सिक्थों के सहित, जो पीया जा सके।

(iii) **विलेपी**—सिक्थ बहुल, स्वल्पद्रव-खिचड़ी जैसी।

आचार्य शिवदास सेन यवागू के पेया तथा विलेपी दो ही भेद मानते हैं। मण्ड की स्वतन्त्र कल्पना नहीं। पेयादि के ऊपर के पानी को मण्ड (मांड) कहा जाता है। (चक्र, ज्वराधिकार, पृ० ४८)। जल के अतिरिक्त अन्य द्रव पदार्थ छाछ, मांसरसादि में भी यवागू बन सकती है।

औषधादि का अनुपात—कुर्यात् भैषजसंसिद्धे विलेपी तु चतुर्गुणे। मण्डं चतुर्दशगुणे पेयां वै षड्गुणेऽम्भसि॥ विलेपी में चार गुणा जल, मण्ड में १४ गुणा, और पेया में ६ गुणा जल लेना चाहिये।

यवागू की विधियाँ—यवागू दो प्रकार से बनाई जाती है। कषाय साध्य-अर्थात् पहले औषध का काढ़ा बनाकर उसमें धान्य सिद्ध करना 'क्वाथ साध्य यवागू' और औषध का चूर्ण, द्रव तथा अन्न सबको एक साथ मिलाकर पकाने से...'कल्क साध्य यवागू' कहते हैं। इसमें जलादि का प्रमाण यूप के समान ही समझें। आचार्य चक्रपाणि ने इसके विषय में कहा है **अपरमिति अन्यांन्यत्वं च कषायसाध्य यवागूमपेक्ष्य, तेन कल्कसाध्यमित्यर्थः।**

वाट्य (यवमण्ड) कल्पना—

सुकुट्टितैंस्तथाभृष्टैर्वाट्यमण्डोयवैर्भवेत्—(शा० मं० सं०) जौ को कूटकर तथा भूनकर १४ गुने जल में पकावे। जब जौ सिझ जाए तो उबालकर ऊपर का जल छानकर व्यवहार में लावे। इसे 'वाट्यमण्ड' कहते हैं। यदि जौ को बिना भूने मण्ड बनाया जाए तो उसे 'यव[1] मण्ड' कहा जाता है।

लाजमण्ड—लाजैस्तुनिर्मितोमण्डो 'लाजमण्डो' प्रकीर्तितः। धान की खीलों (लावे) का मण्ड बनाना 'लाजमण्ड[2]' कहलाता है। चावलों का बनाते समय जो मण्ड उतारा जाता है वह 'धान्य मण्ड' है।

शार्कर[3] कल्पना—हिमे फाण्टे शृतेऽर्केवा शर्कराद्विगुणाक्षिपेत् मन्देग्नौसाधितं 'पूतं' पटात्तच्छार्करंमतम्। शर्बतों में शर्करा का अंश पर्याप्त होता है। इनसे औषध की सुरक्षा हो जाती है या औषधि के स्वाद को अधिक रुचिकर बनाया जाता हैं। यदि शर्करा का प्रमाण न्यून होगा अथवा वे पतले रह जाएँ, तो शर्बत खराब हो जाते हैं।

शर्बत बनाने के लिए औषधि के हिम, फाण्ट, काढा तथा अर्क या स्वरस में द्रव्य की अपेक्षा दुगुनी शर्करा डाल कर मृदु अग्नि पर पाक करना चाहिए। इसकी चासनी मधु के समान गाढ़ी हो जानी चाहिए। शर्करा के स्फटिक[4] न बन पाएँ और शर्करा नीचे न जमे, एतदर्थ स्फटिका या निम्बु का रस डालकर शर्करा में एक-दो उबाल देने चाहिए। आयुर्वेद की अपेक्षा यूनानी तथा एलोपैथी में शर्करा का प्रयोग अधिक होता है। आयुर्वेद में चन्दन, ब्राह्मी, वासा, जूफा

(1) Barley water.
(2) Rice Broth.
(3) Syrups.
(4) Crystals.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आदि शर्करों का प्रयोग होता है। कई आचार्य 'पानक' को 'शरबत' का पर्यायवाची मानते हैं। वह अशुद्ध है, पानक की कल्पना सुश्रुत के अनुसार दूसरी ही है। इनकी मात्रा ४ तोला से ८ तोला तक है।

अर्क[1] कल्पना—सुगन्धित पदार्थों का, जिनमें उडनशील तत्व रहते हैं, का अर्क निकाला जाता है। आयुर्वेद की अपेक्षा यूनानी तथा एलोपैथी में इनका प्रयोग अधिक होता है। इनमें उक्त प्रकार की औषध के तत्व अधिक देर तक सुरक्षित रहते हैं। आयुर्वेद में रावणकृत 'अर्कप्रकाश' पुस्तक में इनका वर्णन किया गया है, किन्तु पुस्तक आधुनिक प्रतीत होती है। अर्क वस्तुतः औषधियों के सुगन्धित तैलों या उड़नशील तत्वों के घोल हैं।

अर्क-निर्माण विधि—यदि अर्क निकालने वाले द्रव्य सूखे हों तो उनका जवकुट चूर्ण बनाकर दशगुने जल में रात भर भिगो कर रखें, और प्रातःकाल उनका अर्क अर्कयन्त्र (भबका) या तिर्यक्पातनयन्त्र द्वारा निकाल लें। किन्तु यदि औषध द्रव्य ताजे हों तो उन्हें रात को जल में भिगोने की आवश्यकता नहीं। प्रातः काल दशगुणा जल मिलाकर सीधा अर्क निकाल ले। जितना जल डाला हो उससे आधा अर्क निकालना चाहिए। अर्क को छानकर बोतलों में भरकर रख दें और आवश्यकतानुसार काम में लाये। आधुनिकों ने कई-नई पद्धतियों का अविष्कार किया है। उनमें सबसे सरल यह है कि लौंगों, इलायची, चन्दन, सौंफ आदि के सुगन्धित तैलों को सीधा ही परिस्रुतजल में मिला दिया जाता है। तेल की अपेक्षा ५०० गुना परिस्रुत जल लेकर उसमें मिलाकर १५ मिनट तक खूब हिलाए। फिर एकान्त में रखकर १२ घण्टे बाद छान लें। यह छानना सारकपत्र[2] द्वारा किया जाता है। औषधि के रूप में अर्कों की मात्रा १-२ तोला होती है। यह अकेला या पानी में मिलाकर पीने को दिया जाता है, औषधियों के अनुपान रूप में या पानी के स्थान पर। उक्त समग्र कल्पनाओं में द्रव पदार्थ अग्नि के ऊपर उबाला जाता है। अतः काढे के समान होने के कारण उनका वर्णन इस प्रकरण में दिया गया है। आयुर्वेद में अर्क गुलाब, अर्क चन्दन, अर्क सौंफ, मुण्डो, मकोद, अजवायनादि का प्रायः प्रयोग होता है। मात्रा ५-१५ तोला तक है।

शीत कषाय

द्रव्यमर्थपलं क्षुण्णं त्रिभिर्नीरपलैः प्लुत्लुतम्। निशोषितं हिमः स स्यात्तस्य मात्रा पलोन्मिता ॥
सितामधु गुडादिस्तु क्वाथवत् प्रक्षिपेदभिषक्। शीत सलिलाल्पुतस्तु निशापर्युषितः शीतः ॥
—(अ० सं० क० ८)

दो तोले औषध द्रव्य को कूट कर मिट्टी या कांच के पात्र में ६ गुणे शीत जल में (१२ तोला) भिगो दें। प्रातः-काल मलकर छान लें। यही शीत[3] या हिम कषाय है। इसकी मात्रा ४ तोला (१ पल) है। सिता, मधु, गुड़ आदि का प्रक्षेप क्वाथ के समान समझें। ये उन औषधियों के बनाए जाते हैं जिनमें उड़नशील तत्व हों और जल में घुल जाते हों। ये प्रायः पित्तशामक होते हैं। कमलपुष्पहिम, सारिवादिहिम, सुदर्शनचूर्णहिम आदि हिमप्रायः प्रयुक्त होते हैं, मात्रा ५ तोला के लगभग समझें। हिम या शीत से मिलती-जुलती कुछ कल्पनाएँ हैं। जिनका वर्णन भी यहीं कर देना उचित समझा गया है।

मन्थ—जले चतुष्काले शीते क्षुण्णद्रिव्यपलोवपेत्। मृत्पात्रे मन्थयेत सम्यक् तस्माच्चद्विपलंपिबेत् ॥ (शा० मं० सं० ३) चूर्णीभूत औषध ४ तोला की मात्रा में १६ तोला शीतल जल डाल कर उसे मथानी (रवि) द्वारा अच्छी तरह मन्थन करे और कपड़े से छान ले। इसकी मात्रा ८ तोले है। खर्जूरादि, एलादि, एलायचीमन्थ आयुर्वेद में प्रयुक्त होते हैं। शारंगधर ने मन्थ को, मन्थोऽपि फाण्टभेदः स्यात, फाण्ट का भेद बताया है। किन्तु, यह फाण्ट के विपरीत गरमजल से न बनाकर शीतजल से बनाया जाता है। अतः, शीत कषाय के प्रकरण में इसका समावेश किया गया है। सुश्रुत ने मन्थ की निम्न परिभाषा कही है।

(1) Agua.
(2) Filter Paper.
(3) Cold Infusion, Maceration.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सक्तवः सर्पिषाऽभ्यक्ताः शीतवारिपरिप्लुताः । नात्यच्छा नातिसान्द्रा वा 'मन्थ' इत्यभिधीयते—(सु०सू० ४६)। घी मिलाए सत्तुओं को इतने शीतल जल में मिलाए कि वे न तो बहुत गाढ़े रहें और न बहुत पतले, यही मन्थ है। चरक ने मन्थ, संतर्पण या तर्पण ये पर्याय मन्थ के दिए हैं। इन योगों में लाजा या जौ के सत्तू प्रधान द्रव्य रहते हैं। शर्करा, मधु, लवणादि इच्छानुसार डाले जा सकते हैं।

तक्र—मन्थनेन पृथग्भूतं स्नेहमर्धोदिकं च यत्। नातिसान्द्रद्रवं तक्रं स्वाद्वम्लं तुवरं रसे ॥ (सु० सू० अ० ४५) दही को मथ कर और दही की अपेक्षा आधा जल मिलाकर उसमें से मक्खन निकाल लें। शेष नाति द्रव सान्द्र भाग 'तक्र' छाछ कहलाता है। छाछ तक्र की अपेक्षा पतली होती है।

घोल—यत्तुसस्नेहमजलं मथितंतद् घोलमुच्यते। दही में विना जल डाले (या बहुत थोड़ा जल मिलाकर) और विना मक्खन निकाले, उसे मथने से 'घोल' बनता है। दही के विविध रूपों का प्रसंगवश यहाँ संक्षेप में वर्णन किया जाता है।

उदश्वित्—आधा जल डालकर दहि को मथना तथा मक्खन न निकालना। यह पंजाबी लस्सी है।

मस्तु—दही के उपरी भाग पर निथरा हुआ जल (तरल) है।

आमिक्षा—पनीर या छेना फटे दूध का स्थूल भाग है।

मोरट[1]—फटे दूध का पानी। फटे दूध के पानी को भी 'मस्तु' कहा जाता है। यह बहुत अम्ल न होना चाहिए और न ही दूधी वर्ण का। रोगी के लिए उत्तम पथ्य है।

तण्डुलोदक—कंडित तण्डुल पलं जलेष्ट गुणे क्षिपेत्। भावयित्वा जलं ग्राह्यं तण्डुलोदक मुच्यते॥ शीत कषाय मानेन तण्डुलोदक कल्पना—(चक्रपाणि)। एक पल (४ तोले) चावल खण्डों को जल से धोकर कलईदार या मिट्टी के पात्र में आठ गुने शीत जल में भिगोकर एकान्त स्थान में ३-४ घण्टे रखें। पुनः मसलकर जल भाग को छान लें। यही 'तण्डुलोदक' है। यह संग्राहक है। रोगियों को रक्तस्राव, रक्त-श्वेत प्रदर,अतीसारादि में दिया जाता है।

पानकम्[2]—हिन्दी में इन्हें 'पना' कहा जाता है। यह गर्मियों में तृष्णा, लू, ताप से बचने के लिए पिए जाते हैं। आम, फालसा, इमली, द्राक्षा, बेर आदि अधपके, मीठे-खट्टे फलों को १६ गुणा जल में मिलाकर और मसलकर कपड़े से छान लें। इसमें इच्छानुसार गुड, मधु, शर्करा, इलायची, काली मिर्च आदि मिलाई जा सकती है। सुश्रुत (सू० ४६) ने निम्न पद्यों में इसका वर्णन किया है। मात्रा १०-२० तोला तक है।

गौड़मम्लमनम्लवां पानकं मूत्रलम्।
तदेव खण्ड मृद्वीका शर्करा सहितं पुनः॥
साम्लें सतीक्ष्णं सहिमं पानकं स्यान्निरत्ययम्।
मार्द्वीकं तु श्रमहरं मूर्च्छादाहतृषापहम्॥

फाण्ट[3] कषाय

क्षिप्त्वोष्णतोये मृदितं तत् फाण्टमभिधीयते।—(च० सू० ४)
क्षुण्णे द्रव्यपले सम्यग्जलमुष्णं विनिक्षिपेत्॥ मृत्पात्रे कुडवोन्मानं मर्दित्वा स्रावयेत्पटात्—
स स्याच्चूर्णद्रवः फाण्टस्तन्मानं द्विपलोन्मितम्॥ सिता मधुगुडादींश्च क्वाथवत् प्रभिक्षपेद्भिषक्॥

1. Whey
2. Drinks
3. Hot Infusion

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

एक पल औषध को कूटकर ४ पल उष्ण जल में किसी मिट्टी के पात्र में या कलई किए हुए पात्र में भिगो दें। जब जल शीतल हो जाए तो मसलकर छान लें। ये सदा ताजे ही बनाने चाहिए तथा १२ घण्टों में ही इन्हें समाप्त कर दें। अन्यथा ये खराब हो जाते हैं।

रस क्रिया कल्पना

विधिवत्कृतेकषाये द्रव्यापेक्षया षोडशगुणोदकेऽष्ट भागावशिष्टे; अष्टगुणोदके चतुर्भागावशिष्टे, वस्त्रपूतं कषायं पुनस्तावत्पचेत् यावत् फाणिताकृतिः—(डल्हण) सु० सू० अ० ३७, प० २१) अर्थात् औषधियों का विधिपूर्वक काढ़ा बनाकर छान कर पुनः पाक करना 'रस क्रिया' कहलाता है। यह फाणित (राब) या मधु जितनी गाढ़ी होती है। इससे अधिक गाढ़ी अग्नि पर नहीं करनी चाहिए, अपितु धूप में सुखाकर रखे। अन्यथा औषधतत्व जल जाता है। **आचार्य शारंगधर** ने रस क्रिया तथा अवलेह दोनों मिला दिया है। यथा—

क्वाथादीनां पुनः पाकाद्घनत्वं सा रसक्रिया। सोऽवलेहश्च लेहश्च तन्मात्रा कर्ष सम्मिता ॥ किन्तु प्राचीनाचार्यों का मत ऐसा नहीं था जैसा कि डल्हण के उक्त कथन से सिद्ध होता है। वस्तुतः रस क्रिया और अवलेह-लेह **पृथक् ही कल्पनाएं** हैं। रसक्रिया में औषधों का सार निकाला जाता है। उसे घनरूप में तथा अधिक बलवान बनाने का विचार रहता है। इस प्रकार की रस क्रिया की मात्रा कभी भी १ कर्ष नहीं होती। यथा, रसाञ्जन, दारुहरिद्रा की रस **क्रिया है, एलुआघृतकुमारीकी।**

अवलेहों में शर्करा आदि पदार्थों का मिश्रण रहता है और उनके द्वारा औषधियों को सुरक्षित रखा जाता है तथा उनको सुस्वादु बनाने का प्रयत्न किया जाता है। तथा, च्यवनप्राश, चित्रकहरीतकी, अमृत भल्लातकी इत्यादि। इनकी मात्रा प्रायः १ कर्ष होती है। अतः, इन दोनों को मिलाना नहीं चाहिए।[1]

रसक्रिया को ही धूप में सुखा कर अधिक घन कर लिया जाता है। उसे 'घन' संज्ञा दी गई है। इसी प्रकार औषधियों के काढ़े को विशेष विधियों से सुरक्षित रखा जाता है। 'उन्हें' तरलसार[2] या प्रवाही सार कहा गया है। इनका वर्णन सन्धानवर्ग में किया गया है।

अवलेह पाक लक्षणम्—लेहस्य तन्तुमत्ताऽप्सुमज्जनं सरणं न च। अगुल्यापीडितेमुद्रा गन्धवर्णरसोद्भवः ॥

(१) गुड़ शर्करादि की चासनी कड़छी से उठाने से तार देने लगे।

(२) पात्रस्थ-जल में डालने पर वह तैरे नहीं, डूब जाए।

(३) जल में चासनी नीचे बैठ जाए और फैले नहीं या जल में घुले नहीं (सरण न होवे)।

(४) अंगुली से दबाने पर गोल गोली सी-बन जाए।

(५) औषधि का गन्ध, रस और वर्ण उसमें आ जाए। ये पाँचों गुडपाक या, अवलेह पाक की परीक्षण हैं।

अवलेहादि में गुडादि का प्रभाव—सिता चतुर्गुणा ग्राह्या चूर्णाच्चद्विगुणो गुडः। द्रवेणालोढ्य विपचेल्लक्षयन् पाकलक्षणम्। औषधि की अपेक्षा चीनी या मिश्री चार गुणा, गुड़ दो गुना लेना चाहिए। द्रव-जल-क्वाथ, स्वरसादि डालकर उक्त पाक लक्षण उत्पन्न होने तक मृदु अग्नि पर पाक करना चाहिए।

अवलेह में प्रक्षेप डालने का समय—प्रायो न पाकश्चूर्णानां भूरिचूर्णस्यतेनहि, आसन्नपाके प्रक्षेपः स्वल्पस्यपाकमागते। अवलेह में जो प्रक्षेप डाला जाता है। उसका पाक नहीं किया जाता है। अतः, यदि प्रक्षेप की मात्रा अधिक हो, तो जब चासनी लगभग पक चुकी हो, तो उसे उतार कर कुछ शीत होने पर प्रक्षेप धीरे-धीरे बुरक (अवचूर्णन) कर डाले। और यदि प्रक्षेप की मात्रा स्वल्प हो तो पाक लक्षण होने पर नीचे उतार कर मिलावें। इस बात का ध्यान रहे कि गरमागरम अवलेह में प्रक्षेप न डाले, अन्यथा वे जल जाते हैं। यदि अवलेह में मधु मिलाना हो तो उसे लेह के शीत होने पर मिलावें। प्रक्षेप मिलाते समय अवलेह को खज या करछे से चलाते रहें।

---

(1) Dry or solid extract.

(2) Liquid extract.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अवलेह[1] प्रायः दो प्रकार से बनाया जाता है—प्रथम स्वरस या काढ़े को अग्नि पर पकाकर गाढ़ा कर लिया जाता है। पुनः इसमें चूर्णादि प्रक्षेप द्रव्य डाले जाते हैं। दूसरे प्रकार में गुडादि की चासनी बनाकर क्वाथ के साथ-पाक होने पर पीछे से उसमें प्रक्षेप द्रव्य मिला दिए जाते हैं। चासनी बनाते समय यदि उसमें थोड़ा सा कच्चा दूध या उसकी लस्सी डाल दी जाए तो चीनी या गुड का मल भाग ऊपर आ जाता है, जो कूँचे से निकाल देना चाहिए। इससे चासनी स्वच्छ बन जाती है।

मरिचादिवटी, व्योषादिवटी, एलादिवटी आदि एक प्रकार के घनावलेह हैं। यद्यपि इन्हें वटी नाम दिया गया है। किन्तु, वटियों के समान ये चिरस्थायी नहीं है। इनका उपयोग गले के रोगों में किया जाता है। इन्हें मुख में रखकर चूसा जाता है। जिनका प्रभाव स्थानीय होता है।

लेहों का अनुपान—दुग्धं यूषः कषायश्च जलं फलरसस्तथा। लेहानामनुपानार्थं यथा व्याधि प्रदीयते ॥ रोगों तथा रोगी की प्रकृति के अनुसार अवलेहों के ऊपर से दूध, यूष, काढा, जल या फलों का रस दिया जाता है। अवलेहों के प्रकरण में 'खण्डों' का उल्लेख करना भी आवश्यक है। खण्डों में चासनी इतनी गाढी बनाई जाती है कि प्रक्षेप के पश्चात् यह चीनी की तरह बिखर जाती है या इतनी गाढी हो जाती है कि उसकी गोली बनाई जा सकती है। वासा-कूष्माण्डखण्ड, नारिकेलखण्ड, पूगखण्ड (सुपारी पाक) पुष्प खण्ड (गुलकन्द) आदि खण्ड व्यवहार में अधिक आते हैं। पुष्प खण्ड की निर्माण विधि विशेष है। उसका वर्णन आगे किया गया है। प्रायः निम्न अवलेहों का व्यवहार अधिक किया जाता है। अमृतभल्लातकी, अगस्त्यहरीतकी गोजिह्वावलेह (खमीरेगाजवां) च्यवनप्राश, चन्द्रावलेह, चित्रकहरीतकी, त्रिवृदवलेह, धात्री रसायन, पूगपाक, मदनानन्दमोदक, वासाहरीतक्यावलेह, वासावलेह सूरणवटक, सौभाग्य शुंठी, आदि। इनकी मात्रा १ से २ तोला तक हैं।

पुष्प खण्ड निर्माण विधि —गुलकन्द गुलाब की जगह अमलतास, सेवती, वासा आदि के पुष्पों की भी खण्ड बनाई जा सकती है। उत्तम पुष्पपत्रों को लेकर उनमें से कूडा निकाल दें। पुन समान प्रमाण में शर्करा या सिता डाल दें। अच्छी तरह मिलाकर किसी काच या चीनी के पात्र में भर दें। मुख पर कपडा बाँध कर २०-४० दिनों तक प्रति-दिन धूप में रखें। इस प्रकार गुलकन्द या पुष्प खण्ड बन जाती है। यह विबन्ध, आन्त्रदाहशामक है। मृदु स्वभाव या पैत्तिक प्रकृतियों, बाल वृद्ध, गर्भिणी स्त्रियों के लिए उत्तम है। मात्रा १-२ तोला दूध या जल के साथ। जैसा कहा गया है :—

कुसुमानि वृषादीनामादाय वै यथाविधिः। शर्करा समप्रमाणां तत्रदत्त्वा भिषग्वरः ॥ तत्सर्वं साधुसम्मेल्य, कांचपात्रे निधापयेत्। मुखमाच्छाद्यवस्त्रेण दिवसे-दिवसे पुनः ॥ स्थापयेदातपे तद्धि मासमेकं यथामतिः ॥ अनेन विधिना सिद्धं पुष्पखण्डं प्रयोजयेत्। तस्य मध्यमा मात्रा कर्षमात्रा प्रकीर्तिता।

सत्व कल्पना

गुडूची सत्व कल्पना—ऊपर औषधसार की रस क्रिया द्वारा प्राप्ति बताई गई है। अतः प्रसंगवश सत्व की कल्पना भी यहां ही बताना उचित है।

गुडूचीं खण्डशः कृत्वा क्षालयित्वा सुकुट्टयेत्। चतुर्गुणं जलं दत्वा खजेन मर्दयेद्दृढम् ॥ वस्त्रेण गालितं तोयं रात्रौ संस्थापयेद् बुधः ॥ उपरिस्थ जलं त्यक्त्वा सत्वं ग्राह्यमधः स्थितम् ॥ खूब मोटी ताजी हरी गिलोय को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट कर धोलें। पुनः उसे खूब अच्छी तरह लकड़ी के डंडों से कूट लें। इसे स्वच्छ कलईदार कढ़ाही या मृत्पात्र में डालकर उसमें चतुर्गुण जल डाल दें। छः गुणा डालना उत्तम है। अब इसे खज (लकड़ी के मोटे मुग्दर से) से खूब मिलावें। जब जल में गिलोय भली प्रकार मिल जाय, जो दूसरे पात्र में मोटे कपड़े से तीन-चार बार छान लें। २४ घंटे एकान्त स्थान पर रखकर पुनः ऊपर का जल निथार कर फेंक दें। नीचे का श्वेत वर्ण का भाग मृदु अग्नि पर सुखा लें। उक्त प्रकार से जब तक सफेद वर्ण का न हो जाय। यह श्वेतवर्ण का पदार्थ 'सतगिलोय' कहलाता है। इसी

(1) Confections.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रकार शटी गन्धशटी (कचूर) आदि के सत्वों को भी प्राप्त किया जाता है। आयुर्वेद में गुडूची सत्व का ही प्रायः प्रयोग होता है। उक्त प्रकार के निथरे जल की संशमनी वटी बनाई जा सकती है। किन्तु हमारे विचार में यह उतनी गुणप्रद सिद्ध नहीं होगी, जितनी सारे गुडूची के काढे की। संशमनी वटी उत्तम ज्वरघ्न है।

क्षार कल्पना—सत्वों के प्रकरण में क्षार निर्माण का उल्लेख उचित जान पड़ता है, क्योंकि ये एक प्रकार के शुष्क सत्व ही हैं।

क्षारवृक्षस्य पंचांगं शुष्कमग्नौ प्रदीपयेत्। नीत्वा तद्भस्म मृत्पात्रे क्षिप्त्वानीरेतुषड्गुणे ॥
विमर्द्य धारयेद्रात्रौ प्रातौरच्छं जलं नयेत्। एकविंशतिवारांस्तद्वाससा स्रावयेज्जलम् ॥
स्रावितं सलिलंचाथ वन्हौ सन्तापयेज्जलम्। निःशेषं सलिलं ज्ञात्वा निर्मलंक्षारमाहरेत् ॥

जिस वनस्पति का क्षार बनाना हो, उसका सूखा पंचांग किसी कढ़ाही में या साफ धरती पर जलाकर उसकी राख बना लें। इस राख (भस्म) को किसी कलई के पात्र में डालकर उसमें ६ गुणा (कई आचार्य चार गुणा ही) जल मिलाकर, उसे खूब हिलाये जिससे वह सारे का सारा जल में मिल जाए। पुनः स्थिर होने पर मोटे कपड़े की कई तहें बनाकर उनमें से इक्कीस बार छान लें। उत्तम यह होगा कि रुई की कनिष्ठा अंगुलि सम मोटी बत्ती बनाकर उससे बिन्दुशः क्षारयुक्त जल को चुआ लें। इस वस्त्रधानित या स्रवित द्रव में से मृदु अग्नि द्वारा जलीयांश को सुखा दें। नीचे श्वेत या मटमैले (धूसर) वर्ण क्षार को प्राप्त करें। क्षार दो प्रकार के होते हैं। अतः प्रयोग में आने वालों को **पानीय क्षार** और बाहर लेप लगाने वालों को **'प्रतिसारणीय क्षार'** कहा जाता है।

सत्वों में गुडूची सत्व, शुंठीसत्व, उदुम्बर, अर्जुन, अशोक, कुटज, दार्वी (रसांजन) मधुयष्टि सत्व, सप्तपर्ण सत्व, कुमारी सत्व (एलुआ) आदि का प्रयोग अधिक होता है। ये सब घन सत्व हैं। कुछ चूर्णरूप में अन्य गोंद के रूप में। तरल सत्वों का अन्तर्भाव आसवारिष्टों के प्रकरण में किया गया है। उक्त सत्वों की मात्रा प्रायः १ माशा से लेकर २ माशा तक है।

आयुर्वेद में प्रायः अपामार्ग, अम्लिका, कदली, गोक्षुर, पलाश, पुनर्नवा, मूलक, यव, व्रज, वासक, स्वर्जिका, क्षार, मधुरक्षारादि का प्रयोग होता है। इनकी मात्रा ४ रत्ती से १ माशा तक होती है।

लवण कल्पना— क्षारों के समान होने से इसका यहाँ ही लिखना उचित है। सलवणमौषधं दग्ध्वा तस्यभूतिं समाहरेत्। खल्वे संपेष्यसम्यग् तं लवणं प्रयोजयेद्बुधः। औषधि में यथा प्रमाण सैन्धव लवण मिलाकर पुटपाक विधि से लवण सहित औषधि को भस्म कर दें। इस भस्म को पीस कर प्रयोग में लावें यही लवण है। आयुर्वेद में नारिकेल तथा अर्क लवण भल्लातक लवण प्रसिद्ध है। मात्रा १ से ३ माशा तक दी जाती है।

गुटिका—वटिकाश्चाथ कथ्यन्ते तन्नाम गुटिका वटी। मोदको वटिका पिण्डी गुडो वर्तिस्तथोच्यते।
लेहवत् साध्यते वन्हौ गुडो वा शर्कराऽथवा। गुग्गुलुर्वा क्षिपेत्तत्र चूर्णं तन्निर्मिता वटी ॥
कुर्वन्त्यवह्निसिद्धेन केचिद् गुग्गुलुना वटीम्। द्रवेण मधुनावापि गुटिकां कारयेत् बुधः ॥

वटी, गुटिका, मोदक, पिण्डी आदि सब पर्यायवाची शब्द हैं। गुड, शर्करा या गुग्गुलु आदि में से, जिसके द्वारा गोली बनानी हो, उसे अग्नि पर गरम कर लेहवत् हो जाने पर उसमें चूर्ण मिला कर यथा प्रमाण गोली बना लें। कई वैद्य गुग्गुल को बिना अग्नि पर चढ़ाए भी गोलियाँ बनाते है। जल, स्वरस, मधु आदि में चूर्णद्रव्य मिलाकर और घोट कर गोलियाँ बना लेते हैं।

गोलियाँ मात्रा सौकर्यार्थ, औषध रक्षा तथा अप्रियस्वादगन्ध को छिपाने के लिए बनाई जाती है। जितना ही सूक्ष्म चूर्ण होगा, उतनी ही उत्तम गोली बनेगी। वटियों में अग्नितुण्डी, आरोग्यवर्धिनी, इन्द्रवटी, एलादिवटी (गुटि) कुटजघनवटी, गुडूचीघनवटी, खदिरादिवटी, गन्धकवटी, चन्द्रप्रभावटी, चित्रकादि, जम्बीरलवण, तुत्थवटी (सबोर वटी) द्राक्षादि, पंचतिक्तधन, बालवटी, ब्राह्मीवटी, मागोत्तर, मुक्तादि, मृतसंजीवनी, महाशंख, रसांजनवटी, रसोनदि (लशुनादि) विषमुष्टि, शंखवटी, शुकमाटका, शिलाजत्वादि, संजीवनी, सशवर्णघन, संशमनी, हरीतक्यादि, हिंग्वादि, हिंगु कर्पूर वटी, आदि का प्रायः प्रयोग होता है। इनकी सामान्य मात्रा ४ से रत्ती १ माशा तक है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वटियों[1] में शर्करादि का अनुपात—सिता चतुर्गुणाग्राह्या वटीषु द्विगुणो गुडः। चूर्णाच्चूर्णसमः कार्यो गुग्गुलुर्मधु तत्समम् ॥ गोली बनाने के लिए चूर्ण की अपेक्षा चार गुनी शर्करा, दो गुना गुड़ गुग्गुलु तथा मधु समप्रमाण में एवं जल स्वरसादि यथाप्रमाण में डालने चाहिए। वटियों की मात्रा प्रायः ४ रत्ती से १ माशा तक होती है।[2]

गुदवर्तिकल्पना—'स्नेहभ्यक्ता गुदेक्षेप्याश्लक्ष्णा स्वांगुष्ठसम्मिता। मलप्रवर्तिनीवर्तिः गुदवर्तिस्तु सा स्मृता। छोटी अँगुलि के समान मोटी शंक्वाकार चिकणी वर्ती बना कर किसी स्नेह से चुपड़कर गुदा में प्रविष्ट की जाती है। यह 'गुदवर्ती' विबन्धनाश तथा आध्मान शमनार्थ दी जाती है। यदि फलों द्वारा गुड़ से बनाई जाने पर वह फलवर्त्ति कही जाती है। यावता गुडेन वर्तिः कर्तुंयुज्यते तावन्मानो गुडो देयः—(चक्र० च० चि० २६)

औषधियों में यथा प्रमाण गुड़ मिलाकर चिकणीवर्ती बना ले। आधुनिकों ने ग्लिसरीन के अतिरिक्त विशेष प्रकार की वसा से वर्ति बनाना प्रारम्भ किया है और न केवल मल निकालने लिए अपितु गुदा द्वारा औषधि दानार्थ भी उनका प्रयोग किया जाता है।

धूम्रवर्ति—धूमवर्त्युक्तद्रव्याणां सूक्ष्मचूर्णंद्रवेन वै। कृत्वा लिम्येछरेषीकां तां वर्तियवसन्निभाम्। अंगुष्ठसंमितां कुर्याद् यामेऽष्टांगुलां तथा। शुष्का विगर्भां तां वर्ति धुमनेत्रार्पितां नरः। स्नेहात्ताममग्निसंपुष्टांपिबेत् प्रायोगिकी सुखाम्। जिस द्रव्य की धूम्रवर्ती बनानी हो, उसका सूक्ष्म चूर्णकर जलादि द्रव से पीसकर सरकंडे की सलाई पर लेप कर दे। आकार में यह जौ के समान मध्य में उठी तथा किनारों पर नोकदार, अँगूठे के समान मोटी तथा आठ अंगुल लम्बी होनी चाहिए। लेप सूखने पर सावधानी से इसे सरकण्डे पर से उतार ले और धूम्रनेत्र में रख कर इसका पान करे। प्रायोगिकी, स्नैहिकी, तथा वैरेचनिकी–ये तीन प्रकार की धूम्रवर्तियां बनायी जाती हैं।

सन्धान वर्ग

यह वर्ग बहुत बड़ा है; किन्तु वैद्य को प्रायः आसव, अरिष्ट, तथा तरलसार एवं वारुणी सारों से ही कार्य पड़ता है। अतः उन्हीं की विशेष व्याख्या की जाएगी, शेषों का नाममात्रोल्लेख किया गया है।

सन्धान का लक्षण—केवलं द्रवद्रव्यंवाभेषजान्नादिसंयुतम्। स्थापयेत्चिरकालमभिषवनहेतवे ॥ संजातेऽभिषवेतत्र तस्यभेदद्वयं प्रोक्तं मद्यशुक्तं तथैव च। स्वरस, काढ़ा आदि केवल तरल पदार्थ या उसमें औषध या अन्न मिलाकर अभिषवजननद्रव्यों गुण, शर्करा, किण्व आदि मिलाकर चिरकाल के लिए मटकों या काष्ठ पत्र में भरकर-मुख बन्द कर रख दिया जाता है। अभिषव क्रिया होने पर उसे 'सन्धान' कहते हैं। इसके दो भेद हैं—(१) मद्य (२) शुक्त।

आजकल आयुर्वेद में यद्यपि तरल सारों[3] तथा वारुणी[4] सारों या सुरासवों का अधिक प्रयोग नहीं है, तो भी ये विधियां पूर्णतः आयुर्वैदिक हैं। मृतसंजीवनी सुरा मृगमदासव, कर्पूरासव, अहिफेनासवादि इसके उदाहरण हैं। आजकल अर्जुनतरलसार, अशोक, ओलटकम्बल, कार्पासमूल, कुटज, किरातादि, सुदर्शन, आदि के तरलसार तथा कस्तूरी, जटामांसी, भांग बोल, वत्सनाभ, विषमुष्टी, सोम, हिंगु, तथा सर्पगन्धा के वारुणी सारों का प्रयोग प्रचलित हो रहा है। वारुणीसारों की मात्रा ५-३० बिन्दु तक है तथा तरलसारों की ३ माशा से ६ माशा तक वैद्यों को इनका प्रयोग निस्संकोच रूप में करना चाहिए।

सन्धान के विषय हमारे गुरुवर्य स्वर्गीय श्री सुरेन्द्र मोहन का सारगर्भित लेख टिप्पणी में यहां उद्धृत किया गया है। वह पठनीय है। इससे सन्धान के विषय पर विशेष प्रकाश पड़ता है।

---

(1) Pills, Pibulae.
(2) Suppository.
(3) Liquid extracts.
(4) Tinctures.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आसवारिष्टों पर सामान्य दृष्टि

(लेखक—आयुर्वेदाचार्य पं० सुरेन्द्र मोहन, बी० ए०, लाहौर, प्रिंसिपल, दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज)

यह शीर्षक पढ़ कर वैद्यों को आश्चर्य होगा कि क्या चरक में भी टिंकचरों के बनाने का वर्णन है ? आसवारिष्ट तो वैद्यक ग्रन्थों में सर्वत्र मिलते हैं, परन्तु टिंक्चरों (Tinctures) का विधान भी हमारे ग्रन्थों में मिलता है वा नहीं। यह इस छोटे से लेख से स्पष्ट होगा।

टिंकचर और आसवारिष्टों में भेद

पूर्व इसके कि कोई शास्त्रीय प्रमाण उपस्थित किया जावे, मैं उचित समझता हूँ कि आसवारिष्टों और टिंकचरों में भेद बता दिया जाये।

वैद्यों को विदित है कि आसवारिष्ट मूल, वल्कल, पत्रादि को जल में डालकर वा क्वाथ करके पुनः मधु, गुड, द्राक्षा, शर्करादि मधुर द्रव्य मिलाकर २-३ सप्ताह घट में रखने से बन जाते हैं। यदि द्रव्यों का क्वाथ घट में डाला जावे, तो उन्हें प्रायः अरिष्ट संज्ञा दी जाती है, यथा, दशमूलारिष्ट, रोहीतकारिष्ट, अशोकारिष्टादि। श्रीभावमिश्र ने मिश्र प्रकरण में भी अरिष्ट के लक्षण करते हुए लिखा है :—

"पक्वौषधाम्बुसिद्धं यन्मद्यं तत्स्यादरिष्टकम्।
अरिष्टं लघु पाकेन सर्वतश्च गुणाधिकम्।
अरिष्टस्य गुणा ज्ञेया बीजद्रव्यगुणैः समाः॥

औषध और जल को पकाने अर्थात् क्वाथ करने से जो मद्य सिद्ध हो वा बने, उसे 'अरिष्ट' संज्ञा दी जाती है, अरिष्ट लघुपाकी और सर्वशः (आसवों) से अधिक उपयोगी हुआ करती है। अरिष्ट के गुण मूल द्रव्यों के अनुकूल होता है। अर्थात् जो प्रधान द्रव्य जिस अरिष्ट में होगा, उसके ही गुण में उस अरिष्ट में पाये जायेंगे। यथा, अशोकारिष्ट में अशोक के गुण, बलारिष्ट में बला के गुण इत्यादि।

आसवों के लक्षण और गुण श्री भावमिश्र ने इस प्रकार लिखे हैं :—

यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः।
आसवस्य गुणा ज्ञेया बीजद्रव्यगुणैः समाः॥

अपक्व (अशृत) औषध और जल से सिद्ध मद्य को 'आसव' कहा जाता है। आसव के गुण बीज द्रव्यों (मूल पदार्थों) के समान हुआ करते हैं। जैसे कुमार्यासव में घृत कुमारी के, लोध्रासव में लोध्र के, इत्यादि।

आसवारिष्टों पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार

आसवारिष्ट वस्तुतः मृदु मद्य (weak wines) हैं। यदि उनका विश्लेषण किया जाये तो उनमें निम्नलिखित पदार्थ मिलेंगे—

(क) जल (Water) ८५ से ९० प्रतिशत तक।

(ख) सुरा वा मद्यसार (Alcohol) १० से १५ प्रतिशत तक।

(ग) द्रव्यसार (Extract of drugs) अशोक, दशमूल, लोधादि का सार जो (क) और (ख) में लीन रहता है।

(घ) सुरभित द्रव्य (Aromatic Ingredients) एलादि सुगन्धित द्रव्यों (चतुर्जात प्रभृत) का सार, जो (क) (ख) में रहता है। यह दीपन, पाचन तथा रुचिवर्धनार्थं डाले जाते हैं।

(ङ) मधुर द्रव्य (sweet ingredients)—यथा शर्करा, मधु, द्राक्षा, गुडादि जो जललीन रहते हैं। परन्तु इनकी मात्रा तरुण आसवारिष्टों में अधिक और जीर्ण में अति न्यून होती है।

मद्यसार (spirit) की मात्रा सब आसवारिष्टों में एक जैसी नहीं होती, किसी में अधिक और किसी में कम, यथा द्राक्षारिष्ट में प्रायः १२ से १६ प्रतिशत तक, उशीरासव, चन्दनासवादि में प्रायः १० प्रतिशत। अरिष्टों में मद्यसार कुछ अधिक और आसवों में कम हुआ करता है। उत्तम सिद्ध मद्यों (wines) में, जो बाजार में बिकते है, शर्करा नहीं

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

होती। प्रत्युत आसवारिष्टों मे मधुर द्रव्यों का पूर्ण विश्लेषण नहीं होता। अतः, शर्करादि का कुछ भाग शेष रह जाता है, जो शनैः-शनैः मद्यसार में परिवर्तित होता रहता है और इस कारण आसवारिष्टों की बोतलों के कार्क उड़ते हैं और बोतलें टूटती रहती हैं।

मद्यों का संधान कैसे होता है ?

जब आसिवारिष्टों के बीजद्रव्य, जल और गुड़, मधु, प्रभृति वस्तुओं का सम्मिश्रण घट में किया जाता है, तो वायु में रहने वाले विशेष बैक्टेरिया (Bacteria) मधुर द्रव्यों का विच्छेद (Analysis) आरम्भ करते है। इस विच्छेद से दो पदार्थ उत्पन्न होते हैं, (क) मद्यसार (Spirit) और (ख) कार्बन डाइआक्साइड गैस (Carbon dioxide)। यह गैस (gas) वा वायवीय द्रव्य बुदबुद रूप जल से बाहर निकलता रहता है। यदि ज्वलित तीली को घट में ले जाया जाये, तो उसका बुझना भी इस गैस के कारण होता है। क्योंकि यह गैस ज्वलननाशक (Non-supporter of combustion) है। पाकावस्था में जब पात्र में कम होती है या नहीं होती, तब तीली नहीं बुझती। मद्यसार जल में मिल जाता है।

शर्करादि मधुर द्रव्यों का बैक्टेरिया द्वारा विच्छेद वा विश्लेषण क्रिया का नाम सन्धान वा आसुतता व अभिषव वा फेनोत्पत्ति वा खमीर उठना (Fermentation) है। इस क्रिया से पात्र में फेन वा झाग उत्पन्न होती है जो घटस्थ तरल को आच्छन्न करती है। इसी फेन में ही मृत तथा सजीव बैक्टीरियों का समूह होता है। जिन्हें किण्व वा सुराबीज (Yeast) नाम दिया गया है। यह किण्व यीस्ट (Yeast) के नाम से केमिस्टों से मिल सकता है। इसे पात्र में जलादि द्रव्यों के साथ डाल दिया जावे, तो सन्धान क्रिया बहुत शीघ्र और अति बलवती हो सकती है। शराब बनाने वाले लोग मद्यक्रिया की शीघ्रता के लिए इसका व्यवहार करते हैं। जिन घटों में वा जहाँ मद्य निर्माण हो, वहाँ मद्योत्पादक बैक्टीरिया वायु में बहुत पाए जाते हैं।

आसव संज्ञा का कारण

महर्षिचरक सूत्रस्थान अ० २५ के अन्त में आसवों का वर्णन करते हुए लिखते हैं—इत्येषामासवानामासुतत्वा-दासवसंज्ञा। इन (८४) प्रकार के आसवों की आसव संज्ञा इस लिए है, कि यह आसुत (आ-समन्तात्, सुत-उत्पन्न) अर्थात् पात्र में सर्वतः विशेष बैक्टीरिया (किण्व) द्वारा उत्पन्न, प्रजात, वा प्रसूत होने से बनते हैं। वस्तुतः आसव वा अरिष्ट दोनों की यथार्थ संज्ञा 'आसव' ही होनी चाहिए, परन्तु पकापक भेद से आचार्यों ने पक आसवों को अरिष्ट संज्ञा दे दी है और अपक आसवों का नाम आसव ही रहने दिया है। अरिष्ट के अर्थ प्रायः पक, सम्पूर्ण वा अविनाशी इत्यादि भावों में लिए जाते हैं।

मद्यों की एकता तथा स्रावण

मद्य वा आसवारिष्ट वस्तुतः क्या है ? जैसा कि ऊपर उनका विश्लेषण (Analysis) किया गया है, पाठकों ने समझा होगा, कि इन सब में जल और मद्यसार और कुछ द्रव्यों का सत्व होता है, यदि मद्यसार (spirit) अधिक होगा, तो मद्य तीव्र समझा जायेगा, यदि मद्य सार कम होगा, तो तीव्रता भी कम होगी, अतः मद्यसार वा स्पिरिट की न्यूनाधिकता पर ही मद्य वा आसवारिष्टों की तीव्रता निर्भर है। उनका स्वाद (रस) गन्ध वा वर्ण मूल द्रव्यों पर निर्भर है। उनमें मादक मद्यसार ही है जो सन्धानविधि (Fermentation) द्वारा उत्पन्न होता है। यदि (इनमें से मद्यसार को) निकाल दिया जाये, तो पात्र में क्वाथ ही शेष रह जायेगा, जो हमने आरम्भ में डाला था। अतः आसवारिष्टों का ब्योरा यों वर्णित किया जा सकता है—

अशोकादि क्वाथ + मद्यसार = अशोकारिष्ट।

द्राक्षादि क्वाथ + मद्यसार = द्राक्षारिष्ट।

सारिवादि शीत क्वाथ + मद्यसार = सारिवाद्यासव इत्यादि।

उबालने वा खैंचने से आप इसका उलटा हिसाब लें यथा :—

अशोकारिष्ट (>) मद्यसार = अशोकादि क्वाथ।

द्राक्षारिष्ट (>) मद्यसार = अशोकादि क्वाथ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इससे आप को एक बात स्पष्ट हो गयी होगी, कि वैद्य आसवारिष्टों को खैंच कर प्रयोग करते हैं, वह वस्तुतः रोगियों को मद्सार वा तेज शराब वा संजीवनीसुरा (Alcohol) ही पिलाते हैं, न कि आसवारिष्ट। वह ऐसा करने से लोगों को धोका देते हैं। अशोकारिष्ट वा लोहासव को स्रावित (Distilled) करने से अशोक वा लोह खिचे हुए द्रव में नहीं होगा। स्रावण करने वा खैंचने पर केवल वह पदार्थ प्राप्त होते हैं, जो उड़नशील (Volatile) हों, यथा, सुगन्धित तैल, इत्र मद्यसारादि, अतः जब चन्दनादि आसवारिष्टों का स्रवण किया जायेगा तो चतुर्जातिक सुगन्धित द्रव्यों के उड़नशील सत्व (VolatilePrinciples) मद्यसार के साथ उड़ कर शराब में प्राप्त होंगे, परन्तु जो पार्थिव द्रव्य (लोह, अशोक, रोहीतक, खदिर, बला दन्तीमूलादि) हैं, वह पीछे घट में ही रह जायेगा।

आसव पिलाने का भाव तो यह है, कि मद्यसारसहित जल में लीन सत्वों का रोगी को प्रयोग कराया जाये, ताकि मद्य अपने लघुपाकी, आशुकारी, स्रोतशोधक आदि गुणों से अशोकादि द्रव्यों के सत्वों को शीघ्र, शरीर में फैला दे। खैंचने से आप उन्हें हितकारी सत्वों से विहीन कर पिलाते हैं। ईश्वर के नाम पर वैद्यों को यह कुप्रथा छोड़ देनी चाहिए। भला जो वैद्य खैंचे हुए आसवारिष्टों को खैंचते हैं, वह प्रमाण दें कि उन्हें खैंचा जाये ऐसा लिखा है। अतः इस कुशैली को छोड़ना चाहिए।

सब मद्यों में मादक द्रव्य एक मद्यसार (Spirit) होने से वह सब एक जातीय है, जैसा कि चरक महर्षि ने कहा है :—

योनिसंस्कारनामाद्यैर्विशेषैर्बहुधा च या। भूत्वा भवत्येकविधा सामान्यान्मदलक्षणात्ः—(च० चि० अ० २४)।

अर्थात् योनि (कारणद्रव्य कर्पूर, चन्दन, अशोकादि), संस्कार (पाक, अपाकादि), नाम (आसव, अरिष्ट शीध्र, सुरा, मैरेय, वारुणी ब्राण्डी, बीयर, पोर्ट प्रभृति) आदि विशेषों से भिन्न-भिन्न होती हुई भी सुरा (वा सब प्रकार, के मद्य) एक ही हैं; मादक गुण की समानता से। यह बात शतप्रतिशत सत्य है, जैसा कि पीछे सुस्पष्ट किया जा चुका है।

चरक का यह वैज्ञानिक वर्गीकरण (Scientific classification) सर्वमान्य और सर्वसंमत है। ऐसा ही चरक ऋषि अन्यत्र कहते हैं, यथाः—

शोथ एक एवोत्सेधसामान्यात्। (च० सूत्र १७)
एकत्वं तावदेकमेव रोगानीकं दुःख सामान्यात्। (च० वि० ६)
आहारत्वमाहारस्यैकविधमर्थाभेदात् । (च० सूत्र २५)
ज्वरस्त्वेक एव सन्तापलक्षणः। (च० निदान)

यदि वैद्य बन्धु चरक को गूढ़ दृष्टि से पढ़े, तो उन्हें अनेक ऐसे वैज्ञानिक और सुन्दर भाव मिलेंगे।

सन्धान की अवधि

एक प्रश्न पाठकों के चित्त में उत्पन्न होगा, कि आसवारिष्ट बनने पर सन्धान क्रिया बन्द हो जाती है वा जारी रहती है। तदर्थ यह जानना चाहिए कि—

(१) बैक्टीरिया पतले द्रवों में शीघ्रता से और अच्छी प्रकार काम करते हैं, और घन द्रवों में अपना कार्य नहीं कर सकते, अर्थात् यदि जल कम हो, और गुण-मधु आदि अधिक मात्रा में हों, तो उन का विलयन वा घोल (Solution) घन (thick) होगा और बैक्टीरिया उनमें क्रिया न कर सकेंगे। यदि आप उसमें अधिक जल डालकर पतला कर दें, तो क्रिया शीघ्र होगी। कभी-कभी आसवारिष्टों में पाठ भेद के कारण या तुला, पलादि मान (तौल) न समझने के कारण जल कम पड़ जाये, तो आसव बनने में नहीं आता वा अधिक देर लगती है।

(२) जब आसवारिष्टों में मद्यसार (spirit) १४-१५ प्रतिशत तक पहुँच जाती है, तो शराब बनना बन्द हो जाता है। उस समय उनको जान कर व्यवहार करना उचित है। यदि असावधानी से अधिक काल तक उन्हें रखा जायेगा, तो वह खट्टे हो जायेंगे, क्योंकि मद्यसार एक दूसरे प्रकार के शुक्तोत्पादक बैक्टीरिया (Mycoderma Aceti) से शुक्त वा सिरका (Vinegar) में परिवर्तित हो जायेगा। अतः उचित काल से अधिक देर तक आसवारिष्टों को पात्र में नहीं रखना चाहिए।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मद्यसार क्या है ?

यह 'स्पिरिट' शब्द का अनुवाद है । यही मद्यों का मादक द्रव्य है । इसी की तरफ ही चरक का 'मदसामान्यात्' लिखने से संकेत है । इसको ही हमारे शास्त्रों में सुरा, सुरामण्ड, वारुणी आदि नाम दिए हैं । यह स्रवण करने (Distilation) से प्राप्त होता है । स्रवण-साधारण अर्क यन्त्र से हो सकता है, परन्तु प्रथम बार स्रवण करने से बहुजल मिश्रित मद्यसार प्राप्त होता है । परन्तु दूसरी बार खेंचने से जल कम और मद्यसार अधिक, परन्तु ६-७ बार स्रवण करने पर ऐसी अवधि आ जावेगी,जब मद्यसार में स्पिरिट ९९ भाग और जल १ भाग होगा । यह १ प्रतिशत जल मद्यसार से पृथक् नहीं होगा, चाहे आप कितनी बार खेंचें । वह अतिविशुद्ध मद्यसार (Absolute Alcohol) है । यदि मद्य ९० प्रतिशत और १० प्रतिशत जल हो, तो उसे विशुद्ध मद्यसार (Rectified spirit) रैक्टीफाईड स्पिरिट कहा जायेगा । यदि स्पिरिट ६० प्रतिशत हो, तो उसे ६० प्रतिशत मद्यसार कहेंगे एवं ४५ प्रतिशत आदि मद्यसार हो सकते हैं । उनका मूल्य मद्यसार की न्यूनाधिकता पर निर्भर है, यथा ९० प्रतिशत मद्यसार प्रायः (८-९) पौंड मिलता है, ६० प्रतिशत मद्यसार (५-६) पौंड इत्यादि; क्योंकि जल का कोई दाम नहीं, वह तो परमात्मा की अमूल्य संजीवनी सुरा है ।

तरलसार
(Liquid extracts)

टिकचर का वर्णन करने से पूर्व उचित होगा, यदि तरलसारों का भी वर्णन कर दिया जाये । गुडूची १ सेर ४ सेर जल में उबाल कर शेष १ सेर रख लें, और छान कर उसमें ¼ भाग ९० प्रतिशत मद्यसार डाल दें, तो यह गुडूची का तरलसार होगा । इस विधि से पृथक्-पृथक् वनस्पतियों (यथा, मकोय पर्पटादि) तथा मिश्रित योगों (यथा मंजिष्ठादि क्वाथ, त्रिफला क्वाथ, पुर्नवादि क्वाथ प्रभृति) के तरलसार (Liquid extracts) बन सकते हैं । तरलसारों के बनाने की कई और विधियां भी हैं जो ग्रन्थ वृद्धि के भय से वर्णित नहीं हो सकती । इनकी मात्रा मूलद्रव्य की प्रकृति पर निर्भर है । यदि द्रव्य विषैला हो, यथा, कुचला, अहिफेनादि, तो मात्रा प्रायः ५ से १५ बिन्दु तक होगी, अन्यथा १ से ३ चमचे तक प्रायः यथा गुडूची तरलसार (Liquid extract of gulancha) आसवारिष्ट भी एक प्रकार के पतले तरलसार समझने चाहिए, परन्तु उनमें जल बहुत होता है और द्रव्य कम, तरलसारों में द्रव्य अधिक हुआ करता है और जल कम । वैद्यों को तरलसारों की प्रथा ग्रहण करनी चाहिए ।

क्वाथों में मधु डालने से भी उनकी रक्षा हो सकती है । शर्बत भी एक प्रकार के मधुर क्वाथ हैं, परन्तु उनमें द्रव्य कम और शर्करा अधिक होती है ।

टिंकचर
(Tinctures)

टिंकचर बनाने की सामान्य विधि यह है—द्रव्य को क्षुण्ण (मोटा कल्क) करके एक ऐसे पात्र में डालो, जो अच्छी तरह बन्द हो सके । उस द्रव्य पर ९० प्रतिशत मद्यसार डालकर पात्र का पिधान (cover) बन्द कर दो । प्रति दिन एक बार अच्छी तरह पात्र को हिला दो । तीन-चार दिन के पश्चात् पिधान खोलो, मण्ड भाग निथार कर पृथक् कर लो और शेष कल्क को टिंकचर प्रेस (Tincture Press) में वा पोटली बाँध कर हाथ से दबाओ, ताकि सकल रस प्राप्त हो सके । इस रस को पूर्व प्राप्त तरल से भिजायें, तथा आवश्यकता अनुसार और मद्यसार डालो, पुनः छान कर स्वच्छ विलयन बोतलों में भर कर रख दें । यह उस द्रव्य का टिंकचर होगा ।

टिंकचर बनाने में एक विशेष पातनयन्त्र 'परकोलेटर' (Percolator) भी प्रयुक्त होता है, परन्तु इसका सविस्तार वर्णन यहाँ नहीं हो सकता ।

टिंकचर पृथक्-पृथक् द्रव्यों, यथा, कर्पूर, पुनर्नवा, कुटजादि वा मिश्रित द्रव्यों के भी बन सकते हैं । मात्रा ५ बूंद से १ ड्राम तक (प्रायः द्रव्यानुसार) । द्रव्य और मद्यसार का अनुपात (Ratio) कितना हो, यह द्रव्य की विलेयता और सत्व की न्यूनाधिकता पर निर्भर है । प्रायः द्रव्य १ भाग के लिए मद्यसार ४ से १० गुणा तक हो सकता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

टिंकचर का लक्षण—किसी द्रव्य के सत्व को मद्यसार में लीन करने का नाम उसका टिंकचर बनाना है, अतः किसी द्रव्य के क्रियात्मक सत्व (Active Principles) के मद्यसार में विलयन का नाम टिंकचर है, जैसा कि अंग्रेजी पुस्तकों में लिखा है :—"Tinctures are solutions of Active principles of drugs in Alcohol."

अब पाठक समझे सकेंगे कि :—

(क) आसवारिष्ट में जल द्रव्यसत्व और मद्यसार (१०-१५%) होते हैं।

(ख) तरलसारों में द्रव्य-सत्व और मद्यसार (२५%) है, परन्तु इनका आसवारिष्टों से अनुपात कुछ भिन्न होगा।

(ग) टिंकचरों में द्रव्य-सत्व और मद्यसार होगा, जल का सर्वथा अभाव (उस जल को छोड कर जो ९०% मद्यसार में होता है)

वैद्यक ग्रन्थों में टिंकचर

क्या हमारे ग्रन्थों में टिंकचरों का विधान है? अब इस पर तनिक विचार किया जायेगा। तदर्थं पाठकों के सन्मुख चरक के वचन रखे जाते हैं :—

पहला प्रमाण

देवदारुवचामुस्तनागरातिविषाभयाः। वारुण्यामासुतास्तोये कोष्णं वा लवणं पिबेत् ॥—(च० चि० अ० १५ श्लो० ९५)

देवदारु, बच्च, मुस्तक, नागर (सोंठ), अतिविषा और अभया (हरीतकी)—इन छः द्रव्यों को वारुण नामक तीव्र मद्य (Strong wine or Alcohol) में आसुत करके पीये अथवा गरम जल में लवण मिला कर पोये।

स्पष्टीकरण

चरक ने ग्रहणी अधिकार के इस श्लोक में दो योग दिए हैं, (१) देवदारु आदि का आसुत और (२) लवण का विलयन जल में। दूसरे योग से हमारा यहाँ कोई सम्बन्ध नहीं, प्रत्युत पहले योग से इस लेखक का घनिष्ट सम्बन्ध है।

देवदारु आदि द्रव्यों को वारुणी वा मद्यसार में डालना ही नवीन विज्ञान के अनुसार टिंकचर बनाना है। यह आसव वा अरिष्ट नहीं, क्योंकि तदर्थ वारुणी नहीं डाला जाता, प्रत्युत धातकीपुष्प, मधु आदि से मद्य उत्पन्न किया जाता है।

यहाँ एक आक्षेप हो सकता है कि टिंकचर बनाने की यहाँ सम्पूर्ण विधि नहीं दी गई, यह ठीक है, परन्तु चरक में अनेक बातें सूत्ररूप में दी गई हैं, यह भी तद्वत् समझें। वारुणी में औषधि डाल कर आसुत होने पर पीने से पूर्व छानना वा छान कर बोतलों में भर कर रखना जरूरी है। यह साधारण विधि बुद्धि से कल्पना की जा सकती है।

दूसरा प्रमाण

पाठां मधुरसां रास्नां सरलं देवदारु च। प्रक्षाल्य जर्जराकृत्य सुरामण्डे निधापयेत् ॥
तं मन्दलवणं कृत्वा भिषक् प्रसृतसंमितम्। पाययेत्ततो हिक्का श्वास श्चैवोपशाम्यति।
(च० चि० अ० १७ श्लो० १०३-१०४)

पाठा, मूर्वा, रास्ना, सरल और देवदारु को धोकर और खण्डशः करके सुरामण्ड (Alcohol) और अल्प लवण डाल कर वैद्य रोगी को दो पल भर पिलाये, इससे हिक्का श्वास रोग दूर होंगे। यहाँ 'प्रक्षाल्य' "जर्जरीकृत्य" आदि शब्द टिंकचर की निर्माण विधि को अधिक स्पष्ट करते हैं। दो पल मात्रा अधिक है, परन्तु चरक कालीन लोग संभवतः उसे सह जाते होंगे। इस योग में कोई विषैला द्रव्य भी नहीं है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तीसरा प्रमाण

आसुत्य च सुरामण्डा मृदित्वा वस्त्रपूतं (प्रस्रुत) पिबेत् । कफजे रोचके कासे पाण्डु रोगे सयक्ष्मणि ।।—(च० कल्य० अ० २ श्लो० ६) ।

जीमूतक (देवदाली फल) को सुरामण्ड में आसुत करके अर्थात् शराब में रख कर और मसल कर प्रस्तुत करके (छान कर वा Porcolate करके) कफज अरुचि, कास, पाण्डु रोग और यक्ष्मा में पीये, यहाँ पर 'मृदित्वा' और 'प्रसृत' विशेषार्थबोधक शब्द हैं एवं चरक को गूढ़ दृष्टि से देखा जाये, तो टिंकचर निर्माण तथा प्रयोग के कई प्रमाण मिलेंगे ।

भैषज्यरत्नावली में वर्णित कर्पूरासव और आहिफेनासव तो टिंकचर हैं ही, उन्हें सब जानते और प्रयोग करते हैं । अतः टिंकचर कोई नवीन योग नहीं, प्रत्युत प्राचीन है । हाँ, वैद्य उन्हें प्रयोग कम करते हैं, परन्तु आसवारिष्टों से यह अधिक लाभकारी और अल्पमात्रिक हुआ करते हैं । इन्हें विदेशी औषध नहीं समझना चाहिए ।

आसवारिष्ट कल्पना—कई आचार्य इन दोनों में यह भेद मानते है कि अरिष्टों में औषध द्रव्यों का काढा बनाकर सन्धान किया जाता है । आसवों में औषध एवं अपक्व जल डालकर सन्धान किया जाता है । जैसा कि भावमिश्र ने कहा है :

पक्वौषाम्वुसिद्धमन्यद्यं तत्स्यादरिष्टकम् ।
यदवपक्वौषधाम्वु सिद्धं मद्य स आसवः ।।
आ रिष्टं लघुपाकेन सर्वतश्च गुणाधिकम् ।

किन्तु चरकादि ने गुणों में इस प्रकार का कोई भेद नहीं किया है । उन्होंने "इत्येषामासवानामासुतत्वा दासव संज्ञा"—(च० सू० २५) सब सन्धानों को आसवही कहा है । गुणों में सब आसव आ रिष्ट अपने द्रव्यों के समान गुणों वाले होते हैं ।

आसव कल्पना—क्वाथादौभेषजद्रव्यं शर्करां मधुवागुड़म् । सम्यगासवनिर्किचित् किण्वं तथैव च ।
सन्धाय स्थापयेज्जातरसं वस्त्रपरिस्रुतम् । मांसीमरिच रालैस्तु (लोहैस्तु) प्रलिप्तेधूपितेऽथवा ।।
शुचौभाण्डे मुखंरुद्धवा स्थापितंभेषजोषितम् । आसवारिष्ट संज्ञातं कल्पमाहुश्चिकिसिका ।।
अरिष्टो द्रव्य संयोगसंस्कारादधिको गुणः ।।

क्वाथ, जल, स्वरस आदि द्रव द्रव्यों में औषध का प्रक्षेप, मधु-शर्करा आदि डाल कर तथा थोड़ी-सी मात्रा में सुराबीज (किण्वे) डाल दे । उपयुक्त पात्र में ये द्रव्य भरकर उसका मुख बन्द कर दे तथा सन्धान होने दे । बीच-बीच में मुख खोल कर परीक्षा करते रहें यदि खमीर और प्रक्षेप द्रव्य नीचे बैठ जाये तो उसे छानकर, जटामांसी अगर और कालीमिर्च का लेप लगे हुए या उनसे धूपित पात्र में भर कर उसका मुख बन्द कर दें । सन्धान होने पर छान कर काम में लाये । द्रव्यों का अनुपात—

अनुक्तमारिष्टेषु द्रवद्रोणी तुलां गुडम् । शर्करां मधुवादद्यात् प्रक्षेपं दशमांशिकम् ।।

अर्थात् जहाँ किसी भी द्रव्य का मान न लिखा हो वहाँ एक द्रोण (१०२४ तोले) द्रव पदार्थ होने पर गुड़, चीनी, शहद ४०० तोला, प्रक्षेप द्रव्य ४० तोला डालें ।

आवश्यक सूचनाएँ—आसवारिष्ट बनाने के विषय में निम्न सूचनाओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए ।

पात्र—घी या तैल पिए हुए घड़े, चीनी के पात्र अथवा काष्ठ पात्र (सागीन या शीशम के बने ड्रम) (ढोलपीप) लेना चाहिए । इन पर ढक्कन इस प्रकार का होना चाहिए कि वायु प्रवेश न हो तथा आवश्यकता के अनुसार खुल भी सके । मिट्टी के पात्र में अन्दर से कोई स्नेह या लेप लगा दे ताकि"'पात्रेऽरिष्टादि संधानं धातकीलोध्रलेपिते (चक्रपाणि) उसके छिद्र बन्द हो जाएँ । इन पात्रों में आसव भरने से पहले इन्हें गुग्गुलु-अगुरु, चन्दन, राई आदि से धूप देनी चाहिए ताकि वे शुद्ध और कीटाणु रहित हो जावें ।

ऋतु स्थान—समशीतोष्ण काल में और स्थान में आसव उत्तम बनता है ।

सन्धान—द्रव पदार्थ (क्वाथ या जलादि) में से आधा द्रव्य लेकर उसमें गुड आदि पदार्थ घोल दे । एक दिन उसी पात्र में पड़ा रहने दें । पुनः दूसरे दिन उसे फिर अच्छी तरह हिला कर पात्र में भर दे । शेष द्रव पदार्थ तथा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अन्य प्रक्षेप द्रव्य भी डाल दें और मुख बन्द कर दें। द्रव द्रव्यों से पात्र का चतुर्थांश भरें। तीन भाग रिक्त रखें ताकि सन्धान के समय उत्पन्न वायव्यों (गैसों) को स्थान मिल सके। यदि पुराने आसव की थोड़ी सी गाद भी इसमें मिला दी जाए तो उनमें उपस्थित किण्व (yeast) के कारण सन्धान अच्छा होता है। प्रक्षेप का चूर्ण यवकुट जैसा होना चाहिए अधिक सूक्ष्म नहीं। क्वाथों का चूर्ण भी इसी प्रकार यवकुट ही होना चाहिए।

यदि पात्र की खराबी के कारण आसव खट्टा हो जाए तो पात्र को मधुर क्षार (धोने का सोडा) को गरम जल में डाल कर या चूने के पानी को गरम कर, उससे दो-तीन बार पात्र धो लेना चाहिए और धूप में सुखा लें। अम्लता का अंश रहने पर शुक्त या सिरका ही बनता है जिसका सेवन हानिकारक है आसव नहीं बनता।

आसवारिष्ट सिद्धि की परीक्षा—(अ) शब्द परीक्षा—जब सन्धान हो रहा होता है तो विशेष प्रकार 'बुद्‌बुद्' शब्द सुनाई देता है, जो आसव में वायव्यों (गैसों) की उत्पत्ति का द्योतक है। सन्धान बन्द हो जाने पर यह शब्द भी बन्द हो जाता है। शब्द अत्यन्त सावधानी से सुनने पर सुनाई देता है।

(आ) **फेनोपशम**—पात्र का मुख खोलकर देखने पर उसमें झाग दिखाई नहीं देते। ऊपर धाय के फूल आदि आकर मोटी तह बना देते हैं। उसे हटाने पर स्वच्छ स्थिर तरल दिखाई देता है। जिसमें मुख भी देखा जा सकता है।

(इ) **दीप शिखा या शलाका परीक्षा**—मुंह को खोल कर दियासलाई या जलता दीप पात्र के अन्दर ले जाने पर यदि सन्धान जारी हो तो वह बुझ जाता है। अन्यथा जलता रहता है। सन्धान के समय उत्पन्न होने वाली कार्बन द्विओषित गैस इसे बुझा देती है। इनकी मात्रा २-४ तोला तक है, भोजन के आधा घण्टा बाद समान जल में मिलाकर सेवन किए जाते हैं।

अन्य सन्धान कल्पनाएँ—

ज्ञेयः शीतरसः **सीधुरपक्व** मधुर द्रवैः। सिद्धः पक्वरसः सीधुः संपक्व मधुर द्रवैः॥
या तालखर्जूररसैरासुता साहि **वारुणी**। परिपक्वान्न सन्धान समुत्पन्नां सुरां जगुः॥
सुरामण्डः **प्रसन्ना** स्यात्, ततः कादम्बरीघना।
तदधो जगलोज्ञेयो, मेदको जगलादधनः। बक्कसोहृतसारः स्यात्, सुराबीजंच किण्वकम्॥
विनष्टमम्लतां यातं मद्यं, वा मधुरद्रवः। विनष्टे सन्धितो यस्तु तच्छुक्तमित्यभिधीयते॥
तुषाम्बु सन्धितं ज्ञेयमामैर्विदलितैर्यवैः। यवैस्तु निस्तुषैः पक्वैः सौवीरं सन्धितं भवेत्॥
अन्नं शाल्यादि संसिद्धं प्रक्षिप्तंत्रिगुणेजले। धान्याम्लं सन्धितं प्रोक्तं आरनालं च **काञ्जिकम्**॥
शालि कोद्रव मण्डैर्वा सन्धितं कांचिकं विदुः॥

शीतरस सीधु—गन्ने आदि मधुर रसों को विना अग्नि पर उबाले सन्धान करने से बनता है। यदि अग्नि पर उबाल कर उनका सन्धान किया जाए तो उसे 'पक्व रस सीधु' कहते हैं।

वारुणी—ताड़, खजूर आदि वृक्षों के रस का सन्धान करने से वारुणी बनती है। परिपक्व अन्न के सन्धान से उत्पन्न शराब को सुरा, सुरा का ऊपर का स्वच्छ भाग (मण्ड) प्रसन्ना उससे घना भाग 'कादम्बरी' उससे नीचे का भाग 'जगल', जगल से भी घना भाग 'मेदक', सुरा छान लेने पर निचला भाग द्रव रहित 'बक्कस' कहा जाता है। इसे सुराबीज किण्वक भी कहा जाता है। आसवादि में खमीर उठाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। चावल के आटे से किण्व बनाया जाता है। (शालिपिष्ट प्रभवं किण्वक मिति कथितम् आदमल्ल) मद्य यदि खराब होकर खट्टा हो जाए या मधुर रस वाला सन्धान खट्टा हो जाए तो उसे शुक्त कहते हैं।

तुषाम्बु—छिलके सहित कुटे हुए जौ को मिट्टी के घड़े में बिना पकाए ही चौगुने पानी में डालकर सन्धान करने से तुषाम्बु (खट्टा रस वाला) बनाया जाता है। छिलके रहित जो को आठ गुणे जल में पका कर आधा जल बाकी रहने पर मिट्टी के घड़े में सन्धान करें। जब वह खट्टा हो जाए तो पात्र में छान लें। इसे 'सौवीर' कहते हैं। किन्हीं आचार्यों के मत में गेहूँ से भी सौवीर बनाई जा सकती है।

धान्याम्ल या कांजी—चावल को जल में पकावें और मृत्पात्र में तीन गुणे जल में डाल कर मुख बन्द कर दें। जब वह खट्टी हो जाए तो छान कर काम में लायें। प्रायः सात दिन में यह 'सन्धान' हो जाता है। आयुर्वेद में प्रायः

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

काम आने वाले आसवारिष्ट निम्न हैं। अमृतारिष्ट, अभयारिष्ट, अर्जुनारिष्ट, अशोकारिष्ट, अश्वगन्धारिष्ट, अहिफेनासव, उशीरासव, कनकासव, कुमार्यासव, कर्पूरासव, कुटजारिष्ट, खदिरारिष्ट, चन्दनासव, जीरकाद्यारिष्ट, द्राक्षासव, द्राक्षारिष्ट, दशमूलारिष्ट, पुनर्नवारिष्ट, पुनर्नवासव, मध्वासव, (लोध्रासव) रोहीताकाद्यारिष्ट, सारिवाद्यासव, सारस्वतारिष्ट आदि।

स्नेहपाक कल्पना

(Medicated Oils or Ghees)

तैल या घी में औषध द्रव्य या उनका काढ़ा बनाकर स्नेह पाक किया जाता है। यह स्नेह पाक मूर्च्छना के पश्चात् करना ही उत्तम है। अतः उसकी विधि पहले लिखी जाती है।

घृत मूर्छना—पथ्याधात्री विभीतैर्जलधररजनी मातुलुंगद्रवैश्च। द्रव्यैरेतैः समस्तैः कुडवपरिमिति, तैः मन्दमन्दानलेन। आज्यप्रस्थं विफेन परिचपलगत मूर्च्छयेद् वैद्यराजस्तस्मादामोपदोषं त्यजति च सकलेवीर्यवत् सौख्यदायी।

अर्थात् प्रस्थ (६४) तोला घी को कढाही में डाल कर गरम करे और जब वह फेन (झाग) रहित हो जाए, तो उसमें हरड बहेडा-आमला-नागरमोथा-हलदी का चूर्ण-सबका निम्बु स्वरस में या बिजौरे के रस में पीस कर, सब मिले हुए एककुडव (१६) तोला जल २५६ तोला मिला कर स्नेहपाक मृदु अग्नि पर विधि से पाक करें। इस प्रकार मूर्च्छित करने से घृत आमदोष रहित, वीर्यवान् तथा औषधियों के गुणों को भली प्रकार ग्रहण करने योग्य हो जाता है।

तैलमूर्च्छना—तैल कृत्वा कटाहे दृढतरविमले मन्दमन्दानलेतत्। पक्वं निष्फेनभावं प्रगत मिह यदा शैत्य भावं तदेव। तैलस्येन्दु कलांशेन विक्शा देया तु मूर्च्छाविधौ। ये चान्ये त्रिफला पयोद रजनी ह्रीबेरलोध्रान्विताः। सूचीपुष्पवटावरोह नलिकास्तस्याथ पादांशकाः। पाच्यास्तैलजगन्धदोष हृतयेकल्कीकृतास्तद्विदैः। तैल को कडाही में मन्द आंच पर पकावे। जब वह झाग रहित हो जाए तो कढाही को नीचे उतार कर ठण्डा होने पर उसमें तैल सोलहवां, मजीठ और मजीठ से चौथा भाग हरड, बहेडा-आमला-नागरमोथा, हल्दी, खस, लोध्र के बड़े का फूल, वटका, अंकुर, तथा नलिका (नालुका या केशिया) मिला कर, तैल से चार गुना जल उसमें मिलाकर स्नेहपाक, विधि से पकावे। इससे तैल का गन्ध-दोष दूर होता है।

तैल पाक में कभी भी गरम-गरम तैल में कल्क या जल नहीं डालना चाहिए। द्रव्य कडाही को नीचे उतारकर डाले। अन्यथा कल्क द्रव्यों के जल जाने का और भड़क जाने से आग लग जाने का भी डर रहता है।

स्नेहपाक में द्रवादि का अनुपात—

स्नेहाच्चतुर्गुणो द्रवः, स्नेहचतुर्थांशोभेषज कल्कः।
तदेकमध्यं विपचेदित्येष स्नेह पाक कल्कः॥—(सु० चि० ३१)

अनुक्तें द्रव कार्यें तु सर्वत्र सलिलंमतम्। कल्क क्वाथावनिर्देशे गणात्तस्मात् प्रयोजयेत्॥—(सु० चि० ३१)
जलस्नेहौषधानां तु प्रमाणं यत्र नेरितम्। तस्यादौषधात् स्नेहः स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम्॥—(च० क० १२)
पंचप्रभृति तु द्रवं पृथक्-पृथक् स्नेहसममेवावयेत्। अनिरुपितकल्पनं च भैषज्यं कल्कीकुर्यात्॥
अथौकं प्रतिसंसृज्याधिश्रुत्यच निर्यूहवर्त साधयेत्।—(अ० स० क० ८)

स्नेह पाक के लिए निम्न नियम हैं—

(१) जिस विधि से स्नेह पाक में औषधियों आदि का उल्लेख किया गया हो तदनुसार ही उनका पाक करना चाहिए।

(२) यदि किसी स्नेह का गण से पाक करना हो और वहां कल्क या क्वाथ दोनों ही उल्लेख न हो तो वहां पर उस गण की औषधियों के कल्क और क्वाथ दोनों से ही पाक करे। यह नियम जहां 'गण' का या तीन से अधिक द्रव्यों का उल्लेख हो वहां के लिए ही है।

(३) द्रवादि का प्रमाण जहां न कहा गया हो वहां स्नेह की अपेक्षा द्रव पदार्थ चार गुणा, तथा स्नेह के $\frac{1}{4}$ अंश ही कल्क डालना चाहिए। जहां चार से अधिक द्रव पदार्थ लिखें हों वहां प्रत्येक द्रव को स्नेह के समान ही लेना चाहिए।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निम्न उदाहरण इसे स्पष्ट कर देता है।

त्रिफलाघृत

गो घृत	१ प्रस्थ
त्रिफला क्वाथ	४ प्रस्थ
त्रिफला कल्क	$\frac{1}{4}$ प्रस्थ
त्रिफला क्वाथार्थ, त्रिफला चूर्ण	१ प्रस्थ
जल	१६ प्रस्थ
शेष	४ प्रस्थ

(४) यदि केवल कल्क द्रव्यमात्र से ही स्नेहपाक करना हो तो कल्क को जल से पीस लें तथा स्नेह से चतुर्गुण द्रव डालें। यथोक्तं—

द्रव्येण केवले नैव स्नेहपाको भवेद्यदि। तत्राम्बुपिष्टः कल्कः स्याज्जलं चात्र चतुर्गुणम्।—(शा० म० अ० ६

आचार्य चक्रपाणि के मतानुसार जल चार गुणा सर्वत्र ही डालना चाहिए।

स्वरस क्षीरमांगल्यैः पाको यत्रेरितः क्वचित्।
चतुर्गुणं जलं तत्र वीर्यधानार्थमावयेत्॥—(चक्र)

स्नेह की न्यूनतम मात्रा—अनिर्दिष्ट प्रमाणानां स्नेहानां प्रस्थ इष्यते।
नस्यार्थं स्नेहकुडव इष्यते स्नेहवेदिभिः॥—(गंगाधर)

अत्र च पक्तव्यघृतस्य प्रमाणानिर्दिशाद्व्यवस्थित मानमेव सर्पिरच्छात्, पक्तव्यं (चक्रपाणिदत्तः) स्नेहपाक में यदि स्नेह का प्रमाण न लिखा हो तो कम-से कम १ प्रस्थ (६४ तोला) स्नेह ग्रहण करना चाहिए और यदि स्नेह नस्यार्थं प्रयोग करना हो तो १ कुड़व तैयार करना चाहिए। किन्तु श्री चक्रपाणि के मतानुसार यथेच्छ स्नेह मात्रा में स्नेह तैयार कर सकते हैं।

स्नेहपाक परीक्षा—"तत्र यदा विरमति शब्दः, प्रसादमापद्ये स्नेहो, यथास्वं गन्धवर्णरसोत्पत्ति, भेषज्यमगुलिम्या मृद्यमानमनति मृद्वदाव्यामनमनंगुलिग्राही च स्यात्, स कालस्तस्यावतारणाय। अपि च घृतस्य फेनोपगमः तैलस्यतु तद्द्भवः।—(अ० सं० क० ८)

(१) स्नेह पाक में जल रहने पर एक विशेष प्रकार का बुद्बुद् शब्द होता रहता है। पाक हो जाने पर वह शान्त हो जाता है। यह 'शब्द विराम' परीक्षा है। अग्नि में कल्क डालने पर वह चिडचिड शब्द नहीं करता।

(२) स्नेह (घी या तैल) स्वच्छ तथा औषधि के गन्ध वर्ण रस वाला हो जाता है।

(३) वर्ति परीक्षा—कल्क को दो अंगुलियों के बीच में रखकर रगड़ने से उसकी वर्ती बन जाती है। कल्क अँगुलि में लगता नहीं, तथा न ही वह अतिमृदु या अतिकठोर होता है।

(४) फेनपरीक्षा—घृतपाक में पाक होने पर झाग आने बन्द (फेनोपशम) हो जाते हैं, किन्तु तैल में झाग (फेन) उत्पन्न होने लगते हैं। घृत-तैल की यह विभिन्नता स्मरणीय है।

स्नेहपाक प्रकार—स्नेहपाकस्त्रिधाज्ञेयो मृदुः मध्यः खरस्तथा। तुल्ये कल्केन निर्यासे, भेषजानां मृदुः स्मृतः। संयाव इव निर्यासे मध्यो दर्वीविमुच्यति। क्षीयमाणेतु निर्यासे वर्त्यमाने खरस्तथा। खरोऽभ्यंगेस्मृतः पाको, मृदुर्नस्तः क्रियासु च। मध्यपाकं तु पानार्थं बस्तौ च विनियोजयेत्।—(च० क० १२)

ईषत्सरसपाकस्तु स्नेहपाको मृदुर्भवेत्। मध्यपाकस्य सिद्धिश्च कल्के नीरसकोमले। ईषत्कठिन कल्कश्च स्नेहपाको भवेत्खरः। तदूर्ध्वं दग्धपाकः स्यात्दाहकृन्निष्प्रयोजनः। आमपाकश्च निर्वीर्यो वन्हिमान्द्यकरोगुरुः।

स्नेह का पाक तीन प्रकार का होता है। मृदु, मध्य, और खर।

मृदु पाक—ठस कल्क में कुछ द्रवांश रहता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मध्यपाक—इसमें कल्क यद्यपि द्रवांश रहित होता है तथापि वह मृदु होने के कारण हलुए जैसा और कड़छे का न लगने वाला होता है।

खरपाक—इसमें कल्क कुछ कठिन होता है किन्तु जला हुआ नहीं होता।

घृतों में कासीसादि, कुमारकल्याण, जात्यादि, त्रिफला, दूर्वादि, फल, घृत, फलकल्याण, ब्राह्मी, महात्रिफला, महाशतावरी का प्रयोग अधिक होता है। तैलों का प्रयोग प्रायः अभ्यंग लेपादि में किया जाता है। अर्क, कासीसादि, पंचगुण, नारायण, ब्राह्मी, निम्बपत्र, निगुंण्डी, पंचगुण, नारायण, मरिचादि, महाभृंगराज, महालाक्षादि, शुष्कमूलक, षड्बिन्दु, बाकची, विषगर्भ इन तैलों का अधिकतर प्रयोग होता है।

स्नेहों का प्रयोग क्षेत्र

मृदु पाक नस्यार्थ, मध्यमपाक बस्ति और पान के लिए तथा खर पाक अभ्यंग बस्ति तथा कर्णपूरण के लिए काम आता है। इनके अतिरिक्त आमपाक तथा दग्धपाक भी होते हैं। आम पाक में स्नेह अपक्व रहता है। वह निर्वीर्य होता है, गुरु और अग्निमान्द्यकर। दग्धपाक में द्रव्य जल जाते है, वह भी औषधि के काम नहीं रहता। घृतों की मात्रा १-२ तोला तक है।

लेप कल्पना

द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सद्रवं तनु।
देहे प्रलेपनार्थं तल्लेप इत्युच्यते बुधैः ॥
प्रलेपश्च प्रदेहश्च तस्यभेदद्वयं स्मृतं बुधैः।
शीतस्तनुः प्रलेपः स्याद्रक्तपित्त विकारहा ॥
कफ वात विकारेषु घनश्चोष्णः प्रदेहकः ॥

ताजे (गीला) द्रव्य या सूखे द्रव्य को जल के साथ पत्थर आदि पर पीस कर पतला लेप बनाने का नाम 'लेप' है। इसके 'प्रलेप' तथा 'प्रदेह' ये दो भेद हैं। प्रलेप पतला तथा प्रदेह मोटा होता है। प्रलेप शीतल पतला तथा रक्तपित्त विकारों का शामक होता है। प्रदेह मोटा, उष्ण तथा कफवात विकारों का शामक होता है।

लेप प्रयोग विधान—न च पर्युषितं लेपं कदाचिदवचारयेत्। न च तेनैव लेपेन पुनर्जातु प्रलेपयेत्। विशोषीं चाविशोषींच वीक्ष्यकार्यं प्रयोजयेत्। रक्तपित्त विकारेषु व्रणे शोथे तथैव च। पूर्वमुद्धात्य लेपं तु पुनर्लेपं प्रदापयेत्। अभिघाते तथा वातरुजि लेपं विशोषयेत्। अर्थात् बासी लेप का कभी प्रयोग न करें। सदा नया बना कर ही लेप लगाए। एक बार ही लेप लगाए (एक बार उतारे लेप का भी दूसरी बार प्रयोग न करें)। प्रयोजन सिद्धि को देखकर लेप को सूखने से पहले ही उतार दे या सूखा रहने दे। रक्तपित्त के रोगों में तथा व्रण शोथ में पहले लेप को उतार कर दूसरा लेप लगायें। अभिघात (मार-चोट) तथा वातवेदना में सूख जाने तक लेप को लगा रहनें दें।

लेप में स्नेहांशः— षड्भागं पैत्तिके स्नेहं चतुर्भागं तु वातिके।
अष्टभागं तु कफजे स्नेहभागं प्रदापयेत् ॥

पैत्तिक विकारों में छठा भाग, वात रोगों में चौथा भाग, और कफ रोगों में आठवां भाग स्नेह मिलाना चाहिए।

उपनाह[1] (पुलटिस) कल्पना

यह भी लेप का ही प्रकार है अतः यहां इसका भी वर्णन किया गया है। अलसी-जौ, तिल-गेंहू का आटा घोलकर (जल-दूध-काञ्जी,गोमूत्रादि) हल्दी, दशांगलेपादि औषधियां मिलाकर और आवश्यकतानुसार स्नेह (घी-तैलादि) मिलाकर मृदु अग्नि पर पाक किया जाता है। इस प्रकार उपनाह को वस्त्र पर फैलाकर 'व्रणशोथ' आदि पर बांधा जाता है। इसका प्रयोग व्रणशोथशमनार्थ या पाकार्थ किया जाता है। उपनाह की परिभाषा किसी आचार्य ने इस प्रकार की है।

(१) **Poultices, Cataplasmata.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अतसी-यव-गोधूमचूर्णमालोहितं द्रवैः ।
संपक्वं सौषधस्नेहं वस्त्रे णान्तरितं तथा ॥
बध्यते व्रणशोथादावुपनाहः स उच्यते ।

(२) **मलहर**[1] **कल्पनाः—** सिक्थादि तैले प्रदत्तमथोचित् प्रमाणतः । औषधस्यान्दोलनंतु 'मलहर' इत्युच्यते । मर्हम भी एक प्रकार के लेप हैं । जो घी-तैल-मोम, गन्धा बिरौजा, राल आदि में औषधि मिलाकर बनाया जाता है । आधुनिकों ने वेसलीन, हार्डपेराफीन, आदि, विविध प्रकार की चरबी आदि का भी प्रयोग किया है । आयुर्वेद में सिक्थ तैल का प्रयोग किया जाता है । इसमें तिल तैल ६ भाग तथा मोम एक भाग होता है । प्रथम मोम को स्वच्छ कढाई में पिघला लिया जाता है । (रसतरंगिणी) आयुर्वेद में अधिकतर निम्न मलहरों का प्रयोग होता है :—

काला मलहर, रक्त मलहर, गुलाबी मलहर (हिंगुलामृत मलहर) आदि के अतिरिक्त टंकण मलहर (१०%), गन्धक मलहर (१०%), यशद मलहर (१५%), पारद मलहर (१०%) आदि । कई मलहर बनाने में सिक्थ तैल के स्थान पर **शतधौतघृत** का भी उपयोग होता है । इसमें घी को जल के साथ या निम्ब के काढ़े के साथ खूब मलकर धोया जाता है । एक बार धोकर पुनः उसमें नया जल या काढ़ा डाला जाता है । इस प्रकार सौ बार धोने से **शतधौत** और हजार बार धोने से **सहस्रधौत** घृत बन जाता है । यह मक्खन के समान श्वेत होता है ।

चूर्णोदक[2] (सुधा जल) २ रत्ती उत्तम सूखा चूना तथा पांच तोला जल मिलाकर उत्तम हरे रंग की कांच की शीशी में भर दें । खूब हिला कर ठंडी जगह में ६ घंटे रख छोड़ें । बीच में भी हिलाते रहें । **पुनः** सारक पत्रों से छानकर शीशा में भर कर रख लें । मात्रा १ से ४ शुक्ति (बूंद) पर्यन्त है ।

परिस्रुत जल कल्पना[3]**:—** यन्त्रेण नलिकाख्येन वन्हिसंतापयोगतः । बिन्दुशो यत् स्रुतं नीरं तत् परिस्रुतमुच्यते । (र० त० त० २) नलिका या नाड़ी-तिर्यक्पातन-यन्त्र में स्वच्छ जल को भरकर, मृदु अग्नि द्वारा बिन्दुशः जो अर्क निकाला जाता है वही परिस्रुत जल है । इसे अतिशुद्ध जल समझना चाहिए ।

विलयन[4] **या घोल कल्पनाः**—उक्त प्रकार के परिस्रुत जल में या अर्क गुलाबादि में यथोचित औषधियों के चूर्ण को मिलाना 'घोल' कहलाता है । ये विलयन या घोल किसी विशेष अनुपात में लाये जाते हैं । प्रतिशत की परिभाषा मान परिभाषा में दी गई है । वहीं देखें ।

उक्त तालिका में अंशांशतः प्रतिशत का अनुपात दिया गया है । परन्तु व्यवहार में इतने सूक्ष्म में जाने की आवश्यकता नहीं यथा १% विलयन या घोल बनाने के लिए साढ़े चार यव के स्थान पर साधारणतः ४ यव औषधचूर्ण डाला जाता है । रसतरंगिणी में स्फटिका द्रव का उल्लेख निम्न शब्दों में किया गया है ।"स्फटिका तोलक मिता पंचाशत्तोलकोन्मिते । जले द्रव्यं प्रयुञ्जीत (१ त० ११) वहाँ अन्य अनेक औषधियों की द्रव कल्पना (विलयन) भी की गई है ।[5] ५० में १ अनुपात से २ प्रतिशत की शक्ति वाला विलयन तैयार हुआ । नेत्ररोगों में प्रायः इसका प्रयोग किया जाता है ।

मान परिभाषा

मान का महत्व—"न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित् । अतः प्रयोग कार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया । —(शा० प्र० स० १) मान के बिना संसार में व्यवहार नहीं चल सकता, विशेषकर चिकित्सा शास्त्र में । औषधि-निर्माण तथा प्रयोग मान के बिना सम्भव ही नहीं हैं । यही मान परिभाषा का महत्व है और प्रयोजन है ।

(1) Unguenta, Ointment.
(2) Lime water.
(3) Distilled water.
(4) Lotions.
(5) Solutions Lotio.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आयुर्वेद में दो मानों की प्रमुखता है—सौश्रुत या कालिंगमान। द्वितीय चरकीय या मागध मान। भ्रमवश कुछ ऐसी धारणा वैद्यों में बैठ गई है कि 'कालिंगान्मागधं श्रेष्ठं' तथा कालिंग या सौश्रुतीयमान से चरकीय अथवा मागधमान द्विगुण हैं। यह केवल भ्रान्ति है। इसका विशेष विवरण रसयोगसागर नामक ग्रन्थ में स्व० वैद्य हरिप्रपन्नजी ने किया है। वहां ही देखना चाहिए। यहां उसका उल्लेख नहीं किया गया है। चरक तथा सुश्रुत में भेद केवल 'सुवर्ण मापक' में है, अन्यत्र नहीं। निम्न विवरण से यह स्पष्ट है।

सौश्रुतीय मान	**चरकीय मान**
१२ धान्य माष = ६ गुंजा = १ सुवर्णमाष	८ गुंजा = १ सुवर्णमाष
१६ सुवर्ण माष = १ सुवर्ण (कर्ष)	१२ सुवर्ण माष = १ कर्ष

सुश्रुत ने १२ उड़दों का एक सुवर्ण माषक लिखा है। वहां 'गुंजा' का उल्लेख नहीं। किन्तु २ उड़दों की १ गुंजा होती है। पक्षान्तर में सुश्रुत ने १९ निष्पावों (सेम के बीज) का एक धरण और ढाई धरण का (४७ १/२ सेम बीज) कर्ष लिखा है। २ रत्ती का एक निष्पाव होता है। वस्तुतः सुश्रुत का मान-सुवर्ण-मान जिसे अंग्रेजी में ट्रायबेट[1] (हेमभार) कहा जाता है समझना चाहिए तथा चरक का औषधीय[2] मान। पहले चरक तथा सुश्रुत का मान लिखा जाता है जिसकी पश्चात् वर्तमान तथा अन्य मानों से तुलना की गई है।

मान भेद—प्राचीन काल तथा आधुनिक समय में भी निम्न मान भेद प्रचलित हैं—

(१) **पौतव मान**—(Measure of weight) तुला से किया जाने वाला पदार्थों का भार।

(२) **द्रव्य मान**—(Measure of Volumes or Capacity) ठोस या द्रव पदार्थों के आयतन का मान।

(३) **पाय्य मान**—(Measure of length) पदार्थों की लम्बाई का मान।

प्राचीन कोषकारों ने ये तीनों ही प्रकार माने हैं।

पाय्यं हस्तादिभिर्मानं, द्रुवयं कुडवादिभिः। पौतवं तुलया..........(वैजयन्ती)

सुश्रुतीय पौतवमानं—'पल-कुडवादीनामतो मानं व्याख्यास्यामः तत्र द्वादश माषा मध्यमाः सुवर्णमाषकः, ते षोडश सुवर्णम्, अथवा मध्यनिष्पावा एकोनविंशतिर्धरणं, तान्यऽर्धतृतीयानि कर्षः। ततश्चोर्ध्वं चतुर्गुणमभिवर्धयन्तः पल-पल कुडव-प्रस्था ढक द्रोणा इत्यभिनिष्पद्यन्ते। तुला पलशतं ताः पुनः विंशतिर्भारः, शुष्काणामिदं मानं आर्द्राणां तु द्विगुणम्—(सु० चि० २१)

चरकीय पौतवमान

जालन्तर गते भानौ सूक्ष्मं योदृश्यते रजः। प्रथम तत् प्रमाणानां त्रसरेणु प्रचक्षते ॥
त्रसरेणुस्तु पर्यायनाम्ना ध्वंसी (वंशी) निगद्यते। षड्ध्वंसी (वंशी) भिर्मरीचिः स्यात्ताभिः षड्भिस्तुराजिका ॥
त्रिसृभिः राजिकाभिस्तु 'रक्तसर्षप' इष्यते। तद्द्वयेन भवेदत्र मध्यमो गौर सर्षप ॥
अष्टौ तु सर्षपारक्तास्तण्डुलश्चापि तद्द्वयम्। धान्यमाषोभवेदेको धान्यमाषसमो यवः ॥
यव द्वयेन गुंजास्याद् रक्तिकाचादि सामता। गुंजा द्वयेन निष्पावेऽस्यण्डिकाच निगद्यते ॥
षड्भिस्तु रक्तिकाभिः स्यान्माषको हेम संज्ञकः। माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याट्टंक श्चापिनिगद्यते ॥
(चरकेणाष्टगुंजाभिः स्वर्णमाषः प्रकीर्तितः। त्रिभिर्माषैस्तथा शाणः, शेषंमानं समंमतम् ॥)
शाणौ द्वौ द्रक्षणं कोल गद्याणं वटकं तथा। विद्याद्द्वौ द्रक्षणौ कर्षं सुवर्ण पिचुमेव च ॥
विडालपदकं पाणितलमक्षं च तिन्दुकम्। करमध्यं हंसपदं कवलग्रहमेव च। उदुम्बरं तथा माषषोडशी
पाणिमानिकाम्। स्यात् कर्षाम्भामष्टपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ॥ द्वे पलार्धे पलं मुष्टिः प्रकुंचो थ चतुर्थिका।
बिल्वं षोडशिकाचास्त्रं पलमेवात्रकीर्त्यते। पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतञ्छं निगद्यते।
प्रसृतिभ्यामंजलिः स्यात् कुडवोर्ध शरावकः। अष्टमानं च सज्ञेयः कुडवाभ्यांच मानिका।

(1) Troy weight.
(2) Aphothecaries weight.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शरावोऽष्टपलं तदंवज्ञेयमत्रविचक्षणै । शरावाभ्यां भवनेत्प्रस्थश्चतुः प्रस्थैस्तथाऽढकम् ।
भाजन, पात्रकं, चैव, कंस, प्रस्थाष्टकैस्तथा । चतुर्भिराढकै द्रोणः कलशो नल्वणोऽर्मणः ।
उन्मानश्च घटो राशी द्रोण पर्याय संज्ञका । द्रोणाभ्यां शूर्षकुम्भो चतुः षष्टि शरावकः ।
वाहं शूर्पद्वयं विद्याद् गोणीं भारी तथैव च । गोणी चतुष्टयं खारीकथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः ।
चतुः सहस्र पालिका षण्णवत्यधिका च सा । पलानां द्वि सहस्रं तुभार एकः प्रकीर्तितः ।
तुला पलंशतं ज्ञेया सर्वत्रेष विनिश्चत ।

तुलनात्मक पौतवमान—

सौश्रुतीय मान	चरकीय मान
....	४ त्रसरेणु[1]—सर्व प्रथम मान
....	६ त्रसरेणु (वंशीध्वंसा) = मरीचि
....	६ मरीचि = १ गुंजा (रत्तिका)
....	३ राजिका = १ रक्त सर्षप
....	२ रक्तसर्षप = १ पीतसर्षप
....	८ रक्त सर्षप = १ तण्डुल (लाल चावल)
....	२ तण्डुल = १ धान्य माष
....	१ धान्यमाष = १ यव (जौ)
....	२ यव = १ गुंजा (१ रत्ती)
१२ धान्य माष = ६ गुंजा	२ गुंजा = १ निष्पाव (अण्डिका)
६ गुंजा = १ सुवर्ण माष	६ गुंजा = १ सुवर्ण माषक
१६ सुवर्णमाषक = १ कर्ष	४ माशा = १ शाण (टंक)
(९६ रत्ती)	८ गुंजा = १ सुवर्ण माष } चरकानुसार
....	३ सु० मा० = १ शाण }
(१२ निष्पाव = १ धरण	२ शाण = द्रंक्षण, कोल, वटक
(२ गुंजा = १ निष्पाव)	(१) गद्याणक
२½ धरण = १ कर्ष	२ द्रंक्षण = १ कर्ष (९६ रत्तियां)
(९५ रत्ती)	२ कर्ष = १ शुक्ति (२) (अष्टमिका-अर्धपलं)
....	२ शुक्ति = १ पल मुष्टि)

(१) कर्ष के पर्याय—सुवर्ण, पिचु-विडालपदक, पणितल, अक्ष, तिन्दुक, करमध्य, हसेपद, कवलग्रह, उदुम्बर, माषपोडशी, पाणिमानिका ।

(२) पल के पर्याय—मुष्टि, चतुर्थिका, बिल्व, षोडशिका ।

....	४ प्रस्थ = १ आढ़क (भाजन-पात्र)
....	[२ प्रस्थ (२ आढ़क) = १ कंस]
	४ आढ़क = १ द्रोण (कलश नल्वण, अर्मण, उन्मान, घट राशी)
....	२ द्रोण = १ शूर्ण (कुम्भः, चतुः षष्टिः शराव)
....	२ शूर्प = १ वाह (गोणी, द्रोणी-भारी)
....	४ गोणी = १ खारी (४०९६ पल)
....	१ भार = २०० पल

(१) छोटे जालीदार झरोखे में सूर्य के प्रकाश में दीखने वाले सूक्ष्म कण 'त्रसरेणु' कहलाते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तुला =१०० पल

वक्तव्य—(१) माष, शाण (टंक) कर्ष, पल, (विल्व) कुडव, प्रस्थ, आढ़क, राशि, (द्रोण) गोणी। (द्रोणी) तथा (खारिका)-ये उत्तरोत्तर चतुर्गुण होते जाते हैं।

(२) गीले या ताजे द्रव्यों को शुष्क द्रव्यों की अपेक्षा द्विगुण लेना चाहिए। यथा यदि किसी योग में सोंठ (सूखा अदरक) १ कुडव लिखी हो तो आर्द्रक २ कुडव लेना चाहिए। क्योंकि आर्द्र में वीर्य तथा गुरुता इतनी अधिक मात्रा में नहीं होती, जितनी शुष्क में। अतएव कहा है—

"शुष्क द्रव्येषु यन्मानमार्द्रेषु द्विगुणंहितत्। शुष्कस्य गुरुतीक्ष्णत्वात् तस्मादर्धप्रयोजयेत्॥

शारङ्गधरोक्त पौतव मान

आचार्य शारंगधर ने अपने समय प्रचलित मान का जो वर्णन किया है वह चरक तथा सुश्रुत से कुछ भिन्न है। वह मान भेद नीचे दिया जाता है—उसने कलिंग तथा मागध-ये दो भेद माने हैं। संभवतः उस समय दो मान प्रचलित रहे हों। वह कलिंग से मागधमान को श्रेष्ठ बतलाता है। कालिंगान्मागधं श्रेष्ठं मानं मानविदोविदुः॥

मागधमान

त्रसरेणुर्बुधैः प्रोक्तस्त्रिंशता परमाणुभिः। त्रसरेणुस्तु पर्याय नाम्ना 'वंशी' निगद्यते।
जालान्तर गतेभानौ यत्सूक्ष्मंदृश्यते रजः। जालान्तर गतेः सूर्यकरैर्वंशी विलोक्यते॥
षड्वंशीभिर्मरीचिः स्यात्ताभिः षड्भिस्तुराजिका। तस्य त्रिंशतमो भागः परमाणुः स कथ्यते।
तिसृभीः राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः। यवोष्ट सर्षपैः प्रोक्तो गुंजा स्यात्तच्चतुष्टयम्॥
षड्भिस्तु रक्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधान्यकौ। माषैश्चतुर्भिः शाणंस्यात् 'धारण' स निगद्यते॥

शारंगधर ने परमाणु से मान का आरम्भ किया है। खिडकी के जाल में आने वाली सूर्य किरणों के प्रकाश में जो सबसे सूक्ष्मरजः कण (धूल का कण) दीखता है, उसका १।३०वाँ भाग परमाणु कहलाता है। इस धूलीकण को 'वंशी' संज्ञा दी गई है।

३० परमाणु = १ वंशी	४ यव = १ गुंजा (रत्ती)
६ वंशी = १ मरीचि	६ रत्ती = १ माषक
६ मरीचि = १ राजिका (राई)	४ माषक = १ शाण
३ राजिका = १ सर्षप	
८ सर्षप = १ यव	

शेष मान चरक के समान है। केवल नीचे के मान को छोड़कर

२ शूर्प = १ द्रोणी
४ द्रोणी = १ खारी
२०० पल = १ भार

शारंगधरोक्त कालिंग मान

यवो द्वादशभिर्गौरसर्षपैः प्रोच्यतेबुधैः। यवद्वयेन गुंजास्यात् त्रिगुंजी वल्ल उच्यते॥
माषो गुंजाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वाभवेत् क्वचित्। स्याच्चतुर्माषकैः शाणाः सनिष्टकं एव च॥
गद्याणोमाषकैः षड्भिः कर्षः स्याद्दशमाषकः। चतुषकर्षैः पलं प्रोक्तं दषशाणमितं बुधैः।
चतुष्पलैश्च कुडवं प्रस्थाद्याः पूर्ववन्मता॥

१२ गौर सर्षप = १ यव	६ शाण = १ गद्याण
२ यव = १ गुंजा	१० माषा = १ कर्ष
३ गुंजा = १ वल्ल	४ कर्ष = १ पल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

८ गुंजा = १ माषक	४ पल = १ कुडव
४ माषक = १ शाण	

नीचे आयुर्वेदीय मान के साथ अन्य प्रचलित मानों की तुलना की गई है। इस तुलना का आधार यह है कि जौ (यव) एक ग्रेन के समान पाया गया है और २ यव की एक गुंजा होती है। भारत के सरकारी मान में १८० ग्रेन का १ तोला होता है जो लगभग ९६ रत्ती का होता है। इस प्रकार ग्रेन तथा यव समान बैठते हैं।

आयुर्वेदीय पौतव मान की आधुनिक भारतीय मान से तुलना

चरकीय मान	सौश्रुतीय मान	शारंगधरीय मान	भारतीय मान
२ धान्य माष = १ यव	१ धान्य माषक	२ यव	१।२ रत्ती
२ यव	....	४ यव	१ रत्ती
....	८ सुवर्ण माषक	१ माषक	६ रत्ती
४ अंडिका = १ माषक	....	....	८ रत्ती (१ माशा)
३ माषक = १ शाण	....	४ माषक = १ शाण	२४ रत्ती (१।४ तोला)
		२ शाण = १ कोल	४८ रत्ती (१।२ तोला)
२ शाण = १ कोल	....	२ कोल = १ कर्ष	९६ रत्ती (१ तोला)
२ कोल = १ कर्ष			
....	१ निष्पाव (मटर)	....	२ रत्ती
	१ धरण (१९ निष्पाव)	....	३८ रत्ती

शेष मान चरक के समान हैं, अतः कर्ष को तोला मानकर शेष मानों की तुलना नीचे दी गई है।

१ शुक्ति	= २ तोला
१ पल	= ४ तोला
१ प्रसृत	= ८ तोला
१ कुडव	= १६ तोला
१ मानिका	= ३२ तोला
१ प्रस्थ	= ६४ तोला
१ आढ़क	= ३ सेर ६४ तोला
१ तुला	= ५ सेर (१०९ पल)

वर्तमान प्रामाणिक भारतीय मान के साथ सामंजस्य

सपादवृद्धि नियम—आयुर्वेदीयमान को प्रामाणिक भारतीय मान के समानान्तर लाने के लिए पल से आगे के मान में यदि सपाद (एक चौथाई) की वृद्धि कर दी जाए तो वह सर्वथा प्रचलित प्रामाणिक भारतीय मान के साथ मिल जाता है जिसको तुलनात्मक सारणी नीचे दी गई है। अतः लेखक ने दोनों में सामंजस्य करने के लिए "कर्षाद्‌ूर्ध्वं-सपाद वृद्धिः स्यात्" यह सूत्र निर्मित किया है। वाचकों को निम्न सारणी से इसकी उपयोगिता और ग्राह्यता स्पष्ट हो जाएगी।

आयुर्वेदीय मान	भारतीय मान	सपादवृद्ध मान	भारतीय मान
१ पल = ४ कर्ष	४ तोला	१ पल = ५ कर्ष	५ तोला = १ छटाँक
४ पल = १ कुडव	१६ ,,	१ कुडव = ५ पल	२० तोला = १ पाव
१ कुड़व = २ शराव	३२ ,,	१ शराव = १० पल	४० तोला = (आधा सेर)
२ शराव = १ प्रस्थ	६४ ,,	१ प्रस्थ = २½ शराव	८० तोला = १ सेर
४ प्रस्थ = १ आढ़क	२५६ ,,	१ आढ़क	३२० तोला = ४ सेर

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इस प्रकार आधुनिक भारों (बाटों) का उपयोग आयुर्वेदीय मानों के लिए प्रामाणिक रूप से लिया जा सकता है। इससे योगों में द्रव्यों के अनुपात में भी कोई भेद नहीं आता। त्रिफला (घृत) का उदाहरण इसे स्पष्ट कर देता है।

त्रिफला घृत

त्रिफला १ प्रस्थ = १ सेर (८० तोला)
जल ४ प्रस्थ = ४ सेर (३२० तोला)
शेष १ प्रस्थ = १ सेर (८० तोला)
भृंगराज रस १ प्रस्थ १ सेर „
बकरी का दुग्ध „ „ „
घृत „ „ „

त्रिफला १ कर्ष	= १ १/४ तोला	कालीमरिच	१ कर्ष–१ १/४ तोला
पिप्पली १ कर्ष	= „	शुंठी	„ „
द्राक्षा „	„	शर्करा	„ „
श्वेतचन्दन „	„	चन्दनलाल	„ „
सैन्धव „	„	श्वेतकमल	„ „
बला „	„	पुनर्नवा	„ „
काकोली „	„	हरिद्रा	„ „
क्षीरकाकोली „	„	दारुहरिद्रा	„ „
मेदा „	„	मधुयष्टी	„ „

इस प्रकार कर्ष को चौथाई वृद्धि करके १ तोला के स्थान पर १ १/४ तोला के समान मान लें तो आधुनिक भारतीय मान के साथ इसका सामंजस्य भी हो जाता है, योग बनाने में सरलता रहती है और औषध द्रव्यों के अनुपात में भी कोई भेद नहीं होता। अतः इस सूत्र को सभी को स्वीकार करना चाहिए।

आधुनिक प्रामाणिक भारतीय मान

८ रत्ती = १ माशा	५ तोला = १ छटांक	४ पाव = १ सेर
१२ माशा = १ तोला	२० तोला = १ पाव (चार छटांक)	४० सेर = १ मन
		२० मन = १ खण्डी

आयुर्वेदीय और यूरोपीय मान की तुलना—

१ धान्य माष	=	१ ग्रेन (लगभग)
२ धान्य माष	= १ गुंजा	= २ ग्रेन (लगभग)
१ सुवर्ण माष	= ८ गुंजा	= १ ग्राम (लगभग)
१ शाण	= ३ माशा	= १ ड्राम (लगभग)
१ शुक्ति	= २ कर्ष	= १ औंस (लगभग)
१ शराव	= ४० तोला	= १ पौंड (लगभग) (रत्तल)

पौतवमान तुलना

आयुर्वेदीय मान	भारतीय मान	आंग्ल मान	दाशमिक मान
मूलभर = १ यव	१ जौ	१ ग्रेन	०·०६५ ग्राम
२ यव = १ गुंजा	१ रत्ती	....	....
८ गुंजा = १ सुवर्णमाशा	१ माशा	१५·४३२ ग्रेन	१ ग्राम

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

३ सुवर्णमाष = १ शाण	(चाँदी की चवन्नी)	१ ड्रम		....
२ शाण = १ कोल	चाँदी की अठन्नी	....		....
२ कोल = १ कर्ष	१ तोला	१८० ग्रेन		....
२ कर्ष = १ शुक्ति	२ तोला	१ औंस		....
आयुर्वेदिक मान	भारतीय मान[1]	आम्ल मान[2]		दाशमिक मान[3]
४ कर्ष = १ पल	४ तोला	....		....
४ पल = १ कुडव	१६ तोला	....		....
२ कुडव = १ शराव	३२ तोला	....		....

उक्त तालिका से आयुर्वेदीय मान का मूलभूत भार प्रायः अन्य मानों से मिलता-जुलता है। विशेष विवरण डॉक्टर रघुवीर कृत "दी ग्रेट इंग्लिश-इण्डियन डिक्शनरी" में देखना चाहिए।

द्रव पदार्थों का आयुर्वेदीय मान

तस्य प्रमाणमष्टौ बिन्दवः, प्रदेशिनीपर्वद्वय निःसृताः। प्रथमा मात्रा, द्वितीया शुक्तिः, तृतीया पाणि शुक्तिः ॥
—(सु० चि० ४०)

अंगुष्ठ समीपवर्तिन्यंगुलिः प्रदेशिनी, तत्पर्वद्वयच्युताः बिन्दवः। शुक्तिः द्वात्रिंशबिन्दवः, पाणिशुक्तिः चतुः षष्टि बिन्दवः (ङ)

प्रदेशिन्या निमग्नेद्वे पर्वणी निर्गतस्ततः। नस्यादिषु तु विज्ञेयोभिषग्भिर्बिन्दु संज्ञितः ॥
बिन्दुभिश्चाष्टभिश्चात्र शुक्तिश्चैव निगद्यते। द्वे शुक्ती पाणिशुक्तिश्च नस्यकर्मणि पूजिता ॥
—(वृद्धहारित-टोडरानन्दे)

प्रदेशिनी अंगुलि के दो पर्वों को द्रव पदार्थ में डुबो कर ऊंचे उठाने से गिरी बूंद 'बिन्दु' कहलाती है। इस प्रकार के—

८ बिन्दु = १ शाण (द्रव पदार्थ)
३२ बिन्दु = १ शुक्ति
२ शुक्ति = १ पाणि शुक्ति
(६४ बिन्दु) (१ फ्लुइड् ड्राम ६० बूंद)

पाणिशुक्ति के आगे मान आयुर्वेदिक ग्रन्थों में नहीं मिलता है।

पाय्यमान (दैर्घ्य-लम्बाई का माप)

अष्टौ यवमध्या अंगुलम्। मध्यस्य पुरुषस्य अंगुल्या मध्यप्रकर्षो वाऽङ्गुलम्—(अर्थशास्त्र)

अंगुष्ठे स कनिष्ठे स्याद्वितस्तिर्द्वादशांगुलः। प्रकोष्ठेविस्तृत करे हस्तो, मुष्ट्यातु बद्धया ॥
सोरत्निः स्यादरत्निस्तु निष्कनिष्ठेन मुष्टिना। व्यामो बाह्वोः सकरयोस्ततयोस्तिर्यगन्तरम् ॥
(अ० को० २।६।८४-८७)

यवाध्यर्द्धः सार्धयवः। एतेन त्रियवोगुलं, सार्धेन यवेनार्धांगुलत्वात्। (गयदास—सु० नि० २)

आठ मध्यम प्रमाण जौ के दानों को मध्य पिरोने से जितनी

(1) प्रचलित भारतीय मान
(2) Imperial system of weights.
(3) Metric system.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लम्बाई (लगभग ३/४ इंच) वह	= १ अंगुल[1]
१२ अंगुल	= १ वितस्ति (बिलाद लगभग ९ इंच)
१ अरत्नि:	= (लगभग २२ अंगुल (१६ १/२)
२ वितस्ति (२४ अंगुल)	= १ हस्त (हाथ १८ इंच)
४ हाथ (६ फीट)	= १ व्याम (६ फीट)
आजकल भारत में १२ इंच	= १ फुट
३ फीट (३६ इंच)	= १ गज यह मान प्रचलित है।

कालमान (सुश्रुतोक्त)

मात्रा (१) अक्षिनिमेष	= मूलमान, लगभग $\frac{१९}{६०}$ सेकंड
१५ अक्षिनिमेषं	= १ काष्ठा (लगभग पौन सेकंड़)
३० काष्ठा	= १ कला (लगभग २ १/२ सेकंड)
२० कला	= १ मुहूर्त (४८ मिनट)
३० मुहूर्त	= १ अहोरात्र
१५ अहोरात्र	= १ पक्ष
२ पक्ष	= १ मास
२ मास	= १ ऋतु
३ ऋतु	= १ अयन (उत्तरायण-दक्षिणायन)
२ अयन	= १ वर्ष
५ वर्ष	= १ युग

युग के पांच वर्षों के क्रमशः (१) संवत्सर, (२) परिवत्सर, (३) इदवत्सर, (४) इद्वत्पर, (५) वत्सर होते हैं।

दोषों के संचय-प्रकोप-प्रशमनिमित्त किया हुआ ऋतु विभाग

मास	ऋतु	संचय	प्रकोप	प्रशम
१—भाद्रपद+आश्विन	—ऋतु वर्षा	पित्त	वायु	....
२—कार्तिक+मार्गशीर्ष	—शरद्	....	पित्त	वायु
३—पौष+माघ	—हेमन्त	कफ	....	पित्त
४—फाल्गुन+चैत	—वसन्त	....	कफ	....
५—वैशाख+ज्येष्ठ	—ग्रीष्म	वात	....	कफ
६—आषाढ़+श्रावण	—प्रावृट्	....	वात	पित्त

आदान तथा विसर्ग के अनुसार ऋतु विभाग

मास	ऋतु	
माघ+फाल्गुन	—शिशिर	उत्तरायण या आदान काल[2]
चैत+वैशाख	—वसन्त	
ज्येष्ठ+आषाढ़	—ग्रीष्म	

(१) एक 'अ' आदि लघु अक्षर के उच्चारण में एक निमेष, उन्मेष अथवा एक चुटकी बजानें में जितना समय लगे उतना काल।

(२) इस काल में सूर्य प्राणियों के बल को अपनी ओर खींचती है जिससे वे निर्बल हो जाते हैं। अतः इसे 'आदान काल" कहते है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

श्रावण + भाद्र	—वर्षा	} = दक्षिणायन या विसर्ग काल[1]
आश्विन + कार्तिक	—शरत्	
मार्गशीर्ष + पौष	—हेमन्त	

उक्त बारह मासों के क्रमशः तपस्, तपस्य, मधु, माधव, शुचि और शुक्र, नमस्: नमस्य, इष, ऊर्ज, सहस् और सहस्य नाम भी है।

कालमान

६० विपल	= १ पल
६० पल	= १ घटिका (नाड़िका = २४ मिनट)
२ घटिका	= १ मुहूर्त (४८ मिनट)
३$\frac{3}{4}$ मुहूर्त	= १ याम (प्रहर) ३ घण्टा
४ याम	= १ दिन या रात्र (१२ घण्टे)
२॥ विपल	= १ सेकंड
२॥ पल	= १ मिनट

तापमापक यन्त्र का मान (तुलनात्मक)

साधारणतः फारेह्नायट तापमापक का प्रयोग किया जाता हैं।

° सेन्टीग्रेड	° फारेन्हाईट	° से०	° फा०
३५	९५	३९	१०२·२
३५·५	९५·५	३९·५	१०३.१
३६	९६·८	४०'	१०४
३६·५	९७.७	४०·५	१०४·९
३७	९८·६	४१	१०५·८
३७·५	९९·५	४१·५	१०६·७
३८	१००·४	४२	१०७·६
३८·५	१०१·३		

सामान्य जन प्रचलित मान

ये मान सर्व साधारण में प्रचलित है। बहुधा इनके द्वारा ही रोगियों को औषधि का प्रमाण समझाया जाता है।

तालिका—१ (पौतव मान)

½ कांचा (७॥ माशा)	= $\frac{1}{8}$ छटांक
१ छटांक = (५ तोला)	= $\frac{1}{4}$ पाव
३ पाव (२० तोला)	= $\frac{1}{4}$ सेर
१ सेर = १६ छटांक	= ८० तोला
१ मन = ४० सेर	= ८२ पौंड, ४ औंस १० ड्राम

(१) विसर्ग काल में प्राणियों की शक्ति बढ़ी हुई रहती है। यह सोम (चन्द्र) गुण प्रधान है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तालिका—२ (द्रवय मान)

१ चमच चाय का	(टी स्पून फुल)[1]		= १ द्रव ड्राम	= ४ सी० सी०
१ बड़ा चमच	(डेजर्ट स्पून फुल)[2]	″	= २ द्रव ड्राम	= ८ सी० सी०
दर्वीभर	(टेबल स्पून फुल)[3]	″	= ½ तरल औंस	= १६ सी० सी०
चाय का प्याला	(टी कप् फुल)[4]	″	= ५ ,, ,,	= १५० सी० सी०
गिलास भर	(टम्बर फुल)[5]	″	= १० ,, ,,	= ३०० सी० सी०[6]

आंग्ल पौतव मान (क)

(British system of weights)

मान		चिन्ह	आयुर्वेदीय वा भारतीय मान
१ ग्रेन (grain)		gr	१ गेहूँ भर (½ रत्ती लगभग)
२० ग्रेन	= १ स्क्रुपल	℈	१ माशा (लगभग)
३ स्क्रुपल	= १ ड्राम (६० ग्रेन)	ʒ	= १ शाण = ३ माशा (लगभग)
८ ड्राम	= १ आउन्स ४८० ग्रेन	℥	= १ शुक्ति = ½ छटांक (लगभग)
१२ आउन्स	= १ पौण्ड	lb	= १ कुडव = ३० तोला (लगभग)

उक्तमान चिकित्सा शास्त्र में व्यवहृत होता है। अन्य कार्यों-व्यवसायादि में निम्न मान व्यवहृत होता है।

व्यावसायिक आंग्ल पौतवमान

४३७½ ग्रेन	= १ आउन्स	½ छटांक लगभग
१६ आउन्स	= १ पौंड (७००० ग्रेन) = १ रत्तल	= ½ सेर ,,
१४ पौंड	= १ स्टोन (St., Stone)	
२ स्टोन	= १ क्वार्टर (Quarter)	
४ क्वार्टर	= १ हंड्रेडवेट (C. wt.)	(१ मन, १५ सेर)
२० हंड्रेडवेट	= १ टन (Ton)	(२७ मन, १८ सेर)

आंग्ल द्रव्यमान

(Imperial System of capacity volumes)

१ बूंद मिनिम	(M.)	
६० मिनिम (बूंद)	= १ फ्लुइड ड्राम	(Fluid drachm)
८ फ्लुइड ड्राम	= १ फ्लुइड आउन्स	(,, Ounce) १ द्रवशुक्ति
२० ,, आउन्स	= १ पिन्ट	(Pint)
८ पिन्ट	= १ गैलन	(Imperial gallon)

आंग्ल पाय्यमान

(Imperial system of Linear Measures)

१२ लाईन	= १ इंच (Inch)
१२ इंच	= १ फुट (Foot)

(1) A Tea spoonful
(2) A Desert spoonful
(3) A Table spoonful
(4) A Tea cupful
(5) A Tumblerful
(6) C. C.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

३ फीट	= १ गज (यार्ड, (Yard)
२२ गज (यार्ड)	= १ चेन (Chain)
१० चेन	= १ फर्लांग (Furlong)
८ फर्लांग	= १ माईल (Mile)

यूरोपीय दाशमिक पौतवमान[1]

(Metric system of weight)

१० मिली ग्राम mg.	= १ सेन्टी ग्राम (Centigram., Cg.)
१० सेन्टी ग्राम	= १ डेसीग्राम (Decigram., Dg.)
१० डेसीग्राम	= १ ग्राम (gram., G.)
१००० ग्राम	= १ किलोग्राम (Kilogram. Kg.)

वक्तव्य—४° शतांश (३९·२° फारेनहाईट तापमापक) पर एक क्युबिक सेन्टी मीटर परिस्रुत जल का भार १ ग्राम है और इसी प्रकार १ लिटर जल का भार १ किलोग्राम है। यह आधारभूत मान है।

यूरोपीय दाशमिक द्रव्यमान

(Metric system of measurement of volume, capacity)

१ मिलीलीटर (Ml)	= १६·७ डिग्री (सेन्टीग्रेड) पर १ ग्राम परिस्रुत जल का आयतन।
१० मिलीलीटर	= १ सेन्टी लिटर (Centilitre)
१० सेन्टी लीटर	= १ डेसी लिटर (Decilitre)
१० डेसी लीटर	= १ लीटर (Litre)
१००० लीटर	= १ किलो लिटर (Kilolitre)

यूरोपीय पाय्यमान

(Metric system of linear measurement)

१० मिलीमीटर	= १ सेन्टी मीटर (Centimeter., Cm.)
१० सेन्टी मीटर	= १ डेसी मीटर (Decimeter., Dm.)
१० डेसी मीटर	= १ मीटर (Meter., M.)
१००० मीटर	= १ किलोमीटर (Kilometer., Km.)

आंग्ल और यूरोपीय मानों की तुलना

(क)

पौतवमान

(Weight)

व्यावसायिक मान

(आंग्ल मान)	(यूरोपीय)
१ आउन्स = ४३७·५ ग्रेन	= २८·३५० ग्राम
१ पौंड = ७००० ग्रेन (१६ आउन्स)	= ४५३·५०० ग्राम
१ स्टोन = १४ पौंड	= ६·३५ किलोग्राम

चिकित्सकीय मान

(आंग्ल)	(यूरोपीय)
१ ग्रेन	०·०६४८ ग्राम
१ ड्राम	३·८८८ ग्राम
१ आउन्स = ४८० ग्रेन	= ३१·१०३५ ग्राम
१ पौंड = १२ औंस (५७६० ग्रेन)	= ३०३·२४२ ग्राम

(१) अधुना भारत में यही शासकीय मान प्रचलित है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(ख)

यूरोपीय दाशमिक से आंग्ल मान में परिवर्तन

१ सी० सी०	= १६.८६ मिनिम्स
१ लिटर	= ३५·२ फ्लुइड ग्रौंस
१ मिलीग्राम	= ०·१५ ग्रेन
१ ग्राम	= १५·४३२ ग्रेन
१ किलोग्राम	= २·२०४६ पौंड
१ सेन्टी मीटर	= ०·३९३७ इंच

(आ)

द्रुवयमान

(Capacity of Volume)

आंग्ल से यूरोपीय मान में परिवर्तन

१ मिनिम	= ०·०६ मिलिलिटर
१ फ्लुइड ड्राम = ६०ग्रेन	= ३·६ ,, ,,
१ फ्लुइड ग्रौंस	= २८·४ ,, ,,
१ पाईन्ट	= ०·५६८ लिटर
१ गैलन	= ४·५४६ ,,

यूरोपीय से आंग्ल मान में परिवर्तन

१ मिली लिटर	= १ सी० सी०	= १६·९ मिनिम
१ डेसी लिटर	= ०·१ ,, ,,	= १·६९ ,,
१ सेन्टी लिटर	= ०·०१ ,, ,,	= ०·१६९ ,,

पाय्यमान

(Length)

आंग्ल से यूरोपीय मान में परिवर्तन

१ इंच	= २·५४ सेन्टी मीटर	= ०·०२५४ मीटर
१ फुट	= ३०·४८ ,, ,,	= ०·३०४८ ,,
१ गज (याडं)	= ८१·४४ ,, ,,	= ०·८१४४ ,,
१ चेन = २२ गज	= २०·१२ मीटर	
१ माईल = १७६० गज	= १६०९ मीटर	

यूरोपीय से आंग्ल मान में परिवर्तन

१ मीटर	= ३९·३७ इंच	= १०० सेन्टी मीटर
१ किलोमीटर	= ०·६२१४ माईल	

आंग्ल और यूरोपीय (दाशमिक) मानों के परस्पर परिवर्तन के सूत्र

ग्राम	= ग्रेन	× ०·०६५
	= ड्राम	× ३·९
	= ग्रौंस (व्याव)	× २८·३
	= ग्रौंस (चिकि०)	× ३१
	= पौंड	× ४५४

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ग्राम	× १५·४	= ग्रेन
	× ०·०३	= औंस (चिकित्सकीय)
	× ०·३५	= ,, (व्यावसायिक)
किलोग्राम	× २·२	= पौंड = १ सेर

क्युबिक सेन्टी मीटर	= मिनिम	× ०·०६
	= फ्लुइड ड्राम	× ३·६
	= ,, औंस	× २८·४
लिटर	= फ्लुइड औंस	× ०·०२८
	= ,, पिन्ट	× ०·५७
	= गेलन	× ४·५

क्युबिक सेन्टी मीटर	× १६·९	= मिनिम
(घन सेन्टी मीटर)	× ०·२८	= फ्लुईड ड्राम
	× ३५·२	= ,, औंस
लिटर	× ३५·२	= ,, ,,
	× १·८	= पाईन्ट
	× ०·२२	= गैलन

विशिष्ट मानों के समानान्तर मान

आंग्ल	यूरोपीय (दाशमिक)	यूरोपीय	आंग्ल
१।२ ग्रेन	= ०·०३२ ग्राम	१० मिलीग्राम	= $\frac{1}{6}$ ग्रेन
१ ,,	= ०·०६५ ,,	१०० ,,	= १ $\frac{1}{2}$,,
५ ,,	= ०·३२४ ,,	१ ग्राम	= १५ $\frac{1}{2}$,,
१५ ,,	= ०·९७२ ,,	३० ,,	= १ औंस २५ ग्रेन
$\frac{1}{2}$ औंस	= १४·१७ ,,		
१ औंस	= २८·३५ ,,	१०० ग्राम	= ३ औंस २३० ग्रेन

अंशांश मान प्रतिशत

निम्नलिखित प्रतिशतांश मान विलयनों में प्रायः काम आता है। प्रति फ्लुइड औंस (द्रवशक्ति) में ग्रेन (यव धान्यभाषा) के हिसाब से यह मान लिया गया है। साधारणतः व्यवहार में बिन्दु के बाद का ग्रेन का अंश छोड़ा जा सकता है।

प्रतिशत	ग्रेन	प्रतिशत	ग्रेन (यव)
०·४ प्रतिशत	१·७५	१·० प्रतिशत	४·४
०·५ ,,	२·२	१·१ ,,	४·८
०·६ ,,	२·६	१·२ ,,	५·२५
०·७ ,,	३·०५	१·३ ,,	५·७
०·८ ,,	३·५	१·४ ,,	६·१
०·९ ,,	३·९५	१·५ ,,	६·५५

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रतिशत	ग्रेन	प्रतिशत	ग्रेन (यव)
१·६ प्रतिशत	७·०	५·० प्रतिशत	२१·६
१·७ „	७·४५	५·५ „	२४·०५
१·८ „	७·९	६·० „	२६·२५
१·९ „	८·३	६·५ „	२८·४५
२·० „	८·७५	७·० „	३०·६
२·५ „	८·९५	७·५ „	३२·८
३·० „	१३·१	८·० „	३५·०
३·५ „	१५·३	८·५ „	३६·२
४·० „	१७·५	९·० „	३९·४
४·५ „	१९·७	९·५ „	४१·५६
		१०·० „	४३·७५

यूनानी पौतवमान

२ खशखश = १ खर्दल (राई)
४ खर्दल = १ उरुज्जह (चावल)
४ उरुज्जह = १ शईरह (यव-ग्रेन)
२ शईरह = १ सुर्ख (रत्ती)

२ सुर्ख = १ किरात
६ सुर्ख = १ दाग
८ सुर्ख = १ माशा
३½ माशा = १ दिरहम (ड्राम)

४½ माशा = १ मिस्काल
९० मिस्काल = १ रत्तल तिब्बी
२ रत्तल तिब्बी = १ मन तिब्बी
६० तोला = १ सेर आलमगोरी = १ प्रस्थ
८४ तोला = १ सेर शाही

यूनानी द्रवमान

४½ माशा = १ चमचह
१२½ तोला = १ पियाली
२० तोला = १ पियालह

मान परिभाषा समीक्षा

मान परिभाषा का विचार मनुस्मृति जैसे प्राचीनतम ग्रन्थों से लेकर आजकल के नवीन ग्रन्थों तक में मिलता है।

मान परिभाषा व्यावहारिक वस्तु है। यह एक सापेक्ष पदार्थ है इसलिए इसमें अनेक मतभेद पाए जाते हैं। चरक और सुश्रुत में भी मान परिभाषा के बारे में परस्पर मतभेद पाए जाते हैं। यही क्यों, वर्तमान में भारत के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न प्रकार के मत मान परिभाषा के बारे में पाए जाते हैं। इससे कई बार व्यावहारिक कठिनाई भी पाई जाती है।

प्राचीन काल में अनाज के दानों से फलों तक के संकेत से मान परिभाषा चलती थी। जैसे—षड्भिस्तु राजिकाभिः स्यात् सर्षपः। तण्डुलस्तच्चतुष्टयत्र। धान्यमाषद्वयं यवः इत्यादि।

तात्पर्य यह है कि उस समय आचार्यों ने व्यवहार चलाने के लिए अनाज के दानों का व्यवहार किया था। प्रसिद्ध परिमाण रत्ती या गुंजा भी एक फल ही है। किन्तु फल प्रायः छोटे-बड़े होते हैं, इसलिए नवीन प्रणाली के अनुसार मान-परिभाषा छोड़कर धातु के बाट बनाए गए हैं इसमें भी दशमलव प्रणाली के अनुसार मान-परिभाषा अब भारत में चलने लगी है। इसी बात को ध्यान में रखकर प्राचीन मान परिभाषा के साथ तुलना करके दशमलव प्रणाली की मान-परिभाषा का आश्रय लेना उचित समझते हैं। उदाहरणतः—प्राचीन मागध मान में ९६ राजिका की एक गुंजा मानी है और दश गुंजा का एक माशा माना गया है और दश माशे का १ तोला भी प्राचीन परिभाषा में माना गया है। इस पर यदि हम ९६ की बजाए १०० राई की एक गुंजा मान लें तो एक राई को एक मिली ग्राम मानकर १०० मिलीग्राम का एक डेसीग्राम को ही एक गुंजा मान लिया जाय तो जिन रसों की एक गुंजा मात्रा है उनकी मात्रा १ डेसी ग्राम देने से भी हानि की संभावना नहीं है। इसी प्रकार १० डेसी ग्राम वा एक ग्राम का एक माशा मानने पर जिस औषधों की एक माशा मात्रा है उनको एक ग्राम परिमाण में भक्षण करने पर भी हानि न होगी, ऐसे ही जिन चूर्णों अवलेहों की एक तोला मात्रा है उन को १० ग्राम की मात्रा में खाने पर भी हानि की संभावना न होगी। क्योंकि प्राचीन तोला ९६ रत्ती का है १ तो० १० ग्राम का परिमाण १०० रत्ती का है, फलतः जिस दवा को ९६ रत्ती की मात्रा में खाया जा सकता है उसे १०० रत्ती की मात्रा में भी खाने पर हानि होने की संभावना नहीं है, इसलिये हमने प्राचीन परिमाण के एक राजिका को १ मिलीग्राम मानकर उसी प्रकार १०० मिलीग्राम का एक डेसीग्राम अर्थात् एक रत्ती माना।

१० डेसीग्राम का एक ग्राम अर्थात् एक माशा, १० रत्ती का इस तरह १० ग्राम का एक तोला और ४० ग्राम का एक पल। इसी प्रकार सम्पूर्ण प्राचीन मान-परिभाषा को एक तोला व्यवस्थित करके उसके आगे आधा-पल, कुडव, द्रोण, तुला आदि परिमाण प्राचीन परिभाषोक्त ही मान लिए हैं जिससे व्यवहार में मीट्रिक मान के साथ तुलना में कठिनाई नहीं पड़ती, क्योंकि ग्राम नामक परिमाण तक तुलना करने के बाद सभी व्यवहार तोला और पल आदि का ग्राम परिमाण से ही चल सकता है। आशा है इससे पाठकों का समाधान हो जायगा।

मागधमान	मीट्रिकमान
१ राजिका	१ मिलीग्राम
१०० राजिका—१ रत्ती	१ डेसीग्राम
१० रत्ती—१ माशा	१ ग्राम
१० माशा—१ तोला	१० ग्राम
२ तोला—आधापल	२० ग्राम
४ तोला—१ पल	४० ग्राम
२ पल—१ प्रसृति	८० ग्राम
२ प्रसृति—१ कुडव	१६० ग्राम
२ कुडव—१ शराव	३२० ग्राम
२ शराव—१ प्रस्थ	६४० ग्राम
४ प्रस्थ—१ आढ़क	२ किलोग्राम और ५६० ग्राम
२ आढ़क—१ कंस	५ किलोग्राम और १२० ग्राम
२ कंस—१ द्रोण	१० किलोग्राम और २४० ग्राम
२ द्रोण—१ शर्प	२० किलोग्राम और ४८० ग्राम

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

२ शूर्प—१ वाह (गोणी)	४० किलोग्राम और ९६० ग्राम
४ वाह—१ खारी	१६३ किलोग्राम और ८४० ग्राम
१०० पल—१ तुला	४ किलोग्राम

टिप्पणी—

पलं चतुर्गुणं विद्यादंजलि कुडवं तथा।
चत्वारः कुडवः प्रस्थश्चतुः प्रस्थमथाढ़कम् ॥
पात्र तदैव विज्ञेयं कंसः प्रस्थाष्टकं तथा।
कंसश्चतुर्गुणो द्रोणश्चार्मणं नल्वणं च तत् ॥
स एव कलशः ख्यातो घटमुन्मान मेव च ॥
द्रोणस्तु द्विगुणः सूर्यो विज्ञेयः कुम्भ एव च।
गोणीं शूर्पं द्वयं विद्यात्खारीं भार तथैव च ॥

चरक—श्री चक्रपाणि दत्त विरचिता आयुर्वेद दीपिका व्याख्या। उपरोक्त चिन्हित पंक्ति के अर्थानुसार यहाँ पर ३२ प्रस्थ का द्रोण मानना पड़ेगा, जब को गंगाधर सम्मत पाठ में यह अर्थ नहीं निकलता।

पलं चतुर्गुणं विद्यादंजलि कुडव तथा।
चत्वारः कुडवा प्रस्थश्चतुश प्रस्थास्तथाढ़कम् ॥
घटश्चोक्तः सः एव स्यात् कीर्तितोऽष्टशरावकः।
पात्री पात्र तथा कंसश्चत्वारो द्रोण आढकाः ॥
स एव कलसः ख्यातो घटउन्मानमर्म्मणम् ।
द्रोणान्तु द्विगुणं स विज्ञेयः कुम्भ एव च।
गोणी शूर्पद्वयं विद्यात् खारी भारं तथैव च ॥

गंगाधर के मतानुसार द्रोण ४ आढ़क का ही होता है। अर्थात् १६ प्रस्थ का १ द्रोण होता है। तथा शारंधर के मतानुसार भी द्रोण ४ आढ़क का ही होता है। यहां चतुर्भिराढकेर्द्रोण: कलशो नल्वणोर्मणः।

शारंगधर

क्योंकि चक्रपाणि के संस्करणों में जो पाठ मिलता है उसमें—

कंसः प्रस्थाष्टकस्तथा ऐसे पाठ हैं। यादवजी के संस्करण में भी—"कंसः प्रस्थाष्टकंतथा" ऐसा ही पाठ है। अतएव ८ प्रस्थ परिमाण का ही कंस मानना या ४ प्रस्थ के आढ़क को ही शारंगधर के मतानुसार कंस मानना।

मान परिभाषा

मागधमान	मीट्रिकमान (घन)	मीट्रिकमान (द्रव)
१० रत्ती—१ माशा	१ ग्राम	१ मि० लिटर
१० माशा—१ तोला	१० ग्राम	१० मि० लिटर
२ तोला—आधापल	२० ग्राम	२० मि० लिटर
४ तोला—१ पल	४० ग्राम	४० मि० लिटर
२ पल—१ प्रसृति	८० ग्राम	८० मि० लिटर
२ प्रसृति—१ कुडव	१६० ग्राम	१६० मि० लिटर
२ कुडव—१ शराव	३२० ग्राम	३२० मि० लिटर
२ शराव—१ प्रस्थ	६४० ग्राम	६४० मि० लिटर
४ प्रस्थ—१ आढ़क	२ किलो० ५६० ग्राम	२ लिटर और ५६० मि० लिटर
२ आढ़क—१ कंस	५ किलो० १२० ग्राम	५ लिटर और १२० मि० लिटर

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

२ कंस—१ द्रोण	१० किलो० २४० ग्राम	१० लिटर और २४० मि० लिटर
२ द्रोण—१ सूर्पा	२० किलो० ४८० ग्राम	२० लिटर और ४८० मि० लिटर
२ शूर्प—१ वाहगोंणी	४० किलो० ९६० ग्राम	४० लिटर और ९६० मि० लिटर
४ वाहगोणी—१ खारी	९६३ किलो० ८४० ग्राम	१६३ लिटर और ८४० मि० लिटर
१०० पल—१ तुला	४ किलोग्राम	४ लिटर

(१००० ग्राम—१ लिटर। १ किलोग्राम—१ लिटर। १००० मि० लिटर—१ लिटर)

तापमान मापक

देह को उष्मा का (स्वस्थ तथा रुग्ण, अवस्था में) मापन करने के लिए तापमापक (Thermometer) यन्त्र का निर्माण किया है। यह दो प्रकार का है। शतांशी (Centigrade) और फारेनहाइट (Fahrenheit) दोनों का तुलनात्मक माप नीचे दिया गया है। स्वस्थ मनुष्य का तापमान ३७·४० शतांश या ९८·६० फारेनहाईट होता है।

(श० चिन्ह शतांशी के लिए और फा० फारेनहाईट के लिए समझना चाहिए।)

तापमान मापक

शतांशी	फारेनहाईट	श०	फा०	श०	फा०	श०	फा०
३५·०	९५·०	३७·०	९८·६	३९·०	१०२·२	४१·०	१०५·८
३५·१	९५·२	३७·१	९८.८	३९·१	१०२·४	४१'१	१०६·०
३५·२	९५·४	३७·२	९९·०	३९·२	१०२·६	४१·२	१०६·२
३५.३	९५·५	३७·३	९९·१	३१·३	१०२·७	४१·३	१०६·३
३५·४	९५·७	३७·४	९९·३	३९·४	१०२·९	४१·४	१०६·५
३५·५	९५·९	३७·५	९९·५	३९·५	१०३·०	४१·५	१०६·७
३५·६	९६·१	३७·६	९९·७	३९·६	१०३·३	४१·६	१०६·९
३५·७	९६·३	३७·७	९९·९	३९·७	१०३·५	४१·७	१०७·१
३५·८	९६·४	३७·८	१००·०	३९·८	१०३·६	४१·८	१०७·२
३५·९	९६·६	३७·९	१००·२	३९·९	१०३·८	४१·९	१०७·४
३६·०	९६·८	३८·०	१००·४	४०·०	१०४·०	४२·०	१०७·६
३६·१	९७·०	३८·१	१००·६	४०·१	१०४·२	४२·१	११७·८
३६·२	९७·२	३८·२	१००·८	४०·२	१०४·४	४२·२	१०८·०
३६·३	९७·३	१८·३	१००·९	४०·३	१०४·५	४२·३	१०८·१
३६·४	९७·५	३८·४	१०१·१	४०·४	१०४·७	४२·४	१०८·३
३६·५	९७·७	३८·५	१०१·३	४०·५	१०४·९	४२·५	१०८·५
३६·६	९७·९	३८·६	१०१·५	४०·६	१९५·१	४२·६	१०८·७
३६·७	९८·१	३८·७	१०१·७	४०·७	१०५·३	४२·७	१०८·९
३६·८	९८·२	३८·८	१०१·८	४०·८	१०५·४	४२·८	१०९·०
३६·९	९८·४	३८·९	१०२·०	४०·९	१०५·६	४२·९	१०९·२
						४३·०	१०९·४

* स्वस्थ तापमान ३७·४ शं०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

द्रव्यगुणकर्मप्रयोगवर्णनात्मक

द्वितीय खण्ड

महत्व और उपयोगिता

औषधीनां पराप्राप्तिः रोगनाशनमुच्यते।
अतस्तास्सु प्रयोक्तव्याः गुणकर्मानुसारतः ॥ १ ॥
परित्राणाय प्राणिनां चिकित्सासाफल्याय च।
आवश्यकमिदं तत्वं सदाध्येयं मनीषिभिः ॥ २ ॥
औषधिगुणसम्पत्तौ यतितव्यं च तैः सदा।
तासां च गुणज्ञानाय सम्यक्युक्तिलाभाय वै ॥ ३ ॥
आलोच्य सर्वशास्त्राणि, नव्य प्रत्नानि नैकशः।
ततः सारं च संगृह्य, द्रव्याणां गुणदर्शकः ॥ ४ ॥
ईशानुग्रहेणैवैष लिखितः खण्ड उत्तमः।
नित्यमस्यभ्यसनेन प्राणदो भवति नृणाम् ॥ ५ ॥
न कार्यः संशयःकश्चित्, सदाहि फलभाक्श्रमः।

फा०--३८

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दसवां अध्याय

औषधवर्णन

अन्नवह पुरीषवह स्रोतस् (महास्रोतस्) या पाचन संस्थान प्रभावक औषधि वर्ग :—यह वर्ग मुख से लेकर गुदा-पर्यन्त आमाशय, पच्यमानाशय, पक्वाशय, पुरीषाधरादि अंगों पर प्रभाव करते हैं। दन्तों पर प्रभावदायक (दन्त्य) स्वरयन्त्र पर प्रभावदायक (स्वर्य), कण्ठ पर प्रभावदायक (कण्ठ्य), मुख पर प्रभावदायक, अग्नि दीपन-पाचन-अनुलोमनादि औषधियों का वर्णन इस वर्ग में किया गया है। प्रथम वर्ग स्वर्य, कण्ठ्य, दन्त्यों का है। औषधियों को अकारादि क्रमानुसार रक्खा गया है।

आल्लुकुम् (रक्तफलम्)

परिचय—सुपरिचित फल। यह दो प्रकार का है—लघुलाल रंग का, बृहत् काले वर्ण का। दूसरे का ही अधिक प्रयोग होता है।

उ० स्थ०—५०००-७००० फुट की ऊँचाई पर हिमालय, कश्मीर, मध्य एशिया।

रस—मधुर-अम्ल, वीर्य-शीत

विपाक—मधुर

दोष—वातपित्त

वि० गु० क०—मृदुरेचक। पित्त तथा तृषानाशक।

नाम—(हि० म० गु० ब० मा०) आलुबुखारा, आलुबोखारा। (अं०) दी प्लम,[1] दी बोखारा प्लम,[2] (वा० ले०) प्रुनस कम्युनिस[3] शतपत्री वर्ग[4]।

गुण—यह शीतल, तृष्णाशामक, दाहशामक, मृदुरेचक है। पित्त तथा रक्त विकार शामक है। भोजन में सेवन करने से पित्त विकार, पाण्डु आदि मिटते हैं। ज्वरों में तृष्णा तथा मुखशोष, तथा वमन, जी मचलाना और सिर दर्द को मिटाने के लिए इसे मुख में रखकर चूसा जाता है। फल को गरम पानी में भिगोकर तथा मसल-छानकर शर्करा-नमक मिला कर देने से ज्वरों में प्यास और उल्टी शान्त होती है। पित्त से होने वाली हृदय धड़कन में भी लाभकारी है। सामान्यतः ३-५ दाने तथा विरेचनार्थ १५-२० फलों का प्रयोग किया जाता है।

जम्बीर (दन्तहर्षण) वक्त्रशोधी लिम्पाकः

नाम—(हि०) जम्बीरी-निम्बु, (पं०) लट्टा-गलगल, (मां०) जंभेरी, (बं०) जामीर, (म०) इडलिंबु, (गु०) गोदडिया लिम्बु, दोडिंगा, (क०) निम्ब, (तै०) जम्भीर निम्म, (ता०) एलुमिच्चम्, (अं०) दी लेमन,[5] (वा० ले०) साइट्रस लाइमोनम्,[6] हरमल वर्ग[7]।

गुण—जम्बीरमुष्णं गुर्वम्लं वातश्लेष्मविषघ्ननुत्।
आस्यवैरस्यमलहं जन्तुघ्नं पित्तकोपनम्। (कै०)
तृष्णा शूल कफोत्क्लेशच्छर्दिश्वासनिवारणम्।

जम्बुरी निम्बु खट्टा-उष्ण, गुरु, पित्तवर्धक, वातकफशामक, तृष्णा, उदरशूल, जी मचलाना, वमन, विबन्ध तथा श्वासशामक है। अधिक सेवन से रक्त तथा पित्त रोगकारक है। अन्तः रक्तस्राव रोकने के लिए, प्यास, दाह-ज्वरों

---

1. The Plum.
2. The Bokhara Plum.
3. Prunus Communis Hudes.
4. Rosaceae.
5. The lemon
6. Citrus Iimonum, Sp. Risso.
7. Rutaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

में इसका शर्बत उत्तम है। इसका रस पर्याप्त समय तक पड़ा रहने पर भी नहीं बिगड़ता। अनेक औषधों के शोधन मारण में व्यवहृत होता है। प्लीहावृद्धि में शंखभस्म इसके स्वरस के साथ दिया जाता है।

विट्खदिर (अरिभेदः ईरिभेदः)

नाम—(हि०) दुर्गन्धित खैर, (पं०) फुलाही, (बम्बई) कोंटो सारियो, (वा० ले०) अकेशिया मोडेस्टा[1], बब्बूलादि वर्ग।

वक्तव्य—उक्त वृक्ष, पंजाबादि उत्तर भारत में बहुत उत्पन्न होता है। मधुर कषाय रस युक्त तथा दांतों के लिए अति उत्तम है। इसी को विट्खदिर समझना चाहिये। यद्यपि कुछ वैद्य **'अकेशियाकेरुगिनिआ'**[2] नामक खदिर तुल्य वृक्ष को 'विट्खदिर' समझते हैं। इसमें से निर्यास (गोंद) बहुत निकलता है। जो बब्बूल गोंद के समान काम आता है। अन्य आचार्य विलायती कीकर **"अकेशिया फार्नेसियाना"**[3] को विट्खदिर समझते हैं। वस्तुतः खदिर जाति के कई वृक्ष—खदिर बल्ली, ताम्रकण्टक, विट्खदिर—होते हैं। गुणों में प्रायः समान हैं। पुष्पकाल-माघ-फाल्गुन।

गुण—रिपः कटुः कषायोष्णतीष्णो हन्तिकफंक्रमीन्।
कण्डुक रक्तग्रहान, वस्ति मुखदन्त गदानपि। (कै०)

हरिमेद (फुलाही) कटु-कषायरस, उष्ण वीर्य, कटु विपाकी, कफ, कृमि, खाजत्वचा, तथा रक्त रोगों, रक्तस्राव, बस्ति, मुख, दांत के रोगों का नाशक है। यह उत्तम दन्त्य है।

योग—हरिमेदादि तैल—दांत के रोगों में।

निम्बुक जातीय उद्भिज्ज

(अ) निम्बुकम् (वह्निबीजम्)

नाम—(हि०पं०मा०) नींबू,-कागजी, नींबू, (अं०) लिंबु, (गु०) लींबू-कागजी लींबु, (बं०) कागजे-नेबू, (कं०) निंबे, (तै०) निम्म, (ता०) एलुमिच्चम् (अं०) एसिड लाइम्,[4] (वा०ले०) साईट्रस एसिडा,[5] निम्बु नारंग वर्ग।

गुण—निम्बकम्ले वातघ्नं दीपनंरुचिवर्धनम्।
मरोरंग विषध्वंसि कफोत्क्लेशिच पित्तलम्। (कै०)

नींबु अम्लरस-उष्णवीर्य कटु विपाकी, वातशामक, अग्निदीपक, रुचिकारक विष-कफशामक तथा पित्तवर्धक है। यदि निम्बु का शर्बत बनाकर दिया जाए तो पित्तशामक होता है।

उदराध्मान-अग्निमान्द्य, गुल्म, आमवात, खाँसी, कण्ठ की पीड़ा, वमनशामक है। फल का छिलका संग्राही, सौमनस्यजनन तथा सुगन्धित है।

प्रयोग—ज्वरों में वमन, जी मचलाना को बन्द करने के लिए निम्बु को काटकर उस पर काली मिर्च तथा सैन्धा नमक छिड़क कर चूसा जाता है। इसका शर्वत बनाकर पीने से ज्वरों में दाह, तृष्णा, मूत्राल्पता, हृदय की धड़कन तथा ताप कम होता है। यह अग्निमान्द्यनाशक तथा आमाशय को बलवान करता है। भिड़, बिच्छू तथा कीटों के दष्ट पर निम्बु को काट कर मला जाता है।

प्लीहा (तिल्ली) यकृत् (जिगर) वृद्धि में प्याज (पलाण्डु) रस २ तोला, निम्बु रस २ तोला मिलाकर १४ दिन तक पिलाना चाहिए। बिच्छुदंश में बीजों की गिरी ९ माशा, सैन्धव नमक ८ माशा मिलाकर खाने से लाभ

---

1. Acacia Modesta, wall.
2. A. Feiunginea, DC.
3. A. Farnesiana, wild.
4. Acid lime
5. Citrus acida, Roxb.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

होता है। प्रतिदिन दाद पर निम्बु मलने से वह मिट जाता है। निम्बु का अचार पाचक-दीपक-आमाशय-यकृत तथा हृदय को शक्ति देने वाला है। वर्षा ऋतु में इसके सेवन से मलेरिया की संभावना कम हो जाती है।

योग—(१) जम्बीर लवण वटी, दीपन-पाचन (२) सुधाष्टक योग-वालशोषादिनाशक निम्बु जाति के अनेक भेद हैं। सब के गुण कर्म यही है। अनेक भस्में बनाने तथा योगों में भावना देने के लिए इनके रसों का प्रयोग किया जाता है।

मुख्यतः—जंबीर, बीजपूरक, मधुकर्कटी (चकग्नेरा) तथा मिष्ठ निम्बु प्रसिद्ध है। संक्षेप में इनका वर्णन निम्बु के प्रकरण में ही किया गया है।

बीजपूरकम् (मातुलुंग)

नाम—(हि०पं०मा०) बिजौरा नीम खट्टा, गलगल, (म०) महालुंग (गु०) बिजोरुं, (ब०) छोलंग नेबु, टावा नेबू, (क०) तोटमादल, (तै०) पेद्दनिम्ब, (ता०) मादी-फलमु, (मल०) मादलतारकम् (अं०) दी साईट्रोन,[1] (वा०ले०) साईट्रस मेडिका,[2] नारंग या निम्बु वर्ग।

गुण—बीजपूरफलं स्वादु रसेम्लं दीपनं लघु।
रक्तपित्तकरं कण्ठजिह्वा हृदय शोधनम्॥
श्वासकासारुचिहरं हृद्यं तृष्णाहरंस्मृतम्॥ (भाव)

बिजौरा का फल—मधुर, अम्लरस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी (फल का छिलका), रस तथा फल का गूदा शीतल-मधुर विपाकी-लघु, जिह्वा-कण्ठ-आमाशयशोधक, रुचिकारक तृष्णा-वमन, उदरशूल-अरुचिशामक है। अधिक मात्रा में सेवन से पित्तवर्धक तथा रक्तपित्तकारक है।

फल की छाल—कटु-तिक्त-उष्ण, स्निग्ध दुर्जर वात-कफ तथा कृमिहर-अग्निदीपन है।

फलमांस—मधुर-शीत-गुरु कफवर्धक स्निग्ध-वातपित्तशामक है। पुष्प—केशर—दीपन-मेध्य लघु-ग्राही-रुचिकारक-हिचकी, गुल्म-उदरशूल मदात्यय (अधिक शराब पीने से उत्पन्न रोग) मुखशोष, वातकफ विबन्ध, अर्श और वमननाशक है। पुष्प-शीतल-ग्राही रक्तपित्तशामक है। बीज-गरम-कृमिहर, दुर्जर गर्भप्रद, वातकफनाशक मदमूर्च्छाभ्रमकारक है।

प्रयोग—मन्दाग्नि के कारण जिन्हें भोजन के पश्चात् वमन हो जाती है। उन्हें सायंकाल इसका ताजा रस २॥ तोला पिलाने से लाभ होता है। गृध्रसी-कटिशूल तथा कूल्हे के जोड़ के दर्दों में गलगल के रस में जौखार तथा मधु मिलाकर पिलाएँ। ज्वरों में मूल त्वक् का काढ़ा पिलाया जाता है। स्वरस सर्वदा ताजा ही काम में लाना चाहिए। इसे ही कुछ वैद्य करुण निम्बु या कन्ना करणों भी कहते हैं।

लिम्पाकः (करुणः)

नाम—(हि० पं० मा०) चकोतरा (प०) पोपनस, (गु०) चकातरं, पपनसी, (बं०) कन्ना-गोनरा नेबू (अं०) पोमेला[3] (वा०ले०) साइट्रस डेक्यूमेना,[4] नारंग या निम्बु वर्ग।

गुण—लिम्पाकः सुरभिः स्वादु नात्यम्लं भक्तरोचनम्।
वातश्लेष्महरं हृद्यं छर्दिघ्नं नातिपित्तकृत्॥ (रा० वि०)

चकोतरा के फल बारहों मास लगे रहते हैं। कोई अन्दर से लाल या सफेद होते हैं। यह सुगन्धित, मीठा, कुछ खट्टा, रुचिकारक, हृद्य-वातकफशामक, वमनशामक, पित्त को अधिक नहीं बढाने वाला है। निम्बु तथा बिजौरा के अनुसार इसका भी प्रयोग होता है। किन्तु उनकी अपेक्षा यह अधिक शीतल है। सभी निम्बुओं के फलों की छाल से

1. The Citron
2. Citrus medica, linn.
3. Pomella
4. Citrus Decumana, linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विशेष कर बिजौरा निम्बु से एक उड़नशील[1] तैल निकलता है जिसे निम्बु तैल[2] कहते हैं। बीजपूरक तैल भी कहते हैं। इसकी मात्रा ३०-६० बूंद है। यह अनुलोमन, दीपन, तथा उत्तेजक है। उदर शूल, गुल्म-उदराध्मान (अफारा) नाशक है। औषधियों में सुगन्धि के लिए भी डालते हैं। निम्बु रस कण्डुनाशक है तथा इनमें जीवनीय 'सी' भी पाया जाता है जो रक्तस्रावरोधक है।

मधुरनिम्बु (मिष्ठ निम्बु. मधुरकर्कटी)

नाम—(हि० पं० मा०) मीठा नींबू, मीठा, (बं०) शर्बती नेवू, (म०) साखर लिंबु, (गु०) मीठा लिम्बु (अं०) स्वीट लाईम्[3] (वा० ले०) साईट्रस लिमेटा,[4] नागरंग।

गुण—मिष्ठनिम्बु फलं स्वादु गुरु मारुतपित्तनुत्।
गलरोग विषध्वंसि कफोत्क्लेशि च रक्तहृत्॥
शोषारुचि तृषाच्छर्दिहरं बल्यं च बृंहणम्॥ (भाव)

मीठा नींबू मधुर-शीतल-मधुर विपाकी, गुरु, पौष्टिक, बल्य, तर्पण, वृष्य, वातपित्तशामक, कफवर्धक, रक्तशोधक, गले के रोग, विष-शोष (कृशता) प्यास, थकावट, ज्वरों में दाहादि शामक और मूत्रल है।

निम्बुरस की रक्षा—अधिक समय तक निम्बु रस सुरक्षित रखने के लिए निम्न उपाय हैं—

(१) निम्बुरस को पात्र में भरकर एकान्त स्थान में रख दें। जब तलछट नीचे बैठ जाए तो ऊपर का निथरा भाग छान कर ऊपर से तिल, सरसों या बादाम का तैल डाल दें और डाट (कार्क) लगा कर रख दें।

(२) मृदु अग्नि पर गरम कर छान कर ऊपर के समान बोतलों में भरकर रख दें।

(३) प्रति औंस स्वरस में (२॥ तोला) $\frac{१}{२}$ ग्रेन ($\frac{१}{१०}$ रत्ती) के अनुपात से सेलीसिलिक एसिड मिला दें।

बकुल (वकुल, मधुगन्धः केसरः)

नाम—(हि०) मौलसरी, (बं० म०) बकुल, (म०) ओवली, (गु०) बोलसरी, (क०) पगंडपर-रेंजे (तै०) पोगरचेट्टु, (ता०) मट्टलंमरम् (वा० ले०) मिमोसोप्स् एलेंगि,[5] मधूक वर्ग[6]।

गुण—बकुलस्तुवरोऽनुष्णः कटुपाकरसो गुरुः।
कफपित्त विषश्वित्र कृमिदन्तगदापहः॥
तत्फलं मधुरं स्निग्धं कषायं विशदं हिमम्।
कफपित्तहरं, हृद्यं दन्त्यं ग्राही वातलम्॥ (कै०)

मौलसरी (छाल) कटुकसैली, अनुष्ण, कटु विपाकी कफपित्तदोषहर, वातवर्धक गुरु विष-श्वित्र-कृमि और दन्त्यरोग नाशक है।

फल—मधुर-कषाय-शीतल-स्निग्ध, विशद, पिच्छिलता (चिपचिपानाशक) हृद्य, ग्राही, वातवर्धक तथा कफपित्तनाशक और दन्त्य है।

मौलसिरी सर्वत्र उद्यानों में लगाया जाता है। बड़ा वृक्ष है। फूल छोटे-अति सुगन्धित, जिनकी गन्ध देर तक रहती है। पुष्प ग्रीष्म काल में जुलाई-अगस्त में आते हैं। फल गोल लम्बा-कच्चा हरे रंग का, पक्का पीले वर्ण का होता है। दन्त मंजनों में छाल तथा फल दोनों डाले जाते हैं।

फल तथा छाल अति संकोचक तथा संग्राही होते हैं। मुखपाक, हिलते दांतों में, मसूड़ों से रक्त आने पर छाल या फल चबाते हैं। गर्भधारण के लिये भी छाल का प्रयोग किया जाता है। कोष्ठबद्धता में इसके बीजों की मींगी

---

1. Volatile oil
2. Lemon oil, oleum Lemonis.
3. Sweet lime
4. Citrus Limetta, W&A
5. Mimosops. Elengi, linn
6. Sapotaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निकालकर, घी में मिलाकर वर्तिका (गुदवर्ती) बनाकर गुदा में देने से १५ मिनट बाद मल आ जाता है। बच्चों में विशेष उपयोगी है। अतिसार में फलगिरी, रक्त प्रदर, श्वेत प्रदर, छाल का चूर्ण समशर्करा मिलाकर देने से लाभ होता है। पुष्पों का अर्क निकाला जाता है, जो हृदय तथा मस्तिष्क में सौमनस्य तथा बल बढ़ाता है और हृदय की धड़कन दूर करता है। मधु के साथ छाल के चूर्ण का सेवन उत्तम है। मात्रा :—5-7 माशा तक।

स्वर्य वर्ग

ये औषधियाँ स्वर, कण्ठ, आमाशय की कला पर विशेष प्रभाव करती हैं। साथ ही साथ अन्य अगों की कला पर, यथा फुप्फुस, मूत्रमार्ग, प्रजनन अंगों की कला पर भी, अपना प्रभाव करती हैं।

आकारकरभ (आकल्लक)

परिचय—तुलसी जाति का क्षुद्र क्षुप।

प्रा० स्थ०—भारत में सर्वत्र विशेषतः बंगाल, एवं अफ्रीका में

व्य० अं०—पंचांग

पुष्प—पीले सूर्यमुखीसम

मात्रा-चूर्ण—१-२ माशा

रस—ताजीमूल, मधुर कटु, शुष्क

मूल—कटु, **वीर्य**—उष्ण, विपाक-कटु

दोष—वातकफहर

प्र० अ०—त्वचा, वातसंस्थान जननेन्द्रियाँ

वि० गु० क०—उष्ण—उत्तेजक, वातहर

नाम—(हि०) अकरकरा, मीठा अकरकरा, (गु०) अक्कलकरो, (म०) अक्कलकराखरा, (अं०) पाईरेथ्रम् रेडिक्स,[1] पेलिटरी रुट,[2] (वा० ले०) एनेसिक्लस् पिरेथ्रम्[3]। वर्ग-सूर्यमुखी[4]।

गुण—आक्ललको ह्युष्णवीर्यो बलकृत् कटुको मतः

प्रतिश्यायं च शोथं च वातं चैव विनाशयेत्।

अकरकरा कटु, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, प्रतिश्याय, शोथ तथा वात व्याधि शामक है। कफच्छेदक, स्रोतशोधक, वाजीकरण, लाला तथा आर्तवजनक है।

प्रयोग—कटु तीक्ष्ण होने से यह लेप लगाने से क्षोभक प्रभाव उत्पन्न करता है। अतः जिह्वा की जड़ता, कफज स्वरभेद तथा तुतलाना में, मुख शोथादि में इसके चूर्ण को गले तथा जिह्वा पर लगाया जाता है। हाथ-पैर या किसी भी अन्य अंग के शीत होने पर सूखा चूर्ण या तैल में मिलाकर मर्दन किया जाता है। तिलाओं में मिलाया जाता है। जननेन्द्रिय को पुष्ट करता है। दन्तशूल, गलशुण्डिका में मंजन के रूप में प्रयुक्त होता है। दांतों के दर्द में इसे चबाया जाता है। शिर दर्द में पीस कर माथे पर लगाते हैं।

अन्तःप्रयोग में वातकफव्याधियों में-पक्षवध (लकवा) अर्दित, कम्पवात, अपस्मार, अपतानकादि में तथा वीर्य निर्बलता में वाजीकरण योगों में डाला जाता है। पुरानी सूखी खाँसी में इसका क्वाथ, मूक या हकलाने वाले बच्चों को मधु के साथ, अपस्मार में ब्राह्मी तथा शंखपुष्पी के साथ, हृदय तथा वायु के रोगों में सोंठ, पिप्पलीमूल, तथा कुलिजंन के साथ काढा बनाकर, संज्ञाशून्यता तथा आलस्य, शिथिलता मिटाने के लिए लौंग तथा सोंठ के साथ

---

1. Pyrethrum Radex.
2. Pellitory Root.
3. Anacyclus Pyrethrum.
4. Compositeae

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चूर्ण बनाकर सेवन कराया जाता है। दन्तशूल में अकरकरा ½ रत्ती, अफीम १ रत्ती मिलाकर दांत की खोल में भरना चाहिए।

वक्तव्य :—अकरकरा मीठा और खट्टा भी मिलता है। ये दोनों इसी वर्ग के दूसरे दो क्षुप है। अतः उनका उपयोग नहीं करना चाहिए। जहाँ तक संभव हो, असली का ही उपयोग करना चाहिए। असली की पहचान यही है कि मूल सीधी, तन्तु रहित, ३-४ इंच लम्बी, आधा से पौन इंच मोटी, बेलनाकार-मोटी होती है। यह भंगुर (टूटने वाली) खाने से चरपरी, जीभ में जलन, तथा मुख में गरमी उत्पन्न करता है। चबाने से शीघ्र लालास्रावक। सात वर्ष तक यह वीर्यवान रहता है। रास्ना के स्थान पर इसका प्रयोग होता है।

योग—आकरकरभादि वटी—वाजीकरण १-२ गोली

कुलिञ्जन (महाभरीवचा, सुगन्ध)

परिचय—अदरक कन्द के समान क्षुप।

उ०स्थ०—जावा-मलाया

व्य०अंग—कन्द

मात्रा—१-३ माशा

रस—कटु, **वीर्य**—उष्ण, **विपाक**-कटु

दोष—वातकफहर, पित्तवर्धक

प्र०अ०—पाचक भंग-स्वर

वि०गु०क०:—स्वर्य, दीपन, अनुलोमन

नाम—(हि०) कुलञ्जन, (म० म० गु०) कुलिञ्जन बड़े कुलंजनको (म०) में कोष्ठकुलञ्ज कहते हैं। अंग्रेजी में जावा गेलेंगल[1] या ग्रेटर गेलेंगल,[2] (वा० ले०) एल्पीनिया[3] गलेंगल, छोटे को (अ०) दी लेसर गलेंगल,[4] (वा० ले०) एल्पीनिया आफिसिनेरम्,[5] कहते हैं। गुणों में दोनों समान है। आर्द्रक या हरिद्रादि वर्ग[6]।

गुण—कुलञ्जः कटु तीक्ष्णोष्णोदीपन्ते मुखशोथहृत्।
सुगन्धाप्युग्रगन्धा च विशेषात् कफवातनुत्।
सुस्वरत्वकरी रुच्या हृत्कण्ठमुखशोधिनी। (भाव)

कुलिञ्जन चरपरा, उष्ण, कटु विपाकी, मुखकण्ठ, वक्ष तथा आमाशयशोधक, वातकफशामक और कफज कासहर है। इसे कुछ वैद्य 'पानी की जड़' समझते हैं। यह अशुद्ध है।

प्रयोग—महाभरी वचा, या कुलिञ्जन में एक उड़नशील तैल पाया जाता है। जो तीक्ष्ण, दीपन, तथा उत्तेजक और अनुलोमक है। मुख की दुर्गन्धि, अरुचि गले तथा स्वरयन्त्र की शोथ, मूक मिन्मिन या जब बच्चे ठीक तरह न बोलते हों तो यह मधुयष्टी के साथ मधु से चटाने या लेप करने से अतिशय लाभ करता है। इसके काढ़े से कुल्ले भी किये जाते हैं। प्रतिश्याय, कफज कास में, टंकण तथा पुष्करमूल के साथ देने से उपकार होता है। अत्यन्त पसीना आने पर तथा शरीर शीत होने पर इसका चूर्ण देह में मलते हैं। वृद्धों की या कफ बहुल खाँसी में मधु-अदरक के साथ, उदरशूल-आध्मान में अजवायन तथा कालेनमक के साथ, मन्दाग्नि में अदरक के साथ वाजीकरण औषधियों के साथ कामोत्तेजनार्थ, मधुमेह में मूत्र की मात्रा कम करने के लिए कुलञ्जन का प्रयोग होता है। तिल तैल में जलाकर उस तैल के अभ्यंग से वात तन्तुओं को शक्ति मिलती हैं। चन्दन तथा वंशलोचन के साथ देने से मूत्रावरोध नहीं करता। इससे उत्तम स्वर्य औषधि कोई नहीं है।

---

1. Java galangal.
2. The greater galangal
3. Alpinia galangal.
4. The lesser galangal.
5. Alpinia offlicinarem Hance.
6. Scitamineae

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

छिक्किका (उद्वेजनः, घ्राणद्रुः, क्षवकः)

नाम—(हि० म० गु०) नक छिक्कनी (म०) नाकशिकणी (अं०) स्नीज रूट[1], (वा० ले०) सेण्टीपेड़ा ओर्बिक्युलेरिस[2] तरणी (शतपत्री) वर्ग[3]।

गुण—क्षवकः कटुकः पाके रसे रुच्यग्निपित्तकृत्।
तीक्ष्णोष्णः कफवातास्रहृत् कुष्ठ कृमिजिल्लघुः। (कै०)

प्रयोग—प्रतिश्याय, शिरः शूल में इसकी नस्य लेने से दोष निकल जाता है। बाद में इसका लेप लगाते हैं। कफज रोगों—विशेषकर नासिका तथा मस्तिष्क के रोगों में लाभ करती है।

तेजोवती, तुम्बुरुः (सौरभः, सानुजो, तीक्ष्णफलः)

नाम—(हि०) नेपाली धनियाँ,[4] कबाबा, तेजबल, (म०गु०) तिरफल-चिरफल (क०) जिम्भिभर, (तै०) तुम्बरलु, (ता०) रेट्समरम् (वा० ले०) झेन्थोक्सायलम् एलेटम्, तुम्बुरु वर्ग[5]।

वक्तव्य—तुम्बुरु बीजों का नाम है। वृक्ष का नाम तेजोवती है। तेजबल की कांटेदार झाड़ी हिमालय में २-७ हजार फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। दक्षिण भारत में इससे मिलता हुआ अन्य वृक्ष झेन्थोक्सायलम् रेट्सा[6] पाया जाता है। यह भी गुणों में तुम्बुरु के समान है। किन्तु कुछ हीन गुण है। पुष्प चैत्र-वैशाख में आते हैं। तुम्बुरु मुखरोगनाशक तथा दीपन, पाचन और अनुलोमक है।

तुम्बुरुः कथितः तिक्तःकटु पाकेऽपि तत्कटुः।
रूक्षोष्णं दीपनं रुच्यं लघु तीक्ष्णं विदाहि च॥
वातश्लेष्माक्षिकर्णोष्ठ शिरोरुग् गुरुताकृमीन्।
कुष्ठशूलारुचिश्वासप्लीहाकृच्छ्राग्निनाशयेत्। आ०प्र०

तेजबल कटुतिक्त, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, रूक्ष, दीपन, तीक्ष्ण, रुचिकारक लघु, विदाही, वातकफदोषघ्न, पित्तवर्धक, नेत्र-कर्ण, मुखरोग, उदरकृमि, शिरोगुरुता, उदरशूल, कास-श्वास, अरुचि, आध्मान, हिक्कानाशक है।

इसमें दो प्रकार के प्रभावी द्रव्य पाए जाते हैं। छाल में उड़नशील तैल और फलों में स्थिर रंगरहित तैल, ये दोनों ही सुगन्धित होते हैं। प्रयोग करने से उत्तेजक तथा उत्क्लेश उत्पन्न करते हैं। इन तैलों की क्रिया गन्धा-बिरौजा या युकेलिटप्म् तैल के समान होती है। इन तैलों के कारण यह संशोधन, कृमिघ्न और मूत्रल है।

फलों का प्रयोग अजीर्ण, अतीसार, आध्मान में किया जाता है। दन्तमंजनों में भी शोधन का कार्य करता है। त्वचा स्वेदल तथा मूत्रल है। ज्वर-आमवात हर है।

प्रभाव तथा प्रयोग—यह आमाशय तथा यकृत् को शक्ति देता है। पाचन को बढ़ाता तथा वायु का अनुलोमन करता है एवं ग्राही भी है। इसकी दांतुन अति उत्तम है। बीज भी दन्त मंजनों में डाले जाते हैं। मुखपाक में त्वचा या फलों के काढ़े से कुल्ला करने से लाभ होता है। पित्तातिसार में बेल के शर्बत के साथ तथा मन्दाग्नि में बीजचूर्ण मिश्री के साथ दिया जाता है। कफजन्य रोगों में अतिलाभप्रद है।

ताम्बूलं (नागवल्लरी)

परिचय—सुपरिचित लता

उ० स्थ०—जलीय तथा उष्ण स्थानों में

1. Sneeze Root.
2. Centipeda Orbicularis, lour.
3. Compositeae
4. Xanthoxylum Alatum,
5. Xanthoxyleae.
6. Xanthoxylum, Retusa

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

व्य० अ०—पत्र
मात्रा—स्वरस १ तोला
रस—कटु कषाय तिक्त,
वीर्य—उष्ण, विपाक-कटु
दोष—वातकफशामक,
प्र० अ०—स्वरयन्त्र-पाचन संस्थान
वि० गु० क०—दीपन-उत्तेजक, स्वर्य

नाम—(हि० ब० पं०) पान (म०) नागबेल (गु०) नागरबेल (क०) वीलयदेले, (तै०) तमलपाकु (ता०) येतिलै, (अं०) बेटललीफ[1] (वा०ले०) पाईपरबेटल, चबिका बीटल्[3] मरिच वर्ग[4]।

गुण—ताम्बूलं विशदं रुच्यं तीक्ष्णोष्णं तुवरं सरम्।
बल्यं तिक्तं कटु क्षारं रक्तपित्तकरं लघु ॥
स्वर्यं श्लेष्मास्यदौर्गन्ध्यमलवातश्रमापहम्। (भाव)

पान या नागरबेल कटु, तिक्त, कषाय, उष्ण, कटु-विपाकी, रुचिकारक विशद (मुख का चिपचिपापन मिटाने वाला) क्षार सहित, अनुलोमन-लघु, स्वर्य, उत्तेजक, वातकफ-मुखदुर्गन्धि, मल तथा श्रमनाशक तथा रक्तपित्तवर्धक और रक्तदूषक है। यह यकृदामाशय बलदायक, शोथशामक, उष्णता उत्पादक तथा वातानुलोमन है।

प्रभाव तथा प्रयोग—पानों में एक उड़नशील तेल पाया जाता है। जिसके कारण यह सुगन्धित तथा तीक्ष्ण हो गया है। इसका विशेष प्रयोग अनुपान रूप में तथा बाह्य प्रयोग में होता है।

कास-श्वास, न्यूमोनिया आदि में पार्श्व शूल होने पर ताम्बूलपत्र गरम कर तथा तेल चुपड़कर छाती पर बांधे जाते हैं। आमवातादि में सन्धियों पर, शोथों पर तथा दुग्धह्रासार्थ स्तनविद्रधि पर बाँधे जाते हैं। पान का डण्ठल (वृन्त-Petiole, Stalk) तैल में चुपड़ कर बच्चों की गुदा में देने से मल का प्रवर्तन कराता है। इन्द्रिय शैथिल्य में शिश्न पर भी बाँधा जाता है।

अन्तः प्रयोग में यह विशेषकर वातकफज रोगों प्रतिश्याय (जुकाम) कास, श्वास, स्वरभेद, गले की शोथ, वातकफज्वर (इन्फ्लुएंजा) श्वयनक (न्युमोनिया) तथा अग्निमान्द्य, मुख-दुर्गन्धिनाशक है। यह फुप्फुसों की शोथ को शान्त करता है, कफ की उत्पत्ति न्यून हो जाती है। अपनी तीक्ष्णता से कफ को विलीन कर बाहर निकालता है। इसका स्वरस-मधु या अदरक के रस के साथ मिलाकर औषधों के अनुपान रूप में पिलाया जाता है। स्वर भेद, तथा गले की शोथ में (डीप्थीरिया Diptheria) पान चबाया जाता है। मुलैठी के साथ मिलाकर चबाने से कास-श्वास स्वर-भेद शान्त होता है। भोजन के पश्चात् पान का सेवन पाचन तथा सुगन्धि का कार्य करता है और लालास्राव बढ़ाता है। किन्तु अधिक मात्रा में खाने से रक्त और पित्त के विकार, वीर्यतारल्य उत्पन्न करता है। यकृत् शोथ भी शमन होता है। मुख शोथ में लार बहना, हृदय की तीव्र धड़कन में उत्तम है। यह मृदुरेचक है। विबन्ध नहीं होने देता। इसका शर्बत मन्दाग्नि-कफ तथा हृदय निर्बलता नाशक है। निम्न व्यक्तियों को पान नहीं खाना चाहिए।

ताम्बूलं क्षतपित्तास्र रूक्षोत्कुपितचक्षुषाम्। विषमूर्च्छामदार्त्तानांमपथ्यं शोषिणामपि ॥ वाग्भट्ट

यष्टीमधुकम् (क्लीतनकं, मधुकम्)

परिचय—यह मीठी लकड़ी अरब-मिस्र तथा तुर्की से आती है। मिस्री सर्वोत्तम होती है। भारतीय हीन गुण है। काष्ठ तथा सत्व दोनों ही व्यवहार में आते हैं। इसे गुंजा (रत्ती) की बेल समझना गलत है।

---

1. Betel leaf
2. Piper Betel linn
3. Chavica Betel, Migue
4. Piperaceae

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रस—मधुर, वीर्य-शीत,
विपाक—मधुर
दोष—वात-पित्तशामक
प्र० अ०—फुप्फुस-कला
वि० शु० क०—स्निग्ध, कफनिष्कासक, मृदुरेचक
मात्रा—३-६ माशा तक चूर्ण

नाम—(हि०) मुलेठी, मुलहट्टी, (बं०) यष्टिमधु, (म०) जेष्ठीमध (गु०) जेठीमध (क०) अतिमधुर (तैं०) यष्टिमधुकम् (ता०) अतिमधुरम् (अं०) लिकोरिस्,[1] ग्लिसराइहिजा ग्लेब्रा,[2] अपराजि वर्ग।

गुण—यष्टिहिमागुरुः स्वादी चक्षुष्या बलवर्णकृत्। सुस्निग्धा शुक्रला केश्या स्वर्या पित्तानिलास्रजित्। व्रणशोथिविषच्छर्दि तृष्णाग्लानिक्षपापहा। (भाव) मुलैठी, मधुर, शीतल, मधुर विपाकी, कफवर्धक वातपित्तशामक, बल, वर्ण, स्निग्ध (तर) वीर्यवर्धक केश्य, स्वर्य, रक्तस्राव, व्रणशोथ, विष, वमन, प्यास, अरुचि, क्षयनाशक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—यह मधुर तथा स्निग्ध होने के कारण मुख में लालास्राव बढ़ता है। अतः मुख शोष, प्यास, मुख तथा गले के व्रणों में मुलैठी का सत्व या चूर्ण चूसा जाता है। सूखी लकड़ी सारक नहीं होती, किन्तु चूर्ण मृदुरेचक है। अनेक औषधियों के बुरे स्वाद को छिपाने के लिए इसको योगों में डाला जाता है। मुलेठी की छिली या बिना छिली लकड़ी का प्रयोग किया जाता है।

बड़ी मात्रा में यह वामक भी है। फुप्फुस तथा श्वास प्रणाल की शोथ, दाह, खरता को दूर करती है। अतः श्वास, कास, तथा फुप्फुस के अन्य रोगों में शोथ को शान्त करने के लिए तथा कफ को निकालने के लिए इसका प्रयोग उत्तम है। वातनाड़ियों को बल देने वाली तथा क्षोभ और शूलशामक है। मूत्र-मार्ग तथा वृक्कों के संक्षोभ को भी दूर करता है। व्रणों में इसे घी या शहद के साथ मिलाकर लेप किया जाता है। शोथ में लेप लगाया जाता है। इसे गुलाब के फूल या गोंद कतीरा के साथ सेवन करना उत्तम है।

नेत्रों की ज्योति बढ़ाने के लिए इसके चूर्ण को घृत तथा मधु में मिलाकर सेवन करें। इसके काढ़े से आँखें धोयें। हिचकी में इसे मधु के साथ चटावें। दूध के साथ इसका सेवन रसायन तथा बलदायक है।

(१) मधुरविरेचन चूर्ण-मात्रा—३-६ मात्रा उत्तम मृदु रेचक।
(२) मधुयष्ट्यादि क्वाथ (गोजिह्वादि क्वाथ) कफनिष्कासक।
(३) दशांगलेप—व्रणशोथशामक और पाचक।
(४) मधुयष्टि तेल—नस्य, प्रतिश्याय, पीनस, शिरः शूलशामक।

(मुलैठी पाँच तोला, सज्जीखार, यवक्षार सौंचलनमक, बिड़लवण—१-१ तोला, चूर्णकर १ सेर तिल के तेल में मिला आमलों का रस चार सेर, सादा जल ४ सेर मिलाकर तेल शेष रहने पर उतार लें।

भूस्तृणम् (सुगन्धः—मालातृण, गुप्तबीज)

नाम—(हृ० पं०) हरीचाय, निम्बुघास, (ब०) गन्धवेणा (म०) ओलाचहा, (म०) लीलीचा (अं०) लेमन ग्रास,[3] (वा० ले०) एन्ड्रोपोगोन[4] साईट्रेट्स, साइम्बोपोगोन्[5] साईट्रेट्स, तृणवर्ग।[6]

गुण—जम्बीरः पाचनस्तीक्ष्णः कृमिवातकफावहः।
सुरभिर्दीपनोरुच्यो मुखवैकारकः॥ सु० सू० ४६
अवृष्यो बहुविटकः स्याद्रक्तपित्तप्रदूषणः।
कृमिकासवनि श्लेष्म श्वासदद्रुविनाशनः॥ कै०

---

1. Liquorice.
2. Glycyrrhiza glabra Linn.
3. The lemon grass
4. Andropogon Citratus D. C.
5. Cymbopogon Citratus, Linn.
6. Gramineae

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जम्बीर या हरीचाय कटुरस तिक्त अनुरस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, तीक्ष्ण, रोचक, लघु, अग्निदीपक, वातकफकारक, कृमिघ्न, विदाही, कास, वमन, कृमि तथा दाद नाशक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—इस घास में एक उड़नशील तेल पाया जाता है। जो उष्ण तथा उत्तम वातानुलोमक तथा सुगन्धित है। अतः यह घास वातकफ के रोगों में प्रतिश्याय, वातकफज्वर (इन्फ्लुएंजा), विषूचिका, वमन शामक है। सन्धिशूल तथा रजः कृच्छ्रता नाशक है। स्वेदल, मूत्रल, आमवात शामक है। किसी अंग की पीड़ा में इसके अभ्यंग से लाभ होता है। हरीचाय तथा पोदीना के वाष्प से ज्वरों में पसीना आ जाता है। आलस्य तथा वातशून्यता (झनझनाहट) आदि में हरे पत्तों की चाय अदरक के साथ, वमन, जीमचलाने में इसकी चाय या तेल की कुछ बूंदें जल में मिलाकर पीने से लाभ होता है। १ तोला हरीचाय को २½ पाव पानी में औटाकर २–५ तोले की मात्रा में ज्वरित को पिलाने से पसीना आता है।

इसी प्रकार के गुणों वाली दो अन्य घासें भी हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं। गुण ऊपर के समान है। (१) रोहिषम् (कतृणम्) (हि०) रुसा घास, मिरचागन्ध (म०) रोहित गवत (गु०) रोसडों (अं०) रूसाग्रास,[1] जिञ्जरग्रास[2] (वा० ले०) एन्ड्रोपोगोन स्कीनेन्थस्।[3]

---

1. Roosa grass
2 Ginger grass
3. Andropogon Schoenanthes

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ग्यारहवां अध्याय

तिक्त रसायन वर्ग

इस वर्ग के द्रव्य प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा पाचन का उद्दीपन करते हैं। पित्तनाशक हैं।

अतिविषा (भंगुरा-घुणवल्लभा)

परिचय--हिमालय पर पाया जानेवाला कन्द यद्यपि नाम अतिविषा है तथापि विषैला नहीं है।

मात्रा--१-३ माशा

रस—तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—कफ-पित्तशामक

प्र० अ०--पाचक अंग सर्वदेह

वि० गु० क०--दीपन, पाचन, ग्राही ज्वरघ्न।

नाम--(हि०) अतीस (म०) अतिविषा (गु०) अतिविष (बं०) आतईच (क०) अतिविष (ते०) अतिवासा (ता०) अतिवोडेयम (अं०) इण्डियन अतीस[1], (वा० ले०) अकोनिटम्, हिट्रोफाइलम्[2], वात्सनाभ वर्ग[3]।

अतिविषा शुक्लकन्दाऽपरा प्रतिविषा विषा।
घुणप्रिया घुणामाद्री श्यामकन्दा सितारुणा॥
भंगुरोपविषा विश्वश्रृंगी चोपविषाणिका।
विषासोष्णा लघुतिक्ता दीपनी पाचनी जयेत्॥
कफपित्तातीसारामविषकास वमिक्रमीन्। (कै०)

परिचय—अतिविषा एक उपविष है। इसी का भेद प्रतिविषा भी कहा गया है। अतीस का कन्द ऊपर से धूसर (मटमैला) वर्ण तथा तोड़ने पर पिष्टमय पदार्थ के मध्य में चारों ओर ३-४ काले धब्बे मिलते हैं। यह निर्गन्ध किन्तु अत्यन्त कड़वी होती है। यह बहुत शीघ्र घुण जाती है। अतः प्रयोग हेतु नवीन मोटे भारी क्रमि से अभक्षित कन्द लेना चाहिए। इसकी उत्पत्ति हिमालय पर ६००-१२००० फुट तक की ऊँचाई तक पाई जाती है (इसका क्षुप २-३ फुट ऊँचा, पत्र बहुशः कर्तित, विविधाकृतिः, पुष्प नील-हरित वर्ण) इसे श्यांम कन्दा कह सकते हैं। इसका वर्णन अन्यत्र किया गया है।

गुण कर्म—यह दीपन-पाचन, आमपाचक, अतीसार, वमन (विशेषकर अन्नजीर्ण से उत्पन्न) संग्रहणी, कास, उदर क्रमि तथा प्रतिश्याय विषशामक है। बच्चों के लिए अत्यन्त गुणकारी है।

प्रयोग--दीपन-पाचन और तिक्त पित्त होने से अग्निदीपक है। आमपाचक होने से अतिसार, आमदोष, अग्निमान्द्य में २-४ रत्ती की मात्रा में शुंठी-नागर मोया आदि के साथ मिलाकर दी जाती है। जीर्णज्वरों में करंज

1. Indian Ateesa
2. Aconitum Heterophyllum wall
3. Ranunculaceae

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

किराततिक्त, त्रायमाणा, गिलोयादि के साथ १०-२० गुंजा की मात्रा में दिन में ४ बार देने से लाभ होता है। जीर्णरोगों के कारण उत्पन्न निर्बलता, क्षुधानाश, रक्तन्यूनता, पाण्डु आदि में लोह, ताम्र या स्वर्णमक्षिक के साथ देने से अत्यन्त लाभ होता है। बच्चों के अजीर्णजन्य अतिसार-ज्वर, ज्वरातीसार-कास में वचा, भांग तथा शृंग भस्म में मिलाकर देने से अत्यन्त लाभ होता है। यकृत् विकृति, रक्त की अशुद्धि में अतीस १० रत्ती, रसौत १० रत्ती की मात्रा में दी जाती है। इससे मलबद्धता नष्ट होती है। पित्त बाहर निकलता है। ज्वर भी शान्त होता है। भूख बढ़ती है तथा रक्त शुद्ध होता है। विषमज्वरों को रोकने के लिए १०-१५ रत्ती की मात्रा में दिन में ३-४ बार दें। चढ़े हुए ज्वर में सेवन से पसीना लाकर ज्वर उतारती है। अतीसार या आमातीसार में दो माशा अतिविषा को समभाग अर्द्रक के रस में पीस कर देना चाहिए। उदरकृमियों में दो माशा अतिविषा को समभाग अर्द्रक के रस में पीस कर देना चाहिए। उदरकृमियों में वायबिडंग के साथ, श्वास में पुष्करमूल के साथ, पाण्डु आदि में ४ रत्ती अतीस, १॥ रत्ती हीराकासीस के साथ, विषमज्वरों में १ तोले अतीसचूर्ण में १॥ रत्ती सोमल पीसकर ४-४ रत्ती की मात्रा में दिया जाता है। वमन में नागकेसर के साथ देने से अत्यन्त लाभ होता है।

योग—बालचातुर्भद्र चूर्ण ४ रत्ती से १ माशा तक ज्वरातीसार में।

प्रतिविषा—(वखमा या विखमा,) एकोनिटम् पाल्मेटम्[1] भी अतिविषा का ही भेद है। अतिविषा शुक्लकन्दा परा प्रतिविषा (कैं०)। यह अतीस की अपेक्षा कठोर कन्द होता है। गुणों में अतीस के समान है, मात्रा २-६ रत्ती। अजीर्ण, अतिसार, वमन, आध्मान में काली मिर्च तथा जायफल के साथ देते हैं। हैजे की प्रारम्भिक दशा में लाभकारी है।

अर्कमूला (ईश्वरो, नाकुली)

परिचय—बहुवर्षायुलता

उ० स्थ०—प्रायः सर्वत्र दक्षिण में अधिक

व्य० अ०—मूल

मात्रा—चूर्ण ४-१५ रत्ती तक

पत्र स्वरस—२-८ माशा

क्वाथ—२॥-५ तोला

रस—तिक्त, कटु, कषाय

वीर्य—उष्ण,

विपाक—कटु

प्र० अ०—वाततन्तुः, गर्भाशय

वि० गु० क०—वायु अनुलोमक, गर्भाशय उत्तेजक, विषघ्न, रेचक

नाम—(हि०) ईश्वरी, ईसरमूल (म०) सापसन्द (बं०) ईशरमूल (क०) ईश्वरबेल, (वा० ले०) एरिस्टोलोकिया[2] इण्डिका लिन्न वर्ग ईश्वरी या नाकुली।[3]

गुण—नाकुली तुवरातिक्ता कटुकोष्णानियच्छति।
भोगिलूतावृश्चिकाखुज्वरकृमिव्रणान् ॥ (मा० प्र०)

नाकुली या ईश्वरमूल कसैली, कड़वी, उष्ण, कटुविपाकी साँप, बिच्छू, मकड़ी, चूहा के विष ज्वर, कृमि तथा व्रण शामक है।

प्रयोग—बिच्छू, सर्पदष्टादि में इसके मूल का लेप दष्ट स्थान पर लगाने से वहाँ वेदना कम होती है तथा विष का प्रभाव नष्ट होता है। पीने के लिए भी चन्दन के समान घिस कर पिलाई जाती है। दीपन-पाचन, उत्तेजक

1. Aconitum Palmatum.
2. Aristolochia Indica Linn
3. Aristolochiaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तथा विषमज्वर शामक और स्वेदल होने से मदाग्नि, कुपचन, वमन, अतिसार, संग्रहणी, आध्मान, आन्त्रदाहादि में आमाशय तथा अन्त्रों के अजीर्णजन्य वमन, अतिसार, ज्वरों में शिरःशूल, मूत्रदाह आदि नष्ट होकर पसीना आता है और बिना थकावट के ज्वर उतरता है। विषमज्वरों तथा सूतिका ज्वरों में उत्तम है। सन्निपातिक ज्वरों में प्रलापशामक है। आमवात तथा सन्धि शोथ में मूल का लेप तथा काढ़ा पीने के लिए दिया जाता है। कफज्वरों, प्रतिश्याय, वातकफज्वरादि, श्वसन की दूसरी अवस्था में क्वाथ सेवन से वाततन्तुओं की उत्तेजना से प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा कफ पतला होकर निकल जाता है। खांसने की शक्ति बढ़ जाती है। गर्भाशय पर इसकी उत्तेजक क्रिया निश्चित है। गर्भाशय का संकोच जोरदार होता है। गर्भ को बिना हानि किये शीघ्र पतन होता है। आर्त्तव बन्द होने पर रजः कृच्छ्रता में इससे अत्यन्त लाभ होता है। एतदर्थ मूल का काढ़ा पुराने गुड़ के साथ दिया जाता है, गर्भिणी को देने से गर्भपात की आशंका रहती है।

कारवेल्लकम् (कठिल्लं, उग्रकाण्डः)

नाम--(हि० पं० मां०) करेला, (म०) कारलें (गु०) करेलां (बं०) उच्छे, (क०) काडुहागल, (तै०) काकरचेट्टु, (ता०) पक्वाचेडी (अं०) बिटरगार्ड[1] (वा० ले०) मोमोर्डिकाचिरेण्टिआ, लिन्न,[2] कर्कटी वर्ग।[3]

वक्तव्य--सुपरिचित लता है। व्यवहार में पंचांग विशेष कर फल तथा पत्र आते हैं। गर्मी तथा वर्षा दोनों ऋतुओं में पाये जाते हैं।

गुण--कारवेल्लं सकटुकं कटुपाकमवातलम्।
दीपनं भेदनं तिक्तमवृष्यमहिमंलघु ॥
हन्त्यरोचक पित्तास्र कफ पाण्डुव्रणकृमीन्। (कै०)

करेला तिक्त, कटुरस, अनुष्ण, कटुविपाकी, पित्त-कफशामक, दीपन, रेचक, लघु, अवृष्य, अरुचि, रक्तदोष, पाण्डु, उदरकृमि, त्वचारोग, अर्श तथा ज्वर शामक है।

प्रयोग--पत्रस्वरस वामक तथा विरेचक है। पैत्तिक रोगो कामलादि में उत्तम है। जीर्ण विषमज्वरों, यकृत्, प्लीहा-वृद्धि नाशक है। यकृत् का रेचक है। अतएव, अर्श, पाण्डु, कामलाशामक, क्षुधावर्धक, रक्तशोधक, आमवात, वातरक्त शामक है। पत्तों का रस दद्रु पर लगाते हैं तथा अर्क उदरकृमियों में पिलाते हैं। अग्निदग्ध, पत्रस्वरस लेप दाहशामक है। उसे घिस कर अर्श पर लेप लगाते हैं। पत्तों के रस में सोंठ, मिर्च काली, पिप्पली चूर्ण मिलाकर पिलाने से ऋतु शुद्ध होता है। यकृत् तथा प्लीहा-वृद्धि में फल के रस में राई, नमक तथा इन्द्रायण की जड़ का चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए। जलोदर में भी उत्तम है। रेचन होकर तरल निकल जाता है। पत्रस्वरस बच्चों के विबन्ध का नाशक है। मूल उष्ण और संग्राही है।

नीलकण्ठी (कटु)

नाम--(हि० पं०) नीलकंठी, कटु, (गु०) कडू (म०) जितियाणा (अं०) इण्डियन (हिमालयन) जेन्शिया,[4] (वा० ले०) जन्शियाना कुरो[5] रायली, चिरायता वर्ग।

परिचय--शिमला, काश्मीर, भूटानादि हिमालय के भागों पर प्रभूत मात्रा में पाई जाती है। यह भूमिप्रसरी वनस्पति है जिस पर सुन्दर नीलपुष्प आते हैं। भूमि की ओर के पत्ते पृष्ठ तथा मूल नीली होती है। अतः नीलकण्ठी नाम दिया गया है। अत्यन्त कड़वी है। पंचांग--विशेष कर मूल काम में आता है।

---

1. Bitter Gourd.
2. Momordica Chirantia, Linn
3. Cucuerbitaceae
4. Indian, (Himalayan) gentia
5. Gentiana Kurroa, Royle

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण—तिक्त, शीतवीर्य, ज्वरहर, कटु विपाकी, मृदुरेचक, यकृत्शोधक है। पित्तकफशामक है। ज्वरों में, जीर्ण रोगों में, पाचक अंगों की दुर्बलता, यकृत् में, दोष संचय होने पर तथा विबन्ध में पाण्डु कामला गुल्म जीर्णज्वर, मन्दज्वर, राजयक्ष्मा के ज्वर का नाशक है। काढ़ा बना कर या चूर्ण १-३ माशा की मात्रा में दिया जाता है।

मामज्जकम् (तिक्तपत्रा)

नाम—(हि०) छोटा चिरायता, मामेजवा, (म०) ममिज्वा, (गु०) मामेजवो (वा० ले०) एनिकास्टेमा लिटोरेली[1] किराततिक्त वर्ग।[2]

परिचय—यह छोटा-सा क्षुप बम्बई-गुजरातादि में वर्षा ऋतु में सर्वत्र उपलब्ध होता है।

गुण—कड़वा, शीतवीर्य, कटु विपाकी, ज्वरघ्न, मृदु रेचक, कृमिहर, कफपित्तशामक रक्तशोधक है। ज्वरों में, विषमज्वर, चर्मरोग, रक्त विकार, मधुमेह शामक है। मलमूत्र को अधिक मात्रा में लाता है। विशेष कर मधुमेह में स्वरस या काढ़ा ५-५ तोले दिन में ३-४ बार पीने से मूत्रशर्करा कम होती है तथा नई शर्करा पर अंकुश लगाता है। संभवतः यकृत् की विनिमय क्रिया को सुधारने के कारण यह प्रभाव होता है। अन्य उपयोग चिरायते के समान है।

---

1. Enicostoma-littorale Blume. 2. Gentianaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बारहवां अध्याय

कटु वर्ग

ये द्रव्य रोचक दीपन, पाचन-अनुलोमन हैं।

आर्द्रक, (शृंगवेरं) कटुकन्दम्, शुण्ठी (नागरं-विश्वभेषजम्)

वक्तव्य—ताजे कन्द को आर्द्रकं, अदरक तथा सूखे को शुण्ठी, सोंठ ही कहा जाता है। गुणों में प्रायः समानता है। शुण्ठी मलों की संग्राही है। अदरक भेदन है। यही भेद है। (रुध्यंमलानां) संग्राही-आर्द्रकं विद्यात् सतीक्ष्णं भेदनं गुरु-(कै०)। इसका एक भेद वनार्द्रक भी है।

परिचय—सुपरिचित कन्द प्रायः सर्वत्र उपलब्ध, कन्द (ताजे तथा सूखे) का व्यवहार होता है।

मात्रा—चूर्ण, १-२ माशा

रस—कटु,

वीर्य—उष्ण,

विपाक—मधुर

दोष—वातकफहर, पित्तवर्धक,

प्र० अंग—पाचक अंग

वि० गु० क०—अनुलोमन, पाचक, कपघ्न

नाम—आर्द्रकरा (हि०) अदरक (मा०) आदो, अदरक (गु०) आदु, (बं०) आदा, (म०) आलें (अ० फा०) जजबील (अं०) फ्रेश या ग्रीन जिन्जर।[1] शुण्ठी, (हि० मा०) सोंठ (बं०) सुंट (गु०) सुंठ (म०) सुंठी (अ०) डाई जिन्जर[2] (वा० ले०) जिन्जीबेरिस् आफिशिनेल[3], हरिद्रा वर्ग[4]।

गुण—नागरं कफवातघ्नं विपाषकी मधुरं, कटु।
वृष्योष्णं रोचनंरूप सस्नेहं लघु दीपनम्॥
कफातिलहरं स्वर्यं विबन्धानाहशूलनुत्।
कटूष्णं रोचनं हृद्यं चैवार्द्रकं स्मृतम्॥ (सु० सू० ४६)

अदरक तथा सोंठ कटुरस, उष्णवीर्य, मधुर विपाकी, रूप (अदरक कुछ स्निग्ध) रुचिकारक, पाचक, दीपन, लघु, स्वर्य, वातकफहर, विबन्ध (वायु) आनाह, उदरशूल नाशक है। अदरक के भी यही गुण हैं। कफ प्रकृति के लिए यह अति उत्तम है। वातकफात्मक रोगों—प्रतिश्याय, वातकफज्वर, श्लीपद, मेदा रोगों-अतिसार, गुल्म, आनाह, अध्मान, अरुचि, अजीर्णता तथा वमन नाशक है।

प्रयोग—वातानुलोमन होने से प्रवाहण (मरोडें) उत्पन्न करने वाली रेचक औषधियों (इन्द्रायणादि में) के योगों में डाली जाती है। रात्रि को सोते समय १ तोला सोंठ का फाण्ट लेने से आमवात शान्त होता है। स्वरभेद में सोंठ का चूर्ण मधु में मिलाकर अथवा बचा मुलैठी आदि अन्य स्वर्य औषधियों के साथ मिला कर सेवन करने से या

1. Fresh or green Ginger.
2. Dry Ginger.
3. Zingiberis officinale, Rosscue.
4. Scitaminceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

फाण्ट बना कर पिलाने से लाभ होता है। प्रतिश्याय खांसी में मधु, अदरक, स्वरस का सेवन किया जाता है। मन्दाग्नि में सदा भोजन से पूर्व लवणार्द्रक या निम्बुरस-आर्द्रक-सैन्धव का सेवन अग्निदीपन, पाचन, वातश्लेष्म और आमवात नाशक है। वमन-शान्त्यर्थ तुलसीरस, मयूरपुच्छभस्म, अदरक रस के साथ मिला कर दी जाती है। वातज अंडवृद्धि में मधु अदरकस्वरस, कामला में त्रिफला, गुड़ में मिला कर प्रयोग किया जाता है। सर्वांग शोथ में आर्द्रक स्वरस में पुराना गुड़ मिला कर प्रयोग किया जाता है। पथ्य केवल बकरी का दूध। वातिक पीड़ाओं में सोंठ, अजवायन चूर्ण की मालिश या १ सेर अदरक रस में आधा सेर तिल-तेल मिला कर उसका लेप किया जाता है। प्रसव के पश्चात् पाचन, वातानुलोमन, वातशमनार्थ भी प्रयुक्त होता है।

योग—शुण्ठी पाक या सौभाग्य शुण्ठी—मात्रा ३-६ माशा, दूध के साथ, प्रसव के प्रश्चात्।

एरण्ड कर्कटी, (मधुकर्कटी)

नाम—(हि०) एरण्डखर्बूजा, पपीता (मा०) एरण्डकाकड़ी (म०) पपाया (गु०) पोपैयुं (ते०) बोप्पयी, (ता०) पचलै, पप्पलि, (मल) कप्पलम् (वा० ले०) केरिका पपाया,[1] लिन्न, एरण्ड कर्कटी वर्ग[2]।

परिचय—यह मध्यम प्रमाण का निर्बल तने वाला वृक्ष भारत में सर्वत्र पाया जाता है। बारहों मास इसमें पुष्प लगे रहते हैं। उपयोगी अंग-फल, बीज, पत्र तथा रस।

गुण—पका फल उष्ण तथा स्निग्ध और अपक्व फल उष्ण तथा रूक्ष होता है। फल का दुग्ध जैसा स्राव अत्यन्तपाचक, उदर क्रमिघ्न स्तन्यजनन, तथा त्वचा रोग नाशक है। इसकी मुख्य क्रिया उदर तथा आमाशय पर होती है। यह पाचक क्रिया इसके स्राव में उपस्थित पैपीन नामक सत्व के कारण होती है। यह रस दुग्ध आदि के पाचन में आमाशय की सहायता करता है। क्षुधावर्धक तथा अनुलोमक है। यह रस अपने से २४० गुने मांस को पचाता है। वातक, अनुलोमन एवं कोथ (आन्तों की सडांध) प्रशमन है। केंचुए जैसे गोल क्रमि मरते हैं। पत्रों की क्रिया हृदय पर हृत्पत्ती के समान होती है। हृदय को आराम मिलता है। उसकी क्रिया संकोच क्रिया बलशाली होती है तथा नाड़ी ठीक होती है। पसीना आता है तथा मूत्र की मात्रा भी बढ़ जाती है।

प्रयोग—कच्चे पपीते का दूध दाद, पामा आदि में लगाया जाता है। इस रस में पिचू (कपड़ा) भिगोकर योनि में रखने से गर्भस्राव तथा आर्तव हो जाता है। स्नायुक (नहरुआ) में लेप लगाने से शोथ शान्त होती है। उदर-क्रमियों में ताजे फल के १$\frac{1}{8}$ तोला रस को १$\frac{3}{8}$ तोले मधु में मिला कर उसमें ४-५ तोले औटता हुआ जल मिला कर शर्बत बना कर ठंडा होने पर पिला दें। दो घंटे पश्चात् नींबू के रस में एरण्ड तेल मिला कर पिला दें। रेचन होकर क्रमि निकल जाते हैं। यह पूर्ण मात्रा है। ७-१० वर्ष के बच्चे के लिए आधी तथा ३-७ वर्ष के बच्चे के लिए चौथाई मात्रा है। बड़ी मात्रा में अन्त्रों के लिए हानिकर है। बीजों का प्रयोग भी उदर क्रमिनाशनार्थ किया जाता है। कच्चे फल को एक मोटे कपड़े पर फैला कर सुखाकर चूर्ण बना देना चाहिए। कोष्ठबद्धता तथा हृदय रोगों में फल का सेवन अति उत्तम है। प्लीहोदर, यकृत्-वृद्धि में दूधिया रस १ तोला या अपक्व फलचूर्ण, सैन्धव लगा कर देना चाहिए। पाचन सम्बन्धी सब रोगों में अति उत्तम है। जीर्णातिसार में कच्चे फल का चूर्ण तथा उदरदाह, यकृत्प्लीहावृद्धि में पक्व फल अति लाभकर है। पत्रस्वरस में अफीम पिलाने से तथा गरम कर बांधने से स्नायु सम्बन्धी पीड़ा मिटती है। पक्व फल का सेवन दुग्धवर्धक है। ज्वरों में हृदय को शक्ति देने के लिए, मूत्र तथा पसीना लाने के लिए इसका प्रयोग होता है।

एलाद्वयम क्षुद्रैला (त्रुटिः, द्राविडी, बहुला)

परिचय—इसका वृक्ष द्रविड़ देश, मालाबार आदि में उत्पन्न होता है। श्वेत लालरंग के पुष्प निकलते हैं।

1. Carica-popaya, Linn. 2. Passiploreae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

व्य० अंग०—बीज-तैल

मात्रा—४ रत्ती-१ माशा

रस—कटु, मधुर रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी ।

प्र० अ०—पाचक अंग

वि० गु० क०—अनुलोमक, दीपन, पाचन, मूत्रल, कासघ्न ।

नाम—छोटी इलायची, (बं०) एलायच (ग०) एलची, (म०) वेलची, वेलदोड़े, (क०) यालक्कि, (ते०) एलकलु (ता०) विहेलम् (अ०) मालाबर[1] कर्डेमम् (वा०ले०) इलेटोरिया कार्डेमोमम्,[2] मेटन, हरिद्रादिवर्ग[3] ।

गुण:—सूक्ष्मैला शीतला स्वाद्वी हृद्या रोचन दीपनी । (भ०नि०)

सूक्ष्मैला मूत्रकृच्छ्रार्शः श्वासकास कफापहा (कै०) छोटी इलायची शीतल, मधुर रुचिकारक, दीपन, मूत्रकृच्छ्र, अर्श, श्वास-कास, कफ नाशक है । एला आम दीपन-पाचन, क्षुधा उत्तेजक तथा अनुलोमन है । यह उदर शूल, अध्मान, तथा उदर-शूलशामक और सुगन्धित है । औषधियों की रुचि को उत्तम बनाने के लिए तथा रेचकों में उदर-शूल में अद्वितीय है । कण्ठशोथ, स्वरभेद, तथा वमन नाशक है । इसके योग एलादिवटी आदि को चूसा जाता है । वमन, हृल्लास (जी मचलाना, उबकाई आना) उदर-शूल में उपयोगी है । पाचक अंगों की शिथिलता और उनके रोगों को दूर करने में सशक्त है । ५ रत्ती की मात्रा में सेवन से यकृत् की क्रिया भी उत्तम होती है । मूत्रकृच्छ्र में खरबूजे के बीज, गोमूत्र या केले के रस के साथ देने से लाभ करती है । श्वास, कास में कफ की दुर्गन्धि नष्ट करती है । इलायची के उबाले जल से विषूचिका तथा तज्जन्य शिथिलता तथा प्यास, वमन उत्क्लेश में अनार के रस या शर्बत में इलायची चूर्ण तथा इसका ५ बूंद तेल पिलाना चाहिए ।

योग—एलादिगुटिका, चन्द्रकलावटी, एलादिवटी रसायन ।

स्थूलैला (भद्रैला, त्रिपुटा, पृथ्वीका)

परिचय—क्षुद्र क्षुप अदरक के आकार का

उ० स्थ०- -आर्द्र उष्ण स्थानों पर सर्वत्र नेपाल, बंगाल, सीलोनादि

व्य० अ०—बीज-तैल

रस—कटु

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—वातकफ शामक, पित्तवर्धक ।

प्र० अ०—पाचक अंग

वि० गु० कु०—दीपनं, पाचक, सुगन्धित

मात्रा—५-१० रत्ती

नाम—(हि० मा०) बड़ी इलायची, (गु०) एलचा (म०) मोटया एलची (बं०) मोरंग एलायच् (क०) दोडयालक्कि, (ते०) पेदद एलक्लु, (त०) काट्टेलम् (अं०) सीलोन[4] कार्डेमम्, (वा० ले०) अमोमम्[5] सुबुलेटम्, राक्स्ब, हरिद्रादि वर्ग ।

गुण—भद्रैला कटुकारसे पाके पित्ताग्निकृल्लघुः ।

सूक्ष्मोष्णरोचनी श्वासकासवातास्र कफापहा ।।

हन्ति हृल्लासतृट् कण्डु शिरोबस्त्यास्यरुग्वमिः । (कै०)

---

1. Malabar cardemom.
2. Eletaria cardemom, madn.
3. Scitaminaceae.
4. Ceylon Cardemom.
5. Amomum Subulatum, Roxb.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बड़ी इलायची रस तथा विपाक में कटु, उष्ण, सूक्ष्म, रोचक, पित्त तथा अग्निवर्धक, श्वासकास, वात रक्त कफशामक, हृल्लास, प्यास, कण्डू, शिर.शूल, मुख, वस्तिरोग तथा वमन शामक है। यह छोटी की अपेक्षा उष्ण है। प्रधानतः यह अतिसार, वमन, उत्क्लेद (जी का मचलाना) नाशक है। मन्दाग्नि तथा अन्त्रों में पाचक रसों की उद्दीपक है। अतिसार में बेलगिरी के साथ वीर्यक्षीणता में श्वेतमूसली के साथ, वात पीड़ा में सिनकोना के साथ, उदरशूल विषूचिका में काले नमक के साथ, मूत्रकृच्छ्र तथा अश्मरी में खरबूजे के बीजों के साथ दी जाती है। उक्त दोनों एलाओं के फल दो वर्ष तक तथा छिलके रहित बीज १ वर्ष तक वीर्यवान् रहते हैं। दोनों में ही एक उड़नशील तेल पाया जाता है। जिसके गुण भी इनके बीजों के समान ही है।

कैडर्यः (सुरभिनिम्ब)

नाम—(हि०) मीठा नीम, (म०) कढ़ीलिंब, (गु०) कढ़ी लीमड़ों या मीठा लीमड़ो; (वा० ले०) मुरया कोनिजाई[1] नारंग वर्ग।

यह छोटा-सा वृक्ष है जो हिमालय के अधोभागों तथा दक्षिण में होता है। पत्र सुगन्धित तथा दीपन पाचन है। ग्राही और अनुलोमन होने से उदर विकारों में विशेष लाभ करते हैं।

आम रोगों—प्रवाहित अतीसार के पत्रों का कल्क देते हैं। वमन रोकने के लिए पत्रों का फाण्ट आहार पाचन के लिए शीतपित्त में इसका लेप लगाते हैं।

कलवञ्जिका (पृथ्वीका, स्थूलजीरका)

वक्तव्य—रस, गुण, विपाकादि जीरक के समान। वस्तुतः यह जीरा नहीं है। किन्तु उससे भिन्न वनस्पति के बीज हैं। जो गुणों में जीरक के समान है। इसे 'जीरक त्रितय' (काला जीरा) सफेद जीरा, स्थूल जीरक, विलायती जीरा में गिनना अशुद्ध है। कलौंजी (हि०) मुंग्रेला, (उ० ले०) नाइजेला सटिवा,[2] वत्सनाभ वर्ग।[3]

गुण—पृथ्वीका कटुतीक्ष्णोष्णा वातगुल्मदोषनुत्।
श्लेष्माध्मानहराजीर्ण जन्तुघ्नो दीपनापरा॥

कलौंजी—कड़वी, तीखी, गरम, तीक्ष्ण, वातकफ, दोषहर, कटु, विपाकी, गुल्म, आध्मान, अजीर्ण क्रमिनाशक तथा परम दीपन हैं।

प्रयोग—कलौंजी में उड़नशील तेल के कारण सुगन्ध आती है। वह अत्युत्तम अग्निदीपक तथा पाचक, उष्णतीक्ष्ण होने के कारण स्रोतोशोधक, वात अनुलोमक, मूत्र, आर्त्तव (मासिक धर्म) तथा दुग्ध प्रवर्तक है।

प्रयोग तथा प्रभाव—उष्ण-तीक्ष्ण होने के कारण शोथशामक है। गोमूत्र में पीस कर लेप लगाने से शोथ (सूजन) बिखर जाती है। गंज में कलौंजी की राख तिल, तेल और मोम में मिला कर लेप लगाते हैं। इसका तेल तैयार कर वातव्याधियों, आमवातादि में अभ्यंग करते हैं। त्वचारोगों—दाद, पामार आदि में निम्न प्रयोग अति उत्तम है। दारुहल्दी ५ तोला, गन्धक २½ तोला, कलौंजी ५ तोला, बाबची ५ तोला, गुगल ५ तोला, नारियल का तेल १ सेर—सबको कूट कर तेल में डाल कर सात दिन तक धूप में रखें। पुनः उस तेल से मर्दन करें। रसायन पदार्थों के सेवन करने से उन्हें पचाने में बहुत सहायता देती है। इससे खूब भूख लगती है। घी, दूध आदि सब पच जाता है। वायु नहीं भरती, मूत्रमल साफ होता है। कमर की पीड़ा मिटती है। दूध प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होता है।

गर्भाशय का संकोच विकास तीव्र होने से ऋतु साफ होती है। यह उत्तम गर्भाशय शोधक है। अत, रजः कृच्छ्रता, कटिशूल, गुल्म, अतिसार, आध्मानादि में दी जाती है। विषमज्वर में ६ माशा कलौंजी गरम जल से लेने

1. Murraya Koenigii, Spreng
2. Nigella Sativa, Linn
3. Ranunculaceae

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

से लाभ करती है। प्रतिश्याय में भुनी कलौंजी २ माशे, नौसादर २ माशे, सोंठ ३ माशा—सबको मिलाकर सूंघने से लाभ होता है। अर्श में कलौंजी की धूनी तथा इसकी भस्म का मरहम वेदना तथा शोथशामक है। स्नायुक (नहरुवा) में दही में पीसकर लेप, सिरके के लेप, सिरके में पीसकर रात को मुख पर लेप करके तथा प्रातः धोने से मुंहासे (युवान पिडिका) नष्ट होती है।

कलौंजी तथा एलुआ की गुदावर्ति से गुदकृमि (चुरुवे) नष्ट हो जाते हैं। हिक्का में वातानुलोमक होने के कारण ३ माशा, कलौंजी का चूर्ण, ३ माशा मक्खन के साथ खिलाने से लाभकारी होती है। कर्पूर-कलौंजी वस्त्रों में रखने से वस्त्रों को कीड़े नहीं लगते। पेट में दर्द करने वाली औषधियों के साथ भी अनुलोमक होने से उनमें मिलाई जाती है। रजः कृच्छ्रता में ५ रत्ती से १½ माशा तक दी जाती है। १ माशा की मात्रा में कलौंजी सेवन करने से शरीर की गर्मी, नाड़ी की गति, अन्दर के अंगों का रस प्रवाह विशेषकर वृक्क, त्वचा का बढ़ जाता है। मूत्रल तथा स्वेदल है। स्त्री के दूध में पीस कर नाक में टपकाने से कामला रोग नष्ट होता है। अधिक मात्रा में सेवन करने से चक्कर तथा कण्ठ शोथ उत्पन्न करती है। कलौंजी के पाक से वातकफ, उदरकृमि, आध्मान, अर्श, कमरपीड़ा, वातपीड़ाएँ नष्ट होती हैं। निम्न योग प्रसूत ज्वर, अग्निमान्द्य, निर्बलता नाशक है। कलौंजी, हरड़ २ तोला, सोंठ ४ तोला, अजवायन २ तोला, बारीक चूर्ण कर शक्कर २ सेर की चासनी बनाकर पाक बना लें। वह अति उत्तम योनिशोधक तथा अग्निदीपन है।

गुड़त्वक् (त्वक्-चोच) वरांगम्

परिचय—कर्पूर जातीय वृक्ष

उ० स्था०—दक्षिण भारत, लंका

व्य० अ०—त्वचा (छाल) तैल

मात्रा—त्वक् चूर्ण—४-१५ रत्ती, तैल—५ से १० बूंद।

रस—मधुर, कटुतिक्त,

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु।

दोष—वातकफहर, पित्तवर्धक

प्र० अ०—पाचन संस्थान

वि० गु० क०—दीपन, पाचन, अनुलोमक शूलहर

नाम—(हि० पं० मा०) दारस्वीनी, दालचीनी, (बं०) दारुचिनी, (म० गु०) तज (फ०) दारचिनी (अं०) सिन्नामोन[1], (वा० ल०) सिनेमोमम् झेलेनिकम्,[2] कर्पूर वर्ग।

गुण—वरांगं कटुकंतिक्तं तीक्ष्णोष्णं मधुरंलघु।
पित्तलं कफवातघ्नं हृब्दस्तिगदजन्तुजित्।
पीनसारुचिकण्ड्वाम दुर्नामशुक्रहृत्॥ (कै०)

वक्तव्य—दालचीनी उक्त वृक्ष के अन्दर की छाल है। सारा वृक्ष सुगन्धित होता है। उक्त वृक्ष लंका (सीलोन) की दारचीनी का है। भारतीय को C. Iners, Reiview चीनी को chinese cinnamon कहते हैं। लंका की सर्वोत्तम है। भारतीय दालचीनी के पत्तों को 'तेजपात' कहा जाता है।

तेल—वह्निमान्द्यानिलहरमाध्मानाक्षेपनाशनम्।
वान्त्युत्क्लेशप्रशमनं संग्राही दशर्नार्तिहृत्।
त्वाचं तैलं रजः स्रावि तोयेक्षिप्तं निमज्जति॥ (आ० स०)

1. Cinnamon. 2. Cinnamomum Zeylanicum,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दालचीनी, कटुतिक्त, मधुर, उष्णवीर्य, कटुविपाकी, लघु, वातकफ शामक, पित्तवर्धक, हृदय, वस्ति के रोग, कृमि, पीनस (पुराना जुकाम) अरुचि, कण्डु आमदोष, अर्श तथा वीर्यनाशक है। तैल भी दीपन, उत्तेजक संग्राही, कृमिघ्न, वाततन्तुओं को शक्ति देने वाला है। यह उदरशूल, वमन, आक्षेप, आध्मान, उत्क्लेद, अतिसार तथा रजः कृच्छ्रता नाशक है।

प्रयोग तथा प्रभाव—पाचक संस्थान का उत्तेजक तथा कुछ ग्राही है। उष्णवीर्य होने से वात को शान्त करता है तथा कृमिघ्न होने से अन्त्रों को शुद्ध करता है जिससे वहाँ आध्मानादि नहीं होते।

बाह्य प्रयोग में लेप करने से क्षोभक, वेदना शामक है। मस्तकपीड़ा में चन्दन या कर्पूर के साथ पीस कर लेप लगाते हैं। त्रिजातक (इलायची, तेजपात, दालचीनी) के काढ़े से कुल्ला करने से जिह्वा की जड़ता मिटती है। वमन में मधु के साथ दी जाती है। अतिसार, उद्वेष्टन (ऐंठन) तथा वाततन्तुओं की निर्बलता को नष्ट करती है। कटुरस उष्ण आदि गुणों के कारण यह कला को उत्तेजित करता है। अतएव आमाशय से पाचक रसों का स्राव अधिक होता है। पाचन उत्तम होता है। अन्त्र-कृमि तथा सड़ांध रहित होते हैं। जिससे आमपाचन तथा अपान वायु अनुलोम होती है। विषूचिका में इसका जल पिलाना अति लाभप्रद है। गर्भाशय की श्लेष्मिकला को भी उत्तेजित करती है। जिससे रजः स्राव ठीक समय पर होता है। एतदर्थ पीपलामूल, भाँग तथा उलटकम्बल के साथ देना चाहिए। दन्तशूल में तेल का फाहा (पिचु) रखते हैं। अत्यार्त्तव तथा रक्तस्राव में भी यह अशोक-लोध्रादि के साथ सेवन की जाती है। श्वासमार्ग से निकलते समय तैल कफ की उत्पत्ति को कम करता है। उत्पन्न कफ को पतला कर बाहर निकालता है। तथा कृमिघ्न होने से दुर्गन्धि नाशक भी है। अतः राजयक्ष्मा की खांसी में उत्तम है।

चव्यं-गजपिप्पली (कोलवल्ली)

नाम—(हि० मा० पं०) चव, चवक, (ब०) चई (म० गु०) चवक (क०) गजहिप्पली बेरु (ते०) अडियाली (ता०) शव्यम्। फल का नाम गज-पिप्पली है।

परिचय—चव्य की स्थूलता बंगाल, आसाम, जावा, सुमात्रा में होती है। और इसके फल सिंगापुर से यहाँ आते हैं। व्यवहार में लता का काण्ड तथा फल आते हैं। काण्ड का स्वाद भी बिल्कुल पिप्पली के समान होता है। उत्तम दीपन-पाचन अनुलोमन हैं।

गुण—ग्रन्थिचव्यं रखे पाके कटूष्णा दीपनं लघुः।
पित्तलं पाचनं तीक्ष्णं रूक्षं रोचनभेदनम्॥
कफवात कृमिप्लीहा गुल्मानाहोदपहम्।
हस्तिकृष्णा कटुः पाके वीर्योष्णा दीपनी कटुः॥
वातश्लेष्मकृमि श्वास कण्ठरोगातिसारजित् ॥ (कै०)

चविकायाः फलं प्राज्ञैः कथितागजपिप्पलीः। चव तथा उसका फल गजपिप्पली कटुरस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, वातकफशामक, पित्तवर्धक, लघु दीपन, रोचक, रूक्ष, उदर रोग, आनाह, आध्मान, अतिसारादि शामक है। बीजों को या चव्य की गांठ को जीर्णज्वरों में घी के साथ, प्रतिश्याय, उदरशूल, अर्श, वमन में दिया जाता है। यह पंचकोल का अंग है, पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक-सोंठ ये पांचों चीजें पंचकोल कहलाती हैं। इनके गुण निम्न हैं।

पंचकोल गुण—पंचकोलं रसेपाके कटुकं दीपनं जयेत्।
गुलम्प्लीहोदरानाह कथशूलानिलारुची॥ (कै०)

पंचकोल में मरिच मिला देने से 'षड्षण' गण बन जाता है। इसके गुण भी पंचकोल के समान हैं।

चित्रकत्रयम्, चित्रकः (दहनः, हुताशः, व्यालः)

परिचय—चित्रक की झाडी रूक्ष प्रदेशों में होती है।

उ० स्था०—प्रायः राजस्थान, दक्षिण भारत, बंगाल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

व्य० अ०—मूल, त्वक्-मूल
पुष्पकाल—श्वेत-रक्त-नील प्रायः सदा, पौष-माघ
रस—कटु तिक्त
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
दोष—त्रिदोषहर, विशेषकर वातकफशामक
प्र० अ०—पाचक-संस्थान-यकृत्
वि० गु० क०—पाचन, उत्तेजक, क्षोभक

नाम—(हि० बं० मा० पं०) चीता-चित्रक (गु०) चित्रो (म०) चित्रक, (क०) बिलि-कॆंपुचितमूल, (ते०) अग्निमाता, (ता०) कोडिवेलि (अ०) लीडवर्ट[1] (वा० ले०) प्लम्बेगो झिलेनिका[2], चित्रक वर्ग[3]।

गुणा—चित्रक मूलं दीपनीस्तिक्तः कटुः पाके रसेलघु।
अग्निवात पाचनोंरूक्षो वीर्योणो रोचनोजयेत्॥
ग्रहणी, कफ, वाताम शोथ, कुष्ठोदर क्रमीन् (कै०)
चित्रकमूलं दीपनीय पाचनीय गुदशोथार्श शूलहराणाम् (च० सू०)

चीता (मूल) तिक्त कटुरस दीपन, कटु विपाकी, उष्णवीर्य, रूक्ष, पाचन, संग्रहणी, अतिसार, वातकफ, आमदोष, शोथ, कुष्ठ तथा उदर विकार नाशक है। यह उष्ण तथा तीक्ष्ण होने के कारण क्षोभक है। अन्तः प्रयोग में आमाशय तथा अन्त्रों का उत्तेजक, स्वेदल तथा शोथ शामक है। पाचन बढ़ता है। यकृत् की क्रिया उत्तम होती है। पित्त बाहर निकलता है। जिससे पाण्डु-कामला आदि में लाभ होता है। बाह्य प्रयोग में लेप लगाने से यह छाला उत्पन्न करता है। छाले में शोथ तो बहुत होता है किन्तु जल कम निकलता है। किलास, कुष्ठ, दद्रु आदि में छाला डालने के लिए उपयोग करते हैं। आमवात, गृध्रसी, कूल्हे के दर्द पर इसका लेप लगाते हैं। किन्तु लेप थोड़ी ही देर लगाने चाहिए। गर्भाशय या योनि पर लेप करने से यह गर्भपातक है। चित्रक छाल घृतकुमारी के साथ पीस कर लेप करने से बढ़ी हुई प्लीहा (तिल्ली) यकृत् शोथ शान्त होती है तथा अन्तः प्रयोग में भी व्यवहृत होती है।

पाचन की खराबी से या विबन्ध से होने वाले स्वप्न-दोष तथा जननेन्द्रिय शिथिलता में भी इसका प्रयोग किया जाता है। रजः स्रावकों में तथा पाचन सम्बन्धी रोगों में यह अमृत है। स्रोतों के कफ तथा अभिष्यन्द को नष्ट कर उन्हें विशुद्ध करता है। अपने उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष, गुण के कारण तथा रक्त भ्रमण को उत्तेजित कर अंगों को शक्ति प्रदान करता है। जिससे अतिसार, संग्रहणी आदि नष्ट होते हैं। संग्रहणी, अर्श प्रवाहिका में दही या छाछ के साथ मूल त्वक् का चूर्ण दिया जाता है। विलम्ब प्रसूतियों में मूल चूर्ण को मधु के साथ सेवन कराने से सुखप्रसव होता है तथा जरायु (झेर) भी शीघ्र बाहर आती है। मक्कलशूल में भी कमी होती है।

वातकफ के रोगों में उत्तम है। प्रतिश्याय कफज कास में कफ की उत्पत्ति को कम तथा स्रोतों को शुद्ध कर पसीना लाकर और रक्ताभिसरण बढ़ा कर यह लाभ करता है। अधिक मात्रा में उपयोग करने से निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं। बाह्यलेपादि में व्रण उत्पन्न कर देता है जो कठिनाई से भरता है। अन्तः उपयोग में आमाशय-अन्त्र में दाह शोथ, वमन, विरेचन, मूत्र का अभाव नाड़ी अनियमित, अति पसीना, तथा शीतांगता उत्पन्न करती है। चिकित्सा में भी दूध का प्रयोग किया जाता है।

योग—(१) चित्रकादि बटी—दीपन, पाचन, अनुलोमन
(२) बृहन्नयिका चूर्ण—अतिसार, संग्रहणी-शामक।
(३) चित्रक हरीतकी—जीर्ण-प्रतिश्याय, विबन्ध-शामक।

---

1. Lead wort.
2. श्वेत चित्रक Plumbago Zeylanica, Linn.
3. रक्त चित्रक P. Rosea.
4. Plumbaginaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य—पुष्पों के वर्ण के अनुसार श्वेत रक्त-पीत तथा कृष्ण (नील) चित्रक—ये चार भेद बताये गये हैं। इनमें श्वेत तथा रक्त अधिक मिलते हैं। नील कहीं-कहीं मिलता है। पीला हमने अभी तक नहीं देखा। रक्त अधिक तीव्र है।

चांगेरी (दन्तशठा, क्षुद्राम्लिका)

परिचय—चार पत्तियों वाला क्षुद्र क्षुप
उ० स्था०—प्रायः सर्वत्र आर्द्र स्थानों पर
व्य० अ०—पत्र-पंचांग
पुष्प काल—सितम्बर-अक्टूबर
मात्रा—चूर्ण ३-६ माशा
रस—अम्ल-कषायानुरस
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
दोष—वातकफ नाशक
प्र० अ०—कला तथा पाचक अंग
वि० गु० क०—दीपन, अनुलोमन, ग्राही संकोचक।

नाम—(हि०) चांगेरी, चौपतिया, अमलोनी, खट्टी-तिपती, (म०) अंबुटी, भुईसर्पटी (ब०) आमरुल् (क०) पुल्लंपुरचि (ते०) पुल्लचिन्त (ता०) पुलियारिबीरै (अं०) इण्डियन सोरल्[1] (वा० ले०) ओग्जेलिस् कार्निकुलेटा[2], चांगेरी वर्ग[3]।

गुणा—उष्णाकिंचित् कषाया च चांगेरी चाग्निदीपनी। (सु० सू० ४६)
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नी साम्लावातकफे हिता। (सु० सू० ४६)

चांगेरी रस में खट्टी, कुछ कसैली, उष्ण वीर्य, कटु विपाकी अग्निदीपन, वातलंकफविकार तथा अतिसार, संग्रहणी और गुदभ्रंश में अति उत्तम है।

प्रयोग तथा प्रभाव—इसमें चांगेरी अम्ल[4] पाया जाता है। यह अग्नि को प्रदीप्त करती है पाचन को बढ़ाती है। ग्राही तथा संकोचक होने से आन्तों की कला की शिथिलता को नष्ट कर अतिसार, संग्रहणी तथा गुदभ्रंशशामक है। आमदोष का पाचन तथा स्रावों का शोषण होता है।

धतूरे के विष में चांगेरी का रस पिलाने से लाभ होता है। जिस शोथ में दाह तथा पीड़ा होती है उसमें पत्तों की पुल्टिस बनाकर लगाने से लाभ होता है। गुदभ्रंश (कांच निकलना) में भी वह पुल्टिस लाभ करती है। अन्तः प्रयोग के लिए 'चांगेरी घृत' दिया जाता है। मस्तिष्क पीड़ा में पत्र स्वरस सफेद, प्याज के रस में मिलाकर नस्य देते हैं तथा लेप करते हैं। विषूचिका में १ तोला चांगेरी पत्र १० दाने काली मिर्चों के साथ पीस कर पिलाते हैं। आमातिसार, उदरशूल, अन्तर्दाह में स्वरस या चूर्ण का सेवन कराया जाता है। दन्त रोगों तथा मसूढ़ों से रक्त आने पर स्वरस या काढ़े से कुल्ले कराते हैं। पित्त की तृषा में शर्बत बनाकर पिलाते हैं।

योग—चांगेरी घृत—गुदभ्रंश, योनिभ्रंश, संग्रहणी में अन्तः प्रयोग।

चुक्रा (रोचनी)

यह भी चांगेरी के समान खट्टी भाजी है। गुणों में भी समान है। दोनों पृथक् वनस्पतियाँ हैं। कई वैद्य इन्हें एक ही समझते है। यह ठीक नहीं है।

---

1. Indian Sorrel
2. Oxalis Corniculata Linn
3. Geraniaceae
4. Oxalic acid

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नाम—(हि० पं० मा०) चुका (ग०) चुको, खट्टी भाजी (म०) चाकवत (बं०) चूकापालडा (क०) हल्लिचकोत (तै०) चुक्किकूर आकू, (अं०) ब्लेडर डक,[1] (वा० ले०) रुमेक्स्-वेसिकेरिअस्[2], चुक्र वर्ग[3]।

गुण—चुक्रंस्यादम्लपत्रेतु लघूष्णंवातगुल्मनुत्।

रुचिकृद्दीपनं पथ्यमीषत् पित्तकरं मतम् (रा० नि०)।

चूका खट्टा, उष्ण, कटु, विपाकी, दीपन, वातकफनाशक तथा कुछ पित्तकारक है।

प्रयोग—वमन में चूके के रस में नमक डाल कर पिलाते हैं। यह आमाशयदाह, आमदोष, अग्निमान्ध में उत्तम है। बिच्छू के काटे पर पत्तियों का लेप करते हैं तथा रोगी को पिलाते हैं। श्वेत तथा रक्तप्रदर में मूल गुणकारी है। बीजों (तुख्मे हम्माज-यूनानी नाम) का प्रयोग पित को शान्त करने, हृदयस्पन्दन, कामला, अन्त्रव्रण, अतिसार, शमन के लिए ईसबगोल के साथ पिलाते हैं। बीज मात्रा ३-६ माशा।

चन्द्रशूरम् (रक्तराजी, वासपुष्पा)

नाम—(हि०) हालों, चन्सूर, हालिम (मा०) असालूं (गु०) अशेलियो, (म०) अहालीव (क०) अल्लिबीज (तै०) अटल बिट्टल (ता०) अलिबिरै (अं०) क्रेस, कामन क्रेस,[4] वाटर क्रेस[5] (वा० ले०) लेपेडियम सेटिवम्,[6] छत्रक वर्ग।[7]

परिचय—यह छत्रक या राजिका की जाति की वनस्पति है। प्रायः सर्वत्र बगीचों में लगाई जाती है तथा स्वयं जंगलों में उगती है। उपयोगी अंग पंचांग, विशेषकर बीज। जिनमें पिच्छिलता पाई जाती है। एक उडनशील तैल के कारण यह सुगन्धित होता है।

गुण—चन्द्रशूरं हितं हिक्कावात श्लेष्मातिसारणम्।

असृग्वातगदद्वेषी बलपुष्टि विवर्धनम्॥ (भाव)

चन्द्रशूर कटु विपाकी, वातकफ नाशक, पित्तवर्धक, शोथ शामक, बल, पुष्टिवर्धक वाजीकरण, अतिसार, हिक्का, रक्तप्रदर, शामक, दुग्ध वर्धक-आर्तवजनक, क्षुधावर्धक, कफनिष्कासक, तथा वात अनुलोमक है।

प्रयोग—सरसों या राई के स्थान पर इनका प्रयोग हो सकता है। चन्द्रशूर, सरसों, रसौंत, देवदार, सौफ-पुनर्नवा स्वरस में भावना देकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना गरम पानी से एक गोली देने से वायु अनुलोमन होती है। तथा उदर कृमि नष्ट होते हैं एवं उनकी उत्पत्ति रुक जाती है। दीपन-पाचन तथा उष्ण होने से अग्निमान्द्यादि शामक हिक्का (हिचकी) में चन्द्रशूर बीज १ तोला, भारंगी १ तोला १८ तोला जल में शीतलकषाय बनाकर देने से लाभ होता है। यकृत्प्लीहा के रोगों में उत्तम है। सन्धिवात, कमर दर्द, वात वेदनाओं में इसकी खीर बनाकर देने से लाभ होता है। शोथ में गुग्गुलु-मायाफल के साथ मिलाकर करते हैं। केशरादि के साथ वाजीकरणार्थ, मुलैठी के साथ कास-श्वास में, कफ निकालने तथा उसकी दुर्गन्धि नष्ट करने, अतिसार, संग्रहणी, रुधिर विकारों, आमाशयक्षोभ, अन्त्रशोथ में २½—७½ माशा तक की मात्रा में तथा दूध के साथ स्त्रियों को दुग्ध बढ़ाने के लिए देते है। गर्भिणियों को नहीं देना चाहिए।

जीरक द्वयम् (जरण, अजाजिः)

परिचय—सुप्रसिद्ध क्षुप

उ० स्थ०—शीतकाल में प्रायः सर्वत्र बोया जाता है। हिमालय, ईरान तथा पूर्वी यूरोप तथा बंगाल।

---

1. Bladder Dock.
2. Rumex Vesicarius, Linn.
3. Polygonaceae.
4. Cress Common Cress.
5. Lepideum Sate'Vem Linn
6. Water Cress.
7. Crucifereae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

व्य० अ०—बीज-तैल

मात्रा—३-६ मात्रा

रस—कटु

वीर्य-उष्ण,

विपाक-कटु

दोष—कफवातशामक, पित्तलम्

प्र० अ०—पाचन संस्थान

वि० गु० क०—दीपन अनुलोमन, स्तन्यजन, योनिशोधक

वक्तव्य—जीरों के तीन भेद हैं :—(१) सफेद जीरा (२) काला जीरा (३) विलायती जीरा—यह कुछ काला होता है तथा काले जीरो से बड़ा और कम सुगन्धित। इसे स्थूलजीरक भी कहा जाता है। इनके अतिरिक्त कालीजीरी को अरण्यजीरक तथा कलौंजी को 'स्थूल जीरक' कहते हैं। इनका वर्णन गुण समानता होने से एक साथ किया गया है। काला जीरा अधिक गरम होता है। जहाँ केवल जीरा लिखा हो वहाँ सफेद जीरा ही व्यवहार करना चाहिए।

नाम—कृष्णजीरक, कृष्णाजाजी (हि०) कालाजीरा, स्याह जीरा (बं०) शाजीरा (गु०) शहजीरुं, (मं०) शहाजिरें (अं०) कैरावे (वा० ले०) केरम केरुई, यह कश्मीर, अफगानिस्थान, ईरान में उत्पन्न होता है। बीज छोटा तथा अत्यन्त सुगन्धित। पुष्पकाल जून। इसे ही कारवी या सुषवी भी कहते हैं।

श्वेतजीरक (शुक्लाजाजी) (हि०) सफेद जीरा, जीरा, (पं०) चिट्टाजीरा (म०) जिरें, (गु०), (बं०) जीरा, (अं०) क्युमिन[3] (वा० ले०) क्युमिनम् साईमिनम्,[4] छत्रक[5] वर्ग। यह सर्वत्र बोया जाता है।

गुण—तीक्ष्णोष्णं कटुकं पाके रुच्चे पित्ताग्निवर्धनम।

कटुश्लेष्मानिलहरं गन्धाढ्यं जीरकद्वयम्। (सु० सू० ४६)

गुल्माध्मानातिसारघ्नं ग्रहणी क्रिमिहृत्परम् (धन्वन्तरि)

दोनों जीरे, रस-विपाक में कटु, उष्ण वीर्य, तीक्ष्ण कफवात तथा दुर्गन्धिहर, दीपन-पाचन, तीक्ष्ण पित्त-वात-कफ तथा दुर्गन्धिहर दीपन-पाचन, तीक्ष्ण पित्त तथा अग्निवर्धक, रूक्ष, अतिसार, गुल्म, ग्रहणी, उदरकृमि तथा आध्मान नाशक है। काला जीरा शोथशामक, जीर्णज्वरघ्न तथा कुछ ग्राही है।

प्रयोग तथा प्रभाव—तीक्ष्ण और रूक्ष होने के कारण स्रोतों का शोधक, कफ (पिच्छिलता) तथा द्रवों का शोधक होने से समस्त स्रोतों को शुद्ध करता है जिनसे उनका कार्य उत्तम होता है। आन्त्रो आमाशय में अग्नि को दीप्त करता है। पाचक रसों का स्राव बढ़ाता है। उष्ण होने से वायुलोमन भी करता है। एक सुगन्धित उड़नशील तैल के कारण यह रुचिकारक भूख बढ़ाने वाला है। तथा ग्राही और रूक्ष होने से मल को बाँध कर लाता है, उसके द्रव का शोषण करता है। अतः अरुचि-अग्निमान्द्य, वमन, अतिसार, संग्रहणी आध्मान नाशक है। कालाजीरा जीर्णज्वर में अग्निदीपन, क्षुधावर्धन तथा पाचन के लिए दिया जाता है। गर्भिणी के वमन तथा पाचन के लिए दिया जाता है। गर्भिणी के वमन तथा जी मचलाने में निम्बु रस में जीरा भिगो कर कुछ नमक मिला चूर्ण या चटनी बना कर लेने से अतिगुणकारक है। वमन हिचकी में जीरे को घी में चुपड़-धूम्र लेने (सिगरेटवत्) से वह बन्द होती है। ज्वरातिसार-मूत्रकृच्छ्रशामक है। पामा में जीरा सफेद ४ तोला, सिन्दूर २ तोले, कड़ुवा तैल ३२ तोले मिलाकर लगाने से, मन्दाग्नि, विषमज्वर, वातरोग में गुड के साथ सेवन करने से तथा कुत्ते के विष में जीरा, काली मिर्च १५ नग पीसकर पिलाने से, मकड़ी के विष में सौंठ-जीरा सिरके में पीसकर लेप करने से, लाभ होता है।

---

1. Caraway.
2. Carum Carui, Linn
3. Cumin seed
4. Umbellifereae.
5. Cuminum Cyminum Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उदरशूलकारक रेचक द्रव्यों में काला जीरा डाला जाता है । इसका काढ़ा उदरकृमिनाशक और शर्बत मूत्रल है। अर्श में इसकी पुल्टिस लगाई जाती है तथा गर्भाशय पीड़ा योनिशूल में इसका काढ़ा पिलाया जाता है तथा इसके काढ़े से सेक किया जाता है। धात्री को सफेद जीरा देने से दुग्ध बढ़ता है। प्रसवानन्तर यह योनिशोधन तथा उदर को छोटा करता है। हरताल विष में जीरा-शक्कर-मिला कर सात दिन तक पीने से लाभ होता है।

योग—(१) जीरकारिष्ट-संग्रहणी-अग्निमान्द्य-प्रसवानन्तर योनिशोधनार्थ।
(२) बालवटी-बच्चों के रोगों में।
(३) जीरकपाक—पौष्टिक, अर्श, जीर्णज्वर, प्रदरनाशक

तमालपत्रम् (रोमश, तामसम्)

परिचय—दालचीनी के समान वृक्ष

उ० स्थ०—५-६ हजार फुट की ऊँचाई पर हिमालय बर्मा आदि में

व्य० अ०—पत्र

पुष्पकाल—माघ, फाल्गुन, चैत, वैशाख

मात्रा—२-४ माशा

रस—कटु, मधुर

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—वातकफशामक, कफ-पित्तवर्धक

प्र० अ०—पाचक अंग

वि० गु० क०—अनुलोमन, दीपन, पाचन

नाम—(हि० पं० बं०) तेजपाल, (म० गू०) तमाल पत्र, (क०) लवंगपत्ते, (तै०) अडविलंगापट्ट, (ता०) काट्टुकुर्नाप्, (अं०) केशिया सिन्नामोन,[1] (वा० ले०) सिनेमोमम् तमाल, सि इनर्स्[2], कर्पूर वर्गः।

गुणा—पत्रकं मधुरं किंचित्तीक्ष्णोष्णं पित्तलं लघुः। निहन्तिकफवातार्शोहृल्लासरुचि पीनसान् ॥ (भा०)

तेजपात-मधुर कुछ कटु, उष्ण तीक्ष्ण लघु, पित्तवर्धक, अर्श, (रक्तार्श नहीं) अरुचि, पीनस (पुराना-जुकाम) तथा जी मचलाना को दूर करता है।

प्रयोग तथा प्रभाव—यह उत्तम अनुलोमन, तथा दीपन-पाचन और सुगन्धि है। अतः आमाशय निर्बलता पाचन दौर्बल्य, उदर तथा अन्त्रशूल शामक है। तीक्ष्ण उष्ण होने के कारण कफ या वात के विकारों विशेषकर प्रतिश्याय पीनस, एवं रजः कृच्छ्रता, गर्भाशयशूल शामक है। बच्चों के रोगों में अति उत्तम है। क्वाथ से पसीना आता है। तथा मूत्र भी साफ होता है। हृदय दौर्बल्यादि का नाशक है। लवंग या दालचीनी के समान इसके गुण समझे। खांसी-प्रतिश्याय तथा श्वास नलिका के रोगों में तेजपात, पीपली को मधु के साथ या अदरक रस-मधु के साथ चटाते हैं। इसमें से भी तैल निकलता है। जो दालचीनी के समान होता है। यह दालचीनी की जाति के अन्य वृक्ष के पत्ते हैं किन्तु दालचीनी नहीं।

योग—यह त्रिजातक तथा चतुर्जातक में डाला जाता है। अन्य अनेक योगों में भी डालते हैं।

वराङ्गपत्रकैलाभिस्त्रिसुगन्धि त्रिजातकम्।
त्रिगन्धकं चतुर्जातं चातुर्जातं सकेशरम् ॥

गुण—त्रिगन्धकं चतुर्जातं तीक्ष्णोष्णं रोचनं लघु।
रूक्षं पित्ताग्नि कृट्वर्ण्य-कफवातविषापहम् ॥ (कै०)

---

1. Cassia Cinnamon. 2. Cinnamomum Tamala, C. Iners, Reiview.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दालचीनी-तेजपत्र, इलायची-तीनों को एकत्र करने से त्रिजातक, त्रिसुगन्धि, तथा नागकेसर मिलाने से चतुर्जातक बनता है।

यह दोनों उष्ण, तीक्ष्ण, रुचिकारक, लघु, रूक्ष-अग्निदीपन-पाचन, वर्ण्य तथा कफ वात विष नाशक है।

धान्यकम् (कुस्तुम्बरो, छत्रा, वितुन्नकम्)

परिचय—सुपरिचित क्षुप, सर्वत्र उपलब्ध

व्य० अ०—पचांग-विशेषतः बीज, सत्व

मात्रा—४-८ माशा चूर्ण

विपाक—मधुर

रस—कटु-कषाय तिक्त

वीर्य—उष्ण

दोष—त्रिदोषशामक

प्र० अ०—पाचन संस्थान

वि० गु० क०—पाचक-अनुलोमन, मूत्रल, वमन, तृष्णा, दाह, उदर-कृमिहरम्।

नाम—(हि० बं० प०) धनिया (म०) धणे (गु०) धाणा-कोथमीर, (क०) कोत्तुंबरि, हवीजा (तै० ता०) कोटमल्लि, (अं०) कोरिएण्ड्रम[1] (वा० ले०) कोरिएण्ड्रम[2] सटाईवम, छत्रक वर्ग[3]।

गुण—धान्यकन्तुवरंस्निग्धमवृष्यं मूत्रलं लघु।
तिक्तं कटूष्णवीर्यंच दीपनं पाचनं स्मृतम्॥
ज्वरघ्नं रोचने ग्राही स्वादुपाक त्रिदोषनुत्।
तृष्णा दाह वमिश्वास कासामार्शः कृमिप्रणुत्।
आर्द्रं तु तद् गुणं स्वादु विशेषात्पित्तनाशितत्॥ (भाव)

धनिया तिक्त, कटु, कषाय रसवाला, स्निग्ध, उष्णवीर्य, मधुर विपाकी, त्रिदोषहर, मूत्रल, लघु, अवृष्य, दीपन-पाचन, रुचिकारक ज्वर, तृष्णा, वमन, दाह, आमदोष, अर्श, उदर कृमि नाशक है। हरा या ताजा धनिया विशेषकर पित्तशामक होता है।

प्रयोग तथा प्रभाव—धनिये में एक उड़नशील तैल होता है। जिसके कारण यह सुगन्धित, अनुलोमक तथा शूल-शामक है। जीरकादि के समान इसकी क्रिया होती है। यह विशेषकर मूत्रल है। सेक करने से यह ग्राही हो जाता है।

औषधियों में सुगन्धार्थ तथा मुखादि दुर्गन्धिनाश के लिए इसे सेवन किया जाता है। नेत्राभिष्यन्द में क्वाथ से नेत्र धोए जाते हैं। बच्चों के मुख के सफेद छाले धान्यक फाण्ट से कुल्ला करने से लाभ होता है। भाल्लानतक तैल से शोथ होने पर ताजे पत्तों का रस लगाए, रक्तार्श में धनियाश्रृतदुग्ध, उदरशूल में धान्यहिम लाभकर है। पित्तके रोगों में शीतपित्त पाण्डु-कामला, चक्कर आना, मस्तक पीड़ा में धनिया तथा आमला का हिम कषाय पीने से लाभ होता है। गले की शोथ में धनिया चबाया जाता है। यह उत्तम है। धनिया-नेत्रवाला-पाठा का काढ़ा या शीतकषाय अतिसार-दाह, पित्त ज्वर, तृष्ण, अन्तर्दाहशामक है। गर्भिणी की वमन बन्द करने के लिए धनिया मिश्री तथा चावलों का पानी मिलाकर पिलाते हैं। बच्चों के कफज श्वास-कास में भी लाभकारी है।

धनिये का अर्क भी दीपन पाचन और अनुलोमन, वमन, आध्मान, उदरशूलनाशक है। तैल के भी यही गुण है। यह मैथुनशक्ति को कम करता है। हरा धनियाँ पित्त आमाशय शोथ तथा तृष्णाशामक है।

---

1. Coriandrum.
2. Coriandrum Sativum, Linn.
3. Umbellifereae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

योग--(१) धान्यपंचक क्वाथ ज्वर, आमदोष तथा दाह-तृष्णाशामक है।
(२) चन्द्रामृतरस--मात्रा २-४ रत्ती, कासहर।

नागरंगम् (ऐरावतः त्वक्सुगन्धः)

नाम--(हि० गु० म०) नारंगी-सन्तरा, (व०) कमला-नेबु, नारंगी, (क०) कित्तले (ते०) गजनिम्भ (ता०) किचिली (अं०) आरेञ्ज[1] (वा० ले०) साईट्रस् औरेन्शियम्,[2] जम्बीर वर्ग[3]

गुण--नारंगमुष्णमम्लंच गुरु वातहरं सरम्।
कफपित्तास्र हृद्यंतु स्वाद्वम्लंविशदं गुरु।
सुगन्धि दुर्जरं रुच्यं रुच्यं मारुतनाशनम्॥ (कै०)

नारंगी--मीठी खट्टी (मीठी शीतल, खट्टी उष्ण) गुरु वातनाशक, मृदुरेचक, कफ, पित्त, रक्त-स्रावशामक, विशद, गुरु, दुर्जर (अधिक मात्रा में) रुचिकारक और हृद्य है। रस भेदों में गुणों में भेद हो जाता है।

प्रयोग तथा प्रभाव--नारंगी का मीठा रस पित्तशामक, वमन, प्यास रक्त की उष्णता का नाशक, मूत्रल और पौष्टिक है। ज्वर अतिसारादि में रस लाभदायक है। नारंगी का शर्बत भी यही गुण करता है।

फल की छाल उष्ण तथा कड़वी है। यह उत्तम दीपन है। मधु के साथ छिलके का चूर्ण चटाने से वमन बन्द होती है। ताजे छिलके को मुँह पर घिसने से मुखदूषिका शान्त होती हैं। अपचन, अग्निमान्द्य, ज्वरों के बाद की शिथिलता में लाभ करती है। यह क्षुधावर्धक तथा पाचक रसों के स्राव को बढ़ाते हैं। किन्तु छिलकों का प्रयोग वेदना, वमन, आमाशय शोथादि युक्त आमाशय के रोगों में नहीं करना चाहिए। चुरुवे नामक गुदावासी कृमियों को निकालने के लिए छाल के काढ़े की वस्ति देते है।

पिप्पली (कणा, कृष्णा, मागधी)

परिचय--पिप्पली का मध्यम प्रमाण वृक्ष-लता हिमालय के निचले भागों में तथा दक्षिण पश्चिम भारत में पाया जाता है। फल का व्यवहार होता है।

मात्रा--५-१० रत्ती तक

रस--कटु,

वीर्य--अनुष्ण

विपाक--मधुर

दोष--(ताजी) कफवर्धक, (सूखी) वातकफशामक, पित्तविरोधिनी।

वि० गु० क०--वातानुलोमक, दीपन, पाचन, स्वेदल, जीर्णज्वरहर

नाम--(हि० मा०) पीपर, पिप्पली, (पं०) मर्धा (म०) पिपली (ब०) पिपुल (गु०) लिंडी पिपर (क०) हिप्पलीबल्लि, (तै०) पिप्पलु, (ता०) तिप्पली, (अं०) लोंग पेपर[4] (वा० ले०) पाइपर लोंगम्,[5] पिप्पली वर्ग।[6]

इसकी ही एक जाति सिंगापुर-मलाया से आती है। किन्तु उसे बड़ी होने की वजह से 'गज पिप्पली' कहा जाता है। किन्तु उसका प्रयोग कम होता है। गुणों में भी कुछ भिन्न होती है। हस्ति कृष्णा कटुः पाके वीर्योष्णा दीपनी कटुः। वात श्लेष्म कृमिश्वास कण्ठ रोगातिसारजित्॥ (कै०)

गुण--तेषां गुर्वी स्वादु शीतापिप्पल्यार्द्राकफापहा।
शुष्का कफानिलघ्नी सा वृष्या पित्ताविरोधिनी॥ (सु०सू० ४६)
अनुष्णा पाचनी हन्ति वातश्लेष्मोदरज्वरान्।
कुष्ठ प्रमेह गुल्मार्शाः प्लीहा शूलाममारुतान॥ (भाव)

---

1. Orange.
2. Citrus aurantium, Linn,
3. Aurantiaceae.
4. Long Paper.
5. Piper longum.
6. Piperaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ताजी (हरी) पिप्पली-मधुर-कटु रस वाली शीतल, कफवर्धक है। सूखी पिप्पली कफवातनाशक, वृष्य तथा पित्त की अविरोधी है अर्थात पित्त को नहीं बढ़ाती। यह समशीतोष्ण, कटु-स्निग्ध, लघु, पाचन, आमदोष तथा वायु-नाशक है।

प्रयोग तथा प्रभाव--पाचन अंगों पर, गर्भाशय तथा फुप्फुसों पर इसकी विशेष क्रिया होती है। इससे कला का कफ नष्ट होता है। अतः स्रोत शुद्ध होते हैं। पाचक रसों का स्राव अच्छा होता है। जिससे पाचन क्रिया सुधरती है। ज्वरों में अच्छा होता है। ताप को कम करता है। फुप्फुसों पर इसकी विशेष क्रिया होती है। इससे कला का फुप्फुसों में भी कफ की उत्पत्ति को कम करती है। गर्भाशय संकोचक एवं शोधक है। अग्निमान्द्य, उदरशूल-आनाह में तथा पाचन शक्ति बढ़ाने के लिए इसे दिया जाता है। कफ तथा गले का भारीपन हिचकी निद्रानाश, कास-श्वास में पिप्पली चूर्ण मधु के साथ चटाना चाहिए। आमवात, वातरक्त, गृध्रसी एवं वातकफ की अन्यव्याधियों में जीर्ण ज्वर विषमज्वरों, यकृत् प्लीहा-वृद्धि शामक है। वर्धमान पिप्पली योग इनमें अतिलाभ करता है। इसकी प्रयोग विधि निम्न लिखित है।

रोगी की शक्ति के अनुसार ४-३ पिप्पली को आधा पाव जल में उबाले। जल भाग सूख जाने पर पीपलियों को दूध में उबाले। जल भाग सूख जाने पर पीपलियों को दूध में से निकालकर रोगी को खिला उपर से दूध पिला दें। इस प्रकार १ या ३ पिप्पली प्रति दिन बढ़ाते हुए ६० तक ले जावें। पुनः उसी प्रकार घटा कर मूल संख्या पर जाये। इसका सेवन करते समय दूध-घी का प्रभूत प्रयोग करें। दूध पीने से किसी-किसी को मल गाढ़ा गाँठदार आता है। अतः बीच-बीच से उसे स्निग्ध मृदुरेचक देते हैं।

मूर्च्छाहर नस्यों में, रतौंधी में अंजन के लिए, वातरोगों में पिप्पली मूल को मधु के साथ, प्रतिश्याय में इसका काढ़ा मधु से, उदरशूल में काले नमक के साथ, जीर्णज्वरों तथा उसके पश्चात् के दाह ताप को दूर करने के लिए मधु घृत के साथ पिप्पली चूर्ण का सेवन लाभ करता है। मस्तक पीड़ा, हिचकी में गुड़ के साथ गरम पानी के अनुपान से लाभ होता है। उदर रोगों में थोहर स्नुही के दूध की २१ भावना देकर १-२ पिप्पली खाने से लाभ होता है। गुल्म-प्लीहा-मन्दाग्नि में पीपली में पलाशखार की भावना देकर सेवन करना चाहिए। अम्लपित्त में पिप्पली घृत, पिप्पली-वचा शिरःशूल, स्वर भेद में गोमूत्र तथा एरण्ड तैल में पीपल का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से गृध्रसी में लाभ होता है।

योग—(१) सितोपलादिचूर्ण–श्वास–कास, अग्निमान्द्य–प्रसूति में
(२) पिप्पली घृत आसव–जीर्णज्वरों, अग्निमान्द्य, जीर्णज्वरों-प्रसूति में
(३) आनन्दभैरव रस–१-२ रत्ती ज्वरातिसार में
(४) पिप्पलीघृत–अम्लपित्त, जीर्णज्वरशामक
(५) त्रिभुवनकीर्तिरस—१-२ रत्ती, सन्निपात में

पिप्पलीमूल 'ग्रन्थिकं' कोलमूलम्

परिचय—पीपलामूल-सिंगापुर-मलायादि देशों से आता है। दक्षिण भारत में भी उत्पन्न होती है। यह दोनों ही पिप्पलियों (छोटी-बड़ी) की मूल या काण्ड (तना) है।

गुण—दीपनं पिप्पलोमूलं कटूष्णं पाचनं लघु रूक्षं पित्तकरं भेदि कफवातोदरापहम्। आनाह प्लीहागुल्मघ्नं क्रमिश्वास क्षयापहम्॥ (भाव)

पीपलामूल कटु, उष्णवीर्य कटु विपाकी दीपन–पाचन, लघु, रूक्ष, पित्तकारक, भेदक-कफवातरोग, उदररोग आनाह, प्लीहा, गुल्म, क्रमि, श्वास तथा क्षय रोग नाशक है।

प्रयोग—पिप्पली की अपेक्षा यह अधिक वीर्यवान और तीक्ष्ण है। प्रसव के पश्चात् जरायु निकालने के लिए इसका काढ़ा पिलाते हैं। मासिक धर्म की विकृति में तथा उससे उत्पन्न कासादि में एवं वात-आमवातादि में, कफज फुप्फुस रोगों में शहद के साथ तथा पुरानी तथा नष्ट हुई निद्रा में गुड़ के साथ पिप्पली मूल सेवन से लाभ होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पलाण्डु (यवनेष्ट)

परिचय—सुपरिचित कन्द। सर्वत्र पाया जाता है। वर्ण के अनुसार सफेद लाल दो भेद हैं वन्य पलाण्डु (कोलकन्द) इसकी अपेक्षा तीक्ष्ण और उग्र होता है।

रस—कटु रस

वीर्य—समशीतोष्ण

विपाक—मधुर

दोष—वातशामक, स्वल्पपित्तवर्धक किंचित् कफह्रासक

वि० गु० क०—अनुलोमन, मूत्रल, कफनिष्कासक।

नाम—(हि०) प्याज (पं०) गंडा (मा०म०) कान्दा (बं०) पेयांज, (गु०) कान्दो, डुंगली, डुंगरी (क०) नीरुल्लि, (ते०) सरखुल्लि, (ता०) वेंगायम् (वा०ले०) एलिअम सेपा[1] पलाण्डु वर्ग[2] (अं०) ओनियन[3]।

गुण—नात्युष्णवीर्यो निलहा कटुश्च तीक्ष्णो गुरुर्नातिकफावहश्च। बलावह पित्तकारो थर्किंचित् पलाण्डुरग्निं परिवर्धयेत् (सु० सू० ४६)

प्याज—कटुरस, अनुष्ण मधुर विपाकी, तीक्ष्ण स्वल्प कफ, पित्तवर्धक, बलकारक, वाजीकरण, रोचक, अग्नि-दीपक, वातशामक, कफनिष्कासक, लेपन, मूत्र-आर्तवजनन तथा शोथशामक व्रण-शोथ पाचक है।

प्रयोग तथा प्रभाव—प्याज के कन्द में एक कटु-तीक्ष्ण उड़ने वाला तेल पाया जाता है। यह इसके गुण का कारण है। कास श्वासादि में यह फुप्फुसों से कफ छुड़ाकर (तीक्ष्ण गुण के कारण) पतलाकर बाहर निकालता है। सांस की कठिनाई में कम होती है तथा नवीन कफ की उत्पत्ति रुकती है। त्वचा द्वारा बाहर निकलते समय यह तैल त्वचा की क्रिया सुधारता है। अंत्रों में वायु का अनुलोमन तथा सड़ांध की उत्पत्ति कम करके आध्मानादि नष्ट करती है।

बाह्य प्रयोग में प्याज का उपनाह व्रण-शोथ गाँठों की शोथादि पर बंधते हैं। जिससे वह शोथ या तो दब जाती है या पक जाती है। मूर्च्छा अपस्मारादि में प्याज का रस सूंघने से मूर्च्छा दूर होती है। किलास-झांई आदि में प्याज का रस गरम डालते है (कान की फुन्सी तथा दर्द में प्याज का रस गरम कर डालते है। किलास झांई आदि में अन्य औषध द्रव्यों के साथ मिलाकर लेप लगाया जाता है।

अन्तः प्रयोग में—हैजे में प्याज का रस सिरके या चूने के पानी के साथ मिलाकर दिया जाता है। इससे वमन तथा अतिसार दोनों ही शान्त हो जाते हैं।

अग्निमान्द्य—आध्मानादि में प्याज आर्द्रक का भोजन से पहले सेवन करना चाहिए। रक्तार्श में आधा पाव रस में ५ तोले शक्कर मिला कर पिलाया जाता है। वात रोगों में प्याज का सेवन उत्तम है। लुओं या गरमी का असर दूर करने के लिए प्याज का रस सारे शरीर पर मलें। इसको खाकर सयानादि करने से लुएं नहीं सताती तथा हैजे की संभावना नहीं रहती। कान खजूरे के विष में प्याज तथा लशुन पीसकर लगाते हैं। ज्वर, जलोदर, प्रतिश्याय तथा पुरानी खांसी, संग्रहणी में उत्तम है। कांदा तथा कलौंजी समभाग-चिलम में भरकर पीने से मसूड़ों की सूजन तथा दन्त पीड़ा मिटती है। प्याज के बीजों को कलौंजी कहा जाता है। ये उत्तम लेखन-वाजीकरण तथा रजः स्रावक है। कटिशूल में एवं अन्य वातव्याधियों, पाचन के रोगों में, प्रयुक्त होते हैं। सिरका में पीसकर दाद तथा बवासीर के मस्सों पर लेप लगाने से लाभ करते हैं। बाजीकरणार्थ पलाण्डु, स्वरस समभागमधु में मिलाकर सेवन करना चाहिए।

कृष्णमरिचम्, ऊषणम् बल्लीजम् (मरिचद्वयम्)

परिचय—मरिच की लता दक्षिण तथा आसाम में होती है। व्यवहार्य अंग फल है। पूरी पकने पर तीक्ष्णता

---

1. Allium Cepa.
2. Liliaceae.
3. Onion.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कम हो जाती है। अतः अधपकियों को सुखाकर या मन्दाग्नि पर उष्णकर सुखा लेते हैं। इनको जल में भिगोकर ऊपर का छिलका उतार करके सफेद मिर्च के नाम से बेचते हैं।

रस—(सूखी) कटु

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

रस—आर्द्र (गीली) कटु रस

वीर्य—नातिउष्ण

विपाक—मधुर

दोष—सूखी—वातकफ शामक, पित्तवर्द्धक,

आर्द्र—कफप्रसेकि (कफ को बहानेवाली)

वि० गु० क०—तीक्ष्ण, स्वेदल, अनुलोमक, स्रोतशोधक, ज्वरघ्न

मात्रा—४ रत्ती से १ माशा तक

नाम—(हि० पं० मा० बं०) काली मिर्च, गोलमिर्च, (म०) मिरीं (गु०) कालामरीं (क०) करिमेणसु, (तै०) मरियालु, (ता०) मोलहु (अं०) ब्लैकपेपर,[1] (वा०ले०) पाइपरनाइग्रम[2], मरिच वर्ग।

गुण—स्वादुपाक्यार्द्रमरिचं गुरु श्लेष्मप्रसेकिच।
कटूष्णं लघु तच्छुष्कंमवृष्यं कफवातजित्॥
नात्युष्णं नातिशीतं च वीर्यतो मरिचं सितम्।
गुणवन्मरिचेभ्यश्च चक्षुष्यं च विशेषतः॥ सु०सू०

मरिच (ताजी) कटुरस वाली, साधारण उष्ण, मधुर विपाकी (अतः पित्तवर्धक नहीं, कफ को पतलाकर बहाने वाली, गुरु तीक्ष्ण होती है। सूखी मिर्च—कटु, गरम, कटु गुरु तीक्ष्ण होती है। सूखी मिर्च—कटु, गरम, कटु विपाकी, कफ-वातशामक, अवृष्य, रुचिकारक, उदरकृमिहर है। सफेद मरिच काली से यद्यपि कम उष्ण होती है, तथापि उससे अधिक गुण कारक एवं चक्षुष्य है।

प्रयोग तथा प्रभाव—मरिच में राल सदृश स्थिर तेल तथा दूसरा उड़नशील तेल पाया जाता है। काले भाग में यह अधिक होता है। तीक्ष्णता का कारण यही दो तैल हैं। अतः अधिक श्वेत मरिच कम तीक्ष्ण होती है।

कटु, तीक्ष्ण, उष्ण होने से स्रोतों को शोधक कला का स्रोतों के उपलेप (मैल, जो स्राव को रोकता है) को नष्ट करने वाली, कला की उत्तेजक, वायु अनुलोमन आर्त्तवजनन कफघ्न तथा यकृत् बलवर्धक है। कफ के रोगों में प्रतिश्यायादि तथा गले के रोगों में काली मिर्च का सेवन घृत या गरम जल के साथ लाभ करता है। कृमिहर तथा तीक्ष्ण होने से मंजनों में डाले जाते हैं। पाचन सम्बन्धी रोगों में अतिलाभदायक है। शीतज्वरों (मलेरिया) में मरिच को अन्य औषध के साथ मिला कर ज्वर आने से पूर्व खिलाई जाती है। अंगशून्यता तथा शोथ में कालीमिर्च का लेप करते हैं। ज्वरों के पश्चात् होने वाली निर्बलता मिटाने के लिए, अर्श में यह बहुत उपयोगी है। कफज शिरःशूल में इसकी नस्य देते हैं। विषूचिका (कालेरा) के वमन आदि बन्द हो जाने पर अफारा हो जाने पर कालीमिर्च का अष्टमांश शेष काढ़ा लाभ करता है। मन्दाग्नि में हींग, कालीमिर्च, कपूर की गोली दी जाती है। आधा शीशी में घी में घिसकर नस्य देते हैं। स्वास-कास में मधु-शर्करा के साथ तथा अम्लपित्त में गोदन्ती के साथ सेवन करने से लाभ करती है।

योग—(१) मरिचादिवटी—कफज कास तथा प्रतिश्याय, स्वरभेदशामक।
(२) मरिचादि तैल—त्वचा रोगों में अभ्यंगार्थ।

---

1. Black Piper. 2. Piper Nigrum, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मरिचम् (कटुवीरा, पित्तकारिणी)

नाम—(हि०) लाल मिर्चा (ब०) लंकामरिच, (गु०) मरचां, (अं०) रेड चिलीज[1] (वा० ले०) केप्सिकम्[2] फ्रूटेसेन्स कंटकारी वर्ग। (क०) मेणसिनकायी (तै०) गोल्कोडां (ता०) मोलधाय।

प्रयोग तथा गुण—लाल मिर्च सर्वत्र पायी जाती है। देशभेद से अनेक प्रकार की है। पूर्वकाल में इनका प्रयोग नहीं होता था। बाह्य प्रयोग में शोथ विलयन, क्षोभकारक है। अतिशय कटु, उष्ण तथा कटु विपाकी और पित्तवर्धक हैं। वातकफशामक हैं। दीपन–पाचन तथा हृदयोत्तेजक हैं। वृश्चिक, कुत्ते आदि के दष्टस्थान पर इनका लेप करते हैं। तीव्र मुखपाक में १ तोले मरिच को तीनपाव जल में उबालकर, शीत हो जाने पर कुल्ले करने चाहिए। गले तथा स्वर भेद में भी लाभ होता है। विषूचिका में लालमिरच, कर्पूर, भुनी हींग की गोलियाँ लाभ करती हैं। अग्निनाशक है। इनका अतियोग संक्षोभकारक तथा अर्श उत्पादक है।

मेथिकाद्वयम् (मेथिका, वनमेथिका)

नाम—(हि० पं० म० बं० गु०) मेथी (क०) मेंत्य, (तै०) मेंतुलु (ता०) बेन्दियम् (अं० फेनुग्रीक[3] (वा० ले०) ट्राईगोनेला फिनिकम्-ग्रिकम्[4] अपराजिता वर्ग[5]। (वनमेथी) डेस्मौडियम ट्राईफ्लोरम्[6]।

गुण—मेथिका कटुरुष्णाच रक्तपित्तप्रकोपनी। अरोचकहरा दीप्तिकरी वातप्रणाशिनी। (घ० नि०) मेथी कुछ कड़वी, उष्ण वीर्य, कटु विपाकी, अग्निमान्द्य, अग्निदीपन, रक्तपित्त प्रकोपक, वातकफशामक तथा ज्वरघ्न है।

प्रयोग तथा प्रभाव—मेथी सुपरिचित क्षुप है। पत्र शाक के तथा बीज औषध के काम आते हैं। बीजों की मात्रा ३-६ माशा तक है। बीजों में कुछ कषायद्रव्य होता है। बीज वातानुलोमन, दीपन, पाचन, वाजीकर, नाड़ी, आमाशय, गर्भाशय उत्तेजक है। कटिशूल, योनिशूल, गर्भाशयशूल, आमवातशामक तथा प्रसव के पश्चात् योनिशोधनार्थ उत्तम है।

इन्हें पाचन सम्बन्धी विकारों, अतिसार-प्रवाहिका, मदाग्नि में देते हैं। इनसे मल की उत्पत्ति तथा दुर्गन्ध, आंव कम होती है। प्रसव के पश्चात् मेथी के लड्डू बनाकर देने से भूख लगती है। पाचन उत्तम होता है। योनिशोधन तथा संकोच ठीक होता है। प्रसूता का पेट नहीं बढ़ पाता तथा अन्य उपद्रव नहीं होते।

रजः कृच्छ्रता में लाभदायक, जलोदर, खाँसी, यकृत्प्लीहावृद्धि-शामक, आमातिसार में सेके हुए मेथी के बीजों का सेवन, रक्तार्श में मेथी के बीजों में पकाया दूध लाभ दायक होता है। १०० तोले मेथी के बीजों में से ६ तोले गाढ़ा तेल निकलता है। पत्र शीतल तथा सारक है। शोथ में पत्रों की पुल्टिस, बाल झड़ने में पत्तों के रस का लेप लगाते हैं। पत्रस्वरस में सेंधा नमक डाल कर पीने से एक दो वेग होकर पित्तविकार मिट जाते हैं।

फुफ्फुस के रोगों में मेथी के बीजों के काढ़े में मधु मिलाकर पिलाना चाहिए। वनमेथी हीन गुण वाली है।

यवानी (दीप्यक, भूतीक)

परिचय—छत्रक वर्ग का क्षुप

उ०स्थ०—प्रायः सर्वत्र विशेषतः पूर्वी, दक्षिणी भारत।

व्य०अ०—बीज, तैल, पत्र, सत्व

पु०काल०—जून-अगस्त

मात्रा—बीज चूर्ण–३-६ माशा

अर्क २–४ तोला

सत्व $\frac{1}{2}$–३ रत्ती

1. Red chilies.
2. Capsicum Frutescens, Linn.
3. Fenugreak.
4. Desmodium triflorum D.C.
5. Trigonella. Foenicum graecum, Linn.
6. Papilionaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तेल—$\frac{1}{2}$–३ बूंद

रस—कटु तिक्त,

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—वातकफहर, पित्तवर्धक

प्र० अ०—पाचक संस्थान

वि० गु० क०—दीपन-पाचन, अनुलोमन, उदरशूलाध्माननाशक

नाम—(हि०) अजवायन, (म०) ओवां (गु०) अजमां अजमो (बं०) जोवान अजोवान (क०) जाविन्द (अं०) ओमम सीड्स[1] बिशप्स सीड्स[2] (वा० ले०) केरम[3] काप्टिकम्, टाईकाटीस अजवान् छत्रक वर्ग ।[4]

गुण—यवानी कटुकातिक्ता तीक्ष्णोष्णानिलापहा । कृमिशूलोदरानाह गुल्मघ्नी पित्त कोपनी । (कै०)
रोचनीदीपनी हृद्या, लध्वी पाचनी कफ शुक्रहा ।

अजवायन रस में कटु तिक्त, वीर्य में उष्ण, विपाक में कटु वातकफहर पित्तवर्धक, उदर शूल, वमन, प्लीहा तथा यकृत नाशक हैं । इसमें मरिच का कटुत्व (चरपरापन) चिरायता का तिक्तत्व (कडवापन) और हिंग का संकोच विकास, प्रतिबन्धक–अनुलोमन गुण एकत्र हो गया है । अन्य औषधियों के बुरे गन्ध और स्वाद को छिपाने के लिए इससे उत्तम दूसरी औषधि नहीं । वातिक कास में इसे पान में रखकर चबाते हैं । श्वास में इसका धूम्र दिया जाता है । श्वास-कास में, सूखे कफ को निकालने के लिए अजवायन, पिप्पली, वासापत्र का काढा बनाकर १–२ तोला की मात्रा में देने से कफ पतला होकर बहने लगता है । उदर्द (शीतपित्तभेद) में अजवायन को गुड़ में मिलाकर ७ दिन तक सेवन कराने से लाभ होता है । गलशुण्डिका में अजवायन चबाने से लाभ होता है । प्रसव के पश्चात् अजवायन चबाने से लाभ होता है । शेष प्रयोग अजमोदा के समान समझें । अर्क अजवायन उदरशूल, आध्मान, हिक्का, वमन, अतिसार विषूचिका, बच्चे के अजीर्णजन्य वमन-अतिसार में अत्यन्त लाभ करता है । १$\frac{1}{2}$ सेर अजवायन को ४ सेर जल में डालकर ३ सेर अर्क निकालना चाहिए । अर्क यन्त्र में अजवायन को पोटली में बांधकर दोला यन्त्र से समान लटका दें ।

वक्तव्य—(i) ४ वर्ष तक अजवायन के बीज और पत्र निर्वीर्य नहीं होते, यदि उन्हें सुरक्षित रखा जाए ।

(ii) अजवायन का काढ़ा बनाने से उसका तैल उड़ जाता है । अतः चूर्ण, अर्क या फाण्ट रूप में ही इसका उपयोग करें । इसी प्रकार जीरकादि के विषय में (जिसमें उड़नशील तैल रहता है) भी समझें ।

योग—कांकायन गुटिका–मात्रा ४ रत्ती की एक गोली से ३ गोली तक प्रतिदिन अनुपानों से । अर्श, पाचन सम्बन्धित रोग, उदर कृमि, गुल्म, रक्तगुल्मनाशक, त्रिफलाक्वाथ या गोमूत्रानुपानसे । कर्पूर तैल–यवानी सत्व ६ माशा, अफीम, ६ माशा, कर्पूर ४ तोला, दालचीनी का तैल, लौंग तैल ४० बूंद सबको मिला लें । यह लगाने से शिरः शूल, सन्धिशूल, स्नायु-शैथिल्य, तथा वमन, अतिसार, विषूचिका नाशक है । मात्रा ५-२५ बूद इसमें यदि पिपरमेण्ट १ तोला मिला लिया जाए तो अति उत्तम, कृमिघ्न, उदरशूल, आध्मान, आक्षप नाशक बन जाता है । दन्तशूल में इसका पिचु (फाहा) भरने से वह शान्त हो जाता है ।

यवानी सत्व

इसे अजवायन का फूल भी कहते हैं । यह देशी अजवायन का सत्व है । जो विलायती अजवायन[5] सत्व से गुण आदि में मिलता है । यह उत्तम कृमिघ्न, कोथ प्रशमन, दुर्गन्धनाशक, श्लेष्महर, अनुलोमन और उदर के बड़िश[6] कृमि के नाश के लिए प्रयुक्त होता है । एतदर्थ स्वस्थ सबल रोगी को खाली पेट १ माशा से २ माशा तक

1. Omum Seeds
2. Bishop's Seed
3. Carum Copticum Benth
4. Ptychotis Ajowan, DC
5. Thymol.
6. Hook worm, Ankylostomum Duodenale.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

की मात्रा में १-१ घण्टे के पश्चात् ३-४ बार देना चाहिए। ३० गुंजा इसकी अधिकतम मात्रा है। प्रायः २४ रत्ती पर्याप्त होती है। इसके पश्चात् कोई रेचन देना आवश्यक है। गर्भस्राव की संभावना के कारण गर्भिणी स्त्रियों को १५ रत्ती से अधिक नहीं देना चाहिए। बच्चों, वूढ़ों तथा निर्बल रोगियों को भी कम मात्रा में दें। गोली बनाकर मुनक्का में रखकर देना चाहिए।

अजमोदा (बस्तमोदा, उग्रगन्धा)

परिचय––अजवायन जाति का क्षुप

उ० स्थ०—समस्त भारत, ईरानादि में

रस—कटुतिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक––कटु

दोष—वातकफहर, पित्तवर्धक

प्र० अ०––पाचक संस्थान

वि० गु० क०—दीपन, पाचन, अनुलोमन

मात्रा—१-३ माशा

नाम––(हि०) अजमोदा, (गु०) बोड़ी अजमोद (म०) रान धणें, (बं०) बन-जोबन, रान्धनी, (अं०) सेलेरी[1] (वा० ले०) केरम राक्सबर्घिनम् बेन्थ[2] वर्ग छत्रक[3]।

गुण––अजमोदा कटुस्तिक्ता कटुपाका विदाहिनी। दीपनी पाचनीरूक्षा वीर्योष्णा कफवातला॥
नेत्ररोगोरुचिच्छर्दि हिध्मादमावस्तिरुक्क्रमीन्। (कै०)

अजमोदा कड़वी, चरपरी, उष्ण वीर्य, कटु विपाकी, तीक्ष्ण, विदाही, कफवातहर, लघु, दीपन, पाचन, मल को बाँधकर लाने वाली रुचिकारक, अवृष्य, उदरशूल तथा उदररोग, आध्मान (अफारा) वमन, हिक्का, बस्तिशूल तथा उदरकृमिनाशक है।

प्रयोग––कटु तिक्त तीक्ष्ण–होने से स्रोतों के अवरोध को दूर करती है। जिससे स्रोत शुद्ध हो जाते हैं और पाचक रसों का स्राव ठीक होता है। भूख लगती है। अग्निदीप्त होती है तथा अन्न का पाचन उत्तम होकर शरीर का बल बढ़ता है। अतिसारादि में मल का पाचनकर उसे बाँधकर लाती है। उसके जलीयांश को सुखाती है। अनुलोमन और उष्णवीर्य होने से वात को अनुलोमकर उदर-शूल, अफारा, कुपचन हिक्का शान्त होती है। कष्टार्तव, कटिशूलादि में उपयोगी है।

उदर शूल में काला नमक मिलाकर, आध्मान में गुड़ में गोली बनाकर, अग्निमान्द्य में पिप्पली और नमक के साथ मिलाकर, लवंग में मिलाकर मधु के साथ वमन में लाभ करती है। अश्मरी (पथरी) में अजमोदा मूलक स्वरस के साथ देने से पथरी गल जाती है। हिक्का में विशेषतः भोजन के पश्चात् होने वाली में अजमोदा को चबा कर उसका रस लेना चाहिए। मत्राशय की बादी पीड़ा मिटाने के लिए अजमोदा और काले नमक की पोटली बनाकर वंक्षणो (नलों) पर सेक दिया जाता है। वातिक वेदनाओं में अजमोदा को तैल में जलाकर, उस तैल का अभ्यंग कराया जाता है। बच्चों की गुदा में होने वाले चुरुवे कृमि (सफेद धागे से कीड़े) अजमोदा की धूनी देने से गिर जाते हैं। उष्ण-प्रकृति, सगर्भास्त्री तथा अपस्मार के रोगियों को यह नहीं देनी चाहिए।

---

1. Celery.
2. Carum Roxburghinum, Benth.
3. Umbellifereae.
4. Apium graveolens, Linn

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य—फारस ईरान की अजमोदा का नाम बाजार में करफस (ले०) एपियम् ग्रेवियोलैन्स[1] नाम है। यह भारतीय अजमोदा से छोटा होता है। इसकी मूल तुखमे करफस नाम से यूनानी में प्रयुक्त होती है। और बीजों की अपेक्षा अधिक गुणकारी समझी जाती है।

करीर (मसरूह, गूढ़पत्र)

नाम—(हि० मा०) कैर, करील, (पं०) डेलें, करीं (म०) नेवती, कैर (गु०) कैर, केरडाँ (अं०) केपरबेरी,[1] कैपिरिस् एफाइला, राक्स[2] या के० स्पिनोसा लिन्न[3], वरुण वर्ग[4]।

परिचय—यह ऊसर भूमि (मरुभूमि) में होने वाली झाड़ी है। इसके विषय में संस्कृत की 'पत्रंनैव यदा करीरविटपे दोषो वसंतस्य किम्'' यह उक्ति प्रसिद्ध है। सुन्दर लाल पुष्प फाल्गुण से चैत्र तक आते हैं। फलों का अचार बनाया जाता है।

गुण—करीरः कटुकस्तिक्तो लघूष्णोभेदनोजयेत्। दुर्नामकफवाताम गर शोफ कृमिव्रणान्॥
फलं तिक्तं कषायोष्णं कटुकं रसपाकयोः। विकासी मधुररूक्षं संग्राही कफपित्तजित्॥ (कै०)

प्रयोग—छाल का लेप शोथ, सन्धिशोथ—वेदना विष शामक है। यह उष्ण तथा मृदुरेचक भी है। रक्तार्श में १ तोला जड़ को ३ सेर जल में औटाकर आधा सेर रख दिन में २ बार सात-आठ दिन तक पीने से लाभ होता है।

लवंगम् (देवकुसुमं-श्रीपुष्पम्)

परिचय—लौंग सुपरिचित पदार्थ है। यह दक्षिण भारत तथा जंजिबार, लंकादि में उत्पन्न होता है। पुष्प व्यवहार में आता है। पुरानी लौंग निर्वीर्य है। स्निग्ध उत्तम है।

मात्रा—१-३ माशा चूर्ण
रस—कटुतिक्त
वीर्य—शीत
विपाक—कटु
दोष—त्रिदोष शामक
प्र० अ०—पाचन संस्थान।
वि० गु० क०—वातानुलोमक, शूलघ्न, वाजीकर-शोथशामक।

नाम—(हि० पं०) लौंग (म० गु० बं० क०) लवंग, लवींग, (तै०) डवगपू, (ता०) किरम्ब करुवयु, (अं०) क्लोव्[1] (वा० ले०) कार्योफाईलस् एरोमेटिक्स्[2] लवंग वर्ग[3]।

गुणा—लवंगं कटुकंतिक्तं रूक्षं हृद्यं हिमं लघु। चक्षुष्यं पाचनं हन्ति शूलानाहक्षतक्षयान्॥
कफपित्तास्रतृट्कासश्वासाध्मानविषपीनसान्॥ (कै०)

लौंग—कड़वी-चरपरी, शीत (साधारणतः इसे उष्ण समझा जाता है।) कटु विपाकी, रूक्ष, लघु रुचिकारक, पाचक, चक्षुष्य, उदरशूल, अफारा, क्षत, क्षय रोग, कफपित्त रक्त रोग, तृष्णा कास-श्वास-पीनसविष शामक है।

प्रयोग तथा प्रभाव—इलायची आदि के समान इनमें भी एक उड़नशील तैल पाया जाता है। प्रभाव भी प्रायः एलादि के समान ही होता है। बाह्य प्रयोग में ये क्षोभक वेदनाशामक प्रभाव उत्पन्न करते हैं। अतः लौंग का तैल नारायण तैलादि में (१-२ प्रतिशत) मिलाकर अभ्यंग लगाने में काम आता है। इससे वात तथा आमवातादि की वेदनाएँ शान्त होती हैं। दाँतों के दर्द में या उसके खोखले स्थान में लवंग तैल का पिचु (फाहा) भरा जाता है। मुखशोधक तथा कृमिनाशक होने से दन्त-मंजनों में लौंग का प्रयोग होता है।

---

1. Caper Berry.
2. Caparis Aphylla, Roxb,
3. C. Spinosa, Linn.
4. Caparideae.
5. Cloves.
6. Caryophyllus aromatics, Linn.
7. Myrtaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अन्तः प्रयोग में उत्तम वातानुलोमक, कला उत्तेजक, कफहर, शूल, आध्मान शामक है। वमन तथा अतिसार तथा विषूचिका में लवंग फाण्ट अति उत्तम है। यह अन्त्रों आमाशय तथा यकृत् को बल प्रदान कर पाचन को सुधारता है। अतः मन्दाग्नि व अन्य पाचन सम्बन्धित रोगों में लाभ करती हैं। कोष्ठबद्धता में लौंग को अन्य रेचक पदार्थों के साथ मिलाकर देने से ऐंठन नहीं होती। प्यास में लौंग का हिम लाभ करता है। शिरः शूल में लौंग को पीसकर लेप लगाते हैं। ज्वर तथा ज्वरों से उत्पन्न निर्बलता मिटाने के लिए लौंग--दालचीनी तथा चिरायता का हिम बनाकर पीना चाहिए। शरीर शैथिल्य तथा कफ के रोगों में लौंग अति उत्तम है। लवंग आक का लौंग, काला नमक मिलाकर चूसने से श्वास-कास तथा श्वास प्रणालियों के रोग मिटते हैं। कुत्ताखांसी (वातिक कास—Whooping cough) में लौंग को सेककर खाने से लाभ होता है। तालू पर, पीसकर लेप लगाने से प्रतिश्याय मिटता है। १०० तोले लौंगों से १५-२० तोले तक तैल निकलता है। इसकी मात्रा १-३ बूंद है।

वाजीकरण योगों में भी स्वर भेद **तथा गले की शोथ में चूसने के लिए,** भी लौंग डाली जाती है।

(१) लवंगादि चूर्ण--अतिसार, संग्रहणी में
(२) लवंगादिवटी—कास-स्वरभेद तथा गले की शोथ में चूसने के लिए
(३) लवंगाभ्रक योग--श्यासकास-संग्रहणी
(४) महागन्धक रस--अतिसार-संग्रहणीशामक।

तक्रम् (घोलम्)

नाम--(हि०) मठा-छांछ (पं०) छाह-लस्सी (वं०) घोल (म०) ताक (गु०) छास, मठो (अं०) बटरमिल्क[1] (कर्ड)

वक्तव्य--तक्र के निम्न भेद जल की मात्रा के आधार पर किए गये हैं। दही में बिना जल मिलाए तथा मक्खन निकाले मथे हुए को घोल, दही में $\frac{1}{4}$ भाग जल मिलाकर मथने को तक्र, बराबर पानी मिलाकर मथने से उदश्वित्, छच्छिका (छाछ) मक्खनरहित तथा प्रभूत जल युक्त होता है। घोल में शर्करा मिलाकर सेवन से रसाल समान गुणकारी है। यही पंजाबी लस्सी है। गरम दूध को निम्बु रसादि खट्टी वस्तु से फाड़कर गाढ़े पदार्थ को कूर्चिका-आमिक्षा, पनीर तथा पतले भाग को मस्तुवाजिन[2] कहते हैं।

गुण—तक्रं मधुरम्लं कषायनुरसमुष्णवीर्यं लघु रुक्ष अग्निदीपनं,
गरशोफातिसार ग्रहणी पाण्डुरोगार्शः प्लीहागुल्मारोचक विषम ज्वर,
तृष्णाच्छर्दि प्रसेकशूल भेदः श्लेष्मानिलहरं मधुरविपाकं हृद्यं मूत्रकृच्छ्र स्नेह व्यापत्प्रशमनवृष्यं च।....
तत्पुनर्मधुरं श्लेष्म प्रकोपणं पित्त प्रशमनं च, अम्लं वातघ्नं पित्तकरंच।
वातेम्लं सैन्धवोपेतं, पित्तेस्वादुसर्करम्।
पिबेत्तक्रं कफेचापि व्योषक्षार समन्वितम्। (सु० सू० ४५)

तक्र मधुर-अम्ल, कषाय अनुरसवाला, उष्णवीर्य, मधुर विपाकी लघु, रुक्ष, दीपन, हृद्य, गरविष (कृत्रिम) विष शोथ, अतिसार, ग्रहणी, अर्श, पाण्डु, प्लीहा, अरुचि-अग्निमान्द्य, गुल्म, विषमज्वर, प्यास, वमन, प्रसेक (मुँह से पानी बहना) मूत्रकृच्छ्र, मेद-वातकफ नाशक है। मधुर तक्र कफ वर्धक तथा पित्तशामक, अम्ल वातशामक, पित्तकारक, वायु में खट्टा तक्र सैन्धव नमक मिलाकर, पित्त में मीठा शर्करा मिलाकर, कफ में त्रिकटु तथा क्षार-सहित तक्र का सेवन करें। मस्तु (दूध का पानी) भी तक्र के समान ही गुणकारक है।

प्रभाव तथा प्रयोग--तक्र उष्ण तथा अग्निदीपन होने से पाचक अग्नि को प्रदीप्त करता है। जिससे अन्न

1. Butter milk, curd. 2. Whey.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

का पचन (सार-किट्टविभाजन) उत्तम होता है। तथा सार भाग से शरीर का पोषण अच्छा होता है। लघु होने से शीघ्र ही शरीर में पच जाता है। इन कारणों से मन्दाग्नि तथा उदर विकारों में अत्यन्त लाभदायक है।

यह स्रोतों का शोधक है। रुक्ष होने से स्रोतों का अभिष्यन्द मिटा देता है। यकृत् आदि अंगों की क्रिया उत्तम होने लगती है। मार्गों के शुद्ध होने पर आहार रसों का रस भी अच्छा बनता है तथा उससे शरीर की पुष्टि भी होती है। अतः शरीर के स्रोतों के दूषण से उत्पन्न रोगों अर्श-गुल्म, अरुचि, मूत्रकृच्छ्रादि को शान्त करता है तथा देह में बल, पुष्टि तथा वीर्य को बढ़ाता है। जैसा कि चरक ने कहा है :—

स्रोतःसु तक्रशुद्धेषु रसः सम्यगुपैति यः। तेन पुष्टिः बलं वर्णः प्रहर्षश्चोपजायते। (च० चि० १४)

पाचक अग्नि के बलाबल को तथा दोषों को देखकर स्नेह सहित (वातपित्त में) आधा स्नेह सहित, (पित्त-कफ में) तथा स्नेह रहित छाछ (कफ तथा मन्दाग्नि में) प्रयोग करें।

संग्रहणी में छाछ में सोंठ, सैन्धव, मरिच, पिप्पली चूर्ण मिलाकर; पित्त की संग्रहणी में मीठी छाछ में शक्कर मिलाकर; क्रमियों में पलाशबीज के साथ, कफज गुल्म में अजवायन; काला नमक-हरड़ मिलाकर; मूत्रकृच्छ्र में मीठी छाछ-यवक्षार के साथ; अर्श तथा बद्धकोष्ठ में अजवायन; काला नमक मिलाकर सेवन कराने से लाभ होता है। पथ्य में छाछ चावल दें। पाचन सम्बन्धित रोगों में तक्र को अमृत कहा गया है। वह सर्वथा उचित ही है।

न तक्र सेवी व्यथते कदाचिन्न तक्र दग्धाः प्रभवन्ति रोगाः।
यथासुराणाममृतंसुखाय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः॥
त्याज्यरोगी—नैवतक्रं क्षतेदद्यान् नोष्णकाले न दुर्बले।
नमूर्च्छाभ्रमदोशेषु न रोगे रक्तपित्तजे॥ भाव०

लता कस्तूरिका (कटुकं)

नाम—(हि०) मुश्कदाना-लता कस्तूरिः (म०) कस्तूरमेडं (अं०) मस्कमेल्लो[1] (वा० ले०) हिबिस्कस्[2], अबेल्मोस्कस् कार्पास वर्ग[3]।

वक्तव्य—लताकस्तूरी का पौधा भिण्डी या कर्पास जैसा होता है। बंगाल तथा दक्षिण में अधिक मात्रा में उत्पन्न होता है। बीजों को मसलने से कस्तूरीवत् गन्ध आती है। अतः लताकस्तूरी नाम दिया है। पत्र, बीज और मूल उपयोगी हैं। इनमें राल के समान स्थिर तैल निकलता है। बीज २-३ माशा तक।

गुण—लता कस्तूरिका तिक्ता स्वाद्वी वृष्या हिमा लघुः। चक्षुष्या छेदनी, श्लेष्म तृष्णाबस्त्यास्यरोगजित्॥

यह मधुर, कटु, तिक्त, शीतवीर्य, कटु विपाकी, चक्षुष्य, कफछेदक-स्थूलतानाशक, कफ-प्यास, (कै०) मुखरोग तथा बस्तिरोगनाशक है।

प्रयोग—मुख में चबाने से मुख स्वच्छ तथा सुगन्धित होता है। रुचि बढ़ाता है। चूर्ण बनाकर शुक्रमेह में खिलाते हैं। बीजों को पीसकर सुरमे में काम लाते हैं। सूजाक में पत्र तथा मूल का रस चीनी के साथ पिलाते हैं।

विकंकतः (स्वादुकण्टकः, ग्रन्थिलः)

नाम—(हि०) कंटाई (अं०) मोरीशस प्लम्[4], (वा० ले०) फ्लेकोर्शिया रोमांची[5] आई, विकंकत वर्ग[6]।

---

1. Musk mallow.
2. Hibiscus Abelmoschus Linn.
3. Malvaceae.
4. Mauritius Plum.
5. Flacortia Romantchi Lhert.
6. Flacourtiaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विकंकत के वृक्ष सर्वत्र छोटे-छोटे पहाड़ों पर पाए जाते हैं। फल गहरे जामुनी रंग के पक जाने पर।

गुण—श्रवदुर्मधुरस्तिक्तः कषायाः शीतलोजयेत। बलासपित्त शोकास्त्रं, फलं पाकरसोषणम् ॥
तीक्ष्णं पित्तास्रकृत्, पक्वं स्वादुतिक्तं त्रिदोषजित्। (कै०)

इसका अधिक उपयोग नहीं किया जाता।

शतपुष्पा (सितच्छत्रा)

परिचय—सौंफ भारत में ज्ञात है। व्यवहार्य अंग—बीज, तैल तथा मूल है। बीज मात्रा ५-८ माशा; मूल मात्रा ४-६ माशो। यह सर्वत्र बोई जाती है।

रस—मधुर, कटु, तिक्त अनुरस

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु विपाकी

प्र० अ०—आमाशयान्त्र

वि० गु० क०—पाचक, दीपक, अनुलोमक, कृमिघ्न तथा उष्ण, रोचक।

नाम—(हि०) सौंफ, मीठी सौंफ (बं०) मौरी (म०) बडिशेप (गु०) वरीआली (क०) काडुसब्बसिगे (तै०) पेद्दजिलकर (ता०) सोम्बु (अं०) इण्डियनस्वीट[1] फेनेल (वा० ले०) फेनिक्युलं बल्गेर[2], छत्रक वर्ग[3]।

गुण—शतपुष्पा लघुस्तीक्ष्ण पित्तकृद्दीपनी कटुः। उष्णज्वरानि श्लेष्ण व्रणशूलाक्षिरोगहृत्।

भाव—सौंफ-मीठी-कटु, रसवाली, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, तीक्ष्ण, वातकफशामक, पित्तवर्धक (अग्निदीपक) ज्वर व्रण, उदरशूल तथा नेत्र रोगनाशक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—सौंफ में एक उड़नशील तैल (१०० तोले में ३ तोला) पाया जाता है। जिसके कारण यह सुगन्धित है। यह उष्ण-सुगन्धित होने के कारण भोजन में रुचि बढ़ाती है। पाचक रसों का स्राव बढ़ाकर अग्निदीप्त करती है। जिससे पाचन उत्तम होता है। अतएव सुगन्ध तथा पाचन के लिए भोजन के बाद चबाते हैं। वायु का अनुलोमक होने के कारण उदरशूल-अफरा-आनाह नाशक है। विरेचकों में ऐंठन (उद्वेष्टन-मरोड़े) न होने देने के लिए इसे डाला जाता है। बच्चों के उदरशूल, आध्मान तथा कुपच्चन से उत्पन्न वमन, अतिसार नष्ट होते हैं। यकृत् प्लीहा-वृक्क के स्रोतों के अवरोध की नाशक है। मूत्र तथा रजःकृच्छ्रतानाशक है। गाय के दूध के साथ स्तन्यवर्धन के लिए देते हैं। नेत्रों की ज्योति बढ़ाने के लिए चूर्ण तथा हरे सौंफ के रस में या सूखी सौंफ के काढ़े में सुरमा घिसकर लगाते हैं। सौंफ का तैल तथा अर्क भी यही गुण करता है।

मिश्रेया (मिसिः-शालेय)

नाम—(हि० पं० सि०) सोया, सुवा, (बं०) सुल्फा, सोंबा (म०) शेपु (गु०) सुवा, सुवादाणा (अं०) डिल, डिलसीड्स[4] एनीथम्[5] (वा० ले०) एनीथम् ग्रेविओलेन्स्[6], प्युसिडेनम् ग्रेविओलन्स्[7] छत्रक वर्ग।

---

1. Indian Sweat Fennel.
2. Falniculum Valgare, gaertu.
3. Umbellifereae.
4. Dill, Dill Seeds.
5. Anethum.
6. Anethum graveolens Benth.
7. Peucedanum graveolens.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण—मिश्रेया तद् गुणा प्रोक्ता विशेषाद्योनिशूलनुत्। अग्निमान्द्यहरीहृद्या बद्धविट् कृमिशुक्रहृत् ।।

सुवा सौंफ के समान ही गुणकारक है किन्तु विशेषकर योनिशूलशामक है। अग्निमान्द्यनाशक, रुचिवर्धक, विबन्धकारक, उदरकृमि, शुक्रशामक, रूक्ष, उष्ण, वातकफ, कास-वमनशामक है। यह प्रभाव तथा प्रयोग में सौंफ के समान है। तैल १-५ बूंद तथा अर्क १-२ तोला बच्चों के उदरशूल, आध्मान, अतीसार शामक है। कटिशूल, रजः कृच्छ्रता, आमवात, वात, वेदनाओं का विशेषतः नाशक हैं। बीजचूर्ण २-३ माशे की मात्रा में दें।

योग—मिश्रेयादि क्वाथ।

कुछ आचार्य मिश्रेया से सौंफ तथा शतपुष्पा से सुवा का ग्रहण करते हैं। यह सर्वथा सिद्ध बात है कि सौंफ की अपेक्षा सुवा योनिरोगों में विशेष उपयोगी है, अतएव भावमिश्र ने 'मिश्रेया तद्गुणाप्रोक्ता-विशेषात् योनिशूलनुत्' कहा है। अतः मिश्रेया से सूवा का ग्रहण करना ही युक्तियुक्त है।

सर्षपद्वयम् (श्वेत-रक्त राजिका च)

परिचय—सरसों तथा राई का क्षुप सुपरिचित है। सर्वत्र इसकी खेती की जाती है।

व्य० अ०—बीज-तैल

पुष्पकाल—बसन्त ऋतु

मात्रा—२-५ माशा बीजचूर्ण

रस—कटु

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटुः

दोष—वातकफशामक, पित्तवर्धक

प्र० अं०—पाचक अंग, त्वचा

वि० गु० क०—तीक्ष्ण, शोथशामक, वामक, अनुलोमक, दीपन

नाम—(सं०) सर्षप सिद्धार्थ, (सफेद सरसों) (हि०) सरसों (म०) शिरसी (गु०) सरसव (बं०) सरिषा (क०) सासिवे (तै०) आवालु (ता०) कड़ुहु (अं०) ह्वाईट मस्टर्ड[1] (सफेद सरसों) (वा० ले०) ब्रासिका एल्बा[2] (पीली सरसों) ब्रासिका केम्पेस्ट्रिस्,[3] सर्षप वर्ग[4]।

राई—(सं०) राजिका-आसुरी, (हि० गु०) राई (म०) मोहरी, (बं०) राई सरिषा (वा०ले०) ब्रासिका जन्सिआ[5]।

गुण—सार्षपं कटुकं रूक्षं गुरूष्णंबद्ध मूत्रविट्। सक्षार लवणं स्वादु दोष त्रय करं परम्। (कै०)
कटूष्णं सार्षपं तैलं रक्तपित्त प्रदूषणम्। कफ शुक्रानिलहरं कण्डु कोष्ठ विनाशनम्। (च० सू० २७)
तद्वच्च राजिका शाकं रक्तपित्तविदाहकृत्। तीक्ष्णं रूक्षमचक्षुष्यं भृशोष्णं कृमिहृद्गुरुः। (कै०)

सरसों तथा राई दोनों में समान गुण है। अतः इनका वर्णन एक साथ किया गया है। राई सरसों की अपेक्षा अधिक तीक्ष्ण है।

---

1. White mustard.
2. Brassica, Alba, Rabenth.
3. Brassica Compestris, Linn.
4. Crucifereae.
5. Brassica Juncia, Coss.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पत्रों का शाक कटु, उष्ण, रूक्ष, कटु विपाकी, मूत्र मल का विबन्ध करने वाला, क्षार तथा नमकीन तीनों दोषों तथा रक्त को दुष्ट करने वाला है। राई का शाक गुरु, कृमिहर, नेत्रों तथा वीर्य के लिए हानिकर है।

बीज तथा तैल रक्तपित्तदूषक, विदाहकारक, वायु-कफ तथा वीर्यनाशक, त्वचा रोग—कण्डु-कोठ-फोडा फुन्सी शामक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—कटुरस, उष्णवीर्य तथा कटु विपाकी होने से अग्निदीपन तथा वातानुलोमन है। अतः अग्निमान्द्यादि में इनका प्रयोग होता है। किन्तु मात्रा स्वल्प ही रहनी चाहिए अन्यथा रक्त, पित्त दूषित होते हैं। वीर्य-नाश तथा नेत्र रोग होने का भय रहता है। सरसों के तैल के अभ्यंग से त्वचा शीतल, सुन्दर एवं नीरोग होती है। इसमें कर्पूर मिलाकर अभ्यंग करने से आमवात की वेदना कम होती है। त्वचा रोगों में सरसों तथा हल्दी का उबटन लगाने से कान्ति बढ़ती है। पामा व चर्चिका में सरसों का तैल-अर्क पत्ररस तथा हरिद्रा कल्क से सिद्ध करके लगाने से लाभ होता है। इसको पेट पर मलने से तथा खाने से बढ़ी हुई प्लीहा कम होती है। (१) अपची में सरसों-नीम के पत्ते और भिलावों को शराव सम्पुट में बन्दकर जला दे। इस भस्म को बकरी के मूत्र में पीस कर लेप लगाने से लाभ होता है। श्लीपद में भी सरसों को गो मूत्र में पीसकर लेप लगाते हैं।

कटुतेलोपदेशं तु वक्ष्यामि प्लीहनाशनम्। नातः परतरं किंचिदौषधं प्लीहशान्तये। (काश्यपसंहिता)

राई का प्रधानतः बाह्य प्रयोग किया जाता है। यह लेप लगाने से क्षोभक, तथा पाचक भी है। जिसके कारण प्रथम क्षोभ होकर पुनः नाड़ियों के चेतान्तों की जड़ता के कारण त्वचा संज्ञाशून्य हो जाती है। अधिक देर तक लगाए रहने से फफोले पड़ जाते हैं। अन्दर के अंग-फुप्फुसों आदि में रक्तसंचार बढ़ जाता है। जिससे उनका पोषण उत्तम होता है। त्वचा पर इसका लेप लगाने से प्रति-संक्रमित क्रिया द्वारा यह हृदय, रक्तसंचार, श्वास तथा वातिक केन्द्रों को उत्तेजित करती है। राजिका का उपनाह (पुल्टिस) राई २ भाग, अलसी २८ भाग, जल १०० भाग) या प्लास्टर शोथ शान्त करने के लिए लगाई जाती है। वातिक वेदनाओं, आमवात, कटिशूल, मुख-गला, आमाशय, पेट, फुप्फुस आदि की शोथ तथा वेदना शान्त करने के लिए प्रयोग किया जाता है। मन्यापर (गर्दन के पीछे) लेप लगाने से मन्यास्तम्भ में लाभ होता है। शोथ ज्वरों में आक्षेपों अथवा (१ : ५०० अथवा ५ सेर में २ तोला) इसके स्नान से लाभ होता है। इससे त्वचास्थ रक्तवाहिनियाँ विस्तृत हो जाती है। ताप तथा रक्त भार घट जाता है।

अन्तः प्रयोग में यह दीपन है। मसालों में डाली जाती हैं। वमन के लिए एक गिलास पानी में २–६ माशा तक राई चूर्ण उत्तम वामक है। यदि इसमें कुछ सेंधा नमक भी डाल दिया जाए तो उत्तम है। यद्यपि यह पीछे कुछ शिथिलता उत्पन्न करती है।

सर्दी के कारण रजः स्राव बन्द हुआ हो या रजः कृच्छ्रता हो तो उष्ण जल में राई डाल कर कटि स्नान कराना चाहिए।

हिंगु (रामठं, बाल्हीकम्, जन्तुघ्नम्)

परिचय—हींग एक वृक्ष का निर्यास (गोंद) है। यह वृक्ष अफगानिस्तान तथा ईरान में होता है। अतः बाल्टीक नाम है। हीरा हींग उत्तम है।

मात्रा—४-८ रत्ती तक शुद्ध हींग जलाने से सारी जल जाती है।

रस—तिक्त कटु

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

अतः दोषः—वातकफहर, पित्तलम्

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्र० अ०— अन्त्र-आमाशय

वि० गु० क०—अनुलोमन, दीपन, आक्षेपनाशक, रजः शोधक, उदरशूलशामकम्

नाम—(हि०) हींग (बं०) हिङ्, (म०) हिंग (गु०) हींग, वधारणी (अं०) असाफिटिडा[1] (वा० ले०) फेरुला[2] फीटिड फे० नर्थेक्स,[3] छत्रक वर्ग[4]।

गुण—हिंगु निर्यासशोदनीय दीपनीयानुलोमिक वातकफ प्रशमनानाम् (च० सू० २५)

लघुष्णं पाचनं हिंगु दीपनंकफ वातजित् । कटुस्निग्धं सरं तीक्ष्णं शूलाजीर्णविबन्धनुत्।। (सु० सू० ४०)

हींग रस में कटु, तिक्त, वीर्य में उष्ण, कटु विपाकी, लघु-अग्निदीपन, पाचन, स्निग्ध-सर-तीक्ष्ण, कफवात, उदरशूल, अजीर्ण-विबन्ध-गुल्म, आध्मानशामक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—हींग में एक उड़नशील उग्र गन्ध तैल पाया जाता है। जिसके कारण यह कपूर आदि के समान क्रिया करती है। कटुरस, उष्ण वीर्य, तीक्ष्णतादि गुणों के कारण यह उत्तेजक, अनुलोमक, कृमिनाशक, अग्निदीपक और आक्षेपहर है। निकलते समय फेफड़ों में कफ का स्राव-कराकर शुष्क कासश्वास को शान्त करती है। कफ की दुर्गन्धि की भी नाशक है। प्रति संक्रमित क्रिया द्वारा आमाशय तथा अन्त्रों में जाकर वातसंस्थान को भी उत्तेजित करती है। कफ तथा मूत्र द्वारा बाहर निकलती है।

बच्चों के उदरशूल में उनके पेट पर गाढ़ा लेप करने से लाभ होता है।

अन्तः प्रयोग में अजीर्ण, उदरशूल, आध्मान में प्रयुक्त होती है। योषा अपस्मार में जटामांसी के साथ मिला कर देने से लाभ करता है। रजः कृच्छ्रता, विबन्धयुक्त योषा अपस्मार, अपतन्त्रक में इसे एलीयक् कुमारीसार तथा कासीस के साथ मिलाकर देने से कब्जी (मासिक धर्म की न्यूनता) नष्ट होती है और योषापस्मार भी ठीक होता है।

उत्तेजक होने के कारण वाजीकरण योगों में भी डालते हैं। शिथिलता प्रधान रोगों में यथा—अजीर्ण, अतिसार, आध्मानादि में यह बहुत लाभ करती है। हींग, सोंठ, सेंधा नमक का योग अजीर्ण नाशक है। अफीम आदि निद्राजनक विषों का वमन कराने के लिए हींग का प्रयोग करते हैं। विषूचिका में हींग-कपूर, कालीमिर्च तथा अफीम की गोलियाँ बनाकर देते हैं। प्रसव के समय थोड़ी-थोड़ी खिलाने से सुखप्रसव होता है। प्रसव के पश्चात् गर्भाशयस्थ मल को निकालने में भी यह सहायक होती है। क्योंकि यह गर्भाशय संकोचक है। हिचकी में इसके धुएँ की नस्य, या २ माशा हींग, ४ नग बदाम को पीस कर पिलाने से अति लाभ होता है। हिंगु कर्पूर वटी (हींग १ भाग) कर्पूर १ भाग, कस्तूरी १/८ भाग, २ रत्ती की मात्रा में उत्तम हृदयोत्तेजक, अनुलोमन तथा सन्निपातशामक है।

योग—(१) हिंग्वष्टक चूर्ण (२) हिंग्वादि चूर्ण (३) रजःप्रवर्तनीवटी (४) हिंगुवारुणीसार।

नाडी हिंगु-(हिंगुपत्री, रामठी, वाष्पिका)

नाम—(हि०) डीकामाली, (म०) डिकेमाली (गु०) डीकामारी, मालण-मालड़ी (वा० ले०) गार्डिनिया गमीफेरा,[5] मंजिष्ठादिवर्ग[6]।

गुण—वाष्पिका कटुकातिक्ता हृद्या तीच्णामपाचनी। उष्णानिलार्शोहृद्बस्तिरुग्गुलमप्लीहजान्तुषु ।।
विबन्धारुचि मेदस्सु विषेश्लेष्मणिशस्यते।

---

1. Asafoetida.
2. Ferula Foetida, Linn.
3. Ferula Narthex, Boiss.
4. Umbellifereae.
5. Gardinia gummifera, Linn.
6. Rubiaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नाड़ीहिंगु कटुतिक्तरस, उष्णवीर्यविपाकी, तीक्ष्ण, आमपाचक, वातकफ के रोग, विशेषकर अर्श, हृदय, बस्तिशूल, गुल्म, प्लीहा, उदरकृमि, विबन्ध, मेद विष नाशक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—हींग के सामन है। विशेषकर उदरकृमियों की घातक है। चुरुओं में गुदा में इसका चूर्ण रखते हैं। व्रणों पर इसका विलयन (घोल) छिड़काने से कीड़े मरते हैं तथा मक्खियाँ नहीं बैठतीं। दो माशा डीकामाली का काढ़ा पसीना लाता है। मात्रा ४ रत्ती से २ माशा तक।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तेरहवाँ अध्याय

वामक वर्ग

अरित मंजरी (हरितमंजरी)

नाम—(हि०) कुप्पी (गु०) दादरो-विछीकांटा, (म० मु०) खोकली (बं०) मुक्तझूरी, श्वेतवसना (वा० ले०) एकेलिफा इण्डिका, वर्ग-एरण्डादि या स्नुही[2]।

परिचय—यह १–२ फुट ऊँची वनस्पति है जो सड़कों के किनारे तथा बागों में सर्वत्र लगाई जाती है। इसमें बारहों मास पुष्प लगे रहते हैं। बिल्ली को इसकी जड़ बहुत प्रिय है। आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में इसका वर्णन नहीं मिलता। दक्षिण भारत में ही इसका प्रयोग अधिक है।

गुण-प्रयोग—पंचांग का ही उपयोग किया जाता है। क्वाथ, स्वरस, फाण्ट, सत्व, सभी का प्रयोग होता है। यह रेचक, वामक, कृमिघ्न, कफनिष्कासक, वेदना शामक तथा स्वापजनक है।

प्रयोग—पत्तों के कल्क में नमक मिलाकर दाद में लेप करते हैं। कनखजूरे (शतपदी) के दंश से उत्पन्न दाह में पत्र कल्क का लेप लाभ करता है। आमवात में पत्तों को तैल में जलाकर अभ्यंग किया जाता है। श्वास-कास में कफ को निकालने के लिए क्वाथ या स्वरस से कफ पतला होकर बह जाता है। उदरकृमियों में शुष्क पत्र का चूर्ण दिया जाता है। व्रण कृमियों को मारने के लिए के लिए भी यह चूर्ण छिड़का जाता है। बच्चों की छाती में जमें कफ को वमन द्वारा निकालने के लिए २ माशा (१ चाय का चम्मच) पत्र स्वरस अति श्रेष्ठ है। बिना किसी कष्ट के वमन हो जाता है। कर्ण शूल में क्वाथ पिलाया जाता है। तथा पत्रकल्क का लेप लगाया जाता है। प्याज (पलाण्डु) और चूने के साथ पत्तों को पीसकर लेप लगाने से दाद, खाज एवं अन्य त्वचा रोग तथा आमवात में आराम होता है। बच्चों की कब्ज में पत्रकल्क का गोला बनाकर गुदा में प्रविष्ट करने से तत्काल लाभ होता है। मूल क्वाथ या चूर्ण भी रेचक है। तीव्र उन्माद तथा योषापस्मार की प्रारम्भिक अवस्था में २।। तोला पत्ररस में ४ गुंजा सैंधव मिलाकर नस्य देने से कफ तथा अन्य दूषित स्राव बाहर निकल जाते हैं। नस्य प्रति छः घण्टों बाद देनी चाहिए और रोगी को तीन बार देनी चाहिए। प्रातःकाल ठंडे फव्वारे के नीचे बिठाकर स्नान कराएँ। इससे लाभ होता देखा गया है। पत्रस्वरस की मात्रा बच्चों के लिए ३–४ माशा एवं बड़ों के लिए १–१।। तोला तक है।

अरिष्टकः (फेनिल, रक्तबीजः)

परिचय—बड़ा वृक्ष एवं सदा हरित। दक्षिण भारत तथा बंगाल में बोया जाता है। दूसरा प्रकार उत्तर भारत में होता है किन्तु वह इतना उत्तम नहीं।

व्य० अं०—फल, त्वचा

पुष्पकाल—आश्विन, कार्तिक

---

1. Acalypha Indica
2. Euphorbiaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रस—तिक्त कटु
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
दोष—त्रिदोषहर
प्र० अ०—आमाशय, गर्भाशय
वि० गु० क०—तीक्ष्ण, विषघ्न, वामक, गर्भपाती
मात्रा—१–३ माशा

नाम—(हि०) रीठा, अरीठा (गु०) अरीठा (म०) रिठा (कों०) रिंगीण (बं०) बड़ा रीठा (अं०) इण्डियन फिलवर्ट,[1] सोपनट[2] ट्री, (वा० ले०) सैपिण्डस् ट्रिफोलिएटस्[3] लिन्न, वर्ग अरिष्टकादि[4]।

गुणा—अरिष्टः कटुकः पाके तीक्ष्णोष्णो लेखनो गुरुः। दोषत्रयहरो गर्भपातनो ग्रहशान्तिकृत्॥
तज्जलं वामकं पानान्नस्याच्छीर्षरुजापहम्। अर्धशीर्षव्यथां हन्ति वमनाद्विष नाशनः॥ (नि० सं०)

रीठा तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, स्निग्ध, लघु तीक्ष्ण, गर्भपातक, त्रिदोषहर, विशेषतः वातकफहर, कुष्ठ, कण्डु विष, विस्फोटनाशक, वामक है।

प्रयोग—बाह्य-लेप लगाने से यह कटुता, तीक्ष्णता, उष्णता के कारण शोथशामक, क्षोभजनक है। अतएव नस्य देने से छींके आती हैं और द्रव बाहर निकलता है। जिससे शिरःशूल, आधा शीशी नष्ट होती है। झांई, व्यंग, किलास जैसे रोग में रीठा का लेप लगाया जाता है। त्वचा के वर्ण को उत्तम बनाने के लिए उबटनों में प्रयोग करते हैं। नष्टार्तव में और अपरा निकालने के लिए फलवर्त्ति बनाकर योनि में रखते हैं। वृश्चिक दंश में बीज-फल घिसकर लेप लगाते हैं। एक या दो रत्ती बीज की गिरी सुंघाने से मूर्च्छा दूर होती है। गण्डमाला में भी लेप लगाया जाता है। उदर कृमिरोगों में तथा तीव्र विबन्ध में ४॥ माशा बीजगिरी, ४ रत्ती उशारे रेवन्द मिलाकर दिया जाता है।

अन्तः प्रयोग—श्वास-कास में कफ को निकालने के लिए ५-१० रत्ती की मात्रा फल चूर्ण तथा वमन कराने के लिए ४-८ माशा चूर्ण और अपस्मार में समभाग कालीमिर्च का चूर्ण अरिष्टक बीजचूर्ण में मिलाकर २॥–३॥ माशा की फक्की दी जाती है। सम्पूर्ण फल का चूर्ण बना नित्य नस्य देने से अपस्मार (मृगी) मिटती है। प्रलाप तथा मूर्च्छा में फलमींगी को गाय के दूध में पीसकर नस्य देने से या अंजन करने से लाभ होता हैं। अजीर्णजन्य उदरशूल में बीजमज्जा २ रत्ती, सर्पविष में ४॥ मासे गिरी में जल को मथकर झाग पैदा होने पर खिलाया जाता है। गर्भस्राव के लिए फल का काढ़ा पिलाया जाता है तथा फल वर्त्ति बनाकर योनि में रखी जाती है। उष्ण प्रकृति के लिए यह अहित कर है। उन्हें बादाम के तैल के साथ देना उत्तम है।

अंकोलः ताम्रफलः, (दीर्घकीलो, पीतसारः)

परिचय—सदाहरित, अंगुलिसम दीर्घ पत्रों वाला छोटा वृक्ष
प्रा० स्थ०—दक्षिण भारत, रुक्ष स्थानों में यह गुल्म (झाड़ी) तुल्य
व्य० अ०—पंचांग, विशेषकर मूल पुष्प
पुष्पकाल—श्वेत सुगन्धित (काले-लालभी) माघ से चैत तक।
रस—कटु, कषाय

1. Indian Filvert.
2. Soapnut Tree.
3. Sapindus Trifoliatus Linn.
4. Sapindaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वीर्य--उष्ण
विपाक--कटु
दोष--वातकफहर
प्र० अ०--अन्त्र, धातु-रक्त
वि० गु० क०--वामक, रेचक, ज्वरघ्नं, विषघ्न
मात्रा--मूलचूर्ण (स्वेदन-४-२ गुंजा)
,, वामक ३-६ माशा
,, रक्तशोधक १-३ रत्ती

नाम--(हि०) अंकोल, ढ़ेरा (गु० म०) अंकोल (ता०) अंकोलम् (क०) अंकोले (उ०) अंकुल (बं०) घलाआंका, बानकुरा (वा० ले० अलेन्जियम[1] लेमाकाई, वर्ग अकोलादि[2]।

गुण--अंकोलस्तिक्तकः स्निग्ध स्तीक्ष्णस्तुवरः कटुः। वामनो रेचनो हन्ति शूल शोफ ग्रहक्रमीन् ॥
वीसर्प कफपित्तास्र कुक्कुराखुविषं विषम् ॥ (कै०)

अंकोठ कडवा, कटु, (चरपरा) कषाय, उष्ण, तीक्ष्ण, स्निग्ध (बीजों में तैल के कारण) वामक, रेचक, स्वेदल, त्वचा तथा रक्तदोषहर और विषशामक है। अंकोल का फल काला-लाल वर्ण और बेर के समान होता है। यह पकने पर मधुर रस, शीतवीर्य और मधुर विपाकी, स्निग्ध, पौष्टिक, गुरु, वृष्य, बल्य तथा मृदुरेचक, वात, पित्त, रक्त रोग (वातरक्त, उपदंश), दाह, क्षत, नाशक है। बीज लम्बा गोल स्निग्ध होता है। पुष्प का अंजन विष में लगाया जाता है। अकोट का मूल शोथ, उदरकृमि, वीसर्प, कफपित्त रक्तदोष, चूहे-कुत्ते के विष तथा सामान्य विषों का हरण करता है।

प्रयोग बाह्य--त्वचारोगों में छाल को पीसकर लेप लगाते हैं। शोथ तथा वेदना भी लेप से शान्त होती है। त्वचा उष्ण, तीक्ष्ण तथा कटु होती है। अतः लेप लगाने से उस स्थान का रुधिराभिसरण उत्तम होता है और क्षोभक होने से शोथ तथा वेदना शामक है।

अन्तः--मूल त्वचा का चूर्ण अधिक मात्रा में देने से वमन विरेचन होता है। उष्ण, तीक्ष्णादि गुणों से आमाशयान्त्रों में क्षोभ होकर वमन विरेचन होते हैं। जिससे विष निकल जाता है। २-३ रत्ती की मात्रा से इससे उत्क्लेश (हृल्लास-जी मचलाना) होता है और स्वेद होता है। कफ भी पतला होकर निकलता है। त्वचा रोगों में, रक्तपित्त, रक्तदोष तथा उपदंश, फिरंग आदि में ½-१½ गूंजा तक सेवन की जाती है।

यकृत् रोग, जलोदर, तथा वृक्क रोगों में उत्पन्न शोथ में २ रत्ती की मात्रा सेवन करने से यकृत् की क्रिया ठीक होती है। शौच साफ होता है। कृमि तथा आनाह (कब्जी) दूर होती है। बर्रें, मूषक तथा कुत्ते के दंश पर इसे पीसकर लगाया जाता है। पत्तियों की पुल्टिस और बीजों का तैल आमवात की वेदना शान्त करते हैं।

कटुतुम्बी (ईश्वाकुः, तिक्तबीजा, महाफला)

नाम--कड़वी तुम्बी. तित्लौकी, (म०) कडू भोपला, (गु०) कड़वी तुम्बी, (अं०) बिटर[3] बोटल गोर्ड, (क०) कहिसोरे, (तै०) चेतिआनव, (वा० ले०) लेगेनेरिया[4] वल्गेरिस्, कर्कटी वर्ग।

---

1. Alangium Lamarkii, Thwaites.
2. Cornaceae.
3. Bitter Bottle gourd.
4. Lagenaria Vulgaris, Seringe.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण—तुम्बी तिक्ता कटुः पाके वामनी वातपित्तजित् । अहृद्या शीतला कासश्वासज्वरविषापहा ॥
अलाबुपत्रं मधुरं पित्तघ्नं मूत्रशोधनम् ॥ (कै०)

कड़वी तुम्बी तिक्त, शीतवीर्य, कटु विपाकी, वातपित्तशामक, अरुचिकर, कास-श्वास ज्वर तथा विषनाशक है। इसकी मात्रा ताजा फल ३-६ माशा है। सूखा चूर्ण १–२ रत्ती।

प्रयोग—वामक होने के कारण ताजे फल का रस जीर्ण कफज कास तथा श्वास में पिलाकर वमन कराते हैं। इससे कफ निकल जाता है तथा कफ की अधिकता के कारण होने वाला श्वासकष्ट शान्त होता है। कामला तथा कफज शिरोरोगों में स्वरस की नस्य देने से दूषित तरल निकल जाता है। अर्श में गुड़ तथा कांजी पीसकर लेप लगाते हैं। कड़वी तुम्बी में सात दिन तक जल भरा रक्खे पुनः उस जल का प्रयोग करें। अधिक मात्रा में प्रयोग से विषूचिका के समान लक्षण हो जाते हैं। वमन के लिए हरी तित्लौकी का रस ६–१२ माशा की मात्रा में घी के साथ मिलाकर दें। पत्र-शीतल-मूत्रल तथा पित्तशामक है। औषधियों में कड़वी तुम्बी का ही प्रयोग होता है।

मधुर तुम्बी शाकभाजी में काम आती है तथा पित्तशामक और उत्तम तापशामक है। रोगों में वमन पथ्य है।

कोशातकी (घोषा, धामार्गव-कृतवेधन)

वक्तव्य—कोशातकी के तीन भेद पाये जाते हैं। (१) तिक्त कोशातकी, (२) राजकोशातकी, (३) महा कोशातकी। तीनों की लताओं में थोड़ा-बहुत भेद है। औषधियों में तिक्त कोशातकी का प्रयोग होता है। शेष दोनों शाक-भाजी में काम आती हैं।

नाम—(१) तिक्तकोशातकी, (हिं० गु० म०) कड़वी तोरी या तोरई, (बं०) घोषालता, (म०) कडु दोडकें-दिवालयें, (गु०) कड़वी तुरयां, घीसोड़ा, पाडाबल, (क०) कहिहीरे, (तै०) वीरकाया, (ता०) पिच्सक्कु (वा० ले०) ल्यूफा अमोरा, कर्कटी वर्ग[1]।

(२) राजकोशातकी—(हिं०) घियातोरई-तोरई, (म०) घौसालें, दोडका (गु०) गलकां (बं०) झिगां (क०) दोड्डहीरे, (तै०) गुहिबीर, (ता०) पेप्पीरकाय (अं०) टावलगोर्ड,[2] (म०) रिब्डलूफा,[3] (वा० ले०) लूफा[4] एजिप्टिका कर्कटीवर्ग।

महा कोशातकी—(हिं०) बड़ी तोरई (म०) शिरोलें (गु०) तुरयां (वा० ले०) लूफा एक्युटेन्गुला,[5] कर्कटी वर्ग।

गुण—कोशातकी कटुस्तीक्ष्णा पक्वामाशयशोधनी। लघ्ववीरूक्षा कटुःपाके जयेत् कासगरोदरम् ॥
पाण्डु-शोफ-कफ-प्लीहा-गुल्मार्शः कुष्ठकामला। (कै०)
राजकोषातकी तिक्ता मधुरा कफवातला। पित्तघ्नी दीपनी हन्ति कासश्वासज्वरकृमीन् ॥
हस्तिघोषा सरा स्निग्धा मधुरा श्लेष्मला गुरुः। (कै०)

कड़वी तोरई तिक्त रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, पित्तकफशामक, वामक तथा विरेचक, कुष्ठ, पाण्डु, यकृत-प्लीहावृद्धि गुल्म, विषनाशक है। मीठी तोरई पित्तशामक, वातकफवर्धक, रक्तपित्त, श्वासकासज्वरशामक सर है। इनके बीजों का तैल कटु, कटुविपाकी, तीक्ष्ण सारक, अनुलोमक, प्रमेह, कुष्ठ, उदरकृमि तथा शिरःशूल शामक है।

---

1. Luffa Amora, Roxb.
2. Towel gourd.
3. Ribbed lufla.
4. L. Aegyptiaca, Mill.
5. Luffa Acutangula, Roxb.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रयोग—कड़वी तोरई का फल क्वाथ-वामक, रेचक तथा पित्तनाशक होने से कामला, पाण्ड, जलोदर, यकृत् प्लीहा वृद्धि में १ तोला प्रातः सायंकाल पिलाने से अतिलाभ करती है। कामला में शुष्क फल की नस्य दी जाती है। इससे दोषों का स्राव होता है। दीपन होने से अग्नि को उत्तेजित करती है तथा सर तीक्ष्ण होने से मलमूत्र का प्रमाण बढ़ती है और स्रोतों को शुद्ध कर उदर के अंगों एवं यकृत् प्लीहा की क्रिया को सुधारती है। मीठी तोरई के बीजों को पीसकर गरम उपनाह (पुल्टिस) लगाने से प्लीहा शोथ शान्त होती है। पशुओं के व्रणों में पत्तों का कल्क लगाया जाता है। बीजों की गिरी को मीठे तेल में पीसकर अंजन करने से नेत्रों का शुक्ल (फूला) रोग नष्ट होता है। अर्श में हल्दी में मिलाकर लेप करने से लाभ होता है। मीठी तोरई का शाक ज्वरादि में अति उत्तम है।

वक्तव्य—ये शाक जाति की वनस्पतियाँ हैं। शाकों के विषय में निम्न बातें स्मरणीय हैं।

शाकं तु चतुर्विधं पुष्प पत्र कन्द फलाख्यकम्। जीवन्ती सर्वशाकेषु वरा हीनस्तु सर्षपः।
यथोत्तरं च लघुता कन्दनालफलेष्वपि ॥ सपुष्प छदनेष्वेव विजानीयाद्भिषग्वरः ॥
परिशुष्कं तु सर्वशाकं कार्श्यविष्टम्भवातकृत्। रूक्षसिद्धं त्यजेच्छाकं परिजीर्णमभूमिजम्।
हिमानिलादि संजुष्टं शुष्कमन्यत्रमूलकात्। (कै०)

देवदाली (जीमूतः, गरागरी, वृत्तकोषः)

परिचय—प्रसिद्ध लता

उ० स्थ०—सिन्ध, गुजरात, बम्बई, बंगालादि में जलीय स्थानों पर

पुष्पकाल—सितम्बर-अगस्त श्वेतपीत रक्त, तीन भेद हैं

व्य० अं०—पंचांग, विशेषतः फल

मात्रा—चूर्ण-१, १½ माशा

रस—तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—पत्रदोषहर

प्र० अ०—आमाशयान्त्र

वि० गु० क०—वामक-रेचक, ज्वर, अर्श तथा विष शामक

नाम—(हि० पं०) घघरबेल, बन्दाल, सोनैय्या, (बं०) घोषालता (म०) देवडांगरी (गु०) कुकड़वेल, वापला, (क०) हलदि हूविन-सोरे, (ते०) डानरंगडि, (ता०) पनिवीरा (वा० ले०) लूफा एकीनेटा,[1] कर्कटी वर्ग[2]।

गुण—देवदाली रसे पाके तिक्ता तीक्ष्णाविषापहा। वामनी हन्ति गुदजकफशोफकामलाः ॥
देवदालीफलं तिक्त कृमिश्लेष्मविनाशनम्। संस्रनं गुल्मशूलघ्नमर्शोघ्नं वातजितपरम् ॥ (कै०)

देवदाली का सर्वांग कड़वा होता है। किन्तु बीजों का तेल नहीं। फल ककोड़े (ककंटी) के समान—सुपारी या जायफल के समान बड़ा होता है। यह अर्श में विशेष गुणकारी है। उष्णवीर्य (नि० र०) कटु विपाकी, वामक-रेचक, आर्तवजनक-गर्भस्रावक, ज्वर, कामला, उदरकृमि गुल्म, वातश्लेष्म नाशक है। उत्तम यकृत्शोधक है। इन्द्रायण के समान गुणकारी है।

1. Luffa Echinata, Roxb., L. Bindal. 2. Cucurbitaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रयोग--ज्वर, पाण्डु-कामला, पित्ताशय शूल, उदरशूल में शीतकषाय या फाण्ट (१ भाग-देवदाली-२० भाग जल) सेवन कराने से लाभ होता है। किन्तु अतिसार हो जाने पर इसे बन्द कर देना पड़ता है। यकृत् शोथ तथा जलोदर में शीतकषाय (८० में १ भाग) बनाकर १½--२½ तोला की मात्रा में दिन में तीन बार देने से अत्यन्त लाभ होता है। यह पित्त को बाहर निकाल देता है। कफ युक्त श्वास में कफ को निकालने के लिए इसके काढ़े या फाण्ट से वमन कराते हैं। सर्पविष में भी वामक तथा विरेचक होने से विषनाशक है। रजःकृच्छ्रता में क्वाथ पिलाया जाता है तथा फलवर्ती बनाकर योनि में रक्खी जाती है। अधिक मात्रा में प्रयोग से गर्भपात भी हो जाता है। कामला तथा पीत में फलहिम का मस्तक पर लेप करते हैं तथा २-३ बूंद नाक में डालते हैं, जिससे पीला स्राव होता है, दुर्गन्ध तथा दुष्ट दोष बाहर निकल जाता है।

ज्वरों में काढ़ा देने से प्रलाप, भ्रम एवं उष्णता कम हो जाती है। अर्श में इसके काढ़े से गुदा प्रक्षालन, गुड में वर्ती बनाकर लगाने से या धूनी देने से या सेन्धा नमक तथा कांजी में पीसकर अर्शांकुरों पर लेप करने से उनकी शोथ, वेदना शान्त होती है तथा फलों का चूर्ण घी के साथ मिलाकर लेप करने से अर्शांकुर नष्ट हो जाते हैं। आधा शीशी में हिम की नस्य लाभ करती है। तीन फलों को आधापाव जल में हिम बनाकर प्रातःकाल पीने से कामला, उपदंश तथा रक्त की अशुद्धियाँ नष्ट होती हैं। इसकी तीक्ष्णता को नष्ट करने के लिए घी के साथ प्रयोग करना उत्तम है।

मदनः (राठः, गालः, छर्दनः)

नाम--(हि०) मैनफल, (पं० मा०) मैणफल, (ब०) मयनाफल (म०) गेलफल, (गु०) मींढोल, मींढल, (क०) मग्गारे, (ते०) मंग (ता०) मादुकरेर (अं०) इमेटिक नट,[1] (वा० ले०) रेण्डिया[2] ड्यूमीटोरम्, मंजिष्ठा वर्ग[3]।

गुण—वमन द्रव्याणां मदनफलानि श्रेष्ठतमान्याच क्षते नपायित्वात्। (च० सू० २५)

मदनो मधुरस्तिक्तो वीर्योष्णा लेखनोषणः। रूक्षो लघुःप्रतिश्याय ज्वरविप्रधिकुष्ठहा॥ (कै०)

मैनफल का वृक्ष कंटक वाला सर्वत्र रूक्ष पर्वतों पर पाया जाता है। लघु तथा महा भेद से दो भेद हैं। फल का ही उपयोग किया जाता है। पुष्प वर्षा के बाद अगस्त-सितम्बर में आते हैं।

यह मीठा, कटु, तिक्त उष्णवीर्य, कटु विपाकी, रूक्षलेखन, वमनद्रव्यों में श्रेष्ठ, वातानुलोमक, कफ, पित्त, प्रतिश्याय-ज्वर-विद्रधि गुल्म, शोथ-आनाह तथा व्रण रोपक है।

प्रयोग—शोथ में चोट में गोबर में मिलाकर लेप करने से लाभ होता है। अतिसार में ८-१२ रत्ती तक फल चूर्ण अफीम के साथ तथा अरति-कफ-पसीना उत्पन्न करने के लिए २½ से ५ रत्ती तक देना चाहिए। शोथ पर तथा पीप वाले फोड़े पर मैनफल के साथ रेवन्द चीनी का लेप लगाया जाता है।

वमन (उल्टी) के लिए २-३ मैनफल की गिरी को थोड़े से जल में ½ घन्टा भिगो दें। पुनः मसल-छानकर मधु तथा पिप्पली मिलाकर पिला दें। जल ८-१० तोले होना चाहिए, खाली पेट पर पिलाएँ। १५-२० मिनटों में मुंह से पानी आने लगता है गरम जल पिलाने से और भी अधिक शीघ्र वमन आती है। चूर्ण को इस प्रकार बनावें। मैनफल के छिलके को दूर कर तथा बीजों को मोटा पीस कर मोटे कपड़े या साधारण चलनी से छान लें, जिससे बीजों के छिलके दूर निकल जावे, पुनः बारीक चूर्ण कर लें। वमन कराने के लिए ८-१६ रत्ती की मात्रा में प्रयोग कराएँ।

---

1. Emetic nut.
2. Randia Dumetorum.
3. Rubiaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मैषश्रृंगी (विषाणी-तिक्तदुग्धा)

नाम—(हि०) मेढासिंगी, गुड़मार, (म०) कावली (बं०) जोटादूधीलता, (बम्बई) वाकाण्डी, (वा० ले०) जिम्नेमा सिस्वेस्ट्रिस्[1] अर्क वर्ग[2] ।

गुण—श्रृंगीका तुवरा तिक्ता दाहपित्तकफास्त्रहा । निहन्ति तिमिर कासश्वास व्रणकृमीन् ।
मेषश्रृंगी फलतिक्तं कुष्ठमेहकफप्रणुत् । (कै०)

मेढासिंगी, कड़वी, कसैली, शीतवीर्य, दाह-पित्त-कफ, रक्त विकार, कास, श्वास, व्रण कृमि तथा तिमिर रोग नाशक है। इसका फल कड़वा कुष्ठ-प्रमेह तथा कफनाशक है। यह दक्षिण, पश्चिम तथा मध्य भारत में उत्पन्न होती है। मूल चूर्ण वामक, कफनिष्कासक है। १-२ गुंजा की मात्रा में कफघ्न है। १५-३० रत्ती की मात्रा में वामक है। मूल की छाल के सेवन से जी मचलाता है। पसीना आता है तथा कफ निकलने लगता है। वामक मात्रा से पित्त युक्त वमन आते हैं सर्प विष में मूल क्वाथ एरण्ड तेल मिश्रित पिलाते हैं। इससे वमन विरेचन होकर सर्पविष निकल जाता है। दष्ट स्थान पर लेप भी करते हैं। पत्रों का उपनाह व्रण शोथ पर लगाते हैं। १-२ पत्ता चबाने से जिह्वा की मधुर या तिक्त रस जानने की शक्ति नष्ट हो जाती है। अतः मधुमेह में कुछ वैद्य प्रयोग करते हैं। किन्तु यह वास्तविक लाभ नहीं करती, हाँ, कड़वी औषधों को पिलाने से पहले इसे खिलाकर दवाई खिलाने से कड़वापन ज्ञात नहीं होगा।

योग—शिलाजत्वादिवटी-मधुमेहशामक।

शणपुष्पी (पीतपुष्पी, घण्टारवा)

नाम—(हि० बं०) झनझनिया, घुघुरिया सन, खुलखुली (म०) खुलखुल-घागरी, (गु०) घुघुरो (वा० ले०) क्रोटेलेरिया वेरुकोसा[1] अपराजिता वर्ग या शिम्बी वर्ग।

गुण—शणपुष्पी रसे तिक्ता वामनी कफपित्तजित् । कषाया कण्ठहृद्रोग मुखरोगविनाशिनी (ध० नि०)

त्वचारोगों में विशेष उपयोगी है। पत्तों का रस मर्दन करने से त्वचा की खाज-फोड़े फुन्सियाँ नष्ट हो जाती है। मुँह से लार बहने पर भी पत्तियों का रस उत्तम काम करता है।

हिज्जलः (समुद्रफलम्-निचुलः)

नाम—(हि० गु०) समुद्रफल एवं हिज्जल (म०) सत्फल, समुद्रफल (वा० ले०) बेरिंगटोनिआ[4] एक्यूटेन्गुला, लवंग वर्ग[5] ।

गुण—हिज्जलः कफवातघ्नो रेचनो वामकस्तथा । (भाव०)

समुद्रफल वमन और विरेचन कराने वाला तथा कफ और वात को दूर करने वाला है। समुद्रफल का वृक्ष पूर्व-मध्य तथा दक्षिण भारत में दलदल या जलाढ्य स्थानों में होता है। पुष्पकाल मई-जून। फल का उपयोग होता है। बच्चों के कास-श्वास में घिस कर मधु के साथ चटाते हैं। यदि इसे गरम पानी तथा सैन्धव के साथ देवें तो वमन शीघ्र होता है। इससे कफ निकल जाता है। विरेचन भी होता है। फल तिक्तरस-उष्णवीर्य सुगन्धित तथा वामक है। मस्तक पीड़ा में स्त्री दूध में घिसकर नस्य देने से लाभ होता है। दही के साथ लेने से घरन ठीक होती है।

---

1. Gymnema Sylvestris R. q.
2. Asclepiadaceae.
3. Crotalaria Verucosa.
4. Baringtonia Acutangula, gaertn.
5. Myrtaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चौदहवाँ अध्याय

छर्दिनिग्रहणीय वर्ग

वमन शामक या वमन रोधक वर्ग

अब्धिनारिकेल:

नाम--(हि० पं० मा०) दरियाई नारियल. (बम्बई) जहरीनारेल (अं०) सी[1] कोकोनट, (वा० ले०) लोडोयसिया सिचेलेरम्,[2] ताड़ या नारिकेल वर्ग, (म०) दर्याचा नारियल, (गु०) दर्यानु नारेल, (ता०) कडाटरेगे (तै०) समुद्रपुटंकाया। (मल) कडालाटेंगे।

परिचय--यह भी नारियल की जाति का फल है, किन्तु उससे बहुत बड़ा और कठोर, अफ्रीका, अमेरिका आदि के टापुओं में उत्पन्न होने से ही इसे 'समुद्री नारियल' कहा है। फल १०-२५ सेर तक भारी होता है।

गुण तथा प्रयोग—यह समशीतोष्ण तथा कफघ्न, विषूचिका तथा विषों का नाशक है। विषूचिका (हैजा) में इसे अकेला या अन्य औषधियों के साथ मिलाकर जल या अर्क गुलाब में घिसकर पिलाते हैं। जब तक वमन हो रहे हों इसे पिलाते रहें। वमन बन्द होने पर यह प्यास को बुझाता है। शरीर से सारा विष दूर होने पर वमन स्वयमेव बन्द हो जाती है। अफीम वत्सनाभविष में भी पीसकर पिलाते हैं। भिड़ बिच्छू एवं अन्य विषधर कीटों के दष्ट स्थान पर इसका लेप करने से शोथ-दाह-विष दूर होता है। आन्त्रिक ज्वर में स्त्री के दूध के साथ घिस कर पिलाते हैं। बच्चों के वमनातिसार में तथा अम्लपित्त में दरियाई नारियल तथा जहरमोहरा खताई को घिसकर लगाते हैं।

उशीर द्वयम् (नलदं, अमृणालं, वीरणमूलम्)

परिचय--जलीय प्रदेशों में विशेषकर नदियों तालाबों के किनारे, विशेषतः नदियों के किनारे सर्वत्र उत्पन्न होता है।

व्य० अ०--मूल, (खस)

मात्रा--चूर्ण २-४ माशा, क्वाथ ३-६ तोला

रस--तिक्त, मधुर

वीर्य—शीत

विपाक—मधुर

प्र० अ०--सर्वशरीर ताप केन्द्र

वि० गु० क०--शीतल, मूत्रल, दाह-पित्तशामक

नाम--(हि०) खस-गोडर की जड़ (म०) वाला, (गु०) वालो, (बं०) वेणारमूल, खस, (क०) लावच्च, (तै०) वेदवल्लि, बेरु (ता०) वहिवेरु (अं०) कसकस[3] ग्रासं, (वा० ले०) एन्ड्रोपोगोन्[4] म्युरिकेटस्, तृणधान्य वर्ग[5]।

---

1. Sea Coconut.
2. Lodoicea Sechellarum, Comm & Labill.
3. Cucus grass.
4. Andropogon Muricantus Petz.
5. Gramineae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण—उशीरं स्वेददौर्गन्ध्य पित्तघ्नं स्निग्धतिक्तकम् । (सु० च० नि०)
लामज्जकोशीरं दाहत्वक् दोष स्वेदापनयन प्रलेपननाम् । (च० सू० २५)
उशीरं शीतलं रूक्षं स्वादु तिक्तं हिमं लघुः । पाचनं स्तम्भनं हन्ति शोथदाहमदज्वरान् ॥
तृष्णास्रविष दौर्गन्ध्य कृच्छ्रकुष्ठ वमिव्रणान् ॥ (कै० नि०)

खस तिक्त, मधुर, शीत, मधुर, विपाकी, रूक्ष, लघु, पाचन, स्तम्भन, ग्राही, पित्तशामक, मुख-शोथ, श्रम, दाह, मद, वमननाशक, ग्राही, पित्त, रक्त विकार, विष, स्वेद की दुर्गन्ध का नाशक है। हृदय तथा मस्तिष्क को बल देता है। आम दोष, पाचक तथा ज्वरहर है।

प्रयोग—ज्वरों में प्यास तथा दाह होने पर ६ माशा खसखस में ६ दाने कमलगट्टा (केवल बीज) को कूटकर अर्क केवड़ा में भिगोकर देने से अत्यन्त लाभ होता है विशेषकर बच्चों में। तृणपंचमूल क्वाथ का प्रयोग मूत्रल के रूप में तथा षडंग पानीय का आमपाचक, ज्वरशामक तथा तृष्णाहर के रूप में प्रयोग किया जाता है। स्वेदल तथा मूत्रल होने से ज्वर उतरता है। रक्त-दोषों में उशीर चूर्ण का गन्धक के साथ मिलाकर प्रयोग करते हैं। सोठ के साथ हाथ-पैरों का कम्प, लोबान (ऊद) के साथ मिलाकर धूम्रपान से मस्तक-पीड़ा, खस, लालचन्दन, पद्मकाष्ठ—तीनों को समभाग लेकर औटा कर पीने से ताप तथा दाह कम होता है। खस तथा पीपलामूल का समभाग चूर्ण घी में चटाने से तीव्र हृदयशूल मिटती है। इसका अत्तर[1] भी निकाला जाता है। वमन में दो बूंद पोदीने के अर्क में डालकर सेवन की जाती है। खस, धमांसा, श्वेतचन्दन, मुलेठी, मुनक्का, नागरमोथा, जटामांसी, समभाग लेकर क्वाथ बना कर पीने से सुखपूर्वक रेचन होता है। यह उत्तम रक्तशोधक है।

लामज्जकम् (तोयजम-दीर्घमूलम्)

परिचय यह भी उशीर का ही भेद है, किन्तु उसकी अपेक्षा गुण में न्यून है। यह उशीर की अपेक्षा बड़ा होता है। (भावमिश्र) इसके विषय में "लामज्जक मुशीखत पीतच्छवि तृणविशेष" लिखा है। चरक ने दोनों ही के गुण समान लिखे हैं। ह्रवेर (उदीच्य-वालक) इससे भिन्न है।

लामज्जकं हिमं तिक्तं लघु दोषत्रयापहम् । निहन्ति दाहपित्तास्र स्वेद कृच्छ्रत्वगामयान् ।

उशीर तथा लामज्जक दोनों में ही एक सुगन्धि उड़नशील तेल रहता है। जिसके कारण इनमें गन्ध विशेष पाई जाती है। इसका वानस्पतिक नाम एंड्रोपोगोन[2] नारड्स है। गुण तथा प्रयोग उशीर के समान है।

कर्पूरः (घनसार, चन्द्राख्य, हिमोपल)

परिचय—शीशम के समान बड़ा वृक्ष।
उ० स्था०—चीन, फार्मोसा सुमात्रादि
व्य० अ०—सार
मात्रा—१-४ रत्ती
रस—तिक्त कटु
वीर्य—शीत
विपाक—कटु
दोष—पित्त-कफ शामक
प्र० अ०—पाचन संस्थान तथा वातसंस्थान

1. Ottoscent. 2. Andropogon Nardus, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वि० गु० क०––उत्तेजक, वेदना, स्थापन, शुक्रल, स्वेदल, कृमिघ्न

नाम—(हि० म० गु० बं० पं० मा० अ० का०) कर्पूर, कापूर, काफूर (क०) पच्चकर्पूर (ते०) कर्पूरमु (ता०) पुडन् कर्पूरम् (अं०) कैम्पफोरा[1] (वा० ले०) सिनेमोमम्[2] कैम्फोरा, नीज, कर्पूर वर्ग[3]।

वक्तव्य––कर्पूर वृक्ष-विशेषों का सत्व है। जो हिम या दुग्ध के समान श्वेत स्फटिक[4] या गाँठों या चूर्ण रूप (हिमबालुका) में मिलता है। उत्पत्ति के अनुसार तीन प्रकार हैं। (१) भीमसेनी कर्पूर या पक्व कर्पूर[5]।

यह शाल वर्ग[6] की ड्रायोबैलेनोप्स एरोमेटिका[7] नामक वनस्पति का सत्व है। जो स्वाभाविक अवस्था में पाया जाता है।

(२) जापानी[8] या चीनी कर्पूर

यह श्वेत उज्ज्वल स्फटिकाकार होता है। (३) मुक्ता कर्पूर—इसे कैयटदेव ने 'मुक्ताफलं' नाम दिया है। 'ईसाबासो' भी इसी का नाम है। यह एक विशेष प्रकार के वृक्ष के पत्तों से प्राप्त किया जाता है। अतः कैयटदेव ने, पर्णकर्पूर,[9] नाम दिया है। यह दोनों 'अपक्व कर्पूर' कहलाते हैं। कृत्रिम कर्पूर भी बनाया जाता है। जिसे कैयटदेव ने "चीनाकः कृत्रिमः"[10] कहा है। पक्वापक्व कर्पूरों के विषय में आचार्य भावमिश्र ने कहा है––

कर्पूरो द्विविधः प्रोक्तः पक्वापक्वभेदतः। पक्वात्कर्पूरतः प्राहुरपक्वं गुणवत्तरम्॥

गुण––कर्पूरः कटुकस्तिक्तस्सुरभिः शीतलो लघुः। चक्षुष्यो लेखनोवृष्यः कफमेदोविषापहः॥
दाहतृष्णास्यवैरस्य मलदौर्गन्ध्य नाशनः।

कर्पूर-कड़वा-चरपरा, सुगन्धित, शीतल, लघु, नेत्र, लेपन, वाजीकरण, रेचन, कफ, स्वेद, प्यास, दाह कण्ठरोग, कृमि, मुख की दुर्गन्धिनाशक तथा अनुलोमक है।

प्रभाव तथा प्रयोग––बाह्य प्रयोग में यह कृमिनाशन, वेदना, कोथ (संड़ाध) तथा शोथशामक तेलों में डाला जाता है। आमवात, सन्धि शोथ, उद्वेष्टन (मांस-पेशियों में पीड़ा Cramps) वातिक वेदनाएँ, तथा शामक के रूप में पार्श्वशूल, श्वासकास, श्वसनक, वात-कफ, ज्वर आदि में धस्तूर तेल या नारायण तेल, देवदारु तेल में मिलाकर अभ्यंग किया जाता है। कण्डु पामा तथा अन्य दुष्ट व्रणों में मलहर (२½ तोला में २ माशा) बनाकर लगाया जाता है। दान्त खोखला हो जाने पर वेदना होने पर उनमें यह भरा जाता है। २½ तोला कर्पूर, २½ पाव सिरके में गला फिर २½ सेर जल मिला उसमें कपड़े की पट्टी भिगोकर रखने से आमवात, स्नायु तथा मस्तक पीड़ा शान्त होती है। पूयमेह में मूत्राघात हो जाने पर मूत्रेन्द्रिय के ऊपर लेप लगाते हैं। योनिदाह तथा कण्डु में ३ रत्ती कर्पूर की गोली बनाकर दिन में दो-तीन बार रखना चाहिए। कड़वा तेल (सरसों का तेल) अफीम तथा कर्पूर मिलाकर लेप करने से आमवात आदि की पीड़ा मिटती है।

अन्तः प्रयोग––मुख में रखने से पहले शीतलता-पश्चात् गर्मी का अनुभव होता है। यह रक्त भ्रमण लाला स्राव को बढ़ाता है। आमाशय में भी तीक्ष्णगुण के कारण उष्णता और रक्तवाहिनियों का विस्तार तथा पाचक

1. Camphora.
2. Cinnamomum Camphora, Nees. Camphora officinarum Benth.
3. Lauraceae.
4. Crystals.
5. Borneo-Camphora.
6. Dipterocarpeae.
7. Dryobalanops-Aromatica, gaertn.
8. Formosa Camphora.
9. Blumea Camphora.
10. Synthetic Camphor.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रसों का स्राव बढ़ाता है। आमाशय तथा अन्त्रों की गतियों के बढ़ाने के कारण अनुलोमक है। बड़ी मात्राओं में क्षोभ तथा वमन करता है। सुगन्धित तथा क्रमिघ्न होने के कारण मंजनों में (८ में १ भाग) डाला जाता है। अर्क कर्पूर आमाशय तथा अन्त्रों के आध्मान, उदरशूल में अत्यन्त लाभ करता है। अतीसार-वमन तथा विषूचिका में कर्पूर अति उत्तम औषध है। विषूचिका की अन्तिम अवस्थाओं में यह लाभ नहीं करता। मांसपेशियों या वातनड़ियों की निर्बलता से उत्पन्न विबन्ध में लाभ करता है।

हृदय तथा रक्त भ्रमण--प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा यह हृदय को उत्तेजित करता है। हृदय की मांसपेशियों को बल मिलता है तथा उसकी रक्तवाहिनियाँ विस्तृत हो जाती है, जिससे हृदय का पोषण उत्तम होता है। इस प्रकार हृदय की शिथिलता तथा अनियमितता को नष्ट करता तथा नाड़ी को सुधारता है। त्वचा की रक्तवाहिनी को भी विस्तृत करता है जिससे त्वचा में गर्मी मालूम होती है, तथा स्वेद आता है।

उक्त कारणों से यह हृदय शैथिल्य तथा अवरोध में एवं स्वेदल होने के कारण ज्वरों में दिया जाता है। स्वेद लाने के लिए २½ रत्ती कर्पूर तथा ½ रत्ती अफीम को मिलाकर सोंठ के काढ़े के साथ दिया जाता है। ऊपर से कोई भारी कम्बल या रजाई आदि ओढ़ा दें। इससे पसीना आकर आमवात की पीड़ा तथा प्रतिश्याय शान्त होती है। ज्वरों में शरीर के शिथिल और शीत हो जाने पर तथा प्रलाप में १½ रत्ती कर्पूर, हींग १½ रत्ती मिलाकर मधु में गोली प्रति तीसरे घण्टे देना चाहिए। इससे हृदय को बल, तथा शरीर को गर्मी मिलती है तथा प्रलाप बन्द होकर नींद आती है। यह प्रयोग यदि सिर में दर्द उत्पन्न करे तो देना बन्द कर दें।

श्वास संस्थान--प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा फुफ्फुस की रक्तवाहिनियों को विस्तृत करके, श्वास केन्द्र को उत्तेजित करके यह वात तथा कफ स्राव को बढ़ाता है। विशेषकर मादक विषों से (अफीमादि) शिथिल श्वास क्रिया को बढ़ाता है। अतः कागज या धतूर पत्रों के साथ धूम्रपान से शुष्क श्वास-कास का वेग शान्त होता है और प्रतिश्याय में भी लाभ होता है। विशेषकर जीर्ण-कास में अति उत्तम है। कफ तथा दुर्गन्धि को भी नष्ट करता है। ऊपर हिंगुकर्पूरवटी भी श्वास शामक है। खांसी श्वास से यदि छाती में वेदना होती हो तो कर्पूर को तेल में मिलाकर लेप करना चाहिए।

वात संस्थान--मस्तिष्क को उत्तेजित करता है। अधिक मात्रा में लेने से सिर में चक्कर, मोह, उत्तेजना तथा गतिविधियों में असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है। अधिक विष प्रभाव में आक्षेप भी होने लगते हैं पुनः मूर्च्छा तथा सन्यास। वात संस्थान का उत्तेजक होने के कारण यह अनेक वात-व्याधियों, योषापस्मार, अपस्मार, हृदय की धड़कन, कम्प आदि का नाशक है। केले पर कपूर का चूर्ण १० रत्ती रख कर खिलाने से बच्चा सुख से उत्पन्न होता है।

प्रजनन संस्थान--यह प्रजनन संस्थान का उत्तेजक है। योनिशूल, कटिशूल, रजःकृच्छ्रता नाशक है। लघु मात्रा में उत्तम वाजीकरण तथा स्तम्भक है। वीर्यपात तथा प्रमेह में दो रत्ती कर्पूर और आधी रत्ती अहिफेन रात को सोते समय सेवन करने से अत्यन्त लाभ होता है। किन्तु अधिक मात्रा में प्रयोग से यह कामावसादक है। ज्वरों में पसीना लाकर ताप को कम करता है। ९ रत्ती कुनेन, १ रत्ती कपूर, १ रत्ती अफीम मिला ९ गोलियाँ बना ३-४ बार देने से ज्वरों में होने वाली अंगपीड़ा मिटती है। प्रतिश्याय में सूखा जाता है। सिरके में पीसकर दंश पर लेप करने से मक्खी, भिड, तितैया (Wasp) तथा बिच्छू का विष शान्त होता है। मुख पाक में कर्पूर, मिश्री समभाग मिलाकर मुख में छिड़का जाता है। रक्तस्राव में कपूर की धूनी देने से वह बन्द होता है, दाह तथा लुओं के ज्वर में तीन पाव जल में १ तोला कपूर डाल कर २ घण्टे तक रक्खें। पुनः उसमें से २॥ तोला पानी ले इमली का गूदा ३ माशा, शक्कर ३ माशा मिलाकर पिलाते हैं।

निष्क्रमण--बहुत मात्रा तो शरीर में ही नष्ट हो जाता है। शेष वृक्कों, त्वचा तथा श्वास मार्गों से निकलता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विषलक्षण––आमाशय में वेदना, जी मचलाना, वमन, चक्कर दृष्टि में कमी, प्रलाप, उन्मत्तता, आक्षेप, देह की श्यामता, पक्षाघात, ठंडा चिपचिपा पसीना, मूत्र की कमी, सन्यास तथा मृत्यु ।

चिकित्सा––वमन, आमाशय प्रक्षालन, रेचन, शीत तथा गरम, वस्तियाँ, क्षोभक तथा कभी-कभी उत्तेजक पदार्थ यथा विषमुष्टि के योग । इस दशा में मद्य तथा तेल नहीं देना चाहिए ।

योग––(१) कर्पूरवटी (कर्पूररस) अतिसार में ।
(२) कर्पूरासव–मात्रा ५-१५ बूंद वमन, अतिसार में ।
(३) हिंगु कपूरवटी–मात्रा ३ रत्ती सन्निपात में ।
(४) कर्पूर तेल ५–१९ बूंद वमन अतिसार उदरशूलादि में ।
(५) पूर्णचन्द्र रस उत्तेजक वाजीकरण मात्रा १-२ रत्ती ।

निर्विषी

नाम––(हि०) निर्विषी, जदबार, नेपाली-नीलोविष, (वा० ले०) डेल्फिनियम[1] डेन्युडेटम्, वत्सनाभवर्ग[2] ।

परिचय––यह हिमालय में ८-१२ हजार फुट की ऊँचाई पर नेपाल, भूटान, तिब्बत आदि में प्राप्त होते हैं । कन्द वत्सनाभ के समान होता है । किन्तु जहाँ विष पर रखने से सनसनाहट, दाह तथा सुन्नता होती है । वहाँ निर्विष को घिस कर चटाने से ये सब दोष दूर हो जाते हैं । यह रस में कड़वी या मीठी, वर्ण में भूरी एवं गुणों में विषशामक है ।

गुण––कड़वी या मधुर, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, त्रिदोषहर, कफ, वात रक्त सब प्रकार के शोथ तथा विषों की शामक है ।

प्रयोग––वमनशामक के रूप में पानी में घिसकर ४-८ रत्ती की मात्रा में पिलाने से लाभ होता है । यह बलप्रद-हृदय, मस्तिष्क एवं यकृतादि को बल देती है । शोथ तथा शामक होने से लेप लगाते हैं तथा पिलाते हैं । प्रतिश्याय तथा अन्य कफ रोग, वातरोग, त्वचा की सुन्नता, अर्दित पक्षाघातादि अथवा वाजीकरणों में इसका प्रयोग होता है । मात्रा ४ रत्ती १ माशा गरम दूध के साथ देना उत्तम है ।

पुदीना (वान्तिहारी, रुचिश्य-रोचनी)

नाम––सर्वभाषा पोदीना-पुदिना (अं०) मिन्ट[3], मार्शमिन्ट[4] आदि कई भेद हैं । जिनके वानस्पतिक नाम अलग-अलग हैं । जंगली पुदिनां-मेन्था सिल्वेस्ट्रिस्[5], (ii) पहाड़ी पुदिना मेन्थाव्रिडिस्[6] (iii) जलपोदिना–मेन्था एक्वेटिका[7] तुलसी वर्ग[8] । पिपरमेन्ट भी इसी जाति का क्षुप है । इसे 'मेन्था पिपरेटा[9] कहते हैं ।

परिचय––पोदीना का क्षुप सुपरिचित है । व्यंजनों में दीपन-पाचन के लिए डाला जाता है । इसी जाति के एक विशेष क्षुप से जो सत्व (पिपरमेन्ट) निकाला जाता है, वह काश्मीरादि हिमालय तथा अन्य यूरोप के देशों में उत्पन्न होता है । गुणों में सब समान हैं । केवल गुणों की मात्रा का भेद है ।

गुण––पूतिहा कटुरुष्णाच रोचनो दीपनस्तथा । हन्तिवातंकफं शूलं वम्याध्मान क्रिमिस्तिथा ।

---

1. Delphinium denudatum wall.
2. Ranunculaceae.
3. Mint.
4. Marsh mint.
5. Mentha Sylvestris Linn.
6. M. Viridis Linn.
7. Mentha aquatica.
8. Labiateae·
9. Mentha piperata Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पोदीना कटुरस, उष्णवीर्य कटु विपाकी, रुचिकारक, दीपन, पाचन, वातानुलोमक, शोथशामक, वेदनास्थापन, स्वेदन, आर्त्तवजनक तथा अनुलोमन है।

प्रभाव तथा प्रयोग—बाह्य प्रयोग में—सत पोदीना लगाने से पहले क्षोभ एवं उत्तेजन पुनः जड़ता उत्पन्न होती है। जिससे वेदना शान्त होती है। इसे नारायण तैलादि में मिलाकर वेदनाओं में लेप किया जाता है। पिपरमेन्ट को सुरा (१–१०) के अनुपात अथवा मलहर सिक्थ तैल २½ तोला सतपोदीना १० रत्ती मिलाकर लेप करने से वेदना तथा गुद कण्डु शान्त होती है। सत पोदीना को कर्पूरादि में मिलाने से द्रव बन जाता है। वस्तुतः पिपरमेन्ट, कपूरसत अजवायन, तीनों को मिलाने से जो कपूर द्रव बनता है उसे 'कर्पूर तैल' कहा जाता है। यह उत्तम वातानुलोमन, उदरशूलादि नाशक है। अमृत धारा नामक पेटेन्ट औषधि के समान ही गुणकारी है। प्रतिश्याय, पीनस जुकामादि में २ तोला चाक खड़िया में ३ रत्ती सतपोदीना मिलाकर नस्य लेने से लाभ होता है। यह उत्तम कृमिघ्न है। १ : २० के अनुपात से सुरा (मद्य) में घोलकर कृमिनाशन के लिए प्रयोग करते हैं। गर्भावस्था में पोदीना की वर्ति रखने से गर्भपात होता है। बिच्छु-भिड आदि के दष्ट स्थानों पर लेप लगाने से विष का प्रभाव व वेदना नष्ट होती है। अन्तः प्रयोग में पाचन सम्बन्धी रोगों में विशेष लाभ करता है। अरुचि, वमन, अतिसार, उदर-आध्मान, अग्निमान्द्य में पोदीना का रस या काढ़ा पीने से लाभ होता है। पोदीना, कालीमिर्च, घोटकर मिश्री मिलाकर पिलाने से मूत्रवृद्धि होती है। पोदीना का अर्क उक्त रोगों में पर्याप्त लाभ करता है।

विरेचक औषधियों ½–१ रत्ती की मात्रा में पिपरमिन्ट डालने से उद्वेष्टन (ऐंठन) नहीं करते। पोदीना काली मिर्च, सैन्धा नमक, हींग, कालीद्राक्ष, जीरा समान भाग निम्बुरस से भावना देकर चूर्ण बना लें। यह पाचक, क्षुधावर्धक तथा अम्लपित्तनाशक है। हिक्का, वमन, अरुचि नाश के लिए पोदीना ३⅕ तोला, लवंग २ तोला, मस्तगी १¼ तोला मिलाकर दें।

मुस्तकत्रयम् (अभ्रनामक)

परिचय—नागरमोथा की कई जातियाँ हैं। सभी जलाशयों के किनारे बालुमय किनारे पर होता है। कन्द का व्यवहार होता है।

पुष्पकाल—जून-जुलाई
मात्रा—१-२ माशा तक
रस—कटु, कषाय, तिक्त
वीर्य—शीत
विपाक—कटु
दोष—त्रिदोषशामक, विशेषकर पित्त तथा कफ
प्र० अ०—अन्त्र
वि० गु० क०—ग्राही, शीतल, स्वेदल, मूत्रल, आमपाचक, ज्वरघ्न

वक्तव्य—मुस्तक की निम्न जातियाँ हैं। (१) अद्रमुस्तक (साईपरस रोटन्डस्[1]), नागरमोथा (२) कैवर्त मुस्तक (साईपरस टेन्यूइफ्लोरस[2]), (३) मुस्तक (साईपरस् परटेन्युइस[3]), (४) क्रान्तमुस्तक साईपरस टयूबरोसस्[4] मुस्तक वर्ग[5]।

---

1. Cyperus Rotundus Linn. C. Scariosus Br.
2. C. Tenuiflorus.
3. C. Pertenuis.
4. C. Tuberosus.
5. Cyperaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नाम--(हि०) मोथा-नागरमोथा, (बं०) मुत्ता, (म०) लवालामोथ (गु०) मोथ-नागरमोथा (क०) कोन्नारि गेड्डे, (ते०) तुगंमुस्तलु, (ता०) मुत्तकच् ।

गुणा--मुस्तं तिक्तं हिमं ग्राही दीपनं पाचनं कटु । कषायं कफपित्तास्र तृड् ज्वरारुचि जन्तुजित् ।
परिपेलवं हिमं तिक्तं कषायं कटु कान्तिदम् । कफपित्तास्र वीसर्प कुष्ठ कण्डु विषप्रणुत् ।। (कै०)
अनूपदेशेयज्जातं मुस्तकं तत्प्रशस्यते । तत्रापि मुनिभिः प्रोक्तं वरं नागरमुस्तकम् ।। (भाव०)

मोथा कड़वा, कसैला, शीतवीर्य, कटु विपाकी, दीपन, पाचन कफपित्त, रक्त रोग, प्यास, अरुचि, वीसर्प, कण्डु विष, अतिसारनाशक है ।

प्रयोग--यह आमपाचक संग्राही, स्वेदल, मूत्रल, हृदय तथा वातनाड़ियों को शक्ति देने वाला तथा दाह प्यासशामक है ।

वमन तथा आमातीसार में अदरक-नागरमोथा घिसकर पिलाने से, ज्वरों में तुलसी आदि के साथ काढ़ा बनाकर पिलाने से मूत्रल तथा पसीना आता है । नामरमोथा मुंह में रखने से जोंके नहीं लगती, ज्वरातीसार, रक्तार्श, उदरशूल में नागरमोथा भावित दूध लाभ करता है । वमन, जीमचलाना, तृष्णा में इसे चन्दन के समान घिस कर रखते हैं । मुखपाक में इसके क्वाथ में गण्डूष किये जाते हैं । क्षय, पित्तज्वर, वातरक्तशामक है ।

योग--(१) षडंगपानीयम् ज्वरों में दाह-तृष्णा तथा आमदोष नाशार्थ ।
(२) शतपत्रादि चूर्ण मात्रा १-३ माशा अम्ल पित्त में ।
(३) चन्द्रकलारस २-४ रत्ती प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र ।

अम्लिका (चिंचा-तिन्तिडीक)

परिचय--सदाहरित वृक्षपत्र तथा कच्चा फल, रस में अम्ल, वीर्य में उष्ण तथा विपाक में कटु, पक्वफल, मधुराम्ल, शीतवीर्य, मधुर विपाकी ।

उ० स्थ०-- प्रायः सर्वत्र

व्य० अं०--पंचांग, विशेषकर पक्व फल

मात्रा--१-३ माशा चूर्ण, फल मज्जा २-४ तोला

दोष--कच्चाफल, पत्र पित्तवर्धक, पक्वफल वातपित्तशामक

प्र० अ०--पाचक अंग

वि० गु० क०--हृदय, दीपन, पाचन मृदुरेचक ।

नाम--(हि०) इमली, (गु०) आंबली, (म०) चिंच (व०) तेतूल, इम्बली (अं०) टैमरिन्ड,[1] (अ०) तमूरेहिन्दी (वा० ले०) टेमेरिन्डस इन्डिका[2] लिन्न, शिम्बी या पूतिकरंज वर्ग ।[3]

गुण--चिंचात्यम्लाभवेदामा पक्वातु मधुराम्लिका । वातली पित्तदाहास्रकफ दोष प्रकोपिणी ।
अम्लिकायाः फलंत्वाममंत्यम्लं लघु पित्तकृत् ।
पक्वं तु मधुराम्लंस्यात् मेदोविष्टम्भवातजित् । चिंचापत्रंच शोफघ्नं रक्तदोषव्यथापहम् ।
तस्य शुष्कत्वचाक्षारः शूल मन्दाग्निनाशनः । (रा० नि०)

इमली अम्ल कषाय रस वाली, अपक्वफल, अत्यम्ल, उष्णवीर्य, वातहर, पित्तकफवर्धक, दाहकारक तथा

1. Tamarind.
2. Tamarindus Indica, Linn.
3. Caesalpinoideae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रक्तदूषक है। पक्व फल मधुर, अम्लरस, समशीतोष्ण, रेचक, वायु तथा आध्मान हर, विष्टम्भ रक्तपित्त, पिपासा, दाहशामक है। पत्र शोथशामक, क्षार उदरशूल मन्दाग्निनाशक है।

प्रयोग--बाह्य--पत्र कल्क व्रण शोथ पर लगाते हैं। नेत्राभिष्यन्द पर पुष्पों का कल्क बांधा जाता है। गले तथा मुखपाक शोथ में त्वचा या पक्व क्वाथ से कुल्ले कराये जाते हैं।

अन्तः—गरमी के दिनों में लू से बचने के लिए तथा ज्वरों में पित्त-दाह, विबन्ध, पिपासा, वमन, जी मचलाना अरुचि आदि में; पित्त, दाह, विबन्ध, पिपासा, वमन को शान्त करने के लिए पानक (पाना) बनाकर दिया जाता है। पानक में इमली के पके फल के गूदे की अपेक्षा १२ गुना जल डालना चाहिए। इसमें शर्करा, नमक तथा काली मिर्च मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है। यह पाण्डुरोग, कामलानाशक भी है। कोष्ठबद्धता नाशक भी है। इनमें कोष्ठबद्धता (कब्जी) मूत्रकृच्छ्र में पके फलों का शर्बत बनाकर दें। गोंद तथा बीज ग्राही तथा पौष्टिक है। बीजों की मींगी का चूर्ण श्वेतप्रदर तथा वीर्य निर्बलता नाशक है। पुष्परस रक्तार्शशामक, पत्र रस आमातिसार नाशक है। पंचांग या त्वचा का क्षार पाचक है। क्षार उदरशूल मन्दाग्नि नाशक है। भल्लातक विष में पत्रस्वरस पिलाया जाता है। बच्चों को पाण्डुरोग, मन्दाग्नि, विबन्ध, क्षुधानाशक होने पर पक्व इमली फल का गूदा तथा अमलतास का गूदा मिलाकर और शर्बत बनाकर (नमक शर्करा मिलाकर) पिलाने से अत्यन्त लाभ होता है। श्वेत कुष्ठ में वाबची तथा इमली के बीज की मीगी घिसकर लगाते हैं। इसका अति सेवन कभी-कभी कास उत्पन्न करता है। अतः शर्करा, उन्नाव या आलुबुखारा के साथ देना चाहिए।

आमलकी (शिवा-धात्री, कौल, अमृतफलं)

परिचय--सुपरिचित गुल्म (झाडी)

उ० स्थ०--सर्वत्र, बनारस का प्रसिद्ध

व्य० अं०—फल

पुष्प--फाल्गुन-वैशाख

फल--आश्विन से माघ तक

मात्रा—चूर्ण ६-१२ माशा

रस--अम्ल, कषाय, मधुर, तिक्त, कटु

वीर्य--शीत, विपाक मधुर

दोष--त्रिदोषशामक

वि० गु० क०--मूत्रल, मृदुरेचक, पौष्टिक, पित्तशामक।

नाम--(हि०) आंवला, आमला (म०गु०) आंबला, (बं०) आमलको, आम्ला (को०) आबालो, (फा०) आमलः (वा० ले०) फाइलेन्थस् एम्बेलिका लिन्न,[1] एम्बिलका[2] आफिसिनेलिस्, वर्ग एरण्डादि[3]।

गुण--अम्लंसमधुरंतिक्तं कषायं कटुकं सरम्। चक्षुष्यं सर्वदोषघ्नं वृष्यमामलकीफलम्। (सु० सू० ४६)

विद्यादामलके सर्वान् रसान् लवणवर्जितान्। (च० सू० २७)

आमलकी स्वेदमेदोहराऽम्ला शुक्रलाहिमा। भग्नसन्धानकृत्केश्या पिपासाकफ पित्तहृत्।

तन्मज्जा तु तुवरा स्वादस्तृटछर्यानिलपित्तहा। (कै०)

---

1. Phyllanthus Emblica, Linn.
2. Emblica officinalis.
3. Euphorbiaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

धात्री का त्रिदोषहरत्व तथा रसविमान—हन्ति वातं तदम्लत्वात् पित्तंमाधुर्य शैत्यतः।
कफं रूक्ष कषायत्वात् फलेभ्योऽधिकंच। (सु० सू० ४६)

आंवला, लवण को छोड़कर शेष सारे रसों वाला, शीतल, वयः स्थापक, रसायन, विरेचनोपग, रक्तस्थापन, अनुलोमन, आयुष्य, वृष्य, पौष्टिक, त्रिदोषहर, पित्तरोग, स्वरभंग, कामला, रक्तपित्तशामक तथा नेत्र तथा बुद्धिवर्धक है।

अम्ल होने से वात को, पित्त को, मधुर और शीत होने से कफ को, रूक्ष और कषाय होने, से त्रिदोषशामक है। आंवले केश्य, प्यास, कफ, पित्तशामक, भग्नास्थि को जोड़ने वाले तथा विबन्ध हर हैं। इसके बीज की गुठली कसैली, मधुर, वातपित्तवमन, प्यासशामक है। यह कुछ रूक्ष होता है। किन्तु दूध में २४ घण्टे भावना देने से यह रूक्षता कम हो जाती है। नेत्रों को तथा बालों को शक्ति देने के लिए उन्हें आमले के जल से धोते हैं। पित्त रोगों में, रक्तपित्त, मदात्यय, नकसीर एवं अर्शादि में दाह, रक्तस्राव, मूत्रकृच्छ्रता को दूर करने के लिए आमले का शीतकषाय शर्करा पीने के लिए देते हैं। तृष्णा, स्वरभेद तथा कास में इसे शर्करा में मिलाकर चूसा जाता है। यकृत्, हृदय, आमाशय तथा वात संस्थान के लिए यह अति उत्तम पौष्टिक है। आमले का मुरब्बा या अवलेह उक्त अवयवों को शक्ति देता है। अतिसार को शान्त करता है। पित्तज वमन, जीर्णज्वर, कास में लाभ करता है। च्यवनप्राश, लोहासव, अशोकघृत, जीर्णज्वर तथा कासशामक है। जीर्ण प्रतिश्याय, जिसमें कफ बहता हो, प्रमेह, श्वेतप्रदर में आंवला, दारुहल्दी, हल्दी, गिलोय, मुलेठी, समभाग मिलाकर काढा बनाकर देते हैं। अत्यार्तव में आमलकी चूर्ण १ तोला मधु से दें। सोमरोग में आमला-रस पकाकर केला, मधु और मिश्री को मिलाकर देने से लाभ होता है। वमन में आंवला रस या चूर्ण, मधु १ तोला सफेद चन्दन मिलाकर सेवन कराया जाता है। श्वेतप्रदर में आंवले के बीजों को पानी के साथ पीसकर मधु-मिश्री मिलाकर पिलाने से अतिलाभ होता है। संग्रहणी में मेथी में मिलाकर दिया जाता है। खुजली खसरादि में फलों का बहुत मोटा चूर्ण मला जाता है। वीर्य सम्बन्धी रोगों में अति लाभ करता है। गठिया में २ तोले सूखे आंवले, २-४ तोला गुड़ मिलाकर १½ पाव पानी में काढ़ा बनाकर पिलाने से लाभ होता है। इसके सेवन के समय लवण यथा सम्भव कम प्रयोग करें। यदि करना हो तो सैन्धव का प्रयोग करें। पित्तशूल में मधु के साथ आंवले का चूर्ण, अर्श में, १५ माशा आमले का चूर्ण, १५ माशा मेंहदी के पत्तों को पानी में रात को भिगोकर प्रातःकाल मसलकर छानकर पियें। यह उत्तम अम्ल पित्तशामक है।

आधुनिकों के अनुसार इसमें जीवनीय 'सी' तत्व पाया जाता है। जो रक्तस्राव को रोकने, पित्त का नाश करने में अत्यन्त उत्तम है। आमला त्रिफला का अंग है।

योग—(१) च्यवनप्राश (२) धात्रीरसायन (३) आमलकी लोह (४) अमलकी रसायन।

सुवर्चलाद्वयम्

परिचय—क्षुद्र, क्षुप[1]

उ० स्थ०—वर्षा में प्रायः सर्वत्र विशेषतः वंग और दक्षिण देश

व्य० अं०—बीज, तेल

पुष्प—पीतवर्ण वर्षा में

मात्रा—बीजचूर्ण १½–३ माशा

1. यह दो प्रकार की है। पीतपुष्पा—जिसका वानस्पतिक नाम ऊपर दिया गया है। दूसरी 'वेतपुष्पा', जिसे वनस्पति शास्त्र में गाइनेन्ड्रॉपसेस् पेन्टाफिला (Gynandropses, Pentaphylla, D. C.) नाम दिया गया है। गुणों में दोनों समान हैं। दोनों का वर्णन यहाँ किया गया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रस--कटु, तिक्त, कषाय,

वीर्य--उष्ण

विपाक--कटु

दोष--वातकफहर

प्र० अ०--पाचनसंस्थान

वि० गु० क०--अनुलोमक कृमिहर

नाम--(हि०) सौंचल हुरहर, (गु०) तलवणी, (म०) तिलवण, (मल०) आर्यवाल कावेल, (वा० ले०) क्लिओम[1] विस्कोसा (वर्ग)[2] वरुणा (बं०) तिलपर्णी या हुरहुरिया (अं०) वाइल्ड[3] या डोगमस्टर्ड ।

गुण--अजगन्धाकटूष्णा स्याद्वातगुल्मोदरापहा । कर्णव्रणार्ति शूलघ्नी च ज्वरापहा । (रा० नि०)

हुलहुल, कटु, तिक्त, उष्ण, रूक्ष, लघु, सर, वात-गुल्म तथा उदर रोग, कर्ण रोग, उदर शूल, व्रण, ज्वर, उदर कृमिहर है ।

प्रयोग--बीजों की गन्ध से वृश्चिक दंश (बिच्छू) का विष उतर जाता है। यह अत्यन्त तीव्र होती है। स्वरस सिद्ध तेल कर्णशूल में उत्तम है। निरन्तर प्रयोग से बहरापन मिटता है। कल्क को बांधने से दाह तथा फफोले होते हैं। ३½ माशा बीजों के चूर्ण के सेवन से गोलकृमि मरते हैं। बच्चों के लिए ३ रत्ती से १२ रत्ती तक मात्रा है। अफरा और उदरशूल मिटता है। अन्तःशोथ में भी यह उपयोगी है। ज्वरों में चिरायते के फाण्ट के साथ, अतिसार में बेल के शर्बत के साथ, उपदंश के फोड़ों में उशवा (सारिका) के अर्क के साथ, यकृत्, प्लीहावृद्धि में दारुहरिद्रा के काढ़े के साथ सेवन कराते हैं। वातार्श में शर्करा के साथ तथा पत्तों को शाक रूप में सेवन से अर्श शान्त होती है। मन्दाग्नि नष्ट होती है। बारी के बुखार में पत्तों का कल्क दाहिने हाथ की कलाई पर बाँधने से वहाँ छाला उत्पन्न होता है और बारी का ज्वर रुक जाता है। छाले पर शान्त्यर्थ मुलेठी तथा घी लगा देना चाहिए।

हुरहुर (सफेद फूल वाली)

यह बूटी खेत, खंडहर एवं परती जमीन तथा गन्दी भूमि में अधिक उत्पन्न होती है। इसका क्षुप २ से ४ फीट तक ऊँचा होता है। इसकी शाखें टेढ़ी-मेढ़ी और रोम युक्त होती है। इसके पत्ते प्रायः पाँच दल वाले होते हैं। और प्रत्येक दल १½-२ इंच लम्बे, अंडाकार और अनीदार होते हैं। पत्रदण्ड दो इंच तक लम्बा होता है। कभी-कभी सात दल वाले और कहीं तीन दल होते हैं। डंडी के अन्त वाले भाग में छोटे-छोटे त्रिदल पत्ते सटे से रहते हैं और इन पर क्रमशः फूल और फलियाँ लगा करती हैं। फूल सफेद रंग के आते हैं और फलियाँ २-३ इंच लम्बी और गोल होती हैं। इनमें से राई के समान कालापन मिश्रित भूरे रंग के बीज निकलते हैं। बरसात के पानी पड़ने पर बीज अंकुरित होकर पौधे के रूप में बढ़ते हैं। बरसात के अन्त तक इसके क्षुप पुष्प फलादि युक्त बहुत देखने में आते हैं और बसन्त ऋतु तक नष्ट हो जाते हैं।

"सुवर्चला हिमा रूक्षाः स्वादुपाका सरा गुरुः ।
प्रपित्तला पटुः क्षारा विष्टम्भ कफवातजित् ।
अन्या तिक्ता कषायोष्णालघुरूक्षासरा कटुः ।
निहन्ति कफवातस् श्वासकासारुचि ज्वराम् ।
विस्फोट कुष्ठ मेहाश्य योनिरुक् कृच्छ्र पाण्डुता ।" (कै०)

1. Cleome Viscosa, Linn.
2. Capparideae.
3. Wild, Dog mustard.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आ० म० गुण-दोष—कसैली, गरम, दस्तावर, हलकी, चरपरी, कड़वी, रूखी तथा कर्ष, रक्त-पित्त, श्वास, खांसी, अरुचि, ज्वर, विस्फोटक, कोढ़, प्रमेह, रुधिर विकार, योनिरोग, कृमि, पाण्डुरोग, पथरी और सुजाक का नाश करने वाली है।

प्रयोग—(१) इसकी जड़, पत्ते और बीज, औषध के काम में आते हैं। इसमें हींग के समान गन्ध आती है। इसके बीज राई के समान गुणकारी हैं और इनमें से तेल निकलता है। यह कृमिनाशक और उत्तेजक एवं चमड़ी को लाल करने वाला है। इसका बाहरी और भीतरी दोनों प्रकार का प्रयोग किया जाता है। अर्थात् इसको खाने और लेप कर्म दोनों काम में लाते हैं। इसके सेवन से उदर के गोल कीड़े नष्ट हो जाते हैं। और लगाने से चमड़ा लाल हो जाता है। पत्ते पीसकर घाव पर लगाते हैं और जड़ का काढ़ा ज्वर में दिया जाता है। कुचले हुये पत्ते का लेप चमड़ी को लाल कर फोड़ा उत्पन्न करता है।

(२) बाइण्टे (उद्वेष्ठन ऐंठन) पर इसके पत्तों के काढ़े को ५-६ तोले की मात्रा में दोनों समय सेवन कराने से लाभ होता है।

(३) उदर-कृमि में इसके बीजों के चूर्ण को शक्कर के साथ सेवन कराने से कृमियों का नाश होता है।

(४) दाह पर बीजों को पीसकर लेप करने से फायदा होता है।

(५) कान की पीड़ा और सूजन पर इसके पत्तों के स्वरस को गरम कर कान में डालने से पीड़ा शान्त होती है।

(६) फोड़े पर इसके पत्तों को बाँधने से या पत्तों को सिरके अथवा नींबू के रस या गरम जल में पीसकर लगाने से लाभ होता है।

(७) साधारण ज्वर में इसकी जड़ के काढ़े का पान कराने से ज्वर दूर हो जाता है।

(८) उदर-कृमि पर इसके बीजों के चूर्ण में समभाग मिश्री का चूर्ण मिलाकर ४ से ८ माशे की मात्रा से दोनों समय दो दिन तक सेवन करके तीसरे दिन प्रातःकाल एरंड का तेल पिलाने से कृमि नष्ट हो जाते हैं। बालक के अवस्थानुसार ५ रत्ती से २० रत्ती तक देनी चाहिए।

(९) उपदंश में इसके पत्तों को घोट और मिश्री मिलाकर पान करने से और इसके छूंछ को बाँधने से लाभ होता है।

(१०) समभाग काली मरिच और सफेद हुलहुल के पत्तों को पीसकर चने प्रमाण गोलियाँ बनाकर देने से शीतज्वर आराम करता है।

(११) भूतज्वर में इसकी जड़ को कान में बाँधना चाहिए।

(१२) गलगण्ड पर इसके पत्ते और लहसुन को पीस और टिकिया बनाकर बाँधने से गलगण्ड फूट जाता है और वह बह कर साफ हो जाता है।

(१३) सब प्रकार के विष पर इसके १½ तोले बीजों को पीसकर पिलाना चाहिए।

(१४) कर्णशूल में इसके स्वरस में सेंधा नमक, मधु और कड़वा तेल मिला एवं गुनगुना कर कान में डालने से पीड़ा शान्त होती है।

(१५) बारी से आने वाले ज्वर के दिन हुलहुल के पत्तों को दाहिने हाथ की कलाई पर बाहर की ओर रख कर उस पर एक छोटी टिकिया बाँधने से वहाँ एक छाला उत्पन्न होकर ज्वर दूर हो जाता है। इसके बीजों के चूर्ण को चिरायते के अर्क के साथ सेवन करने से भी ज्वर का नाश हो जाता है।

सरल-उपचार

(१) अर्श रोग में हुलहुल के पत्तों के काढ़े से गुदा धोने से व पत्तों का शाक दही के साथ खाने अथवा एक भाग बीज और दो भाग मिश्री के चूर्ण का २-३ माशे की मात्रा में सेवन करने से उपकार होता है। (२) इसके केवल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बीजों के चूर्ण को ६ माशे की मात्रा में प्रातः काल पानी के साथ सेवन करने से भी फायदा होता है। (३) हुलहुल के बीजों को अजवायन और गुड़ युक्त सेवन करने से बहुमूत्रता दूर होती है। (४) अगर किसी की दाढ़ में कीट लगी हो तो इसके पत्तों का रस दाढ़ में भर देने से कीड़ा मर जाता है। और दर्द भी दूर हो जाता है। (५) इसके स्वरस की नस्य देने से पीनस के कीड़े मर कर झड़ जाते हैं। (६) इसका क्वाथ पीना कुष्ठ में लाभप्रद है। (७) इसके पंचांग का चूर्ण सेवन करने से कफ नष्ट हो जाता है। (८) हुलहुल की पत्ती २० नग, काली मिर्च २० नग पीस कर मटर के बराबर गोली बनाकर बलानुकूल एक अथवा २-३ गोली प्रतिदिन सेवन करने से मलेरिया ज्वर नष्ट होता है। (९) ज्वर वेग से पहले हुलहुल का रस और मकोय का रस मालिश करने से शीत (हाथ-पैरों पर) मिलाकर ज्वर नष्ट हो जाता है। (१०) इसके क्वाथ से व्रण धोने से व्रण के कृमि नष्ट हो जाते हैं। (११) हुलहुल तथा सौंफ के रस में त्रिकुटा चूर्ण मिलाकर पीने से विषम ज्वर तथा उससे बड़ी तिल्ली नष्ट हो जाती है। (१२) इसके बीजों को सिर्का में पीस कर मस्तक पर लेप करने से शिरःशूल आरःम होता है। (१३) हुलहुल का स्वरस दद्रु स्थान को खुजला कर मलने से जल्द आराम होता है। (१४) इसके स्वरस का बिच्छू के काटने पर नस्य देते हैं तथा नमक युक्त रस कान में भी डालते हैं। बिच्छू-दंश स्थान पर लुगदी बाँधते हैं तो आराम आता है। (१५) हुलहुल के बीज १ तोला, बकायक के बीज १ तोला, कंजे की गिरी १ तोला, नागकेसर १ तोला, चारों द्रव्यों को बारीक कूट-पीस कर ५ तोले गुलकन्द में २-३ माशे की गोलियाँ बना लें, ३-३ घण्टे के पश्चात् १-१ गोली दें। ऊपर से उष्ण दुग्ध या जल पीयें। इस प्रयोग का कुछ समय तक सेवन करने से दोनों प्रकार के अर्श में अवश्य लाभ होता है।

करमर्दकः (दृढ़कण्टकः, क्षीरफलः)

नाम—(हि० पं०) करौंदा, (ब०) करम्जा, (म०) करवेद (गु०) करमदां (अं०) जेस्मिन् फ्लावर्ड,[1] (वा० ले०) करिसा करण्डस[2] लिन्न, अर्क वर्ग[3]।

गुण—करमर्द्द गुरूष्णाम्लं रुच्यं पित्तकफास्रकृत्। तृड्वातजित् सरं पक्वं लघु स्वादु कफस्राजित्॥

करौंदा कच्चा—अम्ल, उष्ण, पित्त, कफ तथा विकारकार, पक्व सर, लघु, मधुर, कफ, रक्त तथा पित्त वात और तृष्णाशामक है। यह पित्त की अधिकता शामक, क्षुधावर्धक तथा प्यास शामक है। जड़ के लेप से मक्खियाँ नहीं बठती। इनका शाक या चटनी मसूढ़ों का रोगशामक है। सन्तत ज्वरों में तथा काली खाँसी में पत्तों का रस या काढ़ा लाभ करता है। जलोदर १-१०० तोला तक पत्ररस क्रमशः १-१ तोला प्रतिदिन बढ़ाने से अत्यन्त लाभ होता है। इसके पुष्प पौष से चैत तक लगते हैं। आषाढ़-श्रावण में फल लगते हैं।

तरुणी (शतपत्री-चारुकेसरा-कर्णिका)

परिचय—सुपरिचित गुल्म
उ० स्था०—प्रायः सर्वत्र
पुष्पकाल—चैत-बैशाख, कई जातियाँ वर्ष भर पुष्पित
मात्रा—६-१२ माशा
रस—कड़वा, कटु
वीर्य—शीत
विपाक—मधुर

---

1. Gesmin Floward Carandes.
2. Carissa Carandas Linn.
3. Apocynaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोष--त्रिदोषघ्न

प्र० अ०--हृदय, अन्त्र

वि० गु० क०--शीतल, सर, हृद्य

नाम--(हि० म० गु०) गुलाब, (बं०) गोलाब, गोलाप (क०) सेवन्तिगे, (ते०) गुलाबि पुष्पु (ता०) रोजा- पुष्पं (अं०) कैबेज रोज,[1] (वा० ले०) रोजा सेण्टिफोलिया,[2] शतपत्री या तरुणी[3] वर्ग। गुलाब की अनेक जातियाँ हैं। गुणों में सब समान।

गुण--कर्णिका कटुकातिक्ता शीतला शुक्रला लघुः। ग्राहिणी दीपनी हृद्या वर्ण्या दोषत्रयापहा ॥ (कै०)

गुलाब के फूल तिक्त, कटु कुछ कसैले तथा मधुर, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, ताजा फूल सारक, शुष्क पुष्पग्राही, मन तथा हृदय को बल देने वाला, पित्तशामक, सुगन्धित, लघु, दीपन, त्रिदोषशामक, वर्ण्य रसायन है।

प्रभाव तथा प्रयोग--यह मस्तिष्क, हृदय तथा पाचक अंगों को बल देता है। ताजे गुलाब का रस या अर्क नेत्र की लाली काटता है। दन्तशूल में इसके काढ़े से कुल्ला कराते हैं। शुष्क-पंखड़ियाँ संकोचक है। गुलाब जल (अर्क) सिरका समभाग, पानी १० भाग मिलाकर, शरीर के तीव्र ताप को कम करने के लिए, इस द्रव में कपड़ा भिगोकर सिर पर पट्टी रक्खी जाती है। दाह-प्यास-हृदय की धड़कन मूर्च्छा, यकृत् निर्बलतानाशक है। पसीना बहुत आने पर और उसमें दुर्गन्धि होने पर फूलों को बारीक चूर्णकर शरीर पर मलते हैं। मुख पाक में इनको चबाने से आराम होता है। इसकी पुष्प-खण्ड (गुलकन्द) सौम्य विबन्ध (कब्ज) नाशक है। यह बल्य, हृदय, मस्तिष्क बलवर्धक तथा पौष्टिक है। अम्लपित्त तथा पित्तरोगों में अति उत्तम है। गुलाब-फल का केसर (गुलाब का जीरा) उत्तम ग्राही तथा संकोचक हैं। रक्त-श्वेत प्रदर सोम रोगों के द्रव को सुखाकर गर्भाशय को संकुचित करता है तथा अतिसार को शान्त।

(१) गुलाब जल बनाने की विधि—उत्तम गुलाब के दलपत्र (पंखुड़ियाँ) १ सेर जल ४ सेर में डालकर रात भर भीगने दें। प्रातः नाड़ी यन्त्र या अर्कयन्त्र से अर्क निकाल लें।

(२) पुष्पखण्ड गुलकन्द बनाने की विधि—पुष्प पत्र १ भाग, (खण्ड०) बूरा २ भाग, पुष्प पत्रों को साफ कर मर्तबान में लगाएँ। पुन. गुलाब पुष्प पत्रों की तह और चीनी की तह लगाते जाएँ। इस प्रकार मर्तबान भरकर ४० दिन तक धूप में रखने से गुलकन्द बन जाता है।

योग--शतपत्र्यादि चूर्ण, अम्लपित्तशामक

वक्तव्य--जंगली गुलाब की एक जाति में पीताभ श्वेत रंग के फूल आते हैं। उन्हें सेवती (कुब्जक) (Rose-Alba) कहते हैं। संस्कृत में 'कुब्जक' कहते हैं।

द्राक्षा (गोस्तनी, बृंहणी-स्वादी)

परिचय—लता प्रायः पावर्त्य प्रदेशों में सर्वत्र

पुष्पकाल—देशानुसार भिन्न-भिन्न समय

व्य० अं०--फल

मात्रा--१-२ तोला औषधार्थ. भक्षणार्थ यथाशक्ति पाचन शक्ति के अनुसार

रस--मधुर, अनुरस, अम्ल, कसैला

वीर्य--अपक्व-अम्ल, और उष्ण तथा पक्व द्राक्षा शीत

---

1. Cabbage Rose.
2. Rose Centifolia, Linn.
3. Rosaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विपाक—मधुर

दोष—वात-पित्तशामक, कफवर्धक

प्र० अ०—सर्व शरीर, धातु-रक्त तथा पाचक अंग

वि० गु० क०—अतिपौष्टिक, बल्य, सर, रक्तवर्धक, हृद्य

नाम—(हि० पं०) बड़ी मुनक्का (छोटी बीजरहित) दाख, किसमिस, सौगी (ताजाफल) अंगूर (ब०) अंगूर-द्राक्षा (गु०) धराख, किसमिस (म०) द्राक्षा (क०) द्वीपद्राक्षी (ते०) गोस्तनी पण्डु (ता०) दिराक्षाफलम् (अं०) (ताजेफल) ग्रेप्स[1] (सूखे) रेजिंस्[2] (वा० ले०) विटिस विनिफरा[3], द्राक्षादि वर्ग[4]।

वक्तव्य—द्राक्षा काली और लाल भेद से दो प्रकार की होती है। दोनों का ही उपयोग किया जाता है। फल में शर्करा पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। इसका कसैलापन कषायाम्ल[5] तथा दुग्धाम्ल[6] के कारण होता है। यह फलोत्तम कही गई है। अवस्था भेद से इसके गुणों में भेद आ जाता है। औषधि में पक्व द्राक्षा का या ताजे पके अंगूरों का प्रयोग करना चाहिए।

गुण—मधुरा वातपित्तघ्नी, साम्ला तु कफपित्तदा। द्राक्षाम्लोष्णा सरा गुर्वा वातघ्नी कफ पित्तदा ॥
पक्वा स्निग्धा सरा स्वर्या स्वादु पाकरसा हिमा। हृद्या सा तुवरा वृष्या चक्षुष्या सृष्टमूत्रविट् ॥
कोष्ठमारुत्कृद्गुर्वी कफपुष्टिरुचिप्रदा। निहन्तिवातपित्तास्र तिक्तास्यात्वक्षतक्षयान् ॥
रक्तपित्त ज्वरश्वास तृष्णादाहमदात्ययान्। तद्वद् गोस्तनीद्राक्षा स्वाद्वी वृष्यतमामता ॥ (कै०)

मीठी दाख वात-पित्तशामक अम्ल, कफपित्तकारक उष्ण, गुरु, मृदु रेचक तथा वातशामक है। पक्व द्राक्षा (मुनक्का) मधुरस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, मृदुरेचक, हृद्य, नेत्र्य, मलमूत्र को निकालने वाली, पौष्टिक, रुचिकारक, कफवर्धक, वातपित्त, क्षत, क्षय, रक्तपित्त, ज्वर, तृष्णा-दाह मदात्यय, शुष्ककासशामक है। गोस्तनी द्राक्षा (किसमिस) मधुर तथा पौष्टिक है। अंगूर-पाचक, मृदुरेचक, स्निग्ध-मूत्रल, रक्तवर्धक तथा सौमनस्यजनन है। किसमिस या मुनक्का स्निध तथा कफ निष्कासन भी हैं।

प्रयोग—जिन रोगियों को उपवास कराया जाता है, उन्हें मुनक्का खिलाना लाभप्रद है। यह हृद्य, यकृत् को बल देने वाला है तथा शरीर को पुष्ट करता है। इसका बीज ग्राही है अतः उसे निकाल कर प्रयोग करना चाहिए। इसे कोष्ठबद्धतादि में मल मृदुकरणार्थ (बीज निकाल कर) प्रयुक्त होती है। यह पाचक रक्तशोधक-वर्धक है। शर्बत—दाह, ताप-प्यासशामक तथा मलमूत्र प्रवर्तक है। काण्ड की राख को जल में घोलकर पिलाने से पथरी की उत्पत्ति रुक जाती है।

मन्दाग्नि, आमातिसार, अतिसार तथा जलोदर में द्राक्षा का शर्बत अन्य औषधियों के अनुपान रूप में देने से अत्यन्त लाभ होता है। अंगूर का सिरका (शुक्त) भी बनाया जाता है। यह अजीर्ण तथा उदरशूलशामक है। इसमें नमक डाल कर पिलाने से वमन बन्द होती है। पितज्वर-दाह शान्ति के लिए आमला-द्राक्षा, अम्लपित्त में आमला-द्राक्षा-हरीतकी, कफ में द्राक्षावासाक्वाथ के प्रयोग से अतिलाभ होता है। मलग्रन्थि में द्राक्षा या अंगूररस के बाद हरड़ का चूर्ण तथा मुखरोगों में द्राक्षाक्वाथ का गण्डूष, स्वरभेद तथा शुष्क कास में द्राक्षा का आचूषण किया जाता है। हृदय दौर्बल्य तथा हृदय की धड़कन में निम्न प्रयोग उत्तम है।

हरी किशमिश के 40 दाने रात को अर्क-गुलाब (गुलाब जल) में भिगो दें। प्रातःकाल किशमिश खाकर

---

1. Grapes.
2. Resins.
3. Vitis Vinifera. Linn.
4. Vitaceae.
5. Tannic acid.
6. Malic acid.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ऊपर से अर्क-गुलाब पी लें। शारीरिक अशक्तता तथा पाण्डु रोग में भी अति लाभप्रद है। बसन्त ऋतु में इसकी डाली काटने से एक प्रकार का रस बहता है जो त्वचा रोगों तथा नेत्र रोगों में लेपनार्थ प्रयुक्त होता है।

योग--(१) द्राक्षासव, द्राक्षारिष्ट, अंगूरासव, मात्रा--१½-२½ तोला समान जल के साथ भोजन के ½ घंटा पश्चात् रक्तवर्धक, निर्बलतानाशक, क्षुधावर्धक, मृदुरेचक।

(२) द्राक्षादि गुटिका--४ रत्ती से ८ रत्ती तक आचूषणार्थ, स्वरभेद, शुष्क कास में।

(३) द्राक्षादि चूर्ण--मात्रा १-३ माशा, अम्ल पित्त में।

पालंकी (चौरितपत्रिका-छुरिका)

नाम--(हि० पं०) पालक, (मा० ग० म०) पालख, (बं०) पालक, (क०) मुकुन्दन, (अं०) स्पिनेभिआ[1] (वा० ले०) स्पिनेसिआ ओलिरेसिआ[2], वास्तूक वर्ग[3]।

गुण--पालक्या मधुरारूक्षा शीतानिलप्रदा। विष्टम्भिनी स्वादुपाका भेदिनी पिच्छिलागुरुः।
अश्लेष्मला विषश्वास पित्तमदापहा। (कैं०)

पालक का शाक सुपरिचित एवं सर्वत्र प्राप्य है। यह पालक मधुर रस-कटु, अनुरस, शीतवीर्य, मधुर विपाक वायुवर्धक, मृदुरेचक, पिच्छिल-गुरु, पित्त, विषश्वासशामक तथा कफ को बढ़ाने वाली है।

पित्त के रोगों तथा श्वास में इसे पथ्य के रूप में देते हैं। अश्मरी में पत्तों का ताजा रस लाभ करता है। गले के दर्द में पालक का रस शर्करा मिलाकर पिलाते हैं। फुफ्फुस के रोगों में विशेष लाभप्रद है। इससे मूत्र भी खुलकर आता है। शीतप्रकृति वालों को मेथी के साथ मिलाकर पिलायें।

पीलुद्वयम् (पीलु महापीलुः विरेचनः)

नाम--(हि० म० बं०) पीलु, (पं०) पीलु, वणजाल, (गु०) खारीजाल, (मा०) झाल, (क०) गेणिमर, (तै०) गुणिय (ता०) पेरुन्गोलि, (अं०) टूथब्रश[4] ट्री (फा०) दरख्ते मुखवाक, (वा० ले०) साल्वेडोरा पर्सिका,[5] (महापीलु) साल्वेडोरा[6] ओलिऐडस, पीलुवर्ग[7]।

परिचय--पीलु के वृक्ष रुक्ष प्रदेशों राजस्थान, पंजाब, गुजरात-बम्बई आदि में उत्पन्न होते हैं। यह गुजरात, बम्बई आदि में उत्पन्न होता है। पुष्प पौष-पौष मास में आते हैं। बड़े पीलु के फल पकने पर खाए जाते हैं। यह मीठा चरपरा होता है।

गुण--तिक्तं पित्तकरं तेषां सरं कटु विपाकी च। तीक्ष्णोष्णं कटुकं पीलु सस्नेहं कफवातजित्॥

(सु० सू० ४६)

मधुरस्तु महापीलु कषायो विषनाशन। पित्तप्रशमनोरुच्चः आमघ्नो दीपनीयकः॥ (स० नि०)

पीलु (वृक्ष) तिक्त, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, तीक्ष्ण, कुछ स्निग्ध, सारक, ज्वरहर, पित्तवर्धक, वात कफ, अर्श तथा वस्ति रोग शामक है। छोटा पीलु कटु, कषाय, मधुराम्ल, स्वादिष्ट, दीपन, गुल्म तथा अर्शनाशक है। बड़ा पीलु का फल मधुर, वृष्य, रोचक, दीपन, पित्त, विष तथा आमदोष नाशक है।

---

1. Spinach.
2. Spinacea Oleracea, Linn.
3. Chenopodiaceae.
4. Tooth Brush Tree.
5. Salvedora persica Linn.
6. S. Oleides, Dene.
7. Salvedoraceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रयोग--बाह्य प्रयोग में लेप करने से दाह तथा छाले उत्पन्न करता है। पत्तों के रस को गरम कर लेप करने से गठिया का दर्द कम होता है। मन्द ज्वर में ६-६ तोले काढ़ा (छाल का) दिन में दो बार पिलाना चाहिए। गोमूत्र में पत्तों को पीसकर लेप करने से गण्डमाला मिटती है। सूखी शाखा की दातून दाँत को स्वच्छ तथा दृढ़ बनाती है। पीलु का तैल लेप करने से अर्शशामक है। यह तैल अभ्यंग से आमवातशामक है। पत्तों का क्वाथ रेचन है।

फल्गु (काकोदुम्बरिका, मलपु, श्वित्रादि)

परिचय--प्रसिद्ध वृक्ष ६-१० फुट ऊँचा

प्रा० स्था०--प्राय: सर्वत्र (जंगली तथा बोया हुआ)

व्य० अ०--पंचांग, फल, पत्र तथा दूध

पुष्पकाल--४ वर्ष की आयु से २० वर्ष तक फलता है। वर्ष में दो बार--आषाढ़-सावन, माघ-पौष

रस--त्वचा, तिक्त, कषाय, फल-मधुरकषाय

वीर्य--शीत

विपाक--त्वचा का कटु, फल का मधुर, त्वक्, कफ-पित्तशामक, फल-त्रिदोषनाशक

प्र० अ०--अन्त्र

वि० गु० क०--फल पौष्टिक, शीतल, स्निग्ध, मृदुरेचक त्वचा-ग्राही स्तम्भन

नाम--(हि०) अंजीर (म० गु० फा०) अंजीर (अं०) फिग्स[1] (बं०) डूमूर, अंजीर (वा० ले०) फाईकस केरिका[2] लिन्न, वर्ग क्षीरी वृक्ष या वट वर्ग[3]।

गुण--फल्गु तु तुवरातिक्ता शीतला स्तम्भनी जयेत्। कफपित्त व्रणश्वित्र कुष्ठ पाण्ड्वस्र कामला॥ (च० सू०)

फलं तु शीतलं स्वादु कषायं गुरु तर्पणम्। शुक्रलं मधुरं पाके स्निग्धं विष्टम्भि बृहंणम्॥

ग्राही वातकफपित्त क्षतदाह विषास्रजित्॥ (क०)

तर्पणं वृंहणं फल्गु-गुरु विर्ष्टाम्भ शीतलम्। (च० सू० २७)

अंजीर (छालादि) तिक्त, कषाय, शीत, स्तम्भन (ग्राही) कफपित्त व्रण, श्वित्र, कुष्ठ, पाण्डु, कामला, रक्तपित्तशामक है। फल मधुर, कसैला, भारी, पौष्टिक, तृप्तिकारक, वीर्यवर्धक, स्निग्ध, ग्राही (कच्चा फल और पक्का मृदुरेचक) त्रिदोषशामक, क्षत, दाह, विष रक्तपित्तशामक है। यह कोष्ठ को मृदु करने वाला, दोष पाचन, मूत्रल तथा कफोत्सारी है।

प्रयोग--बाह्य--छाल को सिरके या पानी के साथ पीसकर लेप करने से बहुत अध्ययन या सोच-विचार से उत्पन्न मस्तिष्क पीड़ा शान्त होती है। हरे या सूखे अंजीरों को पीसकर या औटा कर लेप करने से फोड़े-फुंसी एवं ग्रन्थियों की सूजन उतरती है। यह व्रण-शोथशामक भी है।

अन्त:--फल के रूप में सेवन करने से पौष्टिक, बलदायक, वीर्यवर्धक, रक्तवर्धक और दाहशामक है। अत: राजयक्ष्मा, क्षत, शोष, पाण्डु आदि रोगों में सेवन कराया जाता है। यह स्रोतों का शोधक है। अत: विबन्ध (कब्जी) यकृत्, प्लीहा में स्रोत रोध हो जाने पर अतयन्त लाभ करता है तथा प्लीहा-शोथशामक है। ताजे अंजीर का कुछ दिनों तक सेवन करने से पुरानी कब्ज नण्ट होती है। सिरके में भिगोकर खाने से एक दो दस्त आते हैं। सूखी खांसी में अंजीर सेवन से कफ पतला होकर निकलता है। यह कृश शरीर को स्थूल बनाता है। श्वित्र (सफेद कोढ़) में

1. Figs.
2. Ficus Carica, Linn.
3. Urticaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अंजीर के पत्तों का रस या त्वचा चूर्ण का लेप लगाने से तथा त्वचा का काढ़ा सेवन करने से उसका बढ़ना बन्द हो जाता है। अत्यधिक प्रयोग आमाशय तथा यकृत् के लिए अहितकर है। सिकंजबीन (सिरके का शर्बत) इसके अहितकर प्रभाव को नष्ट करता है। दिन में दो या तीन फल खाने चाहिए। यह वातरोगों, अर्श, वृक्को की व्याधियों, शरीर की निर्बलतादि सब में प्रयोग किया जा सकता है।

मधु (माक्षिकं-क्षौद्रं-सारघ)

नाम—(हि०) शहद, मधु (म० गु०) मध (सि०) माखी (बं०) मोधु (अं०) मेल,[1] (शुद्ध मधु) मेल डेप्युरेटम्[2]।

शहद सुपरिचित पदार्थ है। इसके अनेक भेद हैं। मधु एकत्र करने वाली मक्खी की जातियों के अनुसार तथा पुष्पों की प्रकृति के अनुसार इसके कई भेद हैं। साधारणतः लाल और सफेद दो भेद हैं। सफेद में कण भी जम जाते हैं। आयुर्वेद में अनुपान और सहपान में मधु का बहुत प्रयोग होता है। आधुनिक ग्लिसरीन का कार्य वैद्य मधु से ले सकते हैं। शुद्ध मधु मिलना कठिन है। शुद्ध मधु की परीक्षा कठिन है। यह बत्ती पर लगाने से तैलवत जलता है, कपड़े पर नहीं लगता तथा मक्खी और कुत्ते इसे नहीं खाते, इत्यादि परीक्षाएँ की जाती हैं। किन्तु अनुभव से ही शुद्ध का पता लगता है।

विशेष गुण—स्निग्ध, स्रोतों का शोधक, योगवाही, मृदु रेचक, बल्य, व्रणरोपण है।

मधु की जातियाँ—मधुनि माक्षिकं क्षौद्रं पौत्तिक भ्रमराख्यकम्। छात्रोछालकदालंच यथापूर्व गुणोत्तरम्।

मधु संचय करने वाले मक्षियों के अनुसार ये भेद हैं। विस्तार एतद् विषयक ग्रंथों में देखना चाहिए। (कै०)

गुण—मधुमधुरं कषायानुरसं रूक्षाग्निदीपनं, वर्ण्य स्वर्यं लघु सुकुमारं लेखनं हृद्यं बाजीकरणं शोधक रोपण, चक्षुष्यं प्रसादनं, सूक्ष्ममार्गनुसारी, पित्त श्लेष्म मेदोमेह श्वास कासातिसारच्छर्दि तृष्णा हिक्का प्रशमनांल्हादि त्रिदोष शमनं च।

तल्लघुत्वात् कफघ्नं पैच्छिल्यान्माधुर्यात् कषायभावाच्च वातपित्तघ्नं। बृंहणीयं नवं मधु नातिश्लेष्महरं सरम्। मेदः स्थौल्यापहं ग्राही पुराणमति लेषनम्। दोषत्रयापहं पक्वाममल्लं त्रिदोषकृत्। तद्युक्तं विविधैर्योगैर्निहिन्यादामयान् बहून्। नाना द्रव्यात्मकत्वाच्च योगवाहि परं मधु। (सु० सू० ४५)

मधुशर्करा पुनश्छर्दतिसारहरीरूक्षाछेदनी प्रसादनी कषायमधुरा मधुर विपाका च। (सु० सू० ४५)

मधु मीठा, कषाय, अनुरस मधुर विपाकी (पुष्पों के अनुसार शीत या उष्ण वीर्य) दीपन, लेपन, वर्णकारक स्वर-कण्ठ के लिए उत्तम, हृद्य वाजीकरण, शोधन, रोपण, रक्तप्रसादन, सब स्रोतों में प्रविष्ट होने वाला त्रिदोषहर, वसा (मोटापा) प्रमेह, श्वास-कास, अतिसार, वमन, प्यास, हिचकीशामक है। लघु होने से कफ नाशक, पिच्छिलता, मधुरता तथा कसैला होने से वातपित्तशामक है। नया मधु पौष्टिक, कुछ कफवर्धक मृदुरेचक है। पुराना शहद (एक वर्ष पुराना) स्थूलता, प्रमेहनाशक तथा ग्राही है। अनेक द्रव्यों के योग से रोगनाशक तथा परम योगवाही है।

मधु शर्करा वमन-अतिसार-रूक्ष, छेदक रक्त प्रसादन तथा विपाकी है।

आमपक्वभेद से गुण भेद—मध्वामंविषद्हन्ति सेव्यं तेनाल्पशो मधु। क्षौद्रस्य पाके चाष्टांशे जलं क्षिपेत्। क्षिप्तं जले निमग्नं स्यादथवा पिच्छिलंभवेत्। वस्त्रेदर्व्यावलेपीस्यान् मधुपाकस्यलक्षणम् (कै०)

कच्चा (आम) मधु विष के समान है। उसे अल्प मात्रा में ही सेवन करना चाहिए। मधुपाक में ८ भाग शहद में एक भाग जल मिलाकर मृदु अग्नि पर पाक रखें।

1. Mel. 2. Mel depuratum.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पाक-परीक्षा--जल में डालने से डूब जाए अथवा पिच्छिल हो जावे, वस्त्र या कपड़े में लग जावे।

सूचना—विषैले पुष्पों से एकत्र किया गया मधु वामक तथा विरेचक भी होता है।

प्रयोग—मधु को मुख में धारण करने से मुख और गले से स्राव अधिक होता है। अतः मुखशोथ, मुखव्रण प्यास वमन, सूखी खांसी तथा निगलने की कठिनाई दूर होती है। अतः मुख में मधु का कवल धारण कराया जाता है तथा कुल्ले कराने के काम आता है। इससे मुखव्रण भी शान्त होते हैं। पौष्टिक तथा बड़ी मात्रा में सारक है। बच्चों को एरण्ड तैल पिलाने के लिए शहद का सहपान उत्तम है। रुधिर शोधन के लिए बकरी के दूध में आठवाँ भाग मधु मिलाकर पीना चाहिए। सैन्धा नमक तथा काली मिर्च खानी चाहिए। सांभर नमक लाल मिर्च नहीं। पावभर दूध प्रारम्भ करके २ छटांक प्रतिदिन बढ़ाते हुए दो सेर तक बढ़ाएँ। स्थूलता (मोटापा) नाश के लिए गरम जल में आठवाँ भाग मधु मिलाकर पिलाना चाहिए। हिचकी में मयूरपंखभस्म मधु के साथ खिलावें। क्षयज प्यास में मधु जल मिलाकर पीने से तथा मधुवर्त्तिका योनि में प्रविष्ट करने से गर्भाशय का मल निकल जाता है। नेत्र रोगों में कमल मधु डाला जाता है।

मधुच्छिष्टम् (सिक्थम्)

नाम--(हिं० पं० मा० बं०) मोम (म०) मेण (गु०) मीण (अं०) वेक्स। (Wax)

गुण—सिक्थकं स्निग्धमधुरं भूतघ्नं भग्नसन्धानकृत्। हन्तिवीसर्प कण्ड्वामान् व्रणरोपणमुत्तमम्। (ध० नि०)

मोम स्निध मधुर कटु व्रणरोपक, भग्नसंधान कारक, फटे-कटे अंगों का जोड़ने वाला, वीसर्प, कण्डुनाशक है। यह शोथ को विलीन करता है, वेदना स्थापन है। मोम को गरम कर दन्तशूलादि में सेवन करने से, वेदना शोथ शान्त होती है। स्वरभंग, छाती का दर्द तथा शुष्क कास शामक है।

प्रयोग—मोम की ५-१० रत्ती तक की मात्राएँ प्रयोग कर सकते हैं। अतिसारादि रोधक औषधियों में इसे मिलाने से उनकी शक्ति बढ़ जाती है। ७-८ माशा मोम में २ माशा नमक मिलाकर गुदवत्ती बनाकर घी से स्निग्ध करके देने से अफरा तथा उदरशूल और कब्जी नष्ट होती है। एक बार वर्ती गुदा से निकल आए तो फिर दे दें। वात तथा आमवात की वेदना में मोम के तैल का मर्दन करते हैं। अन्त्रों के व्रणों में आधा तोला मोम पिघलाकर उतना ही जैतून का तैल (Olive oil) मिलाकर वस्ति दी जाती है।

योग--(१) सिक्थतैल--तिल तैल ४ भाग, मोम एक भाग। मलहरों के बनाने में काम आता है। (२) मधूच्छिष्टादि तैल, अग्निदग्ध पर।

मूर्वा (मोरटा-तेजनी-मधुरसा)

गुण--मूर्वा स्वादुः स्वादुपाक गुरुष्णातिक्ता सरा। जयेत् त्रिदोष कुष्ठास्रमेह मेदोवमिज्वरान्॥ (कै०)

मूर्वा एक संदिग्ध द्रव्य है। कोई इसे मोरवेल तथा अन्य मरोडफली समझते हैं। यह बहुत प्रयोग में नहीं आती।

माणकम् (कसालुः महाकन्दः)

नाम—(हिं०) मानकन्द (बं०) मानकच्चू (म०) कांसेआलु (क०) केसबिन (वा० ले०) एलोकेसिआ[1] इण्डिका, सूरण वर्ग।[2]

---

1. Alocacia Indica Schott.　　　2. Aroideae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यह सर्वत्र जलाढ्य स्थानों पर मिलता है तथा बोया भी जाता है। कन्द पत्र काण्ड काम में आते हैं। विशेषतः पाचन--मृदुरेचक, मूत्रल पौष्टिक तथा दुग्धवर्धक और शोथहर है। पत्रग्राही तथा रक्त स्रावरोधक है।

गुण—मानकन्द मधुर, कटु, अनुरस, शीतवीर्य, गुरु-मधुर विपाकी, कफपित्तनाशक, विष्टम्भक अरुचि शोथ तथा रक्तपित्तशामक हैं। कन्द का शाक अर्श तथा कब्जी में चूर्ण का मंड जलोदर-सर्वांग शोथ में लाभ करता है। पत्तियों की डंठलों का आटा शोथ के रोगियों को सेवन कराया जाता है। कन्द का आटा आरारुट तथा साबूदाने का उत्तम प्रतिनिधि है। मन्दाग्नि वाले को उत्तम, मांसवर्धक है।

लोणिका द्वयम् (बृहत् लघुभेदेन)

नाम--वृहल्लोणिमा (घोटी) (हिं०) बड़ी नोनी, बड़ा कुल्फा, (ब०) लोनिया साक (म०) घोल-मोठी-घोल, (गु०) मोठी ल्हुणी, (अं०) कामन पर्सलेन,[1] (वा० ले०) पोटर्युलेका[2] ओलीरेसीया।

(२) लघु लोणिका--(हिं०) छोटीलूणी, नोनियाँ साक (पं०) लूणक (म०) घोल (गु०) लूणी (वा० ले०) पोर्टचुलेका[3] क्वाड्रिफिडा, लोणिका वर्ग।[4]

गुण--लोणिका .... शाकं गुरुरूक्षं च प्रायो विष्टभ्य जीर्यति। मधुरंशीतवीर्यं च पुरीषस्यचभेदनम्। (च० सू० २७)

लोणिका .... प्रभृतयः--स्वादुपाक रसाः शीता कफघ्ना नातिपित्तला।
लवणानुरसाः रूक्षाः। सक्षारा वातलाः सराः। (सु० सू० ४६)

लोणी शाक मधु लवण अनुरस, शीतवीर्य, मधुरविपाकी, रूक्ष, गुरु, प्रायः वायु करके पचती हैं, मल को पतला करती है।

प्रभाव तथा प्रयोग--मूत्रल-पित्त शामक, दीपन, रक्त स्तम्भक। वृक्क तथा बस्ति शोथ शामक, सुजाक की जलन को मिटाता है। कहीं से भी रक्त बहने पर इसका रस स्राव बन्द करता है। बीजों की फंक्की लेने से अन्त्रों की कला बलवती हो जाती है और उनकी धारणा शक्ति बढ़ जाती है। जिससे बारबार दस्त की आशंका तथा ऐंठन (मरोड़े) शान्त होते हैं। बाहर की जलन तथा दाह मिटाने के लिए इसके ताजे पत्तों का रस लगाया जाता है। बीजों का चूर्ण, अथवा रस वृक्क-मूत्राशय एवं फुफ्फुस के रोगों में दिया जाता है। ज्वरों में दाहादि नाश करती है।

वास्तूकं (शाकराज, क्षारपत्रम्)

नाम--(हि०) बथुआ (बं०) बथूवाशक (म०) चाकवत (गु०) चिलनीमाजी (अं०) गूजफूट[5] (वा० ले०) चिनोपोडियम् एल्बम्[6], पालक वास्तूक वर्ग[7]।

गुण--वास्तुको मधुरः क्षारः पाकेस्वादुः कटुर्लघुः। पाचनो रोचनो हृद्यो मेधाग्निबलशुक्र कृत्॥
त्रिदोष कृमिकुष्ठार्शः प्लीहोदावर्तहारकः॥ (कै०)

बथुआ प्रायः सर्वत्र जौ या गेहूँ के खेतों में पाया जाता है। पंचांग का व्यवहार होता है। बड़ा तथा छोटा भेद से दो प्रकार का है। उत्तम मूत्रल तथा शोथ शामक, यकृत्प्लीहा के स्रोतों का शोधक है। यह मधुर, कटु क्षारीय

---

1. Common Purslane.
2. Portulaca, oleracea, Linn.
3. Portulaca, Quadrifida, Linn.
4. Portulaceae.
5. Goose Foot.
6. Chenopodium Album Linn.
7. Chenopodiaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मधुर विपाकी, उष्णवीर्य, त्रिदोषशामक, पाचन, हृद्य, कृमि, कुष्ठ आध्मान तथा प्लीहावृद्धिनाशक, बल, मेधा अग्नि और वीर्यवर्धक है।

प्रयोग—पित्त, यकृत तथा तिल्ली के रोगों में बथुआ अति उपयोगी है। उदर कृमियों में बथुवे के अर्क में सैन्धानमक डालकर पीते हैं। उदररोगों—वृक्काशोथ, जलोदर, संग्रहणी आदि में अकेले बथुवे की रोटी, साग आदि का प्रयोग अत्यन्त लाभ करता है। १॥ तोले बीजों को आधासेर जल में उबालकर पिलाने से सुख प्रसव होता है तथा प्रसव पश्चात् होने वाले रोग नष्ट होते हैं।

शाक-आध्मान विबन्ध अर्श, आदि में उत्तम लाभ करता है। थोड़ी-सी वायु उत्पन्न करता है। अतः इसमें सैंधानमक तथा काली मिर्च मिलाकर खाना उत्तम है। उष्ण-शोथ-कच्छु कामला में पत्र लेप या पत्रों से स्वेद लेना उपकारक है। कास-उरा-क्षत, राजयक्ष्मा-कामलादि प्रायः सभी रोगों में पथ्य के रूप में दे सकते हैं। पत्रशाकों में यह सर्वश्रेष्ठ है।

विभीतकः (अक्षः कर्षफलः, मधुबीज)

परिचय—सुपरिचित उच्च वृक्ष, समग्र भारत में प्राप्त।

पुष्पकाल—माघ-फाल्गुन

व्य० अं०—फल

मात्रा—३-१२ माशा

रस—कषायः

वीर्य—उष्ण

विपाक—मधुर

दोष—पित्तकफनाशक, त्रिदोषशामक

प्र० अ०—फुप्फुस-कला

वि० गु० क०—स्वर्य, सर, रसायन

नाम—(हिं० पं० मा०) बहेड़े, बहेड़ा (बं०) बहेरा, बोहोरा, (म० गु०) बहेड़ा, (अं०) बेलेरिक मायरोबेलेन्स[1] (वा० ले०) टर्मिनेलिया[2] बेलेरिका, हरीतकी वर्ग[3]।

गुण—भेदनं लघु रूक्षोष्णं वैवस्वर्यं क्रिमिनाशनम्। चक्षुष्यं स्वादु पाक्याक्षं कषायं कफपित्तजित्।
वैभीतको मदकरः कफमारुत नाशनः। (सु० सू० ४६)

बहेड़ा कषाय, उष्णवीर्य, मधुर विपाकी, रूक्ष, लघु, रस, रक्त, मांस भेद धातुओं में उपस्थित दोषों का नाशक, सारक, अनुलोमन चक्षुष्य, केश्य, स्वरभेद. कफ, उत्क्लेश (जीमचलाना) कृमि, पित्तरोग तथा कासशामक है।

बहेड़ा की मींगी कषाय, लघु-मादक, कफवायु तृषा शामक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—कषाय होते हुए भी बहेड़ा मृदुरेचक है तथा उष्णवीर्य है। स्वर शोथ, दाह आदि का शामक है। स्वरभेद शुष्क कास में पुटपक्व बहेड़े का छिलका मिश्री या सैन्धानमक के साथ मिलाकर चुसाने से लाभ होता है। सिर में चक्कर आने पर बिभीतक यवासा का काढ़ा मिश्री मिलाकर पिलाना चाहिए। नेत्र शोथ में इसको घिसकर लेप लगाया जाता है। बकरी के मूत्र में वासा, कण्टकारीलघु,बहेड़ा, सैन्धानमक, उबाल कर-सुखा-गोली बनाकर चूसने से स्निग्ध तथा रूक्ष दोनों प्रकार की खासियाँ ठीक होती है। अतिसार में बहेड़े की छाल ग्राही

1. Beleric Myrobalans.
2. Terminalia Belerica, Roxb.
3. Combretaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

होने से लाभ करती है। मींगी का अंजन करने से नेत्र का फूला (शुक्र) रोग नष्ट होता है। मिलावे की शोथ में मींगी का लेप लगाया जाता है।

मींगी ३०-४० खाने से मादक है। आलस्य, अचेतनपना, मस्तकपीड़ा वमन होती है। १०० तोले मींगियों में से ३० तोले तैल निकलता है। यह तैल अति उत्तम केश्य है। यह त्रिफला का भाग है।

सूरणद्वयम् (अर्शोघ्नः, चित्रदण्डकः)

नाम--(हि०) सूरण, जिमिकन्द, ओल, (वं०) ओल, (म० गु०) सूरण, (क०) चूर्णगड्डे (तै०) कन्दगड्ड, (ता०) करुण (अं०) एलेफन्टस[1] फूट (तेलुगु) पोपेटो[2] (वा० ले०) एमर्फोफेलस्[3] केम्फन्युलेटस्, सूरणवर्ग[4]।

गुण—सूरणः कटुको रुच्यः दीपनः पाचनस्तथा। कृमिदोषहरो च वातगुल्मार्शसंहितः॥

श्वासं कासं च प्लीहानं निवारयति सेवितः। (ध० नि०)

वनसूरण कन्दस्तु विशेषादर्शसंहितः। गुल्मे स्थौल्ये तथा वाते श्लेष्मवाते हितः परम्। (कै०)

सूरण कटु सुरुचिकर, दीपन, पाचन, कृमिदोष नाशक, वातगुल्म तथा अर्श, श्वास-कास और प्लीहा वृद्धि-शामक है। वनसूरण (जंगली जिमीकन्द) अर्श में विशेषकर लाभदायक है। यह गुल्म स्थूलता, वातिक तथा वातकफ रोगों में लाभकारक है।

प्रयोग--सूरण समस्त कन्द शाकों में उत्तम है। यह पाचन संस्थान के रोगों में—गुल्म अग्निमांद्य, प्लीहा-वृद्धिनाशक है। आमाशय तथा अन्त्रों की कला को उत्तेजित करता तथा उसे बलवान बनाता है। विशेषकर गुदा की रक्तवाहिनियों में रक्त प्रवाह के दवाव को कम करके रक्तार्श में लाभ करता है। वायु का अनुलोमन तथा अग्नि को दीप्त करके भी गुल्म तथा अर्श में लाभ करता है।

प्रयोग करने के पहले इसकी तीक्ष्णता निकालने के लिए गरम जल से धोना, या नमक लगाकर धूप में सुखाना आदि क्रियाएँ कर लेनी चाहिए। आमवात तथा कफज रोगों में उत्तम होता है। १० माशा वनसूरण का चूर्ण नित्य देने से अर्श मिटता है।

योग--वनसूरणवटक-अर्शनाशक।

हरीतकी (शिबा, पथ्या, अभया, अव्यथा)

परिचय—हरीतकी के वृक्ष सर्वत्र पर्वतों पर उपलब्ध। अनेक भेद हैं।

व्यं० अं०—फल

पुष्पकाल—दुर्गन्धित पुष्प, चैत्र-वैशाख

मात्रा—४-८ माशा

रस—कषाय प्रधान, लक्षण छोड़, शेष सबरस

वीर्य—उष्ण

विपाक—मधुर

दोष—त्रिदोष शामक

प्र० अ०—पाचक अंग, सर्वशरीर

वि० गु० क०--रसायन दीपन-पाचन, अति-अनुलोमक, स्रोत शोधक

---

1. Elephant's Foot.
2. Telugu Potato.
3. Amorphophallus Camfanulatus, Blume.
4. Aroideae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नाम—(हि०) हरड़, हर्र (म०) हरीतकी, हरड़ा (बं०) हर्त्तकी, (गु०) हरड़ (क०) अणिले (तैं०) करक्काय (ता०) कडक्कायि (अं०) मायरोबेलन,[1] चेब्युलिक[2] मायरोबेलंन, इंकनट,[3] (वा० ले०) टर्मिनेलिआ चेबुला,[4] हरीतकी वर्ग[5]।

हरीतकी की जातियाँ—शास्त्रों में सात जातियों का वर्णन है।

विजया रोहिणी चैव पूतना चामृताभया। जीवन्ती चेतकी चैति पथ्यायाः सप्तजातयः। (भाव०)

आजकल तीन जातियाँ बाजार में पाई जाती हैं। अन्यों का अन्वेषण करना चाहिए।

(१) काली हरड़ या छोटी हरड़, (हिं०) जौहर्र, जगीं हरड़, (म०) बालहरड़, (गु०) हीमज, (मा०) जवहरड़ी। यह बिना गुठली का फल है। जो या तो स्वयं गिर पड़ता है या गुठली पड़ने से पूर्व ही तोड़कर सुखा लिया जाता है। यह काला तथा अत्यन्त कसैला होता है। काली-कड़ी-भारी-अविकृत हरड़ उत्तम है। यह रेचनार्थ काम आती है।

(२) (हि०) पीली हरड़-छीपाहरड, (म० गु०) हरड़ा, यह हरड़ का पूर्ण फल है। यह मस्तिष्क तथा आमाशय को शक्ति देने लिए मुरब्बे के रूप में तथा चूर्णादि में व्यवहृत होती है।

(३) काबुलीहरड़ या अंबियाहरड़, यह हरड़ बहुत बड़ी होती है। यह भारत से काबुल के मार्ग से ईरान, आदि देशों को जाती थी अतः इसे 'काबुली' हरड़ का नाम दिया है।

आयुर्वेद में पूर्ण परिपक्व हरड़ के व्यवहार का उपदेश है। कच्ची का नहीं।

उत्तम हरीतकी का लक्षण—नवास्निग्धा घनावृत्ता गुर्वी क्षिप्रा तथाम्भसि।
निमज्जेद्या तथैकस्मिन् फले चैव द्विकर्षता ॥ (कै०)

नवीन, स्निग्ध, वृत्ता, जल में डूब जाने वाली तथा भार में कम-से-कम २ तोला होनी चाहिए।

त्याज्यहरीतकी—जन्तुजग्धां दवादग्धां जलेपंके स्थितां पुनः।
ऊषरे वा स्थितां भिन्नां वर्जयेत्तुहरीतकीम् ॥ (कै०)

उत्पत्ति स्थानों के अनुसार "नीरजा बनजा चैव पर्वतीया इति त्रिधा। यथोत्तरंपथ्यतमा ज्ञेया त्रिविधाभया।

जल स्थान की अपेक्षा जंगल में उत्पन्न तथा उसकी अपेक्षा भी पहाड़ी उत्तम होती है।

गुण—शिवा विलवणा पंचरसा तु तुवरोत्कटा। स्वादुपाकरसायुष्या रूक्षोष्णाबृंहणी लघुः ॥
दीपनी पाचनी मेध्या वयसः स्थापनीपरम्। रसायनी च चक्षुष्या बल बुद्धिस्मृतिप्रदा ॥ (कै०)

हरड़ लवण को छोड़कर पांचों रसों वाली, किन्तु कषाय रस प्रधान, उष्णवीर्य-मधुर-विपाकी, त्रिदोषहर आयु-बलवर्धक, लघु दीपन-पाचन--मेध्य, चक्षुष्य, स्मृति बलवर्धक है।

प्रायः सभी रोगों में अन्य औषधियों के साथ मिलाकर इसका व्यवहार कर सकते हैं। अतएव कहा गया है—

"भुक्तेपथ्याऽभुक्ते पथ्या, भुक्ताभुक्ते पथ्या-पथ्या जीर्णेपथ्याऽजीर्णे पथ्या जीर्णाजीर्णे पथ्या पथ्या ॥
हरीतकी मनुष्याणां मातेवहितकारिणी। कदाचित् कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी ॥

विशेषकर पाचन सम्बन्धि रोगों में अति उत्तम है। अग्निमान्द्य, अतिसार, अर्श, संग्रहणी, वमन, लालास्राव, आनाह, विबन्ध (कब्जी) उदरकृमि तथा कुष्ठ, पाण्डुकामला, कफ का अधिक होना, विषमज्वर आदि रोगों का नाशक है।

---

1. Myrobalon.
2. Chebulic Myrobalon.
3. Ink Nut.
4. Terminalia Chebula, Retz.
5. Combretaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इसका विशेष गुण स्रोतों का अवरोध नाश है। जिससे स्रोतमार्ग शुद्ध होकर समस्त देह के स्राव तथा रसों का स्वच्छ प्रवाह होने लगता है। शरीर की क्रियाएँ ठीक प्रकार से होने लगती हैं। जिससे भूख लगती है। पाचन तथा सात्म्यीकरण अच्छा होता है। दोष अनुलोम होते हैं। मलों का निष्क्रमण उत्तम होता है। आमदोषों का पाचन होता है। क्योंकि हरीतकी में रूक्षता उष्णता-शोधकता आदि गुण एक साथ एकत्र हो गये हैं। अतएव इसे रसायन आयुष्य और त्रिदोषशामक कहा गया है।

योग—कषाय होते हुए भी यह रेचक है। दान्तों से खून बहना तथा फूले मसूढ़ों, मुख व्रण, गल शोथ आदि में शोधक पाचक तथा मृदु रेचक होने से उत्तम औषधि है, विशेषकर काली हरड़। यह रूक्ष है, अतः बादाम तैल घी आदि के साथ देना उत्तम है। निरन्तर घी-मधु के साथ प्रयोग करने से अति लाभ करती है।

हरड़ के काढ़े का कुल्ला तथा मंजन करना उत्तम हैं। सभी प्रकार के विबन्धों (कब्जी) में हरड़ उत्तम रेचक है। बिना कष्ट के एक दो शौच हो जाते हैं। अतिसार तथा प्रवाहिका में पीलीहरीतकी या पक्व हरड़-ग्राही तथा चक्षुष्य और केश्य है। नेत्ररोगों में चन्दन के समान घिसकर तथा मधु मिला कर लगाते हैं। दृष्टि की निर्बलता, नेत्रस्राव, रक्तिमा तथा नेत्र कण्डु नष्ट होती हैं। इनका मुरब्बा या अवलेह-हृद्य यकृत् तथा मस्तिष्क के लिए बलदायक है। कषाय होने से रक्तस्राव का शमन करने में, अर्श प्रवाहिका (मरोड़े, पेचिश) रक्तकास, रक्तपित्त आदि में व्यवहृत होती है। अग्निदग्ध व्रणों में अलसी तैल-चूर्णोदक (चूने का पानी) में हरीतकी चूर्ण मिलाकर लगाने से तुरन्त लाभ होता है। हिम कषाय से धोने से नेत्र तथा केशों को बल मिलता है। विरेचनार्थ हरड़-सनाय-गुलाब के फूल के साथ ६-६ माशा, दालचीनी ४ माशा, लौंग १० दाने, १२ तोला जल में १०, १५ मिनट तक उबालकर प्रातःकाल पीने से अच्छा विरेचन होता है। पित्त कफ तथा दूषित पित्त इसके विरेचन से निकल जाते हैं। अन्त्रों या योनि से होने वाला रक्तस्राव, श्वेतप्रदरादि में इसके काढ़े से प्रक्षालन किया जाता है। अम्लपित्त में हरड़ तथा मुनक्का मिलाकर गृध्रसी, अंडशोथ, श्लीपद में एरण्ड तैल और गोमूत्र के साथ पिलाने से, आँव आने पर आमया-पिप्पली-शहद के साथ चटाने से लाभ होता है।

हरड़ के पत्तों पर विशेष प्रकार के कीड़े अपने तिकोने घर बना लेते हैं। इन्हें बम्बई में 'काकड़ार्तिगी' के के नाम से बेचा जाता है। यद्यपि यह कर्कटशृंगी नहीं है। इनको २$\frac{1}{2}$ तोला, दालचीनी १$\frac{1}{8}$ तोला कत्था १$\frac{1}{8}$ तोला जायफल १$\frac{1}{8}$ सब का चूर्ण बना ५-१० रत्ती की मात्रा में सेवन करने से आमातिसार-जीर्णातिसार नष्ट होता है।

यकृतप्लीहावृद्धि में नौसादर के साथ, विषमज्वरों में पिप्पली-गुड़ के साथ सेवन से लाभ होता है। संक्षेप में प्रत्येक रोग में सहपान और अनुपान भेद से यह प्रयुक्त हो सकती है।

हरीतकी में पांचों रसों की स्थिति

पथ्याया मज्जनि स्वादु स्नायवम्लो व्यवस्थितः। वृन्ते तिक्तस्त्वचि कटुरस्थिस्थस्तुवरो रसः॥

हरीतकी रस विभाग—स्वादुतिक्तकषायत्वात्पित्तहृत् कफहृत्तुसा।
कटुतिक्त कषायत्वादम्लात्वाद्वातहृच्छिवा॥ (भाव०)

उक्त वर्णन शिष्यों को समझाने की दृष्टि से है अन्यथा हरीतकी का त्रिदोषनाशकत्व 'प्रभाव' के कारण है। अतएव आचार्य भावमिश्र ने कहा है। प्रभावाद्दोषहन्तृत्वं, तथा हेतुभिः शिष्यबोधार्थम्।

हरड़ के विषय पर कुछ सुन्दर पद्य नीचे दिए गए हैं। सरल होने के कारण उनका अर्थ नहीं किया गया है।

चर्विता वर्द्धयत्यग्निं पेषितामल शोधनी। स्विन्ना संग्रहणी पथ्या भृष्टा प्रोक्तात्रिदोषनुत्।
लवणेन कफंहन्ति पित्तं हन्ति सशर्करा। घृतेन वातजान्रोगजान् सर्वरोगान्गुडान्विता।
ऋतुहरीतकी—सिन्धूत्य, शर्करा, शुण्ठी, कणा, मधु, गुडैः क्रमात्। वर्षादिष्वभया प्राश्या रसायनगुणैषिणा॥
उन्मीलिनी बुद्धिबलेन्द्रियाणां, निर्मूलिनी पित्तकफनिलानाम्।
विध्वंसिनी मूत्रशकृन्मलानां हरीतकी स्यात् सह भोजनेन।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

असेवनीय—अध्वातिखिन्नो, बलबर्जितश्च, रूक्षः कृशो लंघन कर्षितश्च ।
पित्ताधिको गर्भवतीचनारी विमुक्तरक्तस्त्वधभयां न खादेत् । (भाव०)

योग—अभयारिष्ट, चित्रकहरीतकी, पथ्यादि क्वाथ, कामलाहरयोग (रसादर्श) आदि आदि ।

त्रिफला (फलत्रिकं बरा)

एका हरीतकी योज्या द्वौयोज्यौ विभीतकौ । चत्वार्यमलकानीति 'त्रिफला' प्रोच्यते बुधैः ।। (कै०)

हरड़, बहेड़ा-आमला इन तीनों फलों की मज्जा (गूदा) समान भाग लेकर पीस लें ।

गुण—त्रिफला कफ पितघ्नी मेहकष्ठहरासरा । चक्षुष्या दीपनी रुच्या विषमज्वर नाशिनी । (भाव०)

त्रिफला, कफपित्त शामक, प्रमेह त्वचारोग विषमज्वर नाशक अग्निदीपन रुचिकर तथा नेत्र्य है ।

नेत्र रोगों में त्रिफला जल से आँखें धोई जाती है । त्रिफलाघृत का सेवन कराया जाता है । विबन्ध में त्रिफला से उत्तम औषधि नहीं है । इसे मधु तथा घृत के साथ सेवन करना चाहिए । इसके सेवन से भूख लगती है, अग्निप्रदीप्त होती है ।

स्नेहनम् (स्निग्ध विरेचनम्)

ये द्रव्य अपने स्निग्ध गुण के कारण अन्त्रों की रूक्ष श्लेष्मिक कला को स्निग्ध करते हैं । जिससे मल अन्त्रों से छूटकर स्वयमेव अधोगामी हो जाता है । इस प्रकार रूक्षता के कारण अत्यन्त कोष्ठबद्धता (कब्जी) में लाभप्रद सिद्ध हुए हैं ।

अतसी (उभा, क्षुभा)

परिचय—सुपरिचित क्षुप

उ० स्थ०—सर्वत्र खेती की जाती है

पुष्पकाल—अनेक वर्ण के पुष्प, बसन्त ऋतु

मात्रा—६-१ तोला तक (बीज)

रस—मधुर, तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—वातशामक, पित्त-कफवर्धक

प्र० अ०—त्वचा, पाचक अंग तथा फुप्फुस

वि० गु० क०—स्नेहन, शोथशामक

नाम—(हि०) अलसी, तीसी (वं०) तीसी, मसीना (म०) जवस (गु०) अलशी (अं०) लिनसीड,[1] कामन फ्लक्स[2] (वा० ले०) लाईनम् यूसिटेटिस्सीमम,[3] अतस्यादि वर्ग[4] ।

गुण—"उष्णाऽतसी स्वादुरसातिलध्वी पित्तोत्वणाख्यात् कटुका विपाके ।"
वातघ्नं मधुरं तेषु क्षौमं तैलबलापहम् । कटुपाकमचक्षुष्यं स्निग्धोष्णं गुरुपित्तलम् ।। (सु० सू० ४६)
स्निग्धोमा स्वादुतिक्तोष्ण कफपित्तकरी गुरुः । वृक्शुक्रहृत् कटुः पाके——(वाग्भट)

1. Lin Seed.
2. Common Flax.
3. Linum Ussitatissimum.
4. Linaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अलसी-बीज मधुर, तिक्त रस (तैल मधुराम्ल) उष्णवीर्य, कटु विपाक, स्निग्ध, वातशामक, -कफपित्तवर्धक लघु (तैलगुरु) उष्ण, बल, शुक्रनाशक तथा नेत्रों के लिए हानिकर है। शोथशामक, कफनिष्कासक, हलकी मूत्रल, पिच्छिल तथा वेदनाशामक है।

प्रयोग—बाह्य—प्रायः बाह्य प्रयोग में ही काम आती है। गरम पुल्टिस लगाने से आम व्रणशोथ (कच्चा फोड़ा) शान्त होता है तथा व्रणशोथ में उत्पन्न वेदना तनाव की कमी से शान्त होती है, किन्तु बहुत गरम पुल्टिस लगाने से वेदना तथा शोथ दोनों ही बढ़ जाते हैं। पकते हुए व्रणशोथ, फोड़े-फुंसियों को शीघ्र पका देती है। बीजों को पीसकर पुल्टिस (उपनाह) बनानी चाहिए। अन्तः स्थानों के शोथों में भी यथा, श्वासप्रणाली[1] शोथ, श्वसनक[2], फुफ्फुसावरण[3] शोथ, हृद्यावरण[4] या उदरकलाशोथ[5] आदि में अत्यन्त लाभ करती है। इसके शोथशामक प्रभाव को बढ़ाने के लिए इसके उपनाह के ऊपर सरसों या राई का चूर्ण छिड़कना चाहिए। अथवा आहार में (१ : १६ के अनुपात से) मिलाकर सेवन करना चाहिए।

अलसी तैल को चूर्णोदक में मिलाकर लेप बनाकर दग्ध (जले) स्थान पर लगाया जाता है। दुष्ट व्रणों पर इसका उपनाह या चूर्ण लगाने से लाभ होता है। शुष्ककास में या छाती के दर्द में तैल का अभ्यंग करके स्वेदन किया जाता है।

अन्तः प्रयोग—वृहदन्त्र में मल की गाँठें बँधने पर या रक्तातिसार और प्रवाहिका में अलसी की पिच्छिल बस्ति (आधासेर) दी जाती है। ४-८ माशे तैल से आंतें स्निग्ध हो जाती है। तथा विबन्ध नष्ट होता है। बीजों का क्वाथ या फान्ट मिश्री मिलाकर पिलाने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है।

अलसी के ४०० दाने, मुलेठी ½ तोला, शर्करा, बनोला, जल ५ छटांक, सबको बन्द बर्तन में ४ घण्टे भिगोकर फान्ट का प्रयोग करें। यह शुष्क कास, श्वासादि में कफ को पतला कर बाहर निकालती है तथा वेदना को भी शान्त करती है।

पिच्छिला (अम्ल फलम्-बिहीदाना)

नाम—(हिं० पं० व०) बिहीदाना, (गु०) मुगलई वेदाणा (म०) मोगली वेदाणा (काँगड़ा) बमचूंठ (अं०) क्विन्स,[6] (वा० ले०) पाईरस[7] साईडोनिया, साईडोनिया वलगेरिस,[8] सेब वर्ग[9]।

परिचय—यह नारपती (टंक) जाति का वृक्ष है। काश्मीर, अफगानिस्तान, पंजाबादि हिमालय के प्रदेशों में उत्पन्न होता है। इसके लाल बीजों को 'बिहीदाना' के नाम से औषधियों में प्रयुक्त करते हैं। ये अतिपिच्छिल तथा शीतल होते हैं।

गुण प्रयोग—सौमन्यस्यजनन-यकृदामाशयबलदायक, मूत्रल, संग्राही पित्त शामक है। हृदय की निर्बलता, पाण्डु-कामला तथा पित्तजहृदय की धड़कन, पित्तातिसार-प्रवाहिका, अतिप्यास, दाह-वमन-मुख शोथशामक है। पानी में भिगोकर छः सात घण्टों बाद छानकर चीनी मिलाकर पीना चाहिए। इसका लुआब मीठा मिलाकर-प्रतिश्याय कण्ठ की कर्कशता, शुष्ककास मुख, जिह्वा शोथ, उरः क्षतादि में किया जाता है। धातुपौष्टिक औषधियों में डाली जाती है।

---

1. Bronchits.
2. Pneumonia.
3. Pleurisy.
4. Pericarditis.
5. Peritonitis.
6. Quince
7. Pyrus Sydonia, Linn.
8. Cydonia-Vulgaris, Pers.
9. Rosaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इसका मुरब्बा खाने से बारबार अतिसार की शंका होना और प्रवाहिका बन्द हो जाता है। पित्त प्रकृति वालों के लिए उत्तम है।

मलंगबीजम्

नाम—(हि०) तुख्म मलंगा, बालंगू, (बम्बई) तुख्मे बालंगा (वा० ले०) लल्लेमेन्टिआ[1] रायलिएना, (यह विदेशी बीजो वनस्पति का नाम है। भारतीय का सैल्बिआ[2] इजिप्शिया का नाम है। दोनों ही तुलसी वर्ग[3] की वनस्पति हैं।

परिचय—ये बीज फारस से आते हैं। भारतीय भेद पंजाब-सिन्धादि में उत्पन्न होता है। बीज ईसबगोल के समान होते हैं। जो पानी में डालने से फूल जाते हैं। मात्रा ५-७ तोला।

गुण तथा प्रयोग—सौमनस्यजनन, हृदयबलदायक, शीतसंग्राही तथा स्निग्ध और पित्तशामक है। मधुर विपाकी हैं। पित्त के कारण पाण्डु आदि रोगों में इसका प्रयोग करते हैं।

संग्राही तथा पिच्छिल होने से मरोड़ पेचिका (प्रवाहिका) रक्तातिसारशामक है। मिश्री के साथ देना उत्तम है।

वातामम्

नाम—(ता०) पार्शियादुमै, (अन्यभाषाएँ) बादाम। (अं०) आलमण्ड[4] कड़वा तथा मधुर भेद से दो प्रकार का होता है तथा उसका उपयोग नहीं किया जाता। तिक्त का (वा० ले०) नाम प्रुनस अमारा या एमिग्डेलस[5] अमारा है। मधुर का प्रुनस डलिकया एमग्डेलिस[6] डलेकिस् है। दीनों ही तरणीवर्ग[7] के हैं फल बीज तथा तैलों का व्यवहार होता है। तैल की मात्रा ६-१२ माशा तक है।

गुण—वातामाभिधुकाक्षोद मूकुलकनिकोचकम्। सारुमाणं गुरु स्निग्धं मधुरं रसपाकयोः।
वृष्योष्णं बृहणं बल्यं वातघ्नं कफपित्तलम्। दाहक्षतक्षयहरं विष्टिम्भि-अक्षप्रसादनम्॥ (कै०)

बादाम, पिस्ता, अखरोट, न्योजे, खुर्मानी आदि फल, उष्णवीर्य मधुर विपाकी, वातशामक कफ पित्तवर्धक, पौष्टिक बल्य, दाह, क्षत-क्षय रोगनाशक गुरु तथा रक्तशोधक हैं।

बादाम मस्तिष्क तथा वातनाड़ियों को बल देता है तथा उनके क्षोभ को मिटाता है। शरीर की रूक्षता का नाशक तथा मृदुरेचक है। इसमें शर्करा या श्वेतसार का अंग स्वल्प होने से इसे मधुमेही को सेवन कराए। यह स्निग्ध तथा मृदुरेचक एवं वातानुलोमक भी हैं। रूक्षता के कारण या दीर्घ रोगों में रक्तजन्य विबन्ध में (कब्जी) उत्तम है। कृश व्यक्तियों को पुष्टि भी देता है। सब धातुओं का विशेष कर मेद का वर्धक है। बादामगिरी-कालीमिर्च, खस, एला, खीरा, खर्बूजा, तरबूज तथा ककड़ी के बीजों की सरदाई (पीस-छानकर) मीठा मिलाकर पीने से शरीरदाह शान्त होता हैं तथा मूत्रमार्ग भी स्वच्छ हो जाता है। मूत्र अधिक मात्रा में आता है। शिरःशूल अनिद्रा में इसके तैल का अभ्यंग किया जाता है। ब्राह्मी आदि के साथ मिलाकर मस्तिष्क निर्बलता में दिया जाता है। शुष्क कास में भी बीजों का तथा तैल का प्रयोग होता है। बादाम का छिलका कोयला बनाकर मंजन्नों में डाला जाता है। पातालयन्त्र से निकाला छिलकों का तैल त्वचा रोगों—दाह-आदि—में अच्छा लाभ करता है।

योग—बादाम पाक १-२ तोला पौष्टिक, वातशामक।

---

1 Lallemantia Roylenna, Benth.
2. Salvia Aegyptiaca, Linn.
3. Labiatae.
4. Almond.
5. Prunus Amara, Amygdalus Amara.
6. Prumus dulcis or Amygdalus Dulcis.
7. Rosaceae

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्निग्ध जीरकम् (अश्वकर्णबीज)

परिचय—क्षुद्र, क्षुप

उ० स्थ०—पंजाब, गुजरात, सिंध, ईरान

व्य० अं०—बीज-लाल, सफेद तथा काले। काले निकृष्ट हैं।

रस—मधुर

वीर्य—शीत

विपाक—मधुर

दोष—पित्त शामक

प्र० अं०—महास्रोतस्

वि० गु० क०—स्निग्ध, शीत, पित्तप्रशमन

मात्रा—२-९ माशा तक

नाम—(हि०) ईसबगोल (बं०) इस्पगुल, (म०) ईसबगोल (गु०) औ (ऊ०) थमीजीरूं (क०) इसबगोल (तै०) इसपंगाल (ता०) इस्पोगल (अं०) स्पोगेलसीड्स[1], साईलम सीडस[2], (वा० ले०) प्लान्टेगो[3] ओबाटा (प०) इस्पगुला[4], ईसबगोलक वर्ग।

गुण—अव्यक्तमधुरस, शीत, तृष्णादाह, शोथशामक पिच्छिल सर, किंतु भुना हुआ संग्राहक है। बीजों का तथा उनकी भुस्सी (छिलके) का प्रयोग होता है। छिलके का प्रयोग उत्तम है।

प्रयोग—स्निग्धता, पिच्छिलता तथा सर होने के कारण अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका विबन्ध (कब्जी) तथा मल शोथ (मलकी गाँठें बन जाने पर) में प्रयुक्त होता है। विबन्ध (कब्जी) तथा मलशोथ में रात को सोते समय ३ माशा की मात्रा में समभाग शर्करा मिला कर जल के साथ सेवन करने से बिना किसी कष्ट के मल आता है। अतिसार तथा रक्तातिसार में प्रवाहिका, भृष्ट इसबगोल की छाल को पानी में भिगोकर (१ : ४०) सेवन से अत्यन्त लाभ होता है। यह अन्त्र की कला की रक्षा तथा कीटाणु उत्पत्ति में और आँतों से विषों के आशोषण में बाधा उत्पन्न करता है। ईसबगोल तथा इन्द्रजौ को मिलाकर १ माशा की मात्रा में प्रति एक घण्टे बाद सेवन करने से प्रवाहिका में अत्यन्त लाभ होता है। गले के शोथ, शुष्ककास तथा जिह्वा और मुखशोथ, तृष्णा शान्त करने के लिए ईसबगोल का फाण्ट मिश्री या मधु के साथ मिलाकर पिलाया जाता है। कब्जी वाले पैत्तिक प्रतिश्याय भी नष्ट होते हैं। मूत्राशय शोथ, मूत्रकृच्छ्र प्रमेह में इसका शर्बत पिलाने से दाह शान्त होता है तथा मूत्र भी आता है। रक्तार्श में यह शर्बत रक्तस्राव बन्द करता है। कंकोल तथा कलमीशीरा के साथ मूत्रकृच्छ्रनाशक, ३-४ महीने तक लगातार १ तोला की मात्रा में प्रतिदिन लेने से श्वासरोग में अत्यन्त लाभ होता है।

दुष्ट तथा पुराने व्रणों पर इसकी पुल्टिस लगाते हैं। मस्तक पीड़ा में (विशेषकर गर्मी के कारण) लेप लगाया जाता है। यह पैत्तिक शोथ, व्रण, व्रणशोथशामक है। अन्त्रों की शुष्कता, शोथ तथा व्रणों में अत्यन्त उपयोगी है। अतिसार तथा प्रवाहिका में (मरोड़े) ईसबगोल इन्द्रयव तुख्मेवारतंग (बीज), तुख्मेरेहां (रेहांबीज) समभाग ले, तवे पर सेंक ३-६ माशा की मात्रा में सेवन से अत्यन्त लाभ होता है। अति मात्रा में और बहुत दिनों तक प्रयोग करने से क्षुधानाश होता है। अतः सिरके शिकंज बीन के साथ देना उत्तम है।

---

1. Spogel Seeds.
2. Psyllum Seeds.
3. Plantago-ovata, Forsk.
4. Plantago Ispagula.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पन्द्रहवाँ अध्याय

रेचक या विरेचक वर्ग

ये द्रव्य अपने वीर्य के कारण अन्त्रों की गति भी बढ़ाते हैं और मल का भेदन कर विबन्ध को नष्ट करते हैं।

पीतमूला (अम्लपर्णी)

नाम—(हि० पं० मा०) रेवन्दचीनी, रेवन्द उशारा (म०) रेवन्दचीनी (बं०) रेउचिनी (अं०) रुबर्ब[1] (वा० ले०) रिअम इमोडी[2], चुक्रा वर्ग[3] (गढ़वाल) आर्चा (गु०) रेवन्दचीनी नो शीरो।

परिचय—रेवन्दचीनी एक वनस्पति का सत्व है। जो भारत में ६-१४ हजार फुट की ऊँचाई पर पाई जाती है तथा यूरोप-चीन आदि देशों में भी उत्पन्न होती है। देश-विशेष के नाम से इसे अभिहित किया जाता है।

गुण तथा प्रयोग—यह तिक्तरस, उष्णवीर्य और कटु विपाकी है। स्वल्प मात्रा में (२-५ रत्ती तक) दीपन है। बड़ी मात्रा (१०-१५ रत्ती) में मृदुरेचक है। शरीर में से तरल को खींचकर आँतों में ले जाता है। आँतों की गति भी बढ़ जाती है। लगभग ४-८ घण्टे के बाद शौच आता है और इनके साथ ऐंठन भी होती है। मल पतले तथा पीले होते हैं। मल का पीलापन पित्त के कारण होता है। जो रेवन्दचीनी के कारण यकृत् से अधिक मात्रा में आता है। विरेचन के पश्चात् यह विबन्ध उत्पन्न कर देती है। अग्निदीपन तथा बच्चों के रोगों में विरेचन के लिए उपयोग किया जाता है। बच्चों के आहारजन्य अजीर्ण में अति उत्तम है। सड़े या अपक्व भोजन को आन्तों में से निकाल देती है तथा पीछे से आन्तों पर संशमन प्रभाव करती है। विरेचनार्थ इसके साथ पारसीक अजवायन-जीरा-सोंठ आदि के साथ मिलाकर लेना चाहिए ताकि उदर में ऐंठन न हो समभाग मधुर क्षार के साथ भी ले सकते हैं।

बहिर्गमन—मूत्र तथा दूध द्वारा निकलता है। दोनों का रंग पीला हो जाता है। बड़ी मात्रा में तो वृक्कों में भी क्षोभ उत्पन्न कर देती है।

आरग्वध (कृतमालः राजवृक्षः हेमपुष्पः)

परिचय—मध्यम प्रमाण का वृक्ष

उ० स्थ०—प्रायः सर्वत्र

पुष्पकाल—चैत्र-वैशाख, पीले गुच्छाकार (मई-जून)

मात्रा—मज्जा ६-१२ माशा तक

रस—मधुर तिक्त

वीर्य—शीत

विपाक—मधुर

दोष—पित्त कफहर, धातू-भेदहरम्

---

1. Rhubarb.
2. Rheum Emodi wall.
3. Polygonaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्र० अ०—अन्त्र

वि० गु० क०—विरेचक (कोष्ठशोधक), पत्र-कुष्ठघ्न

नाम—(हि०) अमलतास, (बं०) सोंदल, सेनालु (म०) बाहवा (गु०) गरमालो, (सिन्धी) छिमकणी, (मा०) किरमालो, (अं०) ड्रमस्टिक्[1] (वा० ले०) केसिया[2] पिष्टुला, लिन्न, पूतिकरंज[3] वर्ग।

गुण—आरग्वधो हिमस्तिक्तो मधुरो मृदुरेचनाः। गुरु दोषत्रयहरो ज्वर गुल्मोदरापह॥
तत्फलं संसन रुच्यं कुष्ठपित्तकफापहम्। ज्वरे तु सतत पथ्य मल दोष समिन्वते॥ (कै०)

अमलतास, शीतल-तिक्त, मीठा, मृदुरेचक, गुरु, त्रिदोषहर, ज्वर, गुल्म, उदर रोग, उदावर्त, आध्मान, उदरशूलादिशामक है। फल भी मज्जाभेदक है।

यूनानी वैद्यक में इसे उष्ण माना गया है। रेचक उष्णवीर्य ही होने से हमारे विचार में यह मत ग्राह्य है। विरेचन द्रव्यों में उत्तम हैं। "चतुरंगुलो मृदुविरेचनानां।" (चरक)

बाल, वृद्ध, सुकुमार, क्षत तथा क्षीण रोगियों और यक्ष्मा के रोगी को भी कोष्ठ के लिए (ज्वरे तु सततं पथ्यं कोष्ठ शुद्धि करंधरम्—भा०) दिया जाता है। पक्व फल को (फलकाल में नवम्बर-दिसम्बर में) ग्रहण कर गुणवान भारी फल को रेत में सात दिन तक दबा दें। अतः उन फलों की मज्जा (गुदा) निकालकर प्रयोग करें। इसके 'व्याधिघाती', 'आरोग्य शिम्बी' ये दो नाम सार्थक हैं।

प्रयोग—कण्ठ शोथ में मकोयरस या गोदुग्ध के साथ इसका काढ़ा बनाकर कुल्ले किये जाते हैं। पित्तविकारों में मल संचय होने से उत्पन्न वातरक्त, आमवात आदि में तथा यकृत् की क्रिया शैथिल्य और अवरोध से उत्पन्न कामला पाण्डु आदि में मज्जा तथा पत्र लाभ करते हैं। पित्त सरण होता है। स्रोत शुद्ध होता है। ज्वरों में विबन्ध होने पर यह विशेष उपयोगी है। व्रणों पर तथा आमवातादि की शोथ पर पत्तों का या गिरी का लेप लगाया जाता है। फली को गरम कर गिरी निकालकर बादाम तैल चुपड़कर तथा उबालकर पिलाने से बच्चों तथा गर्भवती स्त्रियों को निरुपद्रव रेचन होना है। पित्तज, पाण्डु में भूख कम होने पर, कोष्ठबद्धता होने पर इमली तथा अमलतास का गूदा समभाग शीतकषाय विधि से देने से अतिलाभ होता है। पुष्पों का गुलकन्द बना सकते हैं। $1\frac{1}{2}$ तोले गुलकन्द सोते समय लेने से सुकुमारों को प्रातः शौच साफ होता है। हरिद्रामेह में काढ़ा, आमवात में पत्तों को कड़वे तैल में तल कर चावल के साथ खाना, गंडमाला में जड़ को चावलों के पानी (तण्डुलोदक) के साथ पीस कर लेप लगाने से पत्तों को निम्बू रस या कांजी के साथ पीस कर लेप करने से त्वचा रोग दाह, विचर्चिका, कुष्ठ आदि मिटते हैं। शुष्क कास में फूलों का गुलकन्द लाभ करता है। मुख के कांटे आदि में पत्तों के काढ़े से धोना चाहिए। अर्दित, गठिया, त्वचा की शून्यता तथा शोथ कोष्ण पत्रकल्क के लेप से मिटती है।

योग—आरग्वधावलेह मात्रा—३-६ माशा तक रेचक, रोधक

त्रिवृत् (सर्वानुभूतिः श्यामा, त्रिपुटी)

परिचय—यह लता है। जिसका काण्ड तिकोना होता है (अतः त्रिवृत)।

उ० स्थ०—आर्द्र स्थानों पर सर्वत्र

पुष्पकाल—घण्टाकार पुष्प, सितम्बर-अक्टूबर

मात्रा—चूर्ण ३-६ माशा

रस—मधुर कषाय

---

1. Drum Stick.
2. Cassia Fistula Linn.
3. Caesalpinoidae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—कफपित्तहर-वातल

प्र० अं०—बृहदयन्त्र

वि० गु० क०—रेचक-अनुलोमक

नाम—(हिं०) निशोथ (पं०) तिरवी (म०) निशोत्तर (गु०) नसोतर (बं०) तेउडी, दूधीया कलमी (अं०) टरपैथरूट[1] (वा० ले०) आईपोमिया[2] टरपेथम्, त्रिवृतवर्ग[3] ।

गुण—कषायामधुरारूक्षा विपाके कटुकामला । कफपित्तप्रशमनी रौक्ष्याच्चानिलकारिणी ।
मूलं तु द्विविधंतस्याः श्यामं चारुणमेव च । तयोर्मुख्यतरं विधि मूलं चारणमेवच ॥
तयोर्मुख्यतरं विधि मूलं यदरुणप्रभम् । सुकुमारे शिशौ वृद्धमृदुकोष्ठे चातिच्छुभम् ॥ (च० क०)
त्रिवृर्तं सुखविरेचनानाम् । (च० सू० २५)

निशोथ-कसैली मीठी रूक्ष, उष्णवीर्य, कटु विपाकी पित्तशामक, वातकारक तथा सुखरेचक है । बाल वृद्ध शिशु सुकुमार सबको दे सकते हैं । यह दो प्रकार की है । काली तथा अरुण । काली हीन गुण तथा तीव्र रेचक हैं । अतः त्याज्य है । अरुणवर्ण की लेनी चाहिए । जिसके दोनों सिरों पर गोंद लगी हो, वह उत्तम है ।

प्रभाव तथा प्रयोग—उत्तम रेचक है । जल बहुल अतिसार आते हैं । यह ऐंठन नहीं करती तथा स्वाद भी खराब नहीं है । सब प्रकार के विबन्धों में विशेषकर जलोदर-सर्वांग शोथ, आमवात, वातरक्त, खाँसी, दमा, उन्माद, अपस्मार आदि में रेचन के काम आता है ।

इसके सेवन का सर्वोत्तम प्रकार यह है कि २½ माशा मूल को जल में पीसकर उसमें थोड़ी सी सोंठ सैंधा नमक या शक्कर-काली मिर्च मिला लें । ६ इंच लम्बी तथा एक अंगुल मोटी निशोथ से साधारण विरेचन होता है । कालेदाना की अपेक्षा कम रेचक तथा रेवन्द चीनी से अधिक शक्तिशाली है ।

योग—(१) त्रिवृदवलेह (सुश्रुत) रेचनार्थ ।
(२) पंचसमचूर्ण—१-४ माशा तक रेचनार्थ ।

नीलिनी (रञ्जनी-नीलोह)

नाम—सर्वभाषा नील-लील (गु०) गला (अं०) ट्रू इन्डिगो[4] (वा० ले०) इन्डिगोफेरा टिंक्टोरिया,[5] अपराजितावर्ग ।[6]

गुण—नीलिनी रेचनी तिक्ता केश्या मोहभ्रमापहा । उष्णाहन्त्युदरवातरक्त कफानिलान् ॥
आमवातमुदावर्तं मदं च विषमुद्धतम् । (भाव०)

नील रेचक तिक्त, उष्णवीर्य-कटु विपाकी, केश्य, मोह, भ्रम, उष्णवीर्य, उदररोग, वातरक्त, आमवात, आध्मान तथा विष नाशक है ।

प्रयोग—अपस्मार-वातव्याधियों में सत्व, धातुओं तथा संखिया आदि के विष में जड़ का काढ़ा पिलाया जाता है । पत्तों के रस का तैल अर्शनाशक, आध्मान-मूत्राघात अग्निदग्ध में पत्तों का पेट पर लेप लगाते हैं । आजकल इसका प्रयोग बहुत कम होता हैं ।

---

1. Turpeth Root, Indian Jalap.
2. Ipomoea Turpethum Br.
3. Convolvulaceae.
4. True Indigo.
5. Indigo Tinctoria, Linn.
6. Papilionaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मार्कण्डिका (भूपौष्ठिरिका)

वक्तव्य—रसवीर्यादि सब स्वर्णपत्री के समान हैं। यह रूक्ष प्रदेशों—पंजाब, सिन्ध, गुजरात, अफ्रीका आदि देशों—में उत्पन्न होता है तथा पृथ्वी पर फैल जाता है। पंचांग उपयोगी है। गुणों में सनाय के समान है, किन्तु उसकी अपेक्षा मृदु। सनाय के गुणों को आत्रेय संहिता का निम्न पद्य बड़ी उत्तमता से बताता है।

"विड्बन्धं वन्हिमान्द्यं च यकृदाल्युदरं तथा प्लीहोदरं बद्धगुदमजीर्णं विषमज्वरम्।

कामलां पाण्डु रोगं च कल्याणी क्षपयेद् ध्रुवम्।

मार्कण्डी के नाम—(म०) मुई तरवड़ (गु०) भों आवल, भोयं तरवड, सुरती सुनामसी, (वा० ले०) केशिया आबोवाटा या केशिया सेन्ना,[5] पूतिकरंज या शिम्बी वर्ग।

गुण—अपरा भूपोष्ठिरिका मार्कण्डी मृदुरेचनी। मार्कण्डिका जयेत् कुष्ठमूर्ध्वाधिः काम शोधिनी।

विषदुर्गन्ध कासघ्नी गुल्मोदर नाशिनी। (कै०)

तन्मूलं तुवरं रक्तपित्त तुड् मेह नाशनम्। स्वादुपाके न लहरं गुरु शुक्र क्षयापहम्। (कै०)

मार्कण्डिका, वामकर, (अधिक मात्रा में) विरेचक, विष, दुर्गन्धि, गुल्म, उदररोग नाशक है। मूल कसैली प्यास, रक्तपित्त प्रमेहशामक, वातहर, शुक्रक्षीणता तथा क्षय रोगनाशक, दीपन, अत्यन्त वर्णकारक है। ६ माशा की मात्रा में सेवन करने से वमन हो जाता है। इससे विष बाहर निकल जाता है। सर्पविष में इसे पीलु तैल में मिलाकर वमन कराई जाती है। रेचन के लिए पत्रों का प्रयोग होता है।

श्यामबीजं (कृष्णबीज)

नाम—(हि० मा०) मिर्चई-काला दाना (बं०) नीलकलमी (म०) काला दाणा (गु०) कालोकुंपो, कालोदाणो (अं०) फारबिटिस्-सीडस्[2] (वा० ले०) आईपोमिया[3] हेडरेसिआ, त्रिवृत वर्ग[4]।

गुण—रेचने श्याम बीजं स्याच्छोयोदर विनाशनम्। ज्वरे पुरीषसंगेचदारुणे शिरसो गदे।

उदावर्ते तथानाहे बुधैरेतत् प्रयुज्यते। (आ० वि०)

काला दाना बीज रेचक है। शोथ, जलोदर, विबन्ध ज्वर, शिरःशूल, उदावर्त-आनाहनाशक है। मात्रा २-३ माशा है। बालू में भूनकर पुनः प्रयोग करना उत्तम है। काला दाना जल बहुत विरेचन लाता है। अतः जलोदर, उदरकृमि, सर्वांग शोथ में उपयोगी है। यदि मात्रा कम दें तो सुखकारक विरेचक है। इसके लिए काला दाना, कालानमक, सज्जीखार, (स्वर्जिका) द्राक्षा, पीपल ६-६ माशा शुद्ध हिंग १½ माशा चूर्ण बना १ माशा की मात्रा में सौंफ के साथ देने से बिना कष्ट के विबन्ध आनाह, उदरशूलादि नष्ट होते हैं। यह उत्तम रेचक कृमिघ्न तथा ज्वरघ्न है। यकृत् शिथिलता जन्य कोष्ठबद्धता में अतिलाभदायी है। कालादाना ६ भाग, राटरी ६ भाग, सोंठ १ भाग मिलाकर पांच माशा जल से देने से ३-४ घण्टे बाद उत्तम रेचन होता है। अन्त्रशोथ में इसका प्रयोग निषिद्ध है।

स्वर्णपत्रिका (महाजालनी, रक्तपुष्पी)

परिचय—गुल्म जातीय क्षुप

उ० स्थ०—मद्रास-अरबादि देश

व्य० अं०—पत्र तथा फल

पुष्पकाल—अगस्त

मात्रा—चूर्ण ३-६ माशा

---

1. Cassia Obovata, Linn., C. Senna.
2. Pharabitis Seeds.
3. Ipomoea Hederacea, Jacque.
4. Convalvulaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रस—तिक्त, कषाय

वीर्य—शीत

विपाक—कटु

दोष—कफ पित्तहर

प्र० अ०—अन्त्र

वि० गु० क०—रेचक, रक्तशोधक

नाम—(हि०) सनाय, सोनामुखी (म०) सोनामुखी (गु०) मीठोल, मींढी आवला (बं०) सोनामकी (अं०) टिनेवेल्लीसेन्ना[1], एलेक्सेन्द्रिया सेन्ना[2], (वा० ले०) केशिया औगस्टिफोलिया[3], (के०) एक्यूटीफोलिया[4], शिम्बी या पूतिकरंज वर्ग।

वक्तव्य—सनाय दक्षिण में मद्रास के टिन्नेवेल्ली जिला में तथा अफ्रीका अरबादि देश में होती है। मिश्र से आने वाली सनाय भारतीय की अपेक्षा अधिक तीव्र होती है। दोनों में ही एक विशेष रेचक तत्व तथा स्वच्छ अम्ल तत्व पाये जाते हैं। जिससे यह रेचन तथा त्वचा रोग नाशन है।

गुण—रक्तपुष्पी सरातिक्ता कषाया कफपित्तहा। शोफगुल्मोदरानाह तृषा कण्डू विषापहा॥
कृमिकुष्ठ वमिश्वास दाहास्रज्वरनाशिनी॥

सनाय-सर, (अनुलोमक-रेचन) तिक्त, कषाय रसवाली कफ पित्त शोफ (आर्द्रशोथ-जलोदरादि में) उदर रोग, आनाह, आध्मान, प्यास, कण्डु विष उदरकृमि, वमन, कुष्ठ, श्वास, रक्तपित्त, ज्वर तथा रक्तरोग नाशक है। सनाय का फूल प्रमेह नाशक, बालफल वमनकृमि प्रमेहहर है। बीज विष, रक्तातिसार, मधुमेहनाशक, मूल मधुर, वातकोपक, तृष्णा, प्रमेह, रक्तपित्तनाशक तथा शुक्रक्षय में उत्तम है। यह मूल पाचन क्रिया तथा धातुपाक[5] को सुधारती है, अतः मधुमेह, शुक्रक्षीणतादि रोगों में लाभ करती है। रक्तशोधक होने से त्वचा के विकारों—कच्छ-कण्डु, फोड़े-फुँसी आदि का नाश करती है। अन्तः प्रयोग के साथ-साथ फोड़े-फुँसी आदि पर पीसकर लेप भी कर सकते हैं, किन्तु इसका मुख्य प्रयोग रेचनार्थ किया जाता है। पत्तों तथा फलों दोनों का ही प्रयोग किया जाता है। लघु मात्रा (३ माशे) में यह मृदु रेचन और बड़ी मात्रा में तीव्र रेचन का भी कार्य करती है। उक्त रेचक तत्व अन्त्र की कृमिवत् आकुंचन गति को बढ़ा देती है, विशेषकर वृहदन्त्रों की। इससे पीले वर्ण के जल बहुत अतिसार (शौच) होते हैं। मूत्र भी कभी-कभी लाल वर्ण का आने लगता है। यह समग्र शरीर के स्रावों के साथ बाहर निकलती है। अतः यदि दूध पिलाने वाली माता को इसका सेवन कराया जाए तो दूध पीने वाले बच्चे को भी रेचन हो जाता है। यह हमेशा रहने वाले आनाह (कब्जी) में उत्तम है। अर्श तथा अत्यार्तव में इसको स्वल्प मात्रा में ही सावधानी से प्रयोग करें, क्योंकि इसके प्रयोग से पेडू प्रदेश (वंक्षण) में रक्त संचय होने से अधिक रक्त स्राव का भय रहता है। बड़ी मात्रा में देने से यह मरोड़ उत्पन्न करती है। अतः इसमें खुरासानी अजवायन सोंठ, सौंफ, गुलाब का फूल आदि मिलाकर सेवन करना चाहिए, यह उत्तम है। पत्रों (३ माशा) या फलों (संख्या ८-१०) का शीतकषाय बनाकर प्रातःकाल पीना उत्तम है। हमेशा जिनके कब्ज रहती हो, उनके लिए यह उत्तम है। मधुर विरेचन चूर्ण इसका उत्तम योग है। विबन्ध तथा गर्भवती स्त्रियों और बच्चों को रेचन के लिए बिना किसी हानि के दिया जा सकता है।

योग—मधुर विरेचक चूर्ण मात्रा ३-६ माशा तक।

---

1. Tennevelly Senna, यह भारतीय सनाय है।
2. Alexandria Senna, यह मिश्री सनाय है।
3. Cassia Augustifobia Vohl, भारतीय सनाय।
4. C. Acutifolia, मिश्री सनाय।
5. Metabolism.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कासमर्द (कासारि अरिमर्दः)

परिचय—मध्य प्रमाण का गुल्म (झाड़ो)

उ० स्थ०—प्रायः सर्वत्र

व्य० अं० – पंचांग

पुष्पकाल—पीतपुष्प, अगस्त-सितम्बर

बीजचूर्ण—३ माशा

पंचांग चूर्ण—६ माशा से १ तोला

रस—कटु तिक्त मधुर

वीर्य—उष्ण

विपाक – कटु

दोष—वातकफहर-पित्तलम्

प्र० अ०—त्वचा, अन्त्र

वि० गु० क०—रेचक, विषकृमिहर, कासघ्न

नाम—(हि० मा० पं०) कसौंदी (ब०) कालकासुन्दा (म०) कासविन्दा (गु०) कासोंदरो (क०) उप्पोगचिहम्बु (तै०) नुटिकासिन्द (ता०) पोन्नवेरै (अं०) नीग्रो कॉफी[1] (वा० ले०) केशिया आक्सिडेन्टलिस्[2], लिन्न, शिम्बी या पूतिकरंज वर्ग[4] वाले कासमर्द को केशिया सोफोरा[3] कहा जाता है। गुण समान है।

गुण—कासमर्दः सतिक्तोष्णः मधुरः कफवातजित्। अजीर्ण कासपित्तघ्नः पाचनः कण्ठशोधनः। (रा० ति०)

कासमर्दकपत्राणां यूषं हिक्का श्वासनिवारणं। (च० वि० १०)

कासमर्दस्य पुष्पं तु श्वासकासोर्ध्ववातनुत्। (कै०)

कसौंदी मधुर तिक्त कटु, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, कण्ठ शोधक, पाचक, रोचक, रूक्ष, सर, वातकफशामक पित्तवर्धक (कै० नि०) कास, श्वास, विष, ऊर्ध्ववात (हिक्का आदि) उदरकृमि तथा दद्रु शामक है।

प्रयोग—कासमर्द में तरवट या सनाय के समान गुण है। पत्तों में स्वर्णपत्री के समान रेचक तत्व है। भुने बीज ग्राही तथा बिना भूने रेचक हैं। विषों में पंचांग या पत्र स्वरस पिलाने से रेचन होकर विष शान्त होते हैं। पत्र स्वरस मधु में मिलाकर वातिक कास में, श्वास में तथा पत्रयूष से हिक्का शान्त होती है। ताजे व्रण में पत्तों का कल्क व्रण रोपण करता है। पाण्डु, यकृत वृद्धि आदि के रोगों में पत्तों के रस में कालीमिर्च मिलाकर पिलाने से लाभ होता है। मूल या पंचांग फाण्ट स्रोतों का शोधक है। मूल तथा पंचांग स्रोतों का शोधक है। मूल तथा पंचांग फाण्ट स्रोतों का शोधक है। मूत्र तथा मल साफ होता है। आमदोष नष्ट होता है। मूल या बीजों का चूर्ण काँजी या निम्बु के रस में पीसकर लेप लगाने से दाद आदि त्वचा रोग नष्ट होते हैं। बीज चूर्ण स्वेदल तथा मूत्रातिसार मधुमेहनाशक है। कंठमाला में पत्तों तथा कालीमिर्च को पीसकर लेप करते हैं। काले कसौंदे के ३ पत्ते तथा कालीमिर्च ३ दाने घिसकर पीने से कामला शान्त होती है। इसके सेवन से पाचन उत्तम होता है वायु अनुकूल होती है। रतौंधी (नक्तान्ध्य) में बीजों का सुरमा लाभ करता है। अतिसारसहित जलोदर में १½ तोला काली कसौंदी को पीसकर पिलाने से, तथा आमवात में लेप करने से आराम होता है। नेत्राभिष्यन्द में ताजे फूलों का रस मधु में मिलाकर अंजन करने से लाभ होता है। श्वेत कुष्ठ में मूली के बीज तथा गन्धक में मिला लेप लगाया जाता है।

---

1. Negro Coffee.
2. Cassia occidentalis, Linn.
3. Cassia Sophora, Linn.
4. Caesalpinoidae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सोलहवाँ अध्याय

तीव्र विरेचक या जलविरेचक

इन्द्रवारुणी (गवाक्षी, विशाला, ऐन्द्री)

परिचय—लता
उ० स्थ०—जांगल प्रदेश, राजस्थान आदि
व्य० अं०—फल तथा मूल
पुष्पकाल—सितम्बर-अक्तूबर पीतपुष्प
रस—तिक्त
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
दोष—कफ पित्त हर
मात्र—फल मज्जा १-४ रत्ती, मूलचूर्ण ४-८ रत्ती तक

नाम—(हिं०) इन्द्रायण, फरफेटुआ (मा०) तासतूबो (पं०) कौडतुम्बा (म०) इन्द्रावण (गु०) इन्दरवारणा (बं०) माखाल फल (क०) हावुमेकोहंबु (त०) तुम्बा-पापरबुडम् (ता०) गजतुम्बा पेतिकारी (अं०) बिटर[1] एप्पल, बिटर गोर्ड[2] कोलोसिन्थ[3] (वा० ले०) सिट्रूलस्[4] कोलोसिन्थिस्, कर्कटी वर्ग[5]।

वक्तव्य—इन्द्रायण की दो जातियाँ हैं। बड़ी इन्द्रायणी या महेन्द्रवारुणी। इसका फूल और फल पीला होता है। छोटी इन्द्रायण यह छोटी और लालफल वाली होती है। गुण में दोनों समान हैं।

गुण—गवादनी द्वयं तिक्तं पाके कटु सरंलघु। वीर्योष्णं कामलापित्त कफ प्लीहोदरापहम्॥
कासश्वासापहं कुष्ठ गुल्म ग्रन्थिव्रणप्रणुत्। प्रमेह मूढगर्भामिगण्डामयविषापहम्॥ (भा० प्र०)

दोनों इन्द्रायणें कड़वी, उष्णवीर्य, कटु विपाकी लघु, तीव्ररेचन, उदररोग, कफपित्त के रोग कामला पाण्डु श्वासकास कुष्ठ, गुल्म ग्रन्थि, वीसर्प, मूढगर्भ, प्रमेह तथा आमवातशामक है।

इन्द्रायण आमाशय तथा अन्त्रों को क्षुभित करता है जिससे वमन विरेचन होते हैं। उचित मात्रा में देने से वमन तो नहीं होते, किन्तु अन्त्र की गति उत्तेजित होकर तथा उसकी ग्रन्थियाँ भी उत्तेजित हो जाती हैं जिससे जल बहुल अतिसार होते हैं। किन्तु यह उद्वेष्टन (मरोड़े) करती है। प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा गर्भाशय मूत्राशयादि भी क्षुभित होते हैं जिससे गर्भपात का भय रहता है। कामला, पाण्डु तथा अन्य यकृत् विकारों में यह उत्तम रेचक है। यकृत् के मलों का निष्कासक है। सर्वांग शोथ (आर्द्र) जलोदर आदि में शरीर में से तरल को निकालने के लिए उत्तम है।

---

1. Bitter apple.
2. Bitter Gourd.
3. Colocynth.
4. Citrullus Colocynthis, Schard.
5. Cucurbitaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

किन्तु गर्भिणी, अतिसारी, प्रवाहिका तथा आमाशय-अन्त्र शोथ वाले रोगी को यह नहीं देनी चाहिए। इसमें पारसीक यवानिका मिलाने से उद्वेष्टन नहीं होता।

प्रयोग—जड़ को सिरके में पीने से अन्त्र शूल तथा मसूढ़ों के दर्द में आराम होता है। बिच्छू के दंश में इसको खिलाया तथा लगाया जाता है। कष्टार्त्तव में इसकी धूनी या स्वेद देने से लाभ होता है। फल में छेदकर, गुदा निकालकर काली मिर्च भर दें। पुनः छेद को बन्द कर ऊपर से कपड़ मिट्टी का भूमल (गरम राख) में पका लें। पुनः निकालकर उदर आध्मान (अफारा) में प्रयोग करें। इसी प्रकार फल में नमक तथा अजवायन भर, फल का मुख बन्द कर धूप में सुखा लें। इसकी १ माशा की फंकी गरम जल से लेप लगाने से उदरशूल शान्त होता है, तथा अतिसार आता है। बच्चों के डब्बा (पसली चलना) में इन्द्रायण जड़ १ माशा, सैंन्धव २ रत्ती को मिलाकर गरम जल से पीना चाहिए। फलमज्जा तथा एलुआ मिलाकर, पीसकर, गर्मकर लेप करने से अफरा उतरता है। मूल को गाय घृत में पीसकर योनि के आसपास लेप करने से सुखप्रसव होता है। फल को पानी के साथ पीसकर प्रसूता के उदर पर लेप लगाने से वह अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त होता है। बिल्वपत्र के साथ मूल को पीसकर सेवन करने से गर्भ धारण हो जाती है। गाय के दूध के साथ मूलचूर्ण का सेवन करने से बाल काले होते हैं। किन्तु इस समय केवल मात्रा दूध का ही सेवन करें। इन्द्रायण के बीजों का तैल लगाना भी बालों को काला करता है। फल का मुरब्बा समस्त उदर विकार शामक है। एतदर्थ फल को चाकू से गोद कर जल में उबालें। और कड़वाहट निकाल लें। कड़वाहट निकालने पर मुरब्बा बना लें।

महाकाल (उरुकाल काकमर्दः)

नाम—(हिं०) लाल इन्द्रायण, (म०) कौडल (गु०) रातां इन्द्रायण (क०) काकेमर्दलि (वा० ले०) ट्राईकोसेन्थस्[1] पामाटा, कर्कटी वर्ग।

परिचय—यह लता आर्द्र प्रदेशों—बंगाल तथा दक्षिण में उत्पन्न होती है। फल गोल चमकदार लाल रंग का, मज्जा नारंगीवर्ग तथा बीज नीले होते हैं। जंगली फल अतिरेचक है। फल तथा मूल व्यवहार में आते हैं।

गुण तथा प्रयोग—फल वामक, रेचक, श्लेष्म निस्सारक, मूल शोथ तथा ज्वरहर। फल को उबाल कर उसकी तीक्ष्णता निकालकर सेवन करना उत्तम है। फल को पीसकर नारियल के तैल में पका लें, उस तैल का व्रण शोधन तथा पूयनाशन में प्रयोग होता है। मल की शोथ पर, श्वास नलिकाओं की शोथादि में उत्पन्न श्वास कष्ट में फल या मूल त्वचा का धूम्रपान लाभ करता है। मधुमेह की पीड़िका में इसकी तथा इन्द्रायण की जड़ समान भाग में पीसकर लेप लगायी जाती है।

मात्रा—फल, त्वचा $\frac{1}{2}$-१ रत्ती।

कंकुष्ठ (तमाल, तापिच्छ)

नाम—(हिं० म० पं०) तमाल-उसारे रेवन्द (अं०) मैसूर गैम्बोज ट्री,[2] (वा० ले०) गार्सिनिआ[3] पिक्टोरिया नागकेसर वर्ग[4]।

---

1. यह लता इन्द्रायण भेद रक्तफल इन्द्रायण से पृथक् है। Trichosanthes Palmata, Roxb.
2. The Mysore gambose tree.
3. Garcinia Pictoria, Roxb. G. Morrella, Leesr तथा G. Hanburi इसके नाम हैं।
4. Guttifereae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य—कंकुष्ठ एक विवादास्पद द्रव्य है। यह उग्ररेचक है। प्रायः रस शास्त्रों में पढ़ा जाता है, किन्तु यह धातु नहीं है। वस्तुतः यह वृक्ष विशेष का गोंद या निर्यास है। पीताभनलिकाकार तथा श्यामपित्त रेणुका के रूप में स्याम से आता है। हिमालय के पूर्वी भागों में भी यह वृक्ष पाया जाता है। रंगने के काम में आता है। भूल से इसे उसारे रेवन्द कहना प्रारम्भ हो गया। उसारे रेवन्द वस्तुतः पीतमूला रेवन्दचीनी (Rheubarb) का सार है। जो कंकुष्ठ से पृथक् ही वस्तु है। कंकुष्ठ के विषय में आयुर्वेद प्रकाशकार का निम्न कथन हमारे उपरिलिखित कंकुष्ठ से मिलता है।

हिमाचलेकदेशे तु कंकुष्ठमुपजायते। तत्रैकं नलिकाख्यंस्यादन्यद्रेणूकप्रभम् ॥
पीतप्रभं गुरु स्निग्धं कंकुष्ठं शिलयासमम्। मृद्वतीयं शलाकाभं सच्छिद्रं नालिकाभिधम् ॥
रेणुकाख्यं तु कंकुष्ठं श्यामपीतरजोऽन्वितम्। त्यक्तसत्वं लघु प्रायः पूर्वस्माद्हीनवीर्यकम् ॥

गुण—कंकुष्ठं रेचनं तिक्तमुष्णं व्रणविशोधनम्। कफशोफोदरानाह गुल्माध्मान क्रमिप्रणुत्। (कै०)

कंकुष्ठं-कड़वा, उष्ण, कटु विपाकी, व्रणशोधक, तीव्ररेचन, कफविकार, शोथ, उदररोग, गुल्म, आध्मान तथा क्रमिहर है।

प्रयोग—दोषों को निकालने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। इससे जलबहुल अतिसार होते हैं। अतः सर्वांग-शोफ, जलोदरादि में तथा आनाह, उदरक्रमि आदि में निष्कासन के लिए दिया जाता है। तीव्ररेचन होने के कारण मृदुकोष्ठो, गर्भिणी, सुकुमार, प्रकृति तथा बच्चों को सावधानी से देना चाहिए। उद्वेष्टनकारक होने से इसमें अजवायन, सोंठ आदि पदार्थ मिलाये जाते हैं। मोच तथा चोट की सोज में दूसरी औषधियों के साथ मिलाकर लेप करते हैं। क्रूर कोष्ठों के लिए निम्न योग लाभकारी है। कंकुष्ठ, आमलतास की फली, सनायपत्ती, एरण्डमूल, त्रिवृत्, हरड़, सैन्धानमक, अजवायन, वचा, धनियाँ, पीपल, समभाग, भुनी हींग आधा भाग—चणकसमगोली बना लें। मात्रा में १ गोली यह उष्ण प्रकृति वालों के लिए तथा गर्भिणी स्त्रियों के लिए अहित कर। इसके स्थान पर 'स्केमनी रेजिन[1] का प्रयोग कर सकते हैं। गुणों में समान हैं।

मात्रा—½-१ रत्ती तक।

जयपाल (रेचकम्)

नाम—(हि० म०) जमालघोटा-जमालगोटा (गु०) नेपालो (बं०) जयपाल (बं०) क्राटनसीड्स,[2] (वा० ले०) क्राटन टिग्लियम[3] लिन्न, स्नुही या एरण्ड वर्ग।

व्य० अं०—मात्रा ½-२ रत्ती तक, तैल १ बूंद

गुण—जयपाल कटुरुष्णश्च क्रमिहारी विरेचनः। दीपनः कफवातघ्नो जलोदर विनाशनः। (रा० नि०)

जमालघोटा कटु, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, तीव्ररेचन कफ, वात, क्रमि तथा जलोदर और विबन्धनाशक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—जयपाल का वृक्ष प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। तैल अत्यन्त तीव्ररेचक है। त्वचा पर लगाने से क्षोभ उत्पन्न करता है। अन्तः प्रयोग में भी मुख-आँतों आदि में क्षोभ तथा उद्वेष्टन (ऐंठन) उत्पन्न करता है। इसका प्रयोग मूर्च्छितावस्था में यथा सन्यास तथा मस्तिष्क के रक्त स्राव में ही करना चाहिए। एक बूंद तैल को मधु या शर्करा में मिलाकर जिह्वा के पिछले भाग पर रख दें। सामान्यतः तैल का प्रयोग न करना ही उत्तम है। हाँ, बाह्य प्रयोग में अन्य तैलों (नारायण तैलादि) के साथ मिलाकर अभ्यंग के लिए प्रयोग कर सकते हैं किन्तु सावधानी के साथ।

---

1. Scammony Resin.
2. Crotton Seed.
3. Crotton Tiglium, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अन्तः प्रयोग में शुद्ध बीजों का ही प्रयोग करना चाहिए। इससे यदि वमन या विरेचन तीव्र होने लगे तो चूने का पानी ५-१० तक की मात्रा में तब तक पिलाते जायें आधा घण्टे बाद, जब तक कि विरेचन बन्द न हो जाए। गरम जल से भी विरेचन बन्द हो जाते हैं। शीतल जल से बढ़ जाते हैं। बिच्छु-भिड़ आदि के दंश में बीज को चन्दन के समान घिसकर लगाने से लाभ होता है।

शोधन विधि—बीज का छिलका तथा मींगी के अन्दर की जीभ निकाल, गोबर के रस या दूध में तीन घण्टे तक मन्दाग्नि से पका, शीतल होने पर धो-नींबू रस में पीस कर मिट्टी को कोरे तवे पर फैलाकर सुखा लें या स्याही चूसों (ब्लाटिंग पेपर) के मध्य में रख कर स्नेह भाग सुखा दें।

इस शुद्ध जयपाल की भी तीव्रता कम करने के लिए इसमें टंकण (सुहागा) कत्था आदि मिलाते हैं। जलोदर, सर्वांग शोथ के लिए यह उत्तम विरेचक है। अनेक विरेचक योगों में डाला जाता है।

योग—विश्वतापहरणरस, अश्वकंचुकीरस, ज्वर केशरी, सुखविरेचनवटी—मात्रा-१-२ रत्ती ज्वरादि में विबन्धनाशार्थ इच्छा भेदीरस।

दन्तीद्वयम् (दन्ती द्रवन्ती)

नाम—(सं०) दन्ती-निकुम्भी-उदुम्बरपर्णी (हि०) दन्ती (म०) दान्ती (वा० ले०) क्राटन पालिएन्ड्रम्[1], बौलिऔस्पर्मम् मोन्टेनम्[2] स्नुही या एरण्ड वर्ग। (२) द्रवन्ती, बृहदन्ती, एरण्डफल, दुग्धगर्भा, (हि०) बड़ी दन्ती, मोगलाई एरण्ड (गु०) रतनजोत (वा० ले०) जाट्रोफ[3] कर्कस्, स्नुही वर्ग[4]।

गुण—दन्ती द्रवन्तिका चोष्णा कटुपाकरसा लघुः। विकाषिणी सरातीव्रा दीपनी पाचनी हरेत्।
कफपित्तोदरानाह शोफशूल गुदांकुरान्। विदाह कण्डु कुष्ठाग्र गुल्माश्मरीकृमीन्। (कै०)
दन्ती द्रवन्ती स्नेहास्तिक्तकटु कषाया अधोभागदोषहराः कृमिकुष्ठ कफानिलहरा, दुष्टव्रण शोधनाश्च।
(सु० सू० ४५)

छोटी तथा बड़ी दन्ती रस-विपाक में कटु, उष्णवीर्य, लघु-विकाशी, तीव्ररेचक, दोपन-पाचन कफपित्त निष्कासक तथा विलायक वातवर्धक आनाह-गुल्म-उदरकृमि, शूल, अर्श, विदाह-कण्डु, कुष्ठ, रक्तविकार, प्लीहावृद्धि-शामक है। बीजों का तैल कटु-तिक्त-कषाय रसवाला, उष्णवीर्य, रेचक उक्त रोग नाशक तथा व्रणशोधक हैं।

बीजतैल—कटु तिक्त, कषाय, उष्णवीर्य, रेचक, उक्त सभी रोगनाशक तथा व्रणशोधक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—मूल बीजों की अपेक्षा कम तीव्र रेचक है। अतः अधिकतर इसका ही उपयोग किया जाता है। मूलचूर्ण १½-३ माशा, बीजचूर्ण १½-५ रत्ती तथा स्नेह १-३ बूंद तक दिया जाता है।

उष्ण-विकाशी-लघु होने से यह स्रोतों की शोधक है। कफपित्त को विलीन कर विरेचन द्वारा बाहर निकाल देती है। विबन्ध (कब्जी) को नष्ट करती है तथा मल के साथ दोषों को भी बाहर निकालती है। जिससे विबन्ध जन्य रोग-अर्शादि तथा आमदोषादि से उत्पन्न आमवात, वातरक्तादि तथा आमदोषादि एवं अशुद्ध रक्त के विकार नष्ट होते हैं। यकृत् पर इसकी विशिष्ट रक्त क्रिया देखी गई है। वात को बढ़ाकर यह सब अंगों की क्रिया सुधार देती है। यह द्रव भाग को रेचन द्वारा शरीर से बाहर निकाल देता है। अतः जलोदर, सर्वांग शोथ, वृक्क शोथादि में रेचनार्थ प्रयुक्त होती है। कफकास में दन्तीमूल का धूम्र देते हैं। व्रणों पर पत्तों की पुल्टिस या तैल लगाते हैं। गठिया में बड़ी दन्ती की छाल को पीस कर लेप लगाते हैं। पाण्डु-कामलादि में पित्त विरेचन के लिए प्रयुक्त होती है।

वक्तव्य—तीव्ररेचन होने से अधिक मात्रा में देने से अन्त्रों में शोथ उत्पन्न करती है। बीजों को अधिक

---

1. Croton Polyandrum.
2. Boliospermum Montanum.
3. Euphorbiaceae.
4. Jatropha curcus, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मात्रा में खा जाने से मुखदाह, आध्मान, उदरशूल, वमन, विरेचन, छाती में कफ का जमाव, प्रलाप, मूर्छा आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। निम्बु का रस पिलाना इसकी सर्वोत्तम चिकित्सा है।

योग—नाराच रस रेचनार्थ-मात्रा १-२ रत्ती

स्नुही (सुधा-सेहुण्ड, वज्री)

नाम—(हि० पं० गु०) सेहुण्ड, थोहर, थोर (बं०) मनसासिज (म०) निबहुंगा।

सेहुण्ड के कई भेद हैं। उनके वानस्पतिक नाम भिन्न-भिन्न हैं। यद्यपि गुण समान है। मुख्यतः गोल काण्ड वाली, त्रिधारा, चतुर्धारा तथा चपटे काण्ड वाली (नागफणी) ये भेद हैं। इनके वानस्पतिक नाम इस प्रकार है।

(i) स्नुही (गोल काण्ड वाली) यूफोर्बिआ नेरिफोलिया[1] तथा यूफोर्बिया निबुलिया[2]।

(ii) त्रिधारा सेहुण्ड—तिधारा, थोहर, यू० एन्टीकोरम्[3] (अं०) ट्रायन्गुलर[4] स्पर्ज, ये दोनों एरण्डादि वर्ग[5] की है।

(iii) कंथारी, तीक्ष्णकंटका-सप्रला (हिं०) नागफणी थोहर (पं०) छित्तरथोर (म०) फह्या निवडुगं (गु०) थोर हीथलो, (अं०) प्रिकलीपिअर[6] (वा० ले०) ओपन्टिआ डिलिनाइ[7], कंथारी वर्ग,[8] नागफण वर्ग (बा०) नागफणा

गुण—स्नुक्पयस्तीव्रविरेचनानाम्। (च० सू० ५)

वज्रकण्टः कटुस्तिक्तस्तीक्ष्णोदीपन्नोष्णोदीपन्तो गुरुः। रेचनोऽनिल शूलामकफ गुल्मोदरापहा।
उष्णवीर्यस्नुही क्षीरं स्निग्धं सकटुकं लघु। गुल्मिनांकुष्ठिनां चापि तथैवोदर रोगिणाम्॥
श्रेष्ठमेतद्विराकार्थे मे चान्येदीर्घरोगिणः। (कै०)

थोहर कटु तिक्त रस उष्णवीर्य, कटु विपाकी, त्रिदोष शामक, तीव्ररेचक, तीक्ष्ण-दीपन-गुरु-उदरशूल, आम-दोष, उदररोग, कुष्ठ, कुष्ठ अर्श, पाण्डु रोग, दूधी विष-सर्वांग शोथनाशक है।

सेहुण्ड का दूध स्निग्ध, कटु, उष्ण, लघु तथा तीव्ररेचक है। जिन रोगियों का जलबहुल तीव्र अतिसार देने हो उनमें स्नुही क्षीर भावित चने या कालीमिर्च (१-३ दाने) गरम जल से निगल जाना कोष्ठ शुद्धि के लिए पर्याप्त है। या स्नुही क्षीर का भी प्रयोग कर सकते हैं।

सेहुंड-पत्र या काण्ड को उबालकर पुनः उसका शाक बनाकर उत्तम कोष्ठ शुद्धि करता है। इसका क्षार श्वास-कास में लाभ करता है। विरेचन के लिए दूध १ रत्ती से अधिक नहीं लेनी चाहिए। कोष्णपत्र स्वरस कर्णशूल-शामक, स्नुही क्षार उदर रोगों में लाभ करता है।

सातला (छित्तरथोर) का पका फल सेक कर इसे पिलाने से काली खाँसी में आराम होता है। लाल फलों का शर्बत काली खाँसी में अति उत्तम लाभ होता है।

---

1. Euphorbia Nerifolia Linn.
चरक में इसके दो प्रकार वर्णित हैं, द्विविध समतो, स्वल्पकंटक, बहुकण्टक (च० क०)
2. Euphorbia Nivulia, Ham.
3. E. Antiquorum, Linn.
4. Triangular Spurge.
5. Euphorbiaceae.
6. Prickly Pear.
7. Opuntia Dillenai, Haw.
8. Cactaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सत्रहवाँ अध्याय

ग्राही या मलविरोधक वर्ग

आवर्त्तफला (आवर्तनी)

परिचय—फालसे जैसा वृक्ष।

उ० स्थ०—मध्य तथा पश्चिमी भारत तथा हिमालय के निचले प्रदेशों में

पुष्पकाल—वर्षा में (सितम्बर-अगस्त)

व्य० अं०—औषधियों में फलियों का

उपयोग—४-८ माशा चूर्ण

रस—कषाय

वीर्य—शीत

विपाक—कटु

दोष—त्रिदोषहर

प्र० अ०—अन्त्र

वि० गु० क०—अतिसार, उदरकृमिहर

नाम—(हि० मा०) मरोड़फली (गु०) मरड़ासिंगी (म०) मुरडशेंग (ब०) आतमोड़ा (अं०) ईस्ट इण्डियन[1] स्क्रू प्लांट, (वा० ले०) हेलिक्टेरस् आईसोरा, लिन्न, मुचुकुन्द[3] वर्ग।

गुण—आवर्तनी कषाया च शीतला ह्यतिसारहा। त्रिदोषोदरशूलघ्नी कृमिजाल विनाशिनी॥ (भाव०)

मरोड़फली, कसैली, शीतल, अतिसारादि, अन्त्र-रोग उदरशूल, कृमि तथा त्रिदोषहर है। प्रवाहिका में इसका काढ़ा, कृमि तथा त्रिदोषहर है। प्रवाहिका में इसका काढ़ा और फांट बनाकर पिलाते हैं। मधुमेह में मरोड़फली की छाल का काढ़ा दिया जाता है। प्रवाहिका में १½-३ माशा फली का चूर्ण दिया जाता है। उदरकृमि में विडंग के साथ, उदरशूल, आध्मान में काले नमक के साथ, अतिसार में अतीस तथा इन्द्रजौ के साथ, प्रमेह तथा मूत्रातिसार में वंग-भस्म के साथ, प्रयोग किया जाता है।

आम्रः (रसालः सहकारः)

परिचय—आम परिचित वृक्ष है। सर्वत्र भारत में पाया जाता है।

व्य० अं०—पंचांग

पुष्पकाल—माघ-चैत्र

---

1. East Indian screw Plant.
2. Helicteres Isora, Linn.
3. Sterculiaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रस—अपक्व आम अम्ल, कषाय, पक्व, मधुर

वीर्य—अपक्व, उष्ण, पक्व, शीत

दोष—पक्व वातशामक, कफवर्धक पित्तविरोधि

वि० गु० क०—बल्य, पौष्टिक, वातशामक तथा बीजमज्जा संग्राहक

नाम—(हि०) आम, (बं०) आम, (म०) आंबा (गु०) आंबो, (अपक्व फल म० गु०) केरी, (फा०) अंब, नग्जक (अं०) मैन्गो[1] (वा० ले०) मैन्गिफेरा[2] इण्डिका लिन्न, आम्र वर्ग[3]।

गुण—पित्तानिकरं बालं, पित्तलं बद्धकेशरम्। हृद्यं वर्णकरं रुच्यं रक्तमांसबलप्रदम्।

कषायनुरसं स्वादु वातघ्नं बृंहणं गुरुः। पित्तविरोधि संपक्वंमाम्रं शुक्रविवर्धनम्। (सु० सू० ४६)

आम्र त्वचा कषायांच, मूलं सौगपन्ध ताहशम्। रुच्यं संग्राही शिशिरं, पुष्पं रोचन दीपनम्।

(रा० नि०)

कच्चा आम-वात पित्तवर्धक, रुचिकारक, वर्णकर, रक्तमांस, वीर्य बलवर्धक, पका आमफल-मधुररस, कषाय, अनुरस, पौष्टिक, गुरु, वातशामक, पित्त को न बढ़ाने वाली, वीर्य तथा कफवर्धक है। मूल, त्वचा तथा कोमलपत्ती कसैली, ग्राही, कफपित्तशामक है। पुष्प रोचन तथा दीपन हैं। मज्जा मधुरकषाय तथा ग्राही है।

प्रयोग—वमन तथा तृषा में जामुन तथा आम के पत्तों के रस से लाभ होता है। वमन, अमातिसार में आम की गुठली तथा वेलगिरी का काढ़ा बनाकर मधु और शक्कर के साथ पिलाया जाता है। अन्तः रक्त स्राव में, कफाधिक्य में पुष्प, छाल, पत्र तथा आम्रमज्जादि दी जाती है। रक्तार्श में, अत्यार्तव, अतिसार में, आम्रफल की मज्जा (गुठली) १०-१५ रत्ती की मात्रा में देते हैं।

कच्चे फल को भुवल में भूनकर उसका रस निचोड़कर जल तथा उसमें शर्करा मिला कर पीने से लू नहीं लगती तथा लू के ताप में आराम होता है।

मधुमेह तथा प्रमेह में भी मज्जा का प्रयोग किया जाता है। पक्व फल क्षीणता में सेवन किया जाता है।

कतकं (तोयप्रसादनम्, चक्षुष्यम्)

परिचय—यह मध्य प्रमाण का वृक्ष है। इसकी छाल धूम्रवर्ण की तथा गहरी दरारों वाली होती हैं। पुष्प सुगन्धि तथा फल गोल, बीज चपटा। मध्य-दक्षिण तथा पूर्वी भारत में पाया जाता है। कुचले की जाति का वृक्ष है। किन्तु विषैला नहीं।

व्य० अं०—फल

वि० गु० क०—मूत्रल, नेत्ररोगघ्न तथा जलशोधक है।

गुण—कतकं तुवरं तिक्तं विशदं शीतले लघु। विकाशि मधुरं छेदि चक्षुष्यं कफवातानुत्। (कै०)

निर्मली बींज कसैला, कड़वा शीतल, लघु, विशद, विकाशी, मधुर, छेदक (लेखन) चक्षुष्य तथा नेत्र रोग नाशक है।

प्रयोग—बीजों को चन्दन की तरह घिसकर कर्पूर और मधु मिलाकर नेत्रों में लगाने से गीड़ आना बन्द होता है। नेत्रों के 'अर्जुन' रोग में इनको सैन्धव के साथ घिसकर अंजन के समान लगाया जाता है। बीजों को पानी में डालने से वह शुद्ध हो जाता है। बहुमूत्र में बीजों को खिलाया जाता है। जीर्णातिसार में जो किसी प्रकार न मिटता हो, आधा या एक बीज जल में पीसकर मट्ठे (छाछ) में मिलाकर सात दिन तक देने से अवश्य लाभ होता

---

1. The Mango.
2. Mangifera Indica, Linn.
3. Anacardiaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

है। रक्तार्श में निर्मली की राख, प्रमेह में बीजों का चूर्ण १ तोला की मात्रा में छाछ के साथ दिया जाता है। पका हुआ फल ७½ माशा की मात्रा में शामक है।

नाम—निर्मली, निर्मलीबीज (गु०) कतकडों (बं०) निर्मली (क०) चिल्लिदमर (ते०) चिलगिनजालु (ता०) तेतरन्तको है। (अं०) क्लियरिंग नट[1], (वा० ले०) स्ट्रिक्नोस पोटैटोरम[3], लिन्न जो विषमुष्टि[3] वर्ग की औषधि है।

कदम्बः (नीपः, वृत्त पुष्पः)

नाम—(हि०) कदम (ब० मा०) कदम (गु०) कदम्ब (म०) कलम्ब (क०) इचलुः (ते०) कडम्बमु (ता०) बेल्लकदम्ब (अं०) बाईल्ड[4] सिनकोना (वा० ले०) एन्थोकेफेलस्[5] कदम्ब, मिक, मंजिष्ठादि[6] वर्ग।

परिचय—कदम्ब का महान् वृक्ष प्रायः सर्वत्र पाया जाता है, विशेषकर भारत में। पुष्प झड़बेरी के बेर से कुछ बड़े गोल कुछ पीले से वर्ण के होते हैं, अत्यन्त सुन्दर। फल नारंगी जितने बड़े तथा पीले रंग के।

पुष्पकाल—वैशाख से श्रावण तक। कदम्ब, धाराकदम्ब तथा भूमिकदम्ब तीन भेद होते हैं। गुणों में सब समान हैं।

गुण—कदम्बः शिशिरो ग्राही कषायो चर्णकद् गुरुः। निहन्ति योनि दोषाग्र कृच्छ्र दाह विषक्रशान्॥ (कै०)

कदम्ब, कषाय, तिक्त, मधुर रसवाला, शीतवीर्य, कटु विपाकी, वर्ण्य, गुरु, योनिरोग दोष, रक्तपित्तकृच्छ्रता तथा दाहशामक है। अपक्व फल, पुष्प, उष्ण, रुचिकारक, अम्ल तथा उष्णवीर्य है। पक्व फल मधुर, शीतल, त्रिदोषहर है।

प्रयोग—छाल के क्वाथ से गण्डूष (कुल्ले) कराए जाते हैं। ज्वर नाशन के लिए छाल के रस में जीरा तथा शर्करा के साथ दिया जाता है। अंकुर ग्राही तथा रक्तस्तम्भक हैं।

कट्फल (महावल्कलः उग्रगन्धः)

परिचय—वृहत् ३० फुट ऊँचा वृक्ष, चैत्र-वैशाख में नये पत्ते आते हैं।
उ० स्थ०—हिमालय का प्रदेश
पुष्पकाल—आश्विन-मार्गशीर्ष तक पुष्प लाल-सुगन्धित
मात्रा—१-३ माशा (छाल का चूर्ण)
रस—कटु-तिक्त-कषाय
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
दोष—त्रिदोषशामक
प्र० अ०—गर्भाशय तथा अन्त्र
वि० गु० क०—ग्राही, मुखरोग तथा प्रतिश्यायशामक

---

1. Clearing Nut.
2. Strychnos Potatorum, Linn.
3. Loganiaceae.
4. Wild Cinchona.
5. Anthocophalus Kadamba, Miq.
6. Rubiaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नाम—(हि० म० गु०) कायफल (बं०) कट्फल, कायछाल, (क०) किरिसिषनि (ते०) कैंडर्यम् (ता०) मरदेपट्टै, (वा० ले०) मायरिका[1] नागी, कट्फलादि[2] वर्ग ।

गुण—कट्फलः कटुरुष्णश्च कासश्वासज्वरापहः। प्रतिश्यायहरो रुच्यो मुखरोगशमप्रदः। (रा० नि०)
कट्फलं कटुकं तिक्तं कषायं कफवातजित्। (कै०)

कायफल-कटुतिक्त, कषायरसवाला, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, प्रतिश्याय, कास, ज्वर, मुखरोग तथा वातकफ-रोग नाशक है। यह शोथशामक तथा गर्भाशय उत्तेजक सुगन्धित है तथा वातनाड़ियों को बल देता है।

प्रयोग—नस्य के लिए कटफल श्रेष्ठ है। "श्रेयं कटफलं चूर्ण (सु० उ० अ० २९) वातकफ के रोगों में उत्तमौषध है। एतदर्थ कायफल, नकछीकनी तथा कटेरी (लघु) के सूखे फलों को पीसकर नस्य बनायी जाती है। छाल उष्ण तथा उत्तेजक होने से वातकफ, पक्षाघातादि में तैल में मिलाकर मालिश करते हैं। मुखपाक, गलशोथ दन्तशूल में इसके काढ़े से गण्डूष (कुल्ले) कराते हैं। प्रतिश्याय, कफजकास में, ज्वरादि में पिप्पली मिलाकर चटाते हैं। जिससे पसीना आता है, गुरुता-वेदना शान्त होती है। सोंठ तथा कटफल-समभाग बारीक पीसकर शरीर पर लगाने से पसीना बन्द होता है। अतिसार में बेल गिरी के साथ, स्वभेद में पान के साथ दिया जाता है। तैल में पकाकर उस तैल को कर्णशूल में डालते तथा वात व्याधियों में अभ्यंग करते हैं। लेप से व्रण शोधन रोपण तथा शोथशामक है। भैंस के दूध के साथ पीस कर इन्द्रिय पर लेप करने से उसकी शिथिलता को नष्ट करता है। सूक्ष्मचूर्ण में समभाग शर्करा मिलाकर मासिक धर्म के पश्चात् १ तोला की मात्रा में ३ दिन तक खाने से गर्भ धारणा होती है।

योग—कट्फलादिनस्य, (२) कट्फल रस क्रिया-गले की शोथ में।

कपित्था (दधित्थ-ग्राही फल, सरभिच्छदः)

परिचय—मध्यम प्रमाण का काँटों वाला वृक्ष
उ० स्थ०—सर्वत्र
व्य० अं०—फलं, पत्र, छाल, गोंद
पुष्पकाल—माघ-वैशाख तक फलों के पकने पर तीक्ष्ण गन्ध, गूदा रोचक खट्टा, पत्रों में सौंफ की सी गन्ध
मात्रा—१-३ माशा फल गूदा २-४ तोला
रस—कच्चाफल-अम्ल, कषाय, पत्र-कटु-पक्वफल-मधुराम्ल
वीर्य—शीत
विपाक—कटु
दोष—कच्चा-कफशामक वातपित्तवर्धक, पक्का त्रिदोषहर
प्र० अ०—अन्त्र
वि० गु० क०—सुरभित, पाचक, ग्राही

नाम—(हि०) कैथ (बं०) कथबेल, कयेत् (म०) कवठ (गु०) कोठ (क०) बेलदमर (तै०) बेलमुपंडु (ता०) बेल्लंग, (अं०) वुड एलेफेन्ट एप्पल[3] (वा० ले०) फेरोनिया एलेफेन्टम्[4] हरमल वर्ग[5]

---

1. Myrica Nagi. thumb.
2. Myricaceae.
3. Wood Elephant apple.
4. Feronia Elephantum, Corrca.
5. Rutceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण—कपित्थमामं कण्ठघ्नंविघ्नं ग्राहि वातलम् । मधुराम्लकषायत्वात् सोगन्ध्याच्चरुचिप्रदम् ।

परिपक्वं तु दोषघ्नं विषघ्नं ग्राही गुर्वापि (च० सू० २७)

कफानिलहरं पक्वं मधुराम्लरसं गुरु। कासश्वासारुचिहरं तृष्णाघ्नं कण्ठ शोधनम् । (सु० सू० ४६)

कच्चा कैथ फल अम्लकषाय, रूक्ष, लेखन लघु कंठ के लिए हानिकर (अस्वर्य) ग्राही, वातवर्धक, विष, कफनाशक है। पक्व फल मधुराम्लंकषाय तथा सुगन्धि होने से रुचिकारक, गुरु, वमन, तृष्णा, कास तथा हिक्का नाशक, त्रिदोषशामक और कण्ठशोधक है । पत्र, अतिसार वमन तथा हिक्काशामक और कण्ठशोधक है। पत्र, अतिसार, वमन तथा हिक्काशामक है । बीजों का तैल आखुविष (चूहे के विष) कफपित्त, वमन हिक्काशामक है । इसके प्रयोग बिल्व के समान समझें। वमन, हिक्का, श्वास में पत्र स्वरस में मधु-पिप्पली मिलाकर चटाते हैं। रक्तपित्त शामकता गुण तथा पाचक और ग्राही गुण इसमें अधिक है। मुखव्रण तथा शोथ में फल के गूदे के काढ़े से कुल्ला करते हैं। कषाय तथा रूक्ष होने के कारण संकोचक है। पातालयन्त्र से इसकी छाल का (इनमें एक विशेष तैल पाया जाता है) अर्क खींचकर अभ्यंग, किलास, दद्रु प्रभूति त्वचा रोगों में लगाते हैं। गोंद पिच्छल तथा ग्राही है। अतिसार नाशक है। शीतादरोग (दन्तरोग) में फल गिरी का टुकड़ा मुख में रखते हैं।

योग—कपित्थाष्टक चूर्ण-रोचक, दीपन, पाचन ।

कसेरुकम् (मुस्ताकृति, गन्धकन्दकः)

नाम—(हि० पं० म० गु०) कसेरु, (ब०) केसुर (म०) कचरा (वा० ले०) स्किर्पस् किसूर रौक्स[1], मुस्तकवर्ग[2] ।

गुण—गुरुविष्टम्भिशीतो च शृगांटक कशेरुकौ (सु० सू० ४६)

कसेरुकंहिमंरूक्षं मधुरं गुरु । संग्राही शुक्रलं स्तन्यकफमारुत वर्धनम् । (कै०)

कसेरु का कन्द कसैला, मधुर, शीतवीर्य मधुर विपाकी, गुरु, उदर में वायुकारक, रूक्ष, ग्राही, पौष्टिक, वीर्यवर्धक, दुग्ध, वातकफवर्धक, पित्तदाह तृष्णाशामक अतिसार, रक्तपित्तनाशक है।

प्रयोग—वमन शान्त करने के लिए कसेरुचूर्ण मधु के साथ देते हैं। शुष्ककास तथा अतिसार में मिश्री के साथ देते हैं। शुष्ककास तथा अतिसार में मिश्री के साथ देते हैं।

वक्तव्य—इसका कन्द कच्चा भी खाया जाता है। यह आकृति में नागरमोथे जैसा होता है। छोटे को चिचौड़ा[3] और बड़े को राजकसेरुक[4] कहते हैं।

कुटजद्वयम् (कुटजः यवफल, वत्सक, शकः गिरिमल्लिका)

परिचय—कुटज का मध्यम प्रमाण का वृक्ष होता है।

उ० स्थ०—पर्वतों पर सर्वत्र

व्य० अं०—त्वचा, बीज

पुष्पकाल—जुलाई-अगस्त

मात्रा—त्वक् चूर्ण १-२ माशा, इन्द्रयव ४-८ गुंजा

रस—तिक्त, कषाय, कटु

वीर्य—शीत

विपाक—कटु

---

1. C. Scirpus Kysoor, Roxb.
2. Cyperaceae.
3. Scirpus Articulatus, Linn.
4. S. Tuberosus.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्र० अ०—अन्त्र-पाचक संस्थान

वि० गु० क०—ग्राही, दीपन, पाचन, अनुलोमक रक्त संग्राही-शोषण

नाम—श्वेतकुटज (सितकुटज) (हि० पं० मा०) कुड़ा, कुरैंध्या, खिरणो (राजस्थान) (बं०) कुर्ची (म०) पांढराकुड़ा (गु०) घोलोकड़ो, (क०) कोड़सिगे (तै०) अम्कुडु (ता०) बेप्पालरिशी, (अं०) कुर्ची या टेल्लीचरीबार्क[1], (वा० ले०) होलेर्हेना एन्टिडिसेन्ट्रिका[2] वल, कुटजवर्ग[3]।

(कृष्णकुटज) सब नामों के आगे 'काला' वर्ग वाचक नाम लगा दें। (वा० ले०) राईटिआ टिंक्टोरिया[4] (बीज) (सं०) इन्द्रयव, (हि०) इन्द्रजौ (गु०) इन्द्रजव (म०) इन्द्रजव।

वक्तव्य—शास्त्रों में दो प्रकार के कुटजों का वर्णन हैं। (१) सितकुटज—इसे 'पुमानकुटज' भी कहा गया है। इसके बीज कड़वे होते हैं। प्रवाहिका में भी यही उपयोगी है, दूसरा इतना लाभ नहीं करता। (२) असित या काला कुटज, इसके बीज मीठे होते हैं। यह गुल्माकृति है, जबकि सितकुटज का वृक्ष १०-३० फुट ऊँचा होता है। सितकुटज की फलियों का जोड़ा सिरों पर जुड़ा हुआ नहीं होंता, किन्तु असित कुटज की फलियों का सिरा (नोक) जुड़ी रहती है।

गुण—कुटजः शीतलोरूक्षः कषायोदीपनः कटुः। कफ पित्तास्रतृट कुष्ठ जन्त्यामार्शोतिसारहा। (कै०)

शुक्राव्हाःकटु तीक्ष्णास्त्रिदोषाघ्नाश्च दीपनाः रक्तार्शास्यतिसारंचघ्नन्ति शूलं क्रमींस्तथा (ध० नि०)

कुड़ा (छाल) कड़वी, कटु, कषाय, शीतवीर्य दीपन, रूक्ष शोषक, पित्तकफ, रक्तस्राव शामक, त्वचारोग, अर्श, अतिसार, आमदोष, रक्तपित्त, वीसर्प, ज्वरशामक है। पुष्प कड़वे, कसैले, शीतवीर्य, लघु दीपन, कफपित्त शामक, वातकारक, क्रमि-कुष्ठ, रक्त विकार तथा अतिसारशामक है। इन्द्रजौ कड़वे, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य त्रिदोष शामक, आमपाचक, दीपन, रक्तार्श तथा अतिसारज्वर, उदरशूल और क्रमि नाशक है।

प्रयोग—कुटज में एक कड़वा सत्व (कुर्चीन) पाया जाता है। इसके कारण यह अतिसार तथा प्रवाहिका दोनों में लाभ करता है। रक्त प्रवाहिका में इन्द्रजौ या त्वक् चूर्ण को बिल्वचूर्ण में अथवा ईसबगोल के छिलके के साथ मिला कर दिया जाता है। संग्राहक होने से रक्तस्राव को बन्द करता है। दीपन पाचन होने से आम का पाचन रूक्ष तथा शोषण होने से द्रवांश का पाचन कर मल को बाँधकर लाता है। १-४ रत्ती की मात्रा में कुटज सत्व लाभ करता है। अतिसार या आमातिसार के प्रारम्भ में इतना नहीं करता जितना पुराने में। सरक्तातसिार में कुटजघ्न सत्व १-२ रत्ती, अफीम $\frac{1}{8}$ रत्ती मिलाकर देने या मूलत्वचा का काढ़ा (२-४ तोला) दिन में तीन बार देने से अतिसार प्रवाहिका आमातिसार ज्वरातिसार, शान्त होते हैं, किन्तु छाल ताजी हो तथा कड़वे कुटज की हो। पुरानी तथा काले कुटज की इतना लाभ नहीं करती। त्वचा की अपेक्षा बीजों में संग्राहक तथा शोषक एवं दीपन गुण अधिक है। भूनकर भी इन्द्र जौ को काम में लाते हैं। कुटज तरलसार[5] या सुरासार[6] १०-२० बूंदें प्रयुक्त हो सकती है। त्रिदोषजातिसार में अतीस के साथ मिलाकर या केवल इन्द्रजौ का फांट देने से यह मिट जाता है। रक्तार्श में भी लाभ होता है। जीर्णातिसार में तक्र के साथ प्रयोग करें। बीजों के प्रतिदिन सेवन से विषमज्वर नहीं आता। जलोदर में छालचूर्ण सारे शरीर पर मालिश करते हैं। इससे शोथ तथा दाह कम होती है। आमवात तथा सन्धि शोथ में ताजी छाल का लेप लगाते हैं।

योग—कुटजारिष्ट, कुटजावलेह, कुटजादिचूर्ण, कुटजघनवटी, वत्सकादि क्वाथ, पीयूषवल्ली रसादि।

क्षीरिणी (राजादन)

नाम—(हि०) खिरनी, खिन्नी (म०) रांजण (ग) रायण (ब०) खीरेखजूर, पोला, पाला (ता०) पल्लई

1. Kurchi, Tellichery Bark.
2. Holarrhena. Antidysentrica, Wall.
3. Apocynaceae.
4. Wrightia Tinctoria, Br.
5. Liquid Extract.
6. Tincture Kurchi.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(वा० ले०) मिमुसोप्स हेक्सेन्ड्रा[1]। इसकी दूसरी जाति (लघु क्षीरिणी) को मि० कंकी[2] कहा जाता है। गुणों में दोनों समान हैं। यह पंजाब सिन्धादि में अधिक पाई जाती है। पंचांग व्यवहार में आता है।

गुण—राजादनं हिमं स्निग्धं कषायं मधुरं गुरु। स्वाद्वम्लपाकं संग्राही वृष्यं विष्टम्भि वृंहणम्॥
रोचनं मांसलं हन्ति दोष त्रयमदभ्रमान्। मूर्च्छा मोह तृषादाह रक्तपित्तक्षतक्षयान्॥

सरल होने से अर्थ नहीं किया गया है।

प्रयोग—पका फल पित्त शामक तथा पौष्टिक है। प्लीहा के रोगों में, ज्वरों, तृषा सेवन कराया जाता है। छाल ग्राही है। अतः अतिसार में मधु के साथ मिला कर देते हैं। रक्त प्रदर में भी लाभ करती है।

जम्बुः (नीलफला)

परिचय—सुपरिचित वृक्ष सर्वत्र पाया जाता है।

व्य० अं०—पत्र, छाल, फल

पुष्पकाल—वैशाख-ज्येष्ठ

मात्रा—फलचूर्ण, ३ माशा

रस—मधुर अम्ल

वीर्य—शीत

विपाक—कटु

प्र० अ—अन्त्र, मूत्रसंस्थान

वि० गु० क०—रोचक, ग्राही, मूत्रातिसार तथा मधुमेहनाशक

नाम—(हि०) जामुन, (बं०) जामगाछ (म०) जांभूल (गु०) जांबू (क०) नेरल (तै०) नेरडिपंडु (ता०) नवाल् (अं०) ब्लैक प्लम्[3], ब्लैकबेरी[4] (वा० ले०) यूजेनिआ[5] जाम्बोलाना, लवंग[6] वर्ग।

वक्तव्य—जामुन के ४ भेद हैं। (१) राजाजम्बु (बड़ा जामुन) (२) क्षुद्रजम्बु (छोटा जामुन) (३) काकजम्बु (जंगली जामुन) (४) जलजंबुका—यह सिकोना फल बम्बई में हरे रंग का मिलता है। यह जामुन केवल नाम मात्र ही जम्बु से मिलता है। अन्यथा इसकी कुछ समानता नहीं है। उक्त तीनों जामुनों के गुण समान हैं।

गुण—अत्यर्थ वातलं ग्राही जाम्बवं पित्तजित् (सु० सू० ४६)
जम्बूरूक्षा कषायाम्ला कफपित्तातिसारजित्। जाम्बवं मधुरं साम्लं कषायं गुरु शीतलम्॥
संग्राही रोचनं रूक्षमकण्ठयं कफपित्तजित्। विष्टम्भि लेखनं वातविबन्धाध्यानकृम्दशम्॥ (कै०)

जामुन की छाल तथा पत्र खट्टे कसैले, ग्राही, अतिसार तथा कफपित्त शामक है। फल मधुर, अम्ल, कषाय तथा शीतवीर्य, कटु विपाकी, गुरु वात-विष्टम्भ (अफरा) कारक, कफपित्त शामक लेखन है। यह रोचक, किन्तु भारी तथा दुर्जर है। काली मिर्च नमक के साथ सेवन करना चाहिए।

प्रयोग—फल तथा उसकी मज्जा आमाशय तथा यकृत को बल देने वाला है तथा उनकी क्रिया को सुधारता है। इसीलिए मधुमेह-प्रमेह तथा बहुमूत्रशामक है। मधुमेह में गुठली का चूर्ण ३ माशा की मात्रा में शिलाजतु में मिला कर बिल्व पत्र रस से देना चाहिए। बहुमूत्र में शुष्क गूलर के फल के साथ एवं अतिसार में आम की गुठली के साथ देने से लाभ करता है। जीर्ण अतिसार (पुराने दस्तों) में आम की गुठली जामुन की गुठली, घी में भूनी जंगहरड़

---

1. Mimusops Hexandra.
2. Mimusops Kanki.
3. Black Plum.
4. Black Berry.
5. Eugenia Jambolana, qam.
6. Myrtaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(बालहरीतकी) अति गुणकारी है। कच्चे जामुन का सिरका (शुक्त) बनाया जाता है जो उदरशूल तथा स्थूलता नाशक है। आमातिसार या अतिसार में सोंठ, जायफल के चूर्ण को जामुन की छाल के काढ़े से देते हैं। सिरके को प्लीहावृद्धि में ४ माशा से ८ मासा तक सेवन करना चाहिए। मुख के छालों तथा दान्त के दर्द में छाल या पत्तों के काढ़े से कुल्ला करना चाहिए। रक्तार्श में जामुन की कोपलों-का २ तोला रस शक्कर मिलाकर देने से खून बहना बन्द होता है। वमन को रोकने के लिए आम और जामुन की छाल के काढ़े में शहद मिला कर पिलाते हैं। गुदभ्रंश में जामुन के पत्तों के काढ़े से गुदा को सेंकते हैं। जलने का सफेद दाग जामुन के पत्तों के लेप लगाने से चला जाता है।

योग—जम्बु फलासव—दीपन, पाचन, मधुमेहहर।

जातिफलम् (मद्शौण्डं, सौमनस्फल)

परिचय—मलायादि में होने वाले वृक्ष का फल

व्य० अं०—फल, तैल, फल का छिलका (जाविनी)

मात्रा—४ रत्ती-२ माशा तक

रस—कटु तिक्त, कषाय

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—वातकफशामक, पित्तकारक

वि० गु० क०—दीपन, अनुलोमन, ग्राही, वाजीकरण-हृद्य

नाम—(हि० क० गु० बं० पं०) जायफल (क०) जाईकाई (ते०) जाजिकाया (ता०) जादिकाई (अं०) नटमेग[1] (वा० ले०) मायरिष्टिका फ्रेग्रैन्स्[2], जातिफल[3] वर्ग।

गुण—जाति फलं रसे तिक्तं तीक्ष्णोष्णं रोचनं लघु। कटुकं दीपनं हृद्यं स्वर्यं श्लेष्मानिलापहम्॥

निहन्ति मुखवैरस्य मलदौर्गन्ध्य कृष्णताः। क्रमिकास वमिश्वास शोथपीनस हृद्रुजा॥ (भा० कै०)

जायफल रस में तिक्त-कटु, उष्ण, तीक्ष्ण, लघु, रुचिकारक, अग्निदीपक, हृदय को बल देने वाला, स्वर्य, वातकफशामक, मुखकी विरसता-दुर्गन्धि, क्रमि, कास, वमन, शोथ, पुराना जुकाम (पीनस) हृदय रोगनाशक है।

प्रयोग तथा प्रभाव—जातिफल जावित्री दोनों में एक उड़नशील तैल रहता है। दोनों ही पाचक अंगों को शक्ति देते हैं तथा वात का अनुलोमन, अतः उदरविकारों में ४-८ रत्ती तक जायफल चूर्ण मन्दाग्नि, अफारा, उदरशूल, जीर्ण अतिसार में अत्यन्त गुणकारी है। हृदय वल्य, सौमनस्य जनन होने से हृदय निर्बलता तथा शीतांगावस्था में पिलाते हैं। वात व्याधियों-अर्दित-पक्षाघात, वातवेदनाओं (बाई की दर्द) आदि का नाशक एवं वाजीकरण है। जायफल में छोटा सा छिद्रकर उसमें अफीम भरकर पुटपाक करके, चूर्ण बना, २-२ रत्ती की गोलियाँ अतिसार में अत्युत्तम रहती है। दुग्ध अनुपान रूप में पिलाना चाहिए। गठिया के दर्द (आमवात) में इन्हें सोंठ के काढ़े से देना चाहिए। विषूचिका वमन प्यास तथा जी मचलना आदि में जायफल को शीतल जल में चन्दन के समान घिसकर लगाना चाहिए। जायफल का तैल नपुंसकता में इन्द्रिय पर मला जाता है। अधिक मात्रा में इसका प्रभाव कपूर जैसा होता है। जातिफल का तैल भी उत्तम उत्तेजक, अनुलोमक, स्रोतशोधक हैं। उक्त सब रोगों में यह भी उत्तम प्रभाव दिखाता है।

तैलं जातिफलोद्भूतं समुत्तेजनमग्निदम्। जीर्णातिसारशमनमाध्मानाक्षेपशूलहृत्।

आमवातहरं बल्यं दन्तवेष्टव्रणार्तिनुत्। (अं० सं०)

---

1. Nut Meg
2. Myristica Fragrans, Houett.
3. Myristicaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

योग—(१) जातिफलादिचूर्ण (१-३ माशा) अतिसार, संग्रहणी आध्मानादि में।
(२) महागन्धक रस (१-२ रत्ती) अतिसार (विशेषतः बच्चों में)
(३) नृपतिवल्लभ रस (१-२ रत्ती) संग्रहणी में।

वक्तव्य—उक्त जायफल-जावित्री-मलाया-सिंगापुर से आती है। मालाबार में भी अब इसको बोया जाता है। एक हीन जाति का जायफल रामजायफल (बम्बई) कन्ट्री नट मेग[1] और जावित्री रामपत्री[2] भी मिलती है। यह दक्षिण भारत में उत्पन्न होती है। गुणों में हीन है।

जिंगनी-(मोदकी, किंकिणी)

नाम—(हि०) जिंगनी (म०) शिंखटी, (बं०) जिवल, (गु०) मवैंड़ी (वा० ले०) ओडीना[3] वुडियर, आम्रवर्ग[4]।

गुण—मोदकी मधुरासोष्णा कषाया योनिशोधनी। कटुपाका जयेद् वातव्रणातिसारहृद्रुजम्॥
निर्यासोऽस्या हरेन्नस्याद्रुजं स्कन्धांसबाहुजाम्। (कै०)

यह अत्यन्त ग्राही संकोचक है। मुखशोथ, मुखव्रण दान्तों का हिलना, अतिसारादिनाशक है। गोंद भी ग्राही है। अफीम या अन्य विषों की मूर्च्छा में जिंगनी के ताजे पत्तों का रस १० तोला, इमली का गूदा ५ तोला मिलाकर पिलाने से वमन होकर मूर्च्छा मिटती है। इसका गोंद भी यही गुण करता है।

दधि (तक्रजन्म-क्षीरोद्भवम्)

नाम—(हिं० पं० मा०) दहि (गु०) दही (ब०) दई (म०) दही (अं०) कर्ड[5]।

गुण—रोचनं दीपनं वृष्यं स्नेहनं बलवर्धनम्। पाकेऽम्लमुष्णं वातघ्नं मंगल्यं बृंहणं दधि॥
पीनेके वातिसारेच शीतके विषमज्वरे। अरुचौ मूत्रकृच्छ्रे च कार्श्येचदधिशस्यते। (च० सू० २७)

दहि तीन प्रकार का होता है—मीठा, खट्टा, खटमिट्ठा। मीठी दहि अभिष्यन्दि तथा कफभेद को बढ़ाता है। स्रोतों का रोधक है। खट्टा दहि वातशामक तथा पित्तकफकारक है। अत्यन्त खट्टा दहि रक्तदूषक, विदाही, मलमूत्र प्रवर्तक। कच्चा (अधजमा) दहि अभिष्यन्दि तथा त्रिदोषकारक है।

सामान्यतः दहि रुचिकारक, अग्निदीपक, स्निग्ध, बल तथा पौष्टिक-उष्णवीर्य-मधुर, विपाकी-वातशामक है। जीर्ण प्रतिश्याय अतिसार, संग्रहणी, शीतवर्त्रक विषमज्वरों, अरुचि, मूत्र कृच्छ्र तथा कृशता में उपयोग होता है।

पाचन सम्बन्धि रोगों में दहि तथा उसकी बनावटें अति लाभप्रद है। संग्रहणी के रोगी को केवल दहि पर ही रखा जाता है। यह लघु होने से शीघ्र पच जाता है तथा देह को पर्याप्त पुष्टि भी देता है। त्वचा रोग दाह आदि में खट्टे दहि के पानी में पंथाड़ (चक्रमर्द) तथा कत्थे को पीसकर लेप लगाते हैं। जयपाल का मद तथा भाँग का मद खट्टे दहि के सेवन से उतरता है। जयपाल के तीव्रातिसार में दहि खिलाने से लाभ होता है।

कढाए हुए दूध से जमाया दही गुणकारी, वातपित्तकारक, रुचिकर, धातु पौष्टिक तथा अग्निवर्धक है। मक्खन (क्रीम) निकाले गए दूध का दही रूक्ष, ग्राही, वातकारक, आध्मानकारक, दीपन-अतिलघु कुछ कषाय तथा रुचिकारक है।

1. Country Nutmeg.
2. Bombay Mace.
3. Odina wodier, Roxb.
4. Anacardiaceae.
5. Curd.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गाय का दही स्निग्ध, विपाक में मधुर, दीपन, बलवर्धक, वातहर और पाचक है। बकरी का दही, अग्निदीपन, त्रिदोष शामक, क्षय, अर्श, श्वास कासशामक है। भैंस का दही मधुर, वृष्य-पौष्टिक वातपित्तशामक तथा कफवर्धक है।

दाड़िमः (रक्तबीजः,-कुटिमः, रक्तकुसुमः)

नाम--(हि०) अनार (बं०) डालिम (म०) डालिम्ब (गु०) दाड़म, (क०) दालिम्बे (तै०) दाड़िमकमु (ता०) मादलम् (अं०) पामेग्रेनेट[1] (वा० ले०) प्युनिका[2] ग्रनेटम्, दाड़िमवर्ग[3]।

वक्तव्य—अनार का पंचांग उपयोगी है। यह तीन प्रकार का होता है--(१) खट्टे फलवाला, (२) मीठा-खट्टा, (३) मीठा। तीनों के गुणों में कुछ भिन्नता है। इसका पंचांग उपयोगी होता है।

गुण—मधुरंतु त्रिदोषघ्नं, स्वाद्वम्लं वातपित्तनुत्। असृक्पित्तकरंचाम्लं संग्राही सर्वमुच्यते।
दाड़िमं रोचनं हृद्यं दीपनं नातिपित्तलम्। मेध्यं कंठास्यरोगघ्न तर्पणं कफवातजित्॥
वर्चोविबन्धनंस्निग्धं कषायानुरसं लघुः। स्वादु त्रिदोष तृड्दाहज्वरहृद्रोगनाशनम्।
रूक्षाम्लं दाड़िमं यत्तु तत् पित्तानिलकोपनम्। पित्ताविरोधी नात्युष्णं स्निग्धाम्लं कफवातनुत्। (कै०)

फलों के गुण---मीठा अनार त्रिदोषशामक शीतल, मधुर विपाकी, वातपित्तशामक, रूक्ष और अम्ल होने पर पित्त कोपक, खट्टा अनार पित्तकोपक, रक्त को कुपित करने वाला होता है।

सामान्यतः सभी अनार रुचिकारक, अग्निदीपन, ग्राही, स्निग्ध, तर्पक, हृदय के लिए उत्तम, पित्त को न बढ़ाने वाले, लघु और कषायानुरस होते हैं। मीठा अनार, पित्त प्रकृतियों के लिए उत्तम, रक्तवर्धक यकृत् तथा हृदय को शक्ति देने वाला, कंठ की खरता तथा शुष्ककास में लाभ करता है। इसका शर्बत हृदय-यकृत् को बलदायक, ताप-दाह-प्यासशामक है। खट्टामीठा भी यही गुण करता है। पित्तप्रकृति वालों के लिए वमन, अग्निमान्द्य, पाण्डु-कामला, तथा हृदयस्पन्दन में लाभ करता है। खट्टा अनार पित्तवर्धक, किन्तु पाचन-दीपन तथा ग्राही होने के कारण अतिसारशामक है। मात्रा २-५ तोला रस। मीठे अनार का रस गाढाकर अंजन करने से नेत्र की ज्योति बढ़ती है।

नक्सीर में रक्तस्राव बन्द करने के लिए पत्रों का रस या स्वरस की नस्य देते हैं।

फल की सूखी छाल (नसपाल) कषायरस वाली तथा अतिसंकोचक और ग्राही है। अतएव मंजनों में तथा मुखपाक, शोथ, दन्त तथा मसूढ़ों के रोगों में प्रयुक्त होती है। जीर्ण अतिसार तथा प्रवाहिका में क्वाथ या चूर्ण, गुदभ्रंश में चूर्ण को गुदा पर छिड़कते तथा उसके काढ़े से रोगी को स्वेद देते हैं। रक्तार्श, रक्तप्रदर, प्रमेह शामक है। काली खाँसी में काला नमक तथा अजवायन मिलाकर पिलाया जाता है। अदरक मिलाकर देना उत्तम है। ५ तोला छिलका सवा सेर दूध में गरम कर १५ छटांक रहने पर दिन में ३-४ बार सेवन करने से अतिसार मिटता है। मात्रा ३-६ माशा तक मूल की छाल कषाय रस वाली तथा उदर कृमिहर है। ५ तोले छाल का काढ़ा बनाकर ५-५ तोला की मात्रा में १-१ घण्टा बाद पिलाएँ। चौथबार (अन्तिम मात्रा) देने से पहले ३-४ तोला एरण्ड तैल पिला दें। इससे पृथ, व्रन्तकृमि (फीते जैसे Tape worm) बाहर आ जाते हैं। किसी-किसी का जी मचलाता है। अतः लौंग-इलायची आदि सुगन्धित पदार्थ मिलाते हैं। चूर्ण मात्रा ४-६ माशा।

पुष्प रक्त स्तम्भक, संग्राही तथा व्रणशोधक हैं। रक्तार्श तथा अन्य आन्तरिक रक्तस्राव, मसूढ़ों से रक्त बहना बन्द हो जाता है। अनार के सूखे बीज (अनारदाना) दीपन पाचन पित्तशामक रुचिकारक है।

---

1. Pomegranate.
2. Punica Granatum, Linn.
3. Granateae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

योग—(१) दाड़िमाष्टक चूर्ण—अरुचि, अग्निमान्द्यादि शामक
(२) ग्रहणी गजकेसरी-संग्राही संग्रहणी नाशक

धन्वन (रक्तकुसुमः तेजनः धनुर्वृक्षः)

नाम—सर्वभाषा-धामण-धेमण (वा० ले०) ग्रिविआ टिलिफोलिया,[1] परुषक वर्ग[2]।

गुण प्रयोग—धर्मणः स्वादुस्तुवरोरूक्षः पित्तासजिल्लघुः, वृंहणी व्रणसन्धानरोपणोबलवर्धनः। (कै०)

इसमें ज्येष्ठ-बैशाख में पुष्प लगते हैं। फल जेठ से असौज तक पकते हैं। अन्तरछाल या शीतकषाय बना कर पिलाने से रक्तातिसार, प्रवाहिका शान्त होती है, क्योंकि यह पिच्छिल है। काष्ठचूर्ण वामक है। अफीम के विष में वमन कराई जाती है। कौंच बीज या अन्य कारणों से उत्पन्न दाह तथा खाज में इसके पत्तों का रस लगाया जाता हैं। फल खट्टे होते हैं तथा खाने के काम आते हैं। इसके वृक्ष सर्वत्र पाये जाते हैं।

धव (नन्दिकः शकटाक्षः धवलः)

नाम—(हिं०) धौ, धाव, (म०) धवल, (गु०) धावड़ो, (बं०) धाओया, (वा० ले०) एनोजीसस्[3] लेटिफोलिया, हरीतिकी वर्ग[4]।

गुण प्रयोग—धवः शीतः प्रमेहार्शः पाण्डुपित्त कफापहः। मधुरस्तुवरस्तस्य फलं च मधुरं मनाक् (भा०)

धव मध्य तथा दक्षिण भारत, हिमालय के अधोभाग, आबू आदि में पाया जाता है। विषूचिका में तथा श्वेतप्रदर में इसका गोंद घी में भून कर खिलाया जाता है।

धातकी (ताम्रपुष्पी बन्हिज्वाला)

नाम—(हि० पं०) धाय के फूल (बं०) धाई फूल (म०) धायटी फुलसहि (ग०) धावड़ीन फुल (वा० ले०) बुडफोर्डिया फ्लोरीबन्ड[5], धातकी या मदयन्तिका वर्ग[6]।

गुण—धातकी कटुका शीता मदकृत्तुवरः लघुः। तृष्णातिसारापित्तास्र विषकृमिवीसर्पजित्। (भाव०)

धाय के फूल कसैले-कटु रस वाले, शीतवीर्य, कटुविपाकी, मादक, लघु, अतीसार विष कृमि वीसर्प शामक है। आसवारिष्टों के सन्धान में विशेष रूप से प्रयुक्त होते हैं। माघ से चैत्र तक इसमें पुष्प आते हैं। वर्ण अग्नि के समान लाल होता है। पुष्प चूर्ण की मात्रा चौथाई से आधा तोला तक है।

प्रयोग—यह अतिग्राही है। धातकी फूल, मोचरस, अजवायन, जौ समभाग, आमपाचक तथा ग्राही होने से आमातिसार तथा प्रदरशामक है। पुष्पों का शर्बत दाह ताप, रक्तार्श नाशक है। अलसी का तैल धाय के फूल में मिलाकर लेप करने से अग्निदग्ध, मर्माश्रित नाड़ीव्रण तथा विषैले कीड़ों के दंश पर लगाते हैं। पुष्पों का गुलकन्द (पुष्पखण्ड) बनाकर रक्तप्रदरादि में सेवन कराया जाता है। गुदभ्रंश में इसके काढ़े से गुदा को सेका आता है। पुष्प गर्भस्थापक भी है।

योग—वृद्धगंगाधर चूर्ण अतिसार शामक है।

पाठा (अम्बष्ठा, कुचैला, बृहत्तिका)

परिचय—पाठा की लता सर्वत्र वृक्षों पर चढ़ी मिलती है।

---

1. Grewia-Tilifolia, Vahl.
2. Tiliaceae.
3. Anogeisus Latifolia, wall.
4. Combretaceae.
5. Woodfordia Floribunda Salisp.
6. Lythraceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल—जुलाई अगस्त में पुष्प आते हैं। लघु तथा वृहत् भेद से दो प्रकार की है। पंचांग व्यवहार में आता है।

रस—तिक्त

विपाक—कटु

वीर्य—बड़ी पाठा उष्ण, लघुपाठा शीत

प्र० अ०—अन्त्र

वि० गु० क०—आमपाचक, ग्राही ज्वरघ्न

मात्रा—चूर्ण ६ रत्ती-२ माशा तक

नाम—(हि० पं० मा०) पाठ-जलजमनी (म०) पहाड़बेल (गु०) कालीपाठ, करंडियु, बेनीबेल (बं०) निमुक, (बड़ोपाठा) आकनादिक (अं०) वेलवेटलीफ[1] (वा० ले०) बृहत्-सिसेम्पेलोस् हेक्सेन्ड्रा[2] (लघु) सि० परेरा[3], गुडूची वर्ग[4]।

गुण—पाठातिक्ता गुरूष्णाच वातपित्तज्वरापहा। भग्नसन्धानकृत् पित्तदाहातिसार शूलनुत्॥ (रा० नि०)
कुचैलिका तिक्तरसा स्वादुपाकाहिमा लघुः। ग्राहिणी वातला पित्तकफरक्त विनाशिनी॥ (कै०)

बड़ी पाठा तिक्तरस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, ग्राही, सन्धानकारक, रक्त तथा दुग्ध शोधक, त्रिदोषहर, आम पाचन, अतिसार, ज्वर, कुष्ठ-कण्डु-वमन उदरशूलशामक, वातवर्धक, पित्तकफ तथा रक्तरोगनाशक है। लघुपाठा (कुचैलिका) शीतल-मधुरविपाकी, कड़वी लघु है।

प्रयोग—कला तथा त्वचा पर इसका संकोचक तथा संग्राहक प्रभाव उत्तम होता है तथा पाठा के शामक और बलदायक प्रभाव के कारण मूत्राशय शोथ, प्रमेह मूत्रकृच्छ्र मूत्रमार्गशोथादि शामक है। इसके साथ यवक्षार खोरासानी अजवायन मिलाकर देने से और भी लाभ होता है।

इसी प्रकार आँतों की कला की निर्बलता से उत्पन्न कुपचन-उदरशूल, अतिसार, प्रवाहिका तथा ज्वरातिसार-शामक है। इसमें सुगन्धित पदार्थ डालकर प्रयोग करना उत्तम है। बिगड़े घाव तथा अस्थि व्रणों पर मूल का लेप करते हैं। योनि शैथिल्य में क्वाथ का सेवन और उसे प्रक्षालन करना चाहिए। अन्तर्विद्रधि में मूल का काढ़ा पिलाया जाता है।

योग—पुष्यानुगचूर्ण—रक्तप्रदर-श्वेतप्रदरनाशक ग्राही—मात्रा ३-६ माशा।

पूगीफलम् (क्रमुकम्, घोटाफलं-गुवाक)

परिचय—सुपारी का वृक्ष दक्षिण भारत में पाया जाता है। श्वेत रक्त भेद से दो प्रकार की है। देशभेद से बंगाली तथा दक्षिणी दो प्रकार हैं।

रस—कषाय, मधुर

वीर्य—शीत

विपाक—कटु

दोष—कफ-पित्तशामक

प्र० अं०—अन्त्र, गर्भाशय, कला

वि० गु० क—संग्राही, मादक, संकोचक

---

1. Velvet leaf.
2. Cissampelos, Hexandra.
3. C. Pareira.
4. Menispermaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नाम—(हि० पं० गु० बं०) सुपारी, सोपारी (म०) घोफल (अं०) एरका,[1] बेटलनट[2] पाम (वा० ले०) ऐरका कटेच्यु[3], तालवर्ग[4]।

(क०) अडिक्रेमक (तै०) ऐरका कटैच्यु, ताल वर्ग (क०) अडिकेमर (तै०) पाकपक्व (ता०) मला पाकुमरम्।

गुण—कफपित्तहरं रूक्षं क्वत्रक्लेद मलापहम्। कषायमीषन्मधुरं किंचित् पूगफलं सरम्॥ (सु० सू० ४६)

सुपारी कषाय रस, मधुर, अनुरस वाली, शीतल, रूक्ष, कटु विपाकी, कुछ सर (अनुलोमक), मादक, रोचक, कफपित्तशामक, स्रावशोषक, संकोचक, मुखदुर्गन्धि-स्रावनाशक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—कषायरस और रूक्षता गुण के कारण यह स्रावों का शोषण करती है। अतः मुख के लालास्राव तथा बहुमूत्र, अतिसार, अन्दर का रक्त स्राव, श्वेत रक्तप्रदर नाशक है। दान्तों को मजबूत करती है तथा मसूढ़ों से बहने वाले रक्तस्राव को बन्द करती है। इसीलिए मंजनों में डाली जाती है।

पौष्टिक स्तम्भक होने से शीघ्र वीर्यपात में उपकारक है। गर्भाशय को पुष्टि देती है। सूखी सुपारी चबाने से एक प्रकार की उत्तेजना उत्पन्न होती है। सुपारी का $१\frac{१}{४}$ तोला चूर्ण दूध के साथ सेवन करने से पेट के चपटे कीड़े मरते हैं। योनिस्राव में चूर्ण की पोटली बाँधकर रखने से स्राव बन्द होकर योनि संकुचित होती है। कच्ची-गीली सुपारी शुष्क की अपेक्षा अधिक ग्राही होती है। मुखपाक में सुपारी बड़ी इलायची भस्म लेप करने से तथा वमन में सुपारी-हल्दी-शर्करा का चूर्ण खिलाने से लाभ होता है।

दक्षिणी या चिकनी सुपारी उत्तम होती है। यह चपटी होती है। चूने की क्षारता को कम करती है। सूखी सुपारी आमाशय बलदायक तथा भूख बढ़ाने वाली है।

योग—सुपारीपाक-पुगाखण्ड-रक्तप्रदर-प्रमेहशामक।

पर्णीचतुष्टयम्

पृश्निपर्णी नाम—(सं०) कलशी, गुहा, लांगलीपर्णिका (हिं० पं०) पिठवन (म०) पिठवण (गु०) पीठवण, पीलोसमेखो, रानगांजो (बं०) चाकुलिया (कं०) ओम् देले होन्ने, (वा० ले०) युरेरिआ लागोपोइडीस्,[5] शिम्बी या अपराजिता वर्ग[6]।

गुण—पृश्निपर्णी रसेस्वादुर्लघूष्णा स्मत्रिदोषजित्। कासश्वास प्रशमनी ज्वरतृड्दाह नाशनी। (घ० नि०)
पृश्निपर्णी-संग्राहिक-वातहर-दीपनीयथ-वृष्याणम्॥ (च० सू० २५)

पिठवन मधुर, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, लघु त्रिदोषहर, दीपन, वृष्य, संग्राही, सन्धानकारक वातहर, रक्त दोष, खांसी, श्वास, ज्वर, प्यास, दाह तथा रक्तातिसारशामक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—पंचांग का व्यवहार किया जाता है। मात्रा $\frac{१}{२}$-१ तोला चूर्ण। यह पाचक अंगों को बलदायक, कला की उत्तेजक, निर्बलताजन्य अतिसार, रक्तस्रावादि में लाभ करती है। मूल क्वाथ मिश्री मिलाकर पिलाने से प्रतिश्याय, विषमज्वर मिटता है तथा पृश्निपर्णीमूलसिद्ध दूध पीने से सातवें मास गर्भपात का भय नहीं रहता। यह लघुपंचमूल तथा दशमूल का अंग है।

---

1. Areca.
2. Betal Nut Palm.
3. Areca Catechew.
4. Palmaceae.
5. Uraria Logopoides.
6. Leguminoceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शालपर्णी (अंशुमती, त्रिपर्णी, स्थिरा)

नाम—(हिं०) सखिन, शालवण (बं०) शालपानी (म०) सालवण, रानभाल (गु०) समेरवो-पांदड़ियो, सालवण (वा० ले०) डेस्मोडियम्[1] गेन्जेटिकम, शिम्बी वर्ग।

गुण—शालपर्णी स्वादुतिक्ता वृष्योष्णा बृंहणी गुरुः। रसायनी ज्वरकासश्वास विषदोषत्रयापहा ॥ (कै०)

सालवन का पंचांग उपयोगी है। सर्वत्र छोटे-छोटे पर्वतों पर मिलती है। पुष्पकाल जुलाई से सितम्बर तक। प्रभाव सारे शरीर पर विशेषकर वृषणों पर तथा पाचन पर, यह तिक्त रसायन है।

शालपर्णी रस में मधुर और तिक्त, वीर्य में उष्ण, विपाक में मधुर, रसायन, मांसवर्धक (बृंहणं) गुरु वीर्यवर्धक, त्रिदोषहर, वात रोग, ज्वर-प्रमेहार्श-शोथ-सन्ताप अतिसार-क्षय-क्षतकासनाशक तथा कृमिघ्न है।

प्रभाव तथा प्रयोग—यह उष्णवीर्य होने से अंगों में उष्णता या बल उत्पन्न करती है। अभिष्यन्द को नष्ट कर स्रोतों को स्वच्छ करती है। जिससे शरीर के समग्र स्रावों का प्रवाह ठीक होता है। धातुपोषण उचित होता है और सारा शरीर पुष्ट-सबल होता है। व्रणों की शोधक-रोपक और क्षीणता नाशक है। अतः ज्वरघ्न, शोथशामक-मूत्रल है। श्लेष्मिककला की उत्तेजक है। अतएव उसकी शोथ में यथा प्रतिश्याय, फुप्फुस शोथ, मूत्रमार्ग की शोथ की शामक है। लघुपंचमूल तथा दशमूल दोनों का ही अंग है। अन्त्र की कला की निर्बलताजन्य अतिसार, संग्रहणी आदि में लाभ करती है। राजयक्ष्मा या अन्य क्षीणता उत्पादक रोगों की नाशक है।

माषपर्णी (हयपुच्छिका, महासहा)

नाम—(हिं०) मषवन, जंगली उड़द, (पं०) जंगलीमाह (बं०) माषानी (म०) रान उड़ीदि (गु०) जंगली उड़द (वा० ले०) टेरेम्नस्[2] लेबिएलिस् अपराजिता या शिम्बी वर्ग[3]।

गुण—माषपर्णी हिमा रूक्षा मधुरा कफशुक्रला। तिक्ता संग्राहिणी वातपित्तदाह ज्वरास्रजित् ॥ (कै०)

माषपर्णी मधुरस, तिक्त, अनुरस, शीतवीर्य-मधुर विपाकी, रूक्ष, कफ, वीर्य तथा धातुवर्धक, वातपित्तशामक ज्वर, रक्तपित्त-दाह शामक है।

यह 'ज्ञेया विपाके-मधुरा रसेच बल प्रदा पित्त निबर्हणाच' (सु० सू० ४६) के अनुसार पित्त शामक तथा पौष्टिक है। अतएव जीवनीय गुण की अंगभूत हैं। अनेक क्वाथों में इसका उपयोग किया जाता है।

मुद्गपर्णी (सूपपर्णी-क्षुद्रसहा)

नाम—(हिं०) मुगवन, (बं०) युगानी (म०) रानमुग, (गु०) जंगली मग, अड़बाऊ मग, (वा० ले०) फेसिओलस ट्राईलोबस्[4] शिम्बी वर्ग।

गुण-चक्षुष्या क्षत शोषघ्नी मुद्गपर्णीतु तद्विधा, दोषक्षयहरा लध्वी ग्रहण्यर्शोतिसारजित्। (कै०)

मूगवन मधुरस-शीतवीर्य मधुर विपाकी वातपित्त शामक, कफ तथा वीर्यवर्धक, क्षत क्षीणतानाशक, चक्षुष्य, पित्तज्वर दाह, वातरक्त संग्रहणी और अतिसारनाशक है। जीवनीय गण की अंग है।

वक्तव्य—चारों पर्णियाँ पौष्टिक तथा धातुवर्धक त्रिदोष को समावस्था में रखकर स्वास्थ्य, बल तथा धातुवर्धक है। चारों के पुष्प वर्षा के बाद जुलाई से सितम्बर तक लगते हैं। पाचन संस्थान तथा सारे शरीर को प्रभावित करती है।

---

1. Desmodium gangeticum, De.
2. Teramnus Labialis, Spreng.
3. Papilionaceae यह शिम्बी वर्ग (Leguminoseae) का उपवर्ग है।
4. Phaseolus Trilobus, ait.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बब्बूलः (मालाफलः, कण्टकी, कषावकः)

परिचय--बब्बूल या कीकर रूक्ष उष्ण प्रदेशों में उत्पन्न होता है। पंचांग का उपयोग होता है। अनेक भेद हैं। पंचांग का उपयोग होता है।

पुष्पकाल--सितम्बर-अक्टूबर

रस--कषाय

वीर्य--शीत

विपाक--कटु

दोष--कफपित्त शामक

प्र० अ०--अन्त्र-कला रक्त

वि० गु० क०--ग्राही, दाहशामक-रक्तस्रावरोधक

नाम--(हि०) बबूल-कीकर (पं०) कीकर (बं०) वाबला (म०) बाभूल (मा०) बंबल (अं०) बाबूल ट्री[1], (वा० ले०) अकेशिया-अरेबिका[2] बब्बूल वर्ग[3]।

गुण--बब्बूलस्तुवरः शीतः कफकासामयापहः। बब्बूलस्य फलं रूक्षं विशदं स्तम्भनं गुरुः।
आमातिसारघ्नः पित्तार्शो दाहनाशनः। बब्बूलस्य तुनिर्यासो ग्राही पित्तानिलापहः।
रक्तातिसार पित्ताग्र मेह प्रदरनाशनः। भग्नसन्धानकः शीतः शोणित सुतिवारणः॥

बबूल (पंचांग) कसैला, शीतल, कफ-पित्त शामक, कास, आमातिसार, अर्श दाहनाशक है। बब्बूल की फलियाँ रूक्ष, द्रवशोधक, स्तम्भन तथा गुरु है। निर्यास या गोंद ग्राही पित्तवातशामक, रक्तातिसार, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, नाशक, भग्न सन्धानकारक है। यह फाल्गुन तथा चैत्र के महीनों में स्रवित होता है। लाल की अपेक्षा सफेद गोंद उत्तम समझा जाता है।

प्रभाव तथा प्रयोग--बबूल के सब अंगों में कषायाम्ल पाया जाता है। अतः यह अत्यन्त ग्राही, शामक है। शीत तथा रूक्ष होने से स्रावों का स्तम्भक तथा शोधक है। साथ-ही-साथ कषायता के कारण त्वचा या कला पर क्षोभ दाहशामक संशमन प्रभाव भी उत्पन्न करता है।

उक्त कारणों से इसे अतिसार, रक्तस्राव, श्वेतप्रदर-प्रमेह-शीघ्र वीर्यपात तथा वीर्य की तरलता में प्रयोग करते हैं।

दान्तों-मसूढ़ों को दृढ़ करने के लिए एवं मुखशोथ-सूखी खाँसी आदि में इसे चबाते हैं या उसके कुल्ले करते हैं। कच्ची छाया में फली को समशर्करा के साथ प्रमेह शीघ्र पात में दिया जाता है। कीकर की कोंपल जीरा तथा अनार की कली के साथ पीस कर सेवन करने से बच्चों का अतिसार बन्द होता है। श्वेतप्रदर-योनिदाहादि में काढ़े से उत्तर बस्ति दी जाती है।

गोंद को भी घी में भूनकर खाने से प्रसूता का बल बढ़ता है तथा पुरुषों में वीर्य, शुष्क कास, उदर-क्षत, प्रवाहिका, अतिसारादि में रक्तस्राव को दूर करने के लिए गोंद १-३ माशा की मात्रा में सेवन किया जाता है। श्वेत प्रदर में बब्बूल क्वाथ में फिटकिरी मिलाकर उत्तर बस्ति देने से, मुखपाक में बबूल तथा आम की छाल के काढ़े से कुल्ले करने से, गुदभ्रंश (काच निकलना) योनि-गर्भाशय शिथिलता में क्वाथ से धोने से और त्वचा का चूर्ण छिड़कने से, कफातिसार में बबूलपत्र दोनों जीरे तथा काली मिर्च पीसकर ½ तोला की मात्रा में सेवन करने से अग्निमान्द्य

---

1. Babul Tree.
2. Acacia Arabica, wild.
3. Mimosaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अग्निभग्न में बीजों का चूर्ण मधु के साथ लेने से, स्नायु के रोग में बीजों का चूर्ण लेप करने से, कुष्ठ में ३ तोले छाल का हिम पीने से, रक्तप्रदर में घी में भूना गोंद ४½ माशा तक, गुरु ४½ माशा प्रातःकाल सेवन करने से लाभ होता है।

योग—बब्बूलारिष्ट-कुष्ठ प्रमेह, श्वासकास-प्रदरनाशक।

निम्बी (तुण्डी-रक्तफला-पीलुपर्णिका)

नाम—(हि० पं० मा०) कन्दुरीकी बेल (बं०) तेलाकुचा (म०) तोंडलें (गु०) घोलोडां (क०) तोंडेहम्बु (तै०) दोंडतिगे। (वा० ले०) सीफेलेन्ड्रा इण्डिका[1], कर्कटी वर्ग[2]।

गुण—बिम्बी स्वादी रसेपाके वामन्यश्लेष्मला। शाकं तु मधुरं तिक्तं कषायं शीतलं लघु।
संग्राहि कटुकं पाके वातलं कफ पित्तजित्॥ (कै०)

बिम्बी फल शीतल-लेपन मलस्तम्भक है। पुष्प पाण्डु-पित्त-कामलाशामक है। बहुमूत्र में १ तोला स्वरस नित्य पिला दिया करते हैं।

भूर्जपत्रः (बहुत्वचः मृदुत्वचः लेख्यपत्रकः)

नाम—सर्वभाषा भूजपत्र-भोजपत्र (वा० ले०) बेतूला भोजपत्रा[3]।

गुण—भूर्जः कषायो जयति बलासं पित्तशोणितम्। मेदोभूतग्रहरक्षः कर्ण रोग विष प्रणुत्॥

वक्तव्य—अत्यन्त अल्प प्रयोग होता है।

मधुकः (गुड़ पुष्पकः एलाफल, तीक्ष्णसारीः)

नाम—(हि० पं० मा०) महुआ (म०) मोहडा (गु०) महुडो (क०) हिप्पेमर (तै०) इप्स (ता०) इलुपप्म् (अं०) इण्डियन[4] बटर ट्री (वा० ले०) बेसिया[5] लैटीफोलिया, मधूक वर्ग[6]।

गुण—मधुकस्तुवरोतिक्तो व्रणानिल कफापहा। तत्पुष्पं मधुरं शीतमहृद्यं बृंहणं गुरु॥
स्निग्धं विकासी तीक्ष्णोष्णं तत्फलं गुरुशीतलम्। अहृद्यं शुक्रलं स्निग्धं मधुरं रसपाकयोः॥ (कै०)

महुआ (वृक्ष) कसैला कड़वा—व्रणशामक, वातकफ नाशक, फूल मीठा, शीत वीर्य, मधुर विपाकी गुरु स्निग्ध अहृद्य फल भी इन्हीं गुणों वाला है। यह वातपित्त, रक्तविकार, दाह-क्षत-क्षय और संग्रहणी नाशक है। फूलों का प्रयोग किया जाता है। फूल ४-५ तोला से अधिक खाने से नशा करते हैं। मद्य बनाने के काम आते हैं। बीजों में ५५% प्रतिशत तैल निकलता है। जमने पर सफेद हो जाता है। गरीब लोग इसे घी के स्थान पर खाते हैं।

प्रयोग—छाल का क्वाथ ग्राही तथा बलवर्धक है। गठिया में इसे पीसकर लेप करने से लाभ होता है। तैल निकालने के बाद बची खली से वमन हो जाती है। उसके धुएँ से चूहे तथा कीड़े मरते हैं। इसका तैल मालिश करने से वातिक पीड़ाएँ तथा त्वचा रोग मिट जाते हैं।

योग—मध्वासव, मधुकासव, दीपन, पाचनग्राही, संग्रहणी तथा जीर्णातिसारशामक।

इसके फूलों का विशेष प्रयोग संधान के लिए किया जाता है और इससे शराब बनाई जाती है। प्रसंगवश यहाँ मद्य के गुण लिखे जाते हैं।

---

1. Cephalandra Indica Naud.
2. Cucurbitaceae.
3. Betula Bhojpatra. wall.
4. Indian Butter tree.
5. Bassia Latifolia, Roxb.
6. Sapotaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मद्य अनेक प्रकार की होती है। जिस वस्तु से बनाई जाती है उसके गुणों के अनुसार मद्यों के गुण होते हैं, किन्तु कुछ सामान्य गुण भी होते हैं। वही सामान्य गुण यहाँ लिखे जाते हैं।

मद्य एक प्रकार का विष है। विष में जितने गुण होते हैं वे सब मद्य में भी पाये जाते हैं। अतएव आचार्य ने कहा है "ये विषस्यगुणाः प्रोक्तास्ते पि मद्येवस्थिताः ।। (माधव)

मद्य के गुण—मद्यमम्लं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्मंविशदमेवच । रूक्षमाशुकरं चैव व्यवायिविशदंच ।। (सु० उ० 47)

बाह्य प्रयोग में 70% प्रतिशत सुरासार (मद्य) उत्तम कृमिघ्न है। त्वचादि पर लगाने तथा शल्य शास्त्रों के शोधन के लिये प्रयुक्त होती है। ५०% की शक्ति में यह संयोजक है। लेप करने से यह ताप को कम करती है त्वचा को सशक्त बनाती है तथा अतिस्वेद को नष्ट करती है। ३०-४०% की शक्ति में यह ताप को कम करती है। ७०-९०% तक की शक्ति में यह संक्षोभक है। अतः वत्सनाभादि में मिलाकर लेप करने से शोथ-वेदना, आमवात की वेदनाएँ शान्त होती हैं। दन्तशूल की खोल में इसका पिचु भरा जाता है। मोच आदि में वेदना शान्ति के लिए सूची-वेधन द्वारा प्रयुक्त होती है।

आन्तरिक उपयोग—इसका कला पर त्वचा के समान प्रभाव होता है। अर्थात् संक्षोभ उत्पन्न करता है। मुख में कटु रस का प्रभाव उत्पन्न कर लालास्राव बढ़ाती है। स्वादांकुरों तथा मुख, जिह्वा-तालु की कला को उत्तेजित करके पाचक रसों का स्राव बढ़ाती है तथा भोजन में रुचि उत्पन्न करती है। अतः क्षुधावर्धक और पाचक है।

आमाशय में भी क्षोभ उत्पन्न करती है। पाचकरस का स्राव बढ़ाती है। एतदर्थ १०% मद्य काफी है। आसवारिष्टों में १२% मद्य पाई जाती है। (२) मांसपेशियों की आक्षेप तथा गति मन्द कर वायु का अनुलोमन करती है। आन्तों में भी इसी प्रकार आक्षेप आध्यमान को दूर करती है। आमाशय व्रण तथा अम्लपित्त में मद्य नहीं देनी चाहिए, क्योंकि यह अम्लता को बढ़ाती है। मन्दाग्नि वाले जीर्णरोगों से क्षीण व्यक्तियों को उचित मात्रा में भोजन के साथ या कुछ समय पश्चात् देना लाभदायक है।

अधिक शक्तिशाली मद्य के सेवन से सुषुम्नासेतु उत्तेजित होकर (प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा) रक्त संचार तथा श्वास की मात्रा को बढ़ा देता है। हृदय की निर्बलता, शीतांगावस्था तथा हृदय की तीव्र धड़कन, मूर्च्छा में लाभ करती है।

वात संस्थान पर इसका अवसादक प्रभाव होता है। इससे विचारशक्ति तथा सहयोगात्मक मांसपेशियों की क्रियाएँ शिथिल हो जाती हैं। प्रथम कुछ उत्तेजना आती है तथा कार्यशक्ति बढ़ती है। अतः निद्रा आ जाती है। यदि नींद आए तो शैथिल्य आ जाता है। सारी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती है। स्पर्श तथा वेदना ज्ञान भी नष्ट हो जाता है। गहरे नशे में सुषुम्ना संचालित प्रतिसंक्रमित क्रियाएँ नष्ट हो जाती हैं।

अधिक मात्रा में प्रयोग करने से रक्त भार बढ़ता है। तथा रक्तसंचार उत्तम करती है। मृतसंजीवनी सुरा या ब्राण्डी एतदर्थ उत्तम है।

स्वेदल तथा मूत्रल प्रभाव का कारण यह है कि त्वचा तथा वृक्क की रक्तवाहिनियाँ विस्तृत हो जाती हैं। फलतः रक्त की मात्रा अधिक प्रभावित होने की वजह से पसीना भी आता है तथा मूत्र की मात्रा भी बढ़ती है। रक्त-संचार बढ़ जाता है जिससे थोड़ी देर के लिए शरीर में गर्मी का अनुभव होता है। तापकेन्द्र को भी यह शिथिल करती है। अतः ज्वरशामक भी है।

शीत लग जाने पर प्रतिश्यायादि को दूर करने के लिए तथा शीतजन्य रोगों में पसीना लाने के लिए इसे सेवन किया जाता है।

श्वास क्रिया को, आमाशय क्षोभजन्य प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा उत्तेजना मिलती है। मानसिक चिन्ता, बेचैनी आदि को कम करती है। अतः श्रम (थकावट) जन्य अनिद्रा, चिन्ता-वेदनाओं एवं न्यूमोनिया आदि में इसका प्रयोग श्वास यन्त्र को शक्ति देने के लिए तथा नींद लाने के लिए किया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आशोषण—मद्य व्यवायी होने के कारण अतिशीघ्र अपरिवर्तित रूप में ही रक्त में मिल जाती है। १½-२ घण्टे में रक्त में इसका अधिकतम संचय हो जाता है। रक्त कणों पर इसका कुछ प्रभाव नहीं होता। शरीर में इसका दाह होता है।

निष्क्रमण तथा सहनशीलता—शरीर में १० सी० सी० प्रति घण्टे के हिसाब से यह शरीर में भस्म होती रहती है। मूत्र में भी लगभग इसी प्रमाण में निकलती है। धीरे-धीरे पीने की आदत बनाने से सहनशीलता उत्पन्न हो जाती है और उसके अनुसार उन्मादक प्रभाव कम हो जाता है।

भेद—मुख्यत: दो प्रकार की है।

(१) मेथिलेटिड स्पिरिट—इसमें विष मिला होता है। यह अन्त: प्रयोग के लिए नहीं होती।

(२) रेक्टीफाईड स्पिरिट (सुरासार)—यह अनेक शक्तियों या प्रतिशतों वाली होती है। अन्त: प्रयोग में काम आती है। आयुर्वेद में इसके स्थान पर 'मृतसंजीवनीसुरा' है।

मांसरोहिणी (रोहिणी-चर्मकसा)

नाम—(हिं०) रोहन (म०) रोहण (गु०) रोण-रोहण (बं०) रोहण (अं०) इण्डियन रेड वुड ट्री[1], बेस्टार्ड सीडार[2], सोयमिडा[3] फेब्रीफ्यूजा, निम्बवर्ग[4]।

गुण—मांसरोहा रसेपाके मधुरा तुवरा हिमा। सर्वा संग्रहणीं हन्ति नात्र कार्या विचारणा॥
भग्नसन्धानकृत् प्रोक्ता तथैव व्रणरोपिणी॥ (कैं०)

मांसरोहिणी रस में मधुर कषाय, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, ग्राही, संकोचक, व्रणरोपक, अस्थि को ठीक जोड़ने वाली, संग्रहणी तथा ज्वरशामक है।

प्रयोग—रोहिणी का २ तोला क्वाथ दिन में दो-तीन बार पीने से विषमज्वर नष्ट होता है। पुराने अतिसार संग्रहणी में चूर्ण ३ माशा की मात्रा में देने से लाभ होता है। यह आन्तों की कला की शिथिलता को नष्ट करती है। योनि रोगों तथा प्रवाहिका में बस्ति और उत्तर बस्ति दी जाती है। व्रणों का प्रक्षालन इसके क्वाथ से किया जाता है।

मांसरोहिणी के उच्च वृक्ष मध्य, दक्षिण तथा पश्चिम भारत में पाए जाते हैं। छाल उतारने पर रुधिर तुल्य स्राव निकलता है। अत: मांसरोहिणी नाम दिया गया है।

मायाफलम् (मायिका)

नाम—(हिं०) माजूफल (म०) मायाफल (गु०) मायाफल, मायुं (अं०) ओक गाल्स[5], मैजिक गाल्स[6] (वा० लें०) क्वेर्कस् इन्फेक्टोरिया[7], मायाफल वर्ग[8]।

वक्तव्य—मायाफल ग्रीस एशियामाईनर सीरिया आदि देशों से भारत में आता है। यहाँ केवल शोभार्थ उद्यानों में लगाया जाता है। फलों का उपयोग होता है। मात्रा ५-१० रत्ती तक। अत्यन्त ग्राही तथा रक्तस्तम्भक है।

---

1. Indian Red wood Tree.
2. Bastard Cedar.
3. Soymida Febrifuga, adr, Juss.
4. Meliaceae.
5. Oak Galls.
6. Magic galls,
7. Quercus Infectorea, oliv.
8. Cupuliferae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण-प्रयोग—फल तथा त्वचा में दो अम्ल (टैनिक तथा गैलिक) पाये जाते हैं। यह काला, नीला, सफेद रंग भेद से तीन प्रकार का है। काले तथा नीले का प्रयोग किया जाता है। अत्यन्त ग्राही, शोधक, कफनाशक, रक्त-स्तम्भक तथा केश्य है। शीतवीर्य, कटु विपाकी तथा रूक्ष हैं।

रक्तस्राव को रोकने के लिए मायाफल ५ तोला, अफीम २ तोला, सिक्थ तैल २० तोला, उत्तम है। यह मलहर, अर्श तथा गुदादाह, गुदभ्रंशनाशक है।

दान्तों को दृढ़ तथा रक्तस्राव को रोकने के लिए दन्त मंजनों तथा श्वेतरक्तप्रदर में पोटली बनाकर योनि में रखते हैं। जीर्णातिसार तथा गुदभ्रंश में बस्ति दी जाती है तथा अहिफेनादि खिलाया जाता है। गले की गाँठों की सूजन तथा गल शुण्डिका बड़ी हो जाने पर इसका चूर्ण मला जाता है। काँच निकलने पर मायाफल, अनार का फूल, स्फुटिका कत्था समभाग लेकर चूर्ण बना छिड़कने (अवचूर्णन) से लाभ होता है। अंडवृद्धि में माजूफल तथा अश्वगन्धा मिलाकर लेप करते हैं। कहीं से भी रक्तस्राव होने पर मायाफल का चूर्ण छिड़कने से या क्वाथ से प्रक्षालन करने से लाभ होता है। खाँसी के साथ खून तथा सड़ा कफ आने पर मायाफल-शर्करा के साथ देने से लाभ होता है। नमक के साथ सेवन करने से प्लीहावृद्धिशामक है।

माचिका (अम्बष्टा-दन्तशठा)

नाम—(हि०) माई-मोइया, झाऊ (बं०) झाऊ (म०) झाऊ (अं०) मन्ना (बड़ी का नाम) रक्त आवुक, बड़ी झाई (वा० ले०) टामारिक्स आर्टीकुलेटा,[1] (छोटी झाई) टमारिक्स गैलिका,[2] माचिका या झाबुक वर्ग[3]।

वक्तव्य—माचिका की छोटी और बड़ी दो जातियाँ हैं। पंचांग उपयोगी है, विशेषकर फल। जो वस्तुतः कीड़ों के घर होते हैं। रुक्षस्थानों में अधिक। यकृतप्लीहा को बल देती है। पंजाब सिन्ध आदि में नदी तट पर उत्पन्न होती है।

गुण—अम्बष्टा मधुरातिक्ता लघ्वम्ला रसपाकयोः। कफपित्तहराकण्ठ्या पक्वातिसार नाशिनी ॥ (भा०)

प्रभाव तथा प्रयोग—मायाफल के समान समझें। आमातिसार में इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए, अन्यथा शूलादि उत्पन्न करते हैं।

वोलम् (गंधरसं, रक्तापहम्)

परिचय—यह एक वृक्ष का निर्यास है। यह अफ्रीका अरबादि देशों से यहाँ आता है। इस निर्यास का वर्ण पीलिमा युक्त लाल होता है। सुगन्धित है।

रस—कषाय, कटु, तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—कफपित्तशामक

वि० गु० क०—संग्राहक, उत्तेजक, दीपन, अनुलोमन, कृमिहर

मात्रा—४ रत्ती-२ माशा तक

नाम—(हि०) बोल-मुरमकी, बीजाबोल (बं०) गन्धार्श, गन्धबोल (गु० म०) हीरा बोल (अं०) मिर्हा (गोंद)[4] (वा० ले०) बाल्सामोडेन्ड्रोनमिर्ह[5] या कामीफोरा-मोलमोल[6] गुग्गुलादि[7] वर्ग। (बम्बई बाजार नाम) करम।

---

1. Tamarix Articulata, Vabl.
2. T. Gallica, Linn.
3. Tamaricaceae.
4. Myrrha.
5. Balsamodendron Myrrha, Nus.
6. Commiphora Molmol.
7. Burseraeeae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण—बोलं तु कटुतिक्तोष्णं कषायं रक्तदोषनुत् । कफपित्तामयान् हन्ति प्रदरादिरुजापहम् ।। (रा० नि०)

बोल, कड़वी, कफपित्त तथा रक्तरोगनाशक एवं प्रदरादि रोगहर है ।

प्रभाव तथा प्रयोग--बोल में गोंद ६०% (उड़नशील तैल ५ प्रतिशत) तथा राल ३५% है । इनके कारण इसमें सुगन्धि तथा कटुता है ।

बाह्य प्रयोग में यह मृदु क्षोभक तथा कीटाणुनाशक है, अतः व्रणों में प्रयोग होती है । इसके काढ़े से दुष्ट व्रणों को धोया जाता है ।

अन्तः प्रयोग—मुख तथा आमाशय की कला पर बाह्य प्रयोग के समान ही प्रभाव उत्पन्न करती है । अतिसंग्राहक होने से मुख-व्रणशोथ मसूड़ों से रक्तस्राव में इसके काढ़े या विलयन से गण्डूष कराये जाते हैं । टंकण मिलाने से इसका प्रभाव और बढ़ जाता है । कास-श्वास में भी लाभ करती है । अग्निदीपन तथा अनुलोमक होने से अग्निमान्द्य, अम्लपित्त, विबन्ध-आनाह में दी जाती है । यह पाचक रसों का स्राव कराती है तथा आमाशय-अन्त्र को बल देती है ।

इसके प्रयोग से रक्तस्थ श्वेताणु बढ़ते हैं । रक्त की पुष्टि होती है । अतः पाण्डु-कामला में इसे हल्दी के साथ दिया जाता है ।

शरीर से निकलते समय यह मुख्यतः फुप्फुसों तथा प्रजनन एवं मूत्रमार्ग से निकलती है । कृमिहर तथा शोधक होने से इन मार्गों को शुद्ध करती है । इनके स्रावों को बढ़ाती है । अतः कफ निष्कासक एवं दुर्गन्धिनाशक के रूप में कास-श्वास, गले की खराश, पार्श्वशूलादि में दी जाती है । योनि मार्ग से निकलते समय यह योनि तथा गर्भाशय की कला को उत्तेजित करके रजः स्राव को उचित मात्रा में लाती है । इसमें कुमारीसार (एलुआ) तथा लोहा मिलाकर देने से नष्टार्तव या रजः कृच्छ्रता में लाभ होता है ।

मूत्रमार्ग से निकलते समय मूत्र का प्रमाण बढ़ाती है तथा जीर्णबस्ति शोथशामक है । स्वेदजनक भी है । शरीर की निर्बलता मिटाने के लिए इलायची-वंशलोचन के साथ, अन्त्रकृमियों को नष्ट करने के लिए एरण्ड तैल के साथ अपस्मारादि में अन्य मेध्य वस्तुओं के साथ सेवन कराने से लाभ होता है ।

योग—गोलपर्पटी-जीर्णातिसार-संग्रहणीहर ।

वृक्षाम्ल (तिन्तिड़ीक)

वक्तव्य—वृक्षाम्ल नाम से दक्षिणी 'कोकम' नामक द्रव्य का व्यवहार होता है । यह छोटा सा वृक्ष है । राजस्थान में अन्य क्षुप को वृक्षाम्ल कहते हैं । जिसके गोलमटोल छोटे-छोटे कत्थई रंग के बीज 'समाकदाना' नाम से बाजार में मिलते हैं । दोनों ही अम्ल हैं एवं गुण समान हैं ।

गुण—अम्लोष्णं रोचनं रूक्षं दीपनं कफवातकृत् । पक्वं तु गुरुसंग्राही मधुराम्लरसं तथा ।
अल्पोष्णं रोचनं रूक्षं दीपनं वातनाशनम् ।। तृष्णोर्शो ग्रहणी गुल्म शूलहृद्रोग जन्तुजित् ।। (भाव०)

वृक्षाम्ल (कच्चाफल) खट्टा, गरम, रुक्ष, दीपन, रुचिकारक, कफवातनाशक, पक्व गुरु, ग्राही, मीठा, खट्टा, कुछ उष्ण, कटु विपाकी, वातकफशामक, प्यास अर्श, ग्राहणी, गुल्म-उदरशूल उदरकृमि तथा आमाशय रोगशामक है ।

प्रयोग—पक्वफल (लाल सा) सूखा बाजार में बिकता है । यह इमली के समान व्यवहार में आता है । इससे एक स्थिर तैल भी निकलता है । यह श्वेत वर्ग का होता है । यह ग्राही रक्तपित्तशामक, स्तम्भन तथा व्रणरोपक है । १-२ तोले की मात्रा में क्षय, गण्डमाला, आमातिसारादि में दिया जाता है । पौष्टिक भी है । व्रणों पर चमड़ी छिल जाने पर तथा हाथ-पांव फटने पर इसको लगाया जाता है । मलहरों में अति उपयोगी है । आमातिसार-संग्रहणी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आदि में घी के स्थान पर इसका प्रयोग उत्तम है। इसे सब भाषाओं में "कोकम् (अं०) रेड मैंगो-मेट[1], मंगूस्तीन तथा (वा० ले०) गर्सिनिआ इण्डिका[2] कहते हैं।" वर्ग कोकम का साराम्ल[3]।

शमी (शुक्त फला शिवा)

नाम—(हि०) छोकंर, छिकुर (मा०) वेजड़ी (पं०) जण्ड (बं०) शाई (म०) शमी (गु०) समड़ी-बीजड़ो (वा० ले०) प्रोसोपिस् स्पिसिजेरा[4], बब्बूल वर्ग[5]।

शमी शुष्क प्रदेशों में सर्वत्र पाया जाता है। पुष्पकाल चैत्र-बैसाख।

गुण—गुरूष्णं मधुरं रूक्षं केशघ्नं च शमीफलम्। (च० सु० २७)

शमी तिक्त, कटु, कषाय, रूक्ष, उष्णवीर्य, रोचक, रक्तपित्त, रक्तातिसार शामक है। छाल का काढ़ा उक्त रोगों में लाभ करता है। फल तथा इसकी राख बुद्धि-केश तथा नखों की नाशक है।

पनसः

नाम—(हिं० पं० मा०) कटहल (म०) पणस (बं०) कांटोल (क०) हलसिनमर (तैं०) पनसमण्डु (ता०) पेलापलम् (अं०) इण्डियन जैक ट्री[6] (वा० ले०) आर्टोकार्पस[7] इन्टेग्रिफोलिया उदुम्बर वर्ग[8]।

गुण—वातपित्तहरं बल्यं दाहघ्नं मधुरं गुरु। (कै०)

पुष्पकाल—मार्गशीर्ष से माघ तक। इसका अधिक प्रयोग नहीं होता। फल-शाक अत्यन्त गरिष्ट तथा वातकारक है।

लकुचः (स्थूलस्कन्धः ग्रन्थिफलः)

नाम—(हि० पं० मा०) बड़हल (म०) लाटु, लकूच (क०) हेब्बलसु (वा० ले०) आर्टोकार्पस् लकूच[9], उदुम्बर व ̍।

गुण—रक्तपित्तं बलासं च कुरुते हरतेऽनिलम्। पक्वं तु स्वादु विष्टम्भि वृक्ष्यं दोषाग्नि-वर्धनम्॥ (कै०)

पुष्पकाल—फाल्गुण

प्रभाव्य अवयव—अन्त्र आमाशय गरिष्ट वातवर्धक। औषधियों में अधिक प्रयोग नहीं होता।

---

1. Red mango, mate.
2. Garcinia Indica, Choids.
3. Guttifereae.
4. Prosopis-Spicigera, Linn.
5. Mimosaceae.
6. Indian Jack tree.
7. Artocarpus Integrifolia, Linn.
8. Urtieaceae.
9. Atrocarpus Lokoocha.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अट्ठारहवाँ अध्याय

उदरकृमिहर वर्ग

अजगन्धा (वनयवानी, चौहारः खरपुष्प)

परिचय—यह भी अजमोदा का ही भेद है। इसे वन अजमोदा समझना चाहिए।

उ० स्थ०—प्रायः बंगाल में तथा भारत के अन्य स्थानों में भी

पुष्पकाल—अज्ञात

रस—कटु

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—वातकफहर, पित्तलम्

प्र० अ०—पाचक अवयव, अन्त्र

वि० ग० क०—रूक्ष, दीपन, तीक्ष्ण, अनुलोमन, क्रमिहरम्

नाम—(हि०) वन अजवायन, छुहारी अजवायन (म०) किरमानी ओबा, चोर ओबा (गु०) करमाणी अजमा, छुहारो (बं०) वनजोवन् (अं०) वाईल्ड ओमम सीड[1] (वा० ले०) सिसेली इन्डीकम[2], छत्रक वर्ग[3]।

नामानि—पशुगन्धा बस्तगन्धा तुगीपूतोमयूरकः। अजगन्धा पूतिकीटा खरपुष्पा शकम्भरा ॥

गुण—अजगन्धा कटुः पाके रसे रूक्षाग्निदीपनी। हृद्या रुच्या लघुस्तीक्ष्णा दृक्शुक्रवात कफापहा ॥ (कै०)

अजगन्धा या वन अजमोदा रस तथा विपाक में कटु, उष्ण, तीक्ष्ण, रुक्ष, दीपन, पाचक, रुचिकर, लघु, नेत्र वीर्य, कफ और वातनाशक है। इसके प्रयोग भी अजमोदा तथा अजवायन जैसे ही समझें। इसमें उदरक्रमियों को निकालने का विशेष गुण है। गण्डूपद[4] (गोल) क्रमि को नष्ट करती है। यह रेचक नहीं है अतः इसके ऊपर से कोई रेचक पदार्थ देना चाहिए।

मात्रा—१-३ माशा गुड़ में मिलाकर देना चाहिए। वाट महोदय के अनुसार पशुओं में भी उदरक्रमि, उदरशूल, आध्मानादि नष्ट करने के लिए प्रयुक्त होती है।

वक्तव्य—कई लेखकों ने इसे एलोपैथी की सेन्टोनीन के क्षुप से मिलने दिया है और इसके लिए नया नाम चौहार देकर आर्टिमिसिया[5] मेरिटिमा (अं०) वर्मसीड[5] नामक क्षुप से मिला दिया है। यह सर्वथा अशुद्ध है। तथा शास्त्र विरुद्ध है।

क्योंकि 'पारसीक यवानीस्याच्चौहारो जन्तुनाशनः।' (कै०) में आयुर्वेद से अनभिज्ञ डॉ० वामनगणेश

1. Wild Omum Seeds.
2. Seseli Indicum. W & A.
3. Umbellifereae.
4. Round Worm.
5. Artemissia Maritima.
6. Worm Seeds.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

देसाईकृत मराठी औषधि संग्रहकार ने इसे प्रवर्तित किया। तथा 'गतानुगतिको लोकः' इस न्याय के अनुसार अन्यों ने आँख मूंदकर मान लिया, किन्तु शास्त्र का विचार किसी ने नहीं किया। शास्त्र में 'यवानी चतुष्टय' का पाठ है। (देखिए कय्यदेवादि प्राचीन निघण्टु ग्रन्थ) अजमोदा, यवानी और अजगन्धा तीनों को ही कृमिघ्न बताया गया है। जैसा कि ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है। चौथी पारसीक यवानिका उक्त तीनों से सर्वांग भिन्न है। अतः यवानिका के प्रकरण में अपसन्तीन वर्ग की औषध को ला घुसेड़ना व्यर्थ है। यद्यपि इससे यह तो प्रतीत हो जाता है कि आयुर्वेद में सेन्टोनीन जातीय क्षुप का वर्णन यथास्थान है। जो शास्त्र विरुद्ध है।

योग—(१) **अजगन्धावटी**—किरमाणी अजवायन, बलामूल लघुकटंकारी मूल, चिरायता, ब्राह्मी, कालीजीरी अतिविषा ६-६ माशा प्रत्येक बिडंग १ तोला, इन्द्र जौ २ तोला—सबको पीसकर पान के रस में भावना दे ४-४ रत्ती की गोली बना जल के साथ। ये उदरशूल आध्मान, गुल्म तथा अग्निमान्द्यनाशक हैं।

(२) **अजयवटी**—चारों अजवायन, त्रिकटु, चारों लवण, सफेद-काला जीरा, कलौंजी, प्रत्येक १-१ तोला, सनाय सबके समान, कटुतुम्बी क्वाथ या स्वरस से भावना देकर ४-४ रत्ती की गोली बना लें। सब प्रकार के विबन्ध, आध्मान, अजीर्ण (अलसकविष्टम्भ गुमहैजा) का नाश करती है। मात्रा २-४ तोला।

(३) **तक्रारिष्ट**—मात्रा २-४ तोला। अग्निदीपन, अर्श, गुल्म, उदरकृमिहर।

कम्पिल्लकः (रेचनकः, रंजनक, रक्तशमनः)

परिचय—मध्यम प्रमाण का वृक्ष।
उ० स्थ०—प्रायः सर्वत्र
व्य० अं०—फलरज
पुष्पकाल—कार्तिक-पौष
रस—कटु
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
दोष—कफपित्त शामक
प्र० अ०—त्वचा, अन्त्र
वि० गु० क०—रेचन, कृमिघ्न, त्वचा
मात्रा—२-४ माशा

नाम—(हि०) कंबीला, कमीला (बं०) कमलागुंडि (म०) कपिला (गु०) कपीलो (क०) कपिलेहिट्टु (तै०) बेहुरुपु (ता०) केपिल्लपोडि (अं०) मंकीफेस ट्री[1], रोटलेरा,[2] इण्डियन कामला[3], (वा० लें०) मेलोटस् फिलिप्पिनेन्सिस्[4], स्नुही या एरण्ड वर्ग[5]।

गुण—कम्पिल्लो दीपनो रेचीकटूष्णः कफपित्तजित्। व्रणगुल्मोदरानाह मेहाश्मविष जन्तुजित्॥
तच्छाकं शीतलं तिक्तं, वातलंग्राहिदीपनम्॥ (कै०)

कंबीला दीपन, रेचन, कटु, उष्ण, कफपित्तशामक, व्रण, गुल्म, उदररोग, आनाह प्रमेह, विष तथा जन्तु नाशक है। पत्तों का शाक शीतल, कड़वा तथा वातवर्धक और ग्राही होता है।

---

1. Monkey Face Tree.
2. Rottlera.
3. Indian Kamala.
4. Mallotus, Phillippinensis Muell.
5. Euphorbiaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रयोग—उदरकृमियों को मारकर और रेचन करके निकाल देता है, विशेषकर चपटे कृमियों को। एतदर्थ ६ माशा (बच्चों को ५ रत्ती) मधु या गुड़ में मिलाकर सेवन करते हैं। तीसरी या चौथी मात्रा में दस्तों के साथ उदरकृमि बाहर निकल जाते हैं। एतदर्थ-कमीला, पलाश बीज, १-१ माशा, विडंग, इन्द्र जौ कड़वे १-½ १, माशा चूर्ण कर १ तोला पुराने गुड़ में मिलाकर १-१ माशा की गोली बना लें। सौंफ के अर्क के साथ सेवन करने से सब उदरकृमि बाहर निकल जाते हैं।

पार्श्वशूल, उदरशूल, उदरानाह, यकृत् तथा फुप्फुस की पीड़ा तथा पक्षाघातादि में कपीला ६ माशे, हींग १ माशे, दही के पानी में मिलाकर गोली बना (४-४ रत्ती की) गोलियाँ गरम पानी के साथ दी जाती है। समभाग सरसों के तैल में मिलाकर व्रणों पर लेप करते हैं। फोड़े-फुंसियों पर लेप लगाया जाता है। पैत्तिक गुल्म में पहले दिन घी खाकर दूसरे दिन ६ माशा कपिला मधु से सेवन करना चाहिए।

वक्तव्य—कपिला फलों के ऊपर पड़ जाने वाली रज (धूल) है। आजकल मिलावट कर बेचा जाता है। असली की पहचान—जल से भीगी अंगुली पर कंबीला लगाकर कागज पर घिसने से यदि वहाँ उज्ज्वल पीत रंग की रेखा खिच जाए। अंगुली के नीचे कुछ रगड़ न लगे। शुद्ध हल्का स्वाद रहित (साधारण स्वाद) तथा कुछ पिलाई लिए लाल होता है। दियासलाई से जलाने पर सारा जल जाता है।

धूम्रपत्रा (कृमिघ्नी)

नाम—(हि०) कीड़ामारी (बं०) ईश्वरीमूल (म०) गिन्धान, गंधाटी (ग०) कीड़ामारी (क०) ईश्वरीहंबु (तै०) ईश्वरीवेरु (ता०) इच्चमूली (अं०) वर्म किलर,[1] इन्डियन बर्थ वर्ट[2] (वा० ले०) एरिस्टोलोकिआ[3] ब्रैक्टिएटा, ईश्वरीवर्ग[4]।

गुण प्रयोग—इसका प्रत्येक अवयव बहुत कड़ुवा है। इसके पत्तों को बालक की नाभि पर बाँधने से विबन्ध बन्द होता है, तथा रस पिलाने से उदरकृमि नष्ट होते हैं। रस से घाव के कीड़े मर जाते हैं। कीड़ामारी, समुद्रफल, मालकंगनी, कालीमिर्च, सरसों—समभाग का लेप, शोथ, ज्वर, कृमिनाशक है। १-२ तोला काढ़ा कृमिहर तथा आर्तव-जनक है। १-२ माशा की मात्रा में शुष्क मूल का चूर्ण देने से गर्भाशय संकोचक है तथा विलम्बप्रसूति में उपयोगी है। दाद आदि में कीड़ामारी मूल एरण्ड तैल में पीसकर लगाया जाता है। मलावरोधयुक्त कुपचन में तथा विषों में लाभ करती है। अधिक मात्रा में यह वामक तथा रेचक है।

नागदमनः (अपसन्तीन, एकपर्णी-नागपुष्पी)

नाम—(हि०) नागदौना, नागदवन (बं०) नागदमनी (म०) नागदवण (गु०) नागदमना (सुखदर्शन) (पं०) अपसन्तीन (वा० ले०) आर्टिमिसिया वल्गेरिस्[5], सूर्यमुखीवर्ग[6], (अं०) इण्डियन वर्मवुड[7]।

कुछ आचार्य एक अन्य वनस्पति क्राईनम् एशियाटिकम् को नागदमन मानते हैं।

गुण—नागिनी रोचना तिक्ता तीक्ष्णोष्णा कफपित्तनुत्। विनिहन्तिविषं शूलं योनिदोषवमिक्रमीन्। (कै०)

नागदौन या अपसन्तीन कड़वी, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, तीक्ष्ण, कफपित्तनाशक, विष-उदरशूल, योनिदोष, वमन, कफपित्तनाशक विष, उदरशूल, योनिदोष, वमन तथा उदर कृमिनाशक है।

---

1. Worm Killer.
2. Indian Birth wort.
3. Aristolochia Bracteata Petz.
4. Aristolochiaceae.
5. Artemissia Vulgaris Linn.
6. Compositeae.
7. Indian worm wood.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यह अत्यन्त कड़वी होती है। मन्दाग्नि, ज्वर गुल्म तथा उदरकृमिहर है। अत्यन्त रक्तशोधक है। यूनानी में इसका अधिक व्यवहार होता है। विषमज्वर में लाभप्रद है। सेन्टोनीन भी इसी जाति की वनस्पति का सार है। जिसका वर्णन नीचे किया जाता है।

सेण्टोनीन

अफसनतनीन नामक वनस्पति का उपयोग यूनानी चिकित्सा में काफी समय से है। किन्तु आयुर्वेद शायद ही इस वनस्पति से परिचित हो। यूनानी वालों की पुरानी पुस्तकों में इसकी तीन किस्मों का उल्लेख मिलता है।

(१) अफसनतीन (२) अफसनतीन उलबहार (३) अफसनतीन तुर्की या दिर्सनः तुर्की। किन्तु इस समय के वनस्पति शास्त्रियों ने इसकी १८ किस्में अब तक मालूम की है।

उत्पत्ति स्थान––यह वनस्पति विदेशी नहीं, प्रत्युत गढ़वाल से लेकर तिब्बत, भूटान, सिप्ती, लाहौल, रामपुर, बुशहर, काश्मीर, किस्टवार, भद्रवाह, लद्दाख, बारकन्द, अफगानिस्तान और रूसी तुर्किस्तान, खुरासान तक बहुतायत से पाई जाती है। ५ हजार फुट की ऊँचाई से लेकर १२ हजार फुट की ऊँचाई तक की हिमालय पर्वत श्रेणी पर मिलती हैं।

प्रान्तीय नाम––अखलर (अरबी) सर्वहर (फारसी) मुनि (काश्मीर) सेरुकी (जम्बु, चम्बा) बिगुर, लाहौल, पर्चा (रामपुर, बुशहर गढ़वाल) आर्टीमिसिया अवसन्थिम् (अंग्रेजी) आर्टीमिसिया ब्रेबीफोलिया (लेटिन) आर्टीमिसिया सिन्ना, वनस्पति शास्त्रीय नाम है।

पौधे का वर्णन—इसका क्षुप भाँग की आकृति में ऊपर उठता है किन्तु पत्ते भांगवत् पंचांगुल नहीं होते। प्रत्युत एक ही पत्र दण्डी से जो पता बनता है वह गेंदे के पत्ते की आकृति में फटकर अनेक हिस्सों में बँट जाता है, और इसका क्षुप नीचे से लेकर ऊपर फुनगी तक अत्यन्त बारीक धूसर श्वेत रोमों से आच्छादित रहता है, इन्हीं रोगों के कारण अत्यन्त हरा पत्ता भी धूसर हरा दिखाई देता है। कुछ जाति के अफसन्तीन पर बहुत कम रोम होते हैं। पत्ता तोड़कर सूंघा जाय तो सिट्रोनीला की-सी गन्ध आती है। कपूर की-सी और किसी में काजूपुट की-सी गन्ध मिलती है। श्रावण, भाद्रपद में जब इस पर मंजरी निकलती है उन दिनों इसमें सुगन्ध बढ़ जाती है।

यह बहुवर्षायु क्षुप है, सर्दियों के दिनों में जब बर्फ पड़ने लगती है तब इसके पत्ते दण्डी सब हिम प्रभाव से मर जाते हैं। किन्तु बसन्त के आगमन समय में पुनः इसकी जड़ों में नई शाखाएँ परिस्फुट हो थोड़े दिनों में नव-पल्लवित हो उठती है और श्रावण भाद्रपद में यह फूलने लगता है।

इसका प्रभावांश—यूनानी चिकित्सा में तो इसके पंचांग का ही उपयोग होता है, किन्तु वनस्पति शास्त्र-वेत्ताओं ने इसकी प्रत्येक किस्मों के पंचांग का विश्लेषण कर यह मालूम किया है कि इसके किस अंश में कौन-सा क्रियात्मक प्रभावांश होता है। विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि इसकी उपरोक्त दो-तीन किस्मों में क्षारसमोज (Alkaloid) गुणदायी भाग रहता है और यह गुणदायी भाग दर्भ कुसुम (गण्डूपद) कृमि को नष्ट करने में अमोघ चीज है। इसीलिए इस वनस्पति की माँग संसार में बहुत बढ़ गई है। इस क्षारसमोज का नाम अफसतीनीन या सेन्टोनीन है।

सेन्टोनीन कहाँ-कहाँ बनता है ?

रूस तो इसे बहुत बड़ी मात्रा में तैयार करता है। जर्मनी, इंग्लैण्ड आदि देश में इसकी सूखी मंजरी को मँगाकर उससे सेन्टोनीन निकालते हैं। हमारे यहाँ जम्मू-काश्मीर राज्य वनस्पति अनुसन्धान रसायनशाला भी आज १०-१२ वर्ष से इसका उत्पादन करती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१९२४ में एक अंग्रेज रासायनिक ने कुल्लूवेली मनाली में इसके निकालने की एक छोटी-सी फैक्टरी स्थापित की थी और वह लाहौल से अफसनतीन की मंजरी मँगाकर उससे सेण्टोनीन निकालता था। किन्तु वहाँ की अफसनतीन मंजरी से सेण्टोनीन की मात्रा एक प्रतिशत से कम ही निकलती थी। दो वर्ष तक वह इस व्यापार में लगा रहा, किन्तु खर्च अधिक और लाभ कम मिलता था इसीलिये उसने यह फैक्टरी बन्द कर दी थी।

जम्मू काश्मीर राज्य का जंगलात विभाग आज २५-३० वर्ष से कुठ, अफसनतीन मंजरी, कुटकी, अतीस, विलाडोना, खुरासानी अजवायन के पत्ते, वनबकरी (पोटोफीलियम) श्रृंगिक लघु श्रृंगिक बृहद् आदि ३०-४० वनस्पतियाँ निकलवाकर उसे भारत में तथा विदेशी खरीदारों के हाथ बेचा करता और कर्नल चौपड़ा की देख-रेख में वनस्पति-अनुसन्धान-रसायनशाला की स्थापना हुई तब से राज्य का जंगलात विभाग जंगल से उपयोगी वनस्पतियों के अंग संग्रहीत करके उक्त रसायनशाला को बराबर भेजता है। रसायनशाला उन वनस्पतियों के प्रभावांशों को उनसे भिन्न कर भारत के तमाम केमिस्टों को बराबर सप्लाई कर रहा है, इन्हीं चीजों में अफसनतीन मंजरी का क्षारासमोज सेण्टोनीन भी है जो वह वर्ष भर में लगभग १००० पौंड तैयार करके भारत के बाजार में भेजता आ रहा है। आजकल राज्य का जंगलात विभाग इसे किस्तवार, भद्रवाह, के इलाके से तथा काश्मीर के गुरेज, चन्दन, बड़ी, गुलमर्ग और लद्दाख के दक्षिणी भागों से इकट्ठा निकालता है। अभी उसके फूल खिलने नहीं पाते—श्रावण, भाद्रपद, मास में जबकि इसकी मंजरी निकलती है उसकी उन मंजरियों को तोड़ लिया जाता है और एक विशेष प्रकार की सुखाने के लिए गरम कोठरियाँ अनेक तहों में बनी हुई होती हैं। उनमें लाकर उन्हें फैला देते हैं। समय-समय पर उन्हें उलटते-पलटते रहते हैं। जब यह सूख जाती है इन्हें अच्छी तरह बाँध (पैक) कर रसायनशाला में भेजते रहते हैं या स्टाक कर लेते हैं।

सेण्टोनीन निकालने की विधि—अफसनतीन उल बहार की सूखी मंजरियों को राज्य रसायनशाला प्रथम पीसकर बारीक चूर्ण बना लेती है, फिर उस चूर्ण को भभके की देग में डालकर उसमें बुझा हुआ निश्चित मात्रा में चूना तथा निश्चित मात्रा में जल डालकर वकनली लगाकर देग को बन्द कर देती हैं। इससे क्षीण ताप पर ८० शतांश के भीतर की गर्मी उस देग को पहुँचाते हैं। इससे उस मंजरी में जो उद्वायी तैल (इत्र) होता है वह उड़कर संग्राहक पात्र में पहुँच जाता है। वकनली खोलकर उसका मुख बन्द करके फिर उसे उबालते हैं। उबालने पर जो वनस्पति का क्रियात्मक अंश होता है वह चूने के साथ यौगिक बनकर जल में घुल जाता है। सुखोष्ण होने पर उस जल को छान लेते हैं, उस छने हुए घोल में फिर निश्चित मात्रा में सैंधउदूष्मिद (कास्टिक सोडा) डालकर गरम करते हैं। जब कास्टिक सोडा उसमें घुल जाता है तब उस घोल में एक नली मार्ग से कज्जल द्विउष्मिद (कार्बनडाई आक्साइड) वायु छोड़ते हैं। यह वायु जब उस घोल में मिलता है तो उस वायु के कज्जल से चूने के यौगिक खड़िया मिट्टी (चाक) की उत्पत्ति होती हैं। यह बन-बनकर उस देग के घोल में नीचे बैठती रहती है। जब सारा चूना खड़िया मिट्टी में परिणीत होकर तह नशीन हो जाता है उससे घोल को निथार कर भिन्न कर लेते हैं। अब उस घोल में निश्चित मात्रा में बलिकाम्ल (गन्धक का तेजाब) डालकर उसे फिर गरम करते हैं। गरम करने पर सैन्धव क्षार अम्ल से मिलकर लवण के यौगिक में परिणत होता रहता है दूसरी ओर सेण्टोनीन उससे भिन्न होते ही उस घोल के नीचे बैठने लगता है। जब सारा सेण्टोनीन नीचे बैठ जाता है उस लवण जल को ऊपर से निथारकर भिन्न कर लेते हैं। सैण्टोनीन को परिस्रुत जल से धोकर सुखाया जाता है, फिर हलाहल (अल्कोहल) में घोलते हैं और उसे कोयले के छन्नों से छान लेते हैं। कोयले के छन्ने उसकी मैल और रंग को सोख लेते हैं तथा स्वच्छ सैण्टोनीन हलाहल में घुल जाती है। अब इसे फिर देग में डालकर क्षीण चाय के ६७ शतांश के उत्ताप पर गरम करते हैं तो हलाहल उड़कर संग्राहक में एकत्र हो जाता है। नीचे देग में सैण्टोनीन मणिभीय रेशमाकृति की श्वेत तुरियाँ रह जाती हैं। जिसे निकालकर काली बोतलों में बन्द कर रख लेते हैं। यदि इन तुरियों को प्रकाश में खुला रहने दिया जाय तो यह प्रकाश प्रभाव से हल्के पीत वर्ण का हो जाता है और उसके गुणों में अन्तर आ जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यह कितनी मात्रा में निकलता है ? यदि अफसनतीन की सूखी मंजरी २॥ मन हो तो उसमें से १ सेर से लेकर दो सेर तक सैंण्टोनीन प्राप्त होती है। जिसके १ पौंड का मूल्य ४०० रु० होता है और जो इसका इत्र निकलता है वह साबुन आदि अनेक व्यवसायों में पृथक् काम आता है।

आयुर्वेदज्ञ वनस्पतियों में जिस गुण, प्रभाव को अचिन्त्य कहते हैं, यह वही प्रभावांश तो है जिसे आधुनिक रसायनशास्त्रियों ने चिन्त्य बना दिया है। इस समय तक लगभग दो हजार वनस्पतियों के अचिन्त्य गुणों, प्रभावांशों को उसमें भिन्न करके उनकी शक्ति को जाँच लिया गया है। आयुर्वेद की भाँग, धतूरा, मीठा, तैलीय, अहिफेन, आदि वनस्पतियों से उनके गुणांश व मादक अशों को भिन्न-भिन्न करके उनका उपयोग वह सूचीवेध में धड़ल्ले के साथ कर रहे हैं यह बात वैद्य अपनी आँखों से देख रहे हैं। बड़े-बड़े देश के नेता उनको आह्वान करते हैं कि आप भी आधुनिक रसायनशास्त्र का अध्ययन कर अनेक उपयोगी वनस्पतियों के गुणांशों को पृथक् करके अपने औषधियों की मात्रा को अत्यन्त सूक्ष्म बनाइए। आयुर्वेद को इस तरह औषधि पद्धति में क्रान्ति करके उसे समय के अनुरूप बनाइए, परन्तु उनका इस ओर ध्यान नहीं जाता।

सेण्टोनीन का उपयोग—आयुर्वेद ग्रन्थों में उदर के भीतर पाये जाने वाले ७ प्रकार के कृमियों का उल्लेख मिलता है जिनका आधुनिक कृमियों से सम्बन्ध बनता है। (१) अन्त्राद (Tenia Saginata) (२) हृदमादा (Tenia Solium) (३) दर्भकुसुम या गण्डूपद (Round worm) (४) चुरवे या सूत्र (Thread worm (५) महारुज या अंकुश (Hook worm) (६) उदरावेष्ट या फीता (Tape worm) (७) सुगन्ध (Trichuris, trichuria) या (Whip worm)। इन सात प्रकार के कृमियों में दर्भ कुसुम या गण्डूपद (केंचुवे) के लिए सैंण्टोनीन को अमोघ औषध के रूप में पाते हैं।

जब किसी के पेट में गंड़ाएँ या केंचुए उत्पन्न हो जाते हैं तो उसके होने से भिन्न लक्षण देखे जाते हैं। मितली या जी मिचलाना, कभी-कभी वमन, उदर पीड़ा का होना, कभी अतिसार लगना, कभी ज्वर होना, रक्ताल्पता तथा शीत पित्ती उछलना आदि के कष्ट देखे जाते हैं। किसी-किसी को मल मार्ग से केंचूवे जब निकल पड़ते हैं तो रोग का संदेह नहीं रहता। उस समय सैंण्टोनीन का उपयोग करना चाहिए।

प्रयोग विधि—प्रायः डाक्टर तो सैंण्टोनीन १ रत्ती, कैलोमल या रसकपूर १ रत्ती, सोडा बाई कार्ब २-४ रत्ती, सबको केपसुल में भरकर रात्रि को सोते समय पानी से मय केपसूल को निगलवा देते हैं और सुबह को कोई रेचनीय दवा काष्ट्रायल या मेंग्नेशिया साल्ट आदि मिलाकर रेचन दे देते हैं जिससे रोगी को दो तीन रेचन आ जाते हैं। इसके देने से पेट के केंचुवे मरकर रेचन में निकल जाते हैं। दो तीन दिन इसी तरह रात्रि में दवा लेने से रोगी के सब केंचुवे मरकर निकल जाते हैं। इसके बाद सप्ताह में एक बार इसी तरह और दवा देने पर जो केंचुए अण्डों से पुनः लारवे उत्पन्न हो गए हों वह भी मर कर निकल जाते हैं।

चुरवे कृमिपर प्रयोग— चुमूने या सूत जैसे बारीक चावल-डेढ़ चावल लम्बे जो कृमि प्रायः बालकों को हो जाते हैं जिनके काटने से बच्चों की गुदा में बड़ी खराश उठा करती है और बच्चे बिलखने लगते हैं। उन बच्चों को $\frac{1}{8}$ रत्ती से $\frac{1}{2}$ रत्ती तक सैंण्टोनीन केपसूल में भरकर दें और कबीला को गुड़ में मिलाकर रात्रि सोते समय बच्चे को खिला दें। सुबह काष्ट्रायल का रेचन दें। इससे चुरवे कृमि मरते तो नहीं पर निष्क्रिय से होकर मल मार्ग से काफी निकल जाते हैं। दो-तीन दिन देने पर बच्चों को चुरवे कृमियों का यदि मूल गुच्छ निकल जाय तो रोग जाता रहता है। वरना कुछ दिन तक के लिए तो आराम अवश्य हो जाता है।

सैंण्टोनीन उपयोग में सावधानी—वनस्पतियों से जो भी प्रभावांश क्षारसमोज निकाले जाते हैं वह प्रायः विषाक्त या तीक्ष्ण प्रभावी होते हैं, सैंण्टोनीन भी इसी तरह काफी विषाक्त है। यदि भूल से अधिक मात्रा में खाई जाय तो जी मिचलाता है, वमन होने लगती है, सिर चकराने लगता है अर्थात् चक्कर आते हैं। सिर में दर्द होने लगता है ओर विषाक्त प्रभाव बढ़ने पर हाथ-पैर ऐंठने लगते हैं तथा ठण्डा पसीना आने लगता है। मूत्र कृच्छ्र हो जाता है

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अर्थात् थोड़ा-थोड़ा मूत्र जलन के साथ उतरता है। मूत्र और मल पीला हो जाता है तथा सब वस्तुएँ पीली-पीली दिखाई देने लगती हैं। इसीलिए वैद्यों को इसका उपयोग अवस्थानुसार मात्रा को जाँच कर करना चाहिए।

पलाश

परिचय—सुपरिचित मध्यम प्रमाण का वृक्ष। प्रायः सर्वत्र उपलब्ध।

पुष्पकाल—एप्रिल-मई

व्य० अं०—पंचांग, क्षार निर्यास

मात्रा—बीज निर्यास-क्षार १-२ माशा

रस—कषाय तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—त्रिदोषहर

प्र० अ०—अन्त्र

वि० गु० क०—बीज रेचक, कृमिहर, पुष्प-फल गोंद, ग्राही, शोथघ्न, वातानुलोमक, गुल्मादिनाशक।

नाम—(हिं०) ढाक-टेसु (मा०) छिबरो (म०) पलस (गु०) खाखरो केसुड़ा (पुष्प) पलाशपापड़ा (बीज) पलाश (क०) मुत्तुगदमर (तै०) मोहुगचेट्टु (अं०) बेस्टार्ड[1] टीक (वा० ले०) ब्युटिआ फ्रोन्डोजा[2], अपराजिता वर्ग।

गुण—पलाशस्तुवरस्तिक्तः स्निग्धोष्णो दीपनः कटुः। सराः सन्धानकृद्वृष्योजयेद्दोषव्रणकृमीन्॥
ग्रहणी गुल्मगुदजान् तत्पुष्पं स्वादुतिक्तम्। कषायं कटुकं पाके वातलंग्राहि शीतलम्॥
तृट् दाह कफ पित्तास्र कुष्ठहृत्फलमस्य च। रुक्षंविपाके कटुकं लघूष्णं कफवातिजित्॥
कुष्ठगुल्मोदर प्लीहमेहार्शः कृमि शूलजित्। किंशुकस्यप्रवालं तु कृमिवातहरं परम्॥ (कै०)

ढाक (वृक्ष) कसैला, कड़वा, चरपरा, उष्ण, स्निग्ध, सर, वृष्य, दोष-व्रण-कृमी-ग्रहणी-गुल्म, स्निग्ध, अर्शशामक है।

फूल (टेसु) मधुर—कषाय, तिक्त, शीतल, कटु, विपाकी, वातवर्धक ग्राही हैं।

फल (बीज) रुक्ष, कटु विपाकी, उष्ण-कफवातहर, कुष्ठ-गुल्म, उदर रोग, प्लीहा, प्रमेह, उदरकृमि, शूल, अर्श शामक-प्रवाल (कोंपलें) भी वात तथा कृमिहर है।

गोंद (निर्यास) अतिग्राही तथा संकोचक है। स्तम्भक तथा वीर्य पौष्टिक है।

प्रयोग—पत्र विशेषकर कोंपलें ग्राही-द्रवशोषक होने से अतिसार, श्वेत-रक्तप्रदर-वीर्यस्राव तथा प्रमेह शामक है। योनि संकोचक है। उक्त रोगों में ढाक की छाल के रस में भावित साठी (षष्टिक) चावलों को पीसकर समभाग शर्करा मिलाकर या हलुआ मिलाकर खिलाने से लाभ होता है, पत्तों की पुल्टिस से शोथ शान्त होती है। पत्तों के क्वाथ से उदरशूल-गुल्म मिटता है। अण्डवृद्धि में जड़ की छाल का ७ माशा चूर्ण पानी के साथ दिया जाता है। गलगण्ड में इसका लेप लगाया जाता है।

बीज—यह उत्तम वातानुलोमक, कृमिनिष्कासक, सर्प-बिच्छू विषनाशक है। उदरकृमियों (ब्रहनकृमि-गोल कीड़े) में बीजों का सेवन निम्न प्रकार से कराया जाता है। बीजों को जल में भिगोकर ऊपर की गिरी निकाल दें। सुखाकर १½ माशा चूर्ण प्रतिदिन तीन बार दें। इस प्रकार तीन दिनों तक सेवन करा चौथे दिन विरेचन दें। चार

---

1. Bastard Teak. 2. Butea Frondosa, Roxb.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वर्ष तक के बच्चों के लिए मात्रा २-४ रत्ती तक है। यदि बीजों के सेवन से स्वयं विरेचन हो जाए तो कीड़े नहीं मरते। इससे कभी-कभी वमन और वृक्कों में जलन हो जाती है। चातुर्थिकज्वर में करंजबीजमज्जा के साथ मिलाकर सेवन करने से तथा दादादि में निम्बु रस में पीसकर लेप लगाते हैं।

पातालयन्त्र से इनका तैल निकाला जाता है। यह तैल त्वचा रोगों, सर्प-बिच्छू दष्टादि पर तथा शिश्न में तिलों के काम आता है। बीजों को पीसकर वृश्चिकदंश में लेप भी लगाते हैं। गुलाब जल के साथ इनका प्रयोग उत्तम है।

पुष्प--टेसू शोथशामक, दोषों को विलीन करने वाले, संग्राही, मूत्रल तथा आर्त्तवजनन है। शोथ, उदरशूल मूत्रकृच्छ्र, योनिशूल, मक्कल्लरोग, बस्ति शोथ, अण्डकोश शोथ, कटिशूल, रजः कृच्छ्रता में इनके क्वाथ में कटि-स्नान या अवगाहन करना चाहिए और सेक देना चाहिए। व्रण शामक उपनाहों में भी यह डाले जाते हैं।

गोंद निर्यास—इसे 'कपरकस'[1] कहा जाता है। असन के गोंद के समान गुणकारी है। अत्यन्तग्राही तथा संकोचक और रक्तस्रावरोधक है। अतएव कहा है—

पलाशमवनिर्यासो ग्राही च क्षापयेद्‌धृवम्। ग्रहणी मुणवजान् कासाञ्जयेत् स्वेदातिनिर्गमम् ॥ (आ० सं०)

गोंद २-४ माशा की मात्रा में खाने से अन्तः रक्तस्राव रुकता है। अतिसार संग्रहणी शान्त होती है। श्वेतप्रदर-दिनाशक एवं योनिसंकोचक है। कटिशूल में अन्य पदार्थों के साथ मिलाकर खाने से लाभ करता है। फलियों का छाया शुष्क चूर्ण समशर्करा के साथ २-८ माशे की मात्रा में १४ दिन तक सेवन से योनि तथा गर्भाशय शिथिलता नष्ट होती है। रक्तपित्त में पुष्प या गोंद उपकारक है।

पंचांग को जलाकर क्षार बनाया जाता है। जो दीपन, अनुलोमन तथा यकृत, प्लीहोदरगुल्म-अम्लपित्त नाशक है। मात्रा १-२ माशा

योग क्रमिघ्न चूर्ण-२-४ माशा उदरकृमियों में।

पारिभद्रः (पारिजातः-मन्दारकः, कण्टकिंशुकः)

नाम--(हि० मा० पं०) फरहद (गु०) पोडेखो, पनखो (म०) पांगारा (बं०) पालतेमदार (क०) हरिवाणद (तै०) रोहितकमु (ता०) मुल्लमुरुवक (अं०) इण्डियन[2] कोरल ट्री (वा० ले०) एरिथ्रिना[3] इन्डिका, अपराजिता वर्ग[4]।

गुण--पारिभद्रो निलश्लेष्मशोथभेदः क्रमिप्रणुत्। तत्पत्रं पित्तरोगघ्नं कर्णव्याधि विनाशनम् ॥ (भाव०)

फरहद-कषायकटु रसवाला, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, रोचक, अग्निदीपक है। पत्र-छाल का प्रयोग होता है। पुष्पकाल-मार्च-अप्रैल। सुन्दर टेसू के से लाल पुष्प होते हैं।

प्रभाव तथा प्रयोग--यह त्रिदोषशामक, मेद उदरकृमि, शोथशामक, पत्र पित्तरोगशामक तथा कर्ण रोग नाशक है। छाल में विशेष सत्व पाया जाता है जो कुचले के जहर का विरोधी है। छाल ज्वरघ्न-शोथशामक, क्रमिघ्न और स्वापजनन है। मस्तिष्क तथा वाततन्तुओं पर शामक प्रभाव डालती है।

पित्तविकारों में पत्रस्वरस या छाल का हिम, उदरकृमियों में ५ तोला, पत्रस्वरस देने से लाभ होता है। इससे स्वयं विरेचन होकर उदरकृमि निकल जाते हैं। उपदंश में उत्पन्न गोठों को मिटाने के लिए पत्तों को उन पर बांधना चाहिए। अन्तर्छाल पर घी चुपड़कर, उसका काजल बनाकर, लगाने से नेत्रों से पानी बहना बन्द हो जाता

---

1. Kino or Buted kino.
2. Indian Coral Tree.
3. Aerythrina Indica, Lam.
4. Papilionaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

है। कान के दर्द में पत्रस्वरस डालना तथा दान्त के दर्द में पत्रस्वरस के कुल्ले कराने चाहिए। सन्धिशोथादि में स्वरस तथा निद्रार्थ छाल का क्वाथ दें।

विडंगः (कृमिघ्नः-वेल्लजं, अमोघा)

परिचय--बायबिडंग के गुल्म और लताएँ पहाड़ी प्रदेशों में हिमालय के अधोभागों में तथा लंका से सिगापुर तक उत्पन्न होती है। बीज व्यवहार्य है। ये काली मिर्चों के आकार तथा भूरे रंग के होते हैं।

मात्रा--१-२ माशा तक

रस—कटु, अनुरस-कषाय

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष--वातकफ नाशक

प्र० अ०—अन्त्र

वि० गु० क०--अन्त्रकृमिघ्न, अनुलोमक, दीपन, स्थौल्यनाशक

नाम—(हि० मा० पं०) वायबिडंग, वावरिंग (बं०) बिरंग (गु० म०) वायबडींग (क०) वायुविडंग (तै०) वायविडंगमु (ता०) बायविलंगम, बायविडगम् (वा० ले०) एम्बेलिआ रिब्स[1], विडंग[2] वर्ग।

गुण —विडंगं कटुकं पाके रुक्षं तिक्तोष्णं लघु। वीर्योष्णं दीपनं रुच्यं कृमिवातकफापहम्॥
विष्टम्भाध्मान शूलाम मेदो महोदराणिच॥ (कै०)

विडंग ......तैलानि कटुनि कटुविपाकानि, सराण्य-निलकफ कृमिकुष्ठ प्रमेह शिरोरोगापहराणिच।
(सु० सू० ४५)

वायबिडंग, कटु, तिक्तरस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, लघु, दीपन, रुचिकर, वातकफ कृमिनाशक, आध्मान, विष्टम्भ, उदरशूल, आमदोष, प्रमेहनाशक सारक है।

प्रभाव तथा प्रयोग--विडंग में एक उड़नेवाला, एक स्थिर तैल तथा एक अम्ल पाया जाता है। जिसके कारण इसका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कटु रस तथा कटु विपाकी होने से यह अन्त्रों-आमाशय की कला को बल तथा उत्तेजना देता है। अतः अग्निदीपन, अनुलोमक, सारक है। कटु विपाकी होने से यह वसा तथा स्थूलता का नाशक है। बाहर निकलते समय यह मूत्र वृक्कों को उत्तेजित कर मूत्र अधिक मात्रा में लाता है। उसका रंग पीला-सा होता है। उत्तम रक्तशोधक तथा रसायन भी है।

उदरकृमियों में २ तोला चूर्ण आधपाव मट्ठे में मिलाकर प्रातःकाल पिलाने से लाभ होता है। एतदर्थ विडंगक्वाथ में शिग्रु-कम्पिल्लकादि के साथ मिलाकर देना उत्तम है। दूसरे दिन प्रातःकाल एरण्ड तैल का विरेचन देना चाहिए। बिडंग चूर्ण मिलाकर सेवन करने से और भी लाभ होता है। दाद आदि त्वचा रोगों में बिडंग को अन्य समान गुणवाली औषधियों के साथ मिलाकर खट्टे दहि में पीसकर लगाने से लाभ होता है। कृमि उत्पन्न न हो एतदर्थ बिडंग का पर्याप्त समय तक प्रयोग करना चाहिए। आमवात की वेदनाओं में तथा कृमिदन्त और दन्तशूल में इसके काढ़े का कवल ग्रह कराते हैं। बिडंग का एक भेद झाड़ी के रूप में भी मिलता है। इसके भी गुण यही है। असली विडंगलता[3] हैं।

योग--बिडंगारिष्ट, बिडंगलोह, कृमिहररस, कृमिहरचूर्ण, मुस्तादियोग, (ये सब योग 'रसादर्श' में देखें)।

---

1. Embelia Ribes, Burm.
2. Myrsinaceae.
3. Emblica Robusta.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सोमराजी (वनजीरक-अरण्य जीरक)

परिचय—कालीजीरी का क्षुप सुपरिचित है।
उ० स्थ०—प्राय: सर्वत्र
व्य० अं०—बीज
पुष्पकाल—मई-जून
मात्रा—१-२ माशा
रस—तिक्त, कटु अनुरस
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
दोष—वातकफशामक-पित्तलम्
प्र० अ०—त्वचा, अन्त्र, धातु रक्त
वि० गु० क०—कृमिघ्न, रक्तशोधक वातहर, स्तम्भक, शोथशामक

नाम—(हिं०) कालीजीरी (ब०) सोमराज (म०) कडूजिरें (गु०) कालीजीरी (अं०) पर्पल फ्लीवेन[1] (वा० ले०) बर्नोनिया एन्थेलमिन्टिका[2] सूर्यमुखी वर्ग[3]। सोमराजी को अनेक वैद्य बाकुची से मिला देते हैं। यह अशास्त्रीय है।

गुण—वनजीर: कटुकोष्णो व्रणहा कृमिनाशन:।

कालीजीरी, कड़वी, उष्ण, व्रणनाशक, उदरकृमिहर, दीपन, पाचन मूत्रल तथा रसायन है। इससे चिपचिपा हरे से वर्ण का तैल निकलता है। जो अत्यन्त कृमिनाशक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—यह उत्तम शोथशामक है गण्डमाला, ग्रन्थिशोथ, कनपेड़ा (कान के नीचे की गाँठ सूजना) एवं अन्य शोथों में धतूरबीज अहिफेनादि के साथ पीसकर लेप लगाने से लाभ होता है। त्वचा रोगों में श्वित्रादि में भी लाभ करता है। आन्तों के कीड़ों को निकालने के लिए कालीजीरी, पलाशबीज, पित्तपापड़ा, कंबीला, मूषाकरणी, विडंग, वचा, डीकामाली हिंग, गुड़ सब समान भाग लेकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना लें। २-४ गोली जल के साथ दिन में दो बार सेवन करनी चाहिए। दूसरे दिन एरण्ड तैल का विरेचन दें। क्वाथ भी उदरशूल, आध्मान और कृमिहर है। क्वाथ के रस में घोटकर लेप करने से जुएँ मरती हैं। निम्बु के रस में सर्वांग शोथ जलोदर में भी चूर्ण का प्रयोग किया जाता है। कुष्ठ में वर्षभर तक कालीजीरी तथा तिलों को गरम जल में घोटकर पिलाने से लाभ होता है। ज्वरों, मन्दाग्नि, योनिदोष में अतिउत्तम है। पाचन को बढ़ाती है। वात का अनुलोम करती तथा योनिशोधक है।

योग—सोमराजी-बृहत्सोमराजी तैल। त्वचा रोग नाशक है।

शिग्रुत्रयम्, (कृष्णगन्ध, मुरंगी)

परिचय—शिग्रु के तीन भेद हैं—सफेद-काला-लाल-उत्तरोत्तर तीक्ष्ण सर्वत्र उपलब्ध व्यवहार्य अंग पंचांग तैल।
पुष्पकाल—सितम्बर-अक्तूबर
रस—मधुर, कटु, तिक्त

---

1. Purple Fleabane.
2. Vernonia Anthelmintica, wild.
3. Compositeae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—वातकफनाशक

वि० गु० क०—उत्तेजक, कफहर, कृमिघ्न

प्र० अ०—अन्त्र

नाम—(हि० पं० मा०) सहिंजना-सोहांजन्य-मुनगा (बं०) शजिना (म०) शेवगा-शेगटा (गु०) सरगवो, सेक्टो (क०) नुग्गेमर (तै०) मुनगचेटटु (ता०) मुरंगै (अं०) होर्स रेडिश[1], ड्रम स्टिक[2] (वा० ले०) मोरिंगा टेरिगोस्पर्मा, (मधुराशिग्रु) मोरिंगा[4] कन्केनेन्सिस्, शिग्रु वर्ग[5] ।

गुण—कटुः सक्षारमधुरः शिग्रुस्तिक्तोऽथ पिच्छिल । मधुशिग्रु सरस्तिक्तः शोथघ्नो दीपनोलघुः । (सु० सू० ४६)

शिग्रुः कटुः, कटुपाके तीक्ष्णोष्णोमधुरोलघुः । दीपनों रोचनों रूक्षः, क्षारस्तिक्तो विदाहकृत् ॥

संग्राह्यशुक्रलो हृद्यः पित्त-पित्ताग्र कोपनः । चक्षुष्यः कफवातघ्नः हन्तिश्वयथुविद्रधीन् ॥

भेदोऽपचीविषप्लीहागुल्म गण्डव्रण कृमीन् । (कै०)

सुहांजना रस तथा पाक के कटु (कटुरसप्रधान) उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, मधुर, लघु-क्षारीय, पिच्छिल, सर (मृदु रेचक) शोथशामक, वीर्यनाशक (अतिप्रयोग) पित्त तथा रक्तपित्त का कोपक, चक्षुष्य, कफवातशामक, विदाहि, वसा अपची, विष यकृतप्लीहावृद्धि-गुल्म, गण्डमाला तथा कृमिनाशक है । इसका पंचांग भी कृमि तथा कफहर है । फल, कफपित्तशामक, दीपन, शूल, कुष्ठ, क्षयनाशक, बीज (सफेद मरिच), चक्षुष्य तथा तीक्ष्ण उष्ण है ।

प्रभाव तथा प्रयोग—सोहांजनों के सब अंगों में कटु रस प्रधान है । अतः यह पाचक-दीपक, स्रोतों का शोधक, वातानुलोमन, कफ-भेदनाशक उत्तेजक तथा वातानुलोमक है ।

मुखामाशयान्त्र की कला पर इसका उत्तेजक प्रभाव पड़ता है । इससे रक्त का अभिसरण बढ़ता है । कला की धारणा शक्ति बढ़ती है । अजीर्णजन्य अतिसारादि नष्ट होते हैं । कटु विपाकी होने से स्रावों का शोधक भी है । अतः वृक्कों में रक्त प्रवाह को बढ़ाकर तथा उसकी कला को उत्तेजित कर मूत्र भी अधिक मात्रा में लाता है । शोथशामक है । इन सब कारणों से शोथ पाचनसम्बन्धी रोग उदररोग, यकृत्प्लीहावृद्धि में इसका प्रयोग किया जाता है । आमवात, कटिशूल तथा अन्य वातव्याधियों में उष्णवीर्य होने से विशेष लाभ करता है । फली का शाक खाने से उदरकृमि नहीं होते । वृक्कों शोथ तथा उससे उत्पन्न जलोदर में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए । सुहांजनों की बीजों को पोहकर मूल के साथ देने से उदरकृमि नष्ट होते हैं । स्वर भंग में ताजी जड़ के काढ़े से कुल्ले, पागल कुत्ते के काटे में, सुहांजना के पत्ते, लशुन, हल्दी नमक-कालीमिर्च मिलाकर बांधते हैं । इससे शोथ उतारकर व्रण भरता है । मूत्रकृच्छ्र में १ तोला गोंद दहि के साथ नित्य खाना चाहिए । इसके बीजों को महीन पीस, गाय के घी और मधु में मिलाकर बत्ती ऋतु धर्म के पीछे योनि में रखने से गर्भ धारण नहीं होता है । विद्रधि में इसके क्वाथ में हींग तथा सैन्धानमक मिलाकर पिलाते हैं । अपची में देवदारु तथा कांजी के साथ पीसकर लेप करते हैं । अन्तः विद्रधि में मूल का काढ़ा मधु के साथ पिलाते हैं । बीजों को नेत्र अंजन में डाला जाता है ।

योग—दोषघ्नलेप शोथशामक ।

---

1. Horse Radish.
2. Drum Stick.
3. Moringa Pterygosperma, Lam.
4. M. Concanensis.
5. Moringaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उन्नीसवाँ अध्याय

हृदयरसायन तथा रक्ताभिसरण प्रभावक वर्ग

अर्जुनः (पार्थः ककुभः श्वेतवाहः)

परिचय—महान् वृक्ष, बाहर की त्वचा श्वेताभ, अन्दर की त्वचा श्वेताभ, लाल

उ० स्थ०—प्रायः सर्वत्र, दक्षिण में अधिक

व्य० अं०—प्रधानतः त्वचा

पुष्पकाल—चैत्र-वैशाख

मात्रा—चूर्ण ½-१ माशा तक

रस—कषाय

वीर्य—शीत

विपाक—कटु

दोष—पित्तकफशामक, वातवर्धक-धातु-भेद (वसा) हर

प्र० अं०—हृदय

वि० गु० क०—ग्राही, रक्तस्तम्भक, हृदय रसायन

नाम—(हि०) अर्जुन-कोह (बं०) अर्जुनगाछ (म०) अर्जुनसादड़ा (गु०) अर्जुन, कडायो, (पं०) जुमरा (वा० ले०) टर्मिनेलिया अर्जुन[1] (वर्ग) हरीतकी[2]।

गुण—अर्जुनस्तुवरः शीतो जयेत्पित्तकफव्रणान् । मेदोमेहास्रहृद्रोगस्वेदभग्नक्षतक्षयान् ।। (कै०)

अर्जुन कषाय, शीतल, व्रण, पित्तकफ भेद (वसा) प्रमेह रक्त पित्त, हृदय रोग, स्वेद, भग्न (हड्डी टूटना) क्षत और क्षय रोग नाशक है।

अर्जुन छाल में चूर्ण[3] (चूना) एक विशेष कषायाम्ल[4] पाया जाता है। किन्तु इस प्रकार के विश्लेषण से आयुर्वेद चिकित्सा में कोई लाभ नहीं। क्योंकि आयुर्वेद में दोषानुसार चिकित्सा होती है।

प्रयोग बाह्य—व्रण शोथ, चोट, भग्न, रक्तस्राव या त्वचा के नीचे रक्तसंचय होने पर अर्जुन का गरम लेप लगाया जाता है। इससे शोथ शान्त होती तथा रक्त का जमाव मिटता है। मुख पाक में अर्जुन के क्वाथ में तिल तैल मिलाकर कुल्ला करते हैं।

अन्तः प्रयोग—अन्तः रक्तस्राव को रोकने में अर्जुन अतिउत्तम है। कषायरस के कारण यह रक्त का संग्राहक है। रक्तातिसार, रक्तार्श, रक्तप्रदर आदि शान्त होते हैं। सूक्ष्म रक्त[5] वाहिनियों में से रक्तस्राव में कमी होती है। हृदय के रोगों में अर्जुनसिद्ध दूध का बहुत उपयोग किया जाता है। यह हृदय को शक्ति देता है।

---

1. Terminalia Arjuna.
2. Combrataceae.
3. Calcium.
4. Tannic Acid.
5. Capillaries.

फा०—५३

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उसकी तीव्र तथा अनियमित गति को मन्द तथा नियमित करता है। एलोपैथी की डिजिटेलिया (हृत्पत्री) के समान इसकी क्रिया होती है। यह हृदय को विश्राम तथा शक्ति देता है। अर्जुन और मधुयष्टि को गाय के घी तथा मधु में मिलाकर देने से हृदय रोग तथा रक्तपित्त शान्त होता है। मूत्र रोध से उत्पन्न उदावर्त्त में अर्जुन के अन्तर्छाल काढ़े से लाभ होता है। हृदय रोगों में उत्पन्न शोथ तथा जलोदर में, जीर्ण रोगों में हृदय अशक्त होने पर हृदय बलहीन, अशक्त तथा धमनियों में रक्तभार कम होने पर एवं हृदय कपाट के रोगों में वातकफ ज्वर (इन्फ्लुन्जा) आदि में हृदय की अशक्तता में अर्जुन बहुत ही उपयोगी है।

(१) अर्जुनारिष्ट १½-२½ तोला तक भोजन के १/२ घण्टा बाद हृदय रोगों में

(२) इन्द्रवटी २-४ गोली प्रमेह में

(३) अर्जुनघृत, अर्जुनस्वनसत्वादि

करवीरद्वयम् (हयभारः शतकुम्भः)

परिचय—सुपरिचित गुल्म, पुष्पों के अनुसार श्वेत, लाल तथा पीला

उ० स्थ—सर्वत्र

व्य० अं०—मूलत्वक्, क्षीर पत्र

पुष्पकाल—वर्षभर

मात्रा—मूलत्वक् ½-१ रत्ती

रस—तिक्त, कषाय, कटु

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—त्रिदोषकोपक

प्र० अ०—हृदय

वि०गु० क०—वामक, रेचक, ज्वरघ्न, त्वग्रोगनाशक, हृदय रसायन

नाम—(हि०) सफेद कनेर (ब०) करवी (म०) पांढरी कण्हेर (गु०) कणेर, करेण (क०) कणिगल (तै०) एटगन्नेर (ता०)अलरी (अं०) ओलिएन्डर[1] (वा० ले०) नेरियम आडोरम्[2] अर्कवर्ग। लाल फूलवाली (कण्हेर) का भी वानस्पतिक नाम यही है। पीतपुष्पा या (वा० ले०) थीवेटिआ नेरीफोलिया या सर्वेराथीवेटिआ[3]) नाम है। यह भी अर्कादि वर्ग की है। गुणों में सब समान हैं। हाँ पीत अधिक विषैली हैं।

गुण—करवीरद्वयं तिक्तं कषायं कटुकंचतत्। व्रणलाघवकृन्नेत्रकोपकुष्ठ व्रणापहम्।
वीर्योष्णं कृमिकण्डूघ्नं भक्षितं विषवन्मतम्॥ (भा०)

करवीर कसैले, तिक्त कटुरसवाले, उष्णवीर्य, व्रण, नेत्ररोग, त्वचारोग, कृमिनाशक है। भक्षण करने से विष के समान है। अतः अन्तः प्रयोग कम करते हैं।

सफेद कनेर के पीले पत्तों को सुखाकर मस्तकपीड़ा में नस्य देते हैं। दुग्धादि अत्यन्त तीव्ररेचक, वामक तथा शोथकारक हैं। अतः अत्यन्त सावधानी से प्रयोग करें। विषमज्वरों में मूल ½-१ रत्ती की मात्रा में देते हैं। यह भरे हुए पेट पर देनी चाहिए खाली पेट हो तो न दें। इसके सेवन से त्वचा की रक्तवाहिनियाँ विस्तृत हो जाती हैं। अतः

1. Oleander.
2. Narium odorum, Soland.
3. Thevatia Neriifolia, juss or Cerbera Thevetia, Don.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

खूब पसीना आता है। ताप केन्द्र हो जाता है जिससे ज्वर कम हो जाता है। हृदय की गति शिथिल हो जाती है। हृदय का संकोच बलपूर्वक होने से रक्त प्रवाह उत्तम होता है। हृदय विकास काल बढ़ जाने से उसे आराम मिलता है। नाड़ी की गति धीमी हो जाती है। वृक्कों में रक्त प्रवाह अधिक उत्तम होने से मूत्र अधिक मात्रा में निकलता है। जलोदर, आर्द्रशोथ में भी लाभ करती है। अतः शोथशामक भी है। कोमलशाखाओं के छाल का वारुणीसार बनाकर २०-२५ बूंद की मात्रा में देते हैं। एतदर्थ छाल १ भाग, वारुणी या सुरासार ५ भाग में भिगोकर ८ दिन तक रखकर छान लें। रस क्रिया भी बना सकते हैं। मात्रा ½-१ रत्ती तक। यह हृदय को शिथिल करता है। और विष मात्रा में अधिक होने से हृदयावरोध हो मृत्यु हो जाती है। नाड़ी की संख्या प्रति मिनिट ३६ तक आ जाती है।

योग—करवीरादि तैल त्वचा रोगों में अभ्यंगार्थ

कुमकुम (कश्मीरं, बाल्हीकं, अग्निशिखम्)

परिचय—यह प्रसिद्ध द्रव्य काश्मीर, स्पेन तथा ईरान में उत्पन्न होता है।

व्य० अं०—लिंगसूत्र (केसर)

रस—कटु तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—त्रिदोषहर

प्र० अ०—सर्व शरीर, प्रजननांग

वि० गु० क०—उत्तेजक, बल्य, आर्तवजनक, वायुशामक

मात्रा—१-२ माशा तक

नाम—सर्वभाषा केशर, कुंकुम (क०) कुंकुम केसरि (तै०) कुंकुमपूवा (ता०) कुंगुमपू (फ्रेन्च, जर्मनी, फ० अं०) सेफ्रान[1] (वा० ले०) क्रोकस सेटाईवस्[2] लिन्न, केशर[3] वर्ग।

गुण—कुंकुमं कटुंकं तिक्तं वर्ण्यं व्रणविशोधनं, हन्ति दोषत्रयं हिध्माशिरारोग क्रमीन्। (कै०)

केसर कड़वा, चरपरा, गरम, स्निग्ध, कान्तिदायक, त्रिदोषशामक, हिक्का, शिरःशूल, विष, व्यंग तथा क्रमिनाशक हैं। यह संग्राहक, मनः प्रसादकर, शोथशामक, लेखन तथा कामोत्तेजक है। हृदय, मस्तिष्क, यकृत् तथा सारे शरीर को बल प्रदान करता है। यकृत् शोथ तथा गर्भाशय शोथहर। उष्णवीर्य होने से कफ तथा प्रतिश्याय और वातजन्य रोगों, रजः कृच्छ्रता, उदर, आध्मान तथा रजः स्रावार्थ-केसर-अकरकरा समभाग की गोली बनाकर ४ रत्ती की मात्रा में दी जाती है। मुक्ता अकीक-अर्जुनादि हृदय रसायनों के साथ मिलाकर हृदय निर्बलतानाशक, मानसिक क्षोभ में ब्राह्मी क्वाथ के साथ, यकृत् वृद्धि में करेले के स्वरस के साथ, विषूचिका में नींबू रस के साथ, मूत्राघात में इसका शीतकषाय, रक्त पित्त में केशरसाधित, बकरी का दूध सिर दर्द में घी में पिसा केसर सूंघने से अतिलाभ होता है। बाह्यतः त्वचा की पिडिकाओं आदि का नाशक है। शरीर शीत होने पर तथा बच्चों को ठंड लग जाने पर इसे दूध या अन्य गरम चीजों के साथ तथा वाजीकरण के लिए कामोत्तेजक के साथ मिलाकर प्रयोग करें। इसमें तैल विशेष पाया जाता है जो मस्तिष्क पर प्रभाव डालकर काम को बढ़ाता है।

---

1. Saffron.
2. Crocus Sativus, Linn.
3. Iridaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

योग—(१) कुकुंमादि तैल त्वचा के दोषों को नष्ट कर उसकी कान्ति को बढ़ाने वाला तैल।
(२) केशरपाक ३-६ माशा दूध के साथ वातरोग, निर्बलता नाशक-वाजीकरण।

वक्तव्य—केशर कृत्रिम भी बनाया जाता है तथा इसमें मिलावट भी की जाती है। उत्तम केशर मुख में डालने से कुछ कड़वा, सुगन्धित प्रतीत होगा तथा पीला रंग छोड़ देगा। कुसुम्भ के लिंगसूत्र मिलाए जाते हैं। किन्तु ये केशर के अपेक्षा नरम होते हैं। चमड़ा कागज आदि काटकर भी केशर बनाया जाता है। उत्तम केशर मुख में डालने से कुछ कड़वा, सुगन्धित प्रतीत होता है। तथा पीला रंग छोड़ देगा। यह सूक्ष्म, आरक्त तथा पद्म गन्धि होना चाहिए। जल में यह धीरे-धीरे रंग छोड़ता है जब कि कृत्रिम केशर तुरन्त रंग छोड़ देते हैं। कौकमं पुष्पमारक्तं गन्धवत् सूक्ष्म केशरम्। काश्मीरेषु संजातं पद्मगन्धि तदुत्तमम्॥ (कै०)

केतकी (सुवर्ण केतकी, सूची पुष्प)

नाम—(हि० म० पं०) केवड़ा, (गु० मा०) केवड़ों (म०) केतकी (बं०) केया (क०) तोलहूविन, (तै०) मोगले (ता०) तालेताले (अं०) फ्रेगरेन्ट[1] स्क्रू पाईन, कालडेरा बुश,[2] (वा० ले०) पेन्डनस्[3] ओडोरेटिस्सिमस्, वाईल्ड, केतकी[4] वर्ग।

गुण—केतकी मधुरातिक्ता कफघ्नी कटुका लघुः। (कै०)
तस्यस्तनो तिशिशिरः कटुः पित्तगदापहः (रा० मि०)

केवड़ा की दो जातियाँ हैं—सुवर्ण केतकी या हेमकेतकी उत्तम। यह मधुर तिक्त रस-शीतवीर्य तथा कटु विपाकी, पित्तकफशामक, उत्तेजक, सुगन्धित, हृदय-मस्तिष्क ज्ञानेन्द्रियों को बलदायक तथा रक्त की उष्णता को शान्त करती है। इसका अर्क-शर्बत तथा तैल बनाकर प्रयोग किया जाता है। तैल मर्दन सिर दर्द-गठिया की दर्द एवं अन्य वायु पीड़ा शामक है। वात व्याधियों में पुष्पों को मीठे तैल में डालकर ४० दिन तक धूप में रखकर मर्दन करने से वातरोग शान्त होते हैं।

कोलकन्द (कृमिघ्नः-वनपलाण्डुः)

परिचय—प्याज के समान कन्द, किन्तु उससे छोटा
उ० स्थ०—समुद्र के किनारे तथा रेतीली जमीन में
व्य० अं०—कन्द
रस—तिक्त
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
दोष—वातकफशामक
प्र० सं०—फुफ्फुस, मूत्र संस्थान
वि० गु० क०—मूत्रल, कफनिष्कासक
मात्रा—चूर्ण-१-३ रत्ती तक
पानक—२०-६० बूंद

1. Fragrant screw Pine.
2. Caldera Bush.
3. Pandanas odoratissimum wild.
4. Pandanaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नाम—(हि० पं०) जंगली प्याज, कान्दा (गु०) जंगली कान्दो, पाण कान्दो (म०) रान कान्दा, कोल कान्दा (तै०) चेरु अड़विउल्लगड्ड (ता०) शिरूनारि वेंगायम् (अं०) इण्डियन[1] स्क्विल (वा०ले०) अरजीनिया[2] इण्डिका, सिल्ला इण्डिका[3] पलाण्डु वर्ग[4]।

गुण—कोलकन्दः कटुश्चोष्णः क्रमिकासकफापहः। उत्क्लेशवान्तिजननो हृद्यः श्वासनिवारणः॥

जंगली प्याज कटु, तिक्त, उष्ण, रूक्ष, क्रमि-कास, कफ, श्वासशामक, वमन तथा मतली को उत्पन्न करता है। यह शोथशामक व्रणकारक, मूत्रल, आर्त्तवजनन, कफ निष्कासक तथा हृद्य है। हृद्य तथा मूत्रल होने के कारण हृद्य रोगों में उत्पन्न जलोदर में लाभ करता है। यद्यपि तीव्र वृक्क तथा अन्य आमाशय शोथ में इसे नहीं दिया जाता है। कफ निष्कासक होने के कारण श्वास कास में प्रयुक्त होती है, विशेषकर पुरानी खाँसी को भी बल मिलता है। किन्तु, नवीन तीव्र कास में नहीं देनी चाहिए।

तिलपुष्पी [हृत्पत्री (ले०) डिजिटेलिस पर्प्युरिआ][5]

परिचय—यह कटुकी वर्ग[6] की औषधि है। अंग्रेजी में इसे फॉक्स ग्लोब[7] कहते हैं। ५-७ हजार फुट की ऊँचाई पर हिमालय तथा नीलगिरि पर्वतों पर उत्पन्न होती है। पत्र तमाखू के समान तथा पुष्पों के समान तिल, किन्तु उनसे बड़े। यह एक विष है। पत्रों का प्रयोग होता है। माशा—$\frac{१}{४}$-$\frac{१}{२}$ रत्ती तक।

गुण तथा प्रभाव—तिक्त रस, उष्ण वीर्य—कटु विपाकी, वातपित्तवर्धक, कफशामक, क्षोभक, वामक, हृदयावसादक, मूत्रल, बड़ी मात्रा में वाहक तथा मादक विष है।

हृदय पर इसकी विशेष क्रिया होती है। अनियमित, शिथिल, निर्बल हृदय की गति को नियमित, सशक्त तथा धीमी करता है। इसके सेवन से हृदय का संकोच बलपूर्वक होता है जिससे क्षेपक कोष्ठ से सारा रक्त धमनियों में चला जाता है। ग्राहक कोष्ठ विस्तृत होता है। इस प्रकार पर्याप्त समय तक विश्राम काल बढ़ जाता है। जिससे रक्त धमनियों से लौटकर ग्राहक कोष्ठों में भर जाता है। इस प्रकार हृदय की संकोच शक्ति बलवती हो जाने के कारण तथा दो संकोचों के मध्य में विश्रामकाल बढ़ जाने से हृदय को विश्राम और बल मिलता है। सिराओं तथा धमनियों में रक्तपूर्णतया जाता आता है। अतः रक्त संचार भी उत्तम प्रकार से होता है। हृदय के उन सब रोगों में जिनमें हृदय की मांस पेशियाँ स्वस्थ हों, किन्तु अधिक परिश्रम के कारण थक गई हों यह अति उत्तम औषध है।

रक्त भ्रमण उत्तम हो जाने के कारण मूत्र की मात्रा भी बढ़ जाती है तथा शरीर में उपचित द्रवांश भी बाहर निकल जाता है। अतः हृदय और वृक्क की विकृति से उत्पन्न जलोदर, सर्वांग शोथ में लाभ करता है। इस प्रकार हृदय निर्बलता से रक्त संचार शिथिल होने पर फेफड़ों आदि में उपचित द्रव के कारण उत्पन्न श्वास-कृच्छ्रता खाँसी आदि में भी लाभ करता है।

ज्वरों में भी जिनमें हृदय प्रभावित हो जाता है इसका प्रयोग किया जाता है।

यह लगभग ६ घण्टों बाद मूत्र द्वारा निकलना प्रारम्भ होता है। किन्तु बहुत धीरे-धीरे निकलता है। अतः कम से कम ६ घण्टे बाद दूसरी मात्रा देनी चाहिए इससे पहले नहीं। इसका पूर्ण प्रभाव होने पर निम्न लक्षण होते हैं। धीमी नाड़ी, अरति (जी मचलाना) वमन, अतिसार। जब ये लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे तो औषधि बन्द कर दें।

1. Indian Squill.
2. Urginea Indica, Kunth.
3. Scilla Indica.
4. Liliaceae.
5. Digitalis Purpurea, Linn.
6. Scrophulariaceae.
7. Fox globe.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अन्यथा हानि होती है। सहसा हृदयावरोध होकर मृत्यु हो सकती है। निषेध—मस्तिष्क रक्तस्राव, अर्ध-हृदयावरोध,[1] रक्त वाहिनियों के काठिन्य में इसे सावधानी से प्रयोग करें।

बुन्दः (काफी-कहवा)

नाम—(हि०) कहवा (बं० म० गु०) काफी (अं०) काफी[2] (वा० ले०) काफिआ[3] अरेबिका। मंजिष्ठादि वर्ग[4] दक्षिण में 'बुन्द' नाम है।

परिचय—यद्यपि मूलतः बुन्द अरबी है। किन्तु आजकल दक्षिण भारत में भी उत्पन्न होती है। व्यवहार्य अंग बीजों का चूर्ण।

गुण तथा प्रयोग—बीजों में एक उड़ने वाला तैल तथा स्फटिकमय द्रव्य कैफीन के कारण इसका प्रभाव होता है। यह हृदय उत्तेजक, मूत्रल है। दूध, जल चीनी के साथ बनाया फाण्ट हृदय को बल देता तथा नाड़ी की गति को सुधारता है। किसी भी कारण से हृदय शिथिल हो, यह उत्तम पेय है। इसके साथ सोंठ मिला कर पीने से ज्वरों में तथा प्रतिश्याय आदि में लाभ करता है। बड़ी मात्रा में शिरःशूल, अनिद्रा, बेचैनी करती है। सोंठ केसर के साथ अंबर डालने से और भी प्रभाव होता है। पत्रों का क्वाथ ज्वरों में लाभ करता है।

मृगमदः (कस्तूरिः, मृगनाभिः, सुगन्ध)

नाम—सर्व भाषा-कस्तूरी (अं०) मस्क[5]

परिचय—कस्तूरी को सभी लोग जानते हैं। यह ८ से १२ हजार फुट की ऊँचाई पर रहने वाले मृग सदृश प्राणी की नाभि से प्राप्त होती है।

रस—कटुतिक्त
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
दोष—वातकफशामक
प्र० अ०—हृदय-मस्तिष्क
वि० गु० क०—अति उष्ण, उत्तेजक, बल्य, वाजीकरण
मात्रा—१ रत्ती

गुण—कस्तूरी कटकातिक्ता क्षारोष्णा शुक्रला गुरुः। कफवात ज्वरच्छर्दि शीत दौर्गन्ध्यशोषहा॥ (कै०)

कस्तूरी-रस में तिक्त, कटु, वीर्य में अत्युष्ण, कटु विपाकी, कफवात रोगशामक, शुक्रला-वाजीकरण, ज्वर-वमन शीतांगता[6]-शोष, दुर्गन्धिनाशक है।

---

1. इस औषधि का सेवन कराते समय रोगी को पूर्ण विश्राम दें तथा दूध, शर्करा, मांस रस एवं पौष्टिक पदार्थ देने चाहिए।
   तिलपुष्पी का पत्र २ भाग को १ भाग रस-सिन्दूर के साथ मिलाकर सेवन कराना चाहिए।
   योग—हृद्यचूर्ण रसादर्शः, मात्रा १-२ रत्ती।
2. Coffee.
3. Coffea Arabica Linn.
4. Rubiaceae.
5. Musk.
6. Collapse.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रभाव तथा प्रयोग—कस्तूरी हृदय तथा वातनाड़ियों को शक्ति देती है। शरीर के सारे अंगों को उत्तेजित कर देती है। शरीर शिथिलता तथा शीत होने पर इसके प्रयोग से लाभ होता है। हृदय की निर्बलता तथा नाड़ी की शिथिलता तथा अचैतन्यावस्था में (सन्निपात ज्वरों में) इसे मकरध्वजादि के साथ सेवन करने से लाभ होता है। श्वास नियमित होता है। वातिक रोगों में वातिक उन्माद, वातकम्पवायु काली खांसी में इसके प्रयोग से विशेष लाभ होता है।

नाफा के अन्दर की कस्तूरी तीन वर्ष तक और शीशी में एक वर्ष तक ही वीर्यवान रहती है। पुराने रोगों से उत्पन्न निर्बलता में तथा मोतीझरा आन्त्रिकज्वर में मक्खन के साथ सेवन करने से शक्ति आती है। श्वास में अदरक के रस के साथ, कुत्ता खांसी में मक्खन के साथ खिलाने से लाभ होता है। वात व्याधियाँ अपस्मार, पक्षाघात, विस्मृति अपतन्त्रक में भी लाभप्रद है।

योग—(१) कस्तूरी भैरव, बृहत् कस्तूरी भैरव, वातकुलान्तकरस, सन्निपातावस्था, प्रलाप, हृदय निर्बलता शीतांगता,

(२) मृगमदासव—५-१० बूंद—उत्तेजक हृदय।

कस्तूरी की उत्पत्ति तथा भेद—यह प्राणिज पदार्थ है जो कस्तूरी मृग नामक मृग के अण्डकोषों का स्राव है, जो नर मृग की नाभी में पाई जाती है। प्रथम यह अर्ध तरल होती है। धीरे-धीरे सूखकर गोल अनियताकार के कण बन जाते हैं। जिनका रंग भूरे से गहरा काला तक होता है। यह मृग ८००० फुट से ऊपर तिब्बत-नेपाल, चीन, तुर्किस्तानादि के पर्वतों पर होता है।

चीन या तुर्किस्तान की कस्तूरी सर्वोत्तम होती है। तिब्बत तथा नेपाल की दूसरे नम्बर पर। काश्मीर तथा आसाम की इतनी उत्तम नहीं होती।

काश्मीरेकपिलच्छाया नैपाले चैवलोहिता। कामरूपोद्भवा कृष्णा कस्तूरीह्यधमामता॥ (कै०)

काश्मीरी भूरी, नेपाली कुछ लाल, आसाम की काली और सबसे निकृष्ट होती है।

उत्तम कस्तूरी की पहचान—कस्तूरी की महार्घता के कारण अनेक प्रकार से नकली कस्तूरी—यहाँ तक कि नकली नाफा भी बनाकर बेचा जाता है। अतः यथासंभव शुद्ध कस्तूरी का ही प्रयोग करना चाहिए। निम्न लक्षण बहुत कुछ शुद्ध कस्तूरी के द्योतक हैं।

"या गन्धं केतकीनां वहति भृशतरं वर्णतः पिंजरामाः॥
स्वादे तिक्ता, कटूष्णा, लघुः परितुलिता, मर्दिता चिक्कणा स्यात्।
दग्धा नो यातिभस्मं चिपचिपी कुरुते चर्मगन्धा हुताशे।
सा शुद्धा शोभनीया वरमृगतनुजा राजयोग्या प्रदिष्टा॥ (कै०)
करतल जलमध्ये स्थापनीया महृम्दिः,
पुनरपितदवश्यंचिन्तनीयं मुहूर्त्तम्।
यदि भवति च रक्तं तज्जलं पीतवर्णं,
न भवति मृगनाभिः कृत्रिमो यंविकारः॥ (कै०)

(१) कस्तूरी के विषय में उसकी गन्ध ही उसका उत्तम प्रमाण है। अतएव किसी कवि ने कहा है न हि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते। अर्थात कस्तूरी की गन्ध स्वयमेव उसकी शुद्धता को बता देती हैं। उसके लिए शपथ की आवश्यकता नहीं। यह मृदु गन्ध होती है जो धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। सहसा तेज गन्ध—जो धीरे-धीरे कम होती जाए, असली कस्तूरी की नहीं होती।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(२) जलमें कस्तूरी डालने से उसके दाने वैसे ही रहते हैं। यदि घुल जाएँ तो नकली कस्तूरी होगी।

(३) जलते कोयले पर कस्तूरी डालने से वह पिघल जाती है तथा बुदबुद करती है। यदि कठोर हो जाए और जलकर कोयला बन जाए तो नकली समझें। शुद्ध कस्तूरी से चमड़ें की सी दुर्गन्ध आती है।

(४) हींग या रसोन में से एक धागा गुजारे और पुनः उसे कस्तूरी में से गुजारें तो हींग या लहसुन की गन्ध की जगह कस्तूरी की गन्ध आनी चाहिए।

(५) कस्तूरी हाथ पर मलकर उसे कार्बोलिक साबुन से धोवे यदि कस्तूरी की गन्ध रहे तो असली कस्तूरी समझें।

(६) दौड़कर आए हुए पुरुष को यदि असली कस्तूरी खिलाई जाए तो श्रमोत्पन्न श्वास तुरन्त शान्त होती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बीसवाँ अध्याय

रक्तशोधक वर्ग

आकाशवल्ली

परिचय—अमरबेल[1] की लता सुपरिचित है।

उ० स्थ०—सर्वत्र

व्य० अं०—पंचांग

पुष्पकाल—वसन्त ऋतु, कुछ पीतवर्ण के

रस—तिक्त कषाय

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—कफ पित्तशामक

प्र० अं०—यकृत्, धातु, रक्त

वि० गु० क०—शोथशामक, वेदनाहर, उदरकृमिघ्न पित्तस्रावक

नाम—(हि०) अमरबेल (बं०) आकाशवेल (गु०) अमरबेल (म०) आकाशवल्ली (अं०) डोडर[2] (वा० ना०) कस्क्युटा[3] रिफ्लेक्सा (वर्ग) त्रिवृत्[4] छोटी अमरबेल को केसिथा फिलीफोर्मिस्[5] कहा जाता है। यह कर्पूर वर्ग (Lauraceae) की वनस्पति है। (फा०) अफ्तीमून। हिन्दी अमरबेल के गुण—

खवल्ली ग्राहिणी तिक्ता पिच्छिला क्षयापहा। तुवराग्निहृद्या पित्तश्लेष्मामनाशिनी ॥ (मा०)

आकाशवेल तिक्त, पिच्छिल, अग्निवर्धक, कसैली, आमदोष, क्षय, पित्त तथा कफशामक है। बड़ी अमरबेल उत्तम रक्तशोधक, शोथशामक तथा उदरकृमिहर है। पंचांग का स्वेद तथा शोथ वेदनाशामक है। पंचांग का तैल बना—अभ्यंग करने से आमवातादि में वेदनाएँ शान्त होती हैं। काढ़ा पिलाने से उदर के कृमि मर जाते हैं तथा विरेचन होकर बाहर निकल जाते हैं। यकृत्-प्लीहावृद्धि, जलोदर में प्रयुक्त होती है। तिल तैल में मिलाकर लेप करने से बालों की जड़ें मजबूत होती हैं। उनका झड़ना बन्द होता है।

छोटी अमरबेल को रक्त शोधनार्थ, सारिवा के साथ क्वाथ बनाकर मधु मिलाकर, ज्वरों में, यकृत् वृद्धि में यकृत् की शुद्धि के लिए और पित्तरेचनार्थ तथा विबन्ध, आध्मान मिटाने के लिए काढ़ा पिलाया जाता है। कंडू में पीसकर लेप लगाया जाता है। बीजों का चूर्ण वातोन्माद में तथा कल्क उदराध्मान-उदरपीड़ा में लेप लगाया जाता है।

---

1. पीले वर्ण की आकाशबेल वनस्पतियों पर पराश्रयी रूप में पाई जाती है। जिस वृक्ष पर लग जाए उसे सुखा देती है।
2. Dodder.
3. Cuscuta Reflexa Roxb.
4. Convolvulaceae.
5. Cassytha Filiformis Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आखुकर्णी (मूषाकर्णी, सहस्रमूली)

परिचय—परिसर्पिलता[1], ब्राह्मी के समान दीखने वाली, पत्र चूहे के कान के समान
उ० स्थ०—आर्द्र भूमि में सर्वत्र
व्य० अं०—पंचांग
पुष्पकाल—शरद् ऋतु, पीत वर्ण के
रस—कटु, तिक्त, कषाय
वीर्य—शीत
विपाक—कटु
प्र० अं०—त्वचा
वि० गु० क०—सर, रक्तशोधक, त्वच्य
मात्रा—शुष्क चूर्ण ३-६ माशा, हरी पत्तियाँ ७ माशे से १ तोला तक

नाम—(हि०) मूसाकर्णी (म०) उन्दीरकानी (गु०) उंदरकानी (वा० ले०) आईपोमिया[2] रेनीफोर्मिस, (वर्ग) त्रिवृतादि

गुण—आखुकर्णी कटुस्तिक्ता कषाया शीतला लघुः। विपाके कटुका मूत्रकफामय कृमिप्रणुत् ॥ (भाव०)

यह कटु कड़वा, कषाय, मूत्रल, रक्तप्रसादन, कृमिघ्न है। कफ रोग, वृक्क तथा वस्तिरोगनाशक है।

प्रयोग—चूहे के दंश पर स्वरस लगाते हैं। कान में व्रण को फोड़ने के लिए स्वरस कान में डाला जाता है। काली मिर्चों के साथ घोट कर पिलाने से मूत्र तथा शौच साफ होता है। कुष्ठ, भगन्दर आदि में रक्तशोधनार्थ इसका चूर्ण या काढ़ा तथा उदरकृमियों में स्वरस या फाण्ट, बच्चों के श्वासकास में क्वाथ दिया जाता है। अंगों की शिथिलता तथा त्वचा रोगों को भी नष्ट करती है। प्लीहा-यकृत् के स्रोतों को शुद्ध करने के लिए पंचांग का काढ़ा बनाकर पिलाया जाता है। उदरकृमियों में पत्तों को पीसकर आटे के साथ मिला पूड़ी बना खिलाने से तथा ऊपर से कांजी पिलाने से उदरकृमि नष्ट होते हैं।

कर्कोटकी (वन्ध्याकर्कोटकी, देवी)

नाम—(हि०) ककोड़ा बांझ ककोड़ा (म०) करटोलें (गु०) कंटोल, कंकोड़ा (क०) मडुवा गलबल्लि (तै०) पोटुकांकर (ता०) पालप्वकाय (वा० ले०) मोमोर्डिका डायोइका[3], कर्कटी वर्ग।

वक्तव्य—ककोड़े के दो भेद हैं—जंगली जाति को बांझ ककोड़ा (बन्ध्या कर्कोटी) और बोई हुई जाति को ककोड़ा (कर्कोटी) कहते हैं। गुणों में दोनों समान हैं।

गुण—वन्ध्या तिक्ता कटुस्तीक्ष्णा लघुर्व्रणविषास्रजित्। बलाससर्पदर्पघ्नी, विष वीसर्पनाशिनी। (कै०)

ककोड़ा या बांझ ककोड़ा कड़वा, कटु, उष्णवीर्य, कटुविपाकी, वातकफपित्तशामक, रुचिवर्धक, रक्तशोधक, विष, वीसर्पनाशक है।

---

1. ब्राह्मी के समान प्रतीत होने वाली यह लता वर्षा ऋतु में आर्द्रस्थान में उत्पन्न होती है। (पर्व) गाँठ से जमीन में जड़ निकलती है तथा ऊपर को दो पत्र निकलते हैं। फल छोटे मटर के समान पहले हरे या बैंजनी रंग के और पकने पर भूरे, दो दल वाले (दो बीजों वाले)
2. Ipomoea Reniformis, Chois.
3. Momordica Dioica, Roxb.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इनका फल कुष्ठ-प्रमेह, गुल्म, अम्लपित्त, ज्वर-कास-श्वास में, पथ्य के रूप में लाभ करता है। रक्तार्श तथा प्रमेह में इसके मूल का चूर्ण दिया जाता है। छिपकली के विष से उत्पन्न शोथ में इसकी जड़ का लेप किया जाता है। कन्द को जल में घिसकर लेप करने से सांप, बिच्छू, बिल्ली आदि का विष उतरता है। १ तोले कन्द को मधु शक्कर के साथ चटाने से पथरी में लाभ होता है।

कांचनार (कोविदारः)

परिचय—श्वेत, लालादि भेद से अनेक जाति के वृक्ष

उ० स्थ०—प्रायः सर्वत्र

व्य० अं०—मूल, त्वचा, पुष्प

पुष्पकाल—फाल्गुन-जेठ, कहीं माघ-फाल्गुन

रस—कषाय

वीर्य—शीत

विपाक—कटु

दोष—कफपित्तहर, वातल

प्र० अं०—त्वचा, अन्त्र, धातु-रक्त

वि० गु० क०—ग्राही, रक्तशोधक, गण्डमाला अपची नाशक।

मात्रा—चूर्ण ६ माशा १ तोला

नाम—(हि०) कचनार (म०) कांचन-कोरला (गु०) चंपाकाटी (बं०) कांचन (ते०) देवकांचनुम (वा० ले०) बोहिमिया वेरिएगेटा[1] लिन्न (वर्ग) पूतिकरंज या शिम्बी।

गुण—कोविदारोहिमोग्राही व्रणकषायः कफपित्तजित्। गण्डमाला गुदभ्रंश व्रणकुष्ठ कृमीन् जयेत्।
तद्वच्च कांचनोज्ञेयस्तयो पुष्पंहिमं गुरुः। कषायं मधुरं पाके रसे संग्राही रोचनम्।
रूक्षं कास क्षतश्वास पित्तासु प्रदरापहम्॥ (कै०)

कांचनार-कषायरस, (मधुर अनुरस) शीत, कटुविपाकी, कफपित्तनाशक, ग्राही, व्रणशोधक, रक्त प्रसादक गण्डमाला गुदभ्रंश, कुष्ठ, कृमिव्रणशामक, रूक्ष कास-श्वास रक्तपित्त, दाहशामक है।

प्रयोग—गण्डमाला की शोथ तथा अपची में कांचनार तथा सोंठ को पीसकर लेप लगाया जाता है। मुख-पाक में छाल का काढ़ा पिलाना चाहिए। सूखी फलियों का चूर्ण रक्तार्श, रक्तातिसार तथा प्रवाहिकाशामक है। बब्बूल की फलियाँ अनार (दाड़िम) के फल तथा कांचनार की छाल का काढ़ा पिलाना चाहिए। सूखी फलियों का चूर्ण रक्तार्श, रक्तातिसार तथा प्रवाहिकाशामक है। बब्बूल की फलियाँ, अनार (दाड़िम) के फूल तथा कांचनार की छाल का काढ़ा मुखपाक, लालास्राव (लार बहना) शामक है। रुधिर विकारों, फोड़े-फुंसी, कुष्ठ आदि में कांचनार छाल के क्वाथ में सोंठ तथा वावची तैल १५-२० बूंदे मिलाकर पीने से अत्यन्त लाभ होता है। गण्डमाला तथा अपची में बाह्य और अन्तः प्रयोग से अतिशय लाभ होता है।

सफेद कांचनार की जड़ की छाल का काढ़ा यकृत् शोथनाशक है। फल मूत्रजनक है। बीजों को सिरके में पीसकर लेप करने से घाव के कीड़े मरते हैं। पुष्प मृदु रेचक है। फला खण्ड बनाकर गुलकन्द के समान उनका प्रयोग कर सकते हैं। किन्तु कलियाँ शीतल ग्राही हैं। रक्तप्रदरादि में शाक के रूप में उनका प्रयोग हो सकता है।

---

1. Bauhimia Variegata Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

योग—कांचनारगुग्गुलु: ४ रत्ती से १ माशा तक गण्डमाला-अपची में।

वक्तव्य—कांचनार की अनेक जातियाँ हैं। कांचनार स्वयं भी रक्त और श्वेतपुष्प भेद से दो प्रकार का है। जैसा कि आचार्य कैय्यदेव ने कहा है "रक्तपुष्पो परः श्वेत" प्रायः रक्त पुष्प वाले को कांचनार-शोण पुष्प-भाव मिश्र) सफेद पुष्प वाले को 'कोविदार' तथा लता को 'कार्बुदार' समझना चाहिए। एक अन्य लघुपत्रों वाला अश्मान्तक[3]। (म०) आपटा, सोना (गु०) आसोंदरा (बं०) बनराज भी कहा जाता है। यह यकृत् शोथ, गुल्म कृमिनाशक तथा वातानुलोमक है। अन्तर्छाल के काढ़े से कुल्ले करने से मुख शोथ, पीने से यकृत् शोथ, अतिसार शान्त होता है। ज्वरों के सिरदर्द में कोंपलों को पीसकर लेप करने से वह शान्त होता है। व्रणों पर पत्र या छाल पीसकर लगाई जाती है। इन सबकी पहचान 'युगमपत्रता' से होती है। ये ताम्र होते हैं। बीच में से कटे हुए मानों नोक काटकर अन्दर से दो पत्रों को जोड़ दिया गया है। गण्डमाला में विशेष लाभ करते हैं। प्रायः लाल कांचनार का ही प्रयोग किया जाता है।

खदिर (गायत्री, कुष्ठघ्नः, कदरः रक्तसारः)

परिचय—सुपरिचित मध्यम प्रमाण का वृक्ष
उ० स्थ०—प्रायः सर्वत्र भारत भर में
व्य० अं०—त्वचा, सार
पुष्पकाल—सितम्बर-अक्तूबर
रस—तिक्त, कषाय
वीर्य—शीत
विपाक—कटु
दोष—कफपित्तहर
प्र० अं०—अन्त्र, मुख, धातु रक्त
वि० गु० क०—ग्राही, संकोचक, रक्तस्तम्भक तथा शोधक
मात्रा—सार-कत्था ४-८ रत्ती

नाम—(वृक्ष) (हि० पं० मा० म०) खैर (गु०) खैर (बं०) खयेर (क०) कग्गालिमर (तैं०) काष्केट्टि (ता०) वोडलै (अं०) कैटेच्यु[1] (वा० ले०) एकेशिया[2] कटेच्यु बब्बूलादि वर्ग[3]।

गुण—खदिरः शीतलस्तिक्तः कषायः कफपित्तहा। दन्त्यो हन्ति क्रमिश्वित्र कुष्ठकण्डु व्रणज्वरान्।
शोपौममेहभेदोऽस्रकासारोचक पाण्डुताः॥ (कै०)

खैर तिक्त, कषाय, शीतल, कटु विपाकी, कफपित्तहर, दन्त्य, कृमि-श्वित्र (सफेद कोढ़) कुष्ठ खाजव्रण ज्वर, शोथ, आमदोष, प्रमेह, मेद, कास, अरुचि, पाण्डु तथा रक्तपित्त नष्ट करता है।

प्रयोग—खदिर सत्व में कत्था (म०) कात (गु०) काथो (मल) कात्तु कषाय रस (कषायाम्ल) प्रधान है और यह अति संकोचक तथा शोधक है। अतः कत्था तथा छाल दोनों ही दन्तशूल, गलशोथ, शीतादि (मसूढ़ों से खून बहना) में, गण्डूष, कवल (कुल्ला करना) प्रतिसारण (लेप लगाना) या गोली बनाकर चूसने से लाभ करता है। मुखव्रण तथा पारदजन्य मुखपाक में भी उत्तम है। श्वेत प्रदर तथा योनि शैथिल्य में कत्था, फिटकिरी या काजूफल मिलाकर योनि प्रक्षालन या पिचु धारण किया जाता है। व्रणरोपक तथा रक्त स्तम्भक होने के कारण व्रणों

---

1. Catechu.
2. Acacia Catechu wild.
3. Mimosaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पर छिड़कते हैं। उपदंश के व्रणों पर रसकर्पूर में मिलाकर छिड़का जाता है। त्वचा रोगों तथा कुष्ठ रोगों में इसका क्वाथ-स्नान, पान तथा खाने के काम आता है। कुष्ठ के लिए यह अति उत्तम औषध है। जैसा सुश्रुत ने कहा है—

दिदृक्षुरन्तं कुष्ठस्य खदिरं कुष्ठपीड़ितः। सर्वथैव प्रयुञ्जीत स्नानपानाशनादिषु ॥ (चि०)

दन्त मंजनों में डाला जाता है। संकोचक, ग्राही, रूक्ष शोधक होने के कारण गलशुण्डिका (कागल, टकना) तथा तज्जन्य खाँसी मुख में धारण करने से दूर हो जाती है।

अतिसार या ज्वरातिसार में ४ माशा कत्था लाभ करता है। कत्था, जायफल, कपूर, सुपारी को पीसकर गोली बनाकर चूसने से मुखपाक शान्त होता है। खाज, उपदंश, अग्निदग्ध, शोथ पर कत्थे का लेप लगाया जाता है। बार-बार भरकर फूटने वाले व्रण में कत्था तथा मोर थोथा मिलाकर लेप लगाएँ। गुदा बाहर निकलने पर (कांच) कत्था तथा अफीम का लेप लगाते हैं। इससे मस्से तथा रक्तस्राव भी नष्ट होता है। कत्था और बोल समभाग मिलाकर १ माशा की मात्रा में सेवन करने से दुग्ध बढ़ता है। बढ़ी हुई कामवासना को शान्त करने के लिए ५ से १० रत्ती तक पानी में घोल कर पिलाना चाहिए। व्रण में से रक्तस्राव, पूय बहना, गर्मी की फोड़े-फुन्सी में कत्था व्रणों पर छिड़कते (अवचूर्णन) तथा अन्दर से खाने को देते हैं। इससे रक्तवाहियों का संकोच होता है तथा रक्त शुद्ध होकर पूय (पीप) बनना बन्द होता है। श्वित्र में खदिर छाल, आमला, वाबची का क्वाथ पिलाने से, जिह्वा के फट जाने पर कत्था चूसने से, शुष्ककास में हल्दी, खदिरसत्व तथा मिश्री मिलाकर मधु से चाटने से; अतिसार में कत्था, वेलफल; मुखपाक में कत्था तथा कलमी शोरा समभाग छिड़कने से या त्रिफला क्वाथ कत्था का कुल्ला करने से लाभ होता है। गर्भाशय की शिथिलताजन्य रक्तप्रदर-श्वेतप्रदरशामक; पाण्डुयुक्त ज्वरों में भी यह लाभ करता है। इसके अधिक सेवन करने से काम शिथिलता तथा अश्मरी की सम्भावना रहती है। अतः अम्बर या कस्तूरी के साथ खाना चाहिए। प्रतिनिधि गेरू-माजू।

वक्तव्य—खदिरसार-वंशलोचन के समान खैर की लकड़ी के मध्य में जमा होता है। इसका रंग फीका ऊदी होता है। यह स्वाभाविक खदिरसार है। कत्था बनाया हुआ खदिरसार है अथवा उसके मध्य काष्ठ की रस क्रिया है। यह तीन रंगों का (१) श्वेत (सफेद) इसे पापड़िया, मगूरी या पखरा कत्था कहते हैं। यही औषधियों में प्रयोग करना चाहिए। (२) लाल खाने के काम आता है। (३) काला अत्यन्त कड़वा है। त्याज्य है।

योग—(१) खदिराष्टि-कुष्ठ, त्वचा रोगनाशक।
(२) खदिरादि वटी-मुखशोथ, दन्तशूल, गले की शोथ, शुष्ककास में चूसना।
(३) खदिरादि तैल-अभ्यंगार्थ।

श्वेतचन्दन (मलयजं) भद्राश्रमम्-हिमम्

परिचय—शीश सम पत्रों वाला, ४० फुट ऊँचा वृक्ष
उ० स्थ०—मैसूरादि दक्षिणी भारत
व्य० अं०—काष्ठ तैल
पुष्पकाल—नवम्बर
रस—तिक्त
वीर्य—शीत
विपाक—कटु
दोष—वात-कफशामक
प्र० अं०—मूत्रसंस्थान, त्वचा, धातु, रक्त

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वि० गु० क०—शीतल, ताप-दाहहर, हृद्य, मूत्रल, रक्तशोधक, कृमिहर

मात्रा—चूर्णं ४-६ माशा, तैल ५-१५ बूंद

नाम—(हि० मा० प०) सफेद चन्दन (म०) चन्दन (गु०) सुखड़ (क०) गन्धदमर (तै०) चन्दनमु (ता०) शन्दनम् (अं०) व्हाईट सेण्डलवुड[1], (वा० ले०) सण्टेलम् एल्बम्[2], वर्ग चन्दनादि[3]।

गुण—स तिक्तं चन्दनं सर्वं रूक्ष स्वादु हिमंगुरु। तृष्णादाहासपित्तघ्नं कलं शोषविपापहम् ॥

भद्राश्रयं हिमंतिक्तं हृद्यमाल्हादनं लघु। वर्ण्य बलासपित्तघ्नं दाह तृष्णा विषप्रणुत् ॥ (कै०)

चन्दन कडवा, रूक्ष-शीतल, लघु, कुछ मधुर। दाह, तृष्णा, रक्तपित्त, थकावट, (श्रम) शोथ, विष, कफपित्त-शामक, वर्ण्य तथा आल्हादक है। चन्दन तैल मूत्रल, कृमि तथा पूयनाशक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—चन्दन का तैल मूत्रमार्ग द्वारा बाहर निकलता है। निकलते समय यह वृक्कों को उत्तेजित करके मूत्र की मात्रा बढ़ाता है तथा मूत्रमार्ग को शुद्ध भी करता है। अतएव नये-पुराने पूयमेह (सुजाक) में १५-२० बूंद की मात्रा में दिन में ३ बार दिया जाता है। कम-से-कम १५ दिन तक सेवन करना चाहिए। अन्य त्वचा रोगों में उत्तम है। कान्ति बढ़ाने के लिए ताप तथा दाह को कम करने के लिए; मुंह पर के मुंहासे, छोटी-छोटी फुंसियाँ तथा कण्डु नाश के लिए लेप लगाया जाता है। शिरःशूल में चन्दन में कर्पूर घिसकर लगाते हैं। शोथ में भी यही गाढ़ा लेप लगाने से लाभ करता है। अतएव दंशांग लेप में डालते हैं। यह हृदय का संरक्षण करता है। उसकी शक्ति को घटाए बिना यह उसकी गति कम करता है। ज्वरों में तथा पैत्तिक रोगों में उत्तम है।

अन्तः प्रयोग में यह हृदय, मस्तिष्क तथा आमाशय को शक्ति देता है। यकृत् का कार्य सुधारता है। रक्त-शोधक, रक्तातिसार, पित्तातिसार, वमन, हृदय-दौर्बल्य, मूत्रकृच्छ्र दाहनाशक है। इसका शर्बत या मुरब्बा बनाकर प्रयोग करते हैं। वमन में १ तोला चन्दन चूर्ण को आँवलों के रस तथा मधु में मिलाकर पिलाते हैं। मुरब्बा हृदय के लिए अति उत्तम है। चन्दन के छोटे-छोटे टुकड़ों को सज्जीखार में से निकाल चासनी में डालकर मुरब्बा बना लें। तृषा में चन्दन चूर्ण नारियल के जल में मिलाकर पिलावें। चन्दन-मोती, प्रवालपिष्टी तीनों मिलाकर सेवन करने से अत्यन्त हृद्य हैं। अधिक सेवन से कामावसादक है।

योग—(१) चन्दनासव-रक्तशोधक, मूत्रकृच्छ्रहर

(२) चन्दनादिवटी-पूयमेहनाशक

(३) रसादिवटी-ज्वरकासहर

वक्तव्य—चन्दन के अनेक प्रकार शास्त्रों में वर्णित हैं—यथा, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन पीतचन्दन, (कालीयर्क) कैरात, बर्बर, तथा हरिचन्दन। उक्त चन्दनों में कैरात बर्बर-शबर-सफेद चन्दन की ही निकृष्ट जातियाँ हैं। हरिचन्दन को कृत्रिम पीतचन्दन समझें। इसके विषय में "हरिचन्दनं तु दिव्यं तिक्तहियं तदिहदुर्लभं मनुजैः (रा० नि०) कहा गया है। भावमिश्र ने पतंग चन्दन भी उल्लेख किया है 'पतंगं रक्तरूपं च सुरंगं रंजनं तथा। पट्टरंजकमाख्यातं पत्तूरं च कुचन्दनम्" यह बकम काष्ठ के नाम से बाजार में मिलता है तथा रक्त चन्दन का अधम भेद है। रक्त चन्दन सुगन्धित होना चाहिए अतएव 'आरक्तमुत्तमम्' कहा गया है।

उत्तम चन्दन के लक्षण—स्वादनेतिक्तशीतंचघर्षणे पीतमेवच। छेदने रक्तवर्णं च श्रेष्ठं चन्दनमुच्यते।

तत्रापि-चोत्तमं विद्यात् ग्रन्थिकोटर संयुक्तम् ॥ (कै०)

---

1. White Sandal wood.
2. Santalum Album Linn.
3. Santalaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वाद में कड़वा, काटने पर कुछ लालवर्ण का चन्दन तथा ग्रन्थि कोटर युक्त चन्दन उत्तम होता है। उत्तम चन्दन जितना अधिक घिसा जाए, उतना ही सुगन्धि देता है।

देश तथा वर्ण से चन्दन भेद—चन्दनं त्रिविधं विद्याद्रक्तं पीतं च पाण्डुरम्।
आरक्तमुत्तमंचैव मध्यमं पीतकं तथा। पाण्डुरं त्वधमं प्रोक्तं गन्धयुक्तिविशारदैः॥
श्रेष्ठं मलयसम्भूतं यवनेषुचमध्यमम्। बर्बरेष्वधमं प्रोक्तं पांचालयवनादिषु॥ (कै०)

सब चन्दनों के गुण समान हैं। अन्तः प्रयोग में सफेद चन्दन, बाह्य में रक्त चन्दन का अधिक उपयोग किया जाता है। चन्दन प्रायः दक्षिणी भारत में ही मिलते हैं।

रक्तचन्दन (रक्तसारं, नाभ्रद्रुः)

नाम—(हि० पं० मा०) लालचन्दन (बं० म० क०) रक्तचन्दन (गु०) रत्ताञ्जलि (अं०) रेड सन्डल् वुड[1] (वा० ले०) टिरोकार्पस्[2] सेन्टलिनस, शिम्बी या अपराजिता वर्ग।

गुण—रक्त सारं गुरु स्वादु चक्षुष्यं शुक्रलंहिमम्। किंचित्तिक्तं ज्वरच्छर्दि तृष्णापित्तास्रनाशनम्॥ (कै०)

लाल चन्दन भी सफेद चन्दन के समान गुणकारी है। किन्तु उसकी अपेक्षा अधिक शीतल, ग्राही, रक्तशोधक है। त्वचा रोगों, रक्तविकारों में लेप लगाया जाता है। त्वचा तेलों में प्रयुक्त होता है। पित्तविकार, रक्तातिसार, प्रवाहिका, रक्तप्रदरशामक है। सैन्धव नमक के साथ स्त्री दुग्ध में लालचन्दन घिसकर नस्य लेने से हिक्का बन्द होती है। नकसीर में कर्पूर के साथ घोटकर सात दिन पिलाते हैं।

निम्बः (अरिष्टः-सर्वतोभद्र-पिचुमर्दः)

परिचय—सुपरिचित वृक्ष। प्रायः सर्वत्र उपलब्ध
पुष्पकाल—फाल्गुन से बैशाख तक
व्य० अं०—पंचांग तथा तैल उपयोगी
रस—तिक्त (कड़वा)
वीर्य—शीत
विपाक—कटु
प्र० अं०—त्वचा, रक्त, धातु
वि० गु० क०—कृमिघ्न, रक्तशोधक, त्वचारोगहर, अग्निदीपक
मात्रा—तैल ५-१० बूंद, पत्र-कल्क-१-२ माशा, स्वरस १-२ तोला

नाम—(हि० पं० बं० मा०) नीम-निम (म०) कडुनिम्ब (गु०) लींबडो (क०) बेविनमर, कहिबेवु (तै०) वेप्पा (ता०) वेम्बु (अं०) मार्गोसा ट्री[3], इन्डियन लिलैक[4] (वा० ले०) मेलिआ एजाडिरेक्टा[5], एजाडिरेक्टा इण्डिका,[6] निम्ब वर्ग[7]।

---

1. Red sandal wood.
2. Pterocarpus Santalinus, Linn.
3. Margosa Tree.
4. Indian Lilac.
5. Melia Azadirachta, Linn.
6. Azadiracta Indica.
7. Meliaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण—निम्बः शीतो लघुर्ग्राही कटुपाकोऽग्निवातकृत् । ग्राही हृद्यो जयेत् पित्तकफमेहज्वर कृमीन् ॥
कुष्ठ कासारुचिहृल्लास श्वयथु व्रणान् ॥ (कै०)
निम्ब पत्रं स्मृतं नेत्र्यं कृमिपित्तविषप्रणुत् । वातलं कटुपाकं च सर्वारोधक कुष्ठनुत् ॥
नैम्बं फलं रसे तिक्तं पाके तु कटु भेदनम् । स्निग्ध लघूष्णं कुष्ठघ्नं कृमिमेहनुत् ॥ (भाव०)

नीम कड़वा-शीतल, कटुविपाकी, लघु ग्राही तथा अग्निवर्धक, पित्तकफ, प्रमेह, ज्वर, कृमि, कुष्ठ-अरुचि शोथ व्रण तथा हृल्लासशामक है । पत्र नेत्रय कृमिपित्त-विष-कुष्ठशामक, फल भी उक्त गुणों वाला तथा उष्ण भेदन है ।

प्रभाव तथा प्रयोग—बाह्य प्रयोग से व्रणों का शोधक है, व्रण रोपण में सहायता करता है । दुर्गन्धि, कृमि तथा पीप का नाश होता है । पत्तों की पुल्टिस—उपनाह दुष्टव्रणों पर लगाई जाती है । त्वचा रोगों में पत्र का काढ़ा कृमिनाशन के लिए प्रयुक्त होता है । पामा-विर्चाचिका में पत्तो को पीसकर लेप करने से लाभ होता है ।

बीज तैल भी स्थानीय उत्तेजक है, कृमिनाशक तथा शोधक है । कुष्ठ में तुवरक तैल के साथ मिलाकर सेवन कराया जाता है । कुष्ठव्रणों तथा उपदंश फिरंग के व्रणों से लाभ करता है ।

निम्बादि तैल त्वचा रोग नाशक तथा भगन्दरादि का रोपक है । निम्बपत्र-दारुहल्दी, मुलैठी तीनों को घी तथा मधु में मिलाकर लगाने से व्रण शीघ्र भरता है । योनि कण्डु में निम्ब तैल २½ तोला, मोम ३ तोला, घी ३ तोला, राल २ तोला, टंकण-कत्था स्वर्णगौरिक ½-१½ तोला, सिन्दुर १ तोला सब मिलाकर मलहर बनाकर प्रयोग करें । बीज तैल सिर के जुओं को मारता है । त्वचा रोगों में इसका मर्दन, निम्ब की दातुन दन्त्य तथा मुखशोधक है । निम्ब पत्रों को घी में जलाकर उसमें समभाग मोम मिलालें यह विपादिका बिवाईनाशक है । आमवात की शोथ में पत्रों की पुल्टिस लगाते हैं । शोथ तथा वेदना बन्द होती है ।

अन्तः प्रयोग में यह अग्निदीपक, तिक्तरसायन ग्राही तथा विषमज्वर नाशक नीम की ऊपर की त्वक् ही ग्राही है, अन्तर्छाल नहीं । विषमज्वर में (मलेरिया) छाल का क्वाथ (१ माशा) की मात्रा में लाभ करता है । मूलत्वचा कृमिघ्न है ।

दाह तथा उल्टी आदि होने पर जीर्णज्वरों में निम्ब-गिलोय पटोल, छोटी कटेरी, इन्द्रजौ का काढ़ा लाभ करता है । यह यकृत्, प्लीहा रोगशामक भी है । रक्तपित्त, शीतपित्त, कामला, उदरकृमियों में निम्बपत्र रस तथा मधु के प्रयोग से लाभ करता है । रक्तस्राव-रक्तप्रदर में निम्बत्वक् का रस जीरा डालकर ७ दिन पीना चाहिए ।

जीर्णज्वर-यकृत्-शोथ-पाण्डु कामला, ज्वरों में तृषा-दाह-वमन-हृल्लास के लिए निम्न योग उत्तम है । नीम की अन्तर्छाल १⅛ तोला, काली कटुकी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, वन्ध्याकार्कोटी मूल, सोंठ-लालचन्दन सब ⅛ तोला काढ़ा बना मधु के साथ देवें ।

अतिसार में नीम ५ तोले छाल को २½ पाव जल में उबालकर १ पाव शेष रहने पर दूसरी बार फिर उसी छाल का काढ़ा कर दोनों काढ़ों को मिलाकर ५-५ तोले की मात्रा में तीन बार मिलावें । गहरी शीतला निकलने पर निम्ब तैल को सारे शरीर पर चुपड़ दें । अतिलाभ होता है । निम्ब का रस जो पुराने वृक्षों में से निकलता है, अति उत्तम रक्तशोधक तथा कुष्ठनाशक है । निम्ब पत्र भस्म को निम्बु के रस में पीसकर अंजन करने से नेत्र की खुजली तथा जलन मिटती है । मासिक धर्म खोलने के लिए ४ माशा छाल का काढ़ा पिलाना चाहिए । निम्बपत्र २१, कालीमिर्च २१ पीसकर पर्याप्त समय तक सेवन करने से विषमज्वर, जीर्णज्वर तथा शीतपित्त और त्वचा रोग नष्ट होते हैं ।

दद्रु में पत्तों को दही में पीसकर, पद्मनी कंटक रोग में निम्ब सिद्धघृत का सेवन, पलितवल्ली रोग में मींगी को भांगरे की ७ भावना देकर उनका तैल निकालकर सेवन करें, दूध तथा चावलों का पथ्य करें । पुष्प भी अत्यन्त रक्तप्रसादक है । सर्पविष में रोगी के जिह्वा जड़ता के कारण नीम का कड़वापन नहीं ज्ञात होता । इससे वमन होती

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

है। तैल का उपयोग पुरानी खाँसी (क्षयादि) में कफ की दुर्गन्धि तथा उसकी उत्पत्ति कम करने के लिए भी दिया जाता है।

संक्षेप में नीम का प्रत्येक अंग उपयोगी है। यह अत्यन्त रक्तशोधक, व्रणशोधक, त्वचारोग, कुष्ठ, अर्श, ग्रन्थि-शोथ, जीर्णज्वर, विषमज्वर शामक है। अनेक दुःसाध्य रोगशामक है।

योग—(१) पंचगुण तैल—व्रण शोधक, रोपक।
(२) पंचनिम्बचूर्ण—मात्रा ३ माशा, ज्वरशामक।
(३) निम्बपत्र तैल—त्वचारोगहर (अभ्यंगार्थ)
(४) पंचतिक्तघृतगुग्गुलु–त्वचारोग, कुष्ठरोग तथा रक्तविकार, गण्डमालादिशामक। मात्रा ४-८ रत्ती तक
(५) निम्बतैल—कुष्ठ, त्वचारोगहर-५-१५ बूंद।
(६) अर्शोघ्नीवटी—४-८ रत्ती

महानिम्ब (द्रेकों-विषमुष्टिक-कोशमुष्टि)

नाम—(हि० मा०) बकायन (पं०) ध्रेक (म०) बकाणनिंबु (गु०) बकान्य (बं०) घोडानिम (क०) हेब्बेवु (ता०) मलैवेम्बु (अं०) पर्शियन लिलेक[1] (वा० ले०) मेलिया अजाडिरेक्[2] निम्बवर्ग।

गुण—महानिम्बो हिमोरूक्षो ग्राही तिक्तः कषायकः। निहन्ति कफ पित्ताग्र कुष्ठ कोठ वमी क्रिमीन्॥ (कै०)

बकायन का भी पंचांग उपयोगी है। फाल्गुन से वैशाख तक पुष्प निकलते हैं। यह विषैला है। ८-१९ बीज खाने से मृत्यु हो सकती है। प्रयोग वहुत कुछ नीम के समान है। यह ईरान पंजाबादि प्रदेशों में उत्पन्न होता है। विशेषकर रक्तशोधक, वेदना स्थापन, अर्शनाशक, कृमिघ्न, व्रणशोधक, जीर्ण तथा विषमज्वरशामक है।

प्रयोग—पत्ररस यवक्षार या मिश्री के साथ पिलाने से मूत्रल है। गण्डमाला में क्वाथ पान तथा लेप कराया जाता है। फल-उदरकृमि (ग्रन्थकृमि-चपटा) कीड़ा तथा अर्श में अति लाभ करते हैं।

स्नायुक रोग में एक बीज से प्रारम्भ कर प्रतिदिन एक बढ़ाते हुए ७ बीज तक सेवन करने से वह गल जाता है। गृध्रसी में छाल या काष्ठ को चन्दन की तरह घिस कर खाने से लाभ करता है। बकायनपत्र, नीमपत्र, श्लेष्मातकपत्र, लोध्र, नीम का गोंद, अजवायन, पारसी पीपल, प्रत्येक ६-६ माशा, सुवर्णमाक्षिकभस्म ३ माशा, प्रवाल भस्म ३ माशा, मेंहदी के रस में भावना दें ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना प्रातः सायं देने से कुष्ठ, प्रमेह, विषूचिका, अर्श, श्वास, गले के रोग मिट जाते हैं।

द्वीपान्तरवचा (चोपचीनी-अमृतोपहिता)

परिचय—इसके कन्द चीन तथा जापान से यहाँ आते हैं।

व्य० अं०—कन्द
रस—तिक्त
वीर्य—उष्ण
विपाक—मधुर
दोष—वातकफनाशक
वि० गु० क०—रक्तशोधक, वातहर, पौष्टिक, आर्तवजनक
मात्रा—३-६ माशा तक

---

1. Persian Lilac.
2. Melia Azadirach, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नाम—सर्वभाषा-चोबचीनी, चोपचीनी, तोपचीनी (अं०) चाइनारूट[1], (वा० ले०) स्माईलेक्स चाइना[2], रसोन या पलाण्डु वर्ग।

गुण—द्वीपान्तरवचा किंचित्तिक्तोष्णा वन्हिदीप्तिकृत्। विबन्धाध्मानशूलघ्नी शकृन्मूत्रविशोधिनी ॥
वातव्याधीनपस्मारमुन्मादं तनुवेदनाम्। व्यपोहति विशेषेण फिरंगामयनाशिनी ॥ (भाव०)

चोपचीनी कुछ कड़वी, उष्ण, अग्निवर्धक, विबन्ध (कब्जी) अफारा, उदरशूल, वातव्याधि, उन्माद, अपस्मार वेदनाओं तथा फिरंगरोग (आतशक-सिफलिस्) नाशक और मूत्रल है।

प्रयोग—रक्तशोधक, वेदनाशामक तथा उष्ण होने के कारण आमवात, फिरंगरोग, दूषितव्रण, कच्छु आदि में दी जाती है। त्वचा रसग्रन्थियों तथा सन्धिवात पर इसकी विशेष क्रिया होती है। स्वेदल, शोथशामक तथा ग्रन्थियों की उद्दीपन होने से वातकफ रोगों प्रतिश्याय, अग्निमान्द्य अर्श, अतिसार, विबन्ध, वातग्रन्थिशामक है तथा शरीर की दुर्बलता को दूर करती है। रसायन के रूप में सेवन करते समय हृदयोत्तेजक पदार्थों के साथ प्रयोग करते रहना चाहिए। क्योंकि यह हृदय को शिथिल करता है। गण्डमाला, फिरंग की द्वितीय-तृतीय दशा में ४ माशा चूर्ण शूंठी के साथ मिलाकर मधु से खिलाते हैं। गृध्रसी आदि व्याधियों में अश्वगन्धा के साथ मिलाकर सेवन करने से गुणकारी है। उष्ण प्रकृतिवालों के लिए उत्तम है। यह मांसवर्धक तथा क्षयरोगनाशक है। चोपचीनी को तैल में जलाकर उस तैल का मर्दन करने से आमवात शान्त होता है।

पर्पट-क्षेत्रपर्पटः (वरतिकः, यवकण्टकः)

परिचय—क्षुद्र, क्षुप, प्रायः यव के खेतों में उत्पन्न। फारसी को यवनपर्पट (शाहतरा) तथा भारतीय को क्षेत्रपर्पट (पित्त पापड़ा) कहा जाता है। दोनों का प्रयोग होता है।

रस—तिक्तरस
वीर्य—शीत
विपाक—कटु
दोष—पित्तकफशामक, वातवर्धक
प्र० अं०—रक्तशोधक, यकृत्शोधक
वि० गु० क०—मूत्रल, स्वेदल, ज्वरघ्न, कृमिघ्न
मात्रा—चूर्ण ½-१ तोला, क्वाथ ४-८ तोला

नाम—(हि० मा० पं० गु०) पित्तपापड़ा-शातरा (अं०) कामन फ्युमिटरी[3] (वा० ले०) फ्युमेरिया आफिसिनेलिस्[4], पर्पट वर्ग[5]। क्षेत्र पर्पट को पुष्पमेरिआ पार्वीफ्लोरा[6] कहते हैं। कुछ आचार्य महाराष्ट्र में उपलब्ध परिपाठ नामक वनस्पति (ओल्डेन्लेन्डिआ कोरिम्बोस)[7] को क्षेत्र पर्पट समझते हैं। वह अशुद्ध है। यह मंजिष्ठादि[8] वर्ग की औषधि है।

गुण—पर्पटः कटुकः पाके रसे तिक्तो हिमो लघुः। संग्राही वातलोहन्ति दाहपित्तकफज्वरान् ॥
पिपासारोचकच्छर्दि रक्तपित्तमदभ्रमात् ॥ (कै०)

---

1. China Root.
2. Smilax China, Linn.
3. Common Fumitory.
4. Fumaria officinalis, Linn.
5. Fumariaceae.
6. P. Parviflora, Lamk.
7. Oldenlandia Corymbose.
8. Rubiaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पित्तपापड़ा, कड़वा, शीतवीर्य, कटु विपाकी, संग्राही, वातवर्धक, पित्तकफज्वर, दाह, प्यास, अरुचि, वमन मद-भ्रम, रक्तपित्तशामक है।

यह तिक्त रसायन है। प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा स्वादांकुरों को उत्तेजित कर पाचक रसों का स्राव बढ़ाता है, जिससे भोजन में रुचि होती है तथा अग्नि-दीप्ति होती है। तिक्त होने से पित्तशामक, रक्तशोधक है, अतः ज्वरों में रक्त तथा त्वचा विकारों में लाभ करता है। अम्लपित्त में शर्करा के साथ देने से अति उपकारी है। वायविडंग के साथ उदरकृमि, ज्वर, कामलादि में गिलोय कटंकाटी के साथ तथा ज्वरातिसार या अन्त्रों की शिथिलताजन्य अतिसार आदि में लाभ करता है। मूत्रल, स्वेदल तथा रक्तशोधक होने से यकृत्, वृक्क, शोथादि में तथा गण्डमालादि में लाभ-दायक है।

पातालगरुड़ी (महामूलः छिलहिण्टः)

नाम—(हि०) छिरहटा, जलजमनी (म०) वासनवोल, (गु०) पाताल गरुड़ी (फा०) फरीदबूटी (क०) दागड़ीहंबु (तै०) ईश्वर तोगे (ता०) वात्तुकाडि (बं०) हेयर (वा० ले०) काक्युलस् विलोसम्[1] गुडूची वर्ग[2]।

व्य० अं०—पत्रमूल

मात्रा—चूर्ण १-२ माशा, स्वरस—२-४ तोला

विशेष गुण—रक्तशोधक, बल्य, वातपित्तहर, मृदुरेचक, मूत्रल

गुण—छिलहिण्डा परं वृष्यं कफघ्नः पवनापहाः। (भाव०)

वासनवेल कड़वी, उष्णवीर्य, मधुर विपाकी, तृप्तिकारक, मृदुरेचक है। मूल, अनन्तमूल के समान गुण क्रिया वाला, पत्र-दाहशामक, मूत्रल, शोथहर तथा दुग्धजनक है।

पत्र मूल में मिश्री मिलाकर खाने से मूत्रकृच्छ्र, मूत्रमार्ग की दाह नष्ट होती है। गठिया तथा पुरानी उपदंश की पीड़ा मिटाने के लिए ताजी जड़ के २½ छटांक काढ़े में, बकरी का ढाई छटांक दूध मिलाकर, उस पर कालीमिर्च का चूर्ण प्रातः काल पीना चाहिए। पित्तजन्य मन्दाग्नि में ६ माशा चूर्ण सोंठ तथा शर्करा मिलाकर दें। ज्वरों में अन्य कड़वी चीजें दवाओं के साथ मिलाकर देते हैं। गण्डमाला को जड़ को घिसकर लेप करना तथा पीना लाभ करता है। अनुभूत है। स्नायुक रोग में काढ़ा दिया जाता है।

निम्न योग—उपदंश फोड़े-फुंसी, जीर्णप्रमेह, पित्तज्वरादिनाशक है।

पातालगरुड़ीपत्र	हरीतकीफल	देवदार
चोपचीनी	नीम की अन्तर्छाल	मुलैठी
गोक्षुर	गिलोय	पुनर्नवा

सब समभाग को यव कूटकर काढ़ा पिलावें। मात्रा १-२ तोला

वक्तव्य—यह जड़ गहरी जमीन में गई होती है। पत्ररस जल में डालने से जम जाता है। अतः इसे जलतमनी या जमती की बेल कहा जाता है। गुजरात में इसे ही पाठा के स्थान पर व्यवहार करते हैं। हमारे विचार में यही ठीक है। पहली पाठा को पाठा का अवान्तर भेद ही समझना चाहिए।

मंजिष्ठा

परिचय—मंजीठ की आरोहिणी लता छोटे-छोटे पहाड़ों पर पाई जाती है।

पुष्पकाल—मई-जून

1. Coculus Vilosum.
2. Menispermaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

व्य० अं०—पंचांग उपयोगी

मात्रा—१-३ माशा

रस—कषाय, तिक्त, मधुर

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—कफपित्तशामक

प्र० अ०—गर्भाशय (रक्तधातु)

वि० गु० क०—रक्तशोधक, आर्तवजनक

नाम—(हि० पं० मा० गु०) मजीठ, (म०) मंजिष्ठ (ब०) मजिष्ठा (क०) मंजिष्ठे (तं०) ताम्रवल्ली (ता०) विवेल्ली (वा० ले०) रूबिआ कोर्डिफोलिया[1] (अं०) इण्डियन मेडर[2] मंजिष्ठ वर्ग[3]।

गुण—मंजिष्ठा तुवरा तिक्ता वीर्योष्णा मधुरा गुरुः। कर्णाक्षियोनिरोगघ्नी कफ शोफ विषापहा।
वीसर्प मेह कुष्ठार्शो व्रण रक्तातिसारजित्॥ (कै०)

मजीठ, कषाय, कड़वी-मधुर, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, गुरु, कर्ण-नेत्र-योनि रोग, कफ, शोथ, विषशामक, विसर्प, प्रमेह, कुष्ठः अर्श, व्रण तथा रक्तातिसारशामक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—यह यकृत् शोधक तथा गर्भाशय की संकोचक एवं स्रोतों की शोधक है। शरीर में उष्णता उत्पन्न करती है। मूत्र तथा आर्तवजनक है। बड़ी मात्रा में मज्जातन्तुओं पर प्रभाव होता है। नशा-सा चढ़ता है। लेखन होने से दाह-झांई-किलास आदि में दूध में पीसकर पिलाते हैं। रक्तशोधक एवं त्वग्रोगनाशक है।

मूत्रपात तथा मासिक धर्म की रुकावट में मूत्र तथा रजः स्रावार्थ, प्रसव के पश्चात् दुष्ट रक्त को निकालने के लिए क्वाथ के रूप में या १ तोला चूर्ण के रूप में, पित्त शोथ, सरदी या पीनस की सिरदर्द में मस्तक पर लेप, अस्थिभग्न में मंजीठ तथा महुआ को खटाई में पीसकर लेप लगाते हैं। इसके सेवन से मूत्र तथा दूध का रंग लाल हो जाता है। मूत्राशय के रोगों में मंजीठ को गोंद कतीरा के साथ देना चाहिए। यकृत्प्लीहावृद्धि में शिकंजी के साथ प्रयोग करें।

योग—(१) मंजिष्ठादि क्वाथ
(२) बृहन्मंजिष्ठादि क्वाथ
(३) मंजिष्ठादिचूर्ण-मृदुरेचक-रक्तशोधक

मुण्डीद्वयम् (श्रावणी-महाश्रावणी)

परिचय—मुण्डी का क्षुप पृथ्वी पर फैला हुआ मिलता है। लघु तथा बृहत् भद से दो प्रकार की है।

उ० स्था०—खेतों में सर्वत्र पाया जाता है। फल कदम्ब के फूल के समान, किन्तु उससे छोटा।

रस—कटु, तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—वातकफनाशक, रक्तशोधक

प्र० अं०—रक्त संस्थान

1. Rubia Cordifolia, Linn.
2. Indian madar.
3. Rubiaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वि० गु० क०––मूत्रल, रसायन, कृमिघ्न,

मात्रा––पंचांग १-३ माशा, अर्क २-४ तोला

नाम—(सर्वभाषा) गोरखमुण्डी (क०) बोलदरग (तै०) बोलसरम् (त०) कोट्ट करण्डै (अं०) ग्लोब-थिस्टल्[1] (वा० ले०) स्फिरेन्थस्[2] हर्टस् या स्फिरेन्थस इण्डिकस्[3], सूर्यमुखी वर्ग।

गुण—मुण्डीतिक्ता कटुः पाके वीर्योष्णामधुरालघुः। मेध्या गण्डापची कुष्ठ कृमियोन्यार्त्ति पाण्डुनुत्।
श्लीपदारुच्य पस्मार प्लीहामेदो गुदार्त्तिहृत्। (भाव)

दोनों मुण्डियाँ मधुर, तिक्त-कटु रसवाली, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, लघु-मेघ्या, गण्डमाला-अपची, कुष्ठ, उदर-कृमि, योनिशूल पाण्डु, अरुचि, अपस्मार, प्लीहावृद्धि अर्शश्लीपदशामक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—इनमें कालापन लिए लाल रंग का तैल तथा कड़वा सत्व मिलता है। मुण्डी दीपन, मूत्रल तथा अनुलोमक है। अत्युत्तम रक्त शोधक व्रण शोधक रोपक है। क्वाथ-फाण्ट, चूर्ण तथा अर्क के रूप में इसका प्रयोग होता है। बाहर निकलते समय त्वचा तथा वृक्कों और मूत्रमार्ग पर शोधक प्रभाव करती है। अतः पूयमेह (सूजाक) तथा पौरुष ग्रन्थि वृद्धि में लाभ होता है। मूत्र बार-बार आना बन्द होता है। त्वचा रोगों तथा ग्रन्थि शोथ में इससे लाभ होता है। नपुंसकता में मुण्डी साधित तैल की 10-30 बूंद पान पर लगाकर दिन में दो तीन बार खाने से तथा इन्द्रिय पर मलने से लाभ होता है। गण्डमाला में 4 तोले रस या काढ़ा पीने से तथा लगाने से लाभ होता है। वातरक्त में मुण्डी तथा कुटकी चूर्ण को मधु घृत के साथ, श्वित्र में १ भाग मुण्डी, १/२ भाग समुद्र सोख, १-३ माशे की मात्रा में सेवन कराएँ।

सारिवाद्वयम् (श्वेता-कृष्णा च)

परिचय—सारिवा की लताएँ होती है। सारिवा में से दूध भी निकलता है। जलाढ्य स्थानों में, बंग में अधिक होती है।

व्य० अं०––पंचांग-मूल

पुष्पकाल––श्वेतसारिवा, नवम्बर-दिसम्बर

रस—तिक्त मधुर

वीर्य––शीत

विपाक—मधुर

दोष—त्रिदोषशामक

प्र० अं०—रक्त धातु, मूत्र संस्थान

वि० गु० क०––रक्तशोधक, रसायन मूत्रल, स्वेदल

नाम–(i) सफेद सारिवा (सं०) उत्पल सारिवा, श्वेता-अनन्ता (हि० बं०) अनन्तमूल (म०गु०) उपलसरी, कागडियो कुंडोर, कपूरी मधुरी (अं०) इण्डियन सार्सापरिला[4] (वा० ले०) हेमिडेस्मस्[5] इन्डिकस्, अर्क वर्ग[6]।

(ii) कृष्ण सारिवा (सं०) कालांनुसारिवा, कृष्णवल्ली (हि०) कालीसर-दूधीलता (बं०) श्यामालता, मुम्बई-कृष्ण सारिवा (अं०) ब्लेकक्रीपर[7] (वा० ले०) इक्नोकार्पस्[8] फ्रूटिसन्स्, कुटजवर्ग[9]।

1. Globe thistle.
2. Sphaeranthus Hirtus.
3. Sphaeranthus Indicus Linn.
4. Indian Sarsaparilla.
5. Hemidesmus, Indicus, R Br.
6. Asclepiadaceae.
7. Black Creeper.
8. Ichnocarpus Frute seans, Br.
9. Apocynaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण—सारिवायुगलं स्वादु स्निग्धं शुक्रकरं गुरु । अग्निमान्द्यरुचि श्वासकासामविषनाशनम् ।
दोषत्रयाग्र प्रदर ज्वरातीसार नाशनम् । (भाव)

दोनों सारिवाएँ मधुर तिक्त (कैं०) शीतवीर्य-ग्राही, त्रिदोषशामक, स्निग्ध, गुरु, वृष्य, अग्निमान्द्य, अरुचि, श्वास कास-आमदोष रक्त प्रदर, रक्तदोष तथा ज्वरातिसारशामक है।

दोनों सारिवाएँ तिक्त होने के कारण उत्तम रक्तशोधक तथा अग्नि दीपन हैं। स्रोतों के स्रावों की शोधक, विशदताकारक होने से शरीर की सब ग्रंथियों का स्राव उत्तम कोटिका होता है। जिससे सब धातुएँ, शुक्र सहित पुष्ट होती हैं। शीत वीर्य तथा मधुर विपाकी होने से शरीर की उष्णता को शान्त कर मूत्र का प्रमाण बढ़ातो है। त्वचा द्वारा पसीना लाकर ज्वरों को उतारती है। उपदंश, फोड़े फुंसी आदि रक्तदूषक रोगों में—अग्निमान्द्य अतिसार, आम-वात, जीर्ण रोगों से उत्पन्न निर्बलता नाशक है। गण्डमाला में वायविडंग के साथ, रक्त-शोधन में गिलोय के साथ सेवन करें। उपदंश या सूजाक से होने वाले गर्भपात में या बच्चा पैदा होते ही मर जाने की अवस्था में गर्भ स्थिति के दिन से ही प्रसव पर्यन्त सारिवा का सेवन कराएँ। कृष्ण सारिवा की अपेक्षा अनन्तमूल उत्तम है। किन्तु इसकी ताजी जड़ का प्रयोग उत्तम है। एक उड़नशील तैल के कारण यह सुगन्धित रहती है। इसका चूर्ण हिम या फाण्ट का प्रयोग करना उत्तम है। क्वाथ करने से यह तैल उड़ जाता है। यदि योग में केवल सारिवा लिखा हो तो अनन्तमूल और सारिवा-द्वयम् लिखा होने पर दोनों सारिवाएँ डालें।

योग—सारिवाद्यासव-सारिवाद्यरिष्ट

वक्तव्य—डाक्टरी में सार्सापरिला का प्रयोग रक्त शोधनार्थ किया जाता है। उसके स्थान पर आयुर्वेद में सारिवा है। (बं०) कुमारीलता (म०) घोटवेल (हि०) राम दातून,[1] जंगली उशवा, पलाण्डु[2] वर्ग की औषधि भारत में पाई जाती है। यह कंटकित लता है। गुणों में सारिवा के समान है।

जलब्राह्मी

नाम—हुरहुर (बं०) हिंगचा, हिलंचा (वा० ले०) एनहाईड्रा फ्लटुएन्स,[3] सूर्यमुखी वर्ग[4]।

गुण—हिलमोची शंखधरा जलब्राह्मीप्रकीर्तिता। जल ब्राह्मी सरा शोक कुष्ठ पित्तकफ प्रणुत् ॥ (कैं०)

हुरहुर जलाढ्य स्थानों में बंगाल, आसाम में अधिक होता है। रस में तिक्त, मृदुरेचक, शोथ, कुष्ठ, पित्तकफ-शामक है। यह उत्तम रक्त शोधक, पित्तशामक, मेध्य है। १ तोला की मात्रा में अनुपानरूप में शिरःशूल तथा वात व्याधियों में प्रयुक्त होता है। बहुत से वैद्य इसे वाम समझते हैं। मूत्रकृच्छ्र में इसका रस गाय या बकरी के दूध में मिलाकर; मसूरिका में इसके रस में मधु मिलाकर पिलाया जाता है।

---

1. Smilax ovaliflora, Roxb.
2. Liliaceae.
3. Enhydra Flutuans, Lour.
4. Compositeae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इक्कीसवाँ अध्याय

रक्तस्राव स्तम्भक वर्ग

अस्थिसंहारः (वज्रवल्ली, अस्थिश्रृंखलिका)

परिचय—चतुष्कोण काण्ड वाली लता

उ० स्थ०—उष्ण प्रदेश

व्य० अं०—पंचांग

पुष्पकाल—गुलाबी, प्याजी या श्वेतवर्ण, फल लाल मटर जितने

रस—मधुर, कटु

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

प्र० अं०—अन्त्र, धातु-रक्त

दोष—वातश्लेष्महर, पित्तलम्

वि० गु० क०—रक्तशोधक, संग्राहक, दीपन, पाचन, भग्न संधानकर

मात्रा—स्वरस १-२ तोला, चूर्ण १०-२० गुंजा

नाम—(हि०) हाड़जोड़, हाड़संहारी, कांडवेल (गु०) हाड़सांकल (बं०) हाड़भांगा (वा० ले०) विटिस्[1] क्वोड्रैन्गुलेरिस्, वल, (वर्ग)[2] द्राक्षादि।

गुण—वज्रवल्ली सरारूक्षा क्रमिदुर्नाम नाशिनी। दीपन्युष्णा विपाकेऽम्ला स्वाद्वी वृष्यानलप्रदा।
अस्थिसन्धानजननी वातश्लेष्महरा लघुः। (कैं०)

अस्थिसंहार, मृदुरेचक, वातानुलोमन, क्रमि, अर्शनाशक, रूक्ष लघु, वातकफहर, उष्ण, विपाक में अम्ल (कटु) वृष्य और बलप्रद तथा टूटी हड्डियाँ जोड़ती है।

प्रयोग—उष्ण तथा पाचन होने से कुपचन के रोगों में इसकी भाजी (शाक) का प्रयोग होता है। कर्णपूय में स्वर तथा नक्सीर फूटने पर स्वरस कान में तथा नाक में डाला जाता है। कोमल शाखाओं का बिछौना कर उस पर सोने से तथा पृष्ट पर बाँधने से कटिशूल या रीढ़ की हड्डी की पीड़ा मिटती है। पंचांग भस्म अजीर्ण तथा मन्दाग्नि नाशक है। अतिसार में पत्र-रस व चूर्ण लाभ करता है। फिरंगोपदंश में इसके रस के साथ रक्तमूल (बाकेरी माता) दिया जाता है। असमय मासिक धर्म को तथा मसूड़ों की शोथ को शान्त करने के लिए इसके पंचांग का पुरपक्व स्वरस में २१ तोला घी, १ तोला गोपीचन्दन (मुलतानी मिट्टी) १ तोला, शर्करा पिलाने से लाभ होता है। अस्थिभग्न में इसे भूनकर दूध के साथ पिलाया जाता है।

योग—अतिसंहारवटक (भाव) वातरोग, कास-श्वास, अग्निमान्द्यनाशक, मात्रा १ तोला।

---

1. Vitis quadrangularis wall. 2. Vitaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(अश्वत्थः बोधिद्रुमः, पिप्पलः)

परिचय—सुपरिचित वृक्ष
उ० स्थ०—सर्वत्र
व्य० अं०—पंचांग, विशेषतः मूलत्वचा तथा फल
पुष्पकाल—मई-जून
रस—कषाय
वीर्य—शीत
विपाक—कटु
दोष—कफ-पित्तशामक, वातल
प्र० अं०—योनि, त्वचा
वि० गु० क०—ग्राही, रक्तस्थापक, व्रणरोपक
मात्रा—३ माशा ६ माशा

नाम—(हि०) पीपल (बं०) आशुद् (मं०) पिंपल (गु०) पीपलो (फा०) दरख्ते लरजां (अं०) दी होली[1] पीपल ट्री, (बा० ले०) फाईक्स[2] रिलिजिओसा लिन्न वर्ग, क्षीरवृक्ष या वटादि[3]।

गुण—अश्वत्थः शीतलो रूक्षः कषायो दुर्जरः गुरुः। व्रणपित्त कफास्रघ्नो वर्ण्यो योनि विशोधनः। (कै०)

पीपल शीत, रूक्ष, कसैला, दुर्जर, भारी, व्रण पित्त, कफ, रक्त-स्रावनाशक, वर्ण को उत्तम बनाने वाला, तथा योनि शोधक है।

प्रयोग—शीतल, संशामक, व्रणशोधक और रोपक होने के कारण फोड़े फुंसियों पर इसकी अन्तर्छाल पीसकर लेप किया जाता है। व्रणों (घावों) को धोने के लिए पंचक्षीरी वृक्षों, वड, गूलर, पीपल, पिलसन (पाकड़) पारसपल, की त्वचा (पंच वल्कल) के काढ़े का प्रयोग किया जाता है। इनसे स्राव, वेदना, दाह आदि भी शान्ति होते हैं। मुख शोथ, मुखव्रण, मसूड़ों की शोथ में इन्हीं के काढ़े से कुल्ले (गण्डूष) कराते हैं। योनि से रक्तातिस्राव होने पर तथा श्वेत प्रदर में भी इनके काढ़े से उत्तर बस्ति द्वारा योनि प्रक्षालन किया जाता है।

अन्तः प्रयोग में ग्राही रक्त संग्राहक होने से अन्तः रक्त स्राव को बन्द करते हैं। वीर्य वर्धक है। कोपलों या कलिकाओं के साथ दूध उबाल कर पीने से गर्भस्राव ठीक होता है। पीपल की छाल को आधा जलाकर पानी में बुझा कर वह जल पीने से हिक्का (हिचकी) वमन, प्यास और उबकाईयाँ बन्द होती हैं। छाल लौंग और धनियाँ का पानी उबाल कर पीने से विषूचिका (हैजा) में वमन, अतिसार, प्यास शान्त होती है। मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है। फल कोष्ठ-बद्धता तथा बहुमूत्र नाशक हैं। सूखे फलों को कच्चे दूध के साथ ऋतुकाल के पश्चात् १४ दिनों तक लेने से गर्भ स्थापना की सम्भावना बढ़ जाती है। वन्ध्यत्व मिटता है। पीपल तथा नीम की कोपलों को पीसकर अर्श पर लेप लगाया जाता है। स्नायुक (नहरुआ) में पत्तों को पीसकर लेप लगाते हैं। इसमें लाख लगती है। जो एक विशेष कीट द्वारा उत्पन्न होती है। यह अत्यन्त ग्राही, संकोचक तथा रक्त संग्राहक है। अतः क्षय, क्षत, रक्तार्शादि में अन्तः रक्तस्राव रोकने के लिए दी जाती है।

योग—अश्वत्थवटी, मात्रा ४ रत्ती, १-२ गोलियाँ। (पीपल की कोपलों) मूलत्वचा, १-१ तोला, बहेड़े की छाल, कपूर काचरी, कच्चा बेल, खादिर छाल, कत्था, खसखस हरीभंगा (शुद्ध) लोध्र, नागर मोथा, जटामांसी, काला

1. The holy Peepul tree.
2. Ficus Religiosa, Linn.
3. Urticaceae, इस जाति के सब वृक्षों में दूध निकलता है। आयुर्वेद में इन्हें 'वनस्पति' कहा गया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

धतूरा पत्र, वचा, पीपलामूल, नागकेसर, प्रत्येक ३-३ माशा, कज्जली १½ तोला, चांदी भस्म ९ माशा, लोहभस्म ९ माशा, ४-४ रत्ती की गोली बना लें। यह अश्वत्थवटी ज्वरातिसार, संग्रहणी, अतिसार, रक्तातिसार, अर्श, कामला, पाण्डु, अर्श, अरुचि और उदररोग नाशक है।

उदुम्बरद्वयम् (यज्ञांग, जन्तुवृक्षः)

परिचय—यह सुपरिचित वृक्ष है। सर्वत्र पाया जाता है। पुष्पफल प्रायः सारे वर्ष रहते हैं। क्षीरी वृक्षों में सबसे लाभप्रद तथा उपयोगी है। रसादि सब अश्वत्थ के समान ही समझें।

नाम—(हि०) गूलर (बं०) यज्ञडूमर (मं०) उंबर (गु०) उम्बरी, उमरडो (फ०) अंजीरे आदम (ता० मल० क०) अत्ती (वा० लेटिन) फाईकस्[1] ग्लोमिरेटा, राक्स, वर्ग वटादि।

गुण—उदुम्बरोहिमोरूक्षः कषायो मधुरो गुरुः। भग्नसन्धान कृद्वर्ण्यो व्रणशोधन रोपणः।। (कै०)
औदुम्बरं कषायं स्यात् पक्वं तु मधुरं हिमम्। कृमिकृत् पित्तरक्तघ्नं मूर्च्छादाह तृषापहम्।। (ध०)

गूलर का पंचांग मधुर-कसैला, शीतवीर्य, कटु विपाकी, गुरु, भग्न (टूटी हड्डी) को जोड़ने वाला, वर्ण्य, व्रणशोथघ्न, रोपण, शोथशामक, दोष पाचन तथा रक्त संग्राहक।

कच्चा फल कसैला, संग्राही, रक्त स्तम्भक, अतिसार नाशक है। तृष्णा शीतल होने से प्यास, मूर्च्छा, दाह, रक्तपित्त, वमन, बहुमूत्र, रक्तस्राव, रक्त प्रदरशामक है। पक्वफल मधुर, शीतल, मधुर विपाकी, पौष्टिक, मृदुरेचक, कफनिष्कासक है। क्षीर दोष पाचक, शोथ विलयन तथा दारण है। कोपलें (कलियां या कोमल पत्ते) स्तम्भन, कसैले, कफनाशक तथा तृषाशामक है।

प्रयोग—इसका दूध चोट की शोथ को विलीन करता है। व्रणशोथ का दारण करता है। पत्रों को पीसकर लगाने या गूलर सत्व का लेप करने से चोट की शोथ, रक्त का जमाव और वेदना शान्त होती है। उदुम्बर सत्व में शिलाजतु समभाग मिलाने से शोथादि शान्त होती हैं और पाक भी नहीं होता। उदुम्बर की छाल का काढ़ा योनि शोधन के लिए रक्तप्रदरादि में, रक्तातिसारादि में वस्ति द्वारा तथा व्रण शोधन में भी अति उत्तम है।

अन्तः प्रयोग में बालशोथ रोग में जब उन्हें वमन (कफ) अतिसार लगे हो, हलका ज्वर रहता हो, गूलर का दूध (५-१५ बूंद) देने से लाभ होता है।

आन्तरिक या बाहर की चोट—मार आदि के कारण शोथ और रक्त के जमाव को यह नष्ट करती है। मधुमेह, बहुमूत्र में गूलर के फल अति उपयोगी हैं। पाचक तथा पौष्टिक हैं। मूत्र की मात्रा को कम करते हैं। कास, श्वास, स्वर भेद (विशेष कर पैत्तिक) गूलर पंचांग का अवलेह (उदुम्बरावलेह) दिया जाता है। योनि शोथ, श्वेत रक्त-प्रदर-योनिव्रण, दाह, मूत्राशय शोथ, मूत्रमार्ग शोथ में उदुम्बर की छाल का काढ़ा बनाकर उत्तरवस्ति[2] (पिचकारी) द्वारा देने से तत्काल लाभ होता है। उदुम्बरादिघृत (पंचांग का) पैत्तिक कास, प्रमेह उरःक्षत तथा गर्भपातशामक और गर्भस्थापक है। वत्सनाभ विष को उतारने के लिए छाल का रस घी के साथ सोमल (संखिया) के विष में पत्र स्वरस दिया जाता है।

जड़ का पानी दाह प्रशमन तथा संशमन है। अतः मूत्रकृच्छ्र तथा मधुमेह में पिलाते हैं। मूल से जल निकालने के लिए जड़ के आस-पास की मिट्टी खोद कर मूल की कोई एक शाखा काट दें और एक घड़ा उसके नीचे रख दें। बूंद-बूंद करके पानी टपकेगा। इस जल को १० तोला से २० तोला तक की मात्रा में प्रातः सायं प्यास लगने तथा मूत्र-कृच्छ्रता में दें। कच्चे गूलर के फलों की मात्रा ५-७ माशा, पत्र का हलुवा (सयावः) ६ माशा से १ तोला तक है।

---

1. Ficus glomerata, Roxb. 2. Douche.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

काकोदुम्बरः

वक्तव्य—यह भी गूलर का ही भेद है। इसे जंगली गूलर समझना चाहिए। यह गुल्म जातीय पौधा है। गूलर की अपेक्षा अंजीर से अधिक मिलता है। श्वित्र (सफेद कोढ़) में इसका विशेष उपयोग किया जाता है।

प्राप्ति स्थल—प्रायः सर्वत्र।

नाम—(हि०) कठगूलर (बं०) काक्डूमर (म०) भुईउंबर, बोरवाड़ा (गु०) ढेडउंबरो (वा० ले०) फाईकस हिस्पिडा लिन्न[1] आदि।

गुण—फल तथा छाल दोनों वामक विरेचक है। मात्रा फल ½-१ तोला, छाल चूर्ण २०-३० रत्ती। इसका दूध दाद, तिल, मस्सों पर लगाने से, व्रण उत्पन्न कर उन्हें ठीक कर देता है। यह तीक्ष्ण है। पके जंगली अंजीर फलों का लेप लगाने से कंठमाला में आराम होता है। किलास (सफेद धब्बे) तथा श्वित्र रोग में इसकी छाल का काढ़ा पिलाने से तथा रुग्ण स्थान पर लगाने से छाले उठते हैं। उनको फोड़कर उन पर चीते या हाथी का चमड़ा जलाकर तिल तैल में मिलाकर लगाना चाहिए। (सु० सू० वि० ९)

न्यग्रोधः (वटः यक्षवासकः, रक्तफल)

परिचय—परिचित वृक्ष। सब कुछ अश्वत्थवत।

नाम—(हि०) बड़, बरगद (पं०) बोड (मं०) वड (गु०) वड, बडलों (बं०) वट (अं०) दी बेनियन ट्री,[1] (वा० ले०) फाईकस् बेन्गोलेन्सिस् लिन्न या इण्डिका लिन्न, वर्ग-कटादि।

गुण—वटो रूक्षो हिमो ग्राही कषायोयोनिदोषजित्। वर्ण्यो व्रण विसर्पघ्नः कफपित्तहरो गुरूः। (कै०)

बड़, रूक्ष, शीत, ग्राही, (रक्त स्तम्भक) कसैला, योनि रोगनाशक, वर्ण्य, व्रण, वीसर्प, रक्त पित्त, तृष्णा, वमन, दाह मूर्च्छानाशक है।

प्रयोग—बड़ का दूध अत्यन्त वीर्य स्तम्भक है। शीघ्रपात, स्वप्नदोषादि नाशक है। दन्तशूल, बिवाई आदि में दूध भरते हैं। वट जटा तथा कोपलें भी शुक्र स्तम्भक है। प्रमेह, बहुमूत्र में फल, वट जटा का प्रयोग लाभ करता है। वटांकुर क्वाथ या स्वरस गर्भस्राव के रक्त को बन्द करता है तथा रक्त प्रदरनाशक है।

वट पत्र व्रणाच्छादन में प्रयुक्त होता है। अभ्रक भस्म को लाल करने के लिए भी वट जटा क्वाथ की भावना दी जाती है। छाल स्तम्भन है। प्रातःकाल सूर्योदय के समय वट दुग्ध और शक्कर समान मात्रा में नित्य २१ दिन सेवन करने से या अधिक दिनों तक सेवन करने से अर्श (बवासीर) पतली धात, स्वप्नदोष तथा शीघ्रपात नष्ट होता है। योनिरोगों रक्त प्रदर, श्वेत प्रदर, योनि व्रणादि में न्यग्रोधादि क्वाथ या पंचवल्क क्वाथ के पीने से तथा योनि प्रक्षालन से अत्यन्त लाभ होता है।

अतिसार में वट की अन्तर्छाल तथा मोकारस-समभाग सेवन से छाद के साथ लाभ होता है। नक्सीर में वट की कोपलों या दूध तथा वासा स्वरस के सेवन से तत्काल रक्तस्राव बन्द होता है। रजोधर्म के चौथे दिन से २१ वें दिन तक वटशुंगा (वड की कोपलों या कलियाँ) घृत-दूध पीने से गर्भ स्थिति होती है। वट जरा समभाग क्षेत्र के शर्करा के साथ सेवन से वीर्यरोग नाशक है।

---

1. Ficus Hispida, Linn.
2. The Banian tree.
3. Ficus Bengalensis, Linn, Ficus Indica.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्लक्ष (अश्वत्थपत्रक, पिप्परिः-सुपार्श्व)

नाम—(हि०) पिलखन, पाकर (वं०) पाकुड (म०) पाईर, पिपरी (गु०) पीपलो, पीपर (वा०ले०) फाईकस् इन्फेक्टोरिया[1] वर्ग वटादि ।

गुण—पिप्परिस्तुवरः शीतो व्रण योनिविसर्पनुत् । दाहपित्तकफासन्धो मेदः पितास शोफजित् ।। (कैं०)

पिलखन का वृक्ष पिप्पली से छोटा, पित्तास शोफजित् पत्र भी उसी की आकृति के किन्तु उससे छोटे होते हैं । गुण प्रयोगादि उसके समान ही समझने चाहिए । पंच वल्कल या पंचक्षीरी वर्ग की वनस्पति है ।

नन्दी वृक्ष

नाम—(हि०) नन्दी वृक्ष (वं०) कामरूप (म०) नान्दुक (वा० ले०) फाईकस रेट्युसा[2] ।

गुण—नन्दी वृक्षो लघुः स्वादुः कषायोष्णः अतितिक्त । कटु पाकरसो ग्राही विषपित्त कफास्रनुत् । (कैं०)

क्षीरी वृक्ष होने के कारण प्रसंगवश इसका भी वर्णन कर दिया गया है । औषधियों में इसका प्रयोग प्रायः नहीं होता । यह दक्षिण भारत में पाया जाता है ।

पंचक्षीरीवृक्षाः पंचवल्कलंच

वक्तव्य—आयुर्वेद में गणों द्वारा भी समान गुण वाली औषधियों का वर्णन किया गया है । इन गणों का ज्ञान चिकित्सा की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है । अतः क्षीरी वृक्षों के प्रकरण में इनका वर्णन मात्र किया जाता है । भाषान्तर नहीं किया गया क्योंकि संस्कृत अतिसरल है ।

> "न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थसुपाश्वर्वाः कपोतनाः । पंचैते क्षीरिणो वृक्षास्तेषां त्वक् पंच वल्कलम् ।
> क्वचित् कपोतनस्थाने शिरीषः, वेतसाक्वचित् । यत्तु पंच विधं प्रोक्तं योज्यमेवतु नेतराम् ।
> कषायं शीतलं शोफ व्रणघ्नं पंचवल्कलम् । क्षीरीवृक्षा हिमा रूक्षा वर्ण्याः स्तन्य शोधनाः ।।"
> व्रणवीसर्प शोथघ्नाः दाहपित्तकफापहाः । (कैं०)

उक्त पंचक्षीरि वृक्षों में, वड़, गूलर, पीपल, पिलखन चार का वर्णन तो हो चुका है । किन्तु कपोतन का वर्णन शेष है । उसमें दुग्ध का अभाव होते हुए भी शास्त्रकारों ने गुण समानता से उसे पंचक्षीरी वृक्षों में स्थान दिया है । उसका वर्णन आगे दिया जाता है ।

कुकुन्दरः (ताम्रचूड़ः, गंगापत्री, सूक्ष्मच्छद्रः)

नाम—(हि०) ककरोंदा (मा०) ककरुदो (बं०) कुकसंग (म०) भाबुर्डा, भांगरुड (गु०) कलहाड़, कपूरियो (वा० ले०) ब्लुमिडआ वाल्सेमिफेरा,[3] सूर्यमुखी वर्ग[4] ।

गुण—सम्पूर्ण वनस्पति का ही प्रयोग होता है । प्रायः अति कोमल पत्रों वाली क्षुद्र क्षुप है । पत्रों से एक विशिष्ट गन्ध आती है जो उड़नशील तैल के कारण है । यह अनुलोमक, आक्षेपनाशक, संग्राही, कृमिघ्न, स्वेदल तथा अनुलोमन है । प्रायः सर्वत्र पाया जाता है । कटु तिक्त, उष्णवीर्य और कटु विपाकी है ।

प्रयोग—उदरकृमि में पत्र स्वरस, ज्वर में पंचांग क्वाथ लाभ करता है । उत्तम रक्तसंग्राहक तथा अनुलोमक होने से रक्तार्श, श्वेतरक्तप्रदर में लाभ करता है । इसके घनत्व में ३ माशा कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर ४-४ रत्ती

---

1. Ficus Infectoria, Roxb.
2. Ficus Retusa.
3. Blumea Balsemifera, De.
4. Compositeae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

की गोलियाँ बना दिन में दो बार सेवन से रक्तार्श शान्त होता है। ज्वरों में पंचांग क्वाथ, दाह, तृष्णा तथा ताप को (स्वेद लाकर) कम करता है। कालीमिर्च के साथ स्वरस विषूचिका को शान्त करती है।

कुसुम्भं (पावकं-वस्त्र रंजकम्)

नाम—(हि० पं० मा०) कुसूम, कसुंबी (मं०) करडई (गु०) कुसुंबो (क०) कुसुमें (तैं०) कुसुमबर (अं०) सेफ्फलावर[1], पेरट सीडस[2], (वा० ले०) कर्थेमस टिक्टोरियस्, लिन्न[3], सूर्यमुखी वर्ग।

गुण—कुसुम्भं वातलंरूक्षं रक्तपित्त कफापहम्। कुसुम्भतैलमुष्णंच विपाके कटुकं गुरु।
विदाही च विशेषेण तच्च रोगप्रकोपणम्॥ (ध० नि०)

कुसुम्भ की खेती दक्षिण में बहुत है। फूल के केसर-कुंकुम के समान लगते हैं। अतः केसर में मिलाते हैं। किन्तु कुसुम्भ केसर गन्धरहित तथा पीले टपके वाले होते हैं। सकण्टक और अकंटक दो भेद हैं। तैल का प्रयोग किया जाता है। ये रेचक, आमवातादि वेदनाशामक तथा कृमिघ्न हैं। अभ्यंग में व्यवहृत होता है। सूखे पुष्पों का चूर्ण (४ माशा) कामला में तथा दहि के साथ अर्श में लेने से लाभ होता है। बीजों को भूनकर खाया जाता है।

चाक्षुष्यम्

नाम—(हि०) चाकसू (म०) चिनोल (गु०) चिमेडं-चमेड़ (वा० ले०) केसिया एब्सस्,[4] शिम्बी वर्ग।

परिचय—यह भी सनाय जाति की वनस्पति है जिसके बीजों का प्रयोग किया जाता है। जैसा नाम है नेत्र रोगों के लिए उत्तम है।

गुण—आनाह मेदो गुदकीलहिक्का, श्वासापहः शोणितपितकृच्च।
कफापहन्ता पवनामयन्धो, विशेषतो वन्यकुलत्थ उक्तः॥

चाकसू, कषाय, शीतवीर्य, कटु विपाकी, वातकफशामक, रक्तपित्तदूषक स्थावर जंगम नेत्ररोग, रक्तदोषक, कटु विपाकी वातकफशामक, नेत्ररोग, त्वचा रोग, आनाह मेदो रोग, अर्श, हिक्का श्वासशामक है।

प्रयोग—संग्राही तथा नेत्राभिष्यंद (नेत्र की लाली) नाशक, रक्तस्तम्भक है। नेत्रदौर्बल्य, पोथकी, जाला, फोला में पीसकर सुरमों में डाला जाता है। मूत्र में रक्त आता हो, वृक्क शोथ हो तो २५ दाने चाकसू ५ माशे चन्दन के साथ रात को भिगोकर प्रातःकाल पीने से लाभ होता है।

नागकेसर (चाम्पेमं, हेमायं, नागरेणुकम्)

परिचय—मध्यम प्रमाण का वृक्ष
उ० स्थ०—पूर्व बंगाल, पूर्व हिमालय, ब्रह्मादि में
पुष्पकाल—चैत्र-वैशाख
व्य० अं०—पुष्पकेसर या लौंग
रस—कषाय
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु

---

1. Saff Flower.
2. Parrot Seeds.
3. Carthamus tictorius, Linn.
4. Cassia Absus, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोष—त्रिदोषहर, विशेषकर पित्त-कफघ्न

प्र० अ०—अन्त्र तथा धातु रक्त

वि० गु० क०—दीपन, पाचन, ग्राही, वातानुलोमक रक्तस्तम्भकम्

गुण—नागपुष्पं कषायोष्णं तीक्ष्णं लघ्वामपाचनम् । रूक्षं पित्तकफच्छर्दिगुदकण्डु विसर्पनुत् ।
हृल्लास स्वेद दौर्गन्ध्य कुष्ठ तृषा विषापहम् ।। (भा०)

नाम—(हि० पं० मा०) नागकेसर, (म०) नागचांफा (गु०) नारकेसर, नागेसर (बं०) नागेश्वर (क०) नागकेसर (तै०) नागकेसरमु (ता०) इरलमरम् (अं०) कोब्रा सेफ्रान[1] (वा० ले०) मेसुआ[2] फेरिआ, साराम्ल वर्ग[3] ।

नागकेसर—कसैला, उष्ण, तीक्ष्ण, लघु, आमपाचक, रूक्ष, कटु विपाकी, कम्प, पित्तशामक, वमन, जी मचलाना, पसीना आना, कुष्ठ, प्यास, विष तथा दुर्गन्धिनाशक है ।

प्रभाव तथा प्रयोग—रूक्ष कषाय होने से स्रावों की अतिवृद्धि को रोकता है । आमपाचक होने से अतिसार, वमन, जी मचलानादि शान्त करता है । रक्तार्श में खून बन्द करने के लिए १ माशा नागकेसर चूर्ण १ तोला मखाने में मिलाकर खाएँ तथा लेप करें ।

श्वासकास में कफ अधिक आने पर नागकेसर के सेवन से उसकी अतिप्रवृत्ति बन्द होती है । श्वेतप्रदर में नागकेसर चूर्ण छाछ के साथ पिलाना चाहिए । यदि तीसरे महीने गर्भ गिरने का भय हो तो तक्रोदन का भोजन करें । हाथ-पैरों की जलन में भी इसका प्रयोग करते हैं । यह स्थूलतानाशक तथा आर्त्तव प्रवर्तक है । यह हृदय, यकृत्, आमाशय, अन्त्र को शक्ति देती है तथा कुछ कामोत्तेजक भी है ।

योग—नागकेसरादिवटी ।

वक्तव्य—नागकेसर लौंग प्रायः बाजार में मिलते हैं । वस्तुतः इसकी तुरियों (लिंगसूत्र-केसर) का ही प्रयोग करना चाहिए । दक्षिण में होने वाले पुन्नाग नामक वृक्ष के पुष्प केसरों के नागकेसर के नाम से बेच देते हैं । ये गुणहीन होते हैं ।

मयूरशिखा (शिखिनी-बर्हिचूड़ा)

नाम—(हि०) मोरशिखा, (गु०) मं० छ० (बं०) मयूरशिखा (वा० ले०) सिलोसिया[4], क्रिस्टाटा अपामार्ग[5] वर्ग । एक दूसरी वनस्पति 'एक्टिनोडाफी' डिकोटोमा[6], कर्पूरवर्ग[7] को मयूरशिखा नाम दिया जाता है ।

गुण—मधुराह्वा शिखा शीता कषायाम्लाऽम्लपाकिनी । लघ्वीपित्तकफौ पक्वापक्वातिसारं नाशयेत् । (कै०)
यह ग्राही तथा रक्त स्तम्भक और कृमिघ्न है ।

रक्तबोलम् (रक्तनिर्यास)

नाम—(हि०) हीरादखन, खूनखराब (मां०) हीरादखिन (गु०) हीरादखण (क०) कन्डाभरगारितम् (वा० ले०) ड्रेकीमासिन्नेबारी[8] (अं०) ड्रेगन्सब्लड्[9], लशुनादि वर्ग ।

---

1. Cobra Saffron.
2. Mesua Ferrea, Linn.
3. Guttifereae.
4. Celosia cristata, Linn.
5. Amarantaceae.
6. Actinodophae-Dichotoma, Florsk.
7. Lauraceae.
8. Dracaema Cinnabari, Bay.
9. Dragon's Blood. एक अन्य वृक्ष केलेमस ड्रेको (तालवर्ग) Calamus draco wild (Palmae) का गोंद भी हीरादखिन के नाम से मिलता है । यह भी गुण में समान है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

परिचय—यह वृक्ष विशेषों का नीलाभ लाल रंग का होता है। जो विदेशों से आता है। इसमें लोमान अम्ल तथा एक अन्य अम्ल भी होता है।

मात्रा—१-१½ माशा तक

प्रभाव तथा प्रयोग—यह रूक्ष, शीतल, संग्राही, व्रणरोपक तथा उत्तम रक्तस्तम्भक है। बाह्य प्रयोग में इसे व्रणों में से स्राव तथा रक्तस्राव सुखाने के लिए छिड़कते हैं। अन्तः प्रयोग में भी इसे आन्तरिक रक्तस्राव बन्द करने के लिए प्रयोग में लाते हैं। प्रवाहिका, अतिसारों तथा आन्तों से रक्तस्राव, थूक में रक्तस्राव, अर्श में रक्तप्रवाह तथा रक्त-प्रदर में इसका व्यवहार अतिलाभप्रद है।

लज्जालुः (नमस्कारी, शर्मीला, अग्ररोधिनी)

नाम—(हि०) लाजवन्ती, छुईमुई (बं०) लाजुक (म०) लाजरी लाजालु, (गु०) रीसामणि (वा० ले०) मिमोसा प्युडिका[2] (अं०) सेन्सेटिव[1] प्लाण्ट, बब्बूल वर्ग[3]।

गुण—लज्जालुः शीतला तिक्ता कषाया कफपित्तजित्। रक्तपित्तमतीसारं योनिरोगान् विनाशयेत्। (भाव०)

लज्जालु कड़वी, कसैली, शीतवीर्य, कटु विपाकी, कफपित्त दोषशामक, संकोचक, ग्राही, रक्तपित्त अतिसार, योनि रोगशामक है।

मात्रा—पंचांग चूर्ण ६ माशा, बीजचूर्ण १-३ माशा

यह छोटा-सा क्षुप भारत के उष्ण प्रदेशों में पाया जाता है। पंचांग उपयोगी है। उत्तम रक्तशोधक तथा ग्राही है। बीज वृष्य तथा वीर्य स्तम्भक है। शोथशामक-अण्डवृद्धि पर तथा व्रणों पर बाँधे जाते है। अपची, गण्डमाला आदि शान्त होते हैं। रक्तार्श, रक्तातिसार, अतिआर्त्तव और रक्तष्ठीवन में पत्रस्वरस या चूर्ण लाभप्रद है। इन्हें मधु या काली मिर्च के साथ देना उत्तम है।

लाक्षा (जतुका-पलंकषा-रक्तकृमिजा)

नाम—(हि० म० गु०) लाख, (बं०) लाहा (अं०) लेक[4] (वा० ले०) कोक्स लक्का,[5] जंतुकादिवर्ग[6]।

परिचय—लाख कुछ विशेष कृमियों द्वारा अनेक वृक्षों पर बनाई जाती है। यह कृमिजन्य पदार्थ है। पीपल की लाख सर्वोत्तम समझी जाती है। सदैव नूतन मृत्तिकादिरहित लाख का ग्रहण करना चाहिए। (लाक्षा च नूतना ग्राह्या मृत्तिकादिविवर्जिता) इसका चूर्ण ३-४ माशा की मात्रा में सेवन किया जाता है। उत्तम रक्तस्रावरोधक है।

गुण—लाक्षा स्निग्धा लघुस्तिक्ताकषाया बलवर्णदा। अनुष्णा हन्ति पित्तास्र कफ कुष्ठव्रणज्वरान्।
उरःक्षत परीसर्प भग्नकास विषकृमीन्॥ (कै०)

उरःक्षत, परीसर्प, भग्नकास, विषकृमि लाख कषाय, तिक्तरस, समशीतोष्णं, कटुविपाकी, त्रिदोषशामक, पित्त-कफ के रोग, रक्तस्राव-ज्वर, कुष्ठ उरःक्षत-वीसर्प, कास, कृमि, अस्थिभग्न में उपकाकरक है।

प्रयोग—लाख लेखन-दोषों का विलीन करने वाली तथा रक्तस्रावरोधक है। यकृत् तथा आमाशय को शक्ति देती है। अन्तः रक्तस्राव में खांसी-अर्श, रक्तातिसारादि में रक्त जाने पर शर्करा समान भाग लाख चूर्ण में मिलाकर

---

1. Sensitive Plant.
2. Mimosa Pudica, Linn.
3. Mimosaceae.
4. Lac.
5. Coccus. Lacca.
6. Hemiptera.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गोदुग्ध, जल, तण्डुलोदक या मधु के साथ सेवन कराई जाती है। एतदर्थ लाक्षा-गोदन्ती का मिश्रण (समभाग) उत्तम है। इससे रक्तस्राव बन्द होकर क्षत भर जाता है।

राजयक्ष्मा में रक्त की वमन आने पर लाक्षा दूध तथा घी से मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है। रक्त-पित्त रक्तप्रदर में शर्करा के साथ सेवन की जाती है। जीर्ण ज्वरों में लाक्षा सिद्ध तैलादि का अभ्यंग किया जाता है। लाक्षादि तैल महालाक्षादि तैल का अभ्यंग जीर्ण ज्वरों में तथा कटिशूलादि में लाभ करता है। तैलों में लाक्षारस बनाकर प्रयोग किया जाता है।

वृक्षादनी (वृक्षरूहा-कामवृक्षकः)

नाम--(हि०) बान्दा-बन्दा (म०) बांदे (गु०) बांदी (अं०) मिस्टलटो[1] (वा० ले०) विस्कम्[2] एल्बम् (क०) वन्दणिगे (तैं०) बाजिनीकै, वन्दावर्ग[3]।

वन्दा—जैसा इसके नाम से ही स्पष्ट है वृक्षों पर उत्पन्न होने वाला पराश्रयी क्षुप है। नीम, पीपल, बब्बूल आदि अनेक वृक्षों पर उत्पन्न होती है। अतः इसके नाम भी अलग-अलग हैं। कुछ आचार्य 'लोरेन्थस्[4] लौगिफोलिया' को बन्दा मानते हैं। व्यवहार कम होता है।

गुण--वृक्षादनी हिमातिक्ता कषायामधुरा रसे । अश्मरी कफ वातास्र रक्षोव्रण विषापहा ।। (कैं०)

वन्दा तिक्त, कसैला, मधुर, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, अश्मरी, कफ, वातरक्त, व्रण और विष को मिटाने वाली है।

यह संग्राही-रूक्ष रक्तस्तम्भक है। रक्तातिसार-रक्तष्ठीवन में पत्तों का चूर्ण या काढ़ा पिलाते हैं। ताजे पत्तों का रस भग्नास्थियों को जोड़ने में सहायक है।

विशल्यकर्णी

नाम--(हि० म०) अयापन (गु०) अलापा (अ०) युपेटोरियम् आयापान[5], यु० ट्रिप्लिनर्वे[6]।

परिचय—इसका मूल स्थान अमेरिका है, परन्तु अब भारतवासी हो गई है। यह मध्यम प्रमाण के वृक्ष हैं। बंगाल में इसका अधिक प्रयोग होता है। शल्यवेदना का हरण करने वाली है। अतः इसे विशल्यकर्णी कहा जाता है।

गुण तथा प्रयोग--तिक्तरस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, कफघ्न, दीपन, पाचन, स्वेदल, शोधक, ज्वरघ्न, व्रणरोपक तथा रक्तस्राव बन्द होता है। स्वरस पिलाने से अन्तः रक्तस्राव भी रुक जाता है। अतः रक्त प्रदर, रक्तातिसार, रक्तष्ठीवन, रक्त वमन, रक्तार्श में उत्तम है। पत्रों का उपनाह (पुल्टिस) शोथशामक, व्रणशोधक और रोपक है। रक्तशोधक और रोपक है। रक्त शोधक होने के साथ-साथ चेतनाशक्तिवर्धक भी है। ज्वरों में स्वेद लाकर ताप को कम करता है।

हस्तिदन्त-नागदन्त

नाम—(हि० म० गु० च०) हाथीदांत (अं०) आयवोरी[7]

गुण प्रयोग—शीत तथा रूक्ष है। इसका चूर्ण मधु के साथ सेवन करने से स्मरण शक्ति बढ़ती है। सन्धि-पीड़ा, अतिसार तथा रक्तस्राव बन्द होता है। हाथी की राख तथा रसौंत को समान भाग बकरी के दूध या जल में पीसकर लेप करने से केश उगते हैं। श्वित्र पर हाथी की चमड़ी की राख का लेप किया जाता है।

1, Mistletoe.
2. Viscum Album, Linn.
3. Loranthaceae.
4. Loranthus Longifolia.
5. Eupatorium, Ayapana De.
6. E. Triplinerve, wall Symb.
7. Ivory.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बाइसवाँ अध्याय

यकृत् प्रभावक वर्ग

पित्तरेचक तथा यकृत शोधक

अर्कद्वयम् (अर्क और अलर्क)

वक्तव्य—आक के दो भेद हैं। लाल आक जो प्रायः सर्वत्र मिलता है। श्वेत फूल वाला अलर्क, जिसकी उपलब्धि कठिनाई से होती है। अर्क को उद्भिज शास्त्र में 'केलोट्रोपिस जिजेन्टिका'[1] तथा अलर्क को, 'केलोट्रोपिस[2] प्रोसेरा' कहते हैं। गुणों में दोनों समान है। दोनों ही अर्क[3] वर्ग की वनस्पतियाँ हैं। श्वेत आक गुणों में उत्कृष्ट समझा जाता है।

परिचय—सुप्रसिद्ध झाड़ी

उ० स्थ०—सर्वत्र

व्य० अं०—पंचांग, क्षीर

पुष्पकाल—ग्रीष्म ऋतु प्रायः वर्ष भर

रस— तिक्त, कटु

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—वात-कफहर

प्र० अ०—पाचक अंग, धातु रक्त

वि० गु० क०—वामक, रेचक, पाचन, क्रमिघ्न, दीपन, रसायन

मात्रा—अर्क मूल चूर्ण २-४ रत्ती, पत्रचूर्ण २ रत्ती से १ माशा तक, पुष्प १-२ रत्ती, दुग्ध १-२ रत्ती

नाम—(सं०) अर्क, सूर्याह, सदापुष्पी, (लाल आक) अलर्कः, श्वेतपुष्पी, सफेद आक-मन्दार, (म०) रुई (गु०) आकड़ो।

गुण—अर्कोलकौं सरौतिक्तावुष्णौ वातकफोहतः। क्रमिकुष्ठव्रणार्शोस्त्र प्लीहगुल्मविष ग्रहान्॥
अर्कस्य पुष्पं मधुरं सतिक्तं कुष्ठक्रमिघ्नं कफ नाशनंच।
आखोर्विषं हन्ति च रक्त पित्त संग्राहि शोफे चहित सगुल्मे॥
अलर्क कुसुमं वृष्यं लघुदीपनपाचनम्। अरोचकप्रसेकाशः श्वास कासनिबर्हणम्॥
अर्क क्षीरं सरं स्निग्धं वातजित् कटुकं लघु। गुल्मिनां कुष्ठिनां वापि तथैवोदर रोगिणाम्॥
श्रेष्ठमेतद्विरेकार्थे ये चान्ये दीर्घ रोगिणः॥ (कै०)

---

1. Calotropis Gigantica.
2. C. Procera, R. Br.
3. Asclepiadacae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आक (दोनों प्रकार का) पंचांग कड़वा, चरपरा, उष्ण, रेचक, वात-कफशामक, कृमि, कुष्ठ, व्रण, अर्श, प्लीहावृद्धि, गुल्म और विषशामक है। लाल आक के फूल मधुर, तिक्त, कफ, कृमि कुष्ठ, शोथ रक्त पित्त तथा चूहे के विष के नाशक हैं। सफेद आक के फूल उष्ण, रूक्ष, वृष्य, दीपन, पाचन, लघु, अरुचि, प्रसेक, (मुँह से पसीना जाना) अर्श, श्वास-कासनाशक है। दूध स्निग्ध, कटु, वातशामक तथा तीव्ररेचक है। गुल्म जलोदर तथा अन्य कठोर कोष्ठों में इसका विरेचन श्रेष्ठ है। किन्तु अत्यन्त सावधानी से इसका प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि यह उपविष तथा क्षोभ, व्रण, स्फोटकारक है। आक की रुई अत्यन्त उष्ण होती है। वातव्याधियों से ग्रस्त रोगियों के सिरहाने, गद्दे आदि इससे भरे जा सकते हैं। मूलत्वक् पत्र तथा पुष्पों का ही प्रयोग अधिक होता है।'

पत्र—ताजे पत्र वेदना तथा शोथशामक है, अतः आमवात एवं अन्य सब शोथों पर गरम करके बाँधे जाते हैं। पत्र रस को गरम करके कर्णशूल में डाला जाता है। एतदर्थ 'अर्क तैल' भी बनाया जाता है। शुष्क पत्र-चूर्ण दुष्ट व्रणों पर छिड़कने से रोहण शीघ्र होता है। अर्क-पत्र का धूम्रपान करने से तथा ४ रत्ती से कास-श्वास में लाभ होता है। अर्क-पत्र तथा सैन्धव मिलाकर 'अर्क लवण' बनाया जाता है। यह पाचन विकारों तथा गुल्म, प्लीहा, यकृत् वृद्धिनाशक है। मात्रा ३ माशा तक तक्र के साथ 'अर्कपत्रं सलवणं पुटदग्ध, सुचर्णितं निहन्ति मस्तुनापीतं प्लोहानं सुदारणम् (भाव०)। छाया शुष्क पत्रों की नस्य छिक्का तथा नासास्राव कराकर शिराःशूल, सिर का भारीपन तथा प्रतिश्यायनाशक है।

क्षीर—लेप करने से दाह होता है। इसे दन्तशूल में खोखले दन्त में भरने से शूल शान्त होता है। यह बाहर रखने से सूख जाता है। आमवात, दद्रु, पामा आदि में क्षीर तथा हल्दी को तिल तैल में मिलाकर लेप लगाते हैं। विरेचनार्थ अर्कक्षीर भावित कालीमिर्च (१ मिर्ची) देनी चाहिए, दूध नहीं।

पुष्प— दीपन, पाचन, कफहर, आक्षेपहर हैं। मूल की अपेक्षा पुष्पों में, विशेषकर, फूल की लौंग में श्वास-कासशामक, कफच्छेदकता, बेंगनाशकता गुण अधिक है। आक पुष्प की लौंग १ तोला, जायफल, वायविडंग, जावित्री, अकलकरा, मरिच, तगर, गठोड़ा, प्रत्येक १-१ तोला पीसकर २ रत्ती की गोली बना लें। श्वासशामक है। मात्रा १ गोली गरम जल से। इससे कफ निकलता है तथा वमन होकर छाती हल्की हो जाती है। टंकण फूल की लौंग, कालीमिर्च तीनों का समान भाग लेकर २ रत्ती की गोली बनाकर देने से श्वासकास तथा बच्चों में अजीर्णजन्य वनस्पतिसार शान्त होते हैं। बच्चों के कफ-श्वास-प्रतिश्याय (जुकाम) मन्दाग्नि, उदरशूल इससे शान्त होता है। पुष्प कलिका तथा काली मिर्च की राख बनाकर चाटने से श्वास शान्त होता है।

मूल—पित्तस्रावक, स्वेदल, वामक, आक्षेपहर, सब अंगों को बल देने वाली, कृमिघ्न रक्तशोधक है। बड़ी मात्रा में सेवन करने से आमाशय तथा अन्त्रों में क्षोभ करके वमन और विरेचन करा देती है। किन्तु लघु मात्रा में देने से आमाशय के उत्तेजक पाचकरसों को बढ़ाने वाली, रक्तवाहिनी विस्तारक, श्वास नलिका विस्तारक है। अतएव यह श्वास-कास ज्वरों में ताप कम करने तथा रक्तशोधन के लिए दी जाती है। दुष्ट व्रणों में इसका लेप लगाया जाता है। श्लीपद उपदंशादि के व्रणों में, ज्वरों में दाह, ताप, अंगवेदना होने पर २½ रत्ती चूर्ण के सेवन से पसीना आकर सब लक्षण शान्त हो जाते हैं। गले की शोथ में अर्कमूल चूर्ण तथा सैन्धव मिलाकर देते हैं। फुफ्फुस या श्वास नलिका शोथ में १ रत्ती की मात्रा में चूर्ण देना चाहिए। वमन के लिए १५-२० रत्ती मात्रा है। जीर्ण ज्वरों तथा शीतपूर्ण ज्वरों में भी इसके प्रयोग से लाभ होता है। बच्चों के प्रलाप तथा हाथ पैर मारने में जड़ का क्वाथ पिलाया जाता है। छाया शुष्क मूलत्वक् चूर्ण सब प्रकार के त्वचा रोग, आमवात, उपदंश, आमातिसार, पारद विष के उत्पन्न रोग, जलोदर, सर्वांग शोथ, अन्त्रकृमि नष्ट होते हैं। सर्पदंश में पत्तों को पीसकर घी के साथ मिलाकर पिलाया जाता है। जिससे वमन विरेचन होकर विष निकल जाता है। वृश्चिक दंश, कुत्ते के दंश पर दूध का लेप लगाया जाता है। आक का दूध ५ तोला गाय का घी ५ तोला दोनों को इतना पीसें कि वह मधु के समान हो जाए। इस तिले को अभ्यंग कर ऊपर से कच्चे धागे से पान पत्ता बाँधना चाहिए। लिंग के मुण्ड को छोड़कर शेष भाग पर मर्दन करें। ३-४

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दिन के प्रयोग से शिथिलता जाती रहती है। जीर्ण आमवात में अर्कमूल चूर्ण २० भाग, अफीम १० भाग, सैन्धव ७० भाग मिलाकर ३-६ रत्ती की मात्रा में देने से लाभ होता है।

योग—अर्क पत्र तैल—अभ्यंगार्थ, त्वचा रोगों में, अर्कक्षय—श्वासकास में, अर्कलवण-उदर रोगों में।

तिक्ताद्वयम् (कटुका, तिक्ता, चक्रांगी-कटु रोहिणी)

परिचय—क्षुद्र क्षुप
उ० स्थ०—सात से १४ हजार फुट की ऊँचाई पर हिमालय में
द्र० अं०—मूल
पुष्पकाल—शरद् ऋतु में
रस—तिक्त
वीर्य—शीत
विपाक—कटु
दोष—कफ-पित्तहर
प्र० अं०—यकृत्, अन्त्र
वि० गु० क०—यकृत् भेदन, पित्तरेचक, ज्वरहर तथा आमपाचक
मात्रा—दीपनार्थ ५-१५ रत्ती तक, ज्वरहर—३-४ माशा, रेचनार्थ—६-८ माशा

नाम—(हि० बं०) कटुकी (पं०) कौड (म०) काली कटुकी, बालकडू (गु०) कडु (क०) कटुक रोहिणी (वा० ले०) पिक्रोरिझा कुरुवेन्थ[1], मण्डूकपर्णी वर्ग[2]।

गुण—कट्वी तु कटुकापाके तिक्ता पित्त ज्वरापहा। कट्वी तु कटुकापाके तिक्ता रूक्षाहिमा लघुः॥
भेदिनी दीपनी हृद्या कफपित्तज्वरापहा। प्रमेह कास-श्वासास्रदाह कुष्ठक्रमि प्रणुत्॥ (भाव०)

कटुरोहिणी रस में कड़वी, शीत तथा कटु विपाकी, लघु भेदन (रेचन) अग्निदीपन, क्षुधावर्धक, कफ-पित्त तथा ज्वर, प्रमेह, श्वास-कास, रक्तपित्त, दाह क्रमि और कुष्ठ रोगशामक है।

प्रयोग—इसमें एक कड़वा सत्व पाया जाता है जो ज्वरशामक तथा पित्तरेचक है। एक रेचक सत्व के कारण रेचन भी है। अग्निदीपन होने के कारण अग्निमान्द्य अम्लपित्त तथा आमाशय की वातनाड़ीजन्य शिथिलता में प्रयुक्त होती है। जीर्ण रोगों में पाचन सम्बन्धी निर्बलता नाशन के लिए प्रयुक्त होता है है। विषम ज्वरों तथा पित्ताशय शोथ, शूल एवं पित्त ज्वरों में निम्बछाल या पंचतिक्त के साथ प्रयुक्त होती है। जलोदर या अन्य आर्द्र शोथों में जो विशेषकर हृदय और यकृत् की विकृति के कारण होती है बड़ी मात्रा (७½ माशा) में दी जाती है। इससे पित्त तथा द्रव का रेचन होता है। आन्तों की शिथिलता से उत्पन्न विबन्ध का नाश करती है। कुपचन जन्य श्वास-कासशामक है। यह योगवाही है। तत्तद्रोगनाशक औषधियों के साथ देने से अधिक गुण करती है। कामला में १ तोला कटुकी में समान शर्करा मिलाकर सेवन लाभ करता है। हिचकी में मधु के साथ, जीर्ण ज्वरों, रक्त पित्त, हृदय रोग में समभाग मधुयष्टि के साथ गर्म जल से देने से भी लाभकारी है। एकाहिक ज्वर, श्वास, कास में कटुकी क्वाथ में पीपली चूर्ण मिलाकर दिया जाता है।

योग—आरोग्यवर्धनीवटी-उदर रोगों में

1. Picrorrhiza Kurroobenth. 2. Scrophulariaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

द्वितीया तिक्ता (कटुकी)

नाम—(हि०) कुटकी (गु० म०) कडू (अं०) खेरतिक (अं०) हेलीबोर[1], क्रिसमस रोज[2], (वा० ले०) हेलीबोरनिग्रम[3]।

परिचय—यह भी कटुकी (काली कटुकी) के समान हिमालय में उत्पन्न होने वाली वनस्पति है जिसका मूल बहुत कुछ कुटकी से मिलता-जुलता है। इसीलिए व्यापारी वर्ग इसे काली कुटकी के साथ मिला कर बेचता है। किन्तु दोनों का प्रभाव पृथक्-पृथक् है। दोनों को पृथक् करने में निम्न लक्षण सहायक हो सकते हैं।

काली कुटकी (कटु रोहिणी)	(तिक्ता कटु)
(१) मूल गहरे ऊंदी (कपिल) रंग के १-२ इंच लम्बे तथा साधारण मुड़े हुए।	(१) मूल बारीक मुड़े हुए तथा झुरीर्दार १-३ इंच लम्बे शर (कलम-सरकण्डा) की अपेक्षा पतले।
(२) बाहरी पृष्ठ खुरदरा, सूक्ष्म गाँठों वाला तथा पत्र डण्ठल (वृन्त) गिरने के चित्रों वाला।	(२) बाह्य पृष्ठ चिकना (श्लक्ष्ण) तथा गिरे हुए मूल के चिह्नों वाला, तोड़ने पर छाल तथा मध्यभाग के बीच में खोखली (पोल) आकाश वाली रंग हल्का धुँधला-भूरा।
(३) मूल एक किनारे पर मोटी तथा दूसरे पर पतली यथा मूली गाजर आदि में।	(३) लघु तथा बहुत नरम दो अँगुलियों के मध्य में रगड़ने से ही टूट जाती है।
(४) कडू की अपेक्षा कठिन, भारी, तोड़ने पर अन्दर गहरा कपिल (भूरा, ऊदी वर्ण)।	

गुण—यह गुणों में काली कटुकी से भिन्न है तथा इसकी मात्रा भी स्वल्प हो जाती है। यह कड़वी, उष्ण वीर्य, कटु विपाकी, हृद्य-मूत्रल, शोथशामक ज्वरघ्न तथा रेचक है।

सूची (हृत्पत्री) पीली कन्हेर के समान यह भी हृदय की शिथिलता में लाभप्रद है। जब नाड़ी शिथिल हो, संकोच निर्बल हो, रक्ताभिसरण ठीक न हो रहा हो तथा हृदय की शिथिलता के कारण शरीर में जलोदर हो गया हो उस अवस्था में इसके प्रयोग से लाभ होता है।

हृदय का संकोच बलवान होता है। यह रक्ताभिसरण या रक्तभ्रमण सारे शरीर में भली-भाँति करती है। बलवान हृत्संकोच के साथ-साथ ही दो संकोचों का समय भी बढ़ जाता है। जिससे हृदय को विश्राम का समय अधिक मिलता है। विश्राम काल में हृदय का पोषण भी भली प्रकार होता है। अतः हृदय शिथिलता, हृदयकार्या विरोध, हृदय द्वार तथा पटल के रोगों में एवं शरीर में कहीं भी एकत्र तरल (जल) को निकालने के लिए अति उत्तम औषध है।

रक्ताभिसरण उत्तम होने के कारण वृक्कों में रक्त प्रवाह बढ़ जाने के कारण मूत्र की मात्रा भी बढ़ जाती है। यह जलरेचक भी है, अतः मूत्र तथा मल द्वारा शरीरस्थ तरल को बाहर निकाल देती है।

रूक्ष, तिक्त होने के कारण कफ विकारशामक है और वात प्रकोपक है। विशेषतः संज्ञावाही नाड़ियों पर बाह्य प्रयोग से यह संज्ञा शून्यता उत्पन्न कर देती है।

---

1. Hellebore.
2. Christmas Rose.
3. Hellebore Nigrum.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रयोग—५-२० रत्तिका इसकी साधारण मात्रा है। चूर्ण रूप में अथवा काढ़े के रूप में देने से ज्वर, उदर रोग, हृदय की शिथिलता नष्ट होती है। पाण्डु, कामला नष्ट होते हैं।

इसके साथ पुनर्नवा, अपामार्ग, चिरायता, सोंठ, मकोय, नागरमोथा, सुगन्धवाला समान भाग मिलाकर काढ़ा बनाकर शर्करा या मधु मिलाकर सेवन करने से पसीना (स्वेद) तथा मूत्र आकर ज्वर कम होता है। तिक्त ज्वरों में लाभ होता है। ज्वरों में ताप कम करती है। मूत्रल तथा स्वेदल और हृद्य होने कारण ये सब बाद की क्रिया बढ़ जाने से होते हैं। जलोदर, हृदय रोग आदि में लाभ करती है। पाण्डु तथा कामला एवं हृदय कीं निर्बलता में इसके साथ में प्रवाल, लोहभस्म, कपर्दभस्म तथा पथ्य रूप में दुग्ध यवमण्ड (जौ का पानी) आदि देना चाहिए।

ताप तथा अंगमर्दशामक होने से, फुप्फुस शोथ (पार्श्वशूल) तीव्र आमवात, सन्धि शोथ, शोथअंगमर्द मुक्त ज्वरों में दी जाती है। तिक्त रस के कारण यह उदर या अंगों की जलन (दाह) को भी कम करती है। अतः आन्तों या अन्य किसी भी अंग में दाह होने पर, विशेषकर प्रसूति ज्वर में उपयोगी है। कुछ सीमा तक यह गर्भाशय संकोचक भी है। यह गुण प्रसूत ज्वर निरासार्थ लाभकारी है। वेदना या अंगमर्दशामक होने के कारण वातनाड़ियों और मस्तिष्क के शोथ से उत्पन्न लक्षणों में भी लाभकारी है।

दुष्प्रभाव—कुटकी विषैली औषध है। अधिक समय तक बड़ी मात्रा में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। यद्यपि काली कुटकी का प्रयोग कर सकते हैं। अधिक मात्रा में सेवन करने से विपरीत प्रभाव होता है तथा नाड़ी शिथिल होती है। यदि एक बार हृदय ठीक होकर पुनः निर्बल हो गया हो तो इसका सेवन बन्द कर देना चाहिए। किन्तु सौभाग्यवश इससे मृत्यु नहीं होती, क्योंकि अधिक मात्रा में खा लेने पर स्वयमेव वमन, विरेचन हो जाते हैं। काली कुटकी से इसका भेद स्मरण रखना चाहिए।

कर्मरंगम् (धाराफलम् भव्यम्)

नाम—(हि० गु०) कमरख, कमरक (म०) करमल (बं०) कामरांगा (तै०) पुलुसकायुलु (ता०) पुलिचकायी (अं०) चाईनीज[1] गूर्जबेरी (वा० ले०) एवेर्होआ[2] करम्बोजा लिन्न, चांगेयादि वर्ग[3]।

गुण—कर्मरंगं हिमं ग्राही स्वाद्वम्लं कफामवातहृत्। पक्वं तु मधुराम्लं स्याद्द्बलपुष्टिरुचिप्रदम् ॥

पका हुआ कमरख का फल मधुर, अम्ल, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, बल-पुष्टिदायक, रुचिकारक, पित्त वातकफ तथा कफनाशक है।

प्रयोग—पके फल को काली मिर्च के साथ पीसकर शर्बत बनाकर प्रयोग करने से दाह, रक्तपित्त, प्यास आदि शान्त होते हैं। यह रक्तशुद्धिकर भी है।

वक्तव्य—पंचांग का विशेषकर पके फूल का प्रयोग होता है। पुष्प वर्षा ऋतु में लगते हैं।

घृतकुमारी (गृहकुमारी, दीर्घपत्रा)

परिचय—सुपरिचित क्षुप

उ० स्थ०—सर्वत्र शुष्क प्रदेशों में अधिक

पुष्प—पुराने क्षुप में पुष्प दण्ड पर लाल फूल निकलते हैं।

---

1. Chinese gooseberry.
2. Averhoa Carambosa, Linn.
3. Oxalidaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

व्य० अं०--पत्र सत्व

रस--तिक्त, मधुर

वीर्य--शीत

विपाक--मधुर

दोष--त्रिदोषशामक

प्र० अ०--यकृत्, अन्त्र, गर्भाशय

वि० गु० क०--रेचक, शोथहर, दीपन, पाचन, रजःस्रावक

मात्रा--रस--१ तोला, शुष्क सत्व--१-३ रत्ती

नाम--(हि०) घीगुवार, ग्वारपाठा (पं०) कुमारगन्दल (म०) कोरफड (गु०) कुवांर (कच्छी०) लेपरी (क०) लोलिसर (तै०) कलबन्दा (ता०) सिरूकत्ताले (अं०) इण्डियन एलोअ[1] (वा० ले०) एलोइण्डिका[2]। इस जाति के अनेक क्षुप हैं। गुणों में सब समान हैं। पलाण्डु वर्ग[3]।

गुण--कुमारीभेदिनीतिक्ता शीता नेत्र्या रसायनी। मधुराबृंहणी बल्यावृष्यावातविषप्रणुत्॥
गुल्मप्लीहयकृद्वृद्धि कफज्वरहरीहरेत्। ग्रन्ध्यग्निदग्ध विस्फोट पित्तरक्तत्वगामयान्॥ (भाव०)

ग्वारपाठा कड़वी, शीतल, नेत्र्य, रसायन, मधुर विपाकी, पौष्टिक, रसायन, बल-वीर्यवर्धक, वात, विष, पित्त-कफशामक, उदर रोग गुल्म, यकृत्प्लीहावृद्धि, ज्वर, अग्निदग्ध, रक्त विकार तथा त्वचाविकारशामक है। बड़ी मात्रा में रेचक, रजःस्रावक तथा कृमिहर है। एक मधुरजाति भी है।

प्रभाव तथा प्रयोग--अल्प मात्रा में यह दीपन, पाचन तथा क्षुधावर्धक है। किन्तु बड़ी मात्रा में अन्त्रों में क्षोभक करके रेचन (काला पतला) कराती है। रेचन के समय इससे उदर में ऐंठन तथा वेदना होती है। अतः पारसीकयावानिका या अजवायन सोंठ आदि मिलाये जाते हैं। इससे १०-१२ घण्टों में रेचन आता है। पाचन तथा यकृत् की क्रिया का सुधार करता है तथा शोथ को शान्त करता है। रजःकृच्छ्रता में उपयोगी है। क्योंकि यह गर्भाशय में रक्त प्रवाह बढ़ा देती है विशेषतः एलुआ।

बाह्य प्रयोग--सफेद जीरा और फिटकिरी के साथ ग्वारपाठा का गूदा मिला पोटली बनाकर नेत्रों पर बार-बार फेरने से तथा रस आँख में निचोड़ने से नेत्राभिष्यन्द (आँख की लाली तथा दर्द) शान्त होता है। शोथ, बद कछराली आदि पर घी कुंआर का पत्ता एक ओर से छील कर, उस पर आंवाहल्दी का चूर्ण छिड़ककर कोष्ण (गुनगना) करके बांधते हैं।

अन्तः प्रयोग--यकृत्प्लीहावृद्धि में नूसार तथा टंकण के साथ, गुल्म या उदरशूल में ग्वारपाठे की गिरी ६ माशा गोघृत ६ माशा, हरड, सैन्धव नमक १-१ माशा, शुद्ध हींग ४ रत्ती मिलाकर सेवन कराया जाता है। कमर-दर्द में या कटिशूल में गेहूँ का आटा, कुमारी का गूदा, घी, खांड़ मिलाकर लडडू बनाकर खिलाने से लाभ होता है। बालक के डब्बे में बब्बूल गोंद १ तोला, एलुआ ६ माशा कुमारी रस में पीसकर पेट पर लेप करते हैं। गूदा उबाल कर उसका पानी निकाल शेष का शाक बनाकर खाने से कब्जी (विबन्ध) दूर होता है। पाचन के विकारों के कारण उत्पन्न सिरदर्द में कुमारी गूदा, गुलकन्द तथा रूमीमरतगी मिलाकर पीने से लाभ होता है। एलुआ या घीकुंवार के रस में हींग मिलाकर पेट पर लेप करने से या सोहागा मिलाकर $\frac{1}{2}$ रत्ती रस या $\frac{1}{2}$ रत्ती हींग गौ के दूध के साथ देने से बच्चों का उदरशूल तथा फुप्फुस रोग शान्त होता है। मन्दाग्नि में अजवायन, सैन्धव नमक के साथ, प्लीहा वृद्धि

1. Indian Aloe.
2. Aloe Indica, Aloe Vera, etc.
3. Liliaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तिल्ली में हल्दी के साथ, अर्श में गन्धक के साथ, मूत्रकृच्छ्र में शक्कर के साथ, तिल्ली तथा विबन्ध में २ तोला गिरी पर आधी रत्ती कासीस, आधी रत्ती हींग मिलाकर पिलाने से लाभ होता है।

योग—कुमार्यासव, लोहासव, कुमारीपाक। यह अनेक द्रव्यों के शोधन, मारण तथा भावना देने में प्रयोग की जाती है।

कुमारीसत्व (एलीयकम्-कृष्णबोल:)

नाम—(हि०) एलुआ सुहागा, मुसब्बरा (बं०) मोशब्बर (म०) कालाबोल, एलिया (गु०) एलियो (अं०) एलोज[1], इसके गुणधर्म कुमारी के समान हैं। किन्तु अधिक तीक्ष्ण अन्त्रों की निर्बलता से उत्पन्न विबन्ध में, कामला, पाण्डु, मन्दाग्नि में १-२ रत्ती की मात्रा में देते हैं। बच्चों के उदरशूल या आध्मान में देते हैं। नाभि पर लेप करने से वायु अनुलोम होता है। साबुन के साथ पीसकर पेट कर लेप करने से बच्चे को दस्त आते हैं। मां के दूध में भी यह निकलती है। अतः दूध पीने वाले बच्चे को माँ के दूध से दस्त आ जाते हैं। शोथ को शान्त करने के लिए एलुआ, अफीम, रक्त बोल और अंडे की सफेदी का लेप करते हैं। अत्युत्तम है। श्वास में एलुआ की गोलियाँ, लालबोल तथा सुहागा मिलाकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना दिन में दो बार देने से लाभ होता है। स्नायुक (नाहरूआ) में एलुआ का लेप लगाने से वह गल जाता है।

गोरोचना (रोचना-पिंगला)

नाम—(हि० मा० बं० म० प०) गोरोचन (गु०) गोरुचन्दन (क०) गोरोजन (तै०) गोरोचनमु (ता०) गोरोजनम् (अं०) ओक्सबाईल[2], (ले०) फैल बोवीनम्-प्युरिफिकेटम्[3]।

परिचय—यह गाय या बैल के पित्ताशय तथा वृक्क में प्राप्त होने वाली पित्त की अश्मरी है। सब गायों या बैलों (वृषभ) में नहीं होती। जिनमें होती है उनमें कामला-पाण्डु के लक्षण तथा पित्ताश्मरी सम्बन्धी वेदना भी होती है। यह जायफल के आकार की गोल, गहरे या पीले वर्ण की तथा पलाण्डु (प्याज) के समान परत (स्तर) वाली होती है। स्वाद में कड़वी, कटु, जल में घुलने वाली, एलोपैथी में भी इसका प्रयोग होता है। मात्रा ४-८ रत्ती।

गुण—गोरोचनाहिमा वश्या तिक्तामगेलकन्तिदा। विषालक्ष्मी ग्रहोन्माद गर्भस्त्रावक्षतास्रजित्। (भाव)

गोरोचन, तिक्तरस, शीतवीर्य, कटु विपाकी, कान्ति प्रद, त्वचा रोग, श्वित्र, चेहरे के दाग, ग्रह, उन्माद, अपस्मार वात-कफशामक, पाण्डु-कामला, क्षत गर्भस्त्रावनाशक है। यह उत्तम पाचक, दीपन, अनुलोमक तथा सारक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—मुख द्वारा जल में घोलकर या गोली के रूप में भोजन के दो घंटे बाद देना उत्तम है। यह यकृत् में जाकर पित्त को अधिक मात्रा में उत्पन्न करती है, तथा उसका अन्त्रों में स्राव भी कराती है, अतः दीपन-पाचन में सहायक है विशेषकर वसा के पाचन में। आन्तों की सड़ांद को रोकती है तथा उससे उत्पन्न अपानवायु को भी। अतः आनाह, अफारा आदि में उत्तम है। जीवनीय ए, डी तथा के के आशोषण में भी सहायक है। इस प्रकार रक्त में जमने की शक्ति बढ़ाती है। जिससे क्षत, गर्भस्त्रावादि का रक्तस्राव बन्द होने में सहायता मिलती है। यदि गुदा में मल सुद्दे (सूखामल) अटक गया हो और बड़ी बस्ति देनी सम्भव न हो तो २-४ माशा की मात्रा में गोरोचन को ३½-५ तोला जल में घोलकर गुदा द्वारा दें। श्वित्र तथा चेहरे के काले धब्बों और अर्श पर लेप लगाया जाता है। प्रतिदिन २½ माशा गोरोचन, अर्क गुलाब में पीसकर पीने से अपस्मार (मिर्गी) का वेग को रुकता हैं।

---

1. Aloes.
2. Ox-bile.
3. Fell-Bovinum Purificatum

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

योग—चन्द्रशेखर रस—गोरोचन, टंकण (सुहागा) मंडूर, लेह, अभ्रक, रस-सिन्दूर, समभाग एकत्रकर पीसकर अपराजिता के रस में भावना दे, २-२ रत्ती की गोली बना लें। दो गोलियाँ दिन में २-४ बार जल के साथ बाल ज्वर, वमन, विरेचन सहित तथा अन्य ज्वरों में उपयोगी है।

परुषकम् (मृदुफलः, धन्वनच्छदः)

नाम—(हि० म० गु० पं०) फालसा (बं०) फलूसा (क०) सण्णखर्जूर (तै०) फुटिकी (वा० ले०) ग्रेविआ[1] एशियाटिका, परुषक[2] वर्ग।

उ० अं०—फल त्वक्

पुष्पकाल—मई-जून

गुण—परुषकं कषायाम्लं लघूष्णं स्वादु पित्तलम्। रूक्षंमारुतजित्, पक्वं स्वाद्वम्लंशुक्रलंहिमम्॥
रोचनं मधुरं पाके हृद्यं विष्टम्भि बृंहणम्। हन्ति मारुत पित्तास्र दाह तृष्णा क्षतक्षयान्॥ (कै०)

फालसे की झाड़ी सुपरिचित है। फल मधुर तथा मधुराम्ल भेद से दो प्रकार का होता है। अपक्व फल खट्टा, कसैला, मधुर, अनुरस वाला, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, रूक्ष, पित्तवर्धक, वातशामक, पक्वफल, शीतल, मधुर विपाकी तथा वृष्य, रुचिकारक, हृद्य, पौष्टिक, वातपित्त, दाह, प्यास-क्षीणताशामक, हृद्य पौष्टिक तथा ग्राही है।

प्रयोग तथा प्रभाव—यह हृदय-यकृत् तथा आमाशय को बल देने वाला, उदर संग्राही, पित्त तथा रक्त विकारशामक है। पित्त रोगों में विशेषकर पाण्डु-कामला तथा यकृत् शोथ में फालसे का शर्बत अत्यन्त लाभप्रद है। ज्वरों की वमन, प्यास दाह, मुखशोथ, मूत्रकृच्छ्र, हिचकी, अतिसारशामक है। जड़ की छाल का हिम मूत्रकृच्छ्र, रक्त-पित्तशामक है। मूल त्वचा का काला भाग निकाल कर शेष त्वचा ४-५ तोला लेकर कूटकर हिम बनाकर पीने से मधुमेह में उपकार होता है।

पारिजातः (शेफालिका)

नाम—(हि० पं० मा०) हारसिंगार (गु०) हारशणगार (म०) पारिजात (बं०) सिउली (क०) पारिजात (तै०) पारिजातम् (ता०) पगलमौली (अं०) नाईट जेस्मिन्[3] वीपिगनिक्टैन्थस्[4] (वा० ले०) निक्टैन्थस्[5] आर्बोर-ट्रिस्टिस्, पारिजातक वर्ग[6]।

परिचय—हारसिंगार का गुल्म (झाड़ी) सुपरिचित है। प्रायः सर्वत्र ही उपलब्ध होती है। बगीचों में शोभार्थ लगाई जाती है। पुष्प रात को विकसित होते हैं तथा प्रातः झड़ जाते हैं। पत्र तथा त्वचा का उपयोग होता है। पत्र अत्यन्त खर होते हैं।

मात्रा—छाल ४-८ रत्ती, पत्र २-४ संख्या में, क्वाथ १-२ तोला।

गुण—पत्र कुछ कड़वे, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, लेखन, स्वेदल, सर, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्नपित्त निष्कासक है पुष्प प्रायः वर्ष भर विशेषकर वर्षा के बाद।

प्रयोग—आमवात में पुष्प स्वरस, जीर्ण ज्वर में पत्र स्वरस मधुके साथ, उदरकृमियों में पत्ररस में नमक डालकर पीने से लाभ होता है। पुष्पों (श्वेत भाग) में दुगुनी शक्कर मिलाकर ४० दिन तक शीशी में भरकर धूप में

1. Grewia-Asiatica.
2. Tiliaceae.
3. Night Jasmine.
4. Weeping Nyctanthes.
5. Nyctanthes-arbor, Tristis, Linn.
6. Oleaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रखने से पुष्पखंड (गुलकन्द) बन जाती है। यह हृदय बल्य तथा पित्तजन्य धड़कन मिटाती है। दाद में पत्तों का रस मलते हैं। रक्तप्रदर या मासिक धर्म में अतिस्राव होने पर हारसिंगार की कोंपलें तथा कालीमिर्च मिलाकर खिलाने से लाभ होता है। यकृत् प्लीहा बढ़ जाने पर स्वरस या चूर्ण लाभ करता है। ताम्र या लोहभस्म के साथ सेवन करने से और भी लाभ होता है।

भृंगराजः (मार्कव-केशराजः)

परिचय—भांगहा का क्षुप सुपरिचित है। पुष्पों के अनुसार श्वेत, काला या नीला तथा पीला भांगरा तीन भेद हैं। पंचांग व्यवहार्य है, काला दुर्लभ।

रस—कटु तिक्त
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
प्र० अ०—वात-कफहर
वि० गु० क०—केश्य, पित्तसारक, रसायन, गुल्मघ्न
मात्रा—३-६ माशा

नाम—(हि० पं०) भांगरा (मा०) जलभांगरो (गु०) भांगरो (म०) माका (बं०) केशराज-भीमराज (क०) बेण्णेगरुग (तै०) गुंट कलगर (ता०) करेष लंगणि (वा० ले०) श्वेत एक्लिप्टा[1] एल्बा, पीला वेडेलिआ[2] कैलेण्डयुलेसिआ, काला या नीला एक्लिप्टा[3] प्रोस्ट्रेटा, सूर्यमुखी[4] वर्ग।

गुण—मार्कवः कटुस्तिक्तो रूक्षोष्णोऽक्षिशिरोर्तिनुत्। कफवातहरोदन्त्यस्त्वच्यः केश्यो रसायनम्॥
हन्ति कासक्रमिश्वास कुष्ठ शोफाम पांडुताः॥ (कै०)

भांगरा कटु, तिक्त, उष्ण वीर्य, कटु विपाकी, वात कफहर, रूक्ष, रसायन, त्वचा, दन्त्य तथा केशों के लिए हितकर कास, उदरक्रमि, कोष्ठ, शोथ, आमदोष, पांडु रोग नाशक है।

प्रयोग तथा प्रभाव—यह अन्तः प्रयोग से यकृत् उत्तेजक तथा शोधक है। पित्त का स्राव कराता है, अग्नि-दीपक तथा वातानुलोमन है। आमाशय तथा अन्त्रों की शिथिलता से उत्पन्न रोगों—अतिसारादि का नाशक है। संग्रहणी सर्वांग शोथ में यदि केवल भांगरा तथा बथुआ का ही प्रयोग किया जाए एक दो महीनों तक, तो अत्यन्त लाभ होता है। अनुभूत है। सूर्यावर्त में बकरी के दूध में, भांगरा रस मिलाकर नस्य दी जाती है। कटु विपाकी तथा कटु पित्तरेचक होने से पांडु, शोथ, कामलानाशक है। उत्तम रक्तशोधक, पित्तरेचक होने से अर्श, आमवात, कण्डु, यकृत् प्लीहावृद्धि नाशक है। काला भांगरा अन्दर खाने से तथा तैल बनाकर लगाने से बाल काले होते हैं। भृंगराजरस सिद्ध घृत एक मास तक केवल भांगरा रस तथा दूध पीने से बल-स्वास्थ्य तथा आयु बढ़ती है। बच्चों के कफ खांसी को मिटाने के लिए भांगरा रस २-८ बूंद मधु मिलाकर पिलाना चाहिए।

मूल को घिसकर नेत्र रोगों में लगाया जाता है। अधिक स्वरस पिलाने से वमन हो जाती है। पीसकर लेप करने से शोथ उतरती है।

योग—(१) भृंगराज तैल—बालों को काला करने तथा त्वचा रोगों में।
(२) गन्धक रसायन—४ रत्ती से १ माशा तक उत्तम रक्त शोधक
(३) बालरस—२-४ रत्ती बच्चों के रोगों में

1. Eclipta Alba, Hassk.
2. Wedelia calendulacea, juss.
3. Eclipta prostrata, Linn.
4. Compositeae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यवनिका (शंखिनी, कल्पनाथ)

नाम—(हि०) कालमेघ, कल्पनाथ (बं०) कालामेघः, महातिता (म०)पालेकिराईत, ओलें किराईत (गु०) लोलुंकरियालुं (वा० ले०) ऐण्ड्रोग्रेफिस्[1]-पेनिक्युलेटा, वासक[2] वर्ग ।

परिचय—कालमेघ का क्षुप प्रायः सर्वत्र वर्षा में उत्पन्न होता है । पुष्पकाल दिसम्बर, पंचांग औषधियों में प्रयुक्त होता है । चिरायते के समान कड़वा तथा गुणकारक है ।

गुण—शंखिनी कटु तिक्ता, तीक्ष्णस्निग्धासरा । वीर्योष्णा कटुका पाके, दोषोदरगरापहा ।। (कै०)

सरल होने से अनुवाद की आवश्यकता नहीं । चिरायते के समान गुण तथा प्रभाव है । विशेषतः यकृत् तथा प्लीहावृद्धिशामक है । पत्तों का रस या अर्क या काढ़ा ½ से २ तोला तक देना चाहिए । बच्चों के लिए विशेष गुणकारक है । विषम ज्वर तथा जीर्ण ज्वर, पांडु, कामला में विशेष लाभ करता है ।

योग--कालमेध नवायस लोह । पांडु, विषमज्वर यकृत् वृद्धि नाशक है ।

रोहीतकः (प्लीहृ शत्रु-दाडिमच्छद्रः)

परिचय—रोहीतक का मध्यम प्रमाण का वृक्ष पंजाब, सिन्ध, राजस्थान में अधिक होता है । पत्ते दाडिम जैसे ही तथा पुष्प भी वैसे ही लाल । पुष्पकाल फाल्गुन-चैत्र । त्वचा व्यवहार्य अंग है ।

रस—कटु तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—वात-कफहृर

प्र० अं०--यकृत-प्लीहा

वि० गु० क०--जीर्ण ज्वर-यकृत् प्लीहोदरशामक

मात्रा—३-६ माशा चूर्ण

नाम--(हि०) रोहेड़ा, रगतरोहेड़ा (म०) रोहिड़ा (गु०) रोहिडो (क०) मुत्तलगिड (तैं०) चावमानु (ता०) थेम्भरम् (वा० ले०) टिकोमा[3] अण्डयुलेटा श्योनाक[4] वर्ग । कुछ आचार्य बंगीय वृक्ष 'आमूरा[5] रोहोतका' को रोहीतक मानते हैं । वह अशुद्ध है ।

गुण---रोहीतः कटुस्तिक्तः सरोष्णंःकफवातनुत् । प्लीहोदरयकृद्गुल्म मास मेदो विषापहा ।। (कै०)
रोहितको यकृत्प्लीहा गुल्मोदरहरः सरः ।। (ध० नि०)

रोहीतक कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, वात-कफशामक, मृदुरेचक वायु का अनुलोमन होने से जीर्ण-ज्वर, अग्निमान्द्य, यकृतशोथ, वृद्धि तथा गुल्म, स्थूलता, विषनाशक, वायु के आध्मान में अत्यन्त लाभकारक है । पाण्डु-कामलाशामक है ।

योग—रोहीतकारिष्ट, रोहीतकलोह, रोहीतक घृत । यह यकृत् प्लीहा एवं अन्य स्रोतों की शोधक तथा यकृत् प्लीहा वृद्धि और दूषित मलों की निष्कासक है ।

---

1. Andrographis Paniculata Nees.
2. Acanthaceae.
3. Tecoma Undulata., Gden.
4. Bignoniaceae.
5. Amoora Rohitaka, W. & A.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सप्तला (शातला-कंटवल्ली चर्मकषा-फेनिला)

नाम—(हि०) शिकाकाई, चिकाकाई (म०) शिकेकाई (गु०) चिकाखाई (वा० ले०) अकेसिआ[2] कोन्सिना, बब्बूलवर्ग[1]।

गुण—शातला शोधनी तिक्ता कफपित्तास्र दोषनुत्। शोथोदरानाहहरा किंचिन्मारुतकृद्भवेत्॥ (ध० नि०) बब्बूल जातीय सातला कड़वी, शीतवीर्य (भाव०) कटु विपाकी, शोधन, वायुवर्धक, कफपित्त, रक्तविकार, शोथ उदर, आनाह और उदावर्तनाशक है। सिकाकाई दक्षिण तथा मालवा, राजस्थानादि में उपलब्ध होती है। फाल्गुन से आषाढ़ तक पुष्प लगते हैं। पंचांग उपयोगी है। विशेषकर फलियाँ। पत्तियाँ उत्तेजक, वामक, अनुलोमक है। इससे नाड़ी की तीव्रता कम होती है। मूत्र का प्रमाण बढ़ता है। पत्र अम्ल, रुचिकर, विरेचक तथा यकृदुत्तेजक हैं। जीर्ण कफ रोगों में कफ पतला करने तथा श्वासावरोध को कम करने के लिए फलियों का फाण्ट दिया जाता है। फली का काढ़ा केश्य तथा जूँ आदि कृमिनाशक है। पत्तों या फली की चटनी अरुचि तथा विबन्ध (कब्जो) नाशक है। प्लीहा वृद्धि, कामला रोग में यह पित्त को निकाल देता है। अधिक मात्रा में देने से वामक तथा विरेचक है।

सप्तचक्रा (सप्तकपि, वक्रमूला)

नाम—(हि०) चिल्ला-चिल्लर (म०) सप्तरंगी, मोड़ा अगेरु (कोकंडा) अधुरकांडे (गोवा) सातांगिया (वा० ले०) केसिएरिआ[3] एस्क्युलेण्टा, सप्तचक्री[4] वर्ग।

यह झाड़ दक्षिण भारत तथा लंका में होता है। इसके मूल का प्रयोग होता है। इसे काटने पर सातरंग के चक्र दीखते हैं। अतः इसे सप्तकपि कहते हैं।

मात्रा—चूर्ण १०-२० रत्ती तक, क्वाथ २-४ तोला

गुण तथा प्रयोग—सप्तरंगी कड़वी, अनुरस में कषाय, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, त्रिदोषशामक, मृदुरेचक, स्वेदापनयन तथा यकृदुत्तेजक है। यह उत्तम पित्तरेचक है, बिना किसी कष्ट के पीले शौच लाता है। यकृत् शोथ तथा शिथिलता दोनों का ही नाशक है। यकृत् की विनिमय क्रिया सुधारकर रक्त तथा मूत्र में शर्करा का प्रमाण कम करता है, अतः यकृत् रोग उद्भूत् मधुमेह में लाभदायक है। अफारा अधिक पसीना, प्रमेह, पिडिका, पाँव पर की शोथादि नष्ट होने से अर्श में भी लाभप्रद है।

शरपुंखा (प्लीहशत्रु-बाणपुंखा)

परिचय—शरपुंखा का क्षुप प्रायः सर्वत्र उपलब्ध है। वर्षा ऋतु में खूब बढ़ता है।

पुष्पकाल—शरद् ऋतु, सफेद तथा गुलाबी

व्यं० अं०—पंचांग, क्षार

रस—तिक्त, कषाय

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—कफ-पित्तशामक

प्र० अं०—यकृत् प्लीहा

---

1. Acacia Concinna. De.
2. Mimosaceae.
3. Caeseria, Esculenta, Roxb.
4. Samydaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वि० गु० क०—यकृत्प्लीहा-वृद्धिशामक, ज्वरहर, रक्तशोधक

मात्रा—३-६ माशा

नाम—(हि०) शरफोंका (बं०) वतनील (गु०) शरपंखों (म०) उन्हाली (क०) मुल्लुकोग्गे (तै०) वोंटवेंपलि (ता०) कल्लुकाय, विरै (अं०) पर्पल् टेफ्रोजिया[1] (वा० ले०) टेफ्रोजिआ पर्प्यूरिआ[2], गालेगा[3] पर्प्यूरिआ, शिम्बी वर्ग, अपराजिता जितोय वर्ग।

गुण—शरपुंखो यकृत्प्लीहा गुल्म-व्रण-विषापहः। तिक्तः कषायः कासास्रश्वास ज्वरहरोलघुः॥ (भाव०)

सरफोंका (पत्ता तोड़ने से उसकी पूंछ बाण के पंख जैसी हो जाती है। अतः शरपुंखा कहते हैं) कड़वी, कसैली, उष्ण, दोषहर, यकृत्प्लीहा-वृद्धि, गुल्म, व्रण, विष, कास, श्वास, रक्तविकार, ज्वरशामक और लघु है।

प्रभाव तथा प्रयोग—तिक्त होने के कारण रक्तशोधक, स्रोतों का शोधक एवं उनके स्रावों का वर्धक है। अतएव यकृत्प्लीहा का शोधक, रजःप्रवर्तक तथा मूत्रल है। त्वचा के फोड़े-फुन्सियों खाजादि में रक्तशोधनार्थ तथा कच्ची भस्मों के सेवन से उत्पन्न दोषों के निवारणार्थ इसका प्रयोग किया जाता है। रक्तार्श में विशेष गुणकारक है। शरपुंखामूल, गिलोय, वासा, ताजा देवदार, सोंठ, कालीद्राक्ष, कुरंटकमूल, पिप्पलीमूल, अमलतास का गूदा, समान भाग क्वाथ उत्तम रक्तशोधक, मल प्रवर्तक तथा यकृत-प्लीहाशामक है।

मन्दाग्नि, संग्रहणी, जीर्णातिसार में शरपुंखा क्वाथ में सोंठ, लौंग का प्रक्षेप डाल कर प्रयोग करने से लाभ होता है। शरपुंखा क्षार हरड़ का चूर्ण तथा पलाश क्षार सममात्रा में मिलाकर ४ माशा की मात्रा में देने से गुल्म शान्त होता है। मूलक्वाथ को छाछ के साथ पीने से बढ़ी प्लीहा यकृत् कम होता है।

हपुषा (विस्रा-यकृद्वर्णा-अश्वत्थफला)

नाम—(हि०) हाऊबेर (ब०) हब्बूल, आरार (अं०) जुनीपर[4] (वा० ले०) जुनिपरस्[5] कम्युनिस्, कोणवर्ग[6]।

परिचय—हपुषा कोणवर्ग की वनस्पति है। जो उत्तर-पश्चिम हिमालय, कुमायूं तथा कुर्रम की घाटी में ११,००० फुट की ऊँचाई पर होती है। वृक्ष १०५-१२० फुट ऊँचा सरों के पत्तों के समान या झाऊ के पत्तों के समान पत्रों वाला, जंगली बेरवत् लाल रंग के फल, पकने पर काले वर्ण का मधुर, गन्धि, कुछ तिक्त तथा हल्का चरपरा। इसका ही प्रयोग होता है।

मात्रा—२-८ माशा तक। इसमें एक उड़नशील तैल, शर्करा तथा अम्ल विशेष होता है।

गुण—हपुषा तुवरा तिक्ता कटूष्णादीपनी गुरुः। ग्रहणीशूल गुल्मार्शो वात-पित्तोदरापहा॥ (कै०)

हाऊबेररस में कटु, तिक्त, कषाय, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, अग्निदीपक, वात-कफशामक, संग्रहणी, गुल्म, अर्श, विबन्ध, वातादि पित्तोदर, प्लीहा-वृद्धिनाशक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—हपुषा शोथ को विलीन करने वाली शोधक, लेखन, संग्राही, वातानुलोमक, उत्तेजक तथा मूत्र-आर्तव उत्पादक है। इसकी साक्षात् क्रिया वृक्कों पर होती है। मूत्र का प्रमाण बढ़ता है। हृदयोदर, यकृदुदर, जलोदर, पुरान्तसूजाक, श्वेतप्रदर, उदरशूलशामक है।

1. Purple Tephrosia.
2. Tephrosia Purpurea, Pers.
3. Galega Purpurea, Linn.
4. Juniper.
5. Juniperus Communis, Linn.
6. Conifereae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इसमें से एक तैल हपुषा तैल (juniper oil) निकलता है। जिसकी क्रिया तारपीन के समान होती है। विशेष मूत्रल है। रक्त में मिलने के बाद मूत्र द्वारा बाहर निकलता है। मूत्र की मात्रा के बढ़ाने के साथ-साथ मूत्र गन्ध को भी बदल देता है। मात्रा १-४ बूंद अधिक मात्रा में दम घोटता है।

दीपन, वातानुलोमन होने से पेट की गुड़गुड़ाहट तथा आमाशय के रोगों में दिया जाता है। उष्णवीर्य, शोथशामक होने से वात रोगों पक्षाघात आदि में दिया जाता है। अधिक समय तक गर्भवती को सेवन नहीं कराना चाहिए। अन्यथा गर्भपात होने की संभावना रहती है।

हरिद्रा-चतुष्टयम् (हरिद्रा, दारूहरिद्रा, अरण्यहरिद्रा, वनहरिद्रा च)

नाम—(सं०) हरिद्रा, निशा-गौरी-वरवर्णिनी (हि०) हल्दी, हरद (बं०) हलुदु (म०) हलद (गु०) हलदर (अं०) टरमेरिक्[1] (वा० ले०) कर्क्युमा लोंगा[2], हरिद्रावर्ग[3]।

परिचय—अदरक के समान हल्दी का क्षुप भी सर्वत्र बोया जाता है।

व्य० अं०—कन्द

रस—कटु, तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—कफ-पित्तशामक

प्र० अं०—यकृत्, त्वचा, पाचक अंग

वि० गु० क०—संग्राही, अनुलोमन, यकृत् रक्तशोधन, अग्निदीपन

मात्रा—१-४ माशा चूर्ण। वनहरिद्रा भी इसका भेद है।

गुण—हरिद्रातुरसेतिक्ता रूक्षोष्णा विषकुष्ठनुत्। मेहकण्डू व्रणान् हन्ति देह वर्ण विधायिनी॥
विशोधिनी कृमिहरा पीनसारुचिनाशनी॥ (ध० नि०)

हल्दी रस में कड़वी, कटु, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, कफपित्तशामक, रूक्ष, वर्णप्रसादक, त्वच्य, विष, कुष्ठ, प्रमेह, कण्डु, कृमि, पीनस, (नजला) अरुचि, पाण्डु तथा अपचानाशक है।

प्रभाव और प्रयोग—हल्दी में उपलब्ध एक उड़नशील तैल, स्वाद तथा पीतरंजन द्रव्य के कारण इसकी गन्ध तथा स्वाद है। कटु रस, तीक्ष्णता रूक्षता तथा उष्णवीर्यता के कारण यह कफ की मात्रा कम करती हैं। शरीर का चिपचिपापन न्यून होता है। स्रोतों का उद्घाटन तथा वात का अनुलोमन करती है। यकृत् के स्रोतों में से पित्त तथा अन्य स्राव बहाकर उसे शुद्ध करती है। उत्तम पाचन तथा रक्तशोधन होता है। सारे अंग उचित रूप से क्रिया करते हैं। कफजन्य प्रमेह में हल्दी का रस आंवले के रस में मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है। स्रोतों की उद्घाटक होने से पाण्डुकामला जलोदर में तथा लेखन होने के कारण व्रणों में रक्तशोधक होने से त्वचा रोगों, रक्त विकारों में व्यवहृत होता है। व्रणों के कृमियों को तथा दुष्ट धातु को नष्ट कर व्रणरोपण में सहायता देती है। चोट या मार लगने पर हल्दी को दूध के साथ देते हैं। इससे अन्दर की शोथ कम होती है तथा रक्तसंचार बढ़कर चुटीले अंग का पोषण उत्तम होता है। बाहर की शोथ में लेप तथा उपनाह के काम भी आती है। नेत्र शुक्र रोग में अंजन के रूप में, तथा नेत्राभिष्यन्द (आंख आना) में १ भाग हल्दी को १० भाग जल में घोलकर नेत्र में टपकाते हैं तथा सेक करते हैं। इससे नेत्र पीड़ा कम होती है। मैल तथा पूय आना कम होता है। जोंक के दष्ट स्थान पर इसे लगाया जाता है। ज्वरसहित प्रतिश्याय में उष्ण दूध

1. Turmeric.
2 Curcuma Longa, Linn.
3. Scitamineae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

में हल्दी तथा कालीमिर्च का चूर्ण डालकर पिलाने से लाभ होता है। १ तोले हल्दी का चूर्ण दही में मिलाकर पीने से कामला-पाण्डु में लाभ होता है। दन्तपीड़ा में हल्दी के चूर्ण की पोटली दबाने से वह बन्द होता है। गर्भाशय शोथ में हल्दी तथा घी की बत्ती बनाकर रखने से वह शान्त होती है। श्लीपद, कुष्ठ, दाद में हल्दी गोमूत्र के साथ लेने से लाभ होता है। प्रतिश्याय के प्रारम्भ में हल्दी का धुंआ रात को नाक से पीकर, कुछ घंटों तक कुछ जलादि नहीं लेना चाहिए। हल्दी तथा तिल को पीसकर उबटन करने से झाई आदि मुख दूषक नष्ट होते हैं।

(आ) अरण्यरजनी (वनहरिद्रा)

नाम—(हि०) जंगली हल्दी (बं०) वनहल्दी (ब०) रान हलद (म०) वेदी हलद (अं०) वाईल्ड टर्मरिक[1], कोचीन टर्मरिक[2] (वा० ले०) कर्क्यूमा ऐरोमेटिका[3], हरिद्रा वर्ग। पुष्पकाल-शरद् ऋतु।

परिचय—यह बंगाल तथा ट्रावनकोर में अधिक होती है। हल्दी का ही जंगली जात भेद है। गन्ध हल्दी की अपेक्षा तीव्र तथा कर्पूर के समान होती है। अतः इसे कर्पूर हल्दी भी कहते हैं।

गुण—अरण्यरजनीकन्दः कुष्ठवातास्रनाशनः। सर्वदोषविषघ्नश्च हिध्माश्वसनकासजित्॥ (कै०)

प्रयोग साधारण हल्दी के समान। सर्पविष में पत्र हरिताल, कुष्ठ तथा अजवायन के साथ गोली बनाकर देते हैं। त्वचा रोगों में इसका लेप लगाया जाता है। वातरक्त में उत्तम है।

योग—हरिद्राखण्ड, प्रमेहहर, क्वाथ, रसादिलेप।

आम्रगन्धि (हरिद्रा)

नाम—(हि०) आंबा हल्दी (बं०) आमआदा (म०) आंवा हलद (गु०) आंवा हलदर (अ०) मेंगोजिन्जर[4] (वा० ले०) कर्क्युमा अमाडा[5], हरिद्रादि वर्ग। (प०) चवांहल्दी।

आंबा हल्दी शीतल, वातवर्धक, पित्तशामक, मधुर, तिक्त, वृष्य तथा सन्निपात और कण्डु नाशक है। कण्डु में इसका लेप बहुत लाभ करता है। ३-६ माशा तक की मात्रा में नमक मिलाकर सेवन से आध्मान, पेटदर्द नष्ट होता है। सूखी खाँसी में नमक या मिश्री के साथ इसका सेवन कराया जाता है। भल्लातक के धुंएँ से उत्पन्न शोथ में आंवा हल्दी षष्टिक (साठी चावल) को दूर्वा के रस में घोटकर लेप लगाने से लाभ होता है। रक्तपित्त पाण्डु तथा कामला में लाभप्रद हैं।

परिचय—यह कन्द कलकत्ता, बम्बई में ताजा मिल जाता है। हरिद्रा के विपरीत यह शीत वीर्य है।

गुण—आम्रगन्धिहरिद्रा तु शीतला वातला तथा। पित्तहृत्स्वादुतिक्ता च वृष्यास्यात्सन्निपातजित्। (कै०)

कच्चा कन्द तोड़ने पर भीतर से सफेद तथा पकने पर नारंगी के समान रंग वाला होता है। यह उत्तम रक्तशोधक है।

---

1. Wild Turmeric.
2. Cochin Turmeric.
3. Curcuma, Aromatica, Salisp.
4. Mango Ginger.
5. Curcuma Amada Roxb.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दारुहरिद्रा (पीतदारू, कटंकटेरी, पीतचन्दनम्)

नाम—(हि०) दारुहलदी (बं०) दारुहरिद्रा (म०) दारुहलद (गु०) दारुहलदर (अ०) बर्बेरिस,[1] एरिस्टेटा (वा० ले०) ट्री टर्मरिक,[2] फाल्स केलंबा[3], दारुहरिद्रा वर्ग[4]।

रसाञ्जन[5]—(हि०) रसौंत, रसवत (म०) रसाञ्जन (गु०) रसवन्ती (बं०) रसाञ्जन (अ०) एक्स्ट्रेक्ट बर्बेरिस[6]।

परिचय—दारुहरिद्रा का काँटेदार गुल्म (झाड़ी) हिमालय की शुष्क घाटियों तथा दक्षिण के पर्वतों पर पाया जाता है। यह ३,००० से ७,५०० फुट की ऊँचाई पर होता है। उपयोगी अंग काष्ठ तथा उसका घन सत्व है। इसकी कई जातियाँ हैं। फल झिरिप्क (हि० स० जरिष्क) कहलाता है। यह कुछ काला-लाल मधुराम्ल-रस वाला होता है। इसका प्रयोग यूनानी वैद्यक में अधिक होता है।

पुष्पकाल—चैत्र-बैशाख

गुण—तिक्ता दारुहरिद्रा स्याद्रूक्षोष्णा व्रणमेहनुत्। कर्णनेत्रमुखोद्भूतां रुजं कण्डूं च नाशयेत्॥ (ध० नि०)

तद्वद्दार्वी विशेषेण कर्णनेत्रास्यरोगजित्॥ (कै०)

दारुहल्दी कड़वी, उष्णवीर्य, कटु विपाकी; पित्तकफशामक, वर्ण, नेत्र, मुखरोग तथा खाज में उत्तम है।

प्रयोग—यह उष्ण, तिक्तरसायन, ग्राही, स्वेदल, यकृतशोधक, विषमज्वरनाशक, त्वचारोगहर है। बड़ी मात्रा में यह विषमज्वर को रोकती है। यह शोथशामक, रक्तशोधक तथा संशमन है। नेत्र रोगों के लिए विशेष लाभप्रद है। प्रमेह ज्वर, अर्श, नेत्ररोगों में प्रयोग की जाती है। तिक्त रसायन होने से रोगों में उत्पन्न निर्बलता को नष्ट करती है। अतिसार में सोंठ तथा जड़ का छाल समभाग चूर्ण की फक्की दिन में २-३ बार दिन में लेने से लाभ होता है। २-२ तोला क्वाथ ज्वर की बारी के दिन २-३ घंटों के अन्तर से दिन में दो-तीन बेर देने से बहुत पसीना आकर विषमज्वर छूट जाता है। यकृत्-प्लीहा वृद्धि में इसकी जड़ का काढ़ा पिलाना चाहिए। क्वाथ में गोमूत्र मिलाकर सेवन से अंडवृद्धि मिटती है। फल, रूक्ष, पित्त तथा रक्त प्रकोप, यकृत् और आमाशय की गर्मी को शान्त करने वाला है। पैत्तिक ज्वर, वमन, तृषा और मितली को दूर करने के लिए पानी में पीसकर कपड़े से छानकर पिलाते हैं।

रसाञ्जन—दार्वीक्वाथसमं क्षीरं पादं पक्त्वा यदाघनम्। तदारसाञ्जनंख्यातां नेत्रयो परमंहितम्॥ (भाव०)

रसाञ्जनं कटु श्लेष्मविषनेत्र विकारनुत्। उष्णं रसायनंतिक्तं छेदनं व्रणदोषहृत्॥ (भाव०)

दारुहल्दी का काढ़ा बनाकर पुनः उसमें बराबर का दूध मिलाकर घन बना लें। यह रसाञ्जन नेत्र रोगों के लिए विशेष उपयोगी है। बाजार का रसौंत बहुत अशुद्ध होता है। अतः उसे शुद्ध कर लेना चाहिए। शोधनविधि निम्न है—

"तोयेउष्णे परिक्षिप्य द्रवीकुर्याद् रसाञ्जनम्। वाससा स्रावयित्वा च शोधयेत् भानुरश्मिना॥

प्रभाव तथा प्रयोग—दारुहल्दी के समान किन्तु उससे जोरदार। फिरंग, उपदंश, अपची, गण्डमाला आदि में लगाने तथा खाने के काम आता है। रसौंत के सेवन से यकृत् की विनिमय क्रिया सुधरती है। विषम ज्वर विशेष रूप से शान्त होता है। मात्रा १-२ माशा बारी से पूर्व २-२ घंटे से दें। रोगी को कपड़ा ओढ़ाकर सुला दें। जल पीने को न दें। एक घंटे बाद पसीना आएगा। पसीना साफ कर गरम दूध पिला दें। मृदुरेचक है। विबन्ध युक्त ज्वरों में उत्तम है। नेत्र शोथ में रसौंत तथा अहिफेन को मिलाकर लेप किया जाता है। ५ तोले गुलाब अर्क में ५ रत्ती रसौंत, ५ रत्ती फिटकिरी और २ रत्ती अफीम डालकर नेत्र विलयन बना लें। नेत्र की लाली को काटता है। रक्तार्श में रसौंत,

---

1. Berberis Asiatic, De. B. Aristata Roxb. आदि
2. Tree Turmeric.
3. False Calumba.
4. Berberidaceae.
5. रसाञ्जन-दारुहरिद्रा का घनसत्व
6. Ext. Berberis.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नीम की फलमज्जा समभाग हीरादखिन ½ भाग मिलाकर करेले के रस की सात भावनाएँ देकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना लें। २-२ गोली प्रातः-सायं सेवन करने से लाभ होता है। मुखपाक में निम्बु रस में घिस कर लगाते हैं।

वक्तव्य—आधुनिक वैज्ञानिकों ने इसमें से एक सत्व विशेष—बर्बेरिस सल्फेट (Berberis Sulphate) प्राप्त किया है। वह उदर विकारों में प्रवाहिका, अतिसार, विषूचिका में अतिलाभप्रद है।

योग—(१) रसाञ्जनवटी—अर्श में
(२) नेत्रबिन्दु—(रसादर्श)

सुरञ्जान द्वयम् (मधुर, तिक्त, भेदन)

नाम—(हि०) सुरञ्जान (म० गु०) सुरञ्जान (वा० ले०) कोल्चिकम ल्युटिअम्[1] लशुन वर्ग।

परिचय—सिंघाड़े के आकार का यह कन्द उत्तर भारत, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान में उत्पन्न होता है। यह दो प्रकार का है—मीठा तथा कड़वा। कड़वे की शुष्क रसक्रिया 'हिरनतूतिया' के नाम से उत्तर भारत में मिलती है। यूनानी में मीठे का उपयोग आन्तरिक प्रयोगों में तथा कड़वे का बाह्य प्रयोगों में किया जाता है। मात्रा १-३ रत्ती।

गुण तथा प्रयोग—तिक्त, उष्ण, रूक्ष, वेदना, स्थापन, शोथशामक, आमवात, वातकफ, वातरक्त तथा अर्श में लाभप्रद है। यह अधिकतर लेपों में प्रयुक्त किया जाता है। अधिक मात्रा में इसके प्रयोग से प्रवाहिका (पेचिश) हो जाती है। वामक तथा रेचक भी है। इस दोष को दूर करने के लिए धतूरा उत्तम है। तीव्र वातरक्त में उत्तम लाभ करती है। किन्तु वृद्धों में इसका इतना प्रभाव नहीं होता, जितना युवकों में। यह यकृत् से पित्त का स्राव भी अच्छी तरह कराती है।

मीठी सुरञ्जान भी सिंघाड़े के समान होता है। इसमें तीन वर्ष तक वीर्य रहता है। आमवात, वातरक्त गृध्रसी में इसका आन्तरिक रूप में प्रयोग किया जाता है। एलोपैथिक में भी वातरक्त में इसके तरलानुसार[2] और वारणीसार[3] का प्रयोग किया जाता है। वातरक्त में मात्रा २-५ बूंद तथा ५-१५ बूंद क्रमशः।

---

1. Colchicum Luteum, Baker.
2. Ext. Colchicum, Liquid.
3. Tinctura, Colchi.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तेईसवाँ अध्याय

वृक्क तथा मूत्र संस्थान प्रभावक वर्ग

मूत्रल, मूत्र-संशोधक

एरका (गुन्द्रा, शिनिः, शरी)

नाम—(हि०) पटेर (बं०) होग्ला (म०) रामबाण (मा०) एरो (बं०) एलेफेन्ट ग्रास[1] (वा० ले०) टाईफा आंगस्टिफोलिया[2]।

परिचय—यह नदियों तथा तालाबों के किनारे उत्पन्न होने वाली बड़ी लम्बी घास है। मूल तथा पत्रों का व्यवहार होता है। शीतल तथा मूत्रल है। मूल अदरक के समान वक्र, श्वेत वर्ण तथा मधुर होती है।

गुण—एरका शिशिरा वृष्या चक्षुष्या वाताकेपनी। मूत्रकृच्छ्राश्मरीदाह पित्तशोणितनाशिनी। (कै०)

एरका शीतल, मधुर रस तथा विपाक वाली, चक्षुष्य, पित्तशामक, वातशोधक, मूत्रकृच्छ्र पूयमेह (सूजाक) अश्मरी दाह, पित्त तथा रक्त रोगशामक है। मूल का काढ़ा बनाकर या पत्तों का स्वरस सेवन कराया जाता है।

कमलम् (पद्म, उत्पलं, पंकजम्)

वक्तव्य—कमल सुप्रसिद्ध पुष्प है। यह सर्वत्र सरोवरों में पाया जाता है। इसके अनेक प्रकार हैं। उन सबके गुण समान हैं किन्तु नाम भिन्न-भिन्न है। अतः प्रथम नामों का उल्लेख करके गुणों का बर्णन किया जाएगा।

(१) पद्म यह गुलाबी रंग का बहुत सुन्दर कमल है। (सं०) रक्तोत्पल, कोकनदम् (हि०) लाल कमल (बं०) रक्त कमल (म०) लाल कमल (क०) कैंपुतावरे (तै०) पर्रतापर (ता०) पिवप्पुतामरं (अं०) सेक्रैड लोटस्[3] (वा० ले०) नेलम्बियम स्पेसिओसम्[4] निम्फोआ रुब्रा[5], कमल वर्ग[6]।

(२) पुण्डरीकं, सफेद कमल (सं०) कुमुदम्, शशिपुष्पं, श्वेतपद्मं (हि०) सफेद कमल (बं०) श्वेत पद्म (म०) पांढरे कमल, कमोद (गु०) पोयणुं (अं०) ह्वाईट वाटरलिली[7] (वा० ले०) निम्फिआ एल्वा[8]।

(३) इन्दीवरं-नील कमल (सं०) नीलाब्जं, नीलोत्पलं (हि०) नीलोफर (म०) निले कमल (ब०) नीलशुन्दि (गु०) पोयणुं (अं०) ब्लू लोटस् या ब्लू वाटर लिली (वा० ले०) निम्फिआ स्टेलाटा[10]

1. Elephant grass.
2. Typha Aungustifolia, Linn.
3. Sacred lotus.
4. Nelumbium Speciosum, wild.
5. Nymphoea Rubra, wild.
6. Nymphaceae.
7. White Water Lily.
8. Nymphaoea Alba.
9. Blue Lotus, Blue Waterliily.
10. Nymphoea Stalata.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

परिचय—सुपरिचित पुष्प
उ० स्थ०—सर्वत्र सरोवरों में
व्य० अं०—पंचांग (पत्र, पुष्प, फल, मूलादि)
पुष्पकाल—ग्रीष्म ऋतु
रस—मधुर, कषाय
वीर्य—शीत
विपाक—मधुर
दोष—पित्तशामक, वातकफवर्धक
प्र० अं०—सर्व शरीर, वृक्क
वि० गु० क०—शीतल, मूत्रल, रक्तपित्त, प्रसादन, रक्तस्तम्भक, फल, ग्राही, वृष्य गर्भस्थापक
मात्रा—बीजचूर्ण ३-६, पुष्प १-२ तोला
गुण—कुमुदोत्पलनालास्तु सपुष्पाः सफलाः स्मृताः । शीताः स्वादुकषायाश्च कफमारुत कोपनाः ॥
उत्पलानि कषायाणि रक्तापित्तहराणि च । कषायमीषद्विष्टम्भि रक्तपित्तहरं स्मृतम् ॥
पौष्करं तुभ वेद्वीजं मधुरं रसपाक्योः । (च० सू० २७)
सतिक्तं मधुरं शीतं पद्मं पित्त कफापहम् । मधुरं पिच्छिलंस्निग्धं, कुमुदंह्लादिशीतलम् ॥
अविदाहि विसं प्रोक्तं रसपित्त प्रसादनम् । कुमुदोत्पल पद्मानां कन्दा मारुतकोपनाः ॥
कषायाः पित्त शमना विपाके मधुरा हिमाः ॥ (सु० सू० ४६)
पद्मबीजं हिमंतिक्तं कषायं मधुरं गुरु । बल्यं संग्राहि पित्तास्रदाहजित् कफवातकृत् ॥
विष्टम्भि लेखनंरूक्षं गर्भस्थापनं परम् । (कै०)

सब प्रकार के कमलों के पुष्प, मधुर रस, कषाय मधुर तथा किंचित् तिक्त, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, स्निग्ध, पिच्छिल, मनःप्रसादकर, मूत्रल, प्यास, दाह, रक्तपित्त, हृदयरोग, वमन तथा मूर्च्छाशामक है। बिस तथा कन्द (मूल) (में बिस-मृणाल-काण्ड) विष्टम्भि, वातवर्धक, दुर्जर, अविदाहि, शीतल, रक्त तथा पित्त रोगशामक है। (मूल) फलबीज (कमलगट्टा-कमल काकड़ी) मधुर किंचित् कषाय, शीतवीर्य, विपाक में मधुर, बलकारक, वातवर्धक, गुरु, संग्राही, लेखन, रूक्ष, पित्त, रक्त दोषशामक तथा परमोत्तम गर्भ संस्थापक है। पद्म केशर, रूक्ष, कषाय, ग्राही, शीतल एवं उत्तम रक्तस्तम्भक है।

प्रयोग—शीत होने के कारण पैत्तिक रोगों ज्वर, पाण्डु, कामला, दाह, तृष्णादि में अत्यन्त लाभ करता है। पित्तज्वर में हृदय की तथा नाड़ी की तीव्र गति होने पर कमल फूल, चन्दन, रक्तचन्दन, सुगन्ध वाला (उदीच्य) नागरमोथा, मुलेठी सब समान भाग मन्दाग्नि पर काढ़ा बना शर्करा मिला रोगी को पिलाना चाहिए। इससे हृदय की तीव्र धड़कन, नाड़ी की तीव्रता, ज्वर का दाह तथा ताप कम होता है। हृदय निर्बल नहीं होता तथा पसीना और मूत्र आता है। रक्तस्राव, अत्यार्तव, रक्तार्श, रक्तातिसारादि में कमल केसर मधु में मिलाकर चटाया जाता है। कमलबीज को भूनकर उसकी गिरी को मधु के साथ चटाने से वमन बन्द होती है। रक्तार्श, रक्तप्रदर में कमल, केसर, मुलतानी मिट्टी तथा शर्करा मिलाकर दी जाती है। रक्त प्रसादन तथा पित्तशामक होने से, पित्त या गरमी जन्य फोड़े-फुन्सियों में कमल का शर्बत अति उपकार करता है। लू के लग जाने से ज्वर हो जाए तो कमल पंचांग का शीतकषाय देना चाहिए। दूसरे मास के गर्भस्राव को रोकने के लिए कमल की डंडी तथा नागकेसर को पीसकर दूध के साथ दिया जाता है। बच्चों की कांच निकलने पर पत्तों का चूर्ण शक्कर के साथ सेवन करने से आराम होता है। लाल कमल का मधु नेत्र रोगनाशक

फा०—५९

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

है। कमल केसर मक्खन तथा मिश्री के साथ देने से रक्तार्श का रक्तस्राव बन्द करता है। पत्तों को पीसकर लेप करने से शरीर की दाह शान्त होती है।

(१) अरविन्दासव—बच्चों के लिए पौष्टिक तथा दाहादिशामक।

ककटी (एवर्सिः, त्रपुसम्, कालिंगकम्)

वक्तव्य—ककड़ी, खीरा, तरबूज तीनों के गुण समान हैं और तीनों के बीजों का औषधियों में प्रयोग होता है। अतः इनका वर्णन साथ ही किया गया है। तीनों ही सुपरिचित है।

नाम—(सं०) कर्कटी, मूत्रफलासारुः (हि०) ककड़ी (पं०) तर (ते०) दोसकाया (म० गु० मा०) काकड़ी (बं०) काकुर (अ०) कुकुम्बर[1] (वा० ले०) कुकुमिस यूटिलिसिमस्,[2] लिन्न कूष्माण्डादि वर्ग[3]। (क०) मुल्लुसोते कर्कटी वर्ग। इसका भेद फूटकाकड़ी भी है। उसे कुकुमिस[4] मोमोर्डिका लिन्न कहते हैं। उत्तर भारत की ककड़ी लम्बी, गोल, पतली, धारीदार होती है। वम्बई में खीरे के समान। दोनों का गुण समान है। फूट के बीज व्यवहार में नहीं आते।

(२) (सं०) त्रपुसम्, कोशफल, वसुधावासः (हि० पं० मा०) खीरा (गु०) काकड़ी (म०) तौसें (ब०) शशा (क) मुल्लुसौते (तै०) दोसकाया (ता०) मुल्लुवल्लीरि (वा० ले०) कुकुमिस[5] सेटाईवस् लिन्न, कर्कटी वर्ग।

(३) (सं०) कलिंगम्, कालिन्दं (हि०) तरबूज (मा०) मतीरो (बं०) तरभुज (म०) कलिंगड़ (गु०) तरबूज (तै०) बेलीपेण्डू (ता०) चेल्लारी वेराई (अं०) वाटरमेलन[6] (वा० ले०) कुकुमिस मेलो[7] लिन्न कर्कटी वर्ग।

गुण—एर्वारुकद्वयं रूक्षं स्वादु तिक्तं हिमं गुरु। रुच्यं संग्राहि कृच्छ्रघ्नं ज्वरवातकफप्रदम्॥
कालिन्दकं शीतलं ग्राहि स्वादुपाकरसं गुरु। विष्टम्भिऽस्यन्दि दृक्शुक्र पित्तनुत् कफवातजित्॥ (कै०)

एर्वारुद्वयं—ककड़ी तथा खीरा, शेष सरल है। पत्र तिक्त, फल मधुर, बीज मूत्रल और पित्तशामक हैं।

प्रयोग—ककड़ी तथा खीरा प्यास, दाहशामक, मूत्रल होने से बीज अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र वृक्कशोथादि में, १ तोला बीजों को पीसकर यवक्षार डालकर पिलाया जाता है।

यकृत् तथा अन्य कारणों से पित्तवृद्धि होकर पाण्डु, वमन, शरीर में दाहादि हो तो यह उत्तम है। रक्तपित्त-शामक भी है। ये तीनों ही विष्टम्भि गुरु तथा आध्मानकारक हैं अतः इनके साथ कालीमिर्च तथा नमक मिलाकर खाना चाहिए। उष्ण प्रकृतियों के लिए उत्तम तथा कफ प्रकृतियों के लिए हानिकारक है।

उक्त तीनों के साथ खरबूजा (दंशागुलं) (अं०) स्वीट मेलन[8] (वा० ले०) कुकुमिस मेलो[9], के बीजों को मिलाकर चारमगज (चतुर्बीज) संज्ञा दी गई है। ये चारों अतिशीतल, मूत्रल, पित्त, मूत्रकृच्छ्र, दाह, प्यास, पित्त की वमन तथा रक्तपित्तशामक है। गर्मियों में इन्हें बादामादि के साथ पीसकर सेवन किया जाता है। जिससे उष्णता से रक्षा होती है तथा शरीर स्निग्ध और पुष्ट बनता है।

---

1. The Cucumber.
2. Cucumis utilissimus, Linn. & Roxb.
3. Cucurbitaceae.
4. Cucumis Momordica, Linn.
5. Cucumis Sativus, Linn.
6. Water melon.
7. Cucumis melo, Linn.
8. Sweat melon.
9. Cucumis melo.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कुलत्थ:, (ताम्रबीज:)

नाम—(हि० पं० मा०) कुलथ (बं०) कुलत्थ (गु०) कलथी (म०) कुलीय (क०) हुरलि (तै०) उलुवलु (अं०) होर्सग्राम[1] (वा० ले०) डोलिकोस् बाईफ्लोरस् लिन्न[2], अपराजिता या शिम्बी वर्ग[3]।

गुण—शर्करा, अश्मरी (पथरी) शामक, मूत्रल तथा आर्तवजनक, स्रोतों का शोधक, अर्श, उदरशूल तथा कफनाशक है।

प्रयोग—कुलती का शीत कषाय या काढ़ा से श्वेत प्रदर, नेत्ररोग तथा मेदोरोग नष्ट होता है। कुलत्थयूष के क्वाथ में मूलक क्षार, शरपुंखा क्षार तथा पत्थर बेर भस्म मिलाकर पिलाने से वृक्कशूल तथा शर्करा तथा अश्मरी दूर होती है। अश्मरी के रोगी को प्रातः सायं कुलत्थ का शीत कषाय पीना अत्यन्त लाभ करता है। कुलत्थ बीज २ तोला, गाजर बीज २ तोला, जल २० तोला क्वाथ बनाएँ, ९ तोला जल शेषकर दिन में दो बार पियें। अश्मरी नष्ट होती है।

कंकोल (कटुफलं, मारीचं, कोलम्)

परिचय—यह प्ररोही बड़ी झाड़ी है।
उ० स्थ०—जावा, सुमात्रा
व्य० अं०—फल (काली मिर्च के समान)
रस—कटु, तिक्त
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
दोष—वात-कफहर, पित्तकारक
प्र० अं०—पाचक अंग, वृक्क
वि० गु० क०—अनुलोमन, मूत्रल
मात्रा—चूर्ण १-३ माशा, तैल १५-२५ बूंद

नाम—(हि० बं०) कबाबचीनी, शीतलचीनी (गु०) चणकबाब (म०) तक्कोल (तै०) कक्कोलालु (अं०) क्युबेब[4] (वा० ले०) क्युबेब अफिशिनेलिस्[5] पाईपर कुबेबा[6], पिप्पल्यादि वर्ग[7]।

गुण—कंकोल्लकं......... कटुतिक्तं कफापहम्। लघुतृषापहंवृष्यं वक्त्रदौर्गन्ध्यनाशनम्।। (सु० सू० ४६)
कंकोलं लघुतिक्तोष्णं तीक्ष्णं हृद्यं रुचिप्रदम्। कफानिलास्यदौर्गन्ध्य हृद्रोग कृमिमान्द्यजित्।। (कै०)

कंकोल कटु तिक्त रसवाला, उष्ण, कटु विपाकी, लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, रुचिकारक, वातकफहर, मुख-दुर्गन्धि, हृदय रोग तथा अग्निमान्द्यनाशक है।

प्रयोग—यह मूत्रल तथा कृमिनाशक है। अतः मूत्रकृच्छ्र तथा पूयमेह (सुजाक) में इसे चन्दन के साथ मिला कर दिया जाता है। एक प्याला छाछ में ३ माशा कबाबचीनी बारीक पीसकर छिड़क दें। रात को ओस में रख प्रातः-काल पियें। यह पूयमेह, मूत्राशयशोथशामक है। इस प्रकार चार-पाँच दिन करने से मूत्रमार्ग के व्रणों में लाभ होता है। श्वेत चन्दन मिलाने से गुण और अधिक होता है। पथ्य-बिना नमक के दही के साथ केवल भात। कास-श्वास तथा

1. Hoarsegram.
2. Dolichos Biflorus, Linn.
3. Papilionaceae.
4. Cubebs.
5. Cubeba officinalis, Miq.
6. Piper Cubeba, Linn.
7. Piperaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गले की शोथ में मधु मिलाकर चटाने से शोथ शान्त होता है। कफ पतला होकर निकलता है। शरीर से बाहर निकलते हुए मूत्र मार्ग तथा श्वास मार्ग का शोधन करता है। पूयमेह में इसके तैल के साथ चन्दन का तैल मिलाकर दिया जाता है। स्वरभंग में शीतलचीनी, बचा और कुलिञ्जन को पान के रस में भावना देकर गोली बनाकर चूसनी चाहिए। वीर्य क्षीणता, स्वप्नदोष में समभाग मिश्री मिलाकर ६ माशा की मात्रा में दी जाती है। मंजनों में सुगन्धि तथा स्वर शुद्धि और दान्तों की शुद्धि के लिए प्रयोग करते हैं। शोथ में लेप करने से उसे विलीन करता है।

योग—कंकोलादि चूर्ण।

काकमाची (रसायनवरा, सर्वतिक्ता)

परिचय—छोटा-सा क्षुप
उ० स्थ०—पंचांग
पुष्पकाल—वर्षा-शरद्, श्वेत वर्ण
रस—तिक्त, कटु
वीर्य—समशीतोष्ण
विपाक—मधुर
दोष—त्रिदोषहर
प्र० अं०—सर्व शरीर, यकृत्
वि० गु० क०—मूत्रल, स्वेदल, मृदुरेचक, शोथशामक
मात्रा—चूर्ण ४-६ माशा, स्वरस ४-६ तोला

नाम—(हि० पं०) मकोय, मको (बं०) गुडकामाई (म०) कामोणी (गु०) पीलुड़ी (क०) वेल्लगणिके (तै०) कामांचि चेट्ट, (ता०) करुप्पु (अं०) गार्डन[1] नाईट शेड्, (वा० ले०) सोलेनम् नाईग्रम[2], कंटकारी वर्ग।

गुण—त्रिदोष शमनीवृष्या काकमाची रसायनी। नात्युष्ण शीतवीर्य च भेदिनी कुष्ठनाशिनी ॥ (च०)
हन्तिदोषत्रयं कुष्ठंवृष्या सोष्णा रसायनी। काकमाची सरा स्वर्या.......... (वा० सू० ६)

मकोय कटु, तिक्त, समशीतोष्ण, वृष्य, रसायन, रक्तशोधन, त्वचा रोग, स्वररोग, रेचक तथा शोथ-शामक हैं।

प्रयोग—इसका विशेष प्रभाव यकृत् पर होता है। इससे यकृत् की क्रिया सुधरती रहती है तथा विषैले रसों की उत्पत्ति कम होती है। उदर शुद्ध होता है। रक्त साफ होता तथा मूत्र आता है। इस प्रकार यह सारे शरीर की शोधक है। आभ्यन्तरीय अंगों की शोथ, यकृत् आमाशय, वृक्कशोथ में अत्यन्त उपकारी है। नई शोथ पर लेप करने से वह बैठ जाती है। जिह्वा तथा कण्ठ शोथ में इसके पंचांग का या अमलतास फल की गिरी के साथ बनाये काढ़े से कुल्ले कराते हैं। किसी भी कारण से उत्पन्न जलोदर या आर्द्र शोथ में लाभ करती है। हृदय को शक्ति देती है। ज्वरों में इसका अर्क पिलाने से मूत्र तथा शौच साफ होता है। ताप कम होता है। यकृत् वृद्धि में पत्रों के क्वाथ में नृसार तथा कलमी शोरा मिलाकर देने से अतिलाभ होता है। दबी चेचक इसके क्वाथ से बाहर आ जाती है। कामला में हल्दी चूर्ण के साथ सेवन से लाभ होता है।

---

1. Garden Night Shade. 2. Solanum Nigram, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

काशः (काण्डेक्षुः, शिरीः)

नाम—(हि०) कांस, काही (गु०) कांसड़ों (दं०) छोटे केशे (क०) विश्वामित्रदर्भे (तै०) घेल्लथाड़ि (अं०) थैच, ग्रास[1], (वा० ले०) सेक्क्रम् स्पोन्टेनियम्[2], तृण वर्ग[3]।

गुण—कासेक्षुः मधुरस्तिक्तः स्वादुपाकोहिमो जयेत् । मूत्रकृच्छ्राश्मरीदाह रक्तपित्तक्षतक्षयान् ॥ (कै०)

कास, मधुर तथा कुछ कड़वा, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, सारक, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी (पथरी) मूत्रमार्ग का दाह, क्षत, क्षय और रक्तपित्तशामक है।

प्रयोग—प्रयोग में प्रायः मूल आती है। यह वनस्पति बहुवर्षायु है। लगभग १२ फीट ऊँची होती है। वर्षा के बाद सुन्दर सफेद पुष्पों की बाल आती है। जिसके लिए हिन्दी के सन्त कवि तुलसी दास ने 'फूले कांस सकल जगमाही' कहा है। मूल में शर्करा पाई जाती है। 'पंचतृणमूल' का यह एक अंग है। पित्त के रोगों तथा मूत्रकृच्छादि में अत्यन्त लाभ करती है।

कुशः (दर्भः सूच्यग्रः यज्ञभूषणः)

नाम—(हि० बं० पं० मा०) दाम, डाभ, कुश, काश, (गु०) दरभ, दासड़ो (म०) दर्भ (क०) दर्भे (तै०) दर्यालु (ता०) दर्भकुशम् (वा० ले०) पोआ साइनो सुरिओइडीस्[4] तृणवर्ग[5]।

गुण—दर्भद्वयंत्रिदोषघ्नं मधुरं तुवरंहिमम् । मुत्रकृच्छ्राश्मरी तृष्णा बस्तिरुक्प्रदरास्रजित् ॥ (लाव०)

दूब या कुश मधुर कषाय, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, स्निग्ध, त्रिदोषशामक, पैतिक रोग, वीसर्प, दाह, तृष्णा, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रदर, रक्तस्राव, मूत्राशय विकारशामक है।

प्रयोग—दूब सर्वत्र पाया जाता है। छोटी तथा बड़ी भेद से दो प्रकार की है। मूल का ही प्रयोग होता है। उत्तम मूत्रल है। आमातिसार में ग्राही औषधियों के साथ, रक्त प्रदर में रसौंत के साथ या तण्डुलोदक देने से एवं हिचकी में मूलचूर्ण में घी मिलाकर धूँआ देने से लाभ होता है। मौर्य साम्राज्य के महान् संस्थापक चाणक्य के जीवन में कुशोच्छेद का वर्णन आता है।

तण्डुलीयक (मेघवादः)

नाम—(हि० पं०) चौलाई (म०) कांटेमाट, माठ, तादुलजा (गु०) कांटालोडामों (बं०) नटेशाक-चांपानटे (अं०) प्रिकली एमेरन्थ[6] (वा० ले०) अमेरेन्थस्[7] स्पिनोसिस तण्डुलीयक[8] वर्ग।

वक्तव्य—चौलाई दो प्रकार की है। कांटों वाली-सकंटक, बिना कांटों वाली-अकंटक, गुणों में दोनों समान हैं।

गुण—तण्डुलीयो हिमोरूक्षः स्वादुपाकेरसे लघुः । मदपित्तविषास्रघ्नो दीपनः सृष्ट मूत्रविट् । (कै०)

चौलाई मधुर रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, रूक्ष, लघु मद, पित्त नाशक, विष, रक्तस्राव शोधक, दीपन, मलमूत्र प्रवर्तक है।

प्रयोग—सर्प विष में पंचांग क्वाथ या स्वरस पिलाते हैं। रक्तप्रदर, रक्तवमन, रक्तष्ठीवन को बन्द करने के लिए बीज तथा मूल का प्रयोग करते हैं। इसका शीत कषाय या फाण्ट मूत्रल है। मूत्र मार्ग के दाह को मिटाती है।

---

1. Thatch grass.
2. Sacchrum Spontaneum.
3. Gramineae.
4. Poa cyno suroides or Eragrostis, Cynosuroides.
5. Graminae.
6. Prickly Amaranth.
7. Amaranthus spinosis.
8. Amarantaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दूर्वाद्वयम् (शतपर्वा, शीतवीर्य, शाद्वलम्)

नाम—(हि०) दूर्वा, दूब, काली घास (पं०) दुबड़ा, सबल (म०) दुरूहरली (गु०) घ्रोघरो, घ्रोखड (बं०) दूर्वा (क) करिके। (तै०) तेल्लगरिक (ता०) अरूगम्पिल्लु (अं०) बरमुडा ग्रास,[1] (वा० ले०) साईनोडोन्[2] डेक्टीलोन्, तृण वर्ग।

वक्तव्य—दूर्वा के तीन भेद हैं। (१) नीलदूर्वा—इसे काली घास कहते हैं। ऊपर इसका वानस्पतिक नाम दिया गया है। श्वेतदूर्वा[3] इसी का भेद है। तीसरी गण्डदूर्वा[4] कहलाती है। औषधियों में पूर्वोक्त दोनों का ही प्रयोग होता है।

गुण—दूर्वा स्वाद्वी हिमातिक्ता कषाया जीवनीजयेत्। कफपित्तास्र वीसर्पतृष्णादाह त्वगामयान्॥

कफपित्त, रक्तस्राव, वीसर्प, दाह, तृष्णाशामक, मूत्रल तथा त्वचा रोगनाशक है। क्षत, क्षय तथा थूक में रक्त आना आदि की नाशक है।

योग—(१) दूर्वादिघृत—रक्तपित्तशामक।
(२) तृणापंचमूल—मूत्रल।

कुन्दुरुः (कुन्दः शल्लकी, सुरभि-कुन्दुरुकी)

वक्तव्य—शल्लकी वृक्ष का नाम है। कुन्दुरू उसके (कुन्दुरुकः शल्लकी चोप-डल्हण) निर्यास का निर्यास पारदर्शी पीले रंग का अर्द्ध गाढ़ा गोंद है। यह कड़वा तथा उष्ण होता है। जब कि वृक्ष त्वगादि शीतल और कसैला होता है। तपाने से नरम तथा तीक्ष्ण अग्नि से कण पृथक् हो जाते हैं। कुछ वैद्य मृदु, पिच्छिल, दुर्गन्धिहर स्राव मन्दा-विरौजा (लोबान) को शल्लकी समझते हैं। रूमीमस्तगी भी कुन्दुरु नहीं है।

परिचय—नीमवत्पत्रों वाला बड़ा वृक्ष।
उ० स्था०—मध्य भारत तथा कारो मंडल, अफ्रीका स्यामादि
व्य० अं०—निर्यास
रस—(वृक्ष) कषाय, कटु, तिक्त, (निर्यास) तिक्त मधुर (अनुरस)
वीर्य—वृक्ष, शीत, निर्यास उष्ण
विपाक—कटु
दोष—त्रिदोषहर
प्र० अं०—मूत्र संस्थान,' त्वचा
वि० गु० क०—ग्राही, व्रणशोधक, रोपक, कृमिघ्न, मूत्रल
मात्रा—१–३ माशा तक

नाम—(हि०) सलई (बं०) सालई, कुन्दुर, लोवान (म०) सालई (गु०) शालेड़ो, धूपड़ो (क०) कुन्दुरू-धूप (तै०) परंगि सब्राणि (ता०) परंगि साम्प्रणि (बं०) गन्धा विरौजा, इसेस (अं०) इन्डियन ओलीबेनम्[5] (वा० ले०) बोस्वेलिया सराटा,[6] गुग्गुलु वर्ग[7]। इस जाति के कई वृक्ष हैं।

---

1. Burmuda grass.
2. Cynodon dactylon.
3. Cynodon Lineris.
4. Avena Fatua, Linn.
5. Indian olibanum.
6. Boswelia serrata, Roxb.
7. Burseraceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण—शल्लकी तुवरा शीता क्रमेण रसवीर्ययोः । बलास पित्त पक्वातिसार व्रणशोधिनी ।। (कै०)
कुन्दुरूमधुरस्तिक्तस्तीक्ष्णस्त्वच्यः कटुर्हरेत् । ज्वरस्वेद महालक्ष्मीयूकागन्धकफानिस्रान् ।। (कै०)

शल्लकी (पंचांग) कसैला, कड़वा (रा० वि०) शीतवीर्य, कटु विपाकी, ग्राही, कफपित्त, पक्वातिसारशामक तथा व्रणशोधक है। कुन्दुरू या गन्दा बिरौजा मधुर, तिक्त, तीक्ष्ण, त्वच्य, ज्वर, स्वेद, यूकालिक्षा (जूंआदि) वातकफ तथा दुर्गन्धनाशक है।

प्रयोग—प्रायः कुन्दरू का ही प्रयोग होता है। यह उत्तम रक्त शोधक तथा व्रण रोपक है। सालई, गुग्गुल, टंकण, गन्धकादि मिलाकर या केवल नारियल तैल में पीसकर सब प्रकार के व्रणों में लगाया जाता है। गण्डमाला, विद्रधि तथा व्रण शोथशामक है। पाकाभिमुख शोथ को पका देता है। एतदर्थ कुन्दुरु तथा सिन्दूर को पानी से पीसकर कपड़े पर लगाकर लेप लगाया जाता है। रक्तशोधनार्थ कुन्दुरू को त्रिफला क्वाथ में उबाल कर पीते हैं। इससे मल बद्धता भी नष्ट होती है। कुन्दुरु का काजल बना नेत्रों में अंजन लगाने से नेत्र स्राव तथा पलकों के बालों (पक्ष्मों) का झड़ना बन्द हो जाता है।

कुन्दुरू में एक उड़नशील तैल पाया जाता है जिसकी विशेष क्रिया आन्तरिक कला पर होती है। यह उसे उत्तेजित करता तथा बलप्रदान करता है। अतएव शरीर से निकलते समय श्वास मार्ग की कला को उत्तेजित कर जीर्ण कास श्वास में शोथ को शान्त करता है तथा कफ को पतला करके बाहर निकालता है। उसकी दुर्गन्धि भी नष्ट होती है। इसका धुआँ भी नासा द्वारा फेफड़ों में पहुँचाया जाता है। इससे श्वास का वेग शान्त होता है। पूयमेह में मूत्र मार्ग की कला को उत्तेजित तथा कृमियों को नष्ट कर मूत्र कृच्छ्र का नाश करता है।

लोबान (ऊद कोडिया लोबान)

लोबान से कुछ कुन्दुरू का ग्रहण करते हैं। गुणों में दोनों समान हैं। लोबान का पृथक् वर्णन आयुर्वेद में नहीं मिलता। अतः कुन्दुरू के साथ इसका वर्णन किया गया है। सब भाषाओं में इसे लोबान ही कहा जाता है। यह कठोर किन्तु भंगुर (शीघ्र टूटने वाला) सफेदी लिए स्वल्प रक्त वर्ण कण है जो हरे भूरे या लाल रंग के मधुवत् पदार्थ में मिले रहते हैं। सुगन्धित, रस कुछ कटु, गरम करने पर यह पिघल कर तीक्ष्ण गन्ध के साथ सफेद धुआँ छोड़ता है। यह लोध्रवर्ग गन्ध के साथ सफेद धुआँ छोड़ता है। यह लोध्रवर्ग[1], के दो-तीन प्रकार[2] के वृक्षों का निर्यास है। सुमात्रा तथा स्याम से आता है। आंग्ल भाषा में इसे 'बेन्जोइन'[3] कहा जाता है।

विशेष गुण—कृमिघ्न, सुगन्धित, कफनिष्कासक, आक्षेपहर, रक्तसंग्राहक, उत्तेजक, उष्ण वीर्य, कटु विपाकी। मात्रा—१ माशा है। सत्व—१ रत्ती।

प्रयोग—कृमिघ्न, सुगन्धित होने के कारण व्रण धूपन के लिए तथा व्रण रोपक होने से अनेक मलहरों में प्रयुक्त होता है। त्वचा की स्वच्छता तथा सुवासित करने के लिए अनेक उबटनों में पड़ता है। लोबान को जल में उबाल कर, उस जल में शर्करा का शर्बत बनाकर प्रयोग करने से कंठ, गले की शोथ तथा खाँसी में लाभ करता है।

इसका धूम्र लेने से या मुख द्वारा सेवन करने से फुप्फुसों में से निकलते समय अपनी तीक्ष्णता से कफ का स्राव बढ़ाता है तथा दुर्गन्धि नष्ट करता है। अतः प्रतिश्याय तथा श्वास के वेग को कम करने के लिए (लोबान, रसौंत, बबूल गोंद, अफीम, सब समान मात्रा—राई समगोली), इसके योगों का प्रयोग किया जाता है। यह वमन, ऊर्ध्ववात,

---

1. Styraceae.
2. Styrax Benjoin, Drycend. S. Tonkinensis.
3. Benzoin.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्षशूल, पार्श्वशूलशामक है। लोबान मूत्रमार्ग से निकलते समय कृमिनाश तथा मूत्रकृच्छ्रता को नष्ट करता है। ज्वरों में विशेषकर कफज तथा वातज ज्वरों में ताप को उतारता है। आमवात, वातरक्त, अर्दितादि में खाने के लिए तथा लेपार्थ भी प्रयुक्त होता है। लोबान सत्व के भी यही गुण हैं।

लोबान सत्व, जीर्ण बस्तिशोथ तथा वसामेहशामक है। अजीर्ण, श्वास, वमन, वायुविकार, आध्मान, कफ में नागर मोथा, शिलारस, जटामांसी, इलायची, चन्दन श्वेत, लोबान, कंकोल (समभाग लें) का चूर्ण १-२ रत्ती की मात्रा में लाभ करता है। लोबान उष्ण प्रकृति वालों को हानि कर सकता है। अतः उन्हें श्वास के साथ मिलाकर दें। प्रतिनिधि रूप में रूमी मस्तगी उत्तम है।

लोबान सत्व—लोबान चूर्ण को सज्जीखार के साथ पर्याप्त जल में मिलाकर मृदु अग्नि पर गरम करें। इससे कुछ समय में दोनों के मेल से नया पदार्थ तैयार होगा। इसे लोबान सर्जिका कहा जाता है। श्वासकास में उत्तम है।

लोबान का चूर्ण १ सेर, बालू का ¼ सेर, दोनों अच्छी तरह मिला डमरू यन्त्र से मृदुअग्नि पर गरम कर ऊर्ध्वपातन द्वारा पीले सफेद रंग के कण ऊपर के मटके पर लगे हुए मिलते हैं। स्वांगशीत होने पर धीरे से यन्त्र को खोलकर कण निकालते हैं। यही लोबान सत्व है।

तूतं (तूदं ब्रह्मनिष्ठम्)

नाम—(हि०) तूत, सहतूत (बं०) तूंत (गु०) शेतूर (क०) हिप्पल्नेरले (तै०) कंबेलिबुञ्चि (ता०) मुषुकट्टे (अं०) इन्डियन[1] मल्बरी (वा० ले०) मोरस् इन्डिका,[2] तूतवर्ग[3]। इसके दो भेद हैं। श्वेत (सफेद) (अं०) ह्वाईट[4] मल्बरी (वा० ले०) मोरस[5], एल्बा, कृष्णा या नील (अं०) ब्लेक मल्बरी[6] (वा० ले०) मोरस नाइग्रा[7] कहलाता है।

गुण—तूतं गुरु सरं आम्लमामं तद्रक्तपित्तलम्। उष्णं, पक्वं तु मधुरं शीतं पित्तानिलापहम्॥ (कै०)

सहतूत का कच्चा फल, खट्टा मीठा होता है। उष्ण वीर्य, रक्तपित्तवर्धक गुरु, पक्व, शीतल, सर, वातपित्त-शामक तथा कफवर्धक मूत्रल तथा पौष्टिक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—श्वेत तूत अंजीर के समान गुणों वाला है। औषधियों में काले सहतूत का प्रयोग होता है। यह शीतल, संग्राही, पित्त रक्तविकारशामक कण्ठ तथा गले के रोगों, रोहिणी, जिह्वाशोथ, जिह्वामूल शोथ मुख पाकशामक है। इन रोगों में तूत का रस या शर्बत में फिटकरी मिलाकर गण्डूष (कुल्ला) कराया जाता है। दाह, तृषा तथा मूत्र कृच्छ्रशामक है। पत्र तथा जड़ भी यही गुण करते हैं। ब्रध्न कृमि (फीते के जैसा) में मूलत्वचा का क्वाथ लाभप्रद है। मूत्राघात में कलमी शोरा को तूत के रस में पीसकर पेड़ु प्रदेश पर लेप लगाया जाता है। शहतूत का शर्बत प्यास, पित्त विबन्ध, ज्वरों में घबड़ाहट शान्त करता है।

योग—तूतपानक लाल या काला तूत फल ६ तोला, धाय फूल, चमेली के फूल, द्राक्षाकाली तथा लाल १-१ तोला, ककड़ी, तरबूज, खीरा, खसखस के बीज, ६-६ माशा, शक्कर ½ सेर, २ सेर पानी में मिलाकर शर्बत बनायें १-२ तोला की मात्रा में जल में मिलाकर पीने से ज्वर में दाह, ज्वर प्यास तथा पाण्डु, रक्तविकार तथा धातु विषशामक है।

---

1. Indian mullberry.
2. Morus Indica, Linn.
3. Moraceae.
4. White mulberry.
5. Morus Alba, Linn.
6. Morus Nigra.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नलः (पोटगलः शून्यमध्यः)

नाम—(हि० पं०) नल, नरसल (गु०) नाली (म०) देवनल, ढवल, बोकनल (वा० ले०) लोबेलिआ[1] निकोटिआनिफोलिया, नल[2] वर्ग।

गुण—नलस्तु मधुरस्तिक्तः कषायोष्णः कफास्रजित्। हृद्बस्तियोनिमूत्रार्ति पित्त दाहविसर्पनुत्॥ (कै०)

प्रयोग—यह मूत्रल तथा पित्तशामक है। जलीय स्थानों पर सर्वत्र पाया जाता है। जड़ को पीसकर तैल में मिलाकर कोष्ण कर मर्दन करने से सन्धि वेदना शान्त होती है। कास-श्वास में श्वासनलिका संकोच विकास कम होता है। कफ भी बाहर निकलता है।

पर्णबीज (हिमसागर)

नाम—(हि०) जख्मेहयात, पथरचूर (म०) धायमारी (बं०) पाथरकुचा, हिमसागर (गु०) खाटखुटुम्बो (वा० ले०) ब्रायोफिलम् केलिसिनम्,[3] पर्णबीज वर्ग[4]।

परिचय—यह क्षुप सर्वत्र उद्यानों में शोभार्थ लगाया जाता है। २-३ फुट ऊँचा क्षुप होता है। पत्र मोटे रस भरे किनारों से कटे हुए होते हैं। पत्ते को जमीन पर डालने से ही उसमें से जड़ें निकलकर जमीन में चली जाती है। इस प्रकार पत्र ही बीज का कार्य करता है। अतः 'पर्णबीज' नाम है।

गुण—यह व्रणशोधक, रोपक, रक्तसंग्राहक, दीपन, पाचन-शोथशामक मूत्रल है। रक्तमिश्रित आँव में पत्र-स्वरस में जीरा मिलाकर (१½ तोला स्वरस में ½ तोला जीरा) सेवन करने से लाभ होता है। नवीन व्रण में लेप लगाने से अतिलाभ करता है। अतिशीत तथा मूत्रल होने से मूत्रकृच्छ्र होने से मूत्रकृच्छ्र अश्मरीनाशक है। बस्ति प्रदेश पर लेप करने से मूत्राशय शोथ मूत्रकृच्छ्र शान्त होती है।

वक्तव्य—भ्रम से कई वैद्य इसे ही पाषाण भेद समझते हैं।

पाषाणभेदः (अश्महा-अश्मरिभेदनः)

परिचय—यह छोटा-सा क्षुप हिमालय पर ६-८ हजार की ऊँचाई पर पाया जाता है। मूल का उपयोग होता है।

रस—तिक्त कषाय
वीर्य—शीत
विपाक—मधुर
दोष—त्रिदोषहर
प्र० अं०—वृक्क, मूत्रसंस्थान
वि० गु० क०—मूत्रल शोथ तथा अश्मरी (पथरी) नाशक
मात्रा—१-३ माशा तक

नाम—(सर्व भाषा) पाषाण भेद परवान भेद (पं०) पठानगंडी, पत्थर चट्टा (नेपाली) सोहानार्ये सोह (वा० ले०) सेक्सीफ्रेगा[5] लिगूलाटा, पाषाण भेद वर्ग[6]।

---

1. Lobelia Nicotianaefolia, Heyne.
2. Campulaceae.
3. Bryophyllum Calycinum, Salisb.
4. Creessulaceae.
5. Saxifraga Ligulata, Wall.
6. Saxifragaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण—अश्मभेदो हिमस्तिक्तः कषायो वस्तिशोधनः। भेदनोहन्ति दोषार्शो गुल्मकृच्छ्राश्महृद्रुजः।
योनिरोग प्रमेहांश्च प्लीहशूल व्रणानपि ।। (भाव०)

पाखान भेद तिक्त, कषाय, शीतल, मधुर विपाकी, मूत्राशय का शोधक, रेचक, त्रिदोष, अर्श, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, बस्तिशूल, प्रमेह, योनिरोग, प्लीहा व्रणशामक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—इसके प्रयोग से पथरी धीरे-धीरे घुल कर मूत्र द्वारा बाहर निकल जाती है। वृक्कों को उत्तेजित कर मूत्र भी अधिक मात्रा में लाता है। भेदन होने से मल द्वारा भी दोषों को बाहर निकालता है। व्रण पाचक भी है। पत्र को सीधा बाँधने से वह व्रणशोथ को पकाकर फाड़ देता है।

उदरशूल में विशेषकर बच्चों को पत्रस्वरस में शर्करा मिलाकर पिलाने से लाभ होता है। मन्दाग्नि नाशक है। बच्चों के मूत्र में रेत (क्षार) आने पर मूल को दूध में घिसकर पिलाते हैं। दान्तों के निकलते समय बच्चों के मुख से लार बहती है और मुख में व्रण हो जाते हैं। उस दशा में पाषाण भेदमूल घिसकर मधु में मिलाकर चटाते हैं। मूत्राशय के रोगों में अति लाभप्रद है। पाषाण भेद, अमलतास का गूदा, धमासा, हरडा, गोखुरू, कबाब चीनी, एला, सनाय समभाग लेकर १ तोले यवकुट का काढ़ा बनाकर उसमें शिलाजतु ४ रत्ती, सुराखार (कलमीशोरा—१ माशा) डालकर पीने से मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, शर्करा शान्त होती है। नेत्राभिष्यन्द में नेत्र के चारों ओर लेप लगाते हैं।

पुनर्नवाद्वयम्

परिचय—पुनर्नवा का भूप्रसारी क्षुप सुपरिचित है। श्वेत तथा रक्त भेद से दो प्रकार का है। श्वेत अधिक गुणकारी है। सर्वत्र पाया जाता है।

पुष्पकाल—अगस्त-सितम्बर

व्य० अं०—अंग, पंचांग, क्षार

रस—कटु तिक्त, उष्ण

वीर्य—कटु विपाकी

दोष—त्रिदोषशामक विशेषकर वातकफशामक

प्र० अं०—वृक्क

वि० गु० क०—सारक, दीपक, शोधन

मात्रा—$\frac{1}{2}$–४ रत्ती, २ माशा

नाम—(सं०) श्वेतपुनर्नवा, वर्षाभू, शोफघ्नी (हि० पं०) विसखपरा (बं०) पूर्ना, श्वेतपुनर्नवा (गु०) धोली साटोड़ी (म०) वसु (वा० ले०) ट्राएन्थेमा[1] मोनोगिना, श्वेतपुनर्नवा[2] या छत्रकवर्ग[3]।

(२) रक्तपुनर्नवा कठिल्लक, रक्तपुष्पा, क्षुद्रवर्षाभूः (हि०) साटं (गु०) सती साटोडी (बं०) पुनर्नवा (म०) घेटुली, खापरा (पं०) इटसिट् (अं०) स्प्रेडींग होगवीड[4] (वा० ले०) बोर्हेविया-डिफ्युजा[5] (क०) कोम्मे (तै०) आटकमामिडी (ता०) मुक्कुरट्टेफुजा कीरै, पुनर्नवा वर्ग[6]।

गुण—उष्णानि स्वादु तिक्तानि वातप्रशमनानिच। तेषु पौनर्नवं शाकं विशेषाच्छोथनाशनम ।। (सु०सू० ४६)
कठिल्लकं हिमंतिक्तं विपाके कटुकं लघु। संग्राही वातलं पित्तकफ शोणित नाशनम् ।। (कै०)

---

1. Trianthema Monogyna, Linn.
2. T. Sesuvia.
3. Umbelifereae.
4. Spreading hogweed.
5. Boerhavia-Diffusa, Linn.
6. Nyctagineae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुनर्नवा, मधुर, तिक्त, कषायरस, उष्णवीर्य (लाल शीत वीर्य) कटु विपाकी, वातकफ प्रशमन (लाल पित्त-कफ, रक्तरोगशामक) वातवर्धक, शोथशामक, पाण्डु, हृद्रोग, उरःक्षत, रक्तप्रदर तथा उदरशूलशामक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—पुनर्नवा का मूत्र संस्थान पर विशेष प्रभाव पड़ता है। पुनर्नवीन नामक सत्व तथा शोरक की मात्रा के कारण यह उत्तम मूत्रल है। वृक्क की कला को उत्तेजित करके तथा रक्तभार बढ़ाकर यह शरीर में से तरल को निकालता है। अतः यकृत् विकृति के कारण उत्पन्न जलोदर, सर्वांग शोथशामक है। हृदय तथा जीर्ण वृक्क शोथों में अन्य पदार्थों को मिलाकर देने से लाभ होता है। उष्ण वीर्य तथा कटु विपाकी होने से कफ का नाश करता है। शोथ शान्त होती है। बड़ी मात्रा में वामक तथा रेचक है। यह स्वल्प स्वेदल है। हृदय पर इसकी क्रिया निर्बल होती है। हृदय संकोच बढ़ता है, रक्त का भार बढ़ता है, रक्त भ्रमण उत्तम होता है। अतः तरल मूत्र द्वारा निकल जाता है। रेचन द्वारा भी तरल निकलता हैं जिससे शोथ शान्त होती है।

उक्त कारणों से जलोदर, पार्श्व शूल (प्लूरिसी) सर्वांग शोथादिशामक है। हृदय रोगों में काली कुटकी, चिरायता तथा सोंठ के साथ, फुप्फुस के रोगों में वचा (वेखण्ड) के साथ कफ निष्कासनार्थ, श्वासकास में फुप्फुसों से कफ निकालने के लिए इससे वमन कराया जाता है। शुष्क कास में मूलचूर्ण शर्करा के साथ, मूत्रकृच्छ्र में पत्रों को कालीमिर्च के साथ, कासयुक्त श्वास में मूल का काढ़ा पिलाएँ। तम्बाकू पीना बन्द करा दें। सफेद पुनर्नवा मूल छायाशुष्क मूल को चन्दन के समान घिसकर अंजन से नेत्र शोथ, पलकों की खुजली तथा फूला नष्ट होता है तथा पड़वालों (पोथकी) में भी लाभ होता है। गोघृत या शर्करा के साथ खाने से पित्त शान्त होता है। स्नायुक (नहरुआ) में पत्तों को पीसकर बाँधा जाता है। रसायन के लिए २ तोला पुनर्नवा दूध के साथ ६ मास तक सेवन करें। पुनर्नवा का तैल सन्धि शोथशामक हैं। उष्ण प्रकृति के लिए अहितकर है। उन्हें धनियाँ और अन्य शीतल पदार्थों के साथ सेवन करना चाहिए। निरन्तर प्रयोग से इसका प्रभाव न्यून हो जाता है। अतः कुछ दिन सेवन करके पुनः सेवन करें।

मात्रा—स्वरस—१-२ तोला, चूर्ण ३-६ माशा।

योग—पुनर्नवा मण्डूर, पुनर्नवारिष्ट, पुनर्नवासव, पुनर्नवाक्षार, पुनर्नवागुग्गुल, पुनर्नवाष्टक क्वाथ।

पुन्नागः (रक्तकेसरः देववल्लभः तुंगः)

नाम—(हि०) पुन्नाग, सुल्तान चांपा (म०) उंडी, उंडल (क०) उमामर, (सुरहोन्ने) (तै०) मुन्नैगचेट्ट (ता०) पन्नेगम् (वा० ले०) केलोफिलम्[1] इनोफिलम्, नागकेसर वर्ग[2]।

गुण—पुन्नागस्तुवारस्तिक्तः शीतः स्वादुः कफास्रजित्। (कै०)

प्रयोग—बीजों का तैल सूजाक में खिलाया जाता है। सन्धिवात में अभ्यंग करते हैं। नागकेसर में इसके फूलों का केसर मिलाकर बेचा जाता है।

मूलकम् (नीलकंठ, महाकन्दः)

परिचय—मूली सुपरिचित है। इसके अनेक भेद हैं। व्यवहार में पंचांग विशेषकर बीज आते हैं।

रस—कटु तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

प्र० अं०—वृक्क तथा पाचन संस्थान

1. Calophyllum Inophyllum, Linn. 2. Guttifereae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोष—अवस्थानुसार त्रिदोषहर

वि० गु० क०—मूत्रल, पाचक, मृदुरेचक अश्मरीहर।

मात्रा—१-३ माशा तक।

नाम—(हि० पं० मा०) मूली (म०) मुला (गु०) मुला (क०) मुलंगि (ते०) मुलंगी (ता०) मुल्लंगि (अं०) रेडिश[1] (वा० ले०) रेफेनस[2] सटिवस्, राजिका वर्ग[3]।

गुण—कटु तिक्तरसाहृद्या रोचनी वह्निदीपनी। सर्वं दोषहरालघ्वी कण्ठ्या मूलकपोतिका॥
महत्तद्गुरुविष्टम्भि तीक्ष्णम् त्रिदोषकृत्। तदेवस्नेहसिद्धंतु पित्तनुत् कफवातजित्॥
त्रिदोषशमनं शुष्कं विषदोषहरं लघु। विष्टम्भि वातलं शाकं शुष्कमन्यत्र मूलकात्॥

बालमूली (छोटी मूली) कडवी, चरपरी, हृद्य, रोचक, लघु, त्रिदोषशामक तथा स्वर्य है।

बड़ी या मोटी मूली तीक्ष्ण-गुरू विष्टम्भि (वायु उत्पादक) त्रिदोषकारक है, किन्तु यदि घी-तैल में भून ली जाए तो त्रिदोषशामक होती है। सूखी मूली त्रिदोष-विष नाशक तथा लघु है। मूली के पुष्प, पत्र तथा फल उत्तरोत्तर गुरु हैं।

प्रभाव तथा प्रयोग—मूली की यह विशेषता है कि यह अन्न को पचा देती है किन्तु स्वयं देर में पचती है। पाचन होने के कारण यह वात का अनुलोमन तथा कटु और उष्ण होने के कारण शोथ और यक्रत् प्लीहा वृद्धिशामक है। बीजों तथा कन्द में एक श्वेत वर्ण का तैल रहता है। जो इसकी गन्ध तथा स्वाद का कारण है। मूली में एक क्षार भी पाया जाता है। जिसके कारण यह मूत्रल तथा पथरी नाशक है। अश्मरी में मूलक क्षार के साथ पत्थर बेर भस्म देने से अति लाभ होता है। प्लीहावृद्धि में मूली को सिरके के साथ, कामला में शर्करा के साथ देते हैं।

बीज उष्ण, वामक, अनुलोमक तथा आर्तवजनक है। त्वचा रोगों में इनका लेप खट्टे द्रव्य (दही का पानी या निम्बु का रस) में कराया जाता है। पुरानी कब्जी में पत्र सहित मूली का साग खाने से लाभ होता है। शुष्कमूलक तैल का अभ्यंग सर्वांग शोथशामक है। रक्तार्श में रक्त बन्द करने के लिए मूली खाई जाती है। पथरी में ४ तोला रस के साथ ३ तोले अजमोदा चूर्ण दिया जाता है। मूली खाने वालों को बिच्छू विष का असर कम होता है।

योग—शुष्क मूलक तैल।

यवः, यवक्षारश्च

नाम—(हि०) जौ (गु०) जव (म०) सातु (बं०) जब (अं०) बार्ले[4] (वा० ले०) होर्डिअम्[5] वल्गेर, धान्य वर्ग[6]।

गुण—रूक्षः शीतो गुरुः स्वादुर्बहुवातशकृद्यवः। स्थैर्यकृत् सकषायश्च बल्यःश्लेष्म विकारनुत्॥ (च०सू० २७)

जौमधुर, कषाय, अनुरस वाला, शीतवीर्य, लघु, कटु विपाकी, वात तथा मल को बड़ी मात्रा में लाने वाला, बल स्थिरता तथा कफ विकारशामक है।

यवक्षार, हृदय रोग, पाण्डु, प्लीहा, यकृत् तथा कफ निष्कासक है। मात्रा १-३ माशा।

जौ का मण्ड[7] शीतल, मूत्रल, रक्त तथा पित्तशामक तथा शीघ्र पाकी है। यह पौष्टिक-शीघ्र पाकी आहार यकृत् आमाशय की उष्णता, प्यास, दाहशामक है। सब प्रकार के ज्वरों में उत्तम पथ्य है।

---

1. Radish.
2. Raphanus sativus Linn.
3. Crucifereae.
4. Barley.
5. Hordeum Vulgare, Linn.
6. Gramineae.
7. Barley water.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भूने जौ का मण्ड संग्राही तथा अतिसार, उरःक्षत तथा राजयक्ष्मादि में लाभ करता है। इसका सत्तू भी हल्का पथ्य है। यदि इन्हें पतला कर नमक, काली मिर्च के साथ लिया जाए तो अतिउत्तम है। दन्त-पीड़ा, मूल-शोथ तथा गले की शोथ में गेहूँ और जौ की भूसी का काढ़ा बनाकर पान करने से लाभ होता है।

(२) यवक्षार अग्निदीपक है। अम्लपित्त में हरड़ के चूर्ण तथा मधु के साथ, मूत्रकृच्छ्र में पुनर्नवारस के साथ, उदरशूल में ३ माशा शुंठी चूर्ण १½ माशा यवक्षार, यकृत्, प्लीहा, गुल्म में हरड़ तथा रोहितक की छाल का काढा ५ माशा पीपली चूर्ण तथा यवक्षार ३ माशा के साथ, मूत्रकृच्छ्र में मिश्री मिला दूध की लस्सी के साथ सेवन करने से लाभ होता है। कफ इसके सेवन से पतला होकर बहने लगता है। फुप्फुस का शोथ कम होता है। अतः कास-श्वास में दिया जाता है।

वरुणः (श्वेतपुष्पः, अश्मरीघ्नः तिक्तशाकः)

परिचय—बेल के समान तीन पत्रों वाला वरुण वृक्ष प्रायः सर्वत्र मिलता है, दक्षिण में अधिक।

व्य० अं०—छाल, पत्र

पुष्पकाल—चैत्र-वैशाख

रस—मधुर तिक्त, कटु, कषाय

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—वातकफशामक, पित्तवर्धक

प्र० अं०—मूत्र संस्थान

वि० गु० क०—व्रणशोथ पाचक, अश्मरिघ्न, मूत्रल, रक्तशोधक

मात्रा—२-४ माशा

नाम—(हि० पं०) वरणा, वरुना (बं०) तिकोशाक (म०) वायवर्णा (गु०) वायवरणो, कागडाकेरी (क०) निर्बल (तै०) उसिकमानु (ता०) भार्वलिंगमरम् (अं०) होली[1] गार्टर पिअर (वा० ले०) क्रेटिवा[2] रिलिजिओसा, वरुण वर्ग[3]।

गुण—वरुणो मधुरस्तिक्तः कषायः कटुको लघुः। रूक्षोष्णः पित्तलो भेदी दीपनः कफवातजित्॥
निहन्ति कफवातास्र मूत्राघात सहृदयगदान्॥ (कै०)

बायवरण, मधुर, तिक्त, कसैला, कटु, लघु, रूक्ष, उष्ण, पित्तवर्धक, मल का भेदक, अग्निदीपक, कफवातशामक, वातरक्त, मूत्राघात, अश्मरी तथा हृद्रोगनाशक है। पुष्प ग्राही पित्तरक्त रोगनाशक, फल स्निग्ध, मधुर, विपाकी, त्रिदोष शामक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—बाह्य प्रयोग में वरुण की छाल क्षोभक है तथा अधिक देर तक लगाने से छाले उत्पन्न कर देती है। राजिका के स्थान पर सन्धि शोथादि में इसका लेप लगाया जाता है। व्रण-शोथ में पत्र या त्वचा का लेप लगाया जाता है। इससे या तो शोथ बैठ जाती है या पक जाती है। पत्तों का धूम्रपान मुँह से पीकर नाक से निकालने से नाक की हड्डी का सड़ना और उसकी शोथ मिट जाती है। धूम्रपान १४ दिन तक करना चाहिए।

---

1. Holygarter Pear.
2. Crataeva-Religiosa, Hovk & Forst.
3. Capparidaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अन्तः प्रयोग में भी यह शोथशामक है। अन्तर्विद्रधि में तथा गण्डमाला में बारम्बार इसका क्वाथ मधु के साथ पीने से लाभ होता है। गण्डमाला में कांचनार की छाल मिलाने से और भी लाभ होता है।

मूत्रेन्द्रिय के रोगों, अश्मरी, शर्करा, बस्तिशूल आदि में वरुण छाल का काढ़ा, विशेषकर अपामार्ग, पुनर्नवा, यवक्षार के साथ मिलाकर खाने से अत्यन्त लाभ होता है। इससे अंडकोष शोथ भी मिटती है।

योग—वरुणादि क्वाथ, वरुणादिघृत, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेहशामक।

वेतसद्वयम् (वेतसो-जल वेतसश्च)

नाम—(सं०) वंजुलः, अग्रपुष्पः (हि०) वेंत, जलवेत (म०) वेत (गु०) नेतर जलनेतर (बं०) वेतं (वा० ले०) केलेमस[1] रोटांग (जलवेतस्, केलेमस्[2] विमिनेलिस, ताड़ वर्ग[3]।

परिचय—वेतस् सुपरिचित क्षुप है, जलाशय स्थानों में अधिक होता है। दक्षिण तथा सिंगापुरादि प्रदेशों में मिलता है, विशेष गुण, शीतल, मूत्रलग्राही।

गुण—वंजुलस्तुवरस्तिक्तो हन्तिपित्तकफानिलान्। अनुष्णो दाह शोफार्शो विसर्पाश्मरी कृच्छ्रनुत्॥
अतिसार तृषा योनि रुजारक्तव्रणापहा। पत्रे तु भेदनंतिक्तं कषायं लघु शीतलम्॥
विपाके कटुकं श्लेष्मपित्तास्रघ्नं न वातलम्। कषायः शीतलो रूक्षः संग्राही जलवेतसः॥ (कै०)

कई आचार्य जलवेतस् से एक अन्य वनस्पति (म०) वालुंज[4] को जलवेतस् मानते हैं। यह वेदमुश्क वर्ग[5] की है। त्वचा (६-१२ माशा मात्रा) पौष्टिक ज्वरघ्न है।

शाकः (स्वरपत्रः-श्रेष्ठकाष्ठः महापत्रः)

नाम—(हि०) सागौन, सागवान (म० गु०) सागवान (बं०) सेगुन (अं०) टीक[6] वुड ट्री (वा० ले०) टिक्टोना[7] ग्रेण्डिस्, निर्गुण्डी वर्ग[8]।

गुण—शाकः कषायः शिशिरो रक्तपित्तप्रसादनः। कुष्ठश्लेष्मानिलहरो गर्भसन्धानस्थैर्यकृत्॥
शाकपुष्पं प्रमेहघ्नं रूक्षं तुवर तिक्तकम्। कफपित्त हरं वातकोपनं विशदं लघु॥ (कै०)

सागौन, कसैला, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, रक्तपित्त प्रसादन, कसैला, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, रक्तपित्त प्रसादन (शोधक) त्वचा रोग, वातकफरोगशामक, गर्भ स्थापक तथा रक्षक है। फूल कड़वे, कसैले, रूक्ष, प्रमेह नाशक विशद् लघु, कफपित्तहर वातवर्धक है।

फल मूत्रल है। पित्त शोथ, पित्त की दाह तथा आमाशय दाह में लकड़ी या छाल का लेप करना और ५-१० माशा की मात्रा में सेवन करने से लाभ होता है। पित्त के सिर दर्द में भी इसका चन्दन के समान घिसकर लेप लगाया जाता है। इसके फलों में से गाढ़ा सुगन्धित तैल निकलता है जो अति उत्तम केश्य है। अभ्यंग खाज का भी शामक है। भिलावे तथा काजू के तैल से उत्पन्न जलनयुक्त शोथ इससे शान्त होती है।

पत्र पित्तशामक रक्तस्थापन, सूक्ष्म रक्तवाहिनी, संकोचक होने से रक्तस्रावरोधक है। सागौन के पत्ते हाथ में मलने से लाल या पीला रंग आ जाता है। आषाढ़-श्रावण में पुष्प आते हैं।

---

1. Calamus Rotang.
2. Calamus viminelis.
3. Palmae.
4. Salix Tetrasperma, Roxb.
5. Salicineae.
6. Teak wood tree.
7. Tectona grandis, Linn.
8. Verbinaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शैलेयम् (शिलापुष्पम्-शिलोद्भवम्)

नाम—(हि०) छेलछवीला, भूरिछवीला (म०) दगड़फूल (गु०) छडीलो (क) कल्लुहब्बु (तै०) रतिपंचे (ता०) कलपसी (अं०) स्टोन्[1] फ्लावर, राकमास्, यलोलिचन[2] शिलापुष्प वर्ग[3] (वा० ले०) पार्मेलिया पर्फोराटा[4]।

गुण—शैलेयं शीतलं हृद्यं कफपित्तहरं लघु । कण्डु कुष्ठाश्मरोदाह विषहृल्लास रक्तपित्तजित् ।। (भाव)

शिलापुष्प, शीतवीर्य, कटु विपाकी, सुगन्धि, लघु, कफपित्त, दाह, वमन, तृष्णा, श्वास, व्रण, कण्डु, त्वचा रोग हृल्लास (जी मचलाना, रक्तविकारशामक) है।

प्रयोग—यह मूत्रल है। १ तोला छड़ीला का काढ़ा मिश्री तथा जीरा मिलाकर पीने से पेशाब खुलकर आता है। सिर दर्द में इसे पीसकर लगाते हैं। यह सारक है। सिरदर्द में इसे पीसकर लगाते हैं। रजःकृच्छता, वमन, पथरी, पीनस, यकृत्, गर्भाशय और आमाशय की पीड़ा की शामक है। तैलों में सुगन्धि के लिए डालते हैं।

शरः (मुञ्जः बाण-भद्रमुञ्जः-बृहन्मेखल)

नाम—(हि०) सरकांडा, मूंज (पत्तियों का नाम है) (बं०) शर (पं०) सरकंडा, काना (म०) शर (वा० ले०) सेकेरम् एरण्डिनेशियम्,[5] धान्य तृण वर्ग।

गुण—मुज्जः कषायः मधुरोऽनुष्णों वृष्योऽक्षिरोगजित् । दोषास्रदाह तृणमूत्र वस्तिशूलवीसर्पनुत् ।। (कै०)

मूंज या सरकंडा मधुर, कषायरस, शीतल मधुर विपाकी, वीर्य बलवर्धक, नेत्र रोग, रक्तपित्त, त्रिदोष, प्यास दाह; वीसर्पनाशक तथा मूत्रल क्वाथ में भी डाला जाता हैं। शीतल, दाहशामक होने के कारण वीसर्पादि में मूल का चन्दन के समान घिसकर लेप लगाया जाता है।

वक्तव्य—द्रव्यगुण विज्ञान के लेखक ने मुंजातक से सालम मिश्री का ग्रहण किया है। पृष्ठ ३५१ से वह भ्रान्त है। मुज्ज और भद्रमुज्ज ये दोनों ही शर के ही नाम हैं और गुण भी शर से ही मिलते हैं। देखिये आचार्य भाव मिश्र का वर्णन 'भद्रमुज्जः शरो बाणस्तेजनश्चेक्षुमण्डनः। मुजातको बाणः स्थूलदर्भः सुमेखला। पुंजाद्वयं तु मधुरं तुवरं शिशिरं तथा। दाह तृष्णा वीसर्पास्रमूत्रकृच्छाक्षिरोहृत। दोषत्रयहरं वृष्यं मेखलासूपमुज्यते।

साधारणतः हिन्दी भाषा में इसके पत्तों को मूंज (मुंज्जः का अपभ्रंश) कहते हैं। मूंज की रस्सी उत्तर भारत में सर्वत्र मिलती है। सालम मिश्री से इसका दूर का भी सम्बन्ध नहीं। सम्भवतः चरक ने भुंज्जात के वर्णित गुणों से बहक गये हैं। किन्तु चरक नें भुंज्जातक के गुण लिखे हैं। भाव मिश्र तथा राजनिघटुक ने भी मूंज या शर के वही गुण लिखे हैं। अतः मूंज या मुज्जातक को सालम मिश्री कहना अशास्त्रीय है।

सिल्हकः (तुरुष्क, यावन, धूम्रवर्ण)

नाम—(म० व० हि०) शिलारस, सिलारस (गु०) शेलारस (अं०) लिक्विड स्टोरेक्स[6] या लि० अम्बर (वा० ले०) लिक्विडम्बर[7] ओरिए एन्टेलिस, सिल्हक वर्ग[8]।

वक्तव्य—उक्तवृक्ष, जो टर्की (तुरूक देश) तथा मध्य एशिया माईनर, अरबादि देशों में होता है, का निर्यास है। वहीं से आयात किया जाता है। यह मधुवत् गाढ़ा पिलाई लिए हुए लाल (धूम्रवर्ण, कपिलः) या भूरा गन्धि तथा

---

1. Stone Flower, Rockmoss.
2. Yellow Lichen.
3. Parmelia-Perforata.
4. Lichenes.
5. Saccharum Arundinaceum. Ketz.
6. Liquid Storex/Liquid Amber.
7. Liquidamber orientalis, muller.
8. Hamameliadeae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रुचिकर होता है। इसी से मिलता-जुलता निर्यास एक वृक्ष जो आसाम, ब्रह्मा मलायादि में होता है, से भी मिलता है। गुणों में समान होते हुए भी यह निकृष्ट जाति का है। प्रतिनिधि के रूप में व्यवहार कर सकते हैं।

गुण—तरुष्कः सुरभिस्तिक्तः कटुः स्निग्धश्चकुष्ठजित। कफवाताश्मरी मूत्राघात श्वासज्वरातिजित्। (रा० नि०)

शिलारस, कटु तिक्त, उष्णवीर्य, कटु विपाकी सुगन्धि, कृमिघ्न, शोथशामक, श्लेष्मानिः सारक तथा कृमिघ्न, कफघ्न, शोथशामक, श्लेष्मानिःसारक तथा मूत्रार्तवजनक है। मात्रा ५-१५ रत्ती।

प्रभाव तथा प्रयोग—इसमें एक उड़नशील तैल पाया जाता है। अतः शरीर से निकलते समय यह मूत्रभाग तथा फुप्फुसों से बाहर निकलता है। अतः वहाँ भी कला को उत्तेजित कर मूत्र तथा कफ का स्राव अधिक मात्रा में कराता है। अधिक मात्रा में सेवन से मूत्रमार्ग में दाह भी हो जाती है। अतः यह कफ निष्कासक तथा कृमिघ्न और सुगन्धि होने से जीर्ण कास तथा क्षय की कास में लाभ करता है। मुलैठी, रूमीमस्तगी के साथ मिलाकर खिलाना उत्तम है। स्वर तथा कण्ठशोथ में भी लाभदायक है। मूत्रकृच्छ, जीर्णपूयमेहशामक है। चन्दन तैलादि के साथ मिलाकर देना चाहिए।

त्वचा रोगों में तिल तैल ४ भाग, शिलारस १ भाग, अभ्यंग करने से खाजादि त्वचारोग तथा वालों की जुए नष्ट होती है। यह अनेक तेलों में मिलाकर वात व्याधियों में, वातरक्त आमवात में, अभ्यंग के काम आता है। शोथशामक है। अण्डवृद्धि में, लोह एकत्र होने पर शिलारस, आंवाहल्दी २½-२½ तोला, एलुआ, सज्जीखार, करंजुआ बीज १¾ तोला प्रत्येक, रसौंत, स्फुटिका (फटकड़ी) ९-९ माशा मेदा लकड़ी, अफीम ३-३ माशा कूट-पीसकर, इसे मधु में पीसकर गरम कर वासा के पत्तों के रस से ४, स्रावनादे सुखाकर इसे मधु में पीसकर गरम कर एरण्डपत्र में फैलाकर लेप लगावें। एक मास तक ऐसा करने से वृषणशोथ शान्त होता है। किन्तु यह प्रयोग एक मास तक जारी रखना चाहिए। रजःकृच्छता में भी यह लाभ करता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चौबीसवाँ अध्याय

नारी प्रजननांग प्रभावक

अशोकः (ताम्रपल्लवः, शोणपुष्पः)

परिचय—आम के सदृश वृक्ष

उ० स्थ०—प्रायः सर्वत्र, विशेषकर बंगाल तथा दक्षिण में

व्य० अं०—मूलत्वचा

पुष्पकाल—चैत्र-वैशाख

रस—कषाय, तिक्त

वीर्य—शीतल

विपाक—कटु

दोष—पित्तकफहर, वातशामक

प्र० अं०—गर्भाशय, अन्त्र

वि० गु० क०—ग्राही, दाहहर, उदरशामक

मात्रा—चूर्ण १-२ तोला

नाम—(हि० म० गु० बं०) अशोक (तै०) आशोकमु (ता०) अशोकम्, आलोकम् (मल०) अशोकम् (वा० ले०) सराका इण्डिका[1], वर्ग पूति करंज या शिम्बी[2]।

गुण—अशोकः शीतलस्तिक्तो ग्राही वर्ण्यः कषायकः। शोषापची तृषादाह कृमिशोथ विषास्रजित ॥ (भाव०)
अशोकस्य त्वचा रक्त प्रदरस्य विनाशिनी। (शो०)

अशोक शीतल, कषाय तथा कड़वा, ग्राही, वर्ण को उत्तम बनाने वाला, शोथ, अपची, (गण्डमाला) दाह, प्यास, कृमि, शोथ और विष और रक्तदोषनाशक है। अशोक की छाल रक्तप्रदर नाशक है।

अशोक गर्भाशय की मांस-पेशियों को प्रभावित कर उनकी संकोचक शक्ति तथा संकोच अवधि को बढ़ाता है। अतः गर्भाशय से बहने वाले रक्तस्राव में उत्तम है। साथ ही यह रक्तस्तम्भक तथा ग्राही है। अतः रक्तप्रदर, अत्यार्तव, गर्भस्रावशामक है। रक्तातिसार, रक्तार्श में छाल का काढ़ा या पुष्पों को जल में पीसकर सेवन कराने से लाभ होता है। पुष्पों को पीसकर स्तनों पर लेप करके बालक को पिलाने से, उन्हें वमन हो जाती है। रक्तप्रदर में रसौंत तथा अशोक छाल को तण्डुलोदक (चावल का पानी) से पिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

योग—(१) अशोकारिष्ट (२) अशोकघृत

वक्तव्य—गुजरात में एक वृक्ष पाया जाता है। जिसे खोटा अशोक कहते हैं। इसका प्रयोग अशोक के स्थान में नहीं करना चाहिए। यह सीताफलवर्ग (Anonaceae) की पोलिएल्थिया लोगीफोलिया (Polyalthia

1. Saraca Indica, Linn.
2. Caesalpiniaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Longifolia, Benth) उत्तसुपालो नामक वनस्पति है। इसकी छाल ज्वरों में दी जाती है। अशोक की छाल में मिलाकर भी दी जाती है।

कार्पासो (पटदा-भारद्वाजी)

परिचय—सुपरिचित गुल्म (झाड़ी)

उ० स्थ०—पर्वत्र पाया जाता है

व्य० अं०—मूलत्वक्

बीजों को (हि०) बिनोले (मा०) काकड़ा (म०) सरकी (गु०) कपासिया कहते हैं।

रस—मधुर कषाय

वीर्य—(मूल) उष्ण (बीज) शीत

विपाक—मधुर

दोष—मूत्रादि वातशामक, कफवर्धक, पित्तशामक

प्र० अं०—प्रजनन अंग-गर्भाशयादि

वि० गु० क०—मूल-गर्भपातक, रजःस्रावक, बीज स्तन्यप्रद, वृष्य, पौष्टिक

मात्रा—मूलत्वक् ६ माशा, क्वाथ ५-१० तोला बीजचूर्ण ६-१२ माशा

नाम—(हि० मा० पं०) कपास, रुई (बं०) कापास (म०) कापसी (गु०) वोंड, वोण, कपास (क०) हत्ति (तै०) प्रत्ति (अं०) काटन प्लान्ट[1] (वा० ले०) गोसिपियम[2] हर्वेसिअम् लिन्न कार्पास वर्ग[3]।

गुण—कार्पासिका किंचिदुष्णा कषायामधुरालघुः। तत्पलाशं समीरघ्नं रक्तहृन्मूत्रवर्द्धनम् ॥
तत्कर्ण पीडिकानाद पूयास्राव विनाशनम्। तद्बीजं श्लेष्मलं वृष्यं स्निग्धं स्तन्यविवर्धनम् ॥

कपास कसैली, मधुर, कुछ उष्ण, लघु है। उसका पत्र वातशामक रक्त रोगशामक, मूत्रल, कर्ण रोग, पूय, रक्तस्रावनाशक, बीज कुछ कफवर्धक, वृष्य, स्निग्ध तथा दुग्धवर्धक है।

प्रयोग—मूल गर्भाशय उत्तेजक है। गर्भाशय शैथिल्य को दूर कर मांसपेशियों को बल देती है। प्रसव के पश्चात् उसका संकोच उत्तम होता है, रक्तस्राव बन्द होता है। गर्भाशय की शिथिलता के कारण होने वाले उदरशूल आदि नहीं होते। रजःकृच्छ्रता, कटिशूल, रक्तप्रदर नाशक है। इन रोगों में मूलत्वक् का काढ़ा पीने के लिए तथा स्वेदन के लिए प्रयुक्त होता है।

पुष्प स्वरस या उसके शर्बत से मानसिक उदासीनता दूर होती है तथा चितविक्षेप नष्ट होकर मन प्रसन्न होता है। रक्त प्रदर में पुष्पभस्म १ तोला जल के साथ देने से लाभ होता है। बीज बल्य तथा स्तन्य है। वायु या पैत्तिक मस्तक पीड़ा विबन्ध में इनका तथा खसखस का हलुआ खिलाया जाता है। १ तोला बीज मज्जा, शरीर में बल, वीर्य तथा स्त्रियों में दुग्ध स्राव बढ़ाती है। शुष्ककास में बीजों का काढ़ा स्निग्धता उत्पन्न करता हे तथा कफ को निकालता है। धत्तूर विष में तीन तोले बिनौलों की मींगी जल में पीसकर पिलाते हैं। कामला में ७ माशा बिनौलों की गिरी का शीतकषाय सैन्धव के साथ दिया जाता है।

पत्रों को पीसकर या काढ़ा कर आमातिसार में दिया जाता है। अर्श या गुदाशोथ में इनका पत्रों के काढ़े से सेक करते हैं। कर्णशूल, पूय, स्राव में पत्तों का रस डालते हैं। गर्भाशय शूल में कोमल पत्र तथा मूल के क्वाथ में कटि

1. Cotton Plant.
2. Gossypium Herbaceum, Linn.
3. Malvaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तक स्वेद देने से लाभ होता है। तैल-आमवातादि शोथों में अभ्यंग के काम आता है। रक्तस्राव होने पर या चोट लगने पर रुई को जलाकर व्रण में भर दिया जाता है। जिससे रक्तसाव बन्द हो जाता है तथा व्रण भी भर जाता है। बाल शोथ में बीजों की मज्जा अतिगुणकारक है। मींगी को महीन पीसकर मधु के साथ मंजन करने से तथा कनपटियों पर लेप करने स अनिद्रा, मस्तक पीड़ा नष्ट होती है। बीजों को शुण्ठी के साथ पीसकर अंडशोथ पर लेप किया जाता है। अरण्य कर्पास या नर्मा, देव कर्पास भी इसी का भेद हैं।

काकजंघा (नदी कान्ता, पारावतपदी)

नाम—(हि० पं० बं०) काकजंघा (मा०) कागलहर (ता०) सुरसापदी (वा० ले०) लीआहर्टा[1] द्राक्षा[2] वर्ग, काकजंघा वर्ग।

गुण—काकजंघा हिमातिक्ता कषाया कफवातजित्। निहन्ति ज्वर कुण्ठास्र व्रण कण्डुविष क्रिमीन् ॥ (कै०)

प्रयोग—यह सदोदित पल्लवयुक्त क्षुप प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। वर्षा के अन्त में पुष्प लगते हैं। जड़ कों चावलों के पानी के साथ पीसकर श्वेत प्रदर में, सोमरोग में, लोध्र को इसकी जड़ की भावना देकर मधु के साथ चटाते हैं। जड़ को मस्तक पर बाँधने से निद्रा आती है।

कलिहारी (लांगली-अग्निशिखा-हलिनी)

नाम—(हि०) कलियारी, कलिहारी (बं०) विषलांगल्या (गु०) दूधिको बचनाम (म०) खडयानाग, कललावी (क०) केलिकुटुम (तै०) अग्निपेक्क (ता०) कटिजेन् (अं०) सुपर्बलिली[3] (वा० ले०) ग्लोरिओझा सुपर्बा लिन्न[4], पलाण्डु वर्ग[5]।

गुण—लांगली कटुरुष्णा च कफवातनाशिनी। तिक्तासराच श्वयथु गर्भशल्यव्रणापहा ॥

कलिहारी—यह कड़वी, चरपरी, उष्ण, कटु विपाकी, रेचक, शोथ, गर्भ, शल्य तथा व्रणनाशक एवं वातकफ-नाशक है। प्रयोग मूल का किया जाता है। यह एक छोटा-सा क्षुप है। जिस पर वर्षा में लाल-पीले रंग के पुष्प आते हैं। अगस्त-सितम्बर में ये पुष्प दूर से आग की लपट के समान लगते हैं। अतः इसे 'अग्निशिखा' कहा गया है। यह सात उपविषों में गिनी गई है—

"अर्क क्षीरं स्नुहीक्षीरं लांगली करवीरकौ। गुंजाहिफेनो धत्तूरः सप्तोपविषजातयः ॥

प्रयोग—तीव्र विष होने से प्रायः बाह्य प्रयोग ही किया जाता है। यह अधिक समय तक अधिक मात्रा में लेप करने से भी शोथ उत्पन्न करती है। अपरापातन के लिए इसे पीसकर स्त्री की नाभि तथा हाथ पैरों के नाखूनों पर लेप किया जाता है। कानखजूरा (शतपदी) या बिच्छू के दंश पर लेप लगाते हैं। सर्प विष में पीसकर सूंघना तथा गण्डमाला में निर्गण्डीरस एवं लांगली कन्द में तैल पकाकर उसकी नस्य देने से लाभ होता है।

अन्तः प्रयोग में ½-२ रत्ती तक मात्रा है। दीपन, पाचन, उदरकृमिनाशक है। कामला रोग में पत्तों का चूर्ण छाछ (तक्र) के साथ दिया जाता है।

शोधन—पुष्पित क्षुप के कन्द को उखाड़कर पतले-पतले टुकड़े काटकर नमक डाले हुए मठ्ठे (तक्र) में एक दिन तक भिगो रखें। दिन में निकालकर सुखा लें। इस प्रकार ४-६ दिन तक करने से विष का प्रभाव कम हो जाता है। सर्प दष्ट में इस प्रकार शुद्ध लांगली की २ रत्ती या न्यूनाधिक मात्रा में देने से लाभ होता है।

---

1. Leea Hirta, Roxb.
2. Anapelideae, or Vitaceae.
3. Superblily.
4. Gloriosa Superba, Linn.
5. Liliaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गृंजनः (गर्जरः, पोतकम्)

नाम—(हि० पं० बं० गु० मा०) गाजर (अं०) दी कैरट[1] (वा० ले०) डाउकस[2] केरोटा डा० वलोरिस, छत्रक वर्ग[3]।

वर्णन—सुपरिचित क्षुप है। कन्द तथा बीजों का उपयोग किया जाता है।

गुण—कन्द पौष्टिक तथा मूत्रल, बीज-उष्ण, उत्तेजक तथा रजःकृच्छ्रताशामक है।

गुणा—गृंजनः कटुकः पाके तीक्ष्णोष्णतिक्तको लघुः। विदाही दीपनो हृद्यो ग्राही रूक्षो स्रपित्तजित्॥
कफामकामलाशोफ तमक श्वास जन्तुजित्॥ (कै०)

गाजर कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, तीक्ष्ण, विदाही, दीपन, रुचिकारक, रूक्ष, ग्राही, रक्तपित्त कफ क्रमिनाशक है।

प्रयोग—गाजर का वृक्कों पर उत्तम प्रभाव है। जलोदर आर्द्रशोथ को मूत्र अधिक मात्रा में लाकर शान्त करता है। दीपन पाचन होने से पाचन क्रिया को सुधारता है। त्वचा रोगों में दाद, पामा, विचर्चिकादि में गाजर के बीजों को पीसकर लेप करने से अत्यन्त लाभ होता है। यह हमारा अपना अनुभव है। आन्तों के कीड़ों को कच्ची गाजर नष्ट करती है तथा भविष्य में नहीं होने देती। गाजर का हलुआ अति पौष्टिक है। बीज गरम तथा तीक्ष्ण है। रजः-कृच्छ्रता, गर्भाशय शूल, विलम्ब प्रसव में इनका काढ़ा बनाकर दिया जाता है। उदर, आध्मान, जलोदर, वृक्क रोगों में गाजर का बीज लाभप्रद है। वीर्योत्तेजक के रूप में कुछ प्रदेशों में इनका व्यवहार किया जाता है। अरुचि, अग्निमान्द्य, विषूचिकादि में गाजर बीजों, सौंफ, सोंठ, मरिच्च, पिप्पली, जीरा, अजमोदा, धनिया एक-एक भाग काला नमक २ भाग मिलाकर चूर्ण बना ३-६ माशा तक गरम जल से लेने से लाभ होता है। पाण्डु, कामला, यकृत्प्लीहोदर में हरी गाजर, हल्दी ताजी, वासापर्न, गिलोय, नीम की पत्तियाँ, घृत कुमारी सब ताजी और समभाग मिलाकर गोमूत्र (२ भाग) काढ़ा बनाकर पिया जाता है। अति लाभप्रद है।

जया (हेमपुष्प औन्ड्रपुष्प)

नाम--(हि०) गुड़हल, जवा (बं०) जवा फूल (म०) जास्वन्द (गु०) जासुस, जासुन्द (तै०) दासनश्रु (ता०) शपात्तूर (अं०) चाईनारोज[4], शू फ्लावर[5], (वा० ले०) हिबिस्कस् रोजासाईनेन्सिस्[6], कार्पास वर्ग[7]।

गुण—विसन्ध्या शीतला तिक्ता विषपित्तकफापहा। जपासंग्राहिणी केश्या रक्त प्रदर नाशिनी।

जया तिक्त, शीतल, पित्तकफशामक, ग्राही, केश्य, रक्तप्रदर, प्रमेहशामक तथा पौष्टिक है। ताजे पुष्प मनः प्रसादकर हृद्य होते हैं।

प्रयोग—पुष्पों का रस या शर्बत बनाकर प्रयोग किया जाता है। फाण्ट-अर्क भी बनाया जाता है। यह ग्राही, शीतल तथा पौष्टिक है मूत्रकृच्छ्र, दाह, तृषा, पित्त, रक्तस्राव, गर्भस्राव को नष्ट करता है। श्वेत या रक्त प्रदर प्रमेह में मूल की छाल का रस या १०-१२ कलियाँ सेवन करने से अतिलाभ होता है। इसका तैल केशों को बढ़ाता है। ताजे फूलों का रस तथा जैतून का तैल समभाग लेकर पकाएँ। जलभाग के जल जाने पर तैल को सिर में लगाया

1. The Carrot.
2. Daucus Carrota, Linn. D. Vulgaris.
3. Umbellifereae.
4. Chinese rose.
5. Shoe.Flower.
6. Hibiscus Rosa-sinensis, Linn.
7. Malvaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जाता है। पत्ते मृदुरेचक हैं। पुष्पों का शाक रक्तप्रदरनाशक है तथा उपदंश के व्रणों को इसके पत्तों के काढ़े से धोना चाहिए। फूलों का शर्बत गर्भस्थापना करता है।

वक्तव्य—जया की झाड़ी सर्वत्र उद्यानों में पाई जाती है। पुष्पकाल अगस्त-सितम्बर, व्यवहार्य अंग पुष्प, पत्र, मूलत्वक्। मात्रा ४-८ माशा।

जीवन्ती (शाकश्रेष्ठ, जीवनीया पुत्रदा)

नाम--(म०) स्वान दौड़ की, शिरदौड़ी (गु०) दौड़ी, डोडी, मीठी खारबोड़ी, राडारुडी (वा० ले०) लेप्टाडेनियारेटीकुलाटा[1], अर्कादि वर्ग[2]।

परिचय—जीवन्ती की बहुवर्षायु लता है। पत्र गिलोय के पत्तों के समान, पर उतनी चिकने नहीं। कच्ची फलियों का साग बनाकर खाया जाता है। यह मधुर तथा स्वादिष्ट होता है। जिस लता में से सफेद दूध निकलता है उसे जीवन्ती कहते हैं।

गुण--चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी जीवन्ती समुदाहृता। (सु० सू० ४०)

जीवन्ती मधुरा शीतासुस्निग्धा ग्राहिणी लघुः। चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी बल्या वृष्या रसायनी ॥

(कै० वि०)

जीवन्ती मधुर, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, स्निग्ध, ग्राही, चक्षुष्य, त्रिदोषशामक, रक्तपित्त, दाह, ज्वर तथा क्षय रोगनाशक है। बारंबार गर्भस्राव होने पर इसके सेवन से लाभ होता है। यह जीवनीय गुण की औषधि है।

पदम्काष्ठ (पद्मक, शीतवीर्य)

परिचय—मध्य प्रमाण का वृक्ष, हिमालय के अधोभाग में प्राप्त

पुष्पकाल—अश्विन-कार्तिक

व्य० अं०—काष्ठ, त्वचा

रस—तिक्त, कषाय

वीर्य—शीत

विपाक—कटु विपाकी

दोष—कफपित्तशामक, वातवर्धक

प्र० अं०—गर्भाशय

वि० गु० क०—पित्तशामक, वमननाशक, गर्भस्थापक, रक्तस्रावरोधक

मात्रा—५-६ माशा तक

नाम—(हि० पं० बं०) पद्माख, पद्माक (म० गु०) पद्मकाष्ठ (क०) पद्मक (तै०) एणगुसहदेवि (वा० ले०) प्रुनसपुडुम[3] तरुणी या शतपत्री वर्ग[4]।

गुण—पद्मकं तुवरं तिक्तं शीतलं वातलं लघु। गर्भसंस्थापनं दाहविषपित्तकफास्रजित् ॥

विस्फोट व्रणवीसर्प वमिकुष्ठ तृषापहम् ॥ (कै०)

---

1. Leptadenia Reticulata, W & A.
2. Asclepiadaceae.
3. Prunus Puddum, Roxb.
4. Rosaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पद्मकाष्ठ, कसैला, कड़वा, शीतल, वातवर्धक, लघु, गर्भ स्थापक, दाह, विष, पित्त, कफ तथा रक्तरोगशामक, विस्फोट, व्रण, वीसर्प, वमन, त्वचा रोग, तृष्णाशामक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—अत्यन्त शीत होने के कारण पित्तज्वर, पाण्डु, कामला, दाह, तृष्णा तथा वमननाशक है। चन्दन के समान घिसकर देना उत्तम है। ग्रीष्म ऋतु में रक्त की उष्णता के कारण उत्पन्न फोड़े-फुंसियों में इसका शर्बत लाभप्रद है। योनि को शक्ति देता है तथा उसके शैथिल्य को दूर करता है। उत्तम गर्भस्थापक है। बारंबार जिनको गर्भस्राव या पात हो जाता है उनके लिए उत्तम है। फल की गिरी अश्मरी तथा शर्करा में दी जाती है।

योग—फलघृत, फलकल्याणघृत।

प्रियंगु (गन्धप्रियंगु, फलिनी, कान्ता)

परिचय—गन्ध प्रियंगु भारत में बिलोचिस्तान से आता है। फल सुगन्धित, चिरौंजी (प्रियाल) जैसा। प्रियंगु 'कंगनी' जैसा। प्रियंगु 'कंगनी' नामक धान्य का भी नाम है। किन्तु वह प्रियंगु नहीं है।

रस—तिक्त, कषाय

वीर्य—शीत

विपाक—कटु

प्र० अ०—अन्त्र, गर्भाशय

वि० गु० क०—संग्राही, शीतल, गर्भस्थापक

मात्रा—½-१ तोला तक

नाम—(हि०) फूलप्रियंगु, फलफिरंग, (मं०) गहुला (गु०) घउंला, (बं०) प्रियंगु (वा० लें०) प्रुनस्[1] महालेब, तरुणी वर्ग[2]।

गुण—गन्धप्रियंगु शोणितपित्तातियोग प्रशमननाम्॥ (च० सू० २५)

फलिनी शीतला तिक्ता तुवरानिलपित्तहा। रक्तातिसार योग दौर्गन्ध्य स्वेददाह ज्वरापहा॥

तत्फलं तुवरं रूक्षं कषायं शीतलं गुरु। विबन्धाध्मानबलकृत् संग्राही कफपित्तजित्॥ (कै०)

गन्ध प्रियंगु—कड़वा, कषाय, अनुरस, अतिशीतवीर्य, वातपित्तजित् (कफपित्तशामक) स्वेद, दाह, ज्वर, रक्त, स्राव, अतिसारशामक, बल्य, विबन्ध तथा आध्मानकारक है। कषाय रस तथा शीतवीर्य होने से सब प्रकार के रक्त स्राव तथा पित्तविकारशामक है। रक्त प्रदर, रक्तातिसार, गर्भस्राव, उरःक्षत आदि के रक्तस्रावों को बन्द करता है। ग्राही होने से अतिसार संग्रहणीशामक और बलवर्धक है। मूत्रमार्ग की दाह, ज्वरों में दाह-प्यास वमनशामक है।

मधु के साथ सेवन करने से यकृत्-प्लीहा, वृक्क तथा फेफड़ों को शक्ति देता है। पौष्टिक होने से वातरोग, कमर दर्द, पक्षाघातादि में तथा गर्भपात और गर्भस्रावनाशक है। बारंबार जिनको गर्भस्राव हो जाता हो उन्हें गर्भ स्थापना में सहायता देता है। उत्तम गर्भस्थापक है।

पीवरी (पिशाच कार्पासी, द्रुमोत्पलः)

नाम—(बं०) ओलट कबोल (म०) ओलक तंबोल (हि०) उलट कम्बल (अं०) डेविल्स काटन[3] (वा० ले०) अब्रोमा[4] आगष्टा लिन्न।

---

1. Prunus Mahaleb, Linn.
2. Rosaceae.
3. Devil's cotton.
4. Abroma Augusta, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

परिचय—यह एक गुल्म जातीय (झाड़ी) वनस्पति है। जो उष्ण प्रदेशों में बंगाल, उत्तर प्रदेश, आसामादि में उत्पन्न होती है। मूलत्वचा, पत्र, काण्ड का उपयोग किया जाता है। गर्भाशय रसायन है।

गुण—यह गर्भाशय उत्तेजक, आर्तवजनक तथा रजःकृच्छ्रता की पीड़ा को शान्त करता है। अनियमित ऋतु स्राव तथा कष्टार्तवनाशक है। नवीन छाल अधिक गुण करती है। मूल की छाल का ३ माशा, कालीमिर्च का चूर्ण ३ माशा ऋतु धर्म को नियमित करता है। रक्तदर्शन से लेकर सात दिन तक देना चाहिए। यदि रजःस्राव ठीक समय पर न हो तो ७ दिन पहले से सेवन प्रारम्भ करें तथा जब तक आर्तव न आए तब तक देते रहना चाहिए। यह मासिक धर्म की पीड़ा को मिटाकर गर्भाशय को गर्भ धारण योग्य बनाता है। उलट-बल मूल २½ तोला का काढ़ा बनाकर दिन में तीन बार सेवन करने से अनियमित मासिक धर्म नियमित हो जाता है तथा यदि गर्भाशय में अधिक रक्त जमा हो तो चूर्ण का उपयोग होता है। मात्रा मूलत्वक चूर्ण १०-१२ गुंजा, ताजामूल ४-८ माशा, स्वरस ३-६ माशा।

पुत्रंजीव (यष्टिपुष्प)

नाम—(हि० मा० पं०) जियापोता (म०) पुत्रंजीव (क०) पुत्रजीवी (तै०) कुवरजूवि (गु०) पुत्रजीवक, जयपूत (वा० ले०) पुत्रंजीवा राक्सवर्गीआ लिन्न[1]।

गुण—पुत्रंजीवोहिमोरूक्षो वृष्यः स्वादुः पटुर्गुरु। विष्टम्भि सृष्ट विण्मूत्रो गर्भवातकफप्रदः।

पुत्रंजीव के वृक्ष सर्वत्र पाये जाते हैं। पुष्प श्वेत वर्ण के फाल्गुन से बैशाख तक आते हैं। मौलसिरी के समान छोटा-सा फल।

पत्रस्वरस और फलचूर्ण प्रतिश्याय, उदरशूल में देते हैं। ४ माशे छाल पीसकर दूध के साथ पिलाने से उग्र विष की शान्ति होती है। श्लीपद में सरसों के तैल में मिलाकर पीने से लाभ होता है।

मखान्नम् (पानीयफलम्)

नाम—सर्वभाषा-मखाना, मखाने (अं०) फाक्सनट[2] युरीएल फेरोक्स कमल वर्ग[3]। पुष्पकाल अक्तूबर।

गुण—मखानां पद्मबीजस्य गुणस्तुल्यं विनिर्दिशेत्।

कमल बीज के समान ग्राही, बल्य-पौष्टिक, शीतल, मधुर, तिक्त कषाय, गुरु तथा मधुर विपाकी है। इन्हें भूनकर (सेक कर) खाना चाहिए। अतिसार में तथा मन्दाग्नि में हृदय तथा दीर्घ रोगों के पश्चात् उत्पन्न निर्बलता में पथ्य के रूप में दिया जा सकता है। रक्तपित्तदाहशामक तथा गर्भ स्थापक है। प्रमेह में इनकी खीर बनाकर, सालम मिश्री के साथ मिलाकर सेवन कराया जाता है। गर्भाशय दोष तथा गर्भस्राव दूर करने के लिए मखाना, लाल, सफेद नीला कमल, अशोक की छाल, संगाडा का काढ़ा बनाकर २½-५ तोला तक मात्रा में पिलावें।

राजिका कीटः (अर्गट)[5]

परिचय—यह राई नामक क्षुप का कीट है। जिसका प्रयोग सुखप्रसव के लिए किया जाता है। तरलसार तथा सत्व का प्रयोग होता है।

---

1. Putranjiva Roxburghia, Linn.
2. Fox Nut.
3. Euryale Ferosx, salisb.
4. Nymphaceae.
5. Ergot.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण तथा प्रयोग––यह तिक्त, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, कफनाशक है। इसका विशेष प्रभाव गर्भाशय पर पड़ता है। इसके सेवन से गर्भाशय की शिथिलता नष्ट हो जाती है। संकोच, अधिक बलशाली तथा नियमित हो जाते हैं। इस प्रकार यह आविजनन है। किन्तु इसे उसी समय देना चाहिए जब गर्भाशय का मुख तथा योनि मार्ग पूर्णतः विकसित हो जाए और केवल गर्भाशय शिथिलता को छोड़कर प्रसव में कुछ और बाधा न हो। अन्यथा गर्भस्थशिशु को हानि पहुँचने का भय रहता है।

प्रसव के पश्चात् गर्भाशय शोधन, अपरापातन तथा नियमित संकोच के लिए इसका सेवन अतिलाभप्रद है। मासिक धर्म के समय अतिरक्त स्राव को रोकने के लिए भी इसका प्रयोग हो सकता है। अर्गट सेवन करने के १० मिनट के पश्चात् ही स्वप्रभाव दिखाने लगती है। रक्तवाहिनियों के संकोच के कारण रक्तभार बढ़ जाता है। हृदय तीव्र गति से चलने लगता है या फिर प्राणदा नाड़ी की उत्तेजना के कारण धीमा हो जाता है। विशेष प्रयोग सुख प्रसवार्थ किया जाता है।

विषलक्षण—यह एक प्रकार का विष है। अधिक मात्रा में खा जाने पर निम्न लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। (१) कोथ[1]––रक्तवाहिनियों के अतिसंकोच से तथा त्वचास्थ रक्तवाहिनियों के बन्द हो जाने से हाथ, पाँव, कान आदि दूरस्थ अंगों में शुष्क कोथ हो जाती है। ये अंग पीले, ठंडे हो जाते हैं तथा विशेष प्रकार का कोथ उत्पन्न हो जाता है। (२) वातिक लक्षण—तोद-चूंटिया चलने सी पीड़ा, शिरःशूल, उन्निद्रता तथा अन्य ज्ञानेन्द्रियों की शिथिलता, कालान्तर में वेदनायुक्त आक्षेप, गति में सहकार्य का अभावादि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। 'ए' नामक जीवनीय कमी से भी ये उक्त वातिक लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं।

योग––तरलसार (लिक्विड एक्सट्रैक्ट आफ अर्गट—मात्रा १०-२० बूंद)

लोध्र (अक्षिभेषजम्, रोध्रः, तिल्वक)

परिचय––लोध्र का लघु वृक्ष आसाम-बंगाल तथा बर्मा तथा छोटा नागपुर की पहाड़ियों तथा सिन्धु घाटी में उत्पन्न होते हैं।

पुष्पकाल––अश्विन-मार्गशीर्ष तक

व्य० अं०––त्वचा

रस—कषाय, अनुरसतिक्त

वीर्य—शीत

विपाक—कटु

दोष––कफपित्तशामक

प्र० अं०––गर्भाशय रसायन

मात्रा––३-६ माशा चूर्ण

नाम—(हि०) लोध्र, लोधर (पं०) पठानी लोध (गु०) लोधर (म०) लोदब, लोदुगचेट्ट (तै०) लोद्दुंगम् (अं०) दी लोथ ट्री[2] (वा० ले०) तिल्वकः[3] सिम्प्लेकोस्रेसमोसा[4], (पट्टिका या शाबरलोध्र) (क०) जालारिय मेड, सि० क्रेटेजिओइडस्[5] लोध्र वर्ग[6]।

---

1. Gangrene.
2. The looth tree.
3. लोध्र के दो प्रकार हैं।

(i) तिल्वक—यह रेचक है। चरक ने इसे तिल्वक (च० क०-९) वर्ग के रेचन द्रव्यों में गिना है। पुष्प बड़े-बड़े पीत सुगन्धित। यह नागपुर आसामादि में पाया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण—लोध्रः ग्राही लघुः शीतश्चक्षुष्यः कफपित्तनुत् । कषायो रक्तपित्तासृग्ज्वरातीसार शोथहृत् ।। (भाव०)

पठानी लोध्र, कसैला, शीतवीर्य, कटु विपाकी, लघु संग्राही (मल का स्तम्भक) चक्षुष्य, कफपित्तशामक रक्तपित्त, रक्तस्राव, ज्वरातिसार तथा शोथशामक है। आजकल तिल्वक का प्रचलन नही है।

प्रभाव तथा प्रयोग—लोध्र कसैला होने पर भी कषायाम्ल रहित है। हाँ, इसकी राख १०-१८ प्रतिशत कषाय सज्जीखार पाया जाता है। इसके प्रयोग से छोटी-छोटी रक्त वाहिनियाँ तथा कला भी संकुचित होती है। जिससे रक्तस्राव बन्द होता है। कटु विपाकी होने से भी रक्त या स्रावों का बहना बन्द करता है। इन सब कारणों से, अतिसार, रक्तार्श, रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर तथा गर्भस्राव में उपकारकता है। सातवें मास में गर्भस्राव होने की आशंका होने पर इसका सेवन लाभदायक है।

यह गर्भाशय की शिथिलता को दूर कर तथा उसकी कला को शक्ति देकर गर्भधारण योग्य बनाता है। संग्राहक होने से तथा स्रावों को रोकने से यह वीर्य स्तम्भक भी है। दान्तों को मजबूत करने के लिए मंजनों में डाला जाता है।

नेत्र रोगों में लोध्र लेप लगाया जाता है तथा द्रव बनाकर नेत्रों में डाला जाता है। लोध्र चूर्ण, जीरा, फिटकरी भस्म तीनों को समभाग लेकर कुमारी के रस में मिला पलकों पर लेप करने या पोटली बनाकर फेरने से नेत्रपीड़ा तथा लाली कटती है। लोधर, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, पुनर्नवामूल ३-३ माशा, अफीम, फिटकिरी ६ रत्ती, सबको पीसकर लोध्र रस की भावना देकर चूर्ण बना लो। इसका पलकों पर लेप या १०-१० शक्ति का घोल बनाकर नेत्रों में डालने से नेत्र रोग शान्त होते हैं। दन्त शूल में लोध्र, श्वेतपुनर्नवा, स्फुटिका समान भाग लेकर कुल्ले करने से लाभ होता है।

योग—(i) लोध्रासव—श्वेतप्रदर, रक्त प्रदरादि में।
(ii) गंगाधर चूर्ण—३-६ माशा, जीर्णातिसार तथा संग्रहणी में।
(iii) नेत्रबिन्दु घोल—नेत्ररोगों में (रसादर्श)

वंशः (वेणु-कीचकः, शतपर्वा)

नाम—(हि०) बांस (बं०) बांश (गु०) बांस (म०) बांबू (क०) बेदरु (तै०) चिट्टिवेदुरु (ता०) काट्टुमुंगिलस् (अं०) बेम्बू[1], बेम्बूसा एरण्डोनेशिया[2], तृणधान्य वर्ग[3]।

गुण—वंशस्तु शीतलं, स्वादुः कषायो बस्ति शोधनः। छेदनः कफपित्तास्र कुष्ठशोफ व्रणापहा ।। (कै०)
वेणोः करीराकफहरा कषाया वातकोपनाः। बद्धमूत्रा कफहरा कषाया वातकोपनाः ।। (कै०)
रूक्षा वेणुयवा ज्ञेया वीर्योष्णा कटुपाकिनः ।।

बांस मधुर-कषाय रसवाला, शीतवीर्य (जला हुआ उष्णवीर्य) कटुविपाकी, कफपित्तशामक, वातवर्धक, मूत्रल, छेदन (पतला करने वाला) शोथ, व्रण, कुष्ठ, रक्तविकारशामक है। बांस के अंकुर मधुर रस, कषाय, अनुरस,

---

(ii) पठानी लोध्र (शाबर पट्टिका लोध्र) यह भंगुर, पांशुवर्ण की छाल है। सिन्ध से आती है। कषाय तथा ग्राही है।

4. तिल्वक, Symplocos Racemosa, Roxb.
5. पठानी लोध्र, Sy. Crataegoides, Ham.
6. .Styraceae.

1. Bamboo.
2. Bambusa Arundinacea Retz.
3. Gramineae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कटु विपाकी, उष्णवीर्य, मूत्र को कम करने वाले, वातकोपन, कफ, पित्त, मेद उदरकृमि तथा विष को दूर करते हैं। बांस के जौ कषाय, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, रूक्ष, कफवातहर, मलमूत्रशोधक विबन्धकारक हैं।

प्रभाव तथा प्रयोग—बांस रूक्ष, शीतल एवं लेखन है अतः कफ तथा वसा की वृद्धि का नाशक है। बांस की कई जातियाँ हैं। पत्र-पर्व (गाँठें) मूल तथा फल, बीज (वेणुयव) उपयोग में आते हैं। ३० वर्ष की वायु वाले वंश को पुष्प लगते हैं। फल जौ के समान स्थूल और मधुमेह में इनका भात लाभ करता है। सद्यःक्षत में (जूते आदि का ताजा घाव) बांस को चन्दन के समान घिसकर लगाने से लाभ होता है। जड़ को एकाकी या अन्य औषधियों के साथ मिलाकर सेवन करने से आर्तव प्रवर्तन होता है। इसकी राख गंज या दद्रु पर लगाते हैं। तथा मंजनों में डालते हैं। मात्रा चूर्ण ६-१२ माशा तक, पत्र-मूल अस्थिशोथ, आमवातादि में लाभदायक है। वंशचूर्ण ६ तोला, शतावरी, अश्वगन्धा, चोपचीनी प्रत्येक ३-३ तोला शर्करा २६ तोला, पाक बनाकर १-२ तोला प्रतिदिन सेवन कराने से लाभ होता है। अनुभूत है। पत्रों की पुल्टिस शोथशामक है।

शण (त्वक् सारः माल्यपुष्प)

नाम—(हि०) सन (बं०) शण (म०) ताग (गु०) सण (अं०) सनहेम्प[1] (वा० ले०) क्रोटेलेरिया जनसिआ[2] अपराजिता वर्ग[3]।

गुण—शणस्त्वम्लः कषायश्च मलगर्भास्रपातनः। वान्तिकृत् वातकफनुत् श्रेयस्तीव्रांगमर्दनुत्॥ (रा० नि०)

सन अम्ल कषाय, रस उष्णवीर्य, कटु विपाकी, वातकफशामक, मल तथा गर्भस्रावक, वामक, तीव्र अंगमर्द शामक है।

प्रयोग—विलम्ब प्रसूति में सद्यः प्रसवार्थ इसके बीजों का काढ़ा पिलाना चाहिए। मेद वृद्धि अनार्तव में बीज-चूर्ण ४ माशा की मात्रा में उष्ण जल से देना चाहिए। पुष्प प्रदर तथा रक्तविकारशामक है। हिचकी में, ऊर्ध्ववात में इसकी छाल, उड़द और हल्दी चूर्ण का धूम्र देने से लाभ होता है। स्नायुक रोग में सणबीज, गेहूँ का आटा समभाग घी में पकाकर गुड़ के साथ ३ दिन खिलाने से मारु नष्ट होता है।

शिवलिंगी (चित्रफला)

नाम—(हि०) शिवलोंगी, बजगुरिया (गु० ब०) शिवलिंगी (म०) शिवलींगी, बाहुवल्ली (वा० ले०) ब्रायोनिआ[4] लेसिनीओसा कर्कटी वर्ग।

गुण—तिक्त, सारक, दीपक पाचक, रक्तशोधकशामक तथा गर्भप्रद। उष्णवीर्य, कटु विपाकी, फलों का शाक मृदुरेचक है। गर्भस्राव में उत्तम लाभ करता है। बीजों को साबूत ही दूध में उबाल कर पीने से गर्भ धारण हो जाता है। पत्र रक्त रसायन तथा पारद विषनाशक है। निम्न योग गर्भ समापन तथा गर्भरक्षार्थ उत्तम है। शिवलिंगी बीज, यवतिक्ता (शंखिनी) शंखपुष्पी, पारस पीपल ६-६ माशा, जीरा एक तोला, बादाम २ तोला, शक्कर ४ तोला अथवा शंखिनी, श्वेत, कंटकारी, परसपीपल, कमल काकड़ी, शिवलिंगी, सब आधा-आधा तोला, ८-१५ रत्ती की मात्रा में दूध के साथ सेवन करें।

---

1. Sunhemp.
2. Crotolaria Juncea, Linn.
3. Papilionaceae.
4. Bryonia Laciniosa, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

समुद्रफेन (डिण्डीर, अर्णवफेन)

नाम—समुद्र झाग (म०) समुद्र फण (गु०) समुद्र फीण (अं०) कटलफिशबोन[1] (ले०) ओस सेपी[2], शुक्तिजाति[3]।

परिचय—यह समुद्री जन्तु विशेष की पीठ की अस्थि है जो कालान्तर में रूप विशेष ग्रहण कर लेती है और जल पर तैरती हुई किनारों पर आ जाती है।

गुण—समुद्रफेनश्चक्षुष्यो लेखनः शीतलः सरः। कर्णस्रावरुजागुल्महरः पाचनदीपनः ॥

समुद्रफेनः संपिष्टो निम्बु तोयेन शुद्धयति। (आ० प्र०)

समुद्र फेन, कषायरस, शीतवीर्य, कटु विपाकी, लघु लेखन, सर, पित्तकफनाशक, कर्ण, कर्णस्राव, नेत्ररोग, विष, गुल्म, प्लीहा तथा रक्तपित्तनाशक है। समुद्र फेन धोकर, निम्बु रस से पीसकर सुखाने से वह शुद्ध हो जाता है।

प्रयोग—यह रूक्ष लेखन तथा कषाय होने से स्रावों को सुखाता-वृद्ध धातु को क्षीण करता तथा कला का संग्राहक है। इसमें ८०-९० प्रतिशत कैलशियम कार्बोनेट होता है। नेत्र का फोला (शुक्ल रोग) मल आदि को दूर करने के लिए अंजन में रूप में, तथा रक्तस्राव बन्द करने के लिए मंजनों में, त्वचा के रोगों में झाई, व्यंग, त्वचा के दाग धब्बे प्रभृति मिट जाते हैं। विशेष रूप में आर्तवजनन है। योनि शैथिल्य तथा हरड़ की मींगी को पीसकर योनि में वर्त्ती बनाकर रक्खें।

हरमल

नाम—(हि०) हरमल, इस्बन्द (म०) हरमल (गु०) हरमल, हर्मरो, इस्पन्द (अं०) सीरियनरू[4] (वा० ले०) पिगेनम् हर्मल[5], हरमल वर्ग[6]।

परिचय—हरमल का क्षुप लगभग दो फुट ऊँचा, पंजाब, सिन्ध, काश्मीर, गुजरातादि प्रदेशों में उत्पन्न होता है। बीजों का प्रयोग होता है।

मात्रा—२-४ माशा। सफेद तथा लाल भेद से दो प्रकार के होते हैं। इसमें तीन प्रकार के सत्व होते हैं।

गुण—बीज तिक्त, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, कफहर, वातानुलोमन, स्तन्य, मूत्रार्तवजनन, उदरकृमिनाशक तथा स्रोत शोधक है।

पक्षाघात, अर्दित गृध्रसी में विशेष गुणकारक है। श्वास कास में कफ को निकालने के लिए, वातिक व्याधियों में उष्णता प्रदान करने के लिए, रजःकृच्छ्रता, कटिशूल आध्मान में वेदना शान्त करने तथा स्रावों में इसका प्रयोग किया जाता है। अर्क भी निकाल कर प्रयोग किया जाता है।

---

1. Cuttlefish Bone.
2. Os-Sapie.
3. Mollusca.
4. Syrian Rue.
5. Peganum Harmala, Linn.
6. Rutaceae,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पच्चीसवाँ अध्याय

पुरुष प्रजननांग प्रभावक

(वृष्य वाजीकरण)

अश्वगन्धा (पीवरी पुष्टिदा)

परिचय—२-४ फुट ऊँचा क्षुप, ४-५ वर्षायु, ताजे क्षुप में से घोड़े के मूत्र सम गन्ध

उ० स्थ०—प्रायः सर्वत्र, विशेष मध्य तथा पश्चिम भारत में

व्य० अं०—मूल-पत्र

रस—मधुर, कषाय तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—मधुर

दोष—त्रिदोषहर

प्र० अ०—वातसंस्थान, प्रजनन अंग

वि० गु० क०—अत्यन्त पौष्टिक वातशामक, वीर्यवर्धक रसायन, स्वापजनन

मात्रा—चूर्ण ३-६ माशा तक

नाम—(हि०) असगन्ध, नागोरी, असगन्ध (बं०) अश्वगन्धा (गु०) आसन्ध, घोड़ा आहन, घोड़ा आकुन (म०) आसन्ध, दौरमुज्ज (अं०) विन्टर[1] चेरी (वा० ले०) विथेनिया[2] सोमनीफेरा, ड्यूनाल, वर्ग कण्टकार्यादि[3]।

गुण—अश्वागन्धा कषायोष्णा तिक्ता वृष्या रसायनम्। बलपुष्टिप्रदा हन्ति कफकासानिलव्रणान्॥
शोफकण्डूविषश्वित्र क्रमिश्वासक्षतक्षयान्॥ (कै०)

अश्वगन्धा कषाय, तिक्त, मधुर रस वाली, उष्णवीर्य, रसायन, बलपुष्टि देने वाली, कफ, वात, श्वास, कास, व्रण, शोथ, कण्डु, विष, श्वित्र क्रमि क्षत और क्षय को नष्ट करती है।

प्रयोग—अश्वगन्धा वाततन्तुओं पर शामक प्रभाव करती है। जिससे उनकी उत्तेजना कम होती है। जिससे अपस्मार, अनिद्रा, शीघ्रपात, नष्ट हो जाते हैं। निद्रा आती है तथा मानसिक वातिक रोग नष्ट होते हैं। वाततन्तुओं को बल मिलता है। गृध्रसी, विश्वाची आदि रोग तथा शोथादि जन्य रोगों में यह अत्यन्त लाभ करती है। यह सब धातुओं की वर्धक है। अतः सब प्रकार के शोथ (सूखा) वातशोथ, कृशता (पतलापन, मांस की कमी) को नष्ट करती है। वीर्य को पुष्ट करती है। जननेन्द्रियों की उत्तेजना को कम करके शीघ्रपात को रोकती है। हृदय को बल देती है। रक्ताभिसरण उत्तम होता है। जिससे सारे शरीर का पाचन, सात्म्यीकरण उत्तम होता है। मूत्रादिमल

---

1. Winter Cherry.
2. Withania Somnifera, Dunal.
3. Solanaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यथा प्रमाण में निकलते हैं। आमवात, कटिशूल, गर्भाशय शैथिल्य शामक है। रजोदर्शन से १५ दिन पूर्व से इसका सेवन करने से गर्भस्थिति होती है। स्त्री पुरुष यदि दोनों दो मास तक सेवन करें तो गर्भस्थिति तथा पुत्रप्राप्ति की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। क्षयरोग में वासा क्वाथ के साथ अश्वगन्धा का सेवन अत्यन्त लाभ करता है। अंगूरों के रस के साथ लेने से शरीर पुष्ट होता है। वातरक्त में अश्वगन्धा तथा चोपचीनी का चूर्ण, वातिक हृदय शूल में विभीतक चूर्ण के साथ सेवन करने से ये रोग नष्ट हो जाते हैं। आमवात (गठिया) पर ताजे पत्ते गरम करके बाँधे जाते हैं और आमवात पर मूल चूर्ण का लेप करते हैं। स्नायुक में मूल को छाछ या तैल में पीसकर लेप लगाते हैं। इन्द्रिय (लिंग) को दृढ़ करने के लिए तिलाओं में डालते हैं तथा स्तन दृढ़ीकरण के लिए दूध में पीसकर लेप लगाते हैं। इसके सेवन से दूध भी बढ़ता है। बीज तथा फल विषैले हैं। अतः उनका उपयोग नहीं होता है।

योग--(१) अश्वगन्धारिष्ट--वातिक तथा मानसिक रोगों में
(२) अश्वगन्धापाकः—वीर्य पौष्टिक तथा रसायन
(३) अश्वगन्धादि चूर्ण-- ,,
(४) अश्वगन्ध घृत--गर्भस्थापक तथा गर्भस्रावनाशक, मस्तिष्करोग, मानसिक रोग
(५) कामदेवघृत--अत्यन्त वाजीकरण
(६) नारायण तैल--वातरोगों में मालिश के लिए

अण्डा

नाम—(हि०) अण्डा (गु०) इंडो (बं०) डिम् (म०) वैंदा (अ०) एग[1]।

अण्डा प्रायः मुर्गी का लिया जाता है। अन्य पक्षियों का भी प्रयोग किया जा सकता है। यह तामसिक पदार्थ है। जहाँ तक सम्भव हो प्रयोग नहीं करना चाहिए। अण्डे के तीन मुख्य भाग हैं। (१) छिलका-अण्डे का ऊपर का कठोर खोल, (२) सफेद भाग, (३) पीला भाग। तीनों काम में आते हैं। श्वेत तथा पीत भाग आहार के काम में छिलका औषध के काम।

गुण—नाति स्निग्धानि वृष्याणि स्वादुपाक रसानिच। वातघ्नान्यतिशुक्राणि गुरूण्यण्डानि पक्षिणाम्॥
(भाव०)

पक्षियों के अण्डे रस विपाक में मधुर, कुछ उष्ण, वातशामक, स्निग्ध, वीर्यवर्धक तथा पौष्टिक हैं। यह अविदाही, शुक्रक्षीणता, खांसी, हृदय रोग, व्रण क्षत में अति उत्तम है। पीला भाग सबसे अधिक उष्ण तथा स्निग्ध, श्वेतभाग, स्निग्ध, शीत तथा छिलका शीतल, रूक्ष और अनुरस कषाय है।

आहार के रूप में प्राजीवणक (प्रोटीन) वसा तथा सुधा (कैल्शियम) भास्वर (फास्फोरस्) लोहादि खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। किन्तु कार्बोज इसमें नहीं होता। दूध की अपेक्षा यह निकृष्ट है। छिलका, संग्राही, स्राव का शोधक तथा लेखन है। अग्नि से जले व्रणों में अण्डों की सफेदी को अन्य पदार्थों में मिलाकर लगाते हैं। छिलके की भस्म या पिष्टी बनाकर प्रयोग की जाती है। लेखन होने से नेत्र शुक्र (फूला) में सुरमे के समान, नक्सीर में इसकी नस्य लेने से रक्त स्राव बन्द हो जाता है। वीर्य निर्बलता, श्वेतप्रदर, मधुमेह में लाभ करती है। मात्रा १-४ रत्ती।

कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म छिलकों को धोकर सेंधानमक लगाकर चार पहर भिगोकर रक्खें। पुनः सावधानी से अन्दर की पतली झिल्ली निकालकर सुखाकर गजपुट में भस्म कर दें। पुनः उसे नींबू रस, कुमारीरस और अर्कक्षीर में मर्दन कर पुनः भस्म लें। यह अस्थिशोथ, सूखा और प्रदरनाशक है।

---

1. The Egg.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अण्डे का तैल—अण्डा उबाल कर, उसकी जर्दी निकाल कर एकपात्र में रक्खें इस पात्र को मृदु अग्नि पर या तीव्र धूप में जर्दी (पीले भाग) वाला सिरा ऊँचा करके रख दें और चम्मच से जर्दी को दबाते रहें। जब सम्पूर्ण तैल निकल आए तो छानकर रख लें।

गुण—इस तैल को पक्षाघात, अर्दित, वातशूल आदि में मालिश करते हैं तथा न्यूमोनिया (श्वसनक ज्वर) नपुंसकता, दौर्बल्य आदि में शहद के साथ या दूध के साथ पिलाते हैं।

इन्द्रगोप

नाम—(हि०) बीरबहूटी (गु०) मखमली कीड़ा (ले०) म्युटिला आक्सिडेन्टेलिस[1]।

परिचय—वर्षा में रेतीले जमीन से उत्पन्न होने वाले, रक्तवर्ण मखमली कीड़ा है। सूखने पर केसरिया रंग की हो जाती है।

गुण—उष्ण, रूक्ष, वात नाड़ीबलदायक तथा वाजीकरण है। इन्द्रिय की शिथिलता में इसका लेप लगाते हैं। आन्तरिक उपयोग प्रायः नहीं किया जाता।

इक्षुरकः (कोकिलाक्ष क्षुरकः)

परिचय—कांटेदार क्षुप
उ० स्थ०—जलार्द्र स्थानों में सर्वत्र
व्य० अं०—पंचांग विशेषकर बीज तथा पत्र
पुष्प—वर्षा में
रस—मधुर, तिक्त
वीर्य—शीत
विपाक—मधुर
दोष—वातपित्तहर, कफवर्धक
वि० गु० क०—शीतल, मूत्रल, वीर्यवर्धक
मात्रा—चूर्ण १-३ माशा

नाम—(हि० पं० मा०) तालमखाना (बं०) कलुखाडा (म०) तालिमखाना कोलसुन्दा (गु०) एखरो (क०) कोलवलक (तै०) वायुगोब्रि (ता०) नीरमुक्कि (वा० ले०) हाईग्रोफिला[2] स्पिनोझा या एस्टेराकेन्था[3] लौंगिफोलिया, वासकवर्ग[4]।

गुण—कोकिलाक्षो हिमस्तिक्तः स्वाद्वम्लस्निग्ध पिच्छिलः। वृष्योवातामावातश्मतृष्णादृष्टिखुडाऽस्रजित्॥(कै०)

तालमखाना—पंचांग, मधुर, तिक्त, अम्ल और शीतवीर्य, स्निग्ध, पिच्छिल, वृष्य, वात, पित्त, आमवात, वातरक्त, तृष्णा, अश्मरी शामक है। पत्र मधुर तिक्त विशेषकर मूत्रल, उदररोग, शोफ, मूत्रकृच्छ्रशामक है। बीज मधुर शीत, मधुर विपाकी और अतिवृष्य है।

प्रयोग—मूल, मूत्रल तथा शीतल है। अतः पूय मेहादि में मूत्रकृच्छ्रता तथा दाहशमनार्थ स्वरस दिया

1. Mutilla Occidentalis.
2. Hygrophila Spinosa, T. Ancler.
3. Asteracantha Longifolia, Nees.
4. Acanthaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जाता है। यकृतजन्य उदररोगों में, आमवात में पंचांग भस्म या क्षार देते हैं। बीज भी मूत्रल तथा वीर्यवर्धक हैं। पत्तों का शीतकषाय या फाण्ट मूत्रल होने से जलोदरशामक है। पथरी में मूल या पत्र क्वाथ ६-६ तोला दिन में तीन बार पिलाना चाहिए। प्रायः सभी वृष्य वाजीकरण योगों में बीजों का प्रयोग होता है।

कपिकच्छुः (शुकशिम्बी, वानरी, कण्डुकरी)

परिचय—बहुवार्षिक लता
उ० स्थ०—जलीय प्रदेश
व्य० अं०—फल-बीज
पुष्प—जामुनी रंग के पुष्प
पुष्पकाल—सितम्बर-नवम्बर
रस—(पंचांग) मधुर, तिक्त (फल) मधुर
वीर्य—शीत
विपाक—मधुर
दोष—वातपित्तशामक, कफवर्धक
प्र० अं०—सर्वशरीर, प्रजननांग
वि० गु० क०—पौष्टिक, वीर्यवर्धक
मात्रा—बीजचूर्ण ३ माशा

नाम—कौंचबीज (बं०) आलकुशि (म०) खाजकुहिली (मा०) किवांच (गु०) कौचा कवच (क०) नसगुन्निहंबु (तै०) पिलियडगु (ता०) पूनकालि (अं०) काउहेज[1] या काउविच प्लाण्ट (वा० ले०) म्युकुन्ना[2] प्रुरिएन्स, अपराजिता वर्ग[3]।

गुण—कपिकच्छुभृशंवृष्या मधुरा बृंहणी गुरुः। तिक्तावातहरी बल्या वातपित्तास्रनाशिनी ॥ (भाव०)

कौंच, मधुर, तिक्त, अनुरस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, अत्यन्त, वृष्य, वाजीकरण, वातपित्त तथा रक्त विकारशामक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—फलों के ऊपर के रोम त्वचा में लग जाने से अत्यन्त खाज उत्पन्न करते हैं। इनको (३-४ रत्ती) गुड़ में मिलाकर उदरकृमियों में दिया जाता है। दूसरे दिन विरेचन देना चाहिए। बीजों का चूर्ण ४-६ माशे की मात्रा में शर्करा या अन्य वृष्य औषधियों के साथ मिलाकर सेवन करने से वीर्यवर्धन तथा बाजीकरण करते हैं। वात-व्याधियों, अर्दित, पक्षाघात आदि में बीजों को दूध के साथ दिया जाता है। मूल भी वातनाड़ियों को पुष्ट करती है। मूल क्वाथ-मूत्रल होने से वृक्क रोगों में लाभ करता है। प्रमेह तथा श्वेत प्रदर में भी बीजों की मींगी दी जाती है। वीर्य शमनार्थ मूलचूर्ण २ माशा मुख में रखा जाता है।

योग—बानरीगुटिका, पौष्टिक, वृष्य, वाजीकरण।

गन्धमार्जारवीर्य

नाम—(हि०) गन्धमार्जारवीर्य, मुश्क बिलाई, दक्षिण भारत-पुनुंगु (अं०) सिवेटकैट[4] (वा० लें०) विवेरा-सिवेटा।

---

1. Cowhedge or Cowitch Plant.
2. Mucuna Pruriens, Bak.
3. Papilionaceae.
4. Civetcat.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

परिचय—यह प्राणी अफ्रीका के उष्ण प्रदेशों तथा एशिया में अरब से मालाबार तक पाया जाता है। गन्धमार्जारवीर्य इस बिलाई की पूंछ के नीचे की थैली से निकलने वाला सुगन्धित द्रव्य है। नवीन पिलाई लिए हुए सफेद होता है। नरम तथा गाढ़े मधु के समान। पुराना होने पर रंग में कुछ श्यामता आ जाती है।

शुद्ध गन्धमार्जारवीर्य—इसे सुतली के सिरे पर लगाकर अग्नि के समीप रखने से पिघल कर तैल हो जाए तो कृत्रिम और यदि एकत्रीभूत होकर सिरे पर लगी रहे तो असली समझें। इसे अग्नि से गरम करें या दोनों हाथों से इतना मलें कि गरमी पैदा हो जाए तो उस समय सूंघने से, जो चीज उसमें मिली होगी। वह व्यक्त हो जाती है। इसकी गन्ध कस्तूरी के समान होती है।

गुण—गन्धमार्जार वीर्यतुवीर्यकृत् कफवातनुत्। कण्डु कुष्ठहरं नेत्र सुगन्धं स्वेद गन्धनुत्॥ (भाव०)

प्रयोग—जवाद बाजीकर, सुगन्धित, नेत्र्य, कफवात, कण्डु-स्वेद की दुर्गन्ध का नाशक है। यह समशीतोष्ण, स्निग्ध, मनःप्रसादक, आवी उत्पादक (सुखप्रसवकारक), हृद्य तथा ज्ञानेन्द्रियों को बल देता है। १½ माशा गन्धमार्जारवीर्य थोड़ा केशर दूध के साथ मिलाकर पिलाने से सुख प्रसव होता है। सुंघाने से प्रतिश्याय (जुकाम) शिरशूल तथा अर्द्धावभेदक (आधी सीसी) में आराम होता है। लिंग पर लेप करके सम्भोग करने से बाजीकरण शक्ति बढ़ती है। गर्भ धारणा नहीं होती।

गोक्षुरुः (त्रिकंटकः, स्वादु कंटकः)

परिचय—भूमि पर फैलने वाला पौधा

व्य० अं०—फल, मूल

उ० स्थ०—सर्वत्र बालुकामय प्रदेश

रस—मधुर

वीर्य—शीत

विपाक—मधुर

दोष—त्रिदोषहर

प्र० अं०—मूत्र तथा प्रजननसंस्था

वि० गु० क०—'पौष्टिक' वृष्य मूत्रल

मात्रा—३-६ माशा

नाम—(हि०) गोक्षुरु (पं०) भखरा (बं०) गोखरी (म०) सराटे कांटे गोक्षुरु (गु०) न्हाना गोखरु बैठा गोखरू (क०) जेग्गिलु (तै०) चिरिपिन्नेर (ता०) कोकुले, नीरजै (अं०) स्माल कैलोट्राप्स[1] (वा० ले०) ट्रिबुलस् टेरेस्ट्रिस्[2], गोक्षुरादि वर्ग[3]।

वक्तव्य—गोक्षुर लघु तथा बृहत् (छोटा-बड़ा) भेद से दो प्रकार का है। छोटा मधुर तथा बड़ा कुछ तिक्त होता है। छोटे गोक्षुरू का प्रयोग उत्तम है। बड़ी गोक्षुरू तिलवर्ग[4] की पेडेलियम्[5] म्युरेक्स नामक वनस्पति है।

गुण—गोक्षुरो मधुरो वृष्यो दीपनो बल पुष्टिकृत्। शीतलो वस्तिवातघ्नो दोषत्रयनिर्वहणक॥
हृद्रोग मेहकृच्छ्रार्शः श्वासकास रुजापहः॥ (कै०)

---

1. Small Calotrops.
2. Tribulus Terestris. Linn.
3. Zygophyllaceae.
4. Pedaliaceae.
5. Pedalium Murex, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गोक्षुर यह मधुर, शीतल, मूत्रल, वृष्य, वातशामक, स्निग्ध तथा अग्निदीपक है। मूत्र में जलीयांश को बढ़ाता है। बड़ी मात्रा में देने से आन्तों की श्लेष्मिक क्रिया को उत्तेजित कर शौच भी साफ होता है। वीर्य कणों को पुष्ट करता है तथा वीर्योत्पादक अंगों का पोषक है।

प्रयोग—मूत्रकृच्छ्र, वृक्क शूल, मूत्राशय शोथ, पूयमेह (सूजाक) में गोक्षुरु ५ तोला, धनियाँ ३ माशा का काढ़ा दिया जाता है। इसके पत्रों का स्वरस यही गुण करता है। बस्ति शोथ में यव क्षार या पुनर्नवाक्षार के साथ, पथरी में पाषाण भेद के साथ, आमवात, कटिशूल में सोंठ के साथ, प्रसूति सम्बन्धी रोगों में तथा अनियमित मासिक धर्म को ठीक करने के लिए गोक्षुरू का काढ़ा लोध्र या अशोक के साथ, वीर्य निर्बलता में शतावर के साथ, प्रमेह में हरिद्रा तथा शिलाजतु के साथ अत्यन्त लाभ करता है। प्रसव या गर्भपात के पश्चात् उत्पन्न शूल को शान्त करने के लिए गोक्षुरु-मधुयष्टि द्राक्षा का घृतदुग्ध, सेवन लाभ पहुँचाता है। वीर्यक्षीणता, शारीरिक निर्बलता, स्वप्नदोष, हाथ पैर के टूटने में गोक्षुरू, कौंचबीज, सफेद मूसली, सेमल मूसली, गिलोय का सत्व, पाषाण भेद, बनपशा, समभाग लाभ करता है। प्रमेह तथा मूत्रकृच्छ्र में गोक्षुरू पंचांग, बब्बूल की कच्ची फलियाँ, हरड़, मखाना, मुलैठी, तुरञ्जबीन, अमलतास का गूदा पाषाण भेद समभाग का काढ़ा बना शिलाजतु के साथ लेना चाहिए। यह दशमूल का अंग है।

योग—(१) गोक्षुरादिगुग्गुलु ४-८ रत्ती प्रमेह, पूयमेह, मूत्रकृच्छ्रशामक
(२) गोक्षुरादिचूर्ण ६ माशा दूध से पौष्टिक वीर्यवर्धक।
(३) शुक्रमातृकावटी ४ रत्ती प्रमेह तथा वीर्यस्राव में।
(४) नारसिंहचूर्ण १ तोला पौष्टिक, वातविकारशामक।

गुंजा (रक्तका, काकणन्ती, उच्चटा)

परिचय—इमली के पत्तों जैसी लता
उ० स्थ०—पहाड़ों तथा जंगलों में सर्वत्र
व्य० अं०—पत्र मूल बीज
रस—(फल) तिक्त, कषाय
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु (पत्र) मधुर, वीर्य शीत विपाक मधुर
दोष—कफपित्तशामक
पुष्पकाल—भाद्रपद-अश्विन
प्र० अं०—मुख, प्रजनन संस्थान
वि० गु० क०—रेचक, वाजीकरण, पत्र स्वर्य, तृषाहर
मात्रा—बीजचूर्ण १-२ रत्ती पत्र तथा मूल १ माशा
नाम—(हिं० पं०) रत्ती, घुंघची, चिरमिटी (म०) गुंज (बं०) कुंज (गु०) चणोठी (क०) गुरूगोजि (तै०) गुरूगुंजा (अं०) जेक्विरिटी[1], वाईल्ड लिकोरायस्[2] (वा० ले०) एब्रस् प्रिकेटोरियस्[3], शिम्बी वर्ग[4]।

गुण—गुञ्जांनुष्णा रसेतिक्ता कषाया कर्फापत्तहा। चक्षुष्या शुक्रला केश्या त्वच्या रुच्या बलप्रदा॥
इन्द्रलुप्तहरा तीव्रा सविषा मदमोहकृत्। हन्ति रूक्षोग्रहविषं कण्डुकुष्ठ व्रणक्रमीन्॥ (कै०)

---

1. Jequirty.
2. Wild Liquorice.
3. Abrus Precatorius, Linn.
4. Leguminoceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रत्ती तिक्त, कषाय, समशीतोष्ण, कफपित्तशामक, चक्षुष्य, वीर्यवर्धक, केश्य, त्वचा रोगशामक, बलप्रद, इन्द्रलुप्त (बाल झड़ना) नाशक, तीव्र, मादक, मोहक, विषैली, कण्डु, कुष्ठ, व्रण, कृमि और रक्षःनाशक है। रत्ती को सप्त उपविषों में गिना गया है। यह विष बीजों में ही पाया जाता है। इस विष (एब्रीन) के कारण यह लेप करने से त्वचा में शोथ तथा विस्फोट उत्पन्न करती है। कटी हुई त्वचा या श्लैष्मिक कला में लगने से भी रक्त में मिल जाती है तथा विष प्रभाव उत्पन्न करती है। किन्तु मुख द्वारा सेवन करने से बीज आमाशय क्षोभ उत्पन्न नहीं करते तथा इनका विष प्रभाव भी नष्ट नहीं हो जाता है। स्वल्प मात्रा से प्रारम्भ कर क्रमशः बढ़ाते हुए सेवन करने से इसका विष प्रभाव रोगी पर नहीं होता।

प्रयोग—गुंजबीज का लेप शोथोत्पादक है। कोमल अंगों पर इसका लेप नहीं करना चाहिए। बीजों को दुग्ध में उबालकर, उस दुग्ध के सेवन से बाजीकरण होता है। बीजों का लेप इन्द्रलुप्त, सन्धिशूल, पक्षाघात में लेप लगाया जाता है। रजःस्वला होने के बाद ४-८ दाने प्रति दिन निगलने से गर्भ नहीं रहता है। किन्तु यह क्रम १०-१२ दिन तक जारी रखना चाहिए। चित्रकमूल तथा रत्तियाँ रगड़कर श्वित्र (सफेद कोढ़) पर लेप करने से लाभ होता है। फल तथा जड़ के काढ़े से सिद्ध किया तैल मर्दन करने से गण्डमाला मिटती है। तिमिर रोग में मूल को बकरी के दूध में घिसकर अंजन, श्वेतप्रदर में मूल का शीतकषाय, कुत्ता खाँसी में मूल का सोंठ के साथ मिलाकर, आमवात में ताजे पत्तों के रस का लेप, मूल को चन्दन की तरह जिसकी सूंघने से आधा शीशी, अर्श में गुंजा बीज तथा मूल को नारियल के जल के साथ घिसकर लेप करने से लाभ होता है। वाततन्तुओं की शक्ति वृद्धि के लिए १ रत्ती शुद्ध गुंजा चूर्ण इलायची के साथ दूध से सेवन किया जाता है। शीतला में उत्पन्न आँख का फूला सफेद घुंघची को दन्ती पत्ररस के साथ पीस मंजन करने से लाभ होता है।

वक्तव्य—गुंजाबीज सफेद तथा लाल भेद से दो प्रकार का होता है। सफेद कम विषैली है। बीज के छिलके में अधिक विष रहता है। आधी रत्ती को पीसकर यदि क्षत या व्रण में लगा दी जाए तो बिल्ली मर जाती है।

विषलक्षण—अधिक मात्रा में खाने से, वमन, विरेचन, उदरशूल, तथा हृदय शैथिल्य एवं विषूचिका के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। शीतांगता, हृदयावरोध से मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—(१) आमाशय प्रक्षालन, सिरका २ भाग, शर्करा ३ भाग, चूने का पानी १ भाग, मिलाकर ४-३ माशे की मात्रा में देना चाहिए।

शोधन—गुंजा को १ प्रहर (३ घण्टों) तक दोला यन्त्र द्वारा उबालने से छिलका उतारकर धोकर सुखा लें। यही शुद्ध गुंजा है। इसी का उपयोग औषधियों में करना चाहिए।

योग—गुंजा भद्र-तैल, वात रोग तथा इन्द्रलुप्त में अभ्यंगार्थ।

जातिपत्री (जातिफल त्वक्)

परिचय—यह जायफल का कोश (छिलका) है। दक्षिण तथा मलाया जावादि में उत्पन्न होता है।

रस—मधुर, कटु, तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—वातकफशामक

प्र० अ०—पाचन मंस्थान सर्वदेह

वि ० क०—उष्ण, संग्राही, वाजीकरण, वातानुलोमक, अग्निदीपन

मात्रा—४-८ रत्ती

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नाम—(हि० पं० म०) जावित्री (गु०) जावन्त्री (मा०) जायपत्री (बं०) जैत्री (क०) जाईपत्रे (तै०) जावित्री (ता०) जावित्री (अ०) दी मेस्[1]

गुण—जातिपत्री कटुस्तिक्ता लघूष्णारुचिवर्णकृत् । कफकासवमिश्वास तृष्णाकृमि विषापहा ।। (कै०)

जायफल कड़वी, चरपरी, उष्णवीर्य, लघु, कटु विपाकी, वर्ण तथा रुचिकारक, कास, श्वास, कफ, तृष्णा, विष, वायुशामक है । यह आमाशयादि पाचक अंगों तथा यकृत् को बल देती है । वातकफ रोगशामक है । संग्राही बाजीकरण बल्य है ।

प्रभाव तथा प्रयोग--जायफल के समान इसमें एक उड़नशील तैल पाया जाता है । शिरःशूल तथा वातिक वेदनाओं में इसका लेप लगाया जाता है । उष्ण तीक्ष्ण होने के कारण पाचक रसों के स्राव को बढ़ाकर पाचन को उत्तम बनाती है । वायु को बाहर निकालती है, अतः अग्निमान्द्य, आध्मान (अफरा), अजीर्ण, उदरशूलशामक है । मुख की दुर्गन्धि नाशकारी है । अधिक मात्रा में सेवन करने से नशा तथा मूर्च्छा करती है । ५-८ रत्ती तक इसकी मात्रा है । अधिक-से-अधिक १५ रत्ती तक ।

लघु, ग्राही, रूक्ष और द्रवशोषक होने के कारण अतिसार, प्रमेह, स्वप्नदोष, शीघ्रपातनाशक है । हृदय तथा द्रवों की शोधक होने के कारण अतिसार, प्रमेह तथा फुप्फुस के रोगों में अत्यन्त लाभदायक है । कफ, खाँसी तथा अन्य में इसे पान में रखकर खिलाते हैं । शरीर को कृश करने वाले पुराने रोगों में तथा अन्त्र के पुराने रोगों में, विषूचिका में, सेकी हुई जावित्री काली मिर्च के साथ यकृत्प्लीहा वृद्धि में लाभ करती है । मक्खन, चन्दन तथा मिश्री के साथ मिलाकर सेवन करने से यह कोई भी दुर्गुण नहीं करती, जायफल के समान इसके गुण समझें ।

धूनराजः (मस्तगी रूमी मस्तगी)

नाम—सर्वभाषा-मस्तगी, रूमी (म०) मस्तगी (अं०) मेस्टिक[2] (वा० ले०) पिस्टेसिआ[3] लेन्टिस्कस्, आम्रवर्ग[4] ।

वक्तव्य—रूमीमस्तगी एक विशेष वृक्ष का रालमय निर्यास है । जो छोटे-छोटे चमकदार कणों के रूप में यूरोप, अफ्रीकादि से यहाँ आता है । ये कण वर्ण में श्वेत-पीत, सुगन्धित तथा स्वाद में किंचित् मधुर होते हैं । यदि इसे बलपूर्वक खरल में रगड़ा जाये तो चपटा हो जाते हैं । ये बीस वर्ष तक वीर्यवान रहते हैं ।

गुण प्रयोग—यह उत्तेजक, बल्य, ग्राही, कफनिष्कासक, रुधिरस्रावरोधक, मूत्रार्तवजनन तथा दोषों का विरेचक है । शोथ शान्ति के लिए लेपों में डालते हैं । लेखन, संग्राही, रक्तस्तम्भक होने से मंजनों में डालते हैं । दोष स्रावक तथा कफनिष्कासक, रक्तस्रावरोधक होने से श्वास-कास फुप्फुसशोथ शमनार्थं प्रयुक्त होता है । एलुआ के साथ देने से पित्तरेचक तथा वृष्य बाजीकरण औषधियों के साथ स्तम्भनार्थ, मन्दाग्नि में आमाशय के रसस्राव को बढ़ाने के लिए मुख के लालास्राव में १ माशा मस्तगी को १½ तोले मिश्री के चासनी में मिलाकर मुख में लेप लगाने से लाभ होता है । कुछ वैद्य इसे 'कुन्दुरू' समझते हैं । जो अशुद्ध है । मात्रा १-२ माशा ।

भूनाग (गण्डूपद)

नाम—(हि०) केंचुआ (अं०) केचां (गु०) अणशलिया अलशिगुं (अं०) अर्थ वर्म[5] ।

1. The mace.
2. Mastic Mastiche.
3. Pistacia Lentiscus, Linn.
4. Anacardiaceae.
5. Earth worm.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

परिचय--यह वर्षा ऋतु में उत्पन्न होने वाला लाल रंग का ६-८ इंच लम्बा रेंगने वाला कृमि है। इसमें ताम्र तथा स्फुर (फास्फोरस) पाया जाता है।

गुण प्रयोग--यह उष्ण तथा स्निग्ध क्षतों के लिए लाभप्रद है। आन्तरिक उपयोग प्रायः नहीं किया जाता है। मात्रा १-३ माशा तक।

बलाचतुष्टयम्

वक्तव्य--बला, महाबला, अतिबला, नागबला इन चारों के गुण प्रायः समान तथा प्रभाव्य अवयव भी। अतः इनका वर्णन साथ ही किया जाता है। ये चारों ही पुरुष प्रजनन अंगों पर प्रभाव करती हैं।

परिचय—ये चारों बलाएँ प्रायः सर्वत्र पाई जाती हैं। नागबला की झाड़ी तथा शेष चारों के क्षुप होते हैं। वर्षा के बाद पुष्प आते हैं। मूल तथा बीजों का उपयोग होता है।

रस—मधुर
वीर्य—शीत
विपाक—मधुर
दोष—त्रिदोषहर
प्र० अ०--पुरुष प्रजनन अंग
वि० गु० क०—शीतल, पिच्छिल पौष्टिक, ग्राही और वीर्यवर्धक
मात्रा—चूर्ण ½-१ तोला

(१) वला (सं०) वला-वाट्यालक, सरयष्टिका (हि०) खरैटी, वरियारा (म०) चिकणा (गु०) बल, खरेटी (बं०) बेडेला (क०) वेष्णेगरण (ता०) सित्तामुट्टि (अं०) कन्ट्री[1] मेल्लो (वा० ले०) सिडा-कार्डिफोलिया,[2] कार्पास[3] वर्ग। बीजों को हिन्दी में बीजबन्द कहते हैं।

(२) अतिवला (सं०) कंकतिका, सहा (हि०) कंगही, कंघी (मा०) डाबी (गु०) खपाट, डाबली, कांसकी (बं०) पेटारी (म०) मुद्रिका, करंडी, पेटारि (क०) श्रीमुद्रेगिडः, तुत्ति (तै०) अडविवैंड (ता०) पेरुन तुति (वा० ले०) एब्युटिलोन[4] इण्डिकम्, सिडा इण्डिका[5], कार्पास वर्ग।

(३) महाबला (सं०) बृहद्बला, वीर्या (हि०) बड़ी खरैंटी, पीतबला, सहदेवी (म०) चिकणी (बं०) पीतबला, श्वेषे, रेला (गु०) खैतराऊबल (वा० ले०) सिडा रोम्बिफोलिया,[6] कार्पास वर्ग।

नागबला (सं०) गांगेरुकी, खाधन्वनिका (हि० पं० मा०) गंगेरन, गंगेटी (म०) तुपकडी, गुलशकरी (गु०) कांटालो बल (क०) काडुमेंत्य (तै०) चित्रमुट्टम् (ता०) मैरमाणिकम् बल (वा० ले०) सिडा स्पिनोझा[7]। कार्पास वर्ग,[8] सिडा कार्पिनिफोलिया सिडा स्पिनोझा सकंटक तथा सिडा कार्पिनिफोलिया[9] अकंटक है।

गुण—बलाचतुष्टयं स्निग्धं मधुरं रसपाकयोः। शीतसंग्राही धात्वोजोबलायुः कान्ति वर्द्धनम्॥
हन्ति वातपित्तास्र दोषत्रय क्षतक्षयान्। बल्यानागबला गुर्वी रक्तपित्तक्षयापहा॥

---

1. Country mellow.
2. Sida Cordifolia, Linn.
3. Malvaceae.
4. Abutilon Indicum, G. Dons.
5. Sida Indica.
6. Sida Rhombifolia.
7. Sida Spinosa, Linn.
8. Malvaceae.
9. Sida Carpinifolia.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वृष्या रसायनी तस्याश्मन्तफल वत्फलम् । बलाबीजं स्वादुपाके कषायं लेखनं मधुरं रसें ॥
हिमं वीर्ये गुरुगुणे स्तम्भनं लेखनंभृशम् । (कैं०)
बला सांग्राहिक-बल्य-वातपित्तहरणाम् । (च० सू०)

चारों बलाएँ मधुर रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, ग्राही स्निग्ध, वातपित्त, कफशामक, क्षत, क्षीणता, रक्त दोषशामक, बल वीर्य, धातु तथा ओजवर्धक है । नागबला विशेषकर गुरु अत्यन्त रसायन रक्तपित्त क्षय रोगनाशक है । अतएव (सु० उ० सं० ४१ में)

'रसोनयोगंविधिवत् क्षयांर्त्तः क्षीरेण वा नागबला प्रयोगः' कहा गया है । ६ माशा से १ तोला मूल त्वक त्वचा चूर्ण दूध के साथ सेवन करने से पुष्टि बल तथा आरोग्य देते हैं । बला बीज (बीज बन्द) मधुर, कषायानुरस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, गुरु स्तम्भन, लेखन, विबन्ध, आध्मान, वातपित्त, कफ तथा रक्त दोषनाशक होते हैं ।

ये पिच्छिल होते हैं । ज्वरों में दाह, प्यास, कंठ शोथ, अतिसार, रक्तस्राव, प्रवाहिकाशामक, रक्तार्श, मूत्र-कृच्छ्र, पूयमेहनाशक है । मात्रा ४ माशा समशर्करा के साथ दूध से या जल से सेवन करावें । सब प्रकार की निर्बलताओं में बला मूल छालों का चूर्ण दूध के साथ और पीपली मिलाकर पीने से लाभ होता है । मूत्रकृच्छ्र में बला के पत्रों का काढ़ा या हिम श्वेत प्रदर में छाल का १ तोला चूर्ण समभाग मिश्री मिलाकर दूध के साथ, वातरोगों में बलाचूर्ण एरण्ड तैल या घी के साथ लाभ करता है । बला तैल उदरशूल, आध्मान और अंडवृद्धिशामक है । बला तैल, वातरक्त तथा रक्तपित्तशामक भी है । प्रसव के पश्चात् बला तैल से अभ्यंग से प्रसूता को वातरोग तथा उदरवृद्धि नहीं होती ।

नागबला के अन्त सेवन से तथा लेपसे टूटी हड्डियाँ शीघ्र जुड़ती हैं तथा व्रणरोपण भी होता है । नागबला मूल घृत दूध श्वासकासशामक, जल में पीसकर लेप करने से स्तन कठोर हो जाते हैं । महाबला को ऋतु समय पिलाने से गर्भाधारण होती है । घृत के साथ सेवन से शून्य वात (झनझनाहट) मिटती है तथा कपिला गाय के दूध के साथ सेवन से वन्ध्यापन नष्ट होता है ।

योग—(१) बलारिष्ट, वात व्याधियों तथा मस्तिष्क रोग नाशक ।
(२) बलाघृत, अपस्मार, उन्माद, क्षय रक्तपित्त नाशक ।

कुछ लेखक नागबला को व्याकरण के अनुसार नागबत बलते गच्छतीति नागबला निरूपित करके फरीद बूटी (म०) भूई चिकणा, भुईबल (गु०) भोयंबल (Sida Humilis) को नागबला कहते हैं । वह गलत है । औष-धियों का निर्णय व्याकरण से नहीं किया जाता, अपितु गुणों से । गुणों के अनुसार गंगेरन ही नागबला है । इस विषय में आचार्य श्री गोवर्धनजी शर्मा छांगाणी का निम्न कथन स्मरणीय है ।

प्राचीन नार्मलिगानुशासनकार अमर सिंह ने तथैव अन्य प्राचीन कोषकारों ने भी गांगेरूकी और नागबला को एक ही माना है । विक्रम की ग्यारहवीं शती में लिखी गई शार्गधर संहिता में कथित गांगेरूकी स्वरस के बारे में लिखा है । कि—

खड्गादि छिन्न गात्रस्य तत्कालंपूरितोव्रणः । गाँगेरुकी मूल रसैर्जायते गतवेदनः ॥ (म० स्व० ज०)

शारंगधर के समकालिक टीकाकार आढमल्ल ने इसकी टीका में लिखा है 'गांगेरुकी नागबला—' यहाँ आढ-मल्ल ने भी गांगेरुकी को नागबला माना है । मूल स्वरस के समान पत्तों का रस भी वैसा ही माना है । यह विशेष बात हमारे प्रत्यक्ष में आई है ।·····गांगेरुकी नागबला से भिन्न नहीं है । इससे स्पष्ट होता है कि फरीद बूटी बला चतुष्टय में नहीं आ सकती (आयुर्वेद—दिसम्बर 1955) नागपुर

मुशलीद्वयम् (कृष्णा-तालमूली, श्वेता, हेमपुष्पा)

परिचय—काली मुशली दक्षिण में उष्ण भागों में तथा सफेद उत्तर तथा पश्चिम भारत में पैदा होती है । व्यवहार में कन्द आता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रस—मधुर, तिक्त अनुरस
वीर्य—शीत
विपाक—मधुर
दोष—वातपित्तशामक, कफहर
प्र० अं०—प्रजनन अंग (वीर्योत्पादक)
वि० गु० क०—पौष्टिक, बृंहण, वीर्यवर्धक
मात्रा—३-६ माशा।

नाम—(१) सफेद मूशली (हि० पं० मा०) सफेद मूसली (म०) सफेद मुसली (गु०) धोली मूसली (बं०) श्वेत मुसली, तालमूली (हि०) काली या स्याहमुशली (बं०) ताल मूली (म० गु०) कालीमुशलीक (क०) नेल दाले गड्डे (तै०) नल्लताड़े (ता०) निलपानेकिलंग् (वा० ले०) कर्कुलिगो ओर्किओइडिस्,[1] तालमूली[2] वर्ग। (वा० ले०) एस्पेरेगस् एसेण्ड[3] शतावरी वर्ग[4]।

वक्तव्य—गुणों में दोनों समान हैं। सफेद मूसली शतावरी के समान होती है।

गुण—मुसली, मधुरा शीत वृष्या, पुष्टिबलप्रदा। पिच्छला कफदा पित्तदाहश्रमहरा परा॥ (रा० नि०)

मुशली मीठी—रस में विपाक में मीठी, अनुरस तिक्त, वीर्यशीत (कुष्ठ के मल में उष्ण के) पौष्टिक बल वीर्यवर्धक, पिच्छिल, पित्त, दाह, थकावट, निर्बलतानाशक तथा कफवर्धक है। सूजाक, मूत्रकृच्छ्र तथा अत्यार्तव में मूसली के पेया बनाकर देते हैं। सब प्रकार की अशक्तता में नपुंसकता, वीर्य निर्बलता में १ तोला मुसली चूर्ण, १ तोला शर्करा दूध के साथ मिलाकर देते हैं। श्वेतमूसली को मधुमेह में दे सकते हैं, क्योंकि इसमें शर्करा कम होती है। दो वर्ष तक इनका वीर्य सुरक्षित रहता है। ये गुरु तथा विपाकी चिरपाकी हैं। अतः सोंठ तथा शहद के साथ सेवन करना चाहिए। सफेद मूसली रक्तशोधक मूत्रल है। यूनानी वैद्यक में ये दोनों उष्ण तथा रूक्ष हैं। मूत्रातिसार में जायफल के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

योग—मूशलीपाक : मात्रा १ तोला वृष्य, वाजीकरण।

वाराहीकन्दः (गृष्टिका, शूकरी)

नाम—(हि० पं०) बराहीकन्द (म०) हुकरकन्द (गु०) हुक्कर कन्दः (वा० ले०) टेक्का[5] एस्पेरा, बाराही-कन्द[6] वर्ग।

परिचय—वराहीकन्द की लता के पत्र नागरपान के पत्तों के समान कन्द लोमयुक्त, यह उष्ण प्रदेशों दक्षिण तथा मध्यभारत में बहुत होता है। कन्द का उपयोग होता है।

गुण—वराहकन्दः श्लेष्मघ्नः कटुकोरस पाकतः। मेहकुष्ठकृमिहरो बल्यो वृष्यो रसायनः। (सु० सू० ४६)

यह वातकफशामक तथा पित्तवर्धक है। विदारीकन्द के समान प्रभाव तथा प्रयोग है। किन्तु उतना प्रभाव-शाली नहीं।

---

1. Curculigo orchioides, gaertn.
2. Amaryllidaceae.
3. Asparagus Ascendens, Roxb.
4. Liliaceae.
5. Tacca Aspera, Roxb.
6. Tacaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वालुकामत्स्य

नाम—(हि०) रेगमाही, रेत की मछली (गु०) शरंडा (बं०) घिलौटी (अं०) इण्डियन[1] स्किंक (ले०) मबुइआ केरिनेटा,[2] सरीसृपवर्ग[3]।

परिचय--यह बालुकामय प्रदेशों में बगदाद, सिन्ध, मारवाड़ादि में पाई जाती है। अंगुलि के समान मोटी, मछली के समान चलने वाली।

गुण तथा प्रयोग—उष्ण तथा रूक्ष उत्तेजक वाजीकरण, वातनाड़ियों को बल देने वाली है। वाजीकरण के लिए तिलों में डाली जाती है। यह अत्यन्त कामोत्तेजक लिंग की निर्बलता तथा शिथिलतानाशक है।

विदारीकन्दद्वयम्

परिचय—विदारीकन्द की लता छोटे-छोटे पहाड़ों पर सर्वत्र मिलती है। पत्र कटा हुआ पंचागुलसम होता है। कन्द का व्यवहार होता है।

पुष्पकाल—वर्षाऋतु

पुष्प—बैंगनी रंग के

रस--मधुर

वीर्य—शीत

विपाक—मधुर

दोष--कफ-पित्तशामक, कफवर्धक

प्र० अं०--पुरुष प्रजननांग, सारा शरीर

वि० गु० क०--वृष्य, पौष्टिक, स्तन्य वर्धक

नाम--(हि० पं० मा०) विदारीकन्द, बिलाईकन्द (बं०) भुईकुमरा (गु०) विदारीकन्द, भोयकोलुं फगवेलानोकन्द (क०) नेलगुंबलद (तै०) चेल्लगुमुडु (ता०) मिरिगुमुडु (वा० ले०) आईपोमिपा[4] डिजटेटा, त्रिवृत्[5] वर्ग।

(१) विदारीकन्द कूष्माण्ड (पेठा) के समान होता है। ताजा होने पर इसमें से दूध निकलता है। क्षीर विदारी तथा विदारी कन्द दो भेद हैं। क्षीर विदारी उत्तम है। 'विदारीकन्दः, द्विविधः एकोदीर्घकाण्डो बहु क्षीरः क्षीरविदारी व्यवृद्धियते। अन्यो हरितपादपोल्पक्षीरः। (चक्रपाणि च० टी० सू० २८)

गुण--मधुरो बृंहणो वृष्यः शीतः स्वर्योतिमूत्रलः। विदारीकन्दो वल्यस्तु पित्तवातहरश्च सः ॥ (कै०)

(सु० सू० ४६)

विदारीकन्द मधुर, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, वृष्य स्वर्य, अत्यन्त मूत्रल, बलवर्ग, जीवनीय, रसायन वातपित्त दाह तथा रक्तविकारशामक है।

प्रभाव तथा प्रयोग--विदारीकन्द का प्रभाव कूष्माण्ड के समान होता है। समस्त अंगों तथा धातुओं का वर्धक दाहशामक, सब प्रकार की निर्बलता का निवारक तथा वातनाड़ियों और संशमनकारक है। बच्चों के शोथ रोग में अति उत्तम है।

---

1. Indian Skink.
2. Mabuia Carinata, schucid.
3. Reptilia.
4. Ipomea Digitata, Linn.
5. Convolvulaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विदारीकन्द का दूध के साथ सेवन करने से स्त्रियों का दूध बढ़ता है, पुरुषों का वीर्य। बच्चों की वृद्धि तथा पुष्टि के लिए १ माशा चूर्ण मधु के साथ देना चाहिए। यकृत् प्लीहावृद्धि, पित्तशूल में भी यह लाभ करता है। इससे पित्त का स्राव ठीक होता है तथा मलमूत्र साफ आते हैं। रक्त भी शुद्ध होता है। दूध के साथ नित्य सेवन करने से शक्ति, बल, वीर्य बढ़ते हैं।

योग—विदार्यादि चूर्ण ६ माशा, १ तोला तक वीर्य-वर्धक, मुक्ता पंचामृतरस २-४ रत्ती, बालशोथशामक।

वृद्धदारुकः (छागलान्त्री, जोगकः)

नाम—(हि०) बिधारा, समुद्र शोध (बं०) विजताडक् बिद्धताडक्, (म०) समुद्र शोक (गु०) समुद्र शोक (अं०) एलीफेन्टा[1] क्रीपर (वा० ले०) आर्जिरिआ[2] स्पेशिओसा, त्रिवृत्[3] वर्ग।

परिचय—वृद्ध दारुका की लता बहुत बड़ी होती है। एक प्रकार का वृद्ध दारूक का गुल्म (झाड़ी) भी मिलता है। पत्र का ऊपर का पृष्ट चिकना हरा, अधर पृष्ट श्वेत रोयेंदार। पुष्पकाल—मई-जून। मूल तथा बीज व्यवहार्य अंग है। विशेष गुण पौष्टिक, आमवात शामक।

गुण—वृद्ध दारूः कटुस्तिक्तः कषायोष्णोरसायनम्। शुक्रायुर्बलमेषाग्नि स्वरकान्तिकरः सरः।
शोफामवात, वातास्रवातमेह, कफापहः। (कै०)

विधारा रस में कटु तिक्त, कषाय, वीर्य में उष्ण, विपाक में मधुर, रसायन मृदुरेचक वात कफशामक वीसर्प बल मेधा अग्निदीपक, स्वर तथा कान्तिवर्धक, शोथ, आमवात, वातरक्त, प्रमेहनाशक है।

प्रयोग—विधारा शोधक तथा उष्ण है। अग्निदीपक होने के कारण आम का पाचन तथा उष्ण होने से शोथ का शामक है। अतः आमवात, वातिक वेदनाओं में मूल या बीज अति उपयोगी है। एतदर्थ विधारा अश्वगन्धा, चोपचीनी, शतावरी समभाग, द्विगुण शर्करा मिलाकर सेवन करना अच्छा है। श्वेत प्रदर तथा वीर्य पुष्टि के लिए विधारा बीज १½ माशा अश्वगन्धा १½ माशा मिलाकर दूध के साथ सेवन करना चाहिए। वातिक विबन्ध में ३-६ माशा मूल चूर्ण लाभप्रद है। मूत्रकृच्छ्र में पत्तों का फाण्ट पिलाया जाता है। मूल चूर्ण में लाभप्रद है। मूत्रकृच्छ्र में पत्रों का फाण्ट पिलाया जाता है। मूल चूर्ण में शतावरी रस को सात भावना देकर सेवन करने से मेधा शक्ति बढ़ती है। व्रण शोथ पकाने के लिए पत्र का निचला भाग लगाते हैं। व्रण रोपण के लिए ऊपर का स्निग्ध भाग व्रण पर रखा जाता है।

शतावरीद्वयम् (सहस्रमूला, नारायणी अभीरू)

परिचय—बड़ी तथा छोटी शतावरियों की लता सर्वत्र जंगलों में तथा उष्ण स्थानों में उपलब्ध होती है। मूल का व्यवहार होता है।

पुष्पकाल—अप्रैल-मई
रस—मधुर अनुरस, तिक्त
वीर्य—शीत
विपाक—मधुर

---

1. Elephant Creeper.
2. Argyreia, speciosa, sweet.
3. Convolvulaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्र० अं०--पुरुष प्रजननांग दुग्धग्रन्थि

वि० गु० क०--अति पौष्टिक, मूत्रल, रसायन वीर्यवर्धक

मात्रा—६-१२ माशा

नाम—(हि०) सतावर (वं०) शतमूली (म० गु०) शतावर (क०) आषाडिहंबु (तै०) चल्ल, पिल्लाटग (ता०) टामर (अं०) एस्पेरेगस्[1] (वा० ले०) एस्पेरेगस् रेसिमोसस्[2], ए० गोनोक्लेडोस्,[3] रसोन[4] वर्ग ।

गुण—वातपित्तहरी वृष्या स्वादुतिक्ता शतावरी । महती चैव हृद्या च मेध्याग्नि बलवर्धनी ।।
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नी वृष्याशीता रसायनी । कफपित्तहरातिक्तस्या एवांकुराः स्मृताः ।। सु० सू० ४६

शतावरीद्वयं ही मधुर, तिक्त रस, शीतवीर्य मधुर, विपाकी, रसायन, बल वर्ण, अग्निमेधा वर्धक, वीर्य, स्तन्य उत्पादक, पौष्टिक, वातपित्त रक्तविकार गुल्म, अतिसार, ग्रहणी-शोथ तथा अर्शनाशक है । शतावरी के अंकुर तिक्त, कफ पित्त शामक है ।

प्रभाव तथा प्रयोग—शतावरी में स्निग्धता, मधुरता, शीतलता आदि गुण हैं । जिनके कारण यह सारे शरीर को पुष्ट करती है । अग्निमान्द्य न करते हुए यह वातशमन, वीर्य तथा मूत्र का उत्पादन करती है । रक्तपित्त, दाह, मूत्रकृच्छ्रता, मस्तिष्क दौर्बल्य तथा शरीर के क्षय, वीर्यक्षीणता को नष्ट करती है । स्वर भेद में मुलेठी के चूर्ण के साथ, मदात्यय में मुलेठी चूर्ण-घृत के साथ, वीर्य क्षीणता में अश्वगन्धादि के साथ सेवन करने से लाभ होता है ।

योग--(१) नारायण तैल, महाशतावर्यादि तैल वातव्याधियों में कृशता में ।
(२) महाशतावरीघृत, रक्त पित्त, राजयक्ष्मा, वीर्यक्षीणता, गर्भपात में ।
(३) गर्भ-चिन्तामणि रस—१-२ रत्ती सगर्भा के रोगों में ।

शाल्मलीद्वयम (रक्तः श्वेतश्च)

परिचय--शेमल का महान् वृक्ष सुपरिचित तथा अनेक कथानकों का विषय है ।

व्य० अं०--मूल, पत्र, पुष्प निर्यास (मोचरस)

पुष्पकाल--माघ-फाल्गुन मूल का मूसली नाम है ।

रस--कषाय

वीर्य--शीत

विपाक—मधुर

दोष—त्रिदोषशामक, विशेषकर कफ-पित्तशामक

प्र० अं०—अन्त्र तथा प्रजननेन्द्रिय

वि० गु० क०—पौष्टिक, ग्राही, संकोचक, प्रमेह, प्रदर, वीर्यक्षीणताहर ।

मोचरस--१-२ माशा

मात्रा—६-१२ माशा तक चूर्ण

नाम—लालसेमुल (हि०) सेमल, सेंमर (वं०) रक्तोसेमुल (म०) लालसांवर (गु०) सीमलो, शेमलो (क०) गुल्लूबूर, लुमर (ता०) इल्यावम् (अं०)सिल्क[5] काटन ट्री (वा० ले०)बाम्बेक्स,[6] मलाबारिकम्, कार्पास वर्ग ।[7]

---

1. Asparagus.
2. Asparagus Recemosus, wild.
3. A. Gonoclados, Baker. (सहसमूला, बड़ी शतावरी)
4. Liliaceae.
5. Silk Cotton Tree.
6. Bombax Malabaricum, D. C.
7. Malvaceae.

फा०—६४

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

श्वेत शाल्मली या कटु शाल्मली को 'एरिओ डेन्ड्रोन् इन्फ्रेक्टयूओजम्[1]' कहते हैं। गुणों में दोनों समान, लाल का प्रयोग अधिक होता है तथा यह सर्वत्र सुलभ है।

गुण—शाल्मली शीतला स्वादी रसेपाके, रसायनी। श्लेष्मला बृंहणी वृष्या स्निग्धा पित्तास्रनाशिनी ॥
मोचास्रावो हिमोग्राहीं स्निग्धो वृष्याः कषायकः। प्रवाहिकातिसाराम कफपित्तस्र दाहनुत् ॥ (भाव०)
पुष्पं स्वादु रसे पाके रूक्षं तिक्तं हिमं गुरु। कषायं वातलं ग्राही कफपित्तास्रजित्परम् ॥

शाल्मली मधुर, शीतल, मधुर विपाकी, वातपित्तशामक, कफवर्धक, रक्तविकार (रक्तस्राव, रक्तप्रदर, रक्तातिसारादि) शामक रसायन, वाजीकरण, स्निग्ध और पौष्टिक है। मोचरस (मोच-शाल्मली) उक्त गुणों वाला तथा अत्यन्त ग्राही, संकोचक है। फूल रस तथा विपाक में मधुर, कषाय, तिक्त, अनुरस, शीतल, वातवर्धक, पित्तकफ तथा रक्त विकारों में अति उपकारक है। शाल्मली की बालमूल को 'सेमलमूसली' कहते हैं। यह अति पिच्छिल, शीतल तथा वीर्य वर्धक होती है। यह अत्यन्त वीर्य स्तम्भक है (कन्दोऽस्याः मधुरः शीतः शुक्रस्तम्भकरोमतः)।

प्रभाव तथा प्रयोग—मूल अति उत्तम स्नेहन तथा वीर्यवर्धक है। पित्त तथा रक्त विकारों को अपनी शीतलता तथा पिच्छिलता से शान्त करती है। वीर्यवर्धक बाजीकरण, शुक्रस्तम्भक योगों में तथा वातव्याधियों से उत्पन्न क्षीणता में एवं कृश शरीर वाले व्यक्ति को लाभप्रद है। जो लोग थोड़ा-सा भी परिश्रम कर थक जाते हैं उनके लिए मूल चूर्ण ३ माशा, अश्वगन्धा चूर्ण ३ माशा, पिप्पली ½ माशा, मिलाकर दूध के साथ पीने से अत्यन्त हित करती है। तीस दिन तक प्रयोग करें। रक्त पित्त रक्तार्श, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिकादि में भी यह लाभ करती है। इसके ३-४ बीज निगलने से शीतला या तो निकलती ही नहीं या बहुत कम निकलती है। छाल का काढ़ा सुरामेहशामक है। प्लीहावृद्धि में पुष्पों को शीतकषाय में राई का चूर्ण मिलाकर पीना लाभदायक है। रक्त पित्त, रक्त प्रदर में पुष्पों का चूर्ण मधु के साथ खाने से लाभ करता है। काँटों को दूध में पीसकर युवान पिडिकाओं, झाई आदि पर मला जाता है। मोचरस या गोंद अत्यन्त ग्राही है। स्नेहन होने से यह रूक्षता को भी नष्ट करता है। यह गर्भस्थापक, अतिस्राव, रक्तप्रदर, रक्त-श्वेतप्रदर, प्रवाहिका, जीर्णातिसार, रक्तस्रावशामक है। पारद के विकारों में एक महीने तक सेवन करने से लाभ होता है। योनि शैथिल्य में इसकी उत्तरबस्ति भी दी जाती है। इसकी पोहली उत्तम भग संकोचक है।

योग—मूसलीपाक-पौष्टिक, वात-व्याधिशामक, वृष्य।

शेवालम् (वारिपर्णी-तोयकुम्भी, पानीय पृष्ठजा)

नाम—(हि०) काई, सेवार (म०) शैवाल (वा० ले०) बेलिस्नेरिआ स्पाईरेलिस्, शेवाल वर्ग।

गुण—वारिपर्णी हिमातिक्ता लघ्वी स्वाद्वी सरा पटुः। दोषत्रयहरी रूक्षा पित्तास्र ज्वर शोफहा ॥ (कै०)

काई तिक्त, लवण, शीतवीर्य, लघु सर रसवाली, शीतल, त्रिदोषहर, पित्त, रक्त विकार, दाह-ज्वर-हर, शोथशामक है। इसे मृत्पात्र में भस्म कर और समान शर्करा मिलाकर सेवन करने से प्रमेह, वीर्यक्षीणता में लाभदायक है। दाह तथा शोथ में इसको पीसकर लेप करते हैं। रक्तार्श पर शैवाल का कल्क बांधा जाता है।

शृंगाटकम्, (जलफलं, त्रिकोणः)

नाम—(हि०) सिंघाड़ा (बं०) शिंगाड़ा, पानिफल (म०) शेंगाड़ा (गु०) शींघोड़ा (अं०) इण्डियन वाटर चेस्टनट[2] इण्डियन केलट्रोप[3] (वा० ले०) ट्रेपा बिस्पीनोझा[4], शृंगाटक वर्ग[5]।

---

1. Ario-Dendron Infractuosum.
2. Indian water chestnut.
3. Indian caltrop.
4. Trapa, Bispinosa, Roxb.
5. Onaegraceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण—श्रृंगाटकं कषायं तु मधुरं वृष्यं वातलम् । जीवनं पित्त शमनं कफमेहहरं गुरु ॥ (कै०)

सिंघाड़ा, मधुर रस, कषाय, अनुरस, शीतल, मधुरविपाकी, पित्तशामक, वृष्य, कफ, प्रमेहशामक, वातवर्धक, गुरु विष्टम्भि जीवन है।

सिंघाड़े का आटा बनाकर रोगियों को पथ्य के रूप में देते हैं। यह ग्राही होने के साथ-साथ सुपच भी है। अतः रक्त प्रदर, प्रमेह, रक्तातिसारनाशक है। रक्त तथा कफ गिरना बन्द होता है। पित्त प्रकृति वालों के लिए तथा क्षीणता में पुष्टि के लिए एवं वीर्य वर्धनार्थ इसका प्रयोग करना उत्तम है।

सुधामूली (प्राणदा-वीरकन्दः)

नाम—(सर्व भाषा) सालम, सालव, सालममिश्री सालप्मिश्री (अं०) सलेप[1] (वा० ले०) आर्किस[2] मेस्कयुला, सालम वर्ग[3]। यह विदेशों से आती है।

भारतीय सालममिश्री या सालमपंजा को 'इयूलोफा काम्प्रेस्ट्रिस्'[4] कहते हैं।

गुण तथा प्रयोग—मधुर, स्निग्ध, समशीतोष्ण, मधुर विपाकी, वातपित्तशामक कफवर्धक, वृष्य, पौष्टिक, वात संस्थान को बल देने वाली है। क्षय रोग, बालशोथ, कृश तथा वीर्यक्षीणता में व्यक्ति को ३-६ माशा की मात्रा में दूध के साथ सेवन कराते हैं। पक्षाघातादि वात रोगों में तथा लौंग जायफल आदि पदार्थों के साथ खिलाने से शरीर को पुष्ट करती है।

योग—सालमपाक पौष्टिक, वृष्य, वाजीकरण, वातव्याधिशामक।

---

1. Salep.
2. Orchis Mascula, Linn.
3. Orchidaceae.
4. Eulopha Comprestris, wall.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अध्याय छब्बीस

त्वचा-प्रभावक

१. असनः (महासर्जः, प्रियकः)

नाम—(हि०) असना (म०) ऐन (बं०) पियासाला (वा० ले०) टर्मिनेलिया[1], टोमेन्टोसा हरीतक्यादि वर्ग[2]।

२. बीजकः (विजयसारः)

नाम—(हि०) जौसार (गु०) वीया (म०) बिवला (वा०ले०) टेरोकार्पस्[3], मार्सुपियम् वर्ग शिम्बी[4] (अं०) इण्डियन किनो ट्री[5]।

वक्तव्य—उक्त दो पृथक्-पृथक् वृक्ष है। जिन्हें अनेक वैद्य एक ही समझते हैं। वस्तुतः गुण साम्य होते हुए भी ये दोनों दो वृक्ष हैं। आधुनिक वनस्पति के अनुसार उनके वर्ग भी भिन्न हैं। इस विषय में गुरुवर्य स्वर्गीय श्री सुरेन्द्र मोहन लालजी का निम्न कथन स्मरणीय है—"असन के वृक्ष नेपाल, सिक्किम, दक्षिण प्रदेशों में बहुत मिलते हैं। यह हरीतकी (Terminalia) जाति का अंग है। अर्जुन, हरीतकी आदि के समान उसकी आकृति समझें। पत्र प्रायः लम्बे नोकदार, वल्कलक्वाथग्राही होने से अतिसार प्रवाहिकादि में तथा व्रणों में धोने के काम आता है।"

बीजकं (विजयसार) मध्यप्रान्त, बिहार, मद्रास में बहुत मिलता है। वृक्ष की त्वक् पर ऊर्ध्वाधोरेखाएँ होती हैं। जिसके कारण वह विदीर्ण होती है। पत्र संयुक्त ५-७ पत्तियाँ एक पत्र पर लगी होती हैं। पत्तियाँ अण्डाकार तथा नोकीली। काष्ठ कठोर, पीताभ। यह शिम्बी जाति का अंग है। अतः इसके फल शिम्बी तुल्य (Pod-like) होते हैं। असन तथा बीजक को एक समझना अशुद्ध है। बीजक से एक रक्तवर्ण गोंद निकलता है। जिसे लोक भाषा में 'कमरकस' कहते हैं। यह ग्राही है। पाश्चात्य चिकित्सा में ग्राही औषधों में पड़ता है। असन से कोई गोंद प्राप्त नहीं होता है। (कै०)। बाजार में कमरकस के नाम से जो पदार्थ मिलता है वह प्रायः पलाश का गोंद होता है। विजयसार में पुष्प ज्येष्ठ-वैशाख में लगते हैं।

विशेष गुणादि—कषाय, कटु रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, ग्राही, अतिसारादिशामक।

गुण—बीजक—कटुकः सोष्णः कषायः कफपित्तहा। त्वच्यः केश्योऽस्रपित्तघ्नः कृमिवीसर्पनाशनः।
हन्ति कुष्ठ कण्डु श्वित्र मेदोमेहं रसायनम्। असनस्य च पुष्पाणि विपाके मधुराणि च।
तिक्तानि पाचनीयानि वातलानि भवन्ति हि। (कै०)

1, Terminalia Tomentosa, Bidd.
2. Combretaceae.
3. Pterocarpus, Marseepium.
4. Leguminoceae.
5. The Indian kino Tree.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विजयसार कसैला, अनुरस कटु, गरम, कफपित्तहर, त्वच्य, रक्तपित्त, कृमि, वीसर्प, त्वचा रोग, कुष्ठ, कण्डु, प्रमेह, मेद (वसा) नाशक रसायन है। त्वचा रोगों में यह निम्न अंगों में त्वचा, अन्त्र प्रभावक, धातुओं में, वसा में यह अति उत्तम है। अतएव सुश्रुत ने कहा है "यथासर्वाणि कुष्ठानि हतः खदिर बीजकोः (सु० चि० अ० ६)

इसके निर्यास को जीर्ण अतिसार में देते हैं। ग्राही होने से त्वचा रोगों में छाल का काढ़ा, लेप, स्नान तथा पान के काम आता है। मुख रोगों में गोंद के घोल से कुल्ले कराये जाते हैं। रक्तातिसार, रक्तप्रदरादिनाशक है।

अश्वकर्णः (शालः सर्जरसः धूपवृक्ष)

परिचय—६०-९० फुट ऊँचा महावृक्ष पत्र बहुत बड़े

उ० स्थ—हिमालय का निचला भाग, बंगाल, आसामादि, विंध्यादि प्रदेश

व्य० अं०—निर्यास काष्ठ

पुष्पकाल—फाल्गुन

रस—कषाय तिक्त, मधुर

वीर्य—शीत

विपाक—कटु, मधुर

प्र० अं०—त्वचा

वि० गु० क०—कृमिघ्न, व्रणशोधक, रोपक, ग्राही

मात्रा—काष्ठचूर्ण १-३ माशा (राल) निर्यास १ माशा

नाम—(हि०) राल, वृक्ष, साल, सखुआ (बं०) साल, शाल (मं०) रालवृक्ष (गु०) साल (अं०) दी साल[1] (वा० ले०) शोरिया रोबस्टा[2] गिर्दिन वर्ग, शालादि वर्ग[3]। राल (गोंद का नाम है) को संस्कृत में शालनिर्यास, सर्जरस धूप (हि० म० गु०) राल (बं०) धून, राल कहा जाता है। यह उत्तम व्रण रोपक, शोधक, कृमिघ्न है।

गुण—शालः कषायो ग्राह्यस्रगदग्धरुक्कफजित् हिमः। कर्णरोग हरोरुक्षो विषहा व्रण शोधनः।
सुराल मधुतिक्ता कषाया ग्राहिणी गुरुः। अनुष्णाहन्ति दोषास्न शूल स्वेदज्वरव्रणान्।
वीसर्प ग्रहभंगाग्निदग्धालक्ष्मी विपादिकाः॥ (कै०)

शालवृक्ष कसैला, शीतल, कफहर, ग्राही, रक्तस्राव, अग्निदग्ध, कर्णरोग, तथा विषनाशक, रूक्ष, और अग्निदग्ध, कर्ण रोग, तथा विषनाशक, रूक्ष और व्रणशोधक है। राल (गोंद) मधुर, तिक्त, कषाय, समशीतोष्ण, ग्राही, गुरु, त्रिदोषहर, वेदना, अतिस्वेद, रक्तस्राव, ज्वर वीसर्प, भग्न, अग्निदग्ध विपाकादि (बिबई) तथा अलक्ष्मी और कीटाणुनाशक है।

प्रयोग—संकोचक, रक्तशोधक, कृमिनाशक, व्रणशोधक, रोपक होने से फोड़े-फुंसियों के व्रण को शान्त करने के लिए राल का मलहर बनाया जाता है। एतदर्थ नीचे लिखा मलहर बहुत उपयोगी है। राल २½ तोला, मोम २½ तोला संगजिराहत २ तोला, फिटकरी १½ तोला, नीलाथोथा (तुत्थ) १ तोला, कत्था १ तोला, गुरु १ तोला, मीठा तैल ५ तोला, सबको चूर्ण मलहर बना लें।। दुर्गन्धि तथा भगन्दर दुष्ट व्रण आदि सब प्रकार के व्रण ठीक हो जाते हैं। भगन्दर में अर्श की शोथ में और उसके मस्सों को बिना काटे ठीक करना हो तथा रक्तस्राव को रोकने के लिए, शर्करा ५ तोला, राल, पाषाण भेद, इलायची, ६-६ माशे, नीम का छाल, चिरायता प्रत्येक २½-२½ तोला, सबको सूक्ष्म चूर्ण

1. The Sal.
2. Shorea Robusta, gaertn.
3. Dipterocarpae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर ४-८ रत्ती की मात्रा में सेवन करना चाहिए। अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका तथा बच्चों के उदराध्मान में राल, जीरा, कत्था, मोचरस, खदिरा का सार समान भाग लेकर चूर्ण कर ३ माशे की मात्रा में जल के साथ देने से अत्यन्त लाभ करता है। मूत्रकृच्छ्र में राल तथा मिश्री मिलाकर पीने से रक्तार्श में राल के चूर्ण को सरसों के साथ मिलाकर लेप करने से अत्यन्त लाभ होता है। व्रणों को धूनी देने में तथा दाँतों को दृढ़ करने के लिए भी राल दन्तमंजनों में प्रयुक्त होता है। आमातिसार रूप में काष्ठ के चूर्ण को शर्करा के साथ लेने से लाभ होता है। मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ मिलाकर रक्त-शोधन के लिए भी सेवन की जाती है।

वक्तव्य—साल जातीय तीन क्षुप साल, अजकर्ण तथा अश्वकर्ण ये नाम आए हैं। ये तीनों एक जाति के वृक्ष हैं। इनका निर्यास शाल रस या सर्जरस (राल) है। बम्बई 'चन्द्रुस' नाम से मिलने वाला राल सदृश पदार्थ भी इसी जाति के एक वृक्ष (बटेरिया इण्डिका) का गोंद है। गुणों में राल के समान है।

इंगुदी (कण्टकीवृक्षः, तापसद्रुमः)

परिचय—कण्टकी वृक्ष ३० फुट तक ऊँचा, रूक्ष प्रदेशों में प्राप्त
उ० स्थ०—बिहार, राजस्थान, मद्रासादि।
व्य० अं०—पंचांग, तैल
पुष्पकाल—हरे सफेद गुच्छ रूपी फूल चैत्र, बैशाख में
रस—तिक्त, कटु
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
दोष—वातकफशामक
प्र० अं०—पाचक अंग
वि० गु० क०—रेचक, कृमिघ्न
मात्रा—कफहर १-५ रत्ती, रेचन १५-३० रत्ती

नाम—(हि०) हिंगोट, गोंदी (म०) हिंगण (गु०) इंगोरियो (क०) इंगलदमर (तै०) रिंग्रि (ता०) नंजुडन् (वा० ले०) वेलेनाईटेस्[1] राक्सबर्गिआ वे इण्डिका इजप्टिका, इंगुदी वर्ग[2]।

गुण—इंगुदस्तिक्तकः सोष्णः कटुपाको नियच्छाति। कृमिकुष्ठविषश्वित्र शूलभूत ग्रहव्रणान्। (कै०)

हिंगोट कड़वी, कुछ चरपरी, उष्ण, कटु विपाकी, फेनिल लघु, वातकफरोगहर, कृमि, कुष्ठ, श्वित्र उदरशूलादि शामक है। फलों में साबुन सम तत्त्व पाया जाता है।

तैल—कृमिघ्नं इंगुदी तैल मीषत्तिक्तं तथा लघु। कुष्ठामय कृमिहरं दृष्टि शुक्र बलापहम्। (सु० सू० ४५)

इंगुदी के बीजों का तैल स्निग्ध, कुछ कड़वा, लघु, कृमिहर त्वचारोगनाशक, वीर्य तथा नेत्र-बलनाशक है। त्वचा शिरोविरेचक है।

प्रयोग—भस्म तथा फल स्वल्प मात्रा में कफ को पतला करके निकालता है। फल के गूदे को बादाम तैल मिश्री के साथ मिलाकर देना उत्तम है। अधिक मात्रा में देने से यह रेचन भी करता है तथा मूत्र भी लाता है। त्वचा (छाल) चूर्ण १ तोला को नित्य १५ दिन तक जल के साथ सेवन करने से रुधिर विकार मिटते हैं, किन्तु खटाई, लवण तथा वातल पदार्थों से बचना चाहिए। शुष्ककास में गिरी का सेवन लाभ करता है। उदर कृमियों तथा शूल में

1. Balanites Roxburghea Benth, B. Aegyptica.
2. Simaroubaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वायबिडंग के साथ देने से विरेचन होकर कृमि बाहर निकल जाते हैं। फल-मज्जा को घिसकर नेत्र में लगाने से उसकी ज्योति बढ़ती है। तैल स्निग्ध शीतल, मधुर एवं कुछ तिक्त है। सिर में लगाने से केश वर्धन, दूध में १०-३० बूंदें डालकर पीने से पित्तशामक है।

चक्रमर्दः (प्रपुन्नाटः)

परिचय—२-५ फुट ऊँचा वृहत् वार्षिक क्षुप

व्य० अं०—पंचांग, विशेषकर बीज

उ० स्थ०—सर्वत्र विशेषतः रूक्ष प्रदेशों में

पुष्पकाल—शरद ऋतु, पीत वर्ण

रस—मधुर, कटु

वीर्य—(पत्र) शीतल (बीज) उष्ण

विपाक—कटु

प्र० अं०—त्वचा, अन्त्र

वि० गु० क०—बीज तीक्ष्ण, त्वचारोगहर

पत्र—रेचक

मात्रा—बीज ४ रत्ती, २ माशा तक, पत्र ३-६ माशा तक

नाम—(हि०) पंवार, दादमार (म०) टाकला (गु०) कुवाडियों (बं०) चाकुन्दा (क०) चगते (तै०) तंदेप्पुचेट्टु (ता०) उषिट् तगरिय (वा० ले०) केशिया[1] टोरा लिन्न, पूत्तिकरंज वर्ग।[2]

गुण—प्रपुन्नाटोहिमोरूक्षो हृद्यः स्वादु कटुर्लघुः। विष्टम्भी सृष्ट विण्मूत्रः कुर्यात्पित्तानिलोहरेत्॥
कफकुष्ठज्वर श्वास कास मेहारुचिकृमीन्॥ (कैं०)

पंचांग शीतल, रूक्ष, कटु, लघु, विष्टम्भी, मलमूत्रप्रवर्तक, कफहर तथा वातपित्तकारक है। शीतवीर्य रूक्षता कटुता और लघुता से वातपित्तवर्धक है। कफ, त्वचा रोग, ज्वर, श्वास-कास, प्रमेह तथा अरुचि और उदरकृमिनाशक है। पत्र शाक के भी यही गुण है। किन्तु उसमें सनाय के समान रेचक गुण विशेष होने से वह मल को निकालता है। बीज—कटु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य एवं विशेषकर दद्रु आदि त्वचा रोगों के नाशक, विष, कण्डु गुल्म कृमिहर।

प्रयोग—सामान्यतः पंबाड के पंचांग का और विशेषतः बीजों का प्रयोग दद्रु नाश के लिए किया जाता है। मृदुरेचक तथा मूत्रल होने से यह दोषी मलों को बाहर निकालता है तथा रक्त और त्वचा का प्रसादन करता है। जिससे आन्तरिक दोष मिट जाते हैं और लेप से बाह्य उष्ण, तीक्ष्ण, कटु, रूक्ष होने से कफनाशक अतएव कृमिनाशक, क्योंकि अधिकता से कफ ही कृमि पनपाते हैं। किसी भी अम्लद्रव छाछ, निम्बु का रस, काँची, सिरका में पीसकर लेप करने से, दाद, पामा, खुजली मिटते हैं। पत्तों का रस बारंबार लगाने से तथा उन्हें नमक के साथ पीसकर लेप करने से भी दाद मिटते हैं। किन्तु काफी समय के बाद तक लेप लगाते रहें। अन्यथा दाद पुनः उभर आता है। त्वचा रोगों में बाह्य लेप के साथ पत्र का चूर्ण स्वरस-क्वाथ पिलाने से और भी लाभ होता है। पत्र या पुष्पों के रस से फुप्फुसों की शोथ, उदराध्मान, आनाह दूर होते हैं। रूक्ष तीक्ष्णादि गुणों के कारण कफ की उत्पत्ति होती है। कफ की उत्पत्ति कम होती है। कफ पतला बनाकर बाहर निकालने में यह सहायक है। अतः दद्रुघ्न तथा वासा पत्र साथ मिलाकर चूसने से वातिक कास तथा कफज कास में लाभ करता है। दन्त निकलते समय बच्चों को ज्वर आ जाने पर पत्रों का काढ़ा

1. Cassia Tora, Linn.
2. Caeasalpiniaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(१ : १०) के अनुपात से बनाकर ४ तोला की मात्रा में दिन में चार बार देने से लाभ होता है। विषैले प्राणियों के दष्ट स्थान पर बीजों का लेप लगाया जाता है। मनुष्यों के समान पशुओं के त्वचा रोगों में निम्न योग त्वचा रोगों में अति उत्तम है। चक्रमर्द बीज बावची बीज, गंधक, सिन्दूर, टंकण, हरीतकी सब को समान भाग लेकर सरसों के तैल में पीसकर लेप करने से दाद, फोड़े-फुंसी नष्ट होते हैं। चक्रमर्द के प्रयोग के समय दूध, भात, छाछ भी सेवन करना चाहिए।

जातिः (सुमना-मालती-सौमनस्यायनी)

परिचय—चमेली की लता सुप्रसिद्ध है। श्वेतवर्ण के सुगन्धित सुन्दर पुष्प आते हैं। 'जाई' भी इसी जाति की लता है।

पुष्पकाल—फाल्गुन-भाद्रपद तक

नाम—(हि० म० गु०) चमेली, चम्बेली (बं०) चमेली (क०) जाजि (तै०) जुई पुष्पालु (ता०) रहई मुल्ले (अं०) स्पेनिश जेस्मिन[1] (वा० ले०) जस्मीनं ग्रन्डिफ्लोरम्[2], पारिजात वर्ग[3]।

गुण—मालती तुवरातिक्ता कटुष्णा दोष नाशिनी। शिरोऽक्षिमुखदन्तार्ति विषकुष्ठव्रणान् ॥ (कै०)

चमेली कड़वी, कसैली, कटु, उष्णवीर्य, दोषशामक शिर, नेत्र, मुख, दन्त विष, कुष्ठ, व्रणशामक है।

प्रयोग—मुखपाक, दन्तपीड़ा में चमेली के पत्तों को चबाते हैं। पत्तों का तैल कर्ण पूय, व्रणशोधक-रोपक है। पंचांग का काढ़ा पीने से तिल्ली (प्लीहावृद्धि) यकृत के स्रोतों का शोधन, मासिक धर्म की रुकावट दूर होती है। पत्र क्वाथ कृमिनाशक, मूत्रवर्धक है। त्वचा के रोगों तथा मस्तकपीड़ा नेत्रों की निर्बलता के नाश के लिए पुष्पों को पीसकर लेप किया जाता है। जात्यादि तैल में राई पीसकर इन्द्रिका पेडू, जाँघों पर लेप करने से नपुंसकता मिटती है। उपदंश के व्रणों में पत्तों के काढ़े से व्रण प्रक्षालन किया जाता है। चमेली के ताजे पत्तों का रस २ तोला, गाय का घी २ तोला, राल २ तोला, सबको मिलाकर पिलाने से सब प्रकार का उपदंश नष्ट होता है। पथ्य घी-दूध गेहूँ। बवाई या अंगुलियों के चीर में ताजे पत्तों के रस लगाने से लाभ होता है। इसके पुष्प फल घृत में डाले जाते हैं।

वक्तव्य—जाई के पत्ते तथा पुष्प चमेली की अपेक्षा बहुत कम सुगन्धित होते हैं। चमेली का प्रयोग उत्तम है।

योग—जात्यादि तैल, जात्यादि घृत, व्रणशोधक-रोपक।

जया-जयन्ती (जयन्ती-बला-मोटा सूक्ष्मपत्रा)

परिचय—इमली के पत्तों के समान (बड़े पत्ते) पत्तों वाली कमजोर काण्ड की वनस्पति है। पुष्प बसन्त में लगते हैं। लम्बी फलियाँ।

व्य० अं०—बीज, पत्र

नाम—(हि० बं०) जयन्ती, जेल (पं०) जेन्नर (म०) शेवारी (गु०) रामशिंगणी (क०) नरवलु (तें०) सोमान्ति (ता०) चम्पै (वा० ले०) सेस्वनिया इजिप्शियाना[4] अपराजिता[5] वर्ग।

गुण—बलामोटा कटुस्तिक्ता लघुः पित्तकफापहा। मूत्रकृच्छ्रं विषं हन्ति विवादे कुरुतेविषम् ॥ (भाव०)

---

1. Spanish Jasmine.
2. Jasminum Grandiflorum, Linn.
3. Oleaceae.
4. Sesbania egyptiana.
5. Papilionaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जया कटु, तिक्त, उष्ण, कटु विपाकी, लघु, पित्तकफनाशक, मूत्रकृच्छ्र तथा विषनाशक है ।

प्रयोग—मूत्रज, अण्डवृद्धि, ग्रन्थिशोथ, गठिया की सूजन में पत्तों की पुल्टिस (उपनाह) लाभ करता है। प्याज, लशुन हल्दी के साथ पुल्टिस सब प्रकार की शोथों की शामक है। बीजों का चूर्ण प्लीहावृद्धि, मधुमेहनाशक है। पत्रों का काढ़ा या शाक प्रतिश्याय, कासादि नाशक है। बीजों को चक्रमर्द के बीजों के साथ पीसकर लेप करने से त्वचा रोग शान्त होते हैं।

तरवट (पीतपुष्पम्-आहुल्यम्)

परिचय—गुल्म ३-१० फुट ऊँचा

उ० स्थ०—गुजरात, महाराष्ट्र, मारवाड़

पुष्पकाल—आश्विन-फाल्गुन पीतवर्ण की मंजरियां

व्य० अं०—पंचांग

रस—तिक्त, कषाय

वीर्य—शीत

विपाक—कटु

दोष—कफपित्तहर, वातशामक

प्र० अं०—त्वचा, मूत्रसंस्थान धातु-वसा (मेद)

वि० गु० क०—चक्षुष्य, मधुमेहहर, कृमिघ्न

मात्रा—३ रत्ती

नाम—(हि०) तरवर (मा०) आलूण (गु०) आवल (म०) तरवड़ (क०) तलाडवल्ली (अं०) टेनर्स केशिया[1] मेट्यूर टीट्री[2] (वा० ले०) केसिया आरिकुलाटा लिन्न[3], पूतिकरंज वर्ग।

गुण—आहुल्यं तिक्तं शीतं स्याच्चक्षुष्यं पित्त दोषनुत्। मुखरुक्कुष्ठकंडूति जन्तुशूलव्रणापहम्॥ (नि० र०)

तरवड़ कड़वा, कसैला, पित्त-दोषहर, चक्षुष्य, मुख रोग, त्वचा, कंडु, कृमि, उदरशूल तथा व्रणनाशक है।

प्रयोग—बीजों का पलकों पर लेप करने से नेत्र पीड़ा तथा पीप बन्द होती है। पुष्पों की चाय या फाण्ट बना कर या पंचांग का चूर्ण ४ माशा की मात्रा में मधुमेह में लाभ करते हैं। इससे प्यास कम होती है तथा मूत्र की मात्रा कम होती है। छाल ग्राही तथा संकोचक है। अतः मुखपाक में कुल्ले किये जाते हैं तथा रक्तातिसार अत्यार्तव में क्वाथ या चूर्ण का प्रयोग होता है। बीजों का चूर्ण ३ माशे मधु में मिलाकर सेवन करने से शरीर कृश होता हैं। तरवड़ बीज, अमलताश बीज, चक्रमर्द बीज, वचा, चणकक्षार, कुमारी का गूदा सब समान लेकर पीसकर छाया में सुखाकर सरसों के तैल में मिलाकर लेप लगाया जाता है।

वक्तव्य—तरवड़ जाति के तीन उद्भिद पाये जाते हैं। (१) तरवड़ (२) सनाय (३) भूमि तरवड़। इस जाति के पत्र रेचक होते हैं। प्रथम तरवड़ का वर्णन ऊपर किया गया है। इसके बीज मधुमेह में लाभप्रद है। इसे कई वैद्य लेखकों ने 'आवर्त्तकी' नाम दिया है। वस्तुतः यह नाम 'मरोड़फली' के लिए लोक विख्यात है। अतः उक्त नाम तरवड़ को देने से भ्रम ही फैलने की आशंका है। द्वितीय वनस्पति सनाय के नाम भी इसे दिये गये हैं। जो कि गलत हैं, क्योंकि इसका रेचन में प्रयोग नहीं होता। यह द्वितीय वनस्पति संस्कृत में—विभाण्डी, पीतकालिका, आवर्त्तकी

1. Tanner's Cassia.
2. Mature Tea, Tree.
3. Cassia Auriculata Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आदि शब्दों से तथा 'भूमि तरवड़' 'मार्कण्डी' नाम से वर्णित है। दोनों ही रेचक हैं। अतः ये तीनों भिन्न-भिन्न उद्भिद् हैं। कई लेखकों ने 'तरवड़' को सनाय (चर्मरंगादि) के नाम दिये हैं। प्राचीन ग्रन्थों में सनाय को कल्याणी, हेमपत्री, रेचनी आदि नाम से अभिहित किया गया है। कैय्यदेव आदि में सनाय (महाजालिनी) तथा मार्कण्डी (भूई तरवड़) का वर्णन मिलता है। भूई तरवड़ को सुरती सोनामुखी या अंग्रेजी में कन्ट्रीसेन्ना[1] कहा गया है। और इसको सनाय में मिलाकर बेचा जाता है। दोनों ही के गुण समान हैं। उनमें तरवट (तरवड़) का वर्णन नहीं मिलता। अतः उसके लिए नया नाम दिया गया है। भ्रमवश कुछ आधुनिक लेखकों ने तरवड़ को सनाय के पर्याय और सनाय को मार्कण्डी के पर्याय दिए हैं। वह गलत है। ये तीनों ही 'वर्णक्तपरम् तथा चर्मरंगा' हैं। अतः चमड़े को रंगने में काम में लाई जाती है। मराठी के एक लेखक भुई तरवड़ को भूम्यावर्त्तकी (भूम्यामलकी के अनुकरण पर) का नया नाम भी दे डाला है। बेचारे को मार्कण्डी का ज्ञान न था।

तुवरकम् (वैवस्वतद्रमः)

परिचय—तुवरक विशाल वृक्ष है

उ० स्थ०—पूर्वी-दक्षिणी भारत, बर्मा आदि देश

व्य० अं०—तैल, बीज

रस—कटु, कषाय

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—कफवातहर

प्र० अं०—त्वचा, रक्त

वि० गु० क०—कुष्ठ तथा मधुमेहशामक

मात्रा—बीजचूर्ण १-३ माशा बढ़ाते हुए तैल ५ बूंद से बढ़ाते हुए ६० बूंद तक

नाम—(हि० बं०) चालमोग्राः चावल मुंगरी (म० बम्बई) कडुकवीठ, कौटी (क०) इपटी (तै०) नल्ल-माडा (ता०) उप्पकुट्टि (वा० ले०) हिड्नोकार्पस[2] ह्वाइटिआना, तुवरक या प्राचीनामलक वर्ग[3]।

वक्तव्य—तुवरक जाति के कई वृक्ष हैं जिनसे एक विशेष प्रकार का तैल प्राप्त होता है। इन सब वृक्षों के तैलों का संगठन प्रायः एक समान, गुण भी समान हैं! सब में एक अम्ल-विशेष युक्त स्थिर तैल पाये गये हैं। उनमें से एक तैल का नाम चालमूगरा तैल या गिनोकार्डिक[4] तैल या हिडनोकार्डिया तैल पाया जाता है। इन तैलों के स्रोत निम्न वृक्ष हैं। (टेरेक्टोगेनोस्[5] करजुई, हिडनोकार्पस[6] कर्जुई, हिडनोकार्पस, गिनोकार्डिया ओडोराटा[7] है।

उक्त तैल कुष्ठ में अति लाभदायक है। सुश्रुत ने इन्हें गलितकुष्ठशामक लिखा है। (सु० चि० १४)

इसका प्रयोग मध्यकाल में छोड़ दिया गया था। पुनः प्रचलित करना उचित है।

गुण—तौवरं कटुकं पाके काषायोष्णं कफापहम्। कृमिकुष्ठ ज्वरानाह मेहार्शो व्रणशोफजित्॥ (कै०)

---

1. Country Senna.
2. Hydnocarpus wightiana, Blume.
3. Bixineae or Flacourtiaceae.
4. Gynocordia oil.
5. Taractogenos Kurzuii, king.
6. Hydnocarpus, Kurzuii.
7. Gynocardia odorata.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तुवरक के बीज या तैल चरपरा, कसैला, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, कफशामक, कृमि, कुष्ठ, ज्वर, आनाह, प्रमेह, अर्श, व्रण तथा शोथशामक है। बीजों का प्रयोग मरहम बनाने में होता है। तुवरक बीज, कज्जली मनः शिला चक्रमर्दादि मिलाकर लेप लगाने से त्वचा रोग, दाद, खाज आदि नष्ट होते हैं। बीज का गिरी की मात्रा में प्रारम्भ कर क्रमशः बढ़ाते हुए उस मात्रा तक ले जाएँ जिससे जी मचलाने लगे। यह क्षय रोग, गण्डमाला तथा रक्त रोगनाशक है। मुख्यतः तैल का ही प्रयोग किया जाता है। यह बाह्य तथा अन्तः प्रयोग में व्यवहृत होता है। तीक्ष्ण होने के कारण यह लगता है। अतः नीम के तैल में मिलाकर कुष्ठ, गण्डमाला, उपदंश, जीर्णआमवातादि में अभ्यंग किया जाता है।

सुश्रुत के अनुसार मधुमेह तथा कुष्ठ के रोगी को स्नेह, स्वेदन तथा संशोधन कराकर उचित मात्रा (१ तोला आजकल के अनुसार ३-६ माशा) में दूध में मिलाकर रोगी को पिलावें। इससे वमन विरेचन होकर शरीर का शोधन होगा। सायंकाल को रोगी को स्नेह तथा नमक रहित यवागू (खिचड़ी) खिलावें। पाँच दिन तक इस प्रकार तैल का सेवन कर १५ दिन इस प्रयोग को छोड़ दें। इस समय मूँग का यूष तथा भात ही खाने को दें। तैल मुख द्वारा खाने से वमनातिसार आदि होते हैं। अतः ५ बिन्दु तक ले आवें। यदि बीज में वमन, जी मचलाना आदि उपद्रव होने लगें तो प्रयोग बन्द कर दें या कम कर दें। लगभग ६ मास के प्रयोग से कुष्ठ में लाभ होता है। व्रणों पर भी तिल तैल या नीम के तैल में मिलाकर लगाया जाता है। यह अत्यन्त क्षोभक है। अतः बाहर भी शोथ तथा आमाशयादि में भी क्षोभ शोथ उत्पन्न करता है। कुष्ठ के कृमियों को मारने में अत्युत्तम है। आधुनिक सूची वेधन द्वारा इसका प्रयोग करते हैं। इससे मुख द्वारा सेवन से होने वाले उपद्रव नहीं होते। वैद्यों को भी इस मार्ग को अपनाना चाहिए। एतदर्थ ईथाईलचालमूग्रेट[1] (मूगरोल[2]) नामक योग की १५ बूंद (१ ग्राम) तैल का मांसान्तः सूचीवेध दिया जाता है। प्रथम चौथाई ग्राम सप्ताह में दो बार पुनः क्रमशः बढ़ाते हुए ४-५ ग्राम तक ले जाते हैं। यह क्रम ६ मास तक जारी रहता है। सूची वेध की विधि यह है कि रुग्णस्थान की त्वचा के नीचे के मांस में थोड़ी औषधि प्रविष्ट करें। पुनः सुई निकालकर उसके पास ही दूसरी जगह कुछ और गहरी सुई लेजाकर औषधि प्रविष्ट करें। इस प्रकार विविध स्तरों पर यह औषधि प्रविष्ट की जाती है। त्वचा रक्तवाहिनियों तथा वातनाड़ियों को बचाना चाहिए। अन्यथा पाक हो जाता है। अधिक मात्रा में तैल प्रविष्ट करना हो तो स्फिग प्रदेश (चूतड़ का ऊपर का भाग) में सूचीवेध करें। तैल क्षोभक होने के कारण इसमें नारियल, नीम या जैतून का तैल तीन गुना मिलाना उत्तम है।

उपद्रव—अधिक मात्रा में या बहुत दिनों तक सेवन करने से निम्न लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। (१) भ्रम, मुखशोथ, वक्ष में पीड़ा, दृष्टि निर्बलता या अस्थायी दृष्टिनाश, जिस स्थान पर लगाया हो वहाँ शोथ, वेदना, पाक।

साधारणतः शिरःशूल, आलस्य, ज्वर, अंगमर्द, अनिद्रा, अजीर्ण, आमाशय में वेदना, उष्णता का अनुभव मूत्र में एलब्युमिन। इन अवस्थाओं में औषधि सेवन बन्द कर दें।

देवदारु (भद्रदारुः किलिम)

परिचय—कोण जातीय उच्च वृक्ष

उ० स्थ०—हिमालय

व्य० अं०—काष्ठ तैल

रस—कटु, तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

---

1. Ethylechaulmoograte.

2. Moongrol·

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्र० अं०—त्वचा

वि० गु० क०—मूत्रल, स्वेदल, वातशामक, त्वच्य । त्वचा रोग, प्रसव रोग, प्रमेहशामक

मात्रा—काष्ठ चूर्ण, ३-६ माशा, तैल १०-४० बूंद

नाम—(हि० गु०) देवदार (ब० म०) देवदारु (क०) तुप्पदेवदारु (तै०) देवदारी (ता०) देवदारी (पं०) दयोर (वा० ले०) पाइनस् देओदारा[1], सिड्रस देओदारा[2], कोण वर्ग[3]।

वक्तव्य—देवदारु के दो भेद हैं। (१) स्निग्ध देवदारु (२) काष्ठ देवदारु (द्विधासेयं तत्राद्यं स्निग्धदारु द्वितीयं काष्ठदारु स्यात्·· ····, स्निग्ध देवदारु में से तारपीन के समान एक तैल निलकता है। जो उसकी अपेक्षा कम गुणकारी है। देवदारु का एक भेद 'कैल' भी होता है। जो हीन गुण होने से त्याज्य है। देवदारु को चीड़ (सरल) समझना गलत है।

गुण—देवकाष्ठं लघु स्निग्धं तिक्तोष्णं कटुकं रसे। विपाके हन्ति कासामश्वास हिध्माकफानिलान् ॥
ज्वरमेह विबन्धाध्मानकण्डु शोफास्रपीनसान् ॥ (कै०)

सरस देवदारु स्नेहास्तिक्ताः कटु कषाया, दुष्टव्रण शोधनाः क्रमिकफ कुष्ठानिलहराश्च (सु०)

देवदारु, स्निग्ध, कड़वा, चरपरा (कटु), उष्णवीर्य, कटु विपाकी, लघु, मूत्रल, वातानुलोमक, क्रमिनाशक, स्वेदल, व्रणशोधन, वातकफशामक, कास-श्वास, हिचकी, ज्वर, प्रमेह, आध्मान, विबन्ध, शोफ, रक्तदोष, पीनस (पुराना जुकाम) नाशक है। तैल के भी यही गुण हैं। पातालयन्त्र द्वारा तैल निकाला जाता है। १ सेर लकड़ी, २½ छटांक तैल निकलता है। ४-८ घण्टे तक आँच दें।

प्रभाव तथा प्रयोग—कटु रस, उष्णवीर्य होने से यह शोथशामक, रक्त भ्रमण को सुधारने वाला तथा शीतता का नाशक है। तिक्त होने से रक्त शोधक तथा त्वचा रोग नाशक, स्वेदल और मूत्रल होने से ज्वर, तापादि का नाशक तथा क्रमिहर, रक्त शोधक होने से व्रण रोपक शोधक है। जीर्ण तथा दुर्गन्ध युक्त व्रणों में देवदारु तैल लगाने से लाभ होता है। जीर्ण आमवात, शोथ, वेदनादि में इसका अभ्यंग किया जाता है। श्वास तथा जीर्णकास में इसके तैल के वाष्प लिए जाते हैं। कफ तथा फुप्फुस के रोगों में तैल या काष्ठ का प्रयोग लाभकारी होता है, उसकी दुर्गन्धि नष्ट होती है। वात अनुलोम होता है। पारद के विष से दूषित रक्त में तैल पिलाने से रक्त शुद्ध होता है। गण्डमाला में देवदारु तथा इन्द्रायण को पीसकर गरम करके लेप लगाया जाता है। उदरशूल में २½ माशा चूर्ण, ५ माशा गुड़ में मिलाकर शुंठी के चूर्ण के साथ देने से वेदना कम होती है। श्लीपद में चित्रक को पीसकर लेप करने से तथा गोमूत्र के साथ सेवन कराने, जलोदर में देवदारु काष्ठ, शिग्रु, मूलत्वचा तथा अपामार्ग, तीनों ६-६ माशा गोमूत्र में घिस कर देने से लाभ होता है। प्रसूति ज्वर तथा प्रमेह भी नष्ट होते हैं। विबन्ध, आध्मान तथा अर्श में चूर्ण को बादाम तैल के साथ मिलाकर देना उत्तम है।

योग—(१) देवदार्वादि क्वाथ—मात्रा २-४ तोला, प्रसूतिज्वर, श्वास-कासशामक।
(२) देवदार्वाद्यरिष्ट—मात्रा १½-१½ तोला समान जल में मिलाकर भोजन के ½ घण्टा बाद। प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, कण्डु, आदि त्वचा रोग तथा वात व्याधिशामक।
(३) वातहर, उपनाह, शोथशामक।

नक्तमालः (वृक्षकरंज, चिरबिल्वकः पूतिकरज्जः)

परिचय—५०-६० फुट ऊँचा वृक्ष

1. Pinus deodara.
2. Cedrus deodara.
3. Coniferae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उ० स्थ०—प्रायः सर्वत्र विशेषतः समुद्र के समीप
व्य० अं०—फूल, पत्र, त्वचा, तैल
पुष्पकाल—मई-जून तथा ज्येष्ठ-वैशाख
मात्रा—बीजचूर्ण १ माशा
रस—तिक्त, कटु, कषाय
वीर्य—उष्ण
विपक—कटु
दोष—वातकफशामक पित्तलम्
प्र० अं०—त्वचा
वि० गु० क०—त्वच्य, कृमिघ्न, प्रमेहहर

नाम—(हि०) सुखचैन, किरमाल, करंज (बं०) दारकरंज (म०) करंज (गु०) करंज, कणझी (क०) होंगेमर (तै०) कानुगुच्चेट्टू (ता०) पुंगम् (अं०) इण्डियन बीच[1] (वा०ले०) पोन्गेमिया ग्लावरा[2] अपराजिता वर्ग[3]।

गुण—करंजः कटुकः पाके रसे तिक्तकषायकः। कटुको गुणस्तीक्ष्णो वीर्योष्ण नियच्छति ॥
बला सवातकुष्ठार्शो मेहोदरकृमीन्। तत्पत्रां कटुकं पाके रसे दीपनपाचनम ॥
कफ वातापहं शोफ विषार्शः कृमि कुष्ठनुत्। (कै०)
करञ्ज तैलानि तीक्ष्णानि लघून्युष्णवीर्याणि कटूनि।
कटुविपाकानि सराण्यनिलकफकृमि कुष्ठमेहशिरोरोगापहराणि च ॥ (सु० सू० ४५)

करंज रस में कटु, तिक्त, कषाय, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, तीक्ष्ण, सर, कृमिघ्न, वातकफ शामक, त्वचा रोग अर्श, कृमि, शोथ, प्रमेह, उदर रोग तथा शिरोरोगनाशक है। आमवात, व्रण तथा कास-श्वास शामक है।

प्रयोग—त्वचा रोगों दाद, खाज, पामा, फोड़े-फुंसी, व्रण आदि में करञ्ज पत्रक या छाल की पुल्टिस या खट्टे रस में करञ्ज फाक तथा छाल की पुल्टिस या खट्टे रस में पीसकर लेप लगाया जाता है। बीजों में २७ प्रतिशत तैल पाया जाता है। यह दुर्गन्धित तथा घी के समान गाढ़ा, कुछ पीला सा होता है। आमवात, सन्धि शोथ तथा वातिक वेदनाओं में इसका अभ्यंग किया जाता है। दुष्ट व्रणों में दुर्गन्धि तथा पूय और कृमियों का नाश करने के लिए भी पत्तों, छाल तथा तैल का प्रयोग होता है। व्रण शोथ में करंज तथा निर्गुण्डीपत्र का कल्क बाँधा जाता है। भगन्दर में मूलत्वक् के रस की पिचकारी, उपदंश के व्रणों पर करंज तैल में नींबू का रस मिलाकर लेप, कुष्ठ में चित्रक पत्र, काली मिर्च, सैन्धव पीसकर दही के साथ सेवन, प्रमेह में पुष्प चूर्ण या रस, वातिक कास या कुत्ताखाँसी (Whooping Cough) में बीजचूर्ण मधु के साथ अस्थि व्रणों में मूल छाल का दूध या रस, तिल तैल, नीला थोथा मिलाकर लगाना, अपस्मार में पत्तों का प्रयोग बहुत उपकार करता है। अश्मरी में बीज मज्जा का चूर्ण १ माशा, ३ माशा मधु के साथ चटाएं। नित्य १-१ माशा बढ़ाते जाएँ। ११ माशे तक बढ़ाकर पुनः एक-एक माशा कम करते जाएँ। इस प्रकार २२ दिन के सेवन से अश्मरी नष्ट होती है। वमन में सैन्धव सहित पत्र स्वरस या मृष्ट बीजचूर्ण अतिलाभ करता है। करंज बीजों के चूर्ण को पलाश पुष्प की भावना देकर सुरमे के समान नेत्र में लगाने से फूला (शुक्र) रोग नष्ट होता है। आधा शीशी में पुष्प गुड़ को पीसकर गरम पानी के साथ नस्य लेने से लाभ होता है।

---

1. Indian Beech.
2. Pongamia-glabra, Vent.
3. Papilionaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पारिश पिप्पल (कपीतनः, सुपार्श्वः)

नाम——(हि०) पारसी पिप्पली (म०) भेंडी (गु०) पारसपीपलो (बं०) परेसपीपल (वा० ले०) थेस्पेसिया पोपुलनिया[1], कार्पासादि वर्ग[2]।

गुण——फलीशो दुर्जरः स्निग्धः क्रमि शुक्र कफप्रदः। फलेऽम्लो मधुरो मूले कषायस्वादुमज्जकः ॥

वक्तव्य——यह वृक्ष मध्य प्रमाण का होता है। सदा हरित रहने वाला, पत्र गिलोय के समान, फूल विविध वर्ण के पीले, भूरे (कार्पासवत्) फूल मई में आते हैं। फल भिण्डी के समान उत्तर भारत में नहीं मिलता। दक्षिण में बहुत पाया जाता है। इसकी छाल या पत्तों का लेप त्वचा रोगों में, वीसर्प आदि में पुष्प कल्क का लेप तथा त्वचा क्वाथ से स्नान कराना लाभदायक है। पंचांग का क्वाथ ५-१० तोला प्रतिदिन से रक्त शुद्ध होता है। संक्षेप में यह त्वच्य है।

मल्लिका (मुक्तबन्धना)

नाम——(हि०) मोतिया, मोगरा; बेला (म०) मोगरा (गु०) डोलर, गोगरो (क०) मल्लिके (तैं०) बुण्डु (ता०) मल्लिगेप्पू (अं०) अरेबियन जेस्मिन्[3], पारिजातक वर्ग[4] (वा० ले०) जेस्मिन् सेम्बेक[5]।

वक्तव्य——मोतिया का गुल्म (झाड़ी) होती है, सर्वत्र उद्यानों में लगाई जाती है। चैत्र-बैशाख में सुन्दर श्वेत पुष्प आते हैं। पत्र-पुष्प मूलौषध में डालते हैं। जाती (चमेली) के समान गुण है।

गुण——मल्लिका कटु तिक्ता स्याच्चक्षुष्या मुखपाकनुत्। कुष्ठ विस्फोट कण्डूति विषव्रणहिमासरा ॥

(फ० नि०)

प्रयोग——पुष्पों को पीसकर दिन में दो बार स्तनों पर बाँधने से उनमें दूध आने लगता है। कभी-कभी तीन दिन तक बाँधने पड़ते हैं। दुष्ट व्रणों में सूखे पत्तों को पानी में उबाल कर उपनाह (पुल्टिस) बनाकर बाँधने से लाभ होता है। पत्तों या पुष्पों के काढ़े के कुल्लों से मुखपाक मिटता है। रजःकृच्छ्रता में जंगली मल्लिका की जड़ का क्वाथ लाभ करता है।

माधवी (अतिमुक्ता-पुष्पेन्द्रः)

नाम——(हि० पं० मा०) माधवीलता, हाथी मोतिया (म०) मधु मालती, हलद्बेल (वा० ले०) हिप्टेज्, मेडेब्लोटा[6], माधवी वर्ग[7]।

यह लता समजल उष्ण प्रदेशों में प्राप्त होती है। पुष्प चैत्र में श्वेत पीत वर्ण के आते हैं। पंचांग उपयोगी है। त्वचा रोगनाशक है।

गुण——अतिमुक्तो लघुः शीतः दोषत्रयनिबर्हणः ॥ (कै०)

त्वचा——तिक्त सुगन्धित होती है। त्वचा रोगों में पत्तों को पीसकर लेप करने से लाभ होता है। पत्र स्वरस से उदरक्रमि मरते हैं। पंचांग के तैल का मर्दन आमवात शामक है। पंचांग तेल का मर्दन करने से आमवात शान्त होती है। यह आमवात शामक है। पत्तों का काढ़ा श्वासशामक है।

---

1. Thespasia Populnea corr.
2. Malvaceae.
3. Arabian jasmine.
4. Jasmin sambac Oil.
5. Oleaceae.
6. Hiptage Madablota, gaertn.
7. Malpighiaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मदयन्तिका (रक्तरंगा, नारवरंजनी)

नाम—(हि० मा० पं० बं०) मेहंदि-मेइदी (म० गु०) मेंदी (अं०) हेन्ना[1], सेम्फायर[2] (वा० ले०) लासोनिआ इर्नर्मिस्[3], मदयन्तिका[4] वर्ग।

मेंहदी सुपरिचित क्षुप है। पत्तों तथा बीजों का उपयोग किया जाता है। पत्र शीतल हैं। बीज उष्ण। आयुर्वेद में इसका प्रयोग बहुत कम किया जाता है। सुश्रुत ने कुष्ठ चिकित्सा में महानील घृत में तथा वाग्भट् ने रक्तपित्त चिकित्सा में इसका व्यवहार किया है। डल्हण ने इसका लोक भाषा नाम ('मदयन्तिका'–मेंहदी) मेंहदी दिया है। प्राचीन समय में भी इसका उपयोग अंगरोग के लिए (नखादि रँगने के लिए) किया जाता था।

गुण तथा प्रयोग—यह व्रण शोधक, मूत्रल, विशेषकर रक्त शोधक तथा त्वचा प्रसादन है। शोथ में लेप करने से लाभ होता है। शिरःशूल में सिर पर हाथ-पैरों के दाह में हथेली तथा तलवों पर, मुखरोगों में इसके कुल्ले कराये जाते हैं।

कुष्ठ आतशक तथा खाज में रक्तशोधक तथा मूत्रल होने से लाभ करती है।

व्रणों पर पत्रों का लेप करने से वे शीघ्र मर जाते हैं। कामला तथा प्लीहा वृद्धि में इसकी छाल का चूर्ण कुष्ठ तथा त्वचा रोगियों को छाल या पत्रों का लेप प्रतिदिन रात को लगाना चाहिए। कुष्ठ में १½ तोले पत्तों को रातभर पानी में भिगोकर प्रातः हिम बना शर्करा मिला ४० दिन तक पीना चाहिए। पत्रों से सिद्ध किया तैल सन्धि वेदनाओं को दूर करता है।

योग—मदयन्त्यादि चूर्ण, रसादर्श।

बाकुची, (चन्द्ररेखा, कृष्णफला)

परिचय—बाकुची का छोटा-सा क्षुप (गोवरी-ग्वार) के सदृश होता है। काले रंग की बीजों का औषधियों में व्यवहार किया जाता है।

रस—कषाय, कड़वा
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
दोष—कफवातशामक
प्र० अं०—त्वचा
वि० गु० क०—मृदुरेचक, उष्ण, श्वित्रहर
मात्रा—१-३ माशा

नाम—(पं० मा० गु०) बावची (बं०) हाकुच (क०) बायन्ति (तै०) बावंचि (ता०) कार्पोकरति (वा० ले०) सोरेलिया कारिलीफोलिया[5], अपराजिता वर्ग[6]।

गुण—बाकुची कटुतिक्तोष्ण क्रमिकुष्ठकफापहा। त्वग्दोषविषकण्डूति श्वित्र प्रशमनी परा॥ (रा० नि०)

बावची कड़वी, चरपरी उष्णवीर्य, कफ, क्रमि, कुष्ठ, त्वचा रोग, विष, कण्डु, श्वित्रशामक है।

---

1. Henna.
2. Samphire.
3. Lawsonia Inermis, Linn.
4. Lythraceae.
5. Psoralea Corylifolia, Linn.
6. Papilionaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रभाव तथा प्रयोग--बावची के बीजों में एक स्थिर एवं एक उड़नशील तैल पाया जाता है। यह श्वित्र (सफेद कोढ़) में अतिलाभ करता है। इसका लेप करने से श्वित्र में लाभ होता है। इससे छोटे-छोटे छाले पड़ जाते हैं। उन पर घी लगाना चाहिए। कालान्तर में सब छाले मिट जाते हैं। तथा वह स्थान काला होने लगता है और सारा श्वित्र काला हो जाता है। कालान्तर में शरीर का स्वाभाविक रंग आ जाता है।

रक्त विकारों व्यंग, दद्रु आदि में तथा त्वचा रोगों के साथ कब्जी, अर्श और अग्निमान्द्य होने पर बावची का प्रयोग किया जाता है। बावची बीजों का शोधन—गोमूत्र या गाय के दूध में कम-से-कम एक सप्ताह तक भिगो कर रखें। प्रतिदिन दूध या गोमूत्र बदलते रहें। इसके साथ मक्खन, घी, दूध का प्रयोग करना चाहिए। उदरकृमियों में बावची बीजों के साथ नीम का रस तथा मधु पिलाया जाता है। एक भाग बावची और मधु पिलाया जाता है। एक भाग बावची और १½ भाग नमक लेने से पर्याप्त दिनों तक श्वेत कुष्ठ में लाभ होता है। इसके सेवन के समय चने की रोटी और घी खाना चाहिए। २१ दिनों तक इसका सेवन करना चाहिए।

बावची तैल (बाजार में मिलता है) में मिलाकर श्वेत कुष्ठ के दाग को रगड़ कर लेप लगाने से अत्यन्त लाभ होता है।

शाखोटः (भूतावासः क्षीर नाशनः)

परिचय—यह मध्यम प्रमाण का वृक्ष उष्ण प्रदेशों में पाया जाता है। पुष्पकाल पौष-फाल्गुन तक। अन्तर्छाल से दूध निकलता है। पंचांग उपयोगी है। शाखोट रक्तपित्तार्शो वातश्लेष्मातिसारजित्। (भाव०)

नाम—(हि०) सिहोड़ा (बं०) श्योरा, श्योहोरा, (ब०) कवटी, सहोरा (म०) सहोर (वा० ले०) स्ट्रेब्लस् एस्पर[1]: उदुम्बर वर्ग[2]।

प्रयोग—गण्डमाला में शोखोटक की छाल में सिद्ध तैल लाभ करता है। वात शोथ में कांजी में सिहोड़े की छाल का लेप, श्लीपद में इसकी छाल का काढ़ा आमातिसार में छाल के काढ़े में एरण्ड तैल मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है। दुष्ट व्रणों पर इसकी छाल का लेप करने से बहुत लाभ होता है।

शिरीषः (मृदु पुष्पः, शुकतरुः)

नाम—(हि०) सिरस (म०) शिरस (गु०) सरसडों (बं०) शिरीष (वा० ले०) आल्बिजिया लेब्बेक्[3], बब्बूल वर्ग।

गुण—शिरीषो मधुरोऽनुष्णः सतिक्तस्तुवरोलघुः। निहन्ति दोषवीसर्प शोफ कास विष व्रणान्॥ (कै०)

शिरीष कषाय, तिक्त, अनुष्ण (उष्णवीर्य—ध० नि०) कटु विपाकी, त्रिदोषहर, वेदना स्थापन, शिरोविरेचन, विषहर, कुष्ठ, कण्डु, श्वास तथा खाँसी को दूर करता है।

प्रभाव तथा प्रयोग—शिरीष अति उत्तम शोथशामक, ग्राही तथा विषघ्न है। छाल के काढ़े से कुल्ला करने से दन्त तथा मसूड़ों के रोगों को शान्त करता है। व्रणशोधक के लिए छाल का चूर्ण छिड़काया जाता है। इसे जल में पीसकर मुँहासे, फोड़े-फुंसियों पर लेप करने से लाभ होता है। सिरस के बीजों की नस्य प्रतिश्याय तथा सर्दी में लाभ करता है। सूक्ष्म चूर्ण वीर्यवर्धक तथा स्तम्भक भी हैं। गण्डमाला में बीजों का लेप तथा उन्हें खाने को भी देते हैं। बीजों से एक तैल निकलता है। यह श्वेत कुष्ठ तथा अर्शनाशक है। मूत्रकृच्छ्र में भी इस तैल को दूध की लस्सी में

1. Streblus Asper.
2. Urticaceae.
3. Albizzia Lebbek, Benth.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मिलाकर पिलाते हैं। विषों में पंचांग का चूर्ण गोमूत्र के साथ दिन में तीन बार पीना चाहिए। वीसपं में इसकी छाल के काढ़े में १०० बार धोएँ, घी के लेप से लाभ होता है। अण्डकोषों की खुजली में छाल का लेप लगाया जाता है। यह विषनाशकों में उत्तम माना जाता है।

योग—दशांग लेप, शोथशामक

वक्तव्य—पीत, श्वेत, काला तथा पर्वतीय शिरीष ये शिरीष के भेद हैं। गुणों में सब समान हैं। विशेष कर ये "शिरीषोविषघ्नानां" (चरक सू०) श्रेष्ठ विषघ्न हैं।

शिंशिपा (कृष्णसार, गुरु सारिका)

नाम—(हि०) शीशम (म०) शिसव (गु०) सीसम (बं०) शिशुगाछ (क०) बीटेमर (तै०) जिहरेगु, चेट्ट (अं०) ब्लेक वुड[1], रोजवुड[2], (वा० ले०) डेल्बर्जियासिसाव[3]। अपराजिता वर्ग।

गुण—शिंशिपा··· सार स्नेहास्तिक्त कटु कषाया। दुष्टव्रण शोधनाः क्रमिकफकुष्ठानिलहराश्च ॥

(सु० सू० ४५)

शिंशिपा कटुकातिक्ता कषाया दोषहारिणी। उष्णवीर्यं हरन्मेदः कुष्ठश्वित्र वमिक्रमीन् ॥
बस्तिरुग्व्रणदाहास्रबलासान् गर्भशातिनी ॥ (भाव०)

शीशम कटु, तिक्त, कसैली, दोषशामक, उष्णवीर्य, मेद स्थौल्य, कुष्ठ, श्वित्र, वमन, उदरक्रमि, बस्तिरोग, व्रण, दाह, रक्त तथा कफशामक है। यह गर्भपातक है। सीसम का तैल दुष्टव्रण शोधक है, वातकफ नाशक, उदरक्रमि, कुष्ठ नाशक है।

शीशम त्वचारोगों में, वातरोगों, रक्तविकारों तथा उदरक्रमि नाशक है। रक्त की शुद्धि तथा फिरंग, कुष्ठ-श्वित्र, फोड़े-फुंसी तथा अन्य त्वचारोगों में काढ़ा या शर्बत बनाकर देते हैं। मूत्रकृच्छ्र में पत्तों का काढ़ा, स्तन्य शोधन में पत्तों को गरम करके बाँधा जाता है।

पातालयन्त्र द्वारा काष्ठ से जो तैल निकाला जाता है। उसे त्वचा रोगों दाद, आदि में लगाने से लाभ होता है। तीक्ष्ण होता है, अतः इसमें तिल तैल या नारियल तैल मिला लेना चाहिए। कपिल तथा श्वेत भेद से दो प्रकार का है।

योग—शिंशिपावलेह (बंगसेन) गृध्रसीनाशक है।

सरल (धूपवृक्ष)

परिचय—चीड़ के वृक्ष ३-४ हजार फुट की ऊँचाई पर पहाड़ों पर मिलते हैं।

व्य० अं०—काष्ठ, तैल, तैल–५-१५ बूंद

पुष्पकाल—माघ से चैत्र तक

रस—मधुर, तिक्त, कटु

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

---

1. Black Wood.
2. Rose Wood.
3. Dalbergia Sissao, Roxb.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोष—वातकफनाशक

प्र० अं०—त्वचा

वि० गु० क०—उष्ण, स्वेदल कृमिघ्न

गुण—सरलः कटु तिक्तोष्णः कफवातविनाशनः । त्वग्दोष शोथ कण्डूतिव्रणघ्नः कोष्ठशुद्धिदः । (रा० नि०)

सरलः सार स्नेहस्तिक्त कटुकषाया दुष्टव्रण शोधनाः कृमिकफ कुष्ठानिलहराश्च ।। (सु० सू० ४५)

नाम—(हि०) चीड़ (गु०) तेलियो, देवदार (म०) सरल (अं०) चिर पाईन[1] (वा० ले०) पाईनस लोंगिफोलिया[2] कोण वर्ग[3] ।

(२) **श्रीवास**—(सरलस्रावः) (हि०) गन्धा बिरौना, नेपाल (धूप) (अं०) दी ओलियो रेजिन्[4] ऑफ पाइन

(४) **सरल तैल**—(हि०) तारपीन का तैल (अं०) टर्पेन्टाइन आईल[5] ।

चीड़—कटु, तिक्त, मधुर, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, 'कटु पाक रसोलघु' (कै०) वातकफशामक, त्वचा रोग, शोथ, कण्डु, व्रणनाशक है । सरलसार (तारपीन तैल) तिक्त कटु, कषाय, दुष्ट व्रणशोधक, कृमि, कुष्ठनाशक है । चीड़ की अनेक जातियाँ हैं । उनमें से एक राल जैसा पदार्थ निकलता है । जिसे गन्धा बिरौजा कहते हैं । इसमें से शुद्ध करके उड़नशील तैल निकाला जाता है । इसे तारपीन कहते हैं । काष्ठ-तैल-निर्यास तीनों औषधियों के काम आते हैं ।

प्रभाव तथा प्रयोग—काष्ठ-दोष-शोथों का विलय करने वाला, वातज, कफज, हिक्काशामक, मूत्रल तथा अश्मरीहर, वातरोग, अर्दित, पक्षाघातादि तथा अपस्मारादि मानसिक रोगनाशक, आध्मानहर है । काष्ठ के काढ़े में बैठने से गुदव्रण तथा गुदभ्रंश ठीक होता है । प्रतिश्याय ज्वरों में पसीना लाकर उन्हें उतारता है । तैल तथा स्राव का अधिक प्रयोग होता है । तैल का प्रयोग तथा प्रभाव निम्नलिखित है ।

बाह्य प्रयोग में यह कटु होने के कारण कुछ क्षोभक है । तथा कृमिनाशक है । शोथ और शोणिता क्लदन के साथ लवण-उष्णता लाती है । पुनः जड़ता का अनुभव होता है, अतएव यह शोथ तथा वेदनाओं में लेप अभ्यंग कराया जाता है । इसे नारायण तैल, विषगर्भ तैलादि में मिलाकर लगाना उत्तम है । इससे इसका क्षोभक प्रभाव कम हो जाता है । मोच, कटिशूल, आमवात, सन्धिशोथ में इससे लाभ होता है । तथा प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा रक्त संचार को बढ़ा कर शोथ स्थान का पोषण उत्तम करता है । न्यूमोनिया, पार्श्वशूल (प्लुरिसी) श्वासादि में उत्तम लाभ होता है । इसे गरम जल में डालकर जल में तौलिया आदि भिगोकर निचोड़कर उदरशूल, आध्मानादि में स्वेद करने से लाभ होता है । १½ सेर जल में तारपीन तैल की ५ बूंदें डालकर श्वास द्वारा लेने से जीर्ण कास-श्वास का वेग शान्त होता है । श्वास प्रणालियाँ विस्तृत होती हैं और कफ पतला होकर निकलता है तथा उसकी दुर्गन्धि भी नष्ट होती है । अतः जीर्णकास, क्षतः राजयक्ष्मा की खाँसी में श्वास द्वारा ग्रहण किया जाता है ।

अन्तः प्रयोग में यह एला लवंग आदि तैल के समान अनुलोमक प्रभाव उत्पन्न करता है । अतः उदरशूल आध्मान, आक्षेप नाशक है । किन्तु अधिक मात्रा में सेवन करने से क्षोभक तथा विरेचक है ।

फीता जैसे उदरकृमि (टेपवर्म) के लिए भी २ माशा की मात्रा में दिया जाता है । तीव्र अतिसार द्वारा यह कृमि को बाहर निकाल देता है । चुरुवों (थ्रेड वर्म) में बस्ति द्वारा इसका प्रयोग लाभ करता है । (१¼ सेर जल, साबुन १½ तोला, तारपीन का तैल १-४ माशा बस्ति दी जाती है ।)

---

1. Chir Pine.
2. Pinus Longi folia, Roxb.
3. Conifereae.
4. Oleo-Resin of Pine.
5. Turpentine oil.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आशोषण—त्वचा द्वारा धीरे-धीरे तथा आन्तों से अति शीघ्र आशोषित होता है। बड़ी मात्रा में क्षोभ, विरेचन, मस्तिष्क तथा वातनाड़ियों में उत्तेजना तथा आलस्य, असंगत गतियाँ, प्रतिसंक्रमित क्रियाओं की शिथिलता और अन्त में मूर्च्छा, कर्पूर के समान विष लक्षण तथा चिकित्सा है।

बहिर्गमन या निष्क्रमण—अन्य उड़ने वाले तैलों के समान यह भी पूवास द्वारा फुप्फुसों से, वृक्कों द्वारा मूत्र से तथा स्वल्प मात्रा त्वचा द्वारा निकलता है। फुप्फुसों से निकलते समय वहाँ संक्रमण नाश तथा वहाँ की ग्रन्थियों को उत्तेजित करके कफ का स्राव भी कराता है।

वृक्कों की कला को उत्तेजित करके मूत्र की मात्रा को बढ़ाता है तथा वहाँ के संक्रमण का भी नाश करता है। किन्तु अधिक मात्रा में वृक्क शोथ तथा मूत्र रक्तता उत्पन्न करता है। श्रीवास या गन्धात्रिरोजा के भी यही गुण हैं। इसे शुद्ध करके प्रयोग में लाना चाहिए। शोध विधि निम्नलिखित है। एक कलई किए हुए भाण्डे में पानी भर ऊपर कपड़ा बाँध दें। इस पर गन्धा बिरौजा चूर्ण कर रख दें। नीचे अग्नि जलाएँ। वाष्प की गरमी से बिरौजा पिघल कर नीचे चला जाता है। मल ऊपर कपड़े पर रह जाएगा। इस बिरौजा को सुखाकर काम में लावें। इच्छानुसार एक से अधिक बार शोधन कर सकते हैं। इस प्रकार शुद्ध बिरौजा को 'सत बिरौजा' कहते हैं। तारपीन तैल के स्थान पर इसका प्रयोग आन्तरिक मार्ग द्वारा कर सकते हैं। गुण भी उसी के समान है।

मलहरों को बनाने में गन्धा बिरौजा का बहुत उपयोग होता है। क्योंकि यह व्रण शोधक, कृमिघ्न, संक्रमण नाशक, शोथशामक है। गर्भाशय शोथ, आर्तवप्रवर्तन के लिए आन्तरिक प्रयोग के साथ-साथ इसकी फलवर्ती बनाकर योनि में रखते हैं। मात्रा १ माशा है।

सुवर्णक्षीरी (हेमवन्ती-पट्टुपर्णी)

परिचय—सत्यानाशी का २-३ फुट ऊँचा क्षुप सर्वत्र पाया जाता है। पुष्पकाल मई है। किन्तु सर्वत्र पाया जाता है। वर्षा के अधिकांश में पुष्प खिले रहते हैं। पंचांग तथा तैल उपयोगी है। तैल की मात्रा ३ माशा इसकी मूल को 'चोक' कहना गलत है।

नाम—(हि०) सत्यानाशी, उजरकांटा, फिरंगी धत्तूरा (बं०) शियालकांटा (म०) कांटेधोत्रा, पिंथलाधोत्रा (गु०) दारुडी (अं०) येलो थिस्टल्[1], मेक्सिकन पोपी[2] अहिफेन वर्ग।[3] (वा० ले०) अर्गिमोन्, मेक्सिकाना[4]।

गुण—स्वर्णक्षीरी हिमा तिक्ता कृमिपित्तकफापहा। मूत्रकृच्छ्राश्मरी शोफ दाहज्वरहरा हि सा ॥ (रा० नि०)

सत्यानाशी रस में तिक्त, शीतवीर्य, कटु विपाकी, भेदन, रेचन, रक्त शोधक व्रण-कृमि पित्त-मूत्रकृच्छ्र अश्मरी शोथ-ज्वर-कुष्ठ-दाह आनाहनाशक है।

प्रयोग—मूत्रकृच्छ्र-मूत्रमार्ग की जलन सूजाक में स्वरस १-२ तोला की मात्रा में अति उपयोगी है। पीले वर्ण का दूध व्रण रोपण है। अतः व्रणों में उपदंशादि रोगों में घावों में अति उत्तम है। बीज तथा पंचांग का घन रेचन है। मात्रा ३ माशा, मूल कृमिघ्न तथा कुष्ठघ्न हैं। तैल भी उत्तम विरेचक है, किन्तु विश्वसनीय नहीं। यद्यपि इसका स्वाद खराब नहीं है, तथा उदर में मरोड़े भी नहीं होते। पुराना तैल गुणहीन हो जाता है।

---

1. Yellow thistle.
2. Mexican Poppy.
3. Papaveraceae.
4. Argimone Mexicana.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सत्ताईसवाँ अध्याय

श्वास संस्थान

(फुप्फुस, श्वास प्रणाली विस्तारक)

अन्त्रपाचनी (मूलिनी, पित्तवल्ली)

परिचय—यह मृदुलता बालुका बहुल प्रदेशों में सर्वत्र उपलब्ध ३,००० फीट की ऊँचाई तक लंका, पाकिस्तान आदि में उपलब्ध ।

व्य० अं०—मूल तथा पत्र (मूल की अपेक्षा पत्र अधिक गुणकारी)

रस—कटु, अनुरस, मधुर (ताजे पत्तों में)

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—त्रिदोषहर

प्र० अं०—आमाशय, अन्त्र, फुप्फुस

वि० गु० क०—वामक, स्रावक, कास, श्वास, प्रवाहिका शामक, पित्तविरेचक, रक्त शोधक

मात्रा—वामक—१-२ ग्राम (माशा) कफस्रावक—१-४ रत्ती चूर्ण

नाम—(सं०) अन्त्रपाचिनी (हिं०) जंगली निकवन (अं०) अन्तोमूल (म०) खडकीरास्ना पित्तमारी, पित्तकारी (गु०) अन्तोमूल (ता०) नलपल्लाई, नयपाल्ले, पिपस्त्राये (तै०) कुरिज, कुवकापाला (सि०) विन्नूगा (मल०) बेरीपाला (अं०) वामटिंग[1] स्वालो वर्ट (१) (वा० ले०) टाईलोफोरा[2] एस्थेमेटिका राईट और (२) अर्क वर्ग[3] ।

नामानि—अन्त्रपाचिनी मूलिनी, गन्धना पित्तवल्यपि । मूलरास्नापीत्येक भ्रमेणैव भणन्ति ॥ (१) (च)

गुण—कटुकाहि रसेपाके, वीर्योसामपाचिनी । मधुरानुरसातिक्ता वामिनी कफहारिणी ॥ (२)

कफपित्तहरा सरा कासश्वासविनाशिनी । स्वेदोपजननीचैव विषमज्वर कारिणी ॥ (३)

प्रवाहिकाहराबल्या त्रिदोष शमनी वरा ॥ (महेन्द्र)

वक्तव्य—यह लता अनन्तमूल से भिन्न है और अन्त्रपाचनी, पित्तवल्ली, गन्धन, तथा मूलरास्ना नामक संस्कृत नामों से जानी जाती है । वस्तुतः आयुर्वेद में इसका प्रयोग नाममात्र का ही होता है और यह नवीन शोध है । महाराष्ट्रीय वैद्य इसे खड़की रास्ना (मूलरास्ना) कहते हैं, यद्यपि रास्नातुल्य वायुशामक एक भी गुण इसमें नहीं हैं । यह रास्ना से सर्वथा भिन्न हैं । यह नवीन औषधि है और लाभकारी है । वैद्यों को इसका प्रयोग करना चाहिए ।

गुणकर्म—इसमें कटु (चरपरी), तिक्त, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, अनुरस में मधुर, ताजी में ही यह अनुरस

---

1. Vomiting Swallow Wort.
2. Tylophora Asthamatica, Wright & Arn, Asclepious Asthamatica.
3. Asclepiadaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पाया जाता है। (शुष्क में नहीं) वामक, कफस्रावक और कफनिष्कासक, स्वेदजनन, उत्तेजक और अनुलोमन, पित्त-विरेचक, उत्तेजक और तिक्त रसायन है।

प्रभाव तथा प्रयोग--उष्णवीर्य, कटुरस और तीक्ष्ण गुण के कारण यह क्षोभक प्रभाव प्रदर्शित करती है। (क्षोभ के लक्षण, रक्ताभिसरण में वृद्धि, अतएव स्थान का लाल और उष्ण हो जाना तथा उसकी संवेदना शक्ति बढ़ जाना है)

(१) **बाह्य प्रयोग**--लेपादि लगने से त्वचा में क्षोभ उत्पन्न होता है। उक्त रक्तोत्क्लेश, लालिमा, वेदना, उष्णता आदि सभी लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

(२) **अन्तः प्रयोग**--मुख द्वारा सेवन करने से भी क्षोभजन्य प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। बड़ी मात्रा ½-२ ग्राम (माशा) में सेवन करने से यह आमाशय में क्षोभ उत्पन्न करता है। जिससे उत्क्लेश (जी मचलाना) आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं और अन्त में उल्टी हो जाती है। सेवन करने के कुछ समय पश्चात् यह औषध रक्त द्वारा सारे शरीर में पहुँचकर मस्तिष्कस्थ वमन केन्द्र को प्रभावित करती है और आमाशय में भी प्रतिसंक्रमित क्रिया (Reflex action) द्वारा वमन में सहायक होती है। वमन के साथ ही साथ त्वचा को भी उत्तेजित कर स्वेद (पसीना) भी लाती है और बार-बार अधिक मात्रा में सेवन करते रहने से यह अन्त्रों को क्षुब्ध कर विरेचन भी करा देती है। स्वल्प मात्रा (½-२ रत्ती) में सेवन करने से भी इसका क्षोभक प्रभाव आमाशय पर होता ही है, किन्तु उसका बल बहुत कम होता है। आमाशय को बस इतनी मात्रा में ही उत्तेजित करती है जिससे उत्तेजित होकर वह पाचकरसों का स्राव भली-भांति अधिक मात्रा में करने लगता है। जिससे अन्न का पाचन भली प्रकार होता है और पाचक अग्नि उदीप्त होती है। अतः दीपन-पाचन है और अग्निमान्द्य तथा आमदोष में अति उपयोगी है।

(३) श्वास प्रणालियों पर भी स्वल्प मात्रा में सेवन करने से क्षोभक प्रभाव नष्ट होता है। रक्त में मिलने के पश्चात् जब यह फुप्फुसों में पहुँचता है तो उनकी श्लैष्मिक कला को क्षुब्ध कर उन्हें उत्तेजित कर देता है। जिससे कफ का स्राव अधिक मात्रा में होता है और श्लेष्म विशेषकर चिक्कण श्लेष्मा, (जो फुप्फुसों में चिपटा रहता है) आसानी से निकलने लगता है। अतएव यह कफ श्वासशामक है। बच्चों के कास-श्वास में मात्रा धीरे-धीरे इतनी बढ़ावें कि उन्हें वमन हो जाए। इससे फुप्फुसों में से कफ निकल जाता है और वे स्वच्छ हो जाते हैं। जिससे श्वास लेना सरल हो जाता है।

(४) त्वचा से निकलते समय यह उसे और तत्रस्थ स्वेद ग्रन्थियों को उत्तेजित कर पसीना अधिक मात्रा में लाती है। अतएव ज्वरों में ताप कम हो जाता है।

(५) विषमज्वर यकृत् को उत्तेजित पित्त का स्राव अधिक करता है।

उक्त सब कारणों से यह ज्वरों में विशेषकर विषमज्वर, प्रतिश्याय, पीनस, श्वासप्रणाली शोथ और कास युक्त ज्वरों, वातकफज्वर (Influenza) श्वसनक ज्वर, (Brancho-Pneumonia) आदि रोगों में अति उत्तम है। रक्त श्लेष्मा आती हो और यकृत् में शोथ भी हो गई हो अतिलाभ प्रद है।

प्रयोग--प्रवाहिका में मूल या पत्तों का चूर्ण ४ से ८ रत्ती की मात्रा में अतिसार और प्रवाहिका में दिन में तीन-चार बार देना चाहिए। इसमें यदि बब्बूल निर्यास १ माशा और अहिफेन ⅛ रत्ती और शुंठी चूर्ण ४ रत्ती मिलाकर दिया जाए तो अत्यन्त लाभ होता है। पत्रों और मूल का क्वाथ (१-१०) और फाण्ट का भी प्रयोग किया जाता है।

जीर्णकास, श्वास और वातिक कास, कुक्कुरकास (Whooping Cough) शुष्ककास २ रत्ती की मात्रा में वासा या मधुयष्टी-शुष्ककास शर्बत के साथ मिलाकर दिन में तीन-चार बार देने से कम आसानी से लगता है। क्वाथ (१-१०) लाभप्रद है। ज्वरों में स्वेद लाने के लिए स्वल्प मात्रा में इसका प्रयोग उत्तम है। यदि इसमें ⅛ रत्ती अफीम

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भी मिला ली जाए तो अति लाभप्रद विषमज्वर (मलेरिया) आदि में भी क्वाथ या चूर्ण अन्य विषमज्वर शामक, सप्तपर्ण करंज या किंकिणी चूर्ण के साथ मिलाकर प्रयोग करें।

आमपाचक तथा रक्तशोधक होने के कारण यह आमवात सन्धिशोथ सन्धिवेदना, में भी उपयोगी है। इसका लेप लगाने से या इसके काढ़े से स्वेद करने या तैल बनाकर अभ्यंग करने से आमवात की वेदना में लाभ होता है। कारण यह क्षोभक है। क्षोभकों में लाभ होता है। कारण क्षोभकों का प्रयोग शोथ तथा वेदनाशामक होता है। विशेष कर फिरंग रोगजन्य संधिशोथ में उत्तम लाभ करती है।

विषों या अन्य अवस्थाओं में जहाँ वमन की आवश्यकता हो इसका प्रयोग अच्छा है। एतदर्थ मूल अधिक उपयोगी है।

वक्तव्य--इसका प्रभाव तथा क्रिया एलोपैथिक के आयपीकाकुन्हा (Ipecacunha) नामक द्रव्य के समान होती है। अतएव बाजार में कभी-कभी अन्त्रपाचिनी और इसी की जाति की दूसरी वनस्पति टायलोफोरा इण्डिका मर्र (Tylophora Indica merr) की मिलावट भी की जाती है।

कासश्वास में कफ को पतलाकर सरलता से निकालने के लिए कफ-स्रावक-निष्कासक और प्रवाहिका में इसका विशेष प्रयोग होता है। एमेटीन (Emetine) नामक सत्व इसमें से ही निकाला गया है। परन्तु इसका अधिक प्रयोग और बहुत दिनों तक करने से अतिसार, शिथिलता हृदय दौर्बल्य और पक्षाघात की भी सम्भावना रहती है।

अपामार्गः (शैवरिकः, अधशल्यः, मयूरक)

परिचय—सुप्रसिद्ध क्षुप

उ० स्थ०—प्रायः सर्वत्र

व्य० अं०—पंचांग, क्षार

पुष्पकाल—रक्त और श्वेत भेद से दो प्रकार, वर्षा के बाद शरद ऋतु

रस—कटु, तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

बीज—मधुर, शीतवीर्य, मधुरविपाकी

दोष—वातकफहर, पित्तवर्धक

धातु—मेदनाशक, रक्त प्रसादन

प्र० अं०—यकृत्, फुप्फुस

वि० गु० क०—सर, मूत्रल, रक्तोशोधन, वातक, तीक्ष्ण, कफघ्न

मात्रा—मूलचूर्ण ६ माशा—१ तोला तक

नाम—(हि०) चिरचिटा, लटजीरा (पं०) पुटकुण्डा (मं०) अघाडा (गु०) अधेडो (बं०) अपांग (अं०) दी प्रिकली फ्लावर[1] (वा० ले०) अचिरेन्थस् एस्पेरा[2], अपामार्ग[3] वर्ग।

गुण—प्रत्येक् पुष्पी शिरोविरेचनानाम्। (चरक)

अपामार्गः कटुस्तिक्तस्तीक्ष्णो दीपनः सरः। पाचनो वमन श्छेदो कफमेदोनिलापहः।
निहन्ति शूलहिध्मार्शोदद्रुकण्डूदरापचीः। (कै०)

---

1. The Prickly Flower.
2. Achyranthes Aspera, Linn.
3. Amarantaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तत्फलं शीतलं स्वादु रसे पाके सुदुर्जरम् । विष्टम्भि वातलं रूक्षं रक्त पित्त प्रसादनम् । (कै०)
अपामार्गोऽग्निवत्तीक्ष्णः क्लेदनः संसनः परः ।

अपामार्ग पंचांग, कटु, तिक्त रस, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, अत्यन्त पाचन, सर, मूत्रल, कफच्छेदक, वामक, कफ मेद तथा वातशामक है। शूल, हिक्का, अर्श, दद्रु, कण्डु, उदर एवं अपचीनाशक है। इसके बीज मधुर, शीतल, मधुर विपाकी, दुर्जर, वातकारक, रूक्ष, शीतल, विष्टम्भी तथा रक्तपित्तशोधक है।

प्रयोग (बाह्य)—अपामार्ग पंचांग का तैल बनाकर कर्ण शूल और बधिरता में कान में डाला जाता है। बीजों का सूक्ष्मचूर्ण नस्य के रूप में देने से शिरःशूल शान्त हो जाता है। पत्रों को पीसकर रक्तार्श में अर्श की शोथ तथा रक्त स्राव बन्द होने के लिए उपनाह लगते हैं। भिड़, मधुमक्खी या बिच्छू के काटे पर जड़ या पत्र को पीसकर लेप लगाया जाता है। जड़ को पीसकर नाभि, योनि तथा वस्ति प्रदेश पर लेप करने से सुख प्रसव होता है। अपामार्ग काण्ड की माला (तुलसी माला के समान) गले में धारण करने से काली खाँसी तथा गण्डमाला में कभी-कभी लाभ होता देखा गया है।

अन्तः—अपामार्ग बीज तथा गाजर बीजों का क्वाथ पिलाने से सुख प्रसव होता है। विलम्ब प्रसव में एक तोला जड़ को दो तोले गुड़ के साथ काढ़ा बनाकर पिलाने से तत्काल प्रसव हो जाता है। बीजों की खीर बनाकर खाने से भस्मक रोग मिटता है। रक्तार्श में काली मिर्च और अपामार्ग का कल्क देने से रक्तस्राव बन्द होता है, क्योंकि यह रक्त संग्राही है। बिच्छू या सर्पदंश में इसके स्वरस या काढ़े से वमन कराया जाता है। जलोदर, आर्द्र तथा शोथ आदि में इसका क्वाथ पिलाने से मूत्रस्राव होकर शोथ शान्त होती है। यह उत्तम मूत्रल है। पाचन सम्बन्धी शिथिलता आमाशय शैथिल्य में स्वरस भोजन से पूर्व देने से लाभ होता है। पाचन क्रिया सुधरती है।

क्षार (४ रत्ती—१ माशा तक) मधु के साथ देने से कफ स्राव होता है तथा मूत्र की मात्रा बढ़ती है। मूत्रकृच्छ्र, मूत्रमार्ग का दाह, मूत्राशय शोथ, शूल, सूजाकादि में लाभ करता है। यकृत् की क्रिया को सुधारता है। पित्त का अन्त्र में स्राव कराता है। तीक्ष्ण होने से, अतः उत्तम पाचक, सारक, रक्त को शुद्ध करके उसके निर्माण को प्रोत्साहन देता है। कष्टार्तव में क्षार और अल्पार्तव में पंचांग लाभ करता है।

योग—(१) अपामार्ग क्षार तैल (२) अपामार्ग क्षार

उस्तुखद्दूस

नाम—(हि०) थारु (बं०) तुनतुना (वा० ले०) लेवेण्ड्यूला स्टोकास[1] तुलसा वर्ग (अं०) अरेबियन या फ्रेंच लेवेण्डर[2]।

परिचय—क्षुद्र क्षुप स्वाद में तिक्त, तीक्ष्ण होता है। यूरोप, अरब, एशियामाईनर तथा भारत में बिहार, बंगाल में होता है। भारत में इसके दो भेद होते हैं। पत्र तथा पुष्प व्यवहृत होते हैं। मात्रा ५-७ माशा।

गुण तथा प्रयोग—तिक्त, उष्ण तथा रूक्ष है। कफ रोगों तथा दमे में उस्तुखद्दूस, सौंफ, जूफा, मुलेठी का क्वाथ पिलाते हैं। पक्षाघात, अर्दित, अपस्मार आदि वात व्याधियों में वात नाड़ियों को शक्ति प्रदान करने के लिए और उनके क्षोभ को शान्त करने के लिए, वात नाड़ी शूल तथा आमवात में इसका काढ़ा उपयोगी है।

कर्कटश्रृंगी (कुलीरश्रृंगी, विषाणिका)

परिचय—४०-५० फुट ऊँचा वृक्ष

उ० स्थ०—हिमालय, काश्मीर, शिमलादि

1. Lavandula Stoechas, Linn.
2. Arabian or French Lavender.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

व्य० अं०—कीटज कली

पुष्पकाल—बैशाख-ज्येष्ठ

रस—कषाय, तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—वातकफशामक

प्र० अ०—फुप्फुस

वि० गु० क०—ग्राही, कफघ्न, शोथहर

मात्रा—१-२ माशा चूर्ण

नाम—(हि० पं० मा० गु०) काकड़ासिंगी (म०) काकड़ाशिंगी (बं०) काकड़ाश्रृंगी (क०) कर्कटिश्रृंगी (तै०) कर्करश्रृंगी (ता०) कर्कड गंचिचि (वा० ले०) पिस्टेकिया इन्टेग्रीमा,[1] आम्र वर्ग[2]।

गुण—श्रृंगीकषाया तिक्तोष्णा कफ वातक्षय ज्वरान्। श्वासोर्ध्ववाततृट्कासहिक्कारुचिवमीन् जयेत्॥ (भाव०)

काकड़ासिंगी, कसैली, कड़वी, उष्ण, वातकफ, क्षय रोग, ज्वर, श्वास, कास, प्यास, हिक्का, अरुचि तथा ऊर्ध्ववातशामक है। यह फुप्फुस शोथ को शान्त करती है तथा कफ की उत्पत्ति को कम करती है एवं वात को शान्त करती है।

प्रयोग—कफ रोगों में विशेष कर फुप्फुस के रोगों, खांसी, श्वास क्षयादि में श्वासप्रणालिगत शोथ को शान्त कर उनमें चिपटे कफ को कम करती है। तत्रस्थ कला को शक्ति देती है। गले की शोथ तथा कौआ (काग) लटकने पर इसके कुल्ले कराये जाते हैं। चूर्ण का लेप भी लगाया जाता है। कफज-कास में विशेष लाभ करती है। बच्चों में विशेषकर हितावह है। बच्चों के अतिसार, वमन, कास, ज्वरों (बालचातुर्भद्र चूर्ण) तथा आमाशय क्षोभ से उत्पन्न वमन, हिक्का, जीर्ण, अतिसार, प्रवाहिका में विशेष हितकारी है। अतिसार में वेलगिरी के साथ, श्वास में कायफल के साथ, मन्दाग्नि में पिप्पली के साथ, कफजकास में कालीमिर्च के साथ, बालशोथ रोग में अश्वगन्धा के साथ, आम अतिसार में इसे सेक कर इन्द्र जौ के साथ देना उपकारक है।

योग—श्रृंग्यादि चूर्ण—कासश्वास, पार्श्वशूलादि में मात्रा २-४ माशा।

वक्तव्य—उक्त काकड़ा सिंगी केकड़े (Carb) की टांगों के समान या बैल की सींगों की आकृति वाली तथा अन्दर से पोली (रिक्त) होती है। वर्ण कत्थई, भंगुर, अन्दर से कभी-कभी धूल जैसा पदार्थ निकलता है। यह तदुत्पादक कीटों का मृत देह है। पत्रों पर कीटों द्वारा जो घर बनाया जाता है वही कर्कटी है।

इसके स्थान पर एक त्रिकोण काकड़शिंगी (विशेषकर बम्बई में) भी बाजार में आती है। वह असली नहीं है। उसे केवल 'श्रृंगी' कहा जाता है। इसमें कर्कटश्रृंगी की अपेक्षा हीन गुण है। गुणों में यद्यपि दोनों समान है। दोनों में कषायाम्ल पाया गया है। इसका वानस्पतिक नाम 'रह् स सक्सीडीना, लिन्न[3] है। यह हिमालय तथा दक्षिण में पाई जाती है। तथा कीटजन्य है।

हरीतकी के पत्रों पर भी एक त्रिकोणकार कृमि गृह का श्रृंगी के स्थान पर बम्बई में प्रयुक्त होता है। यह कर्कट श्रृंगी के स्थान पर प्रयुक्त होता है। यह कर्कट श्रृंगी के समान लाभप्रद नहीं है।

---

1. Pistacia Integrima, Stewart.
2. Anacardiaceae.
3. Rhus Suceedanea, Linn,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कंटकारीद्वयम् क्षुद्रा (कण्टकारी-व्याघ्री-निर्दिग्यका)

परिचय--सुपरिचित क्षुद्र क्षुप
उ० स्थ०—सर्वत्र
पुष्पकाल--एप्रिल-जून
रस—कटु, तिक्त
वीर्य--उष्ण
विपाक—कटु
दोष—वातकफशामक, पित्तकारक, धातु मेदनाशक
प्र० अ०—श्वास संस्थान
वि० गु० क०--शोथहर, कफनिष्कासक
मात्रा--चूर्ण १-३ माशा, क्वाथ १ तोला
नाम--(हि०) कटेरी, भटकटैया, छोटी कटेरी (बं०) कंटकारी (मं०) भुईरिंगणी (गु०) भोयरिंगणी, भोंरिगणी (पं०) कडियारी (क०) हेग्गुल्ल, नेल्लगुल्ल, (तैं०) तेल्लमुनक (ता०) पप्परमुल्लि (अं०) वुडीनाईट शेड[1] (वा० ले०) सोलेनम्[2] क्जेन्थोकार्पम्, कंटकारी वर्ग[3]।

गुण—कण्टकारी सरातिक्ता कटुका दीपनी लघुः। रूक्षोष्णापाचनी कासश्वासज्वरकफनिलान् ॥
निहन्ति पीनसं पार्श्वपीड़ा कृमिहृदामयान्। तस्याफलं कटु रसे पाके च कटुकं भवेत् ॥
शुक्रस्य रेचनं भेदि तिक्तं पित्ताग्निकृल्लघु। हन्यात् कफमरुत्कण्डुवासमेदः कृमिज्वरान् ॥ (भाव०)

कंटकारी (पंचांग) दीपन, पाचन, रूक्ष, उष्ण वातकफ रोगनाशक, प्रतिश्याय, कास, श्वास, वातकफज्वर (इन्ल्फुएंजा) पार्श्वशूल, हृद्य रोग तथा कृमिनाशक है। ज्वर, कास कण्डु (खाज) नाशक है। कटेरी स्वेदल, ज्वरघ्न, मूत्रल तथा वेदनाशामक है।

प्रयोग—दन्तशूल तथा दन्त कृमियों में फल या बीजों का धूम्रपान करने से लाभ होता है। मुखपाक में पंचांग क्वाथ से कुल्ले तथा अर्श की शोथ में धूनी दी जाती है। अपस्मार (मिर्गी) तथा अपतन्त्रक में इसकी नस्य देने से मूर्च्छा दूर होती है। प्रतिश्याय, जुकाम तथा वातकफ ज्वरों में यह पसीना तथा मूत्र लाकर एवं कटु रस उष्ण वीर्य और रूक्ष गुण के कारण ज्वर, अंगमर्दादि शान्त होते हैं। कास, श्वास तथा गले की शोथ में इसके सेवन से शोथ शान्त होती है। कफ पतला होकर निकलता है तथा उसकी उत्पत्ति कम हो जाती है। पिप्पली पान का रस, अदरक का रस तथा सैन्धानमक और हींग मिलाकर देने से अधिक लाभ करती है। पाचन होने से उदरशूल में रेचन होने से कामला, पाण्डु आदि पैत्तिक रोगों में बीजों को दूध में उबालकर सुखाकर पुनः २४ घण्टों तक छाछ में भिगोकर सुखा लें। पुनः घी में तलकर उक्त रोगों में प्रयोग करें। मूत्रकृच्छ्र में कंटकारी शीत कषाय फूल की केसर को मधु में मिलाकर चटाने से बच्चों का कास मिटता है। मूत्राघात में स्वरस तथा तक्र मिला कर पिलाने से वायु अनुलोम होती है। रोग नष्ट होता है। वातिक तथा मन्दाग्नि में कंटकारी तथा गिलोय स्वरस सिद्ध घृत मन्दाग्नि में कंटकारी गिलोय स्वरस सिद्ध घृत लाभ करता है। इसके मूल को नींबू रस में पीसकर अंजन करने से नेत्रों की धुंध तथा जाला दूर होता है।

वक्तव्य--छोटी-कटेरी का फूल बैंजनी रंग का तथा पीले केशरों वाला होता है। इसका भेद एक श्वेत पुष्पा कंटकारी भी होती है। जिसका फूल सफेद पंखड़ियों वाला होता है। यह दुर्लभ है। इसे सिंही चन्द्रपुष्प क्षुद्रमाला

---

1. Woodynight Shade.
2. Solanum Xanthocarpum.
3. Solanaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

या श्वेत लक्ष्मणा भी कहा जाता है, दोनों गुण में समान हैं, किन्तु श्वेत कंटकारी श्रेष्ठ है। पुष्य नक्षत्र के दिन श्वेत कण्टकारी को उखाड़कर कन्या के हाथ से पिसवाकर गोदुग्ध के साथ ऋतु स्नान के पश्चात् पिलाने से गर्भ धारणा होती है। यह उत्तम गर्भ स्थापक है।

बृहती (वार्ताकी, स्थूल कंटकारी)

नाम—बड़ी कटेरी, करहंटा (मा०) उभी कांटोली (बं०) व्याफुड़ (म०) डोरले (गु०) उभी रिंगणी (वा० ले०) सोलेनम् इण्डिकम लिन्न[1], कंटकारी वर्ग।

गुण—बृहती सोष्णा तिक्ता कटुका वातकफापहा। दीपनी पाचनी हृद्या ग्राहिणी ज्वर कुष्ठनुत्।
श्वासास्यमलवैरस्य कासारोचक शूलनुत्। (कै० नि०)

बड़ी कटेरी कटु, तिक्त रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, वातकफशामक, दीपन, पाचन, ज्वर, त्वचारोग, रक्त शोधन होने से श्वास कास, अरुचि, उदरशूल और मुख की दुर्गन्धि की नाशक है। छोटी कटेरी के समान इसके भी गुण प्रयोग जानें। किन्तु यह ग्राही है तथा छोटी कटेरी भेदन है। यह भेद स्मरणीय है। दोनों ही 'दशमूल' में तथा लघु पंचमूल में पड़ते हैं।

योग—कंटकार्यावलेह-श्वासकासहर।

कुरण्टकः[2] (सहचरः सैरेयक, भिण्टी)

परिचय—क्षुद्र काँटेदार झाड़ी
उ० स्थ०—उष्ण प्रदेशों में सर्वत्र
व्य० अं०—पंचांग
पुष्पकाल—दिसम्बर-जनवरी
रस—कटु, मधुर, तिक्त
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
दोष—कफवातशामक
प्र० अं०—फुप्फुस
वि० गु० क०—ग्राही, प्रतिश्याय, कास तथा ज्वरहर
मात्रा—क्वाथ १-२ तोला

नाम—(हि०) कटसरैय्या, पियांबासा, काला बांसा (मा०) कटसेलो (म०) कोराण्टी (गु०) कांटासलियो, कांटा अशेलियो (क०) करियामोरटे (तै०) नीलकारण्टा (वा० ले०) बार्लेरिया[3]प्रायोनाईटिस, लिन्न, वासक वर्ग[4]।

गुण—सैरेयो मधुरस्तिक्तः स्निग्धोष्णः केशरंजनः। केश्यो बलासपित्तास्र कुष्ठ कण्डुविषंजयेत्॥ (कै०)

कटसरैय्या मीठा, चरपरा, कुछ कड़वा, उष्ण, कटु विपाकी, वातकफ, रक्तविकार, त्वचा रोग, खाज, नाशक तथा कास-श्वास दाह, ज्वरशामक है। प्रत्येक भेद के गुणों में साधारण-सा गुण रसादि का भेद होता है।

1. Solanum Indicum, Linn.
रक्तपुष्पः कुरनक पीतपुष्पः कुरण्टकः।
नीलपुष्पश्चार्तगल सैरेयः श्वेतपुष्पकः॥ (कै०)
2. पुष्पों के ४ भेद हैं। गुणों में प्रायः समान।
3. Barleria, Prionitis, Linn.
4. Acanthaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रयोग—शोथघ्न तथा व्रणरोपक होने से पत्तों की पुल्टिस लगाने से अथवा पत्तों का तैल बनाकर लेप करने से शोथ शान्त होती है। मूलका शीत कषाय कफशामक है। काले कटसरैय्या का मूल गाय के दूध में पीसकर मासिक धर्म के पश्चात् ३ दिन तक स्त्री-पुरुष दोनों को खिलाने से गर्भस्थापक सिद्ध होती है।

पीली कटसरैय्या की मूल-पुष्प या पत्र स्वरस, बच्चों के वातकफजज्वर, प्रतिश्याय (सरदी) कास, फुप्फुस शोथ में मधु के साथ देने से अत्यन्त लाभ होता है (मात्रा १$\frac{१}{४}$ तोला रस)। इससे बढ़ा हुआ ज्वर तथा कफ पतला होकर निकल जाता है शोथ भी शान्त होती है। यह कफ निस्सारक है। वातिक या काली खांसी में पत्तों का रस, हिम या काढ़ा उत्तम है। उपदंश के व्रणों पर पत्तों का कल्क लगाते तथा काली मिर्ची के साथ घिसकर पिलाते हैं। अतिसार-जलोदर, बिवाई (विपादिका) में भी प्रयोग किया जाता है।

कुष्ठः (काश्मीरजं, गद, वाप्यं, उत्पलम्)

परिचय—क्षुद्र क्षुप, जल में उत्पन्न होने वाला
उ० स्थ०—काश्मीर, हिमालय, ७-१२ हजार फुट पर
व्य० अं०—मूल
पुष्पकाल—मई-जून
रस—मधुर, कटु, तिक्त
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
दोष—वातकफहर
प्र० अं०—फुप्फुस, श्वास संस्थान
वि० गु० क०—उष्ण, उत्तेजक, कफहर, पाचक, आमवातनाशक
मात्रा—चूर्ण ४ रत्ती २ माशा

नाम—(हि० पं० बं०) कूट, कुट (गु०) कठ, उपलेट (म०) उपलेट (क०) चांगलकोष्ठ (तै०) चांगल-कुष्ठ (ता०) संगल्लकोष्ठम् (अं०) कोस्टस[1], कूटरुट (वा० ले०) सौसुर्या लापा[2], शेवंती या सूर्यमुखी वर्ग।[3]

वक्तव्य—यह जल बहुल स्थलों में उत्पन्न होता है। फूल सूरजमुखी के समान, मूल अतिसुगन्धि, किन्तु काला-सा कटा-फटा, अतएव 'कुष्ठ' नाम है। काश्मीर से चीन को अत्यधिक मात्रा में जाता है। यह कड़वा चरपरा होता है। मीठाकूठ करके जो कूठ बेचा जाता है। वह असली नहीं है। उसका उपयोग नहीं करना चाहिए। कुष्ठ के स्थान पर 'पुष्कर मूल' का उपयोग कर सकते हैं।

गुण—कुष्ठं तिक्तं कटु स्वादु लघूष्णं शुक्रलं जयेत्। वातास्रविष वातकफ श्वास कास हिक्का ज्वरापहम्।
(रा० नि०)

कूठ कड़वा, चरपरा, मधुर (अनुरस) उष्णवीर्य तथा कटु विपाकी, वातकफ, स्रोतों का शोधक, लेखन वाजीकर, कुष्ठ, वीसर्प, त्वचा रोग, कण्डू, दाह, वातरक्त, आमवात, श्वास, कास, हिक्का, तथा ज्वरशामक है।

प्रयोगः—कुष्ठ में उपस्थित उड़नशील तैल के कारण यह कटु, उग्रगन्धि है। जिससे क्षोभक प्रभाव उत्पन्न करता है, अतः शोथशामक तथा पाचक रसों का उद्दीपक है। मूत्र मार्ग से निकलते समय शिश्न में उत्तेजना उत्पन्न

1. Costus, Kut Root.
2. Saussurea, Lappa clarke.
3. Compositeae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर कामोत्तेजना को बढ़ाता है । श्वासकास मार्ग से निकलते समय यह शोथ तथा वेदना शमन, कफ की प्रवृत्ति को शमन करता है । अतएव खांसी कफज दमा, श्वासकास ज्वर (न्युमोनिया) वातकफ ज्वर (एन्फुलुएंजा) प्रतिश्याय तथा पार्श्व शूल में लाभ करता है । अंतः प्रयोग के साथ-साथ क्षोभक होने से इसका लेप भी उक्त रोगों में तथा वातव्याधियों में किया जाता है । (कुष्ठं वातहराम्यगोप योगिनाम) त्वचा पर लेप करने से यह त्वग्दोषनाशक कान्तिवर्धक है । उत्तम अनुलोमन, दीपन-पाचन है । अतः उदराध्मान, उदर शूल, अतिसार हैजा, अग्निमान्द्य नाशक है । एतदर्थ कुष्ठ २$\frac{1}{2}$ तोला, सोंठ १$\frac{1}{2}$ तोला, पीपल १ तोला, बच ८ माशा, हींग ३ माशा, सोंचल ९ माशा, सैन्धव ६ माशा, आमला १ तोला चूर्ण बना ३-६ माशा की मात्रा में अतिलाभ करता है ।

ज्वरों में स्वेदल तथा मूत्रल होने के कारण प्रयुक्त होता है । नाड़ी अनियमितता, निर्बल, शिथिल होने पर तथा सन्यास, उन्माद, अपस्मार में भी लाभ करता है । वात दोष या गर्भाशय निर्बलताजन्य, आमवात में एरण्ड तैल के साथ अभ्यंग तथा खाने के लिये देते हैं । कुष्ठ का काढ़ा व्रणशोधक तथा बालों की जुओं को मारता है । कुष्ठ साधित तैल वात वेदना, सन्धिशोथादि शामक है । हिक्का में कुष्ठ और रालका धुंआ सूंघने से, मस्तक पीड़ा में कुष्ठ-एरण्ड मूल को कांजी में पीसकर लेप करने से प्रतिश्याय में स्वेद लेने से, कुत्ते के विष में फाण्ट को २-३ बार पीने से लाभ होता है ।

कोशः (आबरेशम)

नाम—(हि०) आबरेशम (अं०) रा सिल्क पाड[1] (ले०) बाम्बिक्स मोरी[2] ।

परिचय—यह रेशम के कीड़े का घर है । उत्तम आबरेशम वह होता है जो सफेदी लिए पीला तथा फूला हुआ हो । मात्रा २-४ माशा तक ।

गुण तथा प्रयोग—सौमनस्य कारक, दोषों को पतलाकर निकालने वाला, कफ निष्कासक तथा भस्म लेखन है । इसे काटकर अवलेहों में डालते हैं । कास-श्वास, प्रतिश्याय में कफ को पतला करने के लिए इसका प्रयोग करते हैं । इसकी भस्म को नेत्रव्रण, नेत्रस्राव तथा नेत्रकण्डु में डालते हैं ।

रेशम का सूखा कीड़ा उत्तम हृदय बल्य है । १०$\frac{1}{2}$ माशा की मात्रा में खाने से अत्यन्त वाजीकरण है ।

गोजिह्वा (दार्विका-खरपनी)

नाम—(हि०) गाजवान, (बं०) गोजिआलता, (क०) पतुनालिगे, (तै०) हिरियकसक, (ता०) अनषवडि, (वा० ले०) केक्सिनिआ[3] ग्लौका, सावी, श्लेष्मातक[4] वर्ग ।

द्र्य० अं०—पत्र-पुष्प, मात्रा-पत्र ५-७ माशा पुष्प ३-६ माशा तक । उत्पत्ति स्थल फारस ।

विशेष गुण—सारक, कफनिस्सारक, हृदय तथा मस्तिष्क को बल देने वाला ।

वक्तव्य—गोजिह्वा का पत्र गाय की जीभ के समान खर होता है । फारस से आता है । इस नाम की तीन वनस्पतियों का वर्णन कई आयुर्वेदज्ञ करते हैं । एक का तो ऊपर वर्णन हो चुका है । दूसरी पृथ्वी पर फैलने वाले पीले वर्ण की वनस्पति है । यह सूर्यमुखी[5] वंश की हस्तिपद (बम्बई) नामक वनस्पति है जिसे उदभिद् शास्त्र में एलेफेन्टस[6]

---

1. Raw silk pod.
2. Bombyx Mori.
3. Caccinia glauca, savi.
4. Boragineae.
5. Compositeae.
6. Elephantus scaber, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्केबर कहा जाता है। इसके पत्ते चिकने तथा पतले होते हैं, अतः यह गोजिह्वा नहीं है। अन्य लेखक श्लेष्मातक वर्ग की संखाहुलि (ओनोस्मा ब्रेक्टिएटम[1]) नामक वनस्पति को गाजवान कहते हैं। यद्यपि यह खर है तथापि गाजवान से सर्वथा भिन्न है। गोजिह्वा को गोभी कहना गलत है।

गुण—गोजिह्वा तुवरातिक्ता स्वादुपाकरसाहिमा। वातला ग्राहिणी हृद्या कफपित्तहरा लघुः।
हन्यात् कासश्वासरुचि प्रमेहास्रव्रणज्वरान् ॥ (कै०)

गाजवान मधुर, कसैली कुछ कड़वी, मधुर विपाकी, शीतवीर्य, पित्तशामक,वातवर्धक, लघु तथा ग्राही, कास, श्वास, अरुचि, प्रमेह, रक्तपित्त, व्रण तथा ज्वरशामक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—यह हृदय को शक्ति देती है। अतः हृदय के पित्तवातजन्य धड़कन में तथा रक्तशोधक होने के कारण त्वचा एवं रक्त विकारों में प्रयुक्त होती है। अर्क के रूप में इसका प्रयोग उत्तम है। सर तथा मूत्रल होने के कारण यह विषों को बाहर निकालती है।

मस्तिष्क का पुष्टिकारक होने से उन्माद, अपस्मार आदि में दी जाती है। स्निग्ध तथा सारक होने से वातकफ के रोगों में प्रतिश्याय, कास, श्वास, वातकफज, ज्वर, श्वसनक (न्यूमोनिया) तथा फुप्फुसों की शुष्कता में अत्यन्त लाभ करती है। पत्र, पुष्प का काढ़ा बना मधु के साथ देने से खाँसी आदि की खुश्की दूर होती है। गाजवान की भस्म को मुख के छालों या व्रणों पर छिड़कने (अवचूर्णन) से लाभ होता है। गाजवान ५ तोला, निलोफर ४ तोला, उस्तखददूस २ तोला, गुलाब फूल, धनिया, कासनी, श्वेतचन्दन, इलायची २-२ तोला—काढ़ा बना १ सेर शक्कर में शर्बत बना लें। मात्रा— १ तोला दिन में तीन बार गरम पानी के साथ सेवन करने से हृदय-कम्प, मूत्रकृच्छ्र तथा रक्त विकार, पित्तरक्त और दाह शान्त होते हैं।

योग—गोजिह्वादिक्वाथ[2]—कास, श्वास, वातकफज ज्वर।

जूफा

नाम—जूफा (वा० ले०) हिसोपस् ऑफिशिनेलिस्[3] (अं०) हिसोप[4], तुलसी वर्ग।

परिचय—यह क्षुद्र वनस्पति है। पंचांग उपयोगी है। फूलों का प्रयोग उत्तम है। इसमें सूखी घास जैसी प्रिय गन्ध और तिक्त स्वाद होता है। यह प्रायः ईरान तथा श्याम से आता है। इसकी एक जाति काश्मीर, हिमालय और पंजाब में भी उत्पन्न होती है। मात्र ३-६ माशा तक।

गुण तथा प्रयोग—तिक्तरस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, वातकफशामक, वातानुलोमन, शोथशामक, लेखन, उदरकृमिनाशन, कास श्वासशामक है। फुप्फुसों की शोथ में, तथा कृच्छ्रश्वास, कफजकास, न्यूमोनिया, वातकफजज्वर (इन्फ्लुएंजा) तथा प्रतिश्याय में इसका काढ़ा बनाकर दिया जाता है। जलोदर तथा यकृत् शोथ में भी लाभ करता है। शर्बत बनाकर कफज कासश्वास में देते हैं। मधुयष्टिक्वाथ में यह पड़ता है।

वनपुष्पकम्

नाम—(हि० म० गु०) बनफशाह (पुष्प) गुलबनफशाह (वा० ले०) वायोला ओडोरेटा[5], वनपुष्पक वर्ग[6]।

परिचय—यह पुष्पों के रंग के अनुसार कई प्रकार का है। इसका छोटा-सा क्षुप हिमालय में लगभग ५,०००

1. Onosma Bracteatum.
2. योगों के लिए लेखक की 'रसादर्श' नामक पुस्तक देखें।
3. Hyssopus, Officinalis' Linn.
4. Hyssop.
5. Viola Odorata, Linn.
6. Violaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

फुट की ऊँचाई पर होता है। मई में पुष्प आते हैं और सारा क्षेत्र सुगन्ध से भर जाता है। पत्र ब्राह्मी के समान। व्यवहार में पत्र तथा पुष्प दोनों आते हैं। पुष्प अधिक गुणदायक है।

विशेष गुण—शोथशामक, मृदुरेचक है। कफनिष्कासक, पित्तशामक।

प्रभाव तथा प्रयोग—स्निग्ध, मधुर, अनुरस, कषाय, शीतवीर्य-मधुर, विपाकी है। अतः पित्तशामक, रक्त-शोधक, कफ को पतलाकर निकालने वाला है। प्रतिश्याय, फुफ्फुसशोथ, वातकफज्वर, पार्श्वशूल, न्यूमोनिया आदि में दिया जाता है। यह शोथ वेदना, उष्णता, मुख गले की रूक्षता, खरता नष्ट करता है। काढ़ा करके पिलाया जाता है तथा गले पर बाँधा भी जाता है। शर्बत बनाकर भी प्रयोग किया जाता है।

वासक (आटरुषक, सिंहास्य, वृषः)

परिचय—सुपरिचित गुल्म

उ० स्थ०—प्रायः सर्वत्र

व्य० अं०—पंचाग

पुष्पकाल—प्रायः श्वेतवर्ण पुष्प, शरद-वसन्त में

रस—तिक्त, अनुरस, कटु, कषाय

वीर्य—शीत

विपाक—कटु

दोष—कफपित्तहर, वातवर्धक

प्र० अं०—फुफ्फुस, धातुरक्त

वि० गु० क०—कास श्वासहर, कफनिष्कासक

मात्रा—स्वरस १ तोला, पुष्प चूर्ण १५-३० रत्ती, मूलत्वक् २-४ रत्ती

नाम—(हि०) अडूसा, बिसूटी (म०) अडूलसा (गु०) अरडुसो (बं०) वासक, वाक्श (वा० ले०) अधाटोडा वासिका, वासादि वर्ग[2]।

गुण—सिंहास्या तुवरा तिक्ताहृद्या स्वर्या हिमा लघुः। वातला कफ पित्तास्र श्वास कासहरा हरेत्।
ज्वरमेहारुचिच्छर्दि कुष्ठ तृष्णाक्षतक्षयान्॥ (कै०)
वृषपुष्पं . . . कफपित्तहरं तिक्तं शीतं कटुविपच्यते। (च० सू० २७)

वासा (पंचांग) कसैला, कड़वा, रुचिकर, स्वर के लिए हितकर, शीतल, लघु, वातवर्धक, कफ, पित्त, रक्त पित्त-कास, श्वास, ज्वर, प्रमेह, वमन, तृष्णा, क्षत, क्षय, रोगनाशक है। इसके लिए निम्न पद्य प्रसिद्ध है।

वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य। रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति (चक्र०)

पुष्प तिक्त, शीतल, आक्षेपशामक तथा ज्वरघ्न है। वासा उत्तम श्लेष्म निस्सारक, आक्षेपशामक, रक्तशोधक रक्तस्तम्भक, कृमिघ्न, मूत्रल तथा ज्वरघ्न है। विशेषकर जीर्णकास, यक्ष्मा, तथा श्वास में अति उत्तम लाभ करता है। वेग को शान्त करने के साथ-साथ कफ की दुर्गन्धि को नष्ट करता है और पतला करके निकालता भी है। शरीर में ताप या दाह हो तो उसे कम करता है। काली खाँसी की प्रारम्भिक अवस्था में भी लाभ करता है। प्रतिश्याय, वातकफज्वर (एन्फ्लुएंजा) कास तथा मृदु ज्वरों में पत्र स्वरस या मूलत्वक् का काढ़ा अत्यन्त लाभ करता है। उदर के

1. Adhatoda Vasika ness. 2. Acanthaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ब्रध्न कृमियों का (फीते जैसे) नाशक है। इसके सूखे पत्ते ऊनी कपड़ों में रखने से उनमें कीड़े नहीं लगते। नक्सीर या रक्तष्ठीवन, रक्तवमन, में पुष्प या पत्र स्वरस मधु में मिलाकर पिलाते हैं। सूखे पत्तों को अकेले या धतूरे के पत्तों के साथ मिलाकर सिगरेट की तरह पीने से श्वास का वेग शान्त होता है। पत्र की अपेक्षा जल में कफनिष्कासक गुण अधिक हैं।

स्वरस की अपेक्षा पुटपक्वस्वरस अधिक लाभ करता है। इसमें मधु पिप्पली या कालीमिर्च मिलाकर देने से अत्यन्त लाभ होता है।

वासा, मुनक्का, हरीतकी, घमासा, नागरमोथा समभाग काढ़ा बनाकर पिलाने से श्वास कास तथा रक्तपित्त शान्त होता है। यह श्वास प्रणालियों को विस्तृत करता है, अतः श्वास में लाभ होता है। रक्त वाहिनियों का संकोचक होने से सर्व प्रकार का रक्तस्राव बन्द होता है। अतः रक्तार्श, रक्तातिसार तथा अत्यार्त्तव में भी दे सकते हैं। पुष्पों का भी प्रयोग इसी प्रकार होता है। जलोदर में मूत्रल होने के कारण तथा ज्वरों की तृष्णा को शीतल होने के कारण, रक्तार्श में वासापत्र, चन्दन सफेद, तथा हीरादखिन का चूर्ण, श्वेत प्रदर में निम्ब पत्र तथा गिलोय के साथ, स्वरभंग में वासा, स्वरस, तालीसपत्र चूर्ण और मधु मिलाकर चटाने से अत्यन्त लाभ होता है। पत्तों को या मूल की छाल को पीसकर गर्भवती स्त्री की नाभि वंक्षण प्रदेश, जांघों तथा योनि के आस-पास लेप करने से सुख प्रसव होता है।

योग—(१) वासावलेह, श्वासकास में चटाने के लिए।
(२) वासाघृत, मात्रा १-२ तोला, पुराने मन्दज्वर तथा रक्तपित्त में
(३) वासा कूष्माण्ड खण्ड १ तोला रक्तपित्त में
(४) वासापुष्पा खण्ड, १-२ तोला, श्वास, कास तथा जीर्ण मन्द ज्वर में

तालीसपत्र (आमलकीपत्रं, पत्राढ्यम्)

परिचय—यह कोण जाति का महावृक्ष है। उच्च हिमालय प्रदेशों में होता है।

व्य० अं०—पत्र

पुष्पकाल—चैत्र-वैशाख

रस—मधुर, तिक्त, कटु

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु विपाकी

दोष—वातकफनाशक

प्र० अं०—फुप्फुस

वि० गु० क०—कफनिष्कासक, वेगहर, उत्तेजक तथा अनुलोमक

मात्रा—३-४ माशा तक

नाम—सर्वभाषा तालीसपत्र (काश्मीरी) बुदुल, बुदिल (अं०) हिमालयन सिल्वर फर[1] (वा० ले०) एबिस् वेबिआना[2] कोणीय या देवदार वर्ग[3]।

वक्तव्य—तालीसपत्र के नाम से तीन वृक्षों के पत्र मिलते हैं। एक का नाम ऊपर लिखा गया है।

(२) धनु या बिर्मी[4], इसके गुण 'स्थौणेयक' नामक सुगन्धित पदार्थ से मिलते हैं तथा चकरौता-देहरादून में

1. The Himalayan Silver Fer.
2. Abies Webbiana, Lindil.
3. Conifereae.
4. Taxus Buccata, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इसे 'थुनेर' कहा जाता है। यह विषैला भी है। अतः इसे स्थौणेयक कहना अधिक उपयुक्त है। तीसरी वनस्पति है जिसे काश्मीरी में 'तालीसफर'[1] कहते हैं। यह हेमन्त[2] हरित वर्ग की वनस्पति है।

लेप द्वारा छींके लाता है। अतः हमें उपर्युक्त यह वनस्पति ही 'तालीसपत्र' जँचती है।

गुण—तालीसं तिक्तकटुकं कृमिवातकफापहम्। तालीसं लघुतीक्ष्णोष्णं, श्वासकासकफानिलान्।
निहन्त्यरुचिगुल्मामवन्हिमान्द्यक्षेयामयान्। (भाव०)

तालीस पत्र मधुर, कटु, तिक्त, अनुरस, उष्णवीर्य, कटु, विपाकी, लघु, तीक्ष्ण, वातकफ, कृमि, श्वासकास, अरुचि, अग्निमान्द्य, गुल्म, क्षयरोग, उदरकृमिनाशक है।

प्रयोग तथा प्रभाव—उष्ण तथा तीक्ष्ण होने के कारण अग्निदीपक तथा वात अनुलोमन है। पाचन तथा उष्ण होने के कारण अतिसारादि में मल का पाचन तथा उष्ण द्रव का शोषण करके मल को बाँधकर लाता है। कटु तथा तीक्ष्ण होने से कफ की उत्पत्ति को कम करता है तथा स्रोतों को शुद्ध करता है एवं मधुर होने के कारण श्वास-वह प्रणालियों, घ्राणवह स्रोतों के कफ को पतला कर बाहर निकालता है। श्वास या कास का वेग भी कम होता है। श्वास-कास में वासास्वरस या हल्दी के साथ सेवन कराया जाता है। क्षयादिकी कास में उत्तम है। एतदर्थं तालीसादि चूर्ण का प्रयोग किया जाता है। श्वास वेगहर है। उसे शान्त करता है। श्वास वेग को शान्त करने के लिए तालीसपत्र हल्दी दोनों को मिलाकर चिलम में रख कर पीते हैं। उदरशूल (अफारा) में काले नमक तथा अजवायन के साथ मिला कर सेवन कराते हैं। अतिसार में इन्द्र जौ के साथ, काली खाँसी (सूखी खाँसी) में मधु के साथ या फाण्ट बनाकर पिलाने से लाभ होता है। उष्ण प्रकृति वालों को धनिया के साथ देना उत्तम है। अन्यथा उन्हें हानि कर सकता है।

योग—तालीसादि चूर्ण २-६ माशा कास, श्वास में।

तैलपत्रम् (सुगन्धिपत्रकम्)

नाम—(हि०) युकेलिप्टस् (गु०) नीलगिरी तैल (अं०) ब्लूगम ट्री[3] आस्ट्रेलियन फीवर ट्री[4] (वा० ले०) यूकेलिप्टस्[5] ग्लोब्युलस्, लवंग वर्ग[6]।

परिचय—तैलपत्र का वृक्ष सुपरिचित है। मूलतः आस्ट्रेलिया देशीय है। आजकल सर्वत्र लगाया जाता है। पत्रों में तीक्ष्ण गन्ध आती है। तैल का व्यवहार होता है। मात्रा १-३ बंद।

गुण तथा प्रयोग—उष्ण, उत्तेजक, कटु, तिक्तरस, कटु विपाकी, शोथ, वेदनाशामक, कफतिक्तरस, कफनिष्का-सक, आक्षेपहर, कफजरोग, प्रतिश्यायादि नाशक है। बाह्य प्रयोग में संक्रमण तथा कृमिनाशक, क्षोभक, उत्तेजक है। त्वचारोगों में १ भाग तैल १० भाग मरिचादि तैल या कटु तैल में मिलाकर तथा आमवातादि की वेदनाओं में नारायण तैल में समभाग मिलाकर अभ्यंग कराया जाता है। प्रतिश्याय आदि में सूँघा जाता है।

कास श्वास में वेगों को रोकने के लिए १½ सेर जल में ४-६ बूंद डालकर उसके वाष्प लेते हैं। अन्तः प्रयोग में इसका प्रयोग अधिक नहीं होता है। प्रतिश्याय सरदी नें शर्करा में डालकर खाते हैं। अधिक मात्रा में नहीं देना चाहिए।

---

1. Rhododendron Anthopogon D. Don.
2. Ericaceae.
3. Blue gum Tree.
4. Australian Fever Tree.
5. Eucalyptus Globulus, Labill.
6. Myrtaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दुरालभा (यवासा)

वक्तव्य—दोनों के गुण कर्म समान हैं तथा दोनों एक दूसरे की प्रतिनिधि हैं। अतः दोनों का एक साथ ही वर्णन किया गया है। यवासा-धन्वयास (अरबी) की भारतीय जाति है।

नाम—(सं०) दुरालभा, धन्वयास-मरुद्भवः (हि० म०) धमांसा (पं०) ध्मोहं (गु०) धमासो (बं०) दुरालभा (क०) नुस्त्युन बाक्कि (अं०) केमल थोर्न[1] (वा० ले०) अल्हागी केमलोरम्[2] अपराजिता वर्ग[3]।

(२) यास शर्करा (सर्वभाषा) तुरञ्जवीन, (अं०) मन्ना[4]।

(३) (सं०) यवासः दुस्पर्शः (हि० बं० म०) जवासा (गु०) जवासो (वा० ले०) अल्हागी मारोरम्[5], अपराजिता वर्ग।

गुण—धन्वयासो हिमस्तिक्तः कषायो मधुरो लघुः। सरोनिहन्ति पित्तास्र कफमेदोभ्रमात्।

वीसर्प कुष्ठ वातास्र तृष्णावमिज्वरान्। दुरालभा गुणैस्तुल्यो बुधैरुक्तो यवासकः। (कै०)

कषाय मधुरा सतिक्ता यासशर्करा। (च० सू० २७)

यास शर्करा मधुर कषाया तिक्तानुरसा श्लेष्महरीचेति। (सु० सू० ४५)

धमांसा तथा जवासा मधुर, रस, तिक्त, कषायानुरस, शीतल, मधुर विपाकी, लघु, मृदुरेचक, कफनिष्कासक, रक्त तथा पित्त कफ, भेद (गादकता) तथा भ्रम (चक्कर आना) शामक है। त्वचारोग, रक्तदुष्टि, वातरक्त, प्यास, कास, वमन, तृष्णा, ज्वरशामक है।

प्रयोग तथा प्रभाव—स्निग्ध तथा कफ निष्कासक होने से गले के शोथ, कर्कशता तथा कासश्वास में शुष्कता को नष्ट कर उन्हें स्निग्ध करते हैं। कफ को पतलाकर बाहर निकालते हैं। प्रतिश्याय, गले की शोथ, श्वास प्रणाली, तथा फुप्फुस शोथ में उष्णता तथा घर्षण को शान्त करते हैं। ज्वरों में इनका हिम या काढ़ा बनाकर पीने से प्यास, दाह, कण्डु आदि नष्ट होती है। मल-मूत्रका-विसर्जन होता है। जिससे दोष शरीर से बाहर निकल जाते हैं। मुख पाक तथा दाह में, धमांसा के काढ़े से कुल्ले कराते हैं। शीतपित्त, अतिसार में काढ़ा लाभकारी है। भ्रम (सिर चकराना) में धमांसा क्वाथ में घी डालकर पिलाने से अत्यन्त लाभ होता है। अनुभूत है। गर्मी में उष्णताजन्य सब रोगों में उत्तम है।

इनकी शर्करा 'दुरालभाक्वाथकृता शर्करा' (चक्र०) तथा 'यवासक्वाथधनीभावात् शर्करा कृता यवास शर्करा' (डल्हण) जो अरबादि देशों से आती है। ललाई की झलक लिए सफेद-सी होती है। मधुरता के साथ-साथ कुछ कुस्वाद भी होता है। यह मृदुरेचक, कफनिष्कासक होती है। सुकुमार, बाल, वृद्ध तथा राजयक्ष्मी आदि के लिए उत्तम रेचक पदार्थ है। इमली, आलू बुखारा, उन्नाब के साथ देना उत्तम है। यह रक्तशोधक एवं पित्तनिष्कासक भी है। मात्रा १-२ तोला तक।

यवासा भारत में तथा धमांसा मिस्र, अरबादि देशों में पाई जाती है। धमांसा (तुरञ्जबीन) विशेष विधि से प्राप्त की जाती है।

पुष्करमूलम् (काश्मीर, पद्मपर्ण, सुगन्धिकम्)

परिचय—यह काश्मीर में ९ हजार फुट पर होने वाली वनस्पति है। मूल अति सुगन्धित कुष्ठ के समान किन्तु उससे उज्ज्वल वर्ण की होती है।

---

1. Camel thorn.
2. Alhagi Camelorum.
3. Papilionaceae Fisch
4. The Manna.
5. Alhagi Maurorum, Loest.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रस—कटु, तिक्त
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
दोष—वातकफशामक
प्र० अं०—फुप्फुस
वि० गु० क०—उष्ण, उत्तेजक, हिक्का, पार्श्वशूलशामक
मात्रा—४ रत्ती से २ माशा तक

नाम—(सर्वभाषा) पोहकर, मूल-पुष्कर मूल (वा० ले०) इन्युला रेसिमोसा[1], सूर्यमुखी वर्ग ।[2]

गुण—पुष्करमूलं हिक्का श्वासकास पार्श्वशूलहराणाम । (च० सू०)

पौष्करमूल, कटुतिक्त, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, वातकफ, दोषहर, कास-श्वास, हिक्का, पार्श्वशूल अरुचि शोथ तथा पाण्डु रोग शामक है ।

पौष्करं कटुकं तिक्तमुष्णं वातकफ ज्वरान् । हन्ति कासारुचिश्वासान् विशेषात् पार्श्वशूलनुत् । (भाव०)

यह कुष्ठ के समान ही गुण तथा प्रभावकारी है । उत्तेजक, शीतहरं, शोथ, त्वग्रोगनाशक है । वातकफ के रोगों में जुकाम प्रतिश्याय, वातकफज ज्वर (एन्फुरजा) न्यूमोनिया, प्लीरसी, पुरानी खांसी आदि में इन अंगों की कला में उत्पन्न शोथ को शान्त करता है । रोगाणु नष्ट होते हैं । कफ की दुर्गन्धि नष्ट होती है । आमदोष का पाचन होता है । वातिक वेदनाएँ नष्ट होती हैं । रजः कृच्छ्रता में भी पुष्करमूल लाभ करता है । श्वास तथा हिक्का में पुष्करमूल, यवक्षार काली मिर्च में मिलाकर मधु के साथ सेवन से लाभ होता है । उदर कृमियों में इसके साथ सहिजने के बीजों का चूर्ण देने से लाभ करता है ।

प्राचीनामलकं

नाम—(हि०) पानी आंवला (वं०) पनीआला (गु०) पानांवला (अ०) तोवट (बम्बई) जग्गम, फ्लेकोर्टिया[3] कलाफ्रेक्टा रोक्सब, विकंलकतादि वर्ग[4] ।

गुण—प्राचीनमलकं रुच्यमुष्णं गुरुगरापहम् । वातघ्नं पित्त कफहृत् पक्वं तु वरपीलुवत् । (कै०)

पानी आंवला का लघुवृक्ष बंगाल, नेपाल, आसाम तथा बम्बई आदि समुद्रान्त प्रदेशों में पाये जाते हैं । फल आमले जैसे, पुष्प मई जून में फल जुलाई-अगस्त में यह रुचिकारक उष्ण, गुरु, विषहर, त्रिदोषघ्न, पौष्टिक-विशेष कर पित्त शामक है ।

खांसी में वासापत्र के साथ इसके पत्तों का काढ़ा बनाकर देने से लाभ होता है । स्वरभंग में छाल का काढ़ा तथा पित्तशमनार्थ फलों का प्रयोग होता है ।

बदरम्–राजबदरम् सौवीर, राजकोल

नाम—(हि०) बेर, उन्नाब (व०) कुल (म०) बोर, उन्नाब ।(गु०) बोरडी, (मा०) बोर (अं०) जुजुबे[5] फ्रूट, (वा० ले०) जिजिफस[6] वलगेरिस्, बदरीवर्ग[7] ।

---

1. Inula Racemosa, Hook.
2. Compositeae.
3. Flacourtia Calaphracta, Roxb.
4. Flacourtiaceae.
5. Jujube Fruit.
6. Zizyphus Vulgaris, Laruk.
7. Rhamnaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य--बदरी की अनेक जातियाँ है। औषधियों में गोल-लाल बेर काम में आता है। जो भारत में हिमालय (काश्मीर) विलोचिस्तान में होता है तथा ईरान और चीन से आता है। इसका वीर्य दो वर्ष तक सुरक्षित रहता है। उत्तम उन्नाब, खूब बड़ा, लाल, मांसल, स्वादिष्ट होता है। इसमें कषायता बिल्कुल नहीं होती।

गुण--सौवीरं मधुरं स्निग्धं स्वादुपाक रसं हिमम्। भेदनं गुरु विष्टभि बृंहणं कफशुक्रलम्॥
पित्तमारुततृड्दाह क्षतरक्त क्षयापहम्॥ (के० आ०)

उन्नाव या बड़ा बेर मधुर, शीतल, मधुर विपाकी, वात-पित्तशामक, कफ, वीर्यवर्धक, मृदुरेचक, गुरु, प्यास, दाह, क्षत, रक्तपित्तक्षत, क्षयरोग नाशक है।

प्रयोग तथा प्रभाव--मीठे बेरों में शर्करा तथा पिच्छिलता पाई जाती है। वे स्निग्ध पौष्टिक, मूत्रल, तथा सारक होते हैं। कफ निष्कासक, रक्त प्रसादन तथा उष्णताशामक है। अतएव पैत्तिक प्रतिश्याय, सूखी खांसी गले की कर्कशता, दाह और जलन में उन्नाब का प्रयोग किया जाता है। पित्त ज्वरों, मसूरिकादि में प्यास एवं ज्वर की उग्रता मिटाने के लिए इसका काढ़ा पिलाया जाता है। कासश्वास में शर्बत पिलाया जाता है। बीज की मींगी वमन नाशक है।

बेर के पत्र तथा मूल कषाय रसवाले और संग्राही होते हैं। अरुचि या जी मिचलाना बन्द करने के लिए बेर की गुठली, मधु और लौंग मिलाकर देते हैं। ज्वर में पित्त के कारण वमन और तीव्र प्यास होने पर उन्नाव की गुठली और मूलेठी को चूसे। व्रण शोथ को फोड़ने के लिये पत्तों का उपनाह, मुख पाक में बेर और बब्बूल की छाल के काढ़ा से कुल्ले करने से, स्वरभंग, श्वास कास में पत्तों को सेंधा नमक के साथ पीसकर घी में तलकर खाने से लाभ होता है।

भव्यम्

नाम--(बं०) चालता (म०) करंबल मोठेकरमल (नेपाली) रामफल (वा० ले०) डिलेनिया इण्डिका[1], भव्य वर्ग[2]।

गुण--हृद्यं स्वादु कषायाम्लं भव्यमास्य विशोधनम्।
पित्तश्लेष्मकरं ग्राहि गुरु विष्टम्भ शीतलम्॥ (सु० सू० ४६)

भव्य रस में मीठा-कषाय, गुरु, अम्ल, शीतवीर्य-मधुर विपाकी हृद्यंग्राही, विष्टम्भि, मुख शोधक, पित्त तथा कफ व्याधिनाशक है।

फल का रस शक्कर में मिलाकर देने से कफ पतला होकर निकलने लगता है। वृक्ष की त्वचा ग्राही है। इसका अधिक प्रयोग नहीं होता।

भारंगी (ब्राह्मण यष्टिका, स्वरशाक)

परिचय--भार्ङ्गी के नाम से दो तीन वनस्पतियाँ ली जाती हैं। यह वनस्पति सर्वत्र छोटे-छोटे पहाड़ों में प्राप्त होती है।

पुष्पकाल--नवम्बर-दिसम्बर
व्यं० अं०--मूल-मात्रा 1-4 माशा

---

1. Dillenia Indica Linn.
2. Dilleniaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रस—कटु तिक्त, कषाय

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—वात कफशामक

प्र० अं०—फुप्फुस

वि० गु० क०—श्वासकास, प्रतिश्यायादिशामक।

नाम—(क०) गुंटभारंगि (तै०) भ्रमरि (ता०) चिरहेक्कू (बं०) ब्राह्महाटी (अन्य भाषाएं) भारंगी (वा० ले०) क्लेरोडेन्ड्रोन् सेरेटम्[1] निर्गुण्डी वर्ग[2]।

गुण—भार्ङ्गी तिक्ता कषायोष्णा दीपनी पाचनी लघुः। कटंवी रूक्षा ज्वरश्वास कास शोफ कफनिलान्।
पीनसारुचि गुल्मास्त्रयक्ष्मणं विनियच्छति। (कै०)

भारंगी—कड़वी, कसैली, कटु, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, लघु वातकफ शामक, ज्वर, श्वास, कास, शोथ, पीनस (नजला) अरुचि,गुल्म, यक्ष्मा–रक्तपित्तशामक है।

प्रयोग तथा प्रभाव—उष्ण, रूक्ष तथा कटु विपाकी होने से सब प्रकार की शोथ की शामक है तथा दोषों को बखेर देती है। स्रावों की उत्पत्ति कम करती है। विशेषकर फुप्फुसों की तथा नासा-गले की कला की शोथ को शान्त करती है। स्रावों को सुखाती भी है। अतः प्रतिश्याय–पीनस (जुकाम नजला) कफ की खांसी न्यूमोनिया आदि में लाभ करती है।

इन्हीं गुणों से तथा अग्नि दीपन होने से पाचन उत्तम होकर आहार के सात्म्यीकरण में सहायक होती है। अतः यक्ष्मा आदि में पौष्टिक है। कफज कास-श्वास में समभाग शुंठी मिलाकर अदरक के साथ सेवन करने से लाभ होता है। राजयक्ष्मा, गंडमाला, तथा कास, एवं मांस क्षय में लाभ करती है।

योग—(१) भारंगी गुड-१ तोला–क्षीणता, राजयक्ष्मानाशक।
(२) भारंग्यादिक्वाथ—श्वास-कास तथा सन्निपात में।

वक्तव्य—भारंगी के नाम से एक दूसरी वनस्पति (जो पहली से बड़ी होती है) "क्लेरोडेन्ड्रोन सिफ़ानेन्थस्[3]" है। यह कड़वी तथा कसैली होती है। इसे भी भारंगी में प्रयुक्त करते हैं।

वंशरोचना (तुगाक्षीरी-वंशक्षीरी)

नाम—सर्वभाषा—वंशरोचक, वाँस कर्पूर, वांस लोचन, तथा तवाशीर (अं०) बेम्बु मेन्ना।

परिचय—यह बांस की गाँठों में जमी हुई मिलती है। यह बर्मा से आती है। बहुत पुराने बांसों में पाई जाती है। इसमें मुख्य पदार्थ 'सिसिका' होता है। आजकल कृत्रिम भी बनाई जाती है।

गुण—कषाया मधुरा शीता कासघ्ना वंशरोचना, मूत्रकृच्छ्र क्षयश्वासहिता बल्या च बृंहणी। (ध० नि०)।

बंस लोचन,मधुर, कषाय, शीतवीर्य, मधुर, विपाकी, मूत्रकृच्छ्र, क्षय, श्वास, कास नाशक वल्य तथा बृंहण है।

यह हृदय को बल देने वाली है। पित्त के कारण उत्पन्न उष्णता, वमन, हृदय स्पन्दन (धड़कन) की नाशक है। यकृत् तथा आमाशय के लिये लाभप्रद है।

---

1. Clerodendron Serratum, spreng.
2. Verbenaceae.
3. Clerodendron Siphananthus, RB.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ज्वरों में प्यास बुझाने के लिए मधु के साथ, ज्वरों में ताप को कम करने के लिए गिलोय सत के साथ, मूत्रदाह-मूत्रकृच्छ्र में गोखुरु, वंशलोचन,- मिश्री मिलाकर सेवन करने से कास-श्वास में वासा के साथ सेवन से लाभ होता है। बच्चों के कास, वमन में मधु या बांस की गाँठ के साथ, रक्तातिसार रक्तार्श, आदि में वंशलोचन, बबूल गोंद, अनार के फूल, लोणी के बीज, समभाग, शर्करा के बीज, माजूफल, हीरादखिन समभाग शर्करा या मधु सबके बराबर मिलाकर देने से लाभ होता है।

वंशलोचन विदारीकन्द, मुलैठी--तीनों का समभाग चूर्ण बना दूध के साथ देने से वीर्यबल देता है।

योग—सितोपलादि चूर्ण मात्रा १-३ माशा। श्वास कास जीर्ण ज्वरनाशक।

शटीद्वयम् (कर्चूरी, गन्धशठी च)

परिचय—दोनों ही हरिद्रा के स्थान पर प्रयुक्त होती है। कर्चूर दक्षिण में बहुत पाया जाता है। गन्धशठी हिमालय में, इनकी खेती भी की जाती है।

व्य० अं०—कन्द

रस--कटु, तिक्त

वीर्य--उष्ण

विपाक—कटु

दोष--त्रिदोषहर

प्र० अं०--फुप्फुस कला प्रभावक

वि० गु० क०—सुगन्धित, उष्ण, वातशामक, कफहर, श्वासकासशामक

मात्रा--३-६ माशा

नाम--कर्चूर (हि०) कचूरा, कचौरा, नरकचूर (बं०) शटी (म०) कचोरा (गु०) कुचूरो, पटकचूरो (वा० ले०) कर्क्यूमा झेडोरिया[1], हरिद्रा वर्ग[2]।

गन्धशटी—सर्वभाषा-कचूर वाचरी, कचूर कचरी (वा० ले०) हिडेचियम् स्पाईकेटम्[3]।

गुण--रोपनो दीपनोहृद्यः सुगन्धिस्त्वग्विवर्जितः। कर्चूरः कफवातघ्न श्वासहिक्कार्श संहिताः॥ (च० सू० २७)

शठा तिक्ता कटुस्तीक्ष्णा कषाया ग्राहिणी लघुः। अनुष्णा मुखवैरस्य मल दौर्गन्ध्यनाशिनी।
छर्दि कास व्रण श्वास शूलहिध्माज्वरापहा॥ (कै०)

नरकचूर कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, रोचक, दीपन, सुगन्धि, कफवात, श्वास, हिक्का, प्लीहा, गुल्म, खाँसी तथा तथा अर्शशामक है।

कपूर काचरी भी उक्त गुणों वाली है। किन्तु नरकचूर की अपेक्षा कम उष्ण तथा ग्राही है।

प्रयोग तथा प्रभाव--कटु रस, दीपन, आदि होने से रुचिकारक सौमनस्यजनन, यकृत् आमाशय बलदायक, वात का अनुलोमन, मूत्रल तथा कफ, आर्तवस्रावक है। कफ निष्कासक है।

फुप्फुस तथा श्वास प्रणाली के रोगों में विशेष गुणकारक है। क्षोभ को शान्त करके शोथ को दमन कर कफ का निष्कासक है। मुख को सुगन्धित तथा विशद बनाने के लिए, दान्तों की पीड़ा को नष्ट करने के लिए इसे मुख में

---

1. Curcuma zedoria, Roxb.
2. Scitaminaceae.
3. Hedychium Spicatum, Ham.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रखकर चबाया जाता है। प्रतिश्याय जुकाम में कचूर-पीपल-दालचीनी चूर्ण मधु से चटाने से अतिलाभ करता है। सूखी खाँसी में तथा सर्दी में इसे चूसा जाता है। इसमें मिश्री, कालीमिर्च, मुलेठी मिलाकर काढ़ा सेवन से और भी लाभ होता है।

योग—छर्दिरिपु (रसादर्श) चन्द्रप्रभावटी।

श्लेष्मातक (लेशसारः, बहुवारक)

परिचय—लसोड़ा के कई भेद हैं। सर्वत्र उपलब्ध।

व्य० अं०—फल, छाल

पुष्पकाल—फाल्गुन-चैत्र

रस—मधुर, कषाय, तिक्त

वीर्य—शीत (फल)

विपाक—कटु विपाकी

प्र० अं०—फुप्फुस

वि० गु० क०—स्निग्ध, सर, कफनिष्कासक

मात्रा—५-१५ दाने

नाम—(हि०) लिसोडा, लसूडा (बं०) बहुवार (म०) भोंकर (गु०) बडगूंदा, गूंदा (क०) चल्लेगिड् (तै०) नाक्केबिलि, नाक्केरुचेट्टू (ता०) नारुबिलि (अं०) लार्ज सेबेस्टेन प्लम[1] (वा० ले०) कार्डिया लेटीफोलिया[2] (छोटा श्लेष्मातक)। (हि०) गोंदी, गुंदी, गोदनी (म०) (अं०) स्माल सेबेस्टोन प्लम[3] (वा० ले०) कार्डिया मिक्सा[4] श्लेष्मातक वर्ग।[5]

गुण—शेलुः केश्यः सतिक्तोष्णो मधुरस्तुवरः कटुः। विषवीसर्प विस्फोट व्रणपित्तकफप्रणुत्॥
फलं तु मधुरं शीतं तिक्तकं वातलं लघु। कषायंकटुकं पाके ग्राही पित्तकफास्रजित्॥ (कै०)

लसोडा (वृक्ष) मधुर, कषाय, तिक्त, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, केश्य, कफपित्तशामक, विषवीसर्पशामक है। फल (कच्चा) रूक्ष, विष्टम्भि, तिक्त कफ तथा रक्त विकारशामक है। पका फल मीठा, स्निग्ध, गुरु तथा शीतवीर्य, मधुर विपाकी है।

प्रयोग तथा प्रभाव—छाल ग्राही तथा उष्ण है। अतिसार आदि में उपयोगी है। प्रधानतः फल का उपयोग किया जाता है। यह स्निग्ध, मार्दवकारक, कफनिस्सारक, पित्तशामक है। विरेचन, औषधियों में उनके क्षोभ को नष्ट करने के लिए व्यवहृत होता है। किन्तु इसका मुख्य प्रयोग खाँसी और श्वास में किया जाता है। यह गले की शोथ, प्याज, सूखी खाँसी, जलन को दूर करता है। कफ को निकालता है। अतः शुष्ककास, श्वास, न्यूमोनिया आदि में दिया जाता है। लिसोडे का लुआब निकालकर समशर्करा और बब्बूल का गोंद मिला शुष्क कास में चाटते हैं। रक्तार्श तथा मूत्रकृच्छ्र में शुष्क कास में चाटते हैं। रक्तार्श तथा मूत्रकृच्छ्र में इसका लुआब लाभ करता है। सूखी खाँसी जलन को दूर करके स्निग्धता, मृदुता तथा शीतलता को दूर करता है।

योग—मधुयष्ट्यादिक्वाथ।

---

1. Large Sebasten Plum.
2. Cordia Latifolia, Roxb.
3. Small Sebasten Plum.
4. Cordia Myxa. Linn.
5. Boringanceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सोमवल्ली (यज्ञनेता, महागुल्मः)

परिचय—सोम का क्षुप हिमालय पर काश्मीर, गढ़वाल, तिब्बत, चीनादि में पाया जाता है। यह तृण-सा होता है। बहुपर्वी, पर्व पर से आसानी से टूट जाता है। कई जातियाँ हैं।

रस—कषाय, कटु, तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—त्रिदोषशामक

प्र० अ०—श्वास तथा रक्तवाही संस्थान

वि० गु० क०—श्वासशामक, रक्तवाहिनी संकोचक, रसायन

मात्रा—५-१० रत्ती तक

नाम—(हि०) सोमलता (चकरौता-देहरादून) टूट गेठा, काश्मीर-फोक (चीनी) या होगं (वा० ले०) एफेड्रा वल्गेरिस[1], सोमवर्ग[2] (बम्बई) होम

गुण—सोमवल्ली कटुस्तिक्ता त्रिदोषघ्नी रसायनी। (कै०)

सोमलता कड़वी, (गीली) तथा कषाय (सूखी) रसवाली, त्रिदोषशामक, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, अनुलोमन, मूत्रल, यकृदुत्तेजक, आमवातशामक, श्वासनाशक है। इसका काढ़ा या फाण्ट आमवात की पीड़ा को शान्त करता है। मलमूत्र को बाहर निकाल कर ज्वर तथा शोथ को शान्त करता है।

प्रभाव तथा प्रयोग—मुख द्वारा सेवन करने के आधा घण्टा बाद इसका प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगता है और २-३ घण्टों तक रहता है। रक्तवाहिनियों के संकोच के कारण रक्तभार बढ़ जाता है। यद्यपि प्राणदानाड़ी की उत्तेजना के कारण हृदय की गति न्यून हो जाती है। इससे आन्तों की गति भी मन्द हो जाती है। श्वास प्रणालियाँ विस्तृत हो जाती हैं। गर्भाशय का संकोचक वृक्कों में रक्तभार बढ़ाकर मूत्र का प्रमाण बढ़ा देता है। रक्त में शर्करा की मात्रा भी बढ़ जाती है। तारा (पुतली) विकसित हो जाती है।

रक्तवाहिनियों का संकोचक होने के कारण रक्तस्राव में इसके क्वाथ लगाने से स्राव बन्द होता है। कषाय रस संकोचक तथा स्रावशोधक है। इसके काढ़े में कर्पूर तैल मिलाकर सूंघने से प्रतिश्याय, वातकफ ज्वर में लाभ होता है।

तमकश्वास में लाभप्रद है, किन्तु उपद्रवयुक्त तीव्र श्वास में अधिक लाभ नहीं करती। कुत्ताखाँसी[3] (वातिक शुष्ककास) में वेग की तीव्रता तथा वमन को कम करती है। शैय्यामूत्र (बच्चों और बड़ों में भी) में तथा रक्तभार-न्यूनता, अतिरक्तस्राव को बन्द करती है।

विषलक्षण—अतिरक्त, स्राव को बन्द करती है। अधिक मात्रा में लेने पर शिरःशूल, भ्रम, अरति, जीमचलाना, पसीना, प्यास, हृदय बेचैनी, मांसपेशियों में कम्प तथा उन्माद। उक्त लक्षण उत्पन्न होने पर औषधि छोड़ दें। यदि प्रवाल भस्म के साथ मक्खन या मलाई के अनुपात से ली जाए तो उक्त लक्षणों की सम्भावना घट जाती है। पाश्चात्य वैद्यक में इसका सत्व[4] प्रयुक्त होता है। मात्रा $\frac{1}{8}$-१ रत्ती तक। इसके गुण भी उपर्युक्त ही है। सोम का पंचांग प्रयोग में आता है।

---

1. Ephedra Vulgaris, Rich.
2. Gnetaceae.
3. Whooping Cough.
4. Ephedrine Hydrochloride (एफेड्रिन हाइड्रोक्लोरइड)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सुद्दाब

नाम—(हि०) सिताब (बं०) इस्पन्द (म०) सत्ताप (गु०) सताब (अं०) गार्डन रू[1] (वा० ले०) रूटा ग्रेविओलेन्स्[2], हरमल या सताप वर्ग[3]।

परिचय—यह छोटा-सा क्षुप मूलतः विदेशी है, किन्तु अब भारत में स्वयं जंगलों में तथा बागों में उगता है। व्यवहार में पंचांग आता है। मात्रा १-४ माशा चूर्ण, स्वरस १-२ तोला।

गुण तथा प्रयोग—सुद्दाब उष्ण, उत्तेजक शोथशामक, दोषों तथा मलों का प्रवर्तक, कृमिघ्न, आक्षेपहर स्वेदल, वातनाड़ियों का उत्तेजक तथा मूत्र, आर्तवजनन है। यकृत्, आमाशय और प्लीहा पर इसकी विशेष क्रिया होती है। यह इनको बल देता है तथा उनके कार्य को उत्तेजना देता है। त्वचा, वातनाड़ियों तथा गर्भाशय को भी उत्तेजित करता है। बच्चों तथा स्त्रियों के रोगों में बहुधा प्रयोग करते हैं। अनार्तव रजःकृच्छ्रता तथा योषापस्मार में फाण्ट लाभ करता है। बच्चों के जुकाम, खाँसी तथा सर्दी, ज्वर, उदरशूल, आध्मान और आक्षेप में स्वरस मधु में मिलाकर दिया जाता है। ज्वरों में देने से पसीना-मूत्र अधिक मात्रा में आता है। नाड़ी की गति ठीक होती है। गृध्रसी, वातरक्त तथा अन्य पुरानी वेदनाओं में लाभ करता है।

हंसपदी (विपादी-कीटमारी)

नाम—(हि०) हंसराज, सभलपत्ती (बं०) गोयालिया लता (म० गु०) हंसराज (वा० ले०) एडियन्टम् ल्युन्युलेटम्[4], हंसराज वर्ग[5]।

परिचय—यह जलाशय, कूपों तथा जलाढ्य स्थानों पर उत्पन्न होती है। आयुष्य वनस्पति है। जिसके कई भेद हैं। पंचांग का उपयोग होता है। छः मास के बाद इसका वीर्य निर्बल हो जाता है। एक वर्ष के बाद यह निःसत्व हो जाती है। मात्रा १-३ माशा।

गुण—हंसपदी हिमा गुर्वी रोपणी हन्तिशोणितम्। दाहातिसार वीसर्प लूताभूत विषव्रणान्॥ (कै०)

हंसराज कुछ तिक्त, शीतल, गुरु, व्रण रोपक, कटु विपाकी, रक्तविकार, वीसर्प, विष, शोथ अतिसार शामक है।

यह कफ का पाचक, लेखन-मूत्र तथा आर्तव उत्पादक तथा दोषों को पतलाकर बहाता है। वातश्लेष्म या श्लेष्म ज्वरों, प्रतिश्याय, फुप्फुस शोथ, उरःशूल, कास-कृच्छ्रश्वासशामक है। बड़ी मात्रा में यह वामक है। कण्ठमाला, मुखपाक तथा मुखस्थ व्रणों पर इसका चूर्ण छिड़का जाता है। आर्द्र व्रणों का शोधक है। अधिक मात्रा में वामक है। सिर पर लेप लगाने तथा तैल बनाकर लगाने से बाल नहीं झड़ते। इसका शर्बत इलायची वंशलोचन, मिलाकर सेवन से कास-श्वासशामक तथा बलवर्धक है।

एलोपैथी में इसी जाति के एक क्षुप[6] विशेष का उपयोग तरल द्रव[7] के रूप में फीते[8] जैसे कृमि को मारने के लिए किया जाता है। १-२ माशा की मात्रा में हंसपदी द्रवसार खाली पेट दो मात्राओं में दिया जाता है। इसके सेवन से पहले तथा पीछे दोनों ही बार विरेचन देना चाहिए।

विरलावस्था में यह वमन तथा विरेचन करती है। विरेचन में रक्त भी आता है। अत्यन्त विरल रूप में आक्षेप, श्वासकष्ट, मूर्छा भी उत्पन्न करती है। इसे दूध में मिलाकर देना उत्तम है। सेवन के पश्चात् रोगी आराम से लेटा रहे। और २ घण्टे पश्चात् विरेचन का सेवन करें।

---

1. Garden Rue.
2. Ruta graveolens, Linn.
3. Rutaceae.
4. Adiantum Lunulatum, Burn.
5. Felices.
6. Dryopteris Filix mass.
7. Ext. Filics. (एक्स्ट्रेक्टम फिलिक्स्)
8. Tape Worm.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अट्ठाइसवाँ अध्याय

वात संस्थान प्रभावक

(शामक, उत्तेजक, स्वापजनन, वेदनाशामकादि)

अहिफेन (आफूकं, खसफलक्षीरम्)

परिचय--अफीम का क्षुप १-३ फुट ऊँचा है। हिमालय तथा मध्य भारत आदि में इसकी खेती की जाती है। रंग-बिरंगे पुष्प आते हैं। प्रायः सर्वत्र मिलती है। क्षुप को खाखस, फल को खाखस फल या खसफल (पोस्त डोडा), बीजों को खसबीज या खसखस कहते हैं। तीनों ही का औषधियों में व्यवहार होता है। फल के निर्यास का नाम अफीम है। पुष्प पौष या माघ में आते हैं। फलों को यथासमय चीरा जाता है। उनमें से दूध समान जो स्राव निकलता है वही अफीम है।

निर्यास (अफीम) रस—तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

बीज—मधुर, कषाय, शीतवीर्य, मधुर विपाकी

फलत्वक्—कषाय, शीतवीर्य, मधुर विपाकी

प्र० अं०—वातसंस्थान

दोष—कफहर, वातपित्तवर्धक

वि० गु० क०--निर्यास-ग्राही, वेदनाशामक, स्वापजनन, रक्तस्तम्भक

बीज—शीतल, रूक्ष, पौष्टिक, मूत्रल, पित्तशामक

फलत्वचा--रूक्ष, शीत, ग्राही, वेदनाहर, रक्तस्तम्भक

मात्रा—खसफल बीज ४ माशा से १ तोला तक, अफीम $\frac{१}{४}$ से १ रत्ती तक

शोधन--गरम जल में घोलकर अफीम को छान लें। पुनः अदरक के रस में २१ भावना देकर काम में लावें।

खसफल तथा खसबीज

नाम--(१) (हि०) पोस्तडोडा, पोस्त (गु०) अफीणनाडोडका (म०) पोस्त (बं०) पोस्तोघरी (अं०) पापी कैपसूल[1]।

(२) (हि०) खसखस, खशखश (म० गु० बं०) खसखस (अं०) पोपी सीड[2]।

गुण—फलत्वचा या सम्पूर्ण फल (बीजों सहित) ग्राही, शीत रूक्ष, वेदनाशामक, शोथहर, स्वापजनन और रक्त स्तम्भक है। कटिशूल, आमवात, गृध्रसी, शिरःशूल आदि में इनका लेप तथा स्वेद (सेक) किया जाता है। कर्णशूल

1. The Poppy Capsule.
2. Poppy Seeds.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

में इसकी वाष्प का सेक देते हैं तथा योनिशूल, रजःकृच्छ्रता की वेदनाएँ तथा प्रसवोत्तर वेदना शान्ति के लिए इसके काढ़े का स्वेद अतिलाभकारी है। क्वाथ पिलाया भी जाता है। ग्राही होने से अतिसार में ४-६ माशा तक डोडे पीसकर पिलाए जाते हैं। गल शोथ में डोडे तथा अजवायन दोनों के काढ़े से कुल्ला कराया जाता है। चातुर्थिक ज्वर में १ डोडा तथा ७ काली मिर्चें कूटकर काढ़ा बनाकर दिया जाता है। बीजों सहित छः डोडों का काढ़ा बनाकर २½ छटाँक शक्कर का शर्बत बनाकर ३ तोले की मात्रा में जल मिलाकर पीने से जुकाम (प्रतिश्याय) और खाँसी मिटती है। प्रतिश्याय से उत्पन्न खाँसी में २ डोडे, २ माशा सैन्धा नमक, ३० तोला जल में औटाकर १० तोला शेष रखकर रात को सोते समय पिलाने से लाभ होता है। रक्तष्ठीवन या अन्त्र से रक्तस्राव होने पर अत्यन्त लाभ करती है। इसे सदा मधु शर्करा (glucose) या रुमीमस्तगी (कुन्दुरू) के साथ देना चाहिए। अन्यथा फुप्फुसों तथा शीत प्रकृति को हानि कर सकती है।

खसबीज—खसबीज मधुर कषायरस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी मूत्रल तथा पौष्टिक होते हैं। अनिद्रा तथा वेदना को भी कुछ सीमा तक शान्त करता है। १-२ तोला तक चूर्ण समभाग शर्करा मिलाकर सेवन करने से मस्तिष्क, यकृत्, वृक्कों को शक्ति देता है। नींद उत्तम आती है। वेदना तथा आन्तरिक रक्तस्राव बन्द होता है। जीर्ण ज्वर व खाँसी मिटती है। मूत्रकृच्छ्र में बादाम, कालीमिर्च चारों मंगज, इलायची के साथ पीसकर सेवन करने से अत्यन्त लाभ होता है। प्रतिश्याय में खसखस पाक अति उत्तम सिद्ध होता है। यह मूत्राशय क्षोभ तथा मूत्राशय शोथ, वृक्क शोथ में लाभदायक है।

योग—खसखस पाक ½-१ तोला दूध के साथ जीर्ण प्रतिश्यायनाशक है।

अहिफेन

नाम—(हि०) अफीम (बं०) अमोंग, अफींग अफिम (गु०) अफीण (मं०) अफू, अफ्यूम (अं०) ओपियम्[1] (वा० ले०) पेपावर सोम्निफेरम्[2], अहिफेनादि वर्ग[3]।

गुण—आफूकं शोधणं ग्राही कफघ्नं वातपित्तलम्। अहिफेनं रसे तिक्तं विपाके कटुकं विषम्।
स्तम्भनं रूक्षमुष्णं च वेदना स्थापनंपरम्। स्वेदनं स्वापजननं कफ रोग विनाशनम्। (भा०)

अफीम तिक्त, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, रूक्ष, शोधक, स्वेदल, स्तम्भन, वेदनाशामक, निद्राजनक, कफरोग नाशक है।

प्रयोग तथा प्रभाव—अफीम एक दिव्य औषधि है जो चिकित्साशास्त्र में अति महत्व की है। 'विषं प्राणहरं तत्तु युक्तियुक्तं रसायनं' न्याय इस पर पूर्णतया चरितार्थ होता है। अतः इसके विषय में विशेष जानकारी आवश्यक है।

बाह्य प्रयोग में अफीम का प्रयोग लेपादि रूप में थोड़ा-बहुत किया, जाता है। क्योंकि अक्षत त्वचा से यह अत्यन्त अल्प प्रमाण में शरीर में प्रविष्ट होती है। और जब तक यह अत्यल्प मात्रा में शरीर में प्रविष्ट होती है और जब तक मस्तिष्क में पहुँच न जाए इसका प्रभाव नहीं-सा होता है। मस्तिष्क के पश्चात् ही अन्य अंगों पर इसका प्रभाव होता है।

अन्तः प्रयोग—महास्रोतस्–उष्ण रूक्ष तथा कटु विपाकी होने से यह व्रणों की शोधक है। अतः मुख, जिह्वा तथा आमाशय स्रावों को कम करती है। स्वल्प मात्रा (१⁄१६ गुंजा) में भूख को कम करती है, किन्तु आमाशय की गति को बढ़ाती है, अतः पाचक भी है। किन्तु, बड़ी मात्रा में आमाशय की गति में शिथिलता उत्पन्न करके पाचन में विलम्ब

---

1. Opium.
2. Papaver Somniferum.
3. Papaveraceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

करती है। वेदना शान्त होती है। प्रायः इससे वमन तथा अरति (जी मचलाना) भी मस्तिष्कस्थ वामक केन्द्र की उत्तेजना के कारण अफीम के प्रभाव की समाप्ति पर उत्पन्न हो जाते हैं। अन्त्रों में जाकर यह वेदनाशामक स्रावशोधक, तथा विबन्ध उत्पादक (कब्जी) प्रभाव करती है। क्योंकि इससे आन्तों की कृमिवत् आकुंचन गति मन्द होती है। जिससे द्रव का आशोषण अधिक समय तक होने से मल कठोर हो जाता है। मस्तिष्क के शैथिल्य के कारण शौच की इच्छा भी शिथिल हो जाती है। जिससे मल अधिक समय तक आन्तों में रहता है। अतः यह आन्तों पर संशमन, संग्राही तथा वेदना हर प्रभाव डालती है। मस्तिष्क को प्रभावित करके वेदनाशामक तथा आन्तों की अनियमित गति को मन्द कर उदरशूल शान्त करती है। उक्त कारणों से यह आमाशयशूल में व्रण शोथ मदात्ययादि के कारण सर्व प्रकार के अतिसारों में जब आन्तों में से दूषित मल निकल गया हो तो दिया जाता है। विषूचिका (हैजा, कालरा) के प्रारम्भिक अवस्था में जब अतिसार प्रमुख लक्षण हो अतिलाभकारक है, किन्तु शीतांगावस्था में इसे नही देना चाहिए। अन्त्रों के आक्षेप से उत्पन्न उदरशूल तथा उदरकला[1] शोथ में अहिफेन वेदनाशमन तथा गति मन्दता उत्पन्न कर रोग शमन करती है। अर्श, गुद चीर आदि में गुदा के आक्षेप[2], शोथ तथा वेदना शान्ति के लिए अफीम की गुदवर्ती बनाकर दी जाती है।

शोधक तथा रूक्ष गुणों के कारण यह शरीर के सब स्रावों को सुखाती है। किन्तु त्वचा के स्राव तथा दुग्ध ग्रन्थियों के स्राव को नहीं। मातृ दूध में होकर बच्चों तक पहुँचने का अभी तक कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिला है। हाँ, रक्त में मिलकर गर्भस्थ शिशु को हानि पहुँचा सकती है।

हृदय तथा रक्त वाहन संस्थान पर चिकित्सा की मात्रा में कोई विशेष प्रभाव नहीं होता। यद्यपि त्वचा की रक्तवाहिनियों की विस्तृति के कारण मुख लाल हो जाता है। अफीम से हृदयावरोध से मृत्यु नहीं होती, अपितु श्वास संस्थान के आघात के कारण, विष मात्रा में श्वास संस्थान की शिथिलता से जब रक्त में प्राणवायु कम हो जाती है, तो हृदय की माँसपेशियाँ शिथिल हो जाती हैं। श्वास कष्ट तथा मुख श्याम (काला) होने लगता है। किन्तु कृत्रिम श्वास क्रिया से प्राणवायु पहुँचने पर यह लक्षण जाते रहते हैं। हृदय की वेदना तथा हृदय विकृति से उत्पन्न कृच्छ्रश्वास में उपयोगी है। इससे वेदना शान्त होकर नींद आ जाती है और रोगी स्वस्थ हो जाता है। किन्तु जलोदर या पार्श्वशूल के कारण उत्पन्न कृच्छ्रश्वास तथा वृक्क रोगों से उत्पन्न शोथादि में अफीम का न देना ही उत्तम है, यदि देना ही पड़े तो धतूर के साथ मिलाकर देना चाहिए। सब प्रकार के अन्तः रक्तस्राव, आन्तों, फेफड़ों आदि में अफीम लाभ करती है। ग्राही तथा स्तम्भक होने से अन्त्र गति को शिथिलकर, रक्तस्राव को बन्द करती है तथा कास के वेग को कम करके, नींद लाकर मानसिक बेचैनी को भी दूर करती है। रक्त वाहिनियों या रक्त पर इसका कुछ विशेष प्रभाव नहीं होता है। क्षुद्र कास (उथला शौर शीघ्र) को शान्त करती है। श्वास गहरा और कम संख्या में आने लगता है। किन्तु बड़ी मात्रा में श्वास केन्द्र शिथिल हो जाता है। बड़ी मात्रा में श्वास धीमा तथा संख्या बहुत न्यून हो जाती है। यहाँ तक कि विषावस्था में प्रति मिनिट ३-४ श्वास ही आते हैं। कारण, कि इससे मस्तिष्क में स्थित श्वास केन्द्र शिथिल हो जाता है। उसकी शिथिलता से श्वासावरोध होकर मृत्यु तक भी हो सकती है। श्वास के समान कास केन्द्र भी स्वल्प मात्रा से ही शिथिल हो जाता है। अतएव श्वास के वेग में इसे दिया जाता है। किंच यह कफघ्न भी है। किन्तु कास-श्वास में इसे सावधानी बर्तना चाहिये। शुष्क कास में, जब खांसी बारबार आती हो, निद्रा न आती हो, श्याव वर्ण या प्राण वायु के अभाव के लक्षण न हो यथा श्वसनक ज्वर[3], सजल फुप्फुसावरण[4] शोथ, आदि में दी जा सकती है। किन्तु जब फेफड़ों में पर्याप्त कफ भरा हो तथा खांसी कफ को निकालने के लिए आ रही हो या वृद्धों, तथा निर्बलों में या कफजकास में तो इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। राजयक्ष्मा में या अन्य रोगों में वात-

1. Peritonitis.
2. Spasm.
3. Pneumonia.
4. Pleurisy.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नाड़ियों की उत्तेजना के कारण आने वाली खांसी में यह उत्तेजना शामक होने से लाभ करती है। इसके सेवन से आदत पड़ जाने की सम्भावना होती है, अतः श्वास में विचारपूर्वक दें। श्वसनकज्वर में यह वेदनाशमन तथा स्वापजनन के लिए तथा वातकफज्वर[1], प्रतिश्याय (जुकाम-सरदी) में स्वेदल और उष्ण होने के कारण लाभ करती है।

संशमन तथा निद्राजनक प्रभाव के कारण यह वातव्याधियों में विशेष रूप से दी जाती है। केन्द्रीय वात-संस्थान को सर्वप्रथम ततः सुषुम्ना को शिथिल करती है। यद्यपि त्वच्य नाड़ियों पर इसका कोई प्रभाव नहीं होता। स्वल्प मात्रा में देने से प्रथम तो मस्तिष्क तथा संचालक केन्द्रों को यह उत्तेजित करता है। तथा वासनामय प्रवृत्तियाँ उत्तेजित हो जाती हैं। इस दिशा में किन्हीं को आनन्द तथा सुख की अनुभूति होती है एवं कुछ में वासनामय प्रवृत्तियाँ उत्तेजित हो जाती है। अन्यों में विचार शक्ति बढ़ जाती है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को विभिन्न अनुभूतियाँ होती है। स्पर्श, वेदना, कास, भूख, श्रम (थकावट) की अनुभूति न्यून हो जाती है। मस्तिष्क शैथिल्य के कारण बड़ी मात्रा में चेतना मन्द होकर नींद आ जाती है किन्तु जागने पर सिरदर्द और जी मचलाता है। प्राथमिक उत्तेजना के पश्चात् वातसंस्थान शिथिल हो जाता है। प्रथम विचार शक्ति ततः कर्मशक्ति मन्द हो जाती है। बड़ी मात्रा में खाने से प्राथमिक उत्तेजना अतिस्वल्प होती है या उसका सर्वथा अभाव रहता है। इस प्रकार वातनाड़ी संस्थान को शिथिलकर उसकी उत्तेजना-क्षोभ का शमन होता है जिससे नींद आती है। स्पर्शादि जन्य वेदनाओं की अनुभूति का अभाव होने से वेदना शान्त हो जाती है। अतः जहाँ क्षोभ, वेदनादि के कारण निद्रा का अभाव हो यथा वृक्क शूल, अश्मरी शूल, उन्माद, प्रलाप, अतिचिन्ता, विचारादि में—तथा अस्थिभग्न तीव्र आमवात, रजः कृच्छ्रताजन्य कटिशूलादि में अफीम का प्रयोग सर्वोत्तम है। संक्षेप में यह सब प्रकार की वेदनाओं तथा आक्षेप में रामबाण औषधि है। किन्तु श्वास संस्थान को शिथिल करती है। यह बात हमेशा याद रखनी चाहिये।

वृक्क या मूत्र संस्थान पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं होता। विषमात्रा में मूत्राशय द्वार के आक्षेप के कारण वह पूर्णतया रिक्त नहीं होता। मूत्र में यह अपरिवर्तित दशा में पाई गई है। अतः वृक्कों में से पुनः रक्त में आशोषण होने की सम्भावना रहती है। मधु मेह के मूत्र में यह शर्करा के प्रभाव को कम करती है। अतः शिलाजतु आदि के साथ स्वल्प मात्रा मिलाकर दी जाती है। क्योंकि वृक्कों की व्याधियों में यह शीघ्र बाहर नहीं निकलती अतः वृक्क रोगों में अत्यन्त सावधानी से प्रयोग करें। कभी-कभी अत्यंल्प मात्रा भी मृत्यु का कारण बन जाती है। यद्यपि वृक्क रोगों में उत्पन्न श्वास अनिद्रा, आक्षेपादि में लाभ होता है।

यह त्वचा में अवस्थित रक्त वाहिनियों को विस्तृत करके स्वेद लाती है। अतएव कफ के अनेक रोगों में यथा, प्रतिश्याय, वातकफज्वर तथा साधारण शोथों में प्रयोग की जाती है। स्वेदार्थ स्वल्प मात्रा भी पर्याप्त है। कभी-कभी इससे त्वचा में कण्डु और चकते (लाल) भी उत्पन्न हो जाते हैं। विष मात्रा में मृत्यु से पूर्व बहुत पसीना आता है।

शोधक, रूक्ष और स्तम्भक होने से गर्भपात या गर्भस्राव के रक्तस्राव कों बन्द करने के लिये उत्तम है। किन्तु मात्रा द्विगुण–(२ रत्ती) होनी चाहिये। प्रसूति की दूसरी या तीसरी अवस्था में इसे कभी नहीं देना चाहिये। क्योंकि यह केन्द्रीय वातसंस्थान तथा श्वास संस्थान को शिथिल करती है। प्रसव के पश्चात् वेदना शान्त करने के लिये इसका उपयोग किया जा सकता है।

विषमज्वर (मलेरिया या जाड़ा बुखार) को कभी-कभी अफीम अकेली या अन्य विषम ज्वरहर औषधियों में मिलाकर देने से नष्ट करती है। तदर्थं अफीम १ रत्ती सुदर्शन १ माशा केशर २ रत्ती मिलाकर देना चाहिये। अफीम खाने वालों को मलेरिया कम ही आता है।

शीघ्रपातादि में स्तम्भनार्थ भी अफीम का प्रयोग वाजीकरण योगों में किया जाता है। किन्तु स्वल्प मात्रा में, बड़ी मात्रा में यह कामावसादक है।

---

1. Influenza.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बाह्य प्रयोग—शोथ तथा वेदना शान्त करने के लिये अन्य पदार्थों के साथ मिलाकर सन्धि शोथ, कटिशूल, फुफ्फुस शोथ आदि में लेप लगाया जाता है। खोखले दान्तों में शूल होने पर अफीम तथा नवसादर या कर्पूर पीसकर भरा जाता है। कर्णशूल में अहिफेनादि आसव से वेदना बन्द होती है। नेत्र शोथादि में पलकों पर इसका लेप लगाया जाता है। बादी सर्दी की मस्तक पीड़ा पर लौंग तथा अफीम पीसकर लगाई जाती है।

अहिफेन की मात्रा तथा सहनशीलता—यह ऐसी औषधि है जिसके सेवन से कई व्यक्तियों को आदत पड़ जाती है। क्रमशः मात्रा को बढ़ाते हैं जिससे कई प्राणियों की मृत्यु हो सकती है अतः इसकी मात्रा प्रति व्यक्ति भिन्न है। संदेह होने पर रोगी से पूछ लेना चाहिए कि वह अफीम तो नहीं खाता।

अहिफेन प्रभाव को प्रभावित करने वाले तथ्य

(१) **आयु**—बड़ों की अपेक्षा बच्चों में विष प्रभाव अधिक होने का भय रहता है, अतः उन्हें मात्रा बहुत विचार कर दें।

(२) **लिंग**—पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों पर इसके कुप्रभाव अधिक होते हैं। दूध पिलाने वाली माता को बहुत विचारपूर्वक दें।

(३) **असात्म्यता**—किन्हीं को यह बिल्कुल अनुकूल नहीं आती। $\frac{1}{2}$ गुंजा से भी उनको उपद्रव हो जाते हैं।

(४) **आदत (भक्ति)** अफीम खाने वालों पर प्रभाव अत्यल्प होता है।

(५) रोगों की प्रकृति के अनुसार तीव्र वेदना युक्त रोगों में बड़ी मात्रा देनी पड़ती है। वृक्क रोगों, श्वास-संस्थान, मस्तिष्क में दोष संचय और मदात्यय में अत्यन्त विचारपूर्वक देनी चाहिए।

आशोषण तथा निष्कासन—कला या क्षत (फटी) त्वचा में से अफीम बड़ी जल्दी रक्त में मिल जाता है। रक्त में से बड़ी जल्दी यह धातुओं में चली जाती है। १० प्रतिशत तो अपरिवर्तित रूप में ही मूत्रमार्ग से बाहर निकल जाती है। शेष ९० प्रतिशत शरीर में पाक को प्राप्त होती है। सूचीवेध द्वारा देने पर भी वह आमाशय तथा अन्त्रों में पाई गई है। अतः इन अंगों से भी यह निकलती रहती है। दूध तथा पसीने, और मल में भी अल्प मात्रा में पाई गई है। यह परिवर्तित यौगिकों के रूप में तथा अपरिवर्तित दोनों ही रूपों में निकलती रहती है।

विषलक्षण—तीव्र विष में निम्न लक्षण पाए जाते हैं। (१) नेत्रतारा (कनीनिका), अतिसंकुचित, त्वचा, (२) चिपचिपी तथा ठंडी त्वचा, (३) मुख तथा ओंठ नीले, (४) नाड़ी बहुत मन्द तथा क्षीण, (५) श्वास धीमा, अनियमित—अन्तसमय में मधुरधुराहर, (६) मुख से अफीम की वास। अन्त में श्वासावरोध होकर प्रायः ६-१० घण्टों में मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के समय नेत्रतारा विस्तृत हो जाती है।

चिकित्सा-वमन—यदि तुरन्त ही रोगी चिकित्सार्थ आया हो तो मदन फल, सैन्धव नमक के क्वाथ से तत्काल वमन कराएँ। वमनार्थ १० रत्ती तुत्थ या अरिष्टक का काढ़ा अथवा राई नमक से वमन कराएँ, किन्तु यदि अफीम रक्त में मिल गया होगा तो वामक केन्द्र के अवसाद के कारण वमन नहीं होता। उस अवस्था में आमाशय प्रक्षालन से पूर्व कराकर शेष अहिफेन बाहर निकाल दें। प्रक्षालन से पूर्व 'पोटेशियम परमेगनेट (२-४ रत्ती को) १०-२० तोला जल में घोल कर पिला दें। तथा इसी के तनु विलयन से आमाशय प्रक्षालन करे। आमाशय स्वच्छ हो जाने पर घी तथा दूध पिलाएँ, रोगी को घुमाते रहें तथा सोने नहीं देना चाहिए। श्वासावरोध के भय को दूर करने के लिए काफी, धत्तूरा, कस्तूरी, अम्बर, हींग आदि उत्तेजक एवं श्वास संस्थान बलप्रद औषधि दें। क्रमशः उष्ण तथा शीत सेंक देते रहें।

वक्तव्य—आधुनिकों (पाश्चात्यों) ने अहिफेन का विश्लेषण कर दो जाति के निम्न मुख्य तत्व प्राप्त किए हैं—

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रथम जाति--(१) मार्फीन[1], (२) कोडीन[2], (३) थेवीन्[3]।

दूसरी जाति--(१) नारकोटीन्[4], (२) पेपावरीन्[5] आदि। मार्फीनादि वेदनाशामक है तथा नार्कोटोनादि निद्राजनक। इनमें निम्न का प्रयोग अधिक होता है।

(१) मार्फीनहाइड्रोक्लोराइड[6] मात्रा १/८–१/३ ग्रेन।

(२) मार्फीन सल्फेट[7] मात्रा १/८–१/३ ग्रेन तक

(३) कोडीन फास्फेट[8] मात्रा १/६–१ ग्रेन तक

(४) डायोनिन[9] मात्रा १/४– १/६ ग्रेन

यह सबसे कम श्वासकेन्द्र को शिथिल नहीं करती। यह मार्फीन तथा कोडीन के बीच की वस्तु है।

आयुर्वेदिक योग

(१) अहिफेनासाव—अतिसारादि में ५-२५ बूंद

(२) दुग्धवटी—शोथ में १-२ गोली

(३) महावातराजरस—वातव्याधियों में (सि० मै० म०) मात्रा १-२ रत्ती

(४) वेदनान्तकरस मात्रा २ रत्ती (र० त० २४)

(५) निद्रोदयरस--मात्रा २ रत्ती (रा० नं० २४)

विशेष--निम्न अवस्थाओं में अफीम यथासम्भव नहीं देनी चाहिए।

(१) फुप्फुसों में कफ संचय तथा आर्द्र शोथ और छिन्न श्वास होने पर

(२) केन्द्रीय वातसंस्थान की शोथ तथा रक्त संचयावस्था में यथा, शीर्षसौषुम्न ज्वर, असिश्रमजन्य ज्वर, अपस्मारादि में।

(३) आमाशय और अन्त्रों के पक्षाघात तथा विस्तृति में।

(४) वृक्क शोथ

(५) शैशव तथा वृद्धावस्था में

(६) जीर्ण रोगों में वेदना शान्ति के लिए, क्योंकि इससे आदत पड़ जाती है।

अगुरु

परिचय--महान् वृक्ष

उ० स्थ०—हिमालय, नेपाल, भूटान, तथा प्रशान्तसागरवर्ती के द्वीप

व्य० अं०—काष्ठ-तैल

पुष्प—नहीं आते

रस--कटु, तिक्त, कषाय, मधुर

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

---

1. Morphine.
2. Codeine.
3. Thebaine.
4. Narcotine.
5. Papaverine.
6. Morphine Hydrocloride.
7. Morphine sulphate.
8. Codeinephosphate.
9. Dionin.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोष—पित्तल (पित्तस्रावक)

प्र० अं०—वातसंस्थान

वि० गु० क०—उष्ण, उत्तेजक, मेध्य, पित्तस्रावक

मात्रा—१-३ माशा तक

नाम—सं० कृष्णागुरू, राजार्ह, कृमिजग्धं, लोहं, सब भारतीय भाषाओं में अगर, या कृष्णागुरू (बं०) ऊद (अं०) एलोयवुड[1], ईगलवुड[2] (वा० ले०) एक्विलेरिया एगलोका[3] वर्ग अगुरूक्षादि (थाईमेलेएसी[4])।

गुण कर्म—अगुरूष्णं कटु त्वच्यं तिक्तं तीक्ष्णं च पित्तलम्। लघुकर्णाक्षिरोगघ्नं शीतवातकफप्रणुत्॥
कृष्णं गुणाधिकं तत्तु लोहवद् कारिमज्ज्ति। अगुरु प्रभवः स्नेहः कृष्णागुरु समौ मतः।
रास्नागुरुणि शीतापनयन प्रलेपनानाम्। (च० सू० २५)

अगुरु……सारस्नेहातिक्त, कटु कषाया, दुष्टव्रणशोधना कृमि कफ कुष्ठानिलहराश्च। (सु० सू० ४५)

अगर कटु, तिक्त, उष्ण वीर्य, कटु विपाकी, लघु (पचने में) पित्त का पित्ताशय से स्राव कराने वाला, वातकफहर, शीत प्रशमन, त्वच्य या वर्ण प्रसादन, कर्ण रोग, नेत्ररोगशामक और सुगन्धित, मस्तिष्क को बल देने वाला, उत्तेजक, वाजीकरण, तथा मूत्राशय और गर्भाशय की निर्बलता का नाशक है।

अगर का तैल तिक्त, कषाय रस वाला, दुष्टव्रणशोधक, कृमि कुष्ठनाशक है।

प्रयोग-बाह्य—दुर्गन्धि तथा कृमिनाशन के लिए अगर की धूप व्रणों में दी जाती है। शीतल जल में चन्दन के साथ घिसकर लेप लगाने से दाह शान्त होता है। वातरक्त, आमवातादि में सन्धि वेदना (जोड़ों में दर्द) तथा शीत अंग होने पर या जब अंग संज्ञाशून्य (सुन्न) हो जाते हों तो अगर तथा शुंठी को पीसकर लेप लगाया जाता है। अनेक तैलों में इसे डाला जाता है। ये तैल आमवात वेदनाशामक होते हैं।

अन्तः प्रयोग—अगर को जल में चन्दन की तरह घिसकर पिलाने से पित्त की वमन होती है, बन्द होती है। ज्वरों की शीतांगावस्था में चूर्ण को मधु के साथ सेवन करने से शरीर उष्ण होता है, हृदय को बल मिलता है। तथा पाचन शक्ति बढ़ती है एवं दोषों का पाचन होता है। क्योंकि, उष्णता तीक्ष्ण होने से यह सारे शरीर में प्रविष्ट होकर उसकी उष्णता को बढ़ा देता है। अतिसार में अगुरु और अतिविष, को मिलाकर देने से लाभ होता है। भुने हुए कमल बीज चूर्ण के साथ मधु मिलाकर देने से वमन बन्द होती है। अगुरु तथा शतावरी का काढ़ा बनाकर पिलाने से ज्वरों में तृष्णा, ताप कम होता है तथा ज्वर पश्चात् होने वाली निर्बलता भी नहीं होती है। शिरोभ्रम (चक्कर) में अगुरु सुंघाने से लाभ होता है। अगुरु का क्वाथ वातकफात्मक रोगों (न्यूमोनिया) आदि में श्वासकासशामक है। यह वातनाड़ियों को शक्ति देता तथा पित्त का स्राव कराता और उत्तेजक होने से उत्तम वाजीकरण है। सामान्यतः यह वाततन्तुओं, वृक्क, मूत्राशय, हृदय, यकृत्, आन्तों को बल देने वाला, पाचक, शीतांगता, श्वास, मूर्च्छा, शिरःशूल, अग्निमान्द्य, अतिसार, प्लीहा के रोगों पर उत्तम लाभ करता है। इसके तैल (अत्तर) के भी यही गुण हैं। अधिक मात्रा में इसको त्वचा पर लगाने से यह छाले उत्पन्न करता है। ४-५ बूंद बताशे में देने से कफज, श्वास वेग शान्त होता है। अगर के स्थान पर दालचीनी, लवंग, केसरादि, उपयोग कर सकते हैं। उष्ण प्रकृति के लिए अहितकर है। कर्पूर और गुलाब अर्क अगर के अहित प्रभाव को मिटाते हैं।

वक्तव्य—राजनिघण्टु में कृष्णागुरू, काष्ठागुरू, दाहागुरू, तथा मंगल्यागुरू ये चार भेद बताए गए हैं। सामान्यतः कृष्णागुरू ही चिकित्सा कार्य में प्रयुक्त होता है। जो अगुरू लोहे के समान भारी अर्थात् जल में डूबने

---

1. Aloe wood.
2. Eagle wood.
3. Aquilaria Agalocha, Roxb.
4. Thymaliaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वाला, अत्यन्त काला, या भूरा स्निग्ध, सुगन्धित, शीघ्र जलने वाला, स्वाद में तिक्त जल्दी पिसने वाला, दान्तों से चबाने पर स्वाद में तिक्त, चपटा हो जाने वाला हो वही, उत्तम हैं। अगुरू के वृक्ष आसाम, भूटान, नेपालादि में पाए जाते हैं। फल अमरूदतुल्य, मृदु। पुराने वृक्षों के आन्तरिक भाग में श्यामवर्ण, भारीकाष्ठ मिलता है, जिसके चारों ओर निर्यासवत् स्निग्ध पदार्थ रहता है। यह मधुगन्धि होता है। इसे ही 'अगुरू' कहते हैं। यह सब वृक्षों में नहीं मिलता है। पर्याप्त अन्वेषण करने के पश्चात् प्राप्त होता है। इस काष्ठ को निकालकर वहाँ मिट्टी भर दी जाती है। कुछ वर्षों के पश्चात् उस स्थान पर पुनः अगुरू का स्निग्ध काष्ठ मिल जाता है। इसीलिए सम्भवतः इसे कृमिज या कृमिजग्ध कहा गया है।

अग्निजारः, (अम्बर)

परिचय—यह स्पर्मल्हेल नामक मछली के अन्त्र का स्राव विशेष जो ग्रन्थि रूप में एकत्र होता रहता है। मरने पर या शिकार में इसका पेट चीरकर निकाला जाता है। ताजे में विष्ठा के समान दुर्गन्ध होती है। सूखने पर मधुरगन्ध।

रस—कटु
वीर्य—उष्ण
विपाक—मधुर विपाकी
दोष—वातकफशामक, पित्तवर्धक
वि० गु० क०—उत्तेजक, वाजीकरण, वातव्यधिशामक
मात्रा—१-३ रत्ती
नाम—सर्व भाषाएँ अम्बर (अं०) एम्बरग्रिस[1] (लि०) एम्बरा ग्रेसिया[2]।

गुण—अग्निजार स्त्रिदोषघ्नो धनुर्वातादिवातनुत्।
वर्धनो रसवीर्यस्य दीपनों जारणस्तथा॥ (रा० चू०)
स्यादग्निजारः कटुरुष्णवीर्यस्तुन्दामयो वातकफपहश्च।
पित्तप्रदः सोडपिक सन्निपात शूलार्ति शीतम्भिय नाशनश्च॥ (रा० नि०)

अम्बर कटु रस, उष्णवीर्य, रस तथा वीर्य का वर्धक (अतः मधुर विपाकी), दीपन, वातव्याधियों, धनुस्तम्भ पक्षवध, अर्दित का नाशक, वातकफ के रोग, सन्निपात, मस्तिष्क, हृदय निर्बलता तथा शीतांगतानाशक है। यह सब प्रकार की शारीरिक निर्बलताओं का नाशक, देह में उष्णता तथा क्रियाशीलता उत्पादक है। आमाशयावसाद (अग्निमान्द्य) तथा आमाशयशूलशामक, अत्यन्त वाजीकरण, ज्ञानेन्द्रियों को बल देने वाला है। स्वर्ण, मुक्ता, अम्बर मिलाकर सेवन करने से हृदय, मस्तिष्क, वातनाड़ीमण्डल को बल मिलता है तथा वीर्य बढ़ता है। ब्राह्मी, शंखपुष्पी के साथ सेवन करने से मेध्य, शीतांगता तथा स्वेदाधिक्य में कस्तूरी केशर, शुद्ध हिंगुल और मोती भस्म के साथ देने से अत्यन्त लाभ होता है। वातजकास में पान में रखकर खिलाया जाता है। वृद्धावस्था में सब शक्तियों को बढ़ाता है तथा उनकी रक्षा करता है। अधिक सेवन से अन्त्र तथा यकृत् के लिए अहितकर है। किन्तु वंशलोचन तथा बब्बूलादि गोंद के साथ सेवन करने से यह अहितकर प्रभाव नहीं होता। प्रतिनिधि केशर, कस्तूरी।

योग—धात्री रसायन, मात्रा ६ माशा दूध से रसायन।

---

1. Ambergris. 2. Ambra gresea.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य--अम्बर प्राणिजन्य द्रव्य है। इसकी प्राप्ति भारतीय समुद्र के लंका, निकोबार आदि द्वीपों में होती है। यह तैरता हुआ इन द्वीपों के किनारे पर आ जाता है। रसेन्द्रचूडामणि में इसकी उत्पत्ति अग्निनक्र[1] (स्पर्मह्वेल) नामक मछली से बताई गई है। जो प्रायः प्रमाणित हो चुकी है।

समुद्रेणाग्निनक्रस्य जरायुर्बहिरुज्झितः। संशुष्को भानुतापेन सोग्निजरइतिस्मृतः॥

उत्तम अम्बर--यह दो प्रकार का है। (१) काला अम्बर[2] (२) भूरा[3] या पीताभ श्वेत अम्बर। द्वितीय प्रकार उत्तम माना जाता है। इसका रंग भूरा (राख वर्ण का) सा होता है। जिसमें खसखस जैसे सफेद रंग के दाने पाए जाते हैं।

मीठी गन्ध वाला, चबाने से चिपटने वाला शीशी में डालकर गरम करने से सुगन्धदायक, तैल की तरह पिघलने वाला अम्बर श्रेष्ठ है : भंगुर (चबाने से बिखरने वाला) सुगन्धिरहित खसखस के दानों से रहित, ताप न पिघने वाला नकली होता है।

एरण्डद्वयम् एरण्डः (वातारिः, पंचांगुलम्)

परिचय--सुपरिचित लघुवृक्ष, सर्वत्र प्राप्त
व्य० अं०--पंचांग, तैल
पुष्पकाल--सितम्बर-नवम्बर
रस--(पंचांग) मधुर, (तैल) मधुर, कटु
वीर्य--उष्ण
विपाक--मधुर
दोष--त्रिदोषहर विशेषकर वातकफ
प्र० अं०--सर्व शरीर, अन्त्र
वि० गु० क०--वातव्याधिशामक, रेचक, रसायन
मात्रा--मूलचूर्ण १-२ माशा, तैल २-५ तोला, बीज २-४ बीज

नाम--रेंड़ी, एरण्ड, अरंड (बं०) भेरेन्डा (गु०) एरंडो, एरेंडियो (म०) एरण्डी (क०) हरलु (तै०) आमुदयुच्चेट्टु (ता०) आमनकनचेडि (अं०) केस्टर आयल प्लान्ट[4] (वा० ले०) रिसिनस् कम्युनिस्[5], स्नुही वर्ग।[6]

गुण--एरण्डो मधुरो वृष्यः गुरूष्णो मार्ग शोधनः। कफपित्तानिल श्वासकास ब्रग्नाशमनाशनः॥
गुल्म प्लीहोदरानाह कटिवस्तिशिरोरुजि। मेहज्वरामवातास्र शूल शोथेषु शस्यते। (कै०)

एरण्ड का पंचांग मधुर (तिक्त अनुरस) वृष्य, गुरु, उष्ण, विरेचक, त्रिदोषशामक, कास, श्वास, अश्मरी, गुल्म, प्लीहा तथा उदर रोग आनाह (कब्जी) मूत्राशय, शिरोरोग, प्रमेहज्वर, आमवात, वातरक्त तथा शोथशामक है।

प्रयोग--पत्तों का शाक बनाकर खाने से कब्जी, उदरशूल तथा गुल्म नष्ट होते हैं। लघु भिन्नशकृतिकं लांगलक्ष्युरुबूकयोः (च० सू० २७)। मूल वातरोगों में अतिलाभदायक है। एरण्डमूलं वृष्य वातहराणां (च० सू० २५)। उरुबूक प्रभृतीनि उष्णानि स्वादुतिक्तानि स्वादु वातप्रशमनानि। (च० सू० ४६)। पक्षाघात, अर्दित, कम्पवात, जलोदर, आमवातादि में एरण्ड क्वाथ दिया जाता है। पार्श्वशूल तथा कफजशूल, हृदयशूल में एरण्डमूल क्वाथ यवक्षार के साथ

1. Sperm whale or Cachalot.
2. अम्बरेखमली
3. अम्बरे अशहब
4. Castor oil.
5. Ricinus Communis, Linn.
6. Euphorbiaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सेवन कराएँ। पंचांग की भस्म अन्तर्धूम विधि से बनाकर १ तोला भस्म को ४ तोला गोमूत्र के साथ सेवन करने से प्लीहोदर मिटता है।

बीजों का प्रयोग भी वातरोगों में किया जाता है। ये वाततन्तुओं को शक्ति पहुँचाते हैं। मार्गों का शोधन तथा वात का अनुलोमन करते हैं। वृक्कशूल तथा आमवातादि की वेदना में गुठली को पीसकर गरम लेप करने से वेदना शान्त होती है। फलमज्जा, सोंठ तथा शर्करा समभाग आमवातनाशक है। मींगी से प्रारम्भ कर प्रतिदिन एक बढ़ाते हुए ७ दिन तक ले जावें तथा वैसे ही कम करते जाएँ। इस प्रकार ७ दिन सेवन करने से वातिकशूल, अजीर्ण, आध्मान तथा हस्तकम्प मिटता है। अर्श में भी लाभ करती है। पत्रों को गरम कर या पीसकर शोथ वेदना युक्त अंगों पर लगाया जाता है। स्तनशोथ में लेप करते हैं। ये शोथशामक तथा पाचक हैं। सर्पदष्ट में पत्र स्वरस पिलाते हैं। वत्सनाभ तथा अहिफेन विष भी पत्रस्वरस द्वारा वमन विरेचन होकर बाहर निकलता है। अधिक प्रयोग आमाशय के लिए अहितकर हैं। अतः रूमी मस्तगी के साथ मिलाकर देना उत्तम है।

एरण्ड तैल––एरण्ड तैलं मधुरमुष्णं तीक्ष्णं कटु कषायानुरसं सूक्ष्मं स्रोतो विशोधनं त्वच्यं, वृष्यं मधुरविपाकं वयःस्थापनं योनिशुक्र विशोधनमारोग्य मेधा कान्तिस्मृतिबलकरं वातकफहरमधोभाग दोषहरंच। (सु० सू० ४५)

एरण्ड तैल मधुर रस, कटु कषाय अनुरस, उष्णवीर्य, मधुर विपाकी, सूक्ष्म, स्रोतों का शोधक, वृष्य, वयः-स्थापन, योनिशुक्रशोधक, आरोग्य-मेधाबल, कान्तिदायक, वातकफहर तथा विरेचक है। शोथ वेदनाशामक, अन्त्रों को मृदु करने वाला होने से कब्जी, प्रवाहिका सुद्दा (मल की गांठें बन जाना) तथा आध्मान का नाशक है।

प्रयोग––त्वचा पर मालिश करने से वातव्याधियाँ रूक्षता, फोड़े-फुँसियाँ, झाइँ आदि नष्ट होकर कान्ति बढ़ाता है। केशों को दृढ़ तथा पुष्ट करता है। नेत्रों में बाह्य वस्तु पड़ जाने से उत्पन्न शोथ, वेदना तथा क्षोभ का शामक है। वातिक वेदनाओं में एरण्ड का तैल या एरण्ड पंचांग में सिद्ध एरण्ड तैल का अभ्यंग अत्यन्त लाभ करता है। गृध्रसी उदराध्मान, आमवातादि में गोमूत्र तथा शुंठी के साथ सेवन कराया जाता है। तैल को गरम कर कर्णशूलादि में भी डाला जाता है। गोमूत्र में मिलाकर पीने से आमवातादि सन्धिशोथनाशक है। बच्चों के आध्मान में इसे गरम मोटी रोटी पर चुपड़कर उदर पर लगाया जाता है।

रेचन के रूप में यह अति उत्तम है। मात्रा के अनुसार बच्चों, वृद्धों, स्त्रियों, गर्भिणी स्त्रियों आदि सबको दिया जा सकता है। अर्श, भगन्दर, ज्वर, उदरशोथ, अतिसार तथा प्रवाहिकादि में अति उत्तम रेचन है। उदरशूल प्रवाहिकादि में अपाचित कच्चा अन्न सुरक्षा से बिना हानि निकाल देता है। एरण्ड तैल में अहिफेनासव मिलाकर देने से सब प्रकार की प्रवाहिका शान्त होती है। पुरानी प्रवाहिका में १५-३० बूंद एरण्ड तेल अहिफेनासव ५-२० बूंद दुग्धीकृत मिलाकर सेवन करने से अतिलाभ करता है। इसकी वस्ति भी दी जाती है। इसके सेवन से जी मचलाता है। अतः दूध में मिलाकर या त्रिफला क्वाथ में मिलाकर सेवन किया जाता है।

वक्तव्य––एरण्ड तैल की स्वल्पतम मात्रा ३० बूंद तथा अधिक से अधिक २० तोला है। प्रायः १-२½ तोला तक पर्याप्त है। बच्चों को तीन माशा से १ तोला तक मात्रा पर्याप्त है। इसके दो घण्टे बाद पानी पीने से रेचन में सहायता मिलती है।

योग––एरण्ड पाक-वातव्याधिशामक, षड्बिन्दुतैल

उरुबूकः (रुबुः, रक्तैरण्डः)

वक्तव्य—यह भी एरण्ड ही का भेद है। पहला श्वेत एरण्ड कहाता है तथा यह लाल। श्वेत की अपेक्षा यह अधिक उष्ण तथा तीक्ष्ण है। दोनों के गुण समान हैं। दोनों के बीजों से जो तैल निकलता है उसमें 'रिसिन'

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नामक घोर विष रहता है। अतः शुद्ध एरण्ड तैल का ही प्रयोग करना चाहिए। शुद्ध करते समय यह विष तैल में से निकाल दिया जाता है।

गुण—अन्यो रक्तो हस्तिकर्णे व्याघ्रो व्याघ्रतरोरवुः। रक्तपंचांगुलस्तिक्तः कषायः कटुको रसे ॥
वातश्लेष्म कम्पर्शोविघ्मनाशनः। एरण्डफलमत्युष्णं गुल्मशूलानिलापहम् ॥
यकृत्प्लीहोदरार्शोघ्नं कटुकं दीपनं परम्। तद्वन्मज्जा तु विड्भेदी वातश्लेष्मोदरापहः ॥ (कै०)

संस्कृत सरल है। भाषान्तर आवश्यक नहीं।

कूष्माण्डः (महाफला, पीतपुष्पम्)

परिचय—सुपरिचित लता है।
उ० स्थ०—सर्वत्र
व्य० अं०—फल-बीज
पुष्पकाल—मई-जून
रस—मधुर
वीर्य—शीत
विपाक—मधुर
दोष—त्रिदोषशामक, विशेषतः वातपित्त
प्र० अं०—मूत्रसंस्थान, सर्वशरीर
वि० गु० क०—पौष्टिक, रसायन, मूत्रल, मनः प्रसादक।
मात्रा—६ माशा से १ तोला

नाम—(हि० पं० मा०) पेठा (बं०) कुमरा, कुमड़ा (म०) कोहला (गु०) भुरूं, कोहलुं (क०) बूदगुम्बल (तै०) बुडिडेगुम्मड़ि (ता०) पूष्णिकाय (अं०) ह्वाइट गोर्ड, मेलन[1], ह्वाइट पंपकिन[2] (वा० ले०) बेनिन्कासा सेरीफेरा[3], कर्कटी वर्ग।

गुण—कूष्माण्डं शीतलं वृष्यं स्वादु पाक रसं गुरुः। हृद्यं रूक्षं सरं स्यन्दि श्लेष्मलंवातपित्तजित् ॥ (कै०)
पित्तघ्नं तेषु कूष्माण्डं बालं, मध्यं कफावहम्। शुक्लं लघूष्णं सक्षारं दीपनं बस्ति शोधनम् ॥
सर्वदोषहरं हृद्यं, पथ्यचेतो विकारिणाम् ॥ (सु० सू० ४६)

कच्चा कूष्माण्ड पित्तशामक, अधपका कफ कारक, पका हुआ, मधुर कुछ अम्ल-सक्षार, शीत वीर्य, मधुर विपाकी त्रिदोषहर, बस्ति शोधक मलमूत्र को साथ लाने वाला हृद्य, बल्य, बृंहण मानसिक विकार, उन्मादादिशामक मूत्राघात, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, तृष्णा, पित्त तथा रक्त विकारशामक हैं। मस्तिष्क और हृदय को बल देने वाला तथा रक्त पित्त और बस्ति रोगशामक है। पौष्टिक, रक्त संग्राहक होने के कारण उरुक्षत, शुष्ककास तथा राजयक्ष्मा में प्रयोग करते हैं।

प्रयोग—बीज कृमिघ्न हैं। चपटे कीड़ों को मारते हैं। मात्रा २-४ तोला। प्रातः बीज देकर दूसरे दिन विरेचन देना चाहिये। अन्तः दाह, अर्श, क्षयादि में रक्तस्राव, ताप या दाह के कारण अनिद्रा में कूष्माण्ड स्वरस मिश्री मिलाकर देते हैं। स्वरस रक्तशोधक तथा रेचक भी है। बृंहण होने से शरीर को क्षीण करने वाले सब रोगों में खाने

1. White Gourd, melon.
2. White Pumpkin.
3. Benincasa, Cerifera, Save.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

के लिए पाक या मुरब्बा बनाकर देते हैं। रक्तार्श में शुद्ध सूरण के साथ कूष्माण्ड स्वरस दिया जाता है। उन्माद अपस्मार में भी घी के साथ पेठा सेवन कराया जाता है। विषूचिका में पुष्पचूर्ण ६ माशा, श्वासकास में मल चूर्ण, मूत्रकृच्छ्र में इसके रस में यवक्षार मिलाकर, मूत्राशय पथरी, शर्करा तथा लिंगशूल में इसके स्वरस में हींग यवक्षार मिलाकर पिलाते हैं। रक्त पित्त में सर्वोत्तम औषध है। मधुमेह में स्वरस सेवन कराया जाता है।

योग—(१) कूष्माण्डपाक——१,२ तोला-पौष्टिक, वातव्याधि, अपस्मार, उन्मादशामक
(२)वासाकूष्माण्ड खण्ड——रक्तपित्त में, क्षयजकास में
(३) कूष्माण्डघृत——६ माशा से १ तोला अपस्मार में

गन्धमार्जार वृषण (जुन्देवेदस्तर)

नाम—(हि०) जुंद, जुन्देवेदस्तर, (अं०) केस्टर[1], प्राणि (हि०) गन्धविलान (अं०) बीवर[2], केस्टर बीवर[3]

परिचय—यह बीवर नामक जाति के शशा (खर-गोश) के अण्ड हैं। त्वचा उतारकर भीतर का द्रव्य सुरक्षित किया जाता है। पीला, लाल तथा काला होता है। पीला सर्वोत्तम, लाल मध्यम तथा काला त्याज्य है। तीन वर्ष तक इसका वीर्य सुरक्षित रहता है।

गुण-प्रयोग—तिक्त, कटु रस, उष्णवीर्य, कस्तूरी सम गन्धवाला, कटु विपाकी, वातकफशामक, वातानुलोमन, वेदनास्थापन, वातनाडीबलदायक, मूत्रल, आर्तवजनक है। इसका विशेष प्रयोग नाड़ी दौर्बल्य, कम्पवात, अर्दित, अंगघात, पक्षवध, आमवातादि में किया जाता है। मात्रा——४ रत्ती से १ माशा तक।

अहिफेन विष तथा बिच्छू दष्ट में लाभकारी है। अपतन्त्रक हिस्टीरिया अपस्मार, काली खांसी नाड़ी दौर्बल्य, नपुंसकता आदि में लाभ करता है। तिला बनाकर इन्द्रिय पर लेप किया जाता है।

विष लक्षण तथा चिकित्सा—अधिक मात्रा में सेवन से (१) तबियत चिन्ताकुल तथा उदासीन, (२) मुख का सूखना, (३) जिह्वा पर दाने, वक्ष तथा तत्समीपवर्ती अंगों में पीड़ा श्वास और कण्ठशोथ कभी-कभी रक्त स्राव भी होने लगता है। इन लक्षणों के उत्पन्न होते ही सोया-पुदीना, लसोड़ा, और मधु का काढ़ा पिलाकर वमन कराएँ ततः नींबू का या किसी और खट्टे फल का रस पिलाये।

गुग्गुलुः (पुरः कौशिक, जटालः भूतहरः)

परिचय—मरुदेश में होने वाला वृक्ष।
उ०स्थ०——राजस्थान, सिन्ध, अरबादि देश
व्यं० अं०——निर्यास
रस—मधुर, कषाय, तिक्त, कटु
वीर्य——उष्ण
विपाक—कटु
दोष——त्रिदोषहर
प्र० अं०——वातसंस्थान, धातु भेद
वि० गु० क०——उष्ण, वातशामक, आमवात, रजः कृच्छ्रताशामक, व्रणशोधक-रोपक।
मात्रा——१-१½ माशा

---

1. Castor.
2. Beaver.
3. Castor Beaver

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नाम—(हि० पं० म० गु० बं०) गूगल, गुगल (क०) गुग्गल (तै०) गुग्गुलि (ता०) कुक्कल (अं०) गम-गुग्गुलु[1], इण्डियन ब्डेलिअम्[2], (वा०ले०) बाल्समोडेन्ड्रोन् मुकुल[3], बा० अगालोचा[4] गुग्गुलु वर्ग[5]।

वक्तव्य—गुग्गुल की उत्पत्ति तथा भेद—यह रूक्ष प्रदेशों राजस्थान, सिन्ध, मैसूर, खानदेशादि में उत्पन्न होता है। इसी नाम के वृक्ष का गोंद है। यह अनेक जाति का है। औषधियों में कणगुग्गुल का प्रयोग करना चाहिए। यह छोटे-बड़े ढेलों के रूप में मिलता है। उत्तम गूगल पीतवर्ण का, पुराना गुगल कुछ काले वर्ण का, सालई गुग्गुल लाल वर्ण का होता है। कुछ व्यापारी अन्य वृक्षों का गोंद भी इसमें मिला देते हैं। शुद्ध गुग्गुल तोड़ने से झट टूट जाता है, चरपरे स्वाद, जलाने पर साफ जलता नहीं; सलाई गोंद (कुन्दुर) साफ जलता है। जल में घोलने पर सफेद द्रव बनता है। कच्छ-सिन्ध में महिषाक्ष गुग्गुल होता है। वह कुछ हरे रंग का होता है। यह मोम के समान दबाने से दबने वाला तथा देवदारु की गन्धवाला होता है। प्राचीन काल में भी गुग्गुल के भेदादि का वर्णन मिलता है। मूल पाठ यहाँ दिया जाता है। सरल होने से अर्थ नहीं किया गया।

उत्पत्ति—मरुभूमिषु जायन्ते प्रायशः पुरपादपाः। भानोर्मयूखैः सन्तप्ताः ग्रीष्मे-मुंचन्ति गुग्गुलम्॥
हिमान्विते च हेमन्ते विधिना तं समाहरेत्॥

जातियाँ—हिरण्यः कुमुदः पद्मो महानीलस्तथापरः। पंचमो महिषाक्षश्च नामतः परिकीर्तितः॥
सुवर्णवर्णः प्रथमः कुमुदः कुमुदद्युतिः। पद्मरागनिभः पद्मो महानीलश्च नामधृक्॥
भृंगांगो अंजन वर्णो यो महिषाक्ष इति स्मृतः॥

प्रयोग—महिषाक्षो गजेन्द्राणां महानीलश्चशस्यते। वाजिनां कुमदः पद्मो, नराणां कनकः स्मृतः॥ (कै०)

गुग्गुलु गुणा—गुग्गुलर्मधुरिस्तिक्तः कषायः कटुकः कटुः। पाके रूक्षा लघुर्मृत्स्नो वीर्योष्णः सरस्तथा॥
दीपनः कफवातघ्नः वृष्यः सूक्ष्मो रसायनम्। भग्नसंघातकृत्स्वर्यो बृंहणेविनियच्छति॥
मेहमेदोऽस्रवीसर्प ग्रन्थि गण्ड व्रणापचीः। पिडिका क्लेद शोफाम कण्डु कुष्ठ वमिक्रमीन्। (कै०)

गुगल मधुर, तिक्त, कटु, कषाय रसवाला, उष्णवीर्य, मधुर विपाकी (पुराणगुग्गुलु) रूक्ष, लेखन, ताजा स्निग्ध, सर, दीपन, वृष्य, सूक्ष्म, रसायन, पौष्टिक, टूटी हड्डियों को जोड़ने वाला, स्वर्य, मेद (वसा-स्थूलता), वीसर्प ग्रन्थि, गण्डमाला, अपची, पिडिका, शोथ, आमदोष, कण्डु, कुष्ठे (त्वचारोग) वमन तथा कृमिनाशक है। यह उत्तम रक्तवर्धक तथा शोधक, आर्तवजनक, श्लैष्मिक कला का उत्तेजक तथा व्रणरोपक है।

गुग्गुलु रसविमान

तैक्ष्ण्योष्ण्यात् कफवातघ्नः सरत्वान्मलपित्तनुत्। सौगन्ध्यात् पूतिकोष्ठघ्नः सौक्ष्म्याच्चानलदीपनः॥ (सु०)
माधुर्याच्छमयेद्वातं कषायत्वाच्चपित्तजित्। तिक्तत्वाच्छ्लेष्म हृच्चैव गुग्गुलुः सर्वदोषहा। (कै०)

वात को उष्ण तीक्ष्ण तथा मधुर होने से, पित्त को सर होने से, कफ को तीक्ष्ण-उष्ण तथा तिक्त होने से शान्त करता है। इस प्रकार गुग्गुल त्रिदोषशामक है। पुराणगुग्गुल वसानाशक एवं कृशताकारक होता है। नव गुग्गुल पौष्टिक, मांसवर्धक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—बाह्य रूप में यह शोथशामक, कृमिघ्न है। अन्तः प्रयोग में कड़वा, दीपन, अनुलोमक, भूख बढ़ाने वाला और पाचन क्रिया को सुधारता है। आमाशय में उष्णता उत्पन्न करता है तथा शीघ्र ही रक्त में मिल

1. Gum Guggulu.
2. Indian Bdellium.
3. Balsamodendron Mukul, Hook.
4. B. Agalocha.
5. Burseraceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जाता है। रक्त की रोगनाशक शक्ति को बढ़ाता है। शरीर से बाहर निकलते समय, श्लेष्मकला, त्वचा, वृक्कों को उत्तेजित करता, तथा उनके स्रावों को क्रमिरहित करता है। अतएव स्वेदल, मूत्रल तथा निष्कासक है। गर्भाशय को भी उत्तेजित करता है तथा अनियमित मासिक धर्म को नियमित करता है।

गुग्गुल को धूप देने से व्रण में पीब बननी बन्द होती है। क्रमि नष्ट होते हैं। व्रणशोथ पर लेप लगाने से शोथ शान्त होती है। आमवात में गुग्गुल को कड़वी सुरंजा, काली मिर्च, शिलाजतु के साथ (समभाग), अफारा में हींग के साथ, कुष्ठ, उपदंश, वातरोग, गण्डमाला, अपची में भी अतिलाभ करता है। कत्था, सुहागा, गन्धक और गुग्गुल मिलाकर मलहम लगाने से व्रणरोपण शीघ्र होता है। शुष्ककास में गुग्गुल, रसौत, पारद का मलहर, गृध्रसी में रास्ना के साथ गोलियाँ बना घी से सेवन करने से, पुरानी अंडवृद्धि में एरण्ड तैल के साथ, शोथ में गोमूत्र के साथ सेवन कराया जाता है। अन्त्रों की शिथिलता में इन्द्रजल, नागरमोथादि के साथ। गण्डमाला तथा अपची पर गुग्गुल का मलहर लगाया जाता है तथा खाने को दिया जाता है। गरम पानी में मिलाकर बनाने की अपेक्षा कूटकर बनाए गए योग अधिक लाभ करते हैं। इसके अनेक योग हैं।

(१) योगराज-महायोगराज—आमवात में, रसायन में
(२) काञ्चनार गुग्गुलु—गण्डमाला, अपची-गलगण्ड में
(३) कैशोर गुग्गुल—रक्तशोधक, वातरक्त में
(४) पुनर्नवा—शोथ में। इस प्रकार अनेक योग हैं

वक्तव्य—रसायन के लिए गुग्गुल का सेवन करते समय निम्नपदार्थ त्याज्य हैं।

अम्लं तीक्ष्णमजीर्णं च व्यवायं श्रममातपम्। मद्यं रोषं त्यजेत् सम्यक् गुणार्थी पुरसेवकः॥ (भाव०)

जटामाँसी (माँसी, जटिला, सुलोमशा)

परिचय—बहुवर्षायु १-२ फुट ऊंचा क्षुप

उ० स्थ०—१७,००० फुट की ऊँचाई पर, काश्मीर, कुल्लु, सिक्किम, नैपालादि

व्य० अं०—कन्द, भूरा, रोमावृत, तथा सुगन्धित

रस—मधुर, तिक्त, कषाय, कटु

वीर्य—शीत

विपाक—मधुर

दोष—त्रिदोषघ्न

प्र० अं०—वातसंस्थान

वि० गु० क०—मेध्य रसायन, शामक, वातानुलोमक, आक्षेपहर, हृदयबल्य

मात्रा—चूर्ण ३-६ माशा तक

नाम—(हि०) बालछड़, बिल्ली लोटन (द० बं० गु० म० ते०) जटामाँसी (पहाड़ी) भूतकेसी (अं०) इण्डियन वैलेरियन[1] इण्डियन स्पाईक नार्ड[2] (वा० ल०) नार्डोस्टेकीस जटामाँसी[3] जटामाँसी वर्ग[4]। इसकी यूरोपीय जाति को वेलेरियाना आफिसिनेलिस[5] कहा जाता है।

गुण—माँसीतिक्ता कषाया च मेद्या बलकान्तिहा। स्वाद्वीहिमा त्रिदोषास्रदाह वीसर्प कुष्ठनुत्॥ (मा० प्र०)

---

1. Indian Valerian.
2. Indian Spike Nard.
3. Nardostachys jatamansi De.
4. Valerianaceae.
5. Valeriana officinalis.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जटामाँसी मधुर, कषाय, तिक्त, कटु रसवाली, शीतवीर्य, मेध्य, बलकान्ति तथा वर्णप्रद, त्रिदोष, दाह, वीसर्प, त्वचा रोगनाशक, दीपन, वात उत्तेजनाशामक, सुगन्धित, हृदय के लिए वल्य, वेदनास्थापन, मूत्रल, केश्य, रक्ताभिसरण उत्तेजक है। इसमें एक विशेष प्रकार की सुगन्ध आती है। कस्तूरी जैसी स्वाद में चरपरी तथा तिक्त, यही इसकी पहचान है।

बाह्य प्रयोग—सुगन्धित तथा कान्तिकारक होने से अनेक उबटनों, तथा व्यंग, झांई आदि मुख को विकृत करने वाले रोगों में लेप लगाई जाती है। अधिक पसीना आने पर इसके चूर्ण को लगाने से दुर्गन्ध तथा स्वेद दोनों ही नष्ट होते हैं। शिरःशूल में चन्दन के समान घिसकर लगाई जाती है। अनेक तेलों में केश्य तथा सुगन्धित होने के कारण डाली जाती है। रुद्ध मासिक धर्म के प्रवर्तन के लिए जटामाँसी की वर्ती बनाकर योनि में रखी जाती है।

अन्तः प्रयोग—यह आमाशय में उष्णता उत्पन्न करती है। डकार आते हैं, भूख बढ़ती है तथा पाचक रसों का स्राव अधिक होता है। सारे शरीर के अंगों की क्रिया ठीक होती है। रक्त संचार सुधरता है। नाड़ी सुधरती है। मस्तिष्क तथा वाततन्तुओं पर विशेषकर सुषुम्ना पर शामक और पौष्टिक प्रभाव होता है। मलमूत्र का विसर्जन ठीक होता है। मानसिक तथा वात-तन्तुओं की उत्तेजना शान्त होती है। अतः उन्माद, मानसिक क्षोभ, चिन्ता, मन-मस्तिष्क तथा वातनाड़ियों की निर्बलता मन की अस्थिरता दूर होती है। इन कारणों से अनिद्रा में भी जटामाँसी अत्युत्तम है। प्रायः अपस्मार, शिरःशूल, गृध्रसी एवं अन्य वेदनाओं तथा आध्मान, आनाह, मूत्रकृच्छ्र में इसके प्रयोग से वात अनुलोमन होता है। जिससे ये रोग शान्त होते हैं। वातजन्य हृदय की अनियमित धड़कन इसके सेवन से ठीक होती है। हृदय तथा कफ के रोगों में सब प्रकार की निर्बलता में, बालों की सफेदी मिटाने के लिए भी इसका प्रयोग होता है। मुख की दुर्गन्धि मिटाने के लिए तथा दान्तों के दर्द को शान्त करने के लिए दन्तमंजनों में डालते हैं। रक्तशोधक होने से रक्त की अशुद्धियों में जटामाँसी को मधु के साथ देते हैं। वीसर्प, रक्तपित्तादि शान्त होती है। प्रतिश्यायादि में ६ तोला जटामाँसी को १½ सेर पानी में गरमकर आधा शेष रखकर, उसमें मधु डालकर शर्बत बना लें—कष्टार्तव, अनियमितार्तव, कास, श्वास, कंठशोथ में यह शर्बत अत्यन्त लाभ करती है। संक्षेप में वातसूत्रों का उत्तेजनाजन्य मानसिक रोगों, वात-व्याधियों, थकावट, चिन्ता, अनिद्रा, उन्माद, हृदय के रोग, पाचन संस्थान के रोग, अग्निमान्द्य, आध्मान, अरुचि, क्षुधानाश, विबन्धादि, अनिद्रा चित्त का किसी काम में न लगना या उचाट रहना, शोक, डर, भय चिन्ता, उदासीनतादि, रक्तवहन (सिराधमनियों) के वातनाड़ी सम्बन्धी रोगों में जटमाँसी अतिश्रेष्ठ है। अतएव इसे मेध्य कहा गया है। यकृत्, तथा आमाशय को बल देने वाली है। वृक्कों के लिए अहितकर है, अतः उसके रोगों में सावधानी से प्रयोग करें।

योग—(१) जटामाँसी, इलायची, जावित्री, द्वीजं, प्रत्येक ३-३ माशा लोहभस्म १ माशा चूर्ण बना ४ रत्ती की मात्रा में मधु के साथ सेवन करने से मानसिक उदासी दूर होकर मस्तिष्क पुष्ट होता है।

(२) **मांस्यादि वटी**—जटामाँसी, कपूरकाचरी, बहमन श्वेत, बहमन लाल, नागरमोथा, एला, लवंग, रूमीमस्तगी, पिस्ता की छाल, जावित्री, केसर, मीठा, इन्द्रयव, प्रत्येक ९-९ माशे, अफीम ३ माशा, कालीमिर्च, खुरासानी, यवानी ३-३ तोला, गुलाब फूल, तज, तमालपत्र, आकाशबेल, १-१ तोला, अगर, अकरकरा, ३-३ माशे सबको मिलाकर गलाब जल में पीसकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ वना लें।

मात्रा—२-४ गोली दूध से प्रातः या रात्रि को

गुण—अत्यन्त पौष्टिक, वाजीकरण, मेध्य, अग्नि, दीपन, सब अंगों को बल देने वाली है।

(३)जटामांस्यादि क्वाथ—मात्रा क्वाथ १ तोला, क्वाथ २-४ तोला प्रलाप, उन्माद, अनिद्रा में

(४) जटामाँसी सुरासार[1] ५-१ बूंद

---

1. Tinctura Jatamanssi.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ज्योतिष्मती (स्वर्णलता-कंगुणिका)

परिचय—दीर्घ दृढ़ लता
उ० स्थ०—प्रायः सर्वत्र
रस—कटु, तिक्त
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
व्य० अं०—बीज-तैल-पत्र
दोष—वातकफहर, पित्तवर्धक
प्र० अं०—वातसंस्थान
वि० गु० क०—मेधावर्धक, दीपन, रसायन, वाजीकरण
मात्रा—बीजचूर्ण ४-८ रत्ती तक, तैल ५-१० बूंद
नाम—(हि०) मालकंगनी (म०) माल कांगोणी (गु०) मालकोकड़ी (क०) गंगुण्डेबीज (तै०) बाबुन्जी (ता०) मोद्कोटन (अं०) स्टाफ ट्री[1] (वा० ले०) सिलेस्ट्रस पनिक्युलेटा[2], ज्योतिष्मतीवर्ग[3]।

गुण—ज्योतिष्मती कटुस्तिक्ता सरा कफ समीरजित्। अत्युष्णा वामनी तीक्ष्णा बह्निबुद्धिस्मृतिप्रदा (ध०)
कटु ज्योतिष्मती तैलं तिक्तोष्णं वात नाशनम्। पित्तसंतापनं मेधा प्रजा बुद्धि विवर्धनम्। (रा०)

मालकंगनी (बीज तथा तैल) कड़वे, चरपरे, अत्यन्त उष्ण, मृदुरेचक, वातकफशामक, पित्त तथा अग्निवर्धक मेध्य-बुद्धिवर्धक, उत्तेजक, स्वेदल तथा त्वचा रोगहर है। अधिक मात्रा में शामक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—यह अति उत्तम मेध्य है। बीज प्रतिदिन प्रारम्भ करके प्रतिदिन १ बढ़ाते हुए ५० दानों तक बढ़ाते जाएँ। दूध घी खाना आवश्यक है। साथ-साथ इसके बीजों का धानी से निकाला तैल भी अंगों पर अभ्यंग करे। इसका प्रयोग शीतकाल में तथा वात और कफ प्रकृति वालों के लिए उत्तम है इससे बुद्धि स्मृति शक्ति बढ़ती है। इससे आमवात, पक्षाघात त्वचा रोगों, तथा वात बलासक (Beri Beri) में लाभ होता है। इसका तैल उत्तम स्वेदल है। १०-१५ बूंद की मात्रा में दूध के साथ देने से शरीर में चैतन्यता आती है। कुछ समय बाद पसीना आता है। किन्तु हृदय निर्बल नहीं होता है। अतः शरीर की शिथिलता, अंगों का शून्यपन, पक्षाघातादि में उत्तम है। मालकंगनी, लोबान, लौंग, जायफल, जावित्री को मिलाकर पातालयन्त्र द्वारा या अर्क यन्त्र द्वारा तैल निकाला जाता है। यह काले रंग का अति उष्ण एवं वाजीकरण तैल है। यह तैल व्रणशोधक (नाड़ीव्रण) तथा आमवातादि में शोथशामक भी है। इस तैल या बीजों के प्रयोग से प्रथम मूत्र की मात्रा बढ़ती है। जलशोथ शान्त होकर संज्ञा शक्ति लौट आती है। अतः जलोदर में भी लाभ करता है। नपुंसकता में इस तैल की १० बूंद दूध में मिलाकर पिलाने से तथा इन्द्रिय पर लेप करने से लाभ होता है। श्वास कफ को निकालने के लिए इलायची तथा मालकंगनी तथा बीजों को सेवन किया जाता है। गोमूत्र में २१ दिनों तक भिगो कर पुनः तैल निकालकर लेप करने से श्वित्र (सफेद कोढ़) शान्त होता है। बीजों का तथा तैल का प्रयोग भूख बढ़ाने, बादी को नष्ट करने तथा उदरविकारों की शान्ति के लिए किया जाता है। रजःकृच्छ्रता में ज्योतिष्मती पत्र, सज्जी क्षार, बचा, विजयसार की मूल की छाल, सबको दूध में पीसकर ४-४ माशा की मात्रा में तीन दिन तक दूध से लेने से वह शान्त होता है। फुप्फुस के रोगों में पत्र तथा बीज गुणकारी हैं। ज्योतिष्मती तथा महाज्योतिष्मती भेद से यह दो प्रकार की है। गुणों में समान है।

---

1. Staff Tree.
2. Celastrus Paniculata, wild.
3. Celastraceae-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भंग (विजया-मातुलानी-मादिनी-हर्षिणी)

परिचय—भाँग का क्षुप उष्ण प्रदेशों में सर्वत्र पाया जाता है। पत्र-निर्यास स्राव (चरस) तथा निर्यात सहित पुष्प मंजरी (गाँजा) का उपयोग होता है। पत्तों का अधिक।

रस—तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—वातकफशामक, पित्तवर्धक

प्र० अं०—वातसंस्थान

वि० गु० क०—अग्निदीपक, मादक, वेदना, आक्षेपहर, स्तम्भक, निद्राजनक

मात्रा—पत्र चूर्ण १-२ रत्ती, गाँजा ½-१ रत्ती, चरस ⅛ रत्ती

नाम—(हि० पं० गु० म०) भाँग (बम्बई) गाँजा (बं०) भाङ्-सिद्ध (क०) भंगि (तै०) भंगि (ता०) भंगइलै (अं०) इण्डियन हेम्प[1] (वा० ले०) केनाबिस इण्डिका[2] वट या उदुम्बर वर्ग[3]।

गुण—भंगा तु दीपनी तिक्ता ग्राहिणी पाचनी लघुः। निद्रापित्तप्रदोष्णा च कामदा कफ वातजित्॥
श्वश्रृगालादि दंशस्थं जलातंकं निवारयेत्। बाह्यामान्तरायामौ विषूचिमपि दारुणाम्॥
मदात्ययं महाघोरं शूलंचौवाम्लपित्तकम्। अग्निमाद्यं हरेच्चापि रजो स्रमति संस्रुतम्॥
(आ० वि०)

भाँग—कड़वी, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, अग्निदीपन, पाचन, लघु, रूक्ष, पित्तवर्धक, कफवातशामक, निद्राप्रद, कामोत्तेजक है। पागल कुत्ते आदि के काटने से उत्पन्न जलत्रास में बाह्य-अन्तरायाम (धनुर्वात) विषूचिका, मदात्यय, अम्ल, पित्त की शूल, रक्त प्रदर तथा अग्निमान्द्यनाशक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—बाह्य प्रयोग में भाँग शोथहर है। अतः अर्श में शोथ-वेदना शान्ति के लिए इसकी धूनी देते हैं। उपनाह बाँधते हैं तथा स्वेद (सेक) देते हैं। मलहर १ : ४ की शक्ति का बनाते हैं।

अन्तः प्रयोग—स्वल्प मात्रा में भूख बढ़ाती है तथा पाचन को उत्तम बनाती है। किन्तु विबन्ध (कब्जी) कारक है। किन्तु निरन्तर बहुत दिनों तक प्रयोग करने से क्षुधानाश तथा पाचन खराब हो जाता है। आन्तों से इसका आशोषण धीरे-धीरे होता है तथा आधा घण्टे बाद यह अपना प्रभाव दिखाना प्रारम्भ करती है। आन्तों के आक्षेप को दूर करके उदरशूल को शान्त करती है।

इसका प्रभाव प्रधानतः मस्तिष्क पर होता है। किन्तु मद्य तथा अफीम के समान सर्वथा निश्चित प्रभाव नहीं होता। क्योंकि भाँग की मात्रा तथा व्यक्ति की विशेषता में भिन्नता रहती है। खाने की अपेक्षा धूम्रपान से तत्काल प्रभाव होता है। स्वल्प मात्रा में इसके सेवन से हर्ष तथा सुख की अनुभूति होती है। व्यक्ति कुछ अधिक क्रियाशील हो उठता है। हँसना, गाना, भाषण करना आदि क्रियाएँ करता है। बाहर की चिन्ताएँ मिट जाती हैं। प्रारम्भिक उत्तेजना के बाद नींद आ जाती है। इस प्रकार यह हर्षदायक, सौमनस्यजनन, प्रलापक, मादक और स्वापजनन है। कभी-कभी सिर भारी हो जाता है तथा चक्कर आते हैं। बहुत अधिक मात्रा में लेने से कभी-कभी मूर्च्छा, पागलपन भी कर देती है।

---

1. Indian hemp.
2. Canabis Indica,Linn
3. Urticaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चेतना या वेदनावह नाड़ियाँ जड़ हो जाती हैं। जिससे अंगों में जड़ता तथा संज्ञा नाश हो जाता है। अतः यह वेदनाहर भी है। किन्तु अफीम तथा धत्तूरे से कम।

हृदय तथा रक्त संस्थान तथा श्वसनसंस्थान पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। उत्तेजना की दशा में नाड़ी अवश्य कुछ तेज हो जाती है।

गाँजा तथा चरस का प्रयोग औषधियों में प्रायः नहीं होता है। इनका भी प्रभाव ऊपर के अनुसार ही होता है।

क्षुधानाश, अग्निमान्द्य में तथा अम्लपित्त, अतिसार, आमाशयशूल में प्रयोग की जाती है। सेकी हुई भाँग कालीमिर्च के साथ मधु मिलाकर चटाने से, अतिसार, उदरशूल, प्रवाहिका शान्त होती है। पागलपन की तेजी, कुत्ता-खाँसी, श्वास, मूत्राघात तथा रजःकृच्छ्रता में लाभ करती है। इलायची, लौंग के साथ भाँग का चूर्ण खाने से शारीरिक वेदनाएं मिटती हैं। श्वासवेग तथा धनुस्तम्भ मिटाने के लिए शुद्ध भाग १/८ रत्ती तक की मात्रा में कालीमिर्च के साथ देवें। योषापस्मार, अपतन्त्रक ½ रत्ती की मात्रा में हींग के साथ देनी चाहिए। मूत्रकृच्छ्र में इसे बादाम खीराबीज आदि के साथ पीसकर खिलाते हैं। स्वरस से कर्णवेदना शान्त होती है। उत्तम गाँजा की १ रत्ती की मात्रा से अश्मरी पीड़ा मिटती है। सेक कर मधु के साथ खाने से निद्रा आती है।

बीजों को मोम के साथ खिलाने से बिच्छू विष उतरता है। यकृत् को छोड़कर अन्य सभी अंगों के स्राव का स्तम्भन करती है। अतः शुक्रस्तम्भन तथा वाजीकरणार्थ अनेक योगों में डाली जाती है। शिरःशूल में जो विशेषकर श्रम, चिन्ता तथा रजोनाश के समय उत्पन्न होता है, उत्तम है। वेदनाहर होने के कारण योनि-गर्भाशय, रजःकृच्छ्रता-जन्यशूल, वृक्कशूल, बस्तिशूलादि में तथा आक्षेपहर होने से धनुर्वातनाशक है।

तगरम् (कुटिलं, जिम्हम्)

परिचय—बहुवर्षायु क्षुद्र झाड़ी
उ० स्थ०—५-१० हजार फुट की ऊँचाई पर हिमालय में तथा यूरोपीय देश
व्य० अं०—काष्ठ, मूल
रस—कटु, तिक्त
वीर्य—उष्ण, कषाय
विपाक—कटु
दोष—त्रिदोषहर, विशेषतः वातहर
प्र० अं०—वातसंस्थान, आमाशय
वि० गु० क०—उत्तेजक, वायुनाशक, आक्षेपहर, चेतनावाहक
मात्रा—२-४ माशा तक
नाम—(हि०) तगर (पं०) पुष्कवाला, सुगन्धवाला (म०) तगर मूल (गू०) तगर गठोडा (अं०) असारम (वा० ले०) वेलेरिआना वालिचिआई[1], मांस्यादि[2] वर्ग।

वक्तव्य—तगर नाम से अनेक वनस्पतियाँ समझी जाती हैं। यह एक सुगन्धित पदार्थ है जिसकी मूल वक्र टेढ़ी होती है। अतएव नत तथा जिह्वा नाम दिये गये हैं। एक मोगरा जैसी झाड़ी को जिसके श्वेतपुष्प आते हैं, तगर कह दिया जाता है। वह हमें गलत प्रतीत होता है। क्योंकि तगर हिमालय में ५ सहस्र फुट की ऊँचाई से ऊपर होता

1. Valeriana Wallichii De. अन्य नाम भी है। 2. Valerianaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

है और उक्त श्वेत पुष्प वाला वृक्ष तो हमने बम्वई में भी देखा है। यूनानी में असारुन नामक द्रव्य जिसे वे असारुन हिन्दी कहते हैं। वही असली भारतीय तगर प्रतीत होता है। उसी की यूरोपीय जाति को असारुने यूरोपियम नाम दिया गया है। क्योंकि यूनानी की परम्परा भंग न होने के कारण उनके यहाँ द्रव्य संदिग्ध नहीं होने पाए हैं। यह तगर चौकोनीसी, बेडौल, तंतुल, गाँठदार कुछ लम्बी टेढ़ी, पीली, सुगन्धित तथा तीक्ष्ण गन्धि होती है। शास्त्रों में तगर तथा पिण्डतगर नामक दो भेद बताए गए हैं।

गुण--तगरं कटुकं तिक्तं कटुपाकरसं लघु। स्निग्धोष्णं तुवरं भूतमदापस्मारनाशनम्॥
विष चक्षुः शिरोरोग रक्तदोषत्रयापहम्॥ (कैं०)

तगर--कटु, तिक्त, कषाय, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, लघु, स्निग्ध, शीत प्रशमन, सन्निपात, नेत्र, शिरोरोग, विष, रक्तविकार, भूतावेश तथा अपस्मारशामक है। यह स्रोतों का शोधक, मेध्य, वातनाड़ी बलदायक, आर्त्तव तथा मूत्रजनन है।

प्रयोग—बाह्य प्रयोग में व्रणरोपक, वेदनाशामक है। अतः अस्थिभंग, तीव्र आमवात में लेप लगाया जाता है। प्रायः इसका अन्तः प्रयोग ही होता है। वातनाड़ियों को बल देने के साथ-साथ उनकी उत्तेजना शान्त करता है। अतः पक्षाघात, अर्दित, विस्मृति, प्रभृति, वातव्याधियों में दिया जाता है। यकृत् तथा आमाशय के अवरोधजन्य रोगों में, कामला, जलोदर, यकृच्छोथ, प्लीहावृद्धि तथा आमवात, पार्श्वशूल, गृध्रसी, वातरक्त में देते हैं। रजःकृच्छ्रता, मूत्ररोग तथा नपुंसकता में भी उपयोगी है। जीर्णज्वरों में हृदय तथा शरीर की शिथिलता दूर करने के लिए ५-१५ रत्ती की मात्रा में तगर उत्तेजक तथा बलदायक है। प्रलाप, अस्वस्थता दूर होकर नाड़ी सुधरती है। रक्ताभिसरण को उत्तेजन मिलता है। शरीर उष्ण होता है तथा स्वेद आता है। अतः शीत या कफज रोगों में विशेष उपयोगी है। किन्तु अधिक मात्रा में देने से ग्लानि, चक्कर, हिचकी तथा वमन भी हो जाती है। वातव्याधियों में रक्त या यशद् भस्म के साथ देने की प्रथा है। इसके सेवन से उबासियाँ आने लगती हैं। यह इस बात का द्योतक है कि अब तगर प्रभाव करने लगा है। विशेष कर कम्पवात तथा अपस्मार में वातिक कास तथा श्वास में भी तगर आक्षेप नाशक होने से लाभ करता है।

योग--तगरादि क्वाथ (त्रिशती) सन्निपात के प्रलाप में।

धत्तूरः (उन्मत्तः, कितवः, कनकपाह्वयः)

परिचय--सुपरिचित छोटी झाड़ी
उ० स्थ०—प्रायः सर्वत्र
पुष्पकाल—अक्तूबर-नवम्बर
व्य० अं०—पंचांग
रस--मधुर, तिक्त, कषाय
वीर्य--उष्ण
विपाक—कटु
दोष—वातकफशामक
प्र० अं०—वातसंस्थान
वि० गु० क०—शोथ-वेदनाशामक, निद्राजनक, वाजीकरण, श्वासशामक
मात्रा--पत्र तथा बीजचूर्ण $\frac{1}{8}$ रत्ती तक
धूम्रपानार्थ पत्र ५-१५ रत्ती

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नाम--(हि० पं०) धतूरा (म०) धोत्रा (गु०) धतूरो (बं०) धतूरा (क०) बिलि, करि-उनमत्ति (तै०) उनमत्तमु (ता०) उन्मत्ति (अं०) थोर्नएप्पल[1]।

वक्तव्य--धतूरे की तीन मुख्य जातियाँ हैं। वानस्पतिक नाम तीनों के इस प्रकार है। यह धत्तूर वर्ग[2] की औषधि है।

(१) श्वेत धत्तूरा--धत्तूरा एल्वा[3] (२) काला धत्तूरा--धत्तूरा फास्टुओसा[4] (३) रजि धतूरा--धतूरा स्ट्रमोनिअम्[5]। शास्त्रों में इसके दो अन्य भेद भी दिये हैं।

भेद--सितनील कृष्ण लोहितपीत पसवाश्चसन्तिधतूराः।

गुण--सामान्य गुणोपेतास्तेषु गुणाढ्यस्तु कृष्णकुसुमः स्यात्। उन्मादवाते वर्णानित्र कान्तिदो ज्वरकुष्टनुत्॥
धत्तूरो मधुरस्तिक्तः तीक्ष्णस्तुवरो लघुः। यूकालिक्षा व्रणश्लेष्मक्रमिकण्डु विषापहा॥ (कै०)

धतूरा मीठा, कड़वा, कसैला, गुरु, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, उन्मादक, वात-वर्ण, अग्नि, कान्तिवर्धक, ज्वर, कुष्ठ, क्रमि, श्लेष्मा, व्रण, कण्डु तथा विषशामक है।

प्रभाव तथा प्रयोग--लेपादि बाह्य प्रयोग में धतूरा शोथशामक, वेदनाहर तथा स्थानीय संज्ञाहर है। त्वचा में से अति स्वल्प मात्रा में धीरे-धीरे शरीर में प्रविष्ट होता है। स्तन पर लेप करने से दुग्धस्राव को कम करता है।

अन्तः प्रयोग से यह वातसंस्थान को प्रभावित करता है विशेषकर मस्तिष्क को। अतएव विष मात्रा में (१-१½ माशा) उन्माद, प्रलाप तथा वाक्चपलता उत्पन्न करता है। यह जहाँ केन्द्रीय वातसंस्थान को उत्तेजित करता है वहाँ प्रान्तीय नाड़ी मंडल को शिथिल करता है। अतः वेदनाशामक है। माँसपेशियों के तनाव[6] (आक्षेप) को शान्त करता है। अतः श्वास वेगशामक है। यह श्वास संस्थान तथा रक्त वाहिनियों की नाड़ियों को उत्तेजित करता है। अतएव फुप्फुसों, आमाशय, अन्त्रों, पित्ताशयादि के आक्षेपों (शूलों) को शान्त करता है। स्वतन्त्र नाड़ी मण्डल के चेतान्त तथा प्राणदा नाड़ी के चेतान्तों को शिथिल करता है। जिससे हृदय की गति तीव्र हो जाती है।

उक्त कारणों से ही यह स्रावशोधक है। साधारण मात्रा में यह आमाशयरस का स्राव कम नहीं करता, किन्तु विषमात्रा में स्राव को न्यून कर देता है। पित्त का स्राव इससे अप्रभावित रहता है।

साधारणतः मूत्र की उत्पत्ति धतूरे से प्रभावित होती नहीं है। किन्तु आमाशय का पक्षाघात कर मूत्राघात उत्पन्न कर सकता है। स्वेद की मात्रा को कम करके ताप को बढ़ा देता है।

निष्कासन--इसका पर्याप्त अंश शरीर में ही भस्म हो जाता है। कुछ भाग मूत्र द्वारा स्वल्पांश में दूध द्वारा भी १०-१२ घण्टों के पश्चात् निकलना आरम्भ होता है।

सहनशीलता--वृद्धों तथा प्रौढ़ों की अपेक्षा बच्चे अधिक सह सकते हैं जिन रोगियों को यह असात्म्य (अनुकूल नहीं) होता है उन्हें साधारण मात्रा में भी मुख पर लालिमा, मुख तथा गले में शोथ तथा त्वचा पर शीत-पित्त जैसे धब्बे उत्पन्न हो जाते हैं।

मुख में पारदजन्य लालास्राव में तथा, आमाशय व्रणादि में, वेदना शान्त करने के लिए, अनेक रेचकों के उद्वेष्टन (ऐंठन) के दोष को कम करने के लिए, पित्ताशय शूलादि वेदनाओं, अर्शशोथ, वेदना में, हृदय की धड़कन तथा वेदना में, नाड़ी मन्दता, वृक्क शूलादि में लाभ करता है। श्वास-जीर्णकास, काली खाँसी के वेगों को शान्त करता है। इनके अतिरिक्त प्रतिश्याय, तथा श्वास संस्थान को शिथिल करने वाले विषों--अहिफेनादि--में उत्तम है। निद्राजनक विषों--अफीम, वत्सनाभ, क्लोरोफार्मादि में लाभ करता है।

---

1. Thorn apple.
2. Atropaceae.
3. Datura Alba, necs.
4. Datura Fastuosa, Linn.
5. Datura Stramonium, Linn.
6. Nerve endings.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सब प्रकार के शोथों, वेदनाओं, आमवात, वातरक्त, पार्श्वशूल, मस्तकशूलादि में लेप करते हैं। पत्र या उनका घनसत्व बनाकर शोथ, स्तनवृद्धि आदि में लेप लगाते हैं। पत्र स्वरस में पारद मिलाकर लेप करने से सिर की जुएँ नष्ट होती हैं। धत्तूर घृत का अभ्यंग पार्श्वशूल में किया जाता है। उन्माद-अपस्मार से पूर्व उत्पन्न शिरःशूल में धतूरे का चूर्ण १/८ रत्ती से क्रमशः बढ़ाकर १ १/२ रत्ती तक ले जाएँ। इससे लाभ होता है। प्रतिश्याय, वातकफज्वर, मानसिक रोग, आमवात, रजःकृच्छ्रता, कटिशूल में धतूरा अति लाभप्रद है। दन्त पीड़ा में बीजों को पीसकर दान्त के खोखले में रखने से लाभ करते हैं। गृध्रसी में धत्तूर घनसत्व १/१६ रत्ती वर्धमान मात्रा के अनुसार १/२ रत्ती तक खिलाने से लाभ होता है। स्नायुक में धतूर पत्र तथा चावल की पिट्ठी बांधी जाती है। श्वास में सूखे पत्तों का धूम्रपान कराया जाता है। आमवात शोथ पर धतूर तथा एरण्ड के पत्रों को मिलाकर बाँधते हैं। २-३ बीज नित्य निगलने से पुराना सिरदर्द मिटता है। प्रमेह में बीज तथा कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर अर्क सौंफ के साथ सेवन किया जाता है। वातिक वेदनाओं तथा त्वचा रोगों में धत्तूर तैल का अभ्यंग लाभ करता है। बीजों की भस्म ४ रत्ती की मात्रा में बच्चों को तथा ४ माशा की मात्रा में युवाओं को देने से लाभ होता है। कर्णशूल में ताजे धतूरे के पत्र स्वरस से लाभ होता है। काले धतूरे के १५ फलों के सूखे बीज लेकर १० सेर गाय के दूध को औटाकर दही, जमा घी निकाल कर दिन में दो बार लिंग पर मर्दन करने से तथा १ रत्ती की मात्रा में पान में एक बार खिलाने से क्लैब्य में लाभ होता है। बीजों के साथ लौंग, अकरकरा की गोलियाँ बनाकर सेवन से भी वाजीकरण होता है। अतिस्वेद में १ माशा भस्म नित्य सात दिन तक सेवन करने से पसीना बन्द होता है। हाथ तथा पैरों में पसीना आने पर १/२ रत्ती की मात्रा में सात दिन तक सेवन करने से लाभ होता है। इसकी जड़ को हर समय कमर पर बाँधने से गर्भधारणा होती है। श्वास में धतूरा, तम्बाखू, अजवायन, सोराखर यवासा समभाग का धूम्रपान लाभ करता है। पुष्पकेसर विषूचिका, वाजीकरणार्थ बीज उत्तम है।

अलर्क विष में (पागल कुत्ते के काटने से उत्पन्न) कुत्ते के काटने से १५-२० दिन के अन्दर-अन्दर चिकित्सा करनी चाहिए। इस रोग में काले धतूरे के पत्तों का रस पिलाया जाता है तथा पत्र के अपूप (पुए) भी खिलाये जाते हैं। चिकित्सा इस प्रकार है। प्रातः काल ६ बजे चाय की लकड़ी का कोयला ७ १/२ माशा चूर्ण की फक्की देवें, जिससे उसे धतूरे का जहर न चढ़े। आधा घण्टा पीछे काले धतूरे के पत्तों का रस पिलाएँ, थोड़ी देर बाद उसे ताड़ का गुड़ या अन्य कोई चीज खिला दें, ताकि वमन न हो, पुनः रोगी को रस्सी से बाँधकर ४-५ घण्टे धूप में रखना चाहिए, जिससे वह रोगी धीरे-धीरे उन्मत्त हो जाएगा तथा पागल कुत्ते की-सी चेष्टा करता है। ऐसा रोगी अवश्य नीरोग हो जाएगा। दोपहर बाद उसके सिर पर कई मटके ठंडा जल डालें। इससे रोगी को बड़ा कष्ट होता है। पीछे से बैंगन और चने का पथ्य दें। मस्तक पर पछना लगा कर रक्त स्राव भी करा दें। शुष्क मूल १/४ रत्ती पान में रखकर खाने से उपदंश शान्त होता है।

योग--(१) कनकासव—श्वासनाशक।
(२) लक्ष्मीविलास, महालक्ष्मीविलास—शिरःशूल तथा निर्बलताशामक वाजीकरण है।
(३) कनकसुन्दररस--संग्रहणी हर।
(४) सूतकेशर--अम्लपित्तशामक।
(५) मदनानन्द--वाजीकरणार्थ।
(६) महाज्वरांकुश--ज्वरशामक।

विषलक्षण--इसमें "धत्तूरीन" नामक विषैला सत्व होता है, जिससे विष प्रभाव उत्पन्न होता है। लक्षण (१) मुख तथा गले में शोथ, चक्कर, मुख का लाल होना, (२) नेत्रों की तारा (पुतली) का फैलना। आवाजभरी प्रलाप तथा उठ-उठकर भागना, शराबी के समान लड़खड़ाकर चलना। अन्त में मूर्च्छा तथा सन्यास मृत्यु।

चिकित्सा—वमन कराना, आमाशय प्रक्षालन, उत्तेजक औषधियाँ, कृत्रिम श्वासक्रिया। आमाशय साफ होने

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

के बाद घी दूध पिलाना चाहिए। अधिक प्रलाप तथा उन्मत्तता होने पर अफीम का प्रयोग भी कर सकते हैं, किन्तु लाभ अधिक नहीं होता।

धतूरे के समान बेलडोना (सूची) की भी क्रिया होती है। उसके मुख प्रयोग भी इसी के समान समझें। उसमें 'एट्रोपीन' (Atropine) नामक सत्त्व पाया जाता है। इसकी मात्रा १|२४० स १/६० ग्रेन तक है।

निर्गुण्डीद्वयम्

परिचय—निर्गुण्डी या संभालु पार्वत्य प्रदेशों में सर्वत्र मिलती है। यह मध्यम प्रमाण की झाड़ी है। पुष्पभेद से दो प्रकार की है।

पुष्पकाल—एप्रिल-मई
रस—कटु, तिक्त, कषाय
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
दोष—वातकफशामक
प्र० अ०—सर्व शरीर, वातसंस्थान, यकृत्, प्लीहा
वि० गु० क०—वातव्याधिशामक, शोथ, वेदनाहर, वातकफजरोगहर
मात्रा—त्वचाचूर्ण १-३ माशा

वक्तव्य—नीलपुष्पा निर्गुण्डी—निर्गुण्डी श्वेतपुष्प सिन्दुवार, संभालु। निर्गुण्डी में पाँच पत्ते एक डंठल (वृन्त) पर होते हैं, यद्यपि उनका आकार समान नहीं होता। संभालु में तीन पत्ते होते हैं। यह जलाढ्य स्थानों में होते हैं। गुणों में दोनों समान हैं।

नाम—(हि० पं० मा०) संभालु या नील संभालु (म०) निगड. लिगड (गु०) नगोड, नगद (बं०) निशिन्दा (क०) करिलक्किगिड (तै०) तेल्लबोविलि (ता०) बेक्कैनोच्चि (वा० ले०) विटेक्स निगुण्डों (नीलपुष्पा)[1] विटेक्स ट्राईफोलिया[2] (श्वेतपुष्पा), निर्गुण्डी वर्ग[3]।

गुण—निर्गुण्डी कटु तिक्तोष्ण कृमिकुष्ठ ज्वरापहा। वातश्लेष्म प्रशमनी प्लीहागुल्मापची हरेत्॥ (ध० नि०)
सिन्दुवार कटुस्तिक्तः कफवात क्षयापहाः। कुष्ठ कण्डूतिशमनः शूलहृत् कास सिद्धिदः॥
कटूष्णा नील निर्गुण्डी तिक्तारूक्षा कफास्रजित्। श्लेष्म शोथ समीरार्ति प्रदराध्मान हारिणी॥ (रा० नि०)

सम्भालु कड़वा, कटु, उष्णवीर्य, वातकफशामक, कृमि, कुष्ठ, ज्वर प्लीहा, गुल्म, उष्णवीर्य वातकफशामक, कृमि कुष्ठ, ज्वर प्लीहा, गुल्म, अपची, कफवात रोग, प्रदर, आध्मान, शोथ तथा वेदनाशामक है।

दोनों ही वेदनाशामक, लेखन, (वसा नाशक) शोथशामक, व्रणशोधक तथा यकृत् प्लीहा के स्रोतों के शोधक हैं। बल्य रसायन वात तन्तुओं को पुष्टि देने वाले तथा आर्तवजनन है।

प्रयोग—सब प्रकार के शोथों, वेदनाओं, वातवेदना, आमवातादि, उपनाह (पुल्टिस) तथा व्रणों में स्वेदन, तथा लेप में पत्तों का प्रयोग होता है। इससे व्रणों की पीप बन्द होती है तथा वे शीघ्र भर जाते हैं।

निर्गुण्डी पंचांग के गरम काढ़े का सेक, स्नान तथा अवगाह (कटिस्नान) कराने से सब वेदनाएँ—कटिशूल, रजःकृच्छ्रता, गृध्रसी, फुप्फुसावरण शोथ गर्भाशय गुदशोथ अण्डकोषों की सूजनादि शान्त होती है। निर्गुण्डी में निम्ब, पलाश पुष्प, पुनर्नवा, मकोय मिलाकर स्वेद अवगाहन करने से उत्तम लाभ होता है।

1. Vitex Negundo.
2. Vitex Trifolia, Linn.
3. Verbenaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अन्तः प्रयोग में पत्रचूर्ण कालीमिर्च के साथ देने से वातकफज्वर, प्रतिश्याय, कफजकास (न्यूमोनिया) आदि में लाभ होता है। प्रसव के बाद निर्गुण्डी क्वाथ से गर्भाशय से दूषित रक्त निकल जाता है तथा उसका संकोच ठीक होता है। निर्गुण्डी को पीसकर नाभि-बस्ति तथा पेडू पर लेप करने से सुख प्रसव होता है। १ तोला निर्गुण्डी चूर्ण गाय के मूत्र में पीसकर पीने से श्वास-कास तथा वातविकार मिटते हैं। गोघृत के साथ सेवन करने से यह त्रिदोषशामक है। मूलत्वक् चूर्ण को मधु में मिलाकर शीशी में भरकर भूसे में ३ मास तक रक्खें। पुनः ६ माशे की मात्रा में सेवन करने से समस्त वातव्याधियाँ नष्ट होती हैं। अति उत्तम रसायन है।

रेणुका—यह सम्भालु के बीज हैं। रेणु-इरेणु के नाम से बाजार में मिलते हैं। ईरान से भी एक वनस्पति[1] के बीज आते हैं जो रेणुका कहाते हैं। वे भी निर्गुण्डी जाति के ही हैं। गुणों में दोनों समान हैं। विशेष गुण उष्ण, उत्तेजक, अनुलोमन, शोथघ्न तथा मूत्रल हैं।

यकृत् प्लीहा वृद्धि में जलोदर अग्निमान्द्य, गुल्म, आध्मान, आन्तरिक विद्रधिशामक है। हिक्का में पिप्पली के साथ मिलाकर दिया जाता है।

योग--निर्गुण्डी उत्तम व्रणशोधक रोपक।

रतनजोत (नलिका)

नाम--(वा० ले०) ओनोस्मा एकोइडिस्[2]। सर्वभाषा रतन जोत। संस्कृत में इसे नलिका भी कहते हैं। गुजराती में बृहद्दन्ती को भी 'रतन जोत' कहा जाता है। वह इससे पृथक् द्रव्य है। यह रतन जोत लाल रंग की लकड़ी होती है जो हिमालय में सर्वत्र मिलती है।

गुण--नलिका शीतला लघ्वी चक्षुष्या कफपित्तहा। कृच्छ्राश्मवात तृष्णास्र कुष्ठ कण्डु ज्वरान् हरेत् ॥ (कै०)

इसका उपयोग तैलों में रंग के लिए किया जाता है। इसे पीसकर नस्य देने से अपस्मार की मूर्च्छा दूर होती है। जड़ का लेप फोड़े-फुंसियों पर किया जाता है। इनका मुख खुला छोड़ देना चाहिए। बंगला में इसे नालुका कहा जाता है।

नख-नखाला

नाम--(सं०) नख-नखी (हि०) नख (बं०) नखी (म० गु०) नखला (ले०) हेलिक्स एस्पेरा[3] (अं०) वाटर मोल्युक्स[4]।

परिचय--यह जलजन्तु की पीठ है। छोटे तथा बड़े दो भेद होते हैं। छोटे को 'नख' बड़े को 'व्याघ्रनख' कहते हैं।

गुण प्रयोग--नख स्यादुष्णकटुको, विषं हन्ति प्रयोजितः। कण्डु कुष्ठ व्रणघ्नश्च भूत विद्रावणः परः ॥
(रा० नि०)

नख मधुर, कटु, उष्णवीर्य, लघु, शुक्रल, वर्ण्य, कफ, वातरक्त, ज्वर, व्रण विष कण्डुनाशक है। यकृत्, आमाशय, गर्भाशय के दर्द को दूर करने वाला, अर्श, अपस्मार, मूर्च्छानाशक है। इसकी धूनी से अपस्मार अपतन्त्रक की मूर्च्छा नष्ट होती है। तैलों में सुगन्धि के लिए डाला जाता है।

मात्रा---२-४ माशा तक।

---

1. Vitex agnus. Castus.
2. Onosma Ecoides.
3. Helix Asper.a
4. Water mollux.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पारसीक यवानी (जन्तुनाशक)

परिचय--धतूर जातीय क्षुप

उ० स्थ०—हिमालय ८-११ सहस्र फुट की ऊँचाई पर, काश्मीर, ईरानादि

व्य० अं०---पत्र, बीज

रस---कटु, तिक्त

वीर्य--उष्ण

विपाक---कटु

प्र० अ०---वातसंस्थान, अन्त्र

वि० गु० क०---क्रमिघ्न, मादक, स्वापजनन, वेदनाहर

मात्रा---$\frac{1}{2}$-१ माशा तक

नाम—(सं०) पारसीक यवानीस्याच्चौहारो जन्तुनाशनः (कै०)

तुरुष्का, मदकारिणी, (हि०) खुरासानी अजवायन (म०) खुरासानी ओवा (गु०) खुरासाणी अजमा (बं०) खुरासानी ओजमान् (अं०) हेनबेन[1] (वा० ले०) हायोसाएमस[2] नाईगर धतूर या काकमाची वर्ग[3]।

वक्तव्य---इस जाति के कई क्षुप हैं। पुष्पों के अनुसार तीन भेद हैं।

(१) श्वेत[4]—यह काली की अपेक्ष विषैली है। यूनानी वैद्य इसका अधिक उपयोग करते हैं।

(२) लाल--यह दूसरे नम्बर पर है।

(३) काली--यह अन्यों से अधिक विषैली है। पाश्चात्य चिकित्सा में तथा आयुर्वेद में इसका उपयोग किया जाता है। गुणों में सब समान हैं।

गुण—यवानी रूक्षा ग्राहिणी मोक्षिणी कटुः। (रा० नि०)

चौहारः कटुस्तिक्तः तीक्ष्णो दीपनो लघुः। त्रिदोषशमनो वृष्यो जीर्णामक्रमिशूलनुत्॥ (कै०)

खुरासानी अजवायन कटु, तिक्त, उष्ण, कटु विपाकी, त्रिदोषहर, मादक, ग्राही, तीक्ष्ण, मोहन, दीपन, लघु, अजीर्ण, आमदोष, उदरशूल, क्रमि और वेदनाशामक है। आधुनिकों ने इसमें से दो प्रकार के सत्त्व पृथक् किए हैं। प्रमुख सत्त्व तो धत्तूर के सत्त्व के समान है उसे पारसीकीयम्[5] कहा जाता है। इसी के कारण इसका शामक प्रभाव होता है। दूसरा सत्त्व 'पारसीक'[6] कहा जाता है। यह भी मादक तथा निद्राजनक है।

मोहक तथा वेदनाशामक गुण के कारण यह संशमन और स्वापजनक है। मस्तिष्क, सुषुम्ना, अन्त्र, मूत्राशय पर शामक प्रभाव होता है। अतएव इन अंगों के क्षोभ में, अनिद्रा, उन्माद, चिन्तादि में, अन्त्रों में क्षोभजन्य अतिसार, वेदना, उदरशूल, और मूत्राशय में अश्मरी या अन्य कोई क्षोभक कारण से वेदना, मूत्रकृच्छ्र आदि हो तो उसे शान्त करती है। अतएव उद्वेष्टन (ऐंठन) उत्पन्न करने वाले विरेचनों में इसे विशेष रूप से डाला जाता है। मूत्राशय शोथ, शय्यामूत्र, थोड़ा-थोड़ा मूत्र आना, अश्मरी पौरुषग्रन्थि वृद्धि आदि में तथा कष्टार्तव, अल्पार्तव, तथा अनियमितार्तव कटिशूलादि में अत्यन्त लाभ करती है। इसके अवसादक प्रभाव के कारण शीघ्र शुक्रपात, स्वप्नदोष, अतिकामुकता में अन्तः प्रयोग होता है। सब प्रकार की शोथ, स्तनशोथ, अण्डशोथ, अर्श, आमवात में इसका लेप लगाने से लाभ होता है। संक्षेप में यह सब प्रकार के क्षोभों में, वातकम्प, आदि पर तथा वेदनाओं में अनिद्रा मस्तिष्क या वातनाड़ी क्षोभ

---

1. Henbane.
2. Hyoscyamus Niger.
3. Solanaceae.
4. Hyoscyamus Albus.
5. हायोसायमिन (Hyoscyamine).
6. हायोसिन् (Hyoscine).

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

धनुर्वात आक्षेप, अपस्मारादि में उदरकृमियों में, उदरशूलादि में यह बहुत उपयोगी औषध है। हृदय विकृतिजन्य श्वास को शान्त करती है। यह हृदय उत्तेजक नहीं है। साधारण मूर्च्छा में प्रयुक्त होती है सहायक रूप में।

पारसीक यवनिका पीता पर्युषित वारिणा। गुड़पूर्वो कृमिजातं कोष्ठगतं पातयत्याशु ॥ चक्रदत्तः

उदर कृमि में रात को गुड़ के साथ खाकर प्रातः विरचन देना आवश्यक है।

विष लक्षण—अत्यधिक मात्रा में देने से अधिक अवसादक या निद्राजनक प्रभाव उत्पन्न नहीं होता, अपितु उत्तेजना तथा प्रलाप उत्पन्न होता है। भ्रम, कंठशोथ, शोष, तृष्णा, उन्माद, सन्यास, मतिभ्रम (मोह) बधिरता तथा अंग प्रत्यंगों में शिथिलता उत्पन्न हो जाती है। शरीर शीत, पीले रंग का तथा वाणी बन्द हो जाती है। श्वास संस्थान का अवसाद होकर मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—उष्णजल या गरम दूध पिलाकर बारम्बार वमन कराएँ। आमाशय शुद्ध हो जाने पर बकरी का ताजा दूध पिलाएँ।

योग—(१) तरल सत्व—मात्रा ३-६ बूंद

(२) घनसत्व—मात्रा $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{2}$ गुंजा

(३) वारुणीसार—मात्रा ३०-६० बूंद

(४) खुरासानी अजवायन, केशर, पीपरामूल, सौंफ, हल्दी सब ३-३ माशा, भाँग ६ माशा चर्ण बनाकर ४ रत्ती-१ माशा तक जल के साथ दें। उत्तम निद्राजनक है। अतएव इसे 'स्वप्नद' नाम दिया गया है।

प्रसारिणी गन्ध प्रसाहिणी (राजबला, सुप्रसरा)

नाम—(हि०) पसरन, गन्ध पसारनी, सीप (बं०) गन्धमादाले (म०) प्रसारण-हिरणबेल (क०) हेरणे (तै०) गोन्तेम गोरु (वा० ले०) पीडेरिआ फीटीडा[1], मंजिष्ठादि वर्ग[2]।

विशेष गुण—रेचक, वामक, वात तथा आमदोषनाशक, व्य० अं०—पंचांग, प्रभाव्य अवयय—अन्त्र तथा वात

गुण—प्रसारिणी सरातिक्ता वीर्योष्णा शुक्रला गुरुः। वर्ण सन्धान बलकृद्वातरक्त त्रिदोषहा ॥ (कै०)

पसरन कड़वी, उष्णवीर्य, मधुर विपाकी, सर, वातानुलोमक, गुरु, वीर्य, बलवर्धक, अस्थिसन्धानकारक, वात रक्त तथा त्रिदोषवर्धक, वातरक्त तथा गन्धारिक्त त्रिदोष प्रसारिणी तैल अभ्यंगार्थ।

वक्तव्य—महाराष्ट्र में प्रायः चांदबेल या गुजराती मारी नामक वेल से यह भिन्न है।

भल्लातकः (अरुष्करः, अग्निमुख)

परिचय—भल्लातक का वृक्ष उष्ण प्रदेशों में पश्चिम तथा दक्षिण भारत में अधिक होता है।

व्य० अं०—बीज[3], तैल

रस—मधुर, कषाय, कटु

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—वातकफ नाशक

पुष्पकाल—फाल्गुन-चैत्र

प्र० अं०—पाचन संस्थान, सर्वशरीर

---

1. Paedaria Foetida, Linn. 2. Rubiaceae.
3. प्राचीनों ने फूले वृंत को फल (मिथ्या फल वस्तुतः) और सच्चे फल को 'बीज' माना है। वस्तुतः काला भाग ही फल है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वि० गु० क०—रसायन कफ तथा वातरोगहर, दीपन, मेध्य

मात्रा—४ रत्ती से १ माशा

नाम—(हि०) भलावा (पं०) भिलांबे (म०) ब्बिबा (गु० मा०) भिलामुं, भिलायो (बं०) भेला-बेला (क०) गेरुमर (तै०) जेड्डिरो (ता०) पेरनकोहै (अं०) मार्किंग नट[1], धोबी नट[2] (वा० ले०) सेमेकार्पस एनाकार्डियम[3], आम्रवर्ग[4] ।

गुण—आरुष्करं तौवरकं कषायं कटुकं रसे । उष्णं कृमि ज्वरानाहमेहोदावर्त नाशनम् ॥
कुष्ठगुल्मोदरार्शोघ्नं कटुपाकि तथैव च ॥ (सु० सू०)

कफजो न सः रोगेऽस्ति न विबन्धोऽस्तिकश्चन । यन्त्र भल्लातकं हन्याच्छीघ्रं मेधाग्नि वर्धनम् । (च० वि०)

भिलावा की छाल वृक्ष, मधुर, कषाय, तिक्त' शीतल, कटु विपाकी, ग्राही, पित्त-कफ-रक्त विकारशामक तथा अग्निवर्धक है ।

फल (फूला हुआ वृन्त) मीठा, गुरु, पौष्टिक, मधुर विपाकी, शीत वीर्यवर्धक, दुर्जर बलकारक, वातकफवर्धक तथा रक्तपित्तशामक है ।

अस्थि या बीज (इसी का औषधियों में प्रयोग होता है) मधुर, कटु, कषाय, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, स्निग्ध, तीक्ष्ण, भेदन, छेदन, मेध्य, अग्निवर्धक, कफ तथा वातरोग, व्रण, उदर-कुष्ठ, अर्श, गुल्म, प्लीहा-ज्वर तथा उदरकृमि नाशक है । शुद्ध करके ही भिलावे का प्रयोग होता है । तैल का भी प्रयोग बताया गया है । किन्तु बहुत भयावह होने से प्रायः प्रयोग किया नहीं जाता । क्योंकि इसके लगाने से फफोले उठ जाते हैं । जिन्हें शान्त करने के लिए घी या नारियल की गिरी बाँधनी चाहिए ।

प्रभाव तथा प्रयोग—यह रक्त में शीघ्र मिल जाता है किन्तु धीरे-धीरे शरीर से निकलता है । आमाशय, उत्तर गुदा तथा यकृत् पर इसकी क्रिया जोरदार होती है । यकृत् में रक्त भ्रमण तथा उसकी विनिमय क्रिया ठीक होती है । उत्तर गुदा पर रक्त का दबाव कम होता है तथा अर्श में रक्त संचय नहीं हो पाता । वृहदन्त्रों की कला की पुष्टि होती है जिससे कब्जी नहीं होती तथा अपानवायु भी उत्पन्न होने से आध्मान-आनाह (अफारा) नहीं हो पाता है । भूख लगती है । समस्त पाचक अवयवों की कला में रक्ताभिसरण सुधरता है तथा कफ का आवरण हटने से सभी स्रोतों से रसों का स्वच्छ तथा शुद्ध प्रवाह होने लगता है । अतएव अग्निमान्द्य, प्रमेह, मधुमेहादि में इससे लाभ होता है । त्वचा पर क्षोभक क्रिया करता है तथा पसीना लाता है । वृक्कों से निकलते समय वृक्कों की कला को क्षुभित करता है । अधिक मात्रा के सेवन से मूत्र की उत्पत्ति में न्यूनता तथा कभी-कभी मूत्र में रक्त भी आता है । मूत्र नलिका तथा शिश्न में उत्तेजना उत्पन्न करता है । नाड़ी तथा हृदय को बल देने वाला, रक्त की वृद्धि करने वाला, शोथशामक, रसग्रन्थियों का उत्तेजक, आमदोषनाशक तथा रसायन है । कुष्ठ, उपदंश गण्डमाला, आमवात, सन्धिशोथ में भिलावे को दूध के साथ सेवन करें । पक्षाघात, अपस्मार तथा वात की दूसरी व्याधियों में १ माशे की मात्रा में घृत तथा मधु के साथ देना चाहिए । भिलावों की भस्म दन्तमंजनों में डालते हैं । नपुंसकता में भल्लातक का अन्तः प्रयोग किया जाता है ।

वातकफ के रोगों में तथा शीत ऋतु में इनका प्रयोग करना चाहिए । छोटे बालक, सगर्भा स्त्री, तथा पित्त प्रकृति वालों को नहीं सेवन करना चाहिए । इसका सेवन करते समय मूत्र का प्रमाण देखते रहें । यदि मूत्र की मात्रा कम हो जाए, या लाल मूत्र आने लगे, प्यास अधिक लगे शरीर में खाज आने लगे तो तुरन्त इसका सेवन बन्द कर दें ।

योग—अमृतभल्लातकी, ६ माशा रसायन मेहहर ।

---

1. Marking Nut.
2. Dhobi's Nut.
3. Semecarpus Anacardeum, Linn
4. Anacardiaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भल्लातक शोधन—भिलावे की अस्थि को तोड़कर बोरी में बन्द कर पत्थर से रगड़कर, पुनः निकालकर उन्हें जल, दूध या नारियल जल में उस समय तक उबालें जब तक तैल न निकल जाए। तैल जल के ऊपर आ जाता है। शोधन करते समय इस बात की सावधानी रक्खें कि तैल का धुँआ या तैल अंगों को न लग जाएँ। अन्यथा शोथ हो जाती है।

ब्राम्ही (सारस्वती-नीरब्राम्ही, जलब्राम्ही)

वक्तव्य—ब्राह्मी के नाम से बंगाल में इस ब्राह्मी वनस्पति का व्यवहार होता है। अत्यन्त दूसरी वनस्पति का जिसका वर्णन आगे किया गया है, प्रयोग होता है वह मण्डूक पर्णी है।

नीरब्राह्मी जलाढ्य स्थानों में पाया जाता है। तिक्त, मूत्रल, मृदुरेचक तथा मेध्य रसायन है। एप्रिल-मार्च में पुष्प पीले रंग के आते हैं।

नाम—(हि०) जलनीम, ब्राह्मी (म०) बाम, बाँबी (बम्बई) वाम (गु०) नेवरी कड़वी, लुणी (अं०) थिम-लीव्ड ग्रेटिओला[1] (वा० ले०) हर्पेस्टिस्[2], मोनीरा, कट्का वर्ग[3]।

गुण—ब्राह्मी शीता सरा तिक्ता कषाया मधुरा लघुः। मेध्या स्वर्या स्वादुपाका हृद्यायुष्या रसायनी।
मतिस्मृति प्रदा हन्ति कुष्ठं कण्डुं ज्वरं मलान्। शोकारुचि विषश्वासकास प्रमेहास्र पाण्डुता ॥ (कै०)

ब्राह्मी कड़वी, कसैली, मधुर, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, मेध्य, स्वर्य, आयुष्य, रसायन, बुद्धि, स्मृतिवर्धक, कुष्ठ, त्वचा रोग, कण्डु, ज्वर, देहमल, शोथ, अरुचि, विष, प्रमेह, रक्त पित्त रोगशामक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—बाम या जलनीम कड़वा तथा शीतल, होने से रक्तशोधक, यकृत्प्लीहाकार्यवर्धक तथा त्वचा रोगशामक है। मृदुरेचक होने से आन्तों में से मलों, दोषों को बाहर निकाल देता है। मूत्रल होने से भी विषों को शरीर से बाहर निकालता है। दीपन, रूक्ष, लघु होने से अग्नि को दीप्त कर आम दोषों का पाचन करता है।

मेध्य होने से वात तन्तुओं तथा मस्तिष्क पर शक्तिप्रद तथा बलवर्धक प्रभाव उत्पन्न करती है।

औषधि से उत्पन्न कोष्ठबद्धता (कब्जी) तथा मूत्र बन्द हो जाने पर बाम का रस या चूर्ण देना चाहिए। ब्राम्ही रस मिट्टी के तैल में मिलाकर अभ्यंग करने से आमवात की पीड़ा में आराम होता है। उन्माद में बाम के पत्तों का रस २½ तोला, कुष्ठ २½ तोला मधु में मिलाकर पिलाने से लाभ करता है। स्वरभंग में बाम के पकौड़े घी में मिला कर तलकर खाने से तथा प्रतिश्याय, तीव्रकास में ३½ तोला रस देने से वमन विरेचन, होकर लाभ होता है।

योग—(१) सारस्वतारिष्ट—मस्तिष्क तथा मानसिक रोगों में।
(२) ब्राह्मी वटी २-४ रत्ती, सन्निपात तथा मस्तिष्क के रोगों में।
(३) सारस्वत चूर्ण १-४ माशा मूक मिन्मिनादि में।
(४) ब्राम्हीघृत अपस्मार दोषापस्मरादि में।

मण्डूकपर्णी (ब्राम्ही, ब्रम्हमण्डूकी)

बंगाल को छोड़कर अन्यत्र इस वनस्पति का ब्राम्ही के स्थान पर प्रयोग होता है। ब्राम्ही की ताजी पत्तों में सुगन्ध नहीं होती, किन्तु मसलने पर मन्द-मन्द चरपरी गन्ध आती है। सूखने पर यह गन्ध चली जाती है। रस तिक्त तथा कसैला होता है। शुष्क रस में यह स्वाद न्यून हो जाता है। पुष्प सितम्बर-दिसम्बर में आते हैं।

---

1. Thyme leaved gratiola.
2. Herpestis monniera, Hsk.
3. Scrophulariceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ब्राह्मी तथा मण्डूकपर्णी ये दो क्षुप हैं। दोनों प्रायः समान होती हैं। ब्राह्मी के भूमिगत प्रसरी काण्ड से ५-७ पत्तियाँ एक ही सन्धि से निकलती हैं। पत्र स्निग्ध होता है। मण्डूकपर्णी में एक पर्व से लेकर एक ही पत्ता तथा वह खर स्पर्श होता है। ब्राह्मी की क्रिया मस्तिष्क पर तथा मण्डूकपर्णी की क्रिया त्वचा पर होती है। ब्राम्ही के गुण नीर-ब्राम्ही के प्रकरण में लिखे गए हैं। यहाँ मण्डूकपर्णी का वर्णन किया जाता है।

नाम—(हि०) ब्राम्ही (म०) कारिवणा (गु०) खड़ब्राम्ही, विद्या ब्राह्मी (अं०) इण्डियन पेनीवर्ट[1] (वा० ले०) हायड्रोक्टाईल[2] एशियाटिका, छत्रक[3] वर्ग।

गुण—मण्डूकपर्णी कासघ्नी स्वादुपाका रसायनी। कषायातु हिता पित्ते स्वादुपाक रसाहिमा॥
लघ्वी मण्डूकपर्णी तु तद्वत् गोजिह्विकामता॥ (सु० सू० ४६)
मण्डूकपर्णी प्रभृतीनि कफपित्तहरं तिक्त शीतं कटु विपच्यते। (च० सू० २७)

यह अवस्थापाक में कटुविपाकी है। निष्ठापाक में मधुर। अन्यथा वातशामक मेध्य नहीं हो सकती।

मण्डूकपर्णी मधुर, कड़वी, कसैली, शीतल, मधुर विपाकी, (चरक के मत में कटु विपाकी) रसायन, आयु वर्धक, कफपित्तशामक, रक्तदोष, रक्तपित्त, कुष्ठ-ज्वर, अरुचि, प्रमेहशामक है।

इसमें एक उड़नशील तैल होता है जो उष्णता से उड़ जाता है। यह ग्राही, मूत्रल, रक्तशोधक स्तन्यशोधक और बल्य है। स्मृतिः मेधावर्धक है। बड़ी मात्रा में मादक है। सिर दुखता है तथा चक्कर लाती है। उक्त तैल त्वचा द्वारा बाहर निकलता है। उस समय त्वचा गरम-शरीर में दाह तथा चुभन-सा होता है। रक्तवाहिनियाँ विस्तृत होती हैं। त्वचा लाल होती है। उसमें खाज भी होने लगती है। तैल वृक्क द्वारा निकलते समय मूत्र की मात्रा बढ़ा देता है। एक सप्ताह तक सेवन करने से भूख बढ़ जाती है।

कुष्ठ तथा उपदंश की प्रारम्भिक अवस्था में लाभ करती है। त्वचा पर छोटी-छोटी फुँसियों पर इसका लेप लगाने से लाभ होता है। २०-४० वर्ष तक के कुष्ठ रोगी के लिए वर्धमान रूप से प्रयोग करना चाहिए। रजः कृच्छ्रता में भी ब्राह्मी चूर्ण लाभ प्रद है।

दो सप्ताह तक दिन में दो बार १०-१० रत्ती चूर्ण सेवन करायें। पुनः दिन में २½ रत्ती बढ़ाकर एक सप्ताह तक प्रयोग करें। प्रति सप्ताह २½-२½ रत्ती बढ़ाकर ३० रत्ती तक बढ़ाएँ। पुनः प्रति २½-२½ रत्ती घटाते हुए १० रत्ती तक ले आवें और दो सप्ताह तक १०-१० रत्ती सेवन करें। इसके साथ दूध का प्रयोग करना चाहिए। इससे रक्त शुद्धि, पाचन, तथा त्वचा उत्तम बनती है। आयु बढ़ती है। ब्राह्मी शर्बत (८ तोला ब्राह्मी चूर्ण) चीनी १ सेर, जल सवा सेर मन्द अग्नि पर शर्बत बना लें। त्वचा रोगों में तथा पित्त रोगों में उत्तम है। उन्माद, अपस्मारादि में मक्खन या मण्डूकपर्णी चूर्ण मिलाकर सेवन कर। इसका स्वरस या चूर्ण सेवन करना चाहिए। क्वाथ नहीं बनाना चाहिए।

मात्रा—चूर्ण १० रत्ती तक,
स्वरस—१-२ तोला तक।
पुष्पकाल—सितम्बर-अक्टूबर, सुन्दर गुलाबी पुष्प आते हैं जो पत्र के साथ ही पर्व से उत्पन्न होते हैं।

रसोनः (लशुनः महौषधः वातारिः)

परिचय—प्रसिद्ध क्षुप, कन्द
उ० स्थ०—सर्वत्र

---

1. Indian Pennywort.
2. Hydroctyle Asiatica, Linn.
3. Umbellifereae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

व्य० अं०—कन्द, पंचांग

वक्तव्य—लशुन में एक विशेष उग्र गन्ध वाला तैल होता है। इसी कारण इसमें दुर्गन्धि होती है।

रस—कटु प्रधान, शेष तिक्त, कषाय, मधुर, लवण

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—वातकफशामक, पित्तकारक

प्र० अं०—अन्त्र

वि० गु० क०—उत्तेजक, वातानुलोमक, कृमिघ्न, वृष्य रजःस्रावक पाचक

मात्रा—२-४ माशा

नाम—(हि०) लहसुन (बं०) रशुन (म०) लसूण (गु०) लसण (पं० सि०) गलि थोम (क०) सेहन (अ०) सूम फूम (का०) सीर (अं०) गार्लिक[1] (वा० ले०) एलियम् सेटाईवम्[2] पलाण्डु या रसोन वर्ग।[3]

गुण—कृमि कुष्ठ किलासघ्नो वातघ्नो गुल्म नाशनः। स्निग्धोष्णश्च वृष्यश्च लशुनः कटुको गुरुः॥ (चरक)

स्निग्धोष्णश्चतीक्ष्णष्च कटुपिच्छिलश्च गुरुः सरः स्वादुरसश्च बल्यः।
वृष्यश्च मेधास्वर वर्ण चक्षुर्भग्नास्थिसन्धानकरो रसोनः॥ १॥
हृद्रोग जीर्णज्वर कुक्षि शूलविबन्ध गुल्मारुचिकास शोधान्।
दुर्नाम कुष्ठामलसादजन्तु समीरणश्वास कफाश्चहन्ति॥ २॥ (सु० सू० ४६)

पञ्चभिश्च रसैर्युक्तः रसेनाम्लेन वर्जितः। तस्माद्रसोन इत्युक्तो द्रव्याणां गुणवेदिभिः॥
कटुकश्चापि मूलेषु तिक्तः पत्रेषु संस्थितः। नाले कषाय उद्दिष्टो नालाग्रे लवणः स्मृतः॥
बीजे तु मधुरः प्रोक्तो रसस्तद्गुणवेदिभिः॥ (भा० प्र०)

लशुन में अम्ल को छोड़कर शेष पाँच रस रहते हैं। अतः इसे एक रस (कमी) होने से 'रसोन' कहा गया है। कन्द में कटु (चरपरा) पत्रों में कड़वा, नाल में कसैला, नाल के अगले भाग में लवण तथा बीजों में मधुर रस पाया जाता है। मुख्यतः रस कटु ही होता है। यह स्निग्ध, उष्ण, वृष्य, तीक्ष्ण, पिच्छिल, गुरु, सर, अत्यन्त वातानुलोमन, वृष्य, मेध्य, कृमि, कुष्ठ, किलास, अस्थिभग्नसन्धानकारक, वातव्याधियाँ, हृदय रोग, उदरशूल, विबन्ध, गुल्म. अर्श, शोथ, (राजयक्ष्मा) अग्निमान्द्य तथा वातकफशामक है। लशुन में 'अलीसिन'[4] नामक क्षार पाया जाता है। जिसके कारण यह अन्त्रों में कृमिघ्न, दुर्गन्धनाशन तथा वातानुलोमन का कार्य करता है। अतएव आमाशय में भारीपन, क्षुधानाश, अम्लपित्त, आध्मान, जीर्ण, अन्त्रशोथ, अतिसार, वमननाशक है। राजयक्ष्मा तथा तज्जन्य अतिसार, अरुचि नाशक, बच्चों में पुष्टि, क्षुधा वृद्धि, पाचन को बढ़ाने वाला तथा आन्तों की सड़ांद को रोकता है। उदरविकारजन्य कारणों से रक्तभार अधिक हो जाता है तथा रक्त वाहिनियों में कठोरता आ जाती है, इन दोनों अवस्थाओं में लशुन का प्रयोग शिरोभ्रम, शिरःशूल, उन्निद्रता, श्वासकृच्छ्रता, (दम घुटने का-सा अनुभव) तथा गुल्म (आन्तों में वायु भरना) नष्ट होकर पाचन उत्तम बनता है। जिससे उक्त रोगों में लाभ होता है तथा सारे शरीर की विनिमय क्रिया सुधरती है जिससे स्वास्थ्य उत्तम बनता है। बच्चों के उदर में कृमि विशेषकर चुरुबे[5] (छोटे-छोटे कीड़े जैसे) होने पर लशुन के प्रयोग से लाभ होता है। लशुन खाने के साथ-साथ इसके स्वरस की बस्ति भी देनी चाहिए। तीन सप्ताह तक यह चिकित्सा करनी चाहिए।

---

1. Garlic.
2. Allium Sativum, Linn.
3. Liliaceae.
4. Allicin.
5. Thread worm.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शरीर से बाहर निकलते समय यह वृक्कों; फुफ्फुसों एवं स्वेदग्रन्थियों से बाहर निकलता है। फुफ्फुसों से निकलते समय यह कफ को पतलाकर (तीक्ष्णता कटुता से) बाहर निकालने में सहायता करता है। कफ की दुर्गन्धि तथा कृमियों का भी नाशक है। अतएव राजयक्ष्मा में विशेष लाभ करता है। लशुन खाने वालों को राजयक्ष्मा की सम्भावना कम होती है। वृक्कों से निकलते समय यह मूत्र की मात्रा को बढ़ाता है। वाततन्तुओं तथा मस्तिष्क पर यह उत्तेजनात्मक तथा पौष्टिक प्रभाव करता है। अतएव वातरोगों पक्षाघात अर्दित, गृध्रसी, कम्पवात, कटिशूल, अपतन्त्रकादि में अत्यन्त लाभ करता है। आमवात उरुस्तम्भ, कफ तथा कफवातज रोगों में भी यह बल्य, तीक्ष्ण, उष्ण, सर, स्निग्ध होने के कारण अत्यन्त लाभ करता है। कुछ सीमा तक कामोत्तेजक होने से वाजीकरण तथा वृष्य भी है। लशुन तथा विडंग मिलाकर सेवन करने से पाचन रोगों, गुल्म, उदरावर्तादि तथा आमवात, सन्धिशोथ, वमनादि नष्ट होते हैं। विषूचिका में लशुन स्वरस से तत्काल लाभ होता है।

बाह्य प्रयोग—व्रण शोथ पर प्रारम्भ में उसे पचाने के लिए, पश्चात् पकाने के लिए लशुन की पुल्टिस बनाकर बाँधते हैं। विषैले जन्तुओं के दष्ट स्थान पर लेप लगाने से वेदना तथा विष शान्त होते हैं। कर्णशूल में स्वरस को गरम करके डाला जाता है। झाँई किलास एवं दद्रु पर नौसादर मिलाकर लेप करते हैं। लशुन को तैल में जलाकर उस तैल का अभ्यंग, गठिया, सन्धिशोथ तथा अन्य शोथ, कफजन्य वेदनाओं में करते हैं। हृदय रोगों में उक्त प्रयोग से अपानवायु निकल जाती है जिससे हृदय पर दबाव कम होता है और रक्त संचार सुधरने से मूत्र की मात्रा बढ़ जाती है। जीर्णकास, श्वास, राजयक्ष्मा तथ फुफ्फुसों के क्षत में लशुन को विडंग के साथ सेवन कराते हैं। वक्ष पर लेप भी करते हैं।

वक्तव्य—लशुन की दुर्गन्धि के कारण इसे खाना पसन्द नहीं किया जाता। इसे दूर करने के लिए लशुन की तुरियों को खट्टे छाछ में २४ घन्टे भिगो रक्खें। पुनः सेवन करें। इससे दुर्गन्ध कम हो जाती है तथापि कई तत्व नष्ट हो जाते हैं। अतः उसे कच्चा ही चटनी या स्वरस के रूप में सेवन करना उत्तम है। कच्चा अधिक रोगनाशक है।

यह उष्ण प्रकृति अर्श, नेत्र रोग, गर्भवती स्त्रियों, कृश, पुरुषों के लिए हानिकर है। अतः लशुन को बादाम तैल, सूखा धनिया, नमक के साथ उबालकर देने या सिकंजनी, निम्बुरस या खट्टे अनार के रस और धनियों के पानी के साथ देने से उक्त हानि नही करता।

पथ्यापथ्य—व्यायाममातपं रोषमतिनीरं पयोगुडम्। रसोनमश्नन् पुरुषः त्यजेदेतन्निरन्तम्॥ (भा०)

लशुन का सेवन करते समय अति व्यायाम, धूप, क्रोध, पानी, दूध की अति मात्रा, गुड़, दिन में सोना, रात्रि में जागना, अतिभाषण, मछली, रात में दधि का सेवन छोड़ दें।

योग—(१) रसोनवटी (अष्टकवटी—२-४ गोलियाँ, पाचन सम्बन्धी रोगों में तथा विषूचिका में)
(२) रसोनपिण्ड—वातव्याधियों में
(३) लशुन पाक—१ तोला पौष्टिक, वीर्यवर्धक, वातव्याधिनाशक।

रास्ना (युक्तरसा-एलापर्णी)

परिचय—यह सन्दिग्ध द्रव्य है। कुलिञ्जन को कोई रास्ना समझते हैं। फारस तथा अरब का 'रासन' ही रास्ना है।

रस—कटु, तिक्त
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
दोष—वातकफशामक
प्र० अं०—वातसंस्थान, पाचक अंग

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मात्रा—३-८ माशा

वि० गु० क०—वातशामक, सुगन्धित, आमपाचक, वेदनाहर

नाम—(हि०) रायसन, रासन (वा० ले०) इन्युला[1] हेंलेनियम्, सूर्यमुखी वर्ग[2]।

गुण—रास्नामपाचनी तिक्ता गुरूष्णा कफवातजित् । शोथश्वाससमीरास्रवात शूलोदरापहा ।
कास ज्वर विषाशीतिवातकामय हिध्महृत् । (भा०)

रास्ना तिक्त, उष्ण, कटु विपाकी, कफवातशामक, आमदोष पाचक, शोथ, श्वास, वातिक-वेदनाएँ, उदर रोग शामक है । स्वर, कास, विष, हिक्का, तथा अस्सीवातव्याधियों का नाशक है ।

प्रयोग—रास्ना आमपाचक होने से कुपचन के रोगों तथा आध्मानादिनाशक है । वात की व्याधियों में विशेष लाभ करती है । क्योंकि यह वात नाड़ियों को बल तथा शक्ति देती है और उनके क्षोभ को मिटाती है ।

योग—रास्नागुग्गुलु, रास्नादि क्वाथ, रास्ना तैलादि ।

वचा (गोलोमी, षड्ग्रन्था-शतपर्णी)

परिचय—वच का कन्द सुपरिचित है । आसामादि अनूपदेशों में जलाशय स्थानों पर होती है । कन्द का व्यवहार किया जाता है ।

रस—कटु, तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—वातकफहर

प्र० अं०—पाचक संस्थान, वातसंस्थान

वि० गु० क०—मेध्य, अनुलोमन, वामक, कंठ्य

मात्रा—४-८ रत्ती चूर्ण

वामक मात्रा—५-८ माशा

नाम—(हि० बं०) वच घोड़वच (पं०) वर्च (गु०) वज घोड़ावज, बलावज (म०) वेखण्ड-बालवेखण्ड (क०) वजे (तै०) वासा (ता०) वशम्बु (अं०) स्वीट फ्लेग[3] (वा० ले०) एकोरस केलेमस्[4], एकोरस ओडोरेटस्[5], वचावर्ग[6]।

वक्तव्य—वचा दो प्रकार की होती है । भारतीय कुछ ललाई लिए, उसे 'अरुणवचा' कहते हैं । पारसीक श्वेत होती है । उसे 'हेमवतीवचा' कहते हैं । पारसीक उत्तम है । सफेद मोटी, उग्रगन्ध वाली उत्तम होती है । कन्द में तैल पाया जाता है जो स्वाद में कटु, तिक्त तथा कर्पूरगन्धि होता है ।

गुण—वचातिक्ता कटुः पाके कटुरुष्णामपाचनी । दीपनी वामनीमेध्या जीवनीवाग्वरप्रदा ।
हन्त्युन्मादमपस्मारं रक्षोजन्तुकफानिलान् । शूलं बिबन्धमाध्मानं शकृण्मूत्रविशोधिनी ।। (कै०)

वचा कटु, तिक्त रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, वातकफ, आमपाचक, अग्निदीपक, वामक (उल्टी कराने वाली) मेध्य, स्वर तथा वाणी के लिए उत्तम, क्रमि, उन्माद, अपस्मार, उदरशूल, विबन्ध, आध्मान (अफारा) मूत्र तथा मलशोधक है ।

---

1. Inula Helenium, Linn.
2. Compositeae.
3. Sweet Flag.
4. Acorus Calamus, Linn.
5. Acorusodoratus.
6. Acoraceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रभाव तथा प्रयोग—कटु तथा उष्ण होने से यह शोथ वेदनाशामक, उत्तेजक, आक्षेपनाशक, कफ निष्कासक तथा वातनाड़ियों की शामक है। इसके धूम्र से कृमि नष्ट होते हैं तथा इसकी गन्ध से साँप दूर रहता है। अर्श की पीड़ा मिटाने के लिए वचा, भाँग, अजवायन, देवदाली, माजूपत्र की धूनी से लाभ होता है। जुकाम, खाँसी, गले की शोथ, स्वर भेद, मूकता नाश करने के लिए वचा को मधु के साथ सेवन कराना चाहिए। एतदर्थ वचादिचूर्ण (वच-मुलैठी, सैन्धव नमक, हरीतकी, सोंठ-मिरच, पीपल, अजमोदा, जीरा, अतिविषा समभाग) ३-६ माशा में लाभदायक है। यह उदररोग, अग्निमान्द्य, वातव्याधि, स्वर भेदादि का नाशक है। श्वास कास या अन्य अवस्थाओं में वमन कराने के लिए लवण और गरम पानी के साथ देनी चाहिए। 'छर्दयेद्वा वचोम्भेभिः' (सु० वि०) इससे फुप्फुसों में जमा कफ निकल जाता है। जयपाल के विष में बचा का कोयला १० रत्ती की मात्रा में देने से लाभ होता है। ऊनी वस्त्रों में रखने से कीड़े नहीं लगते।

मस्तिष्क रोगों—स्मृतिभ्रंश, अपस्मार, अर्दित-में वचा चूर्ण ब्राह्मी सुवर्णभस्म आदि के साथ देने से लाभ होता है। यह उत्तम मेध्य है। किन्तु इनका प्रयोग पर्याप्त समय तक करना चाहिए। वमन बन्द करने के लिए निम्बु के रस में चन्दन के समान घिसकर २-४ रत्ती की मात्रा में दें। त्वक् शून्यता (चमड़ी का सुन्न होना) में इसके चूर्ण की मालिश करने से लाभ होता है।

शरीर की शिथिलता में विषूचिका के पश्चात् की निर्बलता में वचा लाभ करती है। यकृत्प्लीहा वृद्धि तथा स्थूलता दूर करने के लिए वचा, जीरा, किरमानी अजवायन, रेवन्दचीनी का प्रयोग उत्तम है।

विषमुष्टिः (कारस्करः-कुपीलुः काकतिन्दुकम्)

परिचय—दीर्घ वृक्ष
उ० स्थ०—उष्ण प्रदेशों में विशेषतः दक्षिण भारत
व्य० अं०—बीज
रस—तिक्त
वीर्य—शीत
विपाक—कटु
दोष—कफपित्तशामक, वातलम्
प्र० अ०—वातसंस्थान
वि० गु० क०—वातोत्तेजक, वाजीकर, अग्निवर्धक
मात्रा—½-१ रत्ती तक
नाम—(हि० पं० मा० बं०) कुचला, कुंचिला (म०) काजरा) (गु०) झेर कुचला (अं०) नक्स वामिका[1], पायजन नट[2] (वा० ले०) स्ट्रिक्नोस[3] नक्स वामिका, विषमुष्टि वर्ग[3]।

गुण—स्यात्काकतिन्दुकं तिक्तं शीतलं वातलं लघु। विपाके कटुकं ग्राही × × × पित्तास्रनाशनम्॥ (कै०)

कुचला, कड़वा, शीतल, कटु, विपाकी, वातवर्धक, वातनाड़ियों को बल देने वाला, ग्राही, वात-कफ की व्याधियाँ, रक्तविकार, अर्श तथा व्रणशामक, वाजीकरण, तथा हृदय को बल देने वाला है।

प्रभाव तथा प्रयोग—कुचला तीव्र विष है। २ माशा कुचला प्राणघातक है। बाह्य प्रयोग में लेप करने से यह शोथशामक है तथा रक्तस्रावरोधक है। कुचलों को तैल में जलाकर, उस तैल का अभ्यंग करने से आमवात रोग

1. Nux-Vomica.
2. Poison Nut.
3. Strychnos Nux-Vomica, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नष्ट होता है। शोथ, बदों, गाठों पर लेप करने से वे बैठ जाती हैं। अर्श में रसोंत कर्पूर, कुचला दोनों को चन्दन की तरह घिसकर लगाने से शोथ तथा वेदना शान्त होती है। वातनाड़ियों की निर्बलता में बहुत गुणकारी है। दुष्ट व्रणों में पत्तों की पुल्टिस बनाकर लगाने से अत्यन्त लाभ होता है।

अन्तः प्रयोग में यह उत्तम अग्निदीपन है। यह पाचक रसों को बढ़ाता है। भूख लगाता है। अन्त्रों की गतियों में वृद्धि करता है। इन कारणों से मन्दाग्नि, आमाशय तथा अन्त्र शैथिल्य और इनसे उत्पन्न अम्लपित्त, अजीर्ण, विबन्धशामक है। आमाशय शोथ, जीर्ण विबन्ध (कब्जी) नाशक है।

हृदय तथा रक्त संस्थान—हृदय पर इसका साक्षात्प्रभाव नहीं होता। किन्तु प्राणदा नाड़ी को प्रभावित करता है। इससे त्वचा की रक्त वाहिनियाँ संकुचित हो जाती हैं तथा आन्तरिक अंगों की रक्त वाहिनियाँ विस्तृत, जिससे जीवन के लिए अत्यावश्यक अंगों को रक्त अधिक मिलता है। पक्षाघात, शीतांगावस्था, रक्तभार, न्यूनता, हृदय निर्बलता आदि में दिया जाता है।

श्वास संस्थान––श्वास केंद्र को उत्तेजित कर श्वास की संख्या बढ़ाता है। तथा श्वास भी गम्भीर हो जाता है। साधारण मात्रा में श्वास प्रणालियों या प्राणवह स्रोतों को शक्ति देता है। किन्तु श्वासवेग के समय नहीं देना चाहिए क्योंकि यह कास और श्वास के वेग को बढ़ा देता है। यद्यपि कफ के स्राव को भी बढ़ा देता है। जीर्ण कास में उत्तम है। श्वासावरोध में जो, संज्ञानाशकों, निद्राजनक विषों (अफीमादि) तथा थकावट से यथा श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया) से हो रहा हो, उत्तम है।

वातसंस्थान––यह वातनाड़ियों को बल देता है। स्वल्प मात्रा में प्रयोग करने से इन्द्रियों की शक्ति को बढ़ाता है। तिक्त तथा शीतवीर्य और कटु विपाकी होने से यह वात को बढ़ाता है। वात की श्वासावस्था की निर्बलता में जहाँ वातकी क्रिया शक्ति का ह्रास हो जाता है––उसे बढ़ाकर लाभ पहुँचाता है। कई आचार्यों ने इसे उष्णवीर्य बताया है। हमारे विचार में यह अशुद्ध है, क्योंकि उष्णवीर्य पदार्थ वातशामक होते हैं वातवर्धक नहीं।

यह न केवल वातनाड़ियों को ही शक्ति देता है, अपितु मांसपेशियों को भी बल देता है। जिससे प्राणी थकावट अनुभव नहीं करता और उसकी कार्यक्षमता भी बढ़ जाती है। इन सब कारणों से इसे वात व्याधियों में विशेषकर पुरानी वातव्याधियों में, तथा सर्व प्रकार की निर्बलता में प्रयोग करते हैं। किन्तु निम्न अवस्थाओं में इसका उपयोग नहीं करना चाहिए। (१) नवीन पक्षाघात में, (२) मांसपेशियों में तनाव होने पर, (३) मांसपेशियों के अति क्षीण हो जाने पर, (४) मस्तिष्क में शोथ होने पर।

शरीर की पाचन क्रियाओं में अत्यन्त लाभ करता है। सारे शरीर के अंगों की क्रियाशीलता को बढ़ा देता है। निर्बलता नष्ट करता है। मूत्राशय शैथिल्य में तथा मैथुन शक्ति की शिथिलता को भी नष्ट करता है। अतः मूत्राघात में तथा कामशक्ति की न्यूनता में इसका व्यवहार किया जाता है। अधिक परिश्रमजन्य शिथिलता का नाशक है। विषमुष्टिवटी, कुचला, ताम्रभस्म, लोहभस्म, रससिन्दूर, विडंग, कालीजीरी, कलौंजी मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनाकर भोजन के $\frac{१}{२}$ घण्टा बाद सेवन करने से सब प्रकार की निर्बलता, मन्दाग्नि, आध्मान, पाण्डुतादि रोग नष्ट होते हैं। कुचला खाली पेट (रिक्त उदर) में नहीं देना चाहिए।

आशोषण तथा निष्क्रमण––आन्तों से यह अतिशीघ्र रक्त में मिल जाता है। यकृत् में जाकर अधिकांश भाग भस्म हो जाता है। १०-२० प्रतिशत मूत्र द्वारा बाहर निकलता है। सेवन के कुछ घण्टों बाद यह मूत्र में निकलना प्रारम्भ हो जाता है तथा ४८-७२ घण्टों तक निकलता रहता है। स्वल्पांश में तो ५ दिन के बाद तक भी मूत्र में उपलब्ध किया जा सकता है। इस प्रकार इसका निष्क्रमण धीरे-धीरे होता है।

भक्ति (आदत) तथा सहनशीलता––कुछ व्यक्ति $\frac{१}{८}$ रत्ती से इसे प्रारंभ कर (पान के साथ) १० रत्ती तक (१ पूरा बीज) खा जाते हैं, किन्तु कुछ के लिए यह अनुकूल नहीं आता।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इसके साथ घी तथा दूध का सेवन आवश्यक है। वातनाड़ी निर्बलता तथा पुराने आमवात में कुचला, सोंठ, शृंग का लेप लगाना चाहिए। जीर्णज्वरों में विशेषकर विषमज्वरों में अन्य ज्वरशामक औषधियों के साथ तथा विषूचिका में सोंठ, जायफल आदि कटु चीजों के साथ इसकी छाल की गोलियाँ बनाकर देने से लाभ करती है। रक्तार्श में कुचले की धूनी दी जाती है। कुचले तथा साँप की केंचुली को पीसकर बाल उखाड़कर, लेप करने से बाल देर में आते हैं। कुत्ते के विष में इसे मनुष्य के मूत्र में औटाकर लेप करते हैं तथा मदिरा में औटाकर १ रत्ती की मात्रा में नित्य सेवन करने से कुत्ते का विष उतरता है।

विषलक्षण—कुचला का विषत्व स्ट्रिकनीन[1] तथा ब्रुसीन[2] नामक दो सत्वों के कारण होता है। $\frac{1}{4}$ ग्रेन भी यदि रक्त में घुल जाए तो मारक है। सेवन के आधे घण्टे के बाद विष लक्षण उत्पन्न होते हैं। बेचैनी, तोद (तीव्र वेदना) कमर में उत्पन्न होकर पाँव तक जाती है। पुनः मांसपेशियों में आक्षेप प्रारम्भ हो जाते हैं जो $\frac{1}{2}$-१ मिनट तक रहते हैं। दो वेगों के मध्य में रोगी को पसीना तथा थकावट पर्याप्त मात्रा में हो जाता है। आक्षेप या वेगों का समय क्रमशः कम होता जाता है। हनु या जबड़ा सबसे अन्त में प्रभावित होता है। धनुर्वात तथा विषमुष्टि के विषलक्षण समान है। किन्तु निम्न विभेदक लक्षण हैं :—

विषमुष्टि के लक्षण	धनुर्वात के लक्षण
१. लक्षण शीघ्र उत्पन्न हो जाते हैं।	१. लक्षण विषलक्षण उत्पन्न होते हैं।
२, व्रणादि या इतिहास नहीं।	२. चोट व्रण आदि का इतिहास
३. दो प्रकार के वेग के मध्यमों में पूर्ण शैथिल्य	३. कटि तथा हनु सदा रोग प्रभावित
४. हनु सबसे अन्त में प्रभावित कुछ घण्टों में ही।	४. सर्वप्रथम हनु प्रभावित
५ मृत्यु हो जाती है या लक्षणों की तीव्रता कम हो जाती है।	५. एक दिन या उसके पश्चात् मृत्यु या आरोग्य हो जाता है।

चिकित्सा—वमन तथा आमाशय प्रक्षालन आक्षेप प्रारम्भ होने से पहले करना चाहिए अथवा रोगी को मूर्छित करके कर्पूर या कर्पूर तथा कुसुम्ब का पानी पीने को दें। कोयला पीसकर खिलावें, ऊपर से पोटेशियम परमैंग्नेट के घोल से वमन करावें। ताजा दूध भी उत्तम है।

योग—(१) विषमुष्टीवटी, (२) अग्नितुण्डीवटी, २-४ रत्ती भोजनोत्तर, दीपन, निर्बलतानाशक
(३) खंजनकारिरस २ रत्ती वातव्याधियों में
(४) मुष्टिसुरा[3] १०-३० बूंद

शंखपुष्पी (कंबुपुष्पी, मंगल्या सूक्ष्मपत्रिका)

परिचय—शंखाहुलिकी बहुवर्षायु लता ऊसर भूमि पर सर्वत्र उत्पन्न होती है।

पुष्पकाल—वर्षा के पश्चात्, पुष्प श्वेत, गुलाबी या नील वर्ण

व्य० अं०—पंचांग

रस—तिक्त, कटु, कषाय

1. Strychnine.
2. Brucine.
3. Tincture of Nux-Vomica.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वीर्य—उष्ण

विपाक—मधुर

दोष—त्रिदोषशामक

प्र० अं०—वातसंस्थान

वि० गु० क०—मेध्य, रसायन, सर, मानसिक रोगशामक

मात्रा—१-६ माशा तक

नाम—(हि०) संखाहुलि (पं०) कौडियाली (बं०) डानकुणी (म० गु०) सांखबेल, शंखावली (म०) ययोचीदण्डोत्पल-शंखाहुलि (क०) विलिहूविन (वा० ले०) केंसकोरा[1] डेक्युसेटा, किरात वर्ग[2]।

गुण—शंखपुष्पी सरा स्वर्या कटुस्तिक्ता रसायनी। अनुष्ण बलमेधाग्निबलायुः कान्तिदा हरेत्।
अपस्मारमथोन्मादमनिद्रां च तथा भ्रमम्॥ (कै०)
"मेध्या विशेषेण च शंखपुष्पी" (च० चि०)

कई आचार्य त्रिवृत वर्ग (Evolvulus Alsinoides) को शंखपुष्पी मानते हैं। वस्तुतः वह अपराजिता का भेद है और मेध्य भी नहीं है।

शंखपुष्पी कटु, तिक्त, कषाय, उष्णवीर्य (भाव०)। मधुर विपाकी, सर, स्वर्य, रसायन, वर्ण, बल, मेधा, कान्तिवर्धक, त्रिदोष अपस्मार, उन्माद, अनिद्रा, भ्रम तथा मानस रोगशामक है। विशेषकर मेधावर्धक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—साधारण उष्ण होने से कुछ दीपन-पाचन है। तिक्त होने से रक्तशोधक, सर होने से मलों का शोधक तथा मेध्य होने से वातसंस्थान को बल देती है। दूध के साथ इसका चूर्ण देने से मस्तिष्क तथा वात-नाड़ियों की शक्ति बढ़ती है। एतदर्थ स्वर्णभस्म, ब्राह्मी-वचादि के साथ देना उत्तम है। घृत, मक्खन, बादामादि के साथ सेवन करना अति मेध्य है। उन्माद में २-४ तोला रस पिलाने से मल साफ होता है। उन्मत्तता कम होती है। शुष्क कास में चूर्ण की फक्की, वमन में शंखपुष्पी स्वरस में कालीमिर्च तथा मधु मिलाकर पिलाने से लाभ होता है। सन्निपात ज्वरों में प्रलाप, अनिद्रा नष्ट करने के लिए शंखपुष्पी का चूर्ण या स्वरस लाभदायक है।

योग—कुमारकल्याणघृत वातशोथशामक तथा मेध्य।

सर्पगन्धा (चन्द्रिका-चन्द्रभागा)

परिचय—प्रसिद्ध क्षुप, ४-५ फुट ऊँचा

उ० स्थ०—बिहार, नेपाल, आसाम, उड़ीसा, दक्षिण भारत, जावा, सुमात्रादि

व्य० अं०—मूल, काष्ठ

रस—तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—वातकफहर

प्र० अं०—वातसंस्थान

वि० गु० क०—मेध्यरसायनशामक, आक्षेपहर, अनिद्रा, रक्तचापहर

मात्रा—१-२ माशा

नाम—(हि०) सर्पगन्धा, धवलबरूआ, छोटाचान्द, पागलबूटी (बं०) चन्द्र या छोटा चान्द (म०) अडकई

1. Canscora Decusata, Roem.
2. Gentianaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(तैं०) पातालगन्धि (ता०) चिवना मेलपोड़ी, चोवन्नामिलपोरी (क०) सूत्रनाबी (मल०) वंडुवार, चिवन, अवल्पोरी (वा० ले०) रावुल्फिया सर्पेन्टीना बेन्थ[1] वर्ग, कुटजादि वर्ग[2] ।

गुण--चन्द्रिका सर्पगन्धास्याच्चन्द्रभागातथैवच । रूक्षातिक्तोष्णवीर्यसा, विपाके कटुका तथा ।
वातप्रशमनीश्रेष्ठा मानसरोग हरा परा । उन्मादापस्मारानिद्रां रक्तचापं च नाशयेत् ।

सर्पगन्धा कड़वी, रूक्ष, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, मेध्य, वातसंस्थान के क्षोभ की शामक, स्वापजनन, मानसिक रोगों, उन्माद, अपस्मारादि तथा अनिद्रा, रक्तभाराधिक्य, गर्भाशय निर्बलता, उदरकृमिहर, ज्वरघ्न पौष्टिक है । सुश्रुत ने मानस रोगहर अपराजिता गण में इसका उल्लेख किया है । (उ० त० ६०) कैय्यदेव निघण्टु में नाकुली के पर्यायों में 'सर्पगन्धा' पर्याय आया है ।

प्रयोग--प्रधानतः इसका उपयोग उन्माद, योषापस्मारादि में, मानसिक रोगों में तथा रक्त भाराधिक्य (Blood Pressure) में किया जाता है । बिहार में इसे 'पागलबूटी'[3] का नाम दिया जाता है । १½-३ माशा तक उन्माद में दूध, घी आदि स्निग्ध अनुपानों से दिया जाता है । यह वातनाड़ियों की उत्तेजना को शान्त करता है । चिन्तादि के कारण उत्पन्न अनिद्रा तथा ज्वरादि में अनिद्रा, मोह, प्रलाप को शान्त करने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है । रक्तभाराधिक्य में यह बहुत लाभप्रद है । रक्तवाहिनियों के क्षोभजन्य संकोच को कम करके उन्हें विस्तृत करती है तथा वातिक क्षोभ को भी शान्त करती है । दिन में २-४ बार तक रोगी के लक्षणों के अनुसार देनी चाहिए । तथा १-२ घन्टे तक विशेष शारीरिक श्रम नहीं करना चाहिए । औषध का सेवन सहसा नहीं छोड़ना चाहिए । पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में इसका प्रभाव अच्छा होता है । वृक्क रोगों के कारण उत्पन्न रक्तचाप[4] में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अधिक रक्तभार अधिक न्यून न हो जाए । अन्यथा प्रतिक्रिया स्वरूप रक्तवाहिनियों का संकोच होकर रक्तभार[5] बढ़ जाता है । रक्तभार चिकित्सा में लवण का यथासम्भव कम प्रयोग करें । फल तथा तरल पदार्थों का प्रयोग अधिक मात्रा में करें ।

उपद्रव--यद्यपि सर्पगन्धा निरापद औषध है तथापि अयुक्तियुक्त प्रयोग से कभी-कभी किसी रोगी में, सिरदर्द सिर का भारीपन भ्रम, कानों में आवाज (कर्ण ध्वनि) उन्निद्रता, अरुचि, अतीसार, शिथिलता आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं । अतएव तीव्र अतिसार, अप्रवाहिका में इसका प्रयोग यथाशक्ति नहीं करना चाहिए । औषध की मात्रा कम करने से तथा स्निग्ध, शीत, द्रव पदार्थों के प्रयोग से ये उपद्रव शान्त हो जाते हैं । यह गर्भाशय की मांसपेशियों की उत्तेजक है । अतः कष्टार्तव, विलम्ब प्रसूति आदि में भी इसे दिया जाता है ।

योग--(१) चन्द्रावलेह, मात्रा--½-१ तोला, अनुपान दूध या गुलाबजल ।

उपयोग--उन्माद, अपस्मार, अनिद्रा, शिरःशूल

(२) चन्द्रभागावटी--मात्रा ५-१० रत्ती तक, २-४ गोली--रोगी की अवस्थानुसार ।

---

1. Rauwolfia Surpentina, Benth.
2. Apocynaceae.
3. सर्पगन्धा के पुष्प जामुनी छाया लिए लाल रंग के, फल मटर के समान लाल रंग के, मूल वक्र (टेढ़ी-मेढ़ी) अंगुली जितनी मोटी और भंगुर तोड़ने पर भीतर से हलका पीला वर्ण और दो विभिन्न रंग के गोलचक्र दिखाई देते हैं ।
4. High Blood Pressure.
5. Systolic Blood Pressure.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अध्याय उन्तीसवाँ

ज्वरशामक (तापशामक)

अगस्त्य (मुनिद्रुमः वंगसेनः)

परिचय—१०-१५ फीट ऊँचा वृक्ष, शिरीषसमपत्र, आयु ७-८ वर्ष

व्य० अं०—पंचांग

उ० स्थ०—दक्षिण, पश्चिम भारत तथा बंग में

पुष्प—वर्षा से शरद तक प्रायः श्वेत पुष्प

रस—तिक्त, कटु

वीर्य—शीत, पत्र, उष्ण, पुष्प, समशीतोष्ण

विपाक—कटु

दोष—वातवर्धक, कफपित्तहर

प्र० अं०—अन्त्र, कला तथा त्वचा

वि० गु० क०—रूक्ष, कफहर, प्रतिश्याय, शिरःशूल, नक्तान्ध्य तथा ज्वरहर

मात्रा—स्वरस १-२ तोला

नाम—(हि०) अगस्त्या, हथिया (गु०) अगथियो (म०) अगस्ता, हथगा (बं०) बक (तै०) अनीसे (क०) अंगसेधमरतुं (ता० म०) अकट्टी अथी, अर्गटी (अं०) लार्जफ्लावर्ड अगाठी[1] (वा० ले०) सेसबेनिया ग्रान्डीफ्लोरा[2] पर्स या आगाटी ग्रान्डीफ्लोरा[3] वर्ग, अपराजिता वर्ग[4], शिम्बी वर्ग।

गुण—अगस्तिः पित्तकफजिच्चातुर्थिकहरोहिमः। रूक्षो वातकरस्तिक्तः प्रतिश्यायनिवारणः॥
तत्पुष्पं पीनसश्लेष्म पित्त नक्तान्ध्यनाशनम्। वृक्षागस्त्ययोः पुष्पाणि तिक्तानि कटु विपाकानि-
क्षयकासहराणि, अगस्त्यं नातिशीतोष्णं नक्तान्ध्यानां प्रशस्यते॥ (सु० सू० ४६)

अगस्त्य का पंचांग शीत, रूक्ष, तिक्त, वातवर्धक, कफ, पित्त, प्रतिश्याय, चातुर्थिकज्वर (चौथिया) नाशक है।

पत्र—कटुतिक्तरस, उष्णवीर्य, विशद, सूक्ष्म, कण्डु, कृमि, रक्तपित्त, तथा विषनाशक है।

पुष्प—तिक्त, कषायरस, समशीतोष्ण, कटु विपाकी, पित्तकफ और रक्तान्ध्य (रतौंधी) नाशक होते हैं।

प्रयोग—अगस्त्य की कच्ची फलियाँ पाण्डु, प्लीहा तया गुल्म शाक के रूप में लाभ करती है। किन्तु निरन्तर प्रयोग से अतिसार उत्पन्न करती है। अतिसार में छाल का चूर्ण दिया जाता है। छाल तथा गोंद अतिग्राही है। मसूरिका तथा अन्य पिडिकायुक्त ज्वरों में छाल का काढ़ा या फाण्ट बनाकर दिया जाता है। यह ज्वर ताप को कम करता है। पुष्प या पत्र स्वरस प्रतिश्याय (जुकाम) कफज शिरःशूल (सिर का भारी रहना तथा दर्द होना) में नस्य के

---

1. Large Flowered Agathi.
2. Sesbania grandiflora, Pers.
3. Agati grandiflora, Lest.
4. Leguminoceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रूप में दिया जाता है। उष्ण, सूक्ष्म, कटु आदि गुणों के कारण नाक से विपुल स्राव कराते हैं। जिससे बहुत-सा दूषित पदार्थ बाहर निकल जाता है। मस्तकपीड़ा और भारीपन मिट जाता है। चातुर्थिक ज्वर में स्वरस की नस्य दी जाती है। ज्वरसहित कास श्वास तथा फुफ्फुस शोथ में पुष्प या पत्र स्वरस अकेला या वासा स्वरस के साथ मिलाकर मधु के साथ (१-२ तोला तक) देने से कफ पसीना आकर ताप कम होता है तथा उष्ण सूक्ष्मादि गुणों के कारण कफ पतला होकर बहता है। नक्तान्ध्य में पुष्प स्वरस नेत्रों में डालते हैं। किन्तु इसका प्रयोग सावधानी से बर्तें। सन्धिशोथ में (गठिया) में मूल का लेप किया जाता है। अतिसार में छाल का चूर्ण और मसूरिकादि पिड़िकायुक्त ज्वरों में छाल का काढ़ा उत्तम है।

अगस्त्य, काकमाची, धतूरा और अरणी के पत्ते (सब ५-५ तोला) गोमूत्र में पीसकर लेप करने से शोथ, वेदना तथा शरीर का दाह शान्त होता है। स्वरस की मात्रा १-२ तोला, बच्चों के लिए १०-५० बूंद। यदि अधिक मात्रा में पी लिया जाय तो शक्कर का शर्बत १० प्रतिशत पीने से यह हानि नहीं करता है।

अपराजिता (गिरोकर्णिका-आस्फोता)

परिचय—आरोहिणीलता
उ० स्थ०—प्रायः सर्वत्र
व्य० अं०—मूल, बीज, पत्र
पुष्पकाल—श्वेत, नील दो प्रकार प्रायः सारे वर्ष, विशेषतः अगस्त तथा सितम्बर
रस—कषाय, तिक्त
वीर्य—शीत
विपाक—कटु
दोष—त्रिदोषशामक
प्र० अं०— अन्त्र
वि० गु० क०—स्निग्ध,, मूत्रल, रेचक, ज्वरघ्न, विषहर
मात्रा—बीजचूर्ण १०-२० रत्ती, मूलचूर्ण १½-३ माशा
नाम—(हि०) कोयल (बं०) अपराजिता (म०) गोकर्णी (गु०) गरणी (वा० ले०) क्लिटोरिया टर्निएटा[1]।
गुण—विष्णुकान्ता कटुस्तिक्ता बुद्धिमेधास्मृतिप्रदा। कषाया कटुका पाके व्रणक्रमिविषापहा॥ (कै०)

अपराजिता कटु, तिक्त, कषाय, शीतल, मेध्य, कण्ठ्य, कटु विपाकी, मूत्रल, ज्वरघ्न, रेचक, त्रिदोष, आम शोथ व्रण और विषशामक है। त्रिदोष विशेषकर कफ की नाशक है।

बाह्य प्रयोग—बीजों की नस्य आधा शीशी को मिटाती है। कर्ण शोथ, ग्रन्थिशोथ में पत्तों के रस में नमक मिलाकर शोथ पर लेप लगाई जाती है। बीज चिलम में रखकर पीने से हिक्का शान्त होती है। अण्डकोशशोथ में बीजों को पीसकर गरम लेप लगाया जाता है।

अन्तः प्रयोग—बीज सौम्यरेचक है। बड़ी मात्रा में पेट में मरोड़े उत्पन्न करते है। अतः शुंठी, अजवायन के साथ देना चाहिए। ½ माशा बीज चूर्ण, यवक्षार १ माशा, के साथ मिलाकर गरम जल से प्लीहोदर और जलोदर में दिये जाते हैं। यकृत् अवरोध तथा वृक्कों में से विरेचन होकर दोष बाहर निकल जाते हैं। मूल भी भेदक तथा वामक है। ज्वर, विष, आमवात में मूल बड़ी मात्रा में दी जाती है। इससे अतिसार एवं कभी-कभी वमन होकर दोष बाहर निकल जाते हैं। गलगण्ड में श्वेत अपराजिता मूल घी के साथ, कामलामें तक्र के साथ, गर्भस्राव में मूल त्वक् में

1. Clitoria Terneata.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पकाया दूध, कफविकारों (कासादि) में विशेषकर बच्चों की फुफ्फुसों की व्याधियों में मूल का काढ़ा अत्यन्त लाभ करता है।

करंजद्वयम् (कंटकी करंज-घृतकरंजश्च) कण्टकी करंज (कुबेराक्षः, तिरीगुच्छी)

परिचय—कंटकमय बहुवर्षायु लता
उ० स्थ०—सर्वत्र विशेषतः बंगाल बम्बई, दक्षिण
व्य० अं०—सर्वत्र, फल, पत्र-तैल
पुष्पकाल—वर्षाऋतु
रस—तिक्त, कषाय
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
दोष—वातकफशामक
प्र० अं०—यकृत्प्लीहा, अन्त्र
वि० गु० क०—ज्वरघ्न, रसायन, कृमिघ्न
मात्रा—बीजचूर्ण १-३ माशा
नाम—(हि०) करंजुवा, कटकरंज, कंजा (म०) किणमच (ब०) नाटा, नाटाकरंज (म०) सागरगोटा (गु०) कांकच, कांचका (अं०) बान्डूसेलानट[1], फीवरनट (वा० ले०) सिसेलपीनिआ बान्डूसेला[2], करंजवर्ग।[3]
गुण—कुबेराक्षं यकृत्प्लीहावातघ्नं व्रणरोपणम्। (शो० नि०)
तिरिगुच्छोस्तुवरा सतिक्ता सोष्णाजयेत्। बलासपित्त शोथार्शः शूलाध्मान व्रणकृमीन्। (कै०)
स्रंसनं कटुकं पाके लघुवातकफापहम्। शोथघ्नमुष्णवीर्यं च पत्रं पूतिकरञ्जकम्। (सु० सू० ४६)

करंजुआ यकृत्प्लीहा वृद्धि नाशक, तिक्त, कषाय, उष्ण, वातपित्त, कफशामक, शोथ, अर्श, उदरशूल, अफारा, व्रण कृमिनाशक पत्र रेचक भी है। यह उत्तम ज्वरघ्न, अग्निदीपक, बलदायक, रक्तप्रसादन, सर, रूक्ष, गर्भाशय संकोचक, वेदना स्थापक तथा यकृत्शोधक है।

प्रयोग—अति उत्तम ज्वरघ्न है, अतः फल की गिरी, कालीमिर्च समभाग मिलाकर १-२ माशा की मात्रा में दिन में दो बार देने से विषमज्वर (जाड़ा बुखार) रुक जाता है। रोगों के पश्चात् की निर्बलता मिटाने के लिए फल-मज्जाचूर्ण दिन में दो बार खिलाते हैं। त्वचा रोगों में रक्तशोधक होने से गिरी खाई जाती है। सूतिकाज्वर में करंज मज्जा ज्वर को उतारती तथा गर्भाशय का संकोच कर रक्तस्राव कराती है। व्रणों को शीघ्र भरती है। भूनी हुई गिरी तत्काल गरम-गरम निकालकर सेवन करने से श्वास में लाभ होता है। जलोदर तथा मूत्र वृद्धि में करंज पत्रों का लेप करते हैं। रूक्ष तथा द्रवशोधक होने से जलांश को सुखाता है। यकृत् रोगों में कोमल पत्तियों का प्रयोग करते हैं। मीगी का तैल वातव्याधियों में, फलमज्जा तथा वायविडंग समभाग, पत्तों को तिलतैल या एरण्ड तैल में जलाकर गाढ़ा लेप लगाने से अंडकोषों की सूजन आक्षेप अर्धांगवात नष्ट होती है। अहितकर रूक्षताकारक, निवारण, काली मिर्च पिप्पली।

घृतकरंज (वाकेरीमूल)

यह दक्षिण (महाराष्ट्र) में होने वाली कंटकी करंज की ही जाति की झाड़ी है। मूल की गाँठों को बाकेरी माता या बलभाते दक्षिण में कहते हैं ये मूल कड़वे नहीं होते। इसका वानस्पतिक नाम सिसेलपाईनिया डिगनिया[4] है।

1. Bonducella Nut.
2. Caesalpinia Bonducella, Roxb.
3. Caesalpiniaceae.
4. Caesalpinia Digyna, Rotte.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यह रक्तस्तम्भक, व्रणशोधक तथा शोधन है। बड़ी मात्रा में मादक है। भगन्दर, नाड़ीव्रण, पुराने व्रणों में शीतल जल में पीसकर लेप लगाते हैं तथा खाने के लिए देते हैं।

मात्रा—चूर्ण २-४ माशा तक।

किंकिणी (रक्तत्वक्-विषमज्वरादि)

नाम—(हि०) सिन्कोना छाल[1] (सत्व कुनीन)[2]।

परिचय—किंकिणी (सिन्कोना) जाति के कई वृक्ष हैं जिनकी छाल तथा सत्व काम में आते हैं। इनमें मुख्य मंजिष्ठादि[3] वर्ग के सिन्कोना केलिसाया[4] नामक वृक्ष ज्वरनाशन के लिए प्रयोग होता है।

गुण—तिक्तरस, कटु विपाकी, अतिरूक्ष, तिक्त रसायन, अग्निदीपन, शोधक, स्तम्भन, ज्वरघ्न, वेदनास्थापन तथा शीतवीर्य गर्भाशयोत्तेजक है।

मात्रा—त्वक्चूर्ण १०-३० रत्ती सत्व (कुनीन) १-५ रत्ती।

प्रभाव तथाप्रयोग—छाल तथा सत्व (कुनीन) का प्रभाव तथा प्रयोग समान है। दोनों ही विष हैं। कृमिनाशक, क्षोभक तथा वेदना शामक है। विशेषतः आन्तरिक उपयोग किया जाता है।

तिक्त होने के कारण यह अन्य कड़वे द्रव्यों के समान प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा मुख में लालास्राव तथा आमाशय रस के स्राव को बढ़ाकर पाचन शक्ति को बढ़ा देता है। जीर्ण रोगों में उत्पन्न निर्बलता अग्निमान्द्य और पाण्डु में इसे लोहभस्मादि के साथ मिलाकर इसका प्रयोग किया जाता है। रक्तवर्धक तथा रक्तशोधक भी है। मुख द्वारा देने से इसका थोड़ा भाग ही रक्त में मिलता है। स्वल्पमात्रा में कभी-कभी यह हृदय तथा नाड़ी की गति को तीव्र कर देती है। किन्तु बड़ी मात्रा में शैथिल्यकारक तथा रक्तभार को भी न्यून करती है।

यह वातल है। वातसंस्थान पर विशेष प्रभाव करती है। इस प्रकार को 'क्विनिनिज्म' कहा जाता है। शिरःशूल, कानों में धूं-धूं आवाज (कर्ण क्ष्वेड) कुछ समय तक बहरापन, नेत्र दृष्टि में न्यूनता (कभी-कभी दृष्टिनाश भी) मांसपेशियों में शिथिलता विरलतया त्वचा में शीतपित्त जैसे चकत्ते भी उत्पन्न करती है।

अनैच्छिक मांसपेशियों में यथा (अन्त्रादि की मांसपेशियों) पर विशेष प्रभाव नहीं होता, किन्तु गर्भाशय की माँसपेशियों पर इसका विशेष प्रभाव होता है। प्रसव की प्रथमावस्था में गर्भाशय की मांसपेशियों को उत्तेजित कर यह आवीजनन है। यद्यपि यह संकोच अर्गट जितना तीव्र नहीं। ५ रत्ती की मात्रा में कुनीन को १-१ घण्टे बाद देते हैं। ६-१२ घण्टे में इसका पूर्ण प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि कुछ मात्रा में गर्भस्थ शिशु में भी चली जाती है, किन्तु वह हानिकारक नहीं होती।

ज्वरघ्न रूप में इसका सर्वोत्तम प्रभाव होता है। ताप केन्द्र को शिथिल करके तथा धात्वग्नियों की क्रियाओं को शिथिल करके, तथा त्वच्य रक्तवाहिनियों को विस्तृत करके ताप को कम करता है। सब प्रकार के ज्वरों में ताप को कम करने के लिए इसे दे सकते हैं। वातकफजज्वरों में प्रतिश्याय में सिन्कोना तथा स्योनाक छाल का काढ़ा बनाकर देने से लाभ होता है।

सिन्कोना का विशेष प्रयोग विषमज्वर (मलेरिया) में होता है। वातप्रकृति के रोगियों को छोड़कर शेष सबको वह पर्याप्त लाभ पहुँचाती है। सेवन कराने से पूर्व साधारण विरेचन द्वारा उदर शुद्धि करा लेनी चाहिए। इस रोग में १०-१५ रत्ती कुनीन प्रतिदिन ७ दिन तक देनी चाहिए। यह रूक्ष तथा वातल है अतः दूधादि पदार्थ रोगी को खाने को देने चाहिए। वात को शान्त करने के लिए इसमें श्रृंगभस्म मिला लेनी चाहिए।

---

1. Cinchona Bark, Cinchona Cortex.
2. Quinine.
3. Rubi ceae.
4. Cinchona calisaya.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

एतदर्थ सिन्कोना चूर्ण २½ तोला, सुदर्शन चूर्ण २½ तोला, निम्बु रस २½ तोला, सोंठ, दालचीनी चूर्ण १-१ तोला, उबलते ५० तोला जल में डालकर दो घण्टा पड़ा रहने दें। फिर छानकर शीशी में भरकर रख लें। २-५ तोला की मात्रा में दिन में ३-४ बार दें। मलेरिया के दिनों उक्त तरलसार का सेवन करने से इससे बचाव रहता है।

निष्क्रमण—लगभग ८० प्रतिशत औषध शरीर में ही भस्म हो जाती है। शेष मूत्र द्वारा बाहर निकलती है। सेवन के १ घण्टा बाद मूत्र में निकलना प्रारम्भ होती है तथा ६-१२ घण्टों तक प्रभूत मात्रा में निकलती रहती है। कभी-कभी वृक्कों में क्षोभ उत्पन्न करती है और अधिक मात्रा हो जाने पर मूत्र में रक्त भी आ सकता है।

योग—(१) कंकणी चूर्ण १-५ रत्ती

(२) कंकणी वारुणीसार[1] मात्रा ३०-६० विन्दु

सत्व कुनीन—(१) क्विनाईन हाइड्रोक्लोराइड[2]

(२) क्विनाइन सल्फेट[3] मात्रा २-५ रत्ती तक

कच्छपपृष्ठ (कछुए के पीठ की हड्डी)

नाम—(सं०) कच्छप-कूर्म (बं०) काछिम (म०) कासव (गु०) काचबो।

गुण प्रभाव—कछुए की पीठ बड़ी कठोर होती है उसे पत्थर पर घिसकर, सुखाकर चूर्ण किया जाता है। भस्म बना सकते हैं। भस्म बनाने की विधि पीठ के टुकड़े कर, ग्वारपाठा या पर्णवीज के रस में तीन दिन भिगोकर, सम्पुट में रखकर गजपुट में आग देने से श्वेत वर्ण की भस्म बन जाती है।

मात्रा—२-८ रत्ती तक

प्रयोग—बालशोथ, खाँसी, श्वास, रक्तकास, उरःक्षत, राजयक्ष्मा में अत्यन्त लाभ करती है।

कटुनाही

नाम—(हिं०) कड़वीनाई (म० गु०) कड़वीनाई (मुम्बई), गरजफल (वा० ले०) कारलोकार्पस, एपिजिया[1] कर्कटी वर्ग।

परिचय—कड़वीनाई की लता मोगरे की लता के समान होती है। मूल तथा काष्ठ उपयोगी है। तिक्त रसायन, रक्तशोधक तथा शोथशामक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—कन्द को धोकर लेप करने से शोथ शान्त होती है। उत्तम रक्त शोधक तथा आमपाचक होने से उपदंश, मरोड़ (सम-प्रवाहिका), आमदोषशामक तथा मन्द ज्वरशामक है। उदरकृमियों को निकालने के लिए भी प्रयुक्त होती है।

मात्रा—१-४ रत्ती तक। अधिक मात्रा में उत्क्लेदकारक तथा वामक और रेचक है। आन्तों में जलन उत्पन्न करती है।

खूबकलां (खाकसी)

नाम—(वा० ले०) सिसिम्ब्रियम् आईरिओ[2] (२) सर्षप वर्ग[3]।

परिचय—खूबकलां के नाम से छोटे-छोटे लाल पीले दाने मिलते हैं। यह क्षुप भारत में सर्वत्र गेहूँ, मेथी आदि के साथ उत्पन्न होता है। बीज उपयोगी है।

---

1. Tincture Cinchona.
2. Quinine hydrochloride.
3. Quinine Sulphate.
4. Carallocarpus Epigaea, Hovks.
5. Sisymbrium Irio, Linn.
6. Crucifereae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मात्रा--४-६ माशा तक

गुण प्रभाव—ये स्निग्ध, उष्णवीर्य, ज्वरशामक तथा कफनिष्कासक है । पिड़िकायुक्त तथा पित्तकफ के ज्वरों में इसका विशेष उपयोग होता है । ये पिड़िकाओं को शीघ्र निकालते हैं । जीर्ण कास में कफ निकालने के लिए तथा आन्त्रिक ज्वरों में शक्ति के लिए हैजे (विषूचिका) में वमन-प्यास वन्द करने के लिए इसका अर्क पिलाते हैं । बीज पौष्टिक तथा बृंहण हैं ।

गुडूची (अमृता-वल्ली-छिन्नरुहा)

परिचय—सुपरिचित बेल

व्य० अं०--प्राय: पंचांग

पुष्पकाल—सितम्बर-अक्टूबर

रस--तिक्त, अनुरस, कषाय, कटु

वीर्य—उष्ण

विपाक—मधुर

दोष—त्रिदोषहर

प्र० अं०—सर्वशरीर

वि० गु० क०--दीपन, ज्वरघ्न, रसायन, रक्त शोधक, पित्तसारक, संग्राही

मात्रा—काढ़ा ४-५ तोला, गडूची सत्व १-३ माशा

नाम--(हि० पं० मा०) गिलोय, गले (म०) गुलवेल (गु०) गलो (बं०) गुलंच (क०) अमृतवल्ली (ता०) पेण्डिल्कुडि (तै०) तिप्पतिग (वा० ले०) टिनोस्पोरा कार्डिफोलिया[1], गुडूची वर्ग[2] ।

गुण--गुडूची मधुरापाके कषाया कटुका लघुः । तिक्तासंग्राहणीहृद्या बल्योष्णावन्हिकृज्जयेत् ।
दोषकुष्ठकृमिच्छर्दि दाहवातास्र पाण्डुता । ज्वरासृक्कामलामेह तृष्णाकासान् रसायनी । (कैं०)

गिलोय—मधुर विपाकी, कसैली, कटु, कड़वी, लघु, संग्राही, हृद्य-बलदायक, दीपन, उष्ण, त्रिदोष, कुष्ठ, उदरकृमि, वमन, दाह, वातरक्त, पांडु, कामला ज्वर, रक्तपित्त, प्रमेह, कास, प्यासशामक है तथा रसायन है । गिलोय के पत्तों का साग त्रिदोषनाशक, पथ्य, दीपन, लघु आयुवर्धक तथा मधुर है ।

प्रभाव--गिलोय में एक कटु सत्व पाया जाता है । जिसके कारण इसका प्रभाव होता है । अति उत्तम पित्तशामक है । उष्ण लघु, दीपन, होने से भूख बढ़ाती है, अग्निदीप्त करती है । अन्न का पाचन भली प्रकार होता है । यकृत् शुद्ध होता है । यह पित्त को यकृत् तथा पित्ताशय से अधिक मात्रा में बाहर निकालती है । जिससे कामला, पाण्डु आदि रोग शान्त होता है । अतः अपान वायु भी कम उत्पन्न होता है । रक्तवर्धक एवं शोधक है । अतएव जीर्णरोगों के पश्चात् उत्पन्न निर्बलता की नाशक है । त्वचा रोगों में, फोड़े-फुंसियों में, अंगदाह, हाथ-पैर की दाह, प्रमेहनाशक है । यकृत्शोधनार्थ, दारुहरिद्रा, कड़वा निम्ब, आँवला के बड़ी मात्रां में प्रयोग करने से उत्तम मूत्रल है । दीपन, पाचन तथा ग्राही होने से अतिसार संग्रहणी, कुपचनशामक है। ज्वरों में विशेषकर जीर्णज्वरों (यकृत्प्लीहावृद्धियुक्त) में विषम ज्वरों में लाभप्रद है । गिलोय, वनफशा, धमासा, पर्पट, वचा, वातकफ ज्वर, प्रतिश्याय में लाभ करती है ।

प्रयोग—वातरक्त की अत्युत्तम औषध है । त्वचा रोगों कुष्ठ तथा उपदंश के व्रणों में गिलोय, उशवा, अनन्त-मूल, चोपचीनी का शीतकषाय या काढ़ा बनाकर देते हैं । मूत्रकृच्छ्र में पाषाण भेद के साथ, आमवात, अग्निमान्द्य में सोंठ के साथ, कामला-पाण्डु में हरी गिलोय धनिया हरीतकी, खसखस के साथ पीसकर, क्षयरोग में गुडूची सत्व, वंशलोचन, इलायची के साथ, विषमज्वरों में चिरायता, निम्ब त्रायमाणादि के साथ, हाथ-पैर की जलन में गुडूची सत्व

1. Tinospora Cordifolea, miers. 2. Minispermaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुलैठी के साथ, जीर्णज्वर में गिलोय का काढ़ा पिप्पली के साथ, हिक्का, में गिलोय सोंठ चूर्ण की नस्य, वातरक्त में एरण्ड तैल और हरड़ के साथ, कामला में शतावरी रस के साथ, श्लीपद में गोमूत्र के साथ, हृदय की वातिक पीड़ा में गिलोय, काली मिर्च को गरम जल के साथ सेवन करना चाहिए। गुडूचीसत्व अम्लपित्त की उत्तम औषध है।

वक्तव्य--अन्य वृक्षों की अपेक्षा नीम पर चढ़ी गिलोय उत्तम मानी जाती है। प्रायः मोटे काष्ठ (तना) का उपयोग होता है। परिपक्व पुष्ट तने के खण्डों में से गुडूची सत्व अधिक निकलता है। इसे जितना ही अधिक धोया जाए उतना ही साफ होता है अन्यथा कुछ जरासा श्वेत। काण्ड को काटने पर वह अन्दर से चक्राकार निकलती है।

योग—(१) अमृतारिष्ट–जीर्णज्वरनाशक
(२) गुडूच्यादिक्वाथ–ज्वर, विबन्ध, वातरक्तशामक
(३) संशमनीवटी–ज्वरहर
(४) गुडूच्यादितैल–वातरक्तशामक
(५) गुडूच्यादि लौह–विषमज्वर, पाण्डुहर
(६) गुडूच्यादिगुग्गुलु–वातरक्तशामक।

गोरक्ष कर्कटी

नाम--(हि० पं०) गोरखईमली (मा०) कलबिरछ (गु० म०) गोरखचिंच (क०) केक्कारिके (तै०) पेद्दथौसरे (ता०) ककरीकै (अं०) बोबाब ट्री[1], मंकी ब्रेड ट्री[2] (वा० ले०) एडेन्सोनिआ डिजिरेटा[3], कार्पास वर्ग[4]।

परिचय--यह महावृक्ष (६०-७० फुट ऊँचा) बम्बई, गुजरात, दक्षिण भारत तथा लंका में बहुत होता है। उत्तर भारत में कम। पुष्पकाल जेष्ठ तथा बैशाख। छोटा फल निम्बु जैसा, तथा बड़ा होने पर एक-एक फुट से भी बड़ा होता है। औषधियों में फल, पत्र तथा छाल का व्यवहार होता है।

विशेष गुण—फल की गिरी स्नेहन, रेचन, शीतल व मूत्रल, हृद्य, पत्र स्नेहन, संग्राहक, छाल भी शीतल, स्नेहन तथा संग्राही। कटु, मधुर रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, पित्तशामक है।

प्रयोग--फल की मज्जा—अंजीर के साथ उबालकर शक्कर मिलाकर पीने से शीतल, मूत्रल तथा हृद्य होने के कारण ताप-दाह-प्यास को कम करती है। यह क्षय के रात्रीस्वेद तथा ताप को कम करते हैं। अम्ल पित्त में फल की गिरी का शर्बत बनाकर जीरा, शक्कर, नमक, पिप्पली डालकर देते हैं। पत्र चूर्ण का सेवन भी अतिस्वेद नाशक है। छाल के काढ़े से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है। विशेषकर विषमज्वर, नाड़ी की तीव्रता कम होती है। पाचन शक्ति बढ़ती है। अतिसार में फलमज्जा या छाल चूर्ण रत्ती १० की मात्रा में छाछ के साथ खिलाने से पाचन होकर मल बँधकर आता है। मूत्रकृच्छ्र में छाल का काढ़ा यवक्षार के साथ दिया जाता है।

चम्पक-सुवर्णचम्पकः (हेमपुष्पः)

नाम--(हि०) चम्पा, सोन चम्पा (म०) सोनचांपा (गु०) पीलोचंपों, रायचंपो (बं०) चांपा (क०) केड-सिंपिगे (तै०) सम्पंगि (ता०) शम्बा (अं०) गोल्डन या येलो चम्पा[5] (वा० ले०) माईकेलिआ चंपक[6], चम्पक वर्ग[7]।

---

1. Boabab Tree.
2. Monkey Bread Tree.
3. Adansonia Digitata Linn.
4. Malvaceae.
5. Golden or Yellow Champaka.
6. Michelia Champaka, Linn.
7. Magnoliaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

परिचय—यह हरित वृक्ष है। नेपाल, बंगाल, आसाम, दक्षिण भारत आदि में उत्पन्न होता है। पुष्पश्वेत तथा पीत वर्ण सुगन्धित। इनमें उड़नशील तैल पाया जाता है। जिससे इतर और अर्क निकाला जाता है।

पुष्पकाल—दिसम्बर-जनवरी

व्य० अं०—त्वचा, मूल, पत्र, पुष्प तैल

प्र० अं०—वृक्क

दोष—कफपित्तशामक

विशेष गुणकर्म—छाल ज्वरशामक, मलरेचक।

गुण—चम्पकं कटुकं तिक्तं कषायं मधुरं हिमम्। निहन्तिकफपित्तास्रमूत्रकृच्छ्र विषकृमीन ॥ (कै०)

चम्पक शिफाकषायो निरुणद्धि मूत्रमवशगम्।

चम्पक कटु, तिक्त, कसैला, मीठा, शीतल, कटु विपाकी, रक्त पित्त, कफपित्त, दाह, त्वचा रोग, मूत्रकृच्छ्र, विषकृमिनाशक है। इसकी मूल (शिफा) मूत्रसंग्राहक है।

प्रयोग—चम्पा की छाल दीपन, आमपाचक, विषमज्वर नाशक, शोथशामक, व्रणशोधक तथा विषमज्वर नाशक, मूत्रल, शोथशामक तथा रसायन है। मूल या उसकी छाल को दही में पीसकर लेप करने से पकता हुआ फोड़ा बैठ जाता है या पक जाता है। रजःकृच्छ्रता, ज्वरों में विशेषकर पुराने ज्वरों में फान्ट अति लाभप्रद है। अतिसार में मूल अतीस के साथ, आमवात, सन्धि शोथ में शुंठी के साथ सेवन से लाभ करती है। यह रेचक भी है। मात्रा ५-१५ रत्ती है।

पुष्पों से बनाया तैल दुर्गन्ध नाशक मर्दन से आमवात, सन्धि शोथ, मस्तक पीड़ा, उद्वेष्टननाशक है। पुष्पों को ठंडाई की तरह पीसकर सेवन से मूत्रकृच्छ्र तथा वृक्क शोथशामक होती है। पत्तों का रस मधु के साथ पीने से उदरशूल शान्त होता है। मुख की झांई (व्यंग) में पुष्पों को निम्बु स्वरस में पीसकर लगाते हैं।

तुलसीत्रयम्—तुलसी (सुरसा भूतघ्नी)

परिचय—सुप्रसिद्ध पवित्र क्षुप, तीन भेद, प्रायः सर्वत्र उपलब्ध

पुष्पकाल—सितम्बर-अक्तूबर

व्य० अं०—पंचांग

रस—कटु, तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

प्र० अं०—सर्व शरीर। विशेषतः पाचक अंग

दोष—वातकफनाशक, पित्तलम्

वि० गु० क०—उष्ण, वातानुलोमन, ज्वरघ्न

मात्रा—बीज ३-६ माशा, स्वरस २ तोला

(१) तुलसी—(हि० बं० गु०) तुलसी, काली तुलसी (म०) तुलस (क०) तुलसी (तै०) तुलसि (ता०) कुलिमिटन (अं०) होली बेसिल[1] (वा० ले०) ओसिमम् सेंकटम्[2], तुलसी वर्ग[3]।

---

1. Holy Basil.
2. Labiateae.
3. Ocimum Sanctum, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(२) **फणिज्जक**--(मंजरिका) सर्वभाषा रामतुलस-वनतुलसी (अं०) श्रब्री-बेसिल[1] (वा० ले०) ओसिमम् ग्रेटिस्सिमम्[2]।

(३) **अर्जक**--(हि०) छोटी तुलसी (अजगन्धा) (अं०) होअरी बेसिल[3], रोजेरी[4] (वा० ले०) ओसिमम् केनम्[5] बर्बरी (सज्जा-न्याजबो) तुलसी से पृथक् है।

गुण--तुलसी कटुकातिक्ता तीक्ष्णोष्णा कटुपाकिनी। रूक्षाहृद्या लघुः कट्वी दाह पित्ताग्निवर्धनी॥
जयेद् वातकफश्वासकासहिध्मावमिक्रमिन्। दौर्गन्ध्यं पार्श्वरुक् कुष्ठ विष-कृच्छ्रासृग्गदान्॥ (कै०)

तुलसी कड़वी, चरपरी, कषायानुरसवाली, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, लघु रूक्ष, उष्ण, दाह, पित्त तथा अग्निवर्धक, वातरोग, श्वासकास, वमन, हिक्का, दुर्गन्धि, पार्श्व शूल, विष, कुष्ठ, रजःकृच्छ्रतानाशक है।

सभी तुलसियाँ प्रायः उक्त गुणों वाली होती हैं। प्रभाव की मात्रा में थोड़ा बहुत भेद पाया जाता है।

प्रभाव तथा उपयोग--उष्ण-तीक्ष्ण तथा रूक्ष होने से यह स्रोतों की शोधक है। कफ की पिच्छिलता के कारण उत्पन्न स्रोतोरोध (अभिष्यन्द) को नष्ट करके उन्हें स्वच्छ बनाती है। जिससे उनका स्वाभाविक स्राव स्वस्थ रूप में होने लगता है तथा उनकी कार्य शक्ति भी बढ़ जाती है। उष्ण होने से रक्तभ्रमण को बढ़ाकर उन अंगों का पोषण भी उत्तम रीति से करती है तथा शोथ को भी शान्त करती है। अतः यकृत्, आमाशय शोथनाशक, वात अनुलोमन, अग्निदीपक, तथा कफ के रोग पार्श्व शूल, शोथ, कासादि शामक है। उक्त कारणों से प्रतिश्याय, शिरःशूलशामक, अंगों की शोथ, वेदनाशामक है। इसका स्वरस, आर्द्रकरस तथा मधु के साथ देने से लाभ होता है। कास में कफ पतला होकर बहने लगता है, उसकी उत्पत्ति कम हो जाती है तथा फुप्फुसों की शोथ शान्त होती है।

अग्निमान्द्य, आमाशय शूल, बच्चों की यकृत् विकृति में तुलसी का रस गुणकारक है। विषम ज्वरों में जड़ का काढ़ा कालीमिर्च के साथ देने से लाभ करता है। तुलसी स्वरस मधु में मिलाकर सेवन करने से बच्चों की खाँसी उदरशूल तथा कब्जी दूर होती है। पीनस तथा नाक की दुर्गन्धि मिटाने के लिए सूखे पत्रों के चूर्ण की नस्य लाभ करती है। फुप्फुसों की कला में तरल भर जाने पर तुलसी का स्वरस लाभप्रद है।

दन्त शूल में कालीमिर्च तथा तुलसी के पत्ते चबाए जाते हैं। पत्तों का क्वाथ पसीना लाकर ज्वर उतारता है। वमन में तुलसी का रस इलायची के चूर्ण के साथ चटाने से लाभ करता है। कर्णपीड़ा में गरम कर तुलसी का रस डालते हैं। वातरोगों में तुलसी रस, काली मिर्च तथा घी के साथ चटाते हैं। रामतुलसी के बीज स्निग्ध तथा शीतल, मूत्रल, पिच्छिल होते हैं। पानी में या शर्बत में कुछ समय तक रखकर इनका प्रयोग किया जाता है। बीज मूत्रवर्धक, मूत्रकृच्छ्रशामक हैं। अतिसार में जायफल के चूर्ण के साथ और शर्बत अनार के साथ दिये जाते हैं। प्रौढ़ (जवान) रोगियों के लिए ४-८ माशा तक, बच्चों के लिए २-४ रत्ती बीज पर्याप्त है। शर्करा के साथ मिलाकर पीने से वे पौष्टिक तथा वृष्य हैं। बिच्छु दंश पर रामतुलसी के पत्तों का लेप लगाया जाता है।

वातव्याधियों में तथा पारद के विष प्रभाव से उत्पन्न गठिया, मुखशोथ तथा लार बहने में छोटी तुलसी के पंचांग के क्वाथ से कुल्ले कराए जाते हैं तथा स्वेद दिया जाता है। तुलसी रस अनेक औषधियों के बनाने में भावना देने के लिए प्रयुक्त होता है।

योग--महाज्वरांकुश २-४ रत्ती ज्वरों में।

---

1. Shruby Basil.
2. Ocimum gratissimum, Linn.
3. Hoary Basil.
4. Rosary.
5. Ocimum Canum, Sims.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

त्रायमाणा (गिरिसानुजा, वार्षिकी)

नाम—सर्व भाषा-त्रामान, त्रायमाणा, इसके उद्भिज्ज शास्त्रीय नाम के विषय में सन्देह है। कुछ आचार्य वत्सनाभवर्ग[1] की डेल्फिनियम्[2] झेलिल को, अन्य आचार्य यूनानी की 'गाफिस' नामक वनस्पति को तथा उसकी भारतीय जाति को त्रायामाणा[3] कहते हैं। यह चिरायतावर्ग[4] की औषधि है। यही असली त्रायमाणा है। यह शिमला, जम्मू, काश्मीरादि पर्वतीय प्रदेशों में उत्पन्न होती है।

गुण—त्रायन्ती तुवरातिक्तासरापित्तकफापहा। ज्वरहृद्रोग गुल्मास्र भ्रम शूल विष प्रणुत्॥ (भाव०)

त्रायमाणा कड़वी, कषाय अनुरसवाली, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, मृदुरेचक, ज्वर, हृदय रोग, गुल्म रक्तपित्त, भ्रम, विष, शूलशामक है।

इसमें अगस्त-सितम्बर में पुष्प आते हैं। मूल और पंचांग उपयोगी है। मात्रा—चूर्ण २-४ माशा, क्वाथ २-४ तोला, प्र० अं०—यकृत् अन्त्र सर्वशरीर।

प्रभाव तथा प्रयोग—कड़वी तथा उष्णवीर्य होने से स्रोतशोधक, यकृत्, प्लीहा को शोधन-लेखन, वातानुलोमक, मूत्रल, रक्तशोधक है। अतः यकृत् प्लीहा वृद्धि, पाण्डु, सर्वांगशोथ, गुल्म तथा जीर्णज्वरशामक है। त्वचा रोगों में तथा रक्तविकृति में उपयोगी है। मन्दाग्नि, जीर्ण रोगों की निर्बलता की नाशक है।

योग—त्रायमाणाघृत (चरक) जीर्णज्वरों, गुल्म में।

द्रोणपुष्पी (कुम्भयोनिः, कुतुम्बकः)

परिचय—क्षुद्र क्षुप
उ० स्थ०—प्रायः सर्वत्र अनेक प्रकार की होती है।
पुष्पकाल—अगस्त-सितम्बर
व्य० अं०—पंचांग
रस—मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त
वीर्य—उष्ण
विपाक—मधुर
दोष—कफशामक, वातपित्तकारक
प्र० अं०—यकृत्
वि० गु० क०—स्वेदल, ज्वरघ्नः, रेचक, कफघ्न, प्रतिश्यायशामक
मात्रा—स्वरस १ से २ तोला

नाम—(हि०) गूभा (म०) तुम्बा (गु०) कुबो (बं०) धलधीस, दण्डकलस (क०) तुम्बेगिड् (तै०) एनगुतुम्भि (ता०) तुम्भा (वा० ले०) महाद्रोणपुष्पी ल्युकस् सीफेलोटस्[5], (क्षुद्र-घोटी) ल्युकस् लिनीफोलिया[6] तुलसी वर्ग[7]।

1. Ranunculaceae.
2. Delphinium zalil.
3. Gentianakurroo Royle.
4. Gentianacae.
5. Leucas Cephalotus, Spreng.
6. Leucas Linifolia.
7. Labiateae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण—द्रोणपुष्पी स्वादुपाका स्वादुष्णा लवणा गुरुः। सक्षारा कटुकारूक्षा भेदिनी वातपित्तकृत् ॥
कफामकामलाशोफ तमकश्वास जन्तुजित् ॥ (कै०)
द्रोणपुष्पीदलं स्वादु रूक्षं गुरु च पित्तकृत्। भेदनं कामला शोथ मेहज्वरहरं कटु ॥ (भाव०)

द्रोणपुष्पी मधुर, कटु, तिक्त, लवण, रसवाली, उष्णवीर्य, मधुर विपाकी, क्षारीय, रूक्ष, भेदन, वातपित्तकारक, कफजरोग, आमदोष, शोथ कामला, उदरकृमि, तमक, श्वास ज्वरशामक है।

प्रयोग--पत्रों का साग बनाकर खिलाया जाता है। यह कामला, जीर्णज्वर, प्रमेह, शोथ विबन्धनाशक है। मस्तक पीड़ा तथा प्रतिश्याय में पत्र-नस्य से लाभ होता है। बच्चों के कास प्रतिश्याय में पत्र या पंचांग स्वरस मधु तथा टंकण क्षार के साथ, वातिकाध्मान में स्वरस, १ माशा मधु के साथ, कामला में पत्र रस में हींग घिसकर अंजन करने से, जीर्णज्वरों तथा उदरकृमियों में क्वाथ पिलाने से, शोथ उतारने के लिए कड़वे नीम-पत्र तथा द्रोणपुष्पी पत्र को पीसकर बाँधने से लाभ होता है।

पटोलः (अमृतफलः तिक्तोत्तमा)

परिचय--प्रसिद्ध बेल, जंगली कड़वी होती है। उसी का औषध में उपयोग किया जाता है। पंचांग व्यवहार्य है।

रस—कड़वा, कटु, अनुरस
वीर्य—उष्ण
विपाक—(पंचांग) कटु (फल) मधुर
दोष—पित्तकफनाशक
प्र० अं०—अन्त्र, यकृत्
वि० गु० क०—मूल रेचक, फल पित्तशामक, रेचक ज्वरघ्न
मात्रा--चूर्ण ४-८ माशा क्वाथ १-२ तोला

नाम—(हि० पं० मा०) परवल (म०) कडुपरवल (गु०) कड़वा पडवल, कड़वी पाछर (बं०) तितपटोल, तितपत्ता (क०) कहिपड़वल (तै०) अडविपोल्ल (ता०) काट्टूप्पेपुण्डल (वा० ले०) ट्राईकोसेन्थस् कुकुरमेरिना[1]: कर्कटी वर्ग[2]।

गण—कफपित्तहरं व्रण्यमुष्णं तिक्तमवातलम्। पटोलं कटुकं पाके वृष्यं रोचनदीपनम् ॥ (सु० सू०)
फलं तस्य कटु, स्वादुपाके, तिक्तं रसे लघु। श्रलानुलोमनं वृष्यं हृद्यं दीपनपाचनम् ॥
स्निग्धोष्णं रोचनं हन्ति दोषश्वास ज्वरकृमीन्। फलं त्रिदोष शमनं मूलं चास्यविरेचनम् ॥ (कै०)

परवल पंचांग कड़वा, उष्ण, कटु विपाकी, कफपित्तशामक अवातल (वातवर्धक नहीं) दीपन, तथा वृष्य है। फल कड़वा, चरपरा, उष्ण, मधुर विपाकी, लघु क्षुधावर्धक है। ज्वरों में पथ्यतम है।

चिचडः (अहिफलः)

नाम—(हि० मा०) चिचौंडा, चंचेड़ा (म०) रानपड़वल (बं०) वनचिचिंग (अं०) स्नेकगोर्ड[3] (व० ले०) ट्राइकोसैन्थिस एग्विना[4] या ट्रा० क्युक्युमेरिना[5], कर्कटी वर्ग[6]।

1. Trichosanthes. Cucurmerina, Linn.
2. Cucurbitaceae.
3. Snakegourd.
4. Trichosanthes Anguina, Linn or
5. Trichosanthes Cucurmerina, Linn.
6. Cucurbitaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य--यह बड़ा लम्बा फल होता है। औषधि में काम नहीं आता, किन्तु कई वैद्य पटोल के स्थान पर भूल से इसे प्रयुक्त करते हैं। अतः उल्लेख किया गया है। पटोल सर्वथा पृथक् शाक है।

भूनिम्बः (किराततिक्तः, तिक्तः, रामसेन)

परिचय--यह क्षुद्र क्षुप हिमालय, नैपालादि में उत्पन्न होता है। इसके कुछ भेद दक्षिण की पहाड़ियों पर भी पायी जाती हैं। पंचांग का व्यवहार होता है।

रस--कड़वा
वीर्य--शीत
विपाक--कटु
प्र० अं०--यकृत्, अन्त्र
वि० गु० क०--तिक्त रसायन, मृदुरेचक ज्वर तथा कृमिघ्न
मात्रा--३ माशा से १ तोला

नाम--(हि० प० म०) चिरायता (बं०) चिराता (म०) काड़ेचिराईत (गु०) करिया तुं, (क०) नेलबेंबु (तें०) नेलबेंबु (अं०) चिरैता[1] (वा० ले०) स्वर्टिया चिरैटा[2], किराततिक्त वर्ग[3]।

गुण--भूनिम्बः शीतलोरूक्षो रसेतिक्तो लघुः सरः। वातलः कफपित्तास्रकुष्ठमेहापहाहरेत्॥
श्वासकासतृषादाहरुचि शोथज्वरक्रमीन्॥

चिरायता कड़वा, शीतवीर्य, कटु विपाकी, लघु, मृदुरेचक, वातवर्धक, कफपित्तशामक, रक्तदोष, कुष्ठ, प्रमेह प्यास, दाह, अरुचि, शोथरोग, ज्वर तथा उदरक्रमिनाशक है।

प्रभाव तथा प्रयोग--चिरायता अत्यन्त कड़वा होता है। इस रस के कारण ही यह अग्निदीपन, रक्तशोधक ज्वरहर तथा तिक्त रसायन है। तिक्त रसायन पदार्थ जिह्वा तथा आमाशय की वातनाड़ियों को प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा उत्तेजित करके पाचक रसों का स्राव बढ़ाता है। अतएव इसे 'वातवर्धक' कहा गया है। कफ का शमन होता है और भूख बढ़ जाती है। आमाशय (Pencreas) का रस भी बढ़ जाता है। इन सब कारणों से ये क्षुधावर्धक तथा दीपन के लिए प्रयुक्त करते हैं, किन्तु बड़ी मात्रा में इसका विपरीत प्रभाव होता है। अधिक समय तक सेवन करने से आमाशय शोथ भी उत्पन्न हो जाता है।

चिरायता मृदु रेचक भी है। अतः विबन्ध युक्त ज्वरों में, मलेरिया में तथा क्षुधावर्धक होने से जीर्णज्वरों में जिनमें कृशता, अग्निमान्ध्य हो जाता है। सेवन कराया जाता है। यह सर्वोत्तम तिक्त औषध है। पाण्डु, जीर्णज्वरों, यकृत्प्लीहावृद्धि में इसे लोह मण्डूर ताम्र के साथ मिलाकर देना उत्तम है।

श्वास नलिका शोथ तथा उसके आक्षेप से उत्पन्न दमें में तथा आमाशय शिथिलता और शराब से होने वाली उल्टी को बन्द करता है।

किरात तिक्त तथा एरण्ड तैल, उदरशूल, बेल गिरी के साथ अतिसार, मलेरिया में या गुप्तज्वर में ताजी गिलोय, चिरायता का काढ़ा मन्दाग्नि में फाण्ट, सर्वांग शोथ में चिरायता पुनर्नवा, सोंठ का काढ़ा लाभ करता है। क्वाथ की फाण्ट या शीतकषाय सर्वोत्तम है।

योग--(१) सुदर्शन चूर्ण २-६ माशा ज्वरशामक
(२) सुदर्शन मिश्रण २-६ माशा ज्वरशामक

---

1. Chiretta.
2. Swertia Chirata, Ham.
3. Gentianaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मरुबकः (स्वरपत्रः सुगन्धः फणिज्जकः)

नाम—(हि०) मरुआ (बं०) गन्धतुलसी (म०) मरवा (गु० मा०) मरवो (क०) मरुण (तै०) मरुवमु (ता०) मरु (अं०) कामन या स्वीट मार्जोरम्[1] (वा० ले०) ओरिजेनम् मार्जोराना[2], तुलसी वर्ग ।[3]

गुण—मरुवः कटुतिक्तोष्णा क्रमि कुष्ठविनाशनः । बिड्विषबन्धध्मान शूलघ्नो मान्द्यत्वग्दोष नाशनः ।।

मरवा कड़वा, कटु उष्णवीर्य कटु विपाकी कफवातशामक, अग्निमान्द्य, कृमिकुष्ठ, त्वचा के रोग आध्मान शूलशामक है ।

तुलसी के समान यह भी सुगन्धित, वातानुलोमक, स्वेदजनन, उत्तेजक, श्वासहर, आर्तवजनक है । प्रतिश्याय में फांट देने से पसीना आता है । वातिक पीड़ा में इसके रस को लगाया जाता है । अन्य प्रयोग तुलसीवत् समझें ।

विषः (वत्सनाभ-अमृत क्ष्वेडः)

परिचय—वत्सनाभ का क्षुप १०-१४ हजार फुट की ऊँचाई पर हिमालय में होता है । यह सफेद तथा काला दो प्रकार का होता है । मूल का प्रयोग होता है ।

रस—मधुर, कटु

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

प्र० अं०—हृदय, त्वचा

वि० गु० क०—तापहर, स्वेदल, उत्तेजक

दोष—वातकफशामक

मात्रा—$\frac{1}{2}$-१ गुंजा

नाम—(हि०) सींगिया विष-मीठा तेलिया (बं०) काटविष, मीठाविष (म०) काला बचनाग (गु०) बछनाग वसनाग (अं०) इण्डियन[4] एकोनाईट्, माँक शूड[5] (वा० ले०) एकोनिटम् फेरोक्स[6], वत्सनाभ[7] वर्ग विष से यूरोपिय भेद को दूधिया वचनाग (एकोनिटम्[8] नेपेलस) कहते हैं । एक अन्य भेद काश्मीरी (शृंगी) विष (एकोनिटम् चास्मेन्थम्[9]) का भी उपयोग उत्तर भारत के लोग करते हैं । सर्वाधिक प्रयोग 'काले वचनाग' का ही होता है यह अन्य दोनों की अपेक्षा कम उग्र है । गुणों में समान है ।

गुण—वत्सनाभो तिमपुर : सोष्णो वातकफापहः । कण्ठरुक्सन्निपातघ्नः पित्तसन्ताप कारकः ।। (रा० नि०)
विषं विशेषतो वातवेदनाहरमुत्तमम् । मूत्रलं स्वेदजननं शूल निर्मूलनं परम् ।।
प्रवृद्ध ताप शमनं तथा शोथ निषूदनम् । तत्तद हेतु प्रवृद्धाया हृद्गतेश्चनियामकम् ।।

विष मधुर कटु रस-उष्णवीर्य-कटु विपाकी, वातकफ शामक, सन्निपात, कण्ठरोग, पित्तवर्द्धक, उष्णता उत्पादक-विशेषकर वातिक वेदनाओं का नाशक, मूत्रल, स्वेदल, शूल, शामक, शोथहर, ज्वर प्रशमन तथा हृदय की गति का नियामक हैं ।

---

1. Common, Sweet marjoram.
2. Origanum Marjorana, Linn.
3. Labiatae.
4. Indian Aconite
5. Monk Shood
6. Aconitum Ferox Wall.
7. Ranunculaceae.
8. A. Nepellus Linn.
9. A. Chasmanthum.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रभाव--बाह्य प्रयोग में (२ प्रतिशत) तैल या मलहर या चूर्ण के रूप में लगाने से त्वचा में क्षोभ करता है। कला में प्रथम क्षोभ होता है। चरपराहट ज्ञात होती है। थोड़ी देर के पश्चात् कला में जाने वाले चेतान्त[1] जड़ हो जाते हैं, अतः शून्यता होने से वेदना का अनुभव नहीं होता। तेलों-लेपों में इसका प्रयोग आमवात वातव्याधियों की वेदना (उद्वेष्टन) में वेदना शान्त करने के लिये किया जाता है।

अंतः प्रयोग में भी उक्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। आमाशय तथा मुख में उष्णता का अनुभव होता है। शीघ्र ही वह आमाशय से रक्त में चला जाता है। प्रारम्भ में यह प्राणदा नाड़ी को उत्तेजित करता है जिसके कारण हृदय की गति धीमी हो जाती है तथा रक्तभार न्यून हो जाता है। किन्तु स्वल्प मात्रा में केवल नाड़ी की गति मन्द करता है। यह त्वचा की रक्तवाहिनियों को विस्तृत करके स्वेद अति मात्रा में लाता है। जिससे ताप कम होता है। वृक्कों द्वारा बाहर निकलते समय उन्हें उत्तेजित कर मूत्र का प्रमाण बढ़ाकर भी ज्वर को कम करता है।

निर्गमन—प्रधानतः मूत्र द्वारा, स्वल्प मात्रा में लालास्राव, आमाशय रस, पित्त तथा स्वेद द्वारा भी बाहर निकलता है।

विष लक्षण---सेवन के कुछ समय पश्चात्, मुख तथा अन्नमार्ग में झनझनाहट और क्षोभ होकर संज्ञाशून्यता उत्पन्न हो जाती है। उदर में तीव्र शोथ तथा जलन, अत्यधिक लाला स्राव, वमन, अतिसार, त्वचा शीतल, चिपचिपी, अति स्वेद, झनझनाहट, चूँटियाँ चलने की सी अनुभूति, जड़ता, नाड़ी लघु अनियमित, नेत्र स्थिर, ताकती सी पुतली प्रथम संकुचित, पुनः प्रसारित, श्वास कठिन, शिथिलता, मूर्च्छा, कभी-कभी आक्षेप, श्वासावरोध-विरलतथा मूर्च्छा से ही मृत्यु हो जाती है। मस्तिष्क-अन्त तक चेतन बना रहता है।

चिकित्सा---वमन, आमाशय प्रक्षालन, उत्तेजक औषधों, शरीर को गरम रखने के लिए गरम बोतलों का स्वेद अभ्यंग, हृदय उत्तेजक औषधियाँ, कस्तूरी-कर्पूर, धत्तूर। विष मात्रा—१/१६-१/६ रत्ती तक।

विष का शोधन---आयुर्वेद में शुद्ध विष का ही प्रयोग किया जाता है। गोमूत्र या गोदुग्ध में शुद्ध किया गया वत्सनाभ हृदय का अवसाद नहीं करता, अपितु उसे बल देता है। रक्तभार और शाखागत रक्ताभिसरण को बढ़ाता है।

शोधन के लिये वत्सनाभ के छोटे-छोटे टुकड़े कर उन्हें कपड़े में शिथिल बाँधकर काँच या मिट्टी के पात्र में गोमूत्र भरकर उसमें वत्सनाभ की पोटली डाल दें। गोमूत्र प्रतिदिन बदलते रहे, इस प्रकार सात दिन तक गोमूत्र प्रतिदिन बदलते रहें। इस प्रकार सात दिन तक गोमूत्र में भिगोने के बाद धोकर पुनः बकरी या गाय के दुग्ध में दोलायन्त्र द्वारा एक प्रहर (३ घण्टे तक) स्वेदन करें। पुनः धोकर सुखा लें। इस प्रकार शोधित वत्सनाभ की मात्रा बनाने की विधि यह है। १ भाग वत्सनाभ में १० भाग मुलैठी, गिलोय सत्व, साबरश्रृंग वचा चूर्ण या टंकण भस्म मिलाकर पीस लें। इसकी एक रत्ती की मात्रा है। मधुमेह, मूत्रातिसार, पक्षाघातियों में मधु-घृत के साथ सेवन करना चाहिये।

योग--(१) कफकेतु, मृत्यंजय, त्रिभुवन कीर्ति आदि अनेक योग हैं।
(२) लघु विषगर्भ तैल, विषगर्भ तैल।

सप्तपर्णः (विशालत्वक्, शालमलीपत्रकः)

परिचय—सात पत्रकों (एक पत्ते में सात पत्रक) वाला यह वृक्ष दक्षिण तथा बंगाल, आसाम में बहुत है।

व्य० अं०—छाल, सत्व

पुष्पकाल—मार्गशीर्ष से फाल्गुन तक

1. Nerve Endings.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रस--तिक्त,
वीर्य--उष्ण
विपाक--कटु
दोष--त्रिदोषशामक
प्र० अं०--अन्त्र
वि० गु० क०--तापहर, कृमिहर, ग्राही
सत्व--१०-२० रत्ती तक
मात्रा--१-३ माशा छाल

नाम--(हि०) छतिवन, सतौना (बं०) छातिम (म०) सातवीण (गु०) सातवण (क०) एलोलग (मद्दाले) (तै०) एडाकुल आरिटाकु (ता०) एमिले इप्पालई (अं०) डिटा बार्क[1] (वा० ले०) एलस्टोनिया स्कोलेरिस[2], कुटजवर्ग[3]।

गुण--सप्तपर्णी कषायोष्णः सुस्निग्धो दीपनः सरः। हृद्यो दोषकृमिश्वास कुष्ठ गुल्म व्रणास्रजित् ।। (कै०)

सतोना कड़वा, कसैला, उष्णवीर्य, स्निग्ध, त्रिदोषहर, अनुलोमक, हृद्य, कृमि, कुष्ठ, गुल्म, रक्तविकार तथा ज्वरशामक है।

प्रभाव तथा प्रयोग--इसमें एक अतिरिक्त सत्व पाया जाता है। जिसके कारण यह उत्तम ज्वरघ्न, विषमज्वरहर तथा तिक्त रसायन है। समस्त छाल यद्यपि ग्राही है, किन्तु वातानुलोमक है। कषाय रस, कटु विपाकी होने से दशांश का शोषण कर मल को बाँधकर लाती है। अतः ग्राही है। अग्निदीपन और उष्ण होने से पाचन को उत्तम बनाता है। अन्त्रों की कला को शक्ति प्रदान करके तथा वायु का अनुलोमन करके मल को निकालता है, अतः सारक या अनुलोमक है। अर्थात् यह कब्जी नहीं करता।

अग्नि दीपक, सारक तथा तिक्त होने के कारण विषमज्वरों में लाभ करता है। प्रतिश्याय, वातकफज ज्वर, अतिसार, प्रवाहिका, ज्वरातिसार में लाभदायक है। इसकी छाल के क्वाथ में वायबिडंग चूर्ण मिलाकर देने से उदर-कृमि नष्ट होते हैं। त्रिफला में मिलाकर इसकी छाल का काढ़ा बनाकर पीने से रक्त शुद्ध होता है। दुष्ट व्रणों में पत्तों का कल्क बाँधा जाता है।

योग--सप्तपर्णधनवटी-महातिक्तघृत।

ह्रीवेरम् (बालक उदीच्यम् जलम्)

नाम--(हि०) नेत्रवाला, सुगन्ध वाला (पं०) मुश्कवाला (म०) कालाबाला (गु०) कालाबालो (क०) मुहिवाल (तै०) बह्लिवेल्लु (ता०) कुरुवेर (वा० ले०) पेवोनिआ[4] ओडोराटा कार्पासवर्ग।

गुण--वालकं मधुरं तिक्तं दीपनं पाचनं हिमम्। लघुरूक्षं ज्वरं हन्ति रक्तपित्तकफव्रणान् ।।
दाह हृल्लास वीसर्प तृष्णातिसार हृद्रदान्। (कै०)

बालक उत्तर प्रदेश, सिन्ध, बर्मा आदि पहाड़ी प्रदेशों में जंगली रूप में मिलता है। सुगन्धित मिट्टी के रंग का तन्तुमय पीला-सा पदार्थ है।

---

1. Dita Bark.
2. Alstonia Scholaris, RBr.
3. Apocynaceae.
4. Pavonia Odorata, wild.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यह मधुर, तिक्त, शीतल, मधुर विपाकी, दीपन, पाचन, लघु, रूक्ष ज्वर, रक्तपित्त, कफ, व्रण, दाह, जी मचलना, वीसर्प, प्यास, अतिसार तथा पाचन सम्बन्धी रोगनाशक है।

आमातिसार में सुगन्ध वाला तथा बेलगिरी मिलाकर देने से, प्यास में क्वाथ, श्वासकास-रक्तातिसार में सुगन्धवाला में शक्कर के साथ मिला तण्डुलोदक (चावलों का पानी) के अनुपान से, संग्रहणी में २ तोला नेत्रवाला का ३ पाव जल में औटाकर आधा शेष रह जाने पर पिलाते हैं। शीतला के दिनों में नींबू के साथ चटाने से उसका भय कम हो जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तीसवाँ अध्याय

रसायन (सर्वशरीर प्रभावक)

अष्टवर्ग

वक्तव्य—इस वर्ग में आठ वनौषधियाँ हैं जिनका अभी तक पूर्ण निर्णय नहीं हो सका है। अतः उनका वर्णन मात्र ही किया गया है, ताकि उनके गुणों का ज्ञान रहे। आजकल जो आठ वनौषधियाँ मिलती हैं उनका प्रयोग करने में कोई हानि नहीं। अन्यथा उनके प्रतिनिधि द्रव्य डालने चाहिए।

अष्टवर्गो द्विकाकोलोऋद्धिमेदाजीवकर्षभैः। ऋद्धिवृद्धियुतैः क्वापि जीवन्ती मधुकान्वितैः॥ (कै०)

काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा जीवक, ऋषभक, ऋद्धि-वृद्धि। कहीं-कहीं ऋद्धि-वृद्धि के स्थान पर मुलैठी तथा जीवन्ती डालते हैं।

गुण—अष्टवर्गो हिमः स्वादुर्बृंहणः शुक्रलोगुरुः। गर्भसन्धानकृद्बल्यो बलासबलवर्धनः।
वातपित्तास्र तृट् दाह ज्वर शोथक्षत प्रणुत्। (कै०)

सरल होने से भाषान्तर नहीं किया गया।

अष्टवर्ग प्रतिनिधि

काकोली युगाभावे शतावर्य्यायुगं क्षिपेत्। मेदाऽभावेऽश्वगन्धा स्यान्महामैदा प्रसारिणी॥
जीवकर्षभकाभावे गुडूची वंशरोचने। ऋद्धि स्थाने बला योज्या वृद्धिस्थाने महाबला॥ (कै०)

भावमिश्र ने कुछ दूसरे ही प्रतिनिधि दिए हैं। नीचे दोनों की तुलना की गई है। भावमिश्र के प्रतिनिधि उत्तम प्रतीत होते हैं।

प्रतिनिधि

	मूलौषध	कैय्यदेव	भावमिश्र
(१)	काकोली	शतावरी	अश्वगन्धा
(२)	क्षीरकाकोली	महाशतावरी	
(३)	मेदा	अश्वगन्धा	शतावरी
(४)	महामेदा	प्रसारिणी	
(५)	जीवक	गिलोय	विदारोकन्द
(६)	ऋषभक	वंशलोचन	
(७)	ऋद्धि	बला	वाराहीकन्द
(८)	वृद्धि	महाबला	

अष्टवर्ग के विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त करने के अभिलाषीजन भाव प्रकाशादि ग्रन्थों का स्वाध्याय करें।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इक्षु (गुड़तृण:, असिपत्रक:, गण्डीर:)

परिचय—सुपरिचित बृहत् तृण । प्राय: सर्वत्र । रस तथा उससे निर्मित गुड़, राब (फाणित म० काकबी) शर्करा, मिश्री आदि का उपयोग होता है ।

रस—मधुर

वीर्य—शीत

विपाक—मधुर

दोष—वातपित्तशामक, कफहर

प्र० अं०—सर्वशरीर, मूत्रसंस्थान

वि० गु० क०—शीतल, मूत्रल, रेचक

नाम—(हि०) ईख, ऊख, गन्ना (बं०) आक् (म०) ऊख (गु०) शेरडी (मा०) सांतों, सेलडी (अं०) शुगरकेन[1] (वा० ले०) सेकेरम् आफिसिनेरम् लिन्न[2], तृण वर्ग[3] ।

गुण—इक्षु: शीतो गुरु: स्निग्धो मधुरो रसपाकयो: । जीवनो बृंहणो बृष्य: कृमिमूत्रकफप्रद: ॥
सर: सन्तर्पणो बल्योऽल्हादी पित्तास्रनाशन: । अर्जस्यो वातजित् भुक्तमात्रे वात प्रकोपन: ॥
तस्याग्रं स्वादुपट्वम्लं त्वक् स्वादुलवणामता ॥ (कै०)

गन्ना मधुर, स्निग्ध, शीतल, गुरु, मधुर विपाकी जीवनीय पौष्टिक बलवर्धक, आह्लाद (प्रसन्नता) कारक, रक्त पित्तशामक, मृदुरेचक, सन्तर्पण, ओजवर्धक, वातपित्तशामक (भोजन के तत्काल बाद वातवर्धक) है । उसका अग्रभाग मधुर अम्ल तथा लवण रसवाला तथा त्वचा (छाल) मधुर और लवण होती है ।

इक्षु रस—वक्त्रप्रल्हादनो वृष्यो दन्तनिष्पीडितो रस: ।
गुर्वविदाही विष्टम्भि यान्त्रिकस्तु प्रकीर्तित: ॥ (सु० सू० ४६)
पक्वो गुरु: सर: स्निग्धस्तीक्ष्णोष्ण कफवातहा ॥ (कै०)

दान्तों से चबाकर चूसा रस, वृष्य, सौमनस्यजनन, मूत्रल, रक्तशोधक, रुचिकर, कफप्रद होता है । रस भारी, विदाही, वातकारक, क्षारीय तथा दाहकारक होता है । कुछ समय तक रखने से वह विकृत हो जाता है । पकाया हुआ रस, सर, स्निग्ध, उष्ण, तीक्ष्ण, तथा कफवातशामक होता है ।

इक्षु की कृतियां—गुड़ शर्करादि—"गुड: सक्षार: मधुरो नातिशीत: स्निग्धो मूत्ररक्तशोधनो नातिपित्तजित् ।
वातघ्नो मेद: कृमिकफ करो बल्यो वृष्यश्च । (सु० सू० ४६)
पित्तघ्नो मधुर: शुद्धो वातघ्नोऽसृक् प्रसाधन: । स पुराणोऽधिक गुणो गुरु: पथ्यतम: स्मृत: ॥
मत्स्यण्डिकाखण्ड शर्करा विमलजाता: उत्तरोत्तरं शीता: गुरुतरा मधुरतरा वृष्य:
रक्तपित्त प्रशमना: तृष्णा प्रशमनाश्च । (सु० सू० ४६)

रसवाला कुछ क्षारीय, नातिशीत, स्निग्ध, मूत्र तथा रक्तशोधक, वातशामक, नातिपित्तशामक, वसा उदरकृमि कफ, बल वीर्यवर्धक है ।

पुराना गुड़ (एकवर्ष पुराना) पित्तशामक, मधुर, वातशामक, रक्तशोधक और पथ्यतम है । मत्स्यण्डिका

---

1. Sugar-Cane.
2. Sacharum officinarum, Linn.
3. Gramineae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(रावल काकवी) खाण्ड तथा मिश्री उत्तरोत्तर निर्मल, शीत, स्निग्ध, मधुर, गुरु, वृष्य, रक्त पित्त तथा तृषाशामक हैं। राब का प्रयोग शर्करा के स्थान पर करना उत्तम है।

प्रयोग--रस का सेवन मूत्रकृच्छ्, मूत्रदाह, अम्लपित्त, कामला, पाण्डुशामक है। गंडेरिया रात को ओस में रखकर प्रातः चूसने से मूत्रदाह तथा सुजाक (पूयमेह) शान्त होता है। अश्मरी में भी प्रभूत मूत्र लाने से लाभ करता है। शुष्क कास में गन्ने का रस चुसाते हैं। अनार के रस के साथ गन्ने का रस पीने से रक्तातिसार, रक्तवमन बन्द होती है। गन्ने को भूमल (मृदु अग्नि) में सेंक कर चूसने से स्वर भंग मिटता है।

इक्षु शर्करा (Cane-Sugar Sucrosum)

चीनी, शक्कर या मिश्री नातिशीत, स्निग्ध, बलदायक तथा कोथ (सडांद) प्रतिबन्धक है। औषधि की अपेक्षा यह आहार पदार्थ अधिक है। जिसका कार्य शरीर में उष्णता तथा वसा (मेद) उत्पन्न करना है। क्षोभक विषों में प्रयुक्त हो सकती है। शरीर सन्तर्पण के लिए इसका प्रयोग शर्बत, आदि के रूप में किया जाता है। यह पाचन को मन्द करती तथा अम्लपित्त को बढ़ाती है। उत्तम मूत्रल होने से आर्द्रशोथशामक है। दो छटांक (१० तोला) शर्करा का ५० प्रतिशत लोशन मस्तिष्क के दबाब को कम करता है। औषधियों को सुरक्षित रखने के लिए, उनका स्वाद बदलने के लिए अवलेहादि में प्रयुक्त होता है। लाल शक्कर भोजनोत्तर सेवन से पाचन तथा दूध के साथ सोते समय सेवन से मलशोधन और घृत के साथ सेवन करने से कृशता का नाश करती है। रेचनार्थ ४-५ तोला तक सेवन करें। उष्ण तथा पित्त प्रकृति वालों के लिए अधिक सेवन अहितकर है। बादाम तथा दूध के साथ सेवन करना उत्तम है।

इक्षु शर्करा के समान दुग्धशर्करा[1] तथा फल शर्करा[2] भी औषध रूप में प्रयुक्त होती है। ग्लुकोज[3] भी इसी का ही भेद है। आधुनिक इसका बहुत व्यवहार करते हैं। अतः शर्करा प्रकरण में इसका वर्णन करना उचित है।

कार्य--(१) यह शरीर की प्राकृतिक शर्करा है। समग्र पोषक कार्बोज[4] प्रथम फल शर्करा रूप में ही प्रयुक्त होती है। (२) ग्लुकोज यह बलदायक है। (३) शरीर ऊष्मा (अग्नियों) की वर्धक तथा पोषक है।

प्रयोग--निर्बल बच्चों को तथा वातिक प्रकृति के व्यक्तियों को शक्ति देती है। शरीर में तरल की न्यूनता होने पर तथा रोगों—विषूचिका[5] की शीतांगावस्था[6] त्वचाशोथ में तथा हृदय को शक्ति देने के लिए ५ प्रतिशत घोल शिरान्तः सूचीवेध[7] द्वारा दिया जाता है। बाजार में १२½%, २५% तथा ५०% घोल[8] की ट्यूबें या बोतलें मिलती हैं। साधारणतः २५ प्रतिशत ५० ग्राम घोल प्रयोग किया जाता है। मूर्च्छा, मूत्ररोध से उत्पन्न विष तथा गर्भिणी के विकारों में उत्पन्न मूर्च्छा में अति उत्तम है। सिर के अन्दर भार बढ़ जाने पर यथा शीर्ष सौषुम्नज्वरादि में शिरान्तः सूचीवेध लाभ करता है।

कदली (रम्भा-मोचा-दीर्घ-पत्रिका)

परिचय--केले का गुल्म सुपरिचित है। इसकी अनेक जातियाँ हैं। सर्वत्र उपलब्ध होता है।

व्य० अं०--अंग, पंचांग, विशेषकर फल

रस--मधुर (कच्चे में कषायानुरस)

---

1. Lactosum
2. Dextrosum.
3. Glucose.
4. Carbohydrate.
5. Cholera.
6. Dehydration.
7. Intra-venous injection.
8. Lotion.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वीर्य—शीत

विपाक—मधुर

दोष—वातपित्तशामक, कफवर्धक

प्र० अं०—सर्वशरीर

वि० गु० क०—स्निग्ध, पौष्टिक, पित्त तथा रक्त रोगनाशक

नाम—(हि० पं०) केला (बं०) कला (म०) केल (गु०) केला (अ० फ०) मोंग, मोज (अं०) प्लेन्टेन[1], बनाना[2], (वा० ले०) मूसासेपिएन्टम् कुट्ज[3], हरिद्रावर्ग या आर्द्रकवर्ग।

गुण—मोचे स्वादुरसं प्रोक्तं कषायं नातिशीतलम्। रक्तपित्तहरं वृष्यं रुच्य श्लेष्मकरं गुरु ॥ (सु० सू० ४६)
कन्दस्तु वातलोरूक्षः शीतोऽसृक्क्रमिकुष्ठनुत् (ध०)

केला (वृक्ष) मधुर कसैला, समशीतोष्ण, रुचिप्रद, वृष्य, बल तथा श्लेष्मकारक और रक्तपित्तशामक है। कन्द वातबर्धक, रूक्ष, शीतल, रक्तरोग क्रमि तथा त्वचा रोगशामक है।

यह सोम रोग, रक्तपित्तशामक, योनि दोष, कर्णशूलशामक है। केला का जल (रम्भातोय) के भी यही गुण हैं। यह अत्यन्त शीतल है। रक्तपित्त, योनिदोष, अतिसार, मूत्रकृच्छ्र, तृष्णाशामक है। केला के पुष्प तिक्त, कसैला, दीपन, ग्राही, उष्णवीर्य, कफशामक है। कच्चा फल संग्राही, कषाय, रूक्ष, ज्वर, दाह, प्रमेह, रक्तातिसारशामक है। पक्व फल अत्यन्त पौष्टिक, स्निग्ध, बृष्य, कफ तथा मांसवर्धक, क्षीणता के रोग, वातपित्त, रक्त के रोग, दाहादिनाशक है। इसमें कुछ विशेष जातीय तत्व पाये गए है।

प्रयोग—पक्का केला श्वेत प्रदर, बहुमूत्र तथा प्रमेहनाशक है। छोटा केला (चूनिया) अतिसार तथा आमातिसार में, अन्त्रक्रमियों में मूल का क्वाथ, रक्तपित्त में काण्ड का रस सेवन कराया जाता है। आमाशय, फुप्फुस, वृक्क, तथा मूत्राशय की दाह में पक्का केला लाभ करता है। अम्लपित्त में कदली क्षार तथा कच्चे केले को सुखाकर आटा बनाकर अतिसार, मन्दाग्नि में खिलाते हैं। सोमल (संखिया) तथा अफीम के विष में केले की छाल तथा पत्ते का रस दिया जाता है। २½ तोला कदली छाल रस, २½ तोला घी मिलाकर पिलाने से तीव्र रेचन होता है। मूत्रकृच्छ्र में टंकण भस्म तथा शुद्ध कलमी शोरा मिलाकर छाछ के साथ देते हैं। मुख में छालों की दाह, तथा अग्निदग्ध में केले के पत्ते को पीसकर बांधते हैं। बिषूचिका की तृष्णा मिटाने के लिए काण्ड के रस से गण्डूष कराते हैं। आमातिसार या जीर्णातिसार में पुरानी इमली का शीत कषाय २½ तोला, पक्का केला २½ तोला पुराना गुड़ आवश्यकतानुसार मिलाकर पिलाने से अतिलाभ होता है। भस्मक रोग में २४ तोला पक्व फल की गिरी घी में मिलाकर कन्द का रस मधु के साथ पिलाया जाता है। श्वेतकुष्ठ (श्वित्र) में कदलीक्षार, हल्दी चूर्ण समभाग लेप किया जाता है। हरे पत्तों को कड़वे तैल में जलाकर मुर्दासंग के साथ मिलाकर लेप लगाते हैं।

योग—कदल्यादिघृत—प्रमेह तथा सोमरोगादि नाशक है।

खर्जूरत्रयम् (दुरारोहा-खरस्कन्धा)

खजूर की अनेक जातियाँ हैं। मुख्यतः पिण्ड खर्जूरः और खर्जूरः दो है। पिण्ड खर्जूर अधिक गुणकारी है।

नाम (पिण्डखर्जूर)—(हि० पं० मा०) पिण्ड खजूर, सुलेमानी खजूर, छोहारा (म०) खजूर (बं०) खेजुर

1. Plantain.
2. Banana.
3. Musasepientum, kuntze.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(गु०) पेण्डखर्जूरः (तै०) खजूर पुच्चेटुः (ता०) पर्चचंक्कं (अं०) इडीबिल डेट[1] (२) फिनिक्स डैक्टिलिफिरा[2], ताल वर्ग[3] नारिकेल वर्ग।

खर्जूर—सर्व भाषा—खजूर (म०) शिन्दी (अं०) वाईल्ड डेट, टोडीपाम[4] (वा० ले०) फिनिक्स सिल्वेस्ट्रिस[5], तालवर्ग।

पुष्पकाल—फागुन-चैत

गुण—क्षतक्षयापहं हृद्यं शीतलं तर्पणं गुरु। रसे पाके च मधुरं खार्जूरं रक्तपित्तनुत्॥ (सु०)
खर्जूरिका वृक्ष तोयं मदपित्तकरं परम्। वातश्लेष्महरं रुच्यं दीपनं बलशुक्रकृत्॥

खजूर का फल मधुर, शीतल, मधुर विपाकी, पौष्टिक, मांसवर्धक (बृंहण) वृष्य, गुरु, क्षय रोग, क्षत, दाह, वातपित्त तथा रक्तपित्तशामक है। छोटे खजूर से जो रस निकलता है उसे खजूरी (ताड़ी) कहते हैं। इससे मद्य भी बनाई जाती है। यह मदकारक, पित्तवर्धक वातकफशामक, दीपन, बलवीर्यवर्धक तथा रुचिकारक है।

प्रयोग—नारियल, ताड़ तथा खजूर के फलों से शर्करा भी तैयार की जाती है। यह गन्ने की शर्करा की अपेक्षा अधिक सारक है और पौष्टिक भी।

खजूर, वातनाड़ियों को बल देता है, अतः कटिशूल, रजःकृच्छ्रता, कुल्हे का दर्द, गृध्रसी आदि में खाया जाता है। वीर्यक्षीणता में दूध में उबाल कर पीते हैं। यह अत्यन्त पौष्टिक हैं तथा प्रतिश्यायशामक और पसीना लाने वाला है। शुष्ककास में छुहारा की गुठली मुख में रखकर चूसने से लाभ होता है। छुहारे की गुठली निकाल उसमें अफीम तथा जायफल का चूर्ण भरकर पुटपाक कर १-१ रत्ती सेवन कराने से अतिसार बन्द हो जाता है।

तालः (तृणराजः, ध्वजवृक्षः-दुरारोहो)

नाम—(हि० म० पं० ब०) ताल, ताड़ (क०) पनेमर (तै०) पोटुताड़ि (ता०) पन्नमरन (अं०) पालमिरा[6] पाम ब्रेब ट्री[7] (वा० ले०) बोरेसस् फ्लेबिलिफरा[8], नारिकेल वर्ग[9]।

गुण—तालस्तुमधुरः शीतो मेदः श्लेष्मबलप्रदः। शुक्रलो बृंहणो हन्ति वातपित्त व्रणक्रमीन्॥ (कै०)
फलं स्वादु रसं तेषां तालजं गुरु पित्तजित्। ताल-नारिकेल-खजूर प्रभृतीनां मस्तक मज्जानः॥
स्वादु पाक रसान्याहुः रक्तपित्त हरास्तथा। शुक्रलानिलघ्नोश्च कफवृद्धिकरानपि॥ (सु० शू०)

तालका, फल मधुर रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, गुरु, बल्य, पौष्टिक तथा पित्तशामक है। बीज भी मधुर, मूत्रल, वातपित्तशामक, ताड़-नारियल खर्जूर की मस्तक मज्जा (चोटी का गूदा) मीठा, वातशामक, कफमेद, शुक्र वर्धक तथा रक्तपित्तहर है।

प्रयोग—अम्लपित्त, पित्त के रोग, पाण्डु, कामला तथा यकृत्प्लीहा वृद्धिनाशक है। ताड़ी मदकारक (ताजी मादक नहीं होती है। दाह, पित्त की प्यास, मूत्रकृच्छ्र में पका फल लाभ करता है। कृश व्यक्तियों को ताड़ी तथा फल दोनों ही लाभ करते हैं। मस्तकमज्जा का जल पिलाने से वमन, हिक्का, उत्क्लेद शान्त होता है।

वक्तव्य—ताड़ के झाड़ समुद्र के किनारों पर रेतीली जमीन में अधिक होते हैं। ये सीधे तथा बहुत ऊँचे होते हैं। पुष्प फाल्गुन में आते हैं।

---

1. Edible date.
2. Phoenix-Dactylifera, Linn.
3. Palmeae.
4. Wild date, Toddy Palm.
5. Phoenix Sylvestris, Roxb.
6. Palmyra Palm.
7. Brab Tree.
8. Borasus Flabellifer, Linn.
9. Palmaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तिलः (होमधान्यः, क्षुरकः, छत्रपुष्पकः)

परिचय—सुपरिचित क्षुप, कृष्ण-श्वेत भेद से दो प्रकार के होते हैं।

उ० स्थ०—उष्ण प्रदेशों में सर्वत्र

व्य० अं०—बीज, तैल

रस—कटु, तिक्त, मधुर

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोष—वातकफहर

प्र० अं०—सारा शरीर

वि० गु० क०—त्वच्य, स्निग्ध, पौष्टिक, वातव्याधिशामक

पुष्पकाल—भिन्न-भिन्न काल देशभेदानुसार

मात्रा—६-१२ माशा तक चूर्ण

नाम—(हि० म० पं० बं०) तिल, तिली (गु०) तल (अं०) सीसेमम्[1] (वा० ले०) सीसेमम् इण्डिकम्[2], तिलादि वर्ग[3]।

गुण—तिलकः कटुकः पाके रसे चोष्णो रसायनः। कफकुष्ठक्रमीन् बरितमुखदन्तगदान्हरेत्॥ (भाव०)

तिल कड़वा, चरपरा, मधुर रसवाला, उष्णवीर्य, कटु विपाकी, रसायन, स्निग्ध, शोथशामक, रक्तार्श के रक्तस्राव को रोकने वाला, मूत्र आर्तव, दुग्धवर्धक, व्रणशोधक, रोपक, केशवर्धक तथा बलकारक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—प्रायः तिल के बीजों का तैल ही उपयोग किया जाता है, किन्तु यदा-कदा पंचांग का व्यवहार भी कर लिया जाता है।

उष्ण तथा स्निग्ध होने के कारण व्रणशोथ को पकाता हैं तथा तनाव को कम करता है। व्रणों में भी इसे पीसकर लगाते हैं। गरमी के कारण उत्पन्न फोडें-फुंसियों में तथा थोहरादि का काँटा लगने पर तिल-तैल लगाना लाभ प्रद है। कांटा मुलायम होकर निकल जाता है तथा स्वस्थान पर एक छाला-सा तथा व्रण चिह्न छोड़ जाता है। तिल की जड़ तथा पत्तों के क्वाथ से सिर धोने से बाल काले रहते हैं। तिलों को दूध में पीसकर लेप करने से सूर्यावर्त रोग मिटता है।

तिल-तैल का अभ्यंग अर्दित, पक्षाघात, कृशता आदि का नाशक है। मकड़ी के विष में तिल तथा हल्दी को घी में पीसकर और भल्लातक शोथ में तिल-मक्खन मिलाकर लेप करने से लाभ होता है।

अन्तः प्रयोग में स्निग्धता के कारण वातिक कास, कंठ की कर्कशता में मिश्री या अलसी के साथ मिलाकर सेवन कराते हैं। बादाम, शर्करा, गोखुरू आदि के साथ खिलाने से पौष्टिक तथा वीर्यवर्धक है। काले तिलों को माखन के साथ खाने से रक्तस्राव बन्द होता है। नागकेशर मिलाने से और भी उत्तम फल होता है। यह गर्भाशय को भी बल देता है। सोंठ, मरिच, पीपल, गोक्षुरू आदि के साथ देने से मासिक धर्म खुलकर आता है। मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात में, अश्मरी, वृक्क, शूल, तथा गुल्म में तिल के पंचांग का क्षार ६-१२ माशा तक की मात्रा में देने से लाभ होता है। गर्भाशय शोथ, कटिशूल, रजःकृछ्रता में ५-५ रत्ती की मात्रा में तिलों को ३-४ दिन बाद में सेवन करें तथा तिल और पलाशपुष्प के क्वाथ में कटिपर्यन्त देने से अतिगुण होता है। वातव्याधियों की पीड़ाओं में भी यह उष्ण स्वेद लाभ करता है। काले तिल तथा भांगरा (भृंगराज) पत्तों का रस समभाग मिलाकर १ मास तक ६-१२ माशा तक की

---

1. Sesamum.
2. Sesamum Indicum, De.
3. Pedaliaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मात्रा में सेवन करने से रसायन का प्रभाव होता है। पाचन सम्बन्धि रोग नष्ट होते हैं तथा बाल भी काले होते हैं। तिलों को भूनकर शुद्ध मधु, गुड़ या चीनी के साथ खाना लाभप्रद है।

योग--नारसिंह चूर्ण १ तोला दूध के साथ, बल्य पौष्टिक, बाजीकरण तथा वातव्याधिशामक।

दशमूल (पंचमूलद्वयं च)

बृहत्पंचमूलं—बिल्वकाश्मर्यतक्वारी पाटला-टिंटुकैर्महत्। पंचमूलं कषायोष्णं सतिक्तं कफवातपित्त ॥
मधुरानुरसं तिक्तं पाके लघ्वग्निदीपनम्॥ (कै०)

वेल गम्भारी, अरणी, पाटला, स्योनाक की मूलों को सम मात्रा में मिलाने से बड़ा पंचमूल बनता है। यह कसैला, कड़वा, उष्णवीर्य, कफवातशामक, मधुर अनुरस, लघु तथा अग्निदीपक है।

लघु पंचमूलं—ह्रस्वं बृहत्यंशुमतीद्वय गोक्षुरकैः स्मृतम्। स्वादुपाकरसं नातिशीतोष्णं सर्वदोषजित ॥ (कै०)

छोटा पंचमूल, छोटी-बड़ी कटेरी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी तथा गोक्षुरू को मिलाने से बनता है।

यह मधुर रस, समशीतोष्ण तथा मधुर विपाकी और सर्वदोषनाशक है। दशमूल रसायन होने से सारे देह की विनिमय क्रिया को सुधारती है। उन्हें आहार पदार्थों के ग्रहण तथा सात्म्य करने से भी अधिक शक्ति देता है तथा क्रिया क्षम बनाता है। यही रसायनों का कार्य है।

दशमूलम्

उभाभ्यां पंचमूलाभ्यां दशमूलं त्रिदोषनुत्। तन्द्रा कास ज्वर पार्श्वशूल शिरोरुजि।
हिध्मानाहाग्निसादेषु प्रतिश्यायों प्रशस्यते ॥ (कै०)

बड़ा तथा लघु पंचमूल (वेल, गम्भारी, अग्निमान्थ, पाटला, स्योनाक, लघुः-बृहत्, कंटेरी, गोक्षुरू, शालपर्णी) मिलाकर दशमूल बनाया जाता है। यह त्रिदोषशामक है। तन्द्रा, कास, श्वास, पार्श्वशूल, शिरःशूल, ज्वर, हिक्का, आनाह, अग्निमान्द्य, प्रतिश्याय आदि वातिक तथा वातकफज, ज्वरशामक है। प्रसव के पश्चात् पिलाने से प्रसूता सब रोगों से मुक्त होती है। वात वेदनाओं तथा व्याधियों का नाशक है।

काश्मरी (श्रीपर्णी, गम्भारी, कृष्णवृन्तः)

परिचय—५०-६० फुट ऊँचा वृक्ष, पत्र पीपलवत्, परन्तु कुछ कम स्निग्ध

उ० स्थ०—हिमालय की तराई, नीलगिरी, पूर्व-पश्चिमी समुद्री प्रान्त

पुष्पकाल—मई-जून, पीतवर्ण पुष्प

रस—(मूलं) मधुर, कषाय, तिक्त

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु (पक्व फल) शीतवीर्य, मधुर

दोष—(मूलत्वचा) कफपित्त तथा फल वातपित्तशामक

प्र० अं०—सर्वदेह

वि० गु० क०--स्निग्ध, पाचन, रसायन भेदन

मात्रा—मूल चूर्ण ३-६ माशा

नाम--(हि०) गम्भारी, कुमेर (बं०) गाभार (म०) शिवण (गु०) शीवण, सवन (म०) कुम्भेरण (क०) शिवनिमर (तै०) पेद्द गुम्मडे (ता०) ताग्वोमुड (वा० ले०) ग्मेलीना आरबोरिया लिन्न[1], निर्गुण्डी वर्ग[2]।

---

1. Gmelina-Arborea, Linn. 2. Verbenaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण—श्रीपर्णी मधुरातिक्ता वीर्योष्णा तुवरागुरुः। दीपनी पाचनी मेध्या भेदिनी भ्रमशोथजित्॥
दोषतृष्णामशूलार्शो विषदाहज्वरापहा॥ (कै०)
हृद्यं मूत्रविषघ्नं पित्तासृग्वातनाशनम्। केश्यं रसायनं मेध्यं काश्मर्यं फलमुच्यते॥ (सु०सू०४६)

गम्भारी मूलत्वचा मधुर, तिक्त, कषाय, उष्णवीर्य, शोथ, आमदोष, वातिक वेदनाएँ, अर्श, दाह, ज्वरशामक फल (पका) मधुर, अम्ल, कषाय रसवाला, स्निग्ध, शीतल, गुरु, रुचिवर्धक, रसायन, पौष्टिक, वृष्य, मूत्रल तथा केश्य, वातपित्त तथा रक्तविकारशामक है। फल उत्तम रक्त संग्राहक तथा रक्तपित्तशामक है। काश्मर्य फलं रक्तसंग्राहिक रक्तपित्त प्रशमननाम्। (च० सू० ३५)। पुष्प भी संग्राही रक्तपित्त, रक्तप्रदरशामक है।

प्रयोग—यह दशमूल का अंग है। मूल की छाल भेदन तथा अनुलोमन होने से उदररोग, विबन्ध, आध्मान, आनाह, जलोदर, सर्वांगशोथ तथा ज्वरशामक है। मूल क्वाथ दीपन, पाचन तथा अन्त्रकृमिनाशक है। मूलचूर्ण, मुलैठी तथा शर्करा के साथ सेवन से दुग्धवर्धक, कोमल पत्तों का रस वासा पत्तों के रस के साथ पिलाने से कफनिष्कासन, फलों का काढ़ा ज्वर, पैत्तिक ज्वरशामक, फल पक्व दुग्ध शीतपित्तशामक है। नखों के क्षत या पूय में कोमल पत्तों का कल्क बांधने से लाभ होता है।

अग्निमन्थ तर्क्वारी (बृहदग्निमन्थ)

परिचय—मध्यम प्रमाण वृक्ष लगभग ३० फुट ऊंचा
प्रा० स्थ०—समुद्र प्रान्तस्थ भाग तथा हिमालय का अधोभाग
व्य० अं०—पंचांग, विशेषतः मूल
पुष्पकाल—प्रायः श्वेतवर्ण, चैत्र-बैशाख (मार्च-एप्रिल), माघ-पौष (जनवरी-दिसम्बर)
रस—मधुर, तिक्त, कटु, कषाय
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
प्र० अं०—पाचक तथा त्वचा संस्थान
वि० गु० क०—तिक्त, दीपन, शोथशामक
मात्रा—स्वरस १-२ तोला, मूलवर्ण ३ माशा, मूलचूर्ण ३-६ माशा तक
नाम—(सं०) वैजयन्ती, अरणि, बन्हिमंथन (हि०) अरणी, अगेथु (बं०) मनिर (गु०) अरणी (म०) नरवेल (नै०) गिनेरी (उ०) अगूयावट (गढ०) बकोर्चा (वा० ले०) प्रैम्ना इन्टेग्रीफोलिया, लिन्न[1], निर्गुण्डी वर्ग[2]।

गुण—तर्क्वारि कटुका तिक्ता तुवरा मधुराग्निदा। वीर्योष्णमन्थो हरते वातकफश्वयथू पाण्डुता॥
अग्निमन्थो गुणैस्तद्वत् विशेषाद् वातहा॥ (कै०)

अरणी मधुर, तिक्त, कटु, कषाय रसवाली, उष्णवीर्य, अग्निबर्धक, वातकफशोथ, पाण्डु अग्निमान्द्य और विबन्ध (आनाह-कब्जी) नाशक है। इसका दूसरा प्रकार (अग्निमन्थ छोटी अरणी) भी इन्हीं गुणों वाली है। विशेष कर वह वात और शोथशामक है।

बाह्य प्रयोग—अरणी मूल को पुंनर्नवामूल के साथ पीसकर गर्म करके लेप करने से सारे शरीर की शोथ आमवात, वातवेदनाएँ, शोथयुक्त अर्श, एवं अन्य प्रकार की शोथ तथा वेदनाएँ शान्त होती हैं। पत्तों को पीसकर शोथ वेदनायुक्त अर्श में उपनाह (पुल्टिस) के रूप में बांधते हैं। इसमें भाँग मिलाना लाभप्रद है। अरणी, कालीजीरी, कीडा-

---

1. Premna Integrifolia, Linn. P. Spinosa, P. Serratifolia. 2. Verbenaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मारी, सरपुंखा, सोंठ, दारुहल्दी, सब समान भाग पीसकर गरम कर सेक तथा लेप करने से सब प्रकार की शोथ विशेषकर वात तथा आमवात की शोथ और शीतांगता शान्त होती है।

अन्तः प्रयोग—कटु तिक्त और अग्निदीपक होने से यह अग्निमान्द्य, कुपाचन का नाश करता है। अन्त्रों को बल देकर विबन्ध का नाश करता है। पाचन तथा मल निष्कासक (विबन्ध नाशक होने से) ठीक प्रकार से शरीर की विनिमय क्रिया (धातु पाक)[1] सुधारती है जिससे प्रमेह, पाण्डु, अर्श, वातकफ के रोगों, तथा पुराना प्रतिश्याय भी नष्ट होता है। उष्णवीर्य होने से वातकफ के रोग, ज्वर, प्रतिश्याय, वात-वेदनाएँ शान्त होती हैं। पत्र स्वरस या मूल क्वाथ (१ : १० अनुपात से) पिलाने से उदरशूल, ज्वर, जलोदर तथा आर्द्रशोथ[2] नष्ट होता है। उदररोग तथा शीतपित्त में जड़ को चन्दन के समान घिसकर घी के साथ पिलाने से लाभ होता है। ज्वरों में आमाशय शूल हो तो मूल का ६ तोला क्वाथ दिन में ४ बार पिलाया जाता है। पत्र स्वरस सेवन उदरशूल, आध्मान, आनाह नष्ट करता है। कालीमिर्च के साथ पत्तों को घोटकर पिलाने से जुकाम तथा ज्वर मिटता है। पंचांग क्वाथ में यह आमवात तथा वात वेदनाएँ, पक्षाघात, आदि वातरोग शान्त करता है। गर्भाशय पर इसकी विशेष क्रिया देखी जाती है। इससे गर्भाशय की शक्ति कम हो जाती है। अतः संकोच जन्य पीड़ा कम होती है। अतः गर्भस्राव को बन्द करने के लिए उत्तम है। इसके साथ कमलपुष्प तथा अहिफेन (अफीम) मिलाकर देने से और भी लाभ होता है। कपासमूल से विपरीत इसकी क्रिया है। अतः अत्यार्तव एवं गुल्मादि में यह उत्तम है।

यह बृहत्पंचमूल तथा दशमूल का अंग है।

वक्तव्य—अग्निमन्थ का दूसरा भेद 'गणिकारिका' या क्षुद्राग्निमन्थ, रक्तांग भी है। सुश्रुत ने बढ़े अग्निमन्थ के लिए तर्क्वारी तथा क्षुद्र के अग्निमन्थ ये दो नाम पृथक् दिए हैं। कैय्यदेव निघण्टुकार ने भी उसी का अनुकरण किया है। बृहद्ग्निमन्थ का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। यह निर्गुण्डी सदृश वृक्ष है। इसमें कुछ नील सफेद पुष्प लगते हैं। माघ मास में इसके पत्ते झड़ जाते हैं। तथा चैत्र में पत्ते निकलते हैं। छोटे अग्निमन्थ का (हि०) अरणी (म०) टाकली या एरण या टेकर (गु०) नानी अरणी (बं०) गनियारी (वा० ले०) क्लेरोडेन्ड्रोन् फ्लोमोइडीस्[3] कहा जाता है। यह सदा हरित रहने वाला वृक्ष है। पुष्प श्वेत गुच्छ रूप के आते हैं। गुणों में दोनों समान हैं। लघु शोथ शमन में उत्तम है।

पाटलाद्वयम् (कुबेराक्षी-फलेरुहा)

परिचय—पाटला के वृक्ष आर्द्र स्थानों में सर्वत्र पाए जाते हैं। पुष्पों के अनुसार दो भेद है—लाल पुष्प पाटला, श्वेत पुष्प पाटला (मोक्षक)। व्यवहार में पंचांग विशेष कर मूल तथा उसकी त्वचा काम आती है।

रस—कषाय, तिक्त
वीर्य—समशीतोष्ण
विपाक—मधुर
दोष—त्रिदोषशामक
प्र० अं०—अन्त्र तथा वातसंस्थान
वि० गु० क०—वातकफव्याधिशामक, अनुलोमन, पुष्प शीतल-मूत्रल
नाम—(हि० पं० मा० म० गु०) पाढल, पाडल (बं०) पारुल (क०) पादरीमर (तै०) कालगोरुमादि

1. Metabolism.
2. Dropsy.
3. Clerodendron, Phlomoides, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(ता०) कामपू (वा० ले०) स्टिरिओस्पर्मम् स्वाविओलन्स्,[1] श्योनाक वर्ग[2]। काष्ठ पाटला को स्टिरिओस्पर्मम्[3] केलेनिओयड्स् कहते हैं।

गुण—पाटलातुवराऽनुष्णा तिक्ता दोषत्रयापहा। अरुचिश्वास शोफर्शः छर्दिहिध्मतृषापहा॥ (कै०)

पाटला कसैली, समशीतोष्ण, मधुर विपाकी, त्रिदोषहर, अरुचि, शोथ, अर्श, श्वास, वमन, हिचकी तथा प्यासशामक है।

पुष्प मधुर, कषाय, शीतल, रुचिकारक, रक्तस्राव तथा कफशामक है। फल, तिक्त, कषाय, मधुर, गुरु, शीतल, हिक्का, पित्तातिसार मूत्रकृच्छ्र रक्त पित्त तथा वातशामक है।

प्रयोग—यह दशमूल तथा वृहत् पंचमूल का अंग है। इनमें शूल या मूलत्वचा डालनी चाहिए। फूलों का रस मधु के साथ हिचकी में, पंचांग क्षार मूत्राघात में, काष्ठ पाटला अशक्तता तथा ज्वरों में लाभकारक है। क्वाथ से बनाया तैल दग्धव्रण, दाह तथा विस्फोट को मिटाती है। सब प्रकार की हिक्का में पाटला पुष्प रस मधु, स्वर्ण भस्म मिलाकर सेवन से लाभ होता है। मुष्पक क्षार बनाने के काम आता है। यह क्षार गुल्म आध्मान, उदरकृमि, बस्तिशूलादि का नाशक है।

बिल्वः (श्रीफलः, शैलूषः, गन्धगर्भा)

परिचय—सुपरिचित वृक्ष सर्वत्र उपलब्ध

व्य० अं०—पंचांग विशेषकर पत्र तथा फल

पुष्पकाल—वैशाख अवस्थानुसार गुणों में भेद

रस—मधुर, कषाय

वीर्य—उष्ण

विपाक—मधुर

दोष—वातकफशामक

प्र० अ०—आन्तें

वि० गु० क०—ग्राही आमवातशामक

नाम—(हि० पं० ब० म०) बेल (गु०) बीली (क०) बिल्वपत्रेमर (तै०) मारेडू (ता०) बिल्लम् (अं०) बेलफ्रूट[4] (वा० ले०) ईगल मार्मेलोस[5], हरमल-बिल्वादि वर्ग[6]।

गुण—बिल्वं सांग्राहिक दीपनीय वातकफ प्रशमननाम्। (च० सू० २५)

श्रीफलस्तुवरस्तिक्तो ग्राही रूक्षोऽग्निपित्तकृत्। वातश्लेष्महरं तस्य पत्रं संग्राहि वातजित्॥ (कै०)
कफानिलहरं तीक्ष्णं स्निग्धं संग्राहि दीपनम्। कटु तिक्त कषायोष्णं बालं बिल्वमुदाहृतम्॥
विद्यात्तदेव संपक्वंमधुरानुरसं गुरु। विदाहि विष्टम्भकरं दोशकृत् पूतिमारुतम्॥ (सु० सू० ४६)

बिल्व (त्वचा) फल, संग्राही, दीपन, पाचन, वातकफनाशक है। यह कसैला, कड़वा, रूक्ष, पित्त तथा अग्निवर्धक है।

बेल का पत्र संग्राही वातकफनाशक है। कच्चा फल कटु, तिक्त, कषाय रस, उष्णवीर्य, दीपन, स्निग्ध, संग्राही, वातकफनाशक तथा तीक्ष्ण है। पक्व फल मधुर, कषाय, अनुरस वाला, गुरु, विदाही, वातकारक, दुर्गन्धित,

---

1. Stereospermum suaveolens, De.
2. Bignoniaceae.
3. S. Chelonoides, De.
4. Bael Fruit.
5. Aegle marmelos, Corr.
6. Rutaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वायु उत्पादक तथा दोषकारक है। पुष्प वमन, तृषा, अतिसारनाशक है। बीजों का तैल अति उष्ण तथा उत्तम वातशामक है।

कांजी में साधित बिल्व उत्तम अग्निदीपक, हृद्य, रुचिकारक तथा आमवातनाशक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—मूल की छाल तथा मूल दशमूल और बृहत्पंचमूल का अंग है। यह वातरोग, हृदय की धड़कन, मानसिक उदासीनता, निद्रानाश में उत्तम है। विषमज्वरों में इसका काढ़ा उपयोगी है।

बिल्व का कच्चाफल (बेलगिरी-बिल्व पेशिका) का अधिकतर उपयोग होता है। संग्राही रक्तस्तम्भन होने से अतिसार, विशेषकर जीर्णातिसार, प्रवाहिका संग्रहणी में लाभदायक तथा अन्त्र और आमाशय की कला को बल देती है।

कच्चीगिरी को सात दिन तक तिल के तैल में रखें। इस तैल का अभ्यंग करने से हाथ-पैरों की जलन नष्ट होती है। कच्चा फल यदि सेक लिया जाए तो उत्तम ग्राही बन जाता है। पक्व फल का शर्बत दाह तथा पित्तातिसारशामक है। बेलगिरी को अधिक समय तक खाने से अर्श हो जाता है। किन्तु शर्करा में मिलाकर खाने से यह रोग नहीं होता। रक्तातिसार में बेलगिरी के चूर्ण की पर्याप्त मात्रा में कुछ अफीम मिलाकर देना लाभ करता है। रक्तस्राव एकदम बन्द होता है। बेलगिरी आम की गुठली, कत्था, बादामगिरी, ईसबगोल की भुस्सी, शर्करा समभाग मिलाकर सेवन करने से अतिसार नष्ट होता है। आमपाचनार्थ, बेलफल, सौंफ तथा त्वचा का चूर्ण उत्तम होता है।

बेलगिरी, नागरमोथा, जायफल, धनिया, लोध्र, अतिविषा, कालीपाठा, मोचरस समभाग (बिल्वादि चूर्ण) १-३ माशे की मात्रा में छाछ के साथ देने से रक्तातिसार, संग्रहणी, जीर्णातिसारशामक है। बिल्वसार बच्चों के अतिसार में अति उत्तम है। इसके बनाने की विधि—बेलगिरी ६ रत्ती, पलास का गोंद १ रत्ती, शर्करा दो रत्ती, सबको पीसकर जल के साथ मन्दाग्नि पर पकाएँ। जब चाटने लायक हो जाए तो पिला दें। जीर्णातिसारशामक है। कोष्ठबद्धता में बेलमूल २½ तोला का क्वाथ पिलाने से लाभ होता है। पका फल सारक होता है। इसमें थोड़ी-सी इमली शक्कर, कालीमिर्च, सैन्धानमक मिलाकर शर्बत-सा बनाकर पीने से पित्त के रोगों में लाभ होता है। यह विबन्धनाशक भी है। प्रतिश्याय तथा इन्फ्लुएंजा में बेलपत्रस्वरस लाभ करता है। पत्र रस काली मिर्चों के साथ पीने से मधुमेह में लाभ होता है। प्रवाहिका में तिल, कच्चे फल की गिरी, दहि तथा मधु मिलाकर खाने से लाभ होता है। वमन में छाल के काढ़े में मधु मिलाकर पिलाने से लाभ होता है। गर्भवती की वमन में फल की गिरी को पीसकर चावलों के पानी के साथ पिलाने से लाभ होता है।

योग—(१) बिल्वादिचूर्ण
(२) बिल्वादि अवलेह (रसादर्श)--प्रतिश्याय-पीनस-पाचनरोगहर
(३) बिल्वादि तैल-कर्णरोगहर

श्योनाकः (टिंटू, दीर्घवृन्तः, अरतुः)

परिचय—श्योनाक का उच्चवृक्ष सर्वत्र उष्ण प्रदेशों में पर्वतों पर प्राप्त।

व्य० अं०—मूल छाल, मूल

पुष्पकाल—चैत्र-बैशाख

रस—कषाय, तिक्त

वीर्य—शीत

विपाक—कटु

दोष—त्रिदोषशामक

प्र० अं०—त्वचा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वि० गु० क०--स्वेदल, आमवातहर

मात्रा--१०-२० रत्ती

नाम--(हि०) सोनपाठा, अरलु, टेंटू (बं०) सोना-नसोना (गु०) अरडसो, मरमप्य (म०) टेंटू (क०) हेम्मर (तै०) दुण्डिलमु (ता०) बांग अर्डन्तै (वा० ले०) ओरोक्सिलम् इण्डिकम्[1], बिगनोनिया इण्डिका[2], श्योनाक वर्ग[3]।

गुण—श्योनाक कटुकः पाके कषायातिक्तकोहिमः। संग्राही दीपनः कासश्लेष्मपित्तामवातजित्॥ (कैं०)

श्योनाक, कषाय, तिक्त, कास-श्वास, आमवात, बस्तिरोगहर, अरुचि तथा अतिसारनाशक है।

प्रभाव तथा प्रयोग—इसकी छाल उत्तम स्वेदल, वेदनाशामक स्तम्भक है। शोथ तथा वातप्रधान रोगों में विशेष हितकर है। अतिसार में मूलत्वक् का पुटपक्व स्वरस मोचरस के साथ देना चाहिए। सन्धिवात, सन्धिशोथ, आमवात की कोथ तथा वेदनानाशक है। १ तोला मूलचूर्ण का १० तोला जल में काढ़ा बनाकर सेवन करने से ज्वर तथा आमवात में पसीना आकर लाभ होता है। जीर्ण आमवात में एरण्ड तैल के साथ इसका काढ़ा देना चाहिए। पशुओं की पीठ पर के घाव में मूल तथा हल्दी पीसकर लगाई जाती है।

स्योनाक दशमूल का अंग है।

योग--वृद्ध गंगाधर चूर्ण जीर्णातिसार तथा संग्रहणी में ४-८ माशा की मात्रा में।

दुग्ध (क्षीरम्)

नाम—(हि० म० गु०) दूध (अं०) मिल्क।

गुण—प्रायशोमधुरं स्निग्धं शीतं स्तन्यं पयोमतम्। प्रीणनं बृंहणं वृष्यं मेध्यं बल्यं मनस्करम्॥
जीवनीयं श्रमहरं कास श्वास निबर्हणम्। हन्ति शोणितपित्तं च सन्धानं विहतस्यच॥
सर्वप्राणभृतां सात्म्यं शमनं शोधनं तथा। तृषाघ्नं दीपनीयं च श्रेष्ठं क्षीणक्षतेषु च॥
पाण्डुरोगाम्लपित्ते शोथे गुल्मोदरे तथा। अतिसारे ज्वरे दाहे श्वयथौ च विशेषतः॥
योनिशुक्रप्रदोषेषु मूत्रेषु प्रदरेषु च। पुरीषेग्रथितेपथ्यं वातपित्त विकारिणाम्॥
नस्याबलेपनावगाहेषु वमनास्थापनेषु च। विरेचने स्नेहने च पयः सर्वत्र प्रयुज्यते॥ (च० सू०)

दूध मधुर, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, प्रीणन, तर्पण, पौष्टिक, वृष्य, मेध्य, बल्य, मनोबलवर्धक, जीवनीय श्रमहर सब जीवों के लिए सात्म्य, शमन, शोधक, दीपन, आयुवर्धक, रसायन, बालवृद्ध-क्षत-क्षीण तथा सब प्रकार की निर्बलतानाशक है।

दूध श्वासकास रक्तपित्त, पाण्डुरोग, अम्लपित्त, शोथ, राजयक्ष्मा, धातुक्षय, उदर अतिसार, जीर्णज्वर, दाह, शोथ, योनि, गर्भाशय दोष, शुक्र रोग, मूत्र रोग, प्रदर, मल की गाँठों का बनना, वातपित्त रोग, मानसिक व्याधियाँ एवं अन्य सभी अंगों के रोगों में दिया जा सकता है। संक्षेप में यह सर्वोत्तम पथ्य तथा आहार है।

सायं की अपेक्षा प्रातःकाल का दूध अधिक गुरु, विष्टभि तथा शीतल होता है। क्योंकि रात्रि भर पशु चेष्टा न कर आराम करते हैं। दिन में सारे दिन फिरते रहते हैं। अतः व्यायाम, सूर्य, की धूप तथा खुली वायु के कारण सांयकाल का दूध हलका होता है। कच्चा ठंडा दूध अवगुण करता है। गरम हलका गुणकारक तथा अभिष्यन्द न

1. Oroxylum Indicum.
2. Bignonia Indica.
3. Bignoniaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

करने वाला होता है। धारोष्ण गुणकारक होता है। स्त्री दुग्ध ठंडा ही गुणकारक है। पकाकर गाढ़ा किया हुआ दूध (रबड़ी आदि) शीत, गुरु तथा बृंहण होता है। त्याज्य दूध अप्रियगन्ध वाला, रस, स्वाद तथा वर्ण बदला हुआ, अम्ल एवं किंचित् लवण रसवाला फटा हुआ अपथ्य है।

विभिन्न पशुओं के दूधों के गुण—गाय का दूध थोड़ा विष्टम्भि, स्निग्ध, गुरु, रसायन, उत्तम जीवनीय वात-पित्त के रोग तथा रक्तपित्तशामक है।

बकरी का दूध—गाय के समान गुणकारी, थोड़ा-सा कषाय रस वाला, शीतवीर्य, दीपन, लघु, संग्राही, श्वास, कास, अतिसार, ज्वर, रक्तपित्त तथा क्षयरोगियों के लिए विशेष हितकारक है। यह सब रोगों में दिया जा सकता है। मातृ दुग्ध के सर्वाधिक समीप है। किन्तु यदि बकरी भी एक ही स्थान पर बँधी रहे, व्यायाम न करे तो उसका दूध भी गुरु हो जाता है।

भेड़ का दूध—मधुर, स्निग्ध, गुरु, पित्त और कफवर्धक, केवल वातरोगों तथा वातिक कास में हितकर है।

भैंस (महिषी) का दूध—विशेष अभिष्यन्दि, मधुर, अग्नि को मन्द करने वाला, गाय की अपेक्षा शीतल, स्निग्ध, निद्रा लाने वाला है। तीव्र पाचकाग्नि वाले के लिए उत्तम है।

नारी का दूध—मधुर, थोड़ा कसैला, शीतल, जीवनीय, लघु, दीपन, सात्म्य, रक्तपित्त में नस्य, नेत्र रोगों में तर्पण तथा आश्च्योतन में पथ्य है।

गधी का दूध—मधुर, अम्ल, लवणानुरस, रूक्ष, गुरु, कास, श्वास तथा बालकों के रोगों का नाशक है।

नवनीत (हैयंगवीनम्-स्रक्षणम्)

नाम—(हि० पं० मा० गु०) मक्खन या माखन (हि०) नौनी (बं०) नौनी (म०) लोणी (अं०) बटर[1]।

गुण—नवनीतं पुनः सद्यस्कं लघु सुकुमारं मधुर कषायमीषदम्लं, शीतलं, मेध्यं, दीपनं, हृद्यं संग्राही, पित्तानिलहरवृष्यमविदाही क्षय कास व्रण शोथार्शोर्दितापहंच। क्षीरोत्थितं पुनर्नवनीतमुत्कृष्टस्नेहमाधुर्यमतिशीतं, सौकुमार्यकरं चक्षुष्यं संग्राही, रक्तपित्त नेत्ररोगहरं प्रसादनं च। (सु० सू० ४५)

दहि से निकाला हुआ ताजा मक्खन मीठा कुछ कसैला तथा खट्टा, लघु, शीतल, मेध्य, दीपन. हृद्य, संग्राही, वातपित्तशामक, वीर्यवर्धक, अविदाहि, क्षयकास, व्रण, शोथ, अर्दितशामक है। दूध से निकाला मक्खन अत्यन्त उत्तम स्नेह है, जो शीतल, चक्षुष्य संग्राही, रक्तपित्त तथा नेत्ररोगशामक है।

प्रयोग—मक्खन प्रायः औषधियों के अनुपान रूप में सेवन किया जाता है। यह जीवनीय पदार्थों में सर्वोत्तम है। रक्तातिसार में मक्खन मधु, शर्करा के साथ, रक्तार्श में रक्तस्राव बन्द करने के लिए नागकेसर ६ माशा मिलाकर, कंठ की खुश्की में (वत्सनाभादि के कारण या अन्य कारणों से) मिश्री के साथ, क्षय रोग में मधु, दूध आदि में मिला कर सेवन किया जाता है।

घृतम् (आज्यं-हविः, सर्पिः)

नाम—(हि० मा० गु० बं०) घी, घि (म०) तूप (अं०) घी[2], क्लेरीफाईड बटर[3]।

गुण—घृतंपित्तानिलहरं रस शुक्रौजसां हितम्। निर्वापणां मृदुकरं स्वरवर्णं प्रसादनम्॥ (च० सू० १३)
सर्व स्नेहोत्तमं सर्पिर्मधुरं रसपाकयोः। (च० सू० २७)

1. Butter.
2. Ghee.
3. Clarified Butter.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

घी वातपित्तशामक, शीतल, स्निग्ध, शरीर को मृदु करने वाला, रस वीर्य, ओजवर्धक, स्वर तथा वर्ण को उत्तम बनाने वाला, मेध्य, स्मृति, बुद्धि, अग्नि कफ तथा मेद (वसा) वर्धक तथा सर्वोत्तम स्नेह है।

प्रभाव प्रयोग—घी न केवल लघु तथा स्वयं पचनेवाला पदार्थ है, अपितु अग्निदीपन भी है। रूक्ष अन्न की अपेक्षा घी से स्निग्ध किया हुआ अन्न उत्तम सुपच भी है। खाने में वर्ष के अन्दर का घी तथा औषधियों में पुराना घी उत्तम है। जितना ही पुराना हो उतना ही अच्छा है। १० वर्ष पुराना घी "पुराण घृत" कहा जाता है। यह बहुत तेज, चरपरा (कटु) तथा सुगन्धित और लाख के वर्ण का हो जाता है। पानी में १०० या १००० बार धोया घृत (शतधौत-सहस्रधौत) मक्खन के समान सफेद तथा कोमल होता है। यह अत्यन्त शीतल, दाहशामक तथा व्रणशोधक, रोपक हो जाता है। वातिक वेदनाएँ, शून्यता, निश्चेष्टता, मस्तकपीड़ा, श्वासकास, आमवात में अंगों की जकड़ाहट, हाथ-पैरों में दाह तथा नेत्र रोगशामक है। घी नेत्र तथा मस्तिष्क के लिए उत्तम है। ताप दाह में इसका अभ्यंग किया जाता है। पुराण घी में हींग तथा सेन्धानमक मिलाकर सुंघाने से चातुर्थिक (चौथिया) छूट जाता है। विषों में दूध तथा घी मिलाकर पिलाते हैं। हिक्का में गुनगुना (कोष्ण) घी पिलाने से लाभ होता है। रक्तपित्त में गोबर रस में मधु, घी मिलाकर पिलाने से, स्वरभंग, शुष्ककास, प्रतिश्याय में काली मिर्च के चूर्ण के साथ खाने से, पाण्डु, कामला संग्रहणी में शुंठी सांधित घी, रक्तगुल्म में पलाशक्षार से बनाया हुआ घी, शीतपित्त में सैन्धानमक मिले घी से मालिश, रक्तपित्त में वासाघृत, अम्लपित्त, वातव्याधियां, रक्तपित्त श्वास, संतापादि में शतावरी घृत, मन्दाग्नि, जीर्णज्वर, परिणाम शूल में पिप्पलीघृत, श्वासकास, वातरोग, हृद्रोग गुल्म में घी १ सेर, उत्तम हरड़ ५०, काला नमक ८ तोला, जल चार गुना डालकर पाककर, सेवन करने से अतिलाभ होता है। हृदय रोगों में अर्जुनघृत, उदरविकारों में १ सेर घी में ८ तोला चित्रक कल्क, गोमूत्र २ सेर, जल ४ सेर डालकर पाक कर सेवन करें। भिड़ (बर्र तितैया) तथा मक्खी के विष, आग में जलने पर २१ बार धोया घी या शतधौतघृत का लेप लाभ करता है। पुराण घी अन्तः प्रयोग में नहीं आता। औषधिसिद्ध घृत की मात्रा १-२ तोला, शर्करा या दुग्ध या द्विगुण मधु के साथ सेवन करें। गोघृत सर्वोत्तम है।

नारिकेल (तृणराजः सदाफलः तुंगः)

परिचय—सुपरिचित वृक्ष तथा फल, जो समुद्रवर्ती प्रान्तों में, बम्बई, बंगाल तथा दक्षिण भारत में बहुत होता है। सदा ही फल देता रहता है। पंचांग का प्रयोग किया जाता है।

रस—मधुर
वीर्य—(रस) शीत, (गिरी) उष्ण
विपाक—मधुर
दोष—वातपित्तनाशक, कफवर्धक
प्र० अं०—सर्वशरीर, मूल संस्थान
वि० गु० क०—पौष्टिक, बृंहण; बस्तिशोधक, अम्लपित्त, आमाशय, व्रणशामक

नाम—(हि० पं० मा०) नारियल (बं०) नारिकेल (गु०) नालियेर (म०) माड़ (वृक्ष) फल नारेल (क०) तेंगिनमर (तै०) टंकाया (ता०) तेगाय (अं०) कोकोनट प्लान्ट[1] (वा० ले०) कोकस् न्यूसिफरा[2], नारिकेल वर्ग[3]।

गुण—नारिकेलं हिमं स्निग्धं स्वादुपाकरसं गुरु। तर्पणं प्रीणनं वृष्यं बृहणं बलमांसकृत्॥
विष्टम्भि दुर्जरं हृद्यं श्लेष्मलं बस्तिशोधनम्। दाहक्षत क्षय हरं वातपित्तासृङ् नाशनम्॥ (कैं०)

नारियल के विभिन्न अंगों के गुण विभिन्न हैं साधारणतः यह मधुर रसवाला शीतवीर्य, मधुर विपाकी,

1. Coconut Plant.
2. Cocos Nucifera, Linn.
3. Palmeae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्निग्ध, गुरु, पौष्टिक, मांसबलवर्धक, तृप्तिकारक, किन्तु दुर्जर तथा उदर में वात उत्पन्न करने वाला, हृद्य, कफवर्धक, मूत्रल, दाह, क्षतनाशक, वातपित्त तथा विकारशामक है।

फल का पानी शीतल, मूत्रल, दीपन, बल्य, प्यास-दाह, पित्तशामक, वृक्ष का रस (ताड़ी) उक्त गुणों वाला किन्तु मदकारक, किन्तु दोपहर तक रखने से खट्टा हो जाता है और पित्तकफ उत्पादक है। वायु और कृमिनाशक है।

नारियल की गिरी का रस (सफेद दूध) गरम पित्त तथा दाह उत्पादक, वायु, कफशामक, उष्ण, रोचक, कासशामक, मधुर विपाकी है।

तैल केशवर्धक, बल्य, मधुर, वातपित्तशामक और दन्त्य है। पुष्प रक्तपित्त, प्रमेह, रक्तातिसार, रक्तपित्त, सोमरोग नाशक है। शर्करा भी वातपित्तशामक है।

प्रयोग—चपटे कृमियों (व्रध्नकृमि) को मारने के लिए पुरानी गिरी ३ माशा की मात्रा में देते हैं। उन्हें निकालने के लिए दूसरे दिन एरण्ड तेल का विरेचन दिया जाता है।

कच्चा खोपरा (गिरी) निर्बलता, बालशोथ, प्रारम्भिक क्षयादि में पुष्टि तथा बलवर्धनार्थ दिया जाता है। मच्छी[1] के तैल की अपेक्षा यह उत्तम है। तैल भी पौष्टिक है। मात्रा १$\frac{१}{४}$ तोला दिन में ३ बार। बालशोथ में इसका अभ्यंग करना चाहिए। केशों के लिए अति उत्तम है। अतिसार में उपवास कराकर तैल को गरम कर शक्कर मिलाकर पिलाएँ। क्षीणता, अम्लपित्त, पित्ताशयशूल में फल का ताजा जल लाभ करता है। सब प्रकार की प्यास का शामक है। ताजी ताड़ी (नारियल वृक्ष का रस) गर्भवती को पिलाने से गर्भस्थ शिशु का रंग गोरा होता है। सूर्यावर्त में नारियल के पानी का नस्य ले तथा प्रसव के पश्चात् होने वाली गर्भाशय पीड़ा गिरी खाने से शान्त होते हैं। दूध पीने वाले बच्चे को शीतला का भय कम करने के लिए नारियल की गिरी सात दिन खिलानी चाहिए। नारियल फूलों का गुलकन्द (पुष्पखण्ड) बनाकर उसमें खस, सफेद चन्दन तथा कुछ जल मिलाकर पीने से पित्त ज्वर, अतिसार, प्रवाहिका मुखपाक और वमन मिटती है।

फल के बालों (ऊपर के भाग) को जलाकर भस्म को जल में घोलकर, निथारकर उस जल को पीने से हिक्का बन्द होती है तथा ६ माशा भस्म को १ तोला शक्कर में मिलाकर खाने से रक्तार्श का रक्तस्राव बन्द होता है। फल कपाल (सख्तभाग) का पातालयन्त्र द्वारा तैल निकाल (काला सा) कर दादादि, त्वचा रोगों में लगाया जाता है। अग्नि दग्ध पर नारियल तैल तथा चूने का पानी मिलाकर लेप लगाने से दाह शान्त होता है। वातिक कास में गिरी का दूध या गिरी खिलानी चाहिए। प्रसव के पश्चात् होने वाली पाण्डुता, निर्बलता तथा गर्भाशय शुद्धि के लिए नारियल की सिर की मज्जा, दालचीनी, पिप्पलीमूल, वचा, लौंग, इलायची, हीराबोल, मिलाकर ४-४ रत्ती की गोली बनाकर सेवन कराएँ दिन में तीन बार दूध के साथ। तथा पौष्टिक पदार्थ खाने को दें। आमाशय व्रण पक्वाशय शूल में नारियल का जल तथा क्षार उत्तम है।

योग—(१) नारिकेल पाक या खण्ड-मात्रा $\frac{१}{२}$-१ तोला, क्षय, मन्दाग्नि, रक्तपित्त, अम्लपित्तशामक है।
(२) नारिकेल लवण—१-३ माशा, परिणाम शूल, पित्ताशयशूल, अम्लपित्तनाशक।

भूम्यालकी (तामलकी-बहुफला)

परिचय—एक वर्षायु क्षुद्र वनस्पति

उ० स्थ०—वर्षा में सर्वत्र

व्य० अ०—पंचांग

पुष्पकाल—जुलाई-अगस्त

1. Cod Liver oil.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रस—कषाय, तिक्त, मधुर, रस

वीर्य—शीत

विपाक—मधुर

दोष—त्रिदोषहर

प्र० अं०—सर्वशरीर, वृक्क

वि० गु० क०—मूत्रल, स्वेदल, तिक्त

नाम—(हि० म० बं०) भुई आँवला (गु०) भोय आवली (वा० ले०) फाईलेन्थस् नेरुरी[1] या फा० युरिनेरिया वर्ग, एरण्डादि या दन्ती।

गुण—तामलकी हिमा । तिक्ता कषायामधुरा लघुः । रोपणी पाण्ड् पित्तास्र कफकुष्ठविषापहा ॥
जयेच्छ्वास तृषादाहहिध्मा कास क्षत क्षयान् ॥ (कै०)

भुई आमला, शीत, कड़वी, कसैली, मधुर विपाकी, लघु, व्रणरोपक, पाण्डु, पित्तकफ के रोग पित्त, कण्डु, विष श्वास, दाह, तृष्णा, हिक्का, कास, क्षय, क्षत, रोगनाशक है।

प्रयोग—कण्डु में पत्तों की पुल्टिस नमक मिलाकर लगाई जाती है। व्रणों का स्वरस से शीघ्र रोपण होता है। पत्तों का कल्क वेदनाशामक है। कामला में १½ तोला ताजी जड़ को दूध के साथ पीसकर छानकर दिन में २ बार पीते हैं। पंचांग का क्वाथ विषमज्वर में देते हैं। इससे शौच साफ होता है, पसीना आता है, नींद अच्छी आती है, ज्वर की वारी चली जाती है। यकृत्प्लीहा वृद्धि कम होती है। मूत्रल तथा शीतल होने से मूत्रकृच्छ्र, दाह, पूयमेह (सुजाक) में प्रातः-सायं दें। जलोदर में पंचांगक्वाथ से मूत्रवृद्धि होकर शोथ कम होती है। रक्त प्रदर अत्यार्तव में जड़ को पीसकर चांवलों के पानी (तण्डुलोदक) के साथ देने से रक्तस्राव बन्द होता है। ताजे पत्तों को कालीमिर्च के साथ पीसकर ३ माशा की मात्रा में देने से विषमज्वर शान्त होता है। पंचांग का क्वाथ पिलाने से मूत्रकृच्छ्र एवं बस्ति शोथादि मूत्र सम्बन्धी रोग मिटते हैं। पत्तों के हिम से कुल्ला करने से मुखपाक मिटता है। भूम्यामलकी चूर्ण की मात्रा ३½ माशा है।

माषः

नाम—(हि०) उड़द (पं०) माँह (म०) उड़ीद (गु०) अडद (अं०) ब्लैक ग्राम[2] (वा० ले०) फेजीओलस्[3] रेडियेटस या फे० राक्सवर्गीआ[4], शिम्बी वर्ग[5]।

गुण—माषो गुरुः स्वादुपाकः स्निग्धो रुच्योऽनिलापहः । स्रंसनस्तर्पणो बल्यः शुक्रलो बृंहणः परः ॥
गुदकीलार्दित श्वासपित्त शूलानि नाशयेत् ॥ (भाव०)

उड़द, मधुर, मधुर विपाकी, शीतवीर्य, उत्तम वातशामक, स्निग्ध, पौष्टिक, बलवीर्य तथा मांसवर्धक, अर्श अर्दित, परिणामशूलशामक है। ऊर्ध्वांग वात में सोंठ के साथ, आमवात में एरण्ड तैल के साथ, वाततन्तुओं की शक्ति बढ़ाने के लिए सफेद रत्ती के चूर्ण को मिलाकर दूध के साथ स्तन्यवर्धक, वायुरोगों में तलकर मक्खन के साथ, हिचकी में माषों के धूम्र की नस्य लाभ करती है। यह अत्यन्त वातशामक है।

योग—माष तैल—महामाष तैल अभ्यंग से वातरोगशामक है।

---

1. Phyllanthus Niruri, Linn. or P. Urinaria.
2. Black gram.
3. Phaseolus Radiatus, Linn.
4. Phaseolus Roxburghii.
5. Leguminoceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सिम्बितिका फलम् (शिचितिका फलम्)

नाम—(हि०) सेब (गु० म०) सफरचन्द (अं०) एप्पिल[1] (वा० ले०) पायरस् मेलस्[2], सेब वर्ग[3]। (सि० सूफ०)

परिचय—सेब का सुपरिचित वृक्ष हिमालय में काश्मीर, कुल्लु, शिमलादि में सर्वत्र उपलब्ध है। फल का ही उपयोग होता है। मधुर अम्ल तथा मधुराम्ल भेद से तीन प्रकार का होता है। गुणों में सब समान हैं।

गुण--कषाय मधुरं शीतं ग्राही सिम्बितिकाफलम्। (च० सू० २७)

सेबं समीर पित्तघ्नं बृंहणंकफकृद्‌गुरु। रसे पाके च मधुरं शिशिरं रुचिशुक्रकृत्॥ (भाव०)

सेब मीठा, कसैला, मधुर विपाकी, वातपित्तशामक, कफ, मांसवर्धक, ग्राही, रुचिकारक तथा वीर्यवर्धक है।

यह हृदय, आमाशय, यकृत् तथा मस्तिष्क को शक्ति देता है। शुष्क कास में उत्तम है। कुछ ग्राही होने से रक्तातिसार जीर्णातिसारादि में खिलाया जाता है। सेब का मुरब्बा उक्त रोगों तथा अन्य अंगों के रोगों में खिलाते हैं।

सीताफलम् (गंडगात्रं-कृष्णबीजम्)

नाम--(हि०) सीताफल, शरीफा (म० गु०) सीताफल (बं०) आता (अं०) कस्टर्ड-एप्पिल[4], सूगर एप्पिल[5], (वा० ले०) एनोना स्क्वेमोसा[6], सीताफल वर्ग[7]।

गुण—सीताफलं तु मधुरं शीतं हृद्यं बलप्रदम्। तर्पणं बृंहणं दाहरक्तपित्त मरुत्प्रणुत्॥ (भाव०)

सीताफल, मधुर, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, वातपित्तशामक, बलकारक, तृप्तिजनक, पौष्टिक, दाह, रक्तपित्त तथा वायुनाशक है। पत्र मधुमेहशामक है।

सीताफल सर्वत्र उपलब्ध सुपरिचित फल है। इसके बीजों को पीसकर सिर में लगाने से जुएँ भी मरती है। २-३ घण्टे जल से धोयें दुष्टव्रण के कीड़ों को नष्ट करने के लिए पत्रकल्क का लेप लगाया जाता है।

———

1. Apple.
2. Pyrus Malus, Linn.
3. Pomeae.
4. Custard Apple.
5. Sugar apple.
6. Anona Squimosa, Linn.
7. Anonaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रथम परिशिष्ट

आधुनिक वनस्पति विज्ञान के अनुसार द्रव्यों का वर्गीकरण

(Classification of Drugs According to Modern Botany)

इस परिशिष्ट में आधुनिक वनस्पति विज्ञान के अनुसार द्रव्यों का वर्गीकरण किया गया है। द्रव्यगुण शास्त्र के अनेक लेखकों ने अपने ग्रन्थों में द्रव्यों का क्रम नव्य वनस्पति शास्त्रानुसार रखा है। जहाँ केवल द्रव्यों का वर्णन मात्र करना हो, वहाँ यह क्रम उत्तम है। किन्तु निघण्टुशास्त्रीय औषध वर्णन में उनके स्वरूप की अपेक्षा गुणों पर अधिक बल दिया जाता है। चिकित्सा में इन्हीं की उपयोगिता अधिक है। अतः हमने उद्भिज शास्त्रीय क्रम न अपना कर कर्मगुणानुसार क्रम इस ग्रन्थ में अपनाया है। पाठकों की ज्ञान वृद्धि के लिए तथा ग्रन्थ परिपूर्णतार्थ नव्य वनस्पति शास्त्रानुसार यह वर्गीकरण भी ग्रन्थ में समाविष्ट किया गया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वानस्पतिक वर्गीकरण के अनुसार आयुर्वेदिक द्रव्यों की सूची

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
सपुष्पोद्भिद् (श्रेणी)		Phanerogamia.
आवृतबीज (उपश्रेणी)		Angiosperma.
द्विबीजपत्रक (वर्ग)		Dicotyledons.
		Ranunculaceae
वत्सनाभादि गण (जातियाँ ४०, उपजातियाँ ७०० भारत में उपलब्ध १६३)		Genera, 40. Species 700, (163 found in India)
कण्डीर (वनधान्यकम्)	जंगली धनिया	Ranunculus Scleratus, Linn. (Indian Butter cup, Crow foot.)
पीतरंगम्	पीला रांगा, पीली जड़ी	Thalictrum Foliolosum. D. C.
पीतमूला	ममीरा	Coptis Teeta, Wall
मूर्वा	मूर्वा	Clematis Triloba, Heyne.
क्षुद्रा मूर्वा	छोटी मूर्वा	Clematis Gouriana. Rox.
निर्विषा	निर्विषी, जद्वार	Delphinium Denudatum. wall (5,000. ft.)
वत्सनाभ	वछनाग, मीठा	Aconitum Ferox, wall. (15,000 fts.)
वत्सनाभ भेद	तेलिया, सफद वछनाग	Aconitum Nepallus, var, Hook.
शृंगी विष	मोहरी (कश्मीरे)	Aconitum Chasmanthum, staff.
अतिविषा	अतीस	Aconitum Heterophyllum, wall.
कल्वान्जिका	कलौंजी, मंगरेला	Nigella Sativa, Linn.
कृष्ण कटुकी	काली कटुकी	Heleborus Nigrum, Linn.
त्रायमाणा	त्रामण	Delphinium Zalil, Aitch et Hemsi.
उदसलीव	उदसलीन	Paeonia Emodi, wall.
प्रतिविषा	निखमा, वख्मा	Aconitum Palmatum, wall.
भव्यादिगण		*Dilleniaceae*. (*G*. 16. *S*. 400)
भव्यम्	बहुवार	Dillenia Indica, Linn,
भव्य भेद	,, भेद	Dillenia Speciosa, Thumb.
चम्पकादि गण		*Magnoliaceae* (*G*. 7, *S*. 70, *Indian* 36.)
सुवर्ण चम्पकः	चम्पा	Michelia Champaka, linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
स्थल कमल:	बादियाने खटाई,	Illicium Anisatum, lour. (Star Anise)
चम्पक	धूली चम्पा	Magnolia Grandiflora, Bull.
सीताफल गण		*Annoniaceae*. (*G*. 82, *S*. 820, *Indian* 129.)
सीताफल	सीताफल	Annona Squamosa, linn. (Custard Apple).
रामफल	रामफल	Annona Reticulata, linn. (Bullock's Heart).
हरित चम्पक	हरा चम्पक	Artabotrys Odoratissimus, B. Br.
कटाशोक	खोटा अशोक	Polyalthia Longifolia, B & R. (The Mast Tree)
गुड्च्यादि गण		*Menispermaceae*. (*G*. 65, *S*. 350)
छिन्नरुहा (गुडूची)	गिलोय	Tinospora Cordifolia, Miers.
कपोत पदी	कलंब की जड़	Jatrorhiza Calumba, Miers.
कलम्ब भेद	कलंब भेद	Jatrorhiza Palmata, Lam.
पाताल गरुड़ी (छिलहिण्ट)	वासनवेल, छिरहटा जल जमनी	CoccolusVillosus, Dc. Cascinium Fenestratun, Colebr.
वल्लिहरिद्रा	वेल हल्दी	Anamirta Cocculus, Wight & Arn.
काकमारी	काकमारी	Anamirta Paniculata, Colebr.
लघुपाठा	पाठ	Cissampelos Pariera, Linn.
महापाठा	बड़ा पाठा	Cissampelos Hexendra, Rox.
दारुहरिद्रादिगण		*Berberidaceae*. (*G*. 12, *S*. 200.)
दारुहरिद्रा	दारुहल्दी	Berberis Asiatica, Rox. (4,000 to 12,00 Ft.)
,, भेद	,, भेद	Berberis Aristata, Dc.
,, भेद	,, भेद	Berberis Lycium, Royle.
गिरिपर्पटः, वनवृन्ताकः	पाप्रा, ब न बैंगन	Podophyllum Emodi wall. (Podophyllum . . .7.000 ft.)
पद्मादि गण		*Nymphoeaceae*. (*G*. 8, *S*. 5.)
पुण्डरीकः	सफेद कमल	Nymphoea Alba, Linn.
कोकनद, रक्तोत्पल	लाल कमल	Nymphoea Lotus, Hook. (Water Lily)
नीलोत्पल	नीलकमल	Nymphoea Rubra, Rosb.
इन्दीवर	नीलोफर	Nymphoea Stellata, Wild,
पद्म कमल	पद्म, कमल	Nymphoea Speciosum, Wild.
मखान्न	मखाने	Euryale Feerox, Salish.
अहिफेनादि गण		*Papaveraceae*. (*G*. 28, S. 600, *Indian*–45.)
अहिफेन	अफीम	Papaver Somniferum, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
अहिफेन भेद	अफीम लाल	Papaver Rhoeas, Linn.
स्वर्णक्षीरी	सत्यानाशी	Argemone Mexicana, Linn. (Prickly Poppy)
पर्पटादि गण		*Fumariaceae.* (*G.* 7, *S.* 260)
पर्पट	पितपापड़ा	Fumaria Parviflora, Lam.
क्षेत्र पर्पट, यवन, पर्पट	पित पितपापड़ा भेद	Fumaria Officinalis, Linn.
भूतकेशी	भूतकेसो	Corydalis Govananiana, Wall. (8,000 to 10,000)
राजिदाकादि गण		*Cruciferaceae.* (*G.* 200, *S.* 1900 *Indian*–1178.)
सिद्धार्थक	पीली सरसों	Brassica Alba, Linn.
तुवरी	काली सरसों (तरा)	Brassica Nigra, Linn & Koch. (Black Mustard)
राजिका	राई	Brassica Juncea, H. F. & T. (Mustard)
शलजम	शलगम, शलजम	Brassica Campestris, Linn (turnip)
गोभी	फूलगोभी	Brassica Oleracea, Linn. (Cabbage, Cauliflower)
वनसर्षप	खूबकला	Sisymbrium Irio, Linn (Hedge Mustard)
चन्द्रशूर	चन्सूर, हालो	Lepidium Sativus, Linn (Garden Cress)
तोदरी	तोदरी	Lepidium Iberis, Linn.
मूलक	मूली	Raphanus Sativus, Linn. (The Radish)
वरुणादि गण		*Capparidaceae.* (*G.* 40, *S.* 450, *Indian*, 165)
वरुण	वरना, वायवरणा	Crataeava Religiosa, H. & F.
आदित्यभक्ता (पीत पुष्प)	हुरहुर, हुलहुल	Cleome Viscosa, Linn.
तिलपर्णी सुवर्चला (श्वेतपुष्पा)	,, ,, (सफेद)	Gynandropsis Pentaphylla, DC.
करीर	टेंट करील	Capparis Aphylla, Roth.
काकादनी (गृध्र नखी)	कंधारी	Capparis Sepiara, Linn.
व्याघ्रनखी	बगनाहा गोविन्दफल	Capparis Zeylanica, Linn.
वनप्सिकादि गण		*Violaceae.* (*G.* 21, *S.* 450)
वनप्सिका	वनफ्शाह	Viola Odorata, Linn. (7,000 Ft.)
,, भेद	,, भेद	Viola Cinora, Boises,
,, भेद	,, भेद	Viola Serpens, Wall.
सिन्दूरी गण		*Bixaceae.* (*G.* 3, *S.* 6.)
सिन्दूरी	सिन्दूरिया	Bixa Oraliana, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लॅटिन नाम
तुवरकादिगण		*Flacourtiaceae.*
प्राचीनामलक	पानी आमला	Flacourtia Cataphracta, Roxb.
विकेतन	कंटाई-वंज	Flacourtia Romantchi, L. Herit. (3,000 Ft.)
कटुकवत्थ, तुवरक	चाल मोगरा	Hydnocarpus Wightiana, Blume.
,,	,, भेद	Taractogenos Kurzuii, King.
,, भेद (वंगीय)	,, भेद	Gynocardia Odorata, R. Br.
लोणिकादिगण		*Portulaceae.* (*G.* 17, *S.* 225.)
बृहत्लोणिका	कुल्फा बड़ी नौनियाँ	Portulaca Oleraceae, Linn. (The Purse Lane.)
लघुलोणिका	,, छोटी ,,	Portulaca Quadrifida, Linn.
लोणिका भेद	लोनिया शाक भेद	Portulaca Tuberosa, Roxb.
झाबुकादि गण		*Tamaricaceae.* (*G.* 5, *S.* 100)
झाबुक	झाऊ	Tamarix Calica, Linn. Tamarix Articulata. Vahl. Tamarix Dioica, Roxb.
नागकेशरादिगण		*Guttifereae.* (*G.* 40, *S.* 650.)
नागकेशर	नागकेशर	Mesua Ferrea, Linn.
तमाल वृक्ष (कंकल)	कंकुल तमाल	Garcinia Morella, Desk. (The Gambose Tree.)
वृक्षाम्ल	कोकम	Garcinia Indica, Choia.
पुन्नाग	सुल्तान चांपा	Calophyllum Inophyllum, Linn. (Alexandrian Laural.)
शालादि गण		*Dipterocarpaceae.* (*G.* 25, *S.* 350)
शाल: (सर्ज:)	साल (राल का पेड़)	Shorea Robusta, Gaertn.
काष्ठतैल:	गर्जन जयन	Dipterocarpus Turbinatus, Geartn.
कर्पूर: जावाद्वीपाया:	बरास काफूर	Dryobalanopes Aromatica, DC.
सर्ज:	सफेद डामर, चन्द्रस	Vateria Indica, Linn.
कार्पासादि गण		*Malvaceae.* (*G.* 35, *S.* 700, *Indian*, 111.)
बला महाबला	खरैंटी, वरियारा सहदेवी, खरैंटी, भेद	Sida Acuta, Barm. Sida Carpinifolia, Var, Sida Rhombifolia, Var.
खरयष्टिका	बला भेद	Sida Cordifolia, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
नाग बला	नाग बला	Sida Spinosa, Linn.
अतिबला	कंघी	Abutilon Indicum, Sw, Hert, Brit. (Indian Mallow)
रेषा खतमी	रेषा खतमी	Althaea Officinalis, Linn. (The Marsh Mallow.)
खब्बाजी	खब्बाजी	Malva Sylvestris, Linn.
सौवर्चल शाकः	सौचल शाक	Malva Rotundifolia, Linn.
,, भेद	,, भेद	Malva Parviflora, Linn.
लता कस्तूरी	मुरकदाना	Hibiscus Abelmoschus, Linn. (The Musk Mallow.)
भिण्डी	भिण्डी	Hibiscus Esculentus, Linn. (Ladies Finger.)
जपा	जासुद गुड़हल	Hibiscus Rosa-Sinensis, Linn. (Chinese Rose, Shoe flower)
गर्दभाण्डः कपीतनः	पारस पिप्पल	Thespesia Populvea, Soland.
भारद्वाजी, वनकर्पासः	जंगली कपास	Thespesia Lampas, Dalz & Gibs. (Tulip, Portia Tree.)
देवकार्पासः	नर्मा	Gossypium Arboreum, Linn. (American Cotton)
कार्पासः	कपास	Gossypium Herbaceum, Linn. (Indian Cotton)
बालक (ह्रीबेर)	सुगन्ध बाला	Pavonia Odorata.
शाल्मली आदि गण		*Bombacaceae*. (*G*. 22. *S*. 150.)
रक्त शाल्मली	लाल सोवर (सेंमल)	Bombax Malabaricum, DC. (Silk Cotton Tree)
श्वेत शाल्मली	सफेद सेंमल	Eriodendron Anfractuosum. DC. (Opak Tree White Cotton Tree)
गोरक्ष कर्कटी	गोरख इमली	Adansonia Digitata, Linn.
मुचुकुन्दादि गण		*Sterculiaceae*.
आवर्तकी (आवर्तफला)	मरोड फली	Helicteres Isora, Linn. (Screw fruit plants)
वनवाताम	जंगली बादाम	Sterculia Foetida, Linn. (Bastard Poon Tree.)
मुचुकुन्दः	मुचकुन्द	Pterospermum Suberifolium, Lam.
बन्धूकः	गुलदोपहरिया	Pentapetea Phoonicea, Linn.
पीवरी	उलट कम्बल	Abroma Augusta, Linn.
परुषकादि गण		*Tilliaceae*. (*G*. 35, *S*. 380.)
परुषकम्	फालसा	Grewia Asiatica, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
गांगेरुकी	गंगेरन	Grewia hirsuta
धन्वन	धामन, धामिन	Grewia Tilliaefolia, Linn.
कालशाकः	सन, नरिचा	Corchorus Capsularis, Linn. (Jute Fibre Plant.)
बहुकली	बाकली	Corchorus Antichorus, Raeusch.
अतस्यादि गण		*Linaceae*. (*G*. 9, *S*. 250.)
अतसी	अलसी, तीसी	Linum Usitatissimum, Linn.
हरिचन्दन	खोटा चन्दन	Erythroxylon Monogynum. (Bastard Sandal.)
माधवीलता गण		*Malpighiaceae*. (*G*. 56, *S*. 800.)
माधवी	मदवल्ली, माधवी	Hiptage Madablota Gaertn.
,, भेद	,, भेद	Hiptage Bengalensis., Linn.
गोक्षुरादि गण		*Zygophyllaceae*. (*G*. 22, *S*. 160.)
लघु गोक्षुरु	छोटा गोखुरू	Tribulus Terrestris, Linn.
,, ,, भेद	,, ,, भेद	Tribulus Alatus, Del.
धन्वयास	धमासा	Fagonia Arabica. Linn,
चांगेरी गण		*Oxalidaceae*. (*G*. 7, *S*. 85.)
चांगेरी	खट्टी तिपतिया	Oxalis Corniculata, Linn. (Indian Sorrel.)
कर्मरंग	कमरख	Averrhoa Carambola, Linn. (Goose Berry.)
गुले मेंहदी	गुले मेंहदी	Impatiens Balsamina. Linn.
जम्बीरादि गण		*Rutaceae*. (*G*. 100, *S*. 800, *Indian* 71.)
सुद्दाबः	सिताब, सिताप	Ruta Graveolens, Linn. (The Common Rue.)
कटभी (हरमल)	हरमल	Pagonium Harmala, Linn. (The Syrian Rue.)
तुम्बुरुः (तेजोवती वृक्ष)	नेपाली धनिया	{ Zanthoxylum Alatum, Roxb. { Zanthoxylum Rhesta, DC.
कैडर्यः (मधुरनिम्ब)	मीठा नीम	Murraya Koeninguli, Spreng. (Curry Leaves.)
बिल्व पत्री	छोटा बिल्व	Limonia Acidissima, Linn.
अरवी जम्बीर	जंगली जम्बीर	Limonia Crenulata, Roxb.
नागरंगम्	नारंगी-सन्तरा	Citrus Aurantium, Linn.
बीजपूरक	बिजौरा निम्बू	Citrus Medica, Linn. (The Citron.)
जम्बीर (मातुलुंग)	जम्बीरी निम्बू	Citrus Limonum, Linn. (The Lemon.)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
निम्बुकम्	कागजी निम्बू	Citrus Acida, Linn. (The Sour Lime.)
मधुर जम्बीर	मीठा निम्बू	Citrus Limeta, W & A. (The Sweet Lime.)
महानिम्बुक	चकोतरा	Citrus Decumana, Murr. Citrus Maxima. (The Pomelo, Shaddock.)
कपित्थ	कैथ	Feronia Elephantum, Corr. (Elephant Apple.)
बिल्व	बेल	Aegle marmelos.
इंगुद्यादि गण		*Simaroubaceae.* (*G.* 28, *S.* 125.)
इंगुदी	हिंगोट	Balanites Roxburghii, Pl, Anch.
महावृक्ष	अर्श	Ailanthus Excelsa, Roxb.
गुग्गुल्वादि गण		*Bursseraceae.* (*G.* 13, *S.* 350.)
गुग्गुलु	गुगल	Basamodendron Mukul, Hook.
बोल	बोल, मुरमुकी	Balsamodendron Myrrha.
शल्लकी (वृक्ष) निर्यास कुन्दुरु	सालई	Boswellia Serrata, Roxb.
निम्बादि गण		*Meliaceae.* (*G.* 40, *S.* 600.)
निम्ब	नीम	Azadirecta Indica, A. Juss. (The Margosa Tree.)
महानिम्ब	बकायन	Melia Azadirech, Linn. (Persian Lilac, Bead Tree.)
रोहीतक (वंगीय)	रोहेड़ा	Amoora Rohitaka, W. & A. (Bastard Cedar.)
रोहिणी	रोहण	Soymida Febrifuga, Adr & Juss.
तून	तून	Cedrela Toona. (Indian Mahogany Tree.)
प्रियंगु	प्रियंगु	Aglia Odoratissima, Blume.
ज्योतिष्मती गण		*Celastraceae.*
ज्योतिष्मती	माल कंगनी	Celestrus Paniculatus, wild.
बदरादि वर्ग		*Rhamnaceae.*
कोलबदर: (महा बदर)	झड़बेर	Zizyphus Jujuba, Lamk.
बनबदर	उन्नाव	Zizyphus Vulgaris, DC.
कर्कन्धु, क्षुद्र बदर:	छोटा बेर	Zizyphus Microphylla Roxb.
द्राक्षादि वर्ग		*Vitaceae.* (*G.* 11, *S.* 450.)
द्राक्षा	शुष्क-दाख, मुनक्का	Vitis Venifera, Llnn. (The grapes)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
अस्थिसंहार	हाडजोड	Vitis Quadrangularis, wall.
अमृत स्रवा	हरित अंगूर	Vitis Latifolia, Cke. Roxb.
वनद्राक्षा	जंगली द्राक्षा	Vitis Trifolia, Cke.
मोथापदी	गिद्दर दाख	Vitis Pedata, Vahl, Ex. wall.
काक जंघा	काक जंघा	Leea Hirta, Roxb.
अरिष्टकादि गण		*Sapindaceae.*
अरिष्टक:	रीठा	Sapindus Trifoliatus, Linn. Sapindus Laurifolia, Vahl. (The Soap-nut Tree)
कोशाम्र:	कोसम	Schleichera Trijuga, Wild.
लिची	लीची	Nephelium Litchi, Camb.
आम्रादि गण		*Anacardiaceae.* (*G.* 60, *S.* 500)
आम्र	आम	Mangifera Indica, Linn. (The Mango)
मुंकूलक	पिस्ता	Pistaecia Vera, Linn.
कर्कट श्रृंगी	काकड़ा सिंगी	Pistacia Integrima, Stewart. (The Galls)
थूनराज, मस्तगी	रुमी मस्तगी	Pistacia Lentiscus, Linn.
श्रृंगी भेद	काकड़ा श्रृंगी भेद	Rhus Succedanea. Linn. (Crab's claw)
तिन्तिडीक:	समाकदाना, रेतुङ्ग	Rhus Parviflora Roxb.
काजु:	काजू	Anacardium Occidentale, Linn. (The Cashew nut)
प्रियाल:	चिरौंजी, बियार	Buchnania Latifolia, Roxb.
जिंगणी	जिंगेन	Odina Woodier, Roxb. (2,000 to 3,000 ft.)
भल्लातक:	भिल्लातक: (भिलावा)	Semecarpus Anacardium, Linn. (The Marking Nut Tree.)
आम्रातक:	अम्बाड़ा	Spondias Mangifera, Wild. (The Indian Hog Plum)
शिम्बी गण		*Leguminoceae.* (*G.* 10, *S.* 1,200. *Indian*, 867.)
अपराजितादि उपगण		*Sub-Order*, *Papilonaceae.*
अपराजिता	कोयल, अपराजिता	Clitoria Ternatea. (Butterfly Pea)
शणपुष्पी	बनसन, झीझनिया	Crotalaria Verrucossa, Linn.
बनमेथिका	जंगली मेथी	Crotalaria *S*ervecea (The rattle wort)
शण	सन	Crotalaria Burhia, Hamilt. Crotalaria Juncea Linn. (Indian hemp.)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
मेथिका	मेथी	Trigonella-Foenum Graecum, Linn (Fenugreek Seed.)
सेजि	सेंजी	Melilotus Parviflora, Desf.
गुवारिका बाकुची (सोमराजी)	गुबर, बकुची बावची, बकुची	Melilotus Psoraliodes.
नीलिनी	नील	Indigofera Tinctoria, Linn (The Indigo)
शरपुंखा	सरफोंका	Tephrosia Purpurea, Pers.
अगस्त्य	अगथिया हथिया	Sesbania Grandiflora, pers.
जयंती	जयंती, जैंत	Sesbania Egyptica, Poir.
जया	जया	Sesbania Aculeata, Pers.
यवासक	जवासा	Alhagi Maurorum, baker. (The Manna)
पृष्णिपर्णी	पिठवण	Uraria Picta, Desv. Uraria Lagopoides, DC, Prodr.
मूंगफली	मूंगफली	Arachis Hypoglea, Linn. (The Ground Nut)
तिनिशः	तिवस, तिरिच्छ	Eugeinea Dalbergioides, Benth.
शालपर्णी	सरिवन	Desmodium Gengesticum, DC. Prodr.
गुंजा (रत्तिका)	रत्ती, घुंघची	Abrus Precatorius, Linn.
चणक	चने, छोले (पं०)	Cicer Arientium, Linn. (Common Gram)
त्रिपुटी	कसेरी, खेसारि	Lathyrus Sativus, Linn. (Chokling Vetch.)
माषपर्णी	मषवन	Teramnus labialis, Spreng.
मुद्गपर्णी	मुंगवन	Phaseolus Trilobus, Ait.
मुद्गः	मूंग	Phaseolus Mungo, Linn. (Green Gram)
माष	उड़द, उरद	Phaseolus Radiatus Linn. (Black gram.)
राजमाषाः	लोविया, राजमाह (पं०)	Vigna Catiana, Walp. (Black Gram)
कपिकच्छु	कौंच, केवांच	Mucuna Pruriens, Back (Cowage)
पारिभद्रः	फरहद	Erythrina Indica, Lam (Coral Tree)
पलाशः	ढाक, टेसु (पुष्प)	Butea Frondosa, Koening et Roxb. (Parrot Tree, Flame of Forest)
लता पलाश	ढाक की बेल	Butea Superba, Roxb.
विदारी कन्द	सिंथाली	Pueraria Tuberosa, DC. Prodr.
कुलत्थ	कुलथी	Dolichos Biflorus, Linn. (Horse Gram, Country Beans.)
आढ़की	अरहर, तोर	Cajanus Indicus, Spreng.
शिंशपा	शीशम	Dalbergia Sissa, Roxb. (Indian Red wood) Dalbergia Latifolia, Roxb.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
नक्तमाल	करंज वृक्ष	Pongamia Glabra, Vent.
रक्तचन्दन	लाल चन्दन	Pterocarpus Santalinus, Linn.
बीजकम्	विजयसार	Pterocarpus Marsupium, Roxb.
यष्टिमधु	मुलैठी, गुलहरी	Glycyrrhiza Glabre, Linn. (Liquorice.)
करञ्जादि उपगण		*Sub-Order—Caesalpineae* (*B*)
		(125 Species found in India)
कंटकी करंज	करञ्जुआ-कंजा	Caesalpinia Bonducella, Flemming (Fever Nut)
पत्तंग	बकमकाष्ट	Caesalpinia Sappan, Linn.
घृतकरंजः	वाकेरी मूल	Caesalpinia Digyna Rotal.
आरग्वध	अमलतास	Cassia Fistulla, Linn. (Indian Laburnum)
कासमर्द	कसौंदी	Cassia Occidentalis, Linn. (Negor Coffeae)
तरवटः (चर्मरंग)	तरवड	Cassia Auriculata, Linn.
कासमर्द	काली कसौंदी	Cassia Tora, Linn.
चक्रमर्दः	पंवाड, चकवड	Cassia Obtusifolia, Linn.
,, भेद	,, भेद	Cassia Alata, Linn. (Ring Worm Shrub)
चाक्षुष्य	चाकसू (चवरसिः)	Cassia Absus, Linn.
स्वर्ण पत्रिका	सुधा, सोनामुखी	Cassia Obovata, Linn.
मार्कण्डिका	सनायपत्री	Cassia Augustifolia, Vahl, Symb, (Senna Leaves)
अशोकः	अशोक	Saraca Indica, Linn.
अम्लिका (चिंचा)	इमली	Tamarindus Indicus
रक्त कांचनार	लाल कचनार	Bauhinia Purpurea, Linn.
,, भेद	,, भेद	Bauhinia Tomentosa, Linn. Bauhinia Racemosa, Linn.
कोबिदार	कोबिदार	Bauhinia Variegata, Linn.
लता कोविदारः	कचनार की बेल	Bauhinia Vahlii W. & A.
श्वेत कचनार	सफेद कचनार	Bauhinia Alba.
बब्बूलादि उपगण		*Sub Order—Mimocaceae* (*C*)
लज्जालु	छुईमुई, लाजवन्ती	Mimosa Pudica, Linn (Sensitive Plant)
शमी	छोका, छिकुंर	Prosopis Sypecigera, Linn.
बेल्लतरु	जण्ड (पं०)	Mimosa Cinerea, W. & A.
बब्बूलः	बबूल, कीकर	Acacia Arabica, Wild. (Gum Tree)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
बब्बूल (विदेशी)	विलायती कीकर	Acacia Farnesiana, Wild.
श्वेत बब्बूल	सफेद बब्बूल	Acacia Leucophloea, Wild.
खदिर	खैर	Acacia Catechu, Wild, W. & A.
,, भेद	,, भेद	Acacia ferruginea, DC. Prdur.
शतपत्रादि गण		*Rossaceae*, (*G*. 100, *S*. 2,000.)
शतपत्री (तरुण)	गुलाब	Rosa Damascanna, mill. (The Rose.)
,, (श्वेत)	सेवन्ती, सफेद गुलाब	Rosa Alba, Linn. (White Rose.)
वातामम्	बादाम	Prunus Amygdalus, Baillon. (The Almond)
तिक्तवाताद	कड़वा बादाम	Prunus Amara, DC.
गन्ध प्रियंगु	गन्ध प्रियंगु	Prunus Mahaleb.
आरुकम्	आड़ू	Prunus Persica, Stokes.
अरुभाण	खुरमानी, जर्दालु, खुर्मानी	Prunis Armanica, Linn. (Appricot.)
वाताद भेद	बादाम भेद	Prunus Dulcis, DC.
पत्रकाष्ठ	पदमाक पद्माख	Prunus Pudum, Roxb. (5,000 to 7,000 ft.)
आलूचा	अलूचा	Prunus Communis, Hudson, (The Pulm.) Prunus Domestica, Linn.
आलुबोखारा	आलुबोखारा	Prunus Insititiata, Schneud. (Bokhara Pulm.)
रतन ज्योति	रतन ज्योत	Potentilla Nepalensis, Hook.
बिट्टी	बिट्टी दाना	Cydonia Vulgaris, Oers.
लोकाट	लोकाट	Eriobotrya Japanica., Lindle.
अमृतफलं, टंकं (नाशपाती)	नाशपाती, नाक (पं०)	Pyrus Communis, Linn. (The Pear.)
सितिम्बितिका (सेब)	सेब	Pyrus Malus, Linn. (The Apple.)
शोभांजनादि गण		*Moringaceae*. (*G*. 1, *S*. 3.)
शिग्रुः (शोभांजन)	सोंहाजना	Moringa Pterygospermum, Gaertn. (Drum Stick, Indian Horse Radish)
कटु शिग्रुः	सहिजना	Moringa Concanensis, Nimbo.
पाषाणभेदादि गण		*Saxifragaceae*. (*G*. 90, *S*. 750.)
पाषाण भेद	पखान भेद पठान गंदी (पं०)	Saxifraga Ligulata, Engle.
पर्णबीजादि गण		*Crassulaceae*. (*G*. 25, *S*. 450)
पर्णबीज	पत्थर चट, पाथर चूर	Bryophyllum Calcycinum, Salisb.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
हिमसागर	जख्मे हयात, हिमसागर	Calachoe Pinnata, Pers. Kalanchoe Lacinata, DC.
हरीतक्यादि गण		*Combrataceae*. (*G*. 16, *S*. 480.)
हरीतकी	हैड, हर्र, हरड़े	Terminalia Chebula Retz. (Chebulic Myrobalan)
,, भेद	,, भेद	Terminalla Citrina, Flemming.
विभीतक	बहेड़ा	Terminalia Belerica, Roxb. (Beleriana Myrobalan.)
वनवाताद	जंगली बादाम	Terminalia Catappa, Linn.. (Wild Almond)
अर्जुन	अर्जुन, कोह, कदू	Terminalia Arjuna, W. & A., Prodr.
असन	एन, अयन	Terminalia Tomentosa, W. & A.
धव	धोया, धब	Anogeissus Latifolia, Wall.
लवंगादि गण		*Myrtaceae*. (*G*. 90, *S*. 2,800, *Indian* 116.)
लवंग	लौंग	Eugenia Caryophyliata, T. & W. (The Malayalian Clove)
जम्बू	जामुन	Eugenia Jambolana, Lam.
राज जम्बु	राज जामुन	Eugenia Operculata, Roxb.
क्षुद्र जम्बु	गुलाब जामुन	Eugenia Jambos, Linn. (Rose Apple.)
मदयन्तिका (विदेशी)	विलायती मेंहदी	Myrtus Communis, Linn.
पालेवत (श्वेत)	अमरूद (सफेद)	Psidium Guava, Linn. (White)
पालेवत (रक्त)	,, (लाल)	Psidium Pomiferum, Linn. (The Red guava)
हिज्जलम्	समुद्र फल	Barringtonia Racemosa, Roxb.
,, भेद	,, भेद	Barringtonia Acutangulata, Gaertn.
कुम्भीः	कुम्भी	Careya Arborea, Roxb.
तैलपर्णी	युकेलिप्टस्	Eucalyptus Globulus, Labill.
मदयन्तिकादि गण		*Lythraceae*. (*G*. 21, *S*. 500.)
मदयन्तिका	मेंहदी	Boswellia Alba, Lamk.
धातकी	धाय के फूल	Woodfordia Floribunda, Salisb.
दाड़िमादि गण		*Puniceae*.
दाडिम	अनार, दाडिम	Punica Granatum, Linn. (The Pomegranate.)
शृंगाटक गण		*Onamraceae*. (*G*. 45, *S*. 500.)
शृंगाटक	सिंघाड़ा	Trapa Bispinosa, Roxb. (Water Chestnut.)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
सप्तचक्रादि गण (चिल्लकादि गण)		*Samydaceae*. (*G*. 67, *S*. 17.)
सप्तचक्रा (चिल्लक)	चिल्लर छोटा	Casaeria Graveolens, Dalz. Casaeria Esculenta, Roxb.
चिल्लकः	चिल्लर वेरि	Casaeria Tomentosa, Roxb.
एरण्ड कर्कटी गण		*Cariaceae*.
एरण्ड कर्कटी	पपीता	Carica Papaya, Linn.
कर्कटी आदि गण		*Cucurbitaceae*. (*G*. 90, *S*. 750, *Indian*, 87.)
महाकाल (रक्त इन्द्रायण)	लाल इन्द्रायण	Trichosenthes Palmata, Roxb.
पटोलः	कड़वा परवल	Trichosenthes Dioica, Roxb.
तिक्त पटोलः	जंगली ,,	Trichosenthes Cucumerina, Linn.
,, पटोलः (मद्रासी)	,, ,,	Trichosenthes Perviflora, Linn.
चिचिण्डः	चिचोड़ा	Trichosenthes Anguina, Linn. (Snake Gourd.)
तिक्तालाल, कटुतुम्बी	कड़ूतुम्बी, कड़वी लौकी	Lagenaria Vulgaris, Servince. (Bottle Gourd.)
इक्ष्वाकु	कौडतुम्बी (पं०)	Luffa Echinata, Roxb.
जीमूतक (देवदाली)	बंदाल, घघर वेल	Luffa Aegyptiaca, mill.
धामार्गव (महाकोशातकी)	घिया तोराई	Luffa Acutangula, Clarke (Ribbed Gourd.)
कृतवेधन (राजकोशातकी)	घिया तोराई	,, ,,
तिक्त कोषातकी	कड़वी तोराई	Luffa Amara, Clarke.
कूष्माण्डः	पेठा, कुम्हड़ा	Beniscassa Cerifera, Savi. (The White melon, Wax Melon.)
कारवेल्लक	करेला	Momordica Charantia, Linn. (Bitter Gourd.)
बन्ध्या कर्कोटकी	बांझ ककोड़ा	Momordica Dioica, Roxb.
		Momordica Cochinchinensis, Spreng.
कट इन्द्रवारुणी	झूठी इन्द्रायण	Cucumis Trigonus, Roxb. (False Colocynth.)
दशांगुलम्	खरबूजा	Cucumis Melo, Linn. (The Musk Melon.)
कर्कटी	ककड़ी	Cucumis Utilissimus, Roxb.
त्रपुसम्	खीरा	Cucumis Momordica, Duthie.
एर्वारुः	फूट	Cucumis Sativus, Linn. (The Cucumber.)
चिर्मटः	चिम्मड़	Cucumis Pubescens, Roxb.
शिवलिंगी	शिवलिंग	Bryonopsis Laciniosa, Naud.
इन्द्रवारुणी	इन्द्रायण	Citrullus Colocynthis, Schrad. (Bitter Apple.)
कालिन्द	तरबूज	Citrullus Vulgaris, Schrad. (Water Meleon.)
तिण्डिश	टिंडा, टेडस	Citrulius Fistulosus, D. & Lama.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
काशीफल	काशीफल, लाल कद्दू	Cephalandra Indica, Naud.
बिम्बी	कुन्दरु, कंदरी	Cucurbita Pepo, Linn & DC
नागफण गोत्र		*Cactaceae*. (*G*. 15, *S*. 15,000.)
कंथारी (नागफण)	नागफणी	Opuntia Dillenii, H. & W.
छत्रक गण (मण्डूकपर्ण्यादिगण)		*Umbelliferaea*. (*G*. 200, *S*. 2,700, *Indian*, 180.)
कृष्णाजाजी	काला जीरा	Carum Carvi, Linn. (Caraway.)
कृष्णजीरक	,, भेद	Carum Bulbcastanum, B. & H. (Celery.)
अजमोदा	अजमोदा	Carum Copticum, B. & H. (Bishop's Seed, Omum Seed.)
यवानी	अजवायन	Apium Graveolens, Linn.
अजमोदा भेद	वन अजमोद	Seseli Indicum, W & A.
अजगन्धा (वनयवानी)	,, अजवायन	Peucedanum Graveolens, B. & H.
मिश्रेया	सोया	Anethum Graveolens, (Dill Seeds.)
शतपुष्पा	सौंफ	Foeniculum Vulgare.
जीरक	सफेद जीरा	Cuminum Cyminum, Linn. (Cumin Seeds.)
धान्यकम्	धनिया	Corriandrum Sativum, Linn. (Corriander.)
गर्जर	गाजर	Daucus Carota, Linn.
हिंगुपत्री, (बाफली)	हिंगुपत्री	Ferula Foeatda, Boiss. (Asafoetida.)
ब्राह्मी मण्डूकपर्णी	ब्राह्मी	Hydrocotyle Asiatica, Linn. (Pennywort.)
अंकोठ गण		*Alangiaceae*. (*G*. 1, *S*. 22.)
अंकोठ	ढरा	Alangium Lamarkii, Thw, Enum.
मंजिष्ठादि गण		*Rubiaceae*. (*G*. 450, *S*. 5,500.)
कदम्ब	कदम	Anthocephalus Cadamba, Miq.
क्षेत्रपर्पट	दमन, पापड़ा	Oldenlandia Corymbosa, Linn.
सर्पाक्षी	सरहटी	Ophiorrhiza Mungos, Linn.
धारा कदंबः (हरिद्र वृक्ष)	हल्दु करभ	Adina Cordifolia, Benth & Hook.
पिण्डालु	पिण्डालु	Randia Uliginosa, DC. Prdr.
मदनफल	मैनफल	Randia Dumetorum, Lamk.
नाड़ी हिंगु	डोका माली	Gardinia Gummifera, Linn.
,, भेद	,, भेद	Gardinia Lucida, Roxb.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
बन्धूक पुष्पः	बन्धुरिया	Ixora Grandiflora, Linn.
गन्धप्रसारिणी	परसन, गन्ध परसन	Paederia Foetida, Linn.
मंजिष्ठा	मंजीठ	Rubia Cordifolia. Linn.
किंकिणी	सिन्कोना (कुनैन का वृक्ष)	Cinchona Officinales, Linn. Cinchona Calysaya, Wedd.
बुन्दः	कहवा, काफी	Coffea Arabica, Linn.
जटामांस्यादि गण		*Valerianaceae*. (*G*. 8, *S*. 350.)
उदीच्यं (ह्रीबेर)	सुगन्धबाला	Valeriana Wallichii, DC. (Indian Velarian.)
,, भेद	,, भेद	Valeriana Offlcinalis, Linn. (Valerian Rhizome.)
ग्रन्थितगर	तगर भेद	Valeriana Hardwickii, Wall.
जटामांसी	बालछ, जटामांसी	Nardostachys Jatamansi, DC.
भृंगराजादि गण		*Compositae*. (*G*. 900. *S*. 1,300, *Indian* 696.)
ब्रह्मदण्डी	ब्रह्मदण्डी	Lamprachaenium Microcephalum, Benth.
सोमराजी (अरण्य जीरक)	कालीजीरी	Vernonia Anthelmintica, Wild. (Purple Fleabane.)
सहदेवी	सहदेवी, सादैय्या	Vernonia Cinera, Less. (Fleabane)
वनगोजिह्वा	वनगाजवान	Elephantus Scaber, Linn.
अयापान	अयापान	Eupatorium Ayapana, DC.
कुकुन्दरः (गंगापत्री)	कुकरौंधा	Blumea Lacera, DC.
पत्ररास्ना	पत्ररास्ना	Pluchea Lanceolata. CB., Clarke, coup.
मुण्डीतिका	मुंडी गोरख मुण्डी	Sphaeranthus Indicus, Linn. (globe Thistle.)
पुष्करमूल	पुष्करमूल, पोहकर मूल	Inula Racemosa, Hook.
हिलमोचिका	हुरहुर	Enhydra Fluctuans, Lour.
भृंगराज	भृंगराज	Eclipta Alba, Hasek.
,, भेद	,, भेद	Eclipta Erecta, Linn,
पीत भृंगराज	पीली भांगरा-हुलि	Wedelia Calundulacea, less.
शंखाहुलि	शंखाहुलि, अन्धाहुलि	Xanthium Strumarium, linn.
दुग्धफेनी	वरन, कानफूल, दीपक	Taraxacum Officinale, Weber. Dendion,
अकरकरा	अकरकरा	Anacyclus Pyrethrum.
कूटाकारकरभ	खोटा अकरकरा	Spilanthes Oleracea, CB.
शेवंती	गुलेदाअदी	Chrysanthum Indicum, Linn.
बाबूना	बाबून्हा, बाबूना तुलोवे (का)	Matricaria Chamomila. Linn. (The Shamomile)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
छिकनी (क्षवक)	नक छिकनी	Centipida Orbucularis, Lour. (Sneeze weed.)
दमनक	दमनक, अपसन्तीन	Artemisia Maritima, Linn.
,, भेद	,, भेद भातजरी	Artemisia Vulgaris, Linn. (Indian Worm Wood.)
,, भेद	,, भेद	Artemisia Persica, Boiss.
,, (विदेशी)	अपसन्तीन	Artemisia Absinthium, Linn.
,, ,,	दवना, दौना	Artemisia Sieaversiana, wild.
आदित्यभक्ता	सूरजमुखी	Hellianthus Annus, linn. (Sun Flower.)
कासनी	कासनी	Cichorium Intybus, linn (The Cinchory.)
उष्ट कटंक	उटकटेरा	Echinops Echinatus, Roxb.
कुष्ठ	कुठ, कूठ (कड़वा)	Sausurea Lappa, Clarke. (The Costus Root, 8,000 to 13,000 fts.)
धूपवृक्ष	धूपवृक्ष	Jurinea Macrocephala, Benth.
कुक्कुरच्छदी भेद	गंगापत्री भेद, कुकरौंधा	Blumea Balsemifera, DC.
मूषाकर्णी	चूहाकानी	Brychyramphus Sonchfolius.
तालीसपत्रादि गण		*Ericaceae*. (*G*. 50, *P*. 1,350)
तालीसपत्र	तालीसपत्र	Rhododendron Anthopogon, D. Doh. (10,000 to 14,000 fts)
बारास	बुंरास	Rhododendron Arborium. SM. (7,000 fts.)
चित्रकादि गण		*Plumbagineae*. (*G*. 10, *S*. 280.)
श्वेतचित्रक	सफेद चीता, चित्रक	Plumbago Zeylanica, Linn.
रक्त चित्रक	लाल चीता	Plumbago Rosea, Linn.
कृष्ण चित्रक	काला ,,	Plumbago Capensis, Thumb.
बिडंगादि गण		*Myrsineae*. (*G*. 35, *S*. 1000.)
विडंग	बायविडंग	Embelia Ribes, Burm.
,, भेद	,, भेद	Embelia Robusta, C. B. C.
मधुकादि गण		*Sapotaceae*.
चीकू	सफेद चीकू	Achras Sapota, Linn.
मधूक	महुआ	Bassia Latifolia, Roxb.
जलमधूक	जल महुआ	Bassia Longifolia, Roxb.
राजादन, क्षीरणी	खिर्नी	Mimusops Elengi, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
बकुल	मौलसिरी, बरसडी	Mimusops Hexendra, Roxb.
तिन्दुकादि गण		*Ebenaceae*. (*G*. 7. *S*. 320.)
तिन्दुक (कृष्ण)	तेंदू, तेंदुआ	Diospyrus Embryopteris, Pers.
तिन्दुक भेद	तेंदू भेद	Diospyrus Montena, Roxb.
लोध्रादि गण		*Symplocaceae*. (*G*. 7, *S*. 350.)
लोध्र	लोध्र, लोचर	Symplocos Crataegoides, Ham.
लोध्रभेद	पठानी लोध्र (पं) लोध्र भेद	Symplocos Racemosa, Roxb.
पारिजातादि गण		*Oleaceae*. (*G*. 21, *Sp*. 400.)
मल्लिका	बेला, मोगरा, मोतिया	Jasminum Sambac. Ait, H. & Kew.
कुन्दः	कुन्द	Jasminum Pubescens, Roxb.
माल्लती	वनमालती	Jasminum Arborescens, Roxb.
वसन्ती (वनमल्लिका)	,,	Jasminum Angustifolium, Vahl, Enum.
जाति	चमेली	Jasminum Grandiflorum, Linn. (Jasmine.)
यूथिका	जुही, जाई	Jasminum Humile, Linn.
पर्वतीय मालती	जंगली चमेली	Jasminum Officinale, Linn. (Common White Jasmine.)
पारिजात	हरसिंगार	Nyctanthes Arbor-Tristis, Linn. (Night Jasmine.)
तैलपर्णी	जंगली जैतून	Olea Cuspidata, wall, cat. (Wild Olive.)
पीलवादि गण		*Salvadoraceae*.
पीलु	पीलु, वणजाल (पं०)	Salvedora Persica, Linn.
पीलु भेद	,, भेद	Salvedora Oleoides, Decne.
कुटजादि गण		*Apocynaceae*. (*G*. 180, 1,400, *Indian*, 84)
करमर्द	करौंदा	Carissa Carandas Linn.
सर्पगन्धा	धवल, बरुआ, चंदमसा	Rauwolfia Serpentina, B. & K.
क्षीरचंपक	गुलेचिन	Plumea Acutifolia, Poir. (Pagoda Tree, Life Tree.)
सप्तपर्ण	सतौना, छतिवन	Alstonia Scholaris, R. Br. (Devil Tree, Ditta Tree.)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लेटिन नाम
कुटज (श्वेत) (गिरि-मल्लिका)	कुड़ा, करैय्या (श्वेत)	Holarrhena Antidysentrica, wall. (The Easter Tree.)
कृष्णकुटज	काला कुड़ा	Wrightia Tinctoria, R. Br.
मधुर कटज	मीठा कुड़ा	Wrightia Tomentosa Roem & Schue.
नन्दीवृक्ष, ग्रन्थितगर	चांदणी	Tabernaemontana Dichotoma, Roxb.
करवीर	कनेर	Nerium Odorum, Soland. (The Oleander)
करवीर भेद	कनेर भेद	Nerium Indicum.
पीत करवीर	पीली कनेर	Thevetia Nerifolia, Juss et Steud. (Yellow Oleander.)
श्यामलता	कालिसारिवा, काली सर	Ichnocarpus Fructescens, R. Br.
अर्कादि गण		*Asclepiadeae*. (*G*. 320, *S*. 1,700, *Indian* 234.)
सारिवा	अनन्तमूल	Hemidesmus Indicus, R. Br. (Indian Sarsaparilla.)
अर्क (राजार्क)	आक, आकड़ा	Calotropis Gigantea, R. Br.
अलर्कः	सफेद आक	Calotropis Procera, R. Br.
अर्कपुष्पी	अम्बर वेल	Pentatropis Spiralis. Dcne.
मेषश्रृंगी	मेढ़ाशिंगी, गुड़मार	Gymnema Sylvestris, R. Br.
जीवन्ती	जीवन्ती, होरी	Leptidania Reticulata. W. & A.
कारस्करादि गण		*Loganiaceae*. (*G*. 35, *S*. 350.)
विषमुष्टि	कुचला	Strychnos Nux Vomica, Linn.
कतक	निर्मली बीज	Strychnos Potatorum, Linn.
किरातकादि गण		*Gentianaceae*. (*G*. 80, S. 8000.)
कुटूकी	नीलकंठी (पं) करु	Gentia Kurroa, Royle.
किरात तिक्त	चिरायता	Swertia Chirata, Ham.
,, भेद	,, भेद	Swertia Paniculata, Wall.
,, दक्षिणी	,, भेद	Swertia Angustifolia, Ham.
मामज्जकः	छोटा चिरायता	Swertia Affinis, C. B. Clarke, Blume.
श्लेष्मातकादि गण		*Boragineae*. (*G*. 100, *S*. 1,800.)
श्लेष्मातक	लसुड़ा, लिसोडा	Cordia Myxa, Roxb.
लघु श्लेष्मातक	,, ,, भेद	Cordia Obliqua, Wight.
,, भेद	,, ,, भेद	Cordia Rothii, Roem & Schult.
गोजिह्वा	गाजवान, काजवान	Onosma Braeteatum, Wall. (Found in Kashmir.)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
त्रिवृतादि गण		*Convulvulaceae*. (*G*. 50, *S*. 1,000, *Indian* 177.)
शंखपुष्पी भेद	प्रसारण	Convolvulus Arvensis, Linn.
त्रिवृत्	निशोथ, त्रिवित (पं)	Ipomea Turpethum, R. Br. Operculina Turpethum, Enum.
मूषाकर्णी	चूहा कानी	Ipomea Remiformis.
वृद्धदारुकम	विधारा, समुद्र शोष	Argyreia Speciosa, Sweet.
कृष्ण बीज	काला दाना	Ipomea Hederacea, Jacq.
विष्णुकान्ता	काम लता	Ipomea Quamoclit, Linn.
विदारीकन्द	विलाई कंद, भूई कुम्हड़ा	Ipomea Digitata, Linn. Ipomea Paniculta, R. Br.
मधुरालुकम्	शकरकन्दी	Ipomea Batatas, Poir. (Sweet Potato.)
नारी शाक	कलमी शाक	Ipomea Aquatica, Forsk.
शंखपुष्पी	शंखपुष्पी, शंखाहुलि	Evolvulus Alsinoides, Linn.
रुद्रवती	रुद्रवन्ती, रुदन्ती	Cressa Cretica, Linn.
अमरवल्ली	अमरवेल	Cuscuta Reflexa, Roxb. (The doddor)
कण्टकार्यादि गण		*Solanaceae*. (*G*. 72, *S*. 1,500.)
काकमाची	मकोय	Solanun Nigrum, Linn. (Black Night Shade.)
क्षुद्रा	कटेरी, भटकटैय्या	Solanum Indicum, Linn.
बृहती	बन वैंगन, बनभांटा	Solanum Xanthocarpum, S & W.
वार्ताकु	बैंगन	Solanum Melongena, Linn. (The Brinjal.)
आलुकम्	आलु	Solanum Tuberosum, Potato.
रक्त मरिच	लालमिर्च, लंका मिर्च	Capsicum Prutescens, Linn. (Chillies)
पर्वतीय रक्त मरिच	बड़ी मिर्च	Capsicum Grossom, Wild. (Bull Pepper)
क्षुद्रग	छोटी मरिच	Capsicum Minimum, Roxb.
अश्वगन्धा	असगन्ध	Withania Somnifera, Dunal. (Winter Cherry.)
काकनण	पनीर	Withania Coagulans, Dunal.(Cheese Maker.)
रक्तवृन्ताक	टमाटर	Lycopersicum Exculentum, Mill (Love Apple, Tomato.)
सूची	बेलाडोना	Atropa Belladonna, Linn. (Deadly Night Shade.)
धत्तूरः	पहाड़ी धतूरा	Datura Stramonium, Linn. (Thorn Apple.)
कृष्ण धतूर	काला धतूरा	Datura Fastuosa, Linn.
श्वेत धतूर	सफेद ,,	Datura Alba, Ness.
दक्षिणी धतूर	भेद ,,	Datura Metal, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
पारसीक यवानी	खुरासानी अजवायन	Hyoscymus Niger, Linn. (The henbane,)
ताम्रकूट	तम्बाकू	Nicotina Tabacum, Linn.
तिक्तादि गण		*Scrophulariaceae.* (*G.* 200, *S.* 2,600.)
कटुकी	कुटकी, कौड (पं)	Picrorrhiza Kurroa, Benth. (6,000 to 7,000 ft.)
जल निम्बः	जल ब्राह्मी	Herpestis Moniera, H. B. & K.
हृत्पत्री (तिलपुष्पी)	राम सिटा	Digitalis Purpurea, Linn. (Fox Globe.)
वनताम्रकूटः	वनतम्बाखू- गिदर तम्बाखू	Verbascum Thapsus, Linn. (Great Mullcin.)
स्योनाकादि गण		*Bignoniaceae.* (*G.* 100/*S.* 800.)
स्योनाक	अरलु, टेटु, सोनापाठा	Oroxylum Indicum, Vent.
रोहीतक	रोहेडा	Tecoma Undulata, G. Don.
रक्त पाटला	लाल पाढल	Stereospermum Suaveolens, DC.
श्वेत पाटला	सफेद पाढल	Stereoaspermum Chelnoides, C. B. & Clark.
तिलादि गण		*Pedialiaceae.* (*G.* 14, *S.* 45.)
तिल	तिल	Sesamum Indicum, Linn.
कुष्टक (पीत)	बड़ा गोखरू	Pedalium Murex.
वासादि कुल		*Acanthaceae.* (*G.* 240, *S.* 20,000. *Indian* 514.)
सैरेयक	कटसरैय्या, पियावांसा	Barleria Prionitis, Linn.
कालमेघ	कल्पनाथ, कालमेघ	Andographis Paniculata, nees.
वासा	बांस, अडूसा, बसूटी	Adhatoda Vasica, nees.
कृष्ण वासा (मद्रास)	काला बासा	Gratophyllum Hortense, nees.
नील भिण्डी	नील भिण्डी	Barleria Cristata, Linn.
कृष्ण ,,	काली ,,	Barleria Strigosa, Wild.
पित पापड़ा	पित पापड़ा	Justicia Procumben, Linn.
उटंगण	उटिंगण	Acanthedium Hirtera.
अग्निमन्थादि वर्ग		*Verbenaceae.* (*G.* 70, *S.* 750.)
शाक वृक्ष	सागौन, सागवान	Tectona Grandis, Linn. (Teak Wood.)
गणिकारिका	गणियारी	Premna Integrifolia, Linn.
गम्भारी	गंभारी	Gmelina Arborea, Roxb.
कृष्णगंभारी	काली गंभारी	Gmelina Asiatica, Roxb.
सिन्दुवारः	सम्भालु	Vitex Trifolia, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
निर्गुण्डी	नील निर्गुण्डी	Vitex Negundo, Linn.
भण्डार:	भाण्ट	Clerodendron Infortunatum, Linn.
अरणी (बृहत्)	अरणी	Clerodendron Phlomidis, Linn.
भारंगी	भारंगी, वाभनलाटी	Clerodendron Siphonanthus, R. Br.
भारंगी भेद	,, भेद	Clerodendron Serratum, Spreng.
तुलस्यादि गण		*Labiatae*. (*G*. 200. *S*. 3,000.)
तुलसी (कृष्ण)	तुलसी (काली)	Ocimum Sanctum, Linn. (The Holy Basil)
,, (श्वेत)	राम तुलसी (श्वेत)	Ocimum Gratissimum, Linn.
बर्वरी	वन तुलसी	Ocimum Basilicum, Linn. (Sweet basil.)
अर्जक	तुलसी भेद	Ocimum Canum, Sims (Hoary Basil.)
पूतिहा	पिपरमेंट, पोदीना	Mentha Piperata, Linn.
,, भेद	,, ,, भेद	Mentha Viridis, Linn.
,, भेद	,, ,, भेद	Mentha Sylvestris, Linn.
मरुबक	मर्वा, मरुआ	Origanum Marjorana, Linn. (Sweet Marjorana.)
द्रोण पुष्पी	गुम्मा	Leucas Cephalotus, Spreng.
मिजान जोश	मीजान जोश	Leucas Vulgare, Linn.
उस्तखुद्दूस	उस्तखुद्दूस	Lavandula Stoechas, Linn.
वनयवानी	वन अजवायन	Thymus Serpyllum, Linn.
जूफा	जूफा	Hyssopus Officinalis, Linn.
मलंग बीज	मलंजा	{ Ajuga Bracteosa, Wall. Coleus Amboinicus, Lour.
अश्वकर्णादि गण		*Plantageneae*. (*G*. 3, *S*. 203.)
अश्वकर्ण:	ईसबगोल	Plantago Major, Linn.
,, भेद	,, भेद	Plantago Ovata, Forsk.
,, भेद	,, भेद	Plantago Isubgola, Forsk.
रक्तपुनर्नवा गण		*Nyctaginaceae*. (*G*. 20, *S*. 160.)
रक्त पुनर्नवा	सांट, लालविसखपरा	Boerhavia Diffusa, Linn.
,, भेद	,, भेद	Boerhavia Repens, Linn.
तण्डुलीयकादि गण		*Amaranthaceae*. (*G*. 72, *S*. 700.)
तण्डुलीयक (कंटकी)	कांटा चौलाई	Amarantus Spinosus, Linn. (Fox Tail.)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
तण्डुलीयक (अकंटक)	चौलाई	Amarantus Polygamus, Wild.
मारिष	मर्सा, मरषा	Amarantus Peniculatus, Linn.
अपामार्ग	चिरचिटा, जलजीरा	Achyranthes Aspera, Linn. (Prickly Chaff Flower.)
श्वेत मयूर शिखा	सफेद मुर्गा, सुर्वाली	Celosia Argentea, Linn.
मयूर शिखा	सफेद मुर्गा भेद	Celosia Cristata, Linn. (Cock's Comb.)
वास्तुकादि गण		*Chenopodiaceae*. (*G*. 75, *S*. 500.)
वास्तूक	बथुआ	Chenopodium Album, Linn.
पालंकी	पालक	Spinacia Oleracea, Linn. (Spinach.)
उपोदिका (रक्त)	पोई शाक लाल	Baselia Rubra, Linn.
,, (श्वेत)	,, सफेद	Baselia Alba, Linn.
क्षुद्र लोणिका	छोटी नौनिया	Sueda Fructicosa, Forsk.
रक्तगर्जर, चुकन्दर	चुकन्दर	Beta Vulgaris, Linn.
चूकादि गण		*Polygonaceae*. (*G*. 40. *S*. 450.)
अंजवार	अंजवार	Polygonum Viviparum, Linn.
पीतमूला (अम्लपर्णी)	रेवन्दचीनी, रेवन्द खटाई	Rheum Emodi, Wall.
,, भेद	,, भेद	Rheum Accumintum, H. K., F & T.
चुक्र	चूका	Rumex Vesicarous, Linn.
वन पालकी	वन पालक	Rumex Maritimus, Linn. (Sorrel, Bladder Dock.)
ईश्वरी गण		*Aristolochiaceae*. (*G*. 5, *S*. 300.)
ईश्वरी	ईसर मूल, इसगोल	Aristolochia Indica, Linn.
कीटमारी	कीड़ामारी	Aristolochia Bracteata, Retz.
पिप्पल्यादि गण		*Piperaceae*. (*G*. 7, *S*. 1,150.)
कणा	पीपल, पीपरी, मघा (पं)	Pipper Nigrum, Linn.
चव्य	चाब, चब	Piper Chava, Hunter.
ताम्बूल	पान	Piper Betle, Linn.
मरिच	काली मिर्च, गोल मिर्च	Piper Longum, Linn.
कंकोल	शीतल चीनी	Piper Cubeba, Linn.
जातिफलादि गण		*Myristicaceae*. (*G*. 1, *S*. 85.)
जातिफल	जायफल (जंगली)	Myristica Malabarica, Lamk-
,,	,,	Myristica Fragrans, Houth.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
तमालपत्रादि गण (कर्पूरादिगण)		*Lauraceae.*
तमालपत्र	तमालपत्र, तेजपत्र	Cinnamomum Tamala, Fr. Nees.
वनत्वक्	तेजपात	Cinnamomum Obtusifolium, Nees.
दारुसिता	तज, दालचीनी	Cinnamomum, Iners, Reinw. (Wild Cinnamon.) Cinnamomum Zeylinicum, Breyn.
कर्पूर	कपूर, काफूर	Cinnamomum Camphora, Nees.
अमरबेल (आकाशवल्ली)	आकाश बेल	Cassytha Filiformis, Linn.
अगुरु गण		*Thymelicsaceae.* (*G.* 38, *Sp.* 550.)
अगुरू	अगर	Aquilaria Agalocha, Roxb.
चन्दनादि गण		*Santalaceae.* (*G.* 26, *S.* 250)
श्वेत चन्दन	सफेद चन्दन	Santalum Album, Linn. (Sandal Wood.)
स्नुह्यादि गण		*Euphorbiaceae.* (*G.* 220, *Sp.* 4000, *Indian*, 444.)
स्नुही (सेहुण्ड:)	थोहर, सेहुंड	Euphorbia Neriofolia, Linn. (Milky Hedge)
,, पंचकोणी	पंचकोणी, थोहर	Euphorbia Ligularia, Roxb.
,, त्रिकोणी	त्रिकोणी थोहर	Euphorbia Antiquorum, Linn. (Triangular Spurge.)
बृहद्दुग्धिका (नागार्जुनी)	लालदुधि, बड़ी दोधक	Euphorbia Pilullifera, Linn.
क्षुद्रदुग्धिका	छोटी दुधि	Euphorbia Thymifolia, Linn.
आमलकी	आमला	Phyllanthus Emblica, Linn.
भूम्यामलकी	भुई आवला	Phyllanthus Niruri, Linn.
पुत्रंजीव	जिआपोता	Putranjiva Roxburghii, Wall.
द्रवन्ती	पहाड़ी जमालगोटा	Jatropha Curcus, Linn. (Purging Nut.)
निकुम्भी (दन्ती)	लाल एरण्ड	Jatropha Glandulifera, Roxb.
जयपाल	जमालगोटा	Croton Tiglium, Linn.
वनाक्षोट	जंगली अखरोट	Aleurites Moluccana, Willd.
एरण्ड	रेंडी, एरण्ड	Ricinus Communis, Linn.
लघुदन्ती	छोटी दन्ती	Baliospermum Axillare, Blume.
कम्पिलक	कंमीला, कंबीला	Mallotus Philippinensis, Muell, Arg. (Monkey Face Tree.)
हरितमंजरी	कुप्पी	Acalypha Indica, Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
वटादिगण (क्षीरीवर्ग)		*Urticaceae*. (*G*. 110, *Sp*. 1,500)
वटः	बड़, बरगद	Ficus Bengalensis, Linn.
अश्वत्थ	पीपल	Ficus Religiosa, Linn.
नन्दीवृक्ष	बेलिया, पिप्पली	Ficus Retusa, Linn.
उदुम्बर	गूलर	Ficus Olomerata, Roxb.
प्लक्ष	पाखर, पाकर	Ficus Infectoria, Roxb.
काकोदुम्बर	कठूमर, कठगूलर	Ficus Hispida, Linn.
फल्गु	अंजीर	Ficus Carica, Linn. (The Fig.)
घर्षक	रब्बर	Ficus Elastica, Roxb. (Rubber)
बंगीय त्रायमाण	त्रायमाण	Ficus Heterophylla, Linn.
विजया	भांग, भंग	Cannabis Indica, Lamk.
भंगा	भांग, भंग	Cannabis Sativa, Linn.
शाखोटक	सिहोडा	Streblus Asper, Lou.
लकुच	बडहल	Atrocarpus Lakoocha, Roxb. (The Monkey Jack.)
पनसः	कटहल	Atrocarpus Integrifolia, Linn. (The Jack Fruit Tree.)
वृश्चिकाली	बिच्छुबूटी	Girardinia Heterophylla, Decne. (The Stinging Nettle.)
वितम	सहतूत तूत	Morus Indica, Linn.
,, (श्वेत)	सफेद तूत	Morus Alba, Linn.
,, (कृष्ण)	काला ,,	Morus Nigra, Linn.
अक्षोट गण		*Juglandaceae*. (*G*. 6, *Sp*. 40.)
अक्षोट	अखरोट	Juglans Regia, Linn. (The Wall Tree.)
कट्फल गण		*Myricaceae*. (*G*. 1, *Sp*. 45.)
कट्फल	कायफल	Myrica Nagi, Thumb. (4,000 fts.)
सरू गण		*Casuarianaceae*. (*G*. 1, *Sp*. 35.)
झाबुक	झाऊ, सरर	Casurina Equisetifolia, Forst. (Beef Wood Tree.)
भोजपत्रादि गण		*Cupuliferae*.
भोजपत्र	भूर्जपत्र, भोजपत्र	Potula Bhojpatra, wall & Don. (The Birch Tree.)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
वान	बान-बंग	Betula Utilis Don. Prodr.
,, भेद	,, भेद	Quercus Incana, Roxb. (5,000 10,000 fts.)
मायाफल	माजूफल	Quercus Infectoria.
वेंतस वर्ग		*Salicaceae.* (*G.* 2, *Sp.* 180)
बंगुला, जलवेतस	वेता, सुकुल वेत	Salix Tetrasperma, Roxb. (The Willow Tree.)
बानीर	वेद मुश्क	Salix Caprea, Linn. (Goat Willow)
एकबीजपत्रक		*Monocotyledons.*
जीवन्त्यादि गण		*Orchidaceae.* (*G.* 610, *Sp.* 8,000.)
जीवन्ती वृक्षादनी	जीवन्ती, बांदा	Dendrobium Macraei, Lindle.
वृक्षादनी (बंगीय)	बाँदा, बन्दा	Vanda Roxburghii, R. Br.
सुधामूली	सालव मिश्री	Eulopia Compestris, Wall.
हरिद्रादि गण		*Scitaminaceae.* (*G.* 50, *Sp.* 1,180.)
हरिद्रा	हलदी	Curcuma Longa, Linn (The Turmeric.)
आम्रगन्धि हरिद्रा	आम्बा हलदी	Curcuma Amada, Roxb.
अरण्य हरिद्रा	सफेद हलदी	Curcuma Aromatica, Salisb. (Wild Turmeric.)
तवक्षीरः	अरारुट, तबखीर	Curcuma Angustifolia, Roxb.
कर्बूरा	कचूर, नरकचूर	Curcuma Zedoaria, Rosc.
कर्चूरः	कपूर कचरी	Hedychium Spicatum, Ham.
गन्धराटी	बड़ी इलायची	Amomum Subulatam, Roxb.
क्षुद्रैला	छोटी इलायची	Elletaria Cardamomum, Maton.
शुण्ठी	(अर्द्रक) सोंठ	Zingiber Officinale, Roscoe. (The Zinger)
महाभरीवचा	छोटा कुलंजन	Alpinia Galanga, Swatz.
मलयवचा (कुलिजन)	बड़ा कुलंजन	Costus Speciosus, Smith.
कदली	केला	Musa Sapientum, O. Kuntze.
मूर्वादि गण		*Haemodoraceae.* (*G.* 26, *Sp.* 120.)
मूर्वा	मुर्वा	Sensevieria Zeylanica, Willd. (Bow String Plant.)
,, भेद	,, भेद	Sensevieria Roxburghii, Schutt.
कुंकुमादि गण		*Iridaceae.* (*G.* 57, *Sp.* 800.)
कुंकुम	केशर	Crocus Sativus, Linn. (The Saffron.)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
कृष्णमुशल्यादि गण		*Amarylidaceae*. (*G*. 90, *Sp*. 1,050)
कृष्णमुशली	काली मूशली	Curculigo Orchioides, Gaertn.
सुदर्शन	सुदर्शन	Crinum Latifolium, Linn.
नागदम्बक	नागदमन	Crinum Asiaticum, Linn.
वनकेतकी	वन केवड़ा	Agave Americana, Linn.
वाराहीकन्दादि गण		*Taceaceae*. (*G*. 2 *Sp*. 30)
ब्राह्मीकन्द (गृष्टिका)	बराहीकन्द गेंड़ी (सुअरकंद)	Tacca Aspera, Roxb.
श्वेत चार्मार	,, भेद	Tacca Pinnatifida, Forst. (Indian Arrow Root.)
अनन्नास वर्ग		*Bromelliaceae*.
अनन्नास	अनानास	Ananas Sativus, Schult.
वनशूरण वर्ग		*Dioscoriaceae*. (*G*. 9, *Sp*. 220.)
वन शूरण	जंगली जिमीकन्द	Dioscorea Bulbifera, Linn.
रसोनादि गण		*Liliaceae*. (*G*. 250, *Sp*. 2,700.)
पलाण्डु	प्याज, गंडा (पं)	Allium Cepa, Linn. (The Onion.)
रसोन	लहसुन	Allium Sativum, Linn.
कलकन्द, वन पलाण्डु	जंगली प्याज	Urginea Indica, Kunth. (The Wild Onion.)
गुञ्जलक पर्वतीय	,, ,,	Scillla Indica, Baker. (The Indian Squill.)
लांगली (अग्निमुखी)	कलिहारी	Gloriosa Superba, Linn. (Plough Root.)
सुरञ्जान	सुरजान	Colchicum Luteum, Baker. (The Colchicum, Meadow Saffron.)
श्वेतमूसली	सफेद मूसली	Chlorphytum Arundinaceum, Baker.
शतावरी	शतावर	Asparagus Officinalis, Linn.
,,	महाशतावर	Asparagus Racemosus, Wild.
कुमारीलता	जंगली उशवा	Smilax Glabra, Roxb.
,, भेद	रामदातून	Smilax Zeylanica, Linn.
कुमारी	घी कुवार, ग्वारपाठा	Aloe Vera, (Indian Aloe)
द्वीपान्तरवचा	चोबचीनी	Smilax China.
तालादि गण		*Palmaceae*. (*G*. 200, *Sp*. 1,500.)
नारिकेल	नारियल, खोपरा	Cocos Nucifera, Linn. (The Coconut)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
पूग	सुपारी	Areca Catechu, Linn. (Betle Nut.)
ताल	ताड़	Borasus Flabellifer, Linn. (Palmyra Palm.)
पिण्डखर्जुरः	छुआरा, खजूर	Phoenix Dactylifera, Linn. (Date Palm.)
खर्जूर	खजूर	Phoenix Sylvestris, Roxb. (Today Palm, Indian Date.)
साबूदाना	साबूदाना	Garyota Urens, Linn.
छत्रताल	छाताताड़	Carypha Ombraculifera, Linn. (Fan Palm.)
वेतस	वेंत भेद	Calamus Rotang, Linn. (The Cane Palm.)
रक्तवेल	खून खराबा	Calamus Draco, Wild.
अब्धिनारिकेलः	वेंत भेद	Calamus Travancricus, Bedd.
केतक्यादि गण		*Pandanaceae*. (*G*. 3, *Sp*. 225.)
केतकी	केवड़ा	Pandanus Odoratissimus, Linn. (Scew Plant.)
,, भेद	,, भेद	Pandanus Tectrius, Soland.
एरक वर्ग		*Typhaceae*. (*G*. 2. *Sp*. 15.)
एरका	पटेर	Typha Elephantina, Roxb. (Elephant Grass.)
शूरण गण		*Araceae*, *Aroideae*. (*G*. 107, *Sp*. 1,000.)
सूरण कन्द	जमीकन्द, ओल	Amorphophallus Campanulatus, Roxb.
जलकुम्भी	जलकुम्भी	Pistia Stratiotes, Linn.
नाकुली	नाकुली	Arisaema Speciosum, Mart.
रक्तांबुक	अरवी, कचू, घुईया	Colocassia Antiquorum, Schott.
मानकन्द	मानकन्द	{ Alocassia Indica, Schott. Arum Indicum, Roxb.
कोपवल्ली (गजकर्णी)	बड़ा पिपल	Pathos Officinalis, Roxb.
बचा	घोड़बच	Acorus Calamus, Linn. (Sweet Flag Root.)
मुस्तादि गण		*Cyperaceae*. (*G*. 85, *Sp*. 2,600.)
भद्रमुस्तक	नागरमोथा	Cyperus Rotundus, Linn.
		Cyperus Scariosus, Br. Prddr.
कैवर्त ,,	केवड़ा मोथा	Cyperus Esculentus, Linn.
निर्विषी	निर्विषी	Kyllinga Triceps, Rottb.
कसेरुक	कसेरु	{ Scirpus Grossus, Linn. Scirpus Kysoor, Roxb.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
गोधूमादि गण		*Gramineae.* (*G.* 450, *Sp.* 450.)
दर्भ (कुश)	दाभ-कुशा	Desmotachya Bipinnata, Stapt.
शालिः	धान, चावल	Oryza Sativa, Linn. (The Rice, Paddy.)
गवेधुक	गर्गरी	Coix Iachymasobi, Linn.
महाकाय	मक्का	Zea Mays, Linn. (The Maze.)
ईक्षुः	ईख, गन्ना	Saccharum Officinarum, Linn.
सर (मुञ्जातक)	मूंड़ा, सर	Saccharum Munja, Roxb. (Thatch Grass.)
काशः	कांस	Saccharum Spontaneum, Linn. (Persian Reed.)
रोहिषम्	रूसाघांस, मिरचीगेध	Andropogon Schoenanthus, Linn.
लामज्जकः	खाबी	Andropogon Jwarancusa, Jones.
उशीर	खस	Andropogon Squarrosus, Cooke.
जम्बीरतृण	हरी चाय	Andropogon Citratus, D.C. (Lemon Grass)
ज्वार	जुआर	Sorghum Vulgare, Pers. (Green Millet.)
वज्रान्तः, व्रजकाथः	बाजरा	Pennisetum Typhoideum, Rich. (Pearl Millet)
कोद्रव	कोदो	{ Pennisetum Spicatum, Roem. { Eleusine Coracana, Gaertn. (The Ragi.)
गोधूमः	गेहूँ	Triticum Vulgare, Villas.
पूर्वा	पूब	Cynodyn Dactolon, Pers.
यव	जौ, यव	Hardeum Vulgare, Linn. (Barley.)
कंगु	कंगनी, कांग	Setaria Italica, Beauv. (Italian Millet.)
श्यामाक	सामा	Setaria Italica.
नलंब	नल	Arunde Donax, Linn.
वंश	बांस	Bambusa Arudinacea, Retz.
चीनाक	,,	Pannicum Miliaceum, Linn.
अनावृत बीज		*Gymnosperms.*
सोमलतादि गण		*Gnetaceae.* (*G.* 3, *Sp.* 43.)
सोम	टूटगंठा (पं०) सोम	Ephedra Vulgeris, Hook.
,, भेद	,, भेद	Ephedra Gerardiana, (8,000 to 1400,)
,, ,,	,, ,,	Ephedra Pachyclada, boiss.
देवदार्वादि गण		*Coniferae.*
देवदारु	देवदार (दियार)	Cedrus Deodara, Loud. (The Cedar)
सरु	सरु	Cupressus Sempervirens, Linn. (The Cypress)
हपुषा	हाउ बेर	Juniperus Communis, Linn. (The Juniper)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत (आयुर्वेदिक)	हिन्दी	लैटिन नाम
धूपवृक्ष	धूपवृक्ष	Juniperus Macropoda, boiss.
स्थौणेयका (तालिशः)	तालीशपत्र, बिर्गी	Taxus baccata, Linn. (The Yew)
सरलः	चीड, चीर, कोलोन	Pinus Longifolia, Roxb. (The Pine)
निकोचक	चिल्गोजा, न्योझा	Pinus Gerardiana, wall.
तालीसपत्र	तालीस	Abies Webbiana, Lindle.
अपुष्पादि गण		*Cryptogamia.*
हंसपदी गण		*Polypodiaceae. (The Ferns)*
हंसराज	हंसराज	Adiantum Lunulatum, burn.
,, भेद	,, भेद	Adiantum Caudatum, Linn.
संस्वपदी गण		*Fungi.*
छत्रक	खूम्भी, सांप की छत्र	Agaricus Campestris, Linn. (The Mushroom.)
अन्नामय (अर्भकं)	अर्गट	Claviceps Purpurea.
शिलापुष्पी गण		*Lichens.*
शिलापुष्पी	छैल छबीला	Parmalia Perforata, Ach.
शैलेयम्	पत्थर फूल	Parmalia Perlata.
शैवाल गण		*Algae.*
गिलडपात	गिलडपात	Lamanaria Digitata, Lam.
शैवाल	संबद, साई	Vallisneria Spiralis, Linn. (Ell Grass.)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

द्वितीय परिशिष्ट

औषधियों की उत्पत्ति के स्थान और रासायनिक संगठन

संज्ञाएँ तथा संकेत चिह्न

इस परिशिष्ट में औषधियों के रासायनिक संगठन (Chemical Composition) का वर्णन नव्य रसायन शास्त्र (Modern Chemistry) के अनुसार किया गया है। इस प्रकरण में नवीनतम विश्लेषीकरण द्वारा उपलब्ध—द्रव्य संगठन को प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर दिया गया है। इन ग्रन्थों की सूची ग्रन्थ संदर्भ सूची में देंखे।

ये रासायनिक पारिभाषिक संज्ञाएँ देवनागरी (तथा कोष्ठक में रोमन लिपि) में उनके मूलरूप में ही प्राय: दी गई हैं, क्योंकि इस रूप में ये सर्वत्र ज्ञात और सुबोध है। उनका संस्कृतीकरण श्रमसाध्य और दुर्बोध हो जाता, अत: नहीं दिया।

हमारे विचार में इस प्रकार के रासायनिक संगठन के ज्ञान से आयुर्वेद की उन्नति सम्भव नहीं, क्योंकि आयुर्वेद की अपनी विशिष्ट प्रणाली और सिद्धान्त है। (रस, वीर्य, विपाक, सिद्धान्त, पंचमहाभूतादि) जिनके आधार पर और जिनके अनुसार आयुर्वेदीय चिकित्सा की जाती है। इन रासायनिक तत्वों का उस चिकित्सा प्रणाली पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उदाहरणार्थ, भल्लातक आयुर्वेद में रसायन, अग्निदीपक तथा मधुमेहनाशक है। आधुनिक केमिस्ट्री के अनुसार इसमें उपस्थित 'अनाकार्डोल' सत्व से गुणों का कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार हरीतकी कषाय होने के कारण स्तम्भक होनी चाहिए। किन्तु वह प्रभाव से विरेचक है। उसमें उपलब्ध 'एन्थ्रेक्विनोन' सत्व के कारण नहीं*।

पुनश्च इन रासायनिक सत्वों को समझने के लिए रसायन शास्त्र ज्ञान की पृष्ठभूमि होनी चाहिए, वैद्यों में उसका भी अभाव है। अत: इनका ज्ञान हो जाने पर भी वैद्यों के लिए उसका कोई उपयोग नहीं। अत: आयुर्वेद विद्यालयों के छात्रों को इनके ज्ञान की आवश्यकता नहीं। किन्तु दुर्भाग्यवश आयुर्वेद भी देश भर में सभी विभागों में फैली अराजकता से अछूता नहीं है और ज्ञानलवदुर्विदग्धों के कारण आयुर्वेदीय विद्यालयों में भी पाठ्यक्रम में इनका समावेश किया गया है, अत: इस परिशिष्ट रूप में इस ज्ञान को हमने ग्रन्थ में स्थान दे दिया है। सम्भव है कुछ पाठकों का इस ज्ञान से मनोविनोद हो।

---

* दारुहरिद्रा—आधुनिक अनुसन्धान द्वारा दारुहरिद्रा में से "कार्बोरिन सल्फेट" नामक सत्व पृथक् किया गया है। यह "एलोपैथिक" की आधुनिकतम औषधियों क्लोरेम्फेनिकोल तथा टेट्रासाईक्लिन से भी अधिक उत्तम कृमिघ्न है। विषूचिका में अतिसार, वमन, और प्रवाहिका, इन रोगों का शमन तो यह दारुहरिद्रा सत्व करती ही है किन्तु उक्त औषधियों के दुष्परिणाम से रहित है। आयुर्वेद में यद्यपि कृमियों का वर्णन तो है, किन्तु विशेषता त्रिदोष को ही दी जाती है। दारुहरिद्रा उष्णवीर्य के कारण आमदोषों का तथा मलों का पाचन कर विषूचिका, अतिसार और प्रवाहिका को शान्त करती है। अत: उक्त अनुसन्धान का विशुद्ध आयुर्वेदीय दृष्टि से चिकित्सा में कोई लाभ नहीं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हिन्दी	अंग्रेजी (देवनागरी में)	अंग्रेजी (रोमन लिपि में)
(१) अभिषवीय पदार्थ	—एन्जाईम्स	—Enzymes.
(२) उ० स्थ०	—उत्पत्ति स्थल	—Habitat.
(३) उड़नशील तैल	—वोलेटाईल आयल	—Volatile Oil.
(४) कार्बोज	—कार्बोहायड्रेट	—Carbohydrates.
(५) काष्ठीज	—सेल्युलोज	—Cellulose.
(६) किण्व	—एन्जाईम्स	—Enzymes.
(७) खनिज लवण	—मिनरल साल्टस्	—Mineral Salts.
(८) खनिजाम्ल	—इनआर्गेनिक एसिड	—Inorganic Acid.
(९) क्षारोद	—एलकलोईड्	—Alkaloid.
(१०) जीवनीय	—प्रोटीन	—Protein.
(११) नत्रजन	—नाईट्रोजन	—Nitrogen.
(१२) निर्यास	—एक्जुडेट	—Exudates.
(१३) पिच्छिल द्रव्य	—म्युसिलेज	—Muscilage.
(१४) प्रजीवणक	—प्रोटीन	—Protein.
(१५) प्रभावी प्रदार्थ	—एक्टिव प्रिंसिपुल	—Active Principle.
(१६) मधुमेय	—ग्लुकोसाईड्	—Glucosides.
(१७) यौगिक-योग	—कम्पाउन्ड	—Compound.
(१८) रालीय (राला जातीय)	—रेजिन	—Resin, Resinous.
(१९) रा० सं०	—रासायनिक संगठन	—Chemical Composition.
(२०) वसाम्ल (वसाजातीय अम्ल)	—फैटी एसिड	—Fatty Acid.
(२१) वीर्य	—एक्टिव प्रिंसिपुल	—Active Principle.
(२२) श्वेतसार	—स्टार्च	—Starch.
(२३) सेन्द्रियाम्ल	—आरगेनिक एसिड	—Organic Acid.
(२४) सौत्रिक तन्तु	—वुडी फाइबर्स	—Woody Fibers.
(२५) स्थिर तैल	—फिक्सड आयल	—Fixed Oil.

———————

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

द्रव्यों के उत्पत्तिस्थल तथा रासायनिक संगठन

(Habitat and Chemical Composition of Drugs)

१. (अ) अगस्त्य

उ० स्थ०—बंगाल तथा पश्चिम-दक्षिण भारत।

संगठन—छाल में 'टेनिन' तथा राल जातीय (Resin) सत्व विशेष उपलब्ध होता है।

२. अगुरु

उ० स्थ०—आसाम. भूटान, खसिया पर्वतमाला आदि हिमालय के उच्च प्रदेश।

संगठन—एक उड़नशील सुगन्धित तैल विशेष्य (A Volatile Essential Oil)

३. अजमोदा

उ० स्थ०—अमेरिका, यूरोप, भारत में, पंजाब, उत्तर प्रदेश में, खेती द्वारा तथा स्वयम्भू (जंगलीय) पश्चिमोत्तर प्रदेशों में उत्पन्न।

रा० सं०—फलों में १-५ प्रतिशत तक विशिष्ट गन्धवाला पीतवर्ण द्रव्य, एक उड़नशील तैल, इसमें अन्य सत्वांगों के साथ (X. D. Limonine) प्रधानतः ६% उपलब्ध, १७ प्रतिशत एक स्थिर तैल भी पाया जाता है।

४. अतसी

उ० स्थ०—भारत में सर्वत्र ६,००० फीट की उच्चता तक खेती की जाती है।

संगठन—बीजों में ३० प्रतिशत एक स्थिर तैल, २०-२५ प्रतिशत प्रजीवणक (Protein), ६० प्रतिशत तक पिच्छिल द्रव्य, कुछ रालजातीय द्रव्य, मोम फास्फोरस तथा लगभग १८ प्रतिशत शर्करा, पुष्प तथा कच्चे बीजों में हायड्रोसायनिक अम्ल (Hydrocyanic Acid) तथा लिपेरीन नामक क्षारोद (Alkaloid) भी उपलब्ध।

५. अतिबला

उ० स्थ०—भारत तथा लंका के उष्ण प्रदेश।

रा० सं०—पत्र-मूल तथा छाल में टेनिन, सेन्द्रियाम्ल (Organic Acid) स्वल्पांश में एस्पेरेजिन (Asparagine), राख में गन्धक, क्लोराइड, मैग्नीशियम, फास्फोरस और कैलशियम के अंश भी उपलब्ध।

६. अतिविषा

उ० स्थ०—हिमालय के मध्य भागों में सर्वत्र काश्मीर से कुमायू पर्यन्त।

रा० सं०—अस्फटिकीय अविष सत्व अतिसिन (Atisine) वत्सनाभ अम्ल (Aconitic Acid) टैनिक एसिड (Tannic Acid) पेक्टिन (Pectin) और प्रभूत मात्रा में श्वेतसार (Starch) अत्यल्पांश में वसा, शर्करा और अनेक प्रकार के अम्लों के अंश।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

७. अन्तमूल (पित्तमारी)

(Tylophora Asthamatica, W% Arn.)

सूचना--यह द्रव्य यद्यपि आयुर्वेदिक चिकित्सा में अधिक नहीं व्यवहृत होता है तथापि नव्य अनुसंधान द्वारा इसमें श्वासशामक गुण प्रभूत मात्रा में पाया जाता है। अतः यहाँ इसका उल्लेख किया गया है। यह अनन्तमूल से पृथक् द्रव्य है।

उ० स्थ०—आसाम, उड़ीसा, कोकण, बंगाल आदि में स्वयम्भू रूप में जंगलों में ३००० फीट तक। बर्मा, लंका, मलेशिया।

रा० सं०--दो प्रकार के क्षारोद (Alkaloides)

(१) टायलो फोरिन (Tylophorin) तथा (२) टायलोफोरिनिन् (Tylophorinine) प्रधान रूप में उपलब्ध होते हैं। १५% तक एक वामक सत्व तथा अल्पांश में एक उड़नशील तैल (Volatile Oil) एवं खनिज पदार्थों के यौगिक।

८. अपराजिता (विष्णुकान्ता)

उ० स्थ०—सर्वत्र विशेषतः दक्षिणी भारत।

रा० सं०—मूल छाल में श्वेतसार, टेनिन और राल जातीय सत्व (Resin) तथा बीजों में एक स्थिर तैल (Fixed Oil), एक तिक्त कटु सत्व, शर्करा और टंकणाम्ल (Tannic acid) उपलब्ध होते हैं।

९. अपामार्ग

उ० स्थ०—समग्र भारत।

रा० सं०—पोटेश (Potash) प्रधान क्षारीय सत्व।

१०. अमरबल्ली (आकाशवेल)

उ० स्थ०—समग्र भारत।

रा० सं०—क्वेरसेटिन (Quercetin) राल जातीय सत्व, अल्पांश में कस्कुटिन (Cuscutine) नामक क्षारोद (Alkaloid)।

११. अम्लिका (चिंचा)

उ० स्थ०—समग्र भारत एवं अफ्रीका मध्य तथा दक्षिण भारत में प्रभूत मात्रा में उपलब्ध।

रा० सं०--फलों में निम्न सत्व उपलब्ध होते हैं :—

(१) निम्बुकाम्ल (Citric Acid) ४-६%

(२) चिंचाम्ल ५-९% (Tartaric Acid)

(३) पोटेशियम बाइटारटेट (Potassium Bitartrate) ४-८% अल्पांश तक।

(४) सेधाम्ल (Malic Acid)

(५) शर्करा, १५-२०%

(६) अविलेय पदार्थ--१२-२०% तथा ताम्र के कुछ अंश।

१२. अश्वकर्णबीज (ईसबगुल)

उ० स्थ०—भारत में पंजाब, सिन्ध और गुजरात तथा ईरान और बिलोचिस्तान।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रा० सं०—बीजों में प्रभूत मात्रा में पिच्छिल द्रव्य, एलब्युमिन सम सत्व, और ५% पीतवर्ण का एक अर्द्ध तरल तैल।

१३. अश्वगन्धा

उ० स्थ०—उष्ण प्रदेश, भारत लंका, पश्चिमी पाकिस्तान, भू-मध्य सागर तटवर्ती प्रदेश और दक्षिणी अफ्रीका।

रा० सं०—प्रधानतः इपुरानोल (Ipuranol) नामक सुगन्धित तैल, तथा विथेनिओल (Withaniol) नामक राल, स्फटिक जातीय सत्व। अल्पांश में एक स्फटिकीय क्षारोद सोम्निफेरिन (Somniferine) भी पाया जाता है।

१४. अयापान

उ० स्थ०—मूलतः अमेरिका है, किन्तु आजकल सर्वत्र उद्यानों में विशेषतः दक्षिणी भारत में लगाया जाता है।

रा० सं०—पत्तों में अयापानोल (Ayapanol) नामक उड़नशील सुगन्धित तैल १-१३% तक उपलब्ध होता है। यह यवानी सत्व (Thymol) थाईमोल सम गुणवान हैं। इसके अतिरिक्त दो उत्तम रक्तस्रावरोधक सत्व 'अयापानीन (Ayapanin) और अयापिन (Ayapin) नामक स्फटिकीय सत्व भी पाये जाते हैं। इन्हीं के कारण इसका चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

१५. अलर्क और अर्कः (मन्दार)

उ० स्थ०—भारत के उष्ण तथा शुष्क प्रदेश तथा अफगानिस्तान, ईरान, अरब, मिस्र और अफ्रीका के उष्ण प्रदेश।

रा० सं०—मूल की छाल में निम्नलिखित तीन मद्य जातीय सत्व उपलब्ध होते हैं:—

(१) बीटा अमायरिन (Bita Amyrin)
(२) जिगेन्टीओल (Giganteol)
(३) आइसो जिगेन्टीओल (Iso Giganteol)

१६. अर्जुन

उ० स्थ०—हिमालय के निचले भागों तथा अन्यत्र समग्र भारत में। दक्षिण में अधिक।

रा० सं०—छाल में वर्णरहित अर्जुनीन (Arjunine) अर्जुनेटीन (Arjunatine) टेनिन (Tannin) १६% तक उड़नशील तैल के कुछ अंश, तथा २५% तक जल कैल्शियम के जलविलेय यौगिक, शर्करा, वृक्षाम्ल, रंजक द्रव्य तथा मैगनेशियम, लवणों के अंश।

१७. अशोक

उ० स्थ०—विशेषतः बंगाल और साधारणतः समग्र भारत। उद्यानों में प्रायः सर्वत्र लगाया जाता है। दक्षिण भारत, लंका, मलाया।

रा० सं०—प्रभूत मात्रा में टेनिन तथा लौह के यौगिक अंश एवं उड़नशील तैलांश।

१८. असन

उ० स्थ०—दक्षिण और पश्चिमी भारत, लंका।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रा० सं०--प्रधानतया असवाम्ल किनो टेनिकाम्ल (Kino Tannic Acid) तथा एक वर्ण रहित रक्त टिकीभूसन्ध किनोइन (Kinoin) भी उपलब्ध होता है। केटेकोल (Catechol) नामक सत्व, गोंद, मलिकाम्ल (Gallic Acid) नामक अंश भी पाये जाते हैं।

१९. अहिफेन (खास्स फल सत्व)

उ० स्थ०--एशिया, यूरोप तथा उत्तरी अफ्रीका के उष्ण प्रदेशों में उत्पन्न। भारत में इसकी खेती शासन द्वारा नियंन्त्रित है। यह पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और मध्य भारत में बोया जाता है।

रा० सं०--फल (पोस्त) में ०.१-०३% तक मार्फीन (Morphine) कोडीन (Codeine) पेपावरीन (Papaverine) नार्कोटीन (Narcotine) तथा मेकोनिक अम्ल (Maconic Acid) के अंश पाये जाते हैं।

इसके सत्व अफीम में ७-१२% तक मार्फीन (प्रधान सत्व) कार्कोटीन १२ से १३% तक एवं अल्पांश में कुछ अन्य सत्व भी उपलब्ध होते हैं।

२०. अंकोल

उ० स्थ०--दक्षिण भारत और बर्मा के जंगल।

रा० सं०--जल में अविलेय, किन्तु मद्यसार ईथर, क्लोरोफार्म में विलेय एक अस्फटिकीय तिक्त क्षारोद (Non crystalline Alkaloid) एलंगीन (Alangine) तथा प्रभूत मात्रा में पोटेशियम क्लोराइड भी उपलब्ध होता है।

२१. अंजीर (फल, फल्गु)

उ० स्थ०--समग्र भारत

रा० सं०--फलों में ६२% शर्करा, गोंद, वसा, प्रोटोज (Proteose) एसिड (Amino acid) के कुछ अंश, टायरोसिन (Tyrosin) एक क्रेबिन नामक अभिषवीय द्रव्य (Enzyme Crevin) लिपेज (Lipase) के अंश उपस्थित।

(अ) २२. आकारकरभः (Pyrethrum)

उ० स्थ०--काश्मीर, नीलगिरी, कांगड़ी, कुल्लु, में खेती की जाती है। यूरोप के कुछ प्रदेश, केनिया, जापान, पूर्व अफ्रीका और ब्राजील के कुछ प्रदेश।

रा० सं०--पुष्पों में पायरेथ्रिन (Pyrethrine) प्रधान सत्व है। क्रायसेन्थीन (Crysanthin) पामिटिक और लिनोलिक अम्ल द्वय (Palmitic & Linoleic Acids) एक उड़नशील तैल के अंश।

(आ) २३. आकारकरभ मूल (Pellitory Root)

उ० स्थ०--यह दूसरे प्रकार का अकरकरा है। अफ्रीका, भूमध्य सागर के तटवर्ती यूरोपीय प्रदेश और अल्जीरिया आदि देशों में उत्पन्न।

रा० सं०--मूल में एक वर्णरहित स्फटिकीय सत्व पेलीटोरीन या पायरेथ्रीन (Pellitorine or Pyrethrine) पाया जाता है जो स्वाद में कटु और कर्म में लालस्रावक है। यह पिप्पली सत्व (Piperin) का कार्य करता है। इसके अतिरिक्त इसमें ३०% तक इन्सुलिन (Insulin) हायड्रोकरोटिन (Hydrocarotine) तथा एक उड़नशील तैल के कुछ अंश भी उपलब्ध होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

२४. आमलकी

उ० स्थ०—समग्र भारत, लंका, चीन, मलाया।

रा० सं०—फलों में टेनिन पेक्टिन (Pectin) और प्रभूत मात्रा में प्रजीवणक 'सी' (Vit. C.) उपस्थित।

२५. आरग्वध

उ० स्थ०—समग्र भारत ४० हजार फीट की ऊँचाई तक के प्रदेश।

रा० सं०—फलमज्जा में एक पिच्छिल पदार्थ। प्रेक्टिन, शर्करा तथा उड़नशील तैल के अंश हायड्रॉक्सी-मिथाइल और एन्थ्राक्विनोन (Hydroxymethyl & Anthraquinone) नामक सत्वों के अंश भी पाये जाते हैं।

२६. आर्द्रक (शुंठी)

उ० स्थ०—सुपरिचित, समग्र भारत एवं एशिया के उष्ण प्रदेश।

रा० सं०—कन्द में १-३% तक उड़नशील तैल जो केम्फीन (Camphine) फलेन्ड्रीन (Phellandrine) सिनिओल (Cineol) सिट्राल (Citral) बोरनिओल (Borneol) और जिंजीवेरिन (Zingiberine) नामक सत्वों का योग है। आर्द्रक भी कटुता जिंगोरोल (Zingirol) और शोगोल (Shogaol) नामक सत्वों के कारण है।

२७. आवर्तनी (मरोड़फली)

उ० स्थ०—मध्य-पश्चिमी भारत और लंका।

रा० सं०—फलियों में प्रधानतः टेनिन है और स्निग्ध द्रव्य के कुछ अंश भी।

२८. इन्द्रवारुणी

उ० स्थ०—भारत के जंगल प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, पंजाब, सिन्ध आदि, स्पेन, सिसली, और भूमध्य सागर के तटवर्ती देश, मोरक्को, अरब, सीरिया आदि।

रा० सं०—एक तिक्त अस्फटिकीय, रेचक गुणवाला सत्व तथा एक राल जातीय पदार्थ कोलोसेन्थीन (Colocynthin) पाये जाते हैं। बीजों में १५% स्थिर तैल (Fixed Oil) भी उपस्थित।

२९. ईक्षुरकम् (कोकिलाक्ष)

उ० स्थ०—जल प्रधान स्थानों पर समग्र भारत में।

रा० सं०—बीजों में २३% तक पीत वर्ण पिच्छिल द्रव्य तथा डायास्टेज (Diastage), लिपेज (Lipage)' और प्रोटोज (Proteos) नामक पोषक पदार्थ ३१% तक।

३०. ईश्वरी (अर्कमूल)

उ० स्थ०—नेपाल, कोंकण, दक्षिणी भारत।

रा० सं०—प्रधान सत्व अरिस्टोलोकिन (Aristolochine) तथा एरिस्टिनिक (Aristinic) एरिस्टिडिनिक (Aristidinic) अरिस्टोलिक (Aristolic) अम्ल तथा रालीय द्रव्य, टेनीन, श्वेतसार, कर्पूर एक कम उड़नशील तैल के कुछ अंश उपलब्ध।

३१. गुंदः

उ० स्थ०—भारत के शुष्क प्रदेश, बिहार, गुजरात, दक्षिण भारत, उत्तर प्रदेश आदि।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रा० सं०—छाल में सेपोनिन (Saponin) नामक सत्व, फल मज्जा में सेपोनिन के अतिरिक्त, शर्करा, एक पिच्छिल पदार्थ, और सेन्द्रियाम्ल (Organic acid)

३२. उदुम्बर

उ० स्थ०—समग्र भारत।

रा० सं०—टेनिन, मोम, काटेचाक (Caoutechouc) नामक सत्व, राख में सिलिका ओर फास्फोरिक अम्ल (Silica & Phosphoric Acid) उपस्थित।

३३. उलटकम्बल

उ० स्थ०—उष्ण प्रदेश, उत्तर प्रदेश से सिक्किम तक ४,००० फीट की ऊँचाई तक उत्पन्न जंगली रूप में तथा खेती भी की जाती है।

रा० सं०—मूल और छाल में एक पिच्छिल पदार्थ, गोंद, श्वेतसार (Carbohydrate) फ्लोबेफेन्स (Phlobephence) नामक सत्व, उदहरिकाम्ल युक्त मैग्नेशियम (Magnesium with Hydroxy acid) प्रभूत मात्रा में उपस्थित। देर तक सुरासार आदि में रखने से इसका वीर्य (Active Principle) नष्ट हो जाता है। ताजा ही प्रयोग करना उत्तम है।

३४. उशीर-वीरणम्

उ० स्थ०—भारत के समग्र जलबहुल स्थान।

रा० सं०—एक उड़नशील तैल, राल जातीय पदार्थ, एक रंजक द्रव्य, एक अम्ल, चूने के योग तथा लोहांश।

सूचना—इस जाति के सभी द्रव्यों में एक विशेष प्रकार का उड़नशील तैल पाया जाता है।

३५. एरण्ड कर्कटी

उ० स्थ०—यह मूलतः अमेरिकन है, किन्तु अब समग्र भारत में उद्यानों में लगाया जाता है।

रा० सं०—फलों के दुग्धसम स्राव में एक अलब्युमिनोइड (Albuminoid) और एक पाचक किण्व (Enzyme) पेपेन या पपायोलिन (Papain or Papayolin) उपस्थित है जिनका कार्य पेप्सीन नामक पाचकस्राव के समान है।

फल भंगा में एक मृदुपीन वर्ण का राल जातीय (Resin) सत्व, वसा, शर्करा, पेक्टिन और निम्बुकाम्ल (Citric Acid) चित्राम्ल (Tartaric Acid), सेवाम्ल (Malic Acid) डेक्स्ट्रीन (Dextrin) आदि सत्व, बीजों में एक तैल-विशेष और पत्तों में (Carpaine) कार्पेन नामक सत्व उपलब्ध।

३६. एरण्ड बीज

उ० स्थ०—भारत के आर्द्र तथा उष्ण प्रदेश।

रा० सं०—बीजों में ५० प्रतिशत तक एक स्थिर तैल रिसिनिन (Ricinine) नामक विषैला सत्व उपस्थित है। ऐसे २ या ३ बीज भी विष प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ है।

३७. एलाद्वय (त्रुटि सूक्ष्मैला)

उ० स्थ०—पश्चिम-दक्षिणी भारत के प्रदेश, मैसूर, मलाबार और लंका तथा बर्मा।

रा० सं०—बीजों में ३०% तक उड़नशील तैल उपलब्ध होता है। यह प्रधानतः (१) टर्पिनीन (Terpinine) (२) टर्पिनोईल (Terpineol) नामक सत्व और सिनिओल (Cineol) के अंशों का यौगिक है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इस तैल के अतिरिक्त श्वेतसार कार्बोज (Carbohydrate) तथा पीला रंजक द्रव्य जिसके कारण इस तैल का वर्ण पीला होता है।

३८. बृहदेला-स्थूला

उ० स्थ०—पूर्वी बंगाल, आसाम, नेपालादि प्रदेश।

रा० सं०—पीले वर्ण का सुगन्धित उड़नशील तैल, जिसके कारण यह प्रभावकारी है। सिटिनिओल (Citineol) नामक सत्व इस तैल का प्रधान उपादान है।

३९. (क) कट्फल

उ० स्थ०—हिमालय के मध्यवर्ती स्थल शिमला से आसाम, बंगाल, बर्मा पर्यन्त।

रा० सं०—छाल में टेनिन, शर्करा जातीय द्रव्य (Sacchrine) मायरीसिटीन (Myrcitine) नामक रंजक द्रव्य तथा कुछ धात्वंश।

४०. कटुकीत्रय (अ) कटुकी (चक्रांगी) (Picrerrhiza)

उ० स्थ०—८,००० से १५,००० फीट की ऊँचाई तक हिमालय के प्रदेश काश्मीर से सिक्किम पर्यन्त।

रा० सं०—लगभग २६-२७% पिक्रोरिझीन (Picrorrhizine) नामक तिक्त सत्व उपलब्ध। यह जल, मद्यसार और अम्लों में विलीन हो जाता है, किन्तु क्लोरोफार्म में नहीं।

सूचना—यह यकृत प्रभावक और पित्तरेचक है।

४१. (आ) कृष्ण-कटुकी (Hellabore)

उ० स्थ०—पश्चिमी भारत के पर्वतों एवं अन्य पर्वतीय प्रदेश।

रा० सं०—कन्द में दो स्फटिकीय सत्व हेलेबोरिन (Helleborine) तथा हेलेबोरइन (Helleboreine) के अतिरिक्त वसा का कुछ अंश उपलब्ध होता है। विषैला राल जातीय सत्व उपलब्ध होता है।

सूचना—यह विषमज्वर नाशक तथा भेदक है।

४२. (इ) नीलकण्ठी (कटुकी)

उ० स्थ०—काश्मीर तथा पश्चिमोत्तर हिमालय ५,००० से ११,००० फीट तक प्राप्त।

रा० सं०—मूल में २०% तक एक पीला भुरभुरा, दूसरा राल जातीय (Resin) स्वादरहित। इसमें क्षार अविलेय सत्व भी पाया जाता है। इसमें जेन्टियो-पिक्रिन (Gentio-Picrin) नामक सत्व नहीं पाया जाता जो दूसरे भेद में उपस्थित है।

सूचना—यद्यपि यह कटुकी से भिन्न पदार्थ है तथापि कई इसे कटुकी के स्थान पर प्रयुक्त करते हैं और यह रेचक तथा विषम ज्वर शामक भी है। अतः यहीं पर इसका वर्णन कर दिया गया है।

४३. कटुतुम्बी

उ० स्थ०—समग्र भारत।

रा० सं०—ताजे फल में ८१% तक जलीयांश, शुष्क में नत्रजन के यौगिक, कार्बोज (Carbohydrate) ७५-९८% तक सौत्रिक सत्व (१८%) सेपोनिन तथा वसाम्ल (Fatty Acid)।

४४-४५. कतृण (भूस्तृण) (The Lemon Grass)

उ० स्थ०—उष्ण प्रदेश—भारत, लंका आदि स्थानों में भी लगाया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रा० सं०—७० से ७५ प्रतिशत तक एक उड़नशील तैल–लेमनग्रास तैल (Lemon grass oil) उपलब्ध। इस तैल में प्रधानतः सिट्रिओल (Citreol) नामक सत्व प्रधानतया पाया जाता है। परिस्रवण (Distilation) द्वारा यह तैल निकाला जाता है। भूस्तृण भी कत्तृण समान संगठन वाली तृण जातीय औषधि है।

४६. कदम्बः

उ० स्थ०—समग्र भारत।

रा० सं०—छाल में सिन्को-टेनिक अम्ल (Sinch-Tannic Acid) उपलब्ध होता है।

४७. (अ) करंजद्वयम्

उ० स्थ०—वृक्ष करंज-पूतिकरंज। दक्षिण और मध्य भारत में प्रमुख रूप से उत्पन्न।

रा० सं०—बीजों में २६-३० प्रतिशत तक तिक्त रस और पीतवर्ण तैल 'पोंगामोल' (Pongomol) तथा उड़नशील तैल के कुछ अंश।

४८. (आ) लताकरंज (करंजबीज)

उ० स्थ०—उष्ण कटिबन्ध के प्रदेश—भारत, बर्मा, लंका आदि २,५०० फीट की ऊँचाई तक।

रा० सं०—बीजों में गुडूची सत्व श्वेत वर्ण अस्फटिकीय वोन्डुसीन (Bonducin) नामक सत्व पीतवर्ण सुगन्धित तैलांश तथा स्वल्प मात्रा में श्वेतसार (Starch) शर्करा, सिटोस्टरोल (Sitosterol) सत्व।

४९. कपिकच्छु (आत्मगुप्ता)

उ० स्थ०—इसकी लता प्रायः सर्वत्र उष्ण प्रदेशों में उपलब्ध। संगान बीजों में एलब्युमिन तथा वसामय।

रा० सं०—अम्ल राल जातीय पदार्थ टेनिन और मैगनीज धातु के अंश पाये जाते हैं।

५०. कपित्थः

उ० स्थ०—समग्र भारत, किन्तु प्रधानतया उत्तर भारत।

रा० सं०—फलमज्जा में प्रभूत मात्रा में निम्बुकाम्ल (Citric Acid) और पिच्छिल पदार्थ, राख, पोटाश, चूना तथा लोह धातु के अंश, पत्रों में विल्ववत् एक सुगन्धित तैल।

५१. श्वेत कमलम् (श्वेत पुण्डरीक)

उ० स्थ०—सरोवरों में समग्र भारत।

रा० सं०—कन्द तथा बीजों में नेलिम्बीन (Nelimbine) नामक क्षारोद (Alkaloid) राल जातीय द्रव्य टेनिन और वसा एवं मेटरबिन (Materbine) नामक सत्व।

५२. करवीरद्वयम् (अ–पीतकरवीर)

उ० स्थ०—समग्र भारत।

रा० सं०—छाल और बीजों में एक सुन्दर स्फटिकीय ग्लुकोसाईड (Glucosyde) थेवेटीन (Thevetin) नामक सत्व बीजों में ४०% तक घना तैल, जो विषैला होता है।

५३. (आ) श्वेतकरवीर

उ० स्थ०—उद्यानों में सर्वत्र, भारत, अफगानिस्तान।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रा० सं०—मूल में दो तिक्त अस्फटिकीय सत्व नेरीओडोरिन (Neriodorein) यह जल में अविलेय है (२) जल विलेय नेरीओडोरिन (Neriodorein)। दोनों ही हृदय के लिए विषैले हैं। एक उड़नशील तैल तथा एक स्फटिकीय सत्व नेरीन (Neriene), जिस्मी प्रभाव डिजिटेलिस सम है, और टेनिक एसिड। पत्तों में आलीन्ड्रीन (Ooleandrine) नामक क्षारोद भी उपलब्ध।

५४. करीर

उ० स्थ०—राजस्थान, पंजाब, सिन्ध आदि बालुकामय प्रदेश।

रा० सं०—त्वचा में सेनेगेन (Senegen) सम एक तिक्त सत्व विशेष। कलियों में केप्रिक अम्ल (Capric Acid) और एक ग्लुकोसाईड तथा रंजक द्रव्य क्वरसेटिन नामक सत्व।

५५. कर्कट श्रृंगी

उ० स्थ०—पंजाब सिन्ध आदि पश्चिमोत्तरीय प्रदेश १,५०० से ८,००० फीट तक की ऊँचाई तक।

रा० सं०—फलों में १.३% तक एक सुगन्धित तैल। यह कैम्फीन (Camphine) पाईनीन (X-Pinene) २५%, सिनिओल (Cineole) १०% टर्पिनिओल (Terpineol) २०%, कैप्रिकाम्ल (Capric Acid) हायड्रोकार्बन (Hydrocarban) ३.५%, टेनिन ६% गोंद तथा राल जातीय द्रव्य भी उपलब्ध होता है।

५६. कर्पूरः

उ० स्थ०—चीन, जापान, जावा, सुमात्रादि प्रदेश। केरल तथा भारत में भी देहरादून आदि में। केरल आदि में उद्योगों में भी लगाया जाता है।

रा० सं०—सभी भागों में, किन्तु विशेषतः मूल और काष्ठ में से एक अर्द्ध तरल तैल प्राप्त होता है। कर्पूर बनाया जाता है। यह प्रधानतः कर्पूराम्ल (Camphoric Acid) का योग है। गौण रूप में सफरोल (Sufrole) नामक अन्य सत्व भी उपलब्ध होता है।

५७. कर्मरंग

उ० स्थ०—यह मूलतः अमेरिकन है। पोर्तुगीज लोग यहाँ लाए और अब प्रायः समग्र भारत में उद्यानों आदि में उपलब्ध।

रा० सं०—फलों में प्रभूत मात्रा में पोटेशियम आक्सेलेट (Potassium Oxalate) प्राप्त।

५८. कलवञ्जिका (उपकुञ्जिका)

उ० स्थ०—मूल रूपेण यह यह दक्षिण यूरोपीय वनस्पति है। सीरिया में वन्य रूप में उत्पन्न। अब भारत के अधिकांश भागों में विशेषकर पंजाब, बिहार में इसकी कृषि की जाती है।

रा० सं०—$\frac{1}{2}$% से १.५% तक एक उड़नशील तैल, मिलेन्थीन (Milanthin) एक स्थिर तैल, राल जातीय पदार्थ, एलब्युमिन शर्करा, टेनिन के अंश भी प्राप्त।

५९. कस्तूरी (मृगमदः)

उ० स्थ०—यह प्राणिज पदार्थ है। कस्तूरीमृग नामक पशु से प्राप्त किया जाता है। यह प्राणी उच्च हिमालय, नेपाल, आसाम, भूटान, तिब्बत, काश्मीर आदि प्रदेशों में पाया जाता है।

रा० सं०—(१) मस्कोन (Muscone) $\frac{1}{2}$ से २% तक, और कीटोन नामक दो सत्व उपलब्ध। इनके अतिरिक्त वसा, मोम कोलेस्टेरिन (Cholesterin) ओलीन, राल जातीय द्रव्य और एलब्युमिनोइडस के अंश भी उपलब्ध।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

६०. कंकोल

उ० स्थ०—लंका, दक्षिणी भारत, जावा, बोर्नियो आदि प्रदेशों में खेती भी की जाती है।

रा० सं०—५ से २०% तक एक उड़नशील तैल और क्युबेबिन (Cubebin) नामक सत्व राल जातीय सत्व, तथा वसा जातीय तैल ६% श्वेतसार (Starch) गोंद, कंकोलाम्ल (Cubebic Acid) कैलशियम, फास्फेटस् और मैग्नीशियम के अंश और एक वीर्य-विशेष (Active Principle) स्निग्ध पदार्थ ३०%।

६१. कंटकारीद्वयम्, बृहती

उ० स्थ०—समग्र भारत।

रा० सं०—फलों और मूल में सोलेमिन और सोलेमिडीन (Solamine & Solamidine) नामक दो क्षारोद, मोम, वसाजातीय अम्ल (Fatty Acid) उपलब्ध होते हैं।

६२. क्षुद्रा (निदिग्धिका)

उ० स्थ०—समग्र भारत में।

रा० सं०—फलों और मूल में सोलेन्कार्पिन् (Solancarpine) और सोलेनकार्पिडीन (Solancarpidine) नामक दो क्षारोद (Alkaloids) तथा क्लोराईड्स, नाईट्रेट, पोटेशियम के यौगिक, लोहांश तथा कुछ सेन्द्रिय पदार्थ (Organic Matter)।

६३. काकमाची

उ० स्थ०—ईरान-भारत।

रा० सं०—फलों में सोलेमिन् नामक, सत्व। यह शर्करा, सेपोनिन तथा सेलेनिडीन का योग है। यह नेत्र-तारा विस्तारक है।

६४. कांचनार

उ० स्थ०—प्रायः समग्र भारत।

रा० सं०—छाल में टेनिन नामक सत्व उपलब्ध।

६५. कालमेघ (यवतिक्ता)

उ० स्थ०—भारत तथा लंका में कृषि भी की जाती है।

रा० सं०—पत्तों में तिक्त सत्व कालमेथिन तथा लेक्टोन (Lectone) उपस्थित, इनके अतिरिक्त एन्ड्रोग्राफोलिड (Andrographolid) और एन्ड्रोग्राफाइड (Andrographide) टेनिन, और एक उड़नशील तैल के अंश मात्र।

६६. कालशाक

उ० स्थ०—भारत के उष्ण प्रदेश। बंगाल में विशेषतः इसकी खेती की जाती है।

रा० सं०—पत्तों में प्रधानतया कोर्चोरिन (Corchorine) सदृश एक क्षारोद वीर्य (Active Principle) तथा लिग्निन (Lignin) वसा पाये गये हैं।

६७. काम्पिलक

उ० स्थ०—४,५०० फीट की ऊँचाई तक भारत में सर्वत्र काश्मीर से बंगाल तक। बर्मा, सिंगापुर, मलाया, अण्डमान आदि।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रा० सं०—प्रमुखतया इसमें रोटलरिन (Rottlerin) नामक जल में अविलेय, किन्तु ईथर विलेय, कपिल वर्ण का राल जातीय सत्व उपलब्ध, द्वितीय "आयसो रोटलरिन" (Iso-Rottlerin) नामक सत्व, एक राल जातीय पदार्थ लाल और पीले वर्ण का। इसके कारण जल में घिसने पर पीला रंग देता है। पदार्थ, मोम और टेनिन, शर्करा निम्बुकाम्ल, श्वेतसार के अंश भी पाये जाते हैं।

६८. काफी (बुन्दः)

उ० स्थ०—दक्षिण भारत।

रा० सं०—इसमें निम्न पदार्थ पाये जाते हैं—(१) केफीन १.३% नामक क्षारोद, एडेनीन (Adenine) झेन्थीन (Xanthin), ग्वायनोसिन (Guanosine), व्रजीवणक (११-१४%), लिगुनीन (१०%), विविध शर्कराएँ 'काफिओं, टेनिक अम्ल' (Coffeo tannic acid) वसा, एक उड़नशील तैल, कार्बोनेटस और फास्फोरस के योग।

६९. कार्पासी

उ० स्थ०—भारत, मिस्र, अमेरिका आदि।

रा० सं०—मूल की छाल में ८% तक वर्णरहित वह हलका पीला अम्ल (Acid Resin) उपलब्ध, जो ओषजन (Oxygen) के संयोग से कपिल वर्ण हो जाता है। इसके अतिरिक्त मूल छाल में डाइहायड्रोक्सीबेंजोइक अम्ल (Dihydroxy-Benjoic Acid), वसाम्ल (Fatty Acid), विटेन शर्करा (Salicylic Acid) के अंश।

७०. काशीफल (पीत कूष्माण्ड)

उ० स्थ०—समग्र भारत में खेती की जाती है।

रा० सं०—कर्कटी (कटु) जातीय अन्य फलों के समान इसमें भी सेपोनिन, एक स्थिर तैल, राल जातीय द्रव्य, प्रजीवण, शर्करा, श्वेतसार उपलब्ध।

७१. कासनी (Chicory)

उ० स्थ०—पश्चिमोत्तर भारत, ईरान, यूरोप।

रा० सं०—बीजों में एक अर्द्ध तरल तैल, राख में शर्करा, काष्ठौज (Cellulose) नेत्रजनीय तत्व, वसा, मूल में पोटाश के नत्रजनीय और सल्फेट के स्निग्ध सत्व के अंश मात्रा, एनुलिन (Enulin) नामक सत्व ३६% । पुष्पों में चिकोरिन् (Chicorine) तिक्त सत्व और लेक्टिसिन (Lacticin) इन्टिलिन (Intylin) नामक सत्व पाये जाते हैं।

७२. कासमर्द

उ० स्थ०—हिमालय के निचले भागों में तथा भारत के मैदानों में सर्वत्र, बर्मा, लंकादि।

रा० सं०—बीजों में स्निग्ध सत्व, विशेष टेनिकाम्ल, शर्करा, गोंद, श्वेतसार, काष्ठौज (Cellulose) एक्रोसिन (Achrosine) और कैलशियम सल्फेट, फास्फोरस, सोडियम क्लोराइडस (लवण) मैग्नेशियम सल्फेट, लोह क्लोराइड (लवण). लोह सिलिका, सेवाम्ल (Malic acid) तथा क्रायसोफेनिकाम्ल (Crysophenic Acid) के अंश मात्र उपलब्ध। पत्तों में 'काथरटिन' (Cathartine) नामक सत्व, मूल में इमोडिन (Emodine) नामक राल जातीय पदार्थ पाये जाते हैं।

७३. किंकिणी-सिन्कोना

उ० स्थ०—भारत में दक्षिण भारत के नीलगिरि पर्वत तथा बंगाल, मध्य भारत आदि प्रदेशों में १,५०० से ३,००० फीट की ऊँचाई तक खेती की जाती है। लंका, बर्मा, जावा, सुमात्रादि प्रदेश। मूलतः यह अमेरिकन है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रा० सं०—इसकी छाल में लगभग २० प्रकार के सत्व पाये जाते हैं। इनमें चार प्रधान हैं— (१) क्विनीन (Quinine), (२) क्विनीडाईन (Quinidine), (३) सिन्कोनीन (Cinchonine), (४) सिन्कोनीडाईन (Cinchonidine)।

७४. किराततिक्त

उ० स्थ०—४,००० से १०,००० फीट की ऊँचाई तक के हिमालय प्रदेश, काश्मीर, नेपाल, भूटान आदि प्रदेश।

रा० सं०—एक तिक्त सत्व चिरातीन (Chiratin) तथा पीला किराताम्ल (Ophelic Acid) पाया जाता है। यह जल तथा मद्यसार दोनों में विलेय है।

७५. कुन्दुरु (लोबान)

उ० स्थ०—दक्षिण तथा मध्य भारतीय प्रदेश।

रा० सं०—एक सुगन्धित तैल (An Essential Oil)।

७६. कुमारी (घृतकुमारी)

उ० स्थ०—भारत, अफ्रीका, अरब के बालुकाबहुल जलीय स्थान।

रा० सं०—इसका प्रसिद्ध सत्व एलीयकम (एलुआ) है। बायु के सम्पर्क से और घन सत्व बनाने पर काला हो जाता है। एलीयकम में—(१) एलोइन (Aloein), (२) बारबेलोईन (Barbeloin) और आईसोबारबेलोईन, (Isobarbeloin)—राल जातीय द्रव्य, पिच्छिल पदार्थ के अंश, एलोय-एमीडीन (Aloe-Emedin) नामक सत्व पाये जाते हैं।

७७. कुंभी (वाकुमत्त) (Careya Arborea)

उ० स्थ०—हिमालय के निचले प्रदेश, जमुना की धारा से उ० प्र० की ओर बंगाल तक के प्रदेश।

रा० सं०—बाहर की मोटी छाल में ८% टेनिन, अन्दर की छाल में कैलशियम आकसोलेट के स्फटिकीय रूप में उपलब्ध होता है।

सूचना—यह जलकुम्भी से भिन्न औषध है।

७८. कुंकुम (केसर)

उ० स्थ०—इसका मूल स्थान दक्षिणी यूरोप है। स्पेन, फ्रान्स, इटली, ग्रीस, ईरान और भारत के काश्मीर, प्रदेश में भी खेती की जाती है।

रा० सं०—शुष्क केसरों में ८-१३% तक एक वसा जातीय घन तैल, १ प्रतिशत सुगन्धित तैल तथा पिक्रो क्रोसिन (Picro crocin) नामक ग्लुकोसाईड और क्रोसेटिन (Crocetin) वर्ण रहित तिक्त सत्व क्रोसिन (Crocin) ग्लुकोसाईड और क्रोसेटिन (Crocetin) नामक रंजक द्रव्य उपलब्ध होता है।

७९. कुटजः (श्वेत)

उ० स्थ०—दलदलीय स्थलों को छोड़कर भारत में प्रायः सर्वत्र ४,००० फीट की ऊंचाई तक के प्रदेश।

रा० सं०—इसकी छाल में अनेक क्षारोद पाये गये हैं। इनमें प्रमुख कोनेसीन (Conessine) नारकोन्सेसिन (Nor-Conesesseine) कानेसिमाईन (Conessimine) कुर्चिन (Kurchin) नामक सत्व ४ से ५% है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

८०. कुलिञ्जन (महामरीवचा)

उ० स्थ०——यह मूलतः जावा और सुमात्रा का है। पूर्वी हिमालय पर्वतमाला तथा दक्षिण-पश्चिमी भारत में इसकी खेती की जाती है।

रा० सं०—कन्द में एक सुगन्धित तैल (An Essential Oil) १-५% तक पाया जाता है। जो इयुगेनोल (Euganol) २०%, कैडेनेन्स (Cadenenes) बेसोरिन (Bassorin), को योग कुलिन्जीन (Galengin) तथा स्वादरहित पीला स्फटिकीय पदार्थ गेलेनोल (Galenol) आदि सत्व श्वेतसार २३%, राल, टेनिन, वसा, मोम, फ्लोवेझेनादि सत्वों के कुछ अंश।

८१. कुष्ठ

उ० स्थ०——काश्मीर तथा उसके समीपस्थ प्रदेश ८,००० से १३,००० भी ऊँचाई पर जलीय स्थलों और पहाड़ी ढालों पर चिनाव तथा मोहनम की उपत्यकाओं में १०-१३ हजार फीट के उपलब्ध।

रा० सं०—मूल में एक उड़नशील तैल १-५%, २-५% तक सौसुरीन (Sausurine) नामक सत्व ५%, राल जातीय द्रव्य ६% तथा टेनिन, कुष्टीन (Knshtin) नामक तरल सत्व भी मूल से प्राप्त किया है।

८२. कुसुम्भः

उ० स्थ०—भारत में उष्ण तथा समशीतोष्ण स्थान प्रधानतया दक्षिणी भारत।

रा० सं०—पुष्पों में एक जल अविलेय लाल रंजक सत्व 'कार्थेमिन' या 'कार्थेमाइट (Carthamin or Carthamite) दूसरा जल विलेय सत्व पीला रंजक द्रव्य, काष्ठौज, सिकता-सिलिका (Silica) मैंगनीज लोहादि के अंश। बीजों में तृणवत् पीतवर्ण तैल २८-३४% और छिलके रहित तैल में ६०% तक यह तैल उपलब्ध होता है। इस तैल में लगभग ३८% अलब्युमिनाईड और कम-से-कम ६% नत्रजन गैस पाई गई है।

८३. कृष्णबीज (कालादानार)

उ० स्थ०—मूलतः अमेरिकन है, किन्तु अब सर्वत्र उष्ण प्रदेशों में इसकी लता पाई जाती है।

रा० सं०—बीजों में एक स्थिर तैल १२%, राल जातीय पदार्थ १६%, सेपोनिन, टेनिन, ग्लुकोसाइड्स तथा पिच्छिल पदार्थ के अंश उपलब्ध होते हैं।

८४. कोषातकी (धामार्गव)

उ० स्थ०—सर्वत्र वन्य और खेती द्वारा उत्पन्न।

रा० सं०—बीज रहित फलों से (Colocynthin) 'कोलोसिन्थन' तथा लुफीन (Luffln) नामक तिक्त सत्व, बीजों में एक स्थिर तैल, अलब्युमिनोइडस तथा कार्बोज (Carbohydrate) के अंश उपस्थित।

८५. (ख) खदिरम् (कृष्णखदिर)

उ० स्थ०—भारत के अपेक्षाकृत शुष्क प्रदेशों में सर्वत्र।

रा० सं०—५०% तक कत्थाषायाम्ल (Catechu Tannic Acid) तथा केटेकोल (Catechol) क्वर्सेटिन (Quercetin) और रक्त वीर्य कत्था (Red Catechu) के अंश भी पाये जाते हैं। इन सत्वों के ही केटेच्युइक (Catechuic) केटेचिनिक अम्ल (Catechinic Acid) भी कहा जाता है।

८६. (ग) गम्भारी (काश्मरीं)

उ० स्थ०—हिमालय के निचले प्रदेश, नीलगिरि, पूर्वी और पश्चिमी भारत।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रा० सं०—मूल और उसकी छाल में एक पीत स्निग्ध तैल राल जातीय पदार्थ, एक क्षारोद-विशेष, वेन्जोइक अम्ल (Benjoic Acid) के अंश विशेष, राख में मैंगनीज के अंश, फलों में ब्युटिरिक और टार्टरिक अम्ल (Butyric & Tartaric Acid) एक क्षारोद शर्करा, टेनिन तथा राल जातीय पदार्थ।

८७. गर्जरम् (The Carrot)

उ० स्थ०—मूलतः काश्मीरी है। अब सर्वत्र भारत में इसकी खेती की जाती है।

रा० सं०—कन्द में 'केरोटिन' (Carotin) हायड्रो-केरोटिन (Hydro-Carotin) शर्करा, श्वेतसार, पेक्टिन, सेवाम्ल (Malic acid) लिग्नीन (Lignin) एलब्युमिन तथा एक उड़नशील तैलांश, बीजों में एक उड़नशील और एक सिनिओल (Ceneol) समस्थिर तैल तथा प्रभूत मात्रा में लोहांश उपस्थित।

८८. गुग्गुलु

उ० स्थ०—आसाम, बंगाल, सिन्ध, राजस्थान मैसूरादि प्रदेश।

रा० सं०—एक उड़नशील तैल विशेष, गोंद राल जातीय द्रव्य (Resin) और एक तिक्त सत्व।

८९. गुडूची (अमृता)

उ० स्थ०—भारत, लंका और बर्मा के उष्ण प्रदेश।

रा० सं०—ताजी छाल में निम्न सत्व पाये गये हैं—(१) एक स्फटिकीय सत्व गिलोइन (Giloin), (२) गिलोईनीन (Giloinin) (३) तिक्त सत्व (४) गिलोस्टरोल (Gilosterol) (५) बेरबेरिन (Berberine) तथा मोम सम पदार्थ।

९०. गुंजा (रक्तिका)

उ० स्थ०—हिमालय से दक्षिण पर्यन्त समग्र भारत के वन प्रदेश और लंका।

रा० सं०—बीजों में एक विषैला सत्व हिमो ग्लुटिनीन (Haemoglutinin) तथा एल्ब्युमिनीय सत्व एब्रिन (Abrin)। यह एब्रिन ही इसका वीर्य (Active Principle) है और इसके प्रभाव का कारण है। एरण्ड तैल के 'रिसुन' सत्व सम इसकी भी क्रिया होती है। मूल में १५% तक इसकी यष्ठी सत्व ग्लिसरायझिन (Glycerrhizine) रक्त, एक सत्व तथा ८% तक एक राल जातीय सत्व पाया जाता है। पत्तों में लगभग १०% तक मधु यष्ठी सत्व और एब्रिन भी उपलब्ध होती है। बीज लाल, बीजों के छिलकों में एक रंजक द्रव्य पाया जाता है।

९१. गोक्षुरु

उ० स्थ०—भारत के उष्ण प्रदेश और समशीतोष्ण प्रदेशों में सर्वत्र। तिब्बत में ११,००० फीट की ऊँचाई तक उपलब्ध।

रा० सं०—फलों में एक क्षारोद के अल्पांश ३-५% तक एक स्थिर तैल-विशेष, सुगन्धित तैलांश, राल जातीय द्रव्यांश और शोरक प्रभूत मात्रा में उपस्थित है।

९२. (च) चणक

उ० स्थ०—सर्वत्र।

रा० सं०—बीजों से नत्रजन गैस, एल्ब्युमिनोइड, वसा, कार्बोज, फास्फोरिक अम्ल और पत्तों में सेवाम्ल (Malic Acid) उपलब्ध।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

९३. चन्दनत्रयम् (अ) श्वेत चन्दन

उ० स्थ०—मैसूर और उसके समीपवर्ती प्रदेश १,५०० फीट की ऊँचाई पर्यन्त उत्पन्न।

रा० सं०—चन्दन तैल, जिसका प्रधान उपादान है (९०%) 'सेन्टालोल' (Santalol)। रासायनिक विश्लेषण द्वारा तेरह प्रकार के भिन्न-भिन्न हैं।

९४. (आ) रक्तचन्दन

उ० स्थ०—श्वेत चन्दनवत्।

रा० सं०—रक्तवर्ण के सत्व सेन्टोलिकाम्ल (Santolic Acid) और डीसोक्सी सेन्टेलीन (Desoxysantalin नामक दो सत्व और वर्ण रहित तीन स्फटिकीय सत्व—(१) टेरोकार्पिन (Pterocarpin) (२) होमो टेरोकार्पिन (Homopterocarpin) सेन्टल (Santal) नामक सत्व उपलब्ध होते हैं।

९५. पत्तंगम् (कुचन्दनम्)

उ० स्थ०—भारत के पूर्वी तथा पश्चिमी भाग।

रा० सं०—एक सुगन्धित तैल के अंश विशेष तथा रक्त वर्ण रंजक द्रव्य सेपान (Sappan) माचिकाम्ल (Gallic Acid) कषायाम्ल (Tannic Acid) सेपान के गुण हिमोटोक्सिलिन (Haemotoxylin) सम है।

९६. चन्द्रशूर (Water cress)

उ० स्थ०—सर्वत्र उद्यानों में उपलब्ध।

रा० सं०—बीजों में एक राल जातीय उड़नशील तैल (A Volatile Essential oil) एक वसा जातीय तैल Fatty Oil) तथा एक प्रभावक वीर्य-विशेष (Active Principle), पत्रों में आयोडीन, लोह, फास्फोरस तथा पोटाश के यौगिक, एक तिक्त सत्व तथा प्रभूत मात्रा में 'गन्धक' उपलब्ध होता है।

९७. चाय

उ० स्थ०—मूलतः यह चीनी है। अब भारत में आसाम, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मद्रास, केरल, मैसूर और पंजाब के पर्वतीय प्रदेश।

रा० सं०—पत्तों में ३० प्रतिशत तक एक स्थिर सुगन्धित तैल (जैतून तैलसम) जिसके कारण ही चाय में (सुगन्ध आती है। इसके अतिरिक्त टेनिक गैलिकाम्ल (Tannic Gallic Acid) के ही समान क्वरसेटीन (Quercetin) इसके प्रधान क्षारोद हैं। २.५ से ४% तक केफीन भी उपस्थित है। सेपोनिन थियोफायलिन (Theophylline) और थियोब्रोमाइड (Theo-Bromide) के अंश भी पाये गये हैं।

९८. चांगेरी-चुक्रा

उ० स्थ—उद्यानों में सर्वत्र उत्पन्न।

रा० सं०—इसमें आक्सलेट ऑफ पोटेशियम (Oxalate of Potassium) प्रभूत मात्रा में पाया जाता है।

९९. चित्रक

उ० स्थ०—इसके ४ प्रकार हैं। चारों ही भारत के उष्ण प्रदेशों में बंगाल, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, दक्षिण भारत और लंकादि में उपलब्ध।

रा० सं०—सभी के मूल में कटुरसीय स्फटिकीय सत्व प्लमबोगीन (Plumbogin) नामक त्वचा क्षोभक सत्व पाया जाता है। यह पीले वर्ण का तथा सूचिकाकार स्फटिकों के रूप में मिलता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१००. छिक्किका

उ० स्थ०--भारत व लंका के मैदान के जलाशय में।

रा० सं०--एक सुगन्धित तैल और एक अस्फटिकीय सत्व (An Essential Oil and an Amorphous Bitter Principle)।

१०१. जटामांसी

उ० स्थ०—हिमालय के उच्च प्रदेश, ११,००० से १७,००० फीट की ऊँचाई तक काश्मीर से सिक्किम और भूटान के प्रदेश।

रा० सं०--३ से ४% तक एक उड़नशील तैल, जो एक विशेष मद्य जातीय पदार्थ तथा हायड्रोकार्बन (Hydrocarbon) का यौगिक है, उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त ३% तक जल अविलेय, अम्लीय और राल जातीय पदार्थ भी पाये गए हैं।

१०२. जम्बु (फलम्)

उ० स्थ०--मलेशिया, आस्ट्रेलिया एवं रूक्ष प्रदेशों को छोड़ भारत में सर्वत्र उत्पन्न।

रा० सं०—बीजों में जब्वाम्ल (Eugic Acid, Ellagico) एक सुगन्धित तैल, एक स्थिर तैल एवं राल जातीय एक पदार्थ उपलब्ध।

१०३. जयपालः

उ० स्थ०--समग्र भारत। प्रधानतः आसाम, बंगाल, वर्मा।

रा० सं०--बीजों में निम्न सत्व पाये गये हैं—(१) क्रोटोनोलीकाम्ल (Crotonoleic Acid), (२) टिग्लिकाम्ल (Tiglic Acid), (३) क्रोटोनोल (Crotonol)। ये रेचक तो नहीं है, किन्तु त्वचा क्षोभक अवश्य हैं। एक वसा जातीय स्थिर तैल, इसके विरेचक गुण हेतु है। अनेक उड़नशील अम्लों के अंश इसकी गन्ध का कारण है।

१०४. जलकुम्भी (Duck Weed)

उ० स्थ०—सरोवरों में सर्वत्र स्वयम्भू रूप में उत्पन्न।

रा० सं०—सोडियम, पोटेशियम तथा चूने के यौगिक, लोहांश एल्ब्युमिन, सिलिसिकाम्ल (Silicic acid) राख में पोटेशियम क्लोराइड तथा सल्फेट के अंश भी उपस्थित पाये गये हैं।

१०५. जातिफलम्-जातिपत्री

उ० स्थ०—मूलतः मलेशिया, इण्डोनेशिया, सिंगापुर, लंका आदि प्रदेश। अब दक्षिण भारत में स्वल्पमात्रा

रा० सं०—जयफल में ५-१५% तक एक उड़नशील तैल, (जो इसके गुणों का कारण है) २५-४० प्रतिशत तक पीले वर्ण का मक्खन समान स्थिर तैल। इसमें जातिफलाम्ल (Myristic acid) एवं अल्पांश में अन्य अम्ल, प्रजीवणक (Protein) वसा, श्वेतसार और पिच्छिल द्रव्यों के अंश भी उपलब्ध। मायरिस्टीसेन्स (Myristicence) मायरिस्टीकोल (Myristicol) नामक एक सुगन्धित तैल ८-१६% तक पाया जाता है।

१०६. जीरकद्वयम् (अ) कृष्ण जीरक

उ० स्थ०—उत्तरी और मध्य यूरोप तथा भारत हिमालयीय प्रदेश, ४,००० से १२,००० फीट की ऊँचाई पर्यन्त इसकी खेती की जाती है।

रा० सं०—एक सुगन्धित तैल-विशेष, जो डी० कार्वोन (D. Carbone ६०%) डी० लिमोनिन (D.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Limonine) तथा अत्यल्पांश में डी हायड्रोकार्वोन (D. Hydro-carvone) और डी हायड्रोकार्वोल (D. Carvol) के यौगिक हैं। अर्क में कुछ अम्ल तथा मद्यांश भी पाया जाता है।

१०७. (आ) श्वेत जीरकम्

उ० स्थ०—पंजाब, उत्तर प्रदेश आदि में इसकी खेती की जाती है। दक्षिण पूर्वी यूरोप, उत्तरी अफ्रीका, पूर्वी चीन भी इसकी कृषि करते हैं।

रा० सं०—बीजों में २-५% तक एक उड़नशील तैल उपस्थित है जो प्रधानतया क्युमाल्डेहाइड (Cumaldehyde) तथा स्वल्पांश में टर्पेन्स (Terpenes) का यौगिक है। इसके अतिरिक्त ९०% अर्द्धतरल वसा जातीय तैल और ६-७% पेन्टोसेन (Pantosan) नामक सत्व भी पाया जाता है।

१०८. ज्योतिष्मती

उ० स्थ०—भारत और लंका के पर्वतीय प्रदेश।

रा० सं०—बीजों में कृष्ण वर्ण तैल, एक तिक्त राल जातीय सत्व, टेनिन, क्षार तथा कुछ रंजक द्रव्य।

१०९. (त) ताम्रकूट (तम्बाकू)

उ० स्थ०—मूलतः अमेरिकन है, किन्तु अब भारत में सर्वत्र इसकी कृषि होती है।

रा० सं०—एक वर्णरहित तरल क्षारोद बिषैला निकोटिन (Nicotine) उत्तम तम्बाखू में यह कम अंश निकृष्ट रूप में ७% तक भी पाया जाता है और निकोटीआनीन (Nicateanin) एलब्युमिन और गोंद के अंश। इसकी राख में पोटेशियम, अमोनियम और कैल्शियम, कैल्शियम के सल्फेट, नाइट्रेट, क्लोराइड्स, और फास्फेट पाये जाते हैं।

११०. तालीसपत्र

उ० स्थ०—काश्मीर आदि हिमालय के उच्च प्रदेश।

रा० सं०—एक सुगन्धित तैल और एक स्फटिकीय क्षारोद।

१११. तिलम्

उ० स्थ०—उष्ण प्रदेशों में सर्वत्र खेती की जाती है।

रा० सं०—तिलों में ४७-५०% वसा जातीय तैल, २०%, प्रजीवणक (Protein) कोलिन (Choline) अल्पांश, शर्करा, सीसेमिया (Sesamia) सीसेमोलिन (Sesamoline), लिपेज (Lipase) तथा निकोटिनिक अम्ल के अंश भी उपलब्ध होते हैं।

११२. तुलसीद्वयम् (तुलसी-वनतुलसी)

उ० स्थ०—भारत तथा लंका में सर्वत्र।

रा० सं०—एक सुगन्धित तैल विशेष, यवानी सत्व थाईमोल (Thymol) इयुगेनोल (Euganol) और मेथाइल चविकोल (Methyl Chavicol) सत्व उपलब्ध होते हैं।

११३. तुम्बुरु (तेजबल)

उ० स्थ०—हिमालय के मध्यवर्ती प्रदेश, नेपाल, भूटान, शिमलादि।

रा० सं०—छाल में बरबेरिन् (दारुहरिद्रा सत्व) सम एक उड़नशील तैलांश और राल जातीय द्रव्य, फल के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

झेन्थोक्सीलिन (Zanthoxylin) नामक एक पीला कटुरसीय, स्फटिकीय सत्व, स्फेटपेन्टीन सम एक सुगन्धित तैल उपलब्ध।

११४. तुवरकम्

उ० स्थ०—आसाम, सिक्किम, भूटान, और हिमालय के निचले प्रदेश।

रा० सं०—इसकी कई जातियाँ हैं। सभी में चालमोग्रा नामक या तत्समान एक स्थिर तैल उपलब्ध होता है। यह (१) गायनोकार्डिक अम्ल (Gynocardic Acid) १०%, (२) हिडनोकार्पिक अम्ल (Hydnocarpic Acid) का योग है। इसमें एक अन्य प्रभावी वीर्य (Active Principle) पाया जाता है। जिसमें पामिटिकाम्ल (Palmitic Acid २५%), और हायपोगोइक अम्ल (Hypogoic Acid ४%) उपलब्ध होता है। विश्लेषण द्वारा कोसिनिक अम्ल (Cocinic Acid. (2.5%) पाया जाता है।

११५. तूण (तूणः)

उ० स्थ०—हिमालय के निचले प्रदेश, मध्य तथा दक्षिण भारतीय प्रदेश।

रा० सं०—इसमें कुछ राल जातीय सत्व, गोंद तथा निक्टेन्थिन (Nyctanthin) नामक सत्व पाया जाता है।

११६. त्रायमाणा

उ० स्थ०—काश्मीर, पंजाब, हिमाचलादि समशीतोष्ण प्रदेश।

रा० सं०—डेल्फिनीन (Delphinine) स्टेफीसग्रीन (Staphise grine) नामक दो सत्व। मूल में "डिल्फो क्युरेनिन (Delpho Curanine) नामक सत्व भी उपस्थित है।

११७. त्रिवृत् (निशोथ)

उ० स्थ०—यह लता भारत में प्रायः ३,००० फीट की ऊंचाई तक पाई जाती है। आस्ट्रेलिया, लंका और मलाया में भी पायी जाती है।

रा० सं०—मूल और काष्ठ में दो प्रकार के सत्व पाये जाते हैं—(१) टरपेन्थिन (Terpenthine) ईथर में अविलेय है। (२) राल जातीय सत्व जो ईथर विलेय है। इनके अतिरिक्त उड़नशील तैल, वसा जातीय सत्व, एल्ब्युमिन श्वेतसार, पीतवर्ण रंजक द्रव्य और लोह के अंशमात्र भी उपलब्ध।

११८. दद्रुघ्न

उ० स्थ०—भारत के उष्ण प्रदेश।

रा० सं०—क्रायसोफेनिकाम्ल (Crysophenic Acid), एक केथारटिन सम सत्व। रक्तरंजक द्रव्य, कुछ धात्वंश तथा इमोडिन् ग्लुकोसाइड (Emodine Glucosyde) नामक सत्व उपलब्ध।

११९. द्राक्षा

उ० स्थ०—अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान, पश्चिमोत्तर भारत काश्मीरादि प्रदेश।

रा० सं०—फलों में प्रधानतः द्राक्षाशर्करा, टेनिन, चिंचाम्ल (Tartaric Acid) सेवाम्ल (Malic Acid) निम्बुकाम्ल (Citric Acid) पोटेशियम तथा सोडियम क्लोराइड्स के लवण एलब्युमिन के अंश।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१२०. दड़िमफलत्वक्

उ० स्थ०—भारत में सर्वत्र इसकी खेती की जाती है। ३,००० से ६००० फीट की ऊँचाई तक हिमालय के जंगली रूपों में।

रा० सं०—फलों के छिलकों में २८% तक 'माचिकाकषायाम्ल' (Gallo Tannic acid) तथा पीले वर्ण का रंजक द्रव्य उपलब्ध। मूल तथा मूल की छाल में भी उक्त अम्ल २२% तक तथा कुछ उड़नशील क्षारोद पाये गये हैं।

१२१. दारुसिता

उ० स्थ०—चीन, जमैका, लंका और दक्षिणी भारत।

रा० सं०—छाल में १०% तक उड़नशील तैल, टैनिन तथा स्निग्ध पदार्थ।

१२२. दारुहरिद्रा

उ० स्थ०—हिमालय प्रदेश ६,००० से १०,५०० फीट तक की ऊँचाई तक और दक्षिणी नीलगिरि पर्वतमाला।

रा० सं०—इसकी अनेक जातियों में निम्न सत्त्व प्रधान रूप से पाये जाते हैं।

(१) बर्बेरिन् (Berberin), (२) आक्सीकेन्थीन (Oxycanthina), (३) बर्बेमाइन (Berbemine) तथा (४) पामेटिन (Palmatine) जाट्रोर्झाइन (Jatrorrhizine) कोलम्बेमाइन (Columbamine) हायड्रोस्टिन जल विलेय है। इनमें प्रथम सत्व जल विलेय है। यही इसके प्रभाव का कारण है।

१२३. दुग्धिका लघु (Small)

उ० स्थ०—भारत के सभी प्रदेश।

रा० सं०—इसमें जल विलेय सत्व, माचिकाम्ल (Gallic acid) तथा क्वर्सेटीन, शर्करा, और अस्फटिकीय ग्लुकोसाइड, गोंद, उड़नशील तैल तथा जम्बुकाम्ल और मोम के अंश भी उपस्थित।

१२४. दुरालभा (यवासा)

उ० स्थ०—अफ्रीका, अरब, मिस्र, आदि प्रदेश जांगल प्रदेश, तथा भारत में राजस्थान, पंजाब, सिन्ध और सौराष्ट्र।

रा० सं०—इसके सार घनसार 'यवास शर्करा (Manna) में शर्करा प्रभूतांश में उपस्थित।

१२५. द्वीपान्तरवचा (चोपचीनी)

उ० स्थ०—चीन, जापान।

रा० सं०—मूल में वसा, शर्करा, ग्लुकोसाइड, रंजक द्रव्य, सेपोनिन, श्वेतसार, और गोंद के अंश।

१२६. देवदारु

उ० स्थ०—उत्तरी हिमालय प्रदेश, उद्यानों में भी शोभार्थ लगाया जाता है।

रा० सं०—तारपीन (तरल स्राव Terpentine) सम गहरे रंग का तैल उपलब्ध।

१२७. द्रोणपुष्पी

उ० स्थ०—हिमालय से लंका पर्यन्त के प्रदेश।

रा० सं०—पुष्पों में एक सुगन्धित पदार्थ तथा एक क्षारोद के अंश उपलब्ध होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१२८. (घ) धत्तूरद्वयम (धत्तूर)

उ० स्थ०—समग्र भारत, मैक्सिको और इंग्लैण्ड में खेती भी की जाती है।

रा० सं०—पत्रों में हायोसायमिन (Hyoscyamine) और हायोसिन (Hyoscine) नाम के क्षारोद और बीजों में इसके अतिरिक्त एक राल जातीय द्रव्य (Resin) तथा एक स्थिर तैल भी उपलब्ध होता है।

१२९. पर्वतीय धत्तूर (Stramonium)

उ० स्थ०—हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेश, काश्मीर से सिक्किम तक ९,००० फीट की ऊँचाई तक मध्य और दक्षिणी भारत, अमेरिका, यूरोपादि में इसकी खेती की जाती है।

रा० सं०—पत्तों में हायोसायमिन (Hyoscyamine), एट्रोपीन (Atropine) तथा हसोसीन नामक सत्व पाये जाते हैं। उनके अतिरिक्त क्लोरोजैनिक अम्ल (Chlorogenic acid) और एक काले रंग का सुगन्धित तैल भी अल्पमात्रा में प्राप्त होता है। बीजों में १५-३० प्रतिशत तक एक स्थिर तैल।

१३०. धातकी

उ० स्थ०—समग्र भारत विशेषतः दक्षिणी भारत।

रा० सं०—पुष्पों में २० प्रतिशत तक टैनिक अम्ल उपलब्ध।

१३१. धान्यकम्

उ० स्थ०—समग्र भारत, यूरोप, मोरक्को आदि देशों में खेती की जाती है।

रा० सं०—केरियन्ट्रोल ४५-६५%, नामक सत्व प्रधान, एक उड़नशील तैल (१०% तक) तथा टर्पिनीन, जरेनिओल, बोरनिओल नामक मद्य जातीय सत्वों के अंश मात्र।

१३२. नागकेसर

उ० स्थ०—पूर्वी हिमालय, आसामादि ५००० फीट की ऊँचाई तक, पूर्वी तथा पश्चिमी घाट और अण्डमान द्वीप समूह।

रा० सं०—पुष्प, कलिकाओं, तथा फलों में एक अतिसुगन्धित तैल, टेनिन एवं दो प्रकार के तिक्त सत्व। बीजों में एक स्थिर तैल भी उपलब्ध।

१३३. नागवेल (ताम्बूल)

उ० स्थ०—भारत, मलेशिया और लंका के उष्ण तथा आर्द्र प्रदेश।

रा० सं०—एक सुगन्धित तैल, शर्करा, श्वेतसार, टेनिन और डिआस्टेज (Diastage) नामक सत्व।

१३४. नागफणी (थोहर)

उ० स्थ०—मूलतः अमेरिकन है। अब भारत के जंगलों में सर्वत्र।

रा० सं०—फलों में कार्बोज (Carbohydrate ४२%), सौत्रिकतन्तु ३२% (Woody Fibres) एल्ब्युमिनोइड्स (६.२५%), वसा ६३%, मूल में वसा, निम्बुकाम्ल, शर्करा, राल जातीय पदार्थ और मैंगनीज के अंश पाये जाते हैं।

१३५. नाडी हिंगु

उ० स्थ०—पूर्वी मध्य और दक्षिण भारत।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रा० सं०—गार्डेनिन (Gardenin) नामक स्फटिकीय सत्व और डिकेमाली नामक अन्य सत्व, पिच्छिल पदार्थ हरितवर्ण जातीय सत्व ।

१३६. नारंगफलत्वक्

उ० स्थ०—मधुर या मधुराम्ल रसयुक्त फल सर्वत्र भारत में उपलब्ध ।

रा० सं०—नारंगी रस शर्करा, निम्बुकाम्ल (Citric Acid) निरिन्द्रिय लवण (Inorganic Acid) खनिज लवण । यथा पोटेशियम साइट्रेट प्रधान रूप से पाया जाता है । फल के छिलकों में विविध अम्लों, संयुक्त उड़नशील तैल, राल, पेक्टिन (Pectin) राल जातीय पदार्थ, स्थिर तैल, तथा उड़नशील तैलों के अंश स्वल्पांश, टेनिन सम सत्व, तथा प्रभूत मात्रा में जीवनीय बी और सी उपलब्ध होते हैं । पेक्टिन नामक द्रव्य अधिक मात्रा में व्यवसायार्थ भी प्राप्त किया जाता है । कटु रस वाले नारंग फल में भी प्राप्त किया जाता है । कटु रस वाले नारंग में भी यही सत्व उपस्थित है । छिलके का श्वेत भाग अधिक तिक्तता लिए होता है ।

१३७. निर्गुण्डी

उ० स्थ०—समग्र भारत, बर्मा ।

रा० सं०—पत्रों में एक वर्ण रहित सुगन्धित तैल, राल जातीय द्रव्य । फलों के बीजों में एक अम्ल राल जातीय द्रव्य (Acid Resin), सेवाम्ल (Malic Acid), एक रंजक द्रव्य और एक क्षारोद उपलब्ध होते हैं ।

१३८. पनसः

उ० स्थ०—समग्र भारत ।

रा० सं०—फल और बीजों में एल्ब्युमिनोइड, कार्बोज तथा कुछ सौत्रिक तन्तु और लगभग ६४% आर्द्रता (moisture) पायी जाती है ।

१३९. पर्पटद्वयम् क्षेत्र पर्पट (Oldenlandia)

उ० स्थ०—भारत, लंका, जावा, सुमात्रा आदि प्रदेश में ६,००० फीट की ऊँचाई तक उत्पन्न ।

रा० सं०—दो प्रकार, किन्तु समरूपी क्षारोद (१) बाईफ्लोरिन (Biflorine) और बाईफ्लोरोन (Biflorone) तथा कुछ रंजक द्रव्य ।

१४०. वनवृन्ताक गिरिपर्पट (Podophyllum)

उ० स्थ०—हिमालय के अन्तरीय अंचलों के काश्मीर आदि प्रदेश ९,००० से १४,००० फीट की ऊँचाई तक ।

रा० सं०—कन्द में से १०% तक पोडोफायलिन (Podophyllin) नामक राल जातीय सत्व, यह पोडोफायलोटोक्सिन (Podophyllotoxin) क्वेर्सेटीन (Quercetin) एवं पोडोफायलोरेसिन (Podophylloresin) नामक तीन सत्वों का योग है ।

१४१. पलाण्डुः

उ० स्थ०—समग्र भारत में कृषि की जाती है ।

रा० सं०—कन्द में गन्धक बहुल कटु रस युक्त उडनशील तैल, ११ प्रतिशत एल्ब्युमिन के योग, कार्बोज ७८-५३% के अंश उपलब्ध । ताजे लालकन्द में ८६% आर्द्रता (moisture) पायी जाती है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१४२. पलाश बीज

उ० स्थ०—भारत, बर्मा, लंका में सर्वत्र ४,००० फीट की ऊँचाई तक।

रा० सं०—बीजों में १८% स्थिर तैल १९% एल्व्युमिनीय सत्व तथा शर्करा के अंश।

१४३. पाठा (अम्बष्ठा)

उ० स्थ०—यह लता भारत, लंका, एशिया और पूर्वी अफ्रीका तथा अमेरिका के उष्ण प्रदेश में पायी जाती हैं।

रा० सं०—मूल में बेर्बेरिन (Berberine) नामक क्षारोद तथा एवं स्फटिकीय सत्व, डीमेटीन (Deymatin) तथा राल जातीय सत्व उपलब्ध।

१४४. पारसीक यवानिका

उ० स्थ०—हिमालय के समशीतोष्ण-मध्यवर्ती भाग, ५,००० से १९,००० फीट की ऊंचाई तक, आगरा अजमेर, महाराष्ट्र तथा नीलगिरि पर्वतों पर इसकी खेती की जाती है। पश्मिोत्तर एशिया, यूरोप, तथा दक्षिणी अफ्रीका तथा पंजाब, सिन्ध और पठारी प्रदेशों में नदी तट पर उत्पन्न।

रा० सं०—इसमें हायोसायमिन, क्षारोद प्रधान है। स्वल्प मात्रा में हायोसिन् तथा बोलाडोना (सूची) पत्रों से प्राप्त उड़नशील तैल सम एक तैल विशेष भी उपलब्ध होता है।

१४५. पिप्पली

उ० स्थ०—भारत, लंका मलक्का के वनों में स्वयम्भू रूप में तथा खेती द्वारा भी उपलब्ध। मूलतः यह फिलिपाइन और बंगाली है।

रा० सं०—पाइपेरिन् (Piperine ५-६% तक) तथा पाइपेरिडीन (Piperidine) नामक सत्वों के योग रूप में उड़नशील तैल। कटु रसीय चविसिन (Chavicine), कुछ श्वेतसार, तथा स्थिर तैलांश भी उपस्थित।

१४६. प्रियालः

उ० स्थ०—बर्मा, भारत के शुष्क और उष्ण प्रदेश।

रा० सं०—एल्ब्युमिनीय क्षार २८%, पिच्छिल तत्व २५%, तैल, सौत्रिक तन्तु आदि ३५.५% बीजों में प्रियाल तैल भी उपलब्ध होता है।

१४७. पीतमूला (रेवन्दचीनी)

उ० स्थ०—इसको दो जातियाँ हैं। दोनों ही काश्मीर, नेपाल, भूटान, सिक्किम, हिमांचल प्रदेश, आदि हिमालय के प्रदेश ११,००० से १४,००० फीट की ऊँचाई पर्यन्त उपलब्ध।

रा० सं०—मूल कन्द में निम्न सत्व पाये गये हैं—(१) क्रायसोफेनिकाम्ल (Crysophenic Acid) ३ से ३.५%, (२) केथरटिकाम्ल (Cathartic Acid) ३ से ३.५%. (३) सेन्द्रियाम्ल (Organic Acid) २.२ से ३.३%, (४) मद्यसार विलेय राल जातीय तत्व (Resin) २.२%। एक पीतरंजक द्रव्य और वसा के अंशमात्र।

१४८. पीलु

उ० स्थ०—पंजाब, सिन्ध, राजस्थानादि के जंगल प्रदेश।

रा० सं०—बीजों में ४४% तक वसा जातीय गाढ़ा तैल तथा ट्रिमेथीलेमाइन (Tri-Methylamine) क्षारोद। मूलत्वक में साल्वेडोरिन (Salvadorine) नामक क्षारोद तथा फ्लोरिन के कुछ योगांश।

१४९. पुदिनम् (Mentha)

उ० स्थ०—काश्मीर से कन्या कुमारी तक सर्वत्र उपलब्ध। स्वयंभू रूप में तथा कृषि द्वारा।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रा० सं०—पत्तों में एक उड़नशील तैल पाया जाता है। उससे पिपरमेन्ट या मन्थोल नामक सत्व उपलब्ध होता है। अत्यल्पमात्रा में कर्पूर भी प्राप्त। टेनिन, गोंद तथा रालीय सत्व के अल्पांश।

१५०. पुनर्नवाद्वयम् (रक्त तथा श्वेतपुष्पा)

उ० स्थ०—समग्र भारत, लंका, पाकिस्तान आदि उष्ण प्रदेश।

रा० सं०—दोनों समान वीर्य (Active Principle) पाये जाते हैं। यह है पुनर्नवीन (Punarnavin)। इनके अतिरिक्त पोटेशियम के नाइट्रेट सल्फेट और क्लोराइड योग एक स्थिर तैल।

१५१. पुष्करमूलम् (काश्मीरम्)

उ० स्थ०—काश्मीर, अफगानिस्तान, ईरान।

रा० सं०—एक उड़नशील तैल, श्वेतसार, रालीय सत्व, टेनिन एवं सुगन्धित तैल।

१५२. पूगफलम् (सुपारी)

उ० स्थ०—बंगाल, तथा दक्षिणी भारत के समुद्रवर्ती प्रदेश २५० मील अन्दर तक ३०,००० फीट की ऊँचाई पर्यन्त। लंका, बर्मा, मलेशिया, इण्डोनेशिया इत्यादि प्रदेश।

रा० सं०—फलों में टेनीन, मचिकाम्ल (Gallic Acid), एक स्थिर तैल, गोंद, अल्प प्रमाण में एक उड़नशील तैल के अतिरिक्त लिगनीन (Lignin), एरेकेडीन (Arecaidine) एरेकोलीडीन (Arecolidine), ग्वायबेसिन द्रव्य भी पाया जाता है। यह उष्ण जल विलेय, किन्तु शीतल जल और ईथर में अविलेय है।

१५३. बाकुलः

उ० स्थ०—समग्र भारत, विशेषतः बर्मा और दक्षिणी भारत।

रा० सं०—छाल में टेनिन, मोम, रंजक द्रव्य, श्वेतसार तथा कोटेचोक (Caoutechouc) नामक सत्व के अंश, पुष्पों में एक सुगन्धित उड़नशील तैल, बीजों में एक स्थिर तैल, फल मज्जा में शर्करा सेपोनिन प्रभूत मात्रा में में उपलब्ध होता है।

१५४. बब्बूलः (किंकिरत)

उ० स्थ०—३,००० से ४,००० फीट की ऊँचाई तक सर्वत्र उपलब्ध।

रा० सं०—छाल तथा फलियों में प्रभूत मात्रा में कषायाम्ल (Tannic Acid), निर्यास (गोंद) में अरेबिनोस (Arabinose), अरेबिकाम्ल (Arabinosic Acid), कैल्शियम, मैग्निशियम, पोटेशियम, शर्करा तथा सेवाम्ल (Malic Acid) के अंश भी पाये जाते हैं।

१५५. बला

उ० स्थ०—समग्र भारत, अतिशीत स्थानों को छोड़कर।

रा० सं०—सोमसत्व, एफेड्रीन (Ephedrine), एक क्षारोद विशेष उपलब्ध।

१५६. ब्राह्मीद्वयम्

उ० स्थ०—भारत, लंका, दक्षिणी अफ्रीका, आदि देशों, आनूप प्रदेश और नदी, नालों, सरोवरों के प्रदेश।

रा० सं०—प्रधानतः इसमें ब्राह्मीन हायड्रोकोटिलीन (Hydrocotylin) और एशियाटिकोसाइड पाये जाते हैं। स्वल्पांश में एक उड़नशील तैल, एक स्थिर तैल, रालीय सत्व, वेलेरिन (Vellerine), पेक्टिकाम्ल, एस्कॉर्बिक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अम्ल, (Pectic and Ascorbic Acid) एवं शुष्कपत्रों में सेण्टोलिक अम्ल (Centolic Acid) और सेन्टालिकाम्ल (Centallic Acid) भी पाये जाते हैं।

१५७. नीरब्राह्मी (विरभी)

उ० स्थ०—आनूप प्रदेश और जल बहुल प्रदेश, पंजाब से सीलोन पर्यन्त। १४,००० फीट की ऊँचाई तक।

रा० सं०—इसमें प्रधानतः ब्राह्मिन नामक क्षार पाया जाता है।

१५८. बिम्बी (रक्तफला)

उ० स्थ०—आनूप प्रदेश में सर्वत्र उपलब्ध।

रा० सं०—स्वरस में एक पाचक सत्व (Enzyme) एवं क्षारोद विशेष के अंश। मूल में एक राल जातीय पदार्थ श्वेतसार, शर्करा, गोंद वसा, सत्व और सेन्द्रियाम्ल।

१५९. बिल्वः

उ० स्थ०—यह सुपरिचित वृक्ष उद्यानों में सर्वत्र लगाया जाता है। स्वयम्भू रूप में सर्वत्र जंगलों में ४,००० फीट की ऊँचाई तक समग्र भारत में।

रा० सं०—अपक्व फल में मार्मेलोसिन (Marmelosin) विशिष्ट गन्धयुक्त तैल, एक स्थिर तैल, पेक्टिन, शर्करा, पिच्छिल पदार्थ, पक्व फलों में टेनिन के अंश, काष्ठ में सोडियम के लवण, फास्फेटस ऑफ आईस, कैलशियम कार्बोनेट, मेगनेशियम और लोह के अंश भी उपलब्ध होते हैं।

१६०. बोलम् (निर्यास)

उ० स्थ०—उत्तर-पूर्वी अफ्रीका, अबेसीनिया, दक्षिणी अरब, ईरान और थाईदेश।

रा० सं०—इसमें मिर्होल (Myrrhol) नामक एक उड़नशील, सुगन्धित तैल ५-१०%, रालीय द्रव्य २७-५०%, निर्यास ३०-६०% तथा एक तिक्त सत्व-विशेष, केलशियम फास्फेट्स कार्बोनेट्स आदि के यौगिकों के अंश।

१६१, बृहद्दन्ती

उ० स्थ०—भारत के पर्वतीय प्रदेशों में सर्वत्र।

रा० सं०—बीजों में करक्युसिन (Curcucine) नामक विषैली एल्ब्युमिन का योग जो एरण्डबीज के रिसिन नामक सत्व सम गुणवाला है। केसीन, खनिज लवण, शर्करा, श्वेतसार एक स्थिर तैल, तथा जाट्रोफिकाम्ल (Jatrophic Acid) और नत्रजन के योग उपलब्ध होते हैं।

१६२. (भ) भल्लातक

उ० स्थ०—हिमालय के अधोभाग तथा दक्षिणी भारत के पर्वत प्रदेश।

रा० सं०—फलों, बीजों में अनाकार्डोल (Anacardol) नामक सत्व तथा काला तैल-विशेष।

१६३. भूम्यामलकी

उ० स्थ०—लंका भारत के जलबहुल प्रदेश।

रा० सं०—फायलेन्थीन (Phyllanthin) नामक सत्व उपस्थित।

१६४. भृंगराज (मार्कव)

उ० स्थ०—समग्र भारत, जलबहुल प्रदेश।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रा० सं०—एक्लोप्टिन (Ecloptine) नामक क्षारोद तथा रालीय पदार्थ।

१६५. मदयन्तिका (मेंहदी) (Henna)

उ० स्थ०—समग्र भारत।

रा० सं०—पत्तों से हेन्ना या हिन्ना (Henna) नामक रंजक द्रव्य (१२-१५%), हेन्नो टेनिकाम्ल (Hinno Tanic Acid), पुष्पों बीजों में एक सुगन्धित तैल है।

१६६. मधुयष्टि (Liquorice)

उ० स्थ०—काश्मीर, बिलोचिस्तान, चित्राल, बर्मा, अण्डमान द्वीप समूह, ईरान, हिमालय के मध्यवर्ती प्रदेश।

रा० सं०—काष्ठ में मधुयष्टीन (Glycyrrhizin) ५-१०%, मधुर, श्वेत, स्फटिकीय सत्व उपलब्ध होता है। यह प्रधानतः कैलशियम, पोटेशियम का यौगिक है। उत्तम सत्व इक्षु शर्करा की अपेक्षा ५० गुणा अधिक मधुर है। मूल में ५-१० प्रतिशत तक ड्राक्षेज, और इक्षुशर्करा (Dextrose) ३०% तथा ३०% तक सम्मिलित रूप से श्वेतसार, प्रजीवणक (Protein) वसा, रालीय पदार्थ और एस्पेरेजिन (Asparagin) १०% भी उपलब्ध होता है।

१६७. मधूक

उ० स्थ०—समग्र भारतीय प्रदेश १,००० से ५,००० फीट तक की ऊँचाई पर्यन्त। प्रमुख रूप से मध्य भारत, महाराष्ट्र, गुजरात, दक्षिणी भारत के प्रदेश।

रा० सं०—बीजों में ५०-५० प्रतिशत पर्यन्त मक्खन सम, बुरे स्वादवाला अर्द्ध तरल पीले वर्ण का स्थिर तैल। पामिटिकाम्ल (Palmitic Acid) २६% तक तथा अन्य अनेक अम्लों का योग है। शुष्क पुष्पों में ५२% तक शर्करा, एलब्युमिनाड्स भी पाया जाता है। इस शर्करा के कारण ही यह मद्यासव निर्माण में उपयोगी है।

१६८. मरिचद्वयम्, (अ) कृष्ण मरिचम् (ऊषणम्) (Black Pepper)

उ० स्थ०—थाई देश, मलेशिया तथा दक्षिणी भारत।

रा० सं०—फलों में पाईपेरीन (Piperine) नामक वर्णरहित स्फटिकीय सत्व, ५-६% तक एक उड़नशील तैल १-२%, हरे में चेविसिन (Chavicine) ६%, पाईपेरीडीन (Piperidine), श्वेतसार ३०% और एक ईथरविलेय स्थिर तैल उपलब्ध होते हैं।

१६९. (आ) रक्त मरिचम् (Chillies, Cospicum)

उ० स्थ०—यह मूलतः अमेरिकन है। अब सर्वत्र इसकी कृषि भी की जाती है।

रा० सं०—फलियों में प्रधानतः केप्सिसीन (Capsicine) नामक वर्णरहित, स्फटिकीय, कटु और तीक्ष्ण सत्व के अतिरिक्त एक तरल क्षारोद, वसा जातीय तैल एवं लाल रंजक द्रव्य उपस्थित।

१७०. महानिम्ब (द्रेक)

उ० स्थ०—पश्चिमोत्तर भारत, पंजाब, सिन्ध, राजस्थान आदि तथा ईरान।

रा० सं०—छाल (अन्तः त्वचा) में टेनिन, शर्करा, हलके पीले वर्ण का अस्फटिकीय तिक्त राल जातीय सत्व विशेष प्राप्त।

१७१. माधिका (भाई)

उ० स्थ०—नदी तटों तथा दलदलीय प्रदेशों, पंजाब, उत्तर प्रदेशादि।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रा० सं—फलों में ४०% टंकणाम्ल (Tannic Acid) पाया जाता है।

१७२. मायाफलम्

उ० स्थ०—मूलतः ग्रीक (यूनान) देशीय है। सीरिया, ईरान तथा भारत के कुछ प्रदेशों में भी उत्पन्न। उद्यानों में शोभार्थ लगाया जाता है।

रा० सं०—फलों में ७०% तक माचिका कषायाम्ल (Gallo-Tannic Acid) पाया जाता जाता है।

१७३. मिश्रेया (Dill Seeds)

उ० स्थ०—भारत में सर्वत्र खेती की जाती है। स्वयभूरूप में भी उत्पन्न, यूरोप के भूमध्यसागर तटवर्ती प्रदेश।

रा० सं०—बीजों में ३-४% तक डिल-एपिओल (Dill-Apiol) नामक उड़नशील तैल तथा एनेथीन (Anethine) और कारवोन (Carvone) नामक सत्व भी उपलब्ध होते हैं।

१७४. मुण्डोतिका

उ० स्थ०—सरोवरों, नदियों और जलीय स्थलों में, खेतों में सर्वत्र स्वयम्भू रूप में उत्पन्न।

रा० सं०—स्फिरेन्थीन (Sphaeranthine) नामक तिक्त क्षारोद, तथा लाल वर्ण का एक सुगन्धित तैल।

१७५. मुस्तकम्

उ० स्थ०—जल बहुल स्थलों विशेषकर दक्षिणी भारत में।

रा० सं०—कन्द और मूल में वसा, शर्करा, गोंद, कार्बोज (सुगन्धित तैल) श्वेतसार, सोत्रिकलन तथा एल्ब्युमिन के यौगिक उपस्थित।

१७६. मूलकम्

उ० स्थ०—समग्र भारत।

रा० सं०—ताजी मूली में ९१% तक जलीयांश, शुष्क मूली में एल्ब्युमिनोइड १८%, विलेय कार्बोज (५२-५६%), सौत्रिक तन्तु ९-१०% पाये जाते हैं।

१७७. मूसलीद्वयम् (तालमूली) श्वेतमूसली

उ० स्थ०—पश्चिमी हिमालय, मध्य भारत, गुजरात, महाराष्ट्र।

रा० सं०—एस्पेरेगिन (Asparagin) नामक सत्व, काष्ठौज, पिच्छिल पदार्थ तथा एल्ब्युमिनीय द्रवांश।

१७८. कृष्णमूसली

उ० स्थ०—भारत तथा लंका के उष्ण प्रदेशीय जंगल प्रदेश।

रा० सं०—कन्द में टेनिन, पिच्छिल पदार्थ, वसा, श्वेतसार एवं रालीय द्रव्य, राख में कैलशियम ओक्जेलेट के लवण।

१७९. मेथिका

उ० स्थ०—स्वयम्भू रूप में काश्मीर, पंजाब एवं उत्तरीय भारत के अनेक प्रदेश। भारत के अतिरिक्त ईरान, अबेसीनिया, मिस्र और मोरक्को आदि देशों में भी कृषि की जाती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रा० सं०—बीजों में मेथिकीन ट्राइगोनेलिन (Tri-Gonellin) कोलिने (Choline) नामक सत्व, रंजक द्रव्य, ६% तक अर्धतरल स्थिर तैल और प्रजीवणक २२% एवं पिच्छिल पदार्थ उपस्थित।

१८०. मेषश्रृंगी (मधुनाशिनी)

उ० थ०—मध्य दक्षिणी और पश्चिमी भारत।

रा० सं०—शुष्क पत्तों में दो प्रकार के राल जातीय सत्व पाये जाते हैं—(१) प्रथम है मद्यविलेय, यह जिह्वा पर चिपचिपापन उत्पन्न करता है। द्वितीय-मद्य अविलेय 'गिम्नेमिकाम्ल (Gymnemic Acid) क्वर्सिटोल (Quercitol) नामक द्रव्यांश भी उपलब्ध।

१८१. (य) यवानीद्वयम्

उ० स्थ०—समग्र भारत में इसकी कृषि भी की जाती है। तदतिरिक्त यह यूरोप, मिस्र, अफगानिस्तान, पाकिस्तान आदि में भी सर्वत्र उपलब्ध है।

रा० सं०—फलों में ४-६% तक एक उड़नशील तैल-यवानी तैल-उपस्थित। इस तैल में थाइमल (Thymol) ३५-५०% तक उपलब्ध किया जाता है। साइक्लिक हायड्रोकार्बन (Cyclic Hydrocarbon), सायमीन (Cymene) तथा सरलस्राव टर्पेंटाइन (Terpentine) के अंश भी पाये जाते हैं। २५-३०% तक स्थिर तैल तथा १५-१६% तक प्रजीवणक (जीवनीय) भी उपस्थित पाये गये।

१८२. कीटमारीयवानी (चौहार) (Worms Seeds)

उ० स्थ०—७,००० से ११,००० फीट की ऊँचाई तक हिमालयीय प्रदेश, काश्मीर से कुमायूं तक, अफगानिस्तान, तिब्बत, ईरान, पाकिस्तानादि प्रदेश।

रा० सं०—पुष्पों में प्रधानतया सेन्टोनीन (Santonin) नामक तिक्त सत्व, उड़नशील तैल, तिक्त रालीय द्रव्य, बिटेइन (Betaine) तथा कोलीन (Cholin) के अंश भी उपस्थित। इस वनस्पति के अनेक भेद हैं। सभी में यह सत्व उपस्थित नहीं होता। काश्मीरज में अधिक मात्रा में २०% उपस्थित।

१८३. रक्तगृञ्जनकम (शलगम)

उ० स्थ०—सुपरिचित सर्वत्र, कृषि प्रधान तथा उत्तर भारत में इसकी खेती की जाती है।

रा० सं०—बीजों में लगभग ३५% कटु रसीय तैल तथा ऊपर हर भाग में पोटेशियम के योग पाये गये हैं।

१८४. राजादनः (क्षीरिणी)

उ० स्थ०—उत्तर भारत तथा महाराष्ट्र प्रदेश।

रा० सं०—छाल में टेनीन, रालीय सत्व, मोम, श्वेतसार, रंजक द्रव्य और कुछ धात्वंश। बीजों में एक स्थिर तैल और फलों में शर्करा, टेनीन, पेक्टिन रंजक द्रव्यांश तथा कोटचौक (Caoutechouc) उपलब्ध होते हैं।

१८५. राजिका-सर्षप (रक्त)

उ० स्थ०—एशिया, अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका तथा भारत में आसाम, बंगाल, पंजाब आदि प्रदेश।

रा० सं०—बीजों में २६-३५% तक कटु रसीय, तीक्ष्ण स्थिर तैल, २८% तक जीवनीय और स्निग्ध द्रव्य। कुछेक अम्ल तथा एक उड़नशील तैल के अंश आदि। बीजों को गरम किया जाये तो यह उड़नशील तैल उड़ जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१८६. रूमीमस्तगी

उ० स्थ०—भूमध्य सागर तटवर्ती प्रदेश, टर्की आदि प्रदेश ।

रा० सं०—पत्तों में टेनिन तथा रंजक द्रव्य, फलों में चूने के यौगिक रालीय पदार्थ तथा उड़नशील तैल । (१) मस्टिकोटिन आदि तीन अम्ल और सुराविलेय जस्टीकीन (१०%) सत्व और सुराअविलेय रालीय द्रव्य (३०%) उपलब्ध होते हैं ।

१८७. लज्जालु

उ० स्थ०—मूलतः ब्राजील (अमेरिका) देशीय है । अब भारत में सर्वत्र उत्पन्न खेतों और उद्यानों में ।

रा० सं०—१०% टेनिन उपलब्ध ।

१८८. लता कस्तूरी

उ० स्थ०—बंगाल, आसाम, तथा भारत के उष्ण प्रदेश ।

रा० सं०—एल्ब्युमिन, गोंद, बीजों में एक सुगन्धित तैल जो वायु में देर तक खुला रहने से जम जाता है । एक स्फटिकीय सत्व-विशेष, राल जातीय तथा सुगन्धी पदार्थ ।

१८९. लवंग

उ० स्थ०—दक्षिणी भारत और लंका, जंजीवार, पेनांगादि अफ्रीकी देश ।

रा० सं०—लवंगों में १६-२० प्रतिशत एक उड़नशील तैल, कर्पूरीय राल ६%, कार्योफायलिन (Caryophyllin) अथवा यूजिनिन (Euginin) नामक स्फटिकीय सत्व । माचिकाम्ल, टेनिन, सौत्रिक तन्तु, गोंद इत्यादि । लवंग के खींचे हुए तैल में यूजिनोल (Euginol) ८५-८२% तक पाया जाता है । यह फीनोलसम पदार्थ है ।

१९०. लशुन

उ० स्थ०—सर्वत्र खेती की जाती है ।

रा० सं०—कन्द में प्रधानतया गन्धक युक्त कपिलवर्णक एक सुगन्धित तैल (गुरुत्व-१०४७-१०५७) के अतिरिक्त श्वेतसार, एल्ब्युमिन, शर्करा, गोंद तथा पिच्छिल पदार्थ के भी अंश पाये जाते हैं । इनके अतिरिक्त अलीसेशन नं० १ (Alessetion No. 1), और अलीसेशन नं० २ (Alessetion No. 2) नामक तीव्र क्रमिघ्नतत्व भी उपलब्ध होते हैं । ये जल अविलेय, किन्तु ईथर विलेय है । रसोन का प्रभाव इसमें उपस्थित तैल की मात्रा पर निर्भर है ।

१९१. लांगली (कलिहारी)

उ० स्थ०—बंगाल, महाराष्ट्र, लंका, बर्मादि ।

रा० सं०—कन्द में रालीय सत्व टेनीन, दो क्षारोद, (१) सुपरबाइन (Superbine) (२) ग्लोरियोसिन (Gloriosin) तथा श्वेतसार अल्पांश ।

१९२. लोध्र

उ० स्थ०—आसाम, बंगाल, के निचले पर्वतीय प्रान्त और समीपवर्ती मैदान छोटा नागपुर (बिहार) में २,५०० फीट की ऊँचाई तक और बर्मा ।

रा० सं०—छाल में अस्फटिकीय सत्व विशेष लोटुरीन (Loturine), २०%, कोलोटुरीन (Colloturine) तथा लोटुरिडीन (Loturidine) और प्रभूत मात्रा में एक रंजक द्रव्य भी उपलब्ध होता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१९३. वचा

उ० स्थ०—मध्य एशिया तथा पूर्वी यूरोप और भारत में ६,००० फीट की ऊँचाई तक काश्मीर, हिमाचल, मणिपुर, नागा पर्वतमाला आदि, कृषि द्वारा भी उपलब्ध।

रा० सं०—कन्द में केम्फीन (Camphene) केलेमेन (Calamen) ४% तक, केलामेनोल ५% केलामेनोन (Calemenon) १%, एकोरिन (Acorin) रालीय द्रव्य, टेनिन, श्वेतसार, स्निग्ध द्रव्य और कैलशियम आक्ज़ोलेट के अंश भी पाये जाते हैं।

१९४. वटः (न्यग्रोध)

उ० स्थ०—समग्र भारत।

रा० सं०—छाल तथा पुष्प कलिकाओं में ९०% तक टेनिन, मोम, कोटेचोक तथा फलों में तैल विशेष, एल्ब्युमिन के योग कार्बोज के अंश उषलब्ध होते हैं।

(सूचना—अश्वत्थ (पीपल) में भी यही सत्व पाये शाते हैं।)

१९५. वत्सनाभ (विष)

उ० स्थ०—हिमालय और यूरोपीय पर्वतों पर ७,००० से १२,००० फीट की ऊँचाई तक।

रा० सं०—कन्द में (१) इण्डोकोटीनीटिन (Indocotinitine) तथा इन्डोबेन्झोकोनीन (Indobenzoco-nine) नामक दो सत्व, श्वेतसार पाये जाते हैं।

१९६. वनपलाण्डुः (कोलकन्द)

उ० स्थ०—पश्चिमोत्तर हिमालय के गढवाल, कुमायूं आदि प्रदेश, तथा बिहार, कोंकण और पश्चिमी घाटीय प्रदेश।

रा० सं०—ताजे कन्द में दो प्रकार के सत्व उपस्थित—(१) जलविलेय स्फटिकीय सिलेरिन अ, (Scillarin, A) और सिलेरिन, ब (Scillarin B)। इनके अतिरिक्त कार्बोज पिच्छिल द्रव्य, कैलशियम आक्सलेट (Calcium Oxalate) के अंश भी पाये जाते हैं।

१९७. वनपुष्पकम्

उ० स्थ०—हिमालयादि प्रदेश, ५,००० फीट तक की ऊँचाई पर्यन्त।

रा० सं०—नीले पुष्पों और मूल में वायोलिन (Violine) नामक वामक सत्व है, यह ऐमेटीन (Emetine) सम कार्य करता है। इसके अतिरिक्त उड़नशील तैलांश अनेक रंजक द्रव्य, वायोला क्वर्सिटिन (Viola Quercetin) शर्करा आदि के अंश।

१९८. वरुण

उ० स्थ०—मध्य भारत, आसाम, बंगाल, केरल, मैसूर आदि के प्रदेश।

रा० सं०—छाल में सेपोनिन सत्व उपस्थित।

१९९. वंशरोचना (वंश)

उ० स्थ०—भारत तथा बर्मा आदि प्रदेश।

रा० सं०—वंश के इस सत्व वंशलोचन में सिलिका (Silica) ९०%, लोह, पोटाश, चूना, एलुमिनिया के यौगिक, कोलिन (Cholin) बिटेन (Betain) यूरेस (Ureases) सत्वों के अंश मात्र उपलब्ध।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

२००. वर्वरी (सब्जा)

उ० स्थ०--भारत, पाकिस्तान, ईरान आदि देश।

रा० सं०—पत्तों में पीत-हरित वर्ण का सुगन्धित तैल, जो कुछ समय खुली वायु में रखने पर स्फटिक (Crystal) का रूप धारण कर लेती है उपलब्ध होता है। इसे बर्वरी कपूर (Basil Camphor) नाम दिया जाता है। इस तैल का प्रधान सत्व टर्पेन (Terpene) नामक द्रव्य है।

२०१. बाकुची

उ० स्थ०—भारत तथा लंका में सर्वत्र खेती की जाती है।

रा० सं०—इसके बीजों में निम्न सत्व पाये जाते हैं--(१) राल जातीय सत्व (२) सुगन्धित राल (३) टर्पिनोइड तैल (Terpinioid Oil), एक स्थिर तैल, दो प्रकार के स्फटिकीय सत्व सोरेलिन (Psorelin) और आयसो-सोरेलिन (Iso-Psorelin) भी उपलब्ध होते हैं। जिनके कारण यह कृमिघ्न तथा त्वचा रोग नाशक है। फल के छिलके में से सोरेलिडीन (Psorelidine) नामक सत्व पृथक् किया गया है।

२०२. वाताद (मधुर)

उ० स्थ०--अफगानिस्तान, इटली, पश्चिमी एशिया, तथा काश्मीर से कुल्लू तक का भारतीय हिमालयीय प्रदेश।

रा० सं०--प्रधानतया एक स्थिर तैल ४०-५०% तक, प्रजीवणक तथा अभिषवीय क्षीर (Mixture of Enzymes known as emulsion)

२०३. कटु वाताद

रा० सं०--निर्विष स्थिर तैल, जो जलोय अभिषव उत्पाद के द्वारा हायड्रोसायनिक अम्ल द्राक्षीशर्करा और एक विषैले उड़नशील तैल के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसके अतिरिक्त अमिग्डेलीन (Amygdalin) नामक वाताद सत्व ३०% और कतिपय पिच्छिल पदार्थ।

२०४. वालक द्वयम, कृष्ण वालक और (ह्रीबेर) (Valeriana)

उ० स्थ०--मूलतः यूरोप देशीय और वहाँ इसकी कृषि की जाती है। भारत में यह न्यून मात्रा में उत्तरी काश्मीर में ८-४ सहस्र फीट की ऊँचाई पर्यन्त उत्पत्न।

रा० सं०—एक स्फटिकीय सत्व तथा दूसरा कर्पूर जातीय सत्व जो इसमें उपस्थित उड़नशील तैल का प्रधान अंश है।

२०५. सुगन्धबाला (तगरम्)

उ० स्थ०—हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशों में ४,००० से १२,००० फीट तक, काश्मीर से भूटान तक उत्पन्न।

रा० सं०—मूल में ½% से २½% तक एक उड़नशील तैल उपलब्ध। उसके प्रधानतः उपादान, जटामांसी अम्ल (Valeric Acid) और टर्पेन आदि सत्व है। वसन्त में एकत्र की गई मेल में यह अधिक मात्रा में पाया जाता है। एक स्थिर तैल भी मूल से प्राप्त होता है।

२०६. वासक (अटरूषकः)

उ० स्थ०—सर्वत्र स्वयम्भू रूप में, ४,००० फीट की ऊँचाई तक उत्पन्न।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रा० सं०—पत्तों में—(१) वसिसीन (Vasicine) नामक तिक्त स्फटिकीय सत्व, (२) वासकाम्ल (Adhatodic Acid) के साथ संमिश्र एक सुगन्धित तैल, वसांश एक रालीय द्रव्य। शर्करा, पिच्छिल पदार्थ, तथा पीतवर्ण रंजक द्रव्य के कुछ अंश।

२०७. वास्तूक

उ० स्थ०—सर्वत्र खेतों में उपलब्ध।

रा० सं०—पत्तों में एक सुगन्धित तैल, धात्वंश, विशेषत: पोटाश और नत्रजन के योग और प्रभूत मात्रा में एल्ब्युमिनोइड।

२०८. विडंग

उ० स्थ—निचले पर्वतीय प्रदेशों में सर्वत्र आसाम से केरल पर्यन्त तथा सिंगापुर, आदि प्रदेश।

रा० सं०—२-५% तक विडंगाम्ल (Embellic Acid) या एमिलिन नामक सुवर्ण वर्ण का स्फटिकीय सत्व पाया जाता है। जो जल में अविलेय, किन्तु सुरासार, ईथर और क्लोरोफार्म में विलेय है। स्वल्पमात्रा में क्रिस्टेम्बीन (Christembine) नामक क्षारोद उपस्थित।

२०९. विजया (भंगा)

उ० स्थ०—भारत में सर्वत्र उपलब्ध, प्रधानत: सरकार द्वारा नियंत्रित खेती अलमोड़ा, गढ़वाल, नैनीताल, काश्मीर और केरल प्रदेशों में भी की जाती है।

रा० सं०—पत्तों में प्रधानतया मृदु कपिलवर्ण रालीय सत्व भंगीन केनाबिनोन (Cannabinone) उपलब्ध। इसका प्रधान उपादान लाल रंग का गाढ़ा तैल है जो अतिनिद्राजनक है। एतदतिरिक्त इसमें गोंद, शर्करा, शोरका एवं उड़नशील तैलांश।

२१०. विदारीकन्द (क्षीर विदारी)

उ० स्थ०—विदारीकन्द उष्ण प्रदेशों में समग्र भारत में।

रा० सं०—कन्द में जल के समान रालीय सत्व, शर्करा, प्रधानत: श्वेतसार।

२११. विभीतक: (कर्षफल)

उ० स्थ०—जंगल तथा आनूप प्रदेशों को छोड़कर भारत के समशीतोष्ण प्रदेशों में, लंका और बर्मा देश।

रा० सं०—फलों में १७% टेनिन सत्व, स्थिर तैल के अल्पांश रालीय पदार्थ और कुछ अस्फटिकीय सत्व।

२१२. विषमुष्टि (कारस्कर)

उ० स्थ०—४,००० फीट की ऊँचाई तक भारत में जंगली प्रदेशों में केरल, मद्रास, बंगाल, बिहार, उड़ीसादि।

रा० सं०—बीजों में २ से ५% तक सत्व-विशेष उपलब्ध होता है। जिसके प्रमूख अंग—(१) स्ट्रिक्निन (Strychnine) (२) ब्रूसीन (Brucine), (३) वामिसीन (Vomicine), (४) लोगेनीन (Loganin) है। कुछ वसा जातीय पदार्थ ३०%, काफिओटानिक अम्ल (Coffeo-Tannic Acid) तथा ताम्र के अंशमात्र उपलब्ध।

२१३. वृद्धदारकम् (समुद्रशोष)

उ० स्थ०—सर्वत्र उद्यानों और जंगलों में यह लता उत्पन्न होती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रा० सं०--टेनिन, कपिलवर्ण का रालीय पदार्थ और वेन्जोल (Benzole) नामक सत्व।

२१४. शटीद्रव्यम्

उ० स्थ०—भारत के अनेक भाग प्रधानतः पूर्वी बंगाल।

रा० सं०--कन्द में कर्क्युमिन अरेबिन्स (Curcumin Arabines), एक सुगन्धित तैल, तिक्तरसीय राल जातीय सत्व, सेन्द्रियाम्ल, गोंद, श्वेतसार, शर्करा उपलब्ध।

२१५. गन्धशटी (कपूरकचरी)

उ० स्थ०--नेपाल, हिमाचल प्रदेश आदि।

रा० सं०—कन्द में सेक्रीन (Sacchrine) के अंश होते हैं, एक सुगन्धित तैल, श्वेतसार, काष्ठौज, एल्ब्युमिन और कुछ पिच्छिल द्रव्य उपलब्ध।

२१६. शतपुष्पा (सौंफ)

उ० स्थ०--मूलतः यह मिस्र तथा लेवनान देशीय है। अब यूरोप, टर्की, मैक्सिको चाईल आदि प्रदेश तथा भारत में ६,००० फीट की ऊँचाई तक विशेषतः उत्तरी भारत और उड़ीसा में इसकी खेती की जाती है।

रा० सं०--१½ से ३½% तक उड़नशील तैल, इस तैल के प्रमुख पदार्थ है—(१) ८४-८७% अनेथोल (Anethole) और १३-१५% तक मिथाइल चविकोल (Methyl Chavicol) इनके अतिरिक्त एक स्थिर तैल (८-२३% तक) कोलिन (Cholin) श्वेतसार ५% शर्करा तथा पिच्छिल पदार्थ के अंश।

२१७. शतावरी

उ० स्थ०--सर्वत्र उपलब्ध, उत्तर भारत में प्रभूत मात्रा में उत्पन्न।

रा० सं०—एक सेक्रिनीय तत्व (Sacchrine) तथा पिच्छिल पदार्थ।

२१८. शरपुंखा

उ० स्थ०—सर्वत्र विशेषतः दक्षिणी भारत।

रा० सं०—एक निर्यास विशेष गोंद, रंजक द्रव्य, रालव्युमिन के अंश, राख में मैंगनीज के अंश उपलब्ध।

२१९. शाकवृक्ष (सागौन)

उ० स्थ०—मध्य, दक्षिणी और पश्चिमी भारत के जंगल तथा बर्मा।

रा० सं०--बीजों में एक स्निग्ध तैल, काष्ठ में कैलशियम फास्फेट्स और राल जातीय पदार्थ उपलब्ध।

२२०. शाल्मली (रक्त)

उ० स्थ०—भारत के समग्र उष्ण प्रदेश।

रा० सं०—बीजों में एक सदा तरल रहने वाला तैल। निर्गत (मोचरस) में टेनिक (Tannic) और माचिकाम्ल (Gallic Acid) पाये जाते हैं।

२२१. शिरीष (श्वेत)

उ० स्थ०—भारत के उष्ण प्रदेश।

रा० सं०—छाल में सेपोनिन सत्व।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

२२२. श्लेष्मातक

उ० स्थ०—भारत के उष्ण प्रदेश।

रा० सं०—फलमज्जा में केथरटिन (Cathartine) नामक सत्व, शर्करा तथा गोंद के अंश।

२२३. शेफालिका (पारिजातः)

उ० स्थ०—सर्वत्र स्वयम्भू रूप में उत्पन्न तथा उद्यानों में शोभार्थ लगाया जाता है।

रा० सं०—पुष्पों में एक सुगन्धित क्षारोद, रालीय पदार्थ, शर्करा, रंजक द्रव्य तथा तैल का कुछ अंश विषबन्धकारक सत्व विशेष प्राप्त होते हैं।

२२४. शिग्रु (शोभांञ्जन)

उ० स्थ०—मूल में स्पाइरोचिन (Spirochin) नामक प्रभावी तत्व (ऐक्टिव प्रिंसिपल), एक कृमि नाशक पदार्थ टेरीगोस्परमिन (Pterygospermin) भी उपलब्ध होता है।

२२५. सप्तपर्ण

उ० स्थ०—भारतीय आनूप प्रदेशों, विशेषकर पश्चिमी समुद्रतट, बर्मा, सीलोन, मलाया, फिलिपाइन्सादि देश।

रा० सं०—छाल में निम्न सत्व उपलब्ध होते हैं—(१) डिटेमिन (Ditamine), (२) एकीटेनीन (Echitenine), (३) एक्टिमिन (Echitemine), (४) एकीटेमीडीन (Echitemidine), कुछ क्षारोद, और गुडूचीसत्व सम एकीरेटीन (Echiratine) नामक सत्व विशेष।

२२६. सप्तला (शिकाकाई)

उ० स्थ०—दक्षिणी भारत अन्यत्र विरल।

रा० सं०—फलों में १½% तक सेपोनिन (Saponin) नामक क्षारोद, १२.७५% तक सेवाम्ल (Malic Acid) ११% रालीय पदार्थ, १३.९% शर्करा गोंद तथा रंजक द्रव्य २१.५% पर्यन्त उपलब्ध।

२२७. सरलस्राव (श्रीवास)

उ० स्थ०—सरल (चीड) के वृक्ष हिमालय तथा तत्सम अन्य पर्वतों पर ५,००० से १०,००० फीट तक की ऊँचाई के प्रदेश।

रा० सं०—इसके तैल में टर्पेन्स (Terpenes), केम्फीन (Camphine), केम्फोरिक अम्ल (Camphoric Acid) प्रधान रूप में उपस्थित पाये गये हैं।

२२८. सर्पगन्धा (चन्द्रिका)

उ० स्थ०—हिमालय के निचले भागों में देहरादून से आसाम तक ४,००० फीट की ऊँचाई तक। दक्षिण में महाराष्ट्र, मद्रास, केरल, बिहार, बंगाल आदि प्रदेश तथा बर्मा स्याम जावा आदि।

रा० सं०—मूल में निम्न क्षारोदीय सत्व पाये गये हैं—(१) अजमेलीन (Ajmaline), (२) अजमेलिनिन (Ajmalinine) (३) पीतवर्ण सर्पेन्टीन (Serpentine) तथा सर्पेन्टीनीन (Serpentinine) देहरादून में उत्पन्न मूल सत्व सर्वाधिक मात्रा में उपलब्ध।

२२९. सारिवाद्वयम्-अनन्ता (श्वेतसारिवा)

उ० स्थ०—समग्र भारत विशेषतः बंगाल, महाराष्ट्र दक्षिण भारत और लंका।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रा० सं०—कोमारिन (Coumarin) नामक स्फटिकीय सत्व हेमिडेस्मिन (Hemidesmine) तथा स्माई-लेक्सपरिकाम्ल (Smilaxperic Acid) जो सेपोनिन का यौगिक है, उपलब्ध।

२३०. कृष्ण सारिवा (श्यामसारिवा)

उ० स्थ०—गांगेय मैदान के उपरि अंचल, बंगाल, महाराष्ट्र, मध्य भारत, दक्षिणी भारत लंका।

रा० सं०—इसमें सिंकोटेनिक (Sinco-Tannic Acid) सम एक अम्लीय सत्व। एक लाल वर्ण का रंजक द्रव्य, राल, कौमारिन (Coumarin) के अंश तथा कोटेचोक (Caoutechouc) के अंश पाये गये हैं।

२३१. सिद्धार्थक (श्वेत सर्षप)

उ० स्थ०—सर्वत्र कृषि की जाती है।

रा० सं०—बीजों में २३-२५% तक एक अनस्थिर तैल सिनालबिन (Sinalbin) नामक स्फटिकीय तत्व प्रधान सत्व है। इनके अतिरिक्त सल्फोसायनाइड सीनापिन, प्रजीवणक, पिच्छिल पदार्थ, पोटेशियम, मैग्नेशियम और कैलशियम के फास्फेट भी पाये जाते हैं।

२३२. सुधामूली (सालवमिश्री)

उ० स्थ०—अफगानिस्तान, ईरान, पाकिस्तान, काश्मीर, नेपाल, मिस्र आदि देश।

रा० सं०—काष्ठ में एक ग्लुकोसाइड एक तिक्त सत्व तथा श्वेतसार २७% पिच्छिल पदार्थ ४०% शर्करा एल्ब्युमिन, एक उड़नशील तैल के अंश। राख में पोटेशियम के फास्फेटस् और क्लोराइड लवण तथा चूने के योग उपस्थित।

२३३. सुरंजानम् (हिरण्यतुत्थ)

उ० स्थ०—अफगानिस्तान, तुर्किस्तान तथा हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेश, काश्मीर से चम्बा तक २,००० से ९,००० फीट की ऊँचाई तक घासों के मैदानों में।

रा० सं०—कन्द में प्रधानतः कोलचिसिन (Colchicin) नामक वीर्य (Active Principle) पाया जाता है। तदतिरिक्त, श्वेतसार, शर्करा, गोंद, वसा टेनिन और एक रंजक द्रव्य के अंश मात्र भी उपस्थित।

२३४. सुवर्णचम्पक

उ० स्थ०—यह सदा हरित दीर्घ वृक्ष आसाम, बंगाल, बर्मा आदि में स्वयम्भू रूप में उत्पन्न तथा उद्यानों में लगायी जाती है।

रा० सं०—छाल में एक सुगन्धित तैल, एक स्थिर तैल, राल, टेनिन, श्वेतसार, शर्करा तथा पिच्छिल पदार्थ।

२३५. सुवर्णक्षीरी (स्वर्णक्षीरी)

उ० स्थ०—मूलतः यह मेक्सिको (अमेरिका) देशीय है। अब भारत में सर्वत्र ५,००० फीट की ऊँचाई तक उत्पन्न।

रा० सं०—इसमें बर्बेरिन (Berbarine) नामक सत्व फास्फेट तथा सल्फेट के यौगिक उपस्थित पाये गये हैं।

२३६. सूची (बेलाडोना)

उ० स्थ०—स्वयम्भू रूप में यूरोप, इंग्लैंड में उपलब्ध, अब यूरोप, अमेरिका के अनेक भागों में तथा काश्मीर में ६,००० से १२,००० फीट की ऊँचाई तक इसकी खेती की जाती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रा० सं०—पत्तों में—(१) हायोसायमिन (Hyoscyamine) सम सत्वविशेष तथा स्वल्पांश में बेलाडोनीन (Belladonine) तथा पायराइडीन (Pyridine) नामक सत्व भी उपलब्ध होते हैं।

२३७. सूरणम् (वन्य)

उ० स्थ०—दक्षिणी भारत, महाराष्ट्र आदि प्रदेश।

रा० सं०—ताजे (आर्द्र) कन्द में ७८% तक जलीय अंश शुष्क में १२.१८% तक एल्ब्युमिन के योग, कार्बोज काष्ट ४%।

२३८. सुवर्णपत्री (सनाय)

उ० स्थ०—मूलतः अरबी और सोमाली है। अब दक्षिणी भारत के मदुरा, टेनीवेली मैसूरादि प्रदेशों में कृषि द्वारा उत्पन्न।

रा० सं०—सनाय के पत्तों में निम्न सत्व पाये जाते हैं—(१) हीन (Rhein) (२) केम्फेरिन (Camphe-rine), (३) आयसो-रेह्मनीटीन (Iso-Rhamneitine), एलो-एमोडिन (Aloe-Emodin) द्वय अन्तिम सत्व के कारण यह रेचक है।

२३९. सोमलता

उ० स्थ०—हिमालय के ७,००० से १४,००० फीट की ऊँचाई के प्रदेश पागी, लाहौल, चम्बा, शिमला, लद्दाख, कैलास, पश्चिमी तिब्बतादि प्रदेश।

रा० सं०—इफ्रेडीन (Ephredine) नामक प्रभावशाली वीर्य प्रधानरूप से उपस्थित है। अन्य सत्वों के अंश भी पाये जाते हैं।

२४०. हपुषा

उ० स्थ०—मूलतः यह यूरोपीय है, उत्तरी एशिया और उत्तरी अमेरिका तथा पश्चिमोत्तर हिमालय और उत्तरी अमेरिका तथा पश्चिमोत्तर हिमालय पर ५,००० से १४,००० की ऊँचाई तक।

रा० सं०—फलों में जुनीपेरीन (Juniperin) नामक पित्त सत्व, रालीय सत्व १०% अभिषवीय शर्करा ३३% (Fermentable Sugar) तथा एक उड़नशील तैल के अंश।

२४१. हरमल

उ० स्थ०—प्रायः समग्र भारत; काश्मीर, कोंकण उत्तर प्रदेशादि स्थल।

रा० सं०—बीजों में हारमेलिन (Harmaline) हार्मिन (Harmine, Harmalol) पेगेनीन (Peganin) नामक सत्व। ये सब मिलकर बीजों में ४% तक उपस्थित है। इन सब में हर्मेलिन सबसे प्रधान है। एक राल जातीय गांजे की गन्धवाला रंजक द्रव्य है।

२४२. हरिद्राद्वयम् (अ) हरिद्रा

उ० स्थ०—समग्र भारत विशेषकर बंगाल और महाराष्ट्र प्रदेश।

रा० सं०—कन्द में करक्युमिन (Curcumine) नामक पीला स्फटिकीय रंजक द्रव्य ५-६% तक, एक उड़नशील कर्पूर गन्धि तैल, इसमें करक्युमिन (Curcumen) नामक सत्व पाया जाता है। श्वेतसार २४% और एल्युमिनोइड ३०% तक भी पाये जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

२४३. (आ) आम्रगन्धि-हरिद्रा

उ० स्थ०—बंगाल तथा महाराष्ट्र के समुद्र तटवर्ती प्रदेश।

रा० सं०—कन्द में एक सुगन्धित तैल, शर्करा, निर्यास रालीय द्रव्य, श्वेतसार, सेन्द्रियाम्ल और लएब्युमिनोइड उपस्थित।

२४४. हरीतकी

उ० स्थ०—भारत के पर्वतों पर सर्वत्र, कांगड़ी, कुल्लू, महाबलेश्वरादि प्रदेश।

रा० सं०—फलों में हरीतक्याम्ल चेबुलिक एसिड (Chebulic Acid ३०%) तक पाया जाता है। हरे वर्ण का रालीय पदार्थ मायरोबेलेनिन (Myrobalanin) तथा माचिकाम्ल (Gallic Acid) और टेनिन (२०%) और एन्थ्रेक्विनोन (Anthraquinon) नामक रेचक द्रव्य उपस्थित।

२४५. हिज्जलम् (समुद्रफलम्)

उ० स्थ०—दक्षिणी, पूर्वी तथा पश्चिमी भारत।

रा० सं०—सेपोनिन तथा बेरिंगटन् (Baringtone) श्वेतसार, प्रजीवणक, वसा, कार्बोज, काष्ठौज और कुछ रालीय द्रव्य के अंश मात्र।

२४६. हिंगु

उ० स्थ०—काश्मीर, अफगानिस्तान, ईरान, पश्चिमी तिब्बत तथा तुर्किस्तान।

रा० सं०—हींग में ४०-६९% तक राल जातीय द्रव्य २५% के लगभग निर्यास और ६-१७% तक एक उड़नशील द्रव्य तैल, जिसके कारण यह गुणकारी है। यह टर्पेन्स, बेम्डी सल्फाइड अम्लीय तथा कुछ अम्लीय पद सत्वों का यौगिक है।

२४७. हिमसागर (जख्मेहयात)

उ० स्थ०—उद्यानों में सर्वत्र उत्पन्न।

रा० सं०—इसमें कारवाक्रोल (Carvacrol) नामक सुगन्धित तैल पाया जाता है।

सूचना—कुछ वैद्य इसे गलती से पाषाणादि समझ लेते हैं। यद्यपि यह भी मूत्रल है, किन्तु पाषाण भेद नहीं है।

२४८. हृत्पत्री

उ० स्थ०—यूरोप, उत्तरी अमेरिका, इंग्लैंड तथा भारत में काश्मीर, दार्जिलिंग, नीलगिरि, आदि पर्वतीय प्रदेश।

रा० सं०—अनेक ग्लायकोसाइडस् (Glycosydes) पाये जाते हैं। उन सब में प्रधान है डिजिटोक्सीन (Digitoxin) और जिटोक्सीन (Gotoxin)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तृतीय परिशिष्ट

विष द्रव्य व्यवहार पंजिका

आजकल नये-नये विधि विधानों द्वारा वैद्यों को नियन्त्रित होना पड़ रहा है। अतः उन्हें विशेष ध्यान उन द्रव्यों पर रखना चाहिए जो "विषों" की श्रेणी में आते हैं। यथा अफीम, धत्तूरा, सोमल, हरिताल, मनः शिला वत्सनाभादि। इनके क्रय-विक्रय, औषधि-निर्माण तथा रोगियों का देने का पूर्ण विवरण सावधानी से रखना आवश्यक है कभी-कभी न्यायालयों में भी आवश्यकता हो जाती है। विभागाधिकारियों का निरीक्षण तो प्रायः रहता ही है। एतदर्थ निम्न प्रकार की पंजिका उपयुक्त है। उदाहरणार्थ, नीचे दी जा रही है। इसमें सुधार किया सकता है। इसे नित्य प्रति भरते रहना चाहिए अन्यथा भूल हो जाना सम्भव है।

विष द्रव्यों के क्रय-विक्रय की पंजिका

विष द्रव्यों के क्रय की पंजिका

तिथि द्रव्य लेने की	नाम, पता जिससे द्रव्य लिया गया	औषधि की मात्रा (परिमाण)	औषध स्वरूप

विष द्रव्यों के विक्रय की पंजिका

तिथि (व्यय का दिन)	जिसको द्रव्य दिया उसका नाम. पता	औषध मात्रा और स्वरूप	यदि व्यवस्था-पत्र से दिया तो उसका उल्लेख

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

अनुभूत चिकित्सा सागर —— (गंगा प्रसाद 'दधीच')

अष्टांग हृदयम्

अभिनव निघण्टु

अभिधात चिन्तामणि

औषधि संग्रह (मराठी) —— वामन गणेश देसाई

कैय्यदेव निघण्टु — (स्व० श्री सुरेन्द्र मोहन सम्पादित)

चरकसंहिता

चरकसंहिता की चक्रपाणिदत्त टीका

द्रव्यगुण संग्रह (चक्रपाणिदत्त, टीका श्री शिवदास सेन)

द्रव्यगुण विज्ञान (श्री आचार्य यादव जी)

धन्वन्तरि निघण्टु

निघण्ट्वादर्श —— (गुजराती) वैद्य बापालाल

भावप्रकाश निघण्टु

मदनफल निघण्टुः

यूनानी द्रव्यगुणसंग्रह (श्रीदलजीत सिंह)

राजनिघण्टु (नरहरि)

वनौषधि दर्पण (कविराज बिरजाचरण गुप्त), बंगाली, अंग्रेजी' संस्कृत

बृहन्निघण्टु रत्नाकर (शालिग्राम)

शारंगधर संहिता——

सोढ़ल निघण्टु——

सिद्धमन्त्र (केशवदेव)

1. Indigenous drugs of India by Chopra.
2. Indian medicinal plants by Kirtikar and Basu.
3. Indian materia medica by Nadkarni
4. The Indian Pharmaceutical codex Government of India.
5. Vegetable drugs of India by Sanyal and Ghosh.

———

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Vaidyaraj Z nda atji
National Ayurvedic Library
Punjabi Bagh, New Delhi-26
Call No.........................
Book No... 003554...
Acc No...9.............

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection.